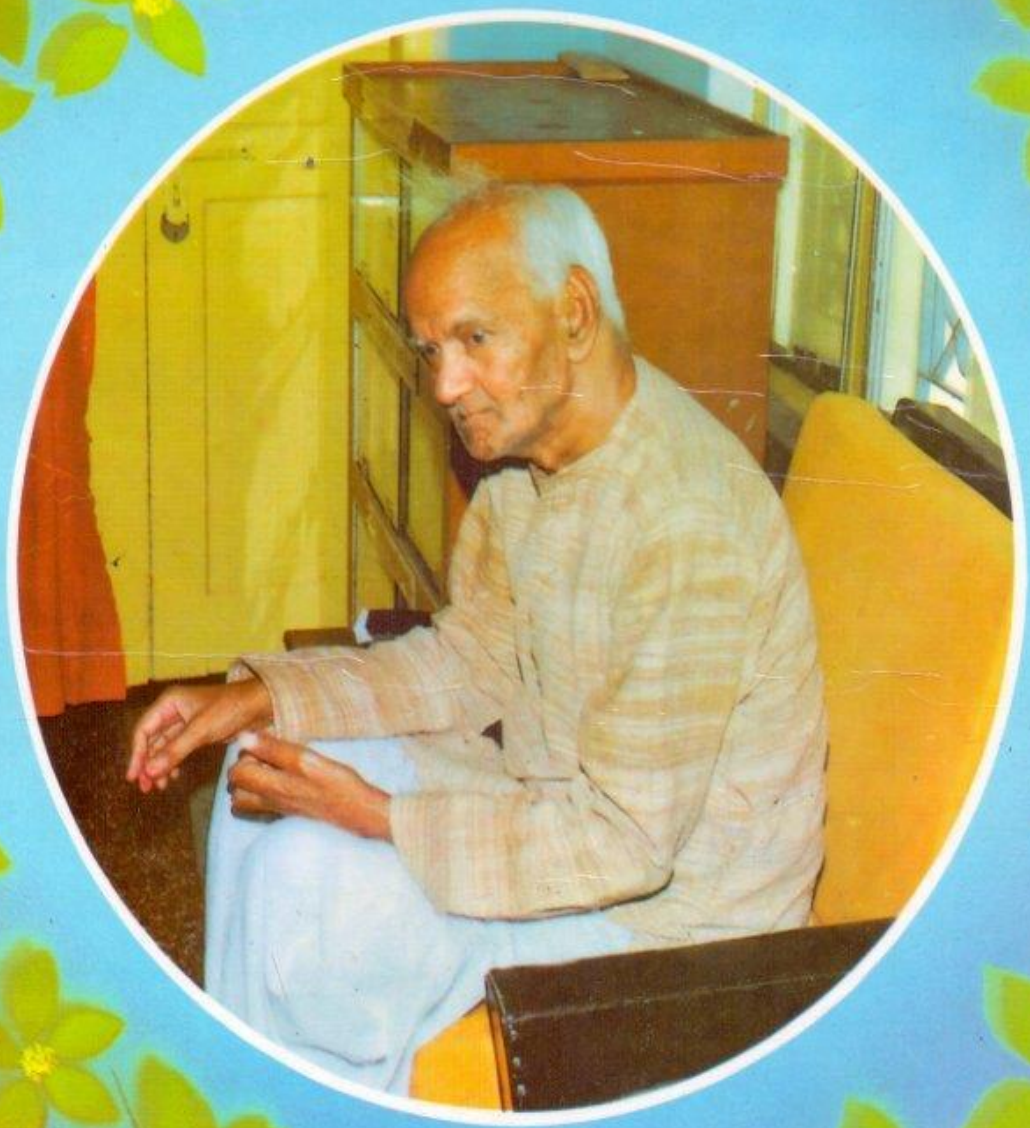
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

शिक्षा एवं विद्या



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

शिक्षा एवं विद्या

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐

प्रकाशक

अखण्ड ज्योति संस्थान

मथुरा-२८१ ००३

❐

© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



❐

मूल्य १२५)

❐

मुद्रक

जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम प्रीति के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गईं। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

भूमिका

शिक्षा के विषय में सभी मूर्धन्य विचारक एक मत से बताते हैं कि इसकी पूर्णता एवं समग्रता तब ही है, जब यह तीन लक्ष्यों को पूरा करे- १. स्वावलम्बन, २. व्यक्तित्व निर्माण, ३. सामाजिक सद्भावना का विकास। शिक्षा व्यक्ति को जानकारी देती है और उसे जिम्मेदार नागरिक बनाती है। साक्षरता से प्रारम्भ हुई शिक्षा बड़े होने पर जब मनुष्य के मस्तिष्क का अनन्त सीमा तक विस्तार करती है तो व्यक्ति व्यावहारिक ज्ञान में प्रवीण एवं विद्वत्ता का धनी माना जाने लगता है। देखा यह जाना चाहिए कि शिक्षा तंत्र क्या इतना समर्थ एवं सक्षम है कि इन उद्देश्यों को पूरा कर पाए। हमारे ऋषियों ने सार्थक एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षा की बात कहते हुए शिक्षा एवं विद्या के समन्वय से ही व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया सम्पन्न होते बतायी है। ऋषियों की दृष्टि में शिक्षा वह है जो व्यक्ति की उदरपूर्णा की आवश्यकता को पूरा करती हो एवं विद्या वह है, जो व्यक्ति में सुसंस्कारिता का समावेश करती हो। दोनों मिलकर एक समग्र, समुन्नत व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। विद्या से अमृत प्राप्त होने तथा सरस्वती पूजन के द्वारा बिद्या की अभ्यर्थना होने के पीछे यही तथ्य प्रमुख भूमिका निभाता आया है। यदि पात्रता विकसित हो और सही शिक्षक हो, तो जो ज्ञान सम्पदा प्राप्त होती है, वह बढ़ती ही चली जाती है, जन्म-जन्मान्तरों तक साथ चलती रहती है।

परमपूज्य गुरुदेव ने वाङ्मय के इस खण्ड में शिक्षा एवं विद्या के इसी अन्तर को बताते हुए आज की शिक्षण व्यवस्था की कमियाँ एवं सुसंस्कारिता संवर्द्धन करने वाली गुरुकुलस्तरीय विद्या को उसमें समाविष्ट किये जाने की महत्ता प्रतिपादित की है। शिक्षा का स्तर जहाँ ऊँचा होगा, निश्चित रूप से वहाँ सभ्यता का विकास सर्वोच्च स्तर पर होगा, किन्तु यदि शिक्षा के साथ-साथ विद्या या दीक्षा भी जुड़ी होगी तो संस्कारवान सुसंततियाँ समाज में बढ़ती चली जाएँगी। शिक्षा जहाँ सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक है, व्यावहारिक ज्ञान के संवर्द्धन तथा अपने पैरों पर खड़े होने के लिए जरूरी है, वहाँ अपने जीवन के उद्देश्य को समझने, अनगढ़ता को सुगढ़ता में बदलने और जीवन जीने की कला के शिक्षण के रूप में एक पूरक की भूमिका निभाती है। इसके लिए पढ़ाई पूरी कराना और उससे आगे का शिक्षण भी कराना हर समाज के लिए आवश्यक है; किन्तु यह परिश्रम अधूरा माना जाएगा यदि शिक्षार्थियों में सम्वेदना के विकास, सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन, समाज परायण बनने का शिक्षण साथ-साथ नहीं दिया गया। जब शिक्षा एक साधन और व्यक्तित्व विकास एक साध्य बन जाता है तो फिर शिक्षा को उतना महत्त्व न देकर विद्या संवर्द्धन के निमित्त किये गये आध्यात्मिक स्तर के प्रयास भूमिका निभाते देखे जा सकते हैं।

अब न तो छात्रों में वह पात्रता है और न ही विनम्रता। शिक्षक भी अपनी गरिमा के अनुरूप वह भूमिका नहीं निभा पा रहे हैं, जो प्राचीनकाल के गुरुकुलों के प्राध्यापक निभाते हैं। समस्त प्रकार की प्रतिकूलताओं में रहते हुए भी गुरुकुल से निकलने वाला छात्र चरित्रनिष्ठा, प्रतिभा व लोकसेवी प्रवृत्ति की दृष्टि से इतना खरा पाया जाता था कि सर्वसाधारण द्वारा इन्हें सतत सम्मान मिलता था। यदि आज यह शिक्षण तंत्र हमें सही बनाना है तो औपचारिक स्कूली-कॉलेज स्तर की शिक्षा के साथ जीवन जीने की कला का शिक्षण देने वाली विद्या का भी समावेश करना होगा। नैतिकता इसी रूप में छात्रों में एक सद्गुण के रूप में समाहित की जा सकेगी, तब न बेरोजगारी का कलंक हमारे सिर पर होगा, न ही उद्दण्डता से भरे छात्रों के उपद्रव और न ही खुले रूप में आम शिक्षकों की अवमानना देखने को मिलेगी।

पूरा वाङ्मय एक समानान्तर शिक्षण तंत्र की स्थापना की बात करता है और इस व्यवस्था को बाल-संस्कारशालाओं से आरम्भ कर सद्ज्ञान संवर्द्धन हेतु लोकसेवी स्तर के सृजनशिल्पियों के निर्माण एवं उदात्त चरित्र वाले, श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाले शिक्षकों के निर्माण की व्यवस्था भी बनाता है। यही हमारे भावी सतयुगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समाज का एक ब्ल्यू प्रिंट है, यदि इसे सही ढंग से समझ लिया गया तो हम राष्ट्र की भावी पीढ़ी को एक जिम्मेदार, संस्कारवान नागरिक के रूप में विकसित कर सकेंगे।

परमपूज्य गुरुदेव ने आम आदमी को आत्म-मूर्छना से ग्रसित बताया है और यह कहा है कि-''वह चाहे कितना ही पढ़ा-लिखा क्यों न हो, यदि उसे सही ढंग से सोचना, समाज का सुनियोजन करना, प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेना, समाज के अन्य घटकों के साथ रहना नहीं आता तो फिर उसका पढ़ा-लिखा होना न केवल बेकार है बल्कि, उस पर लगाया हुआ धन भी राष्ट्रीय अपव्यय के समान है।'' परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि- ''ऐसे तथाकथित शिक्षितों के लिए अब संजीवनी विद्या की आवश्यकता पड़ेगी, जो उन्हें मूर्छना से उबार सके, समाज परायण बना सके।'' उनका एक आशावादी मत है कि युग परिवर्तन में मनुष्यों की आकृति तो यथास्थिति रहेगी ही, पर जब यह होगा तो उनकी प्रकृति बदल जाएगी। प्रकृति से यहाँ तात्पर्य मान्यता, भावना, विचारणा और गतिविधियों का समुच्चय है। पूज्यवर लिखते हैं कि गुण, कर्म व स्वभाव का आमूलचूल परिष्कार ही उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना की भवितव्यता को पूरा करेगा। अध्यात्म प्रधान यह संजीवनी विद्या कौन देगा? किस प्रकार उसका विस्तार होगा? और इतने विराट् परिमाण में युग अध्यापक कहाँ से आयेंगे, इसका बड़ा भाव-विभोर विवेचन वाङ्मय के इस इस खण्ड में हुआ है।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. सार्थक एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षा का स्वरूप १.१

शिक्षा का सही स्वरूप क्या हो ? १.१
शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास १.३
प्रगति का आधार, स्वरूप और लक्ष्य १.४
शिक्षा उद्देश्य पूर्ण बने १.६
शिक्षा का अर्थ और स्वरूप—
विवेकानन्द की दृष्टि में १.८
शिक्षा का अपेक्षित स्वरूप १.१०
शिक्षा क्यों और कैसे १.११
शिक्षा बनाम सुसंस्कारिता १.१४
आत्मिक प्रगति के लिए—
उत्कृष्ट शिक्षा की आवश्यकता १.१६
शिक्षा ऐसी हो, जो समस्याएँ सुलझाए १.१७
जीवन का स्वरूप और उपयोग सिखा सकने वाली शिक्षा चाहिए १.१९
शिक्षा का स्वरूप निखरे और उद्देश्य स्पष्ट हो १.२१
लोकमानस को परिष्कृत कर सकने वाली शिक्षा चाहिए १.२३
शिक्षा के साथ उद्देश्य भी जुड़ा रहे १.२५
शिक्षा में सार्थकता भी हो १.२६
प्रशिक्षण का क्रम आजीवन चलता रहे १.२८
सतत् शिक्षा का सिद्धान्त लागू किया जाए १.३०
शिक्षा को सार्थक करे ऐसी विशिष्टता विकसित हो १.३२
शिक्षा केवल शिक्षा के लिए नहीं १.३४
श्रम और शिक्षा की उपलब्धियों का बोध कराएँ १.३५
शिक्षित युवा पीढ़ी की कुंठा १.३७
शिक्षा का उद्देश्य एवं प्रयोजन बदलें १.३८
शिक्षा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप हो १.४०
शिक्षा प्रणाली प्रतिष्ठा योग्य बने १.४१
शिक्षा ऐसी हो, जो काम आए १.४२
सुशिक्षित की सही पहचान १.४४
शिक्षा के सन्दर्भ में उपेक्षा क्यों बरतें ? १.४६
आज की शिक्षा न उपयोगी है, न अपरिहार्य १.४८
आज की उच्च शिक्षा-एक जाल-जंजाल १.४९
प्राचीन शिक्षा-पद्धति १.५१
हमारी शिक्षा कैसी होनी चाहिए ? १.५४
अपने आप में एक समस्या—वर्तमान शिक्षा १.५६
आधुनिक शिक्षा की विचारणीय समस्याएँ १.५८
भारतीय शिक्षा में आवश्यक परिवर्तन १.५९
हमारे युवकों को कैसी शिक्षा दी जाय ? १.६०
हमारी शिक्षा का उद्देश्य और स्तर ऊँचा रहे १.६१
वर्तमान शिक्षा-पद्धति में सुधार की आवश्यकता १.६२
शिक्षा-पद्धति में सुधार होना ही चाहिए १.६५
शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को आमूल-चूल बदला जाय १.६७
शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक १.६८
हमारी शिक्षा पद्धति कैसी हो १.७१
शिक्षा सुधार के लिए कुछ उपयोगी सुझाव १.७६
स्कूली शिक्षा में जुड़ने वाले कुछ अनिवार्य विषय १.७७
शिक्षा का सामान्य स्तर मैट्रिक रहे १.७९
शिक्षा से जुड़ीं कुछ उलझी समस्याएँ और उनके समाधान १.८१
शिक्षा एवं संस्कृति का उद्देश्य १.८३
अँग्रेजी की अनिवार्यता हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध है १.८४
शिक्षा की खामियाँ कैसे दूर हों ? १.८६
व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता १.८८
स्कूली नहीं, अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा अनिवार्य १.९०
शिक्षा व्यावहारिक व अनौपचारिक हो १.९२
अनौपचारिक शिक्षा का स्वरूप १.९३
अनौपचारिक शिक्षा से ही जन चेतना को जागृत करना सम्भव १.९७
शिक्षा कुटीर उद्योगों की दिशा में मुड़े १.९९
शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता और स्वावलम्बन भी जुड़े १.१००
स्वावलम्बन—शिक्षा की अनिवार्य शर्त १.१०२
शिक्षा के साथ स्वावलम्बन का प्रशिक्षण भी १.१०३
सुसंस्कारिता की ओर भी कदम बढ़े १.१०४
स्काउटिंग की सेवा भावना का विस्तार किया जाए १.१०७
सुसंस्कारिता का शिक्षण भी अनिवार्य १.१०९
शिक्षा-पद्धति ही नहीं, समग्र जीवन दर्शन बदलें १.१११
समानान्तर शिक्षा हम स्वयं खड़ी करें १.११२
शिक्षा प्रयास सर्वांगीण होने चाहिए १.११५
समग्र शिक्षा की विविध भूमिका १.११७
विकास अभीष्ट है तो शिक्षा का विस्तार करना होगा १.११९
शैक्षिक क्रान्ति में अभिनव प्रयोग—वधा विद्यालय १.१२०
शिक्षा सार्थक भी तो होनी चाहिए १.१२२
शिक्षा सार्थक और समग्र कैसे बने ? १.१२४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साक्षरता विस्तार समय की सबसे बड़ी आवश्यकता १.१२६
शिक्षा-सम्वर्द्धन युग की एक महती आवश्यकता १.१२८
शिक्षा विस्तार की पुण्य प्रक्रिया १.१२९
समग्र प्रगति का सामयिक लोकशिक्षण—एक अनिवार्यता १.१३१
कठिनाइयों की पाठशाला में साहस का प्रशिक्षण १.१३३
अधूरी शिक्षा से ही सन्तोष न कर लीजिए १.१३४
नव निर्माण के लिए समग्र शिक्षा नितान्त आवश्यक १.१३५
सार्वजनिक लोकशिक्षा की मुहीम सँभालनी ही होगी १.३८
विकास में साधनों का नहीं शिक्षा का महत्त्व है १.१४०
ऊँचे महल कम और मजबूत झोंपड़े अधिक बनें १.१४२

२. एक समानान्तर शिक्षा तन्त्र २.१

बौद्धिक प्रगति की प्रक्रिया ही शिक्षा २.१
काश, शिक्षा ऐसी रही होती २.३
अतिरिक्त शिक्षा का स्वयं प्रबन्ध करें २.४
बौद्धिक कायाकल्प में समर्थ शिक्षा २.६
शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता २.८
शिक्षा सम्वर्द्धन तथ्य का पुनर्जीवन २.९
उपेक्षा से अवगति २.११
माहात्म्य समझा और समझाया जाय २.१२
शिक्षितों की नैतिक जिम्मेदारी २.१४
बुद्धि विपर्यय को उलटने की विद्या २.१६
शिक्षित, अशिक्षितों को ढूँढ़ें और उकसाएँ २.१७
सन्तान को क्यों पढ़ाएँ, क्या पढ़ाएँ ? २.१९
सोवियत विद्यार्थी का जीवनक्रम २.२२
बच्चों को शिक्षा ही नहीं सुसंस्कार भी दें २.२४
बाल संस्कारशालाएँ चलाएँ २.२६
सद्ज्ञान सम्वर्द्धन-युग शिल्पियों का पुनीत कर्त्तव्य २.३१
शिक्षा का अभियान चलाएँ २.३९
सद्ज्ञान सम्वर्द्धन का पुण्य-परमार्थ २.५१
ज्ञान-सम्पदा कमाने में उपेक्षा न बरतें २.५४
गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले पाठशाला, मल्लशाला चल पड़ें २.५६
सेवा-साधना के सहारे व्यक्तित्व का उत्कर्ष २.५९

३. छात्र-निर्माण में शिक्षकों एवं अभिभावकों की महती भूमिका ३.१

गुरु की गरिमा, महत्ता एवं जिम्मेदारी ३.१
बाल-विकास में अध्यापकों और अभिभावकों की भूमिका ३.३
छात्रों के विकास में घर और स्कूल की भूमिका ३.५
छात्र जीवन निर्माण करें ३.६
शिक्षकों का महान् उत्तरदायित्व ३.७
अध्यापक समुदाय अपनी गरिमा व दायित्व समझें ३.८
अध्यापकों की योग्यता और जिम्मेदारी ३.१०
अध्यापक अपने आदर्श से मार्गदर्शन दें ३.११
शिक्षा में सुसंस्कारिता का समन्वय ३.१३
शिक्षा ही नहीं दीक्षा भी ३.१५
सत्संकल्प पूरे किए जा सकते हैं ३.१७
अध्यापकों और छात्रों के बीच सघन सम्पर्क बनें ३.१९
समय की महती आवश्यकता और उसकी आपूर्ति ३.२१
विद्यालयों में नैतिक शिक्षा के लिए एक सराहनीय प्रपत्र ३.२३
सृजनात्मक क्षमता विकसित हो ३.२४
उपलब्ध उदाहरणों एवं साधनों का प्रयोग ३.२५
युगधर्म के दस लक्षण ३.२७
सेवा-सहकारिता का अभ्यास ही नहीं चस्का भी ३.३०
अध्यापकों की नई पीढ़ी-नई जिम्मेदारी ३.३२
गुरुपद के अनुरूप दायित्व भी ३.३३
देश का चिन्तन और चरित्र बदल सकने में समर्थ अध्यापक ३.३४
गुरु प्रदत्त शिक्षा-पद्धति की विशेषता ३.३५
आदर्श गुरु-शिष्य परम्परा फिर जागे ३.३६
अध्यापकों का दायित्व है छात्रों का निर्माण ३.३८
शिक्षक और शिक्षार्थियों के सम्बन्ध ३.३९
विद्यार्थियों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला जाय ३.४१
सामाजिक उत्कर्ष की जड़ें शिशु-शिक्षण में ३.४३
प्रशिक्षण की अनिवार्यता, उपादेयता ३.४५
प्रशिक्षण के उपयुक्त सही वातावरण ३.४७
सुधार परिवर्तन की सरल प्रक्रिया ३.४९
छात्रों को नैतिक शिक्षा आरम्भ से अन्त तक दी जाय ३.५१
अनुशासित छात्र ही प्रगतिशील समाज के कर्णधार ३.५२
गुरुजनों का आदर कीजिए ३.५५
छात्र सामयिक समस्याओं से अवगत हों ३.५६
नकल करके उत्तीर्ण होने की कुचेष्टा ३.५७
छात्रों का निर्माण अध्यापक करें ३.६१
अपनी भूमिका समझें ३.६१
सामाजिक कुरीतियाँ ३.६७
आस्तिकता एवं ईश्वर विश्वास ३.६७
सादगी और शालीनता ३.६७
सद्वृत्तियों का आविर्भाव ३.६८
अभिभावकों का सहयोग ३.६९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवकाश काल का सदुपयोग हो ३.७०
बच्चों की शिक्षा और दीक्षा दोनों आवश्यक ३.७१
सेवा-भाव का विकास भी आवश्यक है ३.७४
बच्चों को व्यवहार कुशल बनाइये ३.७५
बच्चों के मित्र बनिए ३.७७
बालकों की पढ़ाई का ध्यान रहे ३.८०
स्कूल भेजने के साथ यह भी ध्यान रहे ३.८१
बाल विकास केन्द्रों की स्थापना हो ३.८३

४. शिक्षा-विस्तार ही समाज की प्रगति का मूल आधार ४.१

राष्ट्र से अशिक्षा की कलंक-कालिमा मिटाई जाय ४.१
शिक्षा द्वारा आत्मोन्नति ४.४
शिक्षण का लक्ष्य हो—सोये को जगाना ४.५
गरीबी की तरह अशिक्षा से भी जूझा जाय ४.६
दो तिहाई जनता अन्धकार से कैसे निकले ? ४.८
शिक्षित वर्ग लोक-शिक्षण का बीड़ा उठाए ४.१०
सारा बोझ सरकार पर ही न डालें ४.११
निरक्षरता की समस्या का समाधान ४.१२
प्रगति की प्रथम सीढ़ी ४.१३
अशिक्षा का कलंक मिटाना ही होगा ४.१५
वयस्कों के लिए भी शिक्षा आवश्यक ४.१७
नव-निर्माण की आधारशिला—प्रौढ़ शिक्षा ४.१९
प्रौढ़-शिक्षा बाल शिक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण ४.२०
साक्षरता विस्तार एक अपरिहार्य राष्ट्रीय आवश्यकता ४.२२
शिक्षा विस्तार के निमित्त नियोजित कई माध्यम ४.२३
अध्ययन रुचि का विकास—महत्त्वपूर्ण आवश्यकता ४.२५
प्रौढ़-शिक्षा का महत्त्व समझा जाय और उस पर जोर दिया जाय ४.२७
नारी-शिक्षा के लिए अधिक प्रयत्न किये जाएँ ४.२८
प्रौढ़ महिला शिक्षा योजना ४.३०
गृहलक्ष्मी की शिक्षा पितृगृह में ४.३७
महिलाओं की स्वावलम्बन शिक्षा ४.३८
अनेक समस्याएँ—एक हल ४.३९
प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार का प्रयास आवश्यक ४.४१
प्रौढ़-शिक्षा की दिशा में उत्साह भरे कदम उठें ४.४१
शिक्षित युवा वर्ग का साक्षरता अभियान सफल हुआ ४.४३
शिक्षा एवं साक्षरता का प्रसार किया जाय ४.४३
शिक्षा प्रसार को जन आन्दोलन, बनाना होगा ४.४५
शिक्षित जन अपना दायित्व निभाने आगे आएँ ४.४७
निरक्षरता का कलंक इस तरह मिटेगा ४.४८
अशिक्षा की तरह दुर्बुद्धि भी विघातक ४.५४
कोई भी अशिक्षित न रहेगा . ४.५५

५. शिक्षा ही नहीं विद्या भी ५.१

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास शिक्षा और विद्या के समन्वय से ५.१
सा विद्या या विमुक्तये ५.६
सर्वोत्तम विभूति—विद्वत्ता ५.७
सार्थक शिक्षा को प्राथमिकता मिले ५.९
शिक्षा की काया में विद्या के प्राण डाले जाएँ ५.११
शिक्षा के साथ विद्या का भी समन्वय अनिवार्य ५.१२
शिक्षा ही नहीं विद्या भी परिष्कृत की जाय ५.१५
उपयोगी ज्ञान वृद्धि—विवेक बुद्धि के सहारे ५.१७
प्रकृति के आँगन में ब्रह्म विद्या के पाठ ५.१९
शिक्षा की सार्थकता—महानता के जागरण में उद्धरेत् आत्मनात्मानं ५.२३
आप भी ज्ञान का प्याला उठाकर पी जाइये ५.२५
शिक्षा और विद्या की अभ्यर्थना हमारे हर परिवार में चल पड़े ५.२७
विद्या-बुद्धि को सम्मानित रहने दें उसे वेश्यावृत्ति में न लगाएँ ५.२९
परिवर्तन की पुकार और गुहार ५.३२
सृजन विद्या के प्राध्यापक चाहिए ५.३४
युग चेतना का प्रचार-विस्तार ५.३५
नव-सृजन की अनुपम अध्यात्म-साधना ५.३६
वाणी द्वारा युग चेतना का प्रसार-विस्तार ५.३८
लोकरंजन के साथ जुड़ा हुआ लोकमंगल ५.३९
संजीवनी विद्या-जीवन कला ५.४०
जीवन विद्या के उपयोगी पक्ष भी जानें ५.४२
संजीवनी विद्या का विस्तार—जिसे किये बिना कोई गति नहीं ५.४४
एक लाख अध्यापकों द्वारा विद्या विस्तार का श्रीगणेश ५.४५
संजीवनी विद्या को व्यापक बनाया जाय ५.४६
महाविद्या का उदय और अभ्युदय ५.४८
जले दीपक ही बुझों को जलाएँगे ५.४९
मूर्छना का पुनर्जागरण अनिवार्य है ५.५०
लोकमानस-परिष्कार का प्रशिक्षण ५.५२
पंच दिवसीय साधना का स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप ५.५३
आगामी कुछ वर्ष-अति महत्त्वपूर्ण ५.५४

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सार्थक एवं सर्वांगपूर्ण शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा का सही स्वरूप क्या हो ?

भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। छात्रों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गैर गम्भीरता आगे चलकर बेरोजगारी और ऐसी ही अनेक समस्याएँ भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त होंगी, इनके कारणों की गहराई में जाया जाये तो प्रतीत होगा कि इन समस्याओं के मूल में प्रारम्भिक शिक्षा की उपेक्षा, नींव की कमजोरी, अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, ध्येयहीनता तथा विद्यार्थियों में नित्य प्रति के अध्ययन कार्य की अवहेलना आदि कई कारण प्रतीत होंगे। परन्तु मूल कारण है ध्येयहीनता, विद्यार्थी के सामने स्पष्ट नहीं रहता है कि उन्हें पढ़कर क्या करना है ? जो शिक्षा वे प्राप्त कर रहे हैं, उसका उनके जीवन में क्या योगदान होगा ? जीवन जीने में प्राप्त की जा रही शिक्षा की क्या भूमिका होगी ?

शिक्षा से तात्पर्य मूलत: व्यक्तित्व के समग्र विकास से है। विद्वानों और मनीषियों ने शिक्षा की जो परिभाषाएँ की हैं, उन सबका समन्वित अर्थ व्यक्तित्व का समग्र विकास है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली प्रक्रिया का नाम ही शिक्षा है। इन परिभाषाओं को माप-दण्ड मानकर वर्तमान शिक्षा पद्धति की कसौटी पर कसा जाये तो स्वाभाविक ही प्रश्न उठेगा कि—क्या वह वास्तव में शिक्षा है ? और यदि नहीं तो क्यों ?

यह बात सैकड़ों बार लिखी और हजारों बार दोहराई जा चुकी है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें अँग्रेजों से विरासत में मिली थी और अँग्रेजों ने इस शिक्षण प्रणाली का ढाँचा, यह उद्देश्य सामने रखकर खड़ा किया था कि उन्हें अपना राज-काज चलाने के लिए सस्ते मूल्य पर देशी क्लर्क और बाबू मिल जाएँ। साथ ही भारतीय मानस में राजभक्ति के बीज बोना भी एक उद्देश्य था। अँग्रेज तो चले गए परन्तु वह शिक्षा पद्धति ज्यों की त्यों कायम है। कोई फेर-बदल हुआ है तो वह भी नाममात्र को ही और उसका परिणाम भी नगण्य-सा ही दिखाई देता है। यही कारण है कि पढ़-लिखकर डिग्रियाँ प्राप्त करते ही छात्र नौकरियों की तलाश में दर-दर भटकते फिरते हैं। सरकारी कार्यालयों और निजी संस्थाओं में नाममात्र को ही स्थान खाली होते हैं। जगहें कम और उम्मीदवार कई गुना अधिक। स्वाभाविक ही बेकारी बढ़ती है और शिक्षा प्राप्ति के बदले छात्रों को जो कुछ हाथ लगता है—वह बेकारी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन काल में प्रचलित गुरुकुल पद्धति से करते हैं तो उसमें जमीन आसमान का अन्तर दिखाई देता है। प्राचीनकाल में छात्र गुरुकुल से जहाँ सम्पूर्ण विकसित और प्रखरता सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर निकलते थे, वहीं आज के शिक्षण-संस्थानों से संस्कारों के नाम पर उनकी स्थिति शून्यवत ही रहती है। शिक्षा के सम्बन्ध में पद्धति ही नहीं दृष्टिकोण भी बदला जाने का ही परिणाम यह है कि प्राचीनकाल में गुरु जहाँ शिष्य के व्यक्तित्व विकास में पूरी-पूरी रुचि लेते थे, वहाँ आज अध्यापक विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से छात्रों को पढ़ाते हैं। उनका अध्यापन एक जीविकोपार्जन का साधन मात्र रहता है, उसका कोई आदर्श नहीं है। यही कारण है कि आजकल कदम-कदम पर अध्यापकों को अपने छात्रों की उपेक्षा और अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। प्राचीनकाल में शिष्य को माता-पिता के समान ही गुरु का सम्मान करना सिखाया जाता था, वह स्थिति कहाँ है ? तैत्तिरीय उपनिषद् में **'मातृ देवो भव' 'पितृ देवो भव'** के साथ **'आचार्य देवो भव'** कहकर गुरु का महत्व माता-पिता के समान बताया है। इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो **'गुरु साक्षात् परब्रह्म'** कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है। वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है। बालक के पालन-पोषण का कार्य माता-पिता करते हैं किन्तु उसे संस्कारवान बनाना, सुसभ्य नागरिक बनाना आचार्य की जिम्मेदारी है। इस महान उत्तरदायित्व के कारण ही गुरु मनुष्य समाज का देवता माना गया और उसकी महत्ता सिद्ध करने में जितना जो कुछ लिखा गया, उसे कम समझा गया।

आज की स्थिति में गुरु का न वह महत्व है और न ही गुरु अपनी वह जिम्मेदारी अनुभव करते हैं। प्राचीन पद्धति के अनुसार बालक की बुद्धि का विकास आरम्भ होते ही उसे योग्य गुरु को सौंप देने का विधान है। गुरुकुल पद्धति में विद्यार्थी पूर्ण शिक्षित होने तक अपने गुरु के समीप रहकर जहाँ अक्षर ज्ञान से लेकर साहित्य, भाषा, कला, भूगोल, दर्शन आदि का अध्ययन करते थे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहीं उन्हें चरित्र, सदाचार, निर्मलता, पवित्रता आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। मानसिक शक्ति, विचार प्रौढ़ता, उत्तम स्वास्थ्य और शुद्ध जीवन लेकर स्नातक जिस क्षेत्र में भी प्रवेश करते थे, उसी में एक कीर्तिमान स्थापित कर योग्य नागरिक कहलाने की स्थिति प्राप्त कर लेते थे।

आज की तरह उस समय अध्यापन या शिक्षण में कोई वृत्ति नहीं थी। वह एक आदर्श थी और उस कार्य में उपयुक्त व्यक्तियों को ही लगाया जाता था। आज की तरह जिस-तिस को वांछित शिक्षा या डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद ही इस महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था, बल्कि यह गुरुतर भार उन्हीं व्यक्तियों को सौंपा जाता था, जो अपने चरित्र और विद्वता को कसौटी पर कसकर पूर्णता प्राप्त कर लेते थे। इसका कुल प्रयोजन इतना ही था कि विद्यार्थियों को अक्षर ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान देने के साथ-साथ छात्रों को सद्गुणों की क्रियात्मक शिक्षा भी दे सके। इसके पहले वे अपने उदात्त चरित्र का प्रमाण देते थे। जिनमें विद्यार्थियों के चरित्र और ज्ञान को परिपक्व बनाने की, उनके मन और जीवन को सत्प्रेरणाएँ देकर उत्कृष्टता बनाने की क्षमता होती थी, उन्हें ही आचार्यत्व का पद प्राप्त होता था।

ऐसे गुरु के सानिध्य में रहकर शिष्य-साधना का तेजस्वी जीवन बिताते थे। तपोनिष्ठ होने से उनका शरीर, कुंदन जैसा दैदीप्यमान होता था। सांसारिक जीवन में आने वाली कठिनाइयों से संघर्ष करने की उनमें क्षमता होती थी। शिष्ट व्यवहार, परिस्थितियों का विवेचन और विश्लेषण कर ठोस समाधान के लिए उचित निर्णय लेने की क्षमता उनमें जाग्रत रहती थी। साधना और स्वाध्याय के सम्मिश्रण से उनको आत्मज्ञान की अनुभूति हो जाती थी। विद्यार्थी केवल गुणवान या ज्ञानवान होकर ही नहीं निकलते थे वरन् वे शक्ति पुत्र बनकर भी गुरु फल से सांसारिक जीवन में प्रवेश करते थे। फलस्वरूप उन्हें भौतिक सुखों की न तो इतनी स्पर्धा रहती थी और न ही वे अधिकार प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। तब के स्नातक गुरुकुल से स्नातक होकर विदा के समय प्रतिज्ञा करते थे "मैं पृथ्वी पुत्र हूँ। भूमि मेरी माता है। मेरा जीवन मातृभूमि की सेवा में अर्पित रहेगा। मैं लोक-कल्याण की सेवा के लिए समर्पित रहूँगा। सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान और शक्ति से उदीप्त रखने की मेरी चेष्टा रहेगी। गुरुदेव द्वारा मैंने जो ज्ञान और बल अर्जित किया है, उससे अपने राष्ट्र को जीवन्त और जाग्रत रखूँगा।"

इस प्रतिज्ञा के एक-एक वाक्य से छात्र की बौद्धिक प्रतिभा, उदात्त भावना और उच्चतम आध्यात्मिक संस्कारों की सुगन्धि टपकती है। यह विशेषता छात्रों की अपनी विशेषता नहीं होती थी, बल्कि उनका व्यक्तित्व गुरुकुल के विद्यालयों में इस प्रकार का ढाला जाता था। श्रेय उन प्राचीन गुरुकुलों को ही दिया जाना चाहिए और उनके आचार्यों को ही मिलना चाहिए कि जहाँ जिनके सान्निध्य में रहकर मनुष्य न केवल आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के दार्शनिक और तात्विक ज्ञान से ओत-प्रोत बनता था, वरन् उनमें ऐसी शक्ति और प्रतिभा भी विकसित होती थी, जो सारे समाज को ऊर्ध्वगामी बनाये रखने का आधार खड़ा करती थी।

आज की टूटी-फूटी लकीर में, केवल शिक्षण की चिह्न पूजा करने वाले विद्यालयों में छात्रों के स्तर चारित्र्य और उनकी लक्ष्यहीनता को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह निरी विडम्बना मात्र है। गुरुकुल के छात्रों में वह गम्भीर शक्ति होती थी जिसे आज का निर्बल और अशक्त छात्र वहन करने में भी शायद ही समर्थ हो सके। जिन्हें इस प्रकार शिक्षण की एक किरण का भी अनुमान है, वे उसकी तेजस्विता और प्रखरता से अनभिज्ञ नहीं हो सकते। पाणिनी की तरह व्याकरण, पातंजलि की तरह योग, चरक और सुश्रुत की तरह औषधि शास्त्र, मनु और याज्ञवल्क्य के मानव आचार शास्त्रों में आत्यन्तिक सूक्ष्म तत्त्वज्ञान और बौद्धिक शक्तियों का अवतरण गुरुकुल पद्धति से प्राप्त विशेषताओं की ही परिणित है। गुरुकुलों में ही आरण्यक और उपनिषदों की रचना हुई। पुराण और उपपुराण लिखे गए। प्राचीनकाल में भारतीय ज्ञान-विज्ञान कितना विलक्षण और परिपूर्ण रहा है, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। बिन्दु में सिन्धु, राई में पर्वत, अणु में विभु, गागर में सागर का साक्षात्कार यदि किसी की समझ में न चढ़े, इसकी सत्यता में यदि किसी को सन्देह हो तो भी विवेकानन्द के शब्दों में अतीत के गौरव को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है कि "इतनी उच्च कल्पना भी संसार में कोई नहीं कर सका, हमने परमानन्द को स्वर्ग से उतारकर अपनी जन्मभूमि में रख दिया। बड़े गर्व के साथ हम कह सकते हैं कि ईश्वर हमारा है, हमारे भारतवर्ष का है और यह कहना कोई अतिरंजना नहीं है, वरन् तादात्म्य की सही रूपरेखा है। इस देश के संकल्प बल के आगे देवता तो क्या परमात्मा को भी नतमस्तक होना पड़ा है।"

गुरु के समीप रहकर जहाँ शिष्य इस तरह की ओजस्विता तथा तेजस्विता धारण करते थे, वहाँ गुरु विहीन पुरुषों की भर्त्सना भी होती थी। 'निगुरा' शब्द एक प्रकार की गाली समझी जाती थी। इसे एक प्रकार का सामाजिक अपराध समझा जाता था। इस अपराध से बचने के लिए माता-पिता पहले ही यह व्यवस्था बना लेते थे कि बालक को किसी आचारवान, गुणवान और विद्वान गुरु के समीप, उसके संरक्षण में भेजा जाये ताकि बालक गुरुविहीन होने के अपराध से बच सके।

उस समय दी जाने वाली शिक्षा का जीवन से पूर्ण सम्बन्ध था। व्यक्ति के अज्ञान, किंवा, अविद्या के नाश के अतिरिक्त उसके गुण, कर्म, स्वभाव, आचार, विचार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिकोण, बल, विवेक, चातुर्य में तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का विकास अर्थात मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तप की समुचित व्यवस्था की जाती थी।

इस व्यवस्था द्वारा ज्ञानवान और बुद्धिमान आचार्यों के सम्पर्क में रहकर प्राचीनकाल में यहाँ के नागरिकों ने जो सर्वांगपूर्ण शिक्षा प्राप्त की थी, इसी से वे अपने ज्ञान और संस्कृति को प्रकाशित रख सके, उसे गौरवास्पद बना सके। गुरुकुलों के रूप में पुनः वही प्रचलन आज के समय में भले ही सम्भव और व्यवहार्य न हो, परन्तु उन विशेषताओं का समावेश तो किया ही जा सकता है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि आज भी जहाँ यह पद्धति किसी न किसी रूप में विद्यमान है। चरित्रवान और ज्ञानवान आचार्य तथा जिज्ञासु और समर्पित शिष्य जहाँ अध्यापन अध्ययन करते हैं, भले ही उनकी संख्या सीमित हो परन्तु वे लोकजीवन में अपने ढंग से प्रकाश उत्पन्न कर रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा पद्धति के परिणामों की विवेचना करने पर यह सोचने के लिए बाध्य-सा हो जाना पड़ता है कि आज शिक्षा संस्थाएँ जिस रूप में चल रही हैं, उससे क्या मानवीय जीवन की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं ? यदि नहीं तो क्या इसका परिवर्तन और सुधार नहीं किया जाना चाहिए ? और यदि किया जाना चाहिए तो उसका स्वरूप क्या हो सकता है ? उसका एक ही उत्तर है कि विद्यार्थी जीवन में तपश्चर्या, तत्परता और संयम भावना जाग्रत की जाए। गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में स्नेह, अपनत्व और आदर अनुशासन के मूल्यों की प्रतिष्ठा की जाए। इसके लिए सर्वप्रथम योग्य, विचारवान, दृढ़ चरित्र तथा प्राज्ञअध्यापकों को ढूँढ़ निकालना पड़ेगा। शिक्षा की नींव जब तक चरित्रवान व्यक्तियों के हाथों में नहीं पड़ेगी तब तक राष्ट्रीय जीवन के विकास की समस्या हल न हो सकेगी। राष्ट्र को ज्ञानवान, प्राणवान, शक्तिवान, समुन्नत और सुविकसित बनाने के लिए वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन नितान्त, अनिवार्य और आवश्यक है।

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

मनुष्य की स्थिति अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। वह समाज में रहता है, उसकी एक सभ्यता है, सुसंस्कृत आचरण की उससे अपेक्षा की जाती है। साथ ही उसे इतना ज्ञान सम्पन्न भी होना चाहिए कि दुनिया जिस तेजी के साथ आगे बढ़ती जा रही है, उसके साथ कदम से कदम मिलाकर चल सके। यह योग्यता तभी विकसित होती है, जब व्यक्तित्व और ज्ञानसम्पदा की दृष्टि से वह स्वयं कुछ उपार्जित करे, इस योग्य बनने के लिए उसे विरासत में कुछ संस्कार और जानकारी भी प्राप्त हो। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही प्राचीनकाल से शिक्षा की व्यवस्था की जाती रही है। इस व्यवस्था का स्वरूप भले ही बदलता रहा हो, पर वह प्रचलन में हमेशा अनिवार्य रूप से रही है।

इसकी आवश्यकता और शाश्वत उपयोगिता के सम्बन्ध में एक मनीषी का कथन है कि "शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है, उनमें कुछ शाश्वत होते हैं और कुछ परिवर्तनशील। शिक्षा को जीवन का शाश्वत मूल्य कहा जा सकता है क्योंकि कोई भी अज्ञानी अथवा अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन को विकासशील नहीं बना पाता। ज्ञान की अनिवार्यता हर युग में रही है इसीलिए शिक्षा को हर युग में मूल्य एवं महत्व प्राप्त होता रहा है।"

शिक्षा का अर्थ केवल वस्तुओं या विभिन्न विषयों का ज्ञान मात्र नहीं है। यदि अर्थ को यहीं तक सीमित मान लिया जाये तो वह अज्ञान से कुछ ही अधिक हो सकता है और कई बार तो उससे भी अधिक भयावह परिणाम प्रस्तुत कर सकता है। ज्ञान की अथवा शिक्षा की सार्थकता वस्तुओं के ज्ञान के साथ-साथ अनुपयोगी और उपयोगी का विश्लेषण करने तथा उनमें से अनुपयोगी को त्यागने एवं उपादेय को ग्रहण करने की दृष्टि का विकास भी होना चाहिए। तभी शिक्षा अपने सम्पूर्ण अर्थ को प्राप्त होती है। जैन दर्शन के आचारांग सूत्र में दो प्रकार की परिज्ञाओं का उल्लेख है; एक ज्ञपरिज्ञा और दूसरी प्रव्याख्यान परिज्ञा। ज्ञपरिज्ञा से तात्पर्य वस्तुओं का बोध है और प्रव्याख्यान परिज्ञा में हेय का त्याग तथा उपादेय का ग्रहण किया जाता है। इस प्रव्याख्यान परिज्ञा की प्राप्ति ही ज्ञान की सार्थकता कही गई है।

प्रव्याख्यान परिज्ञा क्या है ? इसे ज्ञान और आचरण का समन्वय भी कहा जा सकता है। ज्ञान और आचरण में सामंजस्य उत्पन्न होने पर ही कोई व्यक्ति वास्तव में ज्ञानी, पंडित तथा शिक्षित कहा जा सकता है। ज्ञान और आचरण में सामंजस्य क्या है ? व्यक्तित्व का समग्र विकास। ज्ञान वह है जो देय और उपादेय का विश्लेषण करे। दूसरे शब्दों में उसकी प्रतिक्रिया परिणति को विवेक भी कह सकते हैं और विवेक के प्रयोग से ही ज्ञान की सार्थकता है। अन्यथा ज्ञान की कोई किताबी जानकारी का क्या महत्त्व ?

ज्ञान और आचरण में—बोध और विवेक में जो सामंजस्य प्रस्तुत कर सके, उसे ही सही अर्थों में शिक्षा या विद्या कहा जा सकता है। जब यह सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता तो शिक्षा अधूरी ही कही जाएगी और व्यक्तित्व भी अविकसित या एकांगी विकसित रह जाएगा। जब भी कभी या जिस किसी के भी साथ शिक्षा का इस सत्य से सम्बन्ध टूट जाता है, तो विद्यार्थी प्रवंचनाओं का शिकार होता है, वह अपने जीवन लक्ष्य से विचलित हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है। आज के सन्दर्भ में देखें तो शिक्षा-पद्धति इसी तरह की प्रवंचनाओं से पूर्ण है। छात्रों के सामने परीक्षा पास करने और डिग्री हासिल करने के अलावा कोई दूसरा लक्ष्य नहीं रहता। फलत: वह अपनी सभी प्रवृत्तियों का केन्द्र परीक्षा पास करना बना लेता है और जब यही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है तो व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं पर स्वाभाविक ही विशेष ध्यान नहीं जाता। या यों भी कह सकते हैं कि अन्य पक्ष गौण हो जाते हैं।

इस स्थिति में जीवन-विकास की आधारशिला, नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा की जड़ें हिल जाना स्वाभाविक है। सर्वग्राही अनैतिकता के मूल में यदि शिक्षण-पद्धति का यह दोष देखा जाए तो कोई अनुचित न होगा और जब सारे समाज के लगभग सभी वर्ग नैतिक मूल्यों की अवहेलना कर अनैतिकता का वातावरण विनिर्मित कर रहे हों तो छात्रों में नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा पर दोहरी चोट पड़ती है। एक तो शिक्षा-पद्धति ही नैतिक आदर्शों के प्रति कोई आस्था नहीं जगाती, उन्हें नैतिक संस्कार नहीं देती, दूसरे समाज का वातावरण भी वैसा कोई प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम न हो तो व्यक्तित्व की आधारशिला कहाँ से रखी जाएगी ? विद्यार्थियों के मानस में जब अनैतिक मूल्य रसित होने लगते हैं तो वे परीक्षा में पास होने की बात हो या समाज के प्रति व्यवहार का विषय हो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा ही करेंगे।

आये दिनों परीक्षा में नकल कर पास होने की साधारण घटनाओं से लेकर अनुचित साधन अपनाने के लिए आपराधिक स्तर की रीति-नीति अपनाने तक की विविध घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं। इन दिनों यह प्रवृत्ति कुछ विशेष रूप से बढ़ी है। नकल कर पास होने की प्रवृत्ति को साधारण-सा दोष या अपराध कह कर, उसकी थोड़ी बहुत आलोचना करने के बाद चुप हो जाया जाता है। प्रश्न नकल करने या न करने का नहीं है। प्रश्न यह है कि यह साधारण-सा दोष किस प्रवृत्ति का सूचक है ? इस प्रवृत्ति को अनैतिकता की चिन्गारी ही कहा जाना चाहिए और चिन्गारी चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, समय पाकर वह भीषण अग्निकाण्ड रचाकर रहती है और यही हो रहा है। यदि उसका उपचार न किया जाए तो अनैतिकता की प्रवृत्ति आये दिन छात्रों द्वारा तोड़-फोड़ तथा हिंसक घटनाओं के रूप में अपनी विभीषिका का परिचय देती रहती है।

इस स्थिति के लिए विद्यार्थी इतने दोषी नहीं हैं, जितनी कि शिक्षा-पद्धति। प्रचलित शिक्षण-पद्धति छात्रों के सामने कोई ध्येय, कोई आदर्श उपस्थित नहीं कर पाती या कहना चाहिए, वह ध्येयहीनता के अन्धकार में धकेलती है तो उस स्थिति में जो ज्ञान जीवन को सुसज्जित और सुरभित बनाता है, वह ज्ञान कहाँ उपलब्ध हो पाता है ? कहा जा चुका है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व का समग्र विकास है। शिक्षा इसी उद्देश्य की ओर जरा भी उन्मुख हो तो ध्वंस की अपेक्षा सृजन की प्रेरणा ही जागेगी और ध्वंस का आयोजन करना भी पड़े तो वह सृजन की पृष्ठभूमि निर्मित करने के लिए ही अनिवार्य होगा। ज्ञान की, विवेक की प्रेरणा उन वस्तुओं, धारणाओं और सुसंस्कारों को तोड़ने की है, जो अपनी उपयोगिता खो चुके हैं और जिनका नष्ट किया जाना आवश्यक, जिन्हें तोड़कर ही नया सृजन किया जा सकता है। लेकिन जिन विद्यार्थियों का ज्ञान मात्र सूचनात्मक है, उससे आन्तरिक विकास कैसे हो सकता है ? विवेक का जागरण उस स्थिति में हो ही नहीं सकता, जबकि समग्र शिक्षा का उद्देश्य विवेक को जाग्रत करना और व्यक्तित्व को विकसित बनाना हो। इस संदर्भ में एक सन्त विचारक का कथन है कि, ''विद्यार्थी ज्ञानोपलब्धि के लिए, एकाग्र बनने के लिए, आत्मस्थ बनने के लिए और दूसरों को आत्मस्थ बनाने के लिए अध्ययन करता है। इस सन्दर्भ को यदि स्मृति में रखा जाये तो व्यग्रता, चपलता, हिंसा और तोड़-फोड़ की बात स्वयं समाप्त हो जाती है तथा इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विद्या का अनुबन्ध ध्वंस के साथ नहीं निर्माण के साथ है।''

इस सन्दर्भ को स्मृति में रखने के लिए प्रचलित शिक्षा-पद्धति में आवश्यक सुधार करना ही एकमात्र उपाय है और वह सुधार इस सिद्धान्त को केन्द्रों में रखते हुए ही सम्भव है कि शिक्षा का उद्देश्य कोई सूचनाएँ या जानकारियाँ देना मात्र नहीं है, वरन् व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है।

प्रगति का आधार, स्वरूप और लक्ष्य

धन की आवश्यकता सर्वत्र समझी जाती है। उसका महत्त्व किसी ने कम नहीं आँका। आर्थिक प्रगति के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से जो किया जा रहा है, उसके लिए सभी अपने-अपने ढंग से प्रयत्नरत रहते हैं। यह आवश्यक भी है और स्वाभाविक भी। सरकारें अपनी प्रगति का मूल्यांकन इसी आधार पर करती हैं कि उसके क्षेत्र तथा समय में कितनी आर्थिक प्रगति हुई ? इसी को सशक्त भी माना जाता है और सफलता का अनुमान लगाया जाता है।

यह मान्यता आंशिक रूप से ही है, क्योंकि प्रगति का एक यह भी महत्त्वपूर्ण पक्ष है—प्रजाजनों का मनोबल। मनोबल अर्थात दृष्टिकोण और चरित्र। व्यक्तिगत रूप से तो हर सज्जन को इसे शालीनता के रूप में अपनाना ही चाहिए, पर बात इतने से भी नहीं बनती। समाजों के प्रचलन इस दृष्टि से जितने उच्चस्तरीय होते हैं, वे उसी अनुपात में सच्चे अर्थों में सुसम्पन्न और सुसंस्कृत कहे जाते हैं। समग्र प्रगतिशीलता सुशिक्षा के आधार पर बनती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर यात्रा के लिए आवश्यक साधन-सामग्री जुटाने की बात निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। उसे प्राथमिकता भी दी जा सकती है, पर यह नहीं मान बैठना चाहिए कि इतना बन पड़ने पर ही सब कुछ ठीक-ठीक हो जाएगा। हमें समझना चाहिए कि साधनों का उपार्जन और सदुपयोग मनुष्य के दृष्टिकोण और चरित्र पर निर्भर है। पिछड़ी मनोभूमि के लोग आलस्य-प्रमाद बरतते हैं और ऐसी आदतों में फँसे रहते हैं, जिनके कारण उपार्जन के लिए जिस श्रमशीलता और तत्परता की आवश्यकता है, उसे जुटा पाना ही सम्भव नहीं होता।

इस कथन से किसी को विरोध नहीं कि पेट भरने पर ही मनुष्य कुछ कर सकने में समर्थ होता है, पर इसके साथ ही एक प्रश्न और भी जुड़ा है कि आखिर पेट भरें कैसे ? इसके लिए मनुष्य का अपना पुरुषार्थ ही नहीं, स्वभाव भी ऐसा होना चाहिए, जिससे निर्वाह की साधन-सामग्री उपार्जित हो सके। ऐसा न बन पड़े, तो फिर वह उत्पादन कैसे हो, जिससे पेट भरता है। यह कार्य अपने ही करने का है। इसे दैवी अनुकम्पा, सम्पन्नों की सहायता या सरकारी प्रगति योजना के सहारे भी सम्पन्न नहीं किया जा सकता है। भोजन तो अपने ही मुँह से चबाना पड़ेगा। उसे अपने ही पेट द्वारा पचाना पड़ेगा। दूसरों की सहायता एक सीमा तक ही सरलता उत्पन्न कर सकती है। चलना तो अपने ही पैरों के सहारे होगा। दूसरों के कंधों पर सवारी गाँठने की योजना सदा कहाँ सफल होती है ? अपने पैरों खड़ा होने का अर्थ है—अपने मनोबल को समर्थ बनाना। इस आधार को आर्थिक प्रगति से बढ़कर न सही उसके समतुल्य तो मानना होगा। इनमें से प्रथम कौन ? द्वितीय कौन ? के पचड़े में न पड़कर इस प्रकार सोचा जा सकता है कि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे के पूरक हैं। यदि गहराई में उतर कर सोच सकना सम्भव हो तो यह भी माना या मनाया जा सकता है कि चारित्रिक समर्थता के बिना भौतिक प्रगति एवं सुव्यवस्था के दिवास्वप्न देखना उपयुक्त नहीं हैं। कुबेर जैसी सम्पदा किसी का छप्पर फाड़कर आँगन में आ गिरे, तो दुर्गुणी व्यक्ति उससे समुचित एवं स्थायी लाभ न उठा सकेगा। उसे चोर चुरा ले जायेंगे या दुर्व्यसनों में उसका उपयोग होने से उलटे संकट खड़े होंगे।

आर्थिक प्रगति के अतिरिक्त दूसरी बात शिक्षा सम्वर्द्धन की सोची जाती है। यह भी उचित है। साक्षरता के बिना मनुष्य कूप-मण्डूक बना रहता है। शिक्षा के सहारे ही सुविस्तृत जानकारियाँ बढ़ाने और उस अवसर पर व्यवहार में प्रवीणता पाने का अवसर मिलता है। शारीरिक श्रम के साथ बौद्धिक क्षमता का समावेश रहने पर ही कहने योग्य सफलता मिलती है। बौद्धिक क्षमताएँ विकसित करने की आवश्यकता रहती ही है, रहेगी ही। अस्तु, शिक्षा का महत्त्व सदा माना जाता रहा है और सदा माना जाता रहेगा। शिक्षा प्रसार के प्रयत्नों में सबका समर्थन ही रहता है। उन्हें सराहा भी जाता है।

किन्तु देखना यह भी होगा कि शिक्षा का स्वरूप क्या है ? क्या यह मात्र सांसारिक जानकारियाँ कराने भर से अपना लक्ष्य और उत्तरदायित्व पूरा कर देती है। इस पहलू पर विचार करते हुए यह तथ्य सामने आता है कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र लौकिक जानकारियाँ देने भर से पूरा नहीं होता, उसे चरित्र के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने और सद्गुणों को विकसित करने में भी सहायक होना चाहिए। यदि ये विशेषताएँ न हों, तो फिर कहना होगा कि शिक्षा भी एक व्यवसाय सहायक उपचार बनकर रह गई। गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि का अपना महत्त्व है। उनके सहारे भूतकाल के घटनाक्रमों और वर्तमान की परिस्थितियों को समझने सम्बन्धी विविध जानकारियाँ मिलती हैं। इनके सहारे मनुष्य जानकार या बुद्धिमान बनता है। यह विशिष्टता कई काम आती है, विशेषतया अर्थ उपार्जन और लोक व्यवहार में तो काम आती ही है।

इतने पर भी एक ज्वलन्त प्रश्न फिर भी उपेक्षित ही रह जाता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व कैसे उभरे ? गुण-कर्म-स्वभाव में मानवी गरिमा के उपयुक्त उत्कृष्टता का समावेश कैसे हो ? यह उत्तरदायित्व भी शिक्षा का ही है। उसमें ऐसे तत्त्वों या तथ्यों का समावेश रहना चाहिए, जिससे अध्ययनकर्ता को—नागरिक कर्तव्यों को अपने स्वभाव का अंग बनाने का अवसर मिले।

सभ्यता और सुसंस्कारिता को भी स्वास्थ्य और सम्पदा के समतुल्य ही महत्त्व मिलना चाहिए। रोगी दयनीय होता है और दूसरों की सहायता पर निर्भर रहता है। दरिद्र भी ऐसे ही दीन-हीन स्थिति में दिन काटता है। इतना सभी जानते हैं और देखते हैं। इसी मान्यता में एक कड़ी और भी जुड़नी चाहिए कि सज्जनोचित व्यवहार के जिस अभ्यास को सभ्यता के नाम से जाना जाता है और जिसके सहारे पारस्परिक सद्भाव एवं सहकार का द्वार खुलता है, उसकी उपयोगिता भी कम नहीं है।

सभ्यता का ही विकसित स्वरूप है—सुसंस्कारिता। सभ्यता दूसरों के साथ सज्जनोचित व्यवहार के लिए प्रयुक्त होने वाले पक्ष को कहते हैं। सुसंस्कारिता वह है, जिसमें मनुष्य अपने चिन्तन को उत्कृष्ट और चरित्र को आदर्श बनाने की प्रेरणा प्राप्त करता है। सभ्य व्यक्ति अपनी व्यवहार कुशलता के कारण अन्यान्यों का सहयोग अर्जित करने में सफल होते हैं, किन्तु सुसंस्कारिता के अभाव में कोई प्रामाणिक होने का सम्मान एवं विश्वास प्राप्त नहीं कर सकता। यही वह केन्द्र बिन्दु है, जिस पर महानता अवलम्बित रहती है। यह वह आधार है, जिससे व्यक्तित्व का स्तर मूर्धन्य बनता है और असंख्यों के साथ आत्मीयता का सघन सम्बन्ध बना सकना सम्भव होता है। सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में समर्थ माने जाते हैं। महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न कर सकने में मात्र इन विशेषताओं से सम्पन्न व्यक्ति ही सफल होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यह उपलब्धियाँ कहाँ से मिलें ? उन्हें प्राप्त करने के लिए किसका अवलम्बन लिया जाय ? इसके उत्तर में शिक्षा पर ही ध्यान केन्द्रित होता है। पाठ्यक्रमों के साथ ऐसे तत्त्वों का समावेश रहना चाहिए, जिनके सहारे शिक्षार्थी के व्यक्तित्व में पवित्रता और प्रखरता के अभिवर्द्धन-अभ्यास की व्यावहारिक जानकारी मिले। जिसके आधार पर यह सोचने का अवसर मिले कि गरिमा और सम्पदा अर्जित करने के लिए सभ्यता एवं सुसंस्कारिता को शिक्षा का अंग बनाए बिना और कोई चारा नहीं। इन तथ्यों का जितना गहरा समावेश—जिस शिक्षा-पद्धति में हो, उसे उसी अनुपात में श्रद्धास्पद कहा जायेगा अन्यथा जानकारियों के ठीकरे सिर पर लादते रहते रहने वाली पढ़ाई को अपूर्ण ही कहा जायेगा। उतने भर से वह लाभ न मिल सकेगा, जिसकी अपेक्षा समर्थ शिक्षा से की जाती है।

किसी देश की महिमा उसके कल-कारखानों, भव्य भवनों, सुविधा-साधनों, सैन्य सज्जाओं को देखकर आँकी जाती है। स्वास्थ्य, सम्पदा, शिक्षा का अनुपात देखकर भी प्रगति का अनुमान लगता है। इसी परख का एक और भी पक्ष है, उस क्षेत्र के महामानवों की न्यूनाधिकता। पेट-प्रजनन में निरत व्यक्ति अपना गुजारा चलाने तक ही सीमित रहते हैं। स्वार्थ यदि एक कदम और आगे बढ़ चले, तो वह अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने लगता है और अपने लिए तथा सम्पर्क क्षेत्र के लिए संकट उत्पन्न करता है। क्षुद्र मनुष्यों की गतिविधियाँ इसी सीमा में नियोजित रहती हैं। बहुत हुआ तो वह समुदाय शान्ति से रहे और रहने दे, तो समझना चाहिए उनका बाहुल्य सिरदर्द नहीं बना। जहाँ के नागरिक इस स्तर के हों, वहाँ चैन के दिन गुजारने की स्थिति पर सन्तोष की साँस ली जा सकती है।

सर्वतोमुखी प्रगति की बात दूसरी है। उसके लिए मनस्वी व्यक्तित्व चाहिए। मनस्वी तथा प्रतिभावान, चरित्रवान और प्रगति के लिए समर्पित। ऐसे व्यक्तित्वों द्वारा ही इतिहास को नये मोड़ मिले हैं। उन्हीं ने अपने कार्य क्षेत्र में उत्कर्ष की उमंगें भरी हैं। उनकी प्रामाणिकता, गरिमा एवं तत्परता ऐसी होती है, जिसका प्रभाव समूचे समाज एवं वातावरण पर पड़ता है। वे स्वयं तूफानों की तरह उड़ते और अपने साथ हल्के पत्तों और तिनकों को भी उड़ाकर कहाँ से कहाँ पहुँचाते हैं ?

किसी युग या किसी राष्ट्र-समाज की गरिमा-महानता, विशेषताओं से भरे-पूरे व्यक्तित्वों पर निर्भर रहती है। वे जब, जहाँ, जितने, जिस तरह के उत्पन्न होते हैं, वहाँ उसी अनुपात से श्रेय बरसता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि कारखानों अथवा योजनाओं की ही बढ़ोत्तरी न होती रहे, व्यक्तित्व सम्पन्न महामानव भी बड़ी संख्या में उपजें और अपनी विशिष्टता से समूचे समाज को अनुप्राणित करें।

मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील है। उसकी महत्त्वाकांक्षा आगे बढ़ने, ऊँचे उठने की है। इसी आधार पर वह प्रगति पथ पर निरन्तर अग्रसर होता है। जबकि अन्य प्राणी इस आकांक्षा के मन्द रहने से यत्किंचित ही विकास कर सकने में समर्थ हो सके।

उपलब्ध अवशेषों से पता चलता है कि पाषाणों, मृत अवशेषों द्वारा 'आस्टेलिपिथिक्स' के नाम से जाना गया आदिम मनुष्य—शरीर की दृष्टि से नहीं, मानसिक दृष्टि से अधिक विकसित और महत्त्वाकांक्षी रहा है। वह अपने समय के महागजों, महासरीसृपों, महाव्याघों, महागरुड़ों की तुलना में अधिक विशेषताओं से युक्त था। वह उन प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ नहीं सकता था, किन्तु छकाने में सफल रहा और अन्ततः अकेले ही मोर्चे पर अड़ा रहा। जबकि अन्यों ने शरीर की दृष्टि से भारी-भरकम होते हुए भी अपना अस्तित्व गँवा दिया।

इसके उपरान्त उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी एक और नर-वानर से जूझना पड़ा, वह था 'होमो'। जब मोर्चा कड़ा पड़ा, तो दोनों ने सन्धि करली और न केवल साथ रहने लगे, वरन् जातिशंकर का असमंजस छोड़कर परस्पर व्यवहार करने में भी सहमत हो गए। यही वह बुद्धिमत्ता थी, जिसने हिमयुगों के बीच में किसी न किसी प्रकार मनुष्य जाति का अस्तित्व बचा लिया। प्रगति के वर्तमान स्तर तक मनुष्य अपनी आकांक्षा, बुद्धिमत्ता, सहकारिता तथा तत्परता जैसी विशेषताओं पर आगे बढ़ा है। यही हैं वे विशेषताएँ जो यदि बनी रह सकीं, तो उसे न केवल समर्थ-सम्पन्न वरन् सभ्य-सुसंस्कारी भी बनाकर रहेंगी।

स्वास्थ्य और सम्पन्नता की प्रगति के लिए जितना कुछ किया जा सके, करना ही चाहिए। पर यह भुला न दिया जाना चाहिए कि चरित्रनिष्ठा, सभ्यता, सुसंस्कारिता एवं महानता के अभिवर्धन के बिना गति नहीं और यह तभी बन पड़ता है, जब हम सभ्य और सुशिक्षित हों।

शिक्षा उद्देश्य पूर्ण बने

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मानव के अन्तर्निहित सद्गुणों को विकसित करना है। अँग्रेजी भाषा में शिक्षा को 'एज्यूकेशन' कहते हैं। यह लैटिन शब्द 'ऐज्यूकेयर' शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य है—व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता का, जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए पूरी तरह सदुपयोग। व्यक्तिगत क्षमता मनुष्य के अन्तराल में ज्ञान के रूप में निहित है। इस ज्ञान के प्रकटीकरण में अपने को लगाने वाला शिक्षार्थी है। इस प्रक्रिया में सहायता करने वाला शिक्षक कहलाता है।

इस कसौटी पर वर्तमान विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों को कसने पर प्रतिफल संतोषजनक नहीं मिलता। आज की शिक्षा का क्षेत्र भौतिक जगत की खोज तक से सिमट कर रह गया है। परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता दिखाई पड़ती है। हम शिक्षा के समग्र उद्देश्य से विमुख हो गये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन भारत तथा यूनान आदि देशों के वाङ्गमय से तात्कालिक मनीषियों की शिक्षा के मूल उद्देश्यों के प्रति जागरूकता स्पष्ट होती है। मेगस्थनीज की डायरी के पृष्ठ इस बात का उल्लेख करते हैं कि तत्कालीन व्यवस्था में शिक्षा प्रक्रिया इन्हीं मूल्यों पर आधारित थी। उन्हीं के शब्दों में—''सामाजिक स्थिति इतनी सशक्त थी कि चोरी जैसी घटनाएँ भी यहाँ कभी नहीं देखी जाती थीं।''

प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट के अनुसार ''शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है, जिस पर वह पहुँच सकता है।'' शिक्षाशास्त्री रस्क भी इन्हीं विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं—''शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना है। मानव जाति को इस योग्य बनाना है कि परस्पर आत्मीयता का भाव विकसित हो।''

शिक्षाविद बी० रेमाण्ट स्पष्ट करते हैं कि ''शिक्षा विकास का वह क्रम है जिससे व्यक्ति अपने को धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार से भौतिक, सामाजिक वातावरण के अनुरूप बना लेता है, साथ ही नैतिक मूल्यों को अपनाता है।'' वर्तमान समय में शिक्षा स्वाभाविक विकास क्रम न रहकर विविध जानकारियों के ढेर समेटने के रूप में रह गई है। इन जानकारियों को 'किसी तरह मस्तिष्क में जमा लेने को ही सार्थक माना जाने लगा है। यदि इसकी सार्थकता के औचित्य पर विचार किया जाय तो इसकी भूलें स्पष्टता सामने आने लगती हैं। मात्र भौतिक जानकारियों को दिमाग में इकट्ठा कर लेना किसी तरह भी सार्थक नहीं माना जा सकता है। इसमें भी विवेकयुक्त बुद्धि का आश्रय लेने की आवश्यकता जरूरी मानी जाती है, जिससे जीवन निर्माण, चरित्र निर्माण तथा मनुष्य निर्माण में सहायक विचारों को अनुभूत किया जा सके।

आज की उल्टी हुई परिस्थिति में सब कुछ सीधे से उल्टा हो गया है। देशी-विदेशी भाषा में दूसरों के विचारों को रटकर, किसी तरह अपने में इकट्ठा कर कुछ उपाधियों को पा लेने में ही गौरव समझा जाता है। आज शिक्षा का उद्देश्य जीवन निर्माण नहीं वरन् मात्र जीवनयापन का माध्यम बनकर रह गया है। ऐसी शिक्षा को विद्या नाम नहीं दिया जा सकता ।

इसके उद्देश्य विमुख होने का कारण क्या है ? इन कारणों की खोज करके इनका निवारण किस प्रकार किया जाय ? इन पर चिन्तन करने से यही स्पष्ट होता है कि आध्यात्मिकता का अभाव और भौतिकता का बढ़ता प्रभाव ही इस स्थिति का मूल कारण है। इनके उपयुक्त समावेश से ही स्थिति फिर सुधर सकती है। आज शिक्षा-शास्त्र के अनेकानेक विद्वान भी इसी बात पर जोर दे रहे हैं। हण्टर आयोग से लेकर कोठारी आयोग व नई शिक्षा नीति से राममूर्ति आयोग तक नियुक्त किए जाने वाले सभी आयोगों और समितियों ने शिक्षा-संस्थानों में नैतिक शिक्षा प्रदान किए जाने का समर्थन किया है। वर्तमान आयोग की रिपोर्टों में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के लिए सक्रिय और संगठित प्रयास पर बल दिया गया है। इतना होने पर भी नैतिकता का सही स्वरूप किसी को भी ज्ञात नहीं है।

नैतिक मूल्यों का किसी भी कट्टरवादिता से कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो मानव के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने वाले तत्त्व हैं। इनका समावेश आदिकाल से अध्यात्म दर्शन में रहा है और ये आज भी अपेक्षित हैं। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से विचार करने पर इसकी महत्ता स्पष्ट होती है। प्राचीन भारत में आश्रमों एवं पाठशालाओं में नैतिक शिक्षा पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग थी। अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा नीति को नैतिक शिक्षा से बिल्कुल पृथक कर दिया। इसका एकमात्र कारण भारत निवासियों को शारीरिक ही नहीं, मानसिक रूप से भी गुलाम बनाना था। उन्होंने राज्यों द्वारा संचालित विद्यालयों में इस शिक्षा की अवहेलना की। स्वतंत्र भारत में शिक्षा विदों ने बाह्य स्वरूप में थोड़ा परिवर्तन अवश्य किया। परन्तु मूल ढाँचा वही बना रहा। यही कारण है कि शिक्षा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सफल नहीं हो सकी है।

आज पढ़े-लिखे लोगों में निराशा, कुण्ठा, असंतोष, असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गई है। यह शिक्षा में नैतिक मूल्यों की, व्यक्तित्व को परिष्कृत करने वाले तत्त्वों की अनिवार्यता को सिद्ध करता है। वास्तव में नैतिक मूल्य एवं शिक्षा अपने स्वाभाविक स्वरूप में एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। इनमें से एक को विलग कर देने से उनका स्वरूप स्वाभाविक न रहकर विकृत हो जाता है। सी. ए. बारटोल ने 'दि न्यू डिक्शनरी ऑफ थाट्स' में स्पष्ट किया है कि 'कुछ लोग नैतिकता को धर्म से अलग करना चाहते हैं, पर धर्म के आधार के बिना नैतिकता का अन्त हो जाएगा। इनके आंतरिक सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए प्रो. ए. एन. ह्वाइटहेड ने लिखा है—'शिक्षा का सार तत्त्व यह है कि वह धार्मिक होती है। जिस प्रकार शिक्षा को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार शिक्षा को नैतिकता से भी पृथक करना असंगत है। हरबर्ट का कहना है कि नैतिक शिक्षा, शिक्षा के समग्र स्वरूप से पृथक नहीं है।

निःसंदेह समग्र शिक्षा और नैतिक मूल्य एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। इसके अभाव में शिक्षा में विकृति आना स्वाभाविक है। आज छात्रों में व्याप रही चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता, मर्यादाओं का अभाव इसी विकृति को दर्शाता है। नीतिमत्ता में किसी प्रकार की कट्टरता नहीं है। इसका तत्त्वदर्शन हर समय प्रत्येक के लिए लाभकारी है। महात्मा गाँधी ने नैतिकता की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए कहा था। ''मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्म पर्यायवाची शब्द हैं। नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त सभी धर्मों में समान हैं। इन्हें बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।'' प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राधाकृष्णन ने भी इसके समावेश पर बल देते हुए कहा है कि "मानवीय मूल्य व्यक्ति की सांस्कृतिक विरासत का एक अंग है। इनको पाठ्य विषय में स्थान न देना, छात्रों को अपने जन्मसिद्ध अधिकार के एक भाग के लाभ से वंचित करना है।"

विभिन्न शिक्षा विशारदों एवं शिक्षा आयोगों के निष्कर्षों तथा प्रतिवेदनों से इसकी महत्ता स्पष्ट होती है। परन्तु इस समस्या का समाधान इतने भर से सम्भव नहीं है। शिक्षक राष्ट्र मन्दिर के कुशल शिल्पी हैं। शिक्षार्थी अनगढ़ मिट्टी के समान हैं। विद्यालय इनको मजबूत ईंटों में ढालने वाली कार्यशाला है। शिक्षा वह विधा है, जिनसे इनको ढाला और राष्ट्र मन्दिर को गढ़ा जाता है। नैतिकता एवं मानवीय मूल्य ही वह भाग है, जिससे इन कच्ची ईंटों को मजबूती व सौंदर्य प्राप्त होता है, अन्यथा इसके अभाव में गढ़ाई की सुन्दरता के बाद भी कच्चापन अवश्यम्भावी है।

इस शिल्पकला के लिए शिक्षार्थी-शिक्षक दोनों को ही अपनी भूमिका समझनी होगी। मन:स्थिति को संस्कारी बनाकर इस निर्माण कार्य में जुट जाना होगा। समय का तकाजा है कि व्यक्ति को संस्कारवान, आत्मनिर्भर तथा परिष्कृत बनाने वाली विद्या को जन-जन तक लोकप्रिय बनाया जाय । आज शिक्षालयों की कम, सही अर्थों में विद्या देने वाले मन्दिरों की ज्यादा आवश्यकता है, तभी नवयुग के समाज का सशक्त आधार विनिर्मित हो सकेगा।

शिक्षा का अर्थ और स्वरूप— विवेकानन्द की दृष्टि में

शिक्षा मनुष्य के विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। मनुष्य को प्रकृति ने अन्य प्राणियों से अलग स्वतन्त्रता प्रदान की है, जिसके कारण उसे प्रकृति के बन्धनों और मर्यादाओं का अतिक्रमण करने की छूट मिली है। मनुष्य यह अतिक्रमण उर्ध्वदिशा में करता है तो उसकी प्रगति होती है और प्रकृति की मर्यादाओं का निम्नस्तरीय उल्लंघन किया तो वह व्यक्ति के पतन का कारण बनता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का उर्ध्वगामी विकास करना है।

यदि निसर्गजात परिधि में ही मनुष्य का जीवन क्रम चलता तो उसके लिए विशेष कुछ कहने की आवश्यकता भी नहीं थी। किन्तु वैसी स्थिति में मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में विशिष्ट भी नहीं बन पाता, वह अन्य जीव, जन्तुओं की तरह ही बना रहता । इसी लिए मनुष्य ने जब से विकास की यात्रा आरम्भ की, तभी से समाज में शिक्षा की आवश्यकता पड़ी और आरम्भ से अब तक यह आवश्यकता किसी न किसी रूप में पूरी करते चलने की प्रक्रिया चलती आ रही है। वर्तमान संदर्भों में लोग शिक्षा का अर्थ पढ़-लिख कर नौकरी धन्धे से लग जाने की योग्यता के रूप में ही लगाते हैं किन्तु शिक्षा को इतनी ही सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। इस शताब्दी के महान सन्त और भारतीय संस्कृति की विजय पताका को विदेशों में फहरा देने वाले स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण का बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया है। उनके प्रस्तुतीकरण का ढंग अर्वाचीन रहा, किन्तु उन्होंने भारतीय दर्शन की प्राचीन मान्यताओं, शाश्वत सत्यों का ही उद्घाटन किया। इसलिए उनके विचार भारतीय संस्कृति की मान्यताओं का प्रतिपादन करते हैं। शिक्षा की व्याख्या करते हुए स्वामीजी ने कहा—"शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता को व्यक्त करना, जो सब मनुष्यों में पहले से विद्यमान है।"

इन अर्थों में शिक्षा मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करती है या उसके विकास की पृष्ठभूमि बनाती है। तब शिक्षा को केवल रोजी-रोजगार प्राप्त करने का साधन कैसे समझा जा सकता है ? जो शिक्षा केवल इतना ही प्रयोजन पूरा करती हो और जीवन के अन्य अंगों को स्पर्श नहीं करती, उसे स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा मानने से ही इन्कार कर दिया है—"जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही है सच्ची शिक्षा।"

जीविका तो मनुष्य जीवन की एक छोटी-सी आवश्यकता है। अशिक्षित और अनपढ़ व्यक्ति भी अपनी रोजी-रोटी बड़े मजे से कमा लेते हैं और प्राय: शिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से कमाते हैं, इसलिए जीविकोपार्जन के लिए—नौकरी प्राप्त करने के लिए कोई डिग्री प्राप्त कर लेना शिक्षा नहीं कही जा सकती। वरन् शिक्षा का मूल उद्देश्य है मनुष्य के चरित्र और व्यक्तित्व का गठन, उसका विकास। जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है। चरित्रबल, साहस और परोपकार की भावना का विकास नहीं करती, उसे शिक्षा मानने से इन्कार किया गया है। वहीं स्वामी विवेकानन्द ने ऐसी शिक्षा-पद्धति विकसित करने की आवश्यकता प्रतिपादित की है, जिससे लोगों में उपरोक्त गुणों का विकास हो सके। उन्होंने एक स्थान पर कहा है—"हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जिससे चरित्र निर्माण हो, मनुष्य की मानसिक शक्ति बढ़े, उसकी बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना भी सीखे।"

आजकल शिक्षा की जो पद्धति है, उससे इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती। किसी विशेष विषय के तथ्यों को दिमाग में संग्रहीत कर डिग्री प्राप्त कर लेना ही शिक्षातन्त्र का केन्द्रीय आधार बना हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने जिन दिनों यह बात कही थी, उन दिनों शिक्षा-पद्धति का यही स्वरूप प्रचलित था। उससे न चरित्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्माण की दिशा मिलती थी और न ही व्यक्ति में स्वावलम्बी बनने की योग्यता विकसित होती थी। बताया जाता है कि उस समय अँग्रेजों को शासनतंत्र चलाने के लिए सभी कर्मचारी ब्रिटेन से ही लाने पड़ते थे। कुछ समय तक तो वह आवश्यकता महँगा मूल्य देकर भी पूरी की जाती रही किन्तु बाद में सोचा गया कि क्यों न इसी देश के निवासियों का उपयोग किया जाय, जिससे श्रम भी सस्ते में मिल जाय और इस देश के लोगों में वफादारी की भावना भी उत्पन्न हो।

इस उद्देश्य से मुख्य रूप से शिक्षा-पद्धति का ढाँचा खड़ा किया गया और ऐसी व्यवस्था बनायी गई, जिससे दफ्तरी बाबू तैयार होते रहे। आजकल पढ़-लिखकर युवक नौकरी की तलाश में भटकते रहते हैं। उसका एक कारण यह भी है कि आज के समय में भी युवकों को मिलने वाली शिक्षा उसी ढंग की है और उसके संस्कार भी वैसे ही पड़ते हैं कि शिक्षित व्यक्ति अन्य कार्यों में संलग्न होने के स्थान पर कहीं ऑफिस में क्लर्क हो जाना ज्यादा अच्छा समझता है।

ब्रिटिश काल में शिक्षा-पद्धति का जो स्वरूप बनाया गया, उससे युवकों में अपनी संस्कृति के प्रति उपेक्षा और अँग्रेजी संस्कृति सभ्यता के प्रति झुकाव भी पैदा हुआ। बाहर से थोपी गई दासता की अपेक्षा यह मानसिक गुलामी अधिक भयंकर है। स्वतन्त्र विचारशीलता को दबाकर थोपे गए विचारों को मन-मस्तिष्क में जमा देने की बात स्वामी विवेकानन्द की सूक्ष्म दृष्टि से ओझल नहीं हो सकी थी और उन्होंने उस युग में भी यह बात बड़ी निर्भयतापूर्वक कही थी।

"शिक्षा क्या वह है जिसने निरन्तर विचारशीलता को बलपूर्वक पीढ़ी दर पीढ़ी रोककर प्रायः नष्ट ही कर दिया है। जिसके प्रभाव से नये विचारों की तो बात जाने दीजिए, पुराने विचार भी एक-एक करके लोप होते चले जा रहे हैं, क्या वह शिक्षा है जो मनुष्य को धीरे-धीरे यन्त्र बना रही है।"

अँग्रेज चले गए किन्तु अंग्रेजियत नहीं गई—इसका कारण यह नहीं है कि प्रयत्नपूर्वक प्रचलित की गई शिक्षा-पद्धति ने लोगों के मन में अँग्रेजी दासता को वरदान के रूप में प्रतिष्ठित किया था। थोड़े बहुत संशोधन के साथ आज भी उसी ढंग की शिक्षा प्रचलित है, जिससे विचारशीलता कम तथ्यों के प्रति आग्रह ही अधिक उत्पन्न होता है। स्वामी विवेकानन्द ने इस प्रकार दिमाग को तथ्यों का एक संग्रहालय बना लेने की अपेक्षा शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का निर्माण अधिक बताया है। उनकी मान्यताओं में शिक्षा का अर्थ जानकारियाँ इकट्ठी करना नहीं दिशा ग्रहण करना है। एक स्थान पर उन्होंने कहा है—"शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत-सी बातें इस तरह ठूँस दी जाएँ कि उन्हें तुम्हारा दिमाग जीवन भर हजम न कर सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को हजम कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरी की पूरी लाईब्रेरी ही कण्ठस्थ कर ली है।"

शिक्षा के द्वारा ये आवश्यकतायें पूरी हों तभी उससे व्यक्ति और समाज का कल्याण हो सकता है। पश्चिमी देशों में तथ्यों के संकलन को महत्त्व दिया जाता है किन्तु वहाँ व्यक्तित्व निर्माण की उपेक्षा भी नहीं की जाती। वहाँ के नागरिकों में नैतिक मूल्यों के प्रति सुदृढ़ आस्था है। भले ही वहाँ अपराधों की संख्या बढ़ रही हो, अपराध हमारे देश में भी कम नहीं होते। व्यापारी से लेकर राजनेताओं और समाजसेवियों तक में नैतिकता का गिरा हुआ स्तर इस बात का प्रतीक है कि हम न केवल असामाजिक हैं वरन् अपने स्वार्थ के लिए सामाजिक हितों का भी निर्ममतापूर्वक गला घोंट सकते हैं। इस सम्बन्ध में किसी देश से तुलना करने की आवश्यकता नहीं है। विषय शिक्षा का चल रहा है और शिक्षा की जितनी उपेक्षा हमारे देश में होती है, उतनी अन्य किसी देश में नहीं होती। प्रायः सभी देशों में अभिभावक अपने बच्चों को शिक्षा दिलाना अपना कर्तव्य समझते हैं और उसे अच्छी तरह पूरा करते हैं। यह परिपाटी कोई इन्हीं दिनों बनी हो ऐसा भी नहीं है। पाश्चात्य लोगों में शिक्षा के प्रति वैसा ही प्रेम स्वामी विवेकानन्द ने उन दिनों भी देखा था और पाया था कि इसी कारण वहाँ के लोग सुख-शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। अपने एक मित्र को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा था—"यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों में भी अमन चैन और विद्या को देखकर अपने देश के निर्धनों की याद आती थी और मैं आँसू बहता हुआ सोचता था—यह अन्तर क्यों आया ? एक ही उत्तर मिलता—शिक्षा।"

प्रत्येक विचारशील और शिक्षित व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह अशिक्षितों में शिक्षा और ज्ञान का प्रसार करे। अकाल और महामारी के समय सभी स्तर के व्यक्ति पीड़ित क्षेत्रों में सहायता कार्य चलाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अशिक्षा और अज्ञान दुर्भिक्ष तथा महामारी से भी अधिक भंयकर है। दुर्भिक्ष और महामारी का स्वरूप तो दिखाई पड़ता है, उसका उत्पीड़न भी प्रत्यक्ष मालूम देता है इसलिए उसका समाधान भी शीघ्र ही हो जाता है किन्तु अशिक्षा और अज्ञान तो ऐसे अभिशाप हैं, जो प्रत्यक्ष तो कोई नुकसान पहुँचाते नहीं दीखते किन्तु भीतर ही भीतर घुन की तरह मनुष्य को खोखला करते रहते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने इसीलिए शिक्षा के प्रचार को प्राथमिकता देते हुए कहा था—"अपने से निम्न श्रेणी वालों के प्रति हमारा एक ही कर्तव्य है—उनको शिक्षा देना। उनके खोए हुए व्यक्तित्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के विकास के लिए सहायता करना। उनमें विचार पैदा कर दो—बस, उन्हें इसी एक सहायता की आवश्यकता है और शेष सब कुछ इसके फलस्वरूप अपने आप ही आ जाएगा। हमें केवल रासायनिक सामग्रियों को इकट्ठा कर देना है, उनका निश्चित आकार प्राप्त करना—स्वयं बँध जाना तो प्राकृतिक नियमों से ही साधित होगा।''

स्मरण रखा जाना चाहिए कि स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का जो स्वरूप बताया है, उसके अनुसार किसी को अक्षर ज्ञान करा देने मात्र से शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता पूरी नहीं हो जाती, वरन् उसके लिए तो ऐसी प्रेरणाओं का प्रवाह उत्पन्न किया जाना चाहिए, जो व्यक्ति को जीवन निर्माण की दिशा दे। वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोष और शिक्षा के आदर्श स्वरूप को दो वाक्यों में ही स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—

''हमारे वर्तमान विश्वविद्यालयों की बात लीजिए। उनका आरम्भ हुए पचास वर्ष हो गए पर फल क्या मिला है ? वे एक भी मौलिक भाव सम्पन्न नहीं कर सके। वे परीक्षाएँ लेने वाली संस्थायें मात्र हैं। जिससे साधारण जनता में जागृति आए और समाज के लिए स्वार्थ त्याग की मनोवृत्ति का विकास हो वही वास्तविक शिक्षा है।''

इस स्तर की शिक्षा प्राप्त करने, शिक्षित की कसौटी पर खरे उतरने के लिए पढ़े-लिखे व्यक्तियों को भी क-ख-ग से आरम्भ करना पड़ेगा क्योंकि जो शिक्षा हमने प्राप्त की है, उसके रहते हुए यदि अपना व्यक्तित्व समाजनिष्ठ और चरित्र कर्तव्यनिष्ठ नहीं बना तो अशिक्षित पढ़े-लिखे होने का दोहरा कलंक लगेगा। जो भी हो, भारत के प्राचीन गौरव और अपनी संस्कृति की गरिमा का पुनरुत्थान करने के लिए जन स्तर पर या व्यक्तिगत रूप से जैसे भी सम्भव हो, शिक्षा के सार्थक स्वरूप को पुनरुज्जीवित करने के लिए ठोस प्रयास होने चाहिए।

शिक्षा का अपेक्षित स्वरूप

सृष्टि में कोई भी वस्तु पूर्णतया पूर्ण और निर्दोष तो नहीं हो सकती परन्तु मानव हर वस्तु को निर्दोष बनाने का यत्न अवश्य करता है। यद्यपि चूँकि वह स्वयं पूर्ण नहीं है, इसलिए उसके समस्त कार्य अपूर्ण ही रहते हैं। हजारों वर्षों के मानव इतिहास में कहीं भी शिक्षा की कार्य-पद्धति सर्वथा निर्दोष और सर्वमान्य नहीं रही है, परन्तु शिक्षा की वर्तमान पद्धति तो अत्यन्त शोचनीय और चिन्तनीय हो गई है। सारे संसार में कोई भी उससे सन्तुष्ट नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति के माध्यम से मनुष्य को जानकारियाँ तो मिल जाती हैं, लेकिन सच्चे ज्ञान की उपलब्धि न होने से स्वयं मानव का निर्माण यह शिक्षा नहीं कर पाती। तथ्यों की जानकारी से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है परन्तु उसकी अन्तरात्मा खाली की खाली बनी रहती है, न तो उसके अन्तःकरण का जागरण होता है, न उसके हृदय में शुभ भावनाओं का अवतरण। इसे यों भी यह कह सकते हैं कि उस आहार की भाँति जिससे भूख तो मिट जाती है, तृप्ति नहीं होती और न ही नया रक्त अथवा अन्य धातुओं की शरीर में अभिवृद्धि ही होती है। परिणाम यह होता है कि बिना रुचि के इस भोजन से जिसे हमारे शरीर की प्राकृतिक प्रक्रिया स्वीकार नहीं करती, न तृप्ति होती है और न उसका परिपोषण। समय के साथ उल्टे उसका ह्रास होने लगता है और अन्ततोगत्वा एक अवधि पूर्ति के सदृश हमारा शरीर, मस्तिष्क और हृदय एक बिना प्रवाह की सरिता के समान सूख जाता है, समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि वर्तमान शिक्षा हमारे चरित्र को स्पर्श भी नहीं कर पाती और इससे मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने का कोई उपाय प्रतिपादित नहीं होता। यह कितना आश्चर्यजनक और अभाग्यपूर्ण है कि शिक्षा में प्रशिक्षण द्वारा पशु को मानव बनाने का उपक्रम तो किया जाता है किन्तु मानव को मानव बनाने का नहीं। या इसे यों कहें कि पशु की पशुता दूर करने के प्रयत्न तो किये जा रहे हैं, जबकि मनुष्य में अन्तर्निहित पाशविकता को उल्टा बढ़ाया जा रहा है और यही क्या उसे मानव से कुछ और बनाने के सभी प्रयत्न आधुनिक शिक्षा में किये जा रहे हैं।

मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी जीव को शिक्षित नहीं किया जा सकता क्योंकि निसर्ग ने जो ज्ञान-शक्ति मनुष्य को दी है, वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। अन्य जीवों को केवल प्रशिक्षण दिया जा सकता है, जैसे सर्कस के सिंह, हाथी, घोड़ा, बन्दर, बकरे और तोता, मैना आदि को। शिक्षण और प्रशिक्षण के इस बुनियादी भेद को समझना बहुत आवश्यक है। शिक्षा का सूत्र, उसका स्रोत अन्तस् में है। वह एक संस्कार है, जो बीज रूप से अंकुरित हो वृक्ष बनता है और उससे पुण्य एवं फल फलते हैं, जबकि प्रशिक्षण मात्र अभ्यास है। यह उस पौधे की भाँति जो पुष्प और फलों के रहित रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सजावट के किसी स्थल पर क्षणिक महत्त्व के लिए रोपा जाता है, यानी शिक्षा एक प्राकृतिक संस्कार है और प्रशिक्षण एक कृत्रिम वस्तु मात्र। पहले का सम्बन्ध अन्तस् से है, दूसरे का बाहर से। पहला प्राकृतिक है दूसरा कृत्रिम, एक विकासशील प्राण तत्त्व है तो दूसरा ह्रासोन्मुख निर्जीव पदार्थवत। इस प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से जबरदस्ती थोपा हुआ ढाँचा है। शिक्षा ऊपर से नहीं थोपी जाती वरन् अन्तस् को जगाकर दी जाती है। पानी के हौज में जिस प्रकार पानी ऊपर से भरा जाता है, उसी प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से दिया जाता है। जबकि शिक्षण कुँए में भरे हुए पानी की भाँति है, जो भीतरी झिरों से भरता है। अँग्रेजी शब्द एजूकेशन का अर्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण है। उसका अर्थ है भीतर से बाहर निकालना, उसका अर्थ बाहर से भीतर डालना नहीं है, पर हम जो कुछ कर रहे हैं वह बाहर से भीतर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डालना है। इसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है? यह मात्र प्रशिक्षण है और यही कारण है कि जिसे हम शिक्षित होना कहते हैं और जिसे हमारे विश्वविद्यालय तक सम्मानित करते हैं, वह जीवन की व्यापक और वृहत परीक्षा में असफल हो जाता है। ऐसा शिक्षित जन केवल रटा हुआ तोता होता है। उसमें स्वयं विचार की न तो कोई ऊर्जा होती है और न अपने जीवन को निर्देशित करने का कोई विवेक। वह पानी की लहरों पर बहते हुए लकड़ी के उस टुकड़े की भाँति होता है, जिसे लहरें जहाँ ले जाती हैं, चला जाता है।

प्रशिक्षण का शिक्षण के रूप में इस भाँति का प्रचलित होना तकनीकी शिक्षा के प्रति प्रभाव के कारण हुआ, क्योंकि तकनीकी का प्रशिक्षण ही हो सकता है, शिक्षण नहीं । सारा संसार चूँकि भौतिक समृद्धि के लिए लालायित है और हमारा देश तो गरीबी के कारण और अधिक। इसलिए तकनीकी ज्ञान को ही प्रमुखता मिली है। हम तकनीकी ज्ञान की ओर उसके द्वारा होने वाली भौतिक समृद्धि के विरुद्ध नहीं है। संसार के लिए और हमारे लिए वह भी आवश्यक है। किन्तु इससे जो हमारा अनिष्ट हो रहा है, उसकी दिनों-दिन बढ़ती हुई सम्भावना से हमारे बुनियादी जीवन का जो आधार खोखला हो रहा है, उससे अब हम अधिक समय तक अपनी आँखें मूँदकर नहीं रह सकते। अपनी अयोग्यता को छिपाकर केवल अभ्यास के बल पर हम आखिर कहाँ तक आगे बढ़ सकेंगे। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लालच में नकल का कोई भी विद्यार्थी जीवनरूपी परीक्षा में सफल हो सकेगा, यह स्पष्टतया असम्भव है। इस प्रकार सच्ची शिक्षा के अभाव में यह प्रशिक्षण हमारे जीवन को दरिद्र और एकांगी बना रहा है और इसी के साथ इसके कुछ भयानक नतीजे भी निकल रहे हैं। तकनीकी ज्ञान भौतिक जगत के नियन्त्रण के लिए आवश्यक है, परन्तु जिसे मैं सच्ची शिक्षा कहता हूँ, उसके द्वारा शिक्षित न होने के कारण मनुष्य अपने पर नियन्त्रण नहीं कर पा रहा है और स्वयं पर इस अनियन्त्रण के कारण उसका पदार्थ ज्ञान एवं भौतिक वस्तुओं का आधिपत्य वैसा ही है जैसा अबोध बच्चे के हाथ में तलवार देना। पिछले दो महायुद्ध इसके प्रमाण हैं और हम आज भी उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। हमें इन महायुद्धों से चेतावनी नहीं मिली। यदि मनुष्य व्यष्टि और समष्टि रूप से सचेत नहीं होता है, तो अनियन्त्रित मनुष्य के हाथ में प्रकृति की नियन्त्रित शक्तियाँ आत्मघातक सिद्ध होंगी। इसकी चरम परिणति समस्त मानवता के अन्त में हो सकती है। अत: भौतिक वस्तुओं पर नियन्त्रण के पूर्व मनुष्य का उससे कहीं अधिक स्वयं पर नियन्त्रण होना आवश्यक है क्योंकि शक्ति केवल संयम के हाथों में सुरक्षित रहती है, असंयमी, अविवेकी के शक्तिशाली होने से भस्मासुर की पुनरावृत्ति आवश्यम्भावी होगी।

जो शिक्षा मनुष्य को सृजन की शिक्षा न होकर उसके संहार का कारण बनती है, उसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है ? शिक्षा का अर्थ ही एक सद्इच्छा, सद्भाव के प्रसार को करना है। एक ऐसे ज्ञान का विस्तार शिक्षा तत्व में निहित है, जो व्यष्टि के माध्यम से समष्टि के कल्याण का केन्द्र बने। तकनीकी ज्ञान शिक्षा का प्रधान अंग कभी नहीं होना चाहिए, वह गौण रहना चाहिए। मानवीय मूल्यों की स्थापना ही शिक्षा का केन्द्रीय तत्त्व है। तकनीकी ज्ञान से उपार्जित वस्तुएँ जीवनयापन का साधन हो सकती हैं, साध्य नहीं। साध्य तो मनुष्य स्वयं है। इस साध्य की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा उसका एक शस्त्र है, एक साधन है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में हुआ यह है कि जो साध्य है वह साधन बन गया है और साधन है वह साध्य। इस प्रकार साधन को साध्य के ऊपर रखना घातक सिद्ध हुआ है। आध्यात्मिक शिक्षा और भौतिक शिक्षा का यही एक भेद है। भौतिक शिक्षा में साधन साध्य बन जाते हैं और आध्यात्मिक शिक्षा में साधन, साधन रहते हैं और साध्य, साध्य और यदि आवश्यकता पड़े एवं कोई अन्य विकल्प शेष न रहे तो सच्ची शिक्षा साधनों का परित्याग कर सकती है लेकिन साध्य का नहीं। उसकी दृष्टि में वे हर साधन सम्यक् हैं, जो जीवन के चरम साध्य की उपलब्धि में सहयोगी हैं इसके विपरीत पड़ते ही वे व्यर्थ और त्याज्य हो जाते हैं।

ऐसी शिक्षा जो हमारे श्रेय को पुष्ट करती है, विवेक को सशक्त बनाती है, जीवन में प्राणदायी तत्व भरती है हमारे लिए इष्ट है। यज्ञ पूर्ण जीवन शिक्षा का उद्देश्य है, यज्ञ शून्य जीवन ही अशिक्षित और असंस्कृत जीवन है। यही पशुता है, पशु तो पशु है ही, अशिक्षा मनुष्य को भी पशु बना देती है। जो जानते हैं उन्होंने पशु उसे कहा है जो वासनाओं के पाश में बँधा हो। मानव में भी पशुता है, पर सच्ची शिक्षा उसे अपने ही पशु पर योग्य सवार बना देती है। शिक्षा इस पाश से मुक्त करती है और तभी वस्तुत: सच्चे मानव का जन्म होता है।

शिक्षा क्यों और कैसे ?

शिक्षा की परिभाषा करते हुए विचारकों ने उसे कितने ही अर्थों में परिभाषित किया है। पर भारतीय संस्कृति की शिक्षा सम्बन्धी मान्यताओं को थोड़े-से शब्दों में सटीक अभिव्यक्ति देते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—"शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं को पूर्ण विकसित करना है।" इन शब्दों में शिक्षा की जो व्याख्या हो जाती है, वह अपने आप में अनुपम और अद्वितीय है। वस्तुत: शिक्षा का सही उद्देश्य और सार्थकता यही है कि परमात्मा के युवराज मनुष्य को उसकी क्षमताओं से साक्षात करा दे और उन्हें विकसित भी कर दे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सभ्यता का जो विकास अब तक हो सका है, उसमें शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसे पारिवारिक और सामाजिक उपलब्धियों के संचरण का साधन कहा गया है। अर्थात हमारे पूर्वज और पहले के समाज ने जो कुछ अर्जित किया, वह इस साधन द्वारा हमें प्राप्त हुआ। हम उसमें जो कुछ नया जोड़ते हैं, वह अगली पीढ़ी को दे जाएँ। मनुष्य सभ्यता के आदिमकाल से लेकर अब तक जो विकास हुआ, मनुष्य ने जो अर्जित किया है, सभ्यता ने जो विकास किया है, वह संचरित हुआ वर्तमान पीढ़ी तक नई पीढ़ी ने उसमें नई उपलब्धियाँ जोड़कर उत्तराधिकार में दूसरी पीढ़ी को दिया तथा उसने उससे अगली वाली पीढ़ी को। इस प्रकार मानवी सभ्यता में निरन्तर कुछ नया जुड़ता गया और उस समेत पूर्वार्जित उत्तराधिकार में अगली पीढ़ी को मिलता रहा।

बेशक इस प्रकार मनुष्य का ज्ञान भण्डार काफी विकसित हुआ और आज इतना विकसित हो चुका है कि किसी एक व्यक्ति को समग्र रूप में दे पाना कठिन है। कठिन इसलिए कि सभी विषयों में पूर्ण ज्ञाता कोई एक व्यक्ति नहीं हो सकता और हो भी जाय तो वह हस्तान्तरित नहीं कर सकता। अत: धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, शिल्प, विज्ञान की अनेकानेक धारायें बँटती गईं और अब उनकी संख्या इतनी अधिक हो चुकी है कि सभी लोगों के लिए सभी विषयों के नाम याद रख पाना भी कठिन है। अकेले रसायनशास्त्र की ही सौ से अधिक शाखाएँ हैं दुनिया भर में पाँच सौ से अधिक धर्म-सम्प्रदाय चलते हैं। अकेले हिन्दू धर्म की तीस से भी अधिक शाखाएँ हैं। कहने का अर्थ यह है कि मनुष्य जाति के पास उपलब्ध ज्ञान भण्डार इतना विस्तृत है कि वह थोड़े-से लोगों के हाथ में नहीं रह सकता। अत: अलग-अलग विषयों के अलग-अलग ज्ञाता हैं। यह कोई जरूरी नहीं है कि रसायनशास्त्र की किसी शाखा का प्रकाण्ड पंडित जीवविज्ञान में किसी जन्तु के जीवन-चक्र को भी समझे, जो कि जीवशास्त्र का प्रारम्भिक छात्र भी जानता हो।

अत: शिक्षा का अर्थ सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान तो नहीं है पर इतना अवश्य है कि व्यक्ति समाज के अन्य सदस्यों के साथ-साथ कदम मिलाकर चल सके। इसलिए सभ्यता के विकास के साथ-साथ शिक्षा व्यक्ति को अपने समाज के साथ जीना भी सिखाती है। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जा रहा है, वैसे-वैसे शिक्षा की आवश्यकता भी अनिवार्यता में बदलती जाती है। एक समय था जब लोग बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी में चलते थे। मोटर, रेल, विमान और चन्द्रयान जैसे साधन जब आज सुलभ हो गये हैं तो किसी व्यक्ति का बैलगाड़ी के युग में ही जीना आश्चर्य का विषय हो सकता है। उस समय लोग तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध साधनों से प्राप्त कर लेते थे, वंचित रह भी जाते तो वह कोई बुरा नहीं समझा जाता था। पर आज वैसा नहीं है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अन्य लोगों और समुदायों से कटकर सीमित क्षेत्र में—अधिक से अधिक घर की चहारदीवारी में ही जी सकता है क्योंकि अब तो घर से बाहर कदम रखते ही व्यक्ति में बाहरी दुनिया को समझने की क्षमता आवश्यक हो जाती है।

और यह क्षमता केवल शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। मनुष्य के लिए शिक्षा की आवश्यकता को मानवशिशु के माध्यम से भी समझा जाता है। जन्म लेने के बाद मनुष्य का बच्चा रोने-चिल्लाने लगता है, जबकि पशुओं के बच्चे अपनी खाद्य सामग्री आप ही ढूँढ़ने लगते हैं। बच्चे को अपना आहार प्राप्त करने के लिए माँ को सहायता के लिए पुकारना पड़ता है। मानव शिशु असहाय है जबकि पशु स्वभावत: ही जन्म लेने के बाद अपना जीवन-संघर्ष आरम्भ कर देता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य कमजोर पशु आधिक समर्थ है वरन् कारण यह है कि पशु जहाँ नैसर्गिक प्रेरणाओं से संचालित रहता है वहीं मनुष्य को अपनी नियति आप निर्धारित करने का अधिकार मिला है। जन्मजात ही पशुशावक प्रकृतिदत्त प्रेरणा लिये रहता है और उसी अनुसार मरणपर्यन्त चलता भी है। जबकि मनुष्य का जीवन अपेक्षाकृत अधिक जटिल, गतिवान और परिवर्तनशील रहता है। उसे औरों के माध्यम से बहुत कुछ स्वत: अर्जित करना पड़ता है प्रकृति और दूसरों का सहयोग प्राप्त करने की कला उसे जन्म से ही सिखा देती है।

दूसरों की क्षमताओं और उपलब्धियों से सीखकर स्वयं को किस प्रकार विकसित किया जाय, इसका मार्ग शिक्षा ही सुझाती है। वह सहयोगापेक्षा के रूप में मनुष्य शिशु को आरम्भ से ही वह कला सिखा देती है, जिसके बल पर बच्चा आगे चलकर अपनी क्षमताओं का स्वामी बन जाता है तथा योग्यताओं में उनको बदल देता है।

क्षमताएँ योग्यताओं में तभी परिणित होती हैं जबकि तद्विषयक ज्ञानार्जन किया गया हो। ज्ञान या जानकारी का एक उपाय निरीक्षण और अन्वेक्षण तो है पर उससे कई गुना अधिक ज्ञान व्यक्ति दूसरों से सीखकर प्राप्त करता है। एक मशीन के पुर्जे खोलने, बिना किसी की सहायता के उन्हें समझने और उस कला में पारंगत होने के लिए कई जन्म भी लग सकते हैं और पूरा जीवन भी खप सकता है। पर योग्य व्यक्तियों की सहायता से उन्हें समझने, उनका उपयोग सीखने की चेष्टा की जाय तो व्यक्ति कुछ ही महीनों में, वर्षों में निष्णात हो जाता है। सहयोगापेक्षा इस क्षेत्र में सर्वाधिक काम की सिद्ध होती है और प्रत्येक व्यक्ति स्वत: बहुत कम और दूसरों से विरासत के रूप में ही अधिक ज्ञान अर्जित करता है।

अपना विकास जहाँ प्रकृति की प्रेरणा है, वहीं उसकी कला और क्षमताओं का योग्यता में परिवर्तन

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज की देन। मनुष्य को प्रकृति की इस प्रेरणा के अनुरूप अपना विकास करने के लिए ही समग्र शिक्षण तंत्र का ढाँचा खड़ा करना पड़ता है। शिक्षण व्यवस्था व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं का तालमेल बिठाते हुए निर्धारित की जाती है। व्यक्ति की आवश्यकता यह है कि वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता अर्जित करते हुए शारीरिक, वैयक्तिक एवं आत्मिक उन्नति करे और समाज को जिस दिशा में अग्रसर होना है उसी प्रकार का शिक्षा ढाँचा खड़ा कर वह व्यक्ति को उस अनुरूप बनाती है। अर्थात शिक्षा का एक प्रयोजन व्यक्ति को समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप संस्कारवान बनाना भी है।

ये दोनों कार्य व्यक्ति की स्वाभाविक क्षमताओं का विकास ज्ञान और अपेक्षाओं का हस्तान्तरण, बड़ी आयु की अपेक्षा छोटी आयु में ही अधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न किये जा सकते हैं क्योंकि उस समय व्यक्ति पर न तो कोई गम्भीर दायित्व रहता है तथा उसकी मनोवृत्तियाँ भी लचीली होती हैं, जिन्हें मन चाहा मोड़ दिया जा सकता हो। कुम्हार को जैसा खिलौना बनाना होता है। मिट्टी में पानी डालकर उसे रोंध कर उसी प्रकार के साँचे में दाबते हैं। जैसे सिक्के ढालने होते हैं उसी प्रकार साँचे भी बनाये जाते हैं और उनमें पिघली धातु डाली जाती है। बचपन की उम्र पिघली धातु या गीली मिट्टी की तरह ही है, जिसे मनचाहा आकार दिया जा सकता है। 'हिटलर ने विश्व विजय का स्वप्न देखा था तो उसने जर्मन तथा विद्यार्थियों के जातीय श्रेष्ठता और उनकी विशेष योग्यता की बात हर नागरिक के मन में भरने की ठानी। उसी के अनुसार उसने वहाँ की शिक्षा-पद्धति का निर्धारण किया। परतंत्र भारत में क्लर्क बाबुओं की ही आवश्यकता थी, तो लॉर्ड मेकाले ने इसी आधार पर शिक्षा का ढाँचा खड़ा किया। साम्यवादी देशों में अपनी प्रजा को अभीष्ट विचारों में ढालने के लिए शिक्षा पद्धति को ही उस अनुरूप बनाया गया।

शिक्षा द्वारा ज्ञान के हस्तान्तरण की बात आरम्भ में कही गई है। वह शिक्षा का महत्त्व दर्शाने के लिए ठीक है। वह विशिष्ट व्यक्तियों से ही सम्भव है। सामान्य व्यक्तियों के लिए तो आरम्भ में अपनी क्षमताओं के सामान्य विकास, जीवन को सफल बनाने की कला में पारंगता तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने की तत्परता का ही प्रयोजन रहता है। लेकिन अपने देश में सभी व्यक्तियों के लिए शिक्षा का यह स्तर निर्धारित करना इसलिए भी कठिन है कि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। नई पीढ़ी को शिक्षित करने के साथ-साथ उसे भी सम्हालने की जरूरत है और यह कार्य वे ही व्यक्ति अच्छी तरह सम्पन्न कर सकते हैं, जो स्वयं शिक्षित हों तथा शिक्षा को सभ्यता की दौड़ के समानान्तर दौड़ने के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी अनुभव करते हों।

प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए अलग से शिक्षाक्रम निर्धारित करना चाहिए ताकि वे भी अब तक आई कमियों को दूर कर सकें। जनस्तर पर कार्यान्वित हो सकें। इस तरह की व्यावहारिक शिक्षा तीन भागों में बाँटी जा सकती है। पहली अक्षर ज्ञान के साथ-साथ संसार की विभिन्न परिस्थितियों की जानकारी। उसके बाद दूसरी क्रम पर शारीरिक, आर्थिक एवं भौतिक जीवन को सरल व सफल बनाने योग्य उपयुक्त ज्ञान तथा तीसरे चरण में मानसिक तथा भावनात्मक स्तर पर व्यक्तिगत एवं सामाजिक गतिविधियों का बोध। इसके बाद का क्षेत्र व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय कि वह चाहे तो किसी विषय में विशेष योग्यता अर्जित कर सके।

प्रयत्न तो यह किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपनी भौतिक सम्पत्ति बढ़ाने की जितनी चिंता करता है और उसके लिए जितना प्रयत्नशील रहता है, उतना ही प्रयत्नशील अपनी ज्ञान-सम्पदा बढ़ाने के लिए भी रहे। मनुष्य का वास्तविक धन तो विद्या ही है, जिसे न कोई चुरा सकता है, न डाकू छीन सकता है। जन स्तर पर विद्या की सम्पत्ति बढ़ाते रहने के लिए प्रोत्साहन की सुविधा रहनी चाहिए और वैसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न की जाती रहना चाहिए।

आजकल शिक्षा के प्रति अभीष्ट रुचि का अभाव लोगों में इसलिए भी देखा जाता है कि वे पढ़-लिखकर नौकरी तलाश करने के चक्कर में वर्षों इधर से उधर भटकते रहे। लाखों छात्र प्रतिवर्ष पास होते हैं और सभी की इच्छा अच्छी और ऊँची नौकरी प्राप्त करने की होती है। इन सबको कहाँ से काम मिले ? कहाँ से नौकरी दी जाय ? फलतः शिक्षितों की बेकारी देखकर भी सामान्य सूझ-बूझ के अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहते। इस स्थिति का सामना करने के लिए शिक्षा प्राप्त कर रहे प्रत्येक व्यक्ति को अपना दृष्टिकोण सुधार लेना चाहिए। शिक्षा को विशुद्ध रूप से ज्ञान-सम्वर्द्धन तथा व्यक्तित्व के विकास की आवश्यकता पूरी करने के लिए प्राप्त किया जाय, न कि अच्छी, ऊँची और आराम की नौकरी मिलने का सपना देखते हुए। आज की परिस्थितियों में शिक्षा को सीधे जीविकोपार्जन का उपाय न बनाया जाय, न बनाने की सोची ही जाय।

शिक्षण व्यवस्था में भी कुछ परिवर्तन अभीष्ट है। जिसके अनुसार व्यक्ति अपना ज्ञान सम्वर्धन करते हुए आत्मनिर्भर बनने में भी समर्थ हो सके। जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान को व्यक्तित्व के विकास हेतु तो अर्जित कराया ही जाय, निर्वाह आवश्यकता की पूर्ति को भी शिक्षण का एक आनुषांगिक पक्ष मान कर विद्यार्थी को स्वयं ही उसे सँवारने में समर्थ बनाया जाय। छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे लुहार, मिस्त्री, दर्जी, कुम्हार, रंगरेज, मोची, जुलाहा, नाई, धोबी आदि के छोटे समझे जाने काम-धन्धे यदि पढ़े-लिखे लोग सुथरे और सँवारे ढंग से करने लगें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या उन्हें करने की प्रेरणा दी जाय, तो वे ही शिक्षार्थी इन क्षेत्रों में जाकर लोगों की शिक्षा सम्बन्धी भ्रामक धारणाओं को आसानी से बदल सकेंगे।

शिक्षा-पद्धति का यह क्रम अपनाकर जनसाधारण को शिक्षा का महत्त्व और आवश्यकता समझायी जाय, तो आज जो लोग अपने बच्चों को स्कूल की छाया से बचाते हैं, वे ही कल खुद वैसी साधन-सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ढूँढ़ते दौड़ेंगे। राष्ट्र कितना प्रगतिशील है और विकास की कितनी मंजिलें तय कर चुका है? इसका स्पष्ट अनुमान वहाँ शिक्षा के प्रचार-प्रसार से ही लगाया जा सकता है। थोड़े-से गिने-चुने लोगों के शिक्षित होने से देश आगे नहीं बढ़ा करता। उसके लिए व्यापक रूप से शिक्षित नागरिकों की आवश्यकता रहती है और वे ही प्रगति तथा सुव्यवस्था को अधिक समय तक स्थिर रख सकते हैं।

शिक्षा बनाम सुसंस्कारिता

अपने देश का इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि आज शिक्षा और नौकरी पर्यायवाची बन गये हैं, जितने बच्चे पढ़कर निकलते हैं, उनकी तुलना में रिक्त स्थान कहीं कम खाली होते हैं। सबको नौकरी मिलना कठिन है। ऐसी दशा में शिक्षितों में ऐसी प्रतिभा का उपार्जन आवश्यक है, जिसके कारण उनका व्यक्तित्व निखरा हुआ हो। अन्यत्र जहाँ भी स्थान मिले या पैतृक धन्धे को अपनायें, उसे अपने कौशल के सहारे सन्तोषजनक स्थिति पर पहुँचा सकें। सरकारी ऋण लेकर नया धन्धा खोलना और उसे सफलतापूर्वक चला सकना उतना सरल नहीं है जितना कि समझा जाता है। व्यवसाय के चढ़ाव-उतारों को समझना, मितव्ययता अपनाना और निर्माण कार्य को ग्राहक की पसंदगी का बनाना, सीधा काम नहीं है, जिसे हर कोई मेज पर बैठकर कर सके। जिन्हें इन परिस्थितियों में जाना हो उन्हें जनसम्पर्क के लिए इस स्तर की कुशलता चाहिए, जिससे जेब भी न कटे और सम्बन्ध भी मधुर बने रहें। अन्यथा अपने कर्मचारी या साझीदार ही दुश्मन हो जाते हैं और उलटे हानि पहुँचाने पर उतारू हो जाते हैं।

स्वभाव की मधुरता, सज्जनता जनसम्पर्क के लिए आवश्यक है। पर वह ऐसी भावुक न हो जिसमें पग-पग पर गाँठ कटानी पड़े। फिर बाजार के चढ़ाव-उतारों को समय की माँग-क्वालिटी आदि को भी देखना पड़ता है। यदि व्यवसाय क्षेत्र में प्रवेश करने वाले छात्र इन गुणों के अभ्यस्त न हुए और मितव्ययता बरतने में गड़बड़ा गए तो बात बेकारी से भी बुरी पड़ती है। बेकारी में तो घर की रोटी ही खर्च होती है, घाटे के व्यवसाय में तो हल-बैल भी नीलाम हो जाते हैं।

सुव्यवस्थित व्यक्तित्वों की हर जगह माँग है। नौकरी सरकारी हो या गैर सरकारी, प्रतिभावान तेजी से आगे बढ़ते हैं। प्रतिभा का अर्थ बातूनीपन या चालाकी नहीं है वरन् वह दक्षता है, जो उपयुक्त वातावरण में कर्म-कौशल से कमाई जाती है। इसके अभाव में आदमी बेवकूफ ही कहलाता रहता है और तिरस्कृत स्थिति में समय गुजारता है। इस पर भी जब साथियों की तुलना में उन्नति न होने की बात मन में खटकती है तो जिस स्थिति में गुजारा हो रहा था वह भी अखरने और जी जलाने लगता है। प्राइवेट सैक्टर की नौकरियों में तो अपेक्षाकृत अधिक अनुशासन और क्रिया-कौशल चाहिए अन्यथा उनमें भी पैर नहीं टिकते।

कई बार गँवारू हिसाब लगाने वाले सोचते हैं कि जितना पैसा और समय पढ़ाई में गँवाया गया, उतना ही बैंक में कर दिया होता या खेत खरीद लिया होता तो लड़का नफे में रहता। बिना पढ़ा रहता तो क्या ? मन में खिन्न और दूसरों के सामने लज्जित होने की नौबत तो न आती। जब लोग यहाँ तक सोचने लगें तो समझना चाहिए कि पढ़ाई में कहीं खोट है।

वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि पढ़ाई पूरी करने के उपरान्त विद्यार्थी सब ओर अपने लिए द्वार खुले देखे। उसे यह अनुभव न हो कि सरकारी नौकरी न मिले तो उसके भाग्य फूट गये। हाट-बाजारों में घूमकर देखते हैं तो प्रतीत होता है कि लाखों व्यक्ति गैर सरकारी नौकरी करते हैं और मालिकों के प्राणप्रिय बनकर रहते हैं। मालिक अपने भाग्य को सराहते हैं कि ऐसा काम का आदमी हाथ लग गया, जिसने सारा कारोबार सँभालकर हमें निश्चिन्त कर दिया। उनका वेतन भी बढ़ता रहता है और समय-समय पर उपहार भी मिलते रहते हैं। इसके विपरीत ऐसे लोग भी होते हैं, जिनके हटाने या हट जाने का अवसर तलाशा जाता रहता है। सीधा-सा कारण एक ही है—व्यक्तित्व की अनगढ़ता, कुशलता, प्रवीणता और प्रामाणिकता का न होना।

ढेरों लोग छोटे-मोटे फेरी लगाने जैसे छुटपुट काम हाथ में लेते हैं और ग्राहकों को आकर्षित करके अच्छी कमाई कर लेते हैं। जबकि आत्महीनता से ग्रसित झेंपू लोगों की जबान तक नहीं खुलती और घर उदास मुँह लेकर वापस चले आते हैं।

प्रतिभा की कीमत शिक्षा के समतुल्य ही है। दोनों का संयोग बैठना चाहिए और विद्यार्थी में दोनों गुण विकसित होने चाहिए। इस सुयोग के सहारे हर स्थिति में हँसते-हँसते अपना समय काट लेने की उपलब्धि हाथ लगती है। दक्षता के समतुल्य ही है प्रामाणिकता। ऐसे लोग ढूँढ़े नहीं मिलते जिन्हें दैनन्दिन जीवन में काम आने वाली समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी से सम्पन्न समझा जा सके।

व्यक्तिगत चरित्र में आर्थिक ईमानदारी, नारी के प्रति निश्छल दृष्टि और काम की जिम्मेदारी सँभालने की बात आती है। गैर जिम्मेदारी, मनचले, फिजूल खर्च और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम से जी चुराने वाले लोग कब, कहाँ क्या कर बैठें, इसका कोई भरोसा नहीं रहता। ऐसे लोगों से आशंका बनी रहती है और अविश्वास छाया रहता है। फिर उन्हें कौन ऐसा काम सौंपेगा जिसमें गड़बड़ी होने से चौपट होने में कमी न रहे। ऐसे लोग घर के भेद चोरों को बता सकते हैं और आमदनी में हिस्सेदार हो सकते हैं। ऐसी गन्ध आने पर कोई उन्हें कौड़ी मोल भी नहीं अपनाना चाहता, चाहे अभाव में काम कितना ही हर्ज होता रहे।

धोखाधड़ी चाहे छोटी ही क्यों न हो, बदनामी कराने में ढोल का काम करती है और ऐसा व्यक्ति अपने लिए कहीं भी जगह नहीं बना पाता। बाहर वालों की तरह वह घर वालों के लिए भी भार बना रहता है। परिवार में कोई नहीं सोचता कि यह अपना है या पराया। घर में से पैसा चुरा सकता है। सीखे गए काम को न करने के लिए बहाना बना सकता है। कहीं से कर्ज ला सकता है।

जिसका कोई सहयोगी, समर्थक, प्रशंसक नहीं, वह मात्र अपने बलबूते कोई बड़े काम करने में बड़ी सफलता पाने में समर्थ नहीं हो सकता। किसी के पास कितनी ही विद्या, साधन-सम्पदा क्यों न हों पर बिना स्नेह, समर्थन, सहयोग पाए कोई ऊँचा चढ़ने, आगे बढ़ने, प्रसन्न रहने की स्थिति में नहीं रह पाता। ऐसी दशा में उसे जीवन में कोई बड़ा अभाव खटकता रहता है। अपने ऊपर या साथियों के ऊपर खीज आती रहती है। यह नैतिकता का अभाव ही है, जो मनुष्य को अपनी तथा दूसरों की दृष्टि में छोटा, अभागा ही बना रहता है।

नैतिकता का सामान्य अर्थ ईमानदारी समझा जाता है अथवा कामुकता की मर्यादाओं का सही रूप में पालन न करना। यह नैतिकता के विशाल अर्थ का एक बहुत छोटा अंश है। वस्तुतः उसका तात्पर्य है समग्र रूप में व्यक्तित्व का विकास। ऐसा विकास जिसमें नागरिकता, सामाजिकता एवं प्रगतिशीलता के सभी गुणों का समावेश हो।

यदि शिक्षा के साथ आजीविका का सम्बन्ध जोड़ा जाय तो भी उसकी प्राप्ति के लिए पुस्तकीय-ज्ञान पर्याप्त नहीं। यदि संयोगवश उपयुक्त अवसर मिल भी जाय तो भी उनका निर्वाह करते रहना और सम्बद्ध व्यक्तियों को सन्तुष्ट करके प्रगति के अवसर प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं होता। उपेक्षा, अन्यमनस्कता, रूखापन—यह भी सामाजिक दृष्टि से ऐसे दुर्गुण हैं, जो मनुष्य को दूसरों का मित्र, कृपापात्र नहीं बनने देते। चापलूसी या अक्खड़पन से कई बार कुछ काम निकाल तो ले जाते हैं; पर उनमें स्थायित्व नहीं होता। प्रगतिपथ का द्वार खोलने में शिक्षा और कौशल का कितना ही महत्त्व क्यों न हो, पर सबसे बड़ी योग्यता यह है कि साथियों को प्रोत्साहन देकर उन्हें योग्य कैसे बनाया जाय ? उन्हें बिना रुष्ट-खिन्न किए किस प्रकार अधिक मात्रा में काम लिया लिया जाय ? बड़े कामों की जिम्मेदारी इसी प्रकार पूरी होती है। इसमें सद्गुणों की शृंखला ही प्रधान भूमिका निभाती है।

यदि अपने जिम्मे छोटा काम है और स्वयं काम करने तक ही जिम्मेदारी सीमित है, तो भी अपने 'बास' को अनुकूल रखने के लिए चापलूसी से नहीं, जिम्मेदारी अच्छी तरह निबाहने से काम चलता है। अच्छा, जल्दी और साफ-सुथरा काम कर दिखाना अपने वरिष्ठों का अनुग्रह और साथियों का सम्मान पाने का अच्छा तरीका है।

सद्गुणों की सम्पदा जीवन के हर क्षेत्र में काम आती है। अपने मन को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने में सद्गुणों से बढ़कर और कोई सम्पदा नहीं हो सकती। परिवार के सभी सदस्यों के साथ हिल-मिलकर रहने और हँसते-हँसाते जीने का अवसर मिलता है। व्यवसायी होने पर ग्राहकों या विक्रेताओं पर सज्जनता की गहरी छाप पड़ती है और वे एक बार सम्पर्क बनाकर बार-बार नहीं तोड़ते। यही बात सेवा क्षेत्र में है। जिसका व्यक्तित्व सज्जनता से भरा है, उनके साथ काम करने वाले कर्मचारी अन्यत्र अधिक लाभ दीखने पर भी साथ नहीं छोड़ते और यदि अपना सम्पर्क किसी श्रेष्ठ सज्जन के साथ बँध गया है, तो उससे मिलने वाली प्रसन्नता का तथा सत्सम्पर्क से बढ़ने वाली योग्यता का मोह छोड़े नहीं छूटता। जो व्यक्ति जिस क्षेत्र में लम्बे समय तक पैर जमाए रहता है, वह उसमें विशेषज्ञ न सही, अनुभवी तो माना ही जाता है। उसका परामर्श प्राप्त करने के लिए अनेकों आगे पीछे फिरते हैं। वरिष्ठता का, प्रतिष्ठा का इससे बड़ा आधार और कोई हो नहीं सकता। यह लाभ निजी वैभव का उपयोग करने वाले धनाध्यक्ष या पदाधिकारी भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिस नैतिकता का अर्थ आज बुरी तरह अखरता है उसे दूसरे शब्दों में प्रामाणिकता और प्रखरता ही कहना चाहिए। मात्र ईमानदारी और सज्जनता की सीमा तक नैतिकता को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। चतुर लोग भी इस प्रयोजन की पूर्ति नहीं करते। जिस नैतिकता का शिक्षा के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध जुड़ा होना चाहिए, उसे एक शब्द में 'व्यक्तित्व का समग्र विकास-परिष्कार' ही कहना चाहिए।

शिक्षा की सार्थकता तभी है, जब वह शिक्षार्थी को मानवी गरिमा के अनुरूप सत्प्रवृत्तियों से अभ्यस्त करा सकें क्योंकि उसी के आधार पर सम्बद्ध कार्यों में सफलता मिलती है। तीक्ष्ण बुद्धि का होना न होना संयोग की बात है। वह किसी में जन्मजात रूप से होती है, किसी में परिश्रम करने पर भी थोड़ी मात्रा में बढ़ पाती है। किन्तु चिन्तन और चरित्र में सत्प्रवृत्तियों का समावेश होना, यह पूरी तरह शिक्षण का विषय है। जिन्हें ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत-शिक्षा नहीं मिल पाती, वे उजड्ड, गँवार स्तर के पिछड़े हुए ही रह जाते हैं। इस स्थिति में कोई अपने बालकों को नहीं छोड़ना चाहता। यही कारण है कि शिक्षा को महत्त्व दिया जाता है और उसे उपलब्ध करने के लिए हर समझदार व्यक्ति सामर्थ्य भर प्रयत्न करता है। यदि आजीविका ही शिक्षा का उद्देश्य रहा होता तो जिनके घर में साधन हैं या पैतृक व्यवसाय हैं, वे अपने बच्चों को पढ़ने का श्रम करने के लिए क्यों बाधित करते और क्यों उनका समय तथा अपना धन गँवाते ? जितना पैसा उच्च शिक्षा में खर्च होता है, जितना समय बच्चों का लगता है। उसका हिसाब जोड़ने पर प्रतीत होता है कि इस संदर्भ में जो खर्च हुआ, उसे किसी बैंक में जमा कर दिया जाता तो ब्याज से घर बैठे उतना मिल सकता था, जितना कि आमतौर से वेतनभोगी को मिलता है।

शिक्षा का सीधा अर्थ सुसंस्कारिता का प्रशिक्षण है इसे नैतिकता, सामाजिकता, सज्जनता, प्रामाणिकता आदि किसी भी नाम से पुकारा जाना जा सकता है।

आत्मिक प्रगति के लिए— उत्कृष्ट शिक्षा की आवश्यकता

हमारे जीवनयापन की क्रियाओं में पाप का पुट प्रवेश न करने पावे—इस सावधानी के लिए ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता है। ज्ञान से दृष्टिकोण परिमार्जित होता है, विचार शक्ति बढ़ती है और युक्तायुक्त निर्णय की क्षमता प्राप्त होती है। क्या पाप है, क्या पाप नहीं है, इसका ज्ञान जीवन एवं कर्म-दर्शन सम्बन्धी पुस्तकों से ही प्राप्त हो सकता है—और वे सद्ग्रन्थ हैं, वेद-शास्त्र, गीता, उपनिषद् रामायण आदि आध्यात्मिक एवं धार्मिक पुस्तकें इन आर्ष ग्रन्थों के अतिरिक्त लौकिक विद्वानों द्वारा लिखा हुआ, एक से एक बढ़कर नैतिक साहित्य भरा पड़ा है—योग्यता तथा युग के अनुसार उसका लाभ भी उठाया जा सकता है।

ज्ञान-गुण प्राप्त करने के लिए जिस वस्तु की प्रथम एवं प्रमुख आवश्यकता है, वह है—शिक्षा। शिक्षा ज्ञान की आधार भूमि है। जो अशिक्षित है, पढ़ा-लिखा नहीं है, वह किसी भी जीवन अथवा कर्म-दर्शन सम्बन्धी पुस्तक का अध्ययन किस प्रकार कर सकता है, किस प्रकार उनकी शिक्षाओं को समझ सकता है और किस प्रकार हृदयंगम कर सकता है ? उसके लिए तो ज्ञान से भरी पुस्तकें भी रद्दी कागज से अधिक कोई मूल्य न रखेंगी।

अनेक लोग कबीर, दादू, नानक, तुकाराम, रैयदास, नरसी यहाँ तक कि सुकरात, मुहम्मद और ईसा जैसे महात्माओं एवं महापुरुषों का उदाहरण देकर कह सकते हैं कि यह लोग शिक्षित न होने पर भी पूर्ण ज्ञानवान तथा आध्यात्मिक सत्पुरुष थे। इनका सम्पूर्ण जीवन आजीवन निष्पाप रहा और निश्चय ही इन्होंने आत्मा को बन्धन मुक्त कर मोक्ष पद पाया है। इससे सिद्ध होता है कि निष्पाप जीवन की सिद्धि के लिए शिक्षा अनिवार्य नहीं है। ऐसा कहने वाले यह भूल जाते हैं कि अनायास ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले महापुरुष अपने पूर्वजन्म के संस्कार साथ लेकर आते हैं।

एक ही शरीर में जीवन की इतिश्री नहीं हो जाती। इसका क्रम जन्म-जन्मान्तरों तक चला करता है और तब तक चलता रहता है, जब तक जीवात्मा पूर्ण निष्पाप होकर मुक्त नहीं हो जाती। अनायास ज्ञानज्ञों का उदाहरण देने वालों को विश्वास रखना चाहिए कि उक्त महात्माओं ने अपने पूर्व जन्मों में ज्ञान पाने के लिए अनथक पुरुषार्थ किया होता है। उसके इतने अनुपम एवं उर्वर बीज बोये होते हैं। अपने मन, मस्तिष्क एवं आत्मा को इतना उज्ज्वल बनाया होता है कि किसी समय भी पुनर्जीवन में आँख खोलते ही उनका संस्कार रूप में साथ आया हुआ ज्ञान खुल-खिलकर उनके आदर्श-व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित एवं मुखिरित हो उठता है। ज्ञान प्राप्ति का प्रारम्भिक चरण शिक्षा ही है। शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति ज्ञानवान नहीं बन सकता।

जीवन पद्धति को आध्यात्मिक मोड़ दिये बिना आत्मा के विकास की सम्भावनाएँ उज्ज्वल नहीं हो सकतीं। जीवन में आध्यात्मिक गुणों को—उदारता, त्याग, सदिच्छा, सहानुभूति, न्यायपरता, दयाशीलता आदि को जागृत करने का काम शिक्षा द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। शिक्षा मनुष्य को ज्ञानवान ही नहीं, शीलवान बनाकर निरामय मानवता के अलंकरणों द्वारा उसके चरित्र का शृंगार कर देती है। शिक्षा सम्पन्न व्यक्ति ही वह विवेक शिल्प सिद्ध कर सकता है, जिसके द्वारा गुण, कर्म एवं स्वभाव को वांछित रूप में गढ़ सकना सम्भव हो सकता है। अशिक्षित व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन, क्या बाह्य और क्या आन्तरिक, विकारों एवं विकृतियों से भरा हुआ ऊबड़-खाबड़ बना रहता है। अशिक्षित व्यक्ति न तो जीवन को साज-सँभालकर सकता है और न उसका उद्देश्य ही समझ सकता है।

अशिक्षित व्यक्ति जब सामान्य जीवन को साधारण परिस्थितियों तक का निर्वाह सफलता एवं कुशलतापूर्वक नहीं कर सकता, तब वह आत्मोद्धार के प्रवीणतापूर्ण प्रयत्नों को किस प्रकार कार्यान्वित कर सकता है वह आध्यात्मिक कर्म-कुशलता केवल शिक्षा के बल पर ही खोजी-पाई और प्रयोग की जा सकती है। जो अशिक्षित व्यक्ति एक पत्र पढ़वाने के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। जो यह नहीं समझ पाता कि जिस कागज पर उसने अँगूठा छापा है, उसमें क्या लिखा है, जिस मनीआर्डर को वह प्राप्त कर रहा है, उसमें कितने रुपये लिखे हैं, वह भला आत्मिक विकास के सूक्ष्म उपायों को क्या जान सकता है ? उसके लिए आत्मा, परमात्मा, प्रकृति-पुरुष,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोक्ष, मुक्ति, कर्म, अकर्म, पाप-पुण्य आदि की परिभाषाएँ ऐसी अनबूझ ही रहती हैं, जैसे किसी बालक के लिए पक्षियों का कलरव। वह केवल इतना ही अनुभव कर सकता है, यदि कर सके—यह कुछ है तो अच्छा किन्तु यह नहीं समझ सकता कि इन सबका अर्थ और उद्देश्य क्या है और क्या है उसके जीवन से सम्बन्ध।

पशु क्या है ? एक प्राणी। और मनुष्य—वह भी एक प्राणी है। एक चतुष्पद और दूसरा द्विपद। दोनों खाते-खेलते और एक से अनेकता सम्पादित करते हैं। दोनों भूख-प्यास अनुभव करते हैं और दोनो नींद से निमीलित होते हैं। दोनों स्वार्थ के लिए लड़ते-झगड़ते और दोनों ही समान रूप से अपने सामान्य हित-अनहित को जानते हैं। जैसे अन्य पशु-पक्षियों को दु:ख-सुख की अनुभूति होती है, उसी प्रकार मनुष्य को भी। जीवों के असंख्यों आकार-प्रकारों में से एक मनुष्याकार भी है। हाथ-पैर, नाक-कान, पेट-पीठ सम्बन्धी कायिक कौतूहल पशु और मनुष्य प्राणी के बीच किसी मूल एवं महत्त्वपूर्ण भेद की प्रवक्ता नहीं है।

संसार के अन्य प्राणियों से भिन्न मानव-प्राणी मनुष्य की यथार्थक संज्ञा का अधिकारी तब ही बनता है, जब वह प्रकृत प्रेरणाओं एवं प्रवृत्तियों का परिष्कार कर, आध्यात्मिक आलोक में उनका प्रयोग कर सकने की योग्यता विकसित कर लेता है। अन्यथा, अन्य प्राणियों और मानव प्राणी में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार जीव-जगत में किसी को गाय, बैल, घोड़ा, गधा, हाथी, हिरन आदि अभिधानों से सम्बोधित किया जाता है, उसी प्रकार इस द्विपदगामी को, मनुष्य को भी नर-पशु नाम से पुकारा जाता है।

अन्य जीव-जन्तुओं तथा मनुष्य के बीच जो मूल एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है, वह यह कि मनुष्य 'आत्मजीवी' है, जबकि अन्य जीव 'शरीरजीवी' होते हैं। उनकी सारी इच्छाएँ, अभिलाषाएँ एवं आवश्यकताएँ केवल शरीर तक ही सीमित रहती हैं, जबकि मनुष्य की अभिलाषाएँ आध्यात्मिक और आवश्यकताएँ आत्मिक स्तर तक जा पहुँची हैं। वह विवेक-बुद्धि अन्य प्राणियों में नहीं होती, जिसके प्रसाद से मनुष्य ने आत्मा को जाना-पहचाना और उसके उद्धार के लिए प्रयत्न पथ का प्रस्तुतन किया।

आत्मा की परिचायक इस विवेक, बुद्धि का विकास जड़तापूर्ण स्थिति में नहीं हो सकता। इसके लिए मनुष्य को साक्षर ही नहीं, शिक्षित होना होगा। अशिक्षा का अभिशाप पाप की प्रेरणा देकर मनुष्य जीवन का उद्देश्य ही नष्ट कर देता है। कर्माकर्म का युक्त ज्ञान न होने से अशिक्षित व्यक्ति की अधिकांश क्रियाएँ अँधकार की ओर ही ले जाने वाली सिद्ध होती हैं। जड़ताजन्य प्रेरणाओं में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विकार तथा ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ, अदय एवं अनाधिकारिता का विष व्याप्त रहता है। जिससे मनुष्य की आत्मा प्रबुद्ध होने के स्थान पर अधिकाधिक निश्चेष्ट होती जाती है। अन्धकार में चलने वाला व्यक्ति जिस प्रकार कदम-कदम पर ठोकर खाता चलता है, उसी प्रकार अन्तर में अज्ञान का अन्धकार लेकर चलने वाला अशिक्षित व्यक्ति संसार पथ पर अविस्खलित गति से नहीं चल सकता। प्रतिपद, पतन का भय उसे कभी भी आत्मोद्धार की दिशा में बढ़ने देगा, ऐसी आशा कर सकना सम्भव नहीं।

जो अशिक्षित है, अज्ञानी है और इस अभिशाप को मिटा डालने में रुचि नहीं रखता, उसे उस आत्मा का अमित्र ही कहा जायेगा। जो परमात्मा का पावन अंश है और शरीर साधन को सक्रिय रखने के लिए चेतना रूप से मनुष्य में इस उद्देश्य से स्थापित की गई है कि वह उसे जाने और उसके माध्यम से विश्व-ब्रह्मांड के कारण भूत परमात्मा को पहचानकर मुक्ति पद का अधिकारी बने।

जो आत्मा की जिज्ञासा नहीं करता और उसे मुक्त करने के प्रयत्नों की ओर से विमुख है, वह जन्म-जन्मान्तरों तक इस प्रकार ही दु:ख भोगता रहेगा, जिस प्रकार वर्तमान में भोग रहा है। ज्ञान के अतिरिक्त इस भ्रामक भव रोग की अन्य कोई औषधि नहीं, जिसकी प्राप्ति विद्या बल पर ही की जा सकती है।

लोक की सफलता और परलोक की संराधना के लिए शिक्षितों को ज्ञान और अशिक्षितों को शिक्षा की ओर अग्रसर होना ही चाहिए। परिस्थितवश जिन्हें शिक्षा का अवसर न हो, वे जिस प्रकार भी हो सके साक्षरता के अक्षत तो डाल ही लें। इससे उनके सूक्ष्म अन्त:करण में विद्या के बीज पड़ जाएँगे, जोकि संस्कार रूप में उनके साथ जाकर पुन: अथवा पुनरपि जन्म में पुष्पित एवं पल्लवित होकर ही रहेंगे।

शिक्षा ऐसी हो, जो समस्याएँ सुलझाए

शिक्षा विकसित राष्ट्र की एक अनिवार्य आवश्यकता है। लिखने और सिखाने के लिए बहुत कुछ किया जा रहा है। छात्रों और अध्यापकों की विशाल जनसंख्या इसी शिक्षा प्रयोग में लगी हुई है। शिक्षा नीति पर लम्बी-चौड़ी चर्चाएँ हो रही हैं, रिपोर्टें तैयार हो रही हैं, परन्तु क्या सीखा जाय और क्या सिखाया जाय; इसका अभी निर्धारण नहीं हो पा रहा है। विद्यार्थी से पूछा जाय तो वह कहेगा—पढ़ रहा हूँ, जो पढ़ाया जा रहा है। नौकरी के अतिरिक्त कुछ और भी प्रयोजन सम्भव है क्या ? यह उसने कभी सोचा ही नहीं। यदि अच्छी नौकरी न मिल सके तो फिर शिक्षार्थी को अपना परिश्रम निरर्थक गया ही लगेगा। अभिभावक इसे धन की बर्बादी के रूप में ही लेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापकों से उनके कार्य के बारे में पूछा गया, तो वे कहेंगे—'पढ़ाते हैं' इस पढ़ाने की व्यक्ति और समाज के लिए कितनी उपयोगिता है ? इस पर चिंतन करने का अवसर उन्हें भी नहीं मिला। केवल लिखने-पढ़ने, साहित्य सीख लेने से जीवन की समस्याओं को सुलझाने में कितना योगदान मिल सकता है ?

दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन और उपयोग-उपभोग करने की कला मानव जीवन की ऐसी आवश्यकता है, जो हर एक को सीखनी चाहिए। पढ़ाई में उसका समुचित स्थान होना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास में जिन सद्गुणों की आवश्यकता है उनका महत्त्व, स्वरूप और प्रयोग सिखाना अध्यापकों का उद्देश्य होना चाहिए। समाज की सुव्यवस्था के लिए व्यक्ति और समूह के पारस्परिक सम्बन्ध क्या हों ? दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर कैसे रहें ? इस प्रश्न को मात्र समाज विज्ञान की पुस्तकों द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता, बच्चों को इस सन्दर्भ में व्यावहारिक ज्ञान सिखलाना होगा। जीवन पुस्तकों की परिधि में सीमित नहीं है। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को पढ़ने-लिखने के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है। असली पढ़ाई वह है जो अभ्यास से अनुभव में आती है। जीवन क्षेत्र में उतरने पर प्रस्तुत आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के समाधान का व्यावहारिक ज्ञान ही कारगर हो सकता है। शिक्षा का उद्देश्य इसी प्रयोजन को पूरा करना होना चाहिए।

शरीर से निरन्तर काम लेना पड़ता है पर उसके क्रिया-कलाप संरक्षण, विकास और सुधार की जानकारी हर व्यक्ति को होनी ही चाहिए। बात-बात में डॉक्टर का दरवाजा खटखटाते रहा जाय और शरीर से सम्बन्धित बनाव-बिगाड़ के सम्बन्ध में अपरिचित रहा जाय तो समझना चाहिए कि शिक्षा का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग उपेक्षा के गर्त में डाल दिया गया। आहार-विहार के सिद्धान्तों से अपरिचित और स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन और रोग निवारण की विधि-व्यवस्था से अनजान व्यक्ति के बारे में यही कहा जा सकता है कि उसे शिक्षा के प्रथम चरण से भी परिचित नहीं कराया गया। ऐसे शिक्षार्थी विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी जीवन क्षेत्र में एक-एक प्रकार से अशिक्षित ही बने रहेंगे।

गृहस्थ बनकर मनुष्य को रहना पड़ता है। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त उसे परिवार का अंग ही बने रहना पड़ता है। कुटुम्ब को एक राष्ट्र ही कहना चाहिए। उसका संचालन राज्य शासन की तरह ही कुशलता, दूरदर्शिता और अनुभवशीलता की अपेक्षा करता है। अनाड़ी व्यक्ति के लिए परिवार, विग्रह का केन्द्र ही बनता है, जबकि सुनियोजित ढंग से व्यवस्थित किए जाने पर वही छोटा घर-परिवार हर्षोल्लास, उत्कर्ष और लोकहित का समर्थ माध्यम बन सकता है।

जिस घर-परिवार के साथ सम्बद्ध रहकर जीवनयापन करना है, उसकी पेचीदगियों को समझने और उन्हें पूरा करने की क्षमता हर व्यक्ति में होनी चाहिए। शिक्षा विधि-व्यवस्था में मानव जीवन पूर्ति के लिए समुचित स्थान होना चाहिए। आजीविका और पारिवारिक बजट का सन्तुलन, स्वच्छता, आहार की गुणशीलता नष्ट न होने देना, प्रजनन, शिशुपालन, दाम्पत्य सम्बन्ध, भाई-बहनों का तालमेल, बुजुर्गों की सुविधा, प्रतिष्ठा, आतिथि व परिजनों की दिनचर्या, विग्रहों का समाधान आदि अगणित विषय हैं, जिन्हें सही तरीके से न जानने के कारण पारिवारिक जीवन का सारा आनन्द-उल्लास चला जाता है और रुष्ट-असन्तुष्ट रहकर किसी प्रकार दिन कटते हैं। शिक्षा यदि पारिवारिक व्यवस्था और विकास का व्यावहारिक शिक्षण दे सकने में समर्थ न हो तो उसे अधूरी ही कहा जाएगा।

आजीविका उपार्जन के लिए नौकरी ही एकमात्र रास्ता खुला रहे यह लज्जा की बात है। नौकरी आपत्ति धर्म है। कोई मनुष्य अपना स्वावलम्बी जीवनक्रम न चला सके अथवा किसी बड़े सामाजिक उत्पादन से संलग्न न हो तो उसे नौकरी की जरूरत पड़नी चाहिए। समाज में वानप्रस्थ और संन्यास परम्परा समाप्त हो जाए। लोग निःस्वार्थ भाव से समाज सेवा करने की आवश्यकता को भूल बैठें तो उस अभाव की पूर्ति नौकरी से की जा सकती है। समाज का चौथा छोटा वर्ग जो शिक्षण, संरक्षण, अभिवर्द्धन के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रयोजनों को पूरा करने में असमर्थ, अयोग्य है उसे भी नौकरी चाहिए। इस तरह विशेष अवांछनीय परिस्थितियों के लिए विशेष अक्षम व्यक्तियों का तालमेल बिठाने के लिए नौकरी का व्यवसाय चल सकता है। इन दिनों बड़े उद्योगों और संयंत्रों के लिए एवं राज्य व्यवस्थाओं के लिए कुछ अधिक संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता भी हो सकती है। पर यह सब मिलाकर भी इन परिस्थितियों में भी थोड़े-से व्यक्तियों को ही खपाने का क्षेत्र है। प्रत्येक शिक्षित यदि नौकरी की ही आकांक्षा करे—हर छात्र के सामने नौकरी ही लक्ष्य हो तो उसे सार्वजनिक पौरुष का पतन ही कहना चाहिए। इसे शिक्षा प्रयोजन की भयानक असफलता कह सकते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का समाधान ही हो सकता है, होना भी चाहिए। इसी शृंखला में एक प्रश्न आजीविका उपार्जन का भी है उसे शिक्षा के अविच्छिन्न अंग के रूप में इस प्रकार जुड़ा रहना चाहिए कि पढ़ाई के उपरान्त अपनी रोटी स्वावलम्बी रीति से कमा सकने में समर्थ हो सके। इस देश का प्रधान व्यवसाय कृषि-पशुपालन है। प्रस्तुत भूमि में यदि, कुशलतापूर्वक कृषि की जाय, विधिवत पशुपालन किया जाय तो इस देश की तीन-चौथाई जनता सुरम्य वन के शान्तिमय, स्वास्थ्यवर्धक वातावरण का आनन्द लेते हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी आजीविका भली प्रकार उपार्जित कर सकती है। शिक्षा पद्धति से यदि कृषि और पशुपालन का काम-चलाऊ ज्ञान जोड़ दिया जाय और उसके व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी जाय तो शिक्षित व्यक्तियों को आजीविका उपार्जन के पुराने क्षेत्र में नया उपार्जन करके लाभ मिल सकता है।

गृह उद्योगों का दूसरा क्षेत्र है। यदि विदेशी मुद्रा उपार्जन और उसके बदले विलासिता की चीजें मँगाने का आग्रह छोड़ दिया जाय तो स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के लिए विकेन्द्रित गृह उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नीति ही अपनानी पड़ेगी। तब जापान की तरह गृह उद्योगों को स्थापित व विकसित करना पड़ेगा। गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले ऐसे छोटे कारखाने खड़े करने पड़ेंगे, जिनमें सभी को काम मिल सके और उस क्षेत्र की आवश्यकता पूर्ण हो सके। उत्पादन, संग्रह और विक्रय के लिए सहकारी समितियों का एक तन्त्र गृह उद्योगों के साथ-साथ खड़ा किया जा सकता है। कृषि और पशुपालन से बची हुई जनता को इस प्रयोजन में खपाया जा सकता है। इस तरह आज जो बेकारी की समस्या एक विभीषिका के रूप में सामने खड़ी है, उसका समाधान सुविकसित शिक्षा पद्धति द्वारा सहज ही सम्भव हो सकता है। गृह उद्योगों की सहकारी समितियों की सारी जानकारी यदि शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी हुई हो तो देश में न बेकारी दिखाई पड़े और न नौकरी के लिए लालायित रहने वाली परमुखापेक्षी परावलम्बी हेय मनोवृत्ति का कहीं दर्शन हो।

बड़े कारखानों ने गृह उद्योगों का मार्ग अवरुद्ध किया है। इन्हें सीमित और नियन्त्रित किया जाना चाहिए। यह हजार को काम देकर लाख को बेकार बनाते हैं। लाभ से चन्द लोगों की जेबें भरते हैं। विदेश से केवल मशीनें आदि उत्पादन के लिए अनिवार्य साधन मँगाएँ जाएँ और उसके बदले में ही कुछ चीजें भेजी जाएँ।। विलासिता की निरर्थक चीजें मँगाना, उनके लिए विदेशी मुद्रा उपार्जन के नाम पर बड़े कारखाने खड़े करना, सर्वथा गलत अर्थ-नीति है। इस प्रतिपादन को पूँजीपतियों का षड्यन्त्र कहा जा सकता है। जन स्तर पर इसका घोर विरोध होना चाहिए अन्यथा बेकारी की समस्या का हल निकल ही नहीं सकेगा।

सामाजिक कर्तव्य और उत्तरदायित्वों को हृदयंगम करना शिक्षा का उत्तरदायित्व है। अपने देश में संसार का इतिहास, संसार की राज्य प्रणालियाँ, जीवविज्ञान, पदार्थ-विज्ञान, रेखागणित आदि उन विषयों की पाठ्य पुस्तकें भरी पड़ी हैं जो सामान्य जीवन में कदाचित ही किसी के काम आती हैं। उन विषयों में विशिष्ट बनने वालों के विषय भले ही खुले रहें, पर सामान्य नागरिकों के लिए उपरोक्त विषयों को हल्की जानकारी के रूप में एक-दो किताबों में ही सीमित किया जा सकता है। शिक्षा का क्रम मातृभाषा में चलाया जा सकता है। इसमें छात्रों का तीन-चौथाई दिमाग जो निरर्थक भार वहन करता रहता है, बच जायेगा और उस बौद्धिक बचत को उस उपयोगी जानकारी में नियोजित किया जा सकता है। जिससे उन्हें समर्थ, सुविकसित और स्वावलम्बी जीवन जीने में सुयोग्य नागरिक बनने में सुविधा मिले।

सामाजिक ज्ञान इसी प्रकार की उपयोगी जानकारी में है। प्रजातन्त्र में वोट का कितना महत्त्व है, उसका उपयोग कैसे करना चाहिए इस पर एक पूरी पुस्तक रहनी चाहिए। नागरिक कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का दर्शन नहीं, व्यवहार सिखाना चाहिए। असामाजिकता, अनैतिकता, अनुशासनहीनता कितनी विघातक है, उसे अगणित उदाहरणों समेत समझाया जाना चाहिए। विवेचना-समीक्षा की योग्यता बढ़ाना नहीं, शिक्षा का प्रयोजन एक निर्धारित ढाँचे में ढालने का होना चाहिए। सरकार का काम है कि शिक्षा-प्रक्रिया की वर्तमान लुंज-पुंज प्रणाली को बदले—जनता का कर्तव्य है कि सार्थक शिक्षा प्रक्रिया की ऐसी माँग करे, जिसे पूरा करने के लिए शासन को सहमत होने के लिए विवश ही होना पड़े। यदि ऐसा न हो तो लोकसेवी संगठन इस दिशा में आगे आयें एवं अनौपचारिक शिक्षण की व्यवस्था बनायें। प्रज्ञा-प्रशिक्षण को इसी श्रेणी का एक प्रयास माना जा सकता।

जीवन का स्वरूप और उपयोग सिखा सकने वाली शिक्षा चाहिए

समुद्र, जैसा कुछ बाहर से दिखाई पड़ता है, वस्तुतः वैसा ही या उतना ही नहीं है। बाहर की सतह पर सिर्फ कुछ लहरें उठती या तैरती दीखती हैं। समतल लगता है। पर भीतर इसके सिवाय भी बहुत कुछ है। उसकी गहराई मीलों की है। प्रचण्ड जलधाराएँ बहती हैं। लाखों प्रकार के जलचर इतनी अधिक संख्या में हैं जितने इस धरती पर भी नहीं रहते। खनिज तथा दूसरे प्रकार के पदार्थ असीम मात्रा में भरे पड़े हैं। यही सब मिलकर समुद्र है, न कि उतना स्वल्प जितना कि खुली आँखों से सतह पर दीखता है।

जीवन समुद्र की तरह है। उसकी सतह छोटी है। खाना, कमाना, सोना, हँसना, रोना जैसे क्रियाकलापों की हलचल मात्र जीवन नहीं है। शरीर और परिवार मात्र तक वह सीमित नहीं है। जीवन की तह में अनेक प्रकार के सुख, दुःख, आनन्द, चिन्तन, आकर्षण, विग्रह, उद्वेग, अवरोध, भ्रम, भय भरे पड़े हैं। उसमें परस्पर विरोधी प्रचण्ड धाराएँ बहती हैं—जो एक-दूसरे से टकराती भी हैं और एक-दूसरे को उदरस्थ भी करती हैं। विस्फोट, कम्प और तूफान भी आते हैं और कई बार ऐसे अप्रत्याशित शक्ति चक्र उफन पड़ते हैं, जिनसे सागर ही नहीं धरती भी प्रभावित होती है। इस प्रकार का दूसरा समुद्र ही जीवन है। इसकी तुच्छता इतनी नहीं है, जितनी कि आमतौर से समझी जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जीवन के आरम्भ से ही यह सिखाया जाता है कि उसे क्लर्क, अफसर, व्यापारी, डॉक्टर आदि बनना है। इसी के लिए स्कूल उन्हें तैयार भी करते हैं। किन्तु कोई यह नहीं बताता कि जीवन का क्षेत्र कितना बड़ा और कितना गहरा है ? उसे ठीक तरह समझने और उपलब्धियों से लाभान्वित होने के लिये सोचने और करने का सही तरीका क्या होना चाहिए ?

स्कूली वातावरण, परीक्षाएँ पास कराने में व्यस्त हैं। मस्तिष्कीय कुशलता के आधार पर उन्हें श्रेणी प्रदान की जाती हैं। उपलब्ध परीक्षा अंकों के आधार पर उनके स्तर का वर्गीकरण किया जाता है, जिसे कम परीक्षांक मिले उसे अधिक नम्बर पाने वाले की तुलना में 'हेय' ठहराया जाता है। इस प्रकार ऊँच-नीच के आधार पर टिकी एक नये किस्म की जाति-बिरादरी खड़ी की जाती है, हो सकता है कि मस्तिष्क का एक अंश प्रकृति प्रदत्त ढंग से विकसित होने के कारण कोई छात्र अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हो किन्तु जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उसकी पहुँच बहुत ही भोंडी और गन्दी हो। क्या मनुष्य की श्रेष्ठता का श्रेय परीक्षांकों के आधार पर ही निर्धारित होना चाहिए ? जिन्हें कम नम्बर मिले हैं क्या उन्हें बुद्धू, निकम्मा, हेय स्तर का घोषित कर दिया जाना चाहिए ?

शिक्षा का प्रयोजन छात्रों को कमाऊ बना देना भर नहीं होना चाहिए। यदि इतनी ही बात है तो उन्हें इतना श्रम कराने और समय गँवाने की क्या आवश्यकता है। बाप-दादों के धन्धे में कुशलता बिना पढ़े या कम पढ़े होने पर भी प्राप्त की जा सकती है और नौकरियों में मिलने वाली राशि की अपेक्षा अधिक आमदनी की जा सकती है। शिक्षा का उद्देश्य इससे अधिक और विस्तृत होना चाहिए। यदि जानकारियाँ मस्तिष्क में ठूँसने का नाम ही शिक्षा है, तो उसका सरल तरीका यह है कि कोई साक्षर व्यक्ति 'विश्वकोष' उठाकर अपनी रुचि के विषयों का विवरण पढ़ने लगें तो उन्हें इतनी अधिक जानकारियाँ उपलब्ध हो जायेंगी, जितनी प्राध्यापकों को भी नहीं होतीं। इतनी सी बात के लिए कष्टसाध्य पढ़ाई में सिर क्यों खपाया जाय ? समय क्यों गँवाया जाय ?

शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए—यथार्थता का ज्ञान। दुनिया वैसी ही नहीं है जैसी कि हमें दिखाई देती है या बताई जाती है। व्यक्ति और समाज की समस्याएँ वही नहीं हैं। जिनकी चर्चा की जाती रहती है। यथार्थता की तली तक पहुँचने के लिए किस प्रकार की गोताखोरी की जानी चाहिए ? इसी कला का सिखाना शिक्षा का उद्देश्य है। भ्रान्तियों, विकृतियों और कुरीतियों के बन्धन से छुटकारा पाकर स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता प्राप्त करने और जीवन तथा विश्व का यथार्थ स्वरूप समझ सकने के योग्य तीक्ष्ण दृष्टि प्राप्त करना इसी का नाम मुक्ति है। तत्वदर्शियों के कथनानुसार इसी 'मुक्ति' को करतलगत बनाना शिक्षा का मूलभूत प्रयोजन है।

शिक्षा लक्ष्य 'मुक्ति' प्राप्त करने के लिए छात्र में वह साहस विकसित करना पड़ेगा कि वह विवेक और तथ्य का सहारा लेकर यथार्थता की तह तक पहुँच सके। दादी क्या कहेगी ? लोग क्या कहेंगे ? पुस्तकों में क्या लिखा है ? शिक्षकों ने क्या समझाया है ? लोग क्या सोचते और क्या करते हैं ? इन सब जंजालों के आवरण चीरकर जो लोग सत्य को समझने और स्वीकार करने को तत्पर हो सकें, ऐसी ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्रसुप्ति से विरत कर सक्रिय जागरण में संलग्न करना ही विद्या का मूलभूत उद्देश्य है। यदि हमें ऐसा कुछ सीखने को नहीं मिलता तो शिक्षा कैसे पूरी हुई ?

आज सर्वत्र भय का साम्राज्य है। हर व्यक्ति बेतरह डरा हुआ है। अवांछनीय और अनुचित को जानते-मानते हुए भी उसे अस्वीकार करने का साहस नहीं होता। अपनी मौलिकता मानो मनुष्य ने खो ही दी है। अपने पास मानो उसकी कोई समझ है-ही नहीं। जो कुछ कहा-बताया और कराया जा रहा है, उसे ही पालतू जानवर की तरह मानने और करने को तैयार रहने वाली मनोभूमि एक प्रकार से पराधीनता के पाश में जकड़ी हुई ही है। ऐसा बंधित और बाधित व्यक्ति शिक्षित कैसे कहा जाय ?

आज सर्वत्र भय, अविश्वास, सन्देह और आशंका का साम्राज्य व्याप्त है। एक देश दूसरे से डरता है, दूसरा आक्रमण न कर दे इसलिए आत्मरक्षा के लिए सैन्य शक्ति बढ़ाता है। उसे दूसरा पक्ष अपने ऊपर आक्रमण की तैयारी मानता है। इस प्रकार सन्देह और भय के कारण दोनों पक्ष युद्ध की तैयारी में जुटे रहते हैं और चिरपोषित भ्रान्तियाँ तनिक से कारण पर युद्ध के रूप में परिणित हो जाती हैं। राष्ट्रों के बीच फैला हुआ भय, सामाजिक, धार्मिक, जातीय एवं वैयक्तिक क्षेत्रों में भी व्याप्त है। चिन्तन में यथार्थता की मात्रा घटती और भ्रान्तियों का घटाटोप बढ़ता चला जा रहा है। भौतिक सुख को प्राथमिकता दी गई है और आत्मिक उल्लास को उस पर निछावर कर दिया गया है। कुमार्गगामिता पथ प्रदर्शन कर रही है। सत्पथ पर चल सकने का साहस कुण्ठित होता चला जा रहा है। मूढ़ता की परम्परा और धूर्तता की रीति-नीति अब बेहिचक स्वीकार की जाने लगी है। उस अवांछनीय ढर्रे के विरुद्ध सोच सकने की या बदलने का साहस कर सकने की क्षमता मानो समाप्त ही हो गई हो। यह दोष हमारी शिक्षा व्यवस्था का है।

अवयस्क बालकों को मिलने वाली स्कूली शिक्षा से लेकर बौद्धिक नेतृत्व करने वाले मनीषियों द्वारा जनसाधारण को दिए जाने वाले वयस्क प्रशिक्षण तक का आधार एक ही होना चाहिए कि मनुष्य की स्वतन्त्र चेतना को मूर्च्छना से विरत किया जाय। उसे इस योग्य बनाया जाय कि जीवन का स्वरूप समझ सके, समस्याओं की तह तक पहुँच सके, यथार्थ निर्णय कर सके—और औचित्य को अपनाने के लिए साहसपूर्वक अड़ सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्मशास्त्रों, राजनेता, मनीषी और कलाकारों के प्रतिपादन परस्पर विरोधों और भ्रान्तियों से भरे पड़े हैं। इनमें से किसे सही ठहराया जाय, किसे गलत कहा जाय अथवा इनमें कितना अंश उपयोगी कितना अनुपयोगी है ? इसका निर्णय स्वतन्त्र चिन्तन का विकास किए बिना और किसी तरह हो ही नहीं सकता। जब तक यथार्थता को समझा और अपनाया न जायगा तब तक मानव-जीवन की—विश्व-वसुधा की कुरूपता को हटाया ही नहीं जा सकता। यह संसार मानव-जीवन सुन्दर और सुखद बनाया गया है पर दुर्बुद्धि ही है, जिसने सब कुछ विकृत और दुःखद बनाकर रख दिया, इस विडम्बना से मुक्ति दिला सकने की क्षमता केवल स्वतन्त्र चिन्तन में ही है। शिक्षा वही है जो विवेक को जागृत कर सके। ढर्रे में घुसे हुए अनौचित्य को हिम्मत और निर्भयता के साथ स्वीकार कर सके।

माता-पिता, शिक्षक, धर्मशास्त्र, रीति-रिवाज, पड़ौसी, सम्बन्धी, नेता हमें सिखाते हैं और जिस रास्ते पर चलने के लिए विवश करते हैं आवश्यक नहीं कि वह उचित और यथार्थ हो। यदि हम आँखें बन्द करके किसी लकीर पर चलने के अभ्यासी रहेंगें तो अपनी आत्मा को खो बैठेंगे, एक अन्धे कैदी की तरह पराश्रित मात्र रह जायेंगे। बौद्धिक पराधीनता सबसे बुरे किस्म की गुलामी है। सच्चे शिक्षक वे हैं—सच्चे अभिभावक और हितैषी वे हैं, जो अपने प्रभाव और ज्ञान का उपयोग अपने प्रभाव क्षेत्र में स्वतन्त्र चेतना विकसित करने के लिए करते हैं, यदि कहीं कोई सच्चे अर्थ में 'विद्यालय' जीवित हो तो उसका लक्ष्य भी शिक्षार्थियों में स्वतन्त्र चेतना का विकास करना ही होगा।

पुरानी दुनिया अब टूट रही है। प्रचलित ढर्रे अब बिखरने ही वाले हैं। युद्धों से—दाव-पेचों से, अभाव दारिद्रय से—शोषण-उत्पीड़नों से—छल-प्रपंचों से आदमी आजिज आ गया है। सुविधा-साधनों की अभिवृद्धि के साथ साथ दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्तियों की बढ़ोत्तरी भी बेहिसाब हो रही है। जो चल रहा है उसे चलने दिया जाय तो आज का समय शोषण कल वीभत्स और नग्न रक्तपात के रूप में सामने आ खड़ा होगा और मानवी सभ्यता बेमौत मर जाएगी। उस स्थिति को बदले बिना और कोई चारा नहीं। नई दुनिया अगर न बनाई जा सकी तो इस बढ़ती हुई घुटन से मनुष्यता का दम घुट जाएगा।

नई दुनिया के निर्माण से पूर्व जीर्ण-शीर्ण खण्डहरों को धराशायी करना पड़ेगा। इसके लिए प्रचण्ड विद्रोह की आवश्यकता है। वह तब तक नहीं उभर सकता—जब तक स्वतन्त्र चिन्तन की गरिमा स्वीकार न की जाय और जो अवांछनीय है, उससे इन्कार करने का साहस उत्पन्न न किया जाय।

जीवन उसी का नाम है जो यथार्थ की तह तक पहुँच सके, उचित और अनुचित का सही निर्णय कर सके। स्वतन्त्र चिन्तन की जिसमें क्षमता हो और हर प्रकार के अवांछनीय दबावों को निर्भयतापूर्वक अस्वीकार कर सके, ऐसा जीवन ही उस विस्तार और आनन्द का उपभोग कर सकता है, जो उसे सहज-सम्पदा के रूप में उपलब्ध हुआ है।

सड़ी दुनिया की अन्त्येष्टि किए बिना और कोई चारा नहीं। सड़न को यथावत चलने दिया जाय तो उससे असह्य विपत्ति बढ़ेगी। नई दुनिया में ही मनुष्य जीवित रह सकेगा और विश्व का सौन्दर्य स्थिर रह सकेगा। ऐसा नवीन विश्व जीवन्त लोगों द्वारा ही विनिर्मित हो सकेगा। अस्तु, जीवन की गरिमा को समझा सकने वाली और उसे परिष्कृत कर सकने वाली समग्र शिक्षा की हमें व्यवस्था करनी ही होगी। इसके बिना प्रगति की समस्त सम्भावनाएँ अवरुद्ध ही पड़ी रहेंगी।

शिक्षा का स्वरूप निखरे और उद्देश्य स्पष्ट हो

शिक्षा वृद्धि के लाभ को अब अधिक अच्छी तरह समझाया और उसके लिए प्रयत्न भी किया जा रहा है। किन्तु उसके साथ वह तथ्य नहीं जुड़ पाए, जो शिक्षार्थी एवं उनके अभिभावकों के हित में भी प्राथमिकता पाने के योग्य थे।

मौलिक रूप से सोचने की बात यह है कि विशालकाय शिक्षा तन्त्र के संचालन में जो विपुल राशि खर्च होती है—लाखों को अध्यापन श्रम करना पड़ता है और करोड़ों बच्चों का श्रम, समय उस प्रयास में खर्च होता है उसे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खड़ा किया गया है। अभिभावक स्कूली शिक्षा के आधार पर जिस उज्ज्वल भविष्य की आशा से खर्च उठाते हैं, वह सार्थक होता है नहीं। इस कारखाने में ढलकर देश के लिए सुयोग्य, समर्थ, स्वावलम्बी और भावनाशील व्यक्तित्व विनिर्मित होते हैं या नहीं ? इन कसौटियों पर खरा सिद्ध होने के उपरान्त ही शिक्षातन्त्र अपनी सार्थकता सिद्ध करेगा। इससे कम में न उन करदाताओं को संतोष होगा, जो इस प्रयोजन के लिए भारी कर भार वहन करते हैं और न वे अभिभावक ही प्रसन्नता व्यक्त कर सकेंगे जिसके लिए उन्होंने लम्बे समय से बड़ी आशाएँ सँजोकर रखी थीं।

जो ढर्रा चल रहा है, जिस पर गाड़ी लम्बे समय तक लुढ़कती आ रही है, उसे उन दिनों गढ़ा गया था जब अँग्रेज जनता पर अँग्रेजी की गरिमा का आतंक जमाना चाहते थे और शासन-व्यवस्था चलाने के लिए कर्मचारी ढालना चाहते थे। उन्होंने अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए नीति निर्धारित की, साथ ही यह भी ध्यान रखा कि इस कारण कहीं ऐसी प्रतिभाएँ न उभरने लगें ? जो आगे चलकर उनके लिए सिर दर्द बनें। उन्हें व्यक्तित्व ढालने की तनिक भी अभिलाषा नहीं थी और उन्होंने शिक्षा में उन तत्त्वों का समावेश भी नहीं होने दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचना यह होगा कि प्रस्तुत स्कूली-कॉलेजी शिक्षा को प्राप्त करने के उपरान्त छात्र करें क्या ? अनेक रूढ़िवादी विचारों की भाँति यह भी एक अंध मान्यता दिमाग में जड़ जमा चुकी हैं कि हर पढ़े-लिखे को नौकरी करनी है। नौकरी भी नहीं, ठाठ-बाट और ऊपरी आमदनी वाली अफसरी। सोचने की बात यह है कि क्या यह कल्पना साकार हो सकती हैं क्या उतनी सीटें भी बढ़ती हैं। यदि नहीं तो जिनका तीर-तुक्का ठीक बैठ गया उन्हें सौभाग्यवान समझा जायेगा। शेष को बेकारी के कुचक्र में फँसना पड़ेगा और अपना खर्च आप चलाने की आवश्यकता पूर्ति के लिए नये ढाँचे में ढलना पड़ेगा। जो अपना चिरसंचित सपना साकार नहीं कर पाते उनके लिए वे ऐसे कृत्य करने पर उतारू होते हैं, जो उन्हें नहीं करने चाहिए।

पाठ्यक्रमों पर दृष्टि डाली जाय तो प्रतीत होता है कि उसमें संसार भर की आवश्यक-अनावश्यक जानकारियाँ भरी हुई हैं। उनमें से अधिकांश ऐसी हैं जिनका व्यावहारिक जीवन में कदाचित ही कुछ काम पड़ता है। देश-देशान्तरों के भूगोल, इतिहास, संविधान पढ़ने-पढ़ाने की अपेक्षा तो यह कहीं अधिक अच्छा था कि अपने ही देश-क्षेत्र और प्रान्तों की स्थिति, संस्कृति, भाषा आदि पढ़ाने को प्रमुखता दी जाती, जिससे आवश्यकतानुसार कहीं जाने-पढ़ने की स्थिति में वहाँ फिट होने में कोई काम-व्यवसाय चलाने में सहायता मिलती। विश्व-वार्ता को संक्षिप्त कहानियों की तरह किन्हीं एक दो पुस्तकों में सकोड़ा जा सकता था। रेखागणित, बीजगणित आदि में प्रवीणता प्राप्त करने का कठोर परिश्रम उन्हें करना चाहिए, जिन्होंने अपना कार्यक्षेत्र उस प्रकार का चुना हो। रटने में घोर परिश्रम करने, उपयोगी प्रतीत न होने पर मन न लगने, फेल होने और उससे बचने के लिए उद्धत तरीकों से पास होने का प्रयत्न चलने के प्रधान कारणों में से एक यह है कि अपरिपक्व बुद्धि के बालक भी यह नहीं समझ पाते कि इस सब की आखिर कब, किस निमित्त आवश्यकता पड़ेगी। इसमें शिक्षा नीति-निर्धारणकर्ताओं को जनसाधारण की अपेक्षा अधिक गम्भीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि शिक्षा देने और पाने में जो श्रम या धन खर्च होता है, उसकी सार्थकता सिद्ध हो सके।

निश्चित रूप से हर शिक्षित को नौकरी नहीं मिल सकती। ऐसी दशा में हर अभिभावक को, बच्चों को स्कूल भेजने के साथ-साथ यह सोचना चाहिए कि आजीविका की दृष्टि से नौकरी के अतिरिक्त क्या विकल्प हो सकता है ? जो विकल्प परिस्थिति के अनुरूप हो उसे अपनाया जाना चाहिए और इस प्रकार के स्कूलों में दाखिला दिलाना चाहिए जो न केवल सामान्य ज्ञान उपलब्ध कराते हों वरन् साथ ही उन व्यवसायों, शिल्प, उद्योगों का भी अभ्यास कराना चाहिए, जिनके आधार पर पढ़ाई पूरी करने पर किसी क्षेत्र की विशेष योग्यता प्राप्त कर सकें और उस आधार पर स्वावलम्बी बन सकें।

यदि शिक्षा को आजीविका उन्मुख बनाना है तो देश की परिस्थितियों को देखते हुए यहाँ कुटीर उद्योग ही सफल हो सकते हैं। उनमें कृषि, पशुपालन, वस्त्र-उद्योग, लुहार-बढ़ई जैसा बहुत खपत वाले उद्योग ही प्राथमिकता पा सकते हैं। टूट-फूट की मरम्मत, ढलाई-दस्तकारी भी प्रश्रय प्राप्त कर सकते हैं। इनके ऐसे विद्यालय हों जिनका प्रशिक्षण छोटे पैमाने पर काम करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

पृथक-पृथक प्रयोजनों के विद्यालय फासले पर हों तो भी हर्ज नहीं। बोर्डिंग की व्यवस्था होने पर आठवीं कक्षा तक पढ़े हुए छात्र वहाँ आसानी से पहुँच सकते हैं। इनके लिए दो वर्ष की पढ़ाई एक वर्ष में प्रवीण होने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। ऐसे कारीगर निजी या दूसरों द्वारा संचालित उद्योगों में आसानी से खप सकते हैं और गरीबी, बेकारी दूर करने में शिक्षा समुचित रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है।

प्रथम कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक ही पढ़ाई में उन तत्त्वों का समावेश है, जो व्यावहारिक जीवन में हर किसी के काम आते हैं। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को नैतिक शिक्षा एवं चरित्रनिष्ठा का प्रमुख अंग माना जाय। इन सद्गुणों के लाभ तर्क, तथ्य, प्रमाण एवं उदाहरणों सहित इस प्रकार समझाए जाएँ, जिससे शिक्षार्थी उन्हें अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने लगें। स्कूल का वातावरण भी ऐसा हो, जिसमें सादगी, सज्जनता, उदारता, सहकारिता, श्रमशीलता, मितव्ययता जैसे सद्गुणों का शानदार प्रतिफल छात्रों के गले उतर सके। उन्हें सफाई, स्वास्थ्य रक्षा, मानसिक सन्तुलन, परिवार संचालन, समाज व्यवहार जैसे विषयों को भी पाठ्यक्रम के साथ इस प्रकार गूँथा जाय, जिससे भाषा, गणित, इतिहास आदि की जानकारी प्राप्त करते हुए जीवन विकास की दिशाधारा से भी अवगत होता रहे।

समाज में अनेक जटिलताएँ और दुष्प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। नशेबाजी, जातिगत ऊँच-नीच, खर्चीली शादियाँ, भिक्षा व्यवसाय, आलस्य-प्रमाद की छूत एक से दूसरे को लगती है। हमारे पाठ्यक्रमों में आठवीं कक्षा तक इतनी जानकारियों का समावेश होना चाहिए कि शिक्षा प्राप्त व्यक्ति इन विपन्नताओं से स्वयं बच सके और अपने परिचितों को बचा सके। आजीविका उपार्जन की तरह ही यह व्यवहार कुशलता भी नितान्त आवश्यक है, उनकी पूर्ति हमारे शिक्षा संस्थानों को करनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोकमानस को परिष्कृत कर सकने वाली शिक्षा चाहिए

प्रौढ़ शिक्षा की उपयोगिता-आवश्यकता बालशिक्षा से किसी भी प्रकार कम नहीं। शिक्षा आहार की ही तरह हर आयु के व्यक्ति के लिए आवश्यक है। छोटी आयु में पढ़ना न बन पड़ा तो उसे बड़ी आयु में पूरा करना चाहिए। सामान्य क्रम में बालकों को पढ़ाने का प्रबन्ध बड़े करते हैं पर विशेष परिस्थितियों में छोटों को भी बड़ों को पढ़ाने की व्यवस्था करनी चाहिए। बड़े छोटों को गोदी में उठाते हैं यह सही है किन्तु रोगी या असमर्थ होने पर छोटे भी बड़ों को पीठ पर लादकर चल सकते हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। शिक्षितों को अपनी समर्थता का अनुदान अशिक्षितों के लिए उदारतापूर्वक अर्पण करना चाहिए। भले ही वे आयु की दृष्टि से बड़े ही क्यों न हों ?

साक्षरता अनिवार्य है। उसके बिना विद्याध्ययन का, विचार-प्रेषण का क्रम ही नहीं बनता। पैर न हों तो चलना कैसा? अशिक्षितों के लिए इतना ही सम्भव है कि पूछने-बताने के आधार पर समीपवर्ती लोगों से जो औंधा-सीधा हस्तगत हो सके, उसी से काम चलाएँ। साक्षरता की मंजिल पूरी कर लेने पर यह सम्भव है कि दूरवर्ती या दिवंगत विज्ञजनों के बहुमूल्य परामर्श का लाभ घर बैठे एवं सुविधा के समय पर यथेष्ट मात्रा में, अभीष्ट विषयों पर प्राप्त करते रह सकें। अध्ययन के आधार पर यह सम्भव हो सकता है। शर्त यही है कि वह अध्ययन मनोविनोद के लिए अस्त-व्यस्त या निरुद्देश्य रूप से न किया गया हो।

अध्यापक द्वारा शिक्षण दिया गया है या स्वेच्छापूर्वक उनका चयन किया गया है। यह भिन्नता बालकों और वयस्कों के बीच पाई जाती है। बालकों को अध्यापकों की सहायता आवश्यक होती है, जबकि वयस्क उस कार्य को पुस्तकों के द्वारा स्वयमेव सम्पन्न कर लेते हैं। इतने पर भी शिक्षा का कुछ ऊँचा उद्देश्य तो होना ही चाहिए। नौकरी मिलने या अन्य स्रोतों से आजीविका कमाने में शिक्षा से सहायता भले ही मिले पर उसका लक्ष्य इतनी छोटी परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता। जीवन का कुछ लक्ष्य है। वह ऐसे ही समय गुजारने के लिए नहीं है। इसी प्रकार शिक्षा मात्र पुस्तकों के पृष्ठ उलटकर चित्र-विचित्र जानकारियाँ प्राप्त करते रहने भर के लिए नहीं है। उसका निर्धारण किसी बड़े उद्देश्य के लिए न किया गया होता, तो उसे उतनी प्रशस्ति न मिलती। मात्र सुविधा-सम्वर्द्धन भर के लिए उसका नगण्य-सा उपयोग माना जाता।

शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए विश्व के महान दार्शनिकों ने जो अभिमत व्यक्त किए हैं, वे विचारणीय हैं। इन प्रतिपादनों की यथार्थता इसीलिए भी सिद्ध होती है कि मानवी गरिमा को शिक्षा के साथ अविच्छिन्न रूप से जोड़ा गया है। यह अक्षर ज्ञान की प्रशंसा नहीं है और न उस आधार पर एकत्रित किए जाने वाले सामान्य ज्ञान के साथ वह गरिमा जुड़ती है। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य जिस महानता को प्राप्त कर सकने में समर्थ होता है, उस लक्ष्य का समुचित समावेश रहने पर ही पठन-पाठन की साधना को सार्थक कहा जा सकता है अन्यथा वह भी एक व्यसन भर बनकर रह जायगा।

दार्शनिक प्लेटो कहते हैं—सर्वप्रथम यह निश्चय किया जाना चाहिए कि किसे क्या बनना है, कहाँ पहुँचना है ? लक्ष्य निश्चित करने के उपरान्त रास्ते की जानकारी तथा मंजिल तक पहुँचने की साधन-सामग्री का ऊहापोह होना चाहिए, इसका मार्गदर्शन शिक्षा द्वारा होता है। जिस प्रकार गन्तव्य का निर्धारण करने के उपरान्त चलना आरम्भ किया जाता है, उसी प्रकार विद्यालय में प्रवेश, अध्यापक का वरण एवं पाठ्यक्रम का चयन इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वे उद्देश्य पूर्ति में सहायक होते हैं या नहीं।

सन्त थॉमस एक्वीनस अपने समय के माने हुए धर्माध्यक्ष ही नहीं प्रख्यात शिक्षाशास्त्री भी रहे हैं। वे कहते थे—पढ़ने-पढ़ाने से पूर्व यह देखा जाना चाहिए कि मस्तिष्क और चरित्र को प्रभावित करने वाली इस प्रक्रिया में व्यक्ति की गरिमा और प्रतिभा निखारने वाले तत्त्वों का कितना समावेश है ? अध्ययन का विषय कुछ भी क्यों न हो ? उससे जानकारियाँ जो भी मिलती हों पर द्रष्टव्य यह है कि उसका रुझान किस ओर है ? यदि पाठ्यसामग्री में श्रेष्ठता अपनाने के लिए उत्साह उत्पन्न करने की क्षमता विद्यमान है तो ही उसे ग्राह्य माना जाना चाहिए। भोजन करते समय उसके गुणों की जानकारी रखी जाती है। स्वादिष्ट होने पर भी कोई विष मिश्रित आहार उदरस्थ नहीं करता। उसी प्रकार पुस्तकें आकर्षक या उत्तेजक होते हुए भी यदि वे उठाने के स्थान पर गिराने की ओर इंगित करती हैं तो उन्हें अपनाने की अपेक्षा न पढ़ना अच्छा है।

जान लौके ने पठन-पाठन की दिशा में हर व्यक्ति को प्रोत्साहित किया है किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि उस क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व यह देख लेना चाहिए कि उस आधार पर दृष्टिकोण में विशालता और व्यवहार में शालीनता की अभिवृद्धि हो सकेगी या नहीं। बिना पूछे-बताए किसी भी रास्ते पर, किसी भी दिशा में चल पड़ने की भूल कोई समझदार आदमी नहीं करता। इसी प्रकार किसी भी स्कूल में, किसी भी पाठ्यक्रम को पढ़ने लगना और यह न देखना कि परिश्रम की परिणति क्या होगी, भूल है। रास्ता भूलने वाले समय और श्रम गँवाते हैं और थकान, निराशा ही हाथ लगती है। इसी प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्देश्यहीन या हेय उद्देश्य वाली शिक्षा ग्रहण करने वाले भी अपना परिश्रम निरर्थक गँवाते और पश्चाताप करते हैं।

जीन जैकम रूसो का कथन है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तब पूरा होता है, जब उससे प्रभावित व्यक्ति पूर्वाग्रह, अभ्यास और वातावरण का विश्लेषण करते हुए तथ्यों को समझने और श्रेयस्कर को अपनाने वाले विवेक को उपलब्ध कर सके।

प्रिंस क्रोपाटकिन ने लिखा है कि शिक्षा का जितना दबाव व्यक्ति को सज्जन बनाने पर पड़े, उससे भी अधिक उसका रुझान शिक्षार्थी को समाजनिष्ठ बनाने की दिशा में होना चाहिए। सज्जनता अच्छी बात है पर यदि वह वैयक्तिक विशेषता मात्र बनकर रह जाय, समाज के सुधार या अभ्युदय में कोई योगदान न करे, तो समझना चाहिए कि वह सन्ध्याकाल की लालिमा जैसी शोभायमान तो रही पर उषा जैसी स्फुरणा का आभास न दे सकी।

'फादर ऑफ अमेरिकन पब्लिक एजुकेशन' समझे जाने वाले हेरिसमान ने लिखा है—"शिक्षा सर्वथा सरकार पर निर्भर नहीं रहनी चाहिए। उसे बहुमुखी बनाने में जनता का सीधा हस्तक्षेप भी रहना चाहिए। हर नागरिक को प्राथमिक शिक्षा देने की जिम्मेदारी सरकार उठाए। इसके उपरान्त सामयिक परिस्थिति और उभरती मनःस्थिति को उपयुक्त दिशा देने के लिए वैयक्तिक या सहकारी प्रयत्नों से ऐसे शिक्षा-संस्थान खड़े होने चाहिए, जो सर्वतोमुखी प्रगति के अनेकानेक द्वार खोल सकें और साधन जुटा सकें। जन आधार पर जब सिनेमाघर खुल सकते हैं और उनमें सम्मिलित होने के लिए भारी जन समुदाय समय और पैसा खर्च करके लगातार पहुँचता रह सकता है तो कोई कारण नहीं कि जनशिक्षा के लिए बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसी उपाय को न अपनाया जा सके।"

मार्टिन लूथर कहते थे—भावनात्मक उत्कर्ष ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है। चिन्तन दृष्टिकोण में आदर्शों का समावेश किए बिना किसी देश के नागरिक सच्चे अर्थों में समर्थ और सुयोग्य नहीं बन सकते। प्रतिभा का निखार महत्त्वाकांक्षा भड़काने से नहीं गरिमा की अनुभूति और वरिष्ठता की प्रतिस्पर्धा में उतरने-उतारने से होता है। शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए—छात्रों की वरिष्ठता का उत्तेजन और समाज के अभ्युदय में बढ़-चढ़कर योगदान देना। यह प्रयास बाल-शिक्षा के साथ आरम्भ तो हो पर उसे परिपक्व प्रौढ़ शिक्षा के साथ होना चाहिए। ऐसी विचारोत्तेजक शिक्षा का व्यापक प्रबन्ध किए बिना सुशिक्षा से लाभान्वित नहीं हुआ जा सकता ।

१९वीं शताब्दी के महान विचारक जान डीवे ने शिक्षा के दर्शन पर अनेकों प्रख्यात ग्रन्थ लिखे हैं। वे कहते थे—"स्कूली शिक्षा में समाजनिष्ठा की प्रमुखता रहे और उसका व्यवहार वहाँ सिखाया जाय जहाँ उन्हें शेष समय व्यतीत करना पड़ता है। परिवारों में यदि शालीनता का वातावरण हो तो सर्वोत्तम अन्यथा बच्चों को ऐसे छात्रावासों में रखा जाना चाहिए, जहाँ अध्यापक उनके दुलार और मार्गदर्शन में पूरी दिलचस्पी ले। यह अवधि होती तो अल्हड़पन की है पर स्वभाव और दृष्टिकोण को ढालने का यही सर्वोत्तम समय है। व्यक्तित्व ढालना सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है और उसके लिए विद्यालयों तथा छात्रावासों को मिल-जुलकर काम करना चाहिए।"

जर्मनी के शिक्षाविद वाल्फ गेंग राटके ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि बालक कम और धीरे-धीरे ग्रहण कर पाते हैं, जबकि प्रौढ़ किन्हीं विचारों को जल्दी और गहराई तक समझने में समर्थ होते हैं। इसलिए प्रौढ़ शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा से उनका तात्पर्य साक्षरता प्रसार से नहीं वरन् वयस्कों और सुशिक्षितों के लिए प्रस्तुत की गई वह व्यवस्था है, जिसके सहारे वे बचे हुए समय में अपनी रुचि एवं आवश्यकता सम्बन्धी विचारों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कर सकें। इसके लिए वे स्वतन्त्र पुस्तकालयों की स्थापना और उनमें बैठकर-रहकर अधिक अध्ययन कर सकने की सुविधा को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

जौन कामेनियस ने लिखा है—सात वर्ष तक की आयु तक शिक्षा देने की जिम्मेदारी अभिभावकों को विशेषतया माता को अपने संरक्षण में देनी चाहिए। इसके लिए उनके पास पर्याप्त समय, उत्साह और ज्ञान होना चाहिए। जो अभिभावक वैसा न कर सकें, बच्चे पैदा न करें। उत्पन्न करने के बाद उन्हें दुलार और संस्कार से वंचित रखना वैसा ही है जैसा अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध न करके उन्हें अपनी मौत मरने-जीने के लिए छोड़ देना।

शिक्षा क्षेत्र के मूर्धन्य सूत्र-संचालकों ने अनुभव किया है कि विश्व की प्रचलित शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन होना चाहिए। विभिन्न विषयों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए हल्के-फुल्के निबन्धों से काम चल सकता है। अधिक जोर उन प्रसंगों पर दिया जाना चाहिए जो व्यक्ति के निजी जीवन को सुसंस्कृत बनाते और लोक व्यवहार में सहकारिता एवं शालीनता का महत्त्व समझाते हैं। निजी जीवन के साथ इस प्रगतियुग में अनेकों समस्याएँ जुड़ी और आवश्यकताएँ बढ़ी हैं। उनका समाधान प्रस्तुत परिस्थितियों में किन उपायों द्वारा सही तरीके से सम्भव हो सकता है ? यही शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु होना चाहिए।

शिक्षा को स्वास्थ्य रक्षा की तरह ही महत्त्व मिलना चाहिए और उसके लिए सरकारी और गैर-सरकारी जागरूकता निरन्तर बढ़नी चाहिए। अस्वास्थ्यकर आहार को हटाने, नष्ट करने का जिस प्रकार प्रयत्न किया जाता है। उसी प्रकार बौद्धिक क्षेत्र की विकृतियाँ उत्पन्न करने वाली साहित्य, संगीत, अभिनय, चित्र तथा उन सभी माध्यमों से लोकमानस को बचाया जाना चाहिए, जो विकृतियाँ उत्पन्न करने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी होते हैं। निराकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं सम्वर्द्धन भी आवश्यक है। समाजहित की बात सोचने वालों में से प्रत्येक को यह प्रबन्ध करना चाहिए कि वे ज्ञान-प्रदान करने वाले हर माध्यम की श्रेष्ठता का समुचित समावेश करने के लिए प्रयत्नशील रहें। इस सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होने वाली वर्तमान कमी को जिस तरह सम्भव हो सके पूरी करें।

भारतीय जनता को प्रगति की शिक्षा देने के लिए न केवल विद्यालयों, प्रौढ़ शिक्षालयों की ही आवश्यकता है वरन् ऐसे लोकशिक्षकों की आवश्यकता है, जो पिछड़े चिन्तन, प्रतिगामी स्वभाव और अज्ञानजन्य अन्धविश्वासों, दुराग्रहों से समूचे समुदाय को छुटकारा दिला सकें। सामान्य जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए जिस नागरिकता, समाजनिष्ठा और नीतिमत्ता की नितान्त आवश्यकता है, उसे बालकों से लेकर वयोवृद्धों तक पहुँचाने का भारी उत्तरदायित्व समाज शिक्षकों को अपने कन्धों पर उठाना चाहिए।

शिक्षा के साथ उद्देश्य भी जुड़ा रहे

यों तो बच्चे की प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के विकास में माता-पिता एवं अध्यापक की प्रमुख भूमिका होती है पर बच्चे की प्रथम पाठशाला तो वास्तव में उसकी माता की गोद ही होती है। बच्चे की शिक्षा की नींव उसके माता-पिता ही डालते हैं। ऐसा कहा जाता है कि बच्चे अपने प्रथम दो वर्षों में ही जीवन की आधी शिक्षा प्राप्त करते हैं। माता-पिता अपने बच्चे के ज्ञान स्तर को उसकी प्रकृति एवं रुचि के अनुकूल स्नेह से बढ़ाते हैं।

जब बच्चा विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है। माता-पिता बच्चे के विकास का भार विद्यालय के शिक्षक पर छोड़ देते हैं। स्वयं अपनी ओर से कोई प्रयास नहीं करते तथा ऐसी कल्पना करने लगते हैं कि उनका बच्चा एक बड़ा अफसर या श्रेष्ठ प्रशासक किस प्रकार जल्द बने ?

विद्यालय में शिक्षा बच्चे की प्रकृति एवं रुचि के अनुकूल नहीं होती तो बच्चा पढ़ाई में रुचि नहीं लेता। ऐसा देखा जाता है कि बच्चे ने अपना प्रारम्भिक जीवन गाँव में बिताया पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर के किसी प्रतियोगिता वाले स्वतन्त्र विद्यालय में प्रवेश पाया। ऐसी परिस्थिति में बच्चा पाठ को अपनी रुचि एवं प्रकृति के अनुकूल न पाकर समुचित प्रगति नहीं प्राप्त कर पाता। विद्यालय की जिम्मेदारियाँ सँभाल नहीं पाता, परिणाम स्वरूप घबराकर भाग खड़ा होता है। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि समुचित प्रगति न देखकर बालक को कक्षोन्नति देने में शिक्षक किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। पिता भी कक्षोन्नति को सम्मान का विषय समझते हैं। जबकि कई बार बच्चे उसके योग्य नहीं होते। यदि कक्षोन्नति दी जाती है तो बच्चे के भार में वृद्धि हो जाने से प्रगति अवरुद्ध हो जाने की आशंका दृढ़ हो जाती है। बच्चे का भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होने लगता है।

ऐसी परिस्थिति में माता-पिता एवं अध्यापक को समन्वित रूप से सकारात्मक एवं रचनात्मक ढंग से बच्चे को समझाना चाहिए, जिसके बच्चा पुनः पूर्व कक्षा में ही पढ़ने के लिए तत्पर हो जाय।

माता-पिता को बच्चे के प्रति वैसा ही ध्यान रखना चाहिए जैसा बच्चे के विद्यालय में पढ़ने जाने के पूर्व था। बच्चे के विद्यालय जाने पर अभिभावक को अध्यापक से मिलते रहना चाहिए तथा समय-समय पर समुचित सुधार की सलाह देनी चाहिए। उसे सदैव इसकी जानकारी रखनी चाहिए कि विद्यालय में क्या पढ़ाया जा रहा है तथा लड़का कैसी प्रगति कर रहा है ? समय-समय पर अध्यापक से मिलकर बच्चे की प्रगति के सम्बन्ध में चर्चा करते रहना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे की प्रगति अबाधगति से होती रहेगी। बच्चा पढ़ाई में रुचि भी लेता रहेगा।

विद्यालय में मिले गृह कार्य की पूर्ति के लिए बच्चे को प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, बच्चे भी स्वाभाविक ही अपनी सफलता चाहते हैं। अब बच्चे विद्यालय से अरुचि प्रकट करें तो अभिभावक को बच्चों के अध्यापक से मिलना चाहिए तथा विचार-विमर्श करके समाधान निकाल लेना चाहिए।

याद रखना चाहिए कि प्रत्येक बच्चे में एक विशेष प्रकार की कुशलता एवं प्रतिभा जन्म से ही विद्यमान होती है, जिनका उपयोग वह जानना चाहता है। शिक्षक को उसकी मानसिकता के अनुकूल ही शिक्षा स्तर रखना बच्चे के लिए लाभप्रद है ताकि उस प्रतिभा का समुचित उपयोग हो सके।

बच्चे प्रशंसा, सम्मान तथा स्नेह के भूखे होते हैं। अतः उनकी भूलों पर उन्हें बेवकूफ नहीं कहा जाना चाहिए, डाँट-फटकार कर भयभीत नहीं करना चाहिए। बल्कि सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से उसे आगे बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भिक कक्षा में बच्चों की क्षमता एवं अभिरुचि के अनुकूल पाठों का समावेश लाभप्रद होगा।

बच्चे के समक्ष विद्यालय की आलोचना नहीं करनी चाहिए क्योंकि इसका बच्चों के कोमल मानस पटल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बच्चों के उत्तर सीधे एवं सरल रूप में देना उचित है।

कॉलेजों की महँगी शिक्षा प्राप्त करने के लिए जो विद्यार्थी शहरों में नहीं जा सकते, उनके लिए एक मार्ग यह है कि घर का काम-धन्धा करते हुए, बचे हुए समय में पढ़ाई करें और पत्राचार, शिक्षा की नई पद्धति से लाभ उठाएँ।

साक्षरता की संख्या बढ़ाने तथा शिक्षा के खर्चीले स्वरूप को कम करने के उद्देश्य से अब प्रत्येक राष्ट्र में पत्राचार शिक्षा पद्धति ओपेन यूनिवर्सिटी विकसित की जा रही है। इससे काम पर हों या बेकार, युवा हो अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्ध, सभी समान रूप से लाभान्वित हो रहे हैं। इसमें कम फीस लगती है तथा अन्य खर्चे भी अधिक नहीं पड़ते। अत: इससे सामान्यजन भी लाभ उठा रहे हैं। आज इंग्लैण्ड में ही लगभग ८०% छात्र-छात्राएँ ऐसे विद्यालयों से जुड़े हुए हैं। इन विद्यालयों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें छात्रों की हड़ताल असम्भव है, शिक्षकों की लम्बी संख्या का सुनियोजन जरूरी नहीं है।

पश्चिम जर्मनी, जापान, स्पेन, न्यूजीलैण्ड तथा पश्चिम एशिया के अनेकों राष्ट्रों में इसका व्यापक प्रचलन चल पड़ा है। पाकिस्तान में भी लगभग ३ लाख छात्र-छात्राएँ ऐसे विद्यालयों में अध्ययन कर रहे हैं। यूगोस्लाविया में पत्राचार विद्यालयों की स्थापना से लाखों श्रमिकों को अपनी योग्यता बढ़ाने का अवसर मिला है। भारत में भी इन विद्यालयों की स्थापना पर तेजी से अमल किया जा रहा है। फ्रांस सहित योरोप के ११ राष्ट्रों थाईलैण्ड तथा चीन में भी पत्राचार विद्यालयों की स्थापना तीव्रता पर है।

पत्राचार विद्यालयों में पत्राचार के माध्यम से शिक्षण के अतिरिक्त अब रेडियो, टैलेक्स, वीडियो, टी० वी० तथा सिनेमा को भी शिक्षण का माध्यम बनाने का प्रयास किया जा रहा है। निश्चित ही ये शिक्षा के प्रभावशाली माध्यम होते हैं, जिसका मानव मन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इनके सहारे शिक्षा को अत्यन्त सरल व प्रभावशाली बनाया जा सकेगा।

अब प्रत्येक छात्र और अभिभावक को यह तथ्य ध्यान में रखना होगा कि अफसर की ऊँचे वेतन वाली नौकरियाँ प्राप्त करना पढ़ाई का एकमात्र लक्ष्य नहीं रखा जाना चाहिए। आजीविका उपार्जन के लिए अपनी परिस्थितियों के अनुरूप कोई काम-धंधा करने की बात सोचनी चाहिए और समय रहते उसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

शिक्षा में सार्थकता भी हो

शरीर रक्षा के लिए आजीविका उपार्जन आवश्यक है। निर्वाह साधनों के बिना जीवन यात्रा बन नहीं पड़ती इसलिए उदरपूर्ति के प्रयासों को प्राथमिकता दी जाती है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग तक इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं और उसे जुटाने के लिए निरन्तर कार्यरत रहते हैं।

मनुष्य की विशिष्टता उसकी बौद्धिक क्षमता है। शारीरिक क्षमता की दृष्टि से वह कितने ही प्राणियों की तुलना में बहुत पीछे है ? इतने पर भी उसने प्रकृति का मुकुटमणि कहलाने का श्रेय-गौरव पाया है। इस सुयोग का प्रमुख कारण उसकी मानसिक संरचना एवं बौद्धिक क्षमता है। इसे मनुष्य के लिए सृष्टा का विशिष्ट एवं अनुपम अनुदान माना जाता है।

शरीर रक्षा की तरह ही मनुष्य को अपनी बौद्धिक क्षमता के अभिवर्द्धन एवं परिशोधन करने की आवश्यकता रहती है। यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही बन पड़ता है। उसी आधार पर अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिलता है। सम्बद्ध वातावरण छोटा-सा होता है, उसमें रहने वालों की एक तो जानकारियाँ ही सीमित होती हैं, फिर सभी अपने-अपने कामों में इतने व्यस्त रहते हैं कि हर किसी को इनसे हर समय मिलने और बिना मूल्य असंख्य विषयों की असंख्यों जानकारियाँ यथा समय मिलते रहने की आशा नहीं की जा सकती। यह कार्य मात्र पुस्तकों के सहारे ही सम्भव है। इसके लिए प्रथम चरण साक्षरता है। साक्षरता की शृंखला में ही जीवनयापन से सम्बन्धित सभी आवश्यक जानकारियाँ भी जुड़ती हैं।

वर्णमाला, अंकगणित, शब्दकोष, व्याकरण जैसी साक्षरता का प्रथम चरण पूरा होते ही शिक्षा क्षेत्र का वह द्वितीय चरण आरम्भ होता है, जिसमें भाषा ज्ञान के साथ-साथ संसार सम्बन्धी तथा जीवनयापन में काम आने वाली जानकारियों का सिलसिला जुड़ता है। शिक्षा समस्या के विचारक इसी सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन करते रहे हैं कि पढ़ने-पढ़ाने में सम्मिलित होने वाले विषयों में किन विषयों का समावेश किया जाय ?

अपने देश और समय का दुर्भाग्य ही है कि हर विद्यार्थी अच्छी नौकरी पाने के लिए, आवश्यक ऊँची कक्षा का प्रमाण पत्र पाने के लिए लालायित रहता है। शिक्षा प्राप्त करने में उसकी प्रमुख महत्त्वाकांक्षा यही रहती है। अभिभावक भी पढ़ाई में खर्च होने वाली राशि को एक प्रकार का पूँजी विनियोग मानते हैं और सोचते हैं विद्यार्थी बड़ा होने पर उस आधार पर अच्छी कमाई करने लगेगा। कमाई से तात्पर्य प्राय: सुविधाजनक नौकरी से होता है। आजीविका के अन्य मार्ग अपनाने हों तो उसके लिए अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। लड़कियों को लोग आमतौर से इसीलिए नहीं पढ़ाते कि इस प्रयोजन में लगाया गया धन और श्रम निरर्थक जायेगा। जब नौकरी नहीं करनी तो पढ़ने से क्या फायदा ? प्रस्तुत मान्यताओं के कारण जहाँ आरम्भिक दिनों में शिक्षा के प्रति उत्साह बढ़ा था, वहाँ अब नौकरी मिलने में कठिनाई पड़ने के कारण वह घटता भी जा रहा है।

शिक्षा का महत्त्व स्वीकार करने के साथ-साथ यह भी मानकर चलना चाहिए कि उसका मूलभूत उद्देश्य चिन्तन, चरित्र, व्यवहार एवं लोक परिचय के सम्बन्ध में उपयोगी जानकारियाँ प्राप्त करना है। इसी आधार पर मनुष्य सुविज्ञ, समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनता है। यह लाभ ऐसा नहीं है, जिसके बिना सफल जीवन का पथ प्रशस्त हो सके। अशिक्षित को अन्धा इसलिए माना जाता है कि वह लाखों वर्षों की संचित ज्ञान सम्पदा को देख-समझ तक नहीं पाता फिर उससे लाभ उठाये तो कैसे उठाये ? शिक्षा मानसिक प्रगति का निमित्त कारण होती है, इसलिए उसे निर्वाह साधन जुटाने के समतुल्य माना जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आजीविका के लिए कृषि, व्यवसाय, शिल्प कला आदि की शिक्षा अलग से मिलनी चाहिए। वह ज्ञान सम्वर्द्धन के साथ-साथ चलता रहे तो भी हर्ज नहीं। किन्तु स्वयं शिक्षा को आजीविका का विशेषतया नौकरी का माध्यम मानकर चलना आदि से अन्त तक गलत है। इस गलती को करने वाले ही शिक्षा को निरर्थक बताते रहते हैं। हर शिक्षित को नौकरी मिलना असम्भव है, न सरकारी तन्त्र इतना बड़ा है कि हर शिक्षित को स्थान दे सके ? न निजी उद्योग व्यवसायों का क्षेत्र ही इतना बड़ा है। ऐसी दशा में शिक्षितों को भी अशिक्षितों की भाँति ही अपनी रुचि एवं स्थिति के अनुरूप किसी व्यवसाय का चयन करना चाहिए। मात्र साक्षरता का मध्यवर्ती पाठ्यक्रम ही ऐसा है, जिसे हर नागरिक के लिए अनिवार्य माना जाना चाहिए।

शिक्षा प्रक्रिया चिरकाल से चली आ रही है। उसमें अनेकानेक प्रयोजनों का समावेश होता रहा है। भारत में अँग्रेजों ने उसे बढ़ाने पर जोर इसलिए दिया था कि उन्हें आवश्यक संख्या में ऐसे क्लर्क मिल सकें, जो चमड़ी से काले होते हुए भी गोरों की संस्कृति का अनुकरण करें ऐसा ही घपला अन्यत्र भी होता रहा है। प्रचलित शिक्षा पद्धति को ऐसा ही 'चूँ-चूँ का मुरब्बा कहा जा सकता है।

संसार के विचारशीलों ने इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है कि शिक्षा को जीवनोपयोगी जानकारी एवं सुसंस्कारिता की अभिवृद्धि में सहायक बनाया जाय। इसके लिए पिछले सौ वर्षों में महत्त्वपूर्ण निर्धारण-परिवर्तन हुए हैं। जहाँ कुछ नहीं बन पड़ा है, वहाँ भी अब उस दिशा में कदम उठ रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में चीन व क्यूबा का प्रयास बड़े महत्त्व का है। उन्होंने विषय सूची के अन्तर्गत आरम्भ से ही कार्य को (मुख्यतया शारीरिक श्रम को) अन्तर्निहित किया है। सामान्य विषयों के अध्ययन के साथ-साथ यहाँ आरम्भिक विद्यालय के बालक बगीचा में श्रम करते, विद्यालय भवन की साज-सज्जा करते तथा सामान्य फर्नीचर व घरेलू सामग्रियों का निर्माण करने में संलग्न रहते हैं। बड़े बच्चे विद्यालय व समाज क्षेत्र में और भी जटिल कार्यों में संलग्न होते हैं। ये बच्चे अपनी छुट्टियों के समय कृषि क्षेत्र में जाकर कार्य करते तथा साथ-साथ ग्रामीण प्रौढ़ों को शिक्षित करने का प्रयास चलाते हैं। शिक्षकगण भी फसल उत्पादन में भाग लेते हैं तथा कुशल किसान व बढ़ई आदि विद्यालय क्षेत्र में जाकर विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया करते हैं।

ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के मध्य में, यूनान में सोफिस्ट कहलाने वाले शिक्षकों का एक दल तैयार हुआ। ये शिक्षक घूम-घूमकर युवकों को भाषण की शिक्षा देते। इससे चिंतन पद्धति के विकास में काफी सहायता मिली। उस समय तक यूनानी भाषा का न तो कोई कोश बना था और न व्याकरण ही। सर्वप्रथम सोफिस्टों ने ही विद्यार्थियों को ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त पाठ तैयार किए थे। शिक्षण-पद्धति के विकास में इन सबका अमूल्य योगदान रहा।

जर्मनी में महान समाज सुधारक—मार्टिन लूथर ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने का सुझाव प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार साधनों के अभाव में पल रहे अथवा किसी कार्य में संलग्न बच्चों के लिए प्रतिदिन एक-दो घण्टे का विद्यालय होना चाहिए, जिसमें वे सभी शिक्षार्जन भी कर सकें तथा बाकी समय में घर पर ही व्यापार आदि सीखने का कार्य करें।

१८वीं सदी में शिक्षा के सुधार हेतु जिन्होंने भी कुछ कहा अथवा लिखा, उनमें रूसो के प्रतिपादनों को बहुत मान मिला है। १७६२ ई० में प्रकाशित उनकी 'एमाइल' नामक पुस्तक बाल्यकाल का घोषणापत्र के रूप में विश्वविख्यात है।

इस पुस्तक के अन्तर्गत रूसो ने शिक्षा की कुछ मूलभूत आवश्यकताओं को इस प्रकार निर्धारित किया है—स्वभाव के प्रति सावधानी, स्वतन्त्र निर्णय, आवश्यकताओं की सुव्यवस्था तथा क्षमताओं का विकास और सामान्य मानवी गुणों की स्थापना। उनके अनुसार बच्चों की शिक्षा पादरी, सरकारी सेवक अथवा सैनिक बनाने के लिए नहीं बल्कि 'व्यक्ति' बनाने के लिए होनी चाहिए। शिक्षकों के लिए उन्होंने यह सुझाव प्रतिपादित किया कि वे अपनी रुचि अथवा सनक के अनुसार ही न चलें, बल्कि बच्चों की वास्तविक आवश्यकताओं का ध्यान रखें। रूसो का कहना था कि बच्चे शब्दों से नहीं वरन् अपने अनुभवों से सीखते हैं। १२ वर्ष से ऊपर उम्र के लड़कों के लिए उन्होंने व्यावहारिक विषयों का प्रशिक्षण आवश्यक बताया था। लड़कियों के विषय में उनका यह सुझाव था कि उन्हें मात्र व्यावहारिक शिक्षण दिया जाय, जिससे वे एक कुशल गृहणी बन सकें।

सन् १९०८ में वेडन ने ११ से १५ वर्ष तक के किशोरों का एक संगठन बनाया, जिसमें बालकों को सभ्य नागरिक, शौर्य-पराक्रम का आचरण तथा अन्यान्य बाहरी क्रियाकलापों में कुशल बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। संगठन के सत्परिणामों के कारण शनैः-शनैः इसका विकास विश्व के अन्य राष्ट्रों में भी होता चला गया। सन् १९७२ में बालचर संगठनों की स्थापना ९७ राष्ट्रों में हो चुकी थी।

विश्व के प्रत्येक राष्ट्र ने आज संगठन के समरूप ही गतिविधियों को क्रियान्वित किया है। कैम्पिंग, स्विमिंग, सेलिंग तथा हाइकिंग जैसे बाह्य उत्साहवर्धक क्रियाकलापों के साथ-साथ संगठन ने किशोरों को नैतिक शिक्षा पर अधिक महत्त्व दिया है। ब्वाय स्काउटिंग का हाथ मिलाता हुआ प्रतीक चिह्न इस बात का द्योतक है कि लोकोपयोगी सेवा कार्य के लिए सदैव तत्पर रहें। संगठन की प्रगति को देखते हुए १९२० से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बैठकें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुलाई जाने लगी हैं। बर्ल्ड जैमवरी की बैठक तो हर चार वर्ष बाद सम्पन्न होती है। सन् १९१६ में तो वैडनप्रवैल ने ठीक इसी समरूप नवयुवकों के नैतिक एवं बौद्धिक स्तर के विकास हेतु 'वौल्फ कव्स' नामक नया संगठन खड़ा किया, जिसे कुछ देशों में कब स्काउटिंग के नाम से जाना जाने लगा है। वर्तमान में १५ वर्ष तक के लड़कों के लिए 'समुद्र अन्वेषक' तथा अन्वेषक जैसे अनेकानेक तरह के संगठन विनिर्मित किए गए हैं।

अक्टूबर क्रान्ति के उपरान्त १९१९ ई० में रूस में शिक्षा सुधार हेतु कुछ विशेष निर्धारण किये गये, जो इस प्रकार हैं—(१) यूनिफाइड श्रमिक विद्यालय के अन्तर्गत १७ वर्ष की आयु तक अनिवार्य तथा निःशुल्क सामान्य व बहुशिल्पी पद्धति का नियोजन, (२) नारियों को मुक्त करने के उद्देश्य से विद्यालय पूर्व शिक्षा का आरम्भ (३) कामगर लोगों के लिए विश्वविद्यालय तथा अन्य उच्च संस्थानों की स्थापना, (४) १७ वर्ष से ऊपर उम्र के युवकों के लिए व्यावसायिक शिक्षा का विकास तथा (५) कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु व्यापक प्रौढ़ शिक्षा प्रणाली का आरम्भ।

नाजी शिक्षा पद्धति में जातीय अहंकार उभारने की अवांछनीयता की सर्वत्र निन्दा की जाती है, तो भी उसमें समाविष्ट कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक समझा जाना चाहिए। उसमें शारीरिक बलिष्ठता को प्रथम—व्यक्तित्व की प्रतिभा को द्वितीय और बुद्धि को तृतीय स्थान दिया है। जबकि अन्यत्र बुद्धि-सम्वर्द्धन को ही सब कुछ माना जाता रहा है।

शिक्षा को आजीविका माध्यम के समतुल्य स्थान देते हुए भी हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सुपाच्य एवं पौष्टिक भोजन की तरह उपयोगी हो। न कि वह निरर्थक बोझ लादने, खीज उत्पन्न करने और बेकारी बढ़ाने का निमित्त कारण बने।

प्रशिक्षण का क्रम आजीवन चलता रहे

शिक्षा न तो विलास है न शृंगार। उसे जीवन की महती आवश्यकता से भी बढ़कर समझा जाना चाहिए। भारतीय संस्कृति में प्रत्यक्ष देवताओं में तीन की गणना की है। एक जन्मदात्री माता। दूसरा भरण-पोषण का उत्तरदायित्व वहन करने वाला पिता। तीसरा शिक्षा के माध्यम से अन्धे को नेत्र देने वाला गुरु। पशुओं की तुलना में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नर जन्म किसी के भी अनुग्रह से क्यों न उपलब्ध हुआ हो उसका दृश्यमान अनुदान माता से ही प्राप्त होता है। अपने शरीर से एक टुकड़ा काटकर देने वाली माता की दुलार भरी अनुकम्पा देवोपम कही जाय, तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। इसके उपरान्त परे देवता की बारी है, जो माता द्वारा प्रदत्त काया के बीजांकुर को खाद-पानी देता, निराई गुड़ाई और रखवाली की जिम्मेदारी उठाकर उसे फलने-फूलने का पथ प्रशस्त करता है। आमतौर से माता के कंधे पर बालक की सेवा सुश्रूषा का एक सीमित क्षेत्र ही निर्धारित है। वह अर्थ-उपार्जन की बहुमुखी व्यवस्था के क्षेत्र में बहुत दूर तक नहीं जा पाती। अस्तु स्वभावतः साधन जुटाने का काम पिता के हिस्से में जाता है। जन्म की अपनी गरिमा है और पोषण की अपनी महिमा। दोनों के समन्वय से ही शुक्राणु जैसी क्षुद्र इकाई में निवास करने वाले जीवधारी को एक समर्थ मनुष्य बनने का अवसर मिलता है। अतएव उन्हें सबके लिए न सही सन्तान के लिए तो ब्रह्मा-विष्णु कहा ही जा सकता है।

इन उभयपक्षीय अनुग्रहों से लदा रहने पर भी मनुष्य व्यक्तित्व की दृष्टि से अपंग, असमर्थ और अनगढ़ ही बना रहता है। यह जन्म और पोषण की प्रक्रिया न्यूनाधिक मात्रा में अन्य प्राणियों के माता-पिता भी सँभालते हैं। पिता का उत्तरदायित्व भी अविकसित जीवधारियों में प्रायः माता ही सँभाल लेती है। बच्चे भी जल्दी ही अपने पैरों खड़े हो जाते हैं और जो कार्य मनुष्य जन्म में पिता को करना पड़ता है, उसे स्वयं अपने कंधों पर उठा लेते हैं। मनुष्य की अपनी विशेषता है और उसकी बहुमूल्य जीवनचर्या में इससे अधिक अनुदानों की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार प्रकृति प्रेरणा के सहारे अन्य जीवधारी अपना गुजारा कर लेते हैं, वैसा मनुष्य के लिए कठिन पड़ता है। उसे तुच्छ से महान बनने के लिए बहुतों से बहुत कुछ प्राप्त करना पड़ता है। इन उपलब्धियों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अनुकम्पा अध्यापक, उपाध्याय, सद्गुरु की होती है। वे अनगढ़ व्यक्तित्व को सुगढ़, सुसंस्कृत बनाने का कार्य शिक्षा के माध्यम से करते हैं। यह प्रक्रिया साक्षरता से आरम्भ होती है किन्तु उसका समापन सुसंस्कारिता के उच्च स्तर पर पहुँचने तक अनवरत चलता ही रहता है। इसमें कमी पड़ने का विकास पथ भी अवरुद्ध हो जाता है। आहार न मिलने पर शरीर की जो दुर्गति होती है, वही अन्तःचेतना की तब होती है, जब उसे इस विश्व भाण्डागार में असीम मात्रा में भरे हुए ज्ञान अमृत का लाभ मिलना बन्द हो जाता है।

पेट भरने के लिए कामचलाऊ जानकारी से काम चल जाता है और उसकी पूर्ति प्रकृति प्रेरणा एवं समीपवर्ती प्रवाह प्रेरणा के सहारे सहज ही मिल जाती है। जिस शिक्षा को जीवनदायिनी, प्राण संचारिणी, अभय प्रदायिनी अमृतोपम कहा गया है, वह साक्षरता के पथ पर बैठकर चलती है। दृश्यमान तो रथ ही होता है पर पर्दा उठते ही उसमें एक देवी विराजमान दीखती है। यह देवी सुसंस्कारिता है। इसी की **'विद्ययामृतमश्नुते'** जैसे शब्दों में अभ्यर्थना की गई है। सामान्य ज्ञान वाली साक्षरता को इसलिए प्राथमिकता दी गई है कि उसके बिना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुसंस्कारिता के तत्त्वदर्शन का ठीक तरह चिन्तन मनन बन नहीं पड़ता। अपवादों की बात दूसरी है पर सामान्यतया विचारणा, बुद्धिमत्ता-मेधा, प्रज्ञा का आवाहन, अवधारण सामान्य शिक्षा के बिना बन नहीं पड़ता। शब्द भण्डार के अभाव में चिन्तन क्षेत्र का लालित्य, कला-कौशल प्रायः अवरुद्ध ही बना पड़ा रहता है। निर्वाह के साधन और लोक व्यवहार में भी इसके बिना भारी कठिनाई पड़ती है। इसलिए वस्त्र धारण की तरह शिक्षा ग्रहण करना भी मनुष्यता का आवश्यक आच्छादन माना गया है। स्मरण रहे यह आरम्भ है अन्त नहीं। यह भूमिका शिलान्यास है, इतना कर लेने से ही भव्य भवन बनकर खड़ा नहीं हो जाता है। इसके बाद भी बहुत कुछ करना होता है। साक्षरता की अनिवार्यता तो स्वीकार की जा सकती है पर उतने भर से मानवी उत्कर्ष का द्वार खुले, ऐसा नहीं कहा जा सकता। समग्र प्रगति तो संस्कृति पर आधारित है। सुसंस्कारिता को मानवी विशिष्टता की धुरी माना गया है। समग्र प्रगति का केन्द्र बिन्दु इसी पर आधारित है।

प्राचीनकाल में गुरु व्यक्ति विशेष होते थे। उन दिनों इतनी पुस्तकें नहीं थीं। जो हर छात्र को ढेरों की संख्या में उपलब्ध कराई जा सकें। तब एक व्यक्ति ही अनेकानेक विषयों का अवगाहन, अध्ययन करने में अपने को पारंगत-निष्णात बनाता था और छात्र के स्तर को देखते हुए उसके लिए अनुकूल-अनुरूप अनुदान प्रस्तुत करता था। आज प्रगति क्रम के साथ-साथ बहुमुखी शिक्षण की आवश्यकता पड़ी है। उस हेतु अनेक पुस्तकों की मुद्रण कला ने सुविधा प्रदान की है। एक स्वतन्त्र शिक्षण-तन्त्र खड़ा हो गया है। ऐसी दशा में प्राचीनकाल के उपाध्याय का उत्तरदायित्व अब समूचे शिक्षण तन्त्र को सँभालना पड़ता है। इसमें पाठ्यक्रमों के निर्धारणकर्ता और व्यवस्थापक सभी सम्मिलित हैं, जो सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर अपना-अपना काम करते हैं। जो भी हो शिक्षण की मूलभूत आवश्यकता और उसकी दिशाधारा का केन्द्र बिन्दु वही है, जो पुरातनकाल के ऋषि युग में मानवी सभ्यता के विकास क्रम के साथ-साथ हुआ था।

समझा जाना चाहिए कि शिक्षा एक ऐसा साँचा है, जिसमें छात्र की गीली मिट्टी को किसी भी आकृति में ढाला जा सकता है। माता-पिता यह कार्य नहीं कर सकते क्योंकि वे इस विशिष्ट पद्धति में प्रवीण-पारंगत नहीं होते। वह कार्य विशेषज्ञों का है। इसलिए उस प्रयोजन के लिए प्राचीनकाल की तरह अभी भी अध्यापकों का शिक्षण संस्थाओं का ही आश्रय लेना पड़ता है। किसी को सुविधा मिले या न मिले अभी भी गुरुकुलों की तरह छात्रावासों में छात्रों के निवास की आवश्यकता अनुभव की जाती है ताकि वे घर से भिन्न प्रकार के वातावरण में रह सकें।

समझा जाना चाहिए कि शिक्षा विलास, व्यसन या शृंगार नहीं है। उसे कच्ची आयु में आरम्भ होकर मरण काल तक चलने वाली चेतना क्षेत्र की आवश्यकता समझा जाना चाहिए और आहार-विश्राम की तरह उसका भी सुनिश्चित प्रबन्ध होना चाहिए। बच्चों को स्कूल में पढ़ने की व्यवस्था बन सकती है पर बड़ों को उपार्जन क्रम में लगाने के उपरान्त उसका प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से अपने बलबूते करना पड़ता है और उसके लिए सुविधानुसार कोई न कोई समय निकालना पड़ता है। जो इस कार्य को बालकों तक ही सीमित रखना पर्याप्त मानते हैं वे भूल करते हैं। पूर्णता तक पहुँचने पर्यन्त उस प्रशिक्षण की अनवरत आवश्यकता बनी रहती है, जो संचित कुसंस्कारिता और सामयिक कुप्रचलनों की मलीनता से छुटकारा दिलाती रह सके। इतना ही पर्याप्त नहीं, आगे बढ़ने के लिए बदली परिस्थितियों में बहुत कुछ नया भी सीखना पड़ता है। नई आकांक्षाएँ, नई आवश्यकताएँ नया मार्ग खोजती और नये साधन माँगती हैं। इसके लिए पूर्व संचय कम पड़ता है और पिछली-पिछड़ी स्थिति में जितने से काम चलता रहा है उसकी अपेक्षा अधिक उच्चस्तरीय तलाश करना पड़ता है। मानवी प्रगति के साथ-साथ तदनुरूप प्रशिक्षण की आवश्यकता भी बढ़ती रहेगी। अस्तु, शिक्षा को जीवन सहचरी माना जाना चाहिए और उसे नित्य कर्म की तरह दिनचर्या का एक अविच्छिन्न अंग समझते हुए तदनुरूप प्रबन्ध करना चाहिए। इसमें आयुष्य का कोई अन्तर नहीं पड़ता। बालकों, प्रौढ़ों, वृद्धों की आवश्यकताएँ अलग हो सकती हैं। पर दिशा सभी की एक है। लक्ष्य में अन्तर नहीं किया जा सकता।

क्या पढ़ें ? इसका उत्तर इस निश्चय के साथ जुड़ा हुआ है कि क्या बनें ? जो स्वयं बनना हो, वही पढ़ना चाहिए। बालकों को जो बनाना है। वही उन्हें पढ़ाना चाहिए। वयस्कों को जिस लक्ष्य तक पहुँचना हो, उसके अनुसार अध्ययन क्रम निर्धारित करना चाहिए। अन्यान्य विषयों की जानकारी प्राप्त करते चलने में हर्ज नहीं, पर चिन्तन को दिशा देने वाला सुनियोजित निर्धारण होना ही चाहिए। यह लक्ष्य क्या हो, इसमें दो बात नहीं हो सकतीं। सुसंस्कारिता का सम्वर्द्धन ही शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य है। इसके लिए इस प्रयोजन को पूरा करने वाले तत्त्व दर्शन की गहराई में उतरना होता है। बौद्धिक प्रौढ़ता क्रमशः बढ़ती है अस्तु अधिक उच्चस्तरीय सहयोग दे सकने वाले अध्ययन क्रम का स्तर भी बढ़ाना पड़ता है। शिक्षा आजीविका अभिवृद्धि की भी योग्यता बढ़ाए यह दूसरी बात है पर मूलतः उसका वह लक्ष्य नहीं होना चाहिए। उदरपूर्ति भर में काम आने वाले अध्ययन को मात्र शिल्प कहा जा सकता है। कई कारीगर और श्रमिक अपने-अपने विषय में प्रवीण होते हैं और अपेक्षाकृत अधिक कमाते हैं। इस क्षेत्र में तो कई फेरी करने वाले और दलाल भी बाजी मारते देखे गए हैं। शिक्षा भी इसी काम आए तो समझना चाहिए कि उसका छिलका ही हाथ लगा और गूदा गुम गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवसाय अनेक हो सकते हैं। उनके लिए कौशल प्रदान करने वाले शिक्षा के प्रसंग भी तदनुरूप अनेकानेक हो सकते हैं। इसके लिए प्रयत्न करते हुए भी यह भूल नहीं जाना चाहिए कि समग्र शिक्षा का स्वरूप तभी बनता है जबकि वह चिन्तन को दिशा देने, दृष्टिकोण को निखारने, दूरदर्शी विवेकशीलता उभारने और व्यक्तित्व में क्रमशः अधिकाधिक सुसंस्कारिता का समावेश करते चलने में सहायक सिद्ध हो सके।

पाठ्यक्रम निर्धारणकर्ताओं—प्रशिक्षण का सूत्र-संचालन करने वालों का कर्तव्य है कि वे बालकों की शिक्षा व्यवस्था बनाते समय यह ध्यान रखें कि सामान्य ज्ञान का समावेश तो करें पर उस प्रक्रिया को उतने भर तक सीमित न रहने दें। विषय कुछ भी क्यों न पढ़ायें जायें, उनमें दुष्प्रवृत्तियों के मायाजाल एवं दुष्परिणाम और सत्परिणाम का विश्वास दिला सकने वाले तथ्यों का भी समावेश करें। जीवनचर्या किस आधार पर सही और सफल हो सकती है। इसका क्रमिक ज्ञान प्रारम्भिक कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर अवधि तक अनवरत रूप से जारी रहना चाहिए। मानव जीवन अनेकानेक समस्याओं अवरोधों एवं संकटों से घिरा हुआ है। उनसे निपटना या तालमेल बिठाना हर जीवन्त व्यक्ति को आना चाहिए अन्यथा वह छोटे-छोटे प्रतिकूल प्रसंगों पर बेतरह उद्विग्न और दूसरों को विपन्न करता रहेगा।

शिक्षा का एक यह काम भी है कि व्यक्ति को प्रगतिशील होने का मार्ग बताए। गुण, कर्म, स्वभाव की विशेषता ही व्यक्तित्व में प्रखरता का समावेश करती है और उसी आधार पर हाथ में लिए कामों को ठीक तरह कर सकना, सम्बद्ध लोगों का सहकार पा सकना सम्भव होता है। यह अपने हाथ की बात है कि अपना दृष्टिकोण, स्वभाव और व्यवहार सँभाला, सुधारा और समुन्नत किया जाय। यह किस स्थिति में किस प्रकार किया जा सकता है ? उसका दिशा निर्देशन समुचित प्रशिक्षण के सहारे किया जा सकता है। यही है वह शिक्षा जिसे देने के कारण गुरु को शंकर भगवान के रूप में श्रद्धास्पद बताया गया है। शिक्षा साक्षात सरस्वती है। ऐसी शिक्षा का आरम्भ स्कूल प्रवेश से भले ही हो पर उसका अनवरत क्रम नियमित स्वाध्याय के साथ आजीवन गतिशील रखना पड़ता है।

सतत् शिक्षा का सिद्धान्त लागू किया जाय

संयुक्त राष्ट्रसंघ के 'शिक्षण एवं सांस्कृतिक संगठन' यूनेस्को—ने शिक्षण प्रक्रिया को आजीवन चालू रखने की आवश्यकता पर बल दिया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव में भी इसी आशय की बात कही गई है तथा ऐसी विश्वव्यवस्था बनाने का आग्रह किया गया है कि दुनिया का कोई भी व्यक्ति ज्ञान की एक शाखा से दूसरी शाखा में सरलता से आ जा सके और ज्ञान के फल को अधिकाधिक चख सके तथा जीवन का आनन्द प्राप्त करता रह सके। अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन, कनाडा, जर्मनी जैसे उन्नत देशों में ऐसी व्यवस्था भी है।

अमेरिका में शिक्षा की इस प्रक्रिया को 'निरन्तर चालू रहने वाली शिक्षा' कहकर पुकारा जाता है। सरकारी योजनाओं में उसका उल्लेख इसी नाम से रहता है। शिक्षा विभाग का यह बहुत बड़ा कार्य है। कम से कम ३०० कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में इस शिक्षा की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत छोटे-बड़े अनेक पाठ्यक्रम निर्धारित हैं। सेन्ट लुई विश्वविद्यालय द्वारा ८० पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं, जिनमें एक 'आज की दुनिया में मनुष्य और ईश्वर का तालमेल' जैसा विषय भी सम्मिलित है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सेन्ट लुई-मिसूरी में उन लोगों की शिक्षा व्यवस्था भी है, जो अनिश्चित आजीविका वाले श्रमिक हैं। ऐसे लोग वहाँ शिक्षा भी प्राप्त करते हैं और अपनी मजदूरी भी करते हैं।

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय ने ऐसे पाठ्यक्रम अधिक अपनाये हैं, जिनके सहारे मनुष्य अधिक विनोदी बन सके और हँसता-हँसाता रह सके। इनमें एक जादूगरी, संगीत, नृत्य, अभिनय एवं विदूषक के पाठ्यक्रम भी सम्मिलित हैं।

केलोग, मिशिगन, जौर्जिया, ओक्ला, हीमा, नेब्रास्का, न्यूहैम्पशर, इलिनोये, इण्डियाना विश्वविद्यालयों ने ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के लिए, दूर-दूर से आने वालों के लिए छात्रावास भी बनाए हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जनता की बढ़ती हुई माँग पूरा करने के प्रति प्रायः प्रति वर्ष नये कम्युनिटी कॉलेजों की स्थापना होते चलने का सिलसिला बँध गया है। सम्भवतः यह संख्या अगले दिनों और भी तेज करनी पड़ेगी।

वाल्टीमोर, मेरीलेण्ड के कम्युनिटी कॉलेज ने अधिक आयु के लोगों को अधिक प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यह नियम बनाया है कि ६५ वर्ष से अधिक आयु के लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी और उन्हें शिक्षा शुल्क न देना पड़ेगा। कुछ ऐसे भी स्कूल हैं, जो केवल छुट्टियों के दिनों में ही खुलते हैं ताकि अधिक व्यस्त रहने वाले लोग उन्हीं सुविधा के दिनों में कुछ न कुछ सीख सकें। सरकार और व्यापारिक संस्थानों द्वारा यह परामर्श दिया जाता रहा है कि किस उद्योग में मन्दी आने से श्रमिकों की छँटनी करनी पड़ेगी और किस धन्धे का विकास होने से उनमें नई भर्ती की जरूरत पड़ेगी। शिक्षित उद्योगों के श्रमिक समय से पूर्व शिक्षा प्राप्त करके नये उद्योगों के लिए उपयुक्त बन सकें और उनका स्थानान्तरण करके ही सुविधाजनक पग उठा लिए जायें, इसके लिए उन क्षेत्रों में नये-नये पाठ्यक्रम चालू कर दिए जाते हैं। इससे छटनी और भर्ती का सहज सन्तुलन बन जाता है और किसी प्रकार की उखाड़-पछाड़ नहीं करनी पड़ती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्त्वपूर्ण कार्यों में संलग्न लोगों को नवीनतम ज्ञान से लाभान्वित करने के लिए कई पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। जैसे अमेरिकन ला इन्स्टीट्यूट जो वकीलों को कानूनी दावपेचों सम्बन्धी उच्च न्यायालयों द्वारा दी गई टिप्पणियों और राज्य सरकारों द्वारा किए गए परिवर्तनों का सम्पूर्ण विवरण जल्दी से जल्दी पहुँचा देता है और किसी वकील को उसकी तलाश के लिए अलग से माथापच्ची नहीं करनी पड़ती। इसी प्रकार उस देश की मेडीकल एसोसियेशन ने अपने १,४०,००० सदस्यों को नवीन तथ्य शोध निष्कर्षों से अवगत करते रहने के लिए ६७ क्षेत्रीय केन्द्र संस्थानों की स्थापना की है। कुछ विद्यालयों ने अपने पाठ्यक्रमों की फिल्में बना ली हैं और वे शिक्षार्थियों की बस्तियों में ले जाकर उन्हें दिखाते हैं ताकि छात्रों को विद्यालयों तक आने-जाने में समय और पैसा खर्च न करना पड़े।

सरकारी शिक्षातन्त्र, लोकसेवी संस्थाएँ तथा व्यापारिक आधार पर चलाए गए प्रतिष्ठान, इन तीनों के सम्मिलित प्रयासों में ऐसा तालमेल रहता है कि हर क्षेत्र और हर वर्ग की आवश्यकता पूरी होती रहे और उनमें अनावश्यक प्रतिद्वन्द्विता पैदा न होने पाये। ७० वर्षीय स्लिम ब्रण्डेज ने प्रौढ़ शिक्षा को अर्थ उपार्जन का माध्यम बनाया है और वे उसमें पूरी तरह सफल हुए हैं, इनके पाँच दर्जन पाठ्यक्रमों में वक्तृत्व कला से लेकर यौन शिक्षा तक की लोक रुचि की जानकारियाँ सम्मिलित हैं।

सतत् शिक्षण की यह प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक है। किसी आयु, वर्ग या समय-सीमा में शिक्षा को बाँध देना तो शिक्षा की आवश्यकता और महत्त्व का बहुमूल्यन है। सतत् शिक्षण-प्रक्रिया विज्ञान के क्षेत्र में तो इसलिए भी आवश्यक है कि नये अनुसन्धानों के कारण पुराने तथ्य पिछड़ जाते हैं और नवीन शोधों से लाभ उठाने के लिए नये निष्कर्ष आवश्यक होते हैं। खेल, नृत्य, पर्यटन, संगीत व सामान्य ज्ञान के सम्बन्ध में भी सर्वसाधारण को गहरी रुचि है। स्त्रियाँ दाम्पत्य-जीवन के हास-विलास, वेश-विन्यास, शिशुपालन आदि विषयों के ऊँचे, अधिक ऊँचे कोर्स पूरे करती रहती हैं।

अमरीका में न्यू आर्लियन्स (लुईजियैना) के अवकाश प्राप्त नाविक ८१ वर्षीय लोकस टकरे ने दर्शनशास्त्र की आरम्भिक कक्षा में अपना नाम लिखवाया। इस प्रकार के कदम उठाना भारत में आश्चर्यजनक माना जाता है क्योंकि यहाँ बड़ी उम्र में स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का प्रचलन नहीं है, पर अमेरिका में ऐसी बात नहीं है। वहाँ यह एक बिलकुल सामान्य बात है। छोटी उम्र के लड़के भी खेल-कूद पसन्द करते हैं और बड़ी उम्र वालों को भी इसमें रुचि रखने पर कोई रोक नहीं है। ठीक उसी प्रकार क्या बड़ी उम्र, क्या छोटी उम्र इसमें नियमित रूप से विद्या पढ़ने में कोई अन्तर नहीं आता।

पौष्टिक भोजन हर आयु के लिए आवश्यक है। स्वच्छ हवा बच्चों से लेकरे बड़ों तक का स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए जरूरी है। स्वस्थ मनोरंजन और निश्चिन्तता-प्रफुल्लता सभी आयु वर्ग वालों के लिए आवश्यक और उपयोगी है। उसी प्रकार शिक्षा या ज्ञान भी व्यक्ति मात्र की आवश्यकता है, उसके लिए आयु, स्थिति और वय का कोई बन्धन-प्रतिबन्ध नहीं है। रहा प्रश्न उसे प्राप्त करने की आयु का तो वह भी निरा संकोच है, अन्यथा ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसे केवल बच्चों की बात ही समझा जाय और बड़ों के लिए उसकी कोई आवश्यकता नहीं रहे या बचपन गुजर जाने के बाद जिसे प्राप्त नहीं किया जा सके।

वयस्क और प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षा का महत्त्व समझाया जाना चाहिए और उन्हें ऐसे शिक्षण-पाठ्यक्रम सुलभ कराए जाने चाहिए, जिनसे उनके जीवन में तात्कालिक लाभ स्पष्ट दिखाई पड़े।

प्रौढ़ व्यक्तियों में शिक्षा के प्रति अनुत्साह इसलिए भी देखा जाता है कि उन्हें समय न मिलने, साधन उपलब्ध न होने की शिकायतें रहती हैं। वस्तुतः तो ये कोई बड़े कारण नहीं हैं। जब हम ढेरों समय गप्पबाजी के लिए निकाल लेते हैं, अपना बहुत-सा समय और बहुत-सा पैसा अनावश्यक कार्यों में खर्च कर देते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि शिक्षा के लिए समय तथा साधनों का अभाव हो। अत्यन्त आवश्यक कार्य दूसरे जरूरी कामों को छोड़कर भी किये जाते हैं। अपना कोई प्रिय स्वजन किसी दुर्घटना का शिकार हो गया हो तो सारे काम एक ओर छोड़कर उसे देखने के लिए जाया जाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई समस्या उत्पन्न हो गई हो तो उसके लिए सभी काम एक ओर रख दिए जाते हैं। आशय यह है कि आवश्यक और उपयोगी समझे जाने वाले कार्यों के लिए समय तथा साधनों की कमी कभी बाधक नहीं बनती। यह कठिनाई उत्पन्न तब होती है, जब लगता हो कि कोई व्यर्थ का कार्य करने के लिए कहा जा रहा है। सीधे शब्दों में कहा जाय तो शिक्षा का महत्त्व न समझने के कारण ही प्रौढ़ व्यक्ति समय न मिलने तथा साधन उपलब्ध न होने का बहाना करते हैं।

शिक्षा कोई खिलौना नहीं। बचपन से ही यदि शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाय तो अच्छा ही रहता। परन्तु वह अवसर निकल गया तो शिक्षा इतने कम महत्त्व की वस्तु नहीं है कि उसे प्राप्त करने के लिए बाद में कोई प्रयत्न न किये जाएँ। बचपन में खिलौनों से नहीं खेला जा सका तो भी बड़ी उमर में उनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु बचपन में यदि अच्छा स्वास्थ्य नहीं बनाया जा सका तो सारी उमर ही बीमार रहकर सन्तुष्ट नहीं हुआ जा सकता। यह बहाना कोई नहीं करता कि क्या करें, साहब अब तो स्वास्थ्य बनाने की उमर ही जाती रही। अब जैसा है वैसा ही स्वास्थ्य रहने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया जाय। पहलवान बनने के लिए अच्छा होता, यदि बचपन से ही दण्ड-बैठक लगाई जाती। परन्तु ऐसा नहीं हो सका और बाद में किसी को पहलवानी का चस्का लगा तो वह उसी आयु में दण्ड-बैठक और व्यायाम शुरू कर देता है। प्रश्न आयु या स्थिति का नहीं है। प्रश्न इस बात का है कि शिक्षा के प्रति आम आदमी का क्या दृष्टिकोण है और उसमें कौन से ऐसे परिवर्तन किए जाने चाहिए, जिससे कि वह शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हो उठे।

सर्वसाधारण में जिनमें अशिक्षितों की संख्या ही अधिक है, शिक्षा के प्रति यही धारणा बनी हुई है कि वह बच्चों के लिए एक ऐसा काम है, जिसमें बच्चे इधर-उधर मारे-मारे फिरने की अपेक्षा एक स्थान पर बैठे और बँधे रह सकें। इसका मूल कारण शिक्षा का मौजूदा सड़ा स्वरूप है।

शिक्षा के प्रयोजन को अभी हमारे यहाँ ठीक से समझा ही नहीं गया है। शासक वर्ग और प्रबुद्ध व्यक्ति भी उसे पर्याप्त महत्त्व नहीं देते। जो भी समस्याएँ हमारी दिमागी जड़ता और मानसिक पिछड़ेपन से सम्बद्ध हैं, उनका उन्मूलन शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम द्वारा ही किया जा सकता है। जातिप्रथा, मद्यपान, छुआछूत, साम्प्रदायिकता बगैरह बुराइयाँ हमारी दिमागी, गुलामी और रूढ़िवादिता के बड़े गवाह हैं, बल्कि उन्हीं की उपज हैं। इनको सिर्फ कानून बनाकर नहीं खत्म किया जा सकता। कानून एक सीमा तक मदद जरूर कर सकता है। इसमें ज्यादातर काम मानसिक प्रशिक्षण द्वारा करना है। यह काम प्रौढ़ शिक्षा द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि हमारे देशवासियों का दिमागी पुनरुत्थान किया जाए, उन्हें बताया जाए कि उनके देश की तरक्की किन कारणों से रुकी हुई है ? परिस्थितियों में वांछित सुधार कैसे लाया जा सकता है। तभी हम इन सामाजिक बुराइयों के खिलाफ जोरदार अभियान शुरू कर सकते हैं।

शिक्षा को बच्चों तक तथा उसकी उपयोगिता को आजीविका तक सीमित करने से ही इस देश में व्यापक जागृति की सम्भावनाएँ बहुत कुछ सिमट गई हैं। शिक्षा के विस्तार के बिना प्रबल जन-जागृति असम्भव है।

भारत में विश्व की जनसंख्या का छठवाँ भाग बसता है। शिक्षण-प्रशिक्षण के और समुचित नियोजन के अभाव में इतनी विपुल जनशक्ति नितांत सामान्य आवश्यकताएँ तक नहीं जुटा पा रही, विकास और प्रगति के नये क्षितिजों को छूना तो भिन्न बात है। अज्ञान और अशिक्षा के इस भयानक घातक अन्धकार को दूर करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा और सतत् शिक्षा का व्यापक क्रम चलाया जाना चाहिए। सतत् शिक्षा और वयस्क अथवा प्रौढ़ शिक्षा के सिद्धान्त को अमल में लाने का यह वृहत कार्यक्रम अकेले सरकार के भरोसे छोड़ देना अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ना है। सामाजिक उत्कर्ष की आकांक्षा रखने वाले सभी प्रबुद्ध लोगों को अपने-अपने स्तर पर इस हेतु प्रयास करना चाहिए।

शिक्षा को सार्थक करे, ऐसी विशिष्टता विकसित हो

परिवार संस्था की तरह विद्यालय भी एक, सामूहिकता के साथ जुड़े हुए सद्गुणों के विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकाल में बालकों को गुरुकुलों में पढ़ने के लिए इसी दृष्टि से भेजा जाता था कि वहाँ की पारिवारिकता उच्चकोटि की रहने से उसमें रहकर छात्रों को व्यक्तित्व विकास का समुचित आधार मिल सके। वहाँ उपाध्याय ही अभिभावक की भूमिका निबाहते थे। माता का दुलार, संरक्षण एवं समर्थन उन्हें गुरु पत्नी से मिल जाता था। ऐसी दशा में छात्रों को घर छोड़ने का अभाव खटकता नहीं था।

इन दिनों शिक्षा प्रणाली की उस समग्रता में बहुत कुछ कमी रह जाती है, जिसमें सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करके किसी प्रकार पास होना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। अध्यापक और छात्र इतने भर से अपने स्कूली कर्तव्य की पूर्ति मान लेते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि अभिभावकों की कमी को अध्यापक पूरा करें। इतना ही नहीं, सद्भाव भरा सम्बन्ध दोनों पक्षों में इस स्तर का बना रहे कि व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी शिक्षण अध्यापकों द्वारा दिए जाने पर छात्र उसे अपना सकें।

पाठ्य पुस्तकों की पढ़ाई आवश्यक तो है, पर समझना चाहिए कि इतना ही पर्याप्त नहीं। उठती आयु ही प्रवृत्तियों को अपनाने की अवधि होती है। बड़े होने पर तो जो आदतें अपना ली जाती है, वे ही परिपक्व होती रहती हैं। उनमें सुधार करना सूखी लकड़ी को मोड़ने की तरह कठिन पड़ता है। बचपन और किशोरावस्था में शरीर यात्रा के उपरान्त का समय स्कूली परिसर में ही बीतता है। वहाँ अध्यापक वर्ग आमतौर से अभिभावकों की तुलना में अधिक योग्य होता है। इसलिए आशा की जाती है कि उनके सम्पर्क में शिक्षार्थी न केवल पढ़ाई अच्छी तरह पूरी करेंगे, वरन् उन सद्गुणों का अभ्यास भी करेंगे, जो घर की तुलना में स्कूलों के सहकारी वातावरण में अधिक अच्छी तरह उपलब्ध हो सकता है। अध्यापक यदि इस ओर भी ध्यान दें और सच्चे मन से प्रयत्न करें, तो अभिभावकों की कमी को इन विद्या मन्दिरों में पूरा किया जा सकता है। शिक्षा की समग्रता इसी प्रकार बनती है, अन्यथा उसे मात्र पढ़ाई का शिल्प शिक्षण भर कहा जा सकता है। कारीगरों के साथ रहकर श्रमिक जिस प्रकार उस विषय की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, यदि उतना ही स्कूलों में बन पड़े, तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना चाहिए कि गुरु-शिष्य परम्परा की गरिमा समाप्त हो गई है। पढ़ाई तो घर रहकर भी की जा सकती है। ट्यूटर लगाकर या पत्राचार उपक्रम के सहारे भी पूरी की जा सकती है। स्कूलों की उपयोगिता तभी बनती है, जब वहाँ छात्रों को अपने व्यक्तित्व-विकास का भी समुचित अवसर मिलता रहे। यह कार्य पढ़ाई जारी रहने के साथ-साथ भी चलता रह सकता है। इसके लिए छात्र की उत्सुकता, जिज्ञासा और अध्यापकों की गुरु-गरिमा को सजीव-सक्रिय रहने की आवश्यकता है, भले ही इसके लिए सरकारी अनिवार्यता न हो; पर उस ओर कोई रोक भी तो नहीं है। अच्छाई सीखने और सिखाने के प्रयत्न तो सदा सराहे ही जाते हैं। इसमें छात्रों का हित होता है। अध्यापक की गरिमा बढ़ती है। अभिभावक इस सुयोग के लिए कृतज्ञ रहते हैं और समूचा समाज यह अनुभव करता है कि राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने की शिक्षणतन्त्र द्वारा महती सेवा-साधना सम्पन्न की गई।

कारखानों में मशीनें और श्रमिक और अफसर काम करते हैं। उनके हर पक्ष की साज-सँभाल किए रहने वालों को ही मैनेजर कहते हैं। वह यह भी प्रयत्न करता है कि बने माल को खपाने और ग्राहकों को संतुष्ट रखने की व्यवस्था भी बनी रहे। कारखाना इसी आधार पर ख्याति प्राप्त करता है और नफे में चलता है। मैनेजर की प्रतिष्ठा एवं पदोन्नति भी इसी पर निर्भर है। ठीक यही बात परिवार संचालन एवं स्कूली अध्ययन-अध्यापन पर लागू होती है। उस तन्त्र का सुसंचालन ही उसकी सर्वतोमुखी सफलता का आधार है। प्रबन्धक बुद्धि यों आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक सभी कार्यों में अभीष्ट समझी जाती है, पर तब उसकी जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है, जब मनुष्य को अधिक शिष्ट, सभ्य और आदर्शवादी बनने का लक्ष्य सामने हो। सरकस के प्रशिक्षकों को इसलिए अधिक सराहा जाता है कि वे अनगढ़ ही नहीं, खूँखार जानवरों को भी कलाकारों जैसे कौतुक करने के लिए अभ्यस्त बना लेते हैं। पारिवारिक वातावरण एवं स्कूल परिसर की सार्थकता-प्रतिष्ठा तब ही है जबकि अनगढ़ स्तर के समुदाय को सुसंस्कारी बनाने में इस स्तर तक सफल हो सकें कि उनके माध्यम से प्रतिभाओं का निर्माण हो।

समाज को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रहती है और उसकी पूर्ति के लिए बहुमुखी चेष्टाएँ होती रहती हैं। इस प्रयास में इतना और जुड़ना चाहिए कि परिष्कृत व्यक्तियों का निर्माण उन्हीं आवश्यकताओं में सम्मिलित कर लिया जाय और उसे सर्वोपरि माना जाय। उन्हीं में वैयक्तिक और सामूहिक प्रयोजनों को पूरा कर सकने की क्षमता एवं साहसिकता होती है। शेष लोग तो खर्च करने और बर्बाद करने में ही लगे रहते हैं। वे उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष खड़ा करने में ही अपने स्वभाव और प्रयास को निरर्थक करते रहते हैं। इनके द्वारा खोदी गई खाई को ही वे प्रतिभाएँ भरती हैं, जिनका व्यक्तित्व उस स्तर की विशेषता से सम्पन्न होता है, उन्हीं का उपार्जन देश, समाज की महती आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रमुख उपाय है।

साधन जुटाना सभी की चाह रहती है और उसकी उपयोगिता भी समझ में आती है, पर यह भुला दिया जाता है कि प्रतिभावान ही महत्त्वपूर्ण उत्पादन एवं निर्माण कर पाते हैं। सदुपयोग करना और भी अधिक कठिन है। जो इन दोनों कसौटियों पर खरे उतरते हैं, वे ही समुन्नत, सुसंस्कृत होने के साथ-साथ सुसम्पन्न भी बनते हैं, उन्हीं के माध्यम से बड़े साधन जुट सकना सम्भव होता है।

प्रगति किसी भी क्षेत्र की क्यों न हो, उसे प्रतिभाशाली लोग ही सम्पन्न करते हैं। यहाँ तक कि हेय दुरभिसंधियाँ रच सकना भी उन्हीं से बन पड़ता है, फिर श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ सकना, बढ़ा सकना तो उनके बिना बन ही कैसे पड़े ? सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग यही है। इतिहास में जिन्होंने भी कुछ अविस्मरणीय काम किए हैं, उन सभी में ऐसी प्रतिभा विद्यमान थी, जिसमें सज्जनता का समुचित समावेश रहा, जिन्होंने अपनी शक्तियों का एक कण भी बर्बाद नहीं किया और अपने विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति में समग्र तत्परता और तन्मयता के साथ जुटे रहे। अस्त-व्यस्त स्तर के लोग तो किसी प्रकार दिन ही काट पाते हैं अथवा जो दूसरों का कमाया है, उसे बर्बाद करते रहते हैं।

अभिभावकों और अध्यापकों की इस प्रयोजन में सबसे बड़ी भूमिका रहती है। कारण कि उठती उम्र उन्हीं के संरक्षण में गुजरती है। हरी लकड़ी को किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता है। गीली मिट्टी से किसी भी प्रकार के बर्तन-खिलौने बन सकते हैं, किन्तु सूखी लकड़ी या मिट्टी जैसी भी कुछ है वैसी ही बनी रहती है। टूट जाती है, पर बदलती नहीं। यही बात मनुष्यों के सम्बन्ध में भी है। तरुण हो जाने के उपरान्त प्रायः कम ही लोग सुधर पाते हैं। आरम्भ में जमीं बुरी आदतें और अधिक पनप तो सकती हैं, पर उनमें सुधार-परिवर्तन होना कुछ अपवाद में ही देखा जाता है।

अभिभावक बच्चों को हँसाने, खिलाने, सजाने जैसे कृत्यों में ही लगे रहते हैं। उन्हें यह नहीं सूझता कि आँगन में खेलने वाले बालकों को यदि सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढाला जा सके, तो वे अपनी गरिमा और दूसरों की साधारण सेवा-साधना कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिए हँसाने-खिलाने के कौतुक काम नहीं देते, वरन् उनकी प्रवृत्तियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उनमें उत्कृष्टता के बीज सावधानीपूर्वक बोये जाने चाहिए। यह कार्य उथली दृष्टि से नहीं हो जाता, वरन् उस प्रकार करना होता है जिस प्रकार स्वर्णकार सोने की डली को अपने हस्तकौशल के सहारे आकर्षक आभूषण के रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गढ़कर यशस्वी एवं लाभान्वित होता है। बालकों के सम्बन्ध में भी यही नीति अपनाई जानी चाहिए। सच्चे अर्थों में अभिभावक बनने के लिए इससे कम में काम नहीं चलता।

अध्यापकों का काम भी इससे कम गंभीर और जटिल नहीं है। मोटेतौर पर निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करा देना ही उनका काम माना जाता है। छात्र भी इतने से ही संतुष्ट हो जाते हैं और अभिभावक भी इससे अधिक आशा-अपेक्षा नहीं करते। यह शिथिलता, उपेक्षा एवं अपूर्णता तीनों ही पक्षों पर लांछन लगाती है और छात्र के भविष्य तथा समाज के प्रति कर्तव्यपालन में एक बाधा बनकर अड़ी रहती है। अच्छे डिवीजन से पास होने और अच्छी नौकरी पा लेने भर से उसकी उपयोगिता सिद्ध नहीं हो जाती। कमाई की दृष्टि से तो कई बहुत कम पढ़े व्यवसायी भी उनसे कहीं अधिक कमा लेते हैं। शिक्षा की सार्थकता तब बनती है, जब उसकी छत्रछाया में अधिक सुसंस्कृत, अधिक प्रतिभावान एवं अधिक क्रिया-कुशल व्यक्तित्व का निर्माण हो। इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाना अध्यापनतन्त्र का कर्तव्य है।

सामूहिक उपदेश देने भर से बात नहीं बनती, वरन् यह भी आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक छात्र की मनःस्थिति एवं रुझान प्रवाह पर ध्यान रखा जाय। उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध सूत्र जोड़ा जाय और परिस्थितियों के अनुरूप ऐसे सुझाव देते रहा जाय, जिससे भटकाव से बचना और प्रगति पथ पर सही मार्ग से चल सकना सम्भव हो सके। इसके लिए मार्गदर्शक के निज का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए जो प्रभाव छोड़ने में न केवल ज्ञान की दृष्टि से, वरन् चरित्र की दृष्टि से भी समर्थ हो। जिन विद्यालयों के छात्र न केवल बुद्धिमान वरन् चरित्रनिष्ठ एवं समाजनिष्ठ बनकर निकलें, समझना चाहिए कि शिक्षा को सार्थक सिद्ध करने वाली विशिष्टता बन पड़ी। हर शिक्षक, हर विद्यालय इन विशेषताओं को उत्पन्न करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करें, तभी उनका गौरव है।

शिक्षा केवल शिक्षा के लिए नहीं

'काम चाहिए डिग्री नहीं'—दीक्षान्त समारोहों में इस प्रकार के नारे कई जगह सुने जाते हैं। विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र फाड़ते और गाऊन उतारकर फैंकते हुए देखा जा सकता है। इन नारों और हंगामों के पीछे—युवा आक्रोश के जो कारण छापे हुए हैं उन्हें देखकर लगता है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा रोजगार और काम की समस्या भी त्यों-त्यों विकराल बनती जा रही है।

महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों से उनकी शिक्षा का उद्देश्य पूछा जाय तो ९९ प्रतिशत विद्यार्थियों का उत्तर होगा—ऊँची शिक्षा प्राप्त कर हमें जीविकोपार्जन के अच्छे साधन मिल सकेंगे। आज से दस बीस साल पहले हायर सैकेण्ड्री या इण्टर पास छात्रों को मास्टर या क्लर्क की नौकरी मिल जाया करती थी। आज उन्हीं पदों पर काम करने के लिए एम० ए० पास लोग भी दाँव लगाते हैं। यह सब देखकर ऐसा लगता है कि ऊँची शिक्षा सामान्य स्तर की जीविका भी उपलब्ध कराने में पूरी तरह समर्थ नहीं है क्योंकि नौकरी पाने के लिए बाजी ही नहीं एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ता है।

ज्ञान के आराधक या साधक अब इतने नहीं रहे जो केवल शिक्षा के लिए पढ़ रहे हों। विद्या प्राप्ति ही जिन्होंने अपना लक्ष्य चुना हो और यह हो भी नहीं सकता है ज्ञान, विद्या, कला सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जीवन और जब जीने की तैयारी करने का समय शिक्षा या कला की आराधना में बीत जाता है तो स्वाभाविक ही उसके मूल में जीवन को उन्नत बनाने और उसे अच्छी तरह व्यतीत करने का उद्देश्य छुपा होगा।

लेकिन हमारे देश की शिक्षा पद्धति ज्ञान और जीवन की खाई को पाट नहीं सकी है। फिर भी लोग ऊँची शिक्षा के लिए लालायित है और ९९ प्रतिशत छात्रों का पढ़ने के पीछे अच्छा रोजगार पाना ही उद्देश्य है। ऊँची शिक्षा से वह प्राप्त नहीं हो सकता तो इसका मतलब है कि शिक्षा बहुत ऊँचे दर्जे की सुनियोजित धोखाधड़ी है।

हमारे देश में ऊँची शिक्षा वैसे ही महँगी है। इसके लिए धन जुटाना हर आदमी के बस की बात नहीं। महँगी किताबें, कॉलेज के उपयुक्त रहन-सहन, बाहर से आने वाले छात्रों का आवास और भोजन सबका सब बहुत खर्चीला है। विद्यार्थी पढ़ने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं सकता। इसका अर्थ है वह जब तक विद्यार्थी रहेगा किसी रोजगार की व्यवस्था नहीं कर लेगा अपने माता-पिता के ऊपर बोझ बनकर रहेगा। बेचारे निर्धन माता-पिता अपना पेट काटकर भी 'बच्चों' को ऊँची शिक्षा दिलाते हैं। जब उनकी सारी आशाएँ भूसात हो जाती हैं तो उनकी आत्मा कितनी कराह उठती होगी ? ऊँची से ऊँची शिक्षा पाकर भी बेरोजगारी ही हाथ लगे या ऐसा काम मिले जो कम शैक्षणिक योग्यता से हो सकता था तो कल्पना कीजिए यह उस विद्यार्थी के साथ, उसके परिवार के साथ पूरे समाज और देश के साथ कितनी धोखाधड़ी है ?

उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार अपने देश में लाखों डॉक्टर एवं इन्जीनियर बेरोजगार हैं। इनकी शिक्षा पर अभिभावकों ने कितना खर्च किया होगा और आज भी कर रहे होंगे, नौकरी के लिए, खाने, कपड़े और फैशन पर। वे दूसरा काम भी नहीं कर सकते। एक विद्वान व्यक्ति की टिप्पणी है—इतना पैसा खर्च करके अभिभावकों ने सोचा था वे इन्जीनियर या डॉक्टर बनकर लौटेंगे परन्तु वे बेकार होकर वापस आए हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने वालों की यह स्थिति है फिर जिन्होंने सैद्धान्तिक ज्ञान की अर्जित किया है, उनकी क्या दशा होगी ? कल्पना करना बहुत आसान है। चपरासी-क्लर्क जैसी नौकरियों के लिए भी स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त व्यक्ति प्रत्याशी बनकर आते हैं तो दूसरे कम पढ़े-लिखे लोग या अनपढ़ उनसे क्या बुरे हैं, जो अपनी पान की दुकान पर बैठकर या रिक्शा चलाकर परिवार का पेट पाल लेते हैं।

ऐसे लोगों में शिक्षा के प्रति उदासीनता का एक बड़ा कारण यह है कि पढ़-लिखकर कमाऊपूत भी बेकार बन जायेगा, जिसे बुढ़ापे का सहारा समझा है। वह बोझ बन जायेगा। मध्यप्रदेश के एक गाँव में कोई सामाजिक कार्यकर्ता पहुँचे। शिक्षा और स्कूलों के महत्त्व पर भाषण दिया। लोगों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि अपने बच्चों को स्कूल भेजें। एक हवा बन गई। सब लोगों ने सहमति व्यक्त की परन्तु एक इकलौते बेटे का पिता चुपचाप बैठा रहा। कार्यकर्ता ने पूछा—'भाई तुमने अपनी राय क्यों नहीं बताई ? क्या तुम अपने बच्चे का भविष्य सुधारना नहीं चाहते हो ?'

'भविष्य'—किसान के मुख पर व्यंग्य के भाव आये—'स्कूल में भेजने से मेरे लड़के का भविष्य कितना सुधरेगा और कितना बिगड़ेगा साहब ! यह मैंने खूब अच्छी तरह देखा है। वह शहर से जब पढ़-लिखकर लौटेगा तो उसे कुर्सी की जरूरत होगी। वह खेत पर नहीं जा सकेगा। उसे यह झौंपड़ी अच्छी नहीं लगेगी। आज मेरा बेटा मेरे कामों में थोड़ा बहुत हाथ बँटाता है। मैं इस पर आस करता हूँ कि आगे चलकर खेती सम्हाल लेगा परन्तु पढ़-लिख जायगा तो मेरी धरती बाँझ हो जायगी।' समझदार ग्रामीणों का लगभग यही उत्तर मिलता है। आज की परिस्थितियों और शिक्षा से निर्मित वातावरण को देखते हुए यह दृष्टिकोण स्वाभाविक भी है।

शिक्षाविदों की एक गोष्ठी में एशियन इन्स्टीट्यूट ऑफ ऐजूकेशनल प्लानिंग के डायरेक्टर प्रो० माथुर ने अपना मत व्यक्त करते हुए शिक्षा सुधार के प्रसंग में रोजगार समस्या की ओर ध्यान खींचा तो उस गोष्ठी में भाग लेने वाले विद्वानों ने इस प्रश्न को उपेक्षित करते हुए उत्तर दिया कि हम यहाँ पर शिक्षा की समस्या पर विचार करने एकत्रित हुए हैं, रोजगार पर नहीं। प्रोफेसर माथुर ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की—अगर ऐसा है तो हर कॉलेज और यूनिवर्सिटी के बाहर बड़े-बड़े अक्षरों में यह लिख दिया जाना चाहिए कि यहाँ केवल ज्ञान मिलता है रोजगार का आश्वासन नहीं। उनकी यह प्रतिक्रिया कितनी सटीक है।

वस्तुतः हमारे बहुत-से शिक्षाशास्त्रियों के मस्तिष्क में यह बात आई ही नहीं है कि शिक्षा और रोजगार का भी कोई सम्बन्ध है। आई भी हो तो शायद वे इस पर अमल करना नहीं चाहते। 'कला—कला के लिए'—के सिद्धान्त का विरोध बहुत हो चुका। विद्वानों ने इसकी व्यर्थता का अनुभव भी खूब अच्छी तरह कर लिया है। उसी प्रकार शिक्षा केवल शिक्षा के लिए इस भ्रम को भी तोड़ना चाहिए।

आज गाँव-गाँव में स्कूल और नगर-कस्बों में कॉलेज तथा यूनिवर्सिटी खोली जा रही हैं। परन्तु यह सब युवा आक्रोश और असन्तोष को भड़काने वाली ही सिद्ध होंगी। बेकारी की समस्या का समाधान कहीं दिखाई ही नहीं देता।

श्रम और शिक्षा की उपलब्धियों का बोध कराएँ

स्वच्छंद क्रियाकलाप स्वभावतः रुचिकर होते हैं। प्राणिमात्र को जागृत अवस्था में कुछ-न-कुछ हलचलें करते देखा जाता है। श्रम तो उनमें भी पड़ता है पर वे होती स्वेच्छाचारिता पर निर्भर हैं। वे शारीरिक और मानसिक व्यायाम की आवश्यकता पूर्ति करने वाली होने के कारण प्रकृति प्रदत्त स्वभाव बनी रहती हैं और उनमें न कोई दबाव अनुभव होता है और न कोई थकान लगती है। बच्चे इसी आधार पर दिनभर निरुद्देश्य भाग-दौड़ करते रहते हैं। हिरन, खरगोशों तक को इधर से उधर छलाँग लगाते, भौंरों को नोंचते और गूँजते देखकर यह नहीं जाना जा सकता है कि यह सब वे किसी उद्देश्य या लाभ विशेष के लिए कर रहे हैं।

सुव्यवस्थित और निर्धारित क्रम से सतत् चलने वाला क्रियाकलाप तभी ठीक तरह चल सकता है, जब उसके पीछे किसी अतिरिक्त लाभ की आशा हो। इसके बिना शारीरिक तत्परता और मानसिक तन्मयता का गहरा एवं देर तक चलने वाला नियोजन सम्भव नहीं हो सकता। श्रमिकों को हाथों-हाथ वेतन मिलता है और भविष्य में पदोन्नति से लेकर पेंशन, आदि मिलने की आशा रहती है। इस आधार पर सुविधा-साधन उपलब्ध करने और प्रसन्नता भरा जीवनयापन करने जैसे लाभ भी ध्यान में रहते हैं। तभी यह सम्भव होता है कि श्रमिक लगातार कड़ा परिश्रम करने को सहमत न हो। इसका अभाव रहने या कमी पड़ने पर काम में मन उचटता है और विवशता में ज्यों-त्यों करने, बेगार भुगतने जैसी लकीर पिटने लगती है।

शिक्षण के सम्बन्ध में भी यही बात है। स्कूली पढ़ाई से लेकर शिल्प-कौशल तक जितने भी काम हैं, वे प्रकृति प्रेरणा के अनुरूप स्वेच्छाचारी नहीं हैं। इनसे शरीर और मन को अनुशासन एवं प्रतिबन्ध के अन्तर्गत जकड़ना पड़ता है। हाथों-हाथ उनका लाभ मिलता नहीं। इसलिए हर किसी के सामने से जी उचटने, जल्दी थकने एवं ऊब लगाने जैसी कठिनाई सामने आ खड़ी होती है। इस पर काबू न पाया जा सके तो मनुष्य अशिक्षित रहने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लदने वाले पिछड़ेपन का भार वहन करता है। प्रगति पथ अवरुद्ध रह जाता है, उपहासास्पद बनते हैं और उन सुविधा-साधनों से वंचित रहना पड़ता है।

कठिनाई का समाधान कैसे किया जाय ? इस संदर्भ में विशेषज्ञों ने शिक्षा में रुचि एवं तत्परता बनाए रहने तथा बढ़ाते चलने के मार्ग में आने वाले व्यवधान पर विशेष रूप से विचार किया है। अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऐसे प्रयोजनों में लगाने के लिए उसके माध्यम से होने वाले तात्कालिक एवं भावी लाभों का अनुभव कराते रहने से बात बन जाती है। अदूरदर्शी तात्कालिक लाभ देखते हैं और दूरदर्शियों को भविष्य की बात ध्यान में रहती है। कौन किस स्तर का है ? इनका वर्गीकरण कठिन है। ऐसी दशा में यही उचित है कि शिक्षा की प्रेरणा देने वाले, व्यवस्था बनाने वाले उस प्रयास से उपलब्ध लाभों का स्मरण विद्यार्थी को बार-बार दिलाते रहें। उपलब्धियों के सहारे जो सुविधा मिलती है, उसका प्रलोभन छोटे-से लेकर बड़े तक के लिए आकर्षक भी होती है और प्रेरणाप्रद भी। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षार्थी को जो कुछ भी सिखाया जाय उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभों का परिचय ही नहीं, अनुभव भी कराते रहा जाय। इसी आधार को अपनाने पर ही शिक्षकों, शिक्षार्थियों और शिक्षालयों को सफलता का समुचित श्रेय मिलता है।

बर्हुस फेड्रिक स्किनर, हारवर्ड विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर थे, जिनको व्यावहारिक मनोविज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। उनका मत है कि मानव व पशुओं के व्यवहार को उनके परिणामों के द्वारा आँका जाना चाहिए। इसके द्वारा अभी तक की मान्यताओं से हटकर उन्होंने अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। अभी तक व्यवहार को आन्तरिक विचार, मन की स्थिति मानसिक व भावनात्मक तत्त्वों के कार्यकलाप को प्रभावित करने वाला माना जाता था। आधुनिक व्यवहारवाद के पक्ष में इन दिनों जनमत का झुकाव बढ़ता जा रहा है, जबकि पुरानी विचारधारा के लोग स्किनर को बुरी तरह कोसते हैं। जिन दिनों स्किनर द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान खोज और विकास विभाग में कार्य कर रहे थे। उन्होंने किसी प्रकार कबूतरों को पनडुब्बी और गाएडेड मिसाइल का चालन करना सिखाया। इसके अतिरिक्त उन्हें पिंगपांग खेलना व पियानो पर साधारण धुनें बजाना भी सिखाया।

जिस युक्ति के द्वारा इस कठिन विधि को सिखाया उसे उसने 'सक्रिय अनुकूल बनाना' का नाम दिया। इसके द्वारा उनका कहना है कि किसी भी जीव-जन्तु को किसी भी कार्य के अनुकूल बनाया जा सकता है किन्तु उस कार्य को करने में उस जीव का कुछ हित भी होना चाहिए। कबूतरों को किसी विशेष प्रकार के व्यवहार करने के लिए, उन्हें उस प्रकार अनुकूलित करने के लिए किसी भी क्रिया के साथ किसी लाभ को जोड़ना होगा। इसका प्रयोग करने को स्किनर ने एक पेटी बनवाई, जिसे 'स्किनर पेटी' के नाम से जाना जाता है। इस पेटी में एक चूहा रखा गया और उसके भीतर ही एक छोटा-सा लीवर लगाया गया। चूहा यदि इस लीवर पर चढ़े तो उसके वजन से अनाज के कुछ दाने उस पेटी में गिर जाते जिनको वह खा लेता। थोड़ी ही देर में चूहे को अभ्यास हो गया, जिसको स्किनर ने 'अनुकूलित होना' नाम दिया। अब जब भी चूहे को भूख लगती तो वह उस लीवर पर चढ़ जाता और उससे जो दाने गिरते उनसे अपनी भूख मिटाता। होता क्या जो घटना (लीवर दबाने की) आकस्मिक थी, वह अब आयोजित अथवा संकल्पित घटना बन गई और उस कार्य के पीछे मिलने वाला लाभ (भोजन) छुपा है। इस प्रकार एक विशेष प्रकार का चूहे से व्यवहार करवाकर उसे अनुकूलित किया गया।

एक पशु अथवा पक्षी की तरह मनुष्य भी अपना व्यवहार उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुसार ही करता है। एक भूखा अथवा प्यासा मनुष्य वही कार्य या व्यवहार करेगा, जिससे उसकी भूख अथवा प्यास की तृप्ति हो। इसके अतिरिक्त मनुष्य के व्यवहार पर उसका पारिवारिक इतिहास व अभी की स्थिति, शिक्षा, धार्मिक अनुभव, जन्मजात गुण और सभ्यता का भी असर पड़ता है। अच्छे परिणाम का अच्छा व्यवहार व अनिच्छित परिणामों का नकारात्मक व्यवहार होगा जैसे कि किसी का हाथ बिजली के तार से छू जाय तो आवश्यक है कि उसे झटका लगे और हाथ हटा लेने पर वह कष्ट न हो आगे वह समझ लेगा और भविष्य में वैसा व्यवहार नहीं करेगा। इसी प्रकार सूर्य की असहनीय धूप से बचने के लिए छाया में आने का प्रयत्न (व्यवहार) करेगा। यदि बच्चे को ठीक से स्कूल का काम न करने पर शाला में शिक्षक के बैंत का डर है, तो वह अपना काम करके ही शाला जावेगा। अतः यह कहा जाय कि परिणाम को देखकर ही हम व्यवहार करते हैं गलत नहीं है। व्यवहारवादी का कहना है कि व्यवहार अपने अनुकूल होगा या प्रतिकूल होगा यह सब समझा जा सकता है और उस पर नियन्त्रण भी किया जा सकता है।

पुरानी विचारधारा के अनुसार मनुष्य की आन्तरिक स्थिति ही उसे व्यवहार करने को सुझाती है जबकि स्किनर का कहना है कि किसी व्यक्ति पर वातावरण का प्रभाव पहले होता है उसके बाद वह व्यवहार करता है। मनुष्य के द्वारा मनुष्य को नियन्त्रण किया जाता है। अतः मनुष्य को मनुष्य के द्वारा परिणाम को दिखाकर अपनी इच्छा के अनुकूल बनाया जा सकता है और व्यवहार करवाया जा सकता है।

स्किनर ने कहा है कि उनके प्रयोग साधारण बुद्धि वाले और मन्द बुद्धि वाले बच्चों पर सफल रहे हैं। जहाँ दूसरी तकनीक असफल रही वहाँ हमारा प्रयोग सफल रहा है। हम मनःचिकित्सा क्षेत्र को अपनाएँगे और वातरोग का इलाज भी करेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

'पढ़ाना एक कला है' अभी तक की मान्यता को स्किनर ने अब 'पढ़ाना एक विज्ञान है' कहकर प्रतिपादित किया है और चूहे और कबूतर को सिखाकर बतला दिया है कि यह एक विज्ञान है। उनका कहना है कि कुत्ते अथवा अन्य किसी पशु को किसी भी उपयोगी कार्य से सम्बन्धित कर व्यवहार कराया जा सकता है यदि उस पशु को पता लगे कि उसके इस व्यवहार करने से उसे भोजन मिलेगा। इसी विधि से कबूतर को ताश खेलना भी सिखाया जा सकता है। यदि शाला में किसी बालक को अच्छा बनाना है और व्यवहार कुशल बनाना है, तो उसे अच्छे कार्यों, समय पर आने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और बुरे कार्यों से वह दूर है, इसके लिए भी उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए, यह विधि कहीं अच्छी है, उसके बजाय कि बच्चों को प्रताड़ित किया जाय। इसी प्रकार क्लास में आकर बिना बच्चों की मनःस्थिति की ओर ध्यान दिये पढ़ाने लगे तो उसके परिणाम सर्वविदित हैं। शिक्षक की इच्छा ही नहीं विद्यार्थी का भी शिक्षा में सहयोग अपेक्षित है। इसी प्रकार विद्यार्थियों को अच्छे कार्य अथवा अभ्यास के लिए तुरन्त ही प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। चाहे मेडल द्वारा, ट्राफी द्वारा या अन्य कोई वस्तु के द्वारा। अच्छा अभ्यास करोगे तो बड़े आदमी बनोगे, यह एक दूर की बात है, जिसमें बच्चों के व्यवहार पर बहुत कम असर पड़ता है।

'बुनियादी तालीम' में बच्चों को कुछ बनाने का एक पाठ्यक्रम सम्मिलित है। इसमें बच्चे जो बनाते हैं उसका श्रेय पाते और गर्व अनुभव करते हैं। यह अच्छी पद्धति है। शिशु मन्दिरों में नाश्ता एवं खाना मिलने का प्रलोभन रहता है। कितने ही प्रयोगों में 'कमाओ और पढ़ो' की नीति अपनाई गई है और उससे पढ़ने के लिए समय कम मिलने पर भी उत्साहवृद्धि के कारण अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। यह अनुभव शिक्षा के हर क्षेत्र में सम्मिलित रखने की आवश्यकता है। ताकि शिक्षार्थी सफलता के साथ जुड़ी रहने वाली सुविधा की कल्पना करता रहे और उसमें संलग्न रहने का अनुशासन अपना सके।

शिक्षित युवा पीढ़ी की कुंठा

भारत में १८ से ३५ वर्ष के युवकों की संख्या बीस करोड़ अस्सी लाख के लगभग है। यदि प्रारम्भ से ही योजना बनाने वालों ने युवा शक्ति का प्रावधान रखकर ही योजनाओं के स्वरूप, उद्देश्य और आकार की संरचना की होती तो युवा वर्ग की बेरोजगारी अथवा अपराधों की समस्या ही न उठ खड़ी होती।

यूनेस्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'यूथ इन नाइन्टीन एट्टीज' में भी युवा पीढ़ी के आक्रोश व धैर्य चुकने की सीमा के प्रति सावधान किया गया है। रिपोर्ट में विश्व सरकारों पर आक्षेप किया गया है कि युवा पीढ़ी की समस्याएँ समझने के बजाय उसकी उपेक्षा की गई है। भारत में इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस उपेक्षा के परिणामस्वरूप युवा वर्ग में हिंसा, तोड़-फोड़ और उद्दण्डता पनप रही है। इस संकट का हल भी नाभिकीय और सौर ऊर्जा दोहन की भाँति मानवीय ऊर्जा के लिए तकनीकी योजनाएँ बनाकर किया जाना चाहिए।

आमतौर से युवक आदर्शवादी होते हैं और कुछ कर गुजरने की ललक उनके मन में होती है। किन्तु कुछ न कर पाने की असफलता के परिणामस्वरूप वे कुण्ठा और निराशा से ग्रसित होकर हिंसा पर उतारू होते हैं।

गाँव और कस्बों से आए श्रमिकों और युवकों की समस्या इससे भी अधिक गम्भीर है। ये सिनेमा, साहित्य से प्रभावित होकर पिछड़ी गन्दी बस्तियों में जाकर निवास करते हैं और उनके अनैतिक आचरण से व कार्यपद्धति से शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। यहाँ नैतिक व सांस्कृतिक शिक्षा के अभाव में अपराध और सैक्स का वातावरण इन्हें प्रभावित करता है। आते रोजगार की तलाश में हैं और अपराधी बनकर लौटते हैं। कुछ अपराधों में संलग्न रहते हैं और पकड़े जाकर कारागारों की संख्या में वृद्धि करते हैं। अब तक जितने भी अपराधों का पुलिस-रिकार्ड उपलब्ध हैं, उसमें अस्सी प्रतिशत युवकों द्वारा सैक्साजन्य उद्दण्डता, तोड़-फोड़ के कारण किए गए हैं।

समाजशास्त्रियों का मत है कि युवकों के सहज विकास के लिए पारिवारिक, सामाजिक और रोजगार शिक्षा की समन्वित पद्धति का विकास किया जाना आवश्यक है। पश्चिमी संस्कृति का अन्धानुकरण भारतीय परिवेश और मानसिकता के साथ मेल नहीं खाता और भविष्य में भी इसका तालमेल नहीं बैठ सकता। वास्तविकता यह है कि राष्ट्र निर्माण की प्रत्येक परियोजना में युवा पीढ़ी की भागीदारी, उसके महत्त्व एवं क्रियान्वयन को यदि महत्त्व दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि युवा असन्तोष रह जाय।

युवक भी सहज-सरल और संघर्षरहित जीवन जीना चाहते हैं। किन्तु उन्हें दिए गए आश्वासन और सँजोये गये सपने जब साकार होते नहीं दिखाई देते, तब उनका आक्रोश अनुशासनहीनता, उद्दण्डता और तोड़-फोड़ में परिवर्तित हो जाता है। उनके लिए ईमानदार बने रहना भी थोथी बात दिखाई देती है। आज की पंजाब समस्या के मूल में कुछ हद तक युवाओं की बेरोजगारी, योजनाबद्ध शिक्षा नीति का अभाव भी है। यहाँ उनसे सहानुभूति नहीं व्यक्त की जा रही अपितु उस मूल कारण की ओर संकेत किया जा रहा है, जो विषवृक्ष की तरह बढ़ सकता है।

जीवन-संघर्ष की विवशताओं के परिणामस्वरूप ही युवा वर्ग को पलायनवादी, उद्दण्डता के उपालम्भों का आरोप सहन करने के लिए विवश किया जाता है। अन्यथा युवा वर्ग उसी भारतीय जनसामान्य की सन्तान हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसमें ईमानदारी और जिम्मेदारी के जीवन-तत्व सदैव विद्यमान रहे हैं। अभाव उस दिशा देने वाले तन्त्र का ही रहा है एवं इसके लिए उत्तरदायी सरकार ही नहीं हम सब भी हैं।

प्रचलित शिक्षा प्रणाली की असफलता का मुख्य कारण उसमें सुसंस्कारिता का पाठ्यक्रम न जुड़े रहने का है। पहली भूल तो शिक्षाशास्त्रियों ने की कि बिना सोचे-समझे शिक्षा के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। मेडम मान्टेसरी की मान्टेसरी शिक्षा तथा किंडरगार्डन की स्थापना के दो ज्वलन्त उदाहरण जनता के सम्मुख प्रस्तुत हैं। प्राथमिक पाठशालाओं में राजनैतिक कामनाओं से प्रेरित होकर देश-प्रेम की भावनाएँ उभारी-उकसाई जाने का तात्पर्य होता है—बच्चों में संकीर्णता एवं स्वार्थपरता को बिठा देना। हिटलर ने नाजीवाद को सबल एवं सशक्त बनाने के लिए इसी कुचक्रपूर्ण नीति को क्रियान्वित किया, जिसके दुष्परिणामों से सभी लोग परिचित हैं। धार्मिक भावनाएँ रही होतीं तो विश्व-बन्धुत्व का स्वरूप बहुत पहले ही विकसित हुआ होता, बाद में जातीयता की बात आती।

शिक्षण संस्थानों में घुसी हुई उक्त विकृतियों को ध्यान में रखते हुए ईटन तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जैसुट नामक ऐसे शिक्षण केन्द्र की स्थापना की गई है। वहाँ से प्राथमिक परीक्षा पास करने का अभिप्राय बच्चे पर संस्कारों की पूरी छाप छोड़ना होता है। इसमें बच्चे को यह बताया जाता है कि किसी दूसरे देश के प्रति ध्वंस की नीति को न अपनाकर उनके साथ रचनात्मक कार्यों में हाथ बटाएँ। मेडम मान्टेसरी की भाँति उसमें अनुशासन का पाठ्यक्रम तो अवश्य जुड़ा है लेकिन सबसे मुख्य बात तो यह है कि बच्चों में संकीर्ण-स्वार्थपरता का समावेश न होने पाए। विश्वकल्याण की भावनाएँ पनपें। बच्चों को मात्र किताबी-ज्ञान तक ही सीमित नहीं रहने दिया जाता वरन् उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित हर चीज की सांगोपांग जानकारी करा देना संस्था की मुख्य जिम्मेदारी है। फलतः इसके सन्तोषजनक प्रभावी परिणाम भी देखने को मिल रहे हैं।

शिक्षा का मूल उद्देश्य मानव मात्र की चित्तवृत्तियों का परिशोधन है। परिशोधित चित्तवृत्तियों से हमारा मस्तिष्क एक सुनिश्चित मार्ग पर कार्य करने लगता है। इसी को अनुशासन भी कहा जा सकता है। किसी भी समाज का शैक्षणिक स्तर उसके अनुशासन से भलीभाँति जाना जा सकता है। आज भारतीय समाज में गिरता-अनुशासन का स्तर शैक्षणिक कमियों का ही प्रकटीकरण मात्र है। अनुशासन का सीधा सम्बन्ध हमारी प्रवृत्तियों से होता है। मस्तिष्क से इसका सम्बन्ध मानना भ्रामक है। आज के शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा एवं अनुशासन का सीधा सम्बन्ध मात्र मस्तिष्क से माना है। इसी कारण शिक्षा के क्षेत्र में अनेकों कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं।

शिक्षा का वर्तमान स्वरूप हमारे छात्रों के लिए ही नहीं, पूरे राष्ट्र के लिए एक समस्या बन गया है। मस्तिष्कीय, बौद्धिक क्षमता का विकास करने वाली वर्तमान शिक्षा आज की राष्ट्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती। इस शिक्षा पद्धति में छात्र की चित्तवृत्तियों के परिशोधन की कोई शिक्षा सन्निहित नहीं है। व्यावहारिक शिक्षा दिए बिना छात्रों में आत्मानुशासन नहीं भरा जा सकता।

अच्छा हो, समय रहते इस आवश्यकता को, इसकी महत्ता को समझा जाय। आज के बालक कल देश के नागरिक बनेंगे। विगत के बच्चे ही आज के युवा बनकर कुण्ठाग्रस्त होकर तोड़-फोड़ मचाते दिखाई देते हैं। उनके इस प्रत्यावर्तन में हमारी भी परोक्ष सहायता रही है। अभिभावक, शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्ता व सरकारी तन्त्र इन सभी का पारस्परिक समन्वय एवं अनौपचारिक शिक्षा-नीति का पूर्व से ही निर्धारण हो तो ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हो पाएगी।

शिक्षा का उद्देश्य एवं प्रयोजन बदलें

आज शिक्षा का उद्देश्य नौकरी बना हुआ है। स्कूल और कॉलेज में प्रवेश करते समय छात्रों के सामने एक ही उद्देश्य रहता है—नौकरी करना। अभिभावक भी उन्हें इसी आशा से पढ़ाते हैं कि हमारा बच्चा कोई नौकरी करेगा। शिक्षा क्षेत्र में फैला हुआ यह दृष्टिकोण न केवल अत्यन्त दोषपूर्ण ही है वरन् भगवती विद्यादेवी का एक प्रत्यक्ष अपमान भी है।

जब अँग्रेजी राज्य था, सब काम अँग्रेजी में होता था। पढ़े-लिखे लोग हिन्दुस्तान में नहीं थे—अँग्रेजों को अपना काम चलाना था, पढ़े-लिखे लोगों का सहयोग आवश्यक था। इसलिए उन्होंने शिक्षा का प्रसार तो किया पर किया इस ढंग से कि उस पढ़ाई को पूरा करके युवक केवल नौकरी के ही काम के रह जायें। जो पढ़कर स्कूल-कॉलेजों से निकलता उसे नौकरी मिल जाती। उन दिनों सरकारी नौकर होना बड़ी इज्जत की बात थी। लोग पटवारी, पतरोल, पोस्टमैन, पुलिस कान्सिटेबिल और चपरासी जैसे छोटे पदों पर काम करने वाले सरकारी कर्मचारियों से डरते थे, उनकी इज्जत करते थे और धौंस-धपड़ में आकर भेंट-पूजा भी करते थे, जिससे उन्हें वेतन के अतिरिक्त बाहरी आमदनी भी बहुत हो जाती थी। इस तरह रुतवा और दूसरे अति निर्धनों की तुलना में अच्छी आमदनी पाकर वे शिक्षित नौकरी-पेशा लोग खुश भी रहते थे। उनके घर वाले भी शिक्षा के इस चमत्कार पर सन्तुष्ट रहते थे।

आज परिस्थितियाँ जमीन-आसमान जैसी बदल गईं। अब शिक्षा का प्रसार बहुत अधिक हो चुका। लड़कों ही नहीं लड़कियों की भी एक बड़ी फौज स्कूल-कॉलेजों से हर साल निकलती है। इन सबका लक्ष्य नौकरी होता है। सरकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में जितनी जगहें थीं वे लगभग घिर चुकीं, जो रिटायर होते या मरते हैं उन्हीं की जगहें खाली होती हैं। कोई एकाध नया विभाग खुलना हुआ तो उसमें थोड़ी बहुत जगहें बढ़ जाती हैं। नौकरी चाहने वाले शिक्षितों की संख्या को देखते हुए यह जगहें 'एक अनार सौ बीमार' की कहावत चरितार्थ करती हैं। लाखों शिक्षित बेकार मारे-मारे घूमते हैं। एक दफ्तर से दूसरे में—दूसरे से तीसरे में अर्जी लिये फिरते हैं। दस-बीस जगहों की आवश्यकता कभी अखबारों में छपती है तो उसके लिए हजारों गुनी अर्जियाँ पहुँच जाती हैं। सौ रुपये की जगह के लिए एम० ए० उत्तीर्ण बेकारों की लाइन लग जाती है।

हर साल नये लड़के स्कूल-कॉलेजों की पढ़ाई समाप्त करके लाखों की संख्या में निकलते हैं। वे पिछले साल के बेकारों की संख्या को और भी अधिक बढ़ाते चले जाते हैं। इस तरह 'शिक्षितों की बेकारी' देश की एक भयानक समस्या बनती चली जा रही है। यह बेकार लड़के निराश होकर अवांछनीय कार्य करने पर उतारू होते हैं और कहना न होगा कि 'शिक्षितों के पाप' किसी भी समाज को सहज ही सर्वनाश के गर्त में गिरा सकने के लिए पर्याप्त होते हैं। अशिक्षित अपराधियों की दुष्टता एक सीमा तक ही दुष्परिणाम उत्पन्न करती है पर शिक्षितों की सूझ-बूझ तो ऐसे जाल बुनती है, जिससे कानूनी पकड़ से बचते हुए अनेक लोग विघटनात्मक दुष्प्रवृत्तियों के शिकार बनते चले जाते हैं।

अभी शिक्षा का औसत प्रतिशत २५-३० पहुँचा है। देश में अभी भी ७० प्रतिशत लोग अशिक्षित हैं। आगे शिक्षा का विकास होने वाला है। अन्य सभ्य देशों की तरह यहाँ भी दस-पाँच साल में ९० प्रतिशत लोग पढ़-लिख जाएँगे। तब भी यदि शिक्षा-क्षेत्र में फैला हुआ वर्तमान दृष्टिकोण बना रहा तो समस्या असाध्य हो जाएगी। ९० प्रतिशत शिक्षित लोग जब नौकरी चाहेंगे तो उन्हें बेचारे १० प्रतिशत असमर्थ, अशिक्षित कैसे अपना नौकर रख सकेंगे ?

संकट अभी भी चरम सीमा तक पहुँच गया है। तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले हाईस्कूल के छात्रों को कालेजों में दाखिला नहीं मिलता। हर कॉलेज प्रथम-द्वितीय श्रेणी के छात्रों को ही अपने यहाँ भर्ती करना चाहता है। तीसरी श्रेणी वालों को दुत्कार दिया जाता है। नौकरी में तो और भी अधिक मुसीबत है। तीसरी श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र—जो लगभग ६० प्रतिशत होते हैं, इण्टरव्यू तक में नहीं बुलाए जाते। अब द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्णों की भी दुर्गति बढ़ती चली जा रही है। थोड़ी-बहुत पूछ है तो प्रथम श्रेणी वालों की, जो उत्तीर्ण छात्रों में से १०-१५ प्रतिशत से अधिक नहीं होते। शेष को तो निराशा ही हाथ लगती है। कहीं उल्टी-सीधी सौ-डेढ़ सौ की नौकरी मिल गई तो उसी पर सन्तोष करके बेचारों को जिन्दगी का भार ढोना पड़ता है।

किसी जमाने में नौकरी शान-शौकत का, कमाई खुशहाली का, रौब-दौब का—माध्यम रही होगी। आज तो वह ९० प्रतिशत नौकरों के लिए अपनी स्वाधीनता और तकदीर बेच देने जैसी मुसीबत है। १०-२० प्रतिशत ही ऊँची—अच्छे वेतन की जगहें पाते हैं। कुछ कर्मचारियों को रिश्वत की आमदनी भी होती है, पर वह दिन दूर नहीं जब रिश्वतखोरी मिट जाएगी और हर कर्मचारी को अपने सूखे वेतन पर गुजारा करना पड़ेगा। बढ़ते हुए खर्च और आकाश चूमती हुई महँगाई को देखते हुए वर्तमान वेतनों की कमाई पर अपने बड़े परिवार का पालन-पोषण करना, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, दवा-दारू, ब्याह-शादी, मौत-मुसीबत का प्रबन्ध करना कितना कठिन है—इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं।

अफसरों की बात-बात पर फटकार, हर समय डरे-डरे रहना, बदली हो जाने पर जगह-जगह के चूल्हे काले करते फिरना, बच्चों की पढ़ाई का सिलसिला बिगाड़ना, कहीं भी चिरस्थायी सच्चे हितैषी मित्र उत्पन्न न कर सकना कितनी कठिनाई भरी बातें हैं ? खानाबदोशों की-सी मारे-मारे फिरने वाली जिन्दगी भी भला कोई जिन्दगी है ? नौकरी-पेशा करने वालों को क्या कभी कुटुम्ब-परिवार के साथ रहने का आनन्द मिल सकता है ? चार भाई दो बहन विवाह होते ही—नौकरी लगते ही—तितर-बितर हो गए। कोई पूरब गया, कोई पश्चिम। कभी विवाह-शादियों में इकट्ठे हो लिए तो गनीमत अन्यथा यदा-कदा चिट्ठी-पत्री से ही एक-दूसरे की कुशल क्षेम पूछ लेते हैं। माँ-बाप को बुढ़ापा काटने के लिए सोचना पड़ता है कि कहाँ रहें, कहाँ न रहें ? इस स्थिति की तुलना उन लोगों से कीजिए जो कृषि-व्यवसाय आदि स्वतन्त्र धन्धा अपनाकर एक ही नगर में रहते हैं और सुख-दुःख में सारे कुटुम्ब-परिवार का सहयोग पाकर मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से गर्व, साहस और सहयोग का बड़ा सुखद जीवन व्यतीत करते हैं।

शिक्षा नौकरी की दृष्टि से प्राप्त करना किसी जमाने में सुविधाजनक रहा होगा—तब के लिए वह बात ठीक थी पर आज परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गई हैं। ऐसी दशा में छात्रों को और अभिभावकों को भी परिस्थितियों के अनुरूप अपना विचार करने का ढर्रा बदलना चाहिए। पढ़ना और पढ़ाना तो हर किसी के लिए उचित है, पर उसमें मिला हुआ नौकरी वाला लक्ष्य सर्वथा हटा देना चाहिए। संसार भर में शिक्षा का प्रसार है। शिक्षित लोग अपने जीवनयापन का स्वतन्त्र क्षेत्र ढूँढ़ते हैं। नौकरी तो बहुत कम लोग पसन्द करते हैं। स्वतन्त्र व्यवसाय में जीवन को स्वतन्त्र रीति-नीति से बिताने का अवसर मिलता है। मर्जी के अनुसार काम करने, बदलने या बन्द की सुविधा रहती है। फिर भाग्य भी बिकता नहीं है। अपने पुरुषार्थ एवं प्रयत्न के अनुरूप अधिक उपार्जन करने और अधिक उन्नति करने की सुविधा रहती है। पराधीनता की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुलना में स्वाधीनता का जो आनन्द है। थोड़े पैसों के अधिक लाभ के बदले उसे बेच नहीं दिया जाना चाहिए।

युग-परिवर्तन तथ्य के संदर्भ में शिक्षा-क्षेत्र में समाए हुए इस अनुपयुक्त दृष्टिकोण को हटाया जाना आवश्यक है। उसके स्थान पर यह मान्यता प्रतिष्ठापित की जानी चाहिए कि विद्या का उद्देश्य व्यक्तित्व को प्रखर एवं प्रसुप्त क्षमताओं को विकसित करना ही है। यह लाभ इतना बड़ा है जिसके ऊपर नौकरी लगने के तुच्छ प्रतिफल को निछावर करके फैंका जा सकता है।

हमें जानना चाहिए कि मनुष्य के अन्दर अगणित शक्तियाँ और सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं। यदि उन्हें समुचित रीति से विकसित एवं परिपुष्ट करने का अवसर मिल जाय तो साधारण परिवार तथा परिस्थिति में पैदा हुआ व्यक्ति भी उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है। अमेरिका के राष्ट्रपतियों में से आधे से अधिक ऐसी परिस्थितियों में जन्में थे, जिनमें यदि हमारे जैसा निराशा का वातावरण रहा होता तो वे बेचारे मेहनत-मजदूरी करके किसी प्रकार पेट पालने और जिन्दा रहने में ही समर्थ हो सके होते। पर उन्होंने अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जगाया। गुण, कर्म, स्वभाव को उत्कृष्ट स्तर पर ढाला, अपनी भावनाओं, प्रवृत्तियों एवं आदतों को सँभाला, गतिविधियों को नियन्त्रित एवं व्यवस्थित किया और जीवन की दिशा निर्धारित करके उस पर साहस एवं संकल्पपूर्वक कदम बढ़ाया। यही रीति-नीति थी, जिसके आधार पर वे आगे बढ़ सके। यही रीति-नीति है जिसे अपनाकर संसार के हर महापुरुष ने हर सफल एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति ने गर्व-गौरव, प्रकाश और प्रेरणाभरी विभूतियों का वरण किया है। व्यक्तित्व का निर्माण ही व्यक्तित्व का सच्चा आधार है। इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय, उतनी ही जल्दी हम सर्वतोमुखी प्रगति की दिशा में अग्रसर होने का लाभ लेंगे।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य यही है। प्राचीनकाल में हर शिक्षार्थी का पढ़ना-पढ़ाना इसी दृष्टि से होता था। अब समय आ गया है जबकि हमारी शिक्षा का उद्देश्य एवं स्वरूप इसी आधार पर विनिर्मित किया जाए। शिक्षा की सफलता इस बात में है कि शिक्षित व्यक्ति न केवल समुचित आजीविका ही उपार्जित करे, वरन् अपने पारिवारिक जीवन में स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न करे। पत्नी के लिए देवता, बच्चों के लिए आचार्य, माता-पिता के लिए सन्तोष और भाई-बहनों के लिए आधार-अवलम्बन बनकर रहे। शरीर से स्वस्थ और मन से परिपुष्ट प्रमाणित हो। हर किसी का प्रियपात्र, विश्वासपात्र और श्रद्धापात्र बने। ऐसा प्रकाशवान जीवन जिए, जिससे अनेकों प्रेरणा प्राप्त करें—शिक्षा का यही वास्तविक उद्देश्य हो सकता है। हमारी शिक्षा-व्यवस्था इसी स्तर की होनी चाहिए।

शिक्षा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप हो

जिन देशों के पास अपने साधन और आधार नहीं होते, उन्हें बाहर से आयात करने पड़ते हैं। खाड़ी देशों में अपना अन्न-जल नहीं है, तो उन्हें वे बाहर से मँगाने पड़ते हैं, पर रूस, अमेरिका जैसे अन्न बाहुल्य वाले देश भी यदि उन्हें बाहर से मँगाने लगें तो यह आश्चर्य की बात है।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत की स्थिति ऐसी नहीं है कि उसको शताब्दी पुरानी मैकाले की बताई हुई लीक पर ही चलना पड़े एवं उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं हो। इस क्षेत्र में भी हमारा कुछ अपना है और वह इतना कमजोर नहीं है कि प्राचीनकाल की तरह जगद्गुरु बनने की योग्यता न सही, कम से कम अपनी निज की सामयिक आवश्यकताएँ तो पूरी कर सकें।

क्या पढ़ा जाय ? कितना पढ़ा जाय ? क्यों पढ़ा जाय ? इस प्रश्न के साथ ही यह सवाल भी जुड़ता है कि कौन पढ़ाये और किस प्रकार पढ़ाये ? इन प्रश्नों का सही उत्तर समय की माँग है। यदि यह निरीक्षण-परीक्षण किए बिना जो चलता है, उसे ही चलने देने का अपना मानसिक दिवालियापन दिखाया जाएगा, तो यह उचित न होगा। सिद्धान्तविहीन शिक्षा छात्रों को, उनके अभिभावकों और साथ ही पूरे समाज को हैरान करेगी, कर भी रही है।

शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिए कि बच्चे जब जीवन क्षेत्र में प्रवेश करने योग्य हों तो उन्हें स्वावलम्बी और सुसंस्कारी विकसित किया जाय। उन्हें मात्र नौकरी ही एकमात्र अवलम्बन न दीखे। उतने छोटे दायरे में ही उनको जीवनयापन करने के लिए नौकरी पर अवलम्बित न रहना पड़े। बढ़ती हुई आबादी और बढ़ती हुई शिक्षा संस्थाओं को देखते हुए यह सम्भव नहीं कि सभी शिक्षितों को नौकरी मिल सके। ऐसी दशा में उनके लिए गृह उद्योगों में लगाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिये। कुटीर उद्योगों का एक निश्चित क्षेत्र होना चाहिए, जिसमें बड़े कारखाने प्रवेश न करने पाएँ अन्यथा विशालकाय मशीनों की प्रतिस्पर्द्धा में एक भी कुटीर उद्योग टिक न सकेगा। कच्चा माल देने और बना हुआ लेने, खपाने के लिए सहकारी समितियों को यह दायित्व सौंपा जाना चाहिए।

सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन के लिए अलग से प्रयास किया जाय। स्कूलों का वातावरण और अनुशासन ऐसा हो, जिस साँचे में ढलकर शिक्षार्थी नीतिवान और पराक्रमी बनकर निकलें। छात्रों के व्यक्तित्व को परिष्कृत करने की विधि-व्यवस्था भी हमारे पाठ्यक्रम का अविच्छिन्न अंग होनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रयोजन में शिक्षकों और अभिभावकों का मिला-जुला प्रयास चलना चाहिए क्योंकि विद्यार्थी को दोनों ही वातावरणों में रहना पड़ता है। वह घर की पाठशाला में भी बहुत कुछ पढ़ता है। विशेषतया गुण-कर्म-स्वभाव का निर्माण तो प्राय: घरेलू क्षेत्र में ही होता है। घर और पाठशाला के संचालकों के बीच ऐसा ताल-मेल रहना चाहिए कि यदि कहीं कोई दुर्गुण पनप रहा हो तो उसे समय रहते सँभाला जा सके।

पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे विषय हों, जो भावी जीवन की समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझने में काम आएँ। उनका व्यवहार में उपयोग हो सके। इसके लिए वर्तमान और उससे भी अधिक भविष्य सम्बन्धी परिस्थितियों का ज्ञान कराया जाना चाहिए। इतिहास को छोटी-छोटी कहानियों के रूप में संक्षेप में ही पढ़ाया जा सकता है। राजनीतिज्ञों को संसार भर के संविधान और वहाँ की समस्याओं को जानना चाहिए। विशेषज्ञ बनने वालों के लिए पृथक से एकेडेमियाँ हों, किन्तु सामान्य स्तर के छात्रों को जिन विषयों से कभी काम नहीं पड़ने वाला है, उनका बोझ उन पर लादने से क्या लाभ ? इससे तो कहीं अच्छा यह है कि उन्हें शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों की ऐसी जानकारी दी जाय, जिसके आधार पर उन्हें भावी जीवन के समाधान में कुछ सहायता मिल सके। वह अपने कर्तव्यों और अधिकारों की परिधि से भली प्रकार अवगत होकर सुयोग्य नागरिक बन सकें।

शिक्षा पर खर्च होने वाली राशि एक ओर बढ़ती जाती है। दूसरी ओर अशिक्षितों की गणना भी पहले की अपेक्षा कई गुनी बढ़ रही है। इसका एक कारण जनसंख्या की वृद्धि भी हो सकती है, पर दूसरा उससे भी बड़ा कारण यह है कि कॉलेजों, विश्वविद्यालयों पर खर्च अधिक हो रहा है, जबकि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के स्कूलों की संख्या बढ़नी चाहिए थी। स्नातक उतने ही बनाए जाएँ, जिनकी भविष्य में आवश्यकता पड़े, जो खप सकें। जिन्हें बेरोजगारी का शिकार न बनना पड़े। इस थोड़े-से परिवर्तन से शिक्षितों की बेकारी और उसके कारण उत्पन्न होने वाली विभीषिका से सहज ही निपटा जा सकता है।

शिक्षकों के लिए इतना ही पर्याप्त न हो कि वे अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण कराते रहें। उन्हें अधिक वेतन पाने, अधिक ट्यूशन बटोरने की ही फिकर में ही न डूबे रहना चाहिए वरन् यह भी अनुभव करना चाहिए कि वे उस नई पीढ़ी के निर्माता हैं, जिसे अगले दिनों देश की बागडोर सँभालनी है। इसके लिए उन्हें पढ़ाने की कला में ही निष्णात नहीं होना चाहिए वरन् इस तथ्य पर भी ध्यान रखना चाहिए कि विद्यालय के वातावरण में उस सुसंस्कारिता का भरपूर समावेश हो, जो कच्ची आयु के बालकों का स्वभाव एवं व्यक्तित्व उत्कृष्ट बनाने के लिये आवश्यक है। इसके लिए अभिभावकों और अध्यापकों का सहयोग एक-दूसरे के प्रयासों में अधिक उत्कृष्टता लाने की भूमिका ठीक प्रकार निभा सकता है।

स्कूलों में नैतिक शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक शिक्षा की ऐसी व्यवस्था हो जिससे वह कमाई न सही, घरेलू टूट-फूट और शोभा-सज्जा में योगदान दे सके। अपनी दिनचर्या को सुव्यवस्थित रख सके। बालकों को खेलकूदों, शारीरिक और मानसिक विकास का भी अवसर मिलना चाहिए। संगीत, वक्तृत्व जैसे विषयों का पाठ्य-विषयों में अनिवार्य सम्मिश्रण रहे।

इतनी जानकारियों वाले अध्यापकों की तैयारी नये सिरे से करनी होगी। अभी तो वे पुस्तकें पढ़ाने, रटाने भर की ड्यूटी पूरी करते हैं। सम्बद्ध विषयों में उनकी सीधी जानकारी नहीं होती। इसकी समुचित उपलब्धि के लिए अध्यापकों का ट्रेनिंग काल बढ़ाया जाय और उन्हें तभी काम सौंपा जाय, जब वे सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न होकर छात्रों को परिष्कृत व्यक्तित्व प्रदान करने की योग्यता प्राप्त कर सकें।

शिक्षा को एक ढर्रे पर चलने वाली फैक्ट्री की तरह नहीं चलना चाहिए। आज तो विद्यार्थी कच्चा माल, शिक्षक मजदूर और पाठशाला कारखाने ही होते हैं। छात्र फैक्ट्री में विनिर्मित वस्तु की तरह बनकर निकलता है, किन्तु संसाररूपी बाजार में कोई उसका खरीददार नहीं होता।

विदेशों में क्या होता है ? इसके लिए आँखें बन्द करके अन्धानुकरण की आवश्यकता नहीं। उसके पीछे अपने देश की परिस्थिति और संस्कृति का भी समावेश होना चाहिए। जिन समस्याओं का हमें सामना करना पड़ रहा है या अगले दिनों करना पड़ेगा, उनसे निपटने की तैयारी में भी हमारे छात्र आवश्यक जानकारी और तैयारी कर चुके हैं या नहीं, यह देखना-परखना भी आवश्यक होना चाहिए।

वार्षिक परीक्षा में किसी प्रकार उत्तीर्ण होने और प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की पद्धति में भी भारी परिवर्तन की आवश्यकता है। उसमें छात्र के कार्यकाल में जो काम हुआ और जैसा आचरण रहा, उसका निष्कर्ष भी साथ में जुड़ना चाहिए। वार्षिक न होकर परीक्षाएँ मासिक रूप से होती रहें तो नकल करने-कराने का जो अनाचार चल पड़ा है उसकी गुंजाइश न रहेगी। इस प्रकार शिक्षण पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

शिक्षा प्रणाली प्रतिष्ठा योग्य बने

मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं में दो बातें मुख्य हैं—एक स्वस्थ शरीर, दूसरा स्वच्छ मन। स्वच्छ मन से तात्पर्य है व्यक्ति का गुण, कर्म, स्वभाव परिष्कृत होना। इन दोनों को प्राप्त करने के उपरान्त निर्वाह और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मान समुचित मात्रा में मिलने लगता है। इन्हीं उपलब्धियों के आधार पर मनुष्य को सम्मानास्पद माना जाता है। इन मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने की क्षमता जिस आधार पर उपलब्ध होती है, उसे शिक्षा या विद्या कहते हैं। हमारे विद्यालयों का लक्ष्य शिक्षार्थियों में इन्हीं विशेषताओं को उत्पन्न करना होना चाहिए।

अनेक विषयों की जानकारी होना अच्छी बात है। भूगोल, इतिहास, विज्ञान, गणित आदि को जानने से मनुष्य के ज्ञान की परिधि बढ़ती है, पर वे मौलिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं, जिनके आधार पर निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके और सम्पर्क क्षेत्र में सम्मान और सहयोग पाया जा सके। इस अभाव के रहते हमारी शिक्षा अधूरी ही रह जाती है। अतः हर शिक्षित व्यक्ति को नौकरी मिल सके, यह सम्भव नहीं रहा। इस प्रकार अनेक विषयों की अनेक जानकारियाँ प्राप्त कर लेने पर कोई सम्मानास्पद बन सके या प्रामाणिक माना जा सके, यह संभव नहीं। अतएव पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो व्यक्तित्व विकसित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

सद्गुणों को विकसित करना आवश्यक है। विद्यालयों का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो न केवल छात्रों को बहुज्ञ बनाए वरन् यह तथ्य भी जुड़ा रहना चाहिए कि उनका व्यक्तित्व प्रामाणिक एवं सम्मानास्पद बने सके। ऐसे ही सुसंस्कृत लोगों को दूसरों का सहयोग मिलता है। उन्हें आजीविका उपार्जन सूत्र भी सरलतापूर्वक मिल जाते हैं। साथ ही विचारशील मनुष्यों की तरह जीवनचर्या बना लेने पर स्वस्थ भी रहते हैं। असंयम से ही बीमारियों के कुचक्र में फँसना पड़ता है। जो संयम और अनुशासन का ध्यान रखते हैं। उनकी न केवल स्वस्थता वरन् प्रामाणिकता भी बनी रहती है।

मनुष्य की एक इच्छा सम्मान भी है। वह सज-धज से नहीं मिलता। अपव्ययी ठाठ-बाट बनाने से भी उसकी उपलब्धि नहीं होती। बहु पाण्डित्य प्राप्त कर लेने पर भी यह सम्भव नहीं। शालीनता और सज्जनता के गुणों को अपनाने पर ही मनुष्य की वरिष्ठता का मूल्यांकन होता है और हर जगह उसे स्नेह-सम्मान मिलता है।

घरों में ऐसा वातावरण नहीं होता, अभिभावकों का यह विषय भी नहीं है कि चिन्तन और चरित्र की त्रुटियों का कारण एवं निवारण समझें। यह कार्य सुयोग्य अध्यापकों का है कि वे पाठ्यक्रम के साथ-साथ इन विषयों का भी समावेश रखें। अपना निज का चरित्र ऐसा रखें, जिनसे छात्रों के मन में सहज श्रद्धा उपजे और उनकी गतिविधियों के, शिष्टाचार के अनुकरण से अपना व्यक्तित्व समुन्नत बनाने की प्रेरणा प्राप्त हो।

बच्चों के अभिभावक आशा करते हैं कि सुशिक्षित बनने के उपरान्त उनके बच्चे निर्वाह के लिए उपयुक्त मार्ग खोज सकेंगे। समाज के अच्छे सदस्य और देश के प्रतिष्ठित नागरिक बन सकेंगे।

सरकार के द्वारा शिक्षातन्त्र चलाया जाता है। करोड़ों की राशि व्यय होती है, जिसे जनता प्रसन्नतापूर्वक देते हुए यह आशा करती है कि विद्या केन्द्रों से निकले हुए छात्र अपना जीवनयापन समुचित रीति से कर सकेंगे और देश के लिए सौभाग्य बनकर रहेंगे। छात्रों का परिवार उन्हें भरती करने के दिन से ही बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाता है। पढ़ाई का खर्च वहन करता है। इस प्रयास के पीछे उनका यह आशा रखना उचित ही है कि पढ़ाई पूरी करने के उपरान्त हमारे बच्चे खिले हुए फूल की तरह निकलेंगे और अर्ध शोभा से भरे उद्यान को सौभाग्यशाली सिद्ध करेंगे। साथ ही समूचे परिवार के सदस्यों को भी अपनी प्रतिभा से लाभान्वित करेंगे।

यदि इन आशाओं में से एक भी पूरी न हो तो उसका दोष शिक्षकों और शिक्षा प्रणाली को ही दिया जायगा। उचित यही है कि शिक्षार्थी, शिक्षक और शिक्षा संस्थान सभी प्रतिष्ठा के पात्र बनें। हर कोई उस उपयुक्त शिक्षा प्रणाली की सराहना करे। शिक्षा के साथ नैतिकता और औद्योगिक शिक्षण का समावेश होने पर छात्र न केवल निष्ठावान एवं स्वावलम्बन से परिपूर्ण होकर विद्यालयों से बाहर निकलेंगे वरन् उससे समाज तथा राष्ट्र का उत्थान भी भली प्रकार हो सकेगा।

शिक्षा ऐसी हो, जो काम आए

सरकारी शिक्षण पद्धति जैसी भी कुछ चल रही है, उसमें समयानुरूप परिवर्तन की बात उन राजनेताओं पर छोड़ देना चाहिए, जो उस तन्त्र को चलाते और पाठ्य-पुस्तकों का निर्धारण करते हैं। सर्वसाधारण के लिए उस परिवर्तन का आन्दोलन खड़ा करने की अपेक्षा-यह अच्छा है कि जिस प्रकार की उपयुक्तता-आवश्यकता समझी जाती है, उसे स्वयं कार्यान्वित करने के लिए यथासम्भव कदम उठाएँ

गाँधीजी के सर्वोदय कार्यक्रम इसी आधार पर बने और चले थे। ऐलोपैथी के विरोध में उन्होंने उरुली कांचन का प्राकृतिक चिकित्सा आश्रम बनाया था और मिलों से झगड़ने की अपेक्षा चर्खा आन्दोलन को गति दी थी। रचनात्मक कार्यक्रम खड़े करने की अपनी विशेषता है। उसके पीछे कुछ कर गुजरने वाले कर्मठों की क्षमता निखरती है और आत्मविश्वास बढ़ता है। जबकि नुक्ता-चीनी करते रहने और दोष निकालते रहने वालों को झंझट खड़े करने के अतिरिक्त कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण जैसा हाथ नहीं लगता।

वर्तमान शिक्षा के बारे में यह तथ्य सर्वविदित है कि अँग्रेजी शासन के दिनों, अँग्रेजी भाषी बाबू लोग तैयार करने की दृष्टि से इसका ढाँचा बनाया और प्रचलन किया गया। उन दिनों अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में वह प्रणाली उपयुक्त सिद्ध हुई। तब से लेकर अब तक वही ढर्रा चला आ रहा है। अपने लोगों में से कितने ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षाविद इसी विभाग का संचालन करते रहे, पर उन्होंने बदली हुई परिस्थितियों को समझने और तदनुकूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि हमारे बच्चे उस भारी और खर्चीले छकड़े को यथावत खींचते चले जाते हैं और निरर्थकता सामने आती है, तो सिर धुनकर पछताते हैं।

अब हर साल स्कूल-कॉलेजों से इतने विद्यार्थी निकलते हैं कि उन सबकी इच्छा के अनुरूप नौकरी मिलना सर्वथा असम्भव हो गया है। पारिवारिक परम्परा के कृषि, शिल्प, व्यवसाय उन्हें सुहाते नहीं हैं। श्रम भी अधिक पड़ता है और जिस साहबी ठाठ-बाट की हवा पढ़ाई के दिनों लगी, उसकी पूर्ति का भी कोई तुक नहीं बैठता। उनके अनुरूप काम नहीं मिलता। काम के अनुरूप वे फिट नहीं बैठते। ऐसी दशा में बेकारी के असमंजस भरे दिन उन्हें गुजारने पड़ते हैं। इन विपन्न दिनों में वे अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनाने से लेकर जो कुछ भला-बुरा सूझता है, कर गुजरते हैं।

कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने में प्रायः १४ वर्ष लगते हैं। खाने, पहनने, जेब खर्च, पुस्तकें, फीस आदि को मिलाकर औसत २००/ रुपए मासिक खर्च जोड़ा जाये तो ढाई हजार प्रति वर्ष के हिसाब से ३५ हजार बैठते हैं। खर्च होने वाली राशि का ब्याज जोड़ा जाय, तो वह सत्तर होती है। उसे डिपोजिट में जमा कर दिया जाता, तो प्रायः ८०० रुपया मासिक ब्याज सौ पीढ़ी तक मिलती रहती और जब चाहा जाता, वह धन लौटाया जा सकता था। इतने लम्बे समय सिरखाऊ श्रम और वजनदार धन लगाने के उपरान्त भी बेकारी, कुढ़न और पश्चाताप ही हाथ लगे, तो समझना चाहिए कि कहीं कोई बड़ी भूल हो गई। कुछ नहीं तो इसके बदले जीवनोपयोगी ज्ञान और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व तो हाथ लगना ही चाहिए। इस दृष्टि से भी उपलब्ध शिक्षा आवारा जैसी प्रतीत होती है।

जीवनोपयोगी ज्ञान में स्वास्थ्य-संरक्षण, मानसिक सन्तुलन, व्यवहार-कौशल, पारिवारिक-सद्भाव जैसी गुण, कर्म, आलस्य,प्रमाद, उच्छृंखलता, अहंता जैसे दुर्गुणों का तो समापन होना ही चाहिए। व्यक्ति और समाज के समक्ष उपस्थित अनेकानेक समस्याओं का स्वरूप, कारण और निवारण से तो अवगत होना ही चाहिए। जिन्हें इन विषयों की आवश्यक जानकारी न हो, उसे अनपढ़ों में ही समझना चाहिए, भले ही उसने किसी भी कक्षा तक पढ़ लिया हो।

अच्छा हो कि विचारशील लोग आलोचना करते रहने की अपेक्षा ऐसा शिक्षातन्त्र खड़ा करें, जो बिना सरकारी सहायता के भी चल सके। जिसमें उपलब्धियाँ प्राप्त करना आवश्यक न हो, उसे चलाने के लिए रिटायर्ड लोग भी काम दे सकते हैं। मिस्त्री, कारीगरों से भी काम चलाया जा सकता है। इसमें आधा समय जीवन में काम आने वाले विषयों का पुस्तकीय ज्ञान और आधे में आजीविका उपार्जन के लिए अभ्यास-श्रम कराया जाय। किसी को इतिहास, भूगोल जैसे विषयों में विशेष रुचि हो, तो वह उसकी पूर्ति विद्यालय में रहने वाली चुनी हुई पुस्तकों के माध्यम से करता रह सकता है।

परीक्षा साप्ताहिक या मासिक रूप से होती रहे, जिससे प्रगति का अनुमान लगता रहे। वार्षिक परीक्षा पद्धति ही दोषपूर्ण है। साल भर मटरगश्ती करने वाले लड़के अनैतिक तिकड़में भिड़ाकर पास होने की कोशिश करते हैं। कुन्जियों, गैस पेपरों से भी बहुत कुछ काम चल जाता है। इस प्रकार उत्तीर्ण होने वाले लड़के भी योग्यता की दृष्टि से अयोग्य ही पाए जाते हैं। स्कूल-कॉलेजों का वातावरण जैसा उच्छृंखल और खर्चीला है, वह भी किसी से छिपा नहीं है। समानान्तर शिक्षातन्त्र खड़े करने वालों के विद्यालयों और छात्रावासों का वातावरण ऐसा हो, जिसमें नियमितता, अनुशासन, सुव्यवस्था, परिश्रम, खेलकूद आदि का समावेश रहे। फीस देकर और महँगा रहन-सहन वहन करने पर जितना खर्च आता है, उतना ही मासिक व्यय वहन करने भर से समानान्तर शिक्षा का काम चल सकता है। इसके लिए अच्छा हो कि धर्मशाला वाले इन विद्यालयों के लिए अपने भवन दे दें। मुफ्त में समर्थों को भी खाना खिलाने या ठहराने से मुफ्तखोरी की बुराई ही बढ़ती है। किराये से या बिना किराये से लेने की बात सोचनी चाहिए। इनके लिए उपरोक्त विषयों की कामचलाऊ पुस्तकों के उपयोगी अध्याय पाठ्यक्रम में रखे जा सकते हैं या अपनी निज की पाठ्य-पद्धति रखी जा सकती है, जैसा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन या प्रयाग महिला विद्यापीठ ने अपनी-अपनी रखी थी। इसके लिए विद्यार्थी प्राप्त करने के लिए घर-घर जाना होगा और समझाना होगा कि वर्तमान परिस्थितियों में बच्चों को सरकारी नौकरियों की दृष्टि से पढ़ाना सर्वथा अदूरदर्शिता है। अगले दिन शिल्प, उद्योग और व्यवसाय के हैं, उसी दिशा में सोचने और गुजारा चलाने की बात सोचनी चाहिए। सबसे बड़ी बात है, बच्चों को व्यवहारकुशल एवं प्रतिभावान व्यक्तित्व विनिर्मित करने की। इसके लिए समानान्तर विद्यालयों का ढाँचा खड़ा करना ही बुद्धिमत्तापूर्ण हो सकता है, जो इन्हें खड़ा कर सकेंगे, वे एक बड़ा मिल खोलने या चलाने से अधिक यशस्वी होंगे।

सरकारी पढ़ाई में सबसे बड़ा दोष यह है कि निरर्थक विषयों की तोता रटन्त करनी पड़ती है। उस श्रम के भविष्य में कुछ काम न आने की बात सोचकर शिक्षार्थी ऊबते और खुराफातों की ओर मन चलाते हैं। यदि काम में आने वाले और जीवन को प्रगतिशील बनाने वाले विषय पढ़ने पड़ें, तो उनमें रुचि बढ़ेगी और मस्तिष्कीय विकास को सहज ही असाधारण लाभ मिलेगा। सरकारी प्रमाण-पत्रों का बाजार रेट अब निरन्तर गिरता जा रहा है। उसकी ओर से हाथ खींचकर काम आने वाली शिक्षा पर ध्यान दिया जाय, तो पढ़ाई छोड़ने के बाद किसी को पछताने या असमंजस में पड़ने की आवश्यकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न पड़ेगी—यह समझाया जा सके और विद्यालय का स्वरूप आकर्षक बनाया जाय, तो निश्चय ही पर्याप्त संख्या में विद्यार्थी मिलने लगेंगे। कक्षा ६ से १० तक चार वर्ष का कोर्स पर्याप्त है या १८ वर्ष की आयु होने तक का प्रशिक्षण भारत जैसे गरीब देश के लिए पर्याप्त हो सकता है।

लड़कों की भाँति लड़कियों के लिए भी समानान्तर शिक्षा नितान्त आवश्यक है। सरकारी स्कूलों में पाँचवीं कक्षा तक लड़के-लड़की साथ-साथ पढ़ें। इसके उपरान्त उनके भावी जीवन को ध्यान में रखते हुए, पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाये और ऐसे ही वातावरण में उन्हें पढ़ने का प्रबन्ध किया जाय। लड़कों को समाज सम्पर्क रखने के लिए व्यवहारकुशलता और आजीविका उपार्जन के लिए आरम्भ से ही अपना ध्यान मोड़ना और तदनुरूप पढ़ने में श्रम, समय और धन लगाना चाहिए। लड़कियों का कार्यक्षेत्र परिवार संचालन है। ये विवाहित-अविवाहित जिस भी स्थिति में रहें, उन्हें परिवार संस्था की सुयोग्य संचालिका-शिक्षिका बनना चाहिए। सरकारी नौकरियों के फेर में उन्हें भी अन्धी दौड़ दौड़ना नहीं चाहिए। बच्चों व घर को अस्त-व्यस्त करके ही महिलाएँ नौकरी कर सकती हैं। फिर अफसरों के उचित-अनुचित दबाव न मानने पर ऐसी जगह ट्रांसफर पर जाना पड़ता है, जहाँ जिन्दगी ही दूभर हो जाए।

गृह विज्ञान वर्तमान विज्ञानों में सबसे बढ़कर और सबसे महत्त्वपूर्ण है। समाज को नये नागरिक यदि शानदार स्तर के बनाकर दिए जा सकें। एक परिवार को सुव्यवस्थापूर्वक चलाते हुए अनेक प्रकृति के लोगों को उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श चरित्र की दिशा में बढ़ाया जा सके, तो यह एक बहुत बड़ी बात है। यह कार्य प्रधानतया महिलाएँ कर सकती हैं। बच्चों के साथ दिन भर और बड़ों के साथ १८ घण्टे रहती हैं, इस बीच वे घर-गृहस्थी के सामान्य काम करती हुई भी यदि व्यक्तित्व निखारने वाली प्रेरणा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से देती रहें, तो वे अपने कार्यक्षेत्र को हीरे-मोतियों से सजा हुआ बना सकती हैं।

गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित इतनी अधिक समस्याएँ हैं, जिन्हें लड़कों के कार्यक्षेत्र से किसी भी प्रकार कम नहीं समझा जा सकता। गृह प्रबन्ध को ठीक तरह चलाने, विभिन्न प्रवृत्ति के चित्र-विचित्र स्वभाव वालों को मिठास की आग में तपाकर, यदि टेढ़े से सीधा किया जा सके तो उस कौशल की मुक्त कण्ठ से सराहना ही की जायेगी। गृहलक्ष्मी स्तर का बजट बनाकर घर चलाने वाली महिलाओं के घर में दरिद्रता फटकने भी नहीं पाती।

गर्भावस्था और शिशु-पालन की मुसीबत ऐसी है, जिसके सम्बन्ध में समुचित जानकारी रहने पर ही अपने और बच्चे के प्राण बचते हैं। दस वर्ष की आयु तक के बच्चे प्राय: माँ से ही चिपके रहते हैं। इस अवधि में ही बालकों को गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से मदालसा की तरह संस्कारवान बनाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में महिलाओं की ही भूमिका सर्वोपरि होती है। परिवार छोटा होने पर भी एक पूरा साम्राज्य है। उसका सुसंचालन उन नारियों के लिए ही सम्भव है, जिन्हें पुरातनकाल में गृहलक्ष्मी और नाम के साथ देवी शब्द जोड़कर उनकी गरिमा को वरिष्ठ बताया जाता रहा है।

लड़कियों की भी समानान्तर व्यवस्था होनी चाहिए। व्यावहारिक ज्ञान और अभ्यास का जिसमें समावेश हो, उसी को नारी के लिए उपयुक्त शिक्षा कहा जा सकता है। इसके लिए कदाचित नया पाठयक्रम ही बनाना या छापना पड़े। नोट लिखकर भी ऐसी शिक्षा अनुभवी शिक्षक इन जानकारियों की दे सकते हैं। जिस-तिस पुस्तक के कुछ अध्याय भी कुछ काम दे सकते हैं। लड़कियों की शिक्षा गृहलक्ष्मी स्तर की होनी चाहिए। यह किस प्रकार बन पड़े ? यह अपनी बच्चियों के हित में स्वयं ही सोचना चाहिए और सोचते ही न रहकर उसका ऐसा ढाँचा खड़ा करना चाहिए, जिसमें पढ़कर निकली हुई लड़कियाँ गृह और सुसराल में भरपूर सम्मान, यश एवं स्नेह प्राप्त कर सकें।

ऐसे कन्या विद्यालयों में छठी कक्षा से लेकर दसवीं तक का प्रबन्ध किया जाये और अठारह वर्ष की आयु होने तक इसी प्रशिक्षण में पढ़ने के साथ-साथ पढ़ाने के काम में भी लगाए रखी जाएँ। उन्हें ऐसे गृह उद्योग भी सिखाए जाएँ जिससे वे आजीविका उपार्जन करने में सफल रहें और स्वावलम्बी बनें। बिना नौकरी किए ही समय पड़ने पर भली प्रकार काम चला सकें। यही आज की शिक्षा का स्वरूप लड़के-लड़कियों के लिए बनाया जाना चाहिए। यह कार्य समजासेवी संस्थाएँ ही कर सकती हैं। इस दिशा में अब अधिक देरी न कर शीघ्र कदम उठा लेना ही श्रेयस्कर है।

सुशिक्षित की सही पहचान

महान शिक्षाशास्त्री और कोलम्बिया विश्वविद्यालय अमरीका के कुलपति श्री ग्रेसन कर्क को एक बार "सुशिक्षित कहलाने का अधिकार किसे दिया जाय ?" इस विषय पर विचार व्यक्त करने के लिए उन्हें न्यूयार्क शहर में आमन्त्रित किया गया। भाषण और विचारपूर्ण अभिव्यक्ति दो भिन्न तत्त्व हैं। भाषण कोई भी कर सकता है पर किसी विषय का गम्भीर विवेचन हर किसी के लिए सम्भव नहीं। शिक्षा की दृष्टि से आज के उलझे संसार में श्री ग्रेसन कर्क ने उक्त विषय पर जो लेख पढ़कर सुनाया, उसे सारे विश्व के शिक्षाशास्त्रियों और प्रबुद्ध व्यक्तियों ने 'विचारोत्तेजक लेख' की संज्ञा दी। उनके वह मननीय और पठनीय विचार ही यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"व्यक्ति सुशिक्षित है इस बात की परख करनी है तो हमें चार तथ्यों को आधार बनाना पड़ेगा। (१) क्या वह जो कुछ बोलता या लिखता है वह सुनिश्चित और लगाव-लपेट रहित, स्पष्ट होता है। (२) उसने जो कुछ पढ़ा है, उससे कुछ आदर्श और आस्थाएँ जीवन में उतरीं या नहीं, यदि उतरीं तो क्या उसमें इतना साहस है कि वह उनके लिए कैसे भी बुरे समाज से लड़ पड़े ? (३) समाज सुधार की प्रक्रिया में क्या वह इस तरह की ईमानदारी, सद्भाव और सहिष्णुता व्यक्त कर सकता है जैसे एक माँ अपने प्रिय बेटे के लिए ? (४) इतने पर भी वह निराश नहीं होता ? बुरी से बुरी परिस्थितियों में यदि वह आशावादी है तो निस्संदेह वह सुशिक्षित कहलाने का पात्र है।" आइए इन चारों का एक-एक करके खुलासा करें।

(१) हमारे सामने दो व्यक्ति हैं। एक गाँव से आया है, अनपढ़ है, दूसरा शहरी है, शिक्षित है। पहले व्यक्ति से हम प्रश्न करते हैं क्या आपको मार्ग में अमुक व्यक्ति मिला था ? इसके उत्तर में वह उत्तर देगा ?—"शायद मिला तो था, मुझे ऐसा लगता है कि वह सफेद कुर्ता और धोती या पाजामा पहने था, अच्छी तरह देखा नहीं उसके हाथ में मेरे ख्याल से कोई वस्तु थी।" अभिव्यक्ति का यह अनिश्चयात्मक ढंग यह बताता है कि वह व्यक्ति विचारशील नहीं है। यदि वह विचारशील रहा होता तो एक ही दृष्टि में उसने उस व्यक्ति का सारा खाका अपने मस्तिष्क में उतार लिया होता। उसकी दृष्टि गहरी और पैनी नहीं थी। वह एक उथला व्यक्ति था इसलिए उसके सामने जो कुछ भी आया, उसने अस्त-व्यस्त ढंग से देखा और वैसा ही बर्ताव किया।

शिक्षित व्यक्ति को उसी प्रश्न का उत्तर निश्चयात्मक ढंग से देना चाहिए। उसके विचारों में स्पष्टता के साथ ही कला और शृंगार भी होना चाहिए तभी यह कहा जा सकता है कि वह सुशिक्षित है। अस्त-व्यस्त भाव उसे व्यक्त नहीं करने चाहिए। इसी प्रकार पाण्डित्य प्रदर्शन के दम्भ में पड़कर ऐसा भी नहीं बोलना चाहिए कि प्रश्नकर्ता कुछ समझ न सके। उसे कहना चाहिए—"मित्रवर ! मुझे वह सज्जन जब मैं रेलवे पुल पार कर रहा था तब मिले, उनके हाथ में पुस्तक थी। कमीज-पायजामा पहने वे बहुत अच्छे लग रहे थे।" अभिव्यक्ति अन्तःकरण का स्वरूप प्रस्तुत करती है इसलिए सुशिक्षित की पहली परख यह है कि अभिव्यक्ति में गम्भीरता, स्पष्टता और कलात्मकता होनी चाहिए यदि वह असभ्य, संदिग्ध भाषण करता है तो वह पढ़ा-लिखा होकर भी सुशिक्षित नहीं है। चाहे वह शहर में ही रहता और उसने कोई भी डिग्री प्राप्त की हो।

(२) एक समय वह था जब हमारे पुरखे मार्गदर्शन, नीतिज्ञ और उदात्त चरित्र वाले होते थे। उन्होंने धर्म मर्यादाएँ, सामाजिक अनुशासन, परम्पराएँ और रीति-रिवाज इस ढंग से बना दिए थे कि आने वाली पीढ़ी उनका अनुसरण करने मात्र से ऐसे आदर्श तथा आस्थापूर्ण जीवन ग्रहण कर लिया करती थी। व्यक्ति गीली मिट्टी है तो पुरखे साँचे। साँचे में जैसे मिट्टी डाल दी जाती थी व्यक्ति का स्वरूप वैसा ही निखर आता था। आज वह परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आदर्श और श्रद्धा के लिए इन दिनों जीवन में कोई स्थान नहीं रहा। उनके लिए लड़ने की हिम्मत की, बात तो सोची भी नहीं जा सकती। बड़ों के जीवन में कोई क्रमबद्धता न होने का परिणाम यह है कि पीढ़ियाँ उच्छृंखल और अनुशासनविहीन हो चलीं। ऐसी स्थिति में सुशिक्षित कहलाने का अधिकार उसे मिलेगा, जो वर्तमान के विचार जंजाल में से आदर्श और आस्थाएँ स्वयं ढूँढ़ें और चुनें। उसमें इतना विवेक होना चाहिए कि उसकी रुचि कुछ ऐसी सुन्दर हो कि प्रत्येक अच्छाई को वह दूर से देखकर पहचान ले और जब उन्हें जीवन में धारण करने का प्रश्न आये तो किसी भी विरोध का सामना करने के लिए तैयार रहे। अपने विवेक की रक्षा के लिए उसे अपने माता-पिता से भी लड़ने में नहीं हिचकिचाना चाहिए।

आदर्श और अनुशासन का चोली-दामन का साथ है। जिनके जीवन में आदर्श नहीं होता, वही अनुशासनहीन और अराजकतावादी होते हैं। सुशिक्षित में आदर्श का स्थान एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि उसी पर समाज की व्यवस्था और शान्ति टिकी होती है।

(३) व्यक्ति का आदर्शवादी होना ही पर्याप्त नहीं। यदि वह सामाजिक बुराइयों के प्रति सहिष्णु और उन्हें सद्भावनापूर्वक दूर करने के लिए कृतसंकल्प नहीं होता तो उसे रोजी और रोटी के लिए जिन्दा नहीं रहना चाहिए। प्राचीनकाल के ब्राह्मण अपने जीवन का उपयोग समाज को उन्नत बनाने में किया करते थे। उनके सामने जीवन के अन्य विषय गौण थे। उनकी इस हमदर्दी को समझकर ही समाज ने उनकी लौकिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने का कर्तव्य निभाया था। आज का शिक्षित व्यक्ति यदि अपने लौकिक स्वार्थ की उपेक्षा कर समाज को भलाई का रास्ता दिखाने को कटिबद्ध हो जाता है तो समाज उसकी आवश्यकताएँ भी पूर्ण करने से पीछे न रहेगा पर अपनी उस निष्ठा को अभिव्यक्त कर सुशिक्षित होने की कसौटी पर खरा उतरना प्राथमिक आवश्यकता है। उसे क्रास करके सीधे कोई समाज का हितैषी बनना चाहे तो बन भी नहीं सकता।

(४) आज अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, उद्दण्डता और यौन स्वच्छन्दता जैसी बुराइयों की बाढ़ आ गई है। बुद्धि कौशल और कलाकारिता सब मिलकर इन्हें ही पनपा रहे हैं। वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी भी अपने अहंकार की पूर्ति के लिए संसार को विनाश की ओर घसीटे लिए जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में समाज सुधार की बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोच सकना भी कठिन है। ऐसे व्यक्ति के सामने आते ही सारा संसार उसका विरोधी हो गया लगता है। इसलिए बुराइयों से लड़ने की हिम्मत से पहले एक बात निश्चित कर लेनी चाहिए कि हमारा अस्तित्व भले ही नहीं रहे पर हमें विश्वास है कि हम समाज को सीधे रास्ते पर ला सकते हैं। वर्तमान परिस्थिति में यह आशा ही दीर्घकालीन साहस और शक्ति प्रदान कर सकती है। बच्चे के प्राण निकलने तक जिस प्रकार माँ को यह आशा बनी रहती है कि बच्चा स्वस्थ अवश्य हो जायगा। मृत्यु की तो वह कल्पना ही नहीं करती। उसी प्रकार सुशिक्षित की अन्तिम परख है कि उसे भीषण परिस्थितियों में भी निराश नहीं होना चाहिए। उसे यह समझना चाहिए कि समाज सुधार शिक्षित का अनिवार्य धर्म-कर्तव्य है उसे पूरा करने में किसी प्रकार के फल की भी आशा नहीं करनी चाहिए। यह निष्ठा ही शिक्षित को सुशिक्षित कहलाने का गौरव प्रदान कर सकती है और असुन्दर को सुन्दर बना सकती है।

शिक्षा के संदर्भ में उपेक्षा क्यों बरतें ?

शिक्षा का अर्थ—नौकरी। यही परिभाषा जन-जन के मन-मानस में समाई हुई है। बच्चे पढ़ाई के पूर्व से ही सोचते हैं कि पढ़ने के बाद उन्हें नौकरी करनी है। अभिभावक पढ़ाते भी इसीलिए हैं कि उनका बच्चा पढ़कर नौकरी करेगा। आजीविका की दृष्टि से निश्चिन्त रहेगा। उद्योग-व्यवसाय के झंझट में न पड़ना पड़ेगा। हर महीने नियत समय पर वेतन मिल जाया करेगा और महीने भर का निर्वाह निश्चिन्ततापूर्वक चल जाएगा।

इन दिवास्वप्नों में एक बात और भी जुड़ी होती है कि कोई अधिक वेतन वाली, आराम की, अफसरों जैसी बढ़िया नौकरी मिलेगी। इसके आधार पर इज्जत भी बढ़ेगी और ऊपर की आमदनी भी अतिरिक्त रूप में होती रहेगी।

दिवास्वप्न की दृष्टि से यह सब मन बहलाव अच्छा है, पर वास्तविकता के साथ जब उसकी संगति बिठाई जाती है तब प्रतीत होता है कि यह सब शेखचिल्ली जैसी बेतुकी मनतुष्टी भर थी। यथार्थता उसके पीछे नगण्य जितनी थी।

कोई समय था जब पढ़े-लिखों की संख्या नगण्य थी। अंग्रेजी सरकार भी यहीं के लोगों से काम लेती थी। इसलिए वे अपने काम की पढ़ाई पढ़ाकर जल्दी-जल्दी नौकरी में भर्ती कर लिया करते थे। प्रायः सभी पढ़े हुओं को नौकरी मिल जाती थी, पर अब तो उस स्थिति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर आ गया! स्कूल-कॉलेजों में हर साल लाखों बच्चे परीक्षाएँ पास करके निकलते हैं। इन सभी को नौकरी मिल सकने वाले स्थान कहाँ से आएँ? न तो पुराने लोग इतने रिटायर होते हैं और न नये स्थान ही इतनी संख्या में रहते हैं कि इन सभी नव शिक्षितों को उनमें खपाया जा सके। ऐसी दशा में नौकरी भर की आशा लगाकर बैठे रहने वाले नव-शिक्षितों के पल्ले निराशा ही पड़ती है। शिक्षित बेकारों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती है। एक जगह खाली होती है तो हजार अर्जियाँ पहुँचती हैं, इनमें से जगह तो एक को ही मिलती है और बाकी सब निराश रहते हैं। कई वर्ष इन्तजार करते रहने पर जब सरकारी नौकरियों वाली आयु निकल जाती है, तब प्राइवेट नौकरियों की तलाश में निकलते हैं। बेकारी की आपसी प्रतिस्पर्धा इतनी है कि अच्छा वेतन निजी संस्थाओं में मिलना कठिन है, जो मिलता है उसी पर संतोष करना पड़ता है।

सबसे बड़ी समस्या ऐसे लोगों के सामने मानसिक असंतोष की होती है। सरकारी ऊँची नौकरी ही उनका एकमात्र सपना था, जब वह टूट जाता है तो लगता है मानो जमीन पैरों तले से निकल गई। सब ओर अन्धकार ही दीखता है। कोई हुनर सीखा नहीं, जिससे नौकरी न मिलने की दशा में उसके सहारे अपने स्वावलम्बन की समस्या का हल कर लिया जाता। जिन उलझनों का सामना करना पड़ता है, उनकी कल्पना इससे पूर्व न तो उन्होंने की थी और न अभिभावकों ने। अचानक जब अवरोध सामने आ खड़ा होता है तो सूझ नहीं पड़ता है कि इसका हल किस प्रकार निकले ? जब हल नहीं निकलता तो स्थिति अर्धविक्षिप्तों जैसी हो जाती है। आत्महीनता चढ़ दौड़ती है, घुटन अनुभव होती है और मृगतृष्णा में मरने वाले हिरन जैसी मनःस्थिति बन जाती है। इन्हीं कुण्ठाओं से घिरे हुए जीवन के शेष दिन पूरे करने पड़ते हैं।

यह एक की नहीं अनेकों की समस्या है। इसे सुलझाने के लिए नये सिरे से चिन्तन एवं निर्धारण की आवश्यकता पड़ेगी। सोचना होगा कि सभी शिक्षितों को सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल सकतीं। ऊँचे पद की, अधिक वेतन की नौकरियाँ तो और भी कठिन हैं। यह बात यदि आरम्भ में ही विचार ली जाय तो दूसरे समाधान ढूँढे जा सकते और स्थितियों को बदला जा सकता है।

बचपन में शारीरिक एवं मानसिक विकास इतना नहीं होता कि उस अविकसित स्थिति में कोई आजीविका कमाने की बात सोची जा सके। वह समय तो शारीरिक समर्थता और मानसिक बहुलता बढ़ाने का है। इस दृष्टि से पढ़ाई में मन लगाना आवश्यक भी है और उपयुक्त भी, पर यह नहीं सोचना चाहिए कि पढ़ने के बाद इच्छित स्तर की नौकरी ही मिलेगी। इस यथार्थता पर आरम्भ से ही विचार करना चाहिए कि नौकरी के दूसरे विकल्प क्या हो सकते हैं ? आजीविका का प्रश्न अन्य किन तरीकों से हल किया जा सकता है ? अपनी स्थिति में जो सरल-सम्भव हो उसी को प्रधानता देनी चाहिए और आजीविका की दृष्टि से स्वावलम्बी होने पर विचार करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने देश में अभी उद्योगों की बहुत गुंजायश है। कुटीर उद्योगों को यदि सुधरे हुए ढंग से अपनाया जाय तो वे मिलों की प्रतिस्पर्धा में भी ठहर सकते हैं। मिलों में उत्पादन तो अधिक होता है, पर साथ ही उनमें लगने वाली पूँजी का ब्याज, टूट-फूट, चोरी, नुकसान भी इतने होते हैं कि उनकी लागत बढ़ जाती है और महँगे दाम में बाजार तक पहुँचते हैं। कमीशन पर कमीशन उन्हें और भी अधिक महँगा बना देते हैं। जबकि इन उद्योगों में झंझट कम से कम हैं। स्वदेशी आन्दोलन यदि फिर से नये उत्साह के साथ चलाया जाय तो खादी की तरह हस्त उद्योगों का भी प्रचार-प्रसार किया जाय और लोग मिल में बनी अधिक खूबसूरत वस्तुओं की तुलना में मामूली किस्म की वस्तुओं को प्रधानता देने लगें तो कुटीर उद्योगों का प्रचलन नये उत्साह के साथ उभर सकता है। उससे लाखों शिक्षितों, कारीगरों और विक्रेताओं को नये सिरे से काम मिल सकता है।

व्यापार के नाम पर अपने देश में बनी वस्तुओं की दुकान लगाकर बेचते रहना ही प्रधान कार्य रह गया है। इसकी उपयोगिता उतनी नहीं जितनी उत्पादन की। विक्रय कार्य में तो थोड़े से आदमी ही खप सकते हैं। किसी नगर में एक हजार दुकानें हों तो उनमें एक मालिक एक नौकर के हिसाब से दो हजार ही व्यक्ति खप सकेंगे। इसकी अपेक्षा तो सुपर मार्केट स्तर का एक बड़ा विक्रय केन्द्र बन जाने से भी काम चल सकता है। प्रमुखता उत्पादन को मिलनी चाहिए, जिससे लाखों को रोजी-रोटी मिल सके। गृह-उद्योगों के अतिरिक्त कृषि और पशुपालन के दो उद्योग ऐसे हैं, जिन्हें वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर कहीं अधिक बढ़ाए जाने की गुंजायश है। लकड़ी, लोहे के कामों की भी कम गुंजायश नहीं है। कुम्हार के कामों में ईंटें-खपरैलें बनाने-पकाने का कार्य भी यदि सम्मिलित कर लिया जाय तो उसकी भी बहुत बढ़त हो सकती है। सुराई, घड़े तो आम उपयोग की वस्तुएँ ही हैं।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य व्यक्तित्व के विकास वाली दिशाओं से अवगत-अभ्यस्त करना है। व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से सम्बन्धित अनेकों गुत्थियों को सुलझाने का कार्य शिक्षा के माध्यम से सम्पन्न होना चाहिए। सद्भावों, सद्गुणों, सत्प्रवृत्तियों को किस प्रकार पनपाया जाना चाहिए ? इन विषयों में शिक्षार्थी को प्रवीण-पारंगत बनाना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है, उस आवश्यक सीमा-मर्यादा को पूरा करने के लिए शिक्षण संस्थाओं को समग्र तत्परता के साथ प्रयत्नशील होना चाहिए। अभिभावकों को अपने घरों के बालक इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्कूलों में भर्ती करने चाहिए और परिकल्पना भी वैसी ही बननी चाहिए। नौकरी के उद्देश्य से पढ़ने-पढ़ाने वाली पद्धति को तो त्याग ही देना चाहिए।

नौकरियों में बार-बार अदला-बदली होती रहती है। इससे परिवार व पड़ौसियों का साथ छूटता है। बच्चों की शिक्षा में अड़चन पड़ती है। बदलती जलवायु का प्रभाव पड़ता है। नये मकान किराये पर लेने पड़ते हैं, इसमें वेतन का अधिकांश भाग चला जाता है। मातृभूमि की जो सेवा करनी चाहिए थी, वह भी नहीं बन पड़ती। गाँव छोड़कर शहरों को भागना पड़ता है, क्योंकि जहाँ जन्मे हैं वहाँ तो नौकरी मिलना कठिन है। इन सबको देखते हुए शिक्षा को बच्चे के भविष्य के साथ जोड़ना चाहिए। देखना चाहिए कि उन्हें क्या बनना और क्या बनाया जाना है ? इस चिन्तन में नौकरी वाली बात को यदि निकाला-हटाया जा सके तो उत्तम है, क्योंकि भविष्य में अच्छी नौकरियों का मिलना दिनों-दिन कठिन होता जायेगा। यदि किसी प्रकार पेट ही भरना है तो वह कार्य गाँव में रहकर भी हो सकता है। जहाँ सस्ता जीवन व्यतीत कर सकना सम्भव है और साथ ही स्वजन-सम्बन्धियों के साथ रहकर स्नेह-सहयोग के साथ दिन बिताना सरल है।

जन्मदात्री माता के समान वह भूमि भी माता के समान है, जहाँ जन्म लिया है। जिसकी धूलि में पलकर बड़े हुए हैं। माता की सेवा की तरह ही यह भी आवश्यक है कि जन्मभूमि की प्रगति के लिए कुछ बढ़-चढ़ कर योगदान दिया जाय। वहाँ भी आजीविका के स्रोत ढूँढ़े जा सकते हैं। शहर इसलिए महँगाई, गन्दगी, बीमारी और दुष्प्रवृत्तियों के केन्द्र बनते जा रहे हैं कि उनमें देहाती जनता बसने के लिए आतुरतापूर्वक दौड़ती और भरती चली जा रही है। यदि देहाती लोग देहातों में ही पैर जमाने लगें तो वहाँ की स्थिति ही बदल सकती है। शिक्षित लोगों का गाँवों से शहरों की ओर पलायन भी ऐसा ही है जैसा कि भारत जैसे गरीब देशों से सुशिक्षित प्रतिभावानों का सम्पन्न विदेशों में अधिक वेतन पाने के लिए पलायन करते जाना। इससे विदेशी नफे में रहते हैं और देश में उन प्रतिभाओं की कमी पड़ती जाती है जो देश में ही रहकर उसे अधिक समृद्ध-समुन्नत बना सकते थे।

प्राचीनकाल में गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति का स्वरूप यह था कि पुस्तकीय पाठ्यक्रम उतना ही होता था जितने के सहारे जीवन मार्ग पर आने वाली समस्याओं का समाधान हो सके। शिक्षा का यहाँ सागर तो अथाह है, यदि उस समूचे को कोई संग्रह करना चाहे तो उसके लिए दसियों जन्मों का समय भी कम पड़ेगा। यदि सार्थक शिक्षा लेनी है तो उन प्रसंगों को छोड़ना पड़ेगा जो स्कूल छोड़ने के बाद प्रवाहपरक जीवन में कमी काम ही नहीं आते। इस बहुसंशय में काम की बातें छूट जाती हैं और निरर्थक कूड़ा सिर पर लद जाता है। निरर्थक इसलिए कि उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। यहाँ तक कि आजीविका का प्रश्न भी हल नहीं होता। ऐसी दशा में बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में नये सिरे से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार करने की आवश्यकता है। पढ़ना और पढ़ाया वही जाना चाहिए जो नौकरी न मिलने पर भी व्यावहारिक जीवन में काम आता रहे। ऐसा ज्ञान या अनुभव यदि वर्तमान शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध नहीं हो सकता तो नये सिरे से गुरुकुलीय पद्धति का अवलम्बन करना चाहिए। जितना खर्च और समय सरकारी स्कूलों की ऊँची शिक्षा प्राप्त करने में लगाना पड़ता है, उतने से कम में ऐसे विद्यालय चल सकते हैं, जो गुरुकुलीय पद्धति के आधार पर शिक्षण प्रदान करें। व्यावहारिक जीवन ही हर समस्या पर प्रकाश डालें। व्यवहारकुशलता का कोई पक्ष अछूता न छोड़ें, साथ ही आजीविका उत्पादन के लिए भी कुछ ऐसे हुनर सिखाएँ जो देहातों में भी चल सकें।

खेद की बात है कि जिस शिक्षा के ऊपर बालकों का, उनके परिवार का जीवन निर्भर है। उसकी ओर पूरी उपेक्षा बरती जाती है। जो ढर्रा चल रहा है उसे ही चलाया जाता है। यह नहीं सोचा जाता कि यदि प्रस्तुत शिक्षा से समस्या हल नहीं होती तो उसका विकल्प सोचा और खड़ा किया जाय। इस दिशा में उपेक्षा बरती जाना बुद्धिमान मनुष्य की मूर्खता ही मानी जायेगी।

आज की शिक्षा न उपयोगी है, न अपरिहार्य

संत विनोबा के अनुसार, आज हर एक पैदावार बढ़ाने की बात करता है, परन्तु पैदावार क्या कानून या फरमान से बढ़ती है ? पैदा आखिर करना हमको ही है। उसके अनुकूल शिक्षण देने पर ही उसका दर्शन होगा। क्या यह सम्भव है कि आज की शिक्षा देश को दरिद्रावस्था से मुक्त कर सकेगी ?

आज यह हालत है कि लड़का बीस-इक्कीस वर्ष की उम्र तक पढ़ता ही रहता है। छह वर्ष की अवस्था से ही वह पढ़ना शुरू करता है। इस १५ वर्ष की अवधि में उसे उद्योग या परिश्रम का स्पर्श ही नहीं रहता। वह ठण्ड, हवा, धूप, बरसात, कुछ भी नहीं सह सकता। खेती वह कर नहीं सकता, बढ़ई का काम वह जानता नहीं, बुनाई का काम जानता नहीं, रसोई आती नहीं। सिर्फ खाना जानता है, लेकिन चबाने और हजम करने का भी उसे ज्ञान नहीं होता। आहार-शास्त्र की जानकारी उसे नहीं होती। इस तरह व्यावहारिक जीवन के लिए निकम्मा बनकर वह बाहर आता है।

इक्कीस वर्ष की अवस्था तक बच्चों की हड्डियाँ बढ़ती रहती हैं उनका शरीर बनता रहता है। उनको आकार मिलता है। अगर इस उम्र में शरीर नाजुक रह गया तो जीवन के क्षेत्र में पराक्रम के जो अनेक काम करने हैं, वे कैसे किए जाएँगे, पुरुषार्थ, कैसे बन सकेगा ? जिन्हें कलेजे से लगाकर रखा गया है, वे बच्चे मुल्क की मुसीबतों का मुकाबला कैसे कर सकेंगे ? पराक्रमशील कैसे बनेंगे ?

स्वराज में अगर विदेश से अनाज और कपड़ा मँगाना ही पड़े तो वह स्वराज्य किस किस्म का होगा ? जो चीज गुलामी के जमाने में विदेश से आतीं थीं, क्या उसके परिमाण में कुछ कमी हुई ? स्वराज्य आने के पहले स्वदेशी-विदेशी का जो विवेक हम किया करते थे वह भी आज हम भूल से गये हैं। अब तो शिक्षा में परिवर्तन किए बिना देश का विकास सम्भव ही नहीं है। इसके लिए नई तालीम पर अमल करना होगा। आज के समाज में शारीरिक परिश्रम और मानसिक परिश्रम की कीमत अलग-अलग मानी गई है, इसे नई तालीम नहीं मानती। नई तालीम के अनुसार मनुष्य जो भी सेवा करता हो—शारीरिक या मानसिक, वह एक नैतिक वस्तु है और उसे जो तनख्वाह दी जाती है वह एक आर्थिक वस्तु है। नैतिक वस्तु की कीमत आर्थिक वस्तु में नहीं आँकी जा सकती।

शिक्षण की ओर दो दृष्टियों से देखना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से और इर्द-गिर्द की परिस्थिति की दृष्टि से, शिक्षण से आत्मविकास भी सधना चाहिए और वह परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए। आज का शिक्षण इन कसौटियों पर नहीं उतर सकता।

आज के शिक्षण का सम्बन्ध बुद्धि की दो शक्तियों के साथ आता है—स्मरण शक्ति और तर्क शक्ति। स्मरण शक्ति में परीक्षा ली जाती है कि बच्चा ध्यान में कितना रख पाता है। तर्क शक्ति में देखा जाता है कि बच्चा युक्तिवाद कर सकता है या नहीं, लेकिन ये तो बुद्धि की मामूली शक्तियाँ हैं, पशुओं में भी दिखाई देती हैं। मोटर का भौंपू बजता है, परिचित पशु सड़क से जरा दूर हट जाते हैं। उनके पास इतना तर्क है थोड़ा हट जाने से मोटर सीधे रास्ते चली जाएगी। इस तरह तर्क शक्ति और स्मरण शक्ति तो सर्व पशु-साधारण की मामूली शक्तियाँ हैं। इनसे अधिक महत्त्व की कई शक्तियाँ बुद्धि में हैं, वर्तमान शिक्षा में उनके विकास की तरफ कोई ध्यान नहीं है। निर्भयता, उद्योगशीलता, त्याग, बुद्धि, सत्यनिष्ठा आदि कई शक्तियों के नाम मैं गिना सकता हूँ। हमारे मानस-शास्त्रियों का कथन है कि बुद्धि अनन्त शक्तियों से भरी है। जितनी शक्तियाँ इस विश्व में हैं, उतनी सारी हमारे मन में हैं **''अनन्तं वै अनन्ता विश्वे देवाः''** उन सब शक्तियों का यथासम्भव विकास करना शिक्षण का काम है।

लेकिन, प्रत्यक्ष जीवनोपयोगी काम के बिना इन शक्तियों का विकास सम्भव नहीं है। शिक्षण का कार्य क्रम ही ऐसा होना चाहिए, जिससे उनको सहकार्य का अभ्यास हो जाय, जिसमें उनके अनेक गुणों की कसौटी भी हो और विकास भी, लेकिन आज तो शिक्षक कुर्सी पर बैठे होते हैं, विद्यार्थी बैंचों पर बैठे होते हैं। ऐसे 'बैठे शिक्षण' से विकास सम्भव नहीं है। ६७ फीसदी अज्ञान उन्हें माफ होता है, ३३ पाए और पास। आत्म विकास के लिए निरुपयोगी, ऐसा यह शिक्षण एक क्षण के लिए भी सह्य नहीं है। इसका ढाँचा फौरन बदलना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज की उच्चशिक्षा— एक जाल जंजाल

बच्चों को शिक्षित बनाया जाना चाहिए, इस मान्यता में दो मत नहीं हैं। विद्या की प्रशंसा सर्वत्र होती है। अनपढ़ों को असभ्य कहा जाता है। विवाह-शादी के अवसर पर अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी पूछा जाता है कि लड़की कहाँ तक पढ़ी है, लड़का कहाँ तक पढ़ा है ? शारीरिक स्वास्थ्य-सौन्दर्य की तरह शिक्षा सम्बन्धी पूछताछ देखभाल भी होती है। लड़की की इसलिए कि सभ्य अतिथियों के सामने वह भी अपने को सभ्य सिद्ध कर सके। लड़के की इसलिए कि वह ठीक तरह आजीविका कमा सके और चार भले आदमियों के बीच वार्तालाप एवं व्यवहार में अपनी गणना सभ्यों में करा सके। आजीविका कमाने के लिए भी पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है। सरकारी नौकरियाँ ही इन दिनों आजीविका का प्रमुख साधन हैं। उनमें वेतन भी अच्छा मिलता है। इसके अतिरिक्त पेन्शन, फण्ड, बोनस, छुट्टियों आदि की सुविधा रहती है। पद-सम्मान की दृष्टि से भी सरकारी नौकरियों की इज्जत है। ऊपरी आमदनी चाहने वालों को भी किसी न किसी प्रकार इस क्षेत्र में मिल ही जाती है। सरकारी नौकरियों में शिक्षा का प्रमाण-पत्र आवश्यक है। इण्टरव्यू इससे आगे की बात है। प्रमाण-पत्र होने पर भी इण्टरव्यू में किसी को फेल तो किया जा सकता है पर केवल इन्टरव्यू के सहारे प्रमाण-पत्र न होने पर कोई जगह नहीं मिल सकती।

इसलिए गरीब-अमीर सभी अपने बच्चों को पढ़ाने की कोशिश करते हैं, भले ही इसके लिए कर्ज लेना पड़े, खेत बेचना पड़े। कुछ समय पहले तक ऐसी बात थी कि मैट्रिक या इससे आगे की परीक्षा पास कर लेने पर अधिकांश लड़कों को सरकारी नौकरी मिल जाती थी। जिन्हें नौकरी मिल गई वे अपना भाग्य खुल गया मानते थे। घर वाले भी प्रसन्न होते थे कि हमारा खर्च करना और लड़के का मेहनत करना सार्थक हो गया। पढ़ाई का पैसा दहेज के रूप में शादी के समय वापस लौट आता था। यह चर्चा कुछ समय पहले की है। अब वैसी बात नहीं रही। जमाना एक प्रकार से उलट ही गया है। जितने लड़के पढ़-लिखकर स्कूल कॉलेजों से निकलते हैं, उनमें से एक चौथाई को भी सरकारी नौकरी नहीं मिलती। इतना ही नहीं ऊँची कक्षाओं में दाखिला तक कठिन होता है। थर्ड डिवीजन पास होने पर अगली कक्षा में दाखिला देने से इन्कार कर दिया जाता है। कठिनाई से ही किसी कम हैसियत के स्कूल में दाखिला मिलता है। सरकारी नौकरियों के लिए जब वान्ट्स निकलती हैं तो डिवीजन सबसे पहले देखा जाता है। जब फर्स्ट डिवीजन वाले मारे-मारे फिरते हैं तो सैकेन्ड डिवीजन वालों को कौन पूछे फिर थर्ड डिवीजन वालों की और भी मिट्टी पलीत है। अर्जी माँगते समय ही यह शर्त लगी होती है कि थर्ड डिवीजन वाले अर्जी न भेजें। यह स्थिति दिन-दिन और भी अधिक विषम होती जाती है। एक तो आधे से अधिक लड़के ऐसे ही फेल होते हैं। जो पास होते हैं उनमें से आधे थर्ड डिवीजन होते हैं। पूछ फर्स्ट डिवीजन वालों की है। इसके बाद सैकेन्ड डिवीजन वालों की अर्जियाँ चिह्न पूजा भर के लिए बुलाली जाती हैं। अर्जियाँ रद्द करते समय सैकेन्ड डिवीजन वालों के नाम सरसरी नजर से ही हटा दिए जाते हैं। थर्ड डिवीजन वालों को जब अगली दर्जाओं में दाखिला तक नहीं मिलता तो फिर नौकरी के चुनाव में उनकी बारी कैसे? इस स्थिति में इन लड़कों की एक प्रकार से दुर्गति ही होती है।

पढ़ाई आरम्भ करते समय ही सबके दिमाग में एक ही लक्ष्य रहता है—नौकरी। नौकरी के लिए बढ़िया डिवीजन चाहिए सो कहाँ से मिले ? स्कूलों की पढ़ाई का जो हाल है सो किसी से छिपा नहीं है। क्लास में पढ़कर कोई विरले ही पास हो सकते हैं। मास्टर अपने लिए ट्यूशन तलाशते रहते हैं। लड़कों को धमकाते रहते हैं कि तुम्हारी पढ़ाई कच्ची है। ट्यूशन न पढ़ोगे तो फेल हो जाओगे। ट्यूशन भी सस्ते नहीं हैं, जिन्हें गरीब माँ-बाप बर्दाश्त कर सकें। अभिभावक नाराज होंगे इस डर से लड़के भी कहते रहते हैं कि—जरूरत नहीं है, मेहनत कर लेंगे, पास हो जायेंगे। अभिभावकों को सान्त्वना देने के लिए और बेचारे करें भी क्या ? स्कूलों में पढ़ाई चिह्न पूजा जैसी होती है। मात्र उसके सहारे असाधारण बुद्धि के लड़के ही पास हो सकते हैं। इनमें से अच्छा डिवीजन तो कोई विरले ही ला पाते हैं। डिवीजन लाने वालों में से भी किनको नौकरी मिलेगी, यह कहना कठिन है । हरिजनों के लिए, स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए सीटें रिजर्व हैं। इन्हें छलाँग कर जो अपने लिए जगह पा सकें उन्हें भाग्यवान ही समझना चाहिए।

शिक्षित बेकारों की संख्या अब आकाश चूमने लगी है। अखबार इस समस्या की भयंकरता का विवेचन छापते रहते हैं। जो लड़के पढ़ाई में बीस-बाईस वर्ष गवाँ चुके, जिन अभिभावकों ने इतने दिन की पढ़ाई में अपना घर खाली खोखला कर दिया, उनके सामने जब यह प्रश्न आता है कि नौकरी मिलने की कहीं कोई गुंजायश नहीं है तब उनके पैरों तले जमीन निकल जाती है। जो अफसर बनने के आरम्भ से ही ख्वाब देखते हैं, उन्हें चपरासी जैसी छोटी जगह भी नहीं मिलती तो उनकी निराशा का ठिकाना नहीं रहता।

बेकार शिक्षित अब करें क्या ? यह बड़ी टेढी समस्या है। बाजार में कोई टके सेर नहीं पूछता। किसी दुकान पर जाते हैं तो मुट्ठी भर पैसे मिलते हैं। दस-बारह घण्टे कसकर काम लिया जाता है और बात-बात पर झिड़की सुननी पड़ती है। अतः उनसे निभ सकना बहुत कठिन है। एक जगह छोड़कर दूसरी जगह तलाश करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। दूसरी जगह छोड़कर तीसरी। कहीं भी उचित सम्मान और उचित पैसे मिलने का सिलसिला बैठता नहीं। जो पैसे मिलते हैं वे तेल साबुन के लिए भी कम पड़ते हैं। इज्जत न मिलने के कारण आए दिन पुरानी छोड़नी और नई पकड़नी पड़ती है। बहुतों के लिए वह भी कठिन पड़ती है। दुकानदार के लिए कम पढ़ा सुविधाजनक पड़ता है। जब वे किसी के ग्रेजुएट होने की बात सुनते हैं तो काम होते हुए पहले से ही मना कर देते हैं, बाबूजी के नखरे कौन सहेगा ?

शिक्षितों की बेकारी देश की बहुत बड़ी और गम्भीर समस्या है। जिन्होंने स्कूल के दिनों में बढ़िया कपड़े पहने हैं, उनके लिए मैले-कुचैले कपड़े पहनकर बेकारी की दुत्कार सहते फिरना बहुत भारी पड़ता है। पैसा तो चाहिए ही। वह सही ढंग से न मिले तो वे गलत ढंग से कुछ कमाने की बात सोचते हैं। गलत ढंग माने चोरी-उठाईगीरी। अभ्यास न होने से वे नौसिखिए आसानी से पकड़े जाते हैं। बेपढ़ा बेकार कहीं पकड़ा जाय तो उतनी बात नहीं पर जब ग्रेजुएट पकड़ा जाता है तो लागत की मात्रा और गई गुनी बढ़ जाती है। ऐसा कोई नहीं कहता कि यह मजबूरी में करना पड़ा। हरामखोरी का इल्जाम लगता है। बाहर के और घर के समान रूप से कोसते और लानत मलामत देते हैं।

हमारे देश में हाईस्कूल पास करते ही लड़की वाले शादी के लिए धमा-चौकड़ी मचाना शुरू कर देते हैं। अभिभावकों की तरह ससुराल वालों का भी ख्याल यही होता है कि कॉलेज की पढ़ाई होते न होते लड़का साहब बन जाएगा। अच्छा कमाएगा। घर भरेगा और लड़की मेम साहब बनकर रानी महारानी का रुतवा प्राप्त करेगी। हाँ-ना, हाँ-ना कहते-कहते शादी ग्रेजुएट होने के पहले ही हो जाती है। दहेज भी उस आशा में महँगे मोल का देना पड़ता है। पर जब लड़का बेकारी में मारा-मारा फिरता है तो नशा सभी का ठण्डा हो जाता है। बेकारी की मजबूरी के दिनों में ही लड़का कच्ची उम्र में ही एक-दो बच्चों का बाप बन जाता है। खर्च तो बीबी-बच्चों का और भी बढ़ता है। उसकी पूर्ति कहाँ से की जाय ? इसका उधार, उसका कर्ज, घर का जेबर बर्तन बेचने की नौबत आती है तो पत्नी की ससुराल की आँखों में कोई इज्जत नहीं रहती। इसी बीच पच्चीस-तीस साल की उम्र पूरी हो जाती है। जब तक वह उम्र पूरी नहीं होती तब तक तो अर्जियाँ भेजने का सिलसिला चलता रहता है और कुछ आशा भी बँधी रहती है। पर जब नौकरी की उम्र समाप्त हो जाती है तो सब ओर निराशा ही निराशा दीखती है। नौकरी दिखाऊ दफ्तर से जब निराशा भरे उत्तर आते हैं तो ऐसा लगता है कहाँ जाएँ ? क्या करें ?

ग्रेजुएट बाबूजी से खेती का कड़ा काम भी नहीं हो पाता। छोटी उम्र से जिन्हें उसका अभ्यास रहता है वे तो धूप-वर्षा का, मैले-कुचैले कपड़े पहनने का, कड़ी मशक्कत का काम भी कर लेते हैं। बड़ी उम्र में वह अभ्यास करना कठिन पड़ता है। अभिभावक कई बार अपनी गलती का हिसाब लगाते हैं कि २० वर्ष तक महँगी खर्चीली पढ़ाई का खर्च उठाने में जो सारा घर खाली कर दिया, वह कितनी बड़ी भूल हुई ? इतने पैसों का एक जमीन का टुकड़ा खरीद लिया होता तो लड़का अपने घर रहता और मजे से गुजारा कर लेता। आदतें तो न खराब होतीं। ताने तो न सहने पड़ते।

यही परिस्थिति आजकल अधिकांश शिक्षित लड़कों की है। कुछ समय पहले ऐसी दुर्गति नहीं थी। तब आसानी से नौकरी मिल जाती थी पर आज तो वह अत्यधिक कठिन काम हो गया है। ऐसी दशा में आरम्भ और अन्त के विचारों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर हो जाता है। आरम्भ के दिनों में सोचते थे—विद्या आवश्यक है, लड़के को हर कीमत में पढ़ाया जाना चाहिए। पर अन्त के दिनों में विचार पूरी तरह बदल जाते हैं। जब नौकरी मिलना इतना कठिन हो गया है तो पढ़ना बिल्कुल बेकार है। जितनी पूँजी पढ़ाई में लगाई गई उतने में एक दुकान खुल सकती थी, एक छोटा व्यवसाय चल सकता था। २५ वर्ष तक उस काम को करते रहने से लड़का उस कार्य में प्रवीण हो जाता और थोड़ा-थोड़ा कमाता रहता तो उसकी आमदनी इतनी हो जाती, जिससे उसकी जिन्दगी मजे में कट जाती। कमाने की उम्र उठती उम्र ही होती है। जो दिन पढ़ने में लग गए वे किसी धन्धे-रोजगार में लगते तो घर से कुछ न लगाना पड़ता, उसकी अपनी कमाई में ही वह स्वावलम्बी बन जाता और घरवालों को कुछ सहारा देता। न ससुराल वाले बुरा भला कहते और न उसे स्वर्ग का सपना देखकर जमीन पर गिरने से जो चोट लगा करती है, वह लगती।

यह पेचीदा प्रश्न इन दिनों हर विद्यार्थी, हर अभिभावक, शादी करने वाले के सामने है कि शिक्षा के साथ जिन सपनों को जोड़ा गया है, उनमें कुछ सचाई भी है या नहीं। सौ के पीछे दस-बीस का तीर-तुक्का लग गया तो वह कोई सिद्धान्त नहीं हुआ। सौ पीछे अस्सी को जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है वह तो समस्या ही रही। छत पर चढ़कर खाई में गिरने की चोट भी बहुत लगती है लेकिन वह भी इतनी नहीं लगती जितनी आँगन में से पैर फिसल जाने पर।

आधुनिक शिक्षा के बहुत ऊँचे प्रतिफल सोचने वाले स्वप्नों की दुनिया में रहते हैं। सौ पीछे अस्सी को जो भुगतना पड़ा, उसे सपना नहीं सचाई ही कहेंगे। ऊँची शिक्षा के अच्छे परिणाम जिस प्रकार सोचे जाते हैं, उन्हें दिवास्वप्न ही कहना चाहिए। जब शिक्षा अत्यधिक बढ़ रही है, स्कूल आए दिन बढ़ रहे हैं, पढ़ने का उत्साह सर्वत्र बढ़ रहा है फिर भी इनमें पढ़े-लिखों को सरकारी नौकरी मिलने का संयोग कहीं भी बैठता नहीं दिखाई पड़ रहा है। नौकरी के अतिरिक्त यह शिक्षा और किसी काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आती नहीं। इसे पढ़कर कोई धंधा-व्यवसाय करते बन नहीं पड़ता। आदतें ऐसी रहती नहीं जिससे वह लड़का घर वालों के साथ खप सके।

प्रचलित पाठ्य पद्धति में ढेरों विषय ऐसे बेकार हैं जिन्हें रटने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। उनका सार-संक्षेप समझ लिया जाय तो इतने भर से काम चल सकता है। इतिहास, भूगोल, रेखागणित, बीजगणित जितने विस्तार से पढ़ाये जाते हैं और फिर उन्हें जबानी रटने के लिए कहा जाता है, उससे बच्चों के मस्तिष्क पर अनावश्यक दबाव पड़ता है। यदि उनका सार-संक्षेप समझा दिया जाये और दो चार बार प्रश्नोत्तर करके यह देख लिया जाय कि बात समझ में आ गई या नहीं तो फिर उसे निरर्थक रटाने की क्या आवश्यकता रह जाती है?

जीवन में जितनी बातें काम में आती हैं, उन्हीं को यदि दिमाग में बिठा दिया जाय तो दिन-रात रटने का निरर्थक श्रम क्यों करना पड़े ? इतना श्रम यदि काम की बात समझने-समझाने में लगाया जाय तो विद्यार्थी कहीं अधिक बुद्धिमान और व्यवहार-कुशल हो सकता है। अच्छा हो कि इस रटन्त विद्या की अपेक्षा विभिन्न विषयों का सामान्य ज्ञान अधिक विस्तार से समझा दिया जाय, तब वह विद्यार्थी रटाने वाले मास्टरों की तुलना में अधिक चतुर हो सकता है।

आरम्भिक शिक्षा अपनी मातृ भाषा में कराई जाय। अँग्रेजी माध्यम से आरम्भिक पढ़ाई कराने वाले पब्लिक स्कूल बच्चों के सिर पर अनावश्यक भार डालते हैं। उस भार से उनका तनिक भी हित साधन नहीं होता। थोड़ी बहुत टूटी-फूटी अँग्रेजी सीखकर अपने घर वालों से भी उसी भाषा में बोलते हैं और समझते हैं। घर वाले अपने देश वाले तो मूर्ख हैं। मानो इन्हें अँग्रेजी आती है तो कोई बहुत बड़े जानकार हो गये हैं। अपना अहंकार और दूसरों के प्रति तिरस्कार का भाव बढ़ता है। इसका बड़ा नुकसान यह है कि दो भाषाओं का बोझ ढोने के कारण उनके मस्तिष्क पर इतना अनावश्यक दबाव रहता है कि आगे चलकर वे उपयोगी विषयों में पिछड़ जाते हैं।

आरम्भिक कक्षाओं में काम चलाऊ ज्ञान अपनी मातृ भाषा में देना ही उचित है। किन्हीं बच्चों को अँग्रेजी में या अन्य किसी विषय में विशेषज्ञ बनना हो तो वह प्रक्रिया १६ वर्ष के बाद की आयु के उपरान्त चलनी चाहिए। तब तक मस्तिष्क इस योग्य हो जाता है कि जिस विषय में उसे विशेषज्ञ बनना है, उसका भार सामान्य पाठ्यक्रम के अतिरिक्त भी उठा सके। अँग्रेजी भाषा को—अंग्रेजी पोषाक को, अँग्रेजी रहन-सहन को प्रमुखता देना प्रकारान्तर से अपनी संस्कृति का अपमान करना सिखाना है।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति

कुछ समय तक समाहित-चित्त होकर स्वाध्याय करने पर ही प्राचीनता की अपूर्व झलक आने लगती है। प्राचीन ग्रन्थों के मननकाल में पूर्व महापुरुषों की अलौकिक कृतियों के देखते ही दिव्यता की झलक आती है, जो कि सांसारिक बुद्धि के परे की बात जान पड़ती है। उस दिव्यता को समझने के लिए हमें पूर्व परम्परा की ओर लौटना पड़ता है। वर्तमान काल से जब कुछ ही पूर्व समय की ओर झुकते हैं तो कतिपय महापुरुष—स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्दादि दिखाई देने लगते हैं। ऐसे महापुरुषों के विषय में विचार करते हुए विपुल ज्ञान और विपुल कार्य एवं अल्पायुष्य को देखते हैं। उनके विशाल ज्ञान और प्रचुर कार्य को देखकर बुद्धि में नहीं आता कि उन्होंने इतने अल्प समय में क्यों कर इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया, जबकि आज कल अनेक मनुष्य दिन-रात श्रम करते हुए भी जीवनान्त तक वह ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते।

तभी इस प्रश्न के उचित उत्तर के लिए दूसरी दृष्टि हमारे सामने आती है, जो कि इस विपुल ज्ञान का सम्बन्ध उसके आदि स्रोत से बताती है। विषयाकार केवल बाह्य बुद्धि का यह सामर्थ्य नहीं कि वह इस प्रकार का यथार्थ विपुल ज्ञान दे सके। यह काम तो उस बुद्धि का है, जिसने अपने मूल-स्रोत ज्ञान-घन, आत्मा के साथ सम्बन्ध कर लिया है। उसके साथ सम्बन्ध होते ही सब विषयों का ज्ञान करामलकवत् होता है। जैसा कि भगवती श्रुति कहती है—

''यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति''

अर्थात जिसके जान लेने पर सब पदार्थ विज्ञात हो जाते हैं। इन महापुरुषों की बुद्धि ने आदि स्रोत के साथ सम्बन्ध कर लिया था। ठीक इसी प्रकार के अनेक महापुरुष प्रत्येक प्रान्त व देश में मिलेंगे, जिन्होंने इस प्रचलित विद्या का विशेष ज्ञान न प्राप्त करते हुए भी दुनिया को अलौकिक ज्ञान दिया। अधिक पीछे लौटने पर संसार का काया-पलट करने वाले महापुरुष जगद्गुरु शंकराचार्य के रूप में दिखाई देते हैं, वहाँ भी हम अथाह ज्ञान और अल्पायु का सम्बन्ध पाते हैं। अस्तु, अब यहीं रुक, प्राचीन शिक्षा-पद्धति की झलक लेना चाहते हैं।

बात यों जान पड़ती है कि पूर्वकाल में उत्पन्न हुए बालकों का शिक्षा-क्रम यह था कि जभी वे कुछ समझने योग्य होते, तभी से उनका शिक्षण पवित्राचरण वाले माता-पिता के द्वारा आरम्भ हो जाता, जो कि सन्ध्या-प्राणायामादि नियमों से बढ़ती हुई इन्द्रिय शक्तियों का संचय एवं आत्माभिमुखता के रूप में सदुपयोग में परिणत होने के कारण उस समय जैसे विचारों का प्रवाह बहाया जाता है, वही बहने लगता है—

''यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत।''

अर्थात जैसे नवीन वस्त्र पर जो रंग चढ़ाना चाहो, सहज ही चढ़ जाता है, वैसे बाल्यकाल में अन्तःकरण की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दशा होती है। माता-पिता के अधिकार से हटने पर सद्गुरुओं के आश्रमों का वास या उनके आचरण का अनुकरण इन्द्रियों को बहिर्मुख नहीं होने देता था, प्रत्युत आत्माभिमुख करता था। इस प्रकार अल्पकाल में वे आत्म-ज्योति का भान कर लेते, बुद्धि का सम्बन्ध आदि-स्रोत के सथ जोड़ देते थे। बाद में उसी को स्थिर एवं परिपाक करने के लिए ही उनका श्रम बना रहता, तब वे जो कुछ भी अध्ययन करते वह बुद्धि के स्थिर एवं निर्मल होने से अभ्रान्त एवं स्थायी रहने वाला होता था। ऐसा नहीं कि रटा, भुलाया, पुनः रटा भुलाया, यही चर्खा निरन्तर चलाना पड़े। यम-नियमादि के पालन से उनकी मेधा (धारणावाली धी) उत्पन्न हो जाती थी, जिससे उनमें यह सामर्थ्य आ जाती थी।

इस झलक के पोषक प्रमाण सम्भवतः प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्मचर्याश्रमों की व्यवस्था में अनेक मिल जावेंगे। उस समय की आत्मज्ञान प्राप्त की हुई माताएँ अपने बच्चों के हृदय में आरम्भ से ही कैसी शुभभावनाएँ भरती थीं ? उसे-मन्दालसा की भावनाओं में निरखिए—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,

संसारमायापरिवर्जितोऽसि ।

संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां,

मन्दालसावाक्यमुवाच पुत्रम् ।।

अर्थ—मन्दालसा पिगूड़े में झुलाती हुई तथा अन्यावसर पर भी सदैव ये लोरियाँ देती रहती हैं, 'हे पुत्र, तू शुद्धस्वरूप है, तू ज्ञानस्वरूप है, तू निरञ्जन है, विकाररहित है। संसारमाया से रहित है। मोह निद्रा का त्याग कर, संसार स्वप्न को छोड़।''

इसके विपरीत आज की शिक्षा-पद्धति से पठित लोगों को देखने से ऐसा अनुमान होता है कि आजकल के अज्ञानान्धकार में पले हुए माता-पिता की बुद्धि मोह से ढकी रहती है, वे यथार्थ प्रेम या हित को नहीं समझ पाते। यम-नियमादि के संयम से तो यह कहकर मुँह मोड़ लेते हैं कि ''जब बच्चा बड़ा हो जायगा, समझने लगेगा, अपने ही आप ये सब बातें जान जायगा अथवा उन्हें ज्ञान भी नहीं होता कि कैसे जीवन का आरम्भ किया जाना चाहिए ?''

ऐसे माता-पिता सुन्दर पद्य श्लोकों के स्थान में बालकों को गोदी ले खौंचे वाले की तरह भाँति-भाँति की मिठाइयों के नाम याद करवाने में अपना कर्तव्य पालन करते हैं। बस यहीं से इन्द्रिय-स्रोत बाह्य-विषयों में बहने लगता है। स्कूल में जाने वाला बालक अपनी पुस्तक के वर्णों से भले ही परिचित न हो, परन्तु हलवाई के दुकान की सभी मिठाइयों के नाम व स्वाद का पूर्ण ज्ञान रखता होगा । यहीं से बिगड़ी रसनेन्द्रिय की प्रवृत्ति आगे चलकर भयंकर रूप धारण कर लेती है और हमें अनर्थ जाल में फँसा देती है।

कुछ लोग रोगों के निवारणार्थ सरल उपाय सुन यह पूछ बैठते हैं बस इसके साथ और कोई परहेज तो नहीं करना होगा ? उत्तर में कहना पड़ता है—भाई परहेज न करने की छूट लेकर तुम अपने आपको किस ओर ले जाना चाहते हो ? इस प्रकार तो तुम इन्द्रियों के दास होने जा रहे हो और हृदयस्थ अन्तरात्मा से विमुख हो दूर हट रहे हो। इस मार्ग में हाय-हाय करते रहोगे, पर शांति न मिलेगी।

सोचिये, हम जीना चाहते हैं, अतः हमें जीने के लिए खाने की आवश्यकता है, ऐसा खाएँ जिससे सुखपूर्वक अधिक जी सकें। वैसा खाना किस काम का, जिससे रोग-शोक, अल्पायु हो। गुरुनानकदेवजी के शब्दों में—

''बाबा ओह खाणा, खुशी खुआर जित
खाधे तन पीड़ियें मन में चले विकार''

अर्थात्—प्रतिकूल खाना खुशी का सत्यानाश करना है, जिसके खाने से शरीर रोगी हो और मन में विकार उत्पन्न हों, वह त्याज्य है।

यहाँ पर सदैव यही उचित प्रयोग होना चाहिए—'मैंने खाना खाया' न कि उसके स्थान पर 'खाने ने मुझे खाया' यह होने लगे। इसी प्रकार शेष इन्द्रियों की व्यापार कथा भी यों ही समझें। प्रत्येक व्यवहार में यही ध्यान रखना चाहिये कि—''जीवन-निर्वाहार्थ यह अत्यावश्यक है, अतः परिमित मात्रा में उसे अपनाना चाहिए।'' सभी व्यापारों से हमें तो जीवन सफल करना है, न कि जीवन को सभी व्यापारों में उलझाना है। सांसारिक विषय हमारे लिए हैं, हम सांसारिक विषयों के लिए नहीं हैं।

दस बीस प्रकार के सूट-बूट रखने वालों को अपने समय का हिसाब लगाना चाहिए कि उनका कितना समय ऐसी सामग्री के संचय में ही नष्ट हो जाता है। सारांश यह है कि प्रत्येक इन्द्रिय का जितना बाह्य विषयों से सम्बन्ध होता है, उतना ही हम झंझटों में फँसने लगते हैं। क्या ही सुन्दर कहा है—''एक मृगी के कारण भरत धरी त्रैदेह, वाके कौन हवाल है जाके बड़े सनेह।'' किसी महापुरुष का कथन है—

''आपदां कथितो मार्गः इन्द्रियाणामसंयमः ।

तज्जयः श्रेयसां मार्गः, येनेष्टं तेन गम्यताम् ।''

अर्थात इन्द्रियों का असंयम आपत्तियों का मार्ग है, और इन्द्रिय-जय सम्पत्तियों का मार्ग है, अतः जो अभीष्ट समझो उसे अपना लो। ऐसी अवस्था में ही स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—

''इन्द्रियों के घोड़े छूटे बागडोरी तोड़कर,
वह मरा, वह गिर पड़ा असवार सिरा-मुँह फोड़कर।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत: इन्द्रियरूपी घोड़ों पर तो दिन रात संयम के कोड़े लगाते रहोगे, तभी तुम अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच पाओगे। अन्यथा एक इन्द्रिय की भी बागडोर ढीली होने पर महान अनर्थ हो जाता है।

''इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रिय।

तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृते:पात्रादिवोदकम्।।''

अर्थात सम्पूर्ण इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय का स्रोत खुल जाता है, तो उसी इन्द्रिय-मार्ग से बुद्धि का ह्रास होने लगता है। जैसे छेदवाले पात्र से जल बाहर निकल जाता है।

अत: हमें प्राचीन शिक्षा-पद्धति का अनुकरण करना चाहिए, वैसे ही पहले आत्म-ज्योति प्राप्त कर पश्चात अन्य व्यवहारवित होना चाहिए। इस जीवन में हमें दोनों काम करने हैं—परलोक और लोक दोनों को सिद्ध करना है। इन दोनों में भी मुख्य ध्येय या साध्य परलोक है, मुख्य साध्य के सहायक-रूप में लोक भी उपस्थित है, अत: पहले परमात्म दर्शन, पश्चात यावज्जीवन तो संसार है ही।

इसे ठीक न समझकर बहुधा लोग कह बैठते हैं—''अजी अभी क्या जल्दी पड़ी है, बहुत दिन जीना है, जवानी के मजे लूट लें, ईश्वर भक्ति तो बुढ़ापे का काम है।'' ऐसे भोले भाई यह नहीं समझते, अरे जीवन का ही कौन ठिकाना है ? कौन सा जीवन का तम्मसुक हमारे पास लिखा हुआ है ?

दूसरी बात यह है कि ऐसा जीवन ही किस काम का जो अज्ञानान्धकार में बिताया जाय। थोड़ा सोचो तो सही—दिन के अस्त होते ही जब निविड़तम अन्धकार छा जाता है, तब या तो आप सभी काम बन्द कर देते हैं, अथवा कुछ काम करने के लिए आपको दीपक के प्रकाश का सहारा लेना पड़ता है। अन्धकार में भोजन तक करना भी तो आप पसन्द नहीं करते, जो कि सहज काम है। खोई हुई वस्तु दीपक के कम प्रकाश में नहीं मिलती तो आप खोजने का कार्य बन्द कर प्रात: के प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगते हैं। जबकि आप अपने दैनिक क्षुद्र कार्यों में भी इतने प्रकाशापेक्षी हैं, तब महदाश्चर्य होता है कि उधर आप आत्मप्रकाश के बिना ही संसार के विभिन्न व्यवहारों में क्यों प्रवृत्त होने लगते हैं ? क्यों इतनी उपेक्षा दिखाते हैं ? आप समझते होंगे कि आत्मज्योति के बिना ही हम सारे सांसारिक कार्य कुशलतापूर्वक कर लेते हैं, तब क्या आवश्यकता है कि पहले हम आत्मप्रकाश ही को प्राप्त करें। प्यारे ! भूलना मत, जैसे रात्रि के अन्धकार में किए गए विविध कार्य सुसम्पन्न न होकर बिगड़ जाते हैं और प्रात: तुम्हें प्रकाश होने पर समय के अपव्यय का दु:ख होता है, ठीक वैसे ही आत्मज्योति को प्राप्त किए बिना सांसारिक कार्य सुसम्पन्न नहीं हो पाते और आगे चलकर दु:खदायक होते हैं।

आत्मप्रकाश से रिक्तहस्त सांसारिक विद्या के प्रगाढ़ विद्वानों, डबल एम० ए०, षड्दर्शनाचार्यों को, परस्पर की ईर्ष्या-द्वेष की प्रज्ज्वलित अग्नि में आहुति देते या स्वयं आहुति होते देख, उनका श्रम प्राप्त पांडित्य थोथा जान पड़ता है। यही इनका पांडित्य यदि आत्मज्ञान पूर्वक हो तो इस प्रकार के द्वेषाग्निमय संसार तैयार न होने पावे। तब आपके विचार भ्रातृभाव के जल से सने हुए रहें, वहाँ किसी प्रकार की अग्नि की सम्भावना ही नहीं हो सकती। ऐसे ही उदार विचार के विषय में वर्तमान समय के कर्मयोगी श्री विनोबाभावेजी के क्या ही सुन्दर आदर्श वाक्य हैं—''विचार का चिराग बुझ जाने से आचार अन्धा हो गया है। मेरे नजदीक विचार या बुद्धि की जितनी कीमत है, उतनी तीनों लोक में किसी चीज की नहीं।''

जो लोग यह विचार करते हैं कि सासारिक विषयों का पूर्ण ज्ञान कर लेने के बाद ईश्वरज्ञान सहज हो जायेगा, इस कारण आत्मज्ञान की उपेक्षा कर विषयाभिमुख होने लगते हैं। उन्हें यह समझना चाहिए कि ये दोनों मार्ग ही भिन्न-भिन्न दिशा वाले हैं, जैसे कोई व्यक्ति पूर्व दिशा को जाना चाहता है, परन्तु किसी जंकशन से भूल कर पश्चिम जाने वाली गाड़ी पर सवार हो, अधिक दूर निकल जाता है, आगे किसी सज्जन के समझाने पर पुन: वापस उसी जंकशन को लौटना पड़ता है, गमना-गमन का मार्ग व्यय या समय का व्यर्थ ही अपव्यय होता है, गन्तव्य स्थान का भाड़ा वा समय तो फिर भी ज्यों का त्यों चुकाना ही पड़ता है। अत: समझ-सोचकर कदम उठाया जाय कि संतान का जीवन कैसे आरम्भ करना चाहिए, अन्यथा अपने जाए सुपूत ही कुपूत होकर भयंकर शत्रु बन, जन्मदाताओं को ही शोक-दु:ख के रौरव नरक में डालने वाले बन जाते हैं। इस मिथ्या कल्पना को छोड़ ही दिया जाना चाहिए कि मेरे लड़के-लड़की ने मैट्रिक, एम० ए० या बी० ए० पास करली, या वह पढ़-लिख कर बड़ा लायक हो गया, प्रत्युत इस बात को देखना चाहिए कि मेरी संतान कितनी सहनशील, विचारशील, दीनबन्धु, राग-द्वेष शून्य, साहसी एवं ओजस्वी है। जिस शुभ काम को करने में इतर जनक काँपते हैं उसी कार्य के करने में मेरी सन्तान किस साहस और बुद्धिमत्ता के साथ उसे पूरा करती है। त्याग का भाव कैसा है ? देश सेवा में कितनी रुचि है ? आत्मसंयम कितना है ? बाह्य विषय त्याग कैसा है ? आत्माभिमुखता कैसी है ?

इन्हीं गुणों का निरीक्षण अपनी सन्तान में करना चाहिए, यही गुण मनुष्य जीवन को सफल करने वाले हैं। इन्हीं के सहारे मनुष्य नर से नारायण हो सकता है। ये गुण हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति द्वारा सहज ही आ सकते हैं। अत: उसी पद्धति को अपनाकर सुख-शान्तिपूर्वक जीवनयापन करते हुए अभ्युदय एवं नि:श्रेयस को प्राप्त करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा

वर्तमान और प्राचीन शिक्षा प्रणालियों की कार्यविधि पर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से यह सहज ही पता चल जाता है कि इन दोनों में कितना जमीन-आसमान जैसा अन्तर है।

आजकल केवल भौतिक जानकारियों की शिक्षा स्कूल-कॉलेजों में दी जाती है। गणित, भूगोल, इतिहास, भाषा विज्ञान, रसायन आदि विषय पढ़ाकर शिक्षकगण अपने कर्तव्य की इति समझ लेते हैं। परीक्षक लोग प्रश्न-पत्रों द्वारा यह जाँच लेते हैं कि छात्र ने इन विषयों को किस सीमा तक याद किया है ? उत्तीर्ण छात्रों को बी० ए०, एम० ए० विशारद आदि की उपाधि दे दी जाती है। यह उपाधि यह प्रकट करती है कि छात्र ने अमुक विषयों में, अमुक श्रेणी जैसी शिक्षा प्राप्त करली है।

अध्यापक लोग इस बात पर ध्यान देते हैं कि उनके छात्र अच्छे नम्बरों से पास हो जायें, ताकि वे अच्छे अध्यापक गिने जावें और पुरस्कार तथा वेतन वृद्धि के भागी हों। वे इस बात की आवश्यकता नहीं समझते कि छात्र के व्यक्तिगत गुण, कर्म, स्वभाव का निरीक्षण करें और उसे उचित दिशा में विकसित करने का प्रयत्न करें। छात्र चाहे जैसे दोषों, दुर्गुणों में फँसा रहे, अध्यापक को उससे कोई सरोकार नहीं। पाठशाला छोड़ देने के बाद तो छात्र और अध्यापक के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। यहाँ तक कि एक-दूसरे को पहचानने में भी कठिनाई होती है।

प्राचीनकाल में इस प्रकार की भौतिक शिक्षा प्रणाली न थी। उस समय गुरु का कार्य शिष्य को भौतिक विषयों की शिक्षा देने के साथ-साथ उनके व्यक्तिगत जीवन का—गुण, कर्म और स्वभावों का समुचित विकास करना भी था। इसलिए गुरु का महत्त्व, माता और पिता के बराबर समझा जाता था। पहला जन्म माता-पिता के रज वीर्य से होता था—दूसरा जन्म गुरुकुल में आचार्य द्वारा होता था। तब द्विज-द्विजन्मा बनते थे। गुरु 'शिक्षा' से अधिक 'विद्या' पढ़ाते थे। भौतिक बातों की अपेक्षा आत्मनिर्माण सम्बन्धी ज्ञान देते थे।

आजकल परीक्षक सबको एक लाठी से हाँकते हैं। सब धान बाईस पसेरी समझकर सबकी एक-सी परीक्षा लेते हैं और अमुक सीमा तक नम्बर प्राप्त कर लेने वाले को एक-सी उपाधि दे देते हैं। प्राचीनकाल में गुण, कर्म स्वभाव और योग्यता के अनुकूल गुरुकुल में परीक्षा होती थी। उसी के आधार पर गुरु उपाधि देते थे। यह उपाधियाँ शिष्यों के गुणों और योग्यताओं की प्रतीक होती थीं।

आज कितने ही गोत्र जो वंश परम्परा से चल पड़े हैं। एक समय में गुरुकुल की उपाधियाँ थीं, जिन्हें गुरुजन छात्र की योग्यता के अनुरूप प्रदान करते थे। जैसे—द्विवेदी (जिसने दो वेद पढ़े हों), त्रिवेदी (जिसने तीन वेद पढ़े हों), चतुर्वेदी (जो चारों वेदों का ज्ञाता हो) अग्निहोत्री (यज्ञ विद्या में प्रवीण), पंडित (सच्चरित्र-विचारवान), व्यास (वक्ता), महता (महत्त्व प्राप्त), उपाध्याय (अध्यापक), गोस्वामी (इन्द्रियों पर काबू रखने वाला), दीक्षित (सुसंस्कृत), शुक्ल (शुभ्र-पवित्र), मुनि (मनन करने वाला-विचारक), ऋषि (ऋतम्भरा बुद्धि वाला), पुरोहित (पुर का-नगर का-हित करने वाला)—इसी प्रकार अनेकों उपाधियाँ गुरुकुल से प्राप्त होती थीं। छात्र को ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण भी गुरुकुल से ही उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार घोषित होता था।

यह उपाधियाँ सामाजिक जीवन में प्रवेश पाने के लिए आवश्यक समझी जाती थीं। इनसे प्रकट होता था कि इस व्यक्ति ने गुरुकुल में प्रवेश किया है। गुरुकुल से रहित व्यक्ति को 'निगुरा' जैसे तिरस्कार सूचक शब्दों से सम्बोधित किया जाता था। जैसे वैध पिता का न होना आज एक बुरी बात समझी जाती है। उसी प्रकार गुरु दीक्षा प्राप्त न होना भी एक लज्जा एवं कर्तव्यहीनता की बात समझी जाती थी। अपनी गुरु दीक्षा के प्रतीक—गुरुकुल की पदवियों को लोग सम्मान और आग्रह के साथ धारण करके, अपने को गौरवान्वित समझते थे। महाभारत में विश्वामित्र की कथा प्रसिद्ध है। उन्होंने राजर्षि की उपाधि से ऊँची उपाधि ब्रह्मर्षि प्राप्त करने के लिए घोर उग्र तप किये थे और इस मनोकामना की पूर्ति में बाधक वशिष्ठ से भयंकर संघर्ष किया था और अन्त में अपना अभीष्ट पूरा करके छोड़ा था।

आज स्कूली भौतिक शिक्षा का बोलवाला है। बी० ए०, एम० ए० की डिग्रियाँ पेटभर रोटी दिलाने में समर्थ न होने के कारण अपनी भौतिक महत्ता भी खो रही हैं। गुरुकुल प्रणाली का लोप हो चला है। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के कारण आज पदवियों की निरर्थकता दृष्टिगोचर होती है। पर वह समय दूर नहीं जब प्राचीन ऋषि प्रणाली का पुनः उदय होगा और भारतमाता की आर्य सन्तानें ऋषि पद्धति से जीवन को सच्चा जीवन बनाने वाली गुरुकुल की शिक्षा प्राप्त करेंगी।

हमारी शिक्षा कैसी होनी चाहिए ?

मानव में मानवता तभी टिक सकती है, जबकि उसे ऐसी शिक्षा दी जावे, जिससे उसका सतत् विकास होता रहे। जीवात्मा स्वभाव से ही ऊँची उठने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है।

सुशिक्षा से मनुष्य अपनी कमियों को पूर्ण करता है। चाहे शारीरिक हो, मानसिक एवं अध्यात्मिक हो सभी के सतत् विकास का माध्यम शिक्षा है।

वर्तमान समय में जो शिक्षा दी जाती है, वह हमें पूर्ण विकास के मार्ग पर न ले जाकर अहंकारी, प्रमादी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा मर्यादा से च्युत करने में सहायक बन रही है। आज के विद्यार्थी, वास्तविक विद्या के अर्थी न होकर केवल सर्टिफिकेट प्राप्त करने वाले हैं। हमारे राष्ट्रनायक शिक्षा में धार्मिकता का समावेश करने में हिचकते हैं चाहे उसके अभाव में हमारे बालक चरित्रहीन हों या प्रपंची अथवा उद्दण्ड स्वभाव वाले ही क्यों न बन जायें ?

आज की शिक्षा, शिक्षार्थी तथा शिक्षक तीनों जीवन विकास में किस प्रकार सहायक हों तथा शिक्षालय में कितना प्रेम-सद्भावना आदि विशिष्ट गुण, वातावरण पैदा हो यह समस्या विचारणीय ही नहीं किन्तु परम आवश्यक है। इस समय की वे घटनाएँ जो आए दिन विद्यालयों में सुनाई दे रही हैं, उनसे शिक्षा के वर्तमान स्वरूप का स्पष्ट चित्र सारे संसार को दिखाई दे रहा है।

आज की शिक्षा में भौतिकवाद का बोलवाला है। शिक्षा के विषय ऐसे चुने गये हैं कि उस विषय की अधूरी ही शिक्षा दी जाती है। शिक्षार्थी की बौद्धिक शक्ति का विकास होता नहीं, वे तोतारटंत या रिकार्ड मशीन की तरह एक विशेष स्थिति में ही रह जाते हैं। वर्तमान शिक्षा एकांगी है। वास्तविक शिक्षा वह है, जिससे मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों पथ का पथिक बन सके जिससे मनुष्य का तन सबल, मन स्वच्छ हो, वह छल-प्रपंचरहित, परोपकारी, बुद्धिमान तथा एक सुयोग्य नागरिक बने वही सच्ची शिक्षा कही जा सकती है।

आज आध्यात्मिक शिक्षा भी मनुष्य को पूर्ण अमली ज्ञान कराने में असमर्थ हो रही है। जो कुछ भी अध्यात्म के नाम पर अथवा धर्म कृत्य करने-कराने वाली शिक्षा दी जाती है, वह भी एक यन्त्रवत क्रिया मात्र ही रह जाती है क्योंकि शिक्षक अध्यात्म तत्त्व, कर्मकांड के रहस्य को शिक्षार्थी के अन्तर में नहीं उतार पाते। उधर शिक्षार्थी भी अधूरे ज्ञान एवं उपेक्षित मन से अपूर्ण बातें ही सीखते जाते हैं। आत्मज्ञान, वेदांत के मर्म को भी सही रूप में नहीं जान पाते।

मनुष्य को शिक्षा-जितनी अपने जीवन के प्रारम्भ में मिलती है और जितनी उस अवस्था में ग्रहण कराई जाती है, उतनी अन्य काल और अवस्था में ठीक-ठीक सम्भव नहीं। बालकपन में हम एक प्रबल जिज्ञासु होते हैं। उस समय के संस्कार जीवन भर जमे रहते हैं। अतएव शिक्षा किसी भी देश के बालकों को ऊँचे उठाने में समर्थ है। धर्मवान, कर्तव्यनिष्ठ, परोपकारी, ज्ञानवान तथा राष्ट्र के सच्चे सपूत बनाने में अच्छी विकासपूर्ण सुशिक्षा दी जानी चाहिए।

मानव जीवन के उत्थान में वही शिक्षा समर्थ है, जो उसके विवेक, पुरुषार्थ, सेवा, कृतज्ञतादि भावनाओं को विकसित करे। मनुष्य को सब अवस्थाओं में सुखी-प्रसन्न प्रमादहीन बनाए, यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अब शिक्षा के वर्तमान स्वरूप में विकृतियाँ आ गई हैं। अतः उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। शिक्षा जीवन निर्माण का कारण है। शिक्षा का आदर्श जो हमें आत्मोन्नति की मंजिल में ले जावे एवं हमारे वास्तविक लक्ष्य तथा अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हो वैसा ही रखा जावे।

अच्छी शिक्षा का आदर्श हमें नीति निपुण सर्व आत्मभावना दायक विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति दया, सेवा, भलाई, अपनत्व आदि गुण स्वभाव संस्कार वाले बनाना है।

अच्छी शिक्षा जितनी आवश्यक है, उतनी ही उसके उच्च गुण, कर्म, स्वभाव वाले शिक्षक भी होने चाहिए अथवा बनाने के लिए हमें प्रयत्न करना होगा। योग्य शिक्षक ही तो हममें से दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी, तिलक आदि जैसे सच्चे शिक्षार्थी उत्पन्न करते हैं।

अच्छी शिक्षा का ही परिणाम था कि प्राचीन समय में मेधावी, तेजस्वी, मनस्वी और यशस्वी छात्र हमारे देश में होते थे। गौतम, व्यास, पतंजलि, करणादि, वशिष्ठ, जैमिनि जैसे विश्वगुरु भी तो हमारे देश में हुए थे जिनके ज्ञान का आज विश्व ऋणी है।

शिक्षा गुरु को शिक्षक के वास्तविक उद्देश्य तथा मानव-जीवन के परम लक्ष्य की दृष्टि को जानकर असली राष्ट्र निर्माता के रूप में अपने को एक आदर्श गुरु बनाना होगा। हमारी शिक्षा की सफलता योग्य गुरुओं की अपेक्षा रखती है। बालकों के भावी-जीवन तथा समाज की प्रमुख समस्या को स्थिर, प्रेरणा तथा शुद्ध हितकारी वातावरण की ओर जाने में योग्य शिक्षकों की आवश्यकता है।

शिक्षा ऐसी हो जिससे आत्मा को गति मिले, मानवता का प्रसार हो, शिक्षार्थी की शारीरिक, मानसिक उन्नति हो।

शिक्षा प्रसार संस्थाएँ अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को अच्छी प्रकार से समझें। शिक्षा को किसी विशेष दृष्टिकोण में ही आबद्ध न किया जाय क्योंकि शिक्षा से मनुष्य सब प्रकार की उन्नति करता है। यदि संकुचित बातों में ही शिक्षा का आदर्श और विकास सीमित कर दिया गया, तो वह पंगु बन सकती है।

मनुष्य की सुन्दर भावनाएँ विकसित होती रहें। उनमें दया, प्रेम, उदारता तथा एक-दूसरे को अपना जान सकें ऐसी शिक्षा भी देनी ठीक होंगी। कोई भी शिक्षा तब तक अधूरी है, जब तक कि वह मानव के विकास में अच्छी प्रकार से प्रमाणित न हो जाय।

वैदिक युग में शिक्षा को इतना महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता था कि जीवन का प्रथम भाग इसी में समाप्त हो जाता था। इसी प्रथमावस्था की शिक्षा शिक्षार्थी के भावी जीवन को सुन्दर बना देती थी। गुरुकुलों की शिक्षा, जहाँ पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कराते हुए दी जाती थी, वहाँ विद्याभ्यास के साथ-साथ ही शिक्षार्थीगण नीतिशास्त्र, राज्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रक्षा के प्रकार तथा राष्ट्र के प्रमुख-प्रमुख हितों की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को भी सीख जाया करते थे।

गुरुकुल के विद्यार्थी उस समय राष्ट्र की निधि समझे जाते थे। आचार्यों द्वारा शिक्षा प्राप्त करके शिक्षार्थी एक सफल गृहस्थ, विद्वान, सदाचारी, अध्यात्म तत्त्वज्ञानी, आस्तिक होता था और साथ ही मनुष्य भी।

आज की शिक्षा को जब उस वैदिक युग की शिक्षा से मिलाते हैं, तो इसी परिणाम पर दृष्टि जाती हैं कि वर्तमान शिक्षा अधूरी है। माना कि उस वैदिक युग में और इस युग में बहुत अन्तर है। न वैसे शिक्षक हैं न शिक्षा, किन्तु जो कुछ भी प्राप्त है, उससे भी शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाकर शिक्षा का आदर्श एवं लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा से मानव में पूर्णता आती है। जीवन स्तर और बौद्धिक शक्ति विकास होता है। राष्ट्र का उत्थान अच्छी शिक्षा प्राप्त होने से हो सकता है। अतएव शिक्षा के सर्वांगीण विकास के मूलतत्व को विकसित करना नितान्त आवश्यक है। शिक्षालयों का वातावरण जिस ओर अधिक अच्छा बनाया जाय, उसके लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया जाय। मनुष्य के मस्तिष्क के साथ ही उसके हृदय को भी विशाल एवं उदार जिस शिक्षा के माध्यम से बनाया जाय, आज वैसी ही शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

अपने आप में एक समस्या— वर्तमान शिक्षा

थोड़े ही समय पूर्व हमने स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती मनाई है। भारत को राजनैतिक स्वतन्त्रता मिले सैंतालीस वर्ष हो गए । इन सैंतालीस वर्षों का सिंहावलोकन करने पर यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति भारत के उपयुक्त सिद्ध नहीं हुई है।

स्वतन्त्र देश के नागरिक—युवा पीढ़ी में आवश्यक नैतिक, चारित्रिक तथा बौद्धिक गुणों का विकास चाहिए। उतना विकास करने में शिक्षा-पद्धति असमर्थ सिद्ध हो चुकी है। समाज तथा विश्व मानव के प्रति जो दृष्टिकोण एक विकासशील देश के उत्तरदायी नागरिक में उत्पन्न होना आवश्यक होता है, उसे उत्पन्न करने में भी यह शिक्षा लगभग असमर्थ-सी रही है। एक लम्बे समय से इसमें आमूलचूल परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है।

पराधीन काल में विदेशी शासकों द्वारा चलाई गई यह शिक्षा केवल उनके हित में थी। भारतवासियों के हित का तथा उनके उत्थान का— विकास का कोई लक्ष्य इसके पीछे नहीं था। उन्हें केवल नौकर भर चाहिए थे। उनके लिए यह नौकर तैयार करने का माध्यम भर थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात होना यह चाहिए था कि अन्य समस्याओं की ओर ध्यान देने के साथ-साथ शिक्षा-पद्धति सुधार की ओर भी ध्यान दिया जाता। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। थोड़े-बहुत सामयिक सुधार अवश्य हुए किन्तु उनकी स्थिति फटे कपड़े पर पेबन्द की तरह ही रही। ।

प्रणाली वही रही। विश्वविद्यालय बढ़े। महाविद्यालय बढ़े। माध्यमिक शालाएँ बढ़ीं। प्राथमिक शालाएँ बढ़ीं। परिवर्तन तो कुछ हुआ नहीं। जैसी यह प्रणाली थी, जैसा इसका उद्देश्य था परिणाम वैसा ही हुआ। इन शिक्षा केन्द्रों से डिग्रीधारियों की सेना प्रतिवर्ष निकलने लगी।

"पढ़ाई करने पर डिग्री पाओ और डिग्री पाकर नौकरी पाओ।" यही है आज की शिक्षा का उद्देश्य। नौकरी कोई बुरी बात नहीं पर नौकरियाँ सबको दी कहाँ से जाएँ ? स्थान तो सीमित है तथा प्रत्याशी प्रतिवर्ष बढ़ते जाते थे। बेकारों की संख्या बढ़ने लगी। यह संख्या आज बढ़ते-बढ़ते कई करोड़ तक पहुँच गई है।

इस भयंकर दुष्परिणाम को देखकर प्रत्येक व्यक्ति के मुख से यही निकलने लगा कि इस शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन होना चाहिये। शिक्षार्थी शिक्षक और अभिभावक सभी वर्तमान शिक्षा पद्धति में क्रान्ति चाहते हैं।

यह शिक्षा अपने पाँवों पर खड़ा होना नहीं सिखाती। सिखाती है पंगु होना। नौकरी करना ही हर कोई चाहता है। उसमें न अधिक श्रम करना पड़ता है, न जोखिम उठानी पड़ती है। दोष नौकरी चाहने वालों का नहीं इस शिक्षा का है। जैसा कि महात्मा गाँधी स्वराज्य पाने के पूर्व ही कहा करते थे। "भारत के अधिकांश निवासी ऐसे हैं, जिन्हें न दो जून ठीक से भोजन मिल पाता है, न ठीक से तन ढकने के लिए उनके पास पूरे कपड़े ही है, न सिर छुपाने को ठीक-सा मकान है, ऐसे लोगों को कृषि बागवानी, कताई-बुनाई, लकड़ी का काम आदि धन्धे सिखाने चाहिए ताकि वे अपने पाँवों पर खड़े हो सकें। किन्तु यह तभी सम्भव था कि इस विचारधारा को शिक्षा पद्धति में स्थान मिलता।

पढ़-लिख जाने पर प्रत्येक व्यक्ति 'साहब' बनना चाहता है। अपने हाथ से काम करना उसे अपना अपमान लगता है। अपना काम स्वयं करने में जहाँ गर्व की अनुभूति होनी चाहिए, उसके स्थान पर लज्जा लगती है। गरीब तथा मध्यम वर्ग के माता-पिता अपने बालक को इस उद्देश्य से पढ़ाते हैं कि वह पढ़-लिख कर योग्य बने। वह योग्य बनता है केवल 'साहब' बनने के सपने देखने वाले के रूप में।

माता-पिता बेचारे इतना समझते नहीं कि शिक्षा क्या होती है और उसके पीछे क्या उद्देश्य होते हैं। वे अपने पुत्र-पुत्री को अपना पेट काटकर अपने आवश्यक खर्चों में कमी करके पढ़ाते हैं। शिक्षा का व्यय उनके बूते के बाहर भी होता है। इस खर्चीली शिक्षा का व्यय उठाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी जिस पिता के समाने उसका पुत्र निठल्ला फिरे, बेकार बैठा रहे। पिता के दु:ख का अनुमान लगाना कठिन है।

यह शिक्षा धन और समय दोनों ही दृष्टि से महँगी है। स्नातक बनने के लिए चौदह वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। पिता चौदह वर्ष तक पढ़ाई का कमर तोड़ खर्च उठाए, तब कहीं जाकर बी० ए० की डिग्री मिलती है। पढ़ लेने पर भी यदि नौकरी मिल जाय तो परम सौभाग्य है, नहीं तो वह बेकार रहा तथा घर के काम से भी गया। स्नातक हो जाने पर भी नौकरी मिलती है दो सौ रुपये मासिक। पढ़ाई पर खर्च किये गये धन से कोई उद्योग-धन्धा किया जाता तो यह समय तथा धन व्यर्थ नहीं जाता।

इतना व्यय तथा कठिनाइयाँ सहन करते हुए भी यदि सच्ची शिक्षा मिल जाती तो भी कोई विशेष हानि नहीं थी। शिक्षा पाने के पीछे लक्ष्य तो केवल नौकरी तथा डिग्री भर था। जबकि शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए स्वावलम्बी, ज्ञानवान, चरित्रवान, व्यक्तित्व का धनी बनना तथा देश, समाज के लिए उपयोगी नागरिक बनना। जिसका इस टकसाली शिक्षा में प्राय: सर्वथा अभाव ही है।

छात्रों की सफलता-असफलता परीक्षा से आँकी जाना भी दोषपूर्ण है। थोड़े से प्रश्नों के उत्तरों को देखकर, परीक्षक छात्र की वर्ष भर की शिक्षा को आँकता है। छात्र के मानसिक का यह मूल्यांकन कैसे सही हो सकता है ? परीक्षक के सामने तो केवल उत्तर-पुस्तिका भर रहती है। वर्ष भर विद्यार्थी ने क्या किया, क्या नहीं किया, इसका अनुमान वह इस उत्तर-पुस्तिका से लगा सके यह कठिन ही नहीं असम्भव भी है। छात्रों को भी केवल परीक्षा से मतलब रहता है, शारीरिक, मानसिक विकास पर वे ध्यान नहीं देते।

कक्षा में एक ही तरह के विषय, एक ही तरह का पाठ्यक्रम प्रत्येक छात्र के लिए रहता है। किस छात्र में ईश्वर ने प्रतिभा के कौन-से अंकुर रखे हैं जिन्हें विकसित करने पर उसका व्यक्तित्व निखरेगा तथा समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, इस प्रकार की कोई विशेष व्यवस्था यहाँ देखने को नहीं मिलती। छात्र के गुण, कर्म तथा स्वभाव पर ध्यान देकर उन्हें परिष्कृत करने का प्रयास आवश्यकता से कम ही किया जाता है।

शिक्षा के अन्तर्गत शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समुचित ज्ञान तथा व्यवहार का समावेश इस शिक्षा पद्धति में लगभग नहीं किया गया। शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ व्यक्ति के लिए प्रगति के द्वार लगभग बन्द से हो जाते हैं। भावी जीवन की सार्थकता के लिए यह ज्ञान प्रत्येक छात्र के लिए आवश्यक होता है। इसके अभाव में यह शिक्षा एकांगी सिद्ध हो रही है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी समुचित शिक्षा तथा लोक व्यवहार का ज्ञान नहीं होने से हमारे युवा छात्र प्राकृतिक रूप से स्वस्थ रहने की कला में बिना पढ़े-लिखों के समकक्ष ही ठहरते हैं। खान-पान, वेशभूषा तथा आचार-विचार के सम्बन्ध में उनका कोई व्यापक दृष्टिकोण नहीं बनता। सादगी तथा सज्जनता की उपयोगिता का भान उन्हें नहीं रहता। यही कारण है कि अधिकांश छात्र फैशनपरस्ती तथा अन्य आधुनिक विडम्बनाओं में फँसे हुए देखे जाते हैं।

इस शिक्षा के अन्तर्गत पुस्तकों के माध्यम से जो जानकारियाँ दी जाती हैं, उनके ज्ञान में जो वृद्धि की जाती है, उसमें छात्रों का मानसिक विकास जितना होना चाहिए उतने ज्ञान का समावेश नहीं होने से वे मानसिक शक्तियों से पूरी तरह परिचित नहीं हो पाते। मनोबल, साहस, धैर्य आदि की न्यूनता उनके भावी जीवन को प्रकाशवान नहीं होने देती।

पाठ्य पुस्तकों में दी गई जानकारी तो पुरानी होती है। वर्तमान समय में विश्व में क्या गतिविधियाँ हो रही हैं इस प्रकार की सामयिक जानकारी पाठ्यक्रम का महत्त्वपूर्ण भाग होना चाहिए। किन्तु ऐसा कोई प्रावधान इस शिक्षा क्रम में नहीं है। जिससे कि वे विश्व की सामयिक समस्याओं तथा समाज की प्रस्तुत परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त कर सकें एवं उनके प्रति अपना उत्तरदायित्व समझ सकें। सामयिक जानकारी के अभाव में कोई भी व्यक्ति कूपमण्डूक ही रहता है, मानव समाज के उपयोगी नहीं बन सकता।

नैतिक शिक्षा का समुचित समावेश भी पाठ्यक्रम में नहीं होता। अनैतिकता से व्यक्ति तथा समाज को क्या लाभ होता है तथा उसके अभाव में क्या व्यक्तिगत तथा सामाजिक हानियाँ होती हैं ? इस प्रकार की नैतिक शिक्षा का पूरा-पूरा समावेश यदि इस शिक्षा-क्रम में रहा होता तो वर्तमान समय में जो भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता की बाढ़ आ रही है, उसे रोकने में छात्र सहायक होते तथा उनके भावी जीवन में भी इन सद्गुणों का विकास स्पष्ट देखा जा सकता। इस ज्ञान के अभाव में वे स्वयं भी कभी-कभी बहते हुए दिखाई देते हैं, ऐसा नहीं होता। यह समाज के लिए एक वरदान सिद्ध हो सकता था।

यह शिक्षा व्यक्ति को जीवन व्यवहार की समुचित शिक्षा नहीं देती। जब आज का शिक्षार्थी कल एक परिवार का कर्ता-धर्ता बनता है। अपने से बड़ों के प्रति तथा छोटों के प्रति उसका क्या दायित्व होता है, उसे उन दायित्वों का वहन किस प्रकार करना चाहिए ? परिवार में पत्नी तथा बच्चे होते हैं। उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करने से परिवार स्वर्ग बन सकता है तथा किस प्रकार की भूलें करने से वह नर्क बन जाता है। इस व्यावहारिक ज्ञान से शून्य की डिग्रियाँ यहाँ आकर व्यर्थ हो जाती हैं। परिवार में सुख-शान्ति का सृजन करने की कला से अनभिज्ञ रखकर यह शिक्षा हमारी नई पीढ़ी को अँधेरे में रखती है तथा उनकी भावी सन्तति का भविष्य भी अन्धकारमय करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण का अभाव ही इस शिक्षा में नहीं वरन् यह राष्ट्रीयता की भावना जगाने में भी नितान्त असमर्थ सिद्ध हुई है। व्यक्तियों का राष्ट्रीय सम्पत्ति के दुरुपयोग-सदुपयोग के विषय में जो दृष्टिकोण रहता है, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। जब राष्ट्र की सम्पत्ति के प्रति हमारा दृष्टिकोण ठीक नहीं है तो राष्ट्रीय समस्याओं की ओर सोच पाने की सामर्थ्य भला उनमें कहाँ से आएगी ? देश के सामने कितनी ही समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं। इनका हल चुटकी बजाते ही हो जाता यदि लोगों में राष्ट्रीयता की भावना इस शिक्षा ने जगाई होती।

भारत में प्रस्फुटित-विकसित संस्कृति की उपयोगिता सार्वभौमिक है। भौतिक समृद्धि के लिए दौड़ लगाते-लगाते मनुष्य थक चुका है। विज्ञान से महत्त्वपूर्ण सेवाएँ तो ली जा रही हैं किन्तु साथ ही साथ युद्ध की भयंकरता भी विज्ञान प्रदत्त परमाणु अस्त्रों के कारण बढ़ चुकी है। ऐसी परिस्थितियों में सांस्कृतिक विचारधारा ही विश्व मानव को सुख-शान्ति दे सकती है। ऐसा कई देशों के नागरिक अनुभव भी कर रहे हैं। हमारी शिक्षा में इस संस्कृति का ज्ञान उस स्तर तक नहीं दिया जाता, जिससे कि अपने कर्तव्य का सच्चा स्वरूप उनके सामने रख सकें।

हमारी अपनी सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने तथा प्रगति की दौड़ में कदम से कदम मिलाने के लिए नागरिकों को जैसी शिक्षा मिलनी चाहिए—भावी नागरिकों की जैसी शिक्षा-दीक्षा होनी चाहिए—वैसी वर्तमान शिक्षा पद्धति नहीं देती।

वर्तमान शिक्षा पद्धति समस्याएँ सुलझाने और निपटाने का एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करती है, जिससे उलझनें और बढ़ती चली जाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देश की वर्तमान दशा से लगाया जा सकता है। स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों में जाकर इसके प्रमाण देखे जा सकते हैं। जिन नवयुवकों के कन्धों पर राष्ट्र के भविष्य का भार है। उन्हें रैंगिग, हड़तालें, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, फैशन परस्ती, आलस्य, आचार दायित्व, अशिष्टता आदि न गिनाये जा सकने वाले रोगों से ग्रस्त करने की सबसे अधिक जिम्मेदारी इस शिक्षा-पद्धति पर ही है।

शिक्षा-पद्धति में सुधार के लिए सरकार पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। सामाजिक स्तर पर भारतीय जन जीवन में उपयुक्त सर्वांगपूर्ण शिक्षा-पद्धति का स्वरूप खड़ा करना चाहिए। सरकार तथा समाजसेवी संस्थाओं का ही यह दायित्व नहीं वरन् भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है।

आधुनिक शिक्षण की विचारणीय समस्याएँ

शिक्षालाय में बालकों को आज जो शिक्षण दिया जा रहा है, वह केवल उदरपूर्ति एवं व्यक्तिगत स्वार्थ साधन में सीमित हो चुका है। जो शिक्षा भारत के अन्दर प्राचीन काल में दी जाती थी, वह शिक्षा विदेशों ने अपनाई है और उनके लिए वह सम्यक् लाभप्रद भी हुई।

हमारे यहाँ अध्ययनार्थ तक्षशिला और नालंदा जैसे बड़े-बड़े विद्यालय थे और उन विद्यालयों में सभी प्रकार के विभिन्न विषयों का अभ्यास कराया जाता था और वहाँ से नीतिज्ञ, दार्शनिक, तत्ववेत्ता चाणक्य जैसे राजनीतिज्ञ कुशल छात्र तैयार किए जाते थे और उसी विद्या का सम्यक् रूप से उपभोग राष्ट्र निर्माण एवं देश की प्रगति के लिए किया जाता था और ऐसे व्यक्ति राष्ट्र के निर्माण में अपनी-अपनी अमूल्य शक्ति लगाकर देश हितार्थ कार्य किया करते थे। अतः उस समय सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा भौतिक विज्ञान के साथ-साथ अन्य विभिन्न कलाओं का विकास भी हुआ था। उसका कारण उस समय विद्यालय एवं महाविद्यालयों में अन्य विभिन्न विषयों के साथ आध्यात्मिक तथा सदाचार एवं चारित्र्यशीलता तथा विनयादि सद्गुणों का उपदेश तथा अध्ययन करवाया जाता था जिससे उसका प्रभाव विद्यार्थियों के ऊपर सम्यक् रूप से पड़ता था और उस जमाने के विद्यार्थी सुयोग्य, नीतिदक्ष, कर्मठ एवं दार्शनिक, तत्ववेत्ता साथ ही सुयोग्यशासक छात्र निकलते थे और भारत का उज्ज्वल चरित्र छात्रों के द्वारा ही होता था।

आज हमारे यहाँ जब विशाल विद्यालय एवं विश्वविद्यालय नहीं हैं, ऐसा नहीं किया जा सकता। इस क्षेत्र में भारी प्रगति हुई किन्तु उस आदर्श और उद्देश्य को भुला दिया गया है, जिसके आधार पर साधारण तनुधारी को महापुरुष बनाया जाता है। आज तो शिक्षा क्षेत्र में भी भौतिकवाद का बोलवाला है। बालक उस ढाँचे में ढलते जा रहे हैं, जिसमें तृष्णा, विलासिता, अहंकार, आलस्य और उच्छृंखलता को ही प्रगति माना जाता है।

"आजकल विद्यार्थियों को जो शिक्षण दिया जा रहा है, वह केवल ज्ञान शून्य एवं तथ्यहीन मालूम पड़ता है। शिक्षा का प्रभाव छात्रों के ऊपर पड़े बिना नहीं रहता क्योंकि जैसी शिक्षा बालकों को दी जाएगी, वैसे ही बालक तैयार होंगे। किन्तु आज की शिक्षा केवल अर्थ उपार्जन करो, हो सकती है पर वह समाज तथा राष्ट्र की प्रगति में विघ्न रूप ही सिद्ध हो रही है।

हम भौतिक और आर्थिक क्षेत्र की उत्तरोत्तर प्रगति करते जा रहे हैं और उसमें सफलता की आशा भी दीख पड़ती है परन्तु शिक्षण क्षेत्र में सुधार करने की आवश्यकता की ओर राष्ट्रनायकों का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। राष्ट्र का उत्कर्ष शिक्षा के ऊपर आधारित है। अतः उसमें सुधार किए बिना राष्ट्र की विशेष प्रगति में सन्देह ही रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम देखते हैं कि योग्य शिक्षा के बिना विद्यार्थी उद्दण्ड, अविनयी, शिष्टताविहीन एवं श्रमहीन हो गए हैं और उनके सम्बन्ध में अशोभनीय शिकायतें सुनने में आती हैं। अगर हम शान्तचित्त से विचार करें, तो इसमें अधिकांश दोष छात्रों का न होकर सुयोग्य शिक्षा का अभाव ही इसका मूलभूत हेतु प्रतीत होगा। प्राचीनकाल में हमारे यहाँ बालकों को विद्यालय तथा प्रसिद्ध आश्रमों में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य, चारित्र्यशीलता, गुरुत्व भावना, विनय एवं सदाचार, शिष्टता आदि के बारे में विशेष ध्यान तथा उपदेश दिया जाता था और उसी के कारण उस समय के विद्यार्थी सुयोग्य तथा अच्छे विद्वान बनते थे इसका कारण सुचारु शिक्षा ही थी। सच्ची शिक्षा वही है जो व्यक्तिगत मानव के साथ-साथ राष्ट्र का सम्यक् रूप से उत्कर्ष कर सके।

चारित्र्य मनुष्य मात्र का आवश्यक गुण है। उसके बिना चाहे कोई भी मनुष्य हो, समाज में बड़प्पन तथा सुयश किसी भी अवस्था में प्राप्त नहीं कर सकता। अब हमारे यहाँ चरित्र के बारे में उपेक्षा की जा रही है, इस लिये विद्यार्थियों के उन गुणों का विकास नहीं हो रहा है, जो एक बुद्धिमान राष्ट्र के भावी निर्माताओं के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं।

भूदान के प्रवर्तक आचार्य बिनोवा भावे ने 'जीवनी की प्रधान तीन बातों' में (१) भक्ति (२) उद्योग तथा (३) हम जो जानते हैं वह दूसरों को जनाना। इन तीन बातों पर बहुत जोर दिया है। निश्चय ही शिक्षा के अन्तर्गत इन विषयों का अध्ययन होना अपेक्षित है। आज के छात्र भावी भारत के कर्णधार होंगे और देश की प्रगति, शान्ति एवं बागडोर उनके ऊपर अवलम्बित है। भारत के भावी शासक भी आज के बालक ही हैं, वे ही यह कालीदास, दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी, अरविन्द आदि सन्त विभूतियों के रूप में प्रकट हो सकते हैं। अत: यदि देश की भावी प्रगति अभीष्ट है और राष्ट्र का चरित्र उज्ज्वल बनाना है तो आज के शिक्षण में सुधार करने की नितान्त आवश्यकता है। उसके लिए भारत के शासक एवं प्रकाशक, लोकनायक, शिक्षाविद् तथा माता-पिता एवं अध्यापक सभी जिम्मेदार हैं। इस क्षेत्र की त्रुटियों में सुधार करने के लिए प्रयत्न करना प्रत्येक शिक्षा प्रेमी तथा देश-भक्त का परम कर्तव्य है।

भारतीय शिक्षा में आवश्यक परिवर्तन

पिछले दिनों केन्द्रीय सरकार ने श्री प्रकाश जी के नेतृत्व में एक कमेटी का निर्माण किया था। इस कमेटी ने शिक्षा संस्थाओं में नैतिक और आत्मिक शिक्षा देने के बारे में स्पष्ट घोषणा की थी। इस संदर्भ में भारतीय छात्रों के लिए नैतिक और धार्मिक शिक्षा के प्रबन्ध की आवश्यकता पर सभी विचारशील भारतीय एक मत थे कारण यदि धार्मिकता का हमारे बच्चों में अभाव हो गया तो उनके चरित्र गिरने से देश का स्वाभाविक पतन होगा।

यह भारत का दुर्भाग्य है कि स्कूलों में धार्मिक शिक्षा का विरोध किया जाता है। उनके विचार से भारत में अनेक मतमतान्तर हैं, अत: समूचे भारत के लिए एक पाठ्यक्रम असम्भव है तथा धार्मिक शिक्षा का स्थान उन्होंने घर बतलाया, गाँधीजी के विचार से शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा होने से शिक्षण संस्थाओं में जातीय संघर्ष की सम्भावना हो सकती है, जबकि अनेकों शिक्षा-संस्थाओं में राष्ट्रीय हिन्दू बच्चों को छोड़कर अल्प धर्मों के बच्चों तक को धार्मिक कार्यक्रम में बड़े उत्साह से भाग लेते देखा जाता है। ईसाइयों द्वारा चलित सारी संस्थाओं के हर जाति के बच्चों को उनके धार्मिक कार्यक्रम को अनिवार्य अपनाना पड़ता है, पर खेद ! अकारण भय मानकर १९४८ में यूनिवर्सिटी कमीशन और सन् १९५२ में सेकेण्डरी एजूकेशन कमीशन ने भी धार्मिक शिक्षा छोड़ केवल नैतिक शिक्षा ही की सिफारिश की। १९५९ में भारतीय संसद ने पुन: इस प्रश्न पर विचार करने का निर्णय किया और स्पष्ट रूप से नैतिक और आत्मिक शिक्षण के प्रबन्ध की योजना प्रस्तुत करने का आदेश दिया था, जो कठिनाइयों से परे नहीं था। भारत में नैतिक, आत्मिक एवं धार्मिक शिक्षण से अटूट सम्बन्ध सदैव से रहा है आज के युवक और अध्यापक वर्ग के भावों में भी क्रान्ति लाने का यदि कोई साधन है तो वह नैतिक शिक्षा ही है।

बालकों का नियन्त्रण भी उसी अवस्था में सफल हो सकता है, जब कि उनमें स्वत: नियन्त्रित होने की आन्तरिक प्रेरणा हो, इने-गिने नेताओं को छोड़कर क्या व्यावहारिक रूप में धार्मिक संकीर्णता प्रत्येक पग पर नहीं दिखाई दे रही है, संकीर्णता का प्रमुख कारण यही है कि समाज के मानसिक विचारों में समय अनुसार आवश्यक परिवर्तन शासन द्वारा नहीं किया जा सकता। स्वामी विवेकानन्द, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभु आदि सरीखे अनेक नेताओं के उपदेश नैतिकता से भरे पड़े हैं, जिनमें धार्मिक संकीर्णता की बू भी नहीं है, स्वयं महात्मा गाँधी के कई लेख मिलेंगे, जिनका एकमात्र लक्ष्य धार्मिकता द्वारा नैतिक सुधार है, श्री प्रकाश कमेटी ऐसे धार्मिक महान लेखों का संग्रह करके उन्हें विभिन्न श्रेणियों के बालकों की योग्यतानुसार लिपिबद्ध कराके एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करने में संलग्न थी, जिसमें प्रत्येक श्रेणी के बालकों के लिए कम से कम एक प्रान्त की सारी शिक्षा संस्थाओं में एक भाषा में अध्ययन सामग्री प्रस्तुत हो सके और हर वर्ष पाठ्यक्रम परिवर्तन करने से समय व धन की महान हानि को रोका जा सके। राष्ट्र हित के विचर से देखा जाय तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक जन और राजकीय विद्यालयों की परीक्षा के लिए नैतिक, धार्मिक एवं सैनिक अध्ययन अनिवार्य कर दिए जाएँ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय की गति के साथ चलना मानव की महान आवश्यकता है, आज सिनेमा संसार ने भारत को जितना बड़ा धक्का देकर गर्त में गिराया, उसकी उपमा सम्भव इतिहास में अन्यत्र नहीं है। अनेकों देशों ने अपने बालकों को महीनों की शिक्षा चित्रपट पर दिखाकर घण्टों में उनके कोमल हृदय पर सदैव के लिए अंकित कर दी पर हमारे चित्रपटों ने देश के नैतिक स्तर को नीचे गिराने का ठेका ले लिया।

क्यों न सिनेमा द्वारा सारे दैनिक व्यवहार जैसे अन्न बोकर कैसे पैदा होता है, किस प्रकार कूट, छान या पीसकर मानव उन्हें अपने कार्य में लगाता है, कैसे कपास के बीज बोने से और उसके फूलने से कपड़ा बनता है, कैसे रेशम के कीड़े या भेड़ से ऊन प्राप्त कर कपड़ा बनता है, कौन-कौन प्रदेश में क्या-क्या विशेषताएँ हैं, कल कारखाने किस प्रकार से मैटीरियल से वस्तुएँ बनाते हैं, जिन्हें जनता नित्य व्यवहार करती है, यदि इस प्रकार के सिनेमा मधुर संगीत के सहयोग से अनिवार्य ८० प्रतिशत देश में बनाए जावें, तो बच्चे छोड़ सारा देश उन्हें देखने पहुँचेगा। २० प्रतिशत सिनेमा मनोरंजन हेतु इस प्रकार बनाए जावें जिसके लिये भारतीय महान ऋषियों का एक अलौकिक मत है कि जिसे सारा परिवार पिता, पुत्र, माता, पुत्री, बहू आदि एक साथ देखने में संकोच अनुभव न करें, बस इसी विधान से यदि उनकी जाँच हो तो आज विशाल गति से हमारा समाज सिनेमा के माध्यम से नीचे गिर रहा है, समाज में सहसा एक महान् परिवर्तन केवल सिनेमा की गति परिवर्तन से दृष्टिगोचर होगा जिसके फलस्वरूप हमारा देश स्वतः संगठित हो अपनी रक्षा करने में समर्थ हो सकेगा।

अन्त में यदि इस महान देश की हमारे नेताओं को वास्तविक रक्षा करनी है। स्पष्ट है कि हमारी सारी सीमाएँ घोर आतंक से प्रभावित हैं। सामाजिक जीवन का स्तर निम्नतम हो चुका है तो धार्मिक सूत से देश के सच्चे घटकों को संगठित करने हेतु धार्मिक शिक्षा सारे देश में अनिवार्य करें।

हमारे युवकों को कैसी शिक्षा दी जाय ?

हमारे देश में कुछ समय से 'धार्मिक शिक्षा' की चर्चा विशेष रूप से होने लगी है। अनेक लोगों का ख्याल है कि देश के शिक्षित युवक और युवतियों में नैतिकता और नियन्त्रण का अभाव दिखलाई पड़ रहा है, उसका कारण शिक्षा में 'धर्म' का समावेश न होना ही है। इस गूढ़ समस्या पर सुप्रसिद्ध विद्वान लाला हरदयालजी ने कुछ स्पष्ट विचार प्रकट किए थे, जो यद्यपि अब काफी पुराने हो गए हैं तो भी शिक्षा-प्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

सबसे पहला प्रश्न तो यही है कि 'धार्मिक शिक्षा' है क्या ? मुझे आज तक मालूम न हो सका कि 'हिन्दुत्व' किसे कहते हैं? जिस प्रकार ईश्वरवादी लोग मानते हैं कि ईश्वर है लेकिन हम यह न जान सके कि वह कैसा है ? 'हिन्दुत्व' के विषय में भी बहुत-से आदमी ऐसा ही मत रखते हैं। यदि हिन्दू धर्मशास्त्रों के समुद्र को मथा जाय तो उसमें ऐसी बहुत थोड़ी मामूली-सी बातें निकल सकती हैं, जिन्हें सब हिन्दू मान सकते हैं। पर मेरी सम्मति में तो ९० करोड़ भारतवासियों को, जिनमें बहुदेववादी, अद्वैतवादी, आस्तिक, नास्तिक सभी शामिल हैं, बजाय ऐसी कुछ मामूली बातों के, हमें सत्य के सर्वमान्य सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिए। इस बात की क्या आवश्यकता है कि भारत के भावी नेता केवल पुराने विचारों के ही गीत गाया करें और स्वयं कुछ सोचने-विचारने का साहस न करें। क्या सारी धार्मिक सच्चाइयाँ और आदर्श प्राचीन ग्रन्थों में ही बन्द हैं? कुछ लोगों का कहना है कि 'धर्म' ही एक ऐसी चीज है जिसके द्वारा एक निर्बल जाति में जातीय-एकता उत्पन्न की जा सकती है और साम्प्रदायिक झगड़ों को मिटाया जा सकता है। पर विचार करके देखा जाय तो यह धर्म की बहुत संकुचित व्याख्या और घटिया दर्जे का उपयोग है। यह आश्चर्य की बात है कि भारत का हर एक हितेच्छु इसके बजाय कि वह सारे संसार की एकत्रित सम्पत्ति में हाथ डाले, प्राचीनता के रिक्त-भण्डार के भरोसे ही बैठा रहना चाहता है। वैदिक सूत्रों पर लड़-झगड़कर और दिन में एक-दो बार बिना समझे-बूझे कुछ मन्त्रों का उच्चारण करके भारत का उद्धार कर लेना लोगों ने बड़ा ही सहज समझ रखा है। लेकिन वास्तव में सामाजिक समता, आत्मगौरव, वैज्ञानिक खोज, तर्क सिद्ध मत, परिमित व्यापी स्वाधीनता, सार्वजनिक भाव और सामाजिक उन्नति के भावों का पैदा करना बड़ा कठिन काम है। 'धार्मिक शिक्षा' के नाम पर हम अपने युवकों को क्या सिखलाना चाहते हैं ? मैं समझता हूँ कि उन्हें वेदों का सम्मान करना सिखलाया जाएगा, जिन्हें वे चाहे पढ़ भी न सकें। उन्हें यह सनातन अन्तर याद कराया जायगा कि श्रुति दैवी है और स्मृति मनुष्यकृत, उन्हें चार वर्ण समाज के चार खम्भे बताए जाएँगे और देवताओं व देवियों की उपासना बताई जायगी। मैं उन्नतिशील भारत से सच्चाई के साथ पूछता हूँ कि क्या यह धार्मिक शिक्षा का हजारों वर्ष पहले जमाने का 'शिक्षाक्रम' जीर्ण-शीर्ण नहीं हो गया है ? हम चाहते हैं कि भारत के भावी निर्माता आधुनिक आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करें, वे संसार भर के परम बुद्धिमान लोगों से ज्ञान सीखें, वे धर्म की ओर तर्क सिद्ध मत और व्यक्तित्व के आधुनिक ढंग से बढ़ें और इस तरह अपने लिए दृढ़ तथा मौलिक आधार स्थिर करें। उनके भीतर अवैज्ञानिक विचारों के ठूँसने से फायदा ही क्या ? सत्य के स्थान पर उन्हें झूठ और सच की खिचड़ी बेतुकी और परस्पर विरोधी बातें बतलाने में भलाई ही क्या ? क्या ऐसे अधकचरे मल्लाह कभी अपनी नाव को पार लगा सकेंगे ?

फिर इनके समाज के विषय में क्या विचार होंगे ? क्या वे मनु की स्मृति को सब कुछ समझ बैठेंगे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्तमान युग में उसी के आधार पर हिन्दुत्व की रक्षा करेंगे ? जब सारा संसार आधुनिक बुद्धिबल से उत्पन्न पोषक भोजन को पा रहा है, उसी समय हमारे युवक अपने नेताओं के कारण ब्राह्मण, गृह-सूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ग्रन्थों में अच्छे पोषक पदार्थ ढूँढ़ते नजर आवें यह क्या हितकर माना जा सकता है। वे लोग विक्रम की इस बीसवीं-इक्कीसवी शताब्दी में, विक्रम से दस शताब्दी पहले के बचे-खुचे माल पर जीवन निर्वाह करना चाहते हैं। इन प्राचीन ग्रन्थों में से कोई भी हमारे युवकों को यह नहीं बतला सकता कि आज समाज का संगठन किस तरह होना चाहिए? यदि आजकल के उपयोगी, सच्चे सामाजिक सिद्धान्त प्राचीन ग्रन्थों से सीखे जा सकते हैं, तो फिर काशी के पण्डितों को ही सब से बुद्धिमान समझो और फिर वे ही नवीन भारत के नेता हो सकते हैं। लेकिन कौन ऐसा मूर्ख होगा जो भारत के भविष्य को काशी और नदिया के पण्डितों के हाथ सौंप देगा। हमें पीछे देखने के बजाय आगे देखना चाहिए। नये अवसर, नये कर्तव्यों की शिक्षा देते हैं। समय के परिवर्तन से अनेक प्राचीन बातें अनुपयोगी हो जाती हैं। जो सत्य के साथ सदा रहना चाहते हैं, उन्हें सदा आगे बढ़ते रहना चाहिए। फिर केवल धर्म-शिक्षा से ही सब काम नहीं चल सकता। सामाजिक आदर्श भी होना चाहिए। एक आदमी ब्रह्म और पुनर्जन्म पर विश्वास करले, पर उसे राष्ट्रीय प्रश्नों, आर्थिक व्यवस्था, विवाह, स्त्रियों का पद, जातीयता, समाज के मुकाबले में व्यक्ति के अधिकार आदि बातों के विषय में भी ज्ञान होना जरूरी है। आज एक आदमी के लिए केवल आस्तिक या अद्वैतवादी, वेदान्ती या सांख्य का मानने वाला होना ही काफी नहीं है। उसे राष्ट्र के विषय में भी कुछ मत स्थिर करना होगा कि वह परिमित राजसत्ता चाहता है या स्वेच्छाचारी राजसत्ता, उसे प्रजासत्तात्मक राज्य पसन्द है या धार्मिक लोगों द्वारा संचालित राष्ट्र इत्यादि। उसे स्त्री तथा उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और पारस्परिक स्वत्वों और कर्तव्यों और साथ ही संसार की आर्थिक व्यवस्था पर अपना मत स्थिर करना होगा। आधुनिक सभ्यता में बड़ी गुत्थियाँ हैं, आज बहुत से प्रश्न ऐसे उपस्थित हैं, जिनका भूतकाल के हिन्दू शास्त्रकारों ने स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया था अब प्रश्न होता है कि इन समस्याओं पर धार्मिक शिक्षा के प्रचारक क्या शिक्षा देंगे ? क्या हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मनु को बताई हुई एक सर्वशक्तिशाली राजा और उसके आठ मन्त्रियों की राज्यसभा का शासन अब भी चल सकता है ? क्या हमारे युवक यह सीखेंगे कि स्त्री को कभी स्वतन्त्रता न मिले ? (न भवेत स्त्री स्वतन्त्रता-मनु)। क्या वे आधुनिक प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन-प्रथा से इसलिए आँखें फेर लेंगे कि हिन्दू काल में तो वह था ही नहीं ? शिक्षा से मनुष्य अपने जीवन के कर्तव्यों के पालन करने में समर्थ होता है। वह युवक किस काम का, जिसने अपने धार्मिक और राजनीतिक मत स्थिर नहीं किए। शिक्षा ही उसे संसार के बड़े-बड़े प्रश्नों पर दृढ़ मत स्थिर करने के योग्य बना सकती है। क्या केवल 'धार्मिक शिक्षा' पर जोर देने से यह उद्देश्य पूरा हो सकता है ?

हमारी शिक्षा का उद्देश्य और स्तर ऊँचा रहे

शिक्षा का आरम्भ साक्षरता से होता है। किसी देश के नागरिकों का सर्वथा निरक्षर होना उसके लिए लज्जास्पद हो सकता है। कारण कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक दिशाधाराओं से परिचित होने के लिए पुस्तकों का, ही आशय लेना पड़ता है। यदि साक्षरता तक का अभ्यास न हो तो उपयोगी ज्ञान जो साहित्य रूप में विद्यमान है उससे समुचित लाभ उठा सकना सम्भव नहीं है। इसलिए हमारी शिक्षा नीति बालकों को स्कूलों में भर्ती कराने तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए वरन् यह भी सोचा जाना चाहिए कि इस समय जो निरक्षर जनसमुदाय है, उसे भी साक्षर बनाने का प्रयास किया जाय। ७० प्रतिशत निरक्षरता में से सर्वथा असमर्थों की संख्या अधिक से अधिक एक चौथाई हो सकती है। शेष को पढ़ाने का प्रयत्न होना ही चाहिए। भले ही अधिक आयु होने की बात सोचते हुए निराशा की झलक सामने आती हो। उचित की सीमा इतनी ही नहीं है कि बालकों और किशोरों को ही यह लाभ मिले और जो व्यक्ति बड़ी आयु के हो चुके हैं उनकी उपेक्षा कर दी जाय। वस्तुतः बालकों की शिक्षित पीढ़ी तो भविष्य में ही काम आ सकेगी। वर्तमान का भार और दायित्व जिनके कंधों पर है, वे तो वयस्क लोग ही हैं। उनकी उपेक्षा करना, वर्तमान की ओर से मुँह मोड़ना और मात्र भविष्य की बात ही सोचते रहना पर्याप्त नहीं होगा। प्रौढ़ शिक्षा का महत्त्व वर्तमान का मूल्यांकन करने से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

यह कार्य जन आन्दोलन के आधार पर होना चाहिए। रिटायर्ड स्तर के लोगों को अपना यही दायित्व निश्चित करना चाहिए कि अपना बचा हुआ समय अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में ही लगावें। सरकार यह कर सकती है कि वर्तमान अशिक्षितों का पंजीकरण कर ले और उनमें से किसी दो को शिक्षित बनाने का दायित्व स्नातक स्तर के छात्रों पर छोड़ें। उनकी पढ़ाई में एक विषय निरक्षरों को साक्षर बनाने का भी जोड़ें। निरक्षरों को खोजना, उनसे सम्पर्क मिलाना और दोनों की सुविधा का समय निर्धारित करके ऐसा तालमेल बनाना जिससे प्रौढ़ शिक्षा की दृष्टि से कम से कम दो की प्राथमिक शिक्षा जितनी योग्यता प्राप्त कराना सम्भव हो सके। उत्तीर्ण का प्रमाण-पत्र तभी दिया जाय, जब उच्च कक्षाओं के छात्र दो निरक्षरों को साक्षर बनाने का प्रमाण पत्र प्रस्तुत कर दें। सरकारी स्कूलों के अतिरिक्त प्रौढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा का प्रबन्ध लोकसेवी संस्थाओं को अपने जिम्मे लेना चाहिए और पढ़ने वालों तथा पढ़ाने वालों को ढूँढ़कर उस तन्त्र को चलने के लिए सन्नद्ध करना चाहिए।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है वह ज्ञान जो व्यक्तिगत, शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक समस्या का स्वरूप और समाधान बता सकने में समर्थ हों। साथ ही यह भी सुझाये कि अपना समाज किन अटकलों में भटक रहा है और किन कारणों से उसकी पीठ पर पिछड़ापन लदा है। अवगति से पीछा छुड़ाने और प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए हमारे सामूहिक प्रयत्न क्या होने चाहिए। इतना समझे या समझाये बिना हमारा चिन्तन, चरित्र और व्यवहार वैसा नहीं हो सकता, जैसा कि एक सभ्य समाज के सदस्य का होना चाहिए। हमारी शिक्षा का एक आवश्यक अंश वैयक्तिक गरिमा को विकसित करना तथा समाज कल्याण के दायित्वों का निर्वाह करना भी होना चाहिए। यह विचार और भावना का विषय है जिसका महत्त्व अन्यान्य विद्याओं की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं माना जा सकता।

शिक्षा में लौकिक जानकारी के लिए काफी स्थान रखा गया है पर उस प्रसंगों का नगण्य-सा समावेश है जिसके आधार पर व्यक्तित्व धनी उपजे और कार्यक्षेत्र में उतरे। इसके लिए जीवन दर्शन का उतनी गहराई तक समावेश होना चाहिए कि दृष्टिकोण में अनैतिकता, अवांछनीयता के लिए कहीं कोई गुंजायश ही न रह जाय। इस प्रकार उस अपव्यय के विरुद्ध विरोध भावनाएँ जगानी चाहिए, जिनके लिए विलासी ठाठ-वाट बनाने वालों को अनिवार्य रूप से आवश्यकर्ता पड़ती है। अपने देश की वर्तमान परिस्थितियों में इतना ही कमाने की गुंजायश है, जिसमें औसत नागरिक की तरह निर्वाह होता रहे। इससें बढ़कर शौक-मौज ठाठ-वाट जिन पर सवार होता है, उनके लिए आवश्यक हो जाता है कि उचित की मर्यादा में सीमाबद्ध न रहकर ऊपरी आमदनी करने के अनैतिक तरीके अपनाएँ और अपराधों का वातावरण बनाएँ। यह नैतिक संकट ही समाज में अनेकानेक संकट खड़े करता है इसलिए लोकशिक्षण में 'सादा जीवन उच्च विचार' के हर पहलू का समावेश होना चाहिए। इस आधार को मजबूत करने के लिए तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण का समावेश होना चाहिए।

व्यक्ति अपनी ही बढ़ोत्तरी और खुशहाली की बात सोचता रहे, पिछड़ों को उठाने, उठतों को उछालने की बात न सोचे तो समझना चाहिए कि लोकसेवा के निमित्त कुछ कहने लायक कार्य भी इनसें बन पड़ने वाला नहीं है। अपने सुखों को बाँटने और दूसरों के दुखों को बँटाने की, मिल-जुल कर रहने, मिल बाँट कर खाने की प्रवृत्ति की भावना से ही समाज ऊँचा उठता है। सर्वतोमुखी प्रगति का वातावरण बनता है। मितव्ययता और लोकसेवा भी पवित्र जीवन की तरह आवश्यक है। शिक्षा में इन तथ्यों का समावेश होना ही चाहिए।

कोई समय था जब विद्यार्थियों को गुरुकुलों में और जनसाधारण को धर्म प्रचारकों की पद यात्राओं में यह सब सुनने-समझने और हृदयंगम करने का अवसर मिलता था। पर अब तो धर्म और धर्मात्माओं का परिकर अपने लक्ष्य से भटककर पाखंड और प्रपंचों के ताने-बाने बुनने में लगा है। उनको सुधारना भी कठिन है। ऐसी दशा में सरकार के समर्थ शिक्षा तन्त्र से ही यह आशा की जा सकती है कि वह इस व्यक्तित्व-निर्माण, दृष्टिकोण-परिष्कार और समाज के पुनर्गठन के कार्य को हाथ में ले।

सरकार के पास रेडियो, टेलीविजन का सशक्त प्रचार साधन है। सिनेमा पर भी नियंत्रण रखने का उसे अधिकार है। प्रेस को इस अछूते विषय पर कुछ ठोस सृजन करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। पाठ्य पुस्तकों मे भी इस आधार पर उपयुक्त तथ्यों का समावेश किया जा सकता है।

देश में हजारों दैनिक एवं मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। आकाशवाणी के सुनने वाले ३५ करोड़ बताये जाते हैं। टेलीविजन के सैकड़ों प्रसारण केन्द्र हैं। फीचर फिल्में २० भाषाओं में ७०० के करीब प्रतिवर्ष बनती हैं। हजारों सिनेमा घरों में प्राय: करोड़ों दर्शक उन्हें देखते हैं। मुद्रक उद्योग में ६ लाख से अधिक कर्मचारी लगे हैं। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों के अपने-अपने प्रकाशन विभाग हैं। जिनमें करोड़ों की छपाई होती है।

यह सारा प्रचार माध्यम सरकार के हाथ में है उसके माध्यम से लोकरंजन करने की अपेक्षा लोकमंगल का लक्ष्य रखकर कार्यक्रम बने तो उसकी प्रतिक्रिया ऐसी हो सकती है, जिससे लोकमानस को उपयोगी दिशा में ढाला जा सके।

यों यह कार्य साधु और ब्राह्मणों का है। वे भी अपने देश में एक करोड़ से अधिक हैं। उनमें चेतना लौटे तो सरकारी प्रचार साधनों के समान ही वे भी जन जागृति का कार्य कर सकते हैं, जिसका अलख युग निर्माण योजना ने जगाया है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति में सुधार की आवश्यकता

महात्मा गाँधी ने शिक्षा की आधुनिक पद्धति पर टिप्पणी करते हुए कहा था—"आज जिस ढंग से शिक्षा प्रदान की जाती है, मैं सर्वथा उसके विरुद्ध हूँ। यह तो मात्र बाह्य ढकोसला सिद्ध हो रही है। उच्च शिक्षा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। भारत में तो वही शिक्षा सार्थक सिद्ध होगी जो छात्रों में नैतिकता, कर्त्तव्य परायणता, विवेकशीलता, आत्मविश्वास व संकल्प शक्ति को जागृत कर सके।" यह बात उन्होंने अँग्रेजी शासन के जमाने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कही थी। किन्तु खेद है कि उन दोषभागियों के चले जाने पर भी शिक्षा क्रम वैसा नहीं बन पड़ा जैसा बनना चाहिए था।

शिक्षा के स्तर में गिरावट का एक प्रमुख कारण परीक्षा पद्धति की विकृति भी है। परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करने वाले को श्रेय मिलता है। अत: बौद्धिक क्षमता बढ़ाने के बजाय विद्यार्थी किसी न किसी तरह अधिक अंक प्राप्त करना अपना ध्येय बना लेते हैं। पाँच-दस वर्ष के दौरान आए कुछ परीक्षा के प्रश्न ही घुमा-फिरा कर लगातार आते रहते हैं। फिर कितने ही एक्जामिनेशन गाइड सम्भावित प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत करते हैं। विद्यार्थी इन्हीं गिने-चुने प्रश्नों को याद करके परीक्षा भवन में बैठ जाता है तथा अच्छे अंक भी प्राप्त कर लेता है। अत: परिश्रम करने की जिज्ञासा समाप्त होती जाती है।

दूसरी ओर परीक्षा पद्धति में अंक के आधार पर रेकिंग का निर्धारण भी बड़ा विचित्र है। निर्धारित अंक से एक अंक कम प्राप्त करने वाला विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी में आता है तथा उससे एक अंक अधिक प्राप्त करने वाला प्रथम श्रेणी में गिना जाता है तथा उसे अधिक श्रेय मिलता है। बौद्धिक दृष्टि से दोनों एक होने पर भी दोनों का समाज में मूल्यांकन अलग-अलग रूप में होता है। इससे कम अंक प्राप्त करने वाला छात्र निग्रश तथा हतोत्साहित हो जाता है। आगे बढ़ने का सुअवसर वह प्राप्त नहीं कर पाता।

ऐसी विषम स्थिति में परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की स्थिति तो अकथनीय है। आँकड़े बताते हैं कि परीक्षा में प्रतिवर्ष १७ प्रतिशत छात्र ही उत्तीर्ण हो पाते हैं। अर्थात शेष ८३ प्रतिशत परीक्षा प्रणाली का ग्रास बन जाते हैं। पढ़ने वाले को तो कोई पूछता नहीं, फिर अनुत्तीर्ण को कौन पूछेगा ? ऐसा छात्र प्राय: कुण्ठाग्रस्त बना रहता है। कुछ आत्महत्या कर लेते हैं अथवा संसार की इस शिक्षा प्रणाली को कोसते-कोसते बागी हो जाते हैं। ऐसे में अपराध कृत्य की ओर प्रवृत्त होकर अपनी घृणा को समाज के ऊपर बरसाते हैं, खूँखार नर-पशु बन जाते हैं।

परीक्षा पद्धति के विकृत स्वरूप को देखकर ही कितनों ने यह कहा कि "परीक्षा ज्ञान की सही कसौटी नहीं अपितु एक जुआ है।" कितने ही शिक्षाशास्त्रियों ने इसे 'द ग्रेट ब्रेन रॉबरी' की संज्ञा दी है तथा यह कहा है कि, 'वर्तमान शिक्षा स्तम्भ पर टिकी शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को प्रेरणा, उत्साह और नई दिशा देने में असमर्थ है। इससे तो एक शिथिल तथा मंद-बुद्धि समाज का उदय हो रहा है, जो सामूहिक पतन-विनाश का संकेत है।'

स्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त करके प्राय: प्रत्येक विद्यार्थी रोजगार प्राप्ति के लिए आतुर हो उठता है। आज शिक्षा का मूल लक्ष्य भी तो यही बन चुका है। बचपन से व्यक्ति को यही प्रशिक्षण मिलता है कि खूब पढ़ने के बाद तुम डाक्टर बनोगे, इन्जीनियर बनोगे, अच्छी नौकरी करोगे। सब तो वैसा बन नहीं पाते। असफल व्यक्तियों की संख्या लाखों में होती है। हर वर्ष इस कारण शिक्षित बेराजगारों की तादाद बढ़ती जा रही है। परीक्षा पास करने की खुशी तो क्षणभंगुर ही होती है, परन्तु बाद में निराशा का घटाटोप बादल ही दृष्टिगोचर होता है। हर छात्र के समक्ष यही प्रश्न उठने लगता है कि क्या किया जाय ? कहाँ जाया जाय ? निराशा, निरुत्साह, निरुद्देश्य और मन:स्थिति को विशृंखलित करने वाली परिस्थितियाँ हरेक के सामने उत्पन्न हो जाती हैं।

अभिभावक अलग अपने बच्चे के कैरियर का रोना रोते हैं। बाल्यकाल से लेकर युवावस्थापर्यन्त लगातार शिक्षा पर एक विशाल रकम खर्च करने पर भी जब असफल परिणाम प्रस्तुत होता है, तो उनका चिन्तित, हतोत्साहित होना स्वाभाविक ही है। पैसे वाले तो अपने बच्चों को उद्योग कार्यों में लगा देते हैं, परन्तु मध्यम स्तरीय परिवार वालों का जीवन तो नरक सदृश्य हो जाता है।

महाविद्यालय स्तर की शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या १९६७ में जहाँ ६ लाख ६३ हजार ६ सौ ६१ थी। वहीं १९९१-९२ में बढ़कर ५०-६० लाख के लगभग हो गई। किन्तु शैक्षणिक स्तर बढ़ने के विपरीत इससे बेकारों की संख्या में ही वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त अशिक्षित लोगों की विशाल संख्या भी देश के ऊपर भार बनी हुई है। उनके कारण देश की सर्वांगीण उन्नति नहीं हो पाती। १९५१ में १६.९ प्रतिशत, १९७१ में २९.४५ प्रतिशत तथा १९८१ में ३६.१६ प्रतिशत साक्षर थे। दूसरी ओर निरक्षरों की संख्या जहाँ १९७१ में ३७ करोड़ २० लाख थी, वहीं १९८१ में ४४ करोड़ ५८ लाख हो गयी। निरक्षरों की वृद्धि का कारण वस्तुत: त्रुटिपूर्ण योजना एवं शिक्षा नीति ही है। गलत शिक्षा नीति का ही परिणाम है कि महाविद्यालयों से निकले छात्र बेरोजगारी का जीवन जीते तथा अराजकता का कारण बनते हैं। यदि जनसंख्या बढ़ने के साथ निरक्षर बढ़ने की बात दिमाग में रखें तो चीन से तुलना करने पर स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

जनसंख्या की दृष्टि से चीन भारत से डेढ़ गुना बड़ा है। किन्तु चीन में उच्च शिक्षा के लिए केवल ७०४ विश्वविद्यालय व उससे सम्बन्धित महाविद्यालय हैं जबकि भारत में यह संख्या ५ हजार से भी अधिक है। १९८४-८५ में चीन में उच्च शिक्षा लेने वाले छात्रों की संख्या जहाँ १० लाख ८९ हजार थी, वहीं भारत में यह संख्या ३५ लाख के लगभग थी। तदनुरूप जहाँ भारत में करोड़ों की संख्या में शिक्षित बेरोजगार उत्पन्न हो रहे हैं। वहीं चीन में यह संख्या नाम मात्र भी नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बेरोजगारी की भयावह समस्या को दूर करने के लिए सुधारक, विचारकों ने यह सुझाव दिया है कि शिक्षा का तकनीकीकरण किया जाय। सामान्य स्नातक स्तर के उच्च विद्यालय की अपेक्षा पौलीटैक्निक जैसे व्यावसायिक संस्थान खोले जायें। आमतौर से पौलीटैक्निक से निकले छात्रों में वह कला विकसित हो जाती है कि वह उसका उपयोग अपने भरण-पोषण के लिए कर सकता है। साथ ही इससे देश की उत्पादकता में भी वृद्धि हो सकती है तथा जनशक्ति का उपयोग भी। वर्तमान में तकनीकी कला तथा घरेलू उद्योग से सम्बन्धित विद्यालयों का सर्वथा अभाव ही है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। परन्तु आँकड़े बताते हैं कि देश में कुल कृषि विश्वविद्यालयों की संख्या ३६ है। अत: विचार यह प्रस्तुत किया जा रहा है कि उच्चस्तरीय शिक्षा में कृषि को महत्त्व दिया जाय। इससे सम्बन्धित विद्यालयों की संख्या बढ़ाई जाय। इससे राष्ट्र भी समृद्ध बन सकेगा तथा व्यक्ति को अपना पारस्परिक पेशा अपनाने में दिक्कत भी नहीं होगी।

जापान इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ घरेलू उद्योगों का विस्तार करके समृद्धि अर्जित की गई। आज विश्व की सर्वोपरि तकनीक उसके पास है तथा उसका प्रत्येक घर तथा प्रत्येक नागरिक उत्पादन कार्य में संलग्न है। उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के कारण उसकी तुलना अब अमेरिका तथा रूस से की जाती है।

मन लगाकर पढ़ने और अपनी योग्यता-प्रतिभा बढ़ाने की अपेक्षा इन दिनों छात्रों का ध्यान इस बात पर रहता है कि वे उत्तर-कापी में किसी भी प्रकार अधिक नम्बर प्राप्त कर सकें और अच्छे डिवीजन में उत्तीर्ण हो सकें। इसके लिए वे अनैतिक तरीके अपनाने में भी नहीं चूकते। नकल करने के लिए जो बन पड़ता है। दाँव-घात चलाते हैं। निरीक्षकों को धमकाकर या लोभ देकर इस कार्य को निर्बाध रूप से करना चाहते हैं। उत्तर-कापियाँ जाँचने वालों के घर पहुँचते हैं। बोर्ड कर्मचारियों से मिलकर किसी प्रकार नम्बर बढ़वाते हैं। यहाँ तक कि जाली प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए भी हाथ फैंकते हैं।

यह सब क्यों होता है ? इसके उत्तर में मात्र छात्रों को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसमें वह परीक्षा-पद्धति भी दोषी है, जिसमें वार्षिक परीक्षा के नम्बरों पर ही सब कुछ निर्भर रहता है।

होना यह चाहिए कि मासिक या साप्ताहिक परीक्षा हुआ करे और उसमें प्रश्न-पत्रों के उत्तर ही नहीं वरन् छात्र की समस्त प्रतिभा एवं शिक्षा का उद्देश्य पूरा करने के लिए अपनाई गई दिलचस्पी या मेहनत का उल्लेख हो। यह जाँच-पड़ताल क्लास टीचर ही न करे। वरन् इसमें अन्य कक्षाओं या स्कूलों के अध्यापकों का भी सहयोग लिया जाय। इन मासिक परीक्षाओं के अंक जोड़कर ही वार्षिक परीक्षा मान ली जाय। अलग वैसी परीक्षा न हुआ करे जैसे कि आजकल होती है। इस प्रकार परीक्षा पद्धति बदल देने भर से छात्रों द्वारा अनैतिकता अपनाए जाने का द्वार बन्द हो सकता है और वे पूरे वर्ष अपनी बहुमुखी योग्यता बढ़ाने में संलग्न रह सकते हैं।

व्यक्तिगत आचरण एवं सेवा भावना प्रदर्शित करने को भी परीक्षा का एक अंग माना जाय। अनावश्यक पुस्तकीय तोतारटन्त का भार हल्का किया जाय और वह बढ़ाया जाय जिसके आधार पर वे अपना शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्तर बनाने में समर्थ हो सकें।

यह सोचना और करना शिक्षा सम्बन्धी निर्धारकों का काम है। यदि वे इस ओर से आँखें बन्द किए रहेंगे तो वे समस्याएँ बनी रहेंगी, जिनके चलते छात्रों को उद्दण्ड ठहराकर अन्य सम्बन्धित सभी लोग अपने आपको निर्दोष ही मानते रहते हैं।

वस्तुत: हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति को सात आततायी या शत्रु बुरी तरह से जकड़े हुए हैं। मस्तिष्क, दण्ड, परीक्षा, कुरूप भवन, अत्यधिक कार्य, स्वाभिमान रहित अध्यापक तथा संकुचित मनोवृत्ति के माता-पिता। बेचारे विद्यार्थी को इतनी अधिक पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं, इतने प्रकार के विषयों का अध्ययन करना पड़ता है कि उसका दिमाग शरीर और मन सब कुछ बुरी तरह से पिस जाता है। भाँति-भाँति के दण्ड और हर समय प्रस्तुत परीक्षाओं का भय उसे खाये जाता है। सिवाय पढ़ने और पढ़कर परीक्षा पास करने के वह कुछ और सोच ही नहीं सकता। गन्दे और तंग मकानों में, गन्दे टाटों या गन्दी और भद्दी मेज-कुर्सियों पर बैठकर उसे पढ़ना पड़ता है, अत: उसके लिए स्वच्छ वायु-मण्डल एक दुर्लभ पदार्थ है। स्कूल में पढ़ने वाले मास्टर विद्यार्थी को केवल इसलिए पढ़ाते हैं कि उसकी नौकरी बनी रहे, उसके भले-बुरे से उन्हें कोई मतलब नहीं। वे हमेशा अपने ट्यूशन की चिन्ता में लगे रहते हैं और धन कमाने के लालच में अपने स्वाभिमान, गुरुत्व और शिक्षक पदवी के महत्त्व को गँवा बैठते हैं। विद्यालय के बाहर घर पर भी विद्यार्थी का यही हाल रहता है। घर पर वह जब तक कम से कम चार घण्टे नित्य नियमपूर्वक न पढ़े, तब तक अध्यापक द्वारा बताया घर पर किया जाने वाला काम पूरा नहीं होता और फिर इन सबके ऊपर है, उस पर सवार नौकरी का भूत। बालक को दिन-रात किताबों से चिपके देखकर माता-पिता को पूरा विश्वास हो जाता है कि उनकी साधना तथा बच्चे की तपस्या दोनों ही सफल हैं। बड़ा होने पर उसे अवश्य ही कोई अच्छी नौकरी मिल जाएगी। अच्छी नौकरी पाना ही जब सब प्रकार से जीवन का उद्देश्य हो जाय तो मानसिक निवास का प्रश्न ही कहाँ रहा ? आजकल तो विद्या और नौकरी पर्यायवाची शब्द बन गये हैं। ऐसी हालत में प्रत्येक

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य स्वार्थ-साधन में तल्लीन रहेगा, इसके सिवाय उससे और किस बात की आशा की जा सकती है ? ऐसा व्यक्ति समाज के कल्याण की ओर क्या ध्यान दे सकता है ?

आजकल हमारी शिक्षा की व्यवस्था वास्तव में बहुत दोष युक्त हो गई। इसको मिटाकर हमें ऐसी शिक्षा-दीक्षा का विधान करना होगा, जो हमें स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त कर सकने में समर्थ बना सके। ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य चरित्र निर्माण ही होना चाहिए। इसलिए हमारी शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया जाना चाहिए—शारीरिक-शिक्षा, मानसिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा। हम स्वस्थ हों, हमारे स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क हो और हमारा स्वस्थ मन जीवन के स्वास्थ्य पर विचार कर सकने में समर्थ हो। संक्षेप में हमारा आशय यही है कि शिक्षा के द्वारा हमारा समाज सचमुच स्वस्थ बने।

(१) शारीरिक-शिक्षा का ध्येय शरीर की सुव्यवस्था और रक्षा होना चाहिए। इसमें बतलाया जाय कि हम कब कितना खाएँ, कब कितना सोवें, कब और कितना तथा किस प्रकार अपना मनोरंजन करें, कब कितना और किस प्रकार व्यायाम करें। मनोरंजन तथा व्यायाम की शिक्षा व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों रूपों में दी जानी चाहिए, ताकि हमारे भीतर सहयोग की भावना का विकास हो और हम समाज में मिलकर काम करना सीखें।

(२) मानसिक शिक्षा का उद्देश्य है हमारे दिमाग का उचित रीति से विकास होना। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केवल अपनी पाठ्य पुस्तकों तथा अन्य पुस्तकों को भली प्रकार समझकर याद कर सकें, वरन् इसका उद्देश्य यह है कि हम अपने शरीर-रक्षा की विधि को जानकर तद्नुकूल आचरण करें, हम में सेवा-भाव उत्पन्न हों, हमारे हृदय में बन्धुभाव जागृत हो, हम नई बात जानने को उत्सुक हों और निरन्तर अपनी ज्ञान-वृद्धि करते रहें, हम में कार्यक्षमता आवे और हम में भले-बुरे का विवेक उत्पन्न हो।

(३) आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि हम में सम्मान तथा आदर का भाव उत्पन्न हो, अपने आस-पास वालों के प्रति बन्धुत्व की भावना का उदय हो और दया तथा करुणा के भावों की वृद्धि हो।

मनुष्य में जब तक अपनी राष्ट्रीय, धार्मिक, जातीय, सामाजिक और पारवारिक मान्यताओं अथवा परम्पराओं के प्रति समान बुद्धि नहीं होगी, तब तक व्यक्तिगत अथवा सामूहिक उन्नति की आशा दुराशामात्र है। मानुषी और दैवी कार्यों की महत्ता के सम्मुख भी हमको नतमस्तक होना चाहिये। वयोवृद्ध जनों का सम्मान तथा दुर्बल और बालकों को अपना वरद् हस्त प्रदान करना कर्तव्य है। सद्गुणों और सद्व्यवहारों के प्रति भी हमको श्रद्धा का भाव रखना आवश्यक है, क्योंकि ये सब मनुष्यत्व के चिह्न हैं।

शिक्षा का यह भी प्रभाव होना चाहिए कि हम विश्व के प्रत्येक पदार्थ में अपने स्वरूप आदर्श न पावें तथा उसके प्रति प्रेम-भाव रखें। प्रत्येक जाति, प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक धर्म तथा प्रत्येक राष्ट्र के लिए हमारे हृदय में प्रेम का भाव हो। हम किसी को न तो बुरा समझें न किसी से घृणा करें। सबको अपने ही समान सत्वाभिमानी समझें। हमारी शिक्षा हमें इस योग्य बनावे कि हम प्रत्येक बात को निष्पक्ष भाव से समझ सकें। अपने निजी विचारों के अनुरूप अपनी धारणाएँ निर्धारित कर सकें। सिद्धान्त के पीछे मर-मिटने को तैयार हो जाएँ। हमारी आत्मा इतनी शक्तिशालिनी हो कि हम समाज-विद्रोहियों का खुलकर विरोध कर सकें। बुरे को बुरा न कह सकना हमारी नैतिक निर्बलता का परिचायक है। जब तक व्यक्ति की अपेक्षा सिद्धान्त की महत्त्वता स्वीकार न की जायगी तब तक बन्धुत्व की भावना दूर का स्वप्न है।

आध्यात्मिक शिक्षा का एक परिणाम यह भी होना चाहिए कि हमारे अन्दर संसार के सभी असहाय, निरुपाय, दलित, पीड़ित, शोषित, दुःखी, निर्धन व्यक्तियों के प्रति दया एवं करुणा के भाव हों। क्रोध और घृणा के पात्र न समझकर हम उनके प्रति दया रखें। निर्धन और दुःखी होना एक दुर्भाग्य है और उसके साथ हमारी उदारता का संयोग होना ही उचित है। इतना ही नहीं कि हम दीन-दुःखियों पर दया करके ही रह जाएँ, वरन् परिस्थिति तथा अपनी शक्ति के अनुसार उनके दुख-दर्द में हाथ बैठाना भी आवश्यक है।

सारांश यही कि हमारी शिक्षा केवल कामचलाऊ वस्तु न हो, वह केवल परीक्षा पास करने का माध्यम न हो, वरन् वह हमें भली प्रकार जीना सिखाए। विद्या वही है जो हमें इस दुनिया की चिन्ता से मुक्त करके हमारी जीवन-नैया को भवसागर से पार लगाने में समर्थ हो—**'स विद्या या विमुक्तये।'**

शिक्षा-पद्धति में सुधार होना ही चाहिए

शिक्षित मनुष्य में अपना टुकड़ा कमा खाने की योग्यता का होना भी परमावश्यक है। जो मनुष्य अपने आपको पढ़ा-लिखा कहकर स्वतन्त्र टुकड़ा कमाने की भी शक्ति नहीं रखता, उसका पढ़ना-लिखना व्यर्थ है।

आज हमारे स्कूल और कॉलेजों में पढ़ने वाले छात्र किस प्रकार इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। छह वर्ष के हुए, माँ-बाप ने पढ़ने को भेजा, दस वर्ष मेहनत करके परीक्षा पास की, चार वर्ष दिमाग खाली कर बी० ए० की डिग्री लेली, डिग्री लेने पर भी प्रश्न वही सामने है—'हमें रोटी कैसे मिलेगी ?' माता-पिता ने अपनी जायदाद नीलाम कर-कर लड़के को पढ़ाया, हजारों रुपये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खर्च हो गये, कर्ज पर कर्ज हो गया, जब पढ़-लिख कर बाहर निकला और माता-पिता की आशा हुई कि अब सारा दरिद्र दूर हो जायेगा, उस समय नया दृश्य क्या ? अब नौकरी की सिफारिश करने वाला चाहिए। कहीं सिफारिश लगे, किसी साहब के आगे जाकर गिड़गिड़ाया जाए, उसको गालियाँ दी जायें, किसी गरीब की नौकरी हटवाकर अपना उल्लू सीधा किया जाय, तब कहीं जाकर नौकरी लगे और उस बी० ए० पढ़ने वाले का 'सब्ज बाग' देखने में आवे। उस सब्ज बाग में भी क्या आनन्द है ? वहाँ उस बी० ए०, एम० ए० की डिग्री का बड़ा भारी पुरस्कार मिलता है। आप जानना चाहते हैं?

अच्छा सुनिए, पहला पुरस्कार तो मिला—(योर मोस्ट ओबिडेण्ट सर्वेन्ट) 'आपका निहायत ताबेदार गुलाम ?' यह लो पहला पुरस्कार। अब इसके आगे जिसने सिफारिश लड़ाकर नौकरी दिलवाई है, उसके घर की हाजिरी भरना—यह नम्बर दो पुरस्कार है, तीसरा पुरस्कार है अफसरों की दिन-रात गालियाँ सहनी, चौथा पुरस्कार है अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करना। आज हजारों-लाखों भारतीय इन पुरस्कारों से लदे हुए हैं। उनसे जाकर पूछ देखिए। कैसे-कैसे झूठ, कैसी-कैसी मक्कारियाँ उनको नौकरी की खातिर करनी पड़ती हैं। अपने अफसरों को प्रसन्न रखने के लिए उनको कैसे-कैसे स्वांग रचने की जरूरत पड़ती है। लड़का घर में बीमार है, छुट्टी चाहिए अब छुट्टी कैसे मिले ? अपने अफसर से जाकर छुट्टी माँगते हैं। यह 'काम अधिक है' का डर दिखाता है, छुट्टी नहीं मिलती। अब क्या करें ? डॉक्टर के पास जाकर, दस पाँच रुपये दक्षिणा दे, उससे अपनी बीमारी का सर्टिफिकेट लेते हैं और अपनी बीमारी की झूठी अर्जी भेज कर आत्मा का हनन करते हैं। जानते हैं कि पाप कर रहे हैं, पर क्या करें—'मरता क्या नहीं करता—लड़के के इलाज के लिए छुट्टी चाहिए। जब हाकिम छुट्टी न दे, तो उसकी आँखों में धूल झोंकने के लिए कुछ बहाना बनाना ही पड़ता है।'

कौन समझदार इस स्कूली स्वतन्त्रता का हरण करने वाली शिक्षा को 'शिक्षा' कह सकता है। यह शिक्षा नहीं है, वह मकड़ी का ताना-बाना है। जो इसमें फँसा, सो गया। एक बनिया का लड़का चार आने के चना खरीदता है। वह उनको उबालकर नमक मिर्च लगाकर बाजार में बेच आठ आने के पैसे पैदा करता है। वह उस कलमघिस्सू, कुर्सी तोड़ने वाले तथा अफसर की हाँ में हाँ मिलाने वाले, 'जी हजूर' के सम्पादक से लाख दरजे अच्छा है, उसको अपनी आत्मा का हनन तो नहीं करना पड़ता? वह जब चाहे तभी स्वेच्छानुसार घूम सकता है। वह अपनी मर्जी का मालिक है। उसको किसी के सामने गिड़गिड़ाना नहीं है। उसको छुट्टी माँगने की जरूरत नहीं। वह देश-सेवा कर सकता है, देशभक्तों से मिल सकता है, उनके व्याख्यानों का आनन्द ले सकता है, पर हमारा कॉलेज का ग्रेजुएट बेचारा, मिल और स्पेन्सर पढ़कर भी, अपने गले में जंजीर बाँधे हुए है और अपनी शक्तियों को वेश्याओं की भाँति बेच रहा है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के ऐसे जहरीले फल क्यों हैं ? उत्तर स्पष्ट है। स्कूल और कॉलेजों की शिक्षा असल में शिक्षा नहीं है, यह केवल परीक्षा पास कराने की मशीन है। खूब रट-रट कर, घोंटा लगा कर परीक्षा पास कर लेना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक कालेज का अधिष्ठाता परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाना—फीसदी अधिक लड़के पास कराना—ही अपना उद्देश्य समझता है। स्कूलों के अध्यापक निरीक्षकों को बड़े गौरव से कहते हैं—'देखिये महाशय ! हमारे स्कूल में से इतने लड़के पास हुए।' बस मतलब पूरा हो गया, शिक्षा की इतिश्री हो गई ! लड़कों की तन्दुरुस्ती, उनका चरित्र बिगड़ जाय, पर पास होना चाहिए। लड़के परीक्षा पास करना अपना मुख्य कर्तव्य समझ, सब कुछ उसके लिए बलिदान कर देते हैं और परीक्षा पास कर लेने पर समझ बैठते हैं—'बस अब मैदान मार लिया। अब संसार के दुःखों से छूट गये।'

बेचारे यह नहीं जानते कि उनके जीवन का सबसे अच्छा समय गुजर गया और अब मुसीबतों का आरम्भ होने लगा है। फोटोग्राफ की भाँति उनको पढ़ाई की सब बातें याद हैं और जब चाहें तभी उगलकर दूसरों का मनोरंजन कर सकते हैं। मिल और स्पेन्सर के उपदेश तो उन्हें कण्ठ हैं पर उनसे रोटी कमाने में कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती।

सहायता हो कैसे ? पहले तो इस शिक्षा द्वारा शरीर खो दिया—तन्दुरुस्ती नष्ट हुई—जो कुछ बचा उससे आर्थिक—स्वतन्त्रता लाभ करने को सर्वथा असमर्थ हैं। चौदह वर्ष की शिक्षा नवयुवकों को इस योग्य नहीं बना सकती कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सकें। घर की पूँजी स्वाहा हो गई और परिणाम निकला—नौकरी। यदि उसी पूँजी से कॉलेजों में समय नष्ट न किया जाता तो अच्छे रहते और दुकान खोल कर मजे में गुजारा कर सकते थे। धन भी गया, शक्ति भी गई, स्वतन्त्रता भी बेच डाली, अब जीवन का साधन केवल दूसरों पर निर्भर रहने पर ही गया है। कुछ रुपए की नौकरी के लिए जूतियाँ चटकाते फिरते हैं मगर हाथ से कोई उद्योग धन्धा नहीं करेंगे। अँग्रेजी पढ़ कर धन्धा। स्वतन्त्रता की खानि 'उद्योग' से इन्हें घृणा है। पढ़ने लिखने के अर्थ यह है कि केवल क्लर्की की जाए और अपने देश के अनपढ़ भाइयों का गला काट कर रुपया पैदा हो। अब बढ़िया सूट बूट चाहिए। घर में खाने को न रहे मगर फैशन पूरा हो। जहाँ अँग्रेजी की गिटपिट आई, वहीं भेष बदला और जेन्टलमेनी का भूत सिर पर सवार हुआ। यदि बाप अपने मिडल पास बेटे को बाजार से आटा खरीद लाने को कहता है तो बेटा बाजार जाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौदा खरीदने से हिचकिचाता है। यदि किसी प्रकार मान भी लिया तो दो, चार, दस सेर आटा उठाने के लिए उसे एक नौकर चाहिए। अँग्रेजी पढ़ने से हाथों में मँहदी लग जाती है और वे सुन्दर बनकर जेबों में रखने लायक रह जाते हैं।

भारतीय बच्चों के सामने हमें शिक्षा का नया आदर्श रखना है। उनको कर्मवीर बनाने की शिक्षा देनी है। उनके अन्दर स्वावलम्बन की संजीवनी शक्ति भरनी है। यह सब तभी होगा जब मजदूरी की महत्ता को शिक्षा में प्रथम स्थान दिया जायगा, जब देश के लोग चरित्र की कसौटी से ऊँच-नीच की परख करेंगे। अकर्मण्यता का जहर जो आज हमारे समाज में फैल रहा है, उसको निकालना है। वो शिक्षा आज कल स्कूलों में दी जाती है, वह केवल एक प्रकार का बपतिस्मा है। उससे मनुष्य केवल किसी भलेमानस की बात समझने लायक बनता है। उसको मैं शिक्षा नहीं कहता, शिक्षा दूसरी वस्तु है। वर्तमान शिक्षा से उल्टा भीरुता, कायरता और अकर्मण्यता फैल गई है और हमारा बल वीर्य नष्ट हो गया है। इसलिए हमें सच्ची शिक्षा की ओर आना चाहिए और अपनी पिछली भूलों को सुधारने का यत्न करना चाहिए।

शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को आमूल-चूल बदला जाय

कभी अशिक्षित लोग भी सुखमय जीवन व्यतीत कर लेते थे किन्तु उस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित होती थीं। शिक्षा और ज्ञान के विस्तार के साथ आवश्यकताएँ भी बढ़ी हैं और मनुष्य का अनुभव भी।

शिक्षा से समाज में रहने, विचार करने, भले-बुरे की परख, आचार-विचार की क्षमता का विकास होता है। ऐसी व्यावहारिक शिक्षा समाज से मिलती है, विद्यालयी शिक्षा पुस्तकों और शिक्षकों के माध्यम से अर्जित करनी पड़ती है। दोनों ही शिक्षाएँ मनुष्य के ज्ञान व अनुभव को परमार्जित करतीं, कार्यक्षमता, योग्यता, कुशलता में वृद्धि करती हैं। शिक्षा से व्यक्ति का मानसिक विकास होता है और शोध प्रवृत्ति विकसित होती है। यदि ऐसी शिक्षा का समन्वय उत्पादन अथवा कार्य से कर दिया जाता है, तब उससे आर्थिक, बौद्धिक और सामाजिक स्तर में वृद्धि होती है। एक शिक्षित व्यक्ति कितने ही अनपढ़ों से कुशल और योग्य होता है इसीलिए **''विद्यानाम नरस्य रूपमधिकं गुरूनां गुरू''** कहा गया है।

आज के युग में अर्थकारी शिक्षा का विशेष महत्त्व है, यदि ऐसी शिक्षा उत्पादन से सम्बन्धित है, तब इसे प्राप्त कर लेने पर किसान अथवा व्यापारी, शिक्षक अथवा कारीगर की सन्तानें रोजगार के लिए दर-दर न भटक कर व्यावहारिक शिक्षा के माध्यम से ही अपने अपने कार्य में स्वयं दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। प्रारम्भ में भले ही वह थोड़ा कमा पाते हों किन्तु दो पाँच वर्षों में वह अपनी रोटी स्वयं कमाने लगते हैं।

भारत में छोटे-छोटे कारीगर जैसे सुनार, लुहार, राज, नाई, धोबी, मोची, दर्जी आदि हाथ से काम करते हैं इसलिए उनके बच्चे प्रारम्भ से ही अपने माँ-बाप के साथ काम करने लगते हैं और बड़े होकर कार्य में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं और कुशल कारीगर बन जाते हैं। तब उन्हें सिखाने के लिए क्राफ्ट स्कूल जैसे न अध्यापकों की जरूरत होती है, न उतने भारी-भरकम सरंजामों की जोड़-तोड़ ही करनी पड़ती है। अधिकतर बेरोजगारी की शिकायत उन्हीं के सामने रहती है, जो अपने पैतृक धन्धे को छोड़कर दफ्तरों में बाबू बनना और कुर्सी पर बैठकर पंखे की हवा खाना पसन्द करते हैं। बेरोजगारों की लम्बी सूची में जागीरदारों, जमींदारों, अफसरों की सन्तानें ही अधिक होती हैं, जो शारीरिक श्रम से बचने के लालच में आराम पाने के लिए छोटी-मोटी नौकरियाँ ढूँढ़ते रहते हैं। तकनीकी ज्ञान के अभाव में नवयुवक परावलम्बी ही बने रहते हैं।

अभी हाल में ही भारत में आयोजित विज्ञान काँग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने आए एक दल ने बताया कि बेरोजगारी उन्मूलन के लिए और स्वयं दस्तकार बनने की दिशा में जापान ने साइंस कॉलेजों के स्थान पर टेक्नालॉजी युक्त कॉलेजों की स्थापना की है। जिसका सीधा सम्बन्ध उत्पादन से है, इसी कारण कार्य कर सकने योग्य व्यक्तियों में से ७५ प्रतिशत लोग जापान की तकनीकी औद्योगिक उत्पादन प्रणाली में सहयोग करते हैं और केवल पाँच प्रतिशत अन्न उत्पादन और कृषि कार्य करते हैं।

भारत में प्रतिवर्ष शिक्षा के क्षेत्र में कोई न कोई कमीशन बैठता है और विचार करता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में कैसे परिवर्तन किए जाएँ और उसे कैसे व्यावहारिक बनाया जाय और उत्पादन के साथ किस प्रकार तालमेल बैठाया जाय किन्तु सरकारें बदलने के साथ कमीशनों की रिपोर्ट्स भी दब जाती हैं। महात्मा गाँधी के अतिरिक्त भी कितने ही राजनैतिक, धार्मिक समाज सेवी और विद्वान सदैव यही कहते रहे हैं कि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करने पर ही भारत से गरीबी और बेरोजगारी हटाई जा सकती है। अँग्रेजों के लिए तो यह शिक्षा पद्धति उत्तम थी, जिससे उन्हें क्लर्क, चपरासी, आसानी से मिल जाते थे किन्तु अब बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए और प्रगतिशील विश्व के समाजों के साथ कदम मिलाने के लिए शिक्षा जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है।

गाँधीजी जिस शिक्षा की अपेक्षा करते थे वह स्वतंत्र भारत में इतने अव्यावहारिक ढंग से लागू की गई कि उसका असफल होना स्वाभाविक ही था। होना तो यह चाहिए था कि कक्षा ६ से ८ के बालकों को किताबी ज्ञान के साथ बालक की रुचि के अनुसार दर्जी, मोची, नाई, लुहार, सुनार, माली, जिल्दसाज, कताई, बुनाई,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिजली, नल, चित्रकारी, घड़ीसाज, मोटर बाइंडर, टाइपिंग, दरी चटाई, निवाड़, कुर्सियाँ बुनना, डबल रोटी, मोमबत्ती बनाना, खिलौना बनाना, साइकिल सुधारना सिखाना चाहिए था। किन्तु शिक्षकों की भूल और व्यवहारी ज्ञान के अभाव में बुनियादी शिक्षा का कार्यक्रम कक्षा एक से ही लागू कर दिया गया, जबकि अभी बच्चे का विकास इतना भी नहीं हो पाता कि वह अपने शरीर के वस्त्र स्वयं सँभाल सकें।

दस-बारह बरस का होते-होते बालक के स्वभाव में शरीर में स्थिरता, दृढ़ता आने लगती है, तब उसे न भाषा और गणित कठिन लगते हैं और न क्राफ्ट के कार्य से उसका जी ऊबता है उसे करने में वह रुचि लेने लगता है और नये-नये कार्यों की उत्कंठा जागृत होती है। यंत्रों की पहचान और उनके उपयोग की सही विधि की जानकारी उसे होने लगती है। अनेकों भिन्न काम जानने की रुचि जाग पड़ती है। तब कक्षा ६ के छात्रों को सहायक का काम, सातवीं को जोड़ने तोड़ने का काम और आठवीं को वस्तु तैयार करने का कार्य यदि दिया जाय तो १०वीं कक्षा तक बालक कुशल कारीगरी सीख सकता है। जैसे दर्जी के धन्धे को उदाहरण के लिए लिया जाय, जिसमें कक्षा ६ का बालक मशीन पर धागा चढ़ाये, काज, बटन करना सीखे, कक्षा सात का बालक उपरोक्त कार्य के अतिरिक्त छोटी-मोटी सिलाई भी कर सकता है, बनियान, पाजामा, तकिया की, रजाई की खोली सीं सकता है और आठवीं कक्षा का बालक कपड़े काटना सीना, इस्त्री करना भी सीख सकता है। भले ही वह सूट-पेन्ट बड़े कीमती कपड़े न सीं सके किन्तु कक्षा १० तक आते-आते वह निपुण दर्जी का कार्य कर सकता है।

इसी प्रकार सुनारी, लुहारी, बिजली, लकड़ी आदि के अनेक कार्यों में बुनियादी तालीम व्यवहार में दी जा सकती है। किन्तु दुर्भाग्यवश अथवा प्रमादवश शिक्षा जगत् में इस योजना को मान्यता नहीं मिल पा रही है। अन्यथा अब तक शिक्षा में कितने ही सुधार होते-होते इतनी उत्कृष्ट और पूर्ण बन गई होती कि बेरोजगारी का निशान भारत भूमि से मिट गया होता। पैतृक व्यवसाय की परम्परा हमारे यहाँ सदैव से रही है। मात्र उसमें आज की परिस्थितियों से तालमेल कर थोड़ा-बहुत सुधार भर किए जाने हैं। इससे शहरों की ओर पलायन भी न होगा और पैतृक व्यवसाय की उपेक्षा भी न होगी। असल में पैतृक व्यवसाय के कारण ही भारत में कभी बेरोजगारी की शिकायत नहीं रही।

बुनियादी शिक्षा को व्यावहारिक शिक्षा इसलिए भी कहा जाता है कि इसको जानकर छात्र हाथ से कार्य करने में दक्ष हो जाता है और जहाँ पर कि प्रशिक्षित और दक्ष इंजीनियर, डॉक्टर आदि भी नौकरी की तलाश में हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, वहाँ वह २० से २५ रुपया प्रतिदिन कमा लेता है। इंजीनियर, डॉक्टर, बी० ए०, एम० ए० के स्नातक बेरोजगारी के दफ्तरों के चक्कर लगाते तब तक वह हाथ की दस्तकारी मेकेनिक आदि का धन्धा घर-गृहस्थी भी बसा लेता है।

काम से जुड़ी सोद्देश्य शिक्षा का महत्त्व अभी लोगों ने समझा नहीं है, न उन्हें इससे सम्बन्धित स्वावलम्बन और सम्मान के जुड़े होने की बात का ज्ञान है। जब उन्हें इन लाभों का ज्ञान होगा, तब वे नौकरियों के लिए भटकना छोड़ देंगे। नवयुवक जानते नहीं कि दर्जियों, लुहारों, सुनारों, मोटर मैकेनिकों, बाइन्डरों, साइकल रिपेयरों को कब किसी के घर काम करने जाना पड़ता है। उनके ठौर-ठिकाने पर ही लोग आते हैं।

आज की बेरोजगारी का समाधान इसी में है कि डिग्री परायण बनने के स्थान पर जनमानस को कार्यपरायण बनाया जाय। कोई काम कुर्सी पर बैठने से बड़ा व भट्टी के पास बैठने से छोटा नहीं हो जाता। यह एक भ्रान्ति मात्र है जो व्यक्ति को या तो बेकार बना देती है या पाश्चात्य वेश भूषाधारी बाबू। शिक्षा का अर्थ है अनौपचारिक, व्यावहारिक, कर्म-कौशल। इस तथ्य को आत्मसात कराने के लिए जनचेतना को व्यापक स्तर पर जगाना होगा।

शिक्षा व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक

सुशिक्षितों की बढ़ती हुई बेकारी एवं बेरोजगारी इस तथ्य का बोध कराती है कि जिन आधारों को लेकर आज की शिक्षा प्रणाली चल रही है उसमें कहीं न कहीं कोई दोष अवश्य है। अशिक्षित मेहनत मजदूरी करके अपना गुजारा कर लें और सुशिक्षितों को नौकरी के लिए दर-दर भटकना पड़े यह बात कुछ समझ में नहीं आती। किसान का एक अशिक्षित लड़का होश सँभालते और शरीर से समर्थ होते ही पिता के कार्यों में हाथ बटाने लगता है। अन्य कोई काम न मिलने पर कृषि को ही अपनी आजीविका का साधन बना लेता है। बढ़ई, लुहार, नाई, धोबी आदि के लड़के पैतृक धन्धा अपनाकर शिक्षा के अभाव में भी परिवार का गुजारा चलाते देखे जाते हैं। दुकान, ठेला आदि लगाकर भी जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक उपार्जन कर लेने वालों की कमी नहीं है पर आश्चर्य तब होता है जब ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी कितने ही युवक नौकरी न मिल पाने का बहाना बनाकर परावलम्बी जीवन व्यतीत करते तथा परिवार एवं समाज के लिए भार भूत सिद्ध होते हैं। कारण ढूँढने पर ढर्रे की शिक्षा व्यवस्था तथा चिंतन प्रणाली दोनों में ही कमी दिखाई पड़ती है।

यह आश्चर्य तब और भी बढ़ता है जब सर्वेक्षण रिपोर्ट यह बताती है कि बढ़ते हुए अपराधों में युवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीढ़ी के सुशिक्षितों का अधिक योगदान होता है। चोरी, उठाईगीरी जैसे सामान्य अपराधों को छोड़कर बड़े संगीन जुर्मों में तथाकथित शिक्षित युवा पीढ़ी का ही रोल होता है। कानून की पकड़ से बचने के लिए गम्भीर अपराधों में जिस बुद्धिमत्तापूर्ण तकनीक की जरूरत पड़ती है, वह अधिकतर शिक्षित बुद्धिमानों में ही पाई जाती है। पढ़े लिखे युवकों में बढ़ती हुई अपराध की प्रवृत्ति आने वाले आगामी संकटों का संकेत देती है तथा बताती है कि समाज के मेरुदण्ड युवा वर्ग का नैतिक अवमूल्यन हर दृष्टि से खतरनाक है। अपेक्षाकृत शिक्षितों के अशिक्षित कहीं अधिक सीधे-साधे पाये जाते हैं तथा अपराधों में प्रवृत्त होने का अनुपात भी उनमें कम है। यह विचित्र निष्कर्ष प्रचलित शिक्षा की उपयोगिता-अनुपयोगिता के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए बाध्य करता है।

उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता की अवधि में लार्ड मैकाले की बनाई हुई शिक्षा प्रणाली आज भी अनेकों परिवर्तनों के बावजूद विद्यमान है। जिसका एकमात्र लक्ष्य था—आफिसों के योग्य बाबूओं का निर्माण करना। निरुद्देश्य शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ आते-जाते अँग्रेज एक मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव यह भी छोड़ते गए कि शरीर से श्रम करना बड़प्पन का परिचायक नहीं है। पराधीनता मनुष्य की शारीरिक ही नहीं मानसिक शक्तियों को भी कुंठित कर देती है। स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता नहीं रहती। विशिष्टों की बात तो अलग है पर सामान्यों की स्थिति ऐसी ही होती है। बहुतायत इन्हीं की होती है। भारतवासियों की मानसिकता को समझते हुए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दुर्भाग्यपूर्ण भ्रान्तियों को जनमानस में गहराई तक जमा देने में अँग्रेज सफल रहे। वे चले तो गए पर उपरोक्त ऐसे अभिशापों को छोड़कर, जिनके रहते न तो व्यक्ति की प्रगति सम्भव थी और न ही समाज की।

बढ़ती हुई बेकारी बेरोजगारी की तह में श्रम से जी चुराने की मनोवृत्ति जहाँ एक कारण है, वहाँ व्यावहारिक जीवन की समस्याओं से दूर रहने वाली शिक्षा प्रणाली भी प्रमुख कारण है। विश्व के सभी मूर्धन्य विचारकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के तीन प्रमुख लक्ष्य बताए हैं—(१) स्वावलम्बन, (२) व्यक्तित्व का निर्माण, (३) सामाजिक सद्भावना का विकास। शिक्षा की पूर्णता एवं समग्रता इन तीनों के समन्वय से बनती है। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अपने देश की वर्तमान प्रणाली पर ध्यान देने पर मालूम होता है कि तीनों ही दृष्टियों से वह अक्षम है। शिक्षा का पहला लक्ष्य है कि शिक्षार्जन के उपरान्त युवक सक्षम, स्वावलम्बी बने। ऐसी योग्यता उसके भीतर विकसित हो जाय कि उसे आजीविका के लिए नौकरी की खोज में भटकना न पड़े। आवश्यकता आ पड़ने पर अपने एकाकी बलबूते ही अपनी भौतिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ ले। रूस अमेरिका, इंग्लैण्ड ने यह व्यवस्था बनाई है कि औपचारिक शिक्षा के साथ अनौपचारिक तकनीकी, शिक्षा भी किशोरों को दी जाय ताकि आरम्भ से ही वह किसी भी कार्य विशेष में ऐसी दक्षता विकसित करलें जिससे भविष्य में वह समाज पर बोझ न बनें और अपनी उस तकनीकी विशेषता के आधार पर उपार्जन की व्यवस्था बना लें जापान में तो बच्चों को ऐसी तकनीकी ट्रेनिंग घर पर ही मिल जाती है क्योंकि लगभग हर घर में छोटे-छोटे कुटीर उद्योग स्थापित हैं। अपने देश में ऐसी व्यवस्था यत्किंचित स्थानों पर है। स्कूल एवं कॉलेजों में ज्ञान-सम्वर्द्धन कराने वाले तथा डिग्रियाँ प्रदान कराने वाले विषयों की तो भरमार है पर स्वावलम्बन के लिए तकनीकी शिक्षा के अभाव में युवकों में वह समर्थता नहीं विकसित हो पाती कि अपने गुजारे की व्यवस्था आप कर लें । एक मात्र सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की सेवाओं में नौकरी प्राप्त करने का आधार बचता है। अधिकांश युवक शिक्षा प्राप्ति के बाद अपने देश में इसी फिराक में रहते हैं कि इन संस्थाओं में कोई छोटी-मोटी नौकरी मिल जाय। मूर्धन्य स्तर की प्रतिभाओं की बात अलग है पर उनकी संख्या सीमित होती है। अतिरिक्त विशिष्ट क्षमता के कारण उनकी माँग तो सर्वत्र रहती है प्रस्तुत समस्या के अन्तर्गत वे नहीं आते।

सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं में भी स्थान सीमित होने के कारण सीमित व्यक्ति ही नौकरी प्राप्त करने में सफल हो पाते हैं। शिक्षित युवकों की एक बड़ी संख्या को प्रतिवर्ष नौकरी पाने से वंचित रह जाना पड़ता है। अन्य देशों की भाँति सामान्य शिक्षा के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा का भी क्रम जुड़ा होता तो इस स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता तथा इतनी तीव्रगति से बेरोजगारी नहीं बढ़ने पाती। कहीं नौकरी न मिलने पर भी अपने तकनीकी ज्ञान के बलबूते कोई भी शिक्षित युवक स्वतंत्र रूप से कोई भी छोटा-मोटा उद्योग करके अपना गुजारे का साधन बना लेता।

प्रारम्भिक ज्ञान-सम्वर्द्धन की दृष्टि से आरम्भिक कक्षाओं में हर विषयों का समावेश शिक्षण में होना आवश्यक तो है पर आगे की कक्षाओं में कितने ही ऐसे विषयों का भार शिक्षार्थी के ऊपर लदा रहता है, जिनकी कुछ भी उपयोगिता नहीं रहती। मनोवैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर बच्चों की अभिरुचि देखते हुए किसी विषय विशेष में विशेषता हासिल करने की शिक्षण व्यवस्था के साथ-साथ निरुद्देश्य विषयों के स्थान पर तकनीकी ज्ञान की शिक्षा का क्रम जोड़कर प्रस्तुत समस्या के समाधान में सफलता पाई जा सकती है।

स्वावलम्बन ही पर्याप्त नहीं है, व्यक्तित्व की श्रेष्ठता एवं प्रौढ़ता भी तो आवश्यक है। वह न हुआ तो युवक के भटकाव की पूरी-पूरी गुंजायश रहेगी। इस सत्य को वर्तमान देश की परिस्थितियों में सर्वत्र देखा जा सकता है। सरकारी दफ्तरों में रिश्वत लेने एवं देने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। स्वावलम्बी होते हुए भी पैसे के लालच में अपना मान खोते तथा कर्तव्यों से च्युत होते कितने ही कर्मचारियों एवं अफसरों को देखा जा सकता है। स्थिति यहाँ तक जा पहुँची है कि ईमानदारी को मूर्खता की श्रेणी में गिना जाने लगा है। स्पष्ट है कि जब तक घटिया स्तर के व्यक्ति शिक्षित एवं योग्य होते हुए भी सरकारी एवं गैर सरकारी सेवाओं में मात्र योग्यता के आधार पर पहुँचते रहेंगे। उपरोक्त समस्या यथावत बनी रहेगी। कानून एवं न्याय व्यवस्था का दण्ड विधान तथा बाह्य दबाव रोकथाम कर पाने में तब तक असमर्थ सिद्ध होगा, जब तक कि नागरिकों की भीतर से चरित्रनिष्ठा नहीं उभरेगी। इसके लिए आरम्भ से ही प्रयास करना होगा वह मनोवैज्ञानिक प्रणाली विकसित करनी होगी ताकि छात्र चरित्रनिष्ठा को सर्वोपरि महत्त्व दें तथा उसके विकास के लिए हर सम्भव प्रयास करें। अपने देश का एक दुर्भाग्य यह है कि विद्वता की तो सर्वत्र प्रशंसा एवं पूजा होती है पर चरित्र की नहीं। होना यह चाहिए कि विद्वता वह अभिनन्दित हो जो नीतिमत्ता की पक्षधर हो। विद्वानों एवं चरित्रवानों में से चयन की बात आए कि किसको सम्मान दिया जाय तो प्राथमिकता चरित्रवानों को मिलनी चाहिए।

ब्रेनवाशिंग के कितने ही प्रयोग पिछले दिनों सारे विश्व में चले हैं। हिटलर ने नाजीवाद के रंग में रंगने के लिए शिक्षा को ही सर्वप्रथम माध्यम बनाया। शिक्षण संस्थाओं में वह मनोवैज्ञानिक व्यवस्था बनाई गई कि प्रत्येक शिक्षार्थी के मन में राष्ट्रीयता की उमंग उमगने लगे तथा वह नाजीवाद की महत्ता स्वीकार करले, ऐसा ही हुआ। अपने प्रयोग में हिटलर पूर्णतया सफल रहा। कम्युनिस्ट देशों में कम्युनिस्ट की विचारधारा शिक्षा के माध्यम से ही भरी जाती है। विचारशीलता यदि चरित्र की श्रेष्ठता की महत्ता स्वीकार करती है तथा समाज एवं देश की प्रगति के लिए आवश्यक मानती है तो इसके लिए प्रयास आरम्भिक शिक्षण के साथ ही करना होगा। प्रौढ़ व्यक्ति उस सूखे बाँस की भाँति होते हैं, जिनमें परिवर्तन कठिन पड़ता है। बच्चे वे कौंपल हैं, जिन्हें जैसा चाहे मोड़ा जा सकता है। यदि अगली पीढ़ी को व्यक्तित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ बनाना है तो सर्वप्रथम शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षण की समग्र व्यवस्था बनानी होगी।

उदण्डता एवं उच्छृंखलता के लिए आज की युवा पीढ़ी बदनाम है। दोष मात्र उनका ही नहीं है, उस वातावरण का भी है, जिसमें उच्छृंखलता को बढ़ावा देने वाले तत्त्वों की बहुलता है। आत्मानुशासन का जो पाठ बालकों को बचपन से न केवल पढ़ाया जाना चाहिए था वरन् उनके आचरण में घुलना चाहिए था, उसका इस शिक्षण व्यवस्था में अभाव है। पुरातनकाल की गुरुकुल शिक्षण व्यवस्था में आत्मानुशासन छात्र की पात्रता की पहली कसौटी होती थी। श्रेष्ठ व्यक्तित्व सम्पन्न आचार्यों के निर्देशन में गुरुकुल चलते थे। वे छात्रों का न केवल शिक्षण करते थे वरन् चरित्र की दृष्टि से महान् बनाने के लिए हर प्रकार के भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रयोग करते थे। जितना शिक्षण करते थे, उससे अधिक उनके प्रखर व्यक्तित्व से छात्र प्रेरणा लेते थे। फलस्वरूप गुरुकुलों से निकलने वाले छात्र ज्ञान एवं चरित्र दोनों ही दृष्टियों से समुन्नत होते थे। आज विद्यालयों में प्रतिभा बढ़ाने की तो व्यवस्था है पर चरित्र निर्माण के लिए कोई सुनियोजित तंत्र नहीं है। शिक्षा व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र तीनों ही के लिए अधिक उपयोगी बने इसके लिए नैतिक शिक्षा का भी शिक्षण में समावेश करना होगा।

तीसरा प्रमुख लक्ष्य शिक्षा का है कि युवक शिक्षा प्राप्ति के बाद आत्मकेन्द्रित न रहकर समाजपरायण अर्थात समाज के प्रति उदार बनें। जिस समाज से उसने अनेकों प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त कीं, उसके प्रति भी कुछ कर्तव्य होता है। उस कर्तव्य का निर्वाह इसी प्रकार हो सकता है कि अपनी क्षमता के अनुसार हर युवक को समाज की प्रगति एवं उन्नति में भी सहयोग देना चाहिए। सामाजिक सद्भावना का विकास ही सही अर्थों में सुशिक्षित होने की पहचान है। शिक्षित होने के बाद भी कोई यदि संकीर्ण स्वार्थों की परिधि में रह जाता है तो उसमें और किसी प्रकार मेहनत-मजदूरी से पेट भरने वाले अशिक्षितों में क्या अन्तर रहा ?

कहना न होगा उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रचलित शिक्षण प्रणाली में आवश्यक हेर-फेर अभीष्ट है। यह किस प्रकार सम्भव होगा, देश के विचारशील वर्ग को उसके लिए ठोस प्रयास करना होगा। सरकारी तंत्र पर पूर्णतया निर्भर रहने की अपेक्षा गैर सरकारी शिक्षण संस्थाओं द्वारा भी ऐसे अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

प्रत्येक युग की शिक्षा-व्यवस्था अपने युग के समाज से जुड़ी हुई होती है, जिस शिक्षा-व्यवस्था में यह विशेषता नहीं होती, वह व्यवस्था कालान्तर में अपना महत्त्व खो देती है। वर्तमान युग विज्ञान और तकनीक का युग है। इस युग ने विज्ञान की प्रगति के एक से एक बढ़कर चमत्कार देखे हैं। इन चमत्कारों में जहाँ विज्ञान और तकनीक ने मानव-समाज को लाभ पहुँचाया है, वहाँ दूसरी ओर मानव के विनाश के और पतन के द्वार भी खोल दिये हैं। विज्ञान और तकनीक के सहारे मानव-समाज ने ध्वंश के लिए एक से बढ़कर एक नवीन यन्त्र और साधन हस्तगत कर लिए हैं। आवागमन की सुविधा, ऊर्जा की प्रचुर सामर्थ्य और सुख-सुविधा के लिए भरपूर साधनों का उपयोग जहाँ मानव समाज को सुख-सुविधा से युक्त बना रहा है, वहाँ यह एक स्पष्ट चेतावनी भी दे रहा है कि, हम अपनी भावी पीढ़ी को जो विद्याएँ दे रहे हैं, उनके साथ सही और विवेकपूर्ण यह शिक्षा भी दें कि सम्पूर्ण मानवीय शिक्षा का आधार और उद्देश्य एक ही है कि, मानव-समाज का उससे हित हो। जो विद्या और शिक्षा इसके प्रतिकूल हो, वह सर्वथा त्याज्य है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारी शिक्षा-पद्धति कैसी हो ?

शिक्षा बड़ा व्यापक विषय है। दुर्भाग्यवश वर्तमान समय में हम शिक्षा का अर्थ किसी स्कूल या कॉलेज में जाकर विभिन्न विषयों की दस-पाँच, बीस-तीस पुस्तकें अध्यापकों से पढ़ लेना ही समझते है। जिस व्यक्ति ने इस नियत पाठ्यक्रम के अनुसार जितनी अधिक पुस्तकें पढ़ी हैं और जितनी ऊँची परीक्षाएँ पास की हैं, वह हमारी दृष्टि में उतना ही अधिक शिक्षित या विद्वान है। आजकल लोगों का यही ख्याल है कि जो व्यक्ति अक्षरों से परिचित नहीं है और एक या कई भाषाओं को लिखने-पढ़ने की योग्यता नहीं रखता, वह शिक्षित कदापि नहीं कहला सकता।

पर इन विचारों में सत्य का अंश बहुत ही कम है। यह सत्य है कि इस जमाने में विभिन्न प्रकार के विषयों की जानकारी प्राप्त करने का सबसे सरल और सुविधाजनक मार्ग पुस्तकों का पठन-पाठन ही बन गया है, पर यह कल्पना करना कि शिक्षित होने का केवल यही एक मार्ग है, ठीक नहीं है। ऐसे ही विचारों वाले व्यक्ति प्राचीन भारतवासियों को, जिनमें लिखने-पढ़ने के अभ्यासी थोड़े ही थे शिक्षित मानने में संकोच किया करते हैं।

वास्तव में शिक्षा का सम्पर्क स्कूली पठन-पाठन से ज्यादा नहीं है और जिसे सुशिक्षा कहा जाता है वह तो दूसरी ही चीज है। आजकल दुनिया की निगाह में शिक्षा का मुख्य लक्षण कोई अच्छी-सी नौकरी कर सकना, अथवा किसी अन्य किसी बड़े समझे जाने वाले पेशे के द्वारा जीविकोपार्जन करना समझा जाता है क्योंकि इन सभी कामों में लिखना-पढ़ना अनिवार्य होता है इसलिए आजकल इन कामों में सफल होने वाले व्यक्ति ही शिक्षित समझे जाते हैं।

यही सबसे बड़ा अन्तर प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा प्रणाली में है। उस समय कागज, कलम और पुस्तकें लेकर पढ़ने-लिखने का अभ्यास करने के बजाय विद्यार्थी का चरित्र गठन करना और जीवन संग्रह में उसे अपना और दूसरों का हित कर सकने योग्य बनाना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। दूसरा उद्देश्य यह था कि मनुष्य को केवल भौतिकता की तरफ दृष्टि रखने वाला न बनाकर वह उसके जीवन को आध्यात्मिकता की तरफ मोड़ती थी क्योंकि जो व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को अपने समान समझ कर उनके हित-अनहित का ध्यान न रखेगा, वह समाज के लिए कभी श्रेष्ठ नागरिक सिद्ध न होगा। जो स्वार्थी व्यक्ति भौतिक लाभों को ही सब कुछ समझकर अपनी बुद्धि का उपयोग अपने लिए अधिक से अधिक सामग्री प्राप्त करने और दूसरे को उससे वंचित रखने में करता है, वह प्राचीन आदर्श की कसौटी पर निस्सन्देह एक पढ़ा-लिखा मूर्ख है। उसे सुशिक्षित कहना शिक्षा का अपमान करना है।

प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था के लिए गुरुकुल प्रणाली का विकास किया गया था। एक-एक ऋषि, महर्षि सैकड़ों, हजारों विद्यार्थियों को अपने यहाँ रखकर जीवन की आवश्यकीय शिक्षा प्रदान करते थे। उस समय कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए पुस्तकों द्वारा शिक्षा देने वाला प्रश्न नहीं उठता था। उस समय सब प्रकार की शिक्षा मौखिक या व्यावहारिक रूप में ही दी जाती थी। इसलिए उस सयम के विद्यार्थी जो कुछ पढ़ते थे उसे जन्म भर के लिए स्मरण शक्ति द्वारा सुरक्षित बना लेते थे। आजकल के समान इम्तिहान समाप्त होते ही पुस्तकों से नाता तोड़ लेने और और पढ़े हुए विषयों में से तीन चौथाई को कुछ ही महीनों में भुला देने वाली शिक्षा-प्रणाली उस समय न थी।

उस समय गुरुकुलों में जो कुछ शिक्षा दी जाती थी वह पूर्ण रूप से व्यावहारिक होती थी। सबसे पहले विद्यार्थी को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया जाता था, जिससे वह अपने आगामी जीवन में कहीं भी और कैसी भी परिस्थिति में अपने पैरों पर खड़ा हो सकता था। पच्चीस वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कराके उसके शरीर को फौलाद की तरह सुदृढ़ बना दिया जाता था। गाँवों के बाहर या जंगल के वातावरण में रहने से उसका स्वास्थ्य और सहन शक्ति इतनी मजबूत हो जाती थी कि वह प्राय: रोग और बीमारियों के आक्रमण से सुरक्षित रहता था। गुरु और गुरुकुल के आवश्यक कार्यों में उसे पूरा-पूरा भाग लेना पड़ता था। कृष्ण जैसे राजवंशीय छात्र को भी गुरु के लिए जंगल से लकड़ियाँ इकट्ठी करके लानी पड़ती थी। गायों को चराना और उनकी देखभाल करना भी विद्यार्थियों के जिम्मे था और यह एक काफी बड़ा काम था, क्योंकि उस समय एक-एक ऋषि के यहाँ हजारों गायें रहती थीं और समय-सयम पर वे हजारों गायें राजाओं और श्रीमानों से दान में मिल जाती थीं। गुरु की अधिक से अधिक सेवा करना और उनकी आज्ञा का अक्षरश: पालन करना ही विद्यार्थी का परम कर्तव्य माना जाता था और गुरु भी उसे अपनी सन्तान की तरह मान कर उसके कल्याण की सदैव चेष्टा किया करते थे, इसके विपरीत जब हम आज कल स्कूल और कॉलेजों के लड़कों को प्राय: अपने शिक्षकों की हँसी उड़ाते, उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय में अपमानजनक बातें कहते और कभी-कभी तो सचमुच उनको मारते-पीटते देखते हैं तो हमारी आँखें लज्जा से झुक जाती हैं और हम प्रार्थना करने लगते हैं कि भगवान ऐसी शिक्षा से बचाए रखे।

प्राचीन शिक्षा-पद्धति की एक बड़ी विशेषता सामाजिक समानता का प्रचार भी था। गुरुकुलों में विद्यार्थियों को हद दर्जे की सादगी से रहना पड़ता था जिससे गरीब और अमीर का अन्तर शिक्षाकाल में तो समाप्त ही हो जाता था। ब्रह्मचर्य के पालन के उद्देश्य से विद्यार्थियों को सब प्रकार की तड़क-भड़क की पोशाक, तेल-फुलेल, सुगन्धित उबटन तथा अन्य शृंगार सामग्री से दूर रहना पड़ता था। भोजन के लिए गाँव के किसी गृहस्थ के यहाँ से भिक्षा माँग कर लाना ब्रह्मचारियों के लिए नियम रखा गया था। इससे एक ओर जहाँ विद्यार्थी के हृदय में नम्रता तथा विनय का भाव उत्पन्न होता था वहाँ दूसरी ओर वह अपने को समाज का ऋणी और उसका एक अंग समझने लगता था और भविष्य में समाज सेवा करना उसका कर्तव्य हो जाता था। इस प्रकार के वातावरण में नितान्त गरीब बालक भी उच्च शिक्षा सहज में प्राप्त कर सकते थे। कृष्ण और सुदामा तथा राजा द्रुपद तथा द्रोणाचार्य का एक साथ मित्र रूप में शिक्षा प्राप्त करना इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली इस दृष्टि से बड़ी ही दूषित हो गई है। कॉलेजों की शिक्षा तो इतनी खर्चीली हो गई है और वहाँ के ज्यादातर छात्र ऐसे बने-ठने तथा फैशन के पुतले रहते हैं किसी-किसी गरीब घर के लड़के का वहाँ पहुँच सकना ही असम्भव होता है। अगर ऐसा कोई विद्यार्थी किसी की सहायता से अथवा स्वयं ट्यूशन आदि करके वहाँ पढ़ने के लिए पहुँच भी गया तो उसे सदा नीचा देखना पड़ता है।

कुछ व्यक्ति प्रचीन शिक्षा-पद्धति में यह दोष बतलाते हैं कि उसका क्षेत्र बहुत संकुचित था और उस समय के विद्यार्थियों का दृष्टिकोण उतना व्यापक न बन पाता था जितना कि आजकल। हम यह मान सकते हैं कि प्राचीन समय में शिक्षा का स्वरूप मुख्य तथा धार्मिक ही होता था और अधिकांश विद्यार्थी पूजा-पाठ, स्तुति तथा कुछ कर्मकाण्ड सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त अन्य विषयों का ज्ञान कदाचित ही प्राप्त करते थे और यह भी सच है कि उस समय शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों की संख्या समस्त आबादी के अनुपात से बहुत अलग होती थी। पर उस समय की सामाजिक अवस्था और व्यवस्था ही आजकल से सर्वथा भिन्न थी और उस समय का साज मुख्य रूप से कृषि प्रधान था। खेतीबारी का काम करने वालों के लिए साहित्य और विज्ञान की शिक्षा तो आजकल भी सुलभ नहीं है और गाँवों की ९० प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निरक्षर ही है। उस समय उद्योग-धन्धे भी हाथ की कारीगरी के रूप में किए जाते थे और उनका उद्देश्य विशेषत: किसानों की आवश्यकता की वस्तुएँ बनाना ही था। बड़े-बड़े नगरों की संख्या कम थी और वैदेशिक व्यापार बहुत सीमित रूप में किया जाता था। फिर उस समय शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबी शिक्षा ग्रहण करके कोई उपाधि प्राप्त कर लेना नहीं था, वरन् प्रत्येक को उसकी जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा दी जाती थी जैसे ब्राह्मण के पुत्र को कर्मकाण्ड की शिक्षा, क्षत्रिय पुत्र को शस्त्र-संचालन तथा राजनीति की शिक्षा वैश्य को विविध प्रकार के उद्योग-धन्धों तथा व्यापार की शिक्षा आदि। शूद्रों का एक बड़ा भाग मेहनत मजदूरी के साधारण कामों में लगा रहता होगा। ऐसी अवस्था में पढ़ने-लिखने का प्रचार कम रहा हो या उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति इने-गिने ही देखने में आते हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

पर यह ख्याल करना कि धार्मिक क्रियाकलाप के सिवा देश में किसी अन्य विषय की शिक्षा का प्रचार ही न था, अज्ञान का द्योतक है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक स्थान पर सनत्कुमार के पूछने पर नारद ऋषि ने कहा था—"हे भगवान मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इतिहास, पुराण, वेदों के अर्थ विधायक ग्रन्थ; पितृविद्या, राशिविद्या, देव विद्या, निधि विद्या, वाकोवाक्य विद्या, एकायन विद्या, देव विद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्प देव जन विद्याओं का अध्ययन किया है।" हमारे प्राचीन साहित्य में चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं का जिक्र जगह-जगह पाया जाता है, इन विद्याओं और कलाओं में जीवन की अनेक आवश्यक और उससे सुसभ्य तथा सुसंस्कृत बनाने की बातों का समावेश हो जाता है। अस्त्र-शस्त्र संचालन, संगीत, वैद्यक, ज्योतिष, चित्रकारी, मूर्ति बनाना, गृह निर्माण, वस्त्र-कला, आभूषण और सुगन्धित पदार्थों का बनाना आदि कितने ही विषयों में उस समय के भारतवासियों ने अपूर्व उन्नति की थी। ये सब कार्य बिना समुचित शिक्षा के यथोचित रूप में किये जा सकें, यह सम्भव नहीं। यद्यपि काल प्रभाव से प्राचीन चिह्नों का हजारों वर्ष तक कायम रह सकना असम्भव है, तो भी दो ढाई-हजार वर्ष पुराने अजंता, एलोरा आदि गुफाओं में जो अद्भुत मूर्तियों और चित्रकारी के नमूने मिलते हैं और प्राचीन समय की जो दस-पाँच महाविशाल इमारतें अभी तक दक्षिण और उत्तर भारत में पाई जाती हैं, उनसे यह प्रकट होता है कि उस समय तक हमारे देश में इन विद्याओं का विकास उच्च कोटि तक पहुँच गया था। इस प्रकार का विकास तभी सम्भव हो सकता है, जबकि देश में अच्छी शिक्षा संस्थाएँ हजार पाँच सौ वर्ष तक स्थित रहकर कार्य कर चुकी हों या शिक्षा देने की कोई और नियमित व्यवस्था निरन्तर प्रचलित रह चुकी हो।

रह गया शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार या घर-घर में उसका फैल जाना, यह एक दृष्टि से अच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी है और दूसरी दृष्टि से इसमें बहुत-सी खराबियाँ भी हैं। आजकल जो हमको शिक्षा और विद्या के सार्वजनिक प्रचार का, खासकर स्कूलों और कॉलेजों में पढ़कर निकलने वाली विद्यार्थियों की अगणित सेना का परिणाम बेकारी और अनीति की वृद्धि ही दिखलाई पड़ रहा है। यह सच है कि आजकल शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है, पर साथ ही यह शिक्षा अधिकांश में खोखली है। उसके द्वारा मनुष्य कार्यक्षम और सुयोग्य बनने की बजाय चालाक और दिखावट पसन्द बन रहे हैं। साथ ही परीक्षा पास कर लेने को विद्या और शिक्षा की कसौटी बना देने से किसी भी कार्य को सम्पन्न करने की वास्तविक योग्यता का ह्रास हो रहा है। इस समय चारों तरफ दिखलाई पड़ने वाली भीषण बेकारी की समस्या का वास्तविक कारण यही है कि विद्यार्थियों को केवल किताबी शिक्षा देकर उनमें शिक्षित होने का अभिमान तो उत्पन्न कर दिया जाता है, पर किसी लोकोपयोगी कार्य को परिश्रम, सच्चाई और बुद्धिमत्तापूर्वक करने की सामर्थ उनमें पैदा नहीं की जाती।

इस तरह दोनों पहलुओं पर विचार करने से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि प्राचीन शिक्षा पद्धति देश और काल की वर्तमान बदली हुई दशा में जैसी की तैसी फलदायक नहीं हो सकती और न अब ऋषियों के से निजी गुरुकुलों की स्थापना हो सकना सम्भव है। अब एक लंगोटी या धोती पहने, मूड़, मुड़ाये भोजन के लिये भिक्षावृत्ति अंगीकार करने वाले विद्यार्थी की कल्पना भी हास्योत्पादक मानी जाएगी। अब शिक्षा की व्यवस्था देश की सरकार ने अपने हाथ में ले ली है और अन्य किसी के पास इतने साधन होने असम्भव हैं कि वह इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर सके। इसलिये वर्तमान स्कूलों तथा कॉलेजों का सर्वथा उच्छेद हो सकना तो सम्भव नहीं, पर उनका रूपान्तर होना अत्यन्त आवश्यक है और उनमें प्राचीन शिक्षा पद्धति की उपयोगी बातों का समावेश करने से बहुत अधिक लाभ उठाया जा सकता है।

इस दृष्टि से सबसे पहली बात तो हम यही समझते हैं कि शिक्षा-पद्धति में कोरी जानकारी की अपेक्षा गुणों का महत्त्व अधिक्र होना चाहिए। प्राचीनकाल के विद्यार्थियों के पास चाहे आजकल के स्कूली लड़के-लड़कियों की तरह पुस्तकों और कापियों के ढेर नहीं लगे रहते थे और न उनमें से प्रत्येक को भूगोल और इतिहास से लेकर विज्ञान के आविष्कारों तक की पाठ्य पुस्तकें पढ़नी पड़ती थीं, पर उस समय जो कुछ सिखलाया जाता था, वह जीवन भर के लिए उपयोगी होता था और उसे ऐसा पक्का कर दिया जाता था कि मनुष्य उसे कभी भूल नहीं सकता था। हम नहीं समझते कि दुनिया भर की बातों की जबानी जानकारी प्राप्त कर लेने की चेष्टा करना, पर व्यवहारिक कार्य के नाम पर शून्य होना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ?

दूसरी बात है वर्तमान समय की परीक्षाओं और डिग्रियाँ दिए जाने की प्रणाली। सम्भव है आरम्भ में इससे कुछ लाभ हुआ हो पर आजकल तो इसका स्वरूप अत्यन्त विकृत तथा भ्रष्ट हो गया। छल, कपट, बेईमानी, रिश्वत आदि किसी भी साधन से परीक्षा उत्तीर्ण होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेना ही इस समय अधिकांश विद्यार्थियों का लक्ष्य दिखलाई पड़ता है। इससे शिक्षा का मूल्य घटता जाता है और बी. ए., एम. ए. पास व्यक्ति चपरासी तक की नौकरी करते दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार की झूठी सनदों के बजाय प्राचीनकाल के छात्र शिक्षा समाप्त कर लेने पर कोई महत्त्व का कार्य करके दिखलाते थे और उसके द्वारा अपनी योग्यता का प्रमाण देते थे। वैदिक और पौराणिक काल में गुरु दक्षिणा की प्रणाली एक सीमा तक इस उद्देश्य की पूर्ति करने वाली थी। विश्वामित्र ने अपने शिष्य गालव से आठ सौ श्यामकर्ण घोड़ों की माँग की थी और द्रोणाचार्य ने अर्जुन को राजा द्रुपद को पकड़ लाने का आदेश दिया था। अब समय आ गया है कि परीक्षाओं की मौजूदा प्रणाली को कतई बन्द कर दिया जाय और उसके स्थान में ऐसे तरीके का प्रयोग किया जाय, जिससे विद्यार्थियों की वास्तविक योग्यता की जाँच हो सके और उनको तदनुरूप कामों में ही नियुक्त किया जा सके।

सबसे महान त्रुटि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यह है कि यह विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करने के बजाय उसका नाश कर देती है और नवयुवकों को जीवन के आरम्भ से ही काम, क्रोध, लोभ, में, मत्सर आदि का दास बना देती है। इसी का परिणाम है कि जब बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में आजकल के विद्यार्थी बी. ए., एम. ए. की डिग्रियाँ लेकर जीवन क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वे प्रायः निर्बल, निस्तेज और अनेक प्रकार की आधि-व्याधि के शिकार दिखलाई पड़ते हैं। प्राचीन समय के छात्र चौबीस-पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके और हर तरह के कठोर जीवन को सहन करके पूर्ण शक्ति और उत्साह के साथ जीवन-संग्राम में पदार्पण करते थे और आत्मविश्वास के साथ प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को प्रस्तुत रहते थे। यही दोनों प्रणालियों का सर्वप्रधान अन्तर है और उपरोक्त उद्देश्य को सम्मुख रखकर ही हमको अपनी शिक्षा-पद्धति का पुनर्निर्माण करना चाहिए। पिछले दिनों पटना विश्वविद्याय के समावर्तन में दीक्षान्त भाषण करते हुए स्व. राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने वर्तमान शिक्षा पद्धति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला था। उसका एक अंश नीचे उपस्थित है—

विवेक बुद्धि और विचार शक्ति

मेरा यह मत है कि शिक्षा के तीन उद्देश्य होते हैं, जिनमें से दो उद्देश्य तो व्यक्ति के अपने निजी जीवन से सम्बन्ध रखते हैं और तीसरा व्यक्ति के सामूहिक जीवन से सम्बन्धित है। प्रथमतः शिक्षा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजन है कि व्यक्ति को ईश्वर प्रदत्त यह सहज विवेक बुद्धि की सामर्थ्य और सत्तमत्ता को वह बढ़ाए। यह ठीक है कि विवेक बुद्धि मानव को जन्म से, ही प्रकृति या ईश्वर से मिली हुई होती है किन्तु अपनी नैसर्गिक अवस्था में इसकी सामर्थ्य और सक्षमता अत्यन्त सीमित होती है। यदि कोई व्यक्ति केवल उसी के सहारे छोड़ दिया जाय तो अपनी देशकाल की सीमाओं के कारण वह उससे न तो अपना ही कोई लाभ उठा सकेगा और न अपने अन्य भाइयों का कोई भला कर सकेगा। किन्तु यदि उसकी विवेक बुद्धि को पिछली पीढ़ियों की संचित अनुभूति से सम्पन्न कर दिया जाता है, तो उसकी शक्ति और सक्षमता बहुत बढ़ जाती है क्योंकि उस अवस्था में उसे अपने और बाह्य चराचर जगत के बारे में ऐसी अनेक उपयोगी और आवश्यक बातें ज्ञात हो जाती हैं जिन्हें वह केवल अपनी विवेक या विचार शक्ति से न जान सकता था। दूसरे शब्दों में इस प्रक्रिया द्वारा उसकी विवेक-बुद्धि इतनी सक्षम और सामर्थ्यवान हो जाती है कि उसके सहारे वह अपने को और अपने चारों ओर के जड़ और सजीव जगत को समझने और उसमें रहकर अपने जीवन को ठीक दशा में चलाने के योग्य होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि हर नई पीढ़ी को पिछली पीढ़ी की अनुभूति से परिचित और सम्पन्न करना और ऐसा करके नई पीढ़ी की विवेक-बुद्धि को और विचार शक्ति को और अधिक सामर्थ्यवान बनाना, इसी प्रक्रिया को शिक्षा कहा जाता है।

कर्मेन्द्रिय का प्रशिक्षण

शिक्षा का दूसरा प्रयोजन यह है कि प्रत्येक मानव को अपनी कर्मेन्द्रियों का ऐसा प्रयोग सिखाए, जो उसे अपनी शारीरिक और अन्य प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए योग्य बना सके। इन कर्मेन्द्रियों के उचित प्रयोग के लिए ज्ञान की तो आवश्यकता होती है। साथ ही सभ्यता की भी आवश्यकता होती है। कितना ही सबल व्यक्ति क्यों न हो, कितना ही स्फूर्तिमय क्यों न हो वह तब तक कुछ अधिक फलमय कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उस कार्य के सम्पादन के लिए उसको कर्मेन्द्रिय को आवश्यक प्रशिक्षा न मिली हो अथवा उन्हें उसका अभ्यास न कराया गया हो।

साथ रहने की कला

शिक्षा का तीसरा प्रयोजन मेरे विचार में यह है कि अपने जैसे ही सब व्यक्तियों के साथ रहने और उनके साथ काम करने के लिए आवश्यक गुणों का व्यक्ति में उदय हो जाना। इच्छा से अथवा अनिच्छा से प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ तो रहना ही पड़ता है। कोई भी दुनिया से दूर अपनी अलग कुटिया नहीं बना सकता और न बना पाता है। एकाकी जीवन कवि की सुन्दर कल्पना के अतिरिक्त वास्तविक तथ्य न तो है और न हो सकता है। कुछ क्षण के लिए चाहे व्यक्ति एकाकी रह सके किन्तु सर्वदा वह एकाकी रह ही नहीं सकता। अत: जब सामूहिक जीवनमानव जीवन का अनिवार्य तथ्य है, तब यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को साथ रहने की कला आ जाए।

पिछली शताब्दियों मे जब सामूहिक जीवन का क्षेत्र सीमित था और जब आर्थिक क्रियाएँ इतनी सर्वकेन्द्रित न हुई थीं। इन तीनों प्रयोजनों के लिए संगठित प्रयास करने तथा उनमें प्रतिक्षण सन्तुलन बनाए रखने की विशेष आवश्यकता न थी। किन्तु आज तो सामूहिक जीवन का क्षेत्र भूमण्डल व्यापी है और आर्थिक क्रियाओं का सीमातिरेक संकेन्द्रित हो गया है। अत: आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता पैदा हो गई है कि प्रत्येक व्यक्ति को विशेष प्रक्रिया द्वारा इन तीनों बातों से पूर्ण परिचित ही न कराया जाय बल्कि उसको कार्यरूप में अपनाने के योग्य भी बना दिया जाय।

शैक्षणिक क्रान्ति का अभाव

अत: पिछली कुछ शताब्दियों में सारे जगत भर में अतीत से दान में मिली शिक्षा व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता लोगों को महसूस होती रहती है और उसमें विभिन्न प्रकार के परिवर्तन भी होते रहे हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि जगत भर में शिक्षा-क्षेत्र में भी एक ऐसी क्रान्ति पिछले दिनों होती रही है जैसी कि आर्थिक और राजनैतिक जगत में हुई है किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश में शिक्षा के बारे में वैसी कोई व्यापक क्रान्ति नहीं हुई है। इस दिशा में लोगों को ध्यान तो गया है। किन्तु कार्य क्षेत्र में उसका कोई उल्लेखनीय फ़ल दिखाई नहीं पड़ता।

यह ठीक है कि किसी सीमा तक हमारी शिक्षा संस्थाएँ शिक्षा के प्रथम प्रयोजन को पूरा करती हैं। इन संस्थाओं को पिछली पीढ़ियों की संचित अनुभूति से किसी सीमा तक परिचित अवश्य कराया जाता है। किन्तु इस परिचय कराने का जो उद्देश्य है, अर्थात विवेक बुद्धि को सजग, सक्षम और सामर्थ्यवान बनाता, वह पूरा नहीं हो रहा है। हमारी नई पीढ़ी के युवक-युवती विचारपुंज नहीं हो पाते। यह ठीक है कि इन शिक्षा-संस्थाओं से भी यदा-कदा कुछ विरले व्यक्ति निकलते हैं, जिनकी विवेक-बुद्धि और विचार-शक्ति पूर्णरूपेण सजग और सामर्थ्यवान होती है किन्तु इन इने-गिने व्यक्तियों के नाम पर ही यह कहना ठीक न होगा कि ये शिक्षा-संस्थाएँ मानव के मानस पटों को खोल रही हैं और उसे ज्योतिर्मय कर रही हैं। मेरा यह विचार है कि इस दशा में उसकी असफलता के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख कारणों की ओर संकेत कर देना अनुचित न होगा।

जिनमें से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण तो यह लगता है कि पिछली पीढ़ियों की जिस अनुभूति से हमारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा-संस्थाएँ हमारे युवक-युवतियों का परिचय करा रही हैं, उसके बहुत बड़े भाग का इन युवक-युवतियों के अपने निजी दैनिक जीवन अथवा अपने चारों ओर के जगत और अपने सामूहिक जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अत: अतीत की वे बातें इन युवक-युवतियों को कुछ अनपहचानी, कुछ अनुपयोगी, कुछ अछूती-सी लगती हैं और वे उनके मस्तिष्क का भार बनकर रह जाती हैं जिन्हें वे संस्था के निकलने के पश्चात बहुत जल्दी ही भूल जाते हैं। दूसरा कारण यह भी है कि जिस भाषा माध्यम द्वारा इस अतीत की अनुभूति से उनका परिचय कराया जाता है, वह भी उनके दैनिक और सामूहिक जीवन की वस्तु नहीं है और इसलिए पूरा प्रयास करने पर भी उनके लिए कुछ अपरिचित ही बनी रहती है। अत: अतीत की अनुभूति उनके विवेकदीप को ज्योतिर्मय करने के लिए दियासलाई न होकर इस दीपक के तेल को सोखने वाला सोख्ता ही रहती है। जहाँ अतीत की अनुभूति उनकी बुद्धि की सामर्थ्य को सहस्रगुनी शक्ति प्रदान करने वाला लीवर होनी चाहिए वह हमारी बुद्धि को पंगु और अपाहिज करने वाला कोढ़ बन गई है।

किन्तु बात इतनी ही नहीं है। शिक्षा के अन्य दो प्रयोजनों को पूरा करने का कार्य तो हमारी शिक्षा संस्थाएँ लगभग कर ही नहीं रही हैं। हमारे यहाँ सम्भवत: ऐसी कोई विरली ही संस्था हो जहाँ इस बात का प्रयास किया जाता हो कि व्यक्ति को इतना कार्यकुशल बना दिया जाय कि वह अपने हाथ के परिश्रम से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक धन-सामग्री पैदा कर ले। व्यवसाय, कृषि, उद्योग इत्यादि के व्यावहारिक प्रशिक्षण का प्रबन्ध तो हमारे यहाँ लगभग नहीं के बराबर है। हमारे प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों का तो इस व्यावहारिक अभ्यास से कोई वास्ता है ही नहीं। हमारे उच्च शिक्षालयों में से ही इने-गिने को छोड़कर अन्यों का उस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनमें से लगभग सभी अपने विद्यार्थियों को पिछली पीढ़ियों या वर्तमान पीढ़ी के प्रौढ़ लोगों के कुछ विचारों से परिचय कराने में संलग्न हैं। स्वभावत: यह परिणाम हो रहा है कि इन शिक्षालयों के स्नातक चाहे वाक्चतुर हों किन्तु कार्यकुशल नहीं होते। जब तक विदेशी साम्राज्य के दलाल की हैसियत से उन्हें अपना जीवन चलाना पड़ता था, तब तक तो उनकी वाक्चातुरी उनके लाभदायक थी किन्तु जब जब अपनी गाढ़ी मेहनत से नवभारत का हमें निर्माण करना है, उस समय तो इस वाक्चातुरी का वैसा महत्त्व हो ही नहीं सकता। परिणाम यह हो रहा है कि हमारे यहाँ का वाक्चातुर स्नातक भी आज जीवन में अपने लिए स्थान बनाने में सफल होने में पर्याप्त कठिनाई और असफलता अनुभव कर रहा है।

इतना ही क्यों ? वर्षों के परिश्रम को इस प्रकार अपने वैयक्तिक जीवन के लिए अनुपयोगी और फलहीन होते देख अनेक युवकों के मन में अपने भाग्य और अपने भाइयों के प्रति एक प्रकार का अन्ध रोष पैदा हो रहा है और वे समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या करने से उन्हें अपनी मुश्किलों से छुटकारा मिल सकता है। साथ ही हमारे शिक्षालयों में पढ़ने वाले युवक-युवतियाँ आज अतीत की उस अनुभूति का भी कोई परिचय हासिल नहीं कर पा रहे हैं, जिसका उन्हें वहाँ परिचय कराने का प्रबन्ध है। मैं समझता हूँ कि शिक्षा के स्तर में गिरावट की जो आज आम शिकायत है, उसका बड़ा कारण यह है कि हमारे नवयुवकों और नवयुवतियों को उस शिक्षा प्रक्रिया से लाभ नहीं पहुँचता, जो हमारे यहाँ के हर प्रकार के शिक्षालयों में आज जारी है।

इस विष का प्रसार वैयक्तिक क्षेत्र में सीमित न रह कर आज हमारे सामूहिक क्षेत्र में भी फैल रहा है। हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक गुणों का अभ्यास तो हमारी नई पीढ़ी के लोगों को कराती नहीं। ऐसी सूरत में नई पीढ़ी के लोगों में यदि उन गुणों का अभाव हो जो सुन्दर और सफल सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। शिक्षा व्यवस्था का यह ध्येय और प्रयोजन ही नहीं मालूम पड़ता है कि वह नई पीढ़ी के लोगों को सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक गुणों में दीक्षित करें।

सच तो यह है कि प्रयोजन की दृष्टि से हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था कुछ वैसी ही असन्तुलित और बेढंगी है, जैसा कि मटकी जैसा पेट और ककड़ी बाँह और पाँव वाला शरीर होता है। किसी कारण से क्यों न हो आज हमारी शिक्षा-संस्थाओं का सारा प्रयास अपने विद्यार्थियों को ज्ञान के सीमित स्वरूप से परिचित कर देना ही है और व्यक्ति को कार्यकुशल और सहजीवी बनाने का नहीं है। अत: मैं समझता हूँ कि अन्य सुधारों के साथ-साथ हमारी शिक्षा व्यवस्था में उसके उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करने की भी आवश्यकता है।

हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि हमें किस संख्या में विचारक और कार्यकुशल लोग तैयार करने हैं यह तो स्पष्ट ही है कि हर युग और हर देश में विचारकों और कर्मियों दोनों की ही आवश्यकता होती है किन्तु जिन परिस्थितियों में आज हमारा देश है, उनमें हमें कोरे विचारों की अपेक्षा कर्मियों की अधिक आवश्यकता है। अपने करोड़ों देशवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें शीघ्राशीघ्र अपना आर्थिक उत्पादन बढ़ाना है। किन्तु उसके बढ़ाने की शर्तों में यह भी शामिल है कि हमारे यहाँ के लोगों का स्वास्थ्य अच्छा हो और वे आधुनिक आर्थिक और औद्योगिक संगठन और प्रक्रियाओं से परिचित हों। इन तीनों बातों के लिए ही हमें लाखों कर्मियों की आवश्यकता है। किन्तु इन सब कर्मियों को यह समझ लेना होगा कि केवल अपने कौशल के आधार पर यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता कि वे अपने देश के अन्य भाइयों से बहुत अधिक पारिश्रमिक पाएँ। वरन् उन्हें तो इस कार्य में इस प्रकार और विश्वास से लगना है कि कष्ट सहकर भी उन्हें आगे की पीढ़ियों के जीवन को सम्पन्न बनाने के लिए साधन जुटाने हैं और प्रबन्ध करना है। अत: मेरा विचार है कि हमारी शिक्षा-संस्थाओं में कार्यकुशलता पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए और उसमें व्यावसायिक प्रशिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध होना चाहिए। यदि हर नगर और हर जिले में इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षा केन्द्र बन जाएँ अथवा यदि वहाँ की वर्तमान शिक्षा-संस्थाएँ अपना इस प्रकार कायाकल्प कर लें तो मैं समझता हूँ कि हमारी शिक्षाव्यवस्था का भौंड़ापन बहुत कुछ कम हो जाएगा।

साथ ही मैं समझता हूँ कि सामूहिक गुणों की दीक्षा का भी हमारी शिक्षा-संस्थाओं में प्रबन्ध होना चाहिए। सामूहिक उद्योग की शिक्षा केवल क्रीड़ा क्षेत्र में ही न दी जाकर वह जीवन के अन्य भागों में ही दी जानी चाहिए। उसका एक प्रकार यह हो सकता है कि शिक्षालयों में ऐसी टीमें बनें या सामुदायिक विकास के कार्यों में होड़ बदकर भाग लें।

शिक्षा सुधार के लिए कुछ उपयोगी सुझाव

भारतमाता को स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के पश्चात जो सबसे महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्य राष्ट्र के सम्मुख है वह है—'शिक्षा'। शिक्षा को ही किसी देश का मेरुदण्ड कहा जा सकता है। इसी आधारशिला पर उसकी उन्नति-अवनति निर्भर रहती है। भावी पीढ़ी को जैसा कुछ भी बनाना हो वैसी ढालने के लिए शिक्षा-पद्धति ही एक साँचे की काम देती है।

अँग्रेजों की गुलामी की जड़ें भारत में गहरी जमाने का प्रयत्न करते हुए मैकाले महोदय ने शिक्षा का विधान ऐसा बनाया था, जिससे उस साँचे में ढले हुए नवयुवक केवल नौकरी करने के ही लायक रहें। वे जानते थे कि शिक्षा-पद्धति ही किसी समाज का मेरुदण्ड होता है। इस तथ्य को हमें भी भलीभाँति समझ लेना है और अपने राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर समुचित ध्यान देना है।

यों तो अँग्रेजों से विरासत में मिली हुई वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनेक त्रुटियाँ हैं परन्तु उसका एकदम परिवर्तन होना कठिन है। अतएव उसमें जो सुधार सरल एवं अधिक आवश्यक हों उनकी ओर शीघ्र ध्यान दिया जाना चाहिए। कुछ ऐसे ही सुधारों की चर्चा इस लेख में की जा रही है।

(१) पाठशाला में प्रवेश करते समय बालक की आयु ६ वर्ष से कम न हो, यदि वह ७ वर्ष का हो तो और भी अच्छा क्योंकि इससे छोटी आयु में शिक्षा का दबाव पड़ने से बालक के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

(२) पाठ्यक्रम में व्यवहारिक जीवन सम्बन्धी जानकारियों को स्थान अवश्य दिया जाय, जिससे विद्यार्थी को स्वास्थ्य, यात्रा, शिष्टाचार, रेल, डाक तार, व्यापार तथा राजकीय नियमों की आवश्यक जानकारी हो जाय।

(३) परीक्षा में उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण होना वार्षिक परीक्षाओं पर निर्भर न रहे। वरन् विद्यार्थी के कार्य की मासिक प्रगति के विवरण के आधार पर उसे उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण किया जाय।

(४) प्राइवेट परीक्षाओं में किसी प्रकार की अड़चन न हो। जिससे अन्य कार्य करते रहकर भी शिक्षा में उन्नति करने की हर किसी को सुविधा रहे।

(५) सब प्रान्तों में एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम हो, जिससे एक प्रान्त के विद्यार्थियों को दूसरे प्रान्त में जाने पर दाखिला सम्बन्धी कोई अड़चन न हो।

(६) पाठ्यक्रम में पुस्तकों का बहुत भारी बोझ न रहे। वरन् थोड़ी किन्तु उपयोगी पुस्तकें ही रखी जावें।

(७) लड़के और लड़कियों की सम्मिलित शिक्षा न हो विशेषतया वयस्क बालक-बालिकाओं का पठन-पाठन तो प्रथम स्कूलों में ही होना चाहिए।

(८) छात्रों और अध्यापकों की आदतें, वेषभूषा तथा अनुशासनप्रियता पर कड़ाई से ध्यान दिया जाय। उच्छृंखलता को शिक्षा के क्षेत्र से बहिष्कृत किया जाय। सफाई, सादगी, सदाचार, शिष्टाचार और सेवा भाव को पुरस्कृत एवं प्रशिक्षित किया जाय।

(९) बालकों का सामान्य ज्ञान बढ़ाने के अधिक साधन उपस्थित किए जाएँ। इसके लिए एक अध्यापक एवं घण्टा स्वतन्त्र रूप से भी रखा जाना चाहिए।

(१०) अध्यापक की आयु २५ वर्ष से कम न हो यदि वह ३० वर्ष रखी जाय तो और भी अच्छा। शिक्षकों को उनके स्वास्थ्य के अनुसार ६०-६५ वर्ष की आयु तक काम करने दिया जाय।

(११) अध्यापकों को वेतन इतना दिया जाय कि वे आर्थिक चिन्ताओं से दु:खी न रहकर शान्तचित्त से शिक्षण कार्य में मन लगा सकें। उनके स्थान परिवर्तन किसी अनिवार्य कारण से ही हो, अन्यथा उन्हें अपनी सुविधा के एक स्थान पर जमकर काम करने दिया जाय।

(१२) स्कूलों पर उत्तम निरीक्षण की सुव्यवस्था रहे। शिक्षा की प्रगति पर उच्च अधिकारी कड़े निरीक्षण की व्यवस्था रखें, जिससे कहीं ढील-पोल न चलने पावें।

(१३) शिक्षा शुल्क इतना कम हो कि उसे साधारण श्रेणी के लोग भी आसानी से उठा सकें। असमर्थ एवं होनहार बालकों के लिए विशेष सुविधाओं की उदार व्यवस्था रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(१४) प्रत्येक स्कूल में ईश्वर प्रार्थना के उपरान्त ही शिक्षा कार्य प्रारम्भ किया जाय। प्रार्थनाओं में कर्तव्य पालन, सदाचार एवं लोकसेवा की बुद्धि देने की प्रार्थनाओं को प्रधानता दी जानी चाहिए।

(१५) पाठ्य पुस्तकें बार-बार बदलने से शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा पुस्तक बनाने वालों को असुविधा होती है। पुरानी पुस्तकें रद्दी हो जाने से कागज आदि का व्यर्थ ही अपव्यय होता है और पुरानी पुस्तकें खरीदकर काम चलाने की सुविधा से गरीब विद्यार्थी वंचित हो जाते हैं। इसलिए पाठ्य-पुस्तकें बहुत सोच-समझकर चुनी जाएँ जो चुन ली जाएँ वे बार-बार बदली न जायँ।

(१६) सरकारी धन उच्च शिक्षा पर अधिक व्यय होने की अपेक्षा प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर अधिक व्यय होना चाहिए।

(१७) स्कूलों में औद्योगिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो।

(१८) लड़कियों की शिक्षा में उनके भावी जीवन से सम्बन्ध रखने वाली जानकारियों का आवश्यक समावेश रहे।

(१९) अशिक्षित प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों के लिए भी उनकी सुविधा के समय का ध्यान रखते हुए पाठशालाएँ खोली जाएँ और उनका पाठ्यक्रम उनकी स्थिति के अनुकूल रखा जाय।

(२०) स्कूलों का वातावरण प्राचीन गुरुकुलों जैसा सात्विक बनाने का प्रयत्न किया जाय, जिसकी अच्छी छाप पड़ने से बालक बड़े होने पर राष्ट्र के सुयोग्य एवं प्रतिष्ठित नागरिक सिद्ध हो सकें।

यह सुझाव ऐसे हैं जो साधारण होते हुए भी अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। सरकार को, शिक्षा विभाग को, विद्वानों को एवं प्रत्येक अभिभावक को इन सुझाव एवं सुधारों पर मनोयोगपूर्वक विचार करना चाहिए। यदि उन्हें कार्यान्वित किया जा सका तो शिक्षा क्षेत्र में उत्साहवर्धक स्थिति उत्पन्न हो सकती है, राष्ट्र निर्माण के लिए इन सुझावों पर विचार किया जाना उचित दिशा में कदम उठाना सिद्ध होगा।

स्कूली शिक्षा में जुड़ने वाले कुछ अनिवार्य विषय

बचपन में आरम्भिक संस्कार स्वभाव के रूप में अपना स्थान बना लेते हैं और न्यूनाधिक मात्रा में आजीवन बने रहते हैं। इसलिए परिवार को प्रारम्भिक एवं चिरस्थायी महत्त्व की पाठशाला माना गया है। सद्गुणों सुसंस्कारों का व्यक्तित्व में बीजारोपण करने के लिए वह समय एवं वातावरण अत्यधिक महत्त्व का माना गया है। इन दिनों अभिभावकों का कर्तव्य है कि बालक गतिविधियों पर विशेष रूप से ध्यान रखें। दुर्गुणों की ओर उठते कदमों को रोकें और खेल-खेल में हँसते-हँसाते हुए सद्गुणों का अभ्यास कराते रहें। यों इस कार्य में माता की भूमिका सबसे अधिक हो सकती है। किन्तु परिवार के अन्य लोगों को भी अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए और घर का वातावरण ऐसा बनाना चाहिए, जिसके ढाँचे में बालक अनायास ही ढलते चलें। अनुकरणप्रिय इस आयु में बालक के सामने ऐसे क्रियाकलाप प्रस्तुत होते रहने चाहिए, जिनकी नकल करके वे सद्गुणी नागरिक बन सकें।

पाँच-छह वर्ष की आयु के उपरान्त जब बच्चा स्कूल जाने लगता है, तो वह बड़ा परिवार बन जाता है। इस विद्या मन्दिर में भावी जीवन की समस्याओं को सुलझा सकने वाला प्रशिक्षण चलना चाहिए। वह भी सर्वतोमुखी होना चाहिए, मात्र पुस्तकें रटाकर परीक्षा में उत्तीर्ण करा देने भर से शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं होता। क्योंकि मात्र इतिहास, भूगोल, भाषा आदि की सामान्य जानकारियों को जान लेने भर से छात्र के जीवन और व्यवहार में उत्कृष्टता, कुशलता भरने जैसा कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता। बात तब बनती है, जब छात्र स्कूल, परिवार के माध्यम से वह शिक्षण पूरा कर सकें, जो सुविकसित एवं सुसंस्कृत जीवन के लिए आवश्यक है।

हर व्यक्ति को शरीर से काम लेना पड़ता है। अस्तु, उसकी जानकारी इस सन्दर्भ में इतनी होनी चाहिए कि बीमार पड़ने की नौबत न आए। पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने में व्यवधान उत्पन्न न हो। कभी कारणवश शरीर गत टूट-फूट होती दीखे तो शरीर विज्ञान की समुचित जानकारी होने के आधार पर वह उसे खुद ही सँभाल सके। डॉक्टरों की आवश्यकता तो किसी दुर्घटना जैसे कुयोग आ खड़े होने पर भी अनुभव हो। स्कूलों में भले ही जीव विकास और मनोविज्ञान के गम्भीर विषयों को कम पढ़ाया जाय पर जो उनके दैनिक जीवन से सीधा सम्बन्ध रखती हो, वह स्वास्थ्य विषयक समग्र जानकारी पाठ्य विषय में सम्मिलित रहनी चाहिए। यदि नीति निर्धारणकर्ताओं ने इसे अनावश्यक समझा है या भूल की है तो अध्यापकों का निजी कर्तव्य है कि इस विषय की समुचित जानकारी स्वयं प्राप्त करें और शिक्षार्थियों को निजी रूप से उसे हृदयंगम कराने का प्रयत्न करें।

शरीर के उपरान्त दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष मन का है। चिन्तन का सही तरीका मनुष्य को आना चाहिए। परिस्थितियों की उलट-पुलट में जो आवेश आते हैं। उद्वेग उत्पन्न होते हैं और व्यवहार को बेतुका कर देते हैं, उसका स्वरूप और नियन्त्रण हर किसी को आना चाहिए। व्यक्तित्व को आकर्षक एवं प्रतिभासम्पन्न बनाने के लिए चिन्तन की सही प्रक्रिया ही काम देती है। मनुष्य अकेला तो रहता नहीं, उसे परिवार एवं समाज के बीच रहना पड़ता है। यह निर्वाह किस प्रकार शालीनता युक्त हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके लिए शिष्टाचार का अभ्यास ही पर्याप्त नहीं। वरन् वह चिन्तन विज्ञान और व्यवहार विज्ञान भी सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से आना चाहिए जिससे प्रेम भाव बना रहे और सहयोग का वातावरण बनता रहे। बात-बात में उत्तेजित होने एवं स्वार्थपरता की निकृष्टता अपनाए रहने पर जिनके साथ निर्वाह करना है, उनसे कटुता बढ़ने लगती है। लोग उपेक्षा करते हैं, असहयोग बरतते हैं और विरोध-प्रतिशोध पर उतारू हो जाते हैं। ऐसे लोग पग-पग पर ठोकरें खाते हैं और सहज सफलताओं से भी वंचित रह जाते हैं। इस गुत्थीदार समस्या का स्वरूप और समाधान हर किसी को आना चाहिए। शरीर से भी मन की गरिमा अधिक है। जिसका मन उद्विग्न रहेगा, वह शरीर से भी रोगी रहने लगेगा। मन के द्वारा ही शरीर का सूत्र-संचालन होता है इसलिए मन का सही उपयोग करने की रीति-नीति से प्रत्येक बालक को भली प्रकार अवगत होना चाहिए।

स्कूली पाठ्य पुस्तकों में वह प्रसंग समाविष्ट न हुआ हो तो अध्यापक को सरकारी पुस्तकें पढ़ाने के अतिरिक्त इस विषय को अपनी ओर से पढ़ाना चाहिए। चिन्तन का सही तरीका आना-स्वभाव को शालीनतायुक्त बनाना जीवन को सफल बनाने के लिए नितान्त आवश्यक है। उसकी उपयोगिता अच्छे स्वास्थ्य से बढ़कर है। परिवार के लोगों के अतिरिक्त हर व्यक्ति को व्यवसाय, नौकरी, कारोबार आदि के सम्बन्ध में व्यवहारकुशलता का ही प्रयोग करना पड़ता है। इसमें चतुरता कम और सज्जनता अधिक काम आती है। यही विषय प्रशिक्षण का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

अर्थशास्त्र की मोटी पुस्तकें जो बड़े प्रबन्धों में काम आती हैं। उन्हें सीखने-सिखाने का यदि पाठ्य पद्धति में समावेश है तो बड़ी अच्छी बात है। उसका प्रशिक्षण जारी रखने में या सिद्धान्तों को रटने में कोई हर्ज नहीं। पर असली वास्ता पारिवारिक अर्थशास्त्र से पड़ता है। सीमित आजीविका में परिवार का सुसंतुलित खर्च कैसे चलाया जाय, जिसमें न किसी के साथ अन्याय हो और न कोई अनावश्यक फिजूलखर्ची की छूट पा सके। परिवार की कुछ मौलिक आवश्यकताएँ हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा चिकित्सा आदि की प्रारम्भिक आवश्यकताओं से घर का कोई सदस्य वंचित न रहे। उस संस्था के सदस्यों में से किसी को अन्यान्य की शिकायत न मिले और न दुर्गुणों के परिपोषण हेतु दुलारवश अधिक खर्च करते रहने की धींगामुश्ती चलती रहे। संयुक्त कुटुम्ब में तो अर्थ सन्तुलन बनाये रहना और श्रम विभाजन हर सदस्य की क्षमता के अनुरूप करना होता है। कुशलता से निरन्तर अभिवृद्धि का सुयोग बन पाना ही समग्र ग्रह प्रबन्ध है। फैक्टरियों और कारखानों की अर्थव्यवस्था सीखने में हर्ज नहीं। पर यदि परिवार की अर्थव्यवस्था श्रम व्यवस्था का सिद्धान्त और व्यवहार न सीखा जा सका तो समझना चाहिए कि एक भारी कमी की पूर्ति अध्यापकों को निजी विवेक-बुद्धि के सहारे करनी पड़ेगी ताकि बड़ा होने पर छात्र अपने परिवार का कुशल सूत्र संचालक और सफल व्यवस्थापक बन सके।

समाज-सुधार समाज-सेवा की कितनी ही आदर्शवादी चर्चाएँ होती रही हैं। भूतकाल में जिन्होंने इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण महान कार्य किये हैं, उनकी प्रशंसा भी कम नहीं होती। भूतकाल की वह चर्चा उचित है पर देखना यह है कि आज जो कुरीतियाँ जन-जन के व्यवहार में घुस गई हैं और जिन कुप्रथाओं के कारण व्यक्ति और समाज को अनीतिग्रस्त रहना—अवांछनीय त्रास सहना पड़ता है। उनसे किस प्रकार बचा और बचाया जा सकता है ?

उदाहरणार्थ दहेज, विवाहों में धूमधाम वाली फिजूल खर्ची ऐसी है, जिसमें सारे समाज की आर्थिक स्थिति बुरी तरह लड़खड़ा रही है। इस कुचक्र में कितनी ही सुयोग्य लड़कियों को कुँवारी रहना पड़ता है या प्रताड़ना सहते हुए प्राण गँवाना पड़ता है। स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं के मनों में इस अनाचार के विरुद्ध आरम्भ से ही विद्रोह, असहयोग ही भावना भरी जानी चाहिए। इस कानून सम्मत कार्य के लिए अध्यापक भी व्यक्तिगत रूप से बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

हिन्दू समाज में जाति-पाँति के आधार पर बरती जाने वाली ऊँच-नीच की प्रथा ऐसी ही है, जिसे अमानवीय कहा जा सकता है। मृतकभोज, भिक्षा व्यवसाय, पर्दा प्रथा, बहुप्रजनन जैसी अनेकों बुराइयाँ ऐसी हैं जो अपने समाज में बेरोकटोक चलती रहती हैं। आवश्यक है कि इनके द्वारा होने वाली हानियों को हर विद्यार्थी को समझाया जाय। इनसे स्वयं दूर रहने और सम्बन्धियों मित्रों को दूर रखने का प्रयत्न यदि विद्यार्थी करने लगें तो वे सचमुच समाज की बहुत बड़ी सेवा कर सकेंगे।

अपने समाज में अभी साक्षरता प्रसार, स्वच्छता प्रचलन, नशा निवारण, वृक्षारोपण जैसे अनेकों काम जन सहयोग से किए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए हर किसी को श्रमदान, अंशदान के रूप में कुछ न कुछ सेवा-श्रद्धांजलि अर्पित करनी चाहिए। भले ही वह न्यूनतम ही क्यों न हो। स्कूली बच्चे इस सन्दर्भ में जो कुछ कर सकते हों उसे करने की प्रेरणा देनी तथा विधि बतानी चाहिए।

यह प्रशिक्षण ऐसा है जो व्यावहारिक जीवन में अनिवार्यता काम आने वाला है। इस प्रकार की शिक्षा यदि स्कूली पाठ्यक्रमों में नहीं तो उसकी पूर्ति अध्यापकों को अपनी समझ के अनुसार करना चाहिए।

बड़े होने पर छात्रों के सामने आजीविका उपार्जन का प्रश्न सामने आता है। इस ओर हर छात्र का ध्यान स्कूली जीवन में ही जाना चाहिए और पढ़ाई पूरी करने से पूर्व किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहिए। ताकि बेकारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का कष्टदायी जीवन व्यतीत न करना पड़े। कोई समय था जब पढ़े-लिखों को आसानी से सरकारी नौकरी मिल जाती थी। पर अब वह समय पच्चीस वर्ष पीछे छूट गया। नौकरियों के लिए जितनी जगह निकलती है, उसके कई गुने छात्र स्कूलों-कॉलेजों से पढ़ाई पूरी करके बाहर निकलते हैं। सबको जगह मिलना सर्वथा असम्भव है। हर विद्यार्थी को समझाया जाना चाहिए कि उसे पढ़ाई पूरी करने के उपरान्त कृषि, पशुपालन, शिल्प, उद्योग, व्यवसाय जैसे किसी काम में हाथ डालना और उसी के सहारे निर्वाह करना होगा। पैतृक धन्धे से गुजारा हो सकता हो तो सबसे अच्छा। अन्यथा समय रहते कोई उद्योग-धन्धा अपनाने और उस सम्बन्ध की शिक्षा प्राप्त करने की बात छात्रों के मन में बिठा देनी चाहिए। नौकरी की आस लगाए रहा जाय और अन्त में वैसा आधार न मिलने पर खिन्न हुआ जाय, इससे अच्छा यही है कि समय रहते यह सोच लिया जाय कि नौकरी नहीं मिलनी या नहीं करनी है। जो इस वास्तविकता को समझ लेंगे और समय रहते गुजारे के प्रश्न को दूरदर्शितापूर्वक हल कर लेंगे वे नफे में रहेंगे।

सरकार को चाहिए कि पढ़ाई का निरर्थक भार छात्रों पर लादने की अपेक्षा वह बातें पढ़ाएँ जो व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में आने वाली समस्याओं को हल करती हों। अन्य बातें संक्षेप में कहानी की तरह पढ़ाई जा सकती हैं। सरकारी व्यवस्था न बन पड़े तो अध्यापक इसे अपना नैतिक कर्तव्य समझकर पूरा करें। यह भी न हो सके तो सार्वजनिक सेवा संगठनों को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि स्कूली समय के उपरान्त कम से कम दो घण्टे की निजी पढ़ाई का ऐसा प्रबन्ध करें, जिससे उपरोक्त विषयों का छात्रों को प्रशिक्षण मिल सके।

शिक्षा का सामान्य स्तर मैट्रिक रहे

स्कूली अध्यापन में इन दिनों जो खामियाँ हैं, उन्हें निकालने का यदि प्रयत्न किया जा सके तो उसकी उपयोगिता में चार चाँद लग सकते हैं।

दैनिक और व्यावहारिक जीवन में काम आने वाले विषयों का समावेश पाठ्यक्रमों में नहीं के बराबर है। विश्वज्ञान, साइंस, भूगोल, इतिहास, रेखागणित, बीजगणित आदि की इतनी मोटी पुस्तकें रखने की अपेक्षा उन्हें कथा, कहानियों के स्तर पर संक्षिप्त किया जा सकता है और उन्हें सामान्य ज्ञान की श्रेणी में रखकर छात्रों और अध्यापकों का श्रम हल्का और समय कम किया जा सकता है। इस बचत का उपयोग उन सन्दर्भों के बढ़ाने में किया जा सकता है, जो दैनिक जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध रखती हैं। डाक, तार, रेल, सेलटैक्स, इन्कमटैक्स, बीमा, पंचायत, वोट, स्वास्थ्य, परिवार जैसे अनेकों प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके शिक्षा की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

महिलाओं का कार्यक्षेत्र आज की परिस्थितियों में पुरुषों से थोड़ा भिन्न है। प्रसव, शिशु-पोषण, आहार, विज्ञान, पारिवारिक व्यवस्था, सिलाई, खिलौने आदि कितने ही विषय ऐसे हैं, जिन्हें सिर्फ ऊँची कक्षाओं की महिलाएँ ही पढ़ सकती हैं। जबकि अपने देश में १६-१८ वर्ष के आगे पढ़ना सम्भव नहीं होगा। ऐसी कन्याओं को परिवार विज्ञान की बातें तो पढ़ने को मिलती नहीं। ऐसे विषय पढ़ने पड़ते हैं, जिनका उपयोग कदाचित ही कभी जीवन में होता हो।

प्राथमिक स्कूल हर गाँव में हों पर जूनियर हाईस्कूल या हाईस्कूल बड़े गाँवों या कस्बों में ही हों। उनके साथ गृह-उद्योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा का विषय अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ हो।

जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी है, जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं, जिन्हें सरकार निश्चित रूप से काम देने का आश्वासन देकर छात्रवृत्ति देती है, उन्हें कॉलेज की पढ़ाई पढ़ने दी जाय। देश के बढ़ते उद्योगों के लिए जिन इन्जीनियर आदि की जितनी आवश्यकता समझी जाय उन्हें स्नातक बनने दिया जाय, विशेषज्ञ बनाया जाय। पर अनुमानतः जिनको नौकरी मिलना कठिन पड़ेगा, उन्हें मैट्रिक स्तर की पढ़ाई पढ़कर अपने पैतृक काम में अथवा अभिरुचि के काम में लगने दिया जाय। ऊँची पढ़ाई पढ़ने में घर की पूँजी स्वाहा कर देने और फिर एकमात्र अवलम्बन सरकारी नौकरी से निराश होने की अपेक्षा यह अच्छा है कि किशोरावस्था पूरी होने तक मैट्रिक स्तर की पढ़ाई पढ़कर अपने कामों में लगने दिया जाय। इसमें उनका श्रम, समय और पैसा बचेगा। साथ ही असफलताजन्य मानसिक आघात भी न लगेगा।

यह स्थिति लाने के लिए अध्यापकों को नये सिरे से वे विषय पढ़ाये जाने चाहिए, जिनकी अब आवश्यकता समझी जा रही है किन्तु जब उन्होंने ट्रेनिंग की थी तब वैसी जानकारी नहीं कराई गई थी। स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन, चरित्रबल का अभिवर्द्धन तथा गृह-उद्योगों का सामान्य ज्ञान, ये तीनों ही विषय ऐसे हैं, जिन्हें पढ़ाने लायक ज्ञान और अनुभव मैट्रिक तक पढ़ाने वाले प्रत्येक अध्यापक को होना चाहिए। यह प्रशिक्षण एक साथ न बन पड़े तो उसे खण्ड-खण्ड में अवकाश निकालकर प्राप्त किया जा सकता है।

मैट्रिक से लेकर स्नातक स्तर की पढ़ाई में भेड़ियाधसान नहीं चलना चाहिए। सरकार को दूरदर्शितापूर्वक विचार करना चाहिए कि अनुमानतः किस कार्य के लिए, किस योग्यता के, कितने छात्रों की आवश्यकता पड़ेगी। भर्ती के समय उतने ही छात्र लेने का प्रावधान रखा जाय। थोड़ा-बहुत अन्तर पड़े तो उससे विग्रह खड़ा नहीं हो सकता जैसा कि आजकल संव्याप्त दीख रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परीक्षा प्रणाली बदली जाय

भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में अब तक डाकघर और स्कूल इससे बचे हुए समझे जाते थे पर इस बीमारी ने शिक्षा के क्षेत्र में धीरे-धीरे कदम आगे बढ़ाते हुए उसे मजबूती से जमा लिया है।

कायदे से निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में से छात्रों को सभी अध्ययन करना चाहिए पर वे गैस पेपर और कुन्जियों के माध्यम से यह अनुमान लगा लेते हैं कि प्रश्न-पत्र इन विषयों में से किसी के आवेंगे। वे उतना ही पड़ते हैं और शेष को छोड़ देते हैं। जहाँ-तहाँ से छुट-पुट बातें याद कर लेने से परीक्षा में उत्तीर्ण होने लायक नम्बर आ जाते हैं और वे बिना उपयुक्त परिश्रम किए इस तीर-तुक्के के सहारे पास हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त वार्षिक परीक्षा पद्धति अपने आप में ऐसी है, जिसमें अवांछनीयता की पूरी गुंजाइश चल पड़ी है। एक-दूसरे की नकल करने और निरीक्षक द्वारा मुँह फेर लेने या देखते, हँसते रहने का प्रचलन अब सर्वविदित हो गया है। जो रोकते हैं उन्हें छुरे दिखाए जाते हैं और हॉकी से सिर फोड़ देने का, कट्टे दिखाकर कचूमर निकाल देने का डर दिखाया जाता है। बहुत-से इतने में ही डर जाते हैं। बाकी को प्रलोभन देकर काबू में कर लिया जाता है। एक स्थान पर दूसरे का पर्चा लिख आने पर पर्चे जाँचने वालों का पता लगाकर भी अपनी तिकड़में भिड़ा लेने, नकली मार्कशीटें प्राप्त कर लेने जैसे गोरखधन्धे अब किसी से छिपे नहीं रह गए हैं। जो सिद्धान्तवाद की बातें करते हैं, वे हर तरह नुकसान उठाते हैं। कितनी ही जगहों पर मास्टरों को ट्यूशन के लिए घर पर बुलाया जाता है और उनसे हर कीमत पर पास होने का आश्वासन ले लिया जाता है। इस धन्धे में चालाक छात्र और चालाक मास्टर नफे में रहते हैं। जो यह सब नहीं कर पाते उन्हें सही मार्ग पर चलने का गलत दण्ड मिलता है।

रोकथाम के अनेक सुझाव आते हैं। पर विजय चालाकी की ही होती है। इसका परिणाम यह होता है कि अयोग्य छात्र अपनी योग्यता प्रमाण-पत्र के आधार पर सिद्ध करके ऊँचे ओहदे प्राप्त कर लेते हैं। पर जब काम की दक्षता का प्रश्न आता है तो बगलें झाँकते हैं। जिन्होंने पढ़ने में परिश्रम नहीं किया है, वे अवसर आने पर अयोग्य ही साबित होते हैं और सौंपे गए कामों को अयोग्यता के कारण बिगाड़कर रख देते हैं। पदोन्नति के समय ऐसे ही लोगों में से अधिकांश अपने साथ अत्याचार होने की बात कहते सुने गए हैं।

शिक्षा क्षेत्र में फैली इन दुष्प्रवृत्तियों को किस प्रकार घटाया या मिटाया जाय ? इसके अनेक उपाय सोचने पर वर्तमान प्रचलन के रहते सुधार के कोई तरीके समझ में नहीं आते। परम्परा इतनी बिगड़ गई है कि उसके लिए नये ढंग से नया ही कुछ सोचना पड़ेगा।

एक उपाय सूझता है कि अन्य देशों की तरह परीक्षा पद्धति ही बदल दी जाय। साप्ताहिक या मासिक कार्य के अनुरूप योग्यता की लिस्ट बनती रहे। जाँच करने वाले अन्यत्र के लोग हों ताकि आपस में तालमेल बिठाकर गड़बड़ी की सम्भावना न रहे। यह अंक साल भर बाद जोड़कर उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होने का निष्कर्ष निकाला जाए।

एक साल बेकार जाने की हानि से भावुक विद्यार्थी तिलमिला जाते हैं। वे या तो शर्म से पढ़ाई छोड़ बैठते हैं या आत्महत्या जैसी कोई दुर्घटना कर बैठते हैं। मन टूट जाना भी एक प्रकार से प्रगति के पथ में भारी विघ्न खड़ा करने वाली अकाल मृत्यु ही है। इस घाटे को ध्यान में रखते हुए घर के लोग भी बचत की किसी तरकीब में सम्मिलित होते देखे गए हैं। एक वर्ष का समय और फीस, भोजन आदि का खर्च इस महँगाई के जमाने में कितने भारी पड़ते हैं, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं।

होना यह चाहिए यदि कोई किसी विषय में फेल हुआ है तो एक-दो मास की तैयारी के बाद उस कमी को पूरा करने का अवसर दिया जाय ताकि उसका एक वर्ष का समय खराब न जाने पाए। पच्चीस वर्ष की आयु होने पर नौकरी भी नहीं मिलती। उस दृष्टि से उन दिनों का एक साल खराब होना भविष्य के लिए एक नई विपत्ति लेकर सामने आता है।

हमारा पूरा और पक्का विश्वास है कि आज नहीं तो कल चरित्र गठन, स्वास्थ्य-सम्वर्द्धन और स्वावलम्बन की शिक्षा प्रस्तुत प्रणाली में सम्मिलित करनी पड़ेगी। आज के विशेषज्ञ अपने अहंकार में जो भी निर्णय करें, उनकी इच्छा। पर वह दिन दूर नहीं जब व्यावहारिकता-सूत्र संचालकों को विवश करेगी और उन्हें बेकार शिक्षितों के आक्रोश से बचने के लिए वही करना पड़ेगा, जिसका इन पंक्तियों में संकेत किया गया है।

उन विषयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो जाने के बाद लेखन के विषय कम रह जायेंगे। देखभाल और पूछताछ काम की, योग्यता की, प्रतिभा की होगी यह सब मौखिक होगा। लेखन के लिए सम्भवत: तिहाई-चौथाई विषय ही रह जाएँगे। ऐसी दशा में नकल करने और कराने का धन्धा सहज ही निरस्त हो जायेगा। छात्र भी नई दृष्टि से सोचेंगे कि अब उन्हें निजी काम करना है तो वह धाँधली नहीं चलेगी, जो इन दिनों अयोग्यों को भी योग्य बना देती है। इस दिशा में उपयुक्त यही है कि जो काम सीखना है, उसे पूरा ही सीख लिया जाय अन्यथा तीर-तुक्का चलाने के अभाव में पश्चाताप ही करना पड़ेगा। आज जो डिग्रियों का मूल्य है, भविष्य में वह न रहेगा। ऐसी दशा में उनके लिए रिश्वत देने-लेने और डराने-धमकाने का कोई प्रयोजन भी न रह जाएगा। एक वर्ष रुककर भी यदि योग्यता पूरी होती है तो लोग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे पूरा करना पसन्द करेंगे। अन्यथा खोटे सिक्के की तरह जहाँ भी जाया जाएगा, ठोकर खाने और उपहास सहने की प्रताड़ना सहनी पड़ेगी।

डिग्री की कीमत पर अफसरी का लालच ही उन सभी भ्रष्टाचारों की जड़ है, जो देखते-देखते अयोग्यों को योग्य बना देते हैं। यहाँ नियुक्ति करने वाले भी अपनी गोटी लाल करने में नहीं चूकते।

इस नीचे ऊपर तक फैले हुए अनाचार का अन्त करने का उपाय एक ही है कि अफसरी की ऊँची परीक्षाएँ ऐसे कड़े माध्यमों से ली जाएँ, जिससे रिश्वत की गुंजाइश कम से कम रहे। पब्लिक सर्विस कमीशन जैसी संस्थाओं से निरीक्षक-परीक्षक ऊँचे स्तर के लोग होते हैं, उन्हें अपनी प्रतिष्ठा और बदनामी का ध्यान रहता है। इसलिए वहाँ तक रिश्वतें या सिफारिशें पहुँचाने की आशा नहीं के बराबर ही रहती है।

छोटी डिग्रियाँ जब साक्षर और प्रमाणित नागरिक होने मात्र का प्रमाण रह जाएँगी और वे कोई ऊँची या आमदनी वाली जगह न दिला सकेंगी, तो सहज ही आकर्षण घटेगा, अधिक लोग शामिल होंगे, तब गलत तरीका अपनाना उतना सरल न रहेगा जितना अब है।

शिक्षा से जुड़ी कुछ उलझी समस्याएँ और उनके समाधान

दो बैल मिलकर एक हल को ठीक तरह चला पाते हैं। दो पहियों पर गाड़ी चलती है। दो हाथ मिलकर काम करते हैं और दो पैर पारस्परिक सहयोग से लम्बी यात्रा पूरी करते हैं। शिक्षा के बारे में भी यही होना चाहिए। इन दिनों उसका समूचा भार सरकार के कन्धों पर है। वह यथासम्भव स्कूल खोलती और चलाती है। उनमें अधिकतर छोटी आयु के बच्चे ही पढ़ते हैं। किशोरावस्था में पहुँचते-पहुँचते परिवार यह आशा करता है कि किसी योग्य हुआ बालक घर के कामों में हाथ बँटाने लगे। कुछ कमाने लगे।

भारत देहात प्रधान है। उसकी जनता छोटे देहातों में बसती है। इसमें कस्बों और शहरों की तुलना में गरीबी भी अधिक है और अशिक्षा का बाहुल्य भी। ऐसा उत्साहवर्धक वातावरण नहीं है, जिसमें एक को देखकर दूसरा शिक्षित बनने के लिए उत्साह प्राप्त कर सके। फिर हर गाँव में स्कूल भी कहाँ हैं ? बहुत हुआ तो प्राथमिक पाठशाला भर की व्यवस्था हो पाती है। इससे आगे पढ़ने के लिए दूर गाँवों में जाना पड़ता है। बीच में पड़ने वाले सुनसान को पार करते हुए आते-जाते समय बच्चे डर अनुभव करते हैं और उस हेतु अनिच्छा प्रकट करते हैं, बहाने बनाते हैं। उधर अभिभावकों को भी अपने परम्परागत व्यवसाय को चलाने के लिए सहायक की आवश्यकता अनुभव होती है। दोनों की मर्जी मिलने पर पढ़ाई छोड़ देने की बात बन जाती है। सोचा जाता है कि कॉलेज तक पढ़ाने का खर्च पुज नहीं पाएगा। ऐसी दशा में अच्छी नौकरी मिलेगी नहीं। जगह-जगह ट्रांसफर होते रहने पर छोटी नौकरी वालों को जो असुविधा उठानी पड़ती है, घर छूटता है, उसकी तुलना में यही अच्छा लगता है कि चिट्ठी-पत्री पढ़-लिख लेने जितना सीख लेने के उपरान्त पढ़ाई बन्द कर दी जाय। लड़कियों के बारे में इससे भी अधिक उपेक्षा बरती जाती है और सोचा जाता है कि जब उन्हें घर-गृहस्थी की सीमा में ही जिन्दगी काटनी है तो निरर्थक शिक्षा क्यों प्राप्त करें ? माँ-भावज का हाथ क्यों न बँटाएँ ?

यह अपने देश के अधिकांश लोगों का चिन्तन है। इसके कारण शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने बच्चों को प्रेरित करने में अभिभावक भी अधिक उत्साह नहीं दिखाते। स्कूलों की कमी और छात्र अभिभावकों की उपेक्षा से उच्च शिक्षा प्राप्त करने का वातावरण भी नहीं बन पाता। फिर सरकारी बजट की भी एक सीमा है। वह सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से पढ़ने के लिए बाधित करने पर जो खर्च बढ़ता है उसे जुटाने की स्थिति में ही नहीं है। पढ़ने वालों की उपेक्षा और पढ़ाने वालों की असमर्थता दोनों मिलकर स्थिति ऐसी बन जाती है कि राष्ट्र को सुशिक्षित बनाने की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। गाड़ी दलदल में फँसकर रह जाती है।

घर का काम छोड़कर पूरी तरह पढ़ाई में लगना अपने देश की दरिद्रता को देखते हुए अति कठिन है। मात्र खाते-पीते लोग ही बच्चे को अधिक पढ़ाने की बात सोचते हैं। उन्हें भी यह आशंका बनी रहती है कि ऊँची पढ़ाई में इतना पैसा खर्चने और समय लगाने के बाद भी यदि बच्चे को अच्छी नौकरी न मिली तो उसके लिए जो समय और धन लग गया उसकी भरपाई कैसे होगी ? फिर बहुत दिनों तक पढ़ाना सरल भी कहाँ है? हर गाँव में प्राथमिक कक्षा के उपरान्त आगे की पढ़ाई-पढ़ाने की व्यवस्था भी कहाँ है ? दूर गाँव से आने-जाने या बोर्डिंग में रखकर पढ़ाने का भार किसी प्रकार उठाया भी जाय, तो उसे पूरा करने पर वह एकमात्र नौकरी तलाशने की फिराक में फिरता है। हर किसी को नौकरी कैसे मिले ? इतनी जगहें कहाँ से आएँ ? दूर-दराज नौकरी करने जाय तो कस्बे-शहरों में मकान किराए ही इतने महँगे हैं कि वेतन का आधा-तिहाई तो उसी में चला जाता है, इसके अतिरिक्त घिचपिच के वातावरण में और भी कितनी ही कठिनाइयाँ हैं ? जिन्हें देखते हुए सोचा जाता है कि पैतृक व्यवसाय को अपनाए रहकर गुजारा करना ही ठीक है। उसमें अधिक शिक्षा की आवश्यकता भी नहीं है।

यह हुई वे कठिनाइयाँ जो अपने देश में शिक्षा विस्तार की समस्या का समाधान नहीं होने देतीं। इतने पर भी तथ्य अपनी जगह जहाँ के तहाँ अड़े हैं। अशिक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और दरिद्रता दोनों अविच्छिन रूप से सम्बन्धित हैं। बौद्धिक दरिद्रता आर्थिक दरिद्रता को भी साथ रखे रहती है। जब तक मानसिक दृष्टि से विकसित नहीं हुआ जाय तब तक बहुमुखी पिछड़ेपन से नहीं जूझा जा सकता। सीमित सम्पर्क से तो नगण्य जितनी जानकारियाँ ही मिल पाती हैं और उनसे दैनिक जीवन की गाड़ी ही जिस-तिस प्रकार धकेली जा सकती है। प्रगति की दिशा में एक कदम बढ़ाते ही सर्वप्रथम विकसित जानकारी की, बुद्धिमत्ता और बहुज्ञता की आवश्यकता पड़ती है। इसे जुटाने में शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता समझी जाती है। मात्र आर्थिक उन्नति के लिए ही नहीं, व्यक्तित्व को सभ्य, सुव्यवस्थित एवं प्रगतिशील बनाने के लिए उसके बिना काम ही नहीं चलता। अनपढ़ व्यक्ति कूपमंडूक की तरह अनगढ़, पिछड़ेपन में फँसा रहता है। वह समुन्नत क्षेत्रों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए सभ्य ढंग से वार्तालाप तक नहीं कर पाता। फिर उनके साथ सम्पर्क सधे तो कैसे ? उसे अपनी पिछड़ी बिरादारी में ही किसी प्रकार गई-गुजरी स्थिति में गुजारा करना पड़ता है। यह दुःखद और दयनीय स्थिति है। इसके कारण न तो व्यक्तित्व का विकास बन पड़ता है और न बहुज्ञता का सम्पादन। न ही अभिनव जागरण के अभाव में आर्थिक प्रगति से लेकर शरीर, परिवार, समाज को उत्कर्ष के मार्ग पर चला सकना सम्भव होता है।

वस्तुस्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि गरीबी हटाओ की बात सोचने के साथ ही हमें यह भी निश्चय करना चाहिए कि 'शिक्षा बढ़ाओ।' गरीबी और अशिक्षा एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। प्रगति होनी है तो दोनों की एक साथ होगी। किन्तु साथ ही इस मार्ग के अनेकानेक अवरोधों को भी ध्यान में रखना होगा। इस संदर्भ में सबसे बड़ी बात यह है कि मात्र बच्चों को ही शिक्षित बनाने की बात सोचते रहने से काम चलने वाला नहीं है। वे तो पूरी आबादी का मात्र दसवाँ भाग होते हैं। शेष ९० प्रतिशत वे हैं जो वयस्क हो चुके हैं। काम-धन्धे में लग चुके हैं। उन्हें न पढ़ने का अवकाश है, न उत्साह। इतने पर भी यह समाधान तो किसी प्रकार करना ही होगा। शिक्षा का वर्तमान अभाव मनुष्य में ही बना रहे, यह सहन नहीं किया जा सकता। शरीर के लिए जितनी आवश्यकता भोजन की, उतनी ही मन-मस्तिष्क के, व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा की। इतने पर भी गुत्थी उलझी की उलझी ही रह जाती है। उत्साह की, साधनों की कमी इस दिशा में प्रमुख बाधा है। फिर उस उपयोगिता की भी बात सोचनी पड़ेगी जो स्कूली शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी पूरी नहीं हो पाती। व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक पक्ष हैं, जिन्हें वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनदेखा ही कर दिया गया है।

नौकरी न मिलने पर शिक्षित युवक क्या करें ? इसके लिए शिल्प उद्योगों का—कृषि एवं पशुपालन का, ग्राम उद्योगों का समर्थ विकल्प शिक्षा के साथ जुड़ा रहना चाहिए था पर उस हेतु जहाँ-तहाँ लँगड़े-लूले ढाँचे ही खड़े हैं। जिन्हें चिह्न पूजा भर कहा जा सकता है। होना यह चाहिए कि यह विषय अनिवार्य अंग बनकर रहे। उसके लिए गाँधीजी की बुनियादी तालीम योजना से प्रकाश लिया जाय, जिसमें छात्रों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने की बात सोची गई।

विज्ञान, कला, भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों के सुविस्तृत कोर्स रटने की अपेक्षा यह अधिक आवश्यक है कि हर व्यक्ति शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य संरक्षण के आवश्यक पक्षों को विस्तारपूर्वक समझे। इस आधार पर अपने और अपने परिवार की स्वास्थ्य रक्षा के आधार समझ और समझा सके। मानसिक दृष्टि से अधिकांश व्यक्ति अनगढ़, पूर्व मान्यताओं से ग्रसित होते हैं। शिष्टता, नागरिकता और सामाजिकता के हर पक्ष को गम्भीरतापूर्वक न समझ पाने के कारण उनकी स्थिति अविकसित मानस वालों जैसी बनी रहती है। चिन्तन और व्यवहार में ऐसे तत्त्व भरे रहते हैं, जिनके कारण स्थिति अर्धविक्षिप्तों जैसी, गँवार अनगढ़ों, सनकियों जैसी बनी रहती है। इस कमी को शिक्षा के साथ ही पूरा किया जाना चाहिए। मानसिक सन्तुलन, सही चिन्तन और मनोविकारों से बच निकलने के लिए व्यक्ति को शिक्षित होना ही चाहिए।

परिवार बनाकर लोग रहते तो हैं पर यह नहीं जानते कि उस समुदाय में गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता कैसे बनाई और बढ़ाई जाय ? परिवार की बहुमुखी स्थिति और प्रगति बनाए रहने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? मनुष्य सामुदायिक प्राणी है। समाज से प्रभाव ग्रहण भी करता है और उस पर छाप भी छोड़ता है। इसलिए समाज सम्पर्क में इस तथ्य को ध्यान में रखकर चलने की आवश्यकता है कि वातावरण में भरी हुई दुष्प्रवृत्तियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्द्धन साथ-साथ चलता रहे। पुस्तकीय अर्थशास्त्र अलग है और व्यावहारिक जीवन में अर्थ-सन्तुलन बनाए रखने वाला सुव्यवस्था क्रम अलग। हमारी शिक्षा में इन विषयों का विस्तृत स्थान अनिवार्य रूप से मिलना चाहिए। नारी विकास, शिशुपालन, शिक्षा चयन, सहकार, स्वच्छता, शिष्टाचार जैसे विषय हमारी शिक्षा प्रणाली में इस प्रकार गुँथे हुए हों कि शिक्षित व्यक्ति का व्यावहारिक ज्ञान ऐसा हो कि वह सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में उपलब्ध शिक्षा के आधार पर सुखी-समुन्नत बन सके।

प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता इतनी बड़ी है, जिसे बाल शिक्षा की तुलना में अनेक गुनी विशद् समझा जा सकता है। जीवन विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान भी इससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम विस्तृत और महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन दोनों के लिए देशव्यापी समाधान हेतु उससे कहीं अधिक साधन जुटाने की आवश्यकता है जितने कि सरकार द्वारा स्थापित स्कूलों में लगते हैं।

आवश्यकताओं की महत्ता और अनिवार्यता को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि जन सहयोग से एक स्वतन्त्र शिक्षण तन्त्र खड़ा किया जाय। जो उन आवश्यकताओं की पूर्ति करे, जो सरकारी पाठ्यक्रम से छूटे हुए हैं या चुन्च प्रवेश मात्र जितने हैं। यह समानान्तर तन्त्र अपना स्वतन्त्र पाठ्यक्रम बनाएँ और कक्षाएँ ऐसे समय लगाएँ, जिससे कि कार्य व्यस्त लोग अपनी सुविधानुसार सम्मिलित होते रहें। इस वयस्क शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान का समावेश समझा जा सकता है। इसकी सम्भावनाएँ भी बड़ी हैं और साथ ही साधनों की आवश्यकता भी।

हमारा हर काम सरकार पर अवलम्बित नहीं है। भोजन, वस्त्र, व्यवसाय, विवाह-शादी, परिचर्या आदि अपनी सूझ-बूझ और साधनों से करते हैं। पारस्परिक व्यवहार की नीति और प्रथा-परम्पराओं को अपनाने में भी हमें अपने निजी साधन ही लगाने पड़ते हैं। सरकार उन्के लिए कोई दायित्व नहीं उठाती। इसी प्रकार यह भी सोचे जाने की आवश्यकता है कि समग्र शिक्षा के जो पक्ष छूटे हुए हैं, उन्हें पूरा करने के लिए प्रशिक्षण का एक समर्थ ढाँचा जनसहयोग से खड़ा किया जाय और उसे समर्थ तत्परता के साथ गतिशील एवं सफल बनाया जाय।

शिक्षा एवं संस्कृति का उद्देश्य

भारत आज स्वाधीन है, किन्तु बहुत दिनों बाद मिली हुई स्वाधीनता अपने साथ समस्याओं के काले बादल भी लाई है। राजनीति के क्षेत्र में हम अल्पज्ञ हैं, शासन-भार सँभालने की हममें क्षमता नहीं, राष्ट्र की उत्पादन शक्ति क्षीण है, समुचित यातायात के साधन उपलब्ध नहीं हैं, सत्संग-सदाचार एवं सत्यनिष्ठा का पथ हमें दृष्टिगत नहीं होता, हम मानवता को तिलांजिल देकर दानवता के पैर पकड़े हुए हैं— इन आपदाओं से हमारा छुटकारा कैसे हो ? यही प्रश्न आज हमारे सामने है। बिना इसे शीघ्र सुलझाए हमारा कल्याण नहीं, हमारे देश का कल्याण नहीं और इस सुलझाव का सीधा मार्ग है हमारी शिक्षा एवं संस्कृति का पुनरुत्थान—हमारे विश्व विद्यालयों की क्रियात्मक जागरूकता और प्राचीन आदर्शमय शिक्षा-पद्धतियों का वैज्ञानिक अनुसरण ।

हमारी सतत् कामना है कि हमारा नवजागरण अक्षुण्ण रहे, निरन्तर गतिशील रहे, किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि हमारे विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दें, उन्हें इस प्रकार आदर्श नागरिकता के साँचे में ढालें कि वे राष्ट्र के नवजागरण को स्थायी बनाए रखने में समर्थ हों। आज हमें वे विद्वान और कलाकार नहीं चाहिए, जो ब्रिटिश सत्तावाद की जड़ के पोषक थे, आज तो हमें ऐसे जीवट के आदमी चाहिए, जो राष्ट्र की सूखी नसों में नये रुधिर का संचार कर सकें और कंकाल को पुनः युवक बनाकर राष्ट्र के द्वार पर खड़ा कर दें।

भारत विश्व-भर का महान पथप्रदर्शक रह चुका है। कालान्तर में यदि कुछ दिन के लिए उसने अपना अधिकार खो दिया तो क्या हुआ ! वह पुनः शक्तिशाली हो गया है और अपने खोए हुए अधिकार को फिर प्राप्त करेगा।

शिक्षा कला है। हमारे जीवन की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के विभिन्न विषय शिक्षा के अन्तर्गत ही आते हैं। इन विषयों का समुचित संगठन और प्रतिपादन ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। इनकी सम्पूर्णता ही जीवन की सम्पूर्णता है। हमारे प्राचीन आश्रम, गुरुकुल तथा विद्यापीठ इसी सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए अपनी साधन में तत्पर रहते थे। हमारे आज के विश्वविद्यालयों को आश्रमों की शिक्षा पद्धति ही अपनानी चाहिए। आज के आचार्य को केवल शिक्षा ही नहीं देनी है, उसे यह भी देखना है कि उसका विद्यार्थी उसका शिष्य संयमी, साहसी और गौरवशाली बनता है या नहीं ? इसी प्रकार आज के विद्यार्थी को अपनी कक्षा में केवल उपस्थित ही नहीं रहना है, केवल परीक्षा ही नहीं पास करनी है, धरने, हड़तालें ही नहीं करनी हैं, बल्कि उसे जीवन निर्माण की शिक्षा में पारंगत होना है, आत्मोन्नति की कला सीखनी है और अपने में जिज्ञासा की प्रवृत्ति जागृत करनी है।

सभी को विदित है कि पश्चिमी शिक्षा ने भारतीय शिक्षा पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। हमें इस विनाशकारी प्रभाव से बचना है। पश्चिमी शिक्षा भौतिकवाद की नींव पर आश्रित है और पश्चिम को दिखावे और तड़क-भड़क में ही सच्चे जीवन का आनन्द प्राप्त होता है। उसके लिए गृहस्थाश्रम की पवित्र भावना का कोई मूल्य नहीं। बात-बात पर तलाक की धमकी वह अपनी स्वाधीन प्रवृत्ति का शुभ लक्षण समझता है। नैतिक उच्चता उसके लिए अव्यावहारिक और निरर्थक है। आए दिनों की हत्याएँ, लूटमार, अनाचार आदि उसके लिए साधारण बातें हैं। ऐसी सभ्यता को लेकर क्या भारतवर्ष पनप सकता है ? उसे लोकतंत्र में विश्वास है। लोकतन्त्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नागरिक ही उसे अपेक्षित हैं। अतः आज के विद्यार्थी को अपने शिक्षाकाल में ही नागरिकता के समस्त गुणों को आत्मसात कर लेना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि उसे नियत समय तक सांस्कृतिक उत्थान-पतन की शिक्षा दी जाए। साथ ही राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि विश्वविद्यालय शुद्ध वैज्ञानिक और यांत्रिक शिक्षा का भी उत्तम प्रबन्ध करें। राष्ट्रीय उत्थान के लिऐ ये विषय नितांत आवश्यक हैं। हाँ, इस सम्बन्ध में पश्चिम का अंधानुकरण करना उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्यार्थियों को आरम्भ में सभ्यता और संस्कृत की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे जीवन की पूर्णता की प्राप्ति ही अपनी साधना, अपना तप बना लें। ऐसी निर्माण-शिक्षा विद्यार्थी को अपने जीवन-निर्माण में बड़ी सहायक होगी।

आज का विद्यार्थी विश्वविद्यालय से उपाधि लेकर निकलता तो है, पर अपने को अपूर्ण, अयोग्य और दु:खी पाता है। उसे विश्वविद्यालय से यही मिलता है। जीवन में उसके लिए रस नहीं। इसीलिए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को तीन प्रकार की शिक्षा दे—

(१) मन की एकाग्रता, विवेचन शक्ति और संयम का पालन करना।

(२) तमाम निजी शक्तियों और कार्य को परस्पर सहयोगी बनाना और

(३) मनन की हुई सामग्री को व्यक्त करना।

विद्यार्थी इन तीनों गुणों को व्यवहार में ला सकता है, यदि उसे राष्ट्र निर्माताओं का जीवनी साहित्य पढ़ाया जाए।

यह निर्विवाद है कि विद्यार्थी पर वातावरण का, निजी रुचि का और वंशगत भावनाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है। मातृभूमि का और उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, किन्तु सबसे बड़ा प्रभाव तो उस संस्कृति का पड़ता है, जिसके प्रकाश में विद्यार्थी का लालन-पालन हुआ है। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता है कि अपनी संस्कृति का अध्ययन करने, उसे व्यक्त करने और अपने जीवन में उसी का अनुसरण करने का उसका उद्देश्य हो।

यहाँ सभ्यता और संस्कृति का अन्तर स्पष्ट कर देना जरूरी है। दोनों में अन्तर है। संस्कृति अक्षुण्ण होती है, सभ्यता में परिवर्तन होता रहता है। सभ्यता जीवनयापन के मार्ग को सरल और सुखदायक बनाने में सहायक और भौतिकता का पुट लिए होती है, संस्कृति युगान्तरकारी इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों का सार होती है। हम भगवान रामचन्द्र से सभ्यता के क्षेत्र में आगे हैं; क्योंकि हम वायुयान द्वारा यात्रा करते हैं, जबकि वे पैदल या नावों द्वारा ही चलते थे। परन्तु क्या हम सत्य बोलने में, आदर्शमय जीवन बिताने में, चरित्र-गठन की पटुता में एवं मानवीय भावनाओं का सुन्दर सामंजस्य करने में उनसे आगे हैं ? ऐसा बिरला ही साहसी व्यक्ति होगा जो कहे कि हाँ, हम संस्कृति में रामचन्द्र युग से आगे बढ़े हैं, हमने प्रगति की है।

प्रख्यात वैज्ञानिक यदि बुरा पति है तो वह शिक्षित नहीं, ख्यातिनामा वकील यदि श्रेष्ठ नागरिक नहीं तो वह सुशिक्षित नहीं और स्वदेश प्रेमी यदि नैतिक पतन के गड्ढे में गिर गया है, तो वह भी शिक्षित नहीं कहा जा सकता। विद्यार्थियों के लिए दो बातें बड़ी आवश्यक हैं। प्रथम तो यह कि वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं विचारधारा को पुष्ट बनाए, विचार करे और उसे प्रकाश में लाए तथा उसका लक्ष्य यह हो कि उसी उद्देश्य की पूर्ति में वह अपना जीवन खपा दे। दूसरा यह कि वह ऐसी शिक्षा प्राप्त करे, जो उसे स्वयं को आगे बढ़ाने में सहायक हो और जिसकी सहायता से वह अपने जीवन की पूर्णता प्राप्त कर सके।

हमारे विद्यालयों को चाहिए कि वे विद्यार्थी के जीवन की सर्वांगीण उन्नति की ओर तो देखें ही, साथ ही उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के एकीकरण की ओर भी उनका ध्यान जाना परमावश्यक है।

अँग्रेजी की अनिवार्यता हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरुद्ध है

आज देश में प्रतिवर्ष परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की प्रतिशत संख्या बढ़ती जा रही है। हर वर्ष हजारों, लाखों छात्रों का वर्ष और अभिभावकों का पैसा खराब हो रहा है। शिक्षा के सम्बन्ध में यह लक्षण अच्छा नहीं है।

विद्यार्थियों की इस बढ़ती हुई असफलता का कारण खोजने वालों का कहना है कि छात्रों के अनुत्तीर्ण होने का सबसे बड़ा कारण अँग्रेजी भाषा का अनिवार्य होना है। अधिकतर विद्यार्थी अँग्रेजी में ही फेल होते हैं।

विद्यार्थियों के अँग्रेजी में फेल होने के अनेक कारण हैं। अँग्रेजी भारतीयों के लिए अस्वाभाविक भाषा है। भारत की हिन्दी तथा अन्य भाषाएँ संस्कृत से जन्म लेने के कारण पूरी तरह से पूर्ण एवं वैज्ञानिक हैं। सही तथा सच्ची भाषा के अभ्यस्त भारतीय विद्यार्थी अपूर्ण एवं अवैज्ञानिक भाषा अँग्रेजी को सरलतापूर्वक ग्रहण नहीं कर पाते। वह उनके स्वभाव के प्रतिकूल, दुरूह तथा अग्राह्य पड़ती है। इसी कारण से उनमें अँग्रेजी के प्रति सच्ची अभिरुचि उत्पन्न नहीं होती। अनिवार्य विषय के नाते वे उसे पढ़ते तो हैं किन्तु अनिच्छापूर्वक। फलस्वरूप उसमें अनुत्तीर्ण होकर समय एवं धन की हानि उठाते हैं।

देश की तरुण पीढ़ी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक राष्ट्रीय गौरव की झलक आती-जाती है। विदेशी भाषा होने के कारण उनके प्रति स्वाभाविक श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो पाती। अँग्रेजी पढ़ते समय उनके गुप्त मन में यह भावना अवश्य रहती है कि उन्हें एक विदेशी भाषा जबरदस्ती पढ़ाई जाती है—वह भाषा जो अँग्रेजों की मानसिक दासता की प्रतीक है। इस आत्मग्लानि के कारण भी अँग्रेजी से उनकी भावनाओं का सामंजस्य नहीं हो पाता। निदान बेमन पढ़ने के कारण विद्यार्थी अँग्रेजी में फेल होते रहते हैं।

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं तक अँग्रेजी विषय भी हिन्दी के माध्यम से ही पढ़ाया जाता है। निदान अँग्रेजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में कोई विशेष योग्यता न पा सकने के कारण उनके लिये जीवन में अँग्रेजी की कोई उपयोगिता सिद्ध नहीं होती। इसलिए अँग्रेजी उनके लिए शिक्षा-काल में एक निरर्थक किन्तु अनिवार्य बोझ बनी रहती है और इसी कारण वे उसमें फेल होते रहते हैं।

अँग्रेजी की अनिवार्यता के कारण फेल होने के डर से किशोर शिक्षा की ओर से उदासीन होने लगते हैं। अँग्रेजी की नैय्या पार लगाने की चिन्ता में अधिक समय देने के कारण उनके अन्य विषय कमजोर रह जाते हैं। जिससे बहुत-से विद्यार्थी तो अनेक विषयों में अनुत्तीर्ण हो जाया करते हैं। इस असफलता का छात्रों के उत्साह पर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है, अभिभावक भी धन की व्यर्थता के कारण बच्चों को शिक्षा दिलाने में संकोच करने लगते हैं। इससे समग्र देश की शैक्षणिक आवश्यकता पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। ऐसी दशा में उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं तक अँग्रेजी की अनिवार्यता का कोई महत्त्व समझ में नहीं आता।

अँग्रेजी रखी जाए किन्तु अनिवार्य न की जाए तब भी असफल छात्रों की संख्या में घटोत्तरी हो सकती है, जिन्हें रुचिकर हो अथवा जो छात्र उसे सीख सकने का साहस रखें, वही अँग्रेजी लें और अपनी रुचि के अनुसार उसमें प्रयत्न करके पास होते रहें। इससे अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की प्रतिशत संख्या तो घटे ही, साथ ही शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत-से छात्रों तथा अभिभावकों की हिम्मत भी न टूटे ! अँग्रेजी के कारण अनेक साल फेल होकर और बीच से ही पढ़ाई छोड़कर जो युवक अपनी जिन्दगी खराब कर लेते हैं, वे अँग्रेजी को ऐच्छिक विषय बना दिए जाने पर इस अभिशाप से बच जाएँ।

मुख्य अथवा मातृभाषा के साथ अन्य भाषाएँ सीखना योग्यता के लिये आवश्यक हो सकता है। किन्तु क्या जरूरी है कि वह अन्य भाषा-विदेशी ही हो। भारत में १४ साहित्य सम्पन्न भाषाएँ हैं। उनमें से किसी एक को इच्छानुसार अनिवार्य कर दिया जाये। इससे छात्रों की योग्यता तो बढ़ेगी ही, साथ ही प्रान्तीयता का विष भी दूर होगा और यदि संस्कृत को ही पूरे देश में दूसरी भाषा के रूप में अनिवार्य कर दिया जाए, तब तो देश की एकता चट्टान की तरह सुदृढ़ हो जाये। भारतीय धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति की आश्चर्यजनक वृद्धि होने लगे।

यदि किसी विदेशी भाषा का सीखा जाना ही आवश्यक समझा जाये तो यूरोप के देश इंग्लैण्ड की भाषा अँग्रेजी को ही क्यों अनिवार्य किया जाए। क्यों न किसी पड़ौसी देश जर्मन, फ्रेंच, लेनिन, अरबी, रशियन, चीनी, जापानी आदि की भाषा ही अनिवार्य की जाये। इससे पड़ौसी देशों को एक-दूसरे के नजदीक आने और ठीक प्रकार से समझने में सहायता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त सीधी-सच्ची बात यह है कि अपने यहाँ उसी देश की भाषा अनिवार्य की जानी चाहिए, जो देश हमारी भाषा को भी अपने यहाँ अनिवार्य करे। अँग्रेजी को भारत की शिक्षा व्यवस्था में अनिवार्य करने से लाभ तो कुछ नहीं है, उल्टी हानि ही हानि है।

अँग्रेजों की राजनैतिक गुलामी से मुक्ति मिल जाने पर भी अँग्रेजी का पुछल्ला भारतीयों को मानसिक गुलामी से मुक्त नहीं होने दे रहा है। अँग्रेजी के कारण भारतीयों के मस्तिष्क में अँग्रेजों की महत्ता एवं श्रेष्ठता अभी तक घर किए हुए है। जिससे हमारी राजनीति पर परोक्ष रूप से अँग्रेजों का प्रभाव बना हुआ है। अँग्रेजी पढ़ाने के कारण भारतीयों के सोचने का ढंग अँग्रेजों के अनुरूप ही रहता है। उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव हमारे हृदयों पर पड़ता है। अँग्रेजी के कारण अँग्रेज अन्यों की अपेक्षा अधिक निकट तथा मित्रों जैसे अनुभव होते हैं। उनके प्रति अधिक विश्वास एवं सहानुभूति बनी रहती है, जिसका चतुर अँग्रेज प्रत्यक्ष एवं परोक्ष किसी न किसी रूप में लाभ उठा ही ले जाते हैं।

सच पूछा जाये तो अँग्रेजों की महत्ता संसार में खत्म हो गई है। कोई भी स्वाधीन देश उन्हें अब श्रेष्ठ नही मानता। न उनकी राजनीति से प्रेरणा ही लेता है। भारत ही एक ऐसा देश है, जो उनको उनकी भाषा के माध्यम से श्रेष्ठता एवं महत्ता दिए हुए हैं। ९० करोड़ की जनसंख्या वाला तथा संसार का महत्त्वपूर्ण देश भारत जब उनको महत्ता देता है तो अन्य अनेक देशों पर तो अँग्रेजों का प्रभाव यों ही बढ़ जाता है। भारत के हित में अँग्रेजों की यह महत्ता ठीक नहीं है।

संसार में अँग्रेजी से कहीं उन्नत, विकसित तथा प्रगतिशील विशाल राष्ट्र मौजूद हैं। उनकी अवश्य इच्छा रहती होगी कि भारत जैसा विशाल देश उनकी ओर आत्मीयता का हाथ बढ़ाए, साथ ही वे यह भी क्यों न चाहते होंगे कि भारत को जब विदेशी भाषा अपनाना ही है, तो वह हमारी भाषा को क्यों न अपनाए, जबकि उनका राष्ट्र मरणोन्मुख इंग्लैण्ड से अधिक शक्तिशाली विशाल तथा उन्नत राष्ट्र है। अपनी इस आन्तरिक आकांक्षा से निराश होकर क्या उन देशों की सहानुभूति प्रच्छन्न रूप से भारत के प्रति कम न हो जाती होगी। क्या बहुत से ऐसे राष्ट्र भारत को जिनकी मित्रता अपेक्षित हो सकती है अपने नीति विरोधी अँग्रेजों की भाषा को सिरमौर बनाने से भारत के प्रति अन्यथा भाव से परिचालित नहीं होते होंगे ? क्या संसार के अनेक स्वाधीन एवं स्वाभिमानी राष्ट्र भारत को अँग्रेजों की भाषायी दासता करते देखकर उससे मन ही मन घृणा न करते होंगे ? क्या भारत को अँग्रेजी पर निर्भर देखकर अपनी राष्ट्रभाषा के धनी देश यह सोचने पर मजबूर न होते होंगे कि भारतीयों के पास कोई अपनी समर्थ एवं समृद्ध भाषा नहीं है अथवा यह हीनभाव से मोहित होकर राष्ट्र की सर्वांगीण एवं सम्पूर्ण स्वाधीनता की आनबान पर धब्बा लगा रहा है? संसार के स्वाधीन एवं स्वाभिमानी राष्ट्रों की भावभूमि में भारत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रति इस प्रकार के शंकाकुल विचार देश की कितनी राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा गुरुता सम्बन्धी हानि करते होंगे—क्या अँग्रेजी के भक्त भारतीय कभी इस पर विचार करने का कष्ट करेंगे ?

अनिवार्यता के कारण कारण अँग्रेजी की अपर्याप्त, अपूर्ण तथा संदिग्ध योग्यता पा लेने पर स्कूल, कॉलेजों से निकला हुआ तरुण वर्ग किसी ऑफिस का बाबू बन जाने के अतिरिक्त और कर भी क्या सकता है। हाँ इतना जरूर होगा कि थोड़ी-बहुत अँग्रेजी जान जाने से वह काला अँग्रेज बनकर पाश्चात्य सभ्यता का भक्त जरूर बन जाएगा। आज भारत के तरुण-वर्ग में भारतीयता के स्थान पर वेश-भूषा, आहार-विहार तथा आचार-विचार में जो ईसाईयत की झलक गहरी होती जा रही है, वह सब इस अँग्रेजी की अनिवार्यता के दोष के कारण ही है।

अँग्रेजी की अनिवार्यता के कारण महाराष्ट्र के निराशापूर्ण परीक्षाफलों को देखते हुए शिक्षाविद् श्री प्रभाकर कानडे ने ठीक ही कहा है—अँग्रेजी भारत की नई पीढ़ी के लिए घातक भाषा है। प्रगति तथा उन्नति की सीढ़ी जब तक अँग्रेजी बनी रहेगी, भारतीय जनता शासन के कार्यों से दूर ही बनी रहेगी। ऐसी दशा में देश का लोकतंत्र फल-फूल सकना तो दूर, जीवित भी रहेगा यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

विदेशी भाषा के प्रभाव के कारण देश में निष्कंलक राष्ट्रीयता का अभाव रहना स्वाभाविक है। जिन लोगों अथवा जिस देश की भाषा पढ़ी जाएगी, उसका दृष्टिकोण स्वभावत: अपने दृष्टिकोण के ऊपर रहेगा। भले ही अँग्रेजी की शिक्षा आज ऊँची सरकारी नौकरी दिला सकने में सफल हो जाए किन्तु वह तरुण वर्ग को भारतीय दृष्टिकोण प्रदान नहीं कर सकती। अँग्रेजी की अनिवार्य शिक्षा हो सकता है, समझी-बूझी घिसी-पिटी तथा अभ्यासपूर्ण अँग्रेज नौकरशाही को सुभीता देती रहे, उसे चलाने में सहायक बनी रहे, किन्तु यह निश्चित है कि वह भारत को सांस्कृतिक तेज से ओत-प्रोत एक अभिनव राष्ट्र बनने में बहुत दूर तक बाधक होगी।

सन्त विनोबा भावे ने भारत की नौकरशाही पर खेद प्रकट करते हुए ठीक ही कहा था—"बड़ी अद्भुत बात है कि शासन का सारा कारोबार आज भी उन हाथों में ही है जिन हाथों में देशभक्तों को जेल में डाला था और उन पर गोली चलाई थी। स्वराज्य के शत्रु ही आज स्वराज्य के सिपाही, संरक्षक तथा संचालक बन गये हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लम्बे समय के बाद भी वही नौकरशाही मौजूद है।"

आचार्य विनोबा का यह कथन अक्षरश: सत्य है। पराधीनता काल की नौकरशाही आज स्वतन्त्र भारत में भी यथावत् चली आ रही है और जब तक भारत की राज्य भाषा अँग्रेजी बनी रहेगी और उच्च-पद पाने के लिए उसकी अनिवार्यता अपेक्षित रहेगी तब तक अँग्रेजकालीन नौकरशाही की परम्परा चलती रहेगी और जनता सच्चे स्वराज्य का सुख न पा सकेगी। यदि आज अँग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त कर दी जाये, तो निश्चय ही देश से नौकरशाही तथा लालफीताशाही की परम्परा समाप्त हो जाए।

सरकार में ऊँचा पद पाने के लिये अँग्रेजी की अपेक्षित ऊँची योग्यता जिन विद्यालयों में मिल सकती है, वे इतने महँगे हैं कि साधारण लोग उनमें अपने बच्चों को नहीं पढ़ा सकते। स्वाभाविक है कि उनमें नौकरशाहों, पूँजीपतियों तथा मन्त्रियों आदि के ही बच्चे पढ़ सकते हैं और वे ही सरकार के स्तम्भ बनकर शासन में स्थान पाएँगे। साधारण जनता के नौनिहाल इन लाभों तथा सम्मानों से सुयोग्य होने पर भी वंचित रह जाएँगे। ऐसी दशा में आगे चलकर कुछ ही समय में इस प्रजातन्त्र का क्या स्वरूप बनेगा, नहीं कहा जा सकता।

भारत में अँग्रेजी को पोषण दिए जाने से इस प्रकार की होने वाली हानियों तथा अहितों को ध्यान में रखकर क्या उनके समर्थन में मत देने अथवा हाथ उठाने वाले अँग्रेजी भक्त राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार कर सकेंगे ?

शिक्षा की खामियाँ कैसे दूर हों ?

शिक्षा व्यवस्था के सही होने की कसौटी यह है कि वह विद्यार्थी के जीवन विकास की कितनी पृष्ठभूमि बना सकती ? मात्र पुस्तकें रट लेने या उत्तीर्ण होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेने से इतना ही हो सकता है कि प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होकर स्थिति सही होने पर नियुक्ति-पत्र प्राप्त कर लिया जाय। तिकड़म भिड़ाकर जिस-तिस प्रकार उत्तीर्ण हो जाने पर भी वास्तविक योग्यता के अभाव में प्रतिस्पर्द्धा में सफल होना अथवा नियुक्त होने पर सीधे काम को ठीक तरह अंजाम दे पाना सम्भव नहीं हो पाता। इस कठिनाई से उबारने में शिक्षाकाल में अपनाई गई तत्परता ही काम आती है।

इतने पर भी एक आवश्यकता बनी रहती है कि पढ़ाई के विषयों के अतिरिक्त, जो जानने-समझने को शेष रह गया है, उसे निजी प्रयत्न से उपलब्ध करते रहा जाय। जिस क्षेत्र में प्रवीणता बढ़ानी है, उसके लिए अध्ययनशील बनकर रहा जाय। स्वाध्याय जीवन का एक अंग बनकर रहना चाहिए ताकि आयु के साथ-साथ ज्ञान-सम्पदा भी बढ़ती रहे।

देखा गया है कि पढ़ाई समाप्त करते ही लोग पुस्तकों को नमस्कार कर लेते हैं। जो पढ़ा था, उसे भी भूल जाते हैं। उतना ही याद रहता है, जितना दैनिक जीवन में प्रयुक्त होता है। ऐसी दशा में आगे चलकर पढ़े और बिना पढ़े में नाममात्र का अन्तर रह जाता है। इसके विपरीत स्वाध्यायशीलों की स्कूली शिक्षा कम होने पर भी योग्यता और समझदारी बढ़कर कहीं से कहीं जा पहुँचती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तकों में ज्ञान का अथाह सागर भरा पड़ा है। अभिरुचि एवं आवश्यकता के अनुरूप प्रशिक्षण हम पुस्तकों के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं, पर किसी की ऐसी स्थिति नहीं होती कि निरन्तर अध्ययन के लिए वह नियमित पुस्तकें खरीदता रहे। इसके लिए पुस्तकालयों की स्थापना ही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिसे स्कूलों का पूरक कहा जा सकता है। प्रयत्न यह भी होना चाहिए कि जिस प्रकार हर जगह कुएँ-तालाब होते हैं, उसी प्रकार पुस्तकालय भी स्थापित हों और वे अपनी ओर से यह प्रयत्न करें कि शिक्षित लोगों तक उनकी आवश्यकता के अनुरूप साहित्य पहुँचाने और वापस लाने की जिम्मेदारी उठाएँ अपने देश में स्वाध्याय का प्रचलन नहीं के बराबर है ? क्योंकि लोग अपनी हैसियत बढ़ाने भर का महत्त्व समझ पाते हैं। ज्ञान सम्वर्द्धन की व्यक्तित्व के विकास में कितनी बड़ी भूमिका है ? इसे अभी प्रारम्भिक रूप से नहीं समझ पाया गया है। इसलिए विचारशीलों का कर्तव्य है कि सद्ज्ञान सम्वर्द्धन के लिए उपयुक्त पुस्तकों का एक अच्छा पुस्तकालय भी जन स्तर पर स्थापित करें और उसके साथ स्वाध्याय का चस्का लगाने के लिए घरों पर देने और लेने जाने का क्रम अपनाएँ।

सार्वजनिक प्रयत्नों की चर्चा चली, तो यहाँ यह कहना भी समीचीन है कि सुसंस्कारिता के लिए अवकाश के समय में चल सकने वाले विद्यालयों का भी प्रबन्ध करें। भले ही एक दो घण्टे नित्य सत्संग स्तर के ही क्यों न हों, भले ही वे साप्ताहिक अवकाश के दिन चल सकें। इनके छात्रों की भी नियमित भर्ती होनी चाहिए और प्रयत्न यह चलना चाहिए कि सदस्यगण गैर हाजिर होने की अपेक्षा नये लोगों को साथ लेकर आया करें।

इस प्रकार का प्रवचन जहाँ-तहाँ चलता रहता है। उसे व्यापक एवं परिमार्जित किया जाना चाहिए। एक दिन में एक पाठ पढ़ाने से एक वर्ष में योजनाबद्ध रूप से शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक विषयों पर इतने विचार इस शृंखलता के अन्तर्गत दिए जा सकते हैं कि जीवनचर्या के प्रत्येक पक्ष पर आवश्यक प्रकाश पड़ सके। प्रश्नोत्तरों के शंका समाधान के विचार-विनिमय के रूप में इन प्रसंगों को सुनने वालों के अन्तराल में अधिक गहराई से बिठाया जा सकता। इस प्रकार जो कमी स्कूली क्षेत्र में रह रही है, उसकी पूर्ति निजी प्रयत्नों से पूरी की जा सकती है। अच्छा होता इन सभी जीवनोपयोगी विषयों को पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया गया होता और बहुज्ञ बनने की अपेक्षा वह दृष्टिकोण परिष्कृत करने, व्यवहार कौशल सिखाने का भी प्रबन्ध रहा होता।

नारी शिक्षा अपना एक स्वतन्त्र विषय है। महिलाओं को आमतौर से गृहव्यवस्था, शिशुपोषण, परिवारिक सहयोग, अतिथि सत्कार आदि अनेकों दायित्व सँभालने पड़ते हैं। अन्नापूर्णा सच्चे अर्थों में वे ही हैं, पर भोजन को जायकेदार बनाने भर की बात वे किसी प्रकार जान पाती हैं, उन्हें यह जानकारी नहीं होती कि गरीबों में भी पोषणयुक्त आहार देकर किस प्रकार घर के सभी सदस्यों को नीरोग रखा जा सकता है ?

वस्त्रों की साज-सँभाल, टूट-फूट की मरम्मत में ही वे घर का ढेरों पैसा बचा सकती हैं, घरेलू शाकवाटिका, एक गाय पालने के समान लाभदायक है महिलाएँ चाहें, तो अपने सौजन्य से बिखरने वाले घरों को एक धागे में बाँधे रह सकती हैं। चाहें तो बँधी बुहारी की सींक-सींक बिखेर सकती हैं।

असमंजस की बात यह है कि नारी को सच्चे अर्थों में गृहलक्ष्मी बनाने की शिक्षा न तो स्कूलों में ही मिलती है और न अभिभावक ही अपनी अयोग्यता के कारण ऐसे अभ्यास करा पाते हैं कि जहाँ भी यह रहें, गृहलक्ष्मी की तरह श्रेय और सम्मान प्राप्त करें।

अच्छा हो महिला-संस्कारशाला, बाल-संस्कारशाला निजी क्षेत्र में चलें, परमार्थिक प्रवृत्ति के लोग इसके लिए समय निकालें और इन संस्कारशालाओं के लिए अपना समय-श्रम अर्पित करें। दिन में वे पुस्तकालय चलाने का काम भी कर सकते हैं।

सरकार इन सब बातों का समन्वय अपने प्रशिक्षण तन्त्र को समग्र बनाने के लिए कर सकी होती, जो उज्ज्वल भविष्य का शानदार सुयोग बनता, पर ऐसा सम्भव न हो सके, तो सार्वजनिक सेवा क्षेत्र को अपने दायित्व समझने और समाज के प्रति अपने कर्तव्य समझने चाहिए।

आजीविका उपार्जन परिवार व्यवस्था पारस्परिक व्यवहार, विवाह-शादी आदि सभी कार्य हम सब अपने बलबूते या पारिवारिक सहयोग से सपन्न करते हैं। सरकार इन सब कामों में सहायता करने कहाँ आती है ? जब बिना सरकारी सहायता के जीवन के अधिकांश काम अपने बलबूते पर निपटाते हैं। तो सरकार से न बन पढ़ने वाले कामों को हम स्वयं करने के लिए क्यों न कटिबद्ध हों ?

विशेषतया शिक्षा सम्वर्द्धन के सम्बन्ध में तो हमें तत्पर और भावनाशील होना ही चाहिए। पुण्य-परमार्थ के नाम पर हम ढेरों पैसा और समय लगाते रहते हैं। फिर सर्वोच्च स्तर के पुण्य कार्य शिक्षा के सम्वर्द्धन और उदात्तीकरण में हमारा सहयोग क्यों न हो ? प्रत्येक शिक्षित समाज का शिक्षा ऋण चुकाने के लिए अपना योगदान इस सन्दर्भ में प्रस्तुत करना चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा, सुसंस्कारी कक्षाएँ, पुस्तकालय जैसे कार्यों में भावनाशीलों को पारस्परिक सहयोग से सभी प्रकार हर जगह चलाया जा सकता है। उद्योगों के सम्बन्ध में उदार उद्योगी अपने पास अपने विषय का उच्चस्तरीय ज्ञान सम्पादित करें और साथ ही अपने कारोबार में कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य छात्रों के शिक्षण की व्यवस्था करें, तो इतने भर विचार परिवर्तन से वह सब हो सकता है, जिसकी अपेक्षा हम सरकार से करते हैं। उद्योगों की शिक्षा के लिए हर छोटा-बड़ा उद्योगपति अपने समीपवर्ती क्षेत्र के लोगों को क्रिया-कुशल बनाने के लिए सफल हो सके, तो इतने भर में कई छोटे-मोटे सरकारी स्कूलों का काम अपनाई गई वैयक्तिक उदारता के बलबूते सम्पन्न हो सकता है।

गरीबी की रेखा से ऊँचा उठने का नारा सही है, पर स्मरण रहे कि उन समुदायों को शिक्षित, कर्मठ एवं सुसंस्कारी बनाये बिना वह प्रयोजन आकाशी अनुदानों के सहारे सम्पन्न नहीं हो सकते। उसके लिए हमें स्वयं ही अग्रगामी बनना पड़ेगा।

व्यावहारिक शिक्षा की आवश्यकता

समझदारी यह कहती है कि जो वस्तुएँ काम आएँ, महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों की पूर्ति करें, उन्हें अर्जित करने के लिए प्रयत्न-परिश्रम किया जाय और उनकी उपलब्धि पर प्रसन्नता व्यक्त की जाय।

नासमझी उन वस्तुओं के संग्रह में है, जो अपने किसी काम न आएँ पर दूसरों की आँख में बड़प्पन की छाप छोड़े—चकाचौंध उत्पन्न करें, भाग्यवान कहलाएँ और दूसरों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करें कि यह सरंजाम हमारे पास होता तो हम भी बड़े क्यों न समझे जाते ? जेबर इसी श्रेणी में आते हैं। कीमती वस्त्र, शृंगार सामग्री, नृत्य-गायन में प्रवीणता, अँग्रेजी में फटाफट बातें करना, कॉलेज की कोई ऊँची डिग्री लड़कियों को बड़ी आकर्षक है। सहेलियों के बीच बैठकर वे इनकी शेखी बघारतीं और इतराती भी देखी जाती हैं पर जब यह प्रश्न सामने आता है कि भावी जीवन में इन सबका क्या प्रयोग होगा, इस निमित्त खर्चा गया पैसा और लगाया गया श्रम किस काम आएगा, तो निराशा होती है क्योंकि घर-गृहस्थी वाले बाल-बच्चे वाले कुटुम्ब-परिवार में रहते हुए कदाचित ही कभी कुछ काम आता हो। जेबर बक्सों में या लॉकर में पड़े रहते हैं। उनकी रखवाली की चिन्ता रहती है। परिवार में जिनके पास अनुपात से वे कम होते हैं उनमें ईर्ष्या जगती है। नृत्य-संगीत का लगातार अभ्यास न हो तो एक वर्ष के भीतर ही विस्मृत हो जाते हैं। कॉलेज की डिग्री का शादी से पहले सुसराल वालों के आकर्षण के लिए कुछ महत्व भी है। पर बाद में गाउन समेत डिग्री मिलने का फोटो कमरे के एक कोने में पड़ा रहता है और अतीत की किसी बेतुकी घटना का स्मरण दिलाता रहता है। कारण कि शादी होते ही वैसा वेश-विन्यास न अपने को सुहाता है न घर वालों को।

ग्रेजुएट लड़कियों को शिक्षाकाल में दो सपने आते रहते हैं कि उनका विवाह किसी बड़े साहब से होगा और साथ-साथ घर की मोटर में घूमने-फिरने का ढेरों समय मिला करेगा। सिनेमा जैसे रोमांस मिला करेंगे। एक दूसरा सपना और भी आता है कि डिग्री के आधार पर कोई बड़ी नौकरी मिलेगी। रौब-दौब रहेगा और जेब खर्च के लिए उस पैसे के होने पर मनमाना खर्च करने की सुविधा मिलेगी। क्लब कभी देखे सुने हों तो उनमें प्रवेश पाने और रात को देर तक मनोरंजन का दौर चलने का भी एक सपना रहता है। कॉलेज में जो शान रहती है वह घटेगी नहीं और बढ़ेगी ही।

ये सपने मुश्किल से पाँच प्रतिशत को ही कार्यान्वित होने का अवसर मिलता है, अन्यथा विवाह माने विवाह, वधू माने वधू, सुसराल माने सुसराल। सब कुछ ऐसा बदल जाता है मानो कायाकल्प हो गया हो। एक वर्ष पूरा नहीं हो पाता कि पेट में या गोद में बच्चा आ जाता है। आधे रोगी जैसी शरीर और मन की स्थिति बन जाती है। लड़का होगा या लड़की। आपरेशन, पीड़ा आदि न जाने क्या-क्या उलझन भरे दृश्य सामने खड़े रहते हैं ? नववधू का रोमांस और सत्कार उलटकर कुछ से कुछ हो जाता है। रोगिणी की परिचर्या वाली नई दृष्टि उभर आती है, समय तेजी से आगे बढ़ता है। तीन वर्ष पूरे होने से पहले लड़की दो बच्चों की माँ बन जाती है, अब उसे धाय और नर्स की ड्यूटी देनी पड़ती है। घर-गृहस्थी का काम-धन्धा, पारिवारिक शिष्टाचार सँजोए हुए सपनों का उड़नछू हो जाना एक ऐसा परिवर्तन है जिसे जादुई परिवर्तन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इसी बीच रात को नींद खुल जाती है तो पुराने सपने, पिछले दिनों किए गए श्रम और आज की परिस्थिति के सम्बन्ध में संगति बिठाने का दौर चलता है तो लगता है कि सोची हुई दुनिया बदल गई अथवा अपने ही पैर भटककर कहीं से कहीं आ गए। विधाता भी इन्हीं दिनों याद आने लगता है।

यह बात लड़कियों के सम्बन्ध में हुई। विशेषतया उनकी अरमान भरी शिक्षा और उसकी व्यर्थता के सम्बन्ध में। अब बारी लड़कों की आती है। स्कूली पढ़ाई पूरी कर लेने या उससे पहले ही लड़के को बड़ा साहब, अफसर बनाने का रंगीन सपना दिखाया जाता है। घर वाले आपस में यही चर्चा करते रहते हैं। चार दोस्तों, रिश्तेदारों में भी यह तजकरा चलता रहता है। अफसरों का वेतन हजार से कम तो होता नहीं। फिर महँगाई, भत्ता, मोटर, अलाउन्स, कोठी, बँगला, नौकर, अरदली आदि की सुविधा तो साथ में रहती ही है। फिर ऊपरी आमदनी, वह तो बिना बुलाए दौड़ती हुई आती है और सबेरे से शाम तक जेब को पूरी तरह भारी कर देती है। कितने लोग काम निकलवाने के लिए खुशामद में आगे पीछे फिरते हैं। ठाठ-वाठ बढ़ता ही रहता है। दोस्ती घटिया लोगों के साथ क्या बनानी, क्लब ज्वाइन किए जाते हैं। फीस थोड़ी महँगी हो तो क्या ? अँग्रेजी बोलने वाली नये कायदे-करीने समझने वाली बीबी जब साथ चला करेगी, तो ठाठ-वाठ और भी दूना हो जाएगा। ये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सपने कॉलेज की किताबों में से निकलते हैं और दिनोंदिन बढ़ते और फैलते-फलते जाते हैं। घर वाले काम में कुछ हाथ बँटाने की या किफायत से काम चलाने का इशारा करते हैं, तो उन्हें घुड़की दिया करते हैं। साहब की बड़े अफसर की बेइज्जती घर वाले ही करेंगे तो बाहर कौन पूछेगा ? शादी में एक लाख रुपया दहेज मिलेगा उसमें कटौती करानी है तो 'कहीं कराओ' को कहते हैं। वे बेचारे झेंप जाते हैं और लड़का जिस शान से रहता है, उसी से रहने देने के लिए जो भार उठाना पड़ता है उसे किसी तरह उठाते रहते हैं।

यह सपनों का जमाना बहुत दिन नहीं रहता। वास्तविकता से पाला पड़ता है। फेल होना और थर्ड डिवीजन आना कुछ असम्भव नहीं है। ऐसी दशा में किसी अच्छे कॉलेज में आगे पढ़ने के लिए भर्ती तक नहीं मिलती। प्राइवेट कुछ पढ़ते हैं। सबसे बेरोक-टोक की वकालत में दाखिला है। अब इस नये अध्याय में नौकरी तलाश करने की नई बात सामने आती है। पहले तो यह सूझता था कि कॉलेज की डिग्री इस हाथ और अफसरों की नियुक्ति दूसरे हाथ। पर ऊँट को जब टेड़े बबूल के नीचे होकर निकलना पड़ता है तब पता चलता है कि जो सोचा गया था, उसमें शेखचिल्ली जैसी उड़ानों की भरमार थी। छपने वाली वान्टों पर अर्जियाँ भेजते-भेजते हर महीने बीसियों रुपये खर्च होते रहते हैं। जब उम्र पूरी होने लगती है तो चपरासी तक की जगह पाने का सिलसिला चल पड़ता है। बेरोजगारी दफ्तर के बाबू का मूड कभी सीधा होता है तो यह बताता है कि इस मृगतृष्णा में भटकने की अपेक्षा गुड़-चावल की दुकान खोल लो तो सन्तोष के दिन कटेंगे। नौकरियाँ अब कहाँ हैं जितनी जगह खाली होती हैं, उससे बीस गुने लड़के अधिक पास होकर निकलते हैं। इन सब को सरकारी नौकरियाँ किस प्रकार मिल सकती हैं ? किसी निजी फैक्टरी या दुकान में काम क्यों नहीं ढूँढ़ लेते ? पर वहाँ तो मुट्ठी भर पैसे मिलते हैं और बारह घण्टे कोल्हू के बैल की तरह पिलना पड़ता है। घर का निजी कारोबार सोचा जाय तो पढ़ाई में पहले ही घर खोखला हो चुका होता है कोई बड़ी पूँजी लगाने की गुंजायश नहीं होती। जमीन गिरवी रखकर सरकारी कर्ज से कुछ किया जाय तो घर का हर सदस्य जानता है कि बाबू जी इस जमीन और कर्ज को डुबा देने में देर न लगावेंगे। सभी को भूखा मरना पड़ेगा।

इन परिस्थितियों में पढ़ने वाले और पढ़ाने का जुआ खेलने वालों की आँखें खुलती हैं कि अफसरी पाने के लिए कॉलेज की पढ़ाई पढ़ाना व्यर्थ है। वैसा भाग्य तो किसी मिनिस्टर के साले को हो सकता है। सामान्य लोगों के लिए बिना पंख की उड़ानें उड़ना व्यर्थ है। अब कॉलेज बनाम अफसर की संगति बिठाने का जमाना हजार मील पीछे रह गया।

हमें अपने बच्चों को पढ़ाते समय आकाश में नहीं उड़ना चाहिए वरन् जमीन पर चलना चाहिए, जो सर्वसाधारण के लिए सम्भव है। लड़कियों को पढ़ाते समय कुछ अपवादों को छोड़कर यह सोचना चाहिए कि इन्हें वयस्क होते ही ससुराल जाना है। इसलिए वहाँ सामने आने वाली समस्याओं का व्यवहारिक हल बताने वाली शिक्षा के लिए प्रबन्ध करना चाहिए। अन्यथा सपने और परिस्थिति की आपस में संगति न बैठी तो विग्रह खड़े होंगे। दुर्घटनाएँ घटेंगी और विग्रह करना भी ऊँची पढ़ाई की तरह ही निष्फल हो जाएगा।

यही बात लड़कों को पढ़ाते समय भी सोचनी चाहिए कि अफसरी मिलना आकाश कुसुम तोड़ने की तरह है। पढ़ाई के साथ-साथ उसे जमाने का अनुभव भी कराना चाहिए और बताना चाहिए कि कारीगर, मिस्त्री, मुनीम, दलाल जैसे सरलतापूर्वक मिल सकने वाले कामों के लिए अपनी योग्यता किस स्तर की बनानी चाहिए और स्वभाव में क्या विशेषताएँ उत्पन्न करनी चाहिए।

शिक्षा की कोई निन्दा नहीं करेगा पर उसके लिए आँख मूँदकर भेड़चाल नहीं चलनी चाहिए। सब बड़े आदमी यही पढ़ाते और यही सोचते हैं तो हम भी अलग हटकर और क्यों सोचें ? यह सरासर गलती है। दूसरे अपनी समस्याएँ किस तरह सुलझाते हैं, उन्हें दूर खड़े होकर देखना चाहिए और उससे नसीहत लेनी चाहिए। पर हमें अपना और अपने बच्चों का मरना-जीना अपने ढंग से व्यावहारिकता की कसौटी पर कसते हुए सोचना चाहिए। पढ़ने, लड़के भी जाएँ और लड़कियाँ भी। पर साथ ही यह भी देखना चाहिए कि उनका भावी जीवन किस प्रकार का होगा और उसमें सहायता करने वाला, गुत्थियाँ सुलझाने वाला प्रशिक्षण कहाँ प्राप्त होगा ?

एक भारी कठिनाई यह है कि सरकारी पाठ्य पुस्तकों का वजन तो गधे पर लादने जितना बढ़ता जाता है पर उसमें सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में काम आने वाली जानकारियाँ नहीं के बराबर हैं। बच्चे तोता रटन्त में अपनी उठती आयु की सारी मानसिक क्षमता चुका देते हैं पर नित्य के काम आने वाले प्रसंगों के सम्बन्ध में उनसे कुछ पूछा जाय तो अपने को सर्वथा अनजाना बताते हैं।

अभिभावकों के लिए बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध करना आवश्यक है। पर साथ ही यह भी सोचते रहना चाहिए कि आज की परिस्थितियों में इन्हें किस स्तर का जीवनयापन करने की सम्भावना है और उसके किस स्तर में, कितने ज्ञान की आवश्यकता पड़ेगी ? हमें उपयोगी ही अपनाना चाहिए और आँखें मूँदकर उनकी नकल नहीं करनी चाहिए, जो आज से १०० वर्ष पुराने समय में रह रहे थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है स्कूली पाठ्यक्रम बच्चों के व्यावहारिक जीवन में कुछ अधिक सहायता न कर सकेंगे। वे बड़ों ने बनाए हैं, बड़ों के लिए बनाए हैं। उसमें से जितना काम का हो लिया भी जा सकता है। पर हमें अपने काम की निजी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए और यह पुस्तकालयों के माध्यम से ही सम्भव है। सरकारी स्कूल चल रहे हैं सो ठीक है। हमें जनसहयोग से ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना करनी चाहिए। जिसमें लड़की-लड़कों के लिए ही नहीं, अभिभावकों को भी उन सभी जानकारियों का लाभ मिल सके जो दैनिक जीवन को प्रभावित करती हैं। अर्थोपार्जन ही सब कुछ नहीं है और शिक्षा की परिधि उतने तक ही सीमित नहीं है। शारीरिक, मानसिक आर्थिक, पारिवारिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ जीवन को अनेक प्रकार प्रभावित करती हैं। इन गुत्थियों के आधुनिक समाधान जो विज्ञजनों द्वारा प्रस्तुत किए गए हों, हमारे पुस्तकालयों में रहने चाहिए और उन्हें क्रमबद्ध रूप से पढ़ने के लिए एक सुनियोजित शृंखला बनानी चाहिए।

ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना हर जगह आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि उन्हें पढ़ाने का क्रम भी व्यवस्थित रूप से चले। इन्हें रटने की आवश्यकता नहीं है। गम्भीरतापूर्वक समझ लेने भर से काम चल सकता है। इसके लिए साप्ताहिक परीक्षाओं का क्रम भी जानकार लोगों द्वारा चलाया जाता रहे, तो यह पता चलता रहेगा कि पढ़ाई क्रमबद्ध रूप में एवं गम्भीरतापूर्वक हुई है या नहीं।

वर्तमान शिक्षा की अपूर्णता को दूर करने के लिए हमें हर जगह ऐसे सुनियोजित पुस्तकालय स्थापित करने चाहिए, जिनसे लड़की-लड़कों के ही नहीं, बड़ों एवं अभिभावकों के सामने आती रहने वाली बहुमुखी समस्याओं का भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप, समयानुकूल समाधान मिलते रह सकें।

स्कूली नहीं, अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा अनिवार्य

बच्चे स्कूल जाना आरम्भ करें तब से लेकर जब तक वे आजीविका उपार्जन योग्य हों, तब तक उनकी शिक्षा में शालीनता शिक्षण की प्रक्रिया का अतिरिक्त समावेश होना चाहिए। कक्षा एक से लेकर ५वीं तक प्राथमिक शालाएँ कहलाती हैं। इनमें कुल मिलाकर सरकारी पाठ्यक्रम चार-साढ़े चार घण्टे का होता है। दिन प्राय: १२ घण्टे का होता है। स्कूल टाइम काटने के उपरान्त प्राय: ७ घण्टे बच्चे के खाली रहते हैं। इनमें अध्यापकों की कोई जिम्मेदारी नहीं। अभिभावक अपने-अपने काम में व्यस्त रहते हैं। बच्चों में इतनी समझ नहीं होती कि वे इस स्कूली टाइम से प्राय: दूने समय का कोई सदुपयोग कर सकें। इधर-उधर मटरगश्ती में, यार-दोस्तों के साथ धमा-चौकड़ी मचाते रहते हैं। आज के समाज का जैसा वातावरण है, उसमें नटखटपन से लेकर बदमाशियों तक का माहौल है। जो बच्चे तेज-तर्रार होते हैं वे ही नेता बन जाते हैं और दूसरे बच्चों को साथ लेकर इस तरह की उछल-कूद मचाते रहते हैं। जिन्हें बचपन का नटखटपन कह सकते हैं। पर इनमें कितने ही प्रकार के दुर्गुण छिपे रहते हैं। बच्चों की बातों पर कोई ध्यान नहीं देता। पर खेल-खेल में वे बुराइयाँ जड़ पकड़ने लगती हैं और धीरे-धीरे स्वभाव का अंग बन जाती हैं। बड़े होने पर जब वह नटखटपन परिपक्व हो जाता है तो बहुतेरों पर ऐसी बुराइयों के रूप में परिपक्व होता है, जो अखरने लगता है। किशोर अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वे बुराइयाँ ऐसी हो जाती हैं, जो बच्चों का भविष्य बिगाड़ने लगती हैं।

इन समस्याओं से बचने के लिए साधन सम्पन्न लोग अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में भर्ती कर देते हैं, जिनमें बोर्डिंग में रहने तथा व्यस्त कार्यक्रम रहने के कारण उस फालतू समय का दुरुपयोग बच्चों का चरित्र बिगाड़ने के लिए नहीं हो पाता। शेष समय खेल-कूद, मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक प्रयोगों में लग जाता है। इस दृष्टि से पब्लिक स्कूलों में भर्ती करना अच्छा है। पर उसमें सबसे बड़ी खराबियाँ ये हैं कि एक तो वे बहुत महँगे हैं। दूसरे इनका मूल आधार अव्यावहारिक माप दण्डों पर टिका है। इसमें पाँच सौ रुपया मासिक छोटी कक्षाओं में भी देने पड़ते हैं। इतना खर्च उठा सकना मध्यवर्ती आजीविका वालों के लिए सम्भव नहीं। कई बच्चे होने पर सबको पब्लिक स्कूल में दाखिल करने का खर्चा उठा सकना ईमानदारी की कमाई से कदाचित् ही सम्भव हो सके। खर्च सिर पर लद जाने के उपरान्त ऊपर की आमदनी करनी पड़ती है। जिनके बच्चे पब्लिक स्कूलों में दाखिल हैं, उनकी आजीविका के स्रोतों का पता लगाने पर उसमें अक्सर दोष निकलता है। इसके अतिरिक्त खान-पान, पहनाव-उढ़ाव, तौर-तरीका इस प्रकार का होता है, जो सामान्य लोगों से नहीं मिलता। गरीब बच्चे उनसे ईर्ष्या करते हैं। अमीरों में अहंकार बढ़ता है। विषमता का ऐसा वर्ग भेद पैदा होता है, जो अन्तत: शालीन समाज की संरचना में बाधक बनता है। जो बच्चे पब्लिक स्कूलों में पढ़े हैं, उनमें अधिक खर्च करने की आदत छोटेपन से ही पड़ जाती है। बड़े होने पर वे खर्चीले स्वभाव के आदी हो जाते हैं। जो बड़े हो जाते हैं, सामान्य जीवन में प्रवेश करते हैं, तब भी उतना ही खर्च चाहिए। यदि उतनी आमदनी न हो तो उन्हें बहुत बुरा लगता है। बड़ी आमदनी न कर सकने पर वे दु:खी होते हैं या गलत तरीका अपनाते हैं। भाई-बहन भले ही कम में काम चलावें पर उन्हें उतना ही स्तर बनाए रहने के लिए सब कुछ करना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरावस्था विकास का दूसरा चरण है। पढ़ाई के घण्टे छटवीं से लेकर ११वीं तक, मैट्रिक तक के भी वही होते हैं। शेष ७ घण्टे दिन के उनके पास उतने ही बच जाते हैं। इसके लिए मास्टर लोग घर पर करने के लिए होमवर्क देते तो हैं पर लड़के आमतौर से उतने अनुशासन लिये नहीं होते कि बिना किसी नियन्त्रण के घर आते ही उस होमवर्क में लग जावें। अभिभावकों में कम ही ऐसे होते हैं, जो बच्चों की देखभाल रखें। फलत: इस खाली समय में फिर कुसंग का सिलसिला चल पड़ता है। जानकारों का कहना है कि किशोरावस्था सबसे अधिक खतरनाक है। कुसंग सबसे अधिक इसी उम्र में लगता है। सिनेमा की लत इन्हीं दिनों लगती है। पैसे उचित तरीके से नहीं मिलते तो वे चोरी से या दूसरे गलत तरीके से प्राप्त करते हैं। पढ़ने में फिसड्डी और दादागीरी से उनमें कितने ही लड़के अपनी मण्डली बनाने के लिए भोले लड़कों को फँसाने की फिराक में रहते हैं और ऐसी कुटेवों के चंगुल में फँसा देते हैं। जिनके कारण उनकी जिन्दगी ही चौपट हो जाय। घर के लिए बताया गया होमवर्क कोई बिरले ही करते हैं। खुराफाती लड़कों के कुसंग से बचाने के लिऐ बड़े घरों के लोग अपने बच्चे को बोर्डिंग में भर्ती कर देते हैं। पैसा तो वहाँ भी अधिक लगता है पर इन बोर्डिंगों में भी इतना नियन्त्रण नहीं रहता कि वे व्यस्त रहें और कुसंग से पूरी तरह बचाव रहे। फिर जिनका घर और स्कूल एक ही जगह है वहाँ बच्चों को बोर्डिंग में भर्ती करना अव्यावहारिक भी है। ऐसी दशा में ५वीं कक्षा तक जो बाल मण्डली का नटखटपन रहता है, वह किशोरावस्था में खुराफात और बदमाशी के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

मैट्रिक के बाद कॉलेज में पढ़ने वाले लड़के तब तक हर दृष्टि से परिपक्व हो जाते हैं। यदि उन्होंने उस समय तक कुटेवें सीख ली हैं, तो उन्हें छुड़ाना या बदलना एक प्रकार से असम्भव ही हो जाता है।

यहाँ मूल प्रश्न यह है कि बच्चों के चार-पाँच घण्टे स्कूली बन्धन को छोड़कर जो ७-८ घण्टे खाली बचते हैं, उसे कुसंग से बचाने के लिए क्या किया जाय ? वातावरण चारों ओर दुर्गुणों का ही है। बच्चे उस ओर आसानी से खिंच जाते हैं। अच्छी संगति जो प्रभावशाली भी हो, कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। भले आदमी अधिक से अधिक यह कर सकते हैं कि अपने बच्चों को घर रखें। यारबाजी के फेर में न पड़ने दें, पर यह जेल भी अखरने वाली है। बच्चे दु:खी होते हैं, विद्रोही बन जाते हैं या फिर दब्बू किस्म के रह जाते हैं। सामाजिक गुण उनमें विकसित नहीं हो पाते।

समस्या हर दृष्टि से है, पब्लिक स्कूल महँगे पड़ते हैं, उनकी शिक्षा अव्यावहारिक है और गरीब-अमीर का वर्ग पैदा करते हैं। खर्चीली आदतें डालते हैं और किशोरों के बोर्डिंग धीरे-धीरे खुराफातों के अड्डे बनते जाते हैं। घर पर अभिभावक जो थोड़ी बहुत देखभाल रख पाते हैं, बोर्डिंग में पहुँचने पर वह भी हाथ से चली जाती है और लड़के पूर्णत: स्वतन्त्र हो जाते हैं। अनुशासन कहने भर को ही रह जाता है।

ऐसी दशा में क्या किया जाय ? न पढ़ावें तो खैर नहीं। घर के पिंजड़ें में बन्द रखें सो भी बनता नहीं। कुसंग से बच सकने का कोई उपाय नहीं। कुचक्र में फँस जाने पर लड़के ऐसे हो जाते हैं, जिन्हें बिना पढ़े से भी गया बीता कहना चाहिए।

बहुत विचार करने के उपरान्त रास्ता एक ही निकलता है कि स्कूल से बचे हुए समय में अतिरिक्त शिक्षा की कक्षाएँ चलाई जाएँ। दिन के १२ घण्टों का विभाजन ऐसा किया जाय कि ५ घण्टे स्कूल के, ३-४ घण्टे अतिरिक्त स्कूल के, ३-४ घण्टे घर आने जाने के, होमवर्क इन ३-४ घण्टों में भी हो सकता है और रात्रि के २-३ घण्टों में भी।

अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा की एक विशेष प्रक्रिया हर छोटे-बड़े स्कूल में चलाई जानी चाहिए। इसका समय स्कूली समय से भिन्न हो। जैसे गर्मी के दिनों में स्कूल ६ से १० तक के होते हैं, दोपहर का समय विश्राम का, शाम को ३ से ६ बजे तक अतिरिक्त क्लास चला करें। जाड़े के दिनों में स्कूल १० से ३ तक खुलते हैं। इन दिनों सबेरे ७ से ९ प्रात: ५ से ६ शाम को। इस प्रकार दोनों ही ऋतुओं में तीन घण्टे इन कक्षाओं को चलाने के लिए मिल सकते हैं।

इन अतिरिक्त कक्षाओं का पाठ्यक्रम इस प्रकार रहे कि एक दिन स्कूली पाठ्यक्रम को ट्यूशन की तरह पढ़ाया जाय और दूसरे दिन ऐसा शिक्षण दिया जाय जो ज्ञानवर्द्धक भी हो और मनोरंजक भी। स्काउटिंग, एन. सी. सी. फर्स्टएड, नर्सिंग जैसे पाठ्यक्रम अतिरिक्त रूप से निर्धारित भी हैं। इसके अतिरिक्त शिष्टाचार, मितव्ययिता समाजसेवा आदि के कार्यक्रमों का सम्मिलित कोर्स चलाया जाय। एक दिन ट्यूशन पढ़ लेने से लड़कों की पढ़ाई में जो कमी रह गई होगी, वह भी पक्की हो जाएगी। इस समय होमवर्क भी हो जाएगा। इस क्रम के चल पड़ने पर 'स्कूल में अच्छी पढ़ाई नहीं होती है' 'ट्यूशन के लिये दबाव डालते हैं'—यह शिकायत करो की गुंजायश न रहेगी। एक दिन पढ़ाई, दूसरे दिन ज्ञानवर्द्धक मनोरंजन की सभी शिक्षाएँ ऐसी हैं, जिनके कारण बच्चों की प्रतिभा का निखार होता है। भाषण कला, अन्ताक्षरी, अभिनय, प्रहसन आदि के कार्यक्रम भी स्काउटिंग आदि के साथ सम्मिलित रखे जा सकते हैं। फर्स्टएड, स्काउटिंग आदि के निर्धारित पाठ्यक्रम भी हैं। उनकी परीक्षायें भी होती हैं। इस मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, शिष्टाचार आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदल-बदल कर सिखाए जाएँ। खेल-कूद होते रहें तो भिन्नताएँ बनी रहने के कारण मनोरंजन भी होता रहेगा।

इस प्रकार खाली समय रहने के कारण कुसंग का अवसर मिलने की जो टेढ़ी समस्या थी, वह सरलतापूर्वक हल हो जाएगी। न बोर्डिंग में भर्ती की आवश्यकता रहेगी न पब्लिक स्कूल का द्वार खटखटाना पड़ेगा। मूल समस्या एक ही थी—खाली समय और कुसंग, यह समस्या अतिरिक्त क्लास चल पड़ने से सहज ही हल हो जाती है।

इसके लिए अध्यापक नियुक्त करने होंगे। वे रिटायर्ड होने चाहिए। रिटायर हुए अध्यापक अक्सर खाली समय में कुछ काम तलाशते रहते हैं। जिनमें सेवा-साधना हो, उपरोक्त कार्यों के लिए रुचि हो, उन्हें तलाशा जाय न्यूनतम पाँच रुपया मासिक हर विद्यार्थी से इसके लिये लिया जाय। २० छात्र एक अध्यापक के जिम्मे हों तो उसे १०० रुपया मिल जाते हैं। तीन घण्टे ही उसे पढ़ाना पड़ा। गरीब देश की स्थिति सेवा कार्य और रिटायर्ड के लिए थोड़ा व्यय इन. सबका संयोग बनने पर किसी प्रकार इसे कामचलाऊ वेतन कहा जा सकता है। इसे पारिश्रमिक न कहा जाय, पारितोषिक या 'ऑनरेरियम' कहा जाय।

इस कार्य को मात्र मास्टरों पर नहीं छोड़ा जा सकता। इन अतिरिक्त कक्षाओं को चलाने वाली एक सेवाभावी समिति गठित की जानी चाहिए। जो व्यवस्था बनाने और काम किस प्रकार चल रहा है ? इसका मार्गदर्शन एवं निरीक्षण दोनों ही किया करें। इस समिति के सदस्य बीच-बीच में सुविधानुसार स्वयं भी कुछ पाठ्यक्रम चलाया करें।

अपने उपयोग में आने वाली वस्तुएँ हम अपने हाथों तैयार करते हैं। खाते स्वयं हैं तो पकाना भी हमें आना चाहिए। भोजन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। शिक्षा हमें किस तरह की प्राप्त करनी चाहिए ? बच्चों को क्या सिखाना चाहिए और किन बातों से दूर रखना चाहिए, इसका निर्धारण हमें स्वयं ही करना चाहिए।

स्कूली घण्टों के अतिरिक्त जो समय बच जाता है उसका सुनियोजन करना अभिभावकों का काम है। वार्तालाप, खेलकूद, रहन-सहन, शिष्टाचार, मनोरंजन आदि में जो समय व्यतीत होता है वस्तुतः शिक्षा का असली समय वही है। गुण, कर्म, स्वभाव की प्रक्रिया इसी समय बनती है। घर ही संस्कारों की पाठशाला है। यहाँ घर से तात्पर्य उस छोटे से घरौंदे से नहीं है, जिसमें खाने-सोने का प्रबन्ध होता है। यह कार्य तो एक छोटी-सी कोठरी में ही हो जाता है। बच्चा सारा दिन इतने ही दायरे में व्यतीत नहीं करता वरन् साथियों के साथ खेलने का उसका एक स्वतन्त्र परिकर होता है। घर में रहेगा तो भी उसे एक साथी चाहिए। घर से बाहर रहेगा तो भी साथियों के बिना गुजारा नहीं। जिनके साथ रहता है वस्तुतः वही परिवार है। इसी का प्रभाव बच्चों के गुण, कर्म, स्वभाव पर पड़ता है।

आश्चर्य इस बात का है कि बालकों के परिकर पर ध्यान नहीं दिया जाता। वे दिन भर कहाँ रहते हैं ? किनके साथ रहते हैं ? क्या करते हैं ? इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। जबकि सबसे अधिक देखभाल इसी के सम्बन्ध में होनी चाहिए। अच्छा हो बड़े अपने को ही बच्चों का साथी, सहयोगी, मित्र बनाने की कोशिश करें और उनके खाली समय को इस प्रकार खेलने-खिलाने में लगावें, जिसमें वे सुसंस्कारों का अभ्यास कर सकें। यदि स्वयं उतना समय नहीं पाते तो जिनके साथ रहते हैं। उनकी गतिविधियों को उपयुक्त उत्तम बनाने का प्रयत्न करें।

शिक्षा व्यावहारिक व अनौपचारिक हो

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ है। ग्रामीण अंचल में स्कूल, कॉलेज खुलते जा रहे हैं किन्तु प्रगति के इस दौर में भी बच्चों की तरह एक बहुत बड़ी संख्या दसवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते ही पढ़ाई-लिखाई पर विराम देती देखी गई है। आर्थिक अभाव, परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी, अदूरदर्शिता और अन्य मान्यताएँ आदि ऐसे कारण हैं, जो उठती उम्र के बच्चों के भीतर से उमंगने वाले उत्साह-उल्लास पर पानी फेर देते हैं और उसे निराशा-हताशा की गलियों में भटकने के लिए विवश करते हैं। ऐसी विषम एवं विपन्न परिस्थितियों में उनके मन-मस्तिष्क में एक ही चिन्तन उमड़ता-घुमड़ता रहता है कि इस किताबी ज्ञान की अपेक्षा हाथ का कोई काम सीख लिया होता तो उसकी कुछ उपयोगिता भी थी और सार्थकता भी।

युवा वर्ग में यह निराशा अधिक देखी जाती है। प्रश्न यह उठता है कि यह निराशा क्यों हाथ लगी ? उनका प्रगति पथ कैसे अवरुद्ध हो गया ? गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर एक ही तथ्य सामने आता है कि अब तक शिक्षा नीतियों के निर्धारण में व्यावसायिक नियोजन को कम महत्त्व दिया गया है। बढ़ती हुई बेरोजगारी ने तो स्थिति को और भी अधिक गम्भीर बनाकर छोड़ दिया है। जो शिक्षा दी गई थी उससे पाया कम और खोया अधिक है। निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति तक नहीं हो पाई, जब कि विद्यार्थियों की संख्या में दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होती गई। आँकड़े बताते हैं कि गत ४६ वर्षों में स्कूलों की संख्या १३ हजार से बढ़कर २ लाख और बच्चों की संख्या २२ लाख से बढ़कर ४ करोड़ तक जा पहुँची है। पढ़ाई-लिखाई में युवा वर्ग की अभिरुचि तो है किन्तु भविष्य में अनिश्चितता दीखने और कोई सन्तोषजनक परिणाम न मिलने के कारण उनका उत्साह-उमंग ठण्डा पड़ता जा रहा है। फलतः स्कूली शिक्षा के प्रति अभिरुचि का होना स्वाभाविक ही है। इसका अनुमान शैक्षणिक उपलब्धियों को देखकर आसानी से लगाया जा सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार स्नातक स्तर तक पहुँच कर १५ प्रतिशत छात्र ही ५० प्रतिशत से अधिक अंक परीक्षा में प्राप्त करते हैं। शेष ८५ प्रतिशत विद्यार्थी या तो ५० प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करते हैं अथवा अनुत्तीर्ण की श्रेणी में अपने को दर्ज करके निराशा-हताशा का परिचय देते हैं। इतनी बड़ी संख्या में विद्यार्थी सब तरह से अपने को अनुपयोगी समझते और राष्ट्र के लिए भारभूत बनते ही देखे जाते हैं। इनकी शैक्षणिक व्यवस्था उपयोगी कम और अनुपयोगी अधिक है। आज देश में करोड़ों की संख्या में स्नातक स्तर की उपाधि प्राप्त छात्र किसी भी रोजगार के लिए अपने को व्यर्थ-निरर्थक ही मानते हैं। क्योंकि आरम्भ में ही उन्हें रोजगारोन्मुख शिक्षा से वंचित रखा गया है।

शिक्षा के साथ अनुत्पादकता का दृष्टिकोण जुड़ जाने से ही ऐसी दयनीय स्थिति सामने आ गई है, जबकि स्कूल-कॉलेजों में उत्पादक कार्य को ही शिक्षा का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए था। इस प्रयोजन की आपूर्ति हेतु अंशकालिक अध्यापकों के रूप में कारीगरों, हस्तशिल्पियों और विभिन्न प्रकार के उद्योग-व्यवसाय से सम्बद्ध व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाया जा सकता है। देश में लाखों-करोड़ों बच्चे अपने घर के पास रहकर ही शिक्षा प्राप्त करते हैं। अच्छा तो यही रहे कि शिक्षा पर उच्चस्तरीय नियोजन एवं प्रबन्ध थोपने की अपेक्षा स्थानीय आवश्यकताओं की आपूर्ति पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाय। शिक्षण संस्थानों में क्षेत्रीय भाषा के अनुरूप ही शिक्षण उपलब्ध कराया जाने लगे तो इसके सत्परिणाम अवश्य सामने आ सकते हैं। इसका एक सीधा लाभ यह होगा कि जो बच्चे किताबी बोझ से बोझिल होकर बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं, उनको भी आगे बढ़ने और अपनी विवशता अर्जित कर सकने का सुअवसर मिलेगा। दूसरे शब्दों में, इसे शिक्षा का व्यवसायीकरण भी कहा जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा अभियान में आने वाले निरक्षर प्रौढ़ों को भी इस बात के लिए अभिप्रेरित किया जाय कि वे अपने बच्चों में स्कूली शिक्षण के प्रति अभिरुचि जगाएँ और उत्पादक शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता को गले उतारें।

आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग में स्कूल से पढ़ाई छोड़ने वाले युवकों को चाहिए कि वे कुछ व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त कर लें। कुछ कार्य ऐसे है, जिन्हें गैर-मैट्रिक भी आसानी से कर सकता है। लोहार का काम ऐसा है, जो लोहे को अपेक्षित तापमान में गरम करके पीटकर अनेकानेक कल-पुर्जे विनिर्मित कर सकता है। बेल्डिंग का कार्य भी वह सँभाल लेता है। इस क्षेत्र में अल्पकालीन प्रशिक्षण और थोड़ी-सी पूँजी लगाकर अच्छा व्यवसाय चल पड़ता है। कोई समय था जब बढ़ई के कार्य को निम्न स्तर का समझा जाता था, किन्तु आज की परिस्थितियाँ वैसी नहीं रही हैं। भवन निर्माण विकास की प्रक्रिया में अप्रत्याशित परिवर्तन आया है। फर्नीचर, आल्मारियाँ, ड्रेसिंग टेबल तथा सोफासेट बनाने का कार्य ऐसा है, जिसमें मामूली से तकनीकी प्रशिक्षण से अच्छा रोजगार मिल जाता है। आजकल बिजली फिटर की भी आवश्यकता कम नहीं है। मोटर पंखे, स्विच, गियर ठीक करने के लिए बिजली मैकेनिक ही चाहिए। किसी वस्तु पर एक विशेष स्थान पर छिद्र करना हो तो ड्रिलिंग मशीन पर जाना होता है, इसे चलाने के लिए ड्रिलरों की माँग भी तेजी से बढ़ी है। आवास समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके लिए उस राज-मिस्त्री की जरूरत है, जो भवनों की दीवारों, भट्टी, चिमनी, नाली, सड़कें, गुफाएँ, फैक्ट्री आदि के निर्माण कार्य को पूरा करने में ईंटों और पत्थर की चिनाई कर सकता हो। इसमें अच्छी-खासी राशि हस्तगत होती रह सकती है। सड़क यातायात में बेतहाशा वृद्धि के संकेत मिल रहे हैं। इसलिए मोटर गाड़ियों की धुलाई, सफाई व मरम्मत के लिए मोटर मैकेनिकों की बड़ी आवश्यकता होती है। इस क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त करके भी बेकारी की समस्या का समाधान हो सकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि के व्यवसायीकरण से नये-नये साधन सुविकसित होते जा रहे हैं। ट्रैक्टर मैकेनिक आदि की आवश्यकता निरन्तर बनी ही रहती है। पेंटर का धन्धा ऐसा है, जो पेन्टिंग के एक छोटे से ब्रुश से ही किसी चीज में ऐसा रंग भर देता है, जिसकी सुन्दरता देखते ही बनती है। इतना ही नहीं पेन्टिंग करने से उत्पादों के बिक्रीगत मूल्य में अभिवृद्धि होने लगती है। ऐसी वस्तुओं के क्रेताओं की संख्या भी बढ़ जाती है। एक कम पढ़ा-लिखा युवक भी इस क्षेत्र में आसानी से सफलता हस्तगत कर सकता है। आकृतिकार के स्वरूप में भी अपनी बौद्धिक क्षमता को विकसित करके रोजगार प्राप्त किया जा सकता है।

अनौपचारिक शिक्षा का स्वरूप

स्कूलों में पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, जिनमें भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र जैसे विषय विस्तारपूर्वक लिखे होते हैं। इन सब में से बहुत भाग ऐसा होता है, जो व्यावहारिक जीवन में आए दिन काम आता हो। जिस प्रसंग की विस्तृत जानकारी नित्य प्रति काम आती है, उनका उल्लेख यत्र-तत्र संकेत रूप में ही होता है। उन्हें तर्क, तथ्य, प्रमाण तथा उदाहरण सहित इतनी अच्छी तरह नहीं बताया गया होता है, जिससे कि व्यवहार एवं जीवनक्रम में आए दिन सम्मिलित रहने वाली समस्याओं का समावेश सरल-सम्भव हो सके। यह विषय ऐसे हैं, जिनकी आपूर्ति अध्यापकों एवं अभिभावकों को करनी चाहिए। यदि उनके पास इसके लिए समय न हो अथवा वैसी जानकारी का क्रमबद्ध अनुभव-अभ्यास उन्हें न हो तो उस आवश्यकता की पूर्ति किसी अन्य माध्यम से की जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में तो यह प्रसंग और भी कम व्यवहार में आता है। प्राय: दो घण्टे की ही प्रौढ़ पाठशालाएँ चलती हैं। उसमें साक्षरता का आरम्भिक ज्ञान समविष्ट रहता है। प्राइमरी स्कूलों को वस्तुत: पढ़ने-लिखने की योग्यता ही समझनी चाहिए। कामचलाऊ हिसाब भी उसमें रहता है। पाठ्य पुस्तकों में जिन बातों का प्रौढ़ शिक्षा में समावेश रहता है, वह भी बाल-बोध स्तर की होती हैं। प्राथमिक पाठशालाओं का पाठ्यक्रम लिखने-पढ़ने के सामान्य ज्ञान बोध तक ही सीमित रहता है। उनमें जो अतिरिक्त उल्लेख रहता है, वह भी सांसारिक ज्ञान का ही एक भाग होता है। व्यावहारिक जीवन की समस्याओं का समाधान एवं आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने वाला हल उनमें सम्मिलित कहाँ होता है?

ऐसी दशा में शिक्षा चाहे स्कूली हो या प्रौढ़ शिक्षा स्तर की, उसमें इस बात की कमी ही रह जाती है कि स्वास्थ्य रक्षा, आहार-विहार, मानसिक सन्तुलन, उपार्जन-उपभोग, पारस्परिक व्यवहार, परिवार के साथ निर्वाह, शिष्टाचार, सामाजिक तालमेल, अवांछनीयताओं से निपटना, उलझनों को सुलझाना, संकटों से निपटना, विशेष प्रसंगों के अवसर आदि जिन विशेष जानकारियों की आवश्यकता अक्सर पड़ती रहती है, उनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बताया गया हो। इस अभाव के रहते बहुत कुछ ऐसा जानने योग्य रह जाता है, जिनके आधार पर व्यवहारकुशल बना जा सके। सज्जनता के सम्पर्क में आने और दुर्जनता से बच निकलने के दाँव-पेंच बताए गए हों। उस अभाव के रहते यही कहा जा सकता है कि शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था ऐसी नहीं है, जो चिन्तन, चरित्र, व्यवहार के हर पक्ष पर प्रकाश डाल सके। अनौचित्य से बच सके और प्रगति के राजमार्ग पर चल सकने में अभीष्ट सहायता कर सके।

इस कमी की पूर्ति दूसरे माध्यमों से की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ स्कूली बच्चों के लिए छुट्टी के समय सार्वजनिक प्रयत्न से बाल-संस्कार शालायें चलाई जानी चाहिये। भले ही उनका समय दो घण्टे जितना स्वल्प ही क्यों न हो ? स्कूलों में अध्यापक ४५ मिनट के लैक्चर देकर छुट्टी पा लेते हैं। घर पर अभ्यास करने के लिए कह देते हैं। घर पर बच्चे घरेलू वातावरण में फँस जाते हैं। मौज-मस्ती करते रहते हैं। घर पर पढ़ाई का माहौल रहता नहीं। ऐसी दशा में पढ़ाई के नाम पर उतना ही बन पड़ता है, जो स्कूल में पढ़ा-सुना था। यह इतना अपर्याप्त होता है कि उसी के भरोसे रहने वाले बच्चे फेल हो जाते हैं। ट्यूशन के लिए घर पर मास्टर बुलाना इतना महँगा पड़ता है कि उसे मध्य स्तर का कई बच्चों वाला व्यक्ति इन दिनों वहन नहीं कर सकता है। ऐसी दशा में सामान्य छात्र निराश ही रहते हैं और असफलता से मन टूट जाने के कारण आगे की पढ़ाई ही बन्द कर देते हैं। यह विषम किन्तु वास्तविक स्थिति है। इसका कोई न कोई हल निकलना ही चाहिए अन्यथा मध्यवर्गीय बालकों का भविष्य अन्धकारमय ही बना रहेगा।

जहाँ भी स्कूल है, वहाँ यह प्रयत्न सार्वजनिक स्तर पर होना चाहिए कि सेवाभावी अध्यापक मिलें। सभी क्लासों के बच्चे भर्ती हों। उनमें स्कूली पढ़ाई पूरी कराने के लिए 'कोचिंग' स्तर की कक्षाएँ चलें। साथ ही आधा घण्टा प्रश्नोत्तरी के रूप में निर्धारित रहे, जिसमें जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों पर प्रश्नोत्तर रूप में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के स्वरूप और विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न प्रकार के समाधानों की प्रकिया पूछी-बताई जाती रहे। इसमें श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, शालीनता और सहकारिता का पक्ष विशेष रूप से उभारा जाय। अवांछनीयता से बचते रहने के लिए उन सभी प्रसंगों से सावधान किया जाय जो दुर्गुणों के रूप में पीछे पड़ सकते हैं और अनेक संकट खड़े कर सकते हैं। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी को कब, किस तरह, कहाँ, किस प्रकार कार्यान्वित किया जाय ? इसकी जानकारी उदाहरणों का सन्दर्भ देते हुए उपस्थित शिक्षार्थियों को समझाई जानी चाहिए। सामान्य ज्ञान की दृष्टि से लड़कियाँ भी इन संस्कारशालाओं में सम्मिलित रह सकती हैं। बन पड़े तो खेल-कूद, स्काउटिंग, नर्सिंग, फर्स्ट एड, शाक-वाटिका, बागवानी जैसे सरल प्रसंगों को भी इस शिक्षण में सम्मिलित रखा जाय।

महिलाओं के लिए साप्ताहिक प्रसंगों के रूप में भी प्रश्नोत्तरी के माध्यम से नारी समस्याओं से सम्बन्धित सभी उतार-चढ़ावों को हृदयंगम कराया जाय। ऐसा भी हो सकता है कि नारी प्रौढ़ शिक्षा या नर प्रौढ़ शिक्षा में सम्मिलित होने वालों को सप्ताह में दो दिन उनके सामने आते रहने वाले प्रसंगों के सही समाधान प्रश्नोत्तरी के रूप में बताए जाएँ। इन कक्षाओं को चलाने के लिए विशेष अनुभवी व्यक्ति ही अध्यापन का कार्य करें, जिससे भ्रम उत्पन्न करने वाली जानकारियों के मिलने का खतरा न रहे।

आजीविका उपार्जन के लिए हर शिक्षित नौकरी की आशा करता है। अँग्रेजों के जमाने में यह सरल था और सम्भव भी। उन्हें ऐसे काले साहबों की आवश्यकता थी, जो उनकी भाषा जानते हों और शासकीय कामकाजों में मदद कर सकते हों। तब थोड़े पढ़े-लिखों की भी नौकरी लग जाती थी। शिक्षा का अतिशय अभाव होने के कारण यह तालमेल बैठ भी जाता था। इसलिए लोकमान्यता बन गई कि पढ़ों की नौकरी तुरन्त लग जाती है और घरेलू कामकाज करने की अपेक्षा उसमें मेहनत भी कम पड़ती है। पैसा भी अधिक मिलता है और इज्जत भी समझी जाती है। उस समय पढ़ाई और नौकरी पर्यायवाची बन गए हों तो आश्चर्य नहीं।

आज परिस्थितियाँ अत्यधिक बदल गई हैं। नई पीढ़ी पढ़ाई पर अधिक ध्यान दे रही है। स्कूल-कॉलेज से बड़ी संख्या में पढ़कर लाखों की संख्या में छात्र निकलते हैं और सभी सरकारी नौकरी की तलाश में फिरते हैं। इतनी जगहें हर साल कहाँ से आएँ ? अनुसूचित जातियों में नौकरियों में आरक्षण हो जाने से सवर्ण वर्ग के शिक्षितों

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए जगह और भी कम पड़ गई है। यही कारण है कि जगह खाली होने पर स्थान पाने के लिये हजारों की अर्जियाँ पहुँचती हैं। स्कूलों में नकल करके पास होने का प्रचलन बढ़ जाने से नियुक्ति के लिये हुई प्रतिस्पर्द्धा में अधिकांश योग्यता के अभाव में अनुत्तीर्ण भी रहते हैं। ऐसी दशा में बेकारी-बेरोजगारी का दौर दिन-दिन बढ़ता जाता है।

युवक अपनी महत्त्वाकांक्षा को न दबा पाने के कारण उद्धत काम' करने पर उतारू होते हैं और समाज में अव्यवस्था फैलती है। अपराध बढ़ते हैं। पढ़े-लिखों के समर्थ घरों के नवयुवक जब अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनाते हैं तो वे और भी अधिक भयंकर होती हैं। ऐसी दशा में वर्तमान शिक्षा की उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

समाधान एक ही है कि कम पूँजी से और सामान्य अनुभव से चल सकने वाले ऐसे उद्योगों की स्थापना की जाय, जिनका उत्पादन आस-पास के क्षेत्र में खप भी सके, जो वस्तुएँ दूर क्षेत्र में बिकती हैं, माँग भी उनकी कम रहती है। ऐसे व्यवसाय देखने में भले ही अधिक लाभ वाले प्रतीत होते हों पर वस्तुतः उनकी बिक्री न होने से प्रगति में अवरोध ही उत्पन्न हो जाता है। कुटीर उद्योग या व्यवसाय ऐसे चुने जाने चाहिए, जो समीपवर्ती माँग के अनुरूप हों। उन्हें आरम्भ करने के लिए अनुभव और पूँजी की दो आवश्यकतायें प्रधान रूप से सामने आती हैं। पूँजी के लिये सहकारी समितियों का निर्माण करना चाहिए जो पूँजी देने के साथ-साथ कच्चा माल उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने और बनी वस्तुओं को उपयुक्त स्थानों पर भेजकर कार्य आरम्भ करने वालों को उचित सुविधा दे सके। अनुभव के लिये ऐसे विद्यालय हर क्षेत्र में खुलने चाहिए, जिनमें सबेरे पहुँच कर शाम को घर लौटा जा सके। कामचलाऊ शिक्षा बिना अधिक समय गँवाये और विस्तार में जाये उचित समय में सिखाई जा सके। इस प्रकार के सरकारी विद्यालय जहाँ-तहाँ होते तो हैं, पर उनमें छात्रों के लिए सीमित स्थान होते हैं। जहाँ-जहाँ वे होते हैं, छात्रों को वहीं रहना पड़ता है। छात्रावास और भोजन का प्रबन्ध स्वयं करना पड़े तो कठिनाई और भी अधिक बढ़ जाती है। अधिक सुविधाजनक यह है कि हर क्षेत्र में ऐसे उद्योग विद्यालय होने चाहिए, जिनमें सैद्धान्तिक सीमित और व्यावहारिक ज्ञान अधिक दिया जाय। शिक्षार्थी सीखने के साथ-साथ श्रम भी करे और उत्पादन भी। इस प्रकार वे एक प्रकार से स्वावलम्बी शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार का आश्रय तकना गलत है। वह जो कर रही है, उसके लिए बजट कम पड़ता है फिर यदि वह और भी अधिक व्यय करे तो कर्मचारियों, अफसरों का व्यय और भी बढ़ेगा जो जनता को नये टैक्सों के रूप में ही चुकाना पड़ेगा।

इस झंझट में पड़ने की अपेक्षा उपयुक्त यही है कि उद्योग विद्यालयों का प्रबन्ध भी उसी प्रकार जन स्तर पर किया जाय, जैसा कि प्रौढ़ शिक्षा को देशव्यापी बनाने और जन-जन तक पहुँचाने के लिए सोचा गया है। यह कार्य लोकसेवियों को मिल-जुलकर जनसहयोग से ही करना चाहिए। अभी भी कारीगरों के यहाँ कई-कई लड़के काम सीखने जाते रहते हैं। उन्हें लम्बे समय तक मेहनत मुफ्त में करनी पड़ती है। तब धीरे-धीरे उद्योग के रहस्य दिमाग में बैठते हैं। फिर एक कारीगर के यहाँ एक ही चीज बनती है। सीखने वालों को अन्य उद्योगों के सम्बन्ध की कई प्रकार की जानकारियाँ प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता। फलतः वे कई व्यवसायों का तुलनात्मक अध्ययन करके उनमें से किसी एक का उपयुक्त चुनाव कर सकने में समर्थ नहीं होते।

ऐसे उद्योग शिक्षा संस्थानों की स्थापना हर जगह होनी चाहिए। जिनके पास जमीन है, पूँजी का प्रबन्ध है, लोकसेवा की लगन है, उन्हें ऐसे विद्यालय अपने बलबूते खड़े करने चाहिए। पिछले दिनों देवालयों, धर्मशालाओं के निर्माण में धर्मात्मा लोगों की अभिरुचि रही है। अब समय की महती आवश्यकता को देखते हुए ऐसे स्वावलम्बन विद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए। नौकरी की ओर से नई पीढ़ी का चिन्तन मोड़ा जाना चाहिए। यह प्रचार-प्रक्रिया प्रभावी हुई तो छात्रों की किसी विद्यालय में कमी न रहेगी। घर-घर धूम्ररहित चूल्हे बनाना, गोबर गैस प्लांट खड़े करना समय की आवश्यकता है। इन कार्यों में कारीगरी की बड़ी टीमें अपने क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करने में लगी रह सकती हैं। घरेलू शाक-वाटिकाओं को घर-घर स्थापित करने के लिए बीज भण्डारों, पौधशालाओं की आवश्यकता पड़ेगी। घरेलू सामान की टूट-फूट होने पर उसकी मरम्मत करके फिर से काम आने लायक बना देना एक उपेक्षित किन्तु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उद्योग है। इन सबको सिखाने के लिए कोई सम्पन्न उदारचेता इन संस्थानों को खड़ा कर सकते हैं, जो देवालय निर्माण की तुलना में किसी भी प्रकार कम महत्व के नहीं हैं। एक व्यक्ति न कर सके तो उसे सार्वजनिक चन्दे से खड़ा करना चाहिए। जहाँ से जितनी सरकारी मदद मिल सके लेनी चाहिए। उद्योगों का शिक्षण तथा सहकारिता के आधार पर उनका व्यवस्थाक्रम चलाना आज की महती आवश्यकता है, गरीबी और बेकारी मिटाने का यह एक सुनिश्चित समाधान है। इनकी स्थापना के लिए सभी देशप्रेमियों को एकजुट होकर काम करना चाहिए।

इन उद्योग विद्यालयों के साथ नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक प्रशिक्षण का वह आधार भी जुड़ा रखना चाहिए, जिसके आधार पर शिक्षार्थियों का व्यक्तित्व प्रखर, प्रतिभावान और प्रामाणिक बन सके। वे अपने लिए, परिवार और समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आजीविका प्रधान—अनौपचारिक शिक्षा

बड़े होने पर बच्चे का भविष्य क्या बने ? इस सन्दर्भ में बचपन से ही सोचना आरम्भ कर देना चाहिए और किशोरावस्था में प्रवेश करते-करते उसे उस दिशा में अग्रसर भी कर देना चाहिए, जैसा कि उन्हें भविष्य में कुछ बनना है। बच्चे की समझ उतनी विकसित नहीं होती कि वे अपनी परिस्थितियों तथा आजीविका उपार्जन के लिए काम का चयन कर सकें। उन्हें तो जो भी आकर्षक लगता है, उसी की इच्छा व्यक्त करने लगते हैं। उनके लिए यह अनुमान लगा सकना कठिन होता है कि जो चाहा गया है, उसे उपलब्ध करने के लिए अवसर भी हाथ में है या नहीं।

अँग्रेजी शासन के जमाने में, शासकों को ऐसे कर्मचारियों की आवश्यकता रहती थी, जो अँग्रेजी का साधारण ज्ञान प्राप्त करके उनके साथ ताल-मेल बिठा सकें और जो काम उन्हें बताया गया है, उसे ठीक प्रकार निर्वाह कर सकें। देश बहुत बड़ा है, उस पर शासन चलाने के लिए तब विभाग भी अनेक थे और उनके कर्मचारियों की आवश्यकता भी बड़ी संख्या में थी। अतएव शिक्षा प्राप्त करके निकलने वालों को नौकरी आसानी से मिल जाती थी। शासकों की भाषा अँग्रेजी थी। इसलिए शिक्षा में उसी की प्रधानता भी रहती थी।

तब कि अपेक्षा अब समय बहुत बदल गया है। परिस्थितियों में भारी अन्तर हुआ है। ऐसी दशा में वह सोच भी निरर्थक हो गई कि हर पढ़े-लिखे को नौकरी करनी है और वह उसे सरलतापूर्वक मिलती भी है। यही सोच अगर छात्रों और अभिभावकों की रही तो वह उस समय के लिए ठीक था, जब शिक्षा व्यवस्था कम थी। विद्यार्थी भी कम संख्या में ही उत्तीर्ण होते थे और वे किसी न किसी प्रकार नौकरियों में खप जाते थे। कुछ अर्द्ध-सरकारी और प्राइवेट व्यावसायिक संस्थाएँ भी नौकरी में खपा लिया करती थीं।

पर अब वह स्थिति बिल्कुल वैसी नहीं रही। देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी बन जाने पर अब अँग्रेजी का महत्त्व घट गया है। अगले दिनों तो वह और भी घट जाएगा। शिक्षा का विस्तार तेजी से हो रहा है। स्कूल-कॉलेज तेजी से खुल रहे हैं। अभिभावकों में पढ़ाने की और छात्रों में पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह प्रसन्नता की बात है, पर देखना यह भी चाहिए कि हर शिक्षित जो नौकरी चाहता है वह क्या मिल सकेगी ? हर साल जो लाखों छात्र ऊँची-ऊँची कक्षाओं में उत्तीर्ण होकर निकलते हैं, क्या उन सबको नौकरी मिल जाएगी ? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर 'नहीं' में दिया जा सकता है ?

जितने छात्र विद्यालय छोड़ते हैं उसकी तुलना में दसवें भाग को भी सरकारी नौकरी मिल सकना सम्भव नहीं होगा। जब उतनी जगहें ही नहीं हैं। तो नौकर किस काम के लिए रखा जाएगा ? कौन रखे ? उनकी नियुक्ति किस काम के लिए हो ? अगले दिनों शिक्षा प्राय: अनिवार्य स्तर की हो जाएगी। अधिकांश व्यक्ति पढ़े-लिखे होंगे और वे सब यदि नौकरी चाहें तो उन्हें अपने यहाँ स्थान दे सकना न सरकार के लिए सम्भव हो सकता है और न वे प्राइवेट फर्मों में ही खप सकते हैं। ऐसी दशा में एक नई समस्या उत्पन्न होती है, शिक्षितों की बेकारी। जो साधारण लोगों की बेकारी की तुलना में और भी अधिक भयंकर होती है।

स्कूल में दाखिला लेने से लेकर पढ़ाई छोड़ते समय की लम्बी अवधि में विद्यार्थी व उनके अभिभावकों ने एक सपना सँजोया होता है—नौकरी मिलने का। इस अवधि में काफी श्रम, समय, कौशल और धन खर्च हो चुका होता है। सभी को दाँव पर इसीलिए लगाया जाता है कि ऊँची नौकरी मिलेगी, पर जब वस्तुस्थिति सामने आती है कि दस पीछे एक को भी स्थान मिलने की गुंजायश नहीं है, तो शेष नौ पर क्या बीतती है ? इसे भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। कल्पना, कामना और मान्यता का रचा हुआ संसार जब इस प्रकार एकाकी टूट जाता है, तो प्रतीक्षा में लगे हुए लोगों का मनोबल बुरी तरह टूटता है। इस दुर्भाग्य का दोष जिस-तिस पर देने से मन भले ही कुछ हल्का कर लिया जाय, पर मूल समस्या तो जहाँ की तहाँ रहती है। सँजोई हुई आकांक्षाओं का साथ ऐसी नौकरी से जुड़ा होता है, जिसमें रौब, रुतबा भी रहे। ठाठ-वाट बनाए रहने लायक पैसा भी मिले और शारीरिक श्रम से बचकर कुर्सी-मेज पर बैठे रहने जैसी आराम-तलबी का काम भी मिले। इतनी विशेषताओं वाली नौकरी बड़े सरकारी अफसरों की ही हो सकती है। इसके लिए आई. सी. एस., पी. सी. एस. जैसी प्रतिस्पर्द्धाओं में बैठना पड़ता है, जिन्हें उत्तीर्ण करना किन्हीं विरलों के लिए सम्भव होता है।

नकल-टीप के प्रचलन वाली पढ़ाई में छात्र किसी प्रकार नीची कक्षाओं में तो उत्तीर्ण होते रहते हैं, पर जब उन्हें परीक्षा आयोगों के सामने बैठना पड़ता है तब बगलें झाँकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। थर्ड डिवीजन पास होने वालों को तो बड़ी कक्षाओं में प्रवेश पाना तक कठिन हो जाता है, फिर ऊँची नौकरी पाने में उन्हें सफलता कैसे मिले ? बहुत ऊँचा सोचते रहने वालों को जब कामचलाऊ जगह भी नहीं मिलती और सर्वथा निराश रहना पड़ता है, तो स्थिति बड़ी विषम हो जाती है। महत्त्वाकांक्षाएँ जिसने सँजोई न हों, उसके लिए तो असफलता मिलने पर दूसरा कुछ करने लगना भी बन पड़ता है, पर कई मंजिलें ऊँचे मकान पर से गिरने पर तो करारी चोट ही लगती है। बहुत ऊँचा सोचने, चाहने वाले जब नीचे गिरते हैं, तो चोट खाकर तिलमिला जाते हैं। सब ओर अँधेरा देखने पर वे या तो अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं या फिर अपराध कर्म करने में कदम बढ़ाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ भी न बन पड़ने पर सभी सम्बन्धियों, परिवार वालों के व्यंग्य-उपहास सहने पड़ते हैं। इतने पर भी आजीविका उपार्जन के प्रश्न का हल तो होता नहीं। असमंजस की स्थिति में मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और अपनी पढ़ाई को, भाग्य को, दिशा निर्धारण को कोसता रहता है।

अत्यन्त प्रतिभाशाली, सदा फर्स्ट आने वाले कुछेक विशेष प्रतिभावान अपवादों को छोड़कर सामान्य स्तर के सभी लोगों को बच्चे की शिक्षा का दिशा-निर्धारण करते समय बहुत समझ-बूझ से काम लेना चाहिए। सोचना चाहिए कि हर शिक्षित को अच्छी नौकरी मिल सकना जब सम्भव नहीं है, तो अपनी गणना सामान्य स्तर के सभी लोगों में ही क्यों न कर ली जाय और वह विकल्प खोजते रहना चाहिए, जिसका सामना नौकरी न मिलने की दशा में सामने आने ही वाला है।

गुंजायश हो तो पैतृक धन्धा अपनाना चाहिए। उसमें स्वाभाविक ज्ञान भी होता है और व्यवहार में उस विधा का समावेश रहने के कारण उतनी प्रवीणता अनायास ही उपलब्ध हो जाती है, जो नये लोगों के लिए बहुत प्रयत्न करने पर हस्तगत होती है। व्यवसाय के उतार-चढ़ावों को आरम्भ से ही सीखते रहने पर उतनी चतुरता हस्तगत हो जाती है कि तात्कालिक सफलता आरम्भ से ही मिलने लगे। काम आरम्भ करने के साधन भी घर में ही मिल जाते हैं। नये सिरे से काम शुरू करने वालों की तरह और कुछ नया जुटाना नहीं पड़ता है। इसीलिए अच्छा हो कि पैतृक व्यवसाय को बढ़ाकर भाई-भाइयों को साथ नहीं तो समीप रहने और सुख-दुःख में सहभागी बनने का अवसर तो मिलता ही रहे।

ध्यान कुटीर उद्योगों, छोटे-बड़े व्यवसायों की ओर ही जाना चाहिए। उससे गुजारे भर को कहीं से भी आसानी से निकल सकता है। बहुत बड़ी धनराशि कमाने, कोठे-तिजोरी भरने, बैंक बेलेन्स बढ़ाने का युग जा रहा है, जो अभी है, अगले दिनों न रहेगा। इसलिए अभिभावकों और बालकों के मन में आरम्भ से ही यह तथ्य जमा देना चाहिए कि अब किसी को धन-कुबेर बनने की आशा नहीं सँजोनी चाहिए औसत नागरिक स्तर में निर्वाह करने की नियति को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी में भलाई है और इसी में सुविधा भी। विशेषतया यह सब और भी अधिक आवश्यक है जबकि ग्राम जीवन बिताना हो। तथ्य यह भी सामने रखना चाहिए कि बड़े शहर अगले दिनों उजड़ेंगे और देहात अपनी प्रगति करते हुए उस स्तर तक पहुँचेंगे, जिसमें कि शारीरी सुविधाओं की अपेक्षा की जाती है। शुद्ध जलवायु, सस्ते में गुजारा और सामाजिक जीवन की सुविधाओं को देखते हुए अगले दिनों अधिक घिचपिच वाले बेतुके शहरों की अपेक्षा हर कोई यह पसन्द करेगा कि वह गाँव छोड़कर शहरों की ओर न भागे। जब शहर वाले गाँवों की ओर वापस लौटने की तैयारी कर रहे हों, तब उस प्रचलन को भी अमान्य ही ठहराना चाहिए, जिसमें लोग गाँव छोड़कर शहरों में बसने की कल्पना किया करते थे।

जापान की तरह भारत को भी कुटीर उद्योगों पर निर्भर होने का अभ्यास करना चाहिए। इस सन्दर्भ में लम्बे समय की उबाऊ शिक्षा का बोझ बच्चों पर लादने और ढेरों पैसे खर्च करके अन्त में निराश होने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि प्रायः मैट्रिक स्तर की पढ़ाई पढ़ाकर सामान्यजन कुटीर उद्योगों की ओर ध्यान दें और कृषि, वाणिज्य, गौरक्षा को आजीविका का माध्यम बनाने की बात सोचें।

अनौपचारिक शिक्षा से ही जन चेतना को जागृत करना सम्भव

संस्थाबद्ध शिक्षा का वर्तमान स्वरूप औपचारिक है। उसकी अल्प उपयोगिता और अधिकांश में निरर्थकता अब सर्वविदित है। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा का काम शासन की प्रेरणा से शुरू हुआ है। इस प्रक्रिया को सही रूप में आगे बढ़ाना जरूरी है और यह काम सच्ची लोकसेवी संस्थाओं का है। सांस्कृतिक जागरण और लोकमंगल की साधना के लिए संकल्पित व्यक्तियों एवं संस्थाओं को व्यापक अनौपचारिक शिक्षण-प्रक्रिया द्वारा लोकचेतना को जागृत करने के लिए समर्पित भाव से जुटना चाहिए। अनौपचारिक शिक्षा का सही स्वरूप यदि समझ लिया जाए और वह प्रशिक्षण व्यापक स्तर पर चल सके, तो इससे सामूहिक व्यक्तित्व-परिष्कार की प्रक्रिया चल पड़े।

शिक्षा को जीवन से सीधे जुड़ी हुई होना चाहिए। जीवन समुद्र की तरह है। उसकी सतह छोटी है। खाना, कमाना, सोना, हँसना, रोना जैसे—क्रियाकलापों की हलचल मात्र जीवन नहीं है। शरीर और परिवार मात्र तक ही सीमित नहीं है। जीवन की तह में अनेक प्रकार के सुख, दुःख, आनन्द, चिन्तन, आकर्षण, विग्रह, उद्वेग, अवरोध, भ्रम, भय भरे पड़े हैं। उसमें परस्पर विरोधी प्रचण्ड धाराएँ बहती हैं—जो एक-दूसरे से टकराती भी हैं और एक दूसरे को उदरस्थ भी करती हैं। विस्फोट, कम्प और तूफान भी आते हैं और कई बार ऐसे अप्रत्याशित शक्ति चक्र उफन पड़ते हैं, जिनसे सागर ही नहीं धरती भी प्रभावित होती है। इसकी तुच्छता इतनी नहीं है जितनी कि आमतौर से समझी जाती है।

इन दिनों जीवन के आरम्भ से ही यह सिखाया जाता है कि उसे क्लर्क, अफसर, व्यापारी, डॉक्टर आदि बनना है। इसी के लिए स्कूल उन्हें तैयार भी करते हैं। किन्तु कोई यह नहीं बताता कि जीवन का क्षेत्र कितना बड़ा और कितना गहरा है ? उसे ठीक तरह समझने और उपलब्धियों से लाभान्वित होने के लिए सोचने और करने का सही तरीका क्या होना चाहिए ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्कूली वातावरण, परीक्षाएँ पास कराने में व्यस्त है। मस्तिष्कीय कुशलता के आधार पर उन्हें श्रेणी प्रदान की जाती हैं। उपलब्ध परीक्षा अंकों के आधार पर उनके स्तर का वर्गीकरण किया जाता है, जिसे कम परीक्षांक मिले उसे अधिक नम्बर पाने वाले की तुलना में 'हेय' ठहराया जाता है। इस प्रकार ऊँच-नीच के आधार पर टिकी एक नये किस्म की जाति-विरादरी खड़ी की जाती है। हो सकता है कि मस्तिष्क का एक अंश प्रकृति प्रदत्त ढंग से विकसित होने के कारण कोई छात्र अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ हो किन्तु जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में उसकी पहुँच बहुत ही भौंड़ी और गन्दी हो। क्या मनुष्य की श्रेष्ठता का श्रेय परीक्षांकों के आधार पर ही निर्धारित होना चाहिए ? जिन्हें कम नम्बर मिले हैं। क्या उन्हें बुद्धू, निकम्मा, हेय स्तर का घोषित कर दिया जाना चाहिए।

एक तो अब परीक्षा के अंकों का दिया जाना ही भ्रष्टतापूर्ण रिश्तों पर अधिक आधारित होता चला जा रहा है, मस्तिष्कीय क्षमता पर कम। लेकिन यदि उस प्रक्रिया को किसी प्रकार शुद्ध भी किया जा सके, तो भी क्या शिक्षा की वह विधि सही कही जा सकती है। क्या अर्थोपार्जन का मार्ग सुलभ कर देना या उस हेतु विशेष अवसर प्रदान करना ही शिक्षा का प्रयोजन होना चाहिए ?

यदि इतनी ही बात है तो उन्हें इतना श्रम कराने और समय गँवाने की क्या आवश्यकता है। बाप-दादों के धन्धे में कुशलता बिना पढ़े या कम पढ़े होने पर भी प्राप्त की जा सकती है और नौकरियों में मिलने वाली राशि की अपेक्षा अधिक आमदनी की जा सकती है, शिक्षा का उद्देश्य इससे अधिक और विस्तृत होना चाहिए। यदि जानकारियाँ मस्तिष्क में ठूँसने का नाम ही शिक्षा है तो उसका सरल तरीका यह है कि कोई साक्षर व्यक्ति विश्व कोष उठाकर अपनी रुचि के विषयों का विवरण पढ़ने लगे तो उन्हें इतनी अधिक जानकारियाँ उपलब्ध हो जाएँगी जितनी प्राध्यापकों को भी नहीं होतीं। इतनी-सी बात के लिए कष्टसाध्य पढ़ाई में सिर क्यों खपाया जाय ? समय क्यों गँवाया जाय ?

शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए—यथार्थता का ज्ञान। दुनिया वैसी ही नहीं है जैसी कि हमें दिखाई देती है—या बताई जाती है। व्यक्ति और समाज की समस्याएँ वही नहीं हैं जिनकी चर्चा की जाती रहती है। यथार्थता की तली तक पहुँचने के लिए किस प्रकार की गोताखोरी की जानी चाहिए, इसी कला का सिखाना शिक्षा का उद्देश्य है। भ्रान्तियों, विकृतियों और कुरीतियों का बन्धन से छुटकारा पाकर स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता प्राप्त करने और जीवन तथा विश्व का यथार्थ स्वरूप समझ सकने के योग्य तीक्ष्ण दृष्टि प्राप्त करना, इसी का नाम मुक्ति है। तत्त्वदर्शियों के कथनानुसार इसी 'मुक्ति' को करतलगत बनाना शिक्षा का मूलभूत प्रयोजन है।

माता-पिता, शिक्षक, धर्मशास्त्र, रीति-रिवाज, पड़ौसी सम्बन्धी, नेता हमें सिखाते हैं और जिस रास्ते पर चलने के लिए विवश करते हैं। आवश्यक नहीं कि वह उचित और यथार्थ हो। यदि हम आँखें बन्द करके किसी लकीर पर चलने के अभ्यासी रहेंगे तो अपनी आत्मा को खो बैठेंगे, एक अन्धे कैदी की तरह पराश्रित मात्र रह जाएँगे। बौद्धिक पराधीनता सबसे बुरे किस्म की गुलामी है। सच्चे शिक्षक वे हैं—सच्चे अभिभावक और हितैषी वे हैं, जो अपने प्रभाव और ज्ञान का उपयोग अपने प्रभाव क्षेत्र में स्वतन्त्र चेतना विकसित करने के लिए करते हैं। यदि कहीं कोई सच्चे अर्थ में 'विद्यालय' जीवित हो तो उसका लक्ष्य भी विद्यार्थियों में स्वतन्त्र चेतना का विकास करना ही होगा। तभी शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त हो सकेगा।

शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए छात्र में वह साहस विकसित करना पड़ेगा कि वह विवेक और तथ्य का सहारा लेकर यथार्थता की तह तक पहुँच सके। दादी क्या कहेगी ? लोग क्या कहेंगे ? पुस्तकों में क्या लिखा है ? शिक्षकों ने क्या समझाया है ? लोग क्या सोचते और क्या करते हैं ? इन सब जंजालों के आवरण चीरकर जो लोग सत्य को समझने और स्वीकार करने को तत्पर हो सकें, ऐसी ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्रसुप्ति से विरत कर सक्रिय जागरण में संलग्न करना ही विद्या का मूलभूत उद्देश्य है। यदि हमें ऐसा कुछ सीखने को नहीं मिलता तो शिक्षा कैसे पूरी हुई ?

अनगढ़, अविकसित लोग प्रचलित ढर्रे पर लुढ़कते रहे हैं। स्वतन्त्र चिन्तन करने, सही राय बताने की ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। आज की प्रचलित औपचारिक शिक्षा ऐसे ही अनगढ़, गतानुगतिक, अनुकरणशील व्यक्तियों को जन्म दे रही है। इसलिए व्यापक पैमाने पर ऐसा अनौपचारिक शिक्षणक्रम चलाया जाना आवश्यक है, जो व्यक्तित्व विकास एवं व्यक्तित्व परिष्कार करे, जो मौजूदा अनगढ़ और अनुकरण-तृप्त मानसिकता के माहौल को बदले तथा स्वतन्त्र चिन्तन-मनन की वह क्षमता विकसित करे, जो किसी भी सुसंस्कृत, परिष्कृत व्यक्तित्व का सुनिश्चित लक्षण है। वह अनौपचारिक शिक्षा जीवन से सीधी जुड़ी हो। जीवन की वास्तविकताओं को समझने की सामर्थ्य दे। प्रत्येक शिक्षार्थी को स्वतन्त्र, शालीन, परिष्कृत व्यक्तित्व के निर्माण की दिशा दिखलाए, ऐसी अनौपचारिक शिक्षा ही शिक्षा का प्रयोजन पूरा करेगी।

प्राचीन गुरुकुलों में अनौपचारिक शिक्षा ही दी जाती थी। गायें चराने, लकड़ियाँ लाने, समाज से भिक्षा लाने जैसी उस समय के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित गतिविधियों से भी शिक्षार्थी जुड़े रहते थे और एकान्त अध्ययन-मनन, विचार-विश्लेषण की आरण्यक-व्यवस्था के आधीन भी रहते थे। इससे वहाँ के जीवन से जुड़े रहते थे, वही जीवन की, अस्तित्व की, प्रकृति की और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विश्व-संचालक चेतन-सत्ता की मूलभूत समस्याओं पर गहन मन्थन भी करते थे। जिससे उन्हें सम्यक्, सन्तुलित विवेक दृष्टि प्राप्त होती थी, जो जीवनभर उनका मार्गदर्शन करती थी। उनका परिष्कृत व्यक्तित्व अपने प्रकाश से समाज में मार्गदर्शन ज्योति-स्तम्भ का काम करता था। व्यक्तित्व के ऐसे परिष्कार में ही अनौपचारिक शिक्षा की सार्थकता है।

शिक्षा कुटीर उद्योगों की दिशा में मुड़े

कोई समय था जब देश में शिक्षा की बहुत कमी थी। अँग्रेजी शासन आया तो वे अपने देश से बाबू लोग सात समुन्दर पार से लेकर तो नहीं आते थे, यहीं के निवासियों को लेकर काम चलाना पड़ता था। ऐसी दशा में हर पढ़े-लिखे को आसानी से नौकरी मिल जाती थी। तब से लेकर अब तक वही एक नशा हर किसी के सिर पर चढ़ा है कि पढ़ाई का मतलब नौकरी। जो पढ़ेगा उसे नौकरी मिलेगी। नौकरी इसलिए भी अच्छी लगती है कि बाबू स्तर के लोग धुले, साफ कपड़े पहनते हैं। मेज-कुर्सी पर पंखे के नीचे बैठकर काम करते हैं। बिना पढ़ों की तुलना में अधिक सम्मान पाते हैं।

समय के साथ परिस्थितियाँ बदल गई हैं। स्कूल-कॉलेजों की संख्या असाधारण रूप से बढ़ी है। लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दिलाने में रुचि लेने लगे हैं। मध्य वर्ग की आर्थिक स्थिति भी सुधरी और महत्त्वाकांक्षा बढ़ी है। फलत: अधिक संख्या में छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं। उन सबकी महत्वाकांक्षा एक ही केन्द्र पर केन्द्रित है कि कोई बड़ा अफसर बनने का अवसर मिले। क्लर्की भी मजबूरी में गले उतरती है अन्यथा ऊँचा पद पाने से कम में उच्च शिक्षितों में से किसी को भी सन्तोष नहीं होता।

पर इतने स्थान कहाँ से आवें ? रिटायर होने पर कुछ पद खाली होते हैं, कुछ नये स्थान भी बढ़ते हैं। पर वे सब मिलाकर भी उससे कहीं कम होते हैं, जितने कि कॉलेजों में से छात्र निकलते हैं। उन्हें इच्छित स्थान मिल नहीं पाते। छोटी नौकरी में सन्तोष नहीं होता। इसके बाद भी जितने शिक्षित बिना नौकरी के बच जाते हैं, वे कहीं अधिक होते हैं। उन्हें परिश्रम का रोजगार पसन्द नहीं आता क्योंकि उसमें अफसरी का रौब-दाब भी नहीं होता। मेहनत भी अधिक करनी पड़ती है और प्रतिस्पर्धा में टिक सकने जितनी सूझ-बूझ और लगन भी नहीं होती। मन मारकर कोई हल्का काम मिले भी तो उसमें सन्तोष नहीं होता। उदास मन से किया गया काम अस्त-व्यस्त स्तर का बन पड़ता है, ऐसी दशा में या तो वह छूट जाता है या कुछ डाँट-फटकार पड़ने पर छोड़ना पड़ता है। शिक्षितों की निरन्तर बढ़ती बेकारी का अनुपात निरन्तर ऊँचा चढ़ता जाता है। फलत: उनका असन्तोष ऐसा मार्ग पकड़ता है, जो उनके लिए समाज के लिए अन्तत: अहितकर ही सिद्ध होता है। बेकारी हर किसी के लिए सिर दर्द बनती है। खाली समय खाली दिमाग खुराफातें ही सोचता है। शिक्षित होने पर तो बिगाड़ की दिशा में और भी बहुत कुछ अनर्थ बनता है। कम योग्यता का व्यक्ति घटिया दर्जे का ही अनर्थ कर पाता है। पर शिक्षितों के लिए तो अपनी योग्यता का दुरुपयोग करने के लिए अनेकों मार्ग मिल जाते हैं। इन दिनों ऐसे ही अगणित क्रियाकृत्यों की बाढ़-सी आ रही है। इनमें लिप्त लोगों में शिक्षित बेकारी का भी एक बड़ा भाग होता है। इस प्रकार शिक्षा व्यक्ति और समाज के लिए हितकर न बनकर ऐसी परिस्थितियाँ बनाती हैं, जिन्हें खेदजनक कहा जा सकता है।

समय के बदलते हुए क्रम को देखते हुए शिक्षा के उद्देश्य और स्वरूप में असाधारण परिवर्तन की आवश्यकता है। सरकारी और गैर-सरकारी नौकरियों का क्षेत्र सीमित मानकर शिक्षा क्षेत्र से जुड़ने वाले हर छात्र और अभिभावक को यह सोचना होगा कि नौकरी के लिए शिक्षा वाले दृष्टिकोण में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। अँग्रेज सैंतालीस वर्ष पूर्व ही चले गए। उनके जमाने की आवश्यकताएँ भी नहीं रहीं। ऐसी दशा में उसी पुराने दृष्टिकोण को बनाए रखने का अब कोई तुक नहीं रहा। ऐसी स्थिति में परिवर्तन के अनुरूप ही शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं उसके स्वरूप में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से जिसे जितना अधिक पढ़ने का अवसर मिल सके उतना उत्तम है। पर यदि उसे आजीविका के साथ जोड़ना हो। तो यह समझकर चलना चाहिए कि हर शिक्षित को इन दिनों नौकरी मिल सकना असम्भव है। यह बात लम्बा समय खर्च करने और ढेरों पैसा गँवा देने के बाद सीखी-समझी जाय, इससे अच्छा तो यही है कि समय रहते वस्तु स्थिति का अनुमान लगा लिया जाय। सामान्य शिक्षा के उपरान्त जब अर्थोपार्जन पर भी ध्यान देना पड़े तो पूर्व से ही सोच लेना चाहिए कि नौकरी न मिलने की दशा में क्या करना होगा ?

व्यावहारिक जीवन में आवश्यक काम-काज चलाने के लिए हाईस्कूल स्तर की शिक्षा पर्याप्त मानी जा सकती है। उतना पढ़ लेने पर शिक्षित वर्ग में गणना हो सकती है। यह प्राय: सोलह-अठारह वर्ष की आयु तक पूरा हो चुकता है। इसके बाद आजीविका उपार्जन की ओर छात्रों का अभिभावकों का चिन्तन भी मुड़ता है और व्यक्तित्व का विकास भी इतना अधिक हो जाता है कि किसी व्यवसाय की दिशा में सोचना, सीखना और कदम बढ़ाना सम्भव हो सके।

अत्यन्त प्रखर प्रतिभाओं की बात दूसरी है। वे कड़ी प्रतिस्पर्धाओं में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त इच्छित बड़े पद भी प्राप्त कर सकते हैं। पर सामान्य स्तर एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति के लोगों को इन्हीं दिनों नौकरी के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ढूँढ़ना आरम्भ कर देना चाहिए। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लोगों के लिए जो अतिरिक्त मार्ग खुला रह जाता है। वह कुटीर उद्योगों का, क्षेत्रीय व्यवसायों का ही है। जिनके पास बड़ी जोतें हैं, वे कृषि के सम्बन्ध में अधिक सुधरे हुए तरीके अपनाकर आजीविका बढ़ा सकते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में अभी इतनी गुंजायश है कि यदि एक परिवार के निर्वाह योग्य जमीन हो तो उस पर कड़ी मेहनत और परिपूर्ण अभिरुचि का सहारा लेकर एक सामान्य गृहस्थ का गुजारा चल सकता है। बच्चों की संख्या यदि बढ़ने न दी जाय तो वह परम्परा अगली पीढ़ियों का गुजारा भी किए रह सकती है। कभी का दुकानदारी वाला धन्धा अब दिनों-दिन कम लाभ देने वाला बनता जा रहा है। सहकारी समितियाँ, सहकारी स्टोर अब बिचौलियों के लाभांश को क्रमशः समाप्त करती जा रही हैं। ग्राहक भी प्रामाणिक स्थान से ही खरीद करते हैं छोटे दुकानदारों द्वारा अधिक नफा लिए जाने या घटिया माल मिलने का सन्देह आम लोगों के मनों में घर बनाता जा रहा है।

ऐसी दशा में कुटीर उद्योगों का क्षेत्र अभी भी बचा रहता है, जो बढ़ती हुई जनसंख्या की दृष्टि से अभी भी बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है। जापान जैसे देशों ने अपनी आर्थिक स्थिति कुटीर उद्योगों के स्टोर से ही विकसित की है। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं में से अधिकांश ऐसी हैं, जो समीपवर्ती क्षेत्र में बनने पर मिल के चमकदार माल की तुलना में सस्ती भी पड़ सकती हैं, और टिकाऊ भी रह सकती हैं। कच्चा माल यदि अपने ही क्षेत्र में उपलब्ध है और क्षेत्रीय निर्माण को प्राथमिकता देने की लोक रुचि हो तो निश्चय ही अभी भी कुटीर उद्योग बड़े-बड़े मिलों के निर्माण की प्रतिस्पर्धा में टिके रह सकते हैं। उदाहरण के लिए, हाथकरघा उद्योग को ही लिया जाय। वह अभी भी मिल निर्मित वस्त्रों की तुलना में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। ऐसे एक नहीं, अनेक उद्योग हैं, जो कम लागत में लगाए जा सकते हैं। गाँधीजी ने खादी को प्राथमिकता देते हुए सर्वसाधारण का ध्यान कुटीर उद्योगों की ओर आकर्षित किया था और स्वदेशी भावना को ग्राम्य-विकास की रीढ़ बनाया था। वे तथ्य अभी भी जहाँ के तहाँ हैं। कुटीर उद्योगों को यदि सुनियोजित ढंग से अपनाया और शिक्षा तन्त्र के साथ उनका समन्वय किया जाय तो शिक्षितों की बेकारी वाली समस्या का समाधान सरलतापूर्वक निकल सकता है।

शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता और स्वावलम्बन भी जुड़ें

शिक्षा का उद्देश्य न तो नौकरी है और न बढ़-चढ़ कर बातें बनाने, कम पढ़ों के सामने शेखी बघारने की कुशलता। यदि ऐसा होता तो धनीमानी लोग अपने बच्चों को पढ़ाने का सिर दर्द क्यों मोल लेते ? क्यों बालकों को खेल-कूद एवं मस्ती-मनोरंजन से विरत करके मन मारने वाली कष्टसाध्य प्रक्रिया में निरत करते ? यदि शिक्षा का महत्व आजीविका उपार्जन भर के लिए रहा होता तो अर्थशास्त्र के वे सिद्धान्त भी कम विचारणीय न ठहरते, जिनमें पूँजी का लाभ ब्याज के आधार पर भी प्राप्त किए जाने का सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

एक बच्चे को एम. ए. कराने में प्रायः १६ वर्ष लग जाते हैं। इतनी अवधि में बच्चे के पढ़ते समय की अवधि का श्रम मूल्य जोड़ा जाय, उस प्रयोजन के लिए फीस, पुस्तक, कागज-ट्यूशन, खेल, वाहन आदि खर्चे का हिसाब लगाया जाय तो वह सम्मिलित राशि बहुत बड़ी हो जाती है। उस राशि को हर महीने बैंक में जमा किया जाता रहता तो उसकी ब्याज बढ़कर पर्वत जितनी हो गई होती। वर्तमान बैंक ब्याज के अनुसार छह वर्ष में जमा रकम दुगुनी हो जाती है। १६ वर्षों तक बच्चे का श्रम तथा पढ़ाई का खर्च संयुक्त करके हर महीने बैंक में डाला जाता तो उसका ब्याज ही पूँजी के अतिरिक्त दूना हो गया होता। इस समस्त राशि की ब्याज का हिसाब लगाया जाय तो एक लाख से कम नहीं बैठता। एक लाख का ब्याज दस प्रतिशत के हिसाब से आठ सौ रुपया मासिक से भी अधिक आता है। जिसे जमा करने वाला व्यक्ति ही नहीं उसकी हजार पीढ़ियाँ भी इतना धन हर महीने बिना कुछ परिश्रम किये घर बैठे प्राप्त करती रह सकती हैं।

इस गणित क्रम के हिसाब से पढ़ाई में समय, श्रम, धन लगाने की अपेक्षा उस पैसे को स्थिर पूँजी में लगाना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्ध होता है। यदि शिक्षा का उद्देश्य मात्र नौकरी पाना या आजीविका कमाना ही हो तो इस प्रकार सोचने वालों को ना समझ नहीं कहा जा सकता।

जिस प्रकार शरीर का आहार के माध्यम से परिपोषण होता है। ठीक उसी प्रकार चेतना के परिशोधन परिष्कार की प्रक्रिया शिक्षा द्वारा सम्पन्न होती है। निर्वाह साधन जुटाने लायक शिक्षा तो प्रकृति प्रदत्त प्रेरणा एवं समीपवर्ती वातावरण से भी उपलब्ध हो जाती है। इतना उपार्जन तो पशु भी कर लेते हैं। पर यदि जीवित रहने के साधन जुटाने से आगे की बात सोचनी और वैसी स्थिति प्राप्त करनी हो तो फिर उसका एक मात्र उपाय शिक्षा ही शेष रह जाती है। अशिक्षितों में से पराक्रमी तो कितने ही हुए हैं पर मनीषियों में—दूरदर्शियों में गणना हो सके। ऐसा कदाचित ही कोई अपवाद देखने में आता है। रामू भेड़िये का उदाहरण प्रख्यात है, जिसमें मनुष्य बालक को भेड़िये ने खाने के स्थान पर पाल लिया था और वह बड़ा होने पर भेड़िया की तरह ही चलने, बोलने, खाने के अभ्यास में ढल गया था। अतिरिक्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षण के अभाव में मनुष्य को भी नर-वानरों, वनमानुषों की श्रेणी में रहकर गुजारा करना पड़ता है। इस स्थिति से उबरने के लिए शिक्षा को अनिवार्य आवश्यकता माना और अपरिहार्य अवलम्बन कहा गया है।

मानवी चेतना के बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास का आधार इस तथ्य पर अवलम्बित है कि किसकी शिक्षा किस उद्देश्य से और किस वातावरण में सम्पन्न हुई। शिक्षा निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा कर लेने का नाम नहीं है वरन् उसके समग्र रूप में वे सारी विधि व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं, जो व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के अनेकानेक प्रसंगों में दृष्टिकोण अपनाने, तालमेल बिठाने एवं व्यवहार पद्धति अपनाने से सम्बन्ध रखती हैं। इन दिनों स्कूलो में मात्र सामान्य ज्ञान की शिक्षा दी जाती है। जीवन दर्शन और व्यवहार को एक प्रकार से पृथक ही कर दिया गया है। इस अपूर्णता के कारण शिक्षण-पद्धति एकांगी रह गई है और छात्रों के लिए वह अनुदान दे नहीं पा रही है, जो उसे देना चाहिए था। शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता जुड़ी होनी चाहिए। प्रशिक्षण की सार्थकता तभी है, जब पढ़ने के साथ-साथ शिक्षार्थी की सज्जनता एवं प्रतिभा, प्रखरता भी निखरती-उभरती चले।

यदि इन दिनों सामान्य ज्ञान को ही स्कूली शिक्षा में सीमित कर दिया है तो उस पक्ष को भी उपयोगी मानकर अपनाना चाहिए और जो अनुपलब्ध है, उसे किसी अन्य उपाय से प्राप्त करने का प्रबन्ध करना चाहिए। अन्न में यदि चिकनाई की मात्रा नहीं है या कम है तो उसकी पूर्ति साथ में दूध-दही का अतिरिक्त समावेश करके कर ली जाती है। दूध में मिठास कम है तो बाहर से मिला लिया जाता है। इसी प्रकार यदि स्कूली शिक्षा में जीवन विकास वाले तथ्यों की न्यूनता है, तो उसकी पूर्ति के लिए अतिरिक्त शिक्षा का दूसरा प्रबन्ध करना चाहिए। अच्छा तो यही था कि प्राचीन काल की तरह अर्वाचीन शिक्षा व्यवस्था भी सामान्य ज्ञान और जीवन विज्ञान के तथ्यों को समान महत्त्व देती और दोनों की मिल-जुली विधि व्यवस्था बनाकर दो पहियों वाली गाड़ी की तरह अभीष्ट उद्देश्य की दिशा में आगे बढ़ती।

शिक्षातन्त्र के सरकारी नीति-निर्धारकों ने जो भी सोचा हो, उनसे खामी पूरी करने का अनुरोध करने के साथ-साथ हमें अपने निजी कर्तव्यों का भी पालन करना चाहिए और जो खामी रह रही है, उसकी पूर्ति का स्वयं प्रबन्ध करना चाहिए। जीवन के अनेक पक्ष ऐसे हैं जिन्हें हम स्वयं पूरा करते हैं। सरकार पर तो बहुत थोड़ी बातों के लिए ही आश्रित रहा जाता है। जब ८० प्रतिशत आवश्यकताएँ बिना सरकार पर आश्रित रहे हम स्वयं पूरी करते हैं, तो फिर शिक्षा क्षेत्र में पाई जाने वाली दो कमियों को हम स्वयं ही अपने बलबूते पूरी क्यों न करें ? दो खामियों में से एक है सुसंस्कारिता, दूसरी है स्वावलम्बन। यह दोनों ही ऐसे प्रसंग है, जिनके अभाव में शिक्षा का उद्देश्य की अधूरा रह जाता है। हमें सरकारी शिक्षा के समानान्तर जनस्तर पर ऐसे तन्त्र का विकास करना चाहिए, जिसमें आजीविका उपार्जन की दृष्टि से स्वावलम्बी कौशल हस्तगत किया जा सके और नौकरी के लिए दर-दर भटकने और परावलम्बी जीवनचर्या अपनाने के लिए बाधित न होना पड़े।

दूसरा पक्ष है सुसंस्कारिता, शिष्टाचार, नागरिक कर्तव्य, समाज निष्ठा, सद्व्यवहार, लोकमंगल जैसे तथ्यों का पाठ्यक्रम में तनिक-सा समावेश करने भर से काम नहीं चलता। प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि इन सद्गुणों को व्यवहार में उतारने के लिए व्यवहारिक क्रियाकलापों को अपनाने के लिए भी बाधित होना पड़े। स्वावलम्बन के लिए कुछ नुस्खे छपे रहें और वे पढ़ लिए जाएँ तो इतने भर से क्या काम बनेगा ? इस सन्दर्भ में गृह उद्योगों का व्यावहारिक ज्ञान एवं अभ्यास भी छात्रों को उपलब्ध होना चाहिए अन्यथा स्वावलम्बन और सुसंस्कारिता की दृष्टि से सुयोग्य बन सकना सम्भव न हो सकेगा। छपी जानकारी पढ़ लेना और तथ्यों को जीवन में उतारना एक नहीं दो बातें हैं।

विदेशों में ऐसे अगणित शिक्षा संस्थान सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर सरकारी प्रबन्ध के अन्तर्गत काम करते हैं, जिनके आधार पर नागरिकों की अभीष्ट शिक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। स्वावलम्बन के प्रश्न को ही लें। अब यह तथ्य शीशे की तरह साफ है कि स्कूल से निकलने वाले हर छात्र को नौकरी मिलना असम्भव है। इस आशा से पढ़ाई करने वालों में से अधिकांश को निराशा ही हाथ लगने वाली है। इसलिए अच्छा यही है कि छात्र अपने लिए कोई ऐसा रोजगार ढूँढ़े, जिसकी खपत में अड़चन न पड़े। ऐसे उद्योग जो आकर्षक तो लगते हैं पर जिनके लिए बाजार नहीं हैं, उनमें हाथ डालना व्यर्थ है। ऐसे उद्योग चुने जाने चाहिए जो समीपस्थ क्षेत्र में पाए जाने वाले कच्चे सामान से चल सकें और उसी इलाके में आसानी से खप सकें। इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था सरकार ने जहाँ-तहाँ की है। पर बात उतने से बनेगी नहीं। अधिक सरल, सीधी और अधिक प्रत्यक्ष, व्यवस्थित शिक्षा देने वाले गृह उद्योग प्रशिक्षण विद्यालय हर जगह हों और कारीगरों का पृष्ठपोषण करने वाले सहकारी संस्थान बनें तो यह सम्मिलित व्यवस्था शिक्षा के एक उद्देश्य की पूर्ति भली प्रकार पूरा कर सकती है। ऐसे तन्त्र निजी क्षेत्र में निजी या सहकारी सार्वजनिक प्रयासों से कहीं भी थोड़ा प्रयत्न करके आसानी से खड़े किए जा सकते हैं और उनके सहारे शिक्षार्थियों का एक बड़ा मनोरथ पूरा हो सकता है।

संस्कृति की शिक्षा के लिए ऐसे विद्यालय खुलने चाहिये, जिसमें विद्यार्थी स्कूली टाइम के अतिरिक्त समय में कुछ घण्टे नित्य या सप्ताह में कुछ दिन शिक्षा प्राप्त कर सकें। इनमें से कुछ बड़ी आयु वालों के लिए भी होने चाहिए। आजीविका उपार्जन के उपरान्त जो समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बचता है, उसमें यह कक्षाएँ चलें। दो घण्टा नित्य भी इनके खुलने का समय रहे तो इतने से भी बहुत काम चल सकता है। व्यक्तित्व के विकास में जिन गुण, कर्म, स्वभाव समुच्चय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, उनका बौद्धिक तथा व्यावहारिक अभ्यास कराने वाले पाठ्यक्रम विदेशों में चलते हैं। अपने यहाँ भी वैसा प्रबन्ध हो सकता है, विशेषतया स्वास्थ्य, परिवार, अर्थ, समाज जैसे क्षेत्र में सुखी-समुन्नत बनने के लिए जो जानना, मानना और अपनाना आवश्यक है, उसे सीखने-सिखाने की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था इनके पाठ्यक्रमों में सम्मिलित रह सकती है। दाम्पत्य जीवन, शिशु पोषण जैसे अनेकों ऐसे विषय हैं, जिनके उतार-चढ़ावों को न जान सकने के कारण अनेकों विकृतियाँ तथा धूर्तताएँ भी इन दिनों इतनी अधिक प्रचलित हैं कि उन विडम्बनाओं से अपरिचित लोगों के बुरी तरह ठगे जाने या अन्धानुकरण में बर्बाद होने की आशंका बनी रहती है। विशेषतया किशोर और किशोरियों के प्रेम प्रसंगों के छलावे या व्यतिक्रम में इतनी हानि उठानी पड़ती है कि उनमें से अधिकांश का जीवन बर्बाद और भविष्य अन्धकारमय बनते देखा गया है। यदि इन विडम्बनाओं से बचाने वाला और यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रदान करने वाला कोई मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जा सके, तो उतने भर से असंख्यों की बर्बादी रोकी जा सकती है। इस आधार पर ऐसा मार्गदर्शन भी मिल सकता है, जिसे कोई दूरदर्शी मित्र ही कदाचित किसी को दे सके। उपरोक्त प्रसंगों को लेकर यदि अतिरिक्त विद्यालय खुलें और उनमें भर्ती होकर लोग सरलतापूर्वक व्यावहारिक जीवन की समुन्नति प्राप्त कर सकें तो समझना चाहिए कि सार्थक शिक्षा का एक नया सोपान खुला और उस थोड़े समय की भर्ती द्वारा उतना लाभ मिला, जिसकी तुलना दैवी वरदान से ही की जा सकती है।

लोक निर्माण में अभिरुचि रखने वाले विज्ञजनों को जनसेवा के प्रयासों में ऐसी शिक्षण व्यवस्था का आधार खड़ा करना चाहिए, जो स्कूली शिक्षा में पाई जाने वाली कमी को प्रशिक्षण की स्वतन्त्र व्यवस्था खड़ी करके समय की माँग पूरी कर सके।

स्वावलम्बन—शिक्षा की अनिवार्य शर्त

देश भर के नियोजन कार्यालयों से एकत्रित आँकड़ों के अनुसार भारतवर्ष में चार करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। इनमें कितने ही व्यक्ति ऐसे हैं जो मैट्रिक से एम. ए. तक पढ़े हुए हैं। ये आँकड़े हमें सोचने को विवश करते हैं।

माता-पिता का दृष्टिकोण बच्चे-बच्चियों को स्कूल भेजने का यह रहता है कि पढ़-लिख जाएँगे तो नौकरी मिल जाएगी, जीवन आराम से बीत जाएगा, कुछ सहारा हमें भी मिल जाएगा। यह दृष्टिकोण ही गलत है। बच्चे और अभिभावक केवल स्कूली शिक्षा को ही सब कुछ न समझ लें।

शिक्षित लोग बेरोजगार घूमते हैं और जहाँ कर्मचारियों की माँग है, वहाँ के लिए व्यक्ति नहीं मिलते। पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त उनके पास न कोई कार्यक्षमता होती है न अनुभव।

पढ़ने वाले बच्चे प्रायः अभिभावक पर निर्भर रहते हैं। वे येन-केन-प्रकारेण उन्हें आर्थिक सहायता देते हैं और बच्चा जब पढ़-लिख जाता है, तो उसका कुछ प्रतिदान माँगते हैं। वह नौकरी के लिए भटकता है।

सरकार स्कूल व कॉलेजों पर काफी धन खर्च करती है। उनमें पढ़-लिखकर जो शिक्षित युवक निकलते हैं, उनमें से अधिकांश नौकरी चाहते हैं और नौकरियाँ सरकार इतनी जुटा नहीं सकती। शिक्षित बेकार बढ़ते ही जाते हैं।

केवल मानसिक श्रम करने तथा सिनेमा और फैशन परस्ती के शिकार ये शिक्षित युवक शारीरिक श्रम करना पसन्द नहीं करते और न समय बन्धन का मूल्य ही समझ पाते हैं।

इन सबका एक ही कारण है कि शिक्षा के साथ स्वावलम्बन को जोड़कर नहीं रखा गया। यदि शिक्षा के साथ स्वावलम्बन जोड़कर रखा गया होता तो न तो शिक्षित युवक नौकरी के लिए मारा-मारा फिरता, न उसके अभिभावक उससे कुछ पाने की आशा करते, न सरकार का स्कूलों-कॉलेजों पर खर्च किया धन बेकारी बढ़ाने में लगता। शिक्षा पाकर के युवक निकलता वह परिश्रमी तथा अनुभवी होता तो आज इतने बेकार न होते।

सरकार से यह आशा करना कि वह शिक्षा के साथ स्वावलम्बन को जोड़े, रखी तो जा सकती है, पर राजनीति की शिकार शिक्षा ज्यों की त्यों चल रही है। जिस कारण आज के अधिकांश शिक्षित युवक "लिखते रहो तुम सिर झुका, सुन अफसरों की गालियाँ तो दे सकेंगी आप को दो रोटियाँ घरवालियाँ"। जैसी स्थिति क्लर्की को ही अपना सौभाग्य मानकर सन्तुष्ट हो जाता है।

राजनीतिज्ञ वर्षों से कहते आ रहे हैं कि शिक्षा में परिवर्तन लाएँगे पर 'समाजवाद' आने की तरह यह परिवर्तन भी नहीं आया। इसकी प्रतीक्षा न करते हुए नागरिकों को अपना दृष्टिकोण बदल देना चाहिए।

इन दिनों अपने देश में हाई स्कूल, इण्टर, बी. ए., एम. ए. पास लाखों-करोड़ों व्यक्ति बेकार हैं। इन्हें नियोजित करने के लिए ही कई वर्ष लग जाएँगे, जितने में और बेकार बढ़ जाएँगे, जिनकी संख्या इनसे तीन गुनी होगी।

इन व्यक्तियों के केवल सरकार के भरोसे पर ही नहीं रहना चाहिए, श्रम और अध्यवसाय के बल पर इस स्थिति पर विजय पाना चाहिए। यों तो यह संख्या बहुत बड़ी है पर यदि प्रयास किया जाय और पूरे मन से इस विभीषिका से बचने का प्रयास किया जाय तो असम्भव को सम्भव बनाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने आपका आत्म-निरीक्षण जब इस प्रकार के लोग करेंगे तो वे पायेंगे कि उनमें बहुत-सी कमियाँ हैं उन्हें दूर किया तो वे भी उपार्जन कर सकते हैं।

परिश्रम करने के प्रति जो दृष्टिकोण आज का शिक्षित वर्ग अपनाने लगा है वह हीनतम प्रवृत्ति है। हमें अपना स्वयं का बिस्तर या ट्रंक उठाते हुए, पैदल चलते हुए शर्म आती है। जहाँ परिश्रम के प्रति शर्म बनी रहेगी हम कुछ भी प्रगति नहीं कर पाएँगे। इस प्रकार का संकोच दूसरे देशों में नहीं मिलेगा। वे अपना सामान स्वयं उठाते हुए कभी संकोच नहीं करते।

अपने आपकी आवश्यकताएँ कम करना और फैशन परस्ती व सिनेमा की नकल करने का फूहड़पन हम न करें, तो इस अपव्यय का सदुपयोग किसी उद्योग का प्रशिक्षण प्राप्त करके कर सकते हैं। जो हमें काम दिला सकता है।

बेकार होने की स्थिति में अपने आपको बेकार स्वीकार करने वाला व्यक्ति किसी भी प्रकार का काम करना पसन्द कर लेता है पर हमारे शिक्षित युवक यह समझते हैं कि मैं इतना पढ़ा हूँ, मजदूरी कैसे करूँ या छोटा काम कैसे करूँ ? इस प्रकार के संकोच हमें खोखला करते हैं।

भारतवर्ष में और विदेशों में भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जो मजदूरी करके पढ़े हैं—अपने पाँवों पर खड़े होकर पढ़े हैं। ऐसे स्वावलम्बी युवक अपना भविष्य स्वयं बनाते हैं। इस भ्रामक तथ्य को भुला ही देना चाहिए कि मनुष्य की योग्यता उसके पद अथवा धन से होती है। यदि मनुष्य को नापने का कोई गज है, तो वह धन का नहीं, पद का नहीं, वह परिश्रम, चरित्र और मानवीय सद्गुणों का है।

अभिभावकगण यह कदापि नहीं चाहते कि उनका बच्चा बेकार रहे। उन्हें चाहिए कि वे अभी से सावधान हो जाएँ ताकि आगे वह स्थिति उत्पन्न न हो।

बच्चे को स्कूल भेजकर या उसे पैसे देकर ही मुक्ति मान लेने वाली प्रवृत्ति अब भुला ही देनी चाहिए। उसे शिक्षित ही नहीं स्वावलम्बी भी बनाने का प्रयास करना चाहिए।

स्वावलम्बन को मोटे अर्थों में कमाने में प्रयुक्त किया जाता है पर स्वावलम्बन केवल कमाने तक ही सीमित नहीं है। उसका अर्थ है अपने उपार्जन और व्यय का समन्वय स्थापित करना। जो बालक सीधे-सादे कपड़े पहनेगा, सादा जीवन और उच्च विचार रखेगा। घर के कामों व पिता के व्यवसाय में सहयोग देता हुआ शिक्षा पाएगा। वह प्रत्यक्ष में कोई रुपया-पैसा नहीं कमाते हुए भी स्वावलम्बन को कुछ अर्थों में पूरा करता है। उसे धन व आवश्यकता के बारे में ज्ञान होता है।

डिग्रियों से सजाने की चिन्ता छोड़कर गुणों का विकास और व्यवसाय का प्रशिक्षण भी शिक्षा के साथ जुड़ा रहे, इस प्रकार का क्रम अपने बच्चों के लिए उन्हें निर्धारित कर लेना चाहिए।

भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश में लघु उद्योगों व कुटीर उद्योगों का विकास बहुत आवश्यक है। अधिक खर्चीली शिक्षा जैसे डॉक्टरी, इन्जीनियरिंग आदि के सपने न देखकर उसी धन को लघु उद्योग व कुटीर उद्योग में लगाकर उसे अपने बच्चे के हाथों में दे देने से बेकार रहने की आशंका न रहेगी।

जिस देश और समाज की भावी पीढ़ी का भविष्य समुज्ज्वल न हो, उस देश के लिए इससे बड़ा संकट और क्या हो सकता है ? हम इस विभीषिका से बचने का उद्योग आज से ही करना आरम्भ कर दें।

शिक्षा के साथ स्वावलम्बन का प्रशिक्षण भी

"महात्मा गाँधी ने शिक्षा का विश्लेषण करते हुए कहा था कि जो शिक्षा चरित्रवान न बना सके, मन इन्द्रियों को वश में न रख सके, आत्मविश्वास न उत्पन्न कर सके स्वावलम्बी न बना सके, उस शिक्षा में चाहे जितना जानकारी का भण्डार, तार्किक विशेषता अथवा पाण्डित्य हो वह अपूर्ण है।"

देश में प्रतिवर्ष बढ़ती हुई शिक्षित बेरोजगारी की संख्या हमें इसी तथ्य का बोध कराती है कि प्रचलित ढर्रे की शिक्षा शिक्षार्थी को स्वावलम्बी बनाने और उसकी दैनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं को सुलझा पाने में असमर्थ है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार वर्ष १९९० तक शिक्षित बेरोजगारी की संख्या तीन करोड़ ४५ लाख थी। इनमें प्रतिवर्ष ६५ लाख की संख्या और जुड़ती जा रही है।

रोजगार योजना में सरकार सीमित शिक्षितों को नौकरी दे पाने में सफल हो सकी। बड़ी संख्या बेरोजगारों की फिर भी प्रतिवर्ष रोजगार प्राप्त करने से वंचित रह जाती है। इनमें प्रतिवर्ष ६० लाख की अतिरिक्त संख्या और जुड़ जाती है। ढर्रा इसी प्रकार चलता रहा तो स्थिति और भी विस्फोटक होती जाएगी और देश की युवा शक्ति से देश की उन्नति में मिलने वाले सहयोग से वंचित रहना होगा।

प्रस्तुत इस कठिनाई का हल सरकार के ऊपर छोड़कर चुप हो जाना चाहिए अथवा देश के विचारशील वर्ग तथा जनसामान्य का भी कुछ कर्तव्य होता है कि निदान के लिए कुछ कारगर कदम उठाएँ, यह विचारणीय है। सर्वविदित है कि सरकारी योजनाएँ जनसामान्य के सहयोग से ही सफल हो पाती हैं। पिछले कई वर्षों से यह समस्या देश के समक्ष मुँह फाड़े खड़ी है और दिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिदिन विकराल होती जा रही है। सरकारी सेवाओं में सीमित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप उनमें खपत भी सीमित व्यक्तियों की ही हो सकती है। यह सोचना अविवेकपूर्ण है कि सरकारी सेवाओं में सभी शिक्षितों को रोजगार के अवसर मिल जायेंगे। आवश्यकता से अधिक नियुक्तियों का अर्थ होगा, असन्तुलन उत्पन्न हो जाना।

प्रस्तुत कठिनाई के हल के लिए दो तरह के प्रयास करने होंगे। एक में तो सरकारी सहयोग अपेक्षित है तथा दूसरे में जनसहयोग। दूसरे देशों में शिक्षा दो भागों में विभक्त है। सामान्य और विशिष्ट शिक्षा। सामान्य शिक्षा के साथ सामान्य ज्ञान की विविध धाराएँ जुड़ी हुई हैं, जिसका लक्ष्य है दैनिक जीवन में काम आने वाली सामान्य ज्ञान की बातों से शिक्षार्थी को अवगत कराना। इस शिक्षा के साथ तकनीकी एवं औद्योगिक ज्ञान का शिक्षण अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। रूस, अमेरिका और इंग्लैण्ड जैसे देशों में प्राइमरी और सैकेण्ड्री शिक्षा के साथ ऐसी व्यवस्था है कि विद्यार्थी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ तकनीकी और औद्योगिक शिक्षण प्राप्त करता रहे। जिन विद्यालयों में ऐसी व्यवस्था नहीं है, वहाँ गैर सरकारी ऐसी संस्थाएँ हैं, जो इस प्रकार का शिक्षण देती हैं। फलस्वरूप विशिष्ट शिक्षा प्राप्त न करने वाले छात्रों को भी रोजगार के लिए भटकना नहीं होता। वे विभिन्न कार्यों हेतु इतनी प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं कि अपनी जीवन गाड़ी स्वयं खींच सकें। ये शिक्षण कई प्रकार के होते हैं। कुटीर उद्योग, कृषि करने की विशिष्ट तकनीक, ड्राइंग, पेंटिंग, छोटे-छोटे मोटरपार्ट्स बनाना, रेडियो, ट्रांजिस्टर, घड़ी ठीक करने जैसे अनेकों प्रकार के शिक्षण प्रचलित हैं। कितने ही छात्र विद्यार्थी जीवन में ही इनमें प्रवीणता प्राप्त करके स्वावलम्बी होकर शिक्षा अर्जन करते रहते हैं। किन्हीं कारणों से जो आगे की शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते वे अपना स्वतन्त्र व्यवसाय खोल लेते हैं अथवा प्रवीण होने से किसी न किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान में रोजगार सहज ही उपलब्ध कर लेते हैं।

विशिष्ट शिक्षा के लिए वे ही छात्र उन्मुख होते हैं, जो अत्यन्त मेधावी होते हैं और भविष्य में शोध प्रयोजनों में अपनी क्षमता लगाना चाहते हैं। रूस आदि देशों में तो देश की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा दी जाती है, जिस विभाग में जितने व्यक्तियों की जरूरत होती है उतने ही व्यक्ति उस विषय में नामांकित किए जाते हैं। फलस्वरूप असन्तुलन की स्थिति नहीं उत्पन्न होने पाती न ही अपने देश जैसी स्थिति आती है कि विशिष्टता हासिल करने के बाद भी युवक को रोजगार के लिए भटकना पड़े। अपने देश के लिए भी यह व्यवस्था उपयोगी होगी। देश को प्रतिवर्ष कितने अध्यापकों, कितने इंजीनियरों, कितने चिकित्सकों की आवश्यकता है, इसका पूर्व निर्धारण हो सके तथा इन विषयों में विशिष्टता प्राप्त करने में नामांकन पर प्रतिबन्ध लगाकर उतने ही छात्र लिए जाएँ, तो प्रस्तुत बेकारी का सामना न करना पड़े। यह तो विशिष्ट शिक्षा प्राप्त करने वालों के लिए व्यवस्था होनी चाहिए।

सामान्य शिक्षा प्राप्त करने वालों के साथ तकनीकी ज्ञान का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से जुड़ा होना आवश्यक है। अपने यहाँ हाईस्कूल, इण्टर अथवा बी. ए. पास करने के बाद यदि किसी सरकारी दफ्तर में नौकरी नहीं मिलती, तो युवक को बेकार बैठना होता है। उनमें इतनी अतिरिक्त योग्यता नहीं होती जिसके बलबूते स्वतन्त्र कोई रोजगार अथवा व्यवसाय कर सके। फलस्वरूप उन्हें दर-दर भटकना पड़ता है। प्रचलित शिक्षा के साथ औद्योगिक प्रशिक्षण का क्रम समाविष्ट जाना अनिवार्य है। जिससे छात्रों में स्वावलम्बन के लिए आत्मविश्वास पैदा हो सके और पढ़ाई छूटने के बाद उस तकनीकी योग्यता के सहारे छोटे-मोटे उद्योग खोलकर अपना निर्वाह कर सके। बेरोजगारी और अधिक न बढ़े इसके लिए शिक्षा के साथ उपरोक्त व्यवस्था बनानी होगी।

जो शिक्षित श्रम शक्ति बेकार बैठी अपनी क्षमता को नष्ट कर रही है, उसके लिए सहकारी संगठनों के आधार पर कुटीर उद्योगों की व्यवस्था बनानी होगी। शिक्षितों की बेरोजगारी समस्या के हल में एक मनोवैज्ञानिक अवरोध भी है। अँग्रेजी हुकूमत ने आफिस में काम करने वाले बाबुओं को जो प्रतिष्ठा दी, वह अब भी भारतीय मानस में बैठी चली आ रही है। बाबूगिरी का काम करने वाले, कुर्सी पर बैठकर कलम घिसने वाले व्यक्ति बड़े होते हैं तथा शारीरिक श्रम करने वाले, छोटे-मोटे काम करने वाले छोटे। यह बेहूदी मान्यता आज भी अपने देश में प्रचलित है। फलतः श्रम के प्रति अवमानना एवं उससे कन्नी काटने, जी चुराने की प्रवृत्ति सर्वत्र देखी जा रही है। काम चोरी की, हरामखोरी की मनोवृत्ति प्रकारान्तर से इस मान्यता की ही परिणति है। बेरोजगारी का हल नहीं निकलता, इसके कारणों में श्रम की अवमानना भी आड़े आती है।

यदि ऐसा नहीं होता तो छोटे-छोटे कितने ही ऐसे काम हैं, जिनमें न तो विशेष योग्यता एवं अनुभव की आवश्यकता होती है और न ही विशेष पूँजी की। थोड़े अभ्यास से उन्हें कोई कर सकता है। सुनार, लुहार राज, हज्जाम, मोची, दर्जी, किसान आदि के लड़के सहज ही अपने पैतृक व्यवसाय में पारंगत हो जाते हैं। पशुपालन दुग्ध व्यवसाय जैसे उद्योगों में विशिष्ट तकनीकी ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं होती। इनमें थोड़ा श्रम अधिक लगने के कारण ही शिक्षित अवमानना करते तथा उपयोगी होते हुए भी नहीं अपनाना चाहते। श्रम के प्रति उपेक्षा की मनोवृत्ति को उलटना होगा।

सहकारी संगठनों की स्थापना और उनमें कुटीर उद्योगों का प्रचलन जनस्तर पर करना होगा। थोड़े-से विचारशील और समर्थ इस पुनीत कार्य के लिए उठ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खड़े हों, तो जो समस्या सरकार के समक्ष सर दर्द बन गई है उसका हल देखते-देखते निकल सकता है। कुटीर उद्योगों को नगरों की अपेक्षा ग्रामों में विकेन्द्रित करना कहीं अधिक श्रेयष्कर और गाँवों के विकास के लिए भी उपयोगी होगा।

इस प्रकार दोहरे प्रयास से ही देश के समक्ष उपस्थित उपरोक्त संकट का हल स्थायी रूप से निकल सकता है। शिक्षा के साथ आत्मनिर्भरता के लिए, दैनिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान के लिए उपयोगी प्रशिक्षण का क्रम न जोड़ा गया, तो प्रतिवर्ष शिक्षितों की एक बड़ी संख्या तो निकलती रहेगी किन्तु देश की समुन्नति एवं प्रगति में उनसे विशेष सहयोग नहीं मिल सकेगा।

सुसंस्कारिता की ओर भी कदम बढ़ें

स्काउटिंग का सभ्य और समग्र व्यक्तित्व विनिर्मित करने के लिए छात्रावस्था से प्रारम्भ किया गया एक प्राथमिक चरण समझना चाहिए। वह शुरूआत है, उसकी पूर्णता तो शायद पूरे जीवन में भी सम्भव न हो सके ? उस प्रक्रिया को अगले जन्म-जन्मान्तरों तक जारी रखने की आवश्यकता है। पूर्ण पुरुष ही भगवान के प्रतीक प्रतिनिधि, देवात्मा या अवतार माने जाते हैं। निज का व्यक्तित्व जब निखरने लगता है तो अनेकानेक विभूतियाँ उभरने या निखरने लगती हैं। विकसित व्यक्तित्व ही वह पात्रता है, जिसमें गहरे सरोवर की तरह सब ओर से विशिष्टताओं का जल भरता चला जाता है। वह जलाशय किस प्रकार कितनों का भला करता है, यह सभी जानते हैं, वे स्वयं भी शोभा पाते हैं और प्राणियों का हित भी करते हैं। ऊँचे पर्वतशिखरों पर बादल स्वयं ही बर्फ की मोटी परत जमाने के लिए जा पहुँचते हैं। हिमाच्छादित शिखर प्रकृति के उच्चस्तरीय सौन्दर्य के प्रतीक होते हैं। धीरे-धीरे पिघलकर वे पानी के अजस्र स्रोतों द्वारा वनस्पतियों, प्राणियों को जीवन देते हैं

वस्तुतः आत्मनिर्माण के प्रतिफल के रूप में ही अन्तरिक्ष से दैवी वरदान बरसते हैं। शास्त्रकार का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि अपना आप ही समर्थ मित्र या घिनौने शत्रु की भूमिका सम्पन्न करता रहता है। आत्म सन्तोष और आन्तरिक उमंग का उदगम केन्द्र भी यही है। विभिन्न क्षेत्रों की अनेकानेक सफलताएँ सम्भावनाएँ और कुछ नहीं, परिष्कृत व्यक्तित्व के भण्डार में भरे हुए मणि-माणिक हैं। हेय या निकृष्ट व्यक्तित्व के लोग सुअवसरों का भी लाभ नहीं उठा पाते। यह कथन सत्य है कि ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करने को कटिबद्ध हों। इसी आधार पर एक को स्वर्ग सुख पाने का निमन्त्रण मिलता है और दूसरे को यमदूत नागपाश में बाँधकर नारकीय यातनाएँ देने के लिए ले जाते हैं। यह पक्षपात नहीं है, वस्तुतः हम ही दोनों स्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए जाने-अनजाने स्वयं आग्रह-अनुरोध करते हैं।

आत्मनिर्माण का अर्थ है। भाग्य निर्माण, भविष्य निर्माण। विकसित अन्तःकरण खिले हुए पुष्प की तरह दैवी अनुदानों के भौरों-तितलियों को आकर्षित करता है। इस तथ्य को जानने वाले ही गुहयविध विशारद् हैं। उन्हें ही त्रिकालदर्शी-दूरदर्शी योगी कहा जाना चाहिए। उन्हीं के पुरुषार्थ से प्रभावित होकर ऋद्धि-सिद्धियाँ आकाश से उतरती हैं और जीवन साधना के साधक को निहाल करती हैं। इस तथ्य की सत्य की उपेक्षा करने वाले जाल-जंजाल में भटकते और अनगढ़ पगडंडियों में ठोकरें खाते फिरते हैं। प्रगति का राजमार्ग तो वही है, जिसे आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास आदि नामों से जाना जाता है।

इस भाग्योदय का श्री गणेश सभ्यता के शुभारम्भ से होता है। अध्यापक स्काउटिंग के माध्यम से इसे छात्रों के स्वभाव का अंग बनाने, अभ्यास में उतारने का प्रयत्न करते हैं। जीवन विकास के किसी भी अभिलाषी को इससे अपरिचित नहीं रहने देना चाहिए। यह विषय शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए। बाल कक्षाओं में स्काउटिंग तथा तरुणों-प्रौढ़ों के लिए सभ्यता का शुभारम्भ, व्यक्तियों के सर्वतोमुखी परिष्कार-विकास के लिए प्रयुक्त होने चाहिए।

इस महाविद्यालय में प्रवेश करने वाले को स्वयं को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए समूची सतर्कता, जागरूकता और प्रयत्नशीलता नियोजित करनी होती है। इसे दैनिक व्यवहार का अंग बनाने के लिए व्यायाम, श्रम, खेलकूद, कबायद की प्रक्रिया नित्य कर्म में सम्मिलित रखनी पड़ती है। स्काउटिंग में तो यह सब अनिवार्य माना ही जाता है, अन्यों के लिए व्यायामशालाओं, अखाड़ों, जमनेशियमों में भी इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। व्यस्त जीवन में भी यह क्रम किसी न किसी रूप में सभी को अपनाते रहना चाहिए। हॉकी, फुटबॉल, बालीबॉल जैसी सुविधा न बन पड़े तो टहलने, दौड़ने एक स्थान पर उछलने-कूदने के पी. टी. जैसे प्रयोग करने चाहिए। अंग-संचालन के लिए आसन स्तर के और भी कई प्रयोग निकल सकते हैं। इन्हें नियमित रूप से करने पर जहाँ माँसपेशियों की सुदृढ़ता, रक्तसंचार में नवीनता, फेफड़ों में स्वच्छ वायु का संचार जैसे शारीरिक लाभ मिलते हैं, वहीं स्फूर्ति उमंग साहसिकता जैसी प्रखरता परक सामर्थ्यों का भी अभिवर्द्धन होता है। अच्छा हो कि प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न इसे अपनाये और अपने सम्पर्क वालों को इसके लिए प्रोत्साहित करें। इससे सैनिक स्तर की तत्परता उभरती है जिसके सामने आलस्य टिक नहीं पाता। झिझक, संकोच और भीरुता आदि का पत्ता कटता है। यह सब महात्म्य शारीरिक व्यायाम प्रक्रिया का है।

मानसिक व्यायाम में व्यवस्था बुद्धि के विकास के लिए समुचित अवसर मिलना चाहिए। मैनेजर, सुपरिन्टेन्डैन्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर की प्रतिभा अपने में विकसित हो सके, उसके लिए ऐसे अवसरों को दौड़कर पकड़ना चाहिए और उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिए आगे आना चाहिए। अनावश्यक शंकाशीलता, डरे-सहमे रहना, झिझक, उत्तरदायित्वों को कन्धे पर उठाने में घबराना, बुरी आदतें हैं। प्रतिभा और प्रखरता को बिखरने न देकर अपने श्रम, समय और मनोयोग के अपने निश्चित निर्धारित क्रियाकलापों के साथ अनवरत रूप से जोड़ना पड़ता है। साथ ही आप अधिकार क्षेत्र के साधनों-उपकरणों को सुव्यवस्थित-सुसज्जित रूप में रखने और उपयोग में लाने की अपनी सतर्कता का परिचय देना होता है। अनावश्यक अनुपयोगी वस्तुओं को या तो ठीक करके उपयोग में लाया जाय अथवा कबाड़ी के यहाँ कूड़ाघर में पहुँचा दिया जाय। उपयोगी वस्तुएँ व्यवस्थित रहें, स्वच्छता इसी को कहते हैं।

मानवी सभ्यता का प्रत्यक्ष पक्ष सफाई के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। गन्दगी को प्रधान दुर्गुण माना जाता है। कुरूपता यही है। इसके कारण बीमारियाँ फैलती हैं। गन्दगी अनगढ़ता की पहली निशानी है। देखने वाले पहली दृष्टि में ही यह अनुमान लगा लेते हैं कि गन्दगी लगा रखने वाला व्यक्ति मानव गरिमा के प्रथम अनुभव से रहित है। यह एक किस्म का अपमान या लांछन है। स्काउटिंग के साथ स्वच्छता और सुव्यवस्था को अविच्छिन्न रूप से जोड़कर रखा जाता है।

वस्तुओं के सन्दर्भ में जिसे सुव्यवस्था कहते हैं, उसी को मनुष्य समुदाय के सन्दर्भ में अनुशासन समझा जाना चाहिए। अपने समय और श्रम सम्पदा के सदुपयोग को, समर्थता, शोभा और प्रगति का आधार माना जाता है। वरिष्ठों से यह आशा की जाती है कि अपने परिवार और सम्पर्क क्षेत्र वाले समुदाय को, उपयुक्त कार्यों में क्रमबद्ध रूप से नियोजित रखें। आमतौर से व्यक्ति अपने आप को क्रमबद्धता में बाँध नहीं पाते। बालकों को बात-बात में सिखाना और पल-पल में निर्देश देना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार बड़ी आयु वाले भी व्यवस्था के सम्बन्ध में अस्त-व्यस्त ही होते हैं। आर्किटैक्ट, इन्जीनियर, ठेकेदार, सेनापति बड़े कारखानों, व्यवसायों के संचालकों आदि में यही विशेषता होती है कि वे सम्बन्धित व्यक्तियों को तत्परतापूर्वक कार्यों में लगाये रहते हैं, उनकी योग्यता, दक्षता, मनःस्थिति आदि का ध्यान रखते हुए तालमेल बिठाए रहते हैं। इसी कारण असफलताएँ सफलता में बदलती देखी जाती हैं।

व्यवस्था बुद्धि वालों की तत्परता बहुआयामी होती हैं। वे कार्यों को उनके महत्त्व के क्रम में लगाते हैं। उपलब्ध व्यक्तियों में से जो उन कार्यों के लिए फिट बैठते हैं, उन्हें कार्य सौंपते हैं। कार्य अधिक सही ढंग से कैसे किया जा सकता है ? इसकी योजना बनाते हैं और सिलसिला बिठाते हैं। उसके लिए अनभ्यस्तों को अभ्यास कराते हैं और भूलों को ठीक करने के उपाय बतलाते हैं। कार्य जैसा होना चाहिए, वैसा न हो पाना व्यक्ति के प्रमाद और नियन्त्रण की सूझ-बूझ की कमी का प्रतीक है।

मनुष्य के पास ईश्वर प्रदत्त समय, श्रम, मनोबल, भावना आदि के अनेक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इन सबका समुचित और सुव्यवस्थित सदुपयोग किया जा सके, तो कार्यक्षमता अनेक गुनी अधिक बढ़ जाती है। उनके सहारे चमत्कारी कहे जाने योग्य उपलब्धियाँ हो सकती हैं। किन्तु दुर्भाग्य से उन्हें सक्रिय रखने और सुनियोजित करने की विद्या बन नहीं पाती। इस कारण उपलब्ध क्षमताओं का एक छोटा अंश ही काम में आ पाता है, फलस्वरूप उपलब्धियाँ भी स्वल्प ही रह जाती हैं। स्तर की दृष्टि से इसे उपहासास्पद माना जा सकता है।

प्रतिभा की पहचान यह है कि न केवल अपनी वरन् सम्बन्धित सभी व्यक्तियों की क्षमताओं को सुनियोजित कराया जा सके। यह वास्तविक शुभ चिन्तन और हित साधन हैं। दुलार या पक्षपात के कारण काम का बोझ न पड़ने देना, आराम को, स्वेच्छाचार को शह देना, एक प्रकार से किसी अपंग-अविश्वस्त स्थिति में पड़े रहने का निमित्त कारण बनता है। साधनों की कमी बेशी हो सकती है, परन्तु क्षमताओं की दृष्टि से सभी लगभग समान होते हैं। अन्तर यह होता है कि किसी ने उनके सदुपयोग में तत्परता दिखाई और कोई उपेक्षा बरत कर उन्हें निष्क्रिय बनाता रहा। प्रबन्ध शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही भारी महत्त्व के कार्यों का सुसंचालन कर पाते हैं। इसीलिए प्रबन्धक का मूल्य महत्त्व और गौरव अन्य योग्यता वालों की तुलना में कहीं अधिक माना जाता है। कौशल इसी को कहते हैं। नेतृत्व ऐसों को ही मिलता है। सफलता और प्रगति के तत्त्व गाड़ी के दो पहियों के समान इसी के साथ जुड़े रहते हैं।

अपव्यय स्थिरता और प्रगति का शत्रु है। साधनों और क्षमताओं को अनावश्यक रूप से खर्च करने वाले अपने को अमीर, अधिकार सम्पन्न तो अनुभव करते हैं, परन्तु वास्तव में वे अपने भविष्य को अन्धकारमय बनाते हैं। असंयमी अपने स्वेच्छाचार का अनर्थकारी प्रतिफल हाथों-हाथ भुगतते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति धन और समय को प्रदर्शनकारी अनावश्यक कार्यों में खर्च करके सस्ती वाहवाही लूटने या अपने-आपको सुविधा सम्पन्न दिखाने का प्रयास करते हैं। वे उपलब्धियों को बर्बाद करने के बाद आवश्यक कार्यों को पूरा करते समय कठिनाई अनुभव करते हैं। अपनी परेशानी का दोष परिस्थितियों को या भाग्य को देते हैं। ठाठ-बाट, प्रदर्शन-विज्ञापन में ही जिनका मन रमता है, उन्हें बचकाना माना जाता है। उन पर यह सन्देह भी किया जाता है कि वे पाए गए साधनों का कभी भी दुरुपयोग कर सकते हैं। यह अप्रमाणिकता, विश्वास और सहयोग में कटौती कराती है। विचारशीलों की दृष्टि में अपव्यय की उच्छृंखलता को भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असभ्यता ही माना जाता है। सभ्यता का सार तत्त्व तो सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त के साथ जुड़ा हुआ है। तेजस्वी लोग अपनी जीवन सम्पदा का अपव्यय न होने दें।

जीवन सम्पदा का कण-कण बचाना और उसे उपयुक्त प्रयोजनों में लगाना जीवन का मूल-मन्त्र है। संयम को इसी दृष्टि से महत्त्व दिया गया और उसे व्यावहारिक जीवन का तप माना गया है। तप के बदले वरदान मिलते हैं, ऋद्धि-सिद्धियों के अम्बार लगते हैं, इसे सभी जानते हैं। इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम, विचार संयम—इन चारों की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। उन्हें जीवन साधना का अविच्छिन्न अंग माना गया है। साधना ही सिद्धियों की जन्मदात्री है। जीभ पर चटोरेपन का और कर्कश बोलने का अंकुश लगाया जाने लगे, तो अनियमित, अनावश्यक भोजन में जो स्वास्थ्य की बर्बादी होती है, वह नहीं हो। कटु भाषण से अकारण जो मनोमालिन्य बढ़ता है, वह न बढ़े। जननेन्द्रिय संयम से जीवनी शक्ति का अनावश्यक ह्रास रुक सकता है और विपरीत लिंग के प्रति सदाशयता का दृष्टिकोण बना रहता है। यह इन्द्रिय संयम का प्रथम पक्ष है। इसी प्रकार अत्यावश्यक वस्तुओं को छोड़कर अन्य चीजें न खरीदी जाएँ। अनिवार्य कामों के अतिरिक्त धन को न खर्च किया जाए। दिनचर्या को उतनी व्यस्त रखा जाय कि उसमें समय की बर्बादी के लिए कहीं गुंजायश न रहे। इसी प्रकार कल्पनाओं में, विचारणाओं में, मात्र रचनात्मक तत्वों को ही स्थान रहे। कुकल्पनाओं को, ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध आदि आशंका जैसे मनोविकारों को यदि पास न फटकने दिया जाय, तो उसका परिणाम इन सभी क्षेत्रों में बचत की राशि एकत्रित करेगा और उसे सत्प्रयोजनों में लगाकर अपनों के लिए ही नहीं, सभी अन्यजनों के लिए भी प्रगति का पथ प्रशस्त किया जायेगा। इन्हीं कारणों को देखते हुए संयमशीलता, सादगी, सुव्यवस्था को सभ्यता का प्रत्यक्ष फलदायी पक्ष माना गया है।

स्काउटिंग की सेवा भावना का विस्तार किया जाए

प्रौढ़ शिक्षा एवं बाल संस्कारशाला से सम्बन्धित छात्रों-अध्यापकों का एक बड़ा प्रगतिशील वर्ग हर गाँव में खड़ा किया जा सकता है। इसके साथ ही उनके अभिभावक और आश्रित भी इस योजना के अंग बन सकते हैं। इस प्रकार हर स्थान पर एक बड़ा समुदाय इस शिक्षा प्रसार योजना के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ सकता है। जनता का एक बहुत बड़ा विचारशील वर्ग इस अभियान के साथ सुसम्बद्ध हो सकता है।

प्रयास यह होना चाहिए कि स्वास्थ्य संरक्षण एवं सुसंस्कारिता का अभिवर्द्धन इसी परिवार के साथ जुड़े और प्रत्यक्ष शिक्षा के साथ-साथ परोक्ष रूप में व्यक्तित्व विकास का महान कार्य भी पूरी तरह से घुला रहे।

कुछ समय पूर्व इस कार्य को व्यायामशालाएँ पूरा करती थीं। गाँव में अखाड़े होते थे। दण्ड, बैठक, कुश्ती जम्प आदि का अभ्यास कराया जाता था। उनमें भाग लेने वाले प्रायः नवयुवक होते थे। इनमें अधिकांश खाते-पीते घरों के होते थे। दूध-घी की सुविधा रहती थी। काम-धन्धे की बड़ी जिम्मेदारी नहीं रहती थी। पहलवानी की महत्त्वाकांक्षा रहती थी। दंगलों में जाते और अपनी बलिष्ठता का परिचय देते थे। घर वाले भी इस पर गर्व करते थे कि हमारा एक लड़का पहलवान है। विरोधी बैर मानने वाले भी डरते थे। किसी को अनुचित छेड़खानी करने का अवसर नहीं मिलता था। इतने लाभ होते हुए भी यह हानि भी थी कि सारा समय उसी में लग जाता था। कमाना, घमाना, सेवा कार्यों में भाग लेना जैसा कुछ बन नहीं पड़ता था। खुराक, तेल-मालिश जैसी व्यवस्था की मार भी घर वालों पर पड़ती थी। वह अखाड़ों की पुरानी पद्धति अब देहातों में भी समाप्त प्रायः है। साधारण खेलकूद ही जब-तब, जहाँ-तहाँ दीख पड़ते हैं। शहरी व्यस्तता में पहले भी उसके लिए बड़ा उत्साह नहीं था और अभी नहीं है। अखाड़े, बड़ी व्यायामशालाएँ कदाचित ही कहीं-कहीं दीख पड़ती हैं।

शहरों-कस्बों में अब वालीबॉल, क्रिकेट, फुटबॉल जैसे खेलों की टीमें बनने लगी हैं। उन्हीं की प्रतियोगिताएँ होती रहती हैं। जहाँ-तहाँ खेल मैदान और स्टेडियम भी बन गए हैं। अब इन दिनों खेल-कूद के नाम पर यही सभी प्रयास चल रहे हैं। इन टीमों की हार-जीत के समाचार अखबारों में भी छपते रहते हैं और उन्हें देखने के लिए दर्शक भी पहुँचते हैं।

सर्वजनीन स्वास्थ्य संरक्षण और संवर्द्धन के लिए उपरोक्त दोनों ही प्रक्रियाएँ कारगर नहीं हो सकीं। यह उच्च वर्ग के लोगों के लिए है। वे ही उनके साथ जुड़ा हुआ व्यय भार उठा सकते हैं। साथ ही एक और भी खोट है कि अत्यधिक दबाव शरीर पर पड़ने के कारण पहलवान स्तर के लोगों की उम्र ढलते ही शरीर के अंजर-पंजर ढीले हो जाते हैं और पीछे उन्हें कराहते हुए दिन काटने पड़ते हैं। बड़े आदमी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को किसी भी प्रकार पूरी कर सकते हैं पर बड़ा प्रश्न सर्वसाधारण की स्वास्थ्य रक्षा का है। उसके लिए मध्यवर्ती मार्ग निकलना पड़ेगा। वह स्काउटिंग पद्धति से मिलता-जुलता ही हो सकता है।

आवश्यक नहीं कि स्कूलों में प्रचलित वर्तमान स्काउटिंग पद्धति को ही सर्वसाधारण के लिए ज्यों का त्यों लिया जाये। उसमें आयु के हिसाब से आवश्यक हेर-फेर किए जा सकते हैं। विशेषतया स्कूली छात्रों के लिए तो यही प्रक्रिया सर्वोत्तम है। बाल संस्कारशालाओं में तो इसी को अनिवार्य रूप से समाविष्ट किया जाना चाहिए। मिलिट्री स्तर की ड्रिल, बिना बड़ी लागत वाले खेल-कूद, योगासन, प्राणायाम, तेजी के साथ चलना या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दौड़ना ऐसे प्रयोग हैं, जिन्हें बाल-संस्कारशालाओं में हर दिन आसानी से कराया जा सकता है। बागवानी, पुष्पोद्यान, शाकवाटिका, वृक्षारोपण आदि ऐसे काम हैं, जिनमें व्यायाम और उत्पादन साथ-साथ चल सकते हैं। सन्त विनोबा व्यायाम में रुचि लेने वालों को सदा एक ही परामर्श दिया करते थे कि वे बागवानी माध्यम से अपनी उस रुचि को पूरा करें। उसमें स्वास्थ्य संरक्षण एवं उपयोगी उत्पादन के दोनों प्रयोजन साथ-साथ सधते हैं। निर्धन देश की उत्पादन भी महती आवश्यकता है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। एक साथ दो कार्य सधें तो उसे सोने के साथ सुगन्ध मिलने जैसा उदाहरण कहा जा सकता है।

बाल-संस्कारशालाओं की जहाँ व्यवस्था है, वहाँ समीप ही कोई खेल मैदान भी खोजना चाहिए। सम्भव हो तो पौधे लगाने के लिए जमीन प्राप्त करनी चाहिए। न मिलने पर वह भी हो सकता है कि अन्य खेत या खाली जगह में जाकर हरीतिमा-सम्वर्द्धन का काम करने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित किया जाये, शिक्षण दिया जाये। भले ही उसका आर्थिक लाभ किन्हीं दूसरों को मिले। हरीतिमा-सम्वर्द्धन उत्पादन ही नहीं वायु शोधन का परमार्थ भी है।

प्रचलित स्काउटिंग में फर्स्टएड-होमनर्सिंग जैसे विषय सम्मिलित हैं। उनकी जानकारी सबको कराई जाये। शरीर विज्ञान, आहार विज्ञान, अनुशासन, शिष्टाचार, सभ्यता के सम्बन्ध में समग्र जानकारी ब्रह्मचर्य महत्त्व जैसे विषय भी बालकों और युवकों को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से सिखाए जाने चाहिए।

यह निजी स्वस्थता एवं योग्यता-संवर्द्धन की बात हुई। साथ में लोकसेवा एवं सुसंस्कारिता संवर्धन के दो विषय और भी हैं। इस शिक्षा प्रकिया का भी आरम्भ से ही अभ्यास कराया जाना चाहिए कि वर्तमान स्थिति में भी वे उदारता, लोकसेवा और परमार्थ भावना का अपनी जीवनचर्या में समावेश कर सकें। इसके बिना व्यक्ति संकीर्ण-स्वार्थपरता से ग्रसित हो जाता है। उस दुष्प्रवृत्ति के परिपक्व हो जाने पर अनाचार एवं दुराचार में प्रवृत्त होने में भी संकोच नहीं करता। इसलिए सेवा भावना को भी चरितार्थ करने वाला कोई काम बालकों की शक्ति संवर्द्धन का ही एक प्रयोग मानकर उसे भी शिक्षा प्रक्रिया में सम्मिलित रखना चाहिए।

स्काउटिंग, शिक्षण प्रक्रिया में कितने ही महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वे सभी अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं। उनमें से प्रत्येक का अपना महत्त्व है। व्यायाम का उसमें पूरा समावेश है। खेल-कूद का माध्यम अपनाया जाना और भी अधिक उपयोगी है। दंड-बैठक, कुश्ती, डम्बल, मुग्दर आदि भारी व्यायाम हैं। उन्हें उत्साह में कर तो लिया जाता है और माँसपेशियों भी उनके द्वारा बड़ी मजबूत होती दिखाई देती हैं। पर साथ ही यह खराबी भी है कि अवयवों की कोमलता चली जाती है और शरीर के स्वाभाविक एवं आवश्यक भीतरी क्रियाकलाप में बाधा पड़ती है। जबकि खेल-कूद में सब कुछ हल्का-फुल्का रहता है। साथ में मनोरंजन भी होता है कि जो मनोबल बढ़ाने की आवश्यक प्रक्रिया है। उनमें व्यायाम के अतिरिक्त बुद्धि कौशल का भी प्रदर्शन करना पड़ता है। खेल-कूदों के अभ्यस्त व्यक्ति सहज ही अपनी बौद्धिक क्षमता भी बढ़ाते चले जाते हैं। दाँव-पेचों के उतार-चढ़ाव वाला पक्ष ऐसा है, जो विकसित होने पर आजीवन काम आता है।

स्काउटिंग का दूसरा पक्ष है, सैनिक स्तर की ड्रिल। इसे प्रकारान्तर से अनुशासन पक्ष कहा जा सकता है। कितने ही लोग अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित जीवन जीते और अनगढ़ स्थिति में पड़े रहते हैं। जबकि अनुशासन को महत्त्व देने पर चुस्ती-फुर्ती बनी रहती है। शरीर को सही स्थिति में कैसे रखा जाए ? आलस्य, प्रमाद के दुर्गुणों से कैसे बचा जाए, यह उस अनुशासन के आधार पर सीखा जा सकता है, जो सैनिक स्तर की आरम्भिक कबायद में सीखना पड़ता है। इसमें साहसिकता बढ़ाने, सैनिक जैसी कर्त्तव्यनिष्ठा जगाने, चुस्त-दुरस्त रहने के ऐसे तत्व विद्यमान हैं, जो स्वभाव में सम्मिलित हो जाने पर अपना उपयोगी प्रभाव जीवन भर दिखाते रहते हैं।

साधारणतया अव्यवस्थित खेल-कूदों में हार-जीत के आधार पर अहंकार और आत्महीनता का भाव बढ़ता है परस्पर रागद्वेष भी पैदा हो जाता है और पार्टीबन्दी चल पड़ती है। कभी-कभी विग्रह भी खड़े हो जाते हैं। किन्तु स्काउटिंग योजना के अन्तर्गत कराए जाने वाले खेल-कूदों में आरम्भ से अंत तक यह ध्यान रखा जाता है कि राग द्वेष का, हार-जीत के दुष्परिणामों का कोई पक्ष उभरने न पाए। प्रकरण समाप्त होते ही हारने-जीतने वाले दोनों हाथ मिलाते, गले मिलते और यह व्यक्त करते हैं कि खेल-कूदों में हार-जीत दोनों ही रहती हैं। इसमें किसी की विजय-पराजय नहीं, यह मात्र मनोविनोद मात्र है। इसमें किसी को अपना मानापमान अनुभव नहीं करना चाहिए।

राष्ट्रीय सुरक्षा का देशव्यापी पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। बड़े होने पर सीमा-सुरक्षा और अन्तरंग व्यवस्था के लिए जिस साहसिकता और सूझ-बूझ की आवश्यकता है, उसका अभ्यास बचपन से ही होते रहने पर व्यक्ति बड़े होने पर उत्तरदायित्वों को भली प्रकार सँभाल सकता है। स्वभावत: अपने इर्द-गिर्द फैली हुई अव्यवस्था, अशिष्टता एवं गन्दगी को सुधारने-बदलने की दृष्टि पनपती है। इस आधार पर श्रेष्ठ और समर्थ नागरिक की विशेषता आरम्भ से ही विकसित होने लगती है। निजी स्तर बढ़ता है। आत्मगौरव का अनुभव होता है। सम्पर्क में आने वालों पर प्रभाव पड़ता है और समाज में सुव्यवस्था बनाने-बढ़ाने में योगदान मिलता है। टोली बनाने अपने-अपने हिस्से का काम करने, नेतृत्व का अभ्यास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने जैसी कितनी ही विशेषताएँ संघबद्ध होकर काम करने से विकसित होती हैं। सैनिक वृत्ति के साथ अनेक गुण जुड़ते हैं। उनके लाभ उठाने के लिए शिक्षालयों में विशेषतया बाल-संस्कारशालाओं में स्कूली होम वर्क पूरा करने के अतिरिक्त आधा समय स्काउटिंग के लिए रखा जाना हर दृष्टि से उचित है।

सेवा भावना की दृष्टि से कोई बहुत बड़ा काम तो छोटी आयु में ही नहीं हो सकता पर इतना अवश्य किया जाना चाहिए कि समाज सेवा को दैनिक जीवन का आवश्यक पथ अनुभव करते हुए उसे किसी न किसी रूप में चरितार्थ करने का नियम बनाया जाए। छोटे बच्चे भी मिल-जुलकर गाँव में, अपने समीपवर्ती क्षेत्र में सफाई रखने के लिए सामूहिक श्रमदान कर सकते हैं। सामूहिक श्रमदान एक बहुत बड़ी शक्ति है। इसका प्रयोग किया जाए और परिणाम देखा जाए तो आश्चर्य से चकित रह जाना पड़ता है। सफाई ही वास्तविक सुन्दरता है। उस पर ध्यान देने से अपनी सुरुचि और कलात्मक दृष्टि का दर्शकों को परिचय मिलता है और उस प्रयोग में संलग्न लोगों की सराहना होती है।

गर्मी के दिनों में पानी की प्याऊ चलाने जैसे छुट-पुट काम बच्चे हँसी-खेल में कर सकते हैं। मेलों की सुव्यवस्था, भीड़ का नियन्त्रण, खोए बच्चे को ढूँढ़ना जैसे भी काम स्काउटिंग के सेवा पक्ष में सम्मिलित हैं। समय-समय पर उन्हें भी चरितार्थ करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

सुसंस्कारिता का शिक्षण भी अनिवार्य

इंजन अपने पीछे जुड़े हुए कितने ही डिब्बों को घसीट ले जाता है। हवा भरी पाल नाव उसमें लदे सामान को अभीष्ट दिशा में खींचती चली जाती है। किसी परिवार, समुदाय, संगठन के सन्दर्भ में भी यही बात लागू होती है, जहाँ कोई लगनशील व्यवस्थापक बुद्धि का आदमी किसी योजना के हर पक्ष का ध्यान रखते हुए उसे पूरा करने के लिए जुटता है, वहाँ प्रगति की सम्भावना सुनिश्चित हो जाती है। गड़बड़ी सूत्र-संचालक के अभाव में पड़ती है, शिक्षा विस्तार के कार्य को सर्वोपरि महत्त्व का सेवा कार्य मानते हुए उसे अपने क्षेत्र में पूरा करते रहने के लिए कोई जीवट वाला व्यक्ति कमर कस कर संलग्न होता है, तो इसे सुनिश्चित समझा जाना चाहिए कि वहाँ कार्य उत्साहपूर्वक आरम्भ होगा और अनवरत गति से चलता रहेगा। जिन्हें भी अपने भीतर परमार्थ बुद्धि, जीवट और मिलनसारी का आभास होता है, उन्हें इस प्रयोजन के लिए कदम बढ़ा ही देना चाहिए। बात को कल परसों के लिए टालते रहने की अपेक्षा उसे अविलम्ब हाथ में लेना चाहिए और कार्य को विस्तार देने की योजना बनाते रहना चाहिए।

अच्छा हो यह कार्य अपने घर से आरम्भ किया जाय। जो परिजन बिना पढ़े हों उन्हें पढ़ने के महत्त्व को समझाते हुए इसके लिए तैयार करना चाहिए। कोई सुविधा का समय इसके लिए निश्चित करना चाहिए। साथ ही जो घर में पढ़ाने में रुचि दिखा सके, उसके लिए समय निकाल सके, उन्हें विद्या ऋण चुकाने के परमार्थ कार्य में नियमित रूप से संलग्न होने के लिए तत्पर करना चाहिए। बड़े बच्चे भी अपने से छोटों को पढ़ाने में योगदान दे सकते हैं। प्रश्न भावना जगने और जगाने भर का है। घड़ी में चाबी भरी रहे तो अन्य पुर्जे एक दूसरे को सहारा देते हुए ठीक तरह चलते रहते हैं और घड़ी अपना काम भली प्रकार करती है। सूत्र-संचालक की कुशलता के ऊपर निर्भर है कि वह योजना के सभी अंगों को किस प्रकार के ढाँचे में डालता है और कैसे कहाँ शिथिलता आते ही उसे सँभालता या विकल्प ढूँढ़ता है ?

घर में प्रौढ़ शिक्षा का क्रम चलते ही पड़ौस में उसी प्रयास को आरम्भ करना चाहिए। हर घर में अपना-अपना अलग-अलग प्रशिक्षण चले, इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि मुहल्ले के कई-कई घरों में एक सम्मिलित योजना चले। इसमें कई लाभ हैं। एक तो यह कि एक को देखकर दूसरे को उत्साह मिलता है। स्वस्थ प्रतियोगिता चलती है और सामूहिकता का वातावरण बनता है। एक अध्यापक कई-कई विद्यार्थियों को एक साथ पढ़ा सकता है। कई स्तर के छात्रों को एक स्थान पर एकत्रित करके पढ़ाने में ही अधिक सुविधा बनती है और प्रयास उत्साहपूर्वक चलता रहता है।

इससे बड़ा कदम बड़ी प्रौढ़शाला चलाने का है। इसके लिए आवश्यक सुविधा वाला स्थान भी माँगकर प्राप्त करना चाहिए। जिस सम्बन्ध में लोगों का उत्साह न हो, जिसका महत्त्व न समझते हों, उसके लिए उन्हें तैयार करना ही बड़ा काम है। छात्रों को, अध्यापकों को प्रोत्साहित करना, उनके शिथिल पड़ते ही फिर नई हवा भरना अपने आप में बड़ा काम है। इसे प्रतिगामिता को प्रगतिशीलता में परिणित करने के समतुल्य समझना चाहिए। इसके साथ ही यदि छात्रों को फीस देने और अध्यापकों को वेतन चुकाने का भी भार जुड़ जाए तो समझना चाहिए कि योजना इतना भार वहन न कर सकेगी और कुछ ही कदम आगे चलकर बैठ जाएगी। यह सभी कार्य निःशुल्क होने चाहिए। न तो पढ़ने वालों को छात्रवृत्ति दी जा सकती है और न अध्यापकों को वेतन। इसी प्रकार स्थान की व्यवस्था करने का प्रश्न भाड़े पर दुकान लेने के आधार पर हल किया गया तो वह भी देर तक निभ नहीं सकेगा। अपने देश की दान-पुण्य भावना भी विचित्र है। उसमें देवी-देवताओं को प्रसन्न करके, उनसे मनोकामनापूर्ण कराने की ललक जुड़ी रहने से धार्मिक कर्मकाण्ड तो लोग सहज कर लेते हैं, यश लिप्सा के लिए मन्दिर, धर्मशाला आदि भी बना देते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जिन कार्यों में सस्ती वाहवाही लूटने का अहंकार पूरा न होता हो उन रचनात्मक कामों के लिए आर्थिक सहायता नियमित रूप से देते रहना किसी बिरले से ही सम्भव है। ऐसी दशा में दान पर निर्भर रहकर कार्य आरम्भ करने की अपेक्षा यही व्यावहारिक है कि अध्यापकों को विद्या ऋण चुकाने का कर्त्तव्य बोध कराया जाय। अध्यापक कोई भी शिक्षित व्यक्ति हो सकता है।

आवश्यक नहीं कि यह कार्य स्कूली टीचर ही करें। उन्हें ट्यूशन आसानी से मिल जाते हैं। ऐसी दशा में मुफ्त पढ़ाने के लिए शिक्षितों में सेवा भाव जगाकर ही उस प्रयोजन की पूर्ति की जा सकती है। शिक्षा का महत्त्व और शिक्षित का भविष्य यदि आकर्षक ढंग से समझाया जाता रहे, तो छात्रों की भी कमी न पड़ने पाएगी। कोई मन्दिर, धर्मशाला, चौपाल या किसी बड़े आदमी का कुछ घण्टे के लिए, एक दो कमरा माँगा जा सकता है। पेड़ों का झुरमुट भी काम दे सकता है। वर्षा के दिनों के लिए छाया आवश्यक है। बाकी महीनों में तो खुले पेड़ों के नीचे भी किसी प्रकार काम चलाया जा सकता है। टाट-पट्टी, ब्लैक बोर्ड, रात के लिए रोशनी, बुहारी पानी आदि की आरम्भिक आवश्यकताओं के लिए तो थोड़ा पैसा चाहिए ही। इसके लिए संचालक स्वयं कुछ देता रह सकता है अथवा अपने मित्रों से संग्रह करते रह सकता है।

चूँकि योजना व्यापक है। उसके अन्तर्गत प्राय: ५० करोड़ व्यक्तियों को शिक्षित किया जाना है। सो भी एक एक पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, इसलिए इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उसके मूल में सेवा बुद्धि ही काम करनी चाहिए। जिस देश में एक लाख मन्दिरों का खर्च चलता है। साठ लाख साधु बाबा पलते हैं। पण्डित पुरोहितों का एक बड़ा समुदाय निर्वाह प्राप्त करता है। तीर्थों के निमित्त भारी धन राशि खर्च होती है। धार्मिक कर्मकाण्डों में प्रचुर धन लगता है, वहाँ यदि प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन को लगनशील व्यक्ति सच्चे मन से चलाएँ तो वह गति न पकड़ सके, ऐसी कोई बात नहीं है। स्काउटिंग, सेवादल, सेवा समिति जैसे दशा में यदि प्रौढ़ शिक्षा जैसे गरीबी भगाओ प्रयास के समतुल्य महत्व वाले कार्यों को लगन के साथ चलाया, उसे व्यापक बनाया जाय तो यह सहज सम्भव है।

इसका एक उदाहरण शेखावटी (राजस्थान) के स्वामी केशवानन्द का है। उन्होंने किसान महिलाओं में घर-घर जाकर विद्यादान का पुण्य फल समझाया। हर घर में एक मुट्ठी अनाज डालते रहने के लिए छोटे-छोटे घड़े रखवाए। एक गाँव के अनाज से सामान्य शिक्षित अध्यापकों का भी खर्च चलने लगा। स्कूल बढ़ते चले गये। उसी मुट्ठी फण्ड से पाठशालाओं की इमारतें बनती चली गईं। प्राथमिक पाठशालाओं के बाद माध्यमिक शालाएँ खुलीं। हाईस्कूल बने और कॉलेजों का एक समूह बन गया। इस योजना के अन्तर्गत प्राय: ५०० गाँवों में पाठशालाएँ चलती रहीं। सारे इलाके में शिक्षा आन्दोलन सफलतापूर्वक चलता रहा। स्वामीजी को जनता ने निर्विरोध कई बार पार्लियामेण्ट का सदस्य चुनकर भेजा। स्वामी जी जीवन भर इसी एक काम में लगे रहे और उन्होंने हजारों छात्र-छात्राओं का जीवन समुन्नत स्तर का बनाने में सफलता प्राप्त की।

यह उदाहरण प्रत्येक लोकसेवी के लिए आदर्श बन सकता है। 'गरीबी भगाओ' आन्दोलन के लिए जब अनेक स्थानों पर खर्चीली अनेक योजनाएँ चल सकती हैं तो जनसहयोग से शिक्षा आन्दोलन न चल सके, ऐसी कोई बात नहीं है। आवश्यकता उनकी है जो इस आन्दोलन के कर्णधार बनकर उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने को समर्पण भाव से संलग्न कर सकें।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए यों सरकार भी कुछ खर्च करती है। पर उस सहायता को प्राप्त करना असाधारण चतुरता का काम है। सरलता से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए इधर-उधर मन भटकाने की अपेक्षा यही अच्छा है कि इस पुण्य-प्रयास को आदि से अन्त तक विशुद्ध परमार्थ भावना पर निर्धारित रखा जाय। उसके मूल में उदारचेताओं की परमार्थ बुद्धि को ही नियोजित रख सकने के लिए प्रबल प्रयास किया जाय। यदि ऐसा हो सका तो हम अपने देश की महती सेवा कर सकने में सफल होंगे।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए उपरोक्त योजना अपने आप में समग्र है। उसके लिए जनसम्पर्क में भावनाएँ उभारने की शैली से अवगत होकर जनसहयोग उत्साहवर्द्धक मात्रा में पाया जा सकता है। इस आधार पर देश को सुशिक्षित बनाने का लक्ष्य विश्वासपूर्वक पाया जा सकता है।

इसी योजना का एक और दूसरा पक्ष है—स्कूलों में पढ़ने जाने वाले छात्रों को उनके स्कूल टाइम के अतिरिक्त समय में पढ़ाना।

इस स्थिति से भी सभी अवगत हैं कि मात्र स्कूली पढ़ाई के बलबूते सरकारी परीक्षाओं में भी अच्छे नम्बरों से पास नहीं हुआ जा सकता। इसके लिए घर पर निजी पढ़ाई की व्यवस्था करना आवश्यक है। जो कमी स्कूलों में रह जाती है, उसकी पूर्ति के लिए घर पर कुछ व्यवस्था बनाया जाना आवश्यक है। सम्पन्न लोग तो महँगे ट्यूशन भी लगा सकते हैं। पर जिन्हें रोज कुआँ खोदना और रोज पानी पीना पड़ता है उनके लिए अपने कई बच्चों के लिए ट्यूशन रख सकना एक प्रकार से असम्भव ही है। न कर पाने पर बच्चों का भविष्य अन्धकारमय बनता है।

इस कमी की पूर्ति के लिए प्रौढ़-पाठशालाओं की तरह 'बाल-संस्कारशालाओं' का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। स्कूली समय के उपरान्त का समय इस पढ़ाई के लिए निर्धारित रहना चाहिए। सर्दी गर्मी में स्कूली टाइम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलते रहते हैं, उसी हिसाब से इन बाल-संस्कार शालाओं का समय भी बदल लिया जाना चाहिए। इन संस्कारशालाओं में वह कार्य पूरा कराया जाना चाहिए जो छात्रों को होमवर्क के रूप में घर पर पूरा करने के लिए मिलता है।

देखा यह गया है कि घर आने पर बच्चे खेलने-कूदने में, इधर-उधर के घरेलू कामों में लग जाते हैं। पढ़ने में मन नहीं लगता। इसलिए होमवर्क वाली बात प्राय: अधूरी ही रह जाती है। यदि उन्हें नि:शुल्क इन पाठशालाओं में ट्यूशन जैसा कुछ पढ़ने को मिले तो बच्चे भी प्रसन्नतापूर्वक उनमें सम्मिलित होने का उत्साह व्यक्त करेंगे और अभिभावक भी उन पर दबाव देकर भेजेंगे। अध्यापकों का प्रबन्ध विद्या ऋण चुकाने का पुण्य मिलने के नाम पर ही अर्जित करना चाहिए। यह कठिन लगता भर है पर वस्तुत: वह वैसा है नहीं। परमार्थ बुद्धि का सर्वथा लोप नहीं हुआ है। वह गलत दिशा में भटक भर गई है। यदि प्रयत्न किया जाय तो उसे परमार्थ प्रयोजनों के लिए आसानी से मोड़ा जा सकता है और प्रौढ़ पाठशालाओं के समकक्ष बाल संस्कारशालाओं का दुहरा कार्यक्रम हर गाँव में, हर क्षेत्र में आसानी से चलाया जा सकता है।

पूरा दिन पढ़ाई में लगने से बच्चे ऊबने भी लग सकते हैं। खेल-कूद के अभाव में उनका शारीरिक, मानसिक विकास भी रुक सकता है इसलिए प्रबन्ध यह होना चाहिए कि बाल-संस्कारशालाओं में निर्धारित समय में से आधा स्कूली पढ़ाई को पूरा करने में लगाया जाय और आधे में उन्हें स्काउटिंग स्तर की स्वास्थ्य शिक्षा बौद्धिक और व्यावहारिक रूप से दी जाय। स्काउटिंग इन बाल पाठशालाओं का अनिवार्य विषय रहे, ताकि वे समर्थ और सुसंस्कृत नागरिक बन सकें।

सुसंस्कारिता अपने आप में एक अति महत्त्वपूर्ण विषय है। इसके बिना सभ्यता के क्षेत्र में प्रवेश नहीं मिलता। न प्रतिभा निखरती है और न प्रखरता, प्रामाणिकता की वह विभूति हस्तगत होती है जिसके सहारे आत्मसन्तोष एवं जनसहयोग मिल सकता है। सुसंस्कारिता की नैतिक शिक्षा का अत्यन्त उपयोगी पक्ष प्राय: स्कूलों में पूरा नहीं हो पाता। उसकी पूर्ति का दायित्व यदि बाल-संस्कारशालाएँ उठा सकें तो शिक्षा सच्चे अर्थों में शिक्षा बन सकती है और देश को प्रतिभावान नई पीढ़ी प्रदान कर सकती है।

शिक्षण-पद्धति ही नहीं, समग्र जीवन दर्शन बदले

सात वर्ष के लड़के को उसके माता-पिता लगातार झिड़कियाँ सुनाते जा रहे थे। बालक रो रहा था, पर उनके तानों-उलाहनों में किसी प्रकार की कमी नहीं आ रही थी। अचानक एक युवती उधर से निकली, बच्चे का रोना उससे देखा न गया। आखिर रुककर उसने पूछ ही लिया—"क्यों ? बच्चे को कोई तकलीफ है क्या ?" जबाव में उसके माँ-बाप दोनों बोल उठे—"अरे नहीं ! यह बड़ा मक्कार है, पढ़ता नहीं है, स्कूल में भी इसी प्रकार डाँटा जाता है, फिर भी कोई असर नहीं है।" तो पढ़ाने का तरीका झिड़कियाँ सुनाना है। भला किस स्कूल में पढ़ता है ? माँ ने विद्यालय का पता बतला दिया।

कौतूहल और जिज्ञासा के भावों को लेकर यह महिला दूसरे दिन विद्यालय पहुँच गई। वहाँ का दृश्य भी संतोषजनक न था। बाल मन की जानकारी न होने के कारण शिक्षकों का व्यवहार बड़ा ही अजीबोगरीब था। इस व्यवहार का ही प्रभाव था कि बच्चे विद्यालय को लगभग जेलखाने के स्तर का समझते थे। छुट्टी होने पर उनके चेहरे पर वैसे ही भाव आते जैसे किसी कैदी के जेल से छूटने पर आते हैं।

महिला ने शिक्षकों को समझाने का प्रयास किया कि बालक जोर-जबरदस्ती की चीज नहीं। दबाव और अनुचित दण्ड उनके स्वाभाविक विकास को रोक देता है। शिक्षकों और माता-पिता की इस नासमझी के कारण बाल मन में अनेकों ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं। जो उसके भावी जीवन, स्वभाव, चरित्र, संकल्प शक्तिहीन या अहंभाव, कार्य पद्धति आदि तमाम बातों पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। इस सब को समझते हुए मनमानी पाबन्दियों के घेरे में बाँध देना अथवा उन पर अपनी शक्ति का परीक्षण करना किसी तरह ठीक नहीं। इसे अनाधिकार चेष्टा ही कहा जाएगा। बच्चे का अपना निजी अस्तित्व और पृथक् व्यक्तित्व है। एक छोटी-सी उसकी अलग दुनिया है, जिसमें विचरण करना, अपनी कल्पनाओं का विकास करना उसका अधिकार है। इन सारी बातों को समझते हुए अच्छा यह है कि हम उनके साथ एक माली की तरह व्यवहार करें। जो पौधों को पृथक अस्तित्व मानते हुए उसके लिए खाद-पानी जुटाकर उसके विकास में सहायक होता है। पौधे को मनचाहे तरीके से बढ़ाया-घटाया जा सके, यह सम्भव नहीं है। उसके विकास में सहायता भर की जा सकती है। सहायता किस प्रकार की जाय, जो इसके सूत्र-सिद्धान्तों को जान ले, वही सफल माली है। ठीक इसी प्रकार जो बाल-विकास में अपनी भूमिका को पहचान कर सही सहायता उपलब्ध करा सके, वही सफल शिक्षक है।

शिक्षकों में से कुछ ने उसके विचारों को ध्यान से सुना। कुछ ने यह कहकर मुँह बिचका दिया कि आपको क्या पड़ी है, दूसरे के कामों में टाँग नहीं अड़ाना चाहिए। जिन लोगों ने सुना उन्होंने अपनी मजबूरी बताई। जब तक इस तरह के समग्र शिक्षण की पद्धति का विकास नहीं हो पाता तब तक कुछ सार्थक कर सकना सम्भव नहीं। महिला ने सबकी बातें ध्यान से सुनकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहले मुँह बिचकाने वालों को जबाव दिया। मेरा सम्बन्ध नारी जाति से है। इसे विधाता की ओर से सृजन और निर्माण का दायित्व मिला हुआ है। कोई विचारशील इस अधिकार को चुनौती नहीं दे सकता। रही बात एक समग्र शिक्षण-पद्धति की, तो परमात्मा ने चाहा तो यह अवश्य सम्भव होगा।

यह महिला थी—मारिया माण्टेसरी। जीवन के बदलते क्षणों में जिनका संकल्प नहीं बदला। अपने अडिग संकल्प के बल पर पश्चिमी जगत को बाल-शिक्षा का महत्व सुझा सकीं। यह समझा सकीं कि पढ़ाई-लिखाई गौण है। शिक्षा की बुनियाद संस्कार है। इसे किसी दण्ड, भय, लोभ से प्रेरित न होकर आत्मसंतोष से प्रेरित होना चाहिए। शिक्षक की योग्यता है—धैर्य और कार्य है—बालक की गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन कर उसके आन्तरिक गुणों को उभारना। माण्टेसरी नाम से प्रचलित यह पद्धति अपने आप में समूचा मार्गदर्शन है।

इस मानव दर्शन के प्रसार की ललक उनके मन में उस समय उमगी, जिस समय रोम के मेण्टल हॉस्पिटल में चिकित्सक थीं। यहीं से उनकी भावनाओं में एक नया ज्वार उठा। अस्पताल के पागल रोगियों की दशा उनको बेचैन कर देती। विशेषकर उन मन्द बुद्धि अविकसित या बिगड़े बालकों को देखकर उनका हृदय सिसक उठता, जो पागल नहीं थे, उन्हें पागल कहा जा रहा था। उनका आचरण भी विचित्र हो गया था। जब ये रोटी माँगते तो इनकी गिड़गिड़ाहट, चेहरे पर छाई दयनीयता देखकर साफ जाहिर होता है कि ये रोटी के नहीं स्नेह के भूखे हैं। इन्हें यदि स्नेह-संरक्षण देकर सुप्त पड़े सुसंस्कारों को जगाया जा सके, तो इनमें से अनको ठीक हो सकते हैं।

पर उनके स्वयं के जीवन का प्रश्न था। एक तरफ सुख-वैभव का भोग, इटली की प्रथम महिला डॉक्टर होने का सम्मान, दूसरी तरफ समाज देवता की आराधना। किसे छोड़े ? किसे पकड़े ? ज्यादा देर इस ऊहापोह में नहीं झूलना पड़ा। सुख-वैभव को ठुकराकर समाज की आराधना में जुट गईं। अस्पताल के मुख्य अधिकारी को राजी कर एक विद्यालय खोल लिया। विद्यार्थियों के रूप में इन्हीं बिगड़ैल, मन्दबुद्धि बालकों को लिया गया। बच्चे असाधारण रूप से सुधरने लगे। उत्साहित हो प्रयोग आगे बढ़ाने की सोची। विचार आया, जब ये बिगड़ैल कहे जाने वाले इस तरह अच्छे बन सकते हैं, तो सामान्य बच्चों को क्यों न ऐसा शिक्षण दिया जाय कि बिगड़ें नहीं ? बस एक नवीन पद्धति विकसित होने लगी।

क्रम और आगे बढ़ा। शिक्षकों से सम्पर्क साधा गया। मानवता के नाम मार्मिक अपीलें की गईं। बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म निष्कर्षों से अवगत कराया गया। १८९८ में ट्यूरिन की शिक्षा कान्फ्रेंस में उन्हें ससम्मान बुलाया गया। वहाँ उन्होंने अपने अनुभवों व प्रयोगों को रखा। एक बारगी सारा विश्व चौंक पड़ा। उनकी बातें स्वीकारी गईं।

१९०६ में उनकी मुलाकात मजदूर नेता टालमो से हुई। उन्होंने इटली के मजदूर बच्चे जो अशिक्षा, असभ्यता के घने अन्धकार में पड़े बिलबिला रहे थे, के विकास की बात कही। स्वीकारोक्ति के बाद गन्दी बस्ती के नाम से प्रसिद्ध लारेंजों में बाल-निकेतन खोला गया। फिर क्या था सहयोगियों के अनुपात में बालगृह खुलते गए। अन्तर्राष्ट्रीय माण्टेसरी शिक्षण संघ बना। मजदूर और अशिक्षित बच्चों की यह परोपकारिणी माँ संसार भर के बच्चों की परोपकारिणी माँ के नाम से जानी जाने लगी।

वह स्वयं में अँग्रेजी, लैटिन, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इतालवी भाषा की ज्ञाता थीं। उन्होंने विभिन्न भाषाओं में बीसियों किताबें लिखीं। अन्तिम दिनों में उन्हें अफ्रीकी बच्चों के विकास की चिन्ता सताने लगी थी। वह कहा करती थीं कि हर नारी मेरिया माण्टेसरी बन सकती है। आवश्यकता संकीर्णता से जकड़े वात्सल्य को छुटकारा दिलाने की है। बाल विकास का यह कार्य तभी भली प्रकार चल सकेगा, जब नारियाँ इसका दायित्व सँभालने के लिए तत्पर हों। ६ मई, १९५२ में ८९ वर्ष की आयु में यही सोचते-सोचते चिरनिद्रा में विलीन हो गईं।

उनका सपना अभी मूर्त कहाँ हुआ है ? इसे मूर्त करने की जिम्मेदारी नारी वर्ग पर है, जिसे विधाता ने माता की गरिमा से अलंकृत किया है। नवयुग के लिये नई पीढ़ी तैयार करने के लिए यह वर्ग आगे आए और युगधर्म के रूप में अपने दायित्व को समझकर बच्चों को सुसंस्कारित नागरिक के रूप में ढालने की प्रकिया में तत्पर हो।

समानान्तर शिक्षा हम स्वयं खड़ी करें

समझदारी का तकाजा यह है कि बच्चे की शिक्षा का उद्देश्य निश्चित कर लिया जाय। लक्ष्यविहीन श्रम करने में समय, शक्ति और पैसा तीनों ही खर्च होते हैं। फिर उसका कोई उपयुक्त परिणाम न निकले तो निराशा और खीज ही पल्ले पड़ती है। बच्चे भी हैरान होते हैं और अभिभावक भी।

नौकरी के लिए पढ़ाई वाला लक्ष्य जितनी जल्दी दिमाग में से निकाल दिया जाय उतना ही अच्छा। ग्रेजुएट अच्छी डिवीजन में होने के उपरान्त ही किसी को काम चलाऊ नौकरी की आशा करनी चाहिए। कामचलाऊ से मतलब है हजार आठ सौ की। इससे कम में घर से बाहर परिवार सहित रहने में किसी का गुजारा नहीं हो सकता। दो कमरे और टट्टी, रसोई वाला मकान क्या शहर, क्या गाँव, कहीं भी ढाई सौ रुपये से कम में नहीं मिलता। बिजली, पानी का खर्चा इसके अतिरिक्त है।

खाने-पीने की वस्तुओं की कितनी महँगाई है इसे सभी जानते हैं। मियाँ बीबी दो हों तो बात दूसरी है। अन्यथा एक-दो बच्चा हो जाने पर उनके लिए दूध तो चाहिए ही। दूध का भाव दस रुपए से कम कहीं भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है। बच्चों के खिलौने से लेकर कपड़ों तक का खर्च एक आदमी के बराबर पड़ता है। मियाँ बीबी दो ही हों, ऐसा नहीं हो सकता। घर की चौकीदारी के लिए माँ बहन आदि कोई न कोई साथ रखना पड़ता है। इसके बिना बच्चों की देखभाल भी ठीक तरह नहीं हो सकती। फिर घर वाले जिन्होंने इतना खर्च करके पढ़ाया है, वे बदले में कम से कम इतना तो चाहते ही हैं घर का एक लड़का अपने साथ रखा जाय और इसे पढ़ाने-लिखाने का खर्च उठाया जाय। इस प्रकार एक छोटी गृहस्थी पीछे बँध जाती है। अब सबका खर्च मिलाकर कितना बैठता है, यह कागज पेन्सिल से सही न लगाया जा सके तो किसी भुक्तभोगी से पूछा जा सकता है।

डिपार्टमेन्टों में आए दिन तबादले होते रहते हैं। तीन साल में तो हो ही जाते हैं। क्वार्टर सरकारी सबको तो मिलते नहीं। शहर हो या गाँव किराये का मकान ही ढूँढ़ना पड़ता है। उपयोगी मकान मिलते नहीं, सीलन और सड़न भरे घरौंदे जिनमें न हवा पहुँचती है न रोशनी जहाँ-तहाँ जैसे-तैसे मिलते हैं। आजकल नौकरी मिलने के बाद सबसे बड़ी समस्या मकान की ही है। न जाने पड़ौस कैसा मिले ? पड़ौस का ठीक होना न होना भी एक समस्या है। माँसाहारी, शराबी, चोरी, गुण्डागीरी के स्वभाव वाले पड़ौसी मिले तो बच्चों को अकेले छोड़ कर नौकर पर जाना सुरक्षा की दृष्टि से चिन्ताजनक ही रहता है। तबादला होने पर बच्चों के स्कूल बदलने पड़ते हैं। घर से स्कूल कितनी दूर है—वहाँ तक रोजाना आना जाना सुरक्षित है या नहीं, यह पूरी एक समस्या है। जब तक घर में रहते थे, तब तक समस्याएँ सामने नहीं थीं, पर जब बच्चों को साथ लेकर नौकरी में जाना पड़ा तो सौ समस्याएँ सामने आती हैं। बच्चों को घर पर छोड़ा जाय एवं स्वयं अकेले नौकरी पर जाया जाय तो भी मकान तो लेना ही पड़ेगा। भोजन बनाने में उतना समय तो लगेगा ही। घर आने-जाने का सप्ताह बार क्रम भी रखा जाय तो उसका किराया लगेगा सो अलग। बहू और सास की पटरी नहीं बैठती है तो पीछे तिल का ताड़ बनता है। दोनों ओर से आते ही शिकायतों के पहाड़ खड़े हो जाते हैं। घर पहुँचने की प्रसन्नता-अप्रसन्नता में बदल जाती है। पिता की डाँट-फटकार न रहने पर बच्चे बिगड़ने लगते हैं और बेकाबू हो जाते हैं। इस प्रकार बच्चों को घर छोड़ना या साथ ले जाना दोनों ही समस्या बन जाते हैं। जिस परिवार ने पढ़ा-लिखा कर नौकरी से लगाया है, वह पैसा वापस माँगता है। पत्नी की फरमायश आती रहती है। इस प्रकार नौकरी लगने की प्रसन्नता अप्रसन्नता में बदल जाती है। हजार रुपये से कम में यह गाड़ी पटरी पर ठीक तरह नहीं बैठती। तीन चार सौ की नौकरी हो तो उपरोक्त समस्याओं में से एक भी हल नहीं होती। इच्छा होती है कि इसे छोड़कर हल जोता जाय। रिश्वत की आमदनी का कोई अलग अच्छा स्रोत निकाला जाय तो आत्मा कचोटती है। बदनामी भी होती है।

इतने पर भी समस्या नौकरी मिलने की है। सौ पीछे अस्सी बेकार घूमते हैं। बीस को भी लँगड़ी-लूली नौकरी पाने के लिए किन्हीं की जेब गरम करनी पड़ती है उसे वापस कैसे लौटाया जाय ? नौकरी मिलने सम्बन्धी कठिनाइयों का यह उल्लेख है। यदि नहीं मिलती तो हर कहीं बदनामी होती है। तरह-तरह के लांछन लगते हैं। साँप-छछूँदर की गति हो जाती है। स्कूल में दाखिला लेते समय से लेकर पढ़ाई पूरी करने तक जो रंगबिरंगे सपने देखे गए थे, उनमें से एक भी पूरा नहीं होता। नौकरी मिले तो आफत, न मिले तो आफत। हजार रुपये की नौकरी बड़े अफसरों को मिलती है। छोटे मोटे लोग मुश्किल से पाँच-छह सौ भर पाते हैं। इस घोर महँगाई के जमाने में इतने पैसों में कितना सामान आता है, यह बाजार में जाकर तलाश किया जा सकता है।

बी. ए. पास करने से १५ और एम. ए. पास करने से १७ कक्षाएँ होती हैं। पढ़ाई चार वर्ष से आरम्भ हुई मानी जाय तो इसमें २०-२१ वर्ष स्कूल में लगातार चक्कर काटने पड़ते हैं। सो भी तब जब कि एक साल भी फेल होने में बर्बाद न हों। आरम्भिक कक्षाओं में कपड़े, फीस, किताबें, जेब खर्च कुछ कम लगता है, पर बड़ी कक्षा में पहुँचते-पहुँचते उस खर्चे में दूनी ढाई गुनी वृद्धि हो जाती है। न्यूनतम औसत निकाल कर सौ रुपये मासिक से कम खर्च नहीं पड़ता। बी. ए. में १५ × १२०० = १८००० और एम. ए. १७ वर्ष में १७ × १२०० = २०४०० रुपए खर्च होते हैं। वर्तमान में बैंक ब्याज समेत मूल धन पाँच वर्ष में दूना हो जाता है। इस प्रकार बी. ए. में ब्याज समेत यह ढाई गुना और एम. ए. में तीन गुने से अधिक होता। यह भी तब है, जब कोई ट्यूशन लगाना न पड़े और किसी साल फेल होने का अवसर न आवे।

यह ग्रेजुएट बनने की लागत है। इसके अतिरिक्त नौकरी प्राप्त करने के लिए कोई न कोई ट्रेनिंग प्राप्त करनी पड़ती है। पूरी ट्रेनिंग पाँच साल की और डिप्लोमा ट्रेनिंग दो वर्ष की होती है, इन्जीनियर, डॉक्टर, एडवोकेट चार्टर्ड एकाउटेण्ट आदि की पूरी ट्रेनिंग पाँच साल की है। ओवरसियर, अध्यापक, पुलिस इन्सपेक्टर, कम्पाउण्डर आदि की ट्रेनिंग दो वर्ष की है। यदि दो वर्ष की ट्रेनिंग मानी जाय और उसका खर्च २५० मासिक भी जोड़ा जाय तो ६००० उसी राशि में और सम्मिलित करना पड़ता है। लड़का १६ वर्ष की आयु से घर के काम-धन्धे में इतना हाथ बँटाने लगता है कि घरवाले पर भार न रहे। अपने गुजारे के लायक स्वयं कमाने लगे। ग्रेजुएट बनने तक लड़के की आयु १९ वर्ष को जाती है, ट्रेनिंग लेने के दो वर्ष इस प्रकार नौकरी प्राप्त करने लायक उम्र कम से कम २१ वर्ष मानी जानी चाहिए। यदि वह इस झंझट में न पड़ा होता और सोलह वर्ष की आयु से ही कुछ कमाने लगा होता तो ४ वर्ष का पारिश्रमिक २५०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मासिक के हिसाब से ६००० वह भी जुड़ जाता। इस प्रकार कुल लागत ट्रेन्ड ग्रेजुएट होने की मोटे रूप में इतनी बैठती है। १८००० रुपये मूलधन जो ग्रेजुएट होने में खर्चना पड़ा। ६००० रुपये मूलधन ट्रेनिंग काल के दो वर्ष का ५४१५० रुपये ब्याज बैंक का चक्रवृद्धि दर से इतनी अवधि का १८,००० रुपये का श्रम दस रुपये रोज की दिहाड़ी के अनुसार जो इन दिनों किया जा सकता था,. कुल ९४,९५० रुपए। यह मात्र मोटा अनुमान ही है।

इतनी लागत के उपरान्त भी कहा नहीं जा सकता कि नौकरी लगेगी या नहीं। यदि लगी भी तो कितने दाम की लगेगी ? यदि न लगी या कम पैसे की लगी तो यह मूलधन ही इतना अधिक हो जाता है कि उसमें कोई छोटा-मोटा स्वतन्त्र व्यापार करके सारी जिन्दगी काटी जा सकती है और कुटुम्बियों के बीच प्रेम भाव का जीवन बिताया जा सकता है।

(१) आटा पीसने की चक्की, (२) तेल निकालने का कोल्हू (३), सवारी लादने का स्कूटर, (४) कटपीस कपड़े की दुकान, (५) रेडीमेड कपड़ों की दुकान (६) स्टेशनरी की दुकान जैसी हर जगह अच्छी तरह चल सकने वाली दुकान आदि कोई भी व्यवसाय सोलह वर्ष की आयु से ही औपचारिक घर बैठी शिक्षा के साथ आरम्भ किया जा सकता है। इस आयु में मैट्रिक भी किया जा सकता है। मैट्रिक तक की पढ़ाई सस्ती भी पड़ती है। हर गाँव से ३-४ मील के दायरे में अब हाईस्कूल खुल गए हैं, जिन तक साइकिल से रोज पहुँचा और रोज घर आया जा सकता है। इस प्रकार पढ़ाई का खर्च कम पड़ता है। देहाती स्कूलों में पुरानी किताबें खरीदने में भी कोई बेइज्जती नहीं होती। छुट्टी के समय में घरवालों के काम में हाथ बँटाया जा सकता है। यदि नौकरी न लगे तो खेती-बाड़ी के काम की जो ट्रेनिंग प्राप्त कर ली गई थी, वह आगे चलकर बहुत काम आती है।

ऊपर की पंक्तियों में जो विस्तारपूर्वक लिखा गया है वह यह मानकर लिखा गया है कि ग्रेजुएट हो जाने के बाद भी यदि नौकरी न मिले या कम पैसे की मिले उस परिस्थिति के मुकाबले में विकल्प क्या हो सकता है ? विकल्प यह सोचा गया है कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़कर शिक्षितों की श्रेणी में अपना नाम जोड़ लिया जाय और भविष्य के लिए यह निश्चय किया जाय कि घर का कोई काम-धन्धा किया जाएगा। कृषि, पशुपालन आदि की इतनी गुंजायश घर पर है कि उसमें नये शिक्षित को खपाया जा सके तो उसके लिए निश्चित काम है ही। उसमें और नये उपकरण जोड़े जा सकते हैं। पानी निकालने का पम्प, हल जोतने का ट्रैक्टर यदि कुछ घर का पैसा, कुछ बैंक से उधार लेकर खेती का काम बढ़ा दिया जाय तो उससे एक दो गृहस्थी का पालन अधिक हो सकने की गुंजाइश निकल सकती है। कृषि में सुधारे हुए अनेकों तरीके अब ऐसे निकले हैं, जिन्हें अपनाने पर आमदनी कहीं अधिक बढ़ सकती है और किसान की गृहस्थी को अधिक फलने-फूलने का सुयोग्य उतने में ही बैठ सकता है। सम्पन्न किसान की इज्जत उससे कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है, जिससे एक ग्रेजुएट बिना नौकरी के मारा-मारा फिरता है। ढेरों पूँजी उसमें खप जाय, इतने पर भी नालायकी सिर पर ओढ़नी पड़े। चित्त में हर घड़ी खेद छाया रहे। आज की परिस्थितियों को देखते हुए यह कोई अचम्भे की बात नहीं है कि पढ़ाई पूरी कर लेने पर भी बेकारी पल्ले बँधे, आँकड़े भी यही बताते ही हैं। ऐसी दशा में न केवल पढ़ा लड़का वरन् पूरा परिवार दुःखी होता है। कारण कि घर का सदस्य यह आशा रखता है कि ग्रेजुएट बनने के बाद बहुत पैसे और बहुत इज्जत दिलाने वाली नौकरी मिलेगी। जब निराशा होती है तो न केवल घर के लोग वरन् सम्बन्धी पड़ौसी, मित्र, हितैषी सभी को निराशा होती है। लोग यह तो समझते नहीं कि आज की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं जिनमें इन्जीनियर, पी.-एच. डी. तक को नौकरियाँ मिलना दुर्लभ हो रहा है। समझा यही जाता है कि अपना लड़का ही नकारा है। कोशिश नहीं करता या इसका भाग्य साथ नहीं देता। हर हालत में नाराजी लड़के के ऊपर आती है, जो स्वयं भी उतना ही दुःखी है।

यही परिस्थिति अस्सी प्रतिशत को हैरान करती है। इसका सामना अधिकांश शिक्षितों को करना पड़ता है। इसलिए समझदारी का तकाजा यह है कि समस्या को समझा जाय और समय रहते दूसरा रास्ता निकाला जाय।

यह योजना सोची जानी चाहिए कि मैट्रिक तक की सरकारी शिक्षा को पूर्ण माना जाय। इसके बाद की योग्यता संवर्द्धन वाली पढ़ाई की निजी व्यवस्था की जाय। उपाय यही सर्वोत्तम है कि निजी शिक्षा प्रणाली का ढाँचा कुछ समझदार लोग मिल-जुलकर खड़ा करें। तब निर्माण के लिए जो नए कार्य नए रक्त मनीषा और नये हाथों को करने हैं उसमें एक काम यह है कि एक शिक्षण तन्त्र खड़ा किया जाय। सहकारी समिति स्तर पर न केवल आर्थिक वरन् समाज सेवा के अन्य कार्य भी हाथ में लिए जाएँ। पाँचवीं कक्षा से लेकर मैट्रिक तक की अतिरिक्त शिक्षा की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसमें तीन घण्टे निजी पढ़ाई का ज्ञानवृद्धि और स्वास्थ्य शिक्षा का कार्यक्रम हो, जिसमें पाँच रुपया मासिक फीस लेकर अतिरिक्त विद्यालय चलाने की उस शृंखला को आगे बढ़ाकर मैट्रिक से लेकर दो वर्ष का अतिरिक्त कोर्स चलाया जाय। इन दो वर्षों में चार घण्टे पाठ्यक्रम रहे और शेष घण्टे विद्यार्थी उस काम को सीखने में लगावें, जो उसे भावी जीवन में करना है, कृषि, पशु पालन, डेयरी, वस्त्र उद्योग, मशीन रिपेयर, बढ़ई, लुहार आदि के उद्योग देहाती जीवन में काम आ सकें, उनको प्रत्यक्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए चार घण्टे व्यावहारिक ट्रेनिंग के लिए दिए जाया करें। इसके लिये किन्हीं कारीगरों से सम्बन्ध जोड़ कर ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाय कि किनको किनके यहाँ सीखने जाना है, उनके यहाँ जाया करें। कई जगह कृषि फार्म, डेयरी, मधुमक्खी पालन आदि के छोटे-छोटे समय के सरकारी पाठ्यक्रम चलते हैं। ग्राम सेवक, कृषि शिक्षक स्वयं जा-जाकर ग्रामीणों को शिक्षा दिया करते हैं। इन्हीं में इन बच्चों को चार घण्टे के लिए सम्मिलित कर दिया जाया करे। मैट्रिक के बाद ही यह तय हो जाना चाहिए कि उस उद्योग में लड़के को अपना भावी जीवन खपाना है। कृषि से सम्बन्ध रखने वालों को ट्रैक्टर चलाना, पम्प चलाना, आटा चक्की आदि की मशीन जिनके यहाँ हैं, उनके यहाँ जाने व नियमित रूप से सीखने की व्यवस्था बनानी चाहिए।

तीन घण्टे का बौद्धिक शिक्षण नियत रहना चाहिए। इसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, खेलकूद आदि की जो शिक्षा मैट्रिक तक दी गई थी, उससे आगे की शिक्षा इसमें दी जाय। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन में जो बातें काम आती हैं, वे सिखाई जाएँ। बहीखाता, इन्कमटैक्स, सेलटैक्स, रेलवे बुकिंग, टिकट में उलट-पुलट, कानूनों की सामान्य जानकारी, पुलिस से सम्बन्धित जानकारियाँ, बैंक परिचय, सहकारी समिति, उत्तराधिकार, बँटवारा आदि की अनेकों जानकारियाँ ऐसी हैं, जो अपने या पड़ौसियों के काम आती हैं इनका बौद्धिक ज्ञान कक्षा में सम्मिलित रखा जाय। सामाजिक कुरीतियों की रोकथाम, समाज में उपयोगी प्रथाओं का प्रचलन, पंचायतें, चुनाव, कानून, अदालतों के साथ आये दिन काम पड़ने वाली बातें आदि बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो दैनिक जीवन में काम आती हैं। जिनकी जानकारी न होने के कारण लोगों को ढेरों परेशानियाँ भुगतनी पड़ती हैं। दो वर्ष के ये पाठ्यक्रम मैट्रिक के बाद के बनाए जाएँ। उनमें यह सब बातें उतनी मात्रा में इस सामान्य ज्ञान में सम्मिलित रहें, जिसमें देहात के हिसाब से उसे सुयोग्य, चतुर या जानकार कहा जा सके। विशेष रोगों के विशेष अस्पताल बने हुये हैं और उनसे सम्पर्क साधने के विशेष नियम उपनियम हैं। जो लोग इन फायदों को जानते हैं, उन्हें जेब नहीं कटानी पड़ती धक्के नहीं खाने पड़ते। मुकदमे दायर करने से लेकर अपील करने तक के नियम मालूम नहीं हों तो अदालत का हर आदमी उस गैर जानकारी का नाजायज लाभ उठाता है। इन सभी बातों को चुन-चुन कर ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाय, जिसके आधार पर दो वर्ष की इस पढ़ाई में सम्मिलित होने वाले को समझदार बुद्धिमान समझा जा सके, ऐसी पुस्तकें अभी तक कहीं नहीं हैं। उनका हर विषय में से संकलन किया जाय। विद्यार्थी की प्रश्नोत्तर की जिज्ञासा को खुलने देने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाय। देहाती जीवन की कोई समस्या ऐसी न छोड़ी जाय, जिसके बिना गाड़ी रुकती हो। तीन घण्टे नित्य यह बौद्धिक शिक्षण पढ़ाया जाय। इसकी फीस भी पाँच रुपया मासिक ही हो, पाठ्यक्रम सुनियोजित रूप से बना हुआ हो। इन दो वर्षों में विद्यार्थी इस योग्य बन जाय कि उसे क्रिया-कुशल समझा जा सके। इस पाठ्यक्रम को किसी लोकसेवी संस्था को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। पारिवारिक शिष्टाचार आदि कोई भी बात इसमें से छूटने न पावें। विशेषज्ञों को शिक्षण के लिए बुलाते रहा जाय और उन्हें इसी फीस में से शुल्क चुकाते रहा जाय। युगनिर्माण योजना के समाज निर्माण कार्यक्रम का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उपयुक्त व्यक्ति मिलने पर यह तन्त्र देखते-देखते खड़ा हो सकता है।

शिक्षा प्रयास सर्वांगीण होने चाहिए

माध्यमिक शिक्षा नई पीढ़ी के बालकों के लिए आवश्यक समझी जानी चाहिए और अनिवार्य होनी चाहिए। सामान्य ज्ञान की दृष्टि से इतना आवश्यक है। नागरिक कर्तव्यों और अधिकारों का बोध इससे कम में नहीं हो सकता। पारिवारिक और सामाजिक व्यवहार को सुसंगत बनाने के लिए इतनी पढ़ाई तो होनी ही चाहिए। बच्चा जब तक १८ वर्ष का नहीं हो जाता, किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को जिम्मेदारी के साथ नहीं कर सकता। शारीरिक और मानसिक विकास की दृष्टि से १८ वर्ष की आयु तक प्रतीक्षा करनी ही होती है। तब तक बच्चे अपने घरेलू काम-काज में अभिभावकों का हाथ ही बँटा सकते हैं। उपार्जन के योग्य आयु जब तक बने तब तक उन्हें पढ़ाई में ही लगाए रहना चाहिए। अन्यथा वे कोई आजीविका योग्य काम न कर सकेंगे। कच्ची बुद्धि में कमाने के स्थान पर घाटा देने लगेंगे। न पढ़ाया जाय तो बेकार घूमेंगे और कुसंग में पड़कर अपने व्यक्तित्व और भविष्य का विनाश करेंगे। किशोरावस्था पूरी होते-होते माध्यमिक शिक्षा भी पूरी हो जाती है।

साक्षरता, प्राथमिक शिक्षा मनुष्य मात्र को हस्तगत करनी चाहिए। अपने देश में ७० प्रतिशत निरक्षर हैं। इनमें अधिकांश बड़ी आयु के नर-नारी हैं। जो बचपन से ही घर-गृहस्थी के कामों में लग गए हैं। बच्चे स्वयं इतने समझदार होते नहीं कि पढ़ने के लिए आग्रह करें। फिर हर गाँव में विद्यालय भी कहाँ हैं ? दूसरे गाँव में जाने-आने में छोटे बच्चे डरते और अनख मानते हैं। लड़कियों को पढ़ाना तो लोग और भी बेकार समझते रहे हैं। उन्हें तो घर-गृहस्थी सँभालनी है। पढ़कर नौकरी थोड़े ही करनी है, आदि बातें कहकर माँ-बाप उन्हें सुविधा होते हुए भी रोकते हैं। छोटी उम्र में विवाह हो जाना, कन्या शिक्षा का अलग प्रबन्ध न होना, सहशिक्षा में बुराई खोजना जैसे कारणों से पिछले दिनों शिक्षा की उपेक्षा होती रही है। अस्तु, अशिक्षितों की संख्या ७० प्रतिशत है। यह अपने दुर्भाग्य की बात है। पर कमी को अभी भी पूरा किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रौढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाठशालाएँ चलें पुरुषों को रात्रि के भोजन के बाद समय मिल जाता है। महिलाओं के पास मध्यान्तर १ से ३ का समय खाली रहता है। इस अवकाश के समय में दो-दो घण्टे की दोनों के लिए अलग-अलग पाठशालाएँ चलाई जा सकती हैं।

शिक्षित नर-नारियों से इस पुण्य-प्रयोजन के लिए दो-दो घण्टे का समय माँगा जाए, तो इतने उदारचेत्ता अवश्य मिल सकते हैं कि अध्यापकों-अध्यापिकाओं की आवश्यकता श्रमदान से ही पूरी हो सके। यदि वैसा न हो सके तो उतने समय का पारिश्रमिक देकर और उसकी फीस लगाकर या चन्दा माँगकर पैसे की पूर्ति की जा सकती है। हर मुहल्ले में ऐसी पाठशालाओं का प्रबन्ध सेवाभावी लोग आगे बढ़कर कर सकें, तो यह समस्या इतनी कठिन नहीं है जिसकी पूर्ति न हो सके। पाँचवी कक्षा में प्राइमरी पाठशाला पूरी होती है। प्रौढ़ शिक्षा का इतना स्तर हो तो काम चल जाएगा। अक्षर-ज्ञान एवं सामान्य गणित के अतिरिक्त जीवनोपयोगी अन्य जानकारियाँ भी साथ-साथ चलनी चाहिएँ। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक विषय माध्यमिक शिक्षा में विस्तारपूर्वक होने चाहिए। उन्हीं प्रसंगों को संक्षेप में प्रौढ़ पाठशालाओं में समविष्ट रखना चाहिए। छोटी आयु के बच्चे जिन बातों को अधिक समय में हृदयंगम कर पाते हैं, इन्हीं को प्रौढ़ नर-नारी उतने ही कम समय में सीख सकते हैं। बच्चों को अधिक विस्तार से प्राथमिक जानकारी देते हुए समझना पड़ता है। किन्तु बड़ी आयु के इन सब बातों की प्राथमिक शिक्षा की पूर्ति करते-करते भी कर सकते हैं।

अच्छा हो, प्रौढ़ पाठशाला के लिए अक्षर-ज्ञान के उपरान्त जब भाषा-ज्ञान की पुस्तकें पढ़ाई जाएँ, तो उनमें जीवन समस्याओं के समाधान ही भरे पड़े हों। इसके लिए यदि अब तक सरकारी पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं तो मोटे अक्षरों में भाषा ज्ञान की संगति मिलाते हुए ऐसी पुस्तकें लिखाई और छपाई जा सकती हैं, जिनमें व्यक्तित्व के विकास और सामाजिक सुप्रचलन के अनुरूप सभी आवश्यक बातों का समावेश हो। सामयिक समस्याओं का भी उनमें उल्लेख हो। इस प्रकार न केवल साक्षरता की आवश्यकता पूरी की जाये वरन् इस प्रशिक्षण के माध्यम से उन्हें व्यक्तित्व का निर्माण और समाज का पुनरुत्थान—लोकमानस का परिष्कार—सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्द्धन भी व्यापक बनाया जाए।

यह कार्य जनसेवा क्षेत्र का है। सरकार के भरोसे इसे छोड़ रखना बेकार है। देश में कुल ३० प्रतिशत आबादी शिक्षित है। इतने का बजट ही उसके लिए भारी पड़ रहा है, फिर शत-प्रतिशत को प्रशिक्षित करने में जो खर्च पड़ेगा, जितने साधन चाहिए, वे उसके द्वारा बन पड़ने की आशा कैसे की जाये ? यदि करे भी, तो उसका व्यय भार नये टैक्स लगाकर ही वह पूरे कर सकती है। टैक्स देकर सहायता प्राप्त करने में पराधीनता है और लोकमंगल के प्रयासों में संलग्न होकर किसी काम को कर गुजरने में शानदार पुरुषार्थ। साक्षरता की समस्या का समाधान हमें इसी आधार पर करना चाहिए।

शिक्षा विस्तार योजना में नारी-शिक्षा की पद्धति में कुछ और भी विशेषताएँ जुड़नी हैं। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक प्रसंग तो बच्चों की भाँति बच्चियों को भी पढ़ाए जाने चाहिए। पर इसके अतिरिक्त परिवार निर्माण की कला में उन्हें विशेष प्रवीण किया जाना चाहिए क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र वह विशेष रूप से रहता है। सारे दिन उन्हें सास, ननद, देवरानी, जिठानी तथा अपने तथा दूसरों के बच्चों से पाला पड़ता है। इनमें कईयों की प्रकृति कई प्रकार की उल्टी-सीधी होती है। उनके साथ तालमेल बिठाए रहना एक प्रकार से सरकस के चित्र-विचित्र पुश-पक्षियों को काबू में रखने तथा मनोरंजक खेल दिखाने में प्रवीण बनाने के समान है। यह कला भी सीखने योग्य है। मनुष्य की प्रकृति के उतार-चढ़ावों को समझे बिना, प्रतिकूलता को अनुकूलता में ढाले बिना कोई लड़की गृहलक्ष्मी कहलाने का श्रेय प्राप्त नहीं कर सकती। अपने देश में संयुक्त परिवार प्रणाली ही प्रचलित है। उसका निर्वाह पुराने सदस्य तो लड़-झगड़कर किसी प्रकार करते रहते हैं। किन्तु भावुक एवं अनजान लड़कियों के लिए यह झंझट काफी भारी पड़ता है। इसे हल्का कैसे बनाया जाए ? यह एक बाजीगरी है। नववधुओं को यह विद्यामोर्चा सँभालने से पहले ही सीख लेनी चाहिए।

दाम्पत्य जीवन में सरसता भर देना, साथ ही पति की कुटेवों पर उसी प्यार-दुलार की भट्टी में पकाकर टेड़े से सीधे कर लेने का भार भी पत्नी के कन्धों पर आता है। पति का स्नेह-सम्मान जीत लेने पर वधू सारे परिवार को प्रिय लगती है और उस एक के रुष्ट रहने पर उस घर के अन्य लोग भी उसी की पटरी पर चलते हैं। उसी का समर्थन करते और वैसा ही रुख अपनाते हैं। यह भी एक पूरी मुसीबत है। दूसरों की दासी कहलाते हुए मालिकन बन जाना एक कौशल है, जिसका विवाह से पूर्व ही परिचय होना चाहिए। परिवार व्यवस्था की तरह दाम्पत्य जीवन की सफलता किस प्रकार अर्जित की जा सकती है ? इसकी बारीकियाँ भी सीखने-सिखाने की बात है। यह शिक्षण उदाहरणों के सहित दिया जाना चाहिए। अच्छा हो, अध्यापिकाएँ इस प्रसंग को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित रखें, भले ही वह पुस्तकों में न लिखा हो या संक्षिप्त लिखा हो। इन बातों को माता, चाची, ताई भी समय पर बताती और गले उतारती रहती हैं।

इसके अतिरिक्त दो और इनसे भी बड़ी बातें हैं—एक, गर्भावस्था में अपना और भ्रूण का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सँभाले रहना, प्रसव-कृत्य को सावधानी के साथ निपटा लेना और इसके बाद अत्यन्त कोमल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे का पालन-पोषण करना। एक ३-४ वर्ष तक जब तक बच्चा बोलना नहीं सीख लेता, तब तक उसकी आवश्यकता एवं कठिनाई माता को ही अपने अनुमान के सहारे जाननी पड़ती है। यह कार्य ऐसा जटिल है जिस पर दिन और रात चौबीसों घण्टे ध्यान केन्द्रित रखना पड़ता है। घर के अन्य काम करते-धरते भी ध्यान बच्चों की स्थिति और आवश्यकता पर ही केन्द्रित रखना पड़ता है। इसमें भूल-चूक होने पर, तनिक-सा अधिक दबाव पड़ जाने पर बच्चे का कुछ से कुछ हो जाता है। सरकारी रिपोर्ट है कि बच्चों में से एक वर्ष की आयु पूरी करने से पहले सौ में से तीन बच्चे अपनी जीवनलीला समाप्त कर बैठते हैं। इसमें उनकी कोमलता प्रधान कारण होती है। जो हजार तरह की सावधानियाँ चाहती हैं। इसे माता की बुद्धिमानी ही सँभालने और निभाने में समर्थ हो सकती है। गर्भ में आने के दिन से लेकर बच्चा जब तक बोलने, अपनी कठिनाई बताने न लगे तब तक पूरा ध्यान उस पर माता को ही लगाए रहना होता है। इस सन्दर्भ में किस परिस्थिति में क्या किया जाय, यह एक अलग विद्या है ? इसकी शिक्षा पाए बिना उस कठिनाई को सँभालना तब वधू के लिए एक पूरी समस्या होती है। खासतौर से तब, जब घर के अन्य लोग इस कार्य में हाथ नहीं बँटाते और गुत्थी उलझने पर तानों के ढेर लगा देते हैं।

बच्चा जब तक स्कूल जाने योग्य नहीं होता, तब तक माता के ही आगे-पीछे लगा फिरता है। उसमें बुद्धि तो .होती नहीं। भावुकता और आग्रह ही स्वभाव में होते हैं। ऐसी दशा में उसे सुसंस्कार सिखाना, भूलों को सुधारना, अच्छी आदतें डालना—यह एक स्वतन्त्र विज्ञान है। इस सन्दर्भ में जानकारी होनी चाहिए कि किस उलझन को किस प्रकार सुलझाया जाये ? अनजान होने की स्थिति में माता भी एक बच्चे के समान ही होती है। बच्चा अपने कारणों से रोता है। माता उसकी उपयुक्त सहायता न कर पाने के कारण रोने लगती है। इस अवधि में फूल से कोमल बच्चे को जिन्दगी बचा ले जाना और उपयोगी आदतें सिखा लेने की दृष्टि से सफल होना ऐसा कार्य है, जिसके लिए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जानी चाहिए।

आमतौर से विवाह होते ही लड़कियों की प्रगति समाप्त हो जाती है। माता के घर से जो पढ़ा-लिखा है, उन सबको भूल जाती हैं। इतने तरह की उलझनें सामने होती है, जिन्हें निपटाना मोर्चा जीतने जैसी रणनीति अपनाने के समान होता है। इतने पर भी कुशल नारी की प्रशंसा तब है, जब अपनी निजी प्रगति को बनाए रहे और बढ़ाती रहे। शिक्षा और स्वावलम्बन की दिशा में उसे निरन्तर विचार और प्रयास करते रहना चाहिए। नारी जीवन में हजार जोखिमें हैं, दुर्भाग्य का सामना करना पड़े तो सगे-सम्बन्धी भी मुँह मोड़ लेते हैं, ऐसी दशा में अपनी शिक्षा और स्वावलम्बन की योग्यता ही काम आती है, इसलिए अपने को क्षमता सम्पन्न बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसके लिए यह ध्यान रखने योग्य बात है कि बच्चों की संख्या एक-दो से अधिक न बढ़ने पाए, इसके लिए पति को आरम्भ से ही सहमत करने का प्रयत्न आवश्यक है। नारी शिक्षा में ये सभी तथ्य सम्मिलित रहने चाहिए।

समग्र शिक्षा की त्रिविध भूमिका

मनुष्य की शारीरिक, मानसिक संरचना तो ईश्वर द्वारा असाधारण स्तर की है, पर साथ ही उसमें यह भी कमी रखी है कि सहकारिता और शिक्षा का संयोग बने बिना वह विकसित स्तर तक नहीं पहुँच पाती। सुदूर वन्य क्षेत्रों में समाज से विलग रहने वाले कबीले प्रायः अनगढ़ रहते हैं और गई-गुजरी स्थिति में जीवन बिताते ही देखे जाते हैं। उनमें सुधार तभी सम्भव हो सकता है, जब उन्हें सभ्य समुदाय का सान्निध्य मिले और शिक्षा के साधन उपलब्ध किए जाएँ।

मनुष्य कच्ची मिट्टी के समान माना जाता है। उसे प्रशिक्षण के साँचे में अभीष्ट स्तर का ढाला जाता है। सुन्दर खिलौने बनाने के लिए, मिट्टी को लोचदार बनाने के लिए उसे कूटने, छानने, गीली करने, गूँथने की जरूरत पड़ती है। धातु के उपकरण बनाने हों तो उसे पिघलाने और साँचे में उड़ेलने की आवश्यकता पड़ती है। यदि यह सब न किया जा सके तो मिट्टी ढेला मात्र बनी रहेगी। धातु का रूप मिट्टी मिला, काला-कुरूप बना रहेगा। हीरे खरादे जाते हैं और खाद्यान्नों को चूल्हे पर पकाकर उन्हें व्यंजनों का रूप दिया जाता है। यही मनुष्य के सम्बन्ध में भी होता है। उसे सहयोग, सुयोग सान्निध्य एवं संरक्षण न मिले तो समझना चाहिए कि नर-वानर से ऊँची स्थिति में किसी का भी पहुँच सकना कठिन है।

पेट के लिए रोटी की जरूरत है और मस्तिष्क के लिए शिक्षा की। आहार न मिलने पर शरीर दुर्बल होकर मर जाता है। इसी प्रकार समुचित शिक्षा के अभाव में मस्तिष्क भी अनगढ़ अविकसित रह जाता है। ऐसी ही स्थिति उनकी होती है, जो शिक्षा से वंचित रहते हैं। उन्हें उदरपूर्ति और निर्वाह का सामान्य ज्ञान साथियों की देखा-देखी भले ही हो जाय पर ऐसा कुछ सोच या सीख नहीं सकते, जो प्रगति के लिए आवश्यक है। जिन समुदायों-समाजों ने प्रगति पथ पर कदम बढ़ाया है, उन्हें सर्वप्रथम अपनी शिक्षा-व्यवस्था को परिष्कृत ढाँचे में ढालना पड़ा है। मात्र सुविधा-सम्मान बढ़ा देने भर से व्यक्तियों का विकास सम्भव नहीं। अनगढ़ व्यक्ति किसी प्रकार सम्पदा प्राप्त कर भी ले तो न उसे सुरक्षित रख सकना सम्भव होता है और न वे उसका सदुपयोग ही कर पाते हैं। दुरुपयोग में बढ़ा हुआ कौशल एवं वैभव दुर्व्यसनों को बढ़ाता है और ऐसी गतिविधियों को जन्म देता है, जो न तो तथाकथित सम्पन्नों के लिए श्रेयस्कर होती है और न उसके सम्पर्क में आने वाले परिकर के लिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दो पहियों की गाड़ी चलती है। दो हाथ से ताली बजती है। दोनों पैरों के संयुक्त प्रयास से मंजिल पूरी होती है। दोनों हाथों द्वारा किन्हीं महत्त्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। शरीर और प्राण का संयोजन रहने तक जीवित रहा जाता है। साधनों के सहारे शरीर को तो जीवित रखा जा सकता है, किन्तु चिन्तन, चरित्र-व्यवहार को परिष्कृत करने के लिए सर्वतोमुखी शिक्षा की आवश्यकता है। गुण-धर्म, स्वभाव को उसी के सहारे समुन्नत, सुसंस्कृत स्तर का बनाया जा सकता है। इसी आधार पर किसी को प्रगतिशील, सभ्य एवं समुन्नत स्तर का नागरिक बन सकना सम्भव है। ऐसे ही लोगों का बाहुल्य होने पर किसी समुदाय समाज का स्तर ऊँचा उठता है। इसी आधार पर किसी देश-समाज को समर्थ्य कहलाने का अवसर मिलता है। यही है वह दृढ़ता जिसके सहारे वैभव उपार्जित किया जाता है। यश मिलता है और भविष्य को उज्ज्वल बनाने का सुयोग हाथ लगता है। जिन समाजों में शिक्षा का अभाव रहा है, उनका स्तर गिरा है। उसे दीन-दुर्बल, हेय एवं अनगढ़ स्थिति में ही पड़े रहने के लिए विवश होना पड़ा है।

शिक्षा का आरम्भ साक्षरता से होता है। लिपि और भाषा की जानकारी प्राप्त होना मानसिक विकास की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए आवश्यक है, उसी की परिधि पूरी कर लेने पर यह सम्भव होता है कि विकासोन्मुख बनाने वाला साहित्य पढ़ा जाय एवं उस ज्ञान को अर्जित किया जाय जो व्यक्तित्व को निखारने वाली दिशाधारा के साथ सम्पर्क स्थापित करने में सहायक होता है। साक्षरता के उपरान्त जीवन विकास की आवश्यक जानकारी में प्रवीणता प्राप्त करने से ही समग्र शिक्षा का प्रयोजन पूरा होता है।

पदार्थ संसार की—बाह्य जगत की जानकारियाँ प्राप्त करना भी बहुज्ञ होने की दृष्टि से आवश्यक है। बहुज्ञ व्यक्ति तो सांसारिक प्रयोजनों में समय-समय पर काम आते रहते हैं। इस आधार पर वस्तुओं, व्यवस्थाओं एवं विभिन्न क्षेत्रों के कारणों को समझ सकना सम्भव होता है। इसी कौशल की आवश्यकता को स्कूली शिक्षा पूरी करती है। गणित, भूगोल, खगोल, इतिहास, पदार्थ-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों को विद्यालयों में पढ़ाया जाता है। इस प्रकार के विषयों में प्रवीण बनकर व्यक्ति आवश्यक कला-कौशल सम्बन्धी अपनी जानकारी में अभिवृद्धि करता है। इस बढ़े हुए ज्ञान के आधार पर उसे धन और पद प्राप्त करने में भी सफलता मिलती है। उतने पर भी एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता में कमी रह जाती है। दृष्टिकोण, व्यक्तित्व एवं सम्मान- सहयोग प्राप्त करने के लिए ऐसे ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है, जो चरित्र एवं व्यवहार का परिवर्तन कर सके। यही है वह महत्त्वपूर्ण पक्ष जो मनुष्य के स्तर एवं प्रभाव को समुन्नत करता है।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है व्यक्तित्व का विकास, जीवन का समग्र विकास। यह कार्य मात्र पुस्तकीय निर्देशनों से नहीं हो सकता। सज्जनता अपनाने की शिक्षा आमतौर से पुस्तकों में रहती है। ऐसा साहित्य भी कम नहीं है। प्रवचनों में भी धर्म संयम के, परलोक की बातें सुनने को मिलती रहती है। पर इतने भर से पढ़ने वालों का जीवन क्रम सुधरेगा, ऊँचा उठेगा ऐसी आशा नहीं की जा सकती। ऐसा कदाचित ही कभी हुआ हो कि लोगों ने श्रेष्ठता को किन्हीं लेखों या प्रवचनों के आधार पर अपने जीवन में धारण किया हो। कुसंस्कारों एवं कुविचारों से छुटकारा पाया हो। इसके लिए अभिभावकों, अध्यापकों और शासन को सम्मिलित प्रयत्न करना होगा।

चरित्र की नींव उठती आयु में पड़ती है। किशोरावस्था इसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण समय है। इन दिनों छात्रों को जिन विद्यालयों से जुड़ा रहना होता है। उनके अध्यापकों का निजी चरित्र ऐसा होना चाहिए, जिससे शिक्षा के बहाने सम्पर्क में आने वाले छात्रों को अनुकरण की प्रेरणा मिले। प्रभावशाली अध्यापक छात्रों पर ऐसी छाप छोड़ते हैं, जो सदा-सर्वदा के लिए अमिट रहती है। विद्यालयों का वातावरण ऐसा होना चाहिए, जिसमें छात्रगण परस्पर स्नेह-सद्भाव के, सज्जनता, सहकारिता के आदर्श उपस्थित करें। पुस्तकीय ज्ञान में इतना और जुड़ना चाहिए कि शिक्षकों का चरित्र-व्यक्तित्व इस योग्य हो कि उससे शिक्षार्थी अपने दृष्टिकोण को परिष्कृत करने वाली प्रेरणा प्राप्त कर सकें। उन प्रेरणाओं को अभ्यास में लाने के लिए उपयुक्त क्षेत्र छात्र मण्डली के बीच चलने वाला पारस्परिक व्यवहार है। इसे भी पाठ्यक्रम का एक अंग माना जाय और शिक्षकों के स्तर तथा स्कूली वातावरण के प्रवाह को भी महत्व दिया जाय।

अभिभावकों को बालकों पर शैशवकाल से ही दृष्टि रखना चाहिए। उन्हें समुचित दुलार दिया जाय। साथ ही वरिष्ठ गृह-संचालकों के साथ रहने का अवसर भी मिलना चाहिए। जिन्होंने सन्तान को जन्म दिया है उनकी जिम्मेदारी मात्र इतनी ही नहीं है कि भोजन-वस्त्र की सुविधा प्रदान करें और उनकी शोभा-सज्जा के, मनोविनोद के साधन जुटाने भर में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझें। उन्हें सोचने और सीखने के लिए प्रेरणाप्रद वातावरण चाहिए। जिन दुर्गुणों के बीजांकुर उग रहे हों, उनकी काट-छाँट कुशल माली की तरह होती रहनी चाहिए। बच्चे जो देखते हैं, सुनते हैं, जिस वातावरण में रहते हैं उसी ढाँचे में ढलते हैं। इस तथ्य को समझते हुए अभिभावकों का कर्तव्य है कि परिवार में पलने वाले बालकों के सामने ऐसी स्थिति रखी जाय, जिसे अनुकरण किए जाने पर बालकों में उत्कृष्ट स्तर की शालीनता उभरे। स्वभाव और संस्कार ढालने में परिवार के वातावरण की भी महती भूमिका रहती है। अस्तु, उस क्षेत्र में उन्हें परामर्श

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही नहीं, ऐसा वातावरण, क्रियाकलाप देखने को मिलना चाहिए, जिसे अपनाते रहकर भावी जीवन में अपनी आरोपित श्रेष्ठता का विकसित उदाहरण प्रस्तुत कर सकें। श्रेष्ठ नागरिक बन सकें। अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व में ऐसी उत्कृष्टता का समावेश कर सकें, जो न केवल निजी व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो वरन् समूचे समाज को समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध हो सकें। नई पीढ़ी के निर्माण में अभिभावकों के भी असाधारण दायित्व है। जन्म देने से पूर्व ही इस तथ्य को न केवल जनक-जननी वरन् उस परिवार-परिकर के सभी सदस्य भलीभाँति अनुभव करें। तोता रटंत जैसा अभ्यास करने के लिए कुछ कहते सुनते रहने से भी काम चल सकता है, परन्तु व्यक्तित्व विकास के लिए तो घर का, स्कूल का वातावरण प्रेरणाप्रद होना चाहिए, अभिभावकों के चरित्र व्यवहार की इस सन्दर्भ में असाधारण भूमिका रहती है।

अभिभावकों, अध्यापकों की भाँति ही समग्र शिक्षा व्यवस्था में शासकों की भूमिका होनी चाहिए। उन्हें जनमानस को प्रभावित करने वाले प्रत्येक माध्यम को चरित्रनिष्ठा की प्रेरणा देने की स्थिति में रहने देने के लिए सुदृढ़ संकल्प व्यक्त करना चाहिए और उसके प्रयोग में सुनिश्चितता बरतनी चाहिए।

रेडियो, टेलीविजन पूरी तरह सरकारी नियन्त्रण में है। सिनेमा, साहित्य, अभिनय, चित्र आदि पर परोक्ष रूप से नियंत्रण तो है पर उसे और भी अधिक उद्देश्यपूर्ण बनाया जाना चाहिए। इन विधाओं के संयोजकों को बाधित किया जाना चाहिए कि वे मानवी मर्यादाओं और औचित्य की वर्जनाओं का परिपालन करने के लिए अपने को बाधित अनुभव करें। ऐसी अभिव्यक्तियों को इन विचार निर्माताओं द्वारा प्रोत्साहित न होने दिया जाय, जो अनैतिक उच्छृंखलता अपनाने के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रोत्साहित करती है।

प्रजातन्त्र और मौलिक अधिकारों की दुहाई देकर किसी को कुछ भी न करते रहने की छूट नहीं मिल सकती। चोरों और तस्करों को ऐसे कृत्य करते रहने के लिए मानवी अधिकार के नाम पर छूट नहीं मिलती है। नौकर जैसे ही नियंत्रण उन पर क्यों न लगने चाहिए; जो साहित्य, कला आदि के नाम पर पशु-प्रवृत्तियों को भड़काते हैं और सर्वसाधारण को उसके लिए प्रोत्साहन देते हैं।

सत्प्रवृत्तियाँ उभारने वालों को पुरस्कार और दुष्प्रवृत्ति भड़काने वालों तिरस्कार देकर सरकार ऐसा सन्तुलन बना सकती है, जिसके आधार पर सार्वजनिक क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों को उभारा जा सकता है। उस आधार पर ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है कि सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने की भूमिका शासन द्वारा भली प्रकार चल रही है। यह जाना जा सके।

विद्यालयों में अध्यापक, नवयुवकों को बनाने की अपेक्षा यदि प्रौढ़, परिपक्व और चरित्र की गुप्त जाँच कराने के बाद नियुक्त किया जा सके, तो यह भी एक क्रान्तिकारी कदम होगा।

विकास अभीष्ट है तो शिक्षा का विस्तार करना होगा

क्या विकास का शिक्षा से सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध में विचार करने पर यही ज्ञात होता है कि दोनों में परस्पर काया-छाया जैसा तादात्म्य है। यदि किसी राष्ट्र के नागरिक बड़े पैमाने पर निरक्षर हों, तो वहाँ का विकास संदिग्ध ही नहीं, असम्भव भी हो जाता है। इसीलिए शिक्षा को व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास का प्रथम सोपान माना गया है।

अपना देश विशाल है, यहाँ की ७५ प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है। इनमें से अँगुलियों में गिनने जितने ग्रामों में ही शहरी सुविधा विद्यमान है। शेष को तो आजादी के चार दशक बाद भी इनसे वंचित रहना पड़ रहा है। इस दृष्टि से विचार किया जाय, तो ग्रामीण क्षेत्र की निरक्षरता अस्वभाविक भी नहीं लगती। अचम्भा तो तब होता है, जब सर्वथा साधन-सुविधा युक्त शहरी इलाकों में पलने-बढ़ने वाले लोगों में भी इसकी संख्या कोई कम नहीं। आपरेशन रिसर्च ग्रुप के हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार सम्पूर्ण देश में शहरी क्षेत्र की एक-चौथाई जनसंख्या अनपढ़ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं न कहीं कोई कमी अवश्य है, जिसके कारण साक्षरता के उस लक्ष्य को हम प्राप्त नहीं कर सके, जहाँ अब तक पहुँच जाना चाहिए था।

शिक्षा की प्रधान आवश्यकता सरकार द्वारा पूरी होती है। अस्तु, इस पहलू की भी अपेक्षा नहीं की जा सकती। किसी देश की साक्षरता दर सरकार द्वारा अपनाई गई नीति पर भी न्यूनाधिक निर्भर करती है, अत: इस पर भी विचार करना आवश्यक है। इस दिशा में तुलनात्मक अध्ययन उस त्रुटि को उजागर करने में सहायक सिद्ध हो सकता है, जिसके कारण अन्य देशों की तुलना में हम इतने पिछड़ गए। भारत को छोड़कर अन्य विकासशील एवं विकसित देशों पर ध्यान केन्द्रित करें, तो हमें ज्ञात होगा कि इनमें साक्षरता दर भारत की अपेक्षा कई गुनी अधिक है। अमरीका, जापान, इंग्लैण्ड वर्मा एवं श्रीलंका में यह दर क्रमश: ९९.५, ९९, ९९, ६५.९, ८६.५ प्रतिशत है। उक्त देशों में शिक्षा पर सरकारी बजट का क्रमश: १९.९, १९.६, १३.९, ११.२ एवं ७.४ प्रतिशत व्यय किया जाता है। अपने देश में साक्षरता दर ३६.२ प्रतिशत है, जबकि इस पर खर्च होने वाला बजट मात्र १.९ प्रतिशत है। इतना ही नहीं, सूखा, बाढ़, भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में इसमें और कटौती कर दी जाती है, जिससे पहले से ही बीमार तन्त्र और उपेक्षाग्रस्त हो जाता है। इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ठीक है कि इस क्षेत्र की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना सरकार का काम है, पर सारा दायित्व उसी के जिम्मे छोड़ देना भी ठीक नहीं। इस दिशा में हम सब की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम इसके प्रति सामाजिक चेतना जगाएँ, लोगों को शिक्षा के लाभों को बताएँ और इस ओर उनकी अधिकाधिक अभिरुचि उभारने का प्रयास करें। यदि हम अपने उक्त दायित्व का निर्वाह न कर सके, तो सरकारी सुविधा-साधन बढ़ जाने के बावजूद भी इससे कोई विशेष अन्तर पड़ने वाला नहीं। शहरी क्षेत्र की निरक्षरता इसी बात को इंगित करती है। इसके विपरीत यदि हम अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए इसे जन-आन्दोलन का रूप दे सकें, तो न सिर्फ सम्पूर्ण देश शिक्षित बन सकेगा वरन् विकास की गति भी अनेक गुनी बढ़ जाएगी। यह इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि भारत के छह लाख गाँवों में तीन-चौथाई आबादी निवास करती है। अत: सम्पूर्ण देश के साक्षर होने का अर्थ होगा ग्रामीणों की साक्षरता और यह बिना जनस्तर पर मुहिम छेड़े सम्भव नहीं। कारण कि ग्रामीण अपना जीवनोद्देश्य रोजी-रोटी कमाने तक ही सीमित मानते हैं। शिक्षा के महत्व से वे सर्वथा अज्ञ बने हुए हैं। यदि कुछ एक परिवार इस ओर उत्साह दिखाते भी हैं, तो दूसरे ही क्षण उनकी यह उमंग निराशा में परिवर्तित होती दिखाई पड़ती है, जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि पढ़े-लिखों की भी दशा उनसे कोई बहुत अच्छी नहीं। अस्तु, अपना पेट काटकर पढ़ाई में पैसा खर्च करने और बच्चों के शिक्षित बनने के उपरान्त दर-दर की खाक छानने और नौकरी के लिये वर्षों भटकने की तुलना में वे अनपढ़ स्थिति को ही बेहतर समझते एवं उसी में सन्तोष कर लेते हैं।

यह एकपक्षीय चिन्तन है। वे यह नहीं समझ पाते कि पढ़ने-लिखने के बाद केवल नौकरी पाना ही जीविकोपार्जन का एकमात्र विकल्प नहीं रह जाता, अपितु अनेकानेक प्रकार के धन्धों-उपधन्धों द्वारा भी जीवन का निर्वाह सरल-सम्भव हो जाता है, जिन्हें शिक्षित ही भली-भाँति कर सकते हैं। अशिक्षितों को तो विवेक-बुद्धि के अभाव में घाटा ही उठाना पड़ता है। इसी चिन्तन पद्धति के कारण आज केरल और उसके बाद पाण्डिचेरी पूर्ण साक्षर राज्य का दर्जा पा सके।

अशिक्षा का गरीबी से सीधा सम्बन्ध है। यही कारण है कि केरल जैसा छोटा एवं सीमित साधनों वाला राज्य एक समय काफी गरीब कहा जाता था। लोगों को एक जून की रोटी जुटाने के लिए जीने-मरने जैसा श्रम करना पड़ता था, तब कहीं जाकर रात की सुखद नींद वे सो पाते थे, किन्तु अब शिक्षा के प्रति जाग्रत चेतना ने उस राज्य का भाग्य ही पलट दिया। खाड़ी के देशों में आज यदि भारतीय हैं, तो सर्वाधिक केरलवासी ही हैं और यह उनकी बदली मानसिकता की परिणति है। वहाँ के इस अद्भुत कायापलट का श्रेय उन आन्दोलनों को जाता है। इससे अब वहाँ लोगों की भूख शिक्षा के प्रति इस कदर बढ़ी है कि वे अपना पेट काटकर भी बच्चों को पढ़ाना नहीं भूलते और इस प्रकार देखते-देखते वहाँ की निरक्षरता शून्य हो गई।

किन्तु केवल उक्त दो राज्यों के साक्षर हो जाने से ही सन्तोष नहीं किया जा सकता है। इस निमित्त वे प्रेरणादायी अवश्य बन सकते हैं, पर गर्व करने जैसी कोई बात नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण राष्ट्र में इस दिशा में अभी भी बहुत करना शेष है। आपरेशन रिसर्च ग्रुप की एक रिपोर्ट के अनुसार देश के ५७ प्रतिशत वयस्क अब भी अनपढ़ हैं। सर्वेक्षण के दौरान जब ८३ हजार परिवारों से सम्पर्क किया गया, तो ज्ञात हुआ कि इनमें से २५ प्रतिशत अशिक्षित शहरों में एवं ६८ प्रतिशत ग्रामीण अंचलों में निवास करते हैं। जबकि बच्चों के मामले में ४·८८ करोड़ बालक निरक्षर पाए गए। इनमें से २·४६ करोड़ लड़के एवं २·६१ करोड़ लड़कियाँ हैं। यह संख्या विश्व के कुल अशिक्षितों का लगभग ५० प्रतिशत है।

अपना देश गरीब है। इसका एक प्रमुख कारण निरक्षरता है और यह कितने बड़े पैमाने पर है—इसका अनुमान उपरोक्त आँकड़े से लगाया जा सकता है। निरक्षरता का निर्धनता से गहरा सम्बन्ध है—इस तथ्य को प्रस्तुत आँकड़े के द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है। सर्वेक्षण से पता चला है कि चार हजार रुपए मासिक आय वाले परिवारों में १४ प्रतिशत गृहणियाँ अनपढ़ हैं, जबकि ७५० रुपए प्रतिमाह आय वाले घरों में ७८ प्रतिशत नारियाँ अक्षर-ज्ञान से वंचित हैं। स्पष्ट है—साक्षरता के अभाव में दरिद्रता भी बनी रहती है, जिसे दूर करना साक्षर बनकर ही सम्भव हो सकता है।

शिक्षा न सिर्फ अभावग्रस्तता मिटाने के लिए जरूरी है, वरन् सर्वांगीण विकास के लिए भी उतनी ही आवश्यक है। मीड, रिचर्ड, इलविन तथा आयलर जैसे समाज व शिक्षाशास्त्रियों ने इसे एक स्वर से स्वीकार किया है कि जहाँ शिक्षा का अभाव होगा, वहाँ पिछड़ापन और निर्धनता का दुर्भाग्य भी साथ-साथ रहेगा। यह अभाव तभी मिट सकता है, जब हर शिक्षित, कोरियाइयों जैसा जीवन में पाँच को साक्षर बनाने का संकल्प उठाए और अभिरुचि दिखाए। हम दरिद्रता से ऊपर उठकर अपना और राष्ट्र का विकास तभी कर सकते हैं।

शैक्षिक क्रान्ति में अभिनव प्रयोग—बघा विद्यालय

जनतन्त्र में जनसत्ता का समर्थ और जागरूक होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के साथ श्वाँसों का सम्पादन। यदि यह न हो, जनतन्त्र कहने-सुनने का जनतन्त्र रह जाएगा और जिसके लिए यह लम्बा-चौड़ा तन्त्र खड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया है उपेक्षित ही रह जाएगा तथा इस जनतन्त्र का लाभ थोड़े-से लोग लपक लेंगे। इसके लिए जनसत्ता का, लोकसत्ता का जागना बहुत आवश्यक है। जनसत्ता के जागरण के लिए बाबा विनोबा ने जो आध्यात्मिक मार्ग सुझाया है, उसी पर चलते हुए कुछ ग्रामों में लोकसत्ता अँगड़ाई लेती हुई सदियों की तन्द्रा त्याग रही है।

हर बात के लिए लोकसत्ता राज्यसत्ता का मुँह जोहती न रहे वरन् राज्यसत्ता उसके संकेतों पर चलने को विवश हो, वैसी स्थिति आने में तो अभी समय लगेगा पर उसके जागरण की झलकियाँ तो अभी भी देखी जा सकती हैं। उन्हीं में से एक है बघा विद्यालय।

बिहार के बाराचट्टी प्रखण्ड से गुजरती दिल्ली-हावड़ा जी. टी. रोड पर बायीं ओर एक रास्ता कँटीली झाड़ियों में होकर जाता है। इन्हीं कँटीली झाड़ियों के जंगल से कोई पथिक तीन मील का रास्ता पार करता हुआ जिस नन्दन-कानन में पहुँचता है, उसी का नाम है बघ विद्यालय, जहाँ स्वतन्त्र भारत की नयी पीढ़ी अपने ढंग से शिक्षा पा रही है।

विद्यालय के अहाते में प्रवेश करते ही वातावरण की सुरभि आगन्तुक के मन को पुलकित कर देगी। यदि किसी काम का या वर्ग शिक्षण का समय नहीं हुआ तो मृगशावक की तरह कुलाँचे भरने वाले बच्चे—"प्रणाम भाई जी !" "प्रणाम भाई जी !" कह-कह कर आगन्तुक के लिए परेशानी खड़ी कर देंगे कि वह एक साथ इतने अभिवादनों का उत्तर कैसे दे ?

यह छह साल से लेकर बारह साल की आयु के लड़के-लड़कियों का आवासीय विद्यालय है। १९६८ में इसका आरम्भ हुआ। भूदान में मिली ८० एकड़ बंजर और पथरीली भूमि पर यह विद्यालय बनाया गया है। इस समय यहाँ पर कुल ११५ विद्यार्थी हैं जिनमें ३० लड़कियाँ हैं। निकटवर्ती गाँवों में से, प्रत्येक गाँव में से दो-चार लड़के-लड़कियों को इस विद्यालय के लिए चुना गया है।

अछूते आगे बढ़ें ! इस बात का ध्यान रखते हुए विद्यालय में बहुसंख्यक छात्र भुइयाँ (मुसहर) जाति के रखे गए हैं। भुईयाँ (मुसहर) जाति हरिजनों में भी सबसे नीची मानी जाती है। इस जाति का सदियों का इतिहास यही रहा है। भूमिवानों के खेतों पर हाड़तोड़ काम करना और आधा पेट भोजन करना। सबेरे चार बजे से रात नौ बजे तक भूमिवानों के खेत पर काम करने के बाद भी एक भुइयाँ को भूमिवान से इतना अन्न भी नहीं मिलता था कि वह पेट भरकर खा सकें। हाँ उसे मनुष्य से पशु बनाकर अपने खेत में जानवरों की तरह काम करने के लिए उसका मालिक पेटभर कर ताड़ी अवश्य पिलाता था। अनाज के अभाव में इन्हें चूहे खाकर भी गुजारा करना पड़ता था। इसी कारण इनका नाम मुसहर पड़ गया।

सदियों के अन्धकार में जीने के बाद ये लोग अब उजाले की किरणों में स्नान कर रहे हैं। इसका श्रेय विनोबा जी के द्वारा चलाए गए अध्यात्म प्रेरित सर्वोदय आन्दोलन को है।

यह ८० एकड़ भूमि काफी श्रम और पूँजी लगाकर विकसित की जा रही है। कृषि, गौ पालन, नर्सिंग तथा प्रसूति विज्ञान, सफाई, रसोई, सिलाई, बौद्धिक वर्ग और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का समन्वित समग्र पूर्ण शिक्षण द्वारा यहाँ के बालकों का निर्माण चल रहा है। इतना सब होते हुए भी ये सब प्रवृत्तियाँ बच्चों के लिए किसी क्रीड़ा की तरह सहज और सरल हो गई हैं।

प्रात: चार बजे बच्चे उठ जाते हैं और तन्मयतापूर्वक अपने मृदु बालकण्ठों से ईश प्रार्थना करते हैं। तदनन्तर दो घण्टे खेती का कार्य होता है। कार्य भी इस तन्मयता के साथ होता है कि दर्शक मात्र दर्शक बनकर नहीं रह सकता, वह स्वयं भी उसमें हाथ बँटाने लगता है। फिर एक घण्टा सफाई और रसोई आदि के लिए नियत है। चार घण्टे कक्षाएँ लगती हैं और दो घण्टे का सांस्कृतिक कार्यक्रम। हर कार्यक्रम बच्चों की ज्ञान प्राप्ति का साधन भी है तो आनन्द का स्रोत भी। साथ ही नियमित दिनचर्या का अनुपम शिक्षण मिलता है, वह तो जीवन भर के लिए एक मूल्यवान पूँजी का काम करेगा ही।

सारे जीवन में कलात्मकता, विज्ञान और शिक्षण का समन्वय है। बच्चों के द्वारा बनाएँ, भोजनालय में टँगे कार्बन साइकिल और नाइट्रोजन साइकिल के चित्रों को देखकर दर्शकों के मन में यह विचार उठे बिना नहीं रहता कि केवल बौद्धिक पहलू से ही जाँचे जाएँ तो प्रचलित शिक्षा में पढ़ने वाले हाईस्कूल के छात्र बघा विद्यालय के इन छात्रों का मुकाबला गणित, विज्ञान या शुद्ध, स्पष्ट सुन्दर लेखन में नहीं कर सकेंगे।

यहाँ के सांस्कृतिक कार्यक्रम का अपना एक आनन्द, एक महत्त्व, एक उपयोगिता है। किसी दर्शक को इसमें सम्मिलित होने का अवसर मिले तो वह इन तथ्यों का परिचय सहज ही पा जाता है। सौ-सौ लड़कों को सुरताल में समूह गान गाते देख बरबस ही सामूहिकता व सहकारिता का ध्यान ही आता है। गीतों में रस भी है, ध्वनि भी है और अर्थ का तालमेल भी साथ ही साथ शिक्षण भी। धान की रोपाई कब करेंगे ? बीज कितना डालेंगे, खाद कितना देंगे, जापानी तरीका कैसे अपनाएँगे, मकई की कौन-सी उन्नत किस्में बोनी चाहिए इस आशय के गीतों में अपना सहज शिक्षण का क्रम रसमय ढंग से चलता है।

"बोल रहा है सन्त विनोबा करके ऊँची बाँह करे।" जैसे गीत उनमें बन्धुत्व और एकात्म के भावों को भरते हैं। लोक-नृत्य और नृत्य-नाटिकाओं में भी यहाँ के बालक-बालिकाओं ने पर्याप्त दक्षता प्राप्त की है। बाहर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आए अतिथि इन छोटे-छोटे बालकों से ऐसा स्तरीय सांस्कृतिक कार्यक्रम देखकर चकित हुए बिना नहीं रहते।

बाराचट्टी प्रखण्ड के ग्राम स्वराज्य कार्यकर्ता श्री दारको सुन्दरानी यहाँ के कुछ बालकों की प्रतिभा से अत्यधिक प्रभावित हैं। एक बच्चा चित्रकला में विशेष प्रतिभा रखता है, लेकिन उसकी इस प्रतिभा को विकास दे सके, ऐसे शिक्षक का अभाव एक समस्या है। कुन्ती नामक एक बालिका नृत्य कला में काफी आगे बढ़ सकती है पर उसके लिए भी वही शिक्षक की समस्या है।

यहाँ के बालकों की संवेदनशीलता कहें या यहाँ के शिक्षण क्रम की विशेषता, इस प्रसंग में एक घटना का वर्णन करना अप्रासंगिक न होगा।

कुछ दिन पहले यही कुन्ती नाम की बालिका अपनी किसी सहेली के साथ उसके घर गई, वहाँ गाँव में उसने भोजन के अभाव में बिलखते हुए बच्चों को देखा तो उसका मन भर आया। वह वापस विद्यालय में आई तो उसने क्षेत्रीय कार्यकर्ता द्वारको जी से अपने मन की बात कही कि उसे यह देखकर बड़ा दुःख हो रहा है।

"तुम उनके लिए क्या कर सकती हो ?" द्वारको जी के इस प्रश्न का वह कोई उत्तर नहीं दे सकी। इस विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए विद्यालय के सभी छात्र-छात्राओं की सभा बुलाई गई। बच्चों ने इस सम्बन्ध में खूब सोच विचार किया। एक लड़के ने खड़े होकर अपने मन की बात कही—"यदि हम सप्ताह में एक समय का भोजन छोड़ दें तो जरूरतमन्दों की हम इस कठिन समय में अपनी सामर्थ्य के अनुसार थोड़ी सहायता कर सकेंगे और उन्हें थोड़ी राहत मिलेगी।"

छात्र की इस बात पर सभी सहमत हो गए। कैसे आज की नई पीढ़ी समाज से जुड़ सकती है, इसका सुन्दर उदाहरण इन बच्चों ने प्रस्तुत किया। पहले रविवार को ही आधे बच्चों ने स्वेच्छा से एक समय का उपवास रखा। भोजन के समय भोजनालय में न जाकर इन्होंने तय किया कि उपवास से जो नौ किलो अनाज बचा है, उसे कैसे बाँटा जाय ? इस पर यह निर्णय हुआ कि विद्यालय के निकटवर्ती गाँव में जाकर जरूरतमन्दों को यह अनाज बाँटा जाय।

यह मात्र दया या सहानुभूति ही नहीं एक सघन आत्मीयता की अभिव्यक्ति है। यह जो शिक्षण ये बालक यहाँ पा रहे हैं, इसके अर्थ बड़े गहरे हैं। एक ओर सम्पन्न अभिभावकों के जो बच्चे कान्वेंट और विदेशी मिशनरियों द्वारा चलाए जा रहे विद्यालय में पढ़ते और समाज से कटे हुए अपनी सम्पन्नता के बन्द 'कैप्स्यूल' में जीते हैं, उसकी तुलना में इन बालकों का समाज से जो जीवन्त सम्बन्ध सामने आया है, वह छोटी बात नहीं है जिस समाज के नये नागरिकों को विद्यालयों में गढ़ा जाता है उसका यह जीवन्त सांस्कृतिक स्वरूप है।

बघा विद्यालय के उन छात्रों के शिक्षण और जीवन में जो अभिन्नता सधी है और उसके माध्यम से बच्चों का जो समग्र विकास हो रहा है, उसे देखकर एक बार श्री जायप्रकश नारायण की आँख नम हो गई थीं और वे कह उठे थे—"समाज के जिस तबके को हमने जानवर बनाकर छोड़ा है, उन्हीं के इन बच्चों में जो सांस्कृतिक क्रान्ति साकार होती दीख रही है, वह असाधारण है।"

यहाँ विद्यार्थी अपने माता-पिता पर भार नहीं हैं और समाज ने जो एक बार अनुदान दे दिया, उसके बाद अब वह उनसे भी कुछ नहीं चाहेगा। दो तीन वर्ष के भीतर ही यह विद्यालय अपनी कृषि, गोपालन और अनाज उत्पादक प्रवृत्तियों के कारण आत्मनिर्भर हो जायगा।

प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के बाद बारह से सोलह वर्ष के लड़के-लड़कियों के लिए जो शिक्षण पद्धति अपनाई जाएगी, वह है निर्माण द्वारा शिक्षा। निर्माण का अभिप्राय यहाँ अपना विकास और नव समाज निर्माण के कार्य से है। योजना १२०० एकड़ जमीन पर दस गाँवों में बसे ५०० परिवारों का क्षेत्र इस विद्यालय का कार्य क्षेत्र होगा। इस क्षेत्र के ग्राम निर्माण और ग्राम स्वराज्य के कार्य में छात्र सहभागी होंगे। वे गाँवों की परिस्थितियों का सर्वेक्षण करेंगे, विकास की योजनाएँ बनाएँगे और उनके कार्यान्वन में भाग लेंगे। इस प्रकार चार-पाँच वर्ष की अवधि में काम करते-करते सीखेंगे और सीखते-सीखते काम करेंगे। बघा विद्यालय से निकले हुए छात्र ही क्रमशः इस विद्यालय में लिए जाएँगे।

ये दोनों प्रयोग क्षेत्रीय कार्यकर्ता श्री द्वारको सुन्दरानी की अपनी प्रतिभा से चल रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ये दोनों क्रान्तिकारी प्रयोग हैं। लोकसत्ता की अपनी समर्थता, सजगता और चेतन्यता के रूप में भी इनका महत्त्व कम नहीं है। आज की टकसाली शिक्षा-पद्धति का सही और उपयुक्त विकल्प खोजने की दिशा में ऐसे विद्यालयों की सारे देश में आवश्यकता है।

शिक्षा सार्थक भी तो होनी चाहिए

शरीर को जीवित रखने के लिए जिस प्रकार आहार की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मस्तिष्कीय ज्ञान सम्पदा को जीवित रखने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। संसार का ज्ञान पुस्तकों में भरा पड़ा है, उसमें से यत्किंचित तो पारस्परिक वार्तालाप तथा निजी अनुभव से भी प्राप्त हो जाता है, लेकिन शेष के लिये अध्ययन, अध्यापन पर निर्भर करता है।

शिक्षा का प्रथम चरण साक्षरता है, जिसे प्राथमिक शिक्षा के नाम से जानते हैं। लिपि लेखन, शब्दों का गुंथन, उनके अर्थ, व्याकरण का सामान्य ज्ञान मिलाकर साक्षरता बनती है। गणित भी उसमें सम्मिलित किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार शरीर पर लज्जा ढकने के वस्त्र तो होने ही चाहिए, उसी प्रकार बहुमुखी ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश पाने के लिए साक्षरता आवश्यक है। उसके बिना उतना ही समझा जा सकता है, जितना किसी के कथन को स्वयं ने सुना है या अनुभव के आधार पर प्रत्यक्ष जाना है। अनपढ़ों की वही स्थिति होती है।

अब मनुष्य का कार्यक्षेत्र बहुत बढ़ गया है, साथ ही बुद्धि का क्षेत्र भी। उसे अगणित समस्याओं का सामना करना पड़ता है, ऐसा पहले नहीं था अब से सौ वर्ष पहले का मनुष्य कृषि पशुपालन, वस्त्र निर्माण, लुहार, कुम्हार, दर्जी जैसे थोड़े-से व्यवसायों के सहारे जिन्दगी काट लेता था। उसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र आदि की जानकारी प्राप्त करें। परम्परागत ज्ञान की छोटी परिधि ही काम चलाने के लिए प्राप्त मानी जाती थी, पर अब वैसा सम्भव नहीं रहा। मनुष्य की आवश्यकताएँ और जिज्ञासाएँ व्यापक क्षेत्र में फैल गई हैं, उनसे परिचत हुए बिना जीवनयापन सम्भव नहीं हो सकता। विशेषज्ञ बनने के लिए तो यह और भी आवश्यक है कि कितने ही विषयों में अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त की जाय ?

दुर्भाग्य से अपने देश में ७० प्रतिशत अशिक्षित और ३० प्रतिशत शिक्षित हैं। जबकि दूसरे प्रगतिशील देशों की स्थिति कहीं अच्छी है। शिक्षा के बल पर उन्होंने अपनी प्रतिभा निखारी और प्रगति की दिशा में आगे बढ़ चलने की स्थिति प्राप्त की है। हमें अपने देश का पिछड़ापन दूर करने के लिए जिस जिस प्रकार गरीबी दूर करने के लिए विभिन्न उपायों का अवलम्बन करना है, उसी प्रकर शिक्षा की अभिवृद्धि के लिए यह प्रयास करना है, जिसके बल पर विज्ञजनों में गिने जा सकें और प्रस्तुत कठिनाइयों के हल सोचे जा सकें। प्रगति के सरंजाम जुटा सकें।

निरक्षरता दूर करने के लिए लोकसेवी संस्थाओं को यह उत्तरदायित्व सँभालना पड़ेगा। सरकार स्कूली-बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध भी पूरी तरह नहीं कर पाती, फिर ७० प्रतिशत प्रौढ़ पुरुषों और महिलाओं को पढ़ाने का प्रबन्ध वह किस प्रकार कर सकेगी, फिर वे प्रौढ़ अपने-अपने उपार्जन कामों में भी तो लगे रहते हैं। अवकाश के समय उन्हें पढ़ने और पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक शिक्षित को अपना शिक्षा ऋण चुकाने के लिए कुछ समय निकालना चाहिए और उसे साक्षरता संवर्द्धन में लगाना चाहिए।

इसके उपरान्त स्कूली बच्चों को पढ़ाने के सरकारी प्रबन्ध की बात आती है। यथासम्भव इस दिशा में प्रयत्न चल रहे हैं, पर उनमें एक बड़ी खामी यह है कि पाठ्यक्रमों में ऐसे विषय भर दिए जाते हैं, जिनमें से छात्रों के जीवनकाल में कदाचित ही कुछ काम आते हों।

यों ज्ञान की कोई भी धारा बुरी नहीं है। जो पढ़ लिया जाय वही अच्छा पर प्राथमिकता उन्हें दी जानी चाहिए, जिन प्रसंगों से जीवन में आए दिन काम पड़ता है। उनकी जानकारी का अभाव बना रहे और फिजिक्स, साइन्स, रसायनशास्त्र, भूगोल, गणित जैस यदा-कदा काम आने वाले प्रसंग पढ़ाए जाते रहे, तो उससे शिक्षक और शिक्षार्थी के समय का अपव्यय ही होता है।

मनुष्य की दैनिक आवश्यकताओं में शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याएँ आती हैं। आजीविका के लिए स्कूल छोड़ते ही उसे चिन्ता करनी पड़ती है। पढ़ाते समय घर वाले भी यह सोचते हैं कि पढ़ाई पूरी करते ही बच्चा कुछ कमाने-धमाने लगेगा, किन्तु उपरोक्त शिक्षा की समस्याओं में से शिक्षार्थी जब एक का भी जानकार नहीं होता, तो सभी को निराशा होती है कि पढ़ने में जो इतना समय, श्रम एवं धन खर्च हुआ, वह किस काम आया ?

स्कूली पाठ्यक्रम काफी बढ़ा-चढ़ा है। बच्चे एक गधे के बोझ के बराबर पुस्तकें पीठ पर लाद कर स्कूल जाते हैं। स्कूल में और घर में भी वे पढ़ने में लगे रहते हैं। जो सम्पन्न हैं, वे पढ़ाई की कच्चाई निकालने के लिए ट्यूशन का प्रबन्ध भी कर देते हैं। जैसे-तैसे पास भी हो जाते हैं, प्रमाण-पत्र भी ले आते हैं।

यह प्रमाण-पत्र नौकरी में काम आ गया तो ठीक अन्यथा दैनिक जीवन में आने वाली समस्या का कोई समाधान इनमें नहीं रहता। ऐसी दशा में शरीर को स्वस्थ्य-समर्थ रखने, मानसिक सन्तुलन बनाए रहने, प्रतिष्ठा निखारने, समाज में तालमेल बिठाने, पारिवारिक उलझनों का समाधान करने में उनका कोई योगदान नहीं होता। इन विषयों की छोटी-छोटी समस्या सामने आ जाने पर उन्हें दूसरों के परामर्श के लिए भागना पड़ता है, जिस जीवनक्रम से उन्हें निरन्तर वास्ता पड़ता है, उनके स्वरूप और समाधान के विषय में उनकी अनभिज्ञता देखकर शिक्षार्थी को भी शर्म आती है और अभिभावक को भी असमंजस होता है कि स्कूल में क्या पढ़ा गया और क्या पढ़ाया गया ? जब पुस्तकें उलटकर देखी जाती हैं, तो उनके विषय तो आकर्षक प्रतीत होते हैं, उनमें देश-विदेश की, विज्ञान, रसायन की बातें तो बड़ी आकर्षक लिखी होती हैं, पर यह समझ में नहीं आता कि जिस इतिहास-भूगोल को, अर्थशास्त्र-राजनीतिशास्त्र को इतने विस्तारपूर्वक पढ़ाया गया है, उन्हें काम में लाने का अवसर कब आएगा ? पाठ्यक्रम क्षेत्र की यह एक भारी त्रुटि है, इसे समझा और समझाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रमों में उन दैनिक समस्याओं का स्वरूप और समाधान रहना चाहिए, जो दैनिक जीवन में आए दिन काम आती हैं, जो मनुष्य के दृष्टिकोण, चिन्तन-चरित्र एवं व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरकारी नौकरियाँ मिलना अब अति कठिन हो गया है, जितनी नई जगह निकलती हैं और खाली होती हैं, उनकी तुलना में विद्यालयों से पढ़कर कहीं अधिक छात्र बाहर आते हैं। इन सबको नौकरी कहाँ मिलेगी ? कोई शिल्प या व्यवसाय यदि शिक्षा-पद्धति में एक अनिवार्य पाठ्यक्रम की तरह जोड़ा गया होता तो विद्यार्थी खाली बैठने की अपेक्षा किसी उद्योग-धन्धे की ओर ध्यान देता और उसमें अपने लिए गुजारे की व्यवस्था बनाकर बेकारी के कुचक्र से बचता।

बेकारी तो अनपढ़ों से भी बुरी है, पर शिक्षितों की और भी बुरी क्योंकि बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ आरम्भ से ही सँजोई हुई होती हैं। उन्हें आशा रहती है कि पढ़ाई पूरी होते ही कोई धन्धा मिल जाएगा, पर जब वह इच्छा पूरी नहीं होती तो असंतोष की आग भड़कती है। कभी शिक्षा-पद्धति को, कभी अपने भाग्य को दोष देते हुए जहाँ-तहाँ मारे फिरते हैं। कुछ परिस्थितियों से समझौता कर लेते हैं और किसी प्रकार गुजारा करने लगते हैं। जिन्हें सन्तोष नहीं होता, वे ऐसी रीति-नीति अपनाते हैं, जिसमें अपराधों की ओर मुड़ने का सिलसिला जुड़ा होता है।

अमीर देशों के लोग नौकरी या आजीविका के लिए नहीं पढ़ते। ऐसे व्यवसाय तो उनके घर पर पहले से ही होते हैं। वे बालकों को इसलिए पढ़ाते हैं कि वहाँ के वातावरण में ढलके उनका व्यक्तित्व निखरे, प्रतिभा विकसे। इसके लिए वहाँ पारिवारिक जीवन की व्यवस्था नियोजित बोर्डिंगों में होती है और वहाँ शिक्षा के अतिरिक्त ऐसे कार्यक्रम भी चलते रहते हैं, जिनके माध्यम से उनकी प्रतिभा का बहुमुखी विकास हो सके। वहाँ अभिभावकों का स्थान बोर्डिंग सुपरिन्टेण्डेण्ट एवं सहायक कर्मचारी सँभालते हैं। यह सम्पन्न देशों की या बड़े लोगों की बात हुई।

अपने देश में ऐसी स्थिति नहीं है। तब एक ही उपाय रह जाता है कि अभिभावक या परिवार के लोग शिक्षार्थियों के सामान्य ज्ञान में अभिवृद्धि करें। उनके चिन्तन, आचरण एवं व्यवहार में सज्जनता का समावेश करें। इस योग्य बनाएँ कि किसी महान देश के शानदार नागरिक कहला सकें। समाज के जिस भी पक्ष से उनका वास्ता पड़े, वहाँ बिना झगड़े-झंझट में पड़े अपना सम्मानप्रद स्थान बना सकें, सहयोग अर्जित कर सकें और उस आधार पर आवश्यक सफलता उपलब्ध कर सकें।

कठिनाई यह भी है कि अभिभावकों को इस स्तर की शिक्षा उपलब्ध नहीं होती। उन्हें जीवन विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को समझना और उनके बीच गुजरते हुए सफलता के लक्ष्य तक पहुँचना स्वयं नहीं आता। ऐसी दशा में यह किस प्रकार बन पड़े कि वे बच्चे को सुविकसित, सुसंस्कृत बनाने में अध्यापकों का सहयोग दें और शिक्षा के सर्वांगपूर्ण होने में जो कमी रह जाती है, उसकी पूर्ति घर पर रहते हुए कराएँ।

मात्र स्कूली पढ़ाई के भरोसे इन दिनों वह आशा नहीं की जा सकती, जो कभी ऋषि-कुलों में पढ़ने वाले छात्रों को उपलब्ध रहा करती थी। अब वह व्यवस्था नहीं है, तो अध्यापकों की पूर्ति करनी चाहिए।

होना यह चाहिए कि हर रविवार को अभिभावकों द्वारा एक स्वतन्त्र कक्षा लगाई जाया करें, जिसमें छुट्टी के दिन खाली हुए बच्चे भी सम्मिलित हों। उन्हें पढ़ाया जाना चाहिए कि घर का वातावरण ही नर-रत्नों की खदान होकर विकसित होता है। संस्कार स्कूल की अपेक्षा घर-परिवार में ही अधिक मिलते हैं। स्कूलों का कार्यक्रम-पाठ्यक्रम पूरा करना ही बहुत है। वहाँ हर किसी के दिमाग पर उत्तीर्ण होने का ही भूत सवार रहता है। इसी के लिए विद्यार्थी और अध्यापक खटते हैं। स्वभाव, संस्कार की ओर ध्यान देने का किसी को अवसर ही नहीं मिलता। इस कमी की पूर्ति परिवार के विकसित-जिम्मेदार सदस्यों को करनी चाहिए। बच्चों को स्कूल भेज देने भर से यह आशा नहीं की जा सकती कि छात्र जीवन संग्राम की लड़ाई ठीक प्रकार लड़ सकेंगे और उसमें सफल होकर प्रशिक्षण को समर्थ सिद्ध कर सकेंगे।

शिक्षा सार्थक और समग्र कैसे बने?

बालकों की कच्ची आयु गीली लकड़ी की तरह होती है। उनके साथ यदि सच्चे मन से प्रयत्न किया जाय तो ही वे उपयेगी दिशाधारा में मोड़े जा सकते हैं। गीली मिट्टी की तरह उन्हें किसी भी ढाँचे में ढाला जा सकता है। बड़े हो जाने पर आदतें मजबूत पड़ जाती हैं, पूर्वाग्रह बढ़ जाते हैं। इसलिए उस दिशा में उनका सुधार परिष्कार कठिन हो जाता है। इसलिए भावी पीढ़ी को अधिक सुयोग्य एवं सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से अधिकतम गम्भीरता के साथ विभागात्मक प्रयत्न करने चाहिए। इस सन्दर्भ में स्कूलों का तथा परिवारों का वातावरण प्रेरणाप्रद बनाया जाना चाहिए, जिसका नवोदित बालक अनुकरण करते हुए अपने को अधिकतम सुसंस्कृत एवं समुन्नत बना सकें। इस प्रयोजन के लिए अध्यापकों और अभिभावकों को समान रूप से उत्तरदायित्व है। दोनों के प्रयत्न से ही नई पीढ़ी का समुचित विकास हो सकता है।

निर्धारित पाठ्यक्रम स्कूलों में जैसे-तैसे पूरे हो पाते हैं, किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण कमी यह रह जाती है कि मानवी गरिमा के प्रति, व्यक्तिगत सुसंस्कारिता के प्रति, सामाजिक सुव्यवस्था के प्रति जो दायित्व है, उनके सम्बन्ध में ऐसा कुछ समझने-पढ़ने को नहीं मिलता, जो व्यक्ति के विकास एवं उलझनों के समाधान में काम आ सके। स्वास्थ्य संरक्षण, मानसिक सन्तुलन, पारिवारिक तालमेल, आर्थिक व्यवस्था, सम्पर्क क्षेत्र का सौमनस्य, पारस्परिक व्यवहार, शिष्टाचार जैसे अनेक विषय ऐसे हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनसे आए दिन निपटना पड़ता है। यदि उनकी बारीकियों को समझा जा सके और उतार-चढ़ावों से ताल-मेल बिठाया जा सके, तो व्यक्ति प्रसन्न रह सकता है, प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।

निजी जीवन के अतिरिक्त बाह्य संसार भी अनेकानेक जानकारियों के साथ जुड़ा है। समाज के बीच मनुष्य को रहना पड़ता है। समाज चित्र-विचित्र प्रकृति वाले लोगों का है। इनकी मान्यताएँ, आदतें एवं गतिविधियाँ ऐसी हैं, जिन्हें जाने समझे बिना इनके साथ उपयुक्त व्यवहार कर सकना भी नहीं बन पड़ता। निजी चिन्तन, चरित्र और व्यवहार का सज्जनोचित स्तर तक विकसित करना इतना अधिक आवश्यक है कि उसकी उपेक्षा करने से प्रगति पथ पूरी तरह से रुक जाता है। लोक व्यवहार, शिष्टाचार भी इससे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। फिर कला, संगीत, साहित्य, उद्योग, व्यवसाय, प्रथा, प्रचलन, इतिहास-भूगोल, दर्शन-धर्म आदि विषय भी ऐसे हैं, जिनकी गहराई में जितना जाया जा सके, उतना ही उत्तम है। इन सब विषयों की जानकारी स्कूलों पाठ्यक्रमों से भिन्न है। इस ज्ञान का संचय कैसे किया जाय, इस सम्बन्ध में सोचना और प्रबन्ध करना भी आवश्यक है।

इसका सबसे अच्छा माध्यम है—स्वाध्याय में रुचि बढ़ाना। ज्ञान वृद्धि का उसे भी स्रोत समझा जा सकता है। स्वाध्याय का पुराना स्वरूप है गीता, रामायण आदि पुरातन धर्मग्रन्थों का पाठ करते रहना। आज का स्वरूप जो होना चाहिए जीवन की सामान्य समस्याओं का आदर्शवादी किन्तु व्यवहारपरक परामर्श मिलना। इसके लिए इसी विषय का समग्र ज्ञान देने वाली पुस्तकों को एकत्र करके और उन्हें आवश्यकतानुसार पढ़ते रहने का क्रम चलाना। यह कार्य स्थानीय पुस्तकालय की स्थापना की आवश्यकता को अनिवार्य रूप से पूरा किया जाने का तकाजा कराता है। जिस प्रकार हर जगह प्रौढ़-पाठशालाओं की, बाल संस्कारशालाओं की शृंखला व्यापक बनाए जाने की आवश्यकता है, उसी प्रकार हर गाँव में ऐसे पुस्तकालय भी स्थापित किए जाने चाहिए, जिनमें जीवन विज्ञान के सभी पक्षों का समावेश हो। अपने देश में स्थिति ऐसी नहीं है कि हर व्यक्ति अपनी आवश्यकता की सभी पुस्तकें खरीद सके और हर शिक्षित अपने घर में एक घरेलू पुस्तकालय बना सके।

इसके दो कारण हैं—एक तो अध्ययन में रुचि न होना, दूसरा अधिक महँगाई के कारण उपयोगी साहित्य की अनेकानेक पुस्तकें खरीद न पाना। इनमें भी अभिरुचि प्रधान कारण है। शिक्षा मिल सकना उतना कठिन नहीं है जितना कि उसका महत्त्व न समझ पाना, उत्साह का न उमंगना। अशिक्षा विस्तार में पाठशालाओं की कमी भी एक कारण है, पर उससे भी बड़ी बाधा यह है कि जन-साधारण ने शिक्षा की महत्ता एवं आवश्यकता नहीं समझी है। शिक्षा विस्तार का पहला चरण यह है कि उत्साह जगाया और महत्व समझाया जाय। ठीक इसी प्रकार दूसरा चरण पूरा करने के लिये पुस्तकालय का महत्त्व तथा पढ़ने के लिए रुचि उत्पन्न करना बड़ा काम है। उसके लिए जनसम्पर्क साधते रहने और घर-घर अलख जगाते रहने की आवश्यकता है। पुस्तकालय के लिए पैसा तो मुट्ठी फण्ड अनाज जमा करने से भी उपलब्ध हो सकता है। उदारचेता लोग महीने में एक दिन की आमदनी इस ज्ञान दान के लिए देते रह सकते हैं। निजी इमारत न बन सके, तो किन्हीं भावनाशील व्यक्ति के निजी कमरों में पुस्तकालय की अलमारियाँ रखी जा सकती हैं।

पुस्तकालय का साहित्य पढ़ने और स्वाध्याय में रस लेने की मनोभूमि बनाना एक असाधारण काम है। उसके लिए ऐसा प्रयत्न करने की आवश्यकता है, जैसा कि ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाना। जीवन विज्ञान पुस्तकालय में पुस्तकें निरन्तर बढ़ती रहनी चाहिए क्योंकि हर पाठक एक पुस्तक पढ़ने के बाद दूसरी माँगेगा। भण्डार में थोड़ी पुस्तकें हों तो वे कुछ दिन में चुक जाएँगी और जो सुरुचि उत्पन्न की गई थीं, वह पोषण नियमित रूप से न मिलने पर मुरझा जाएगी। इसलिये निर्झर के प्रवाह की तरह पुस्तकालय का भण्डार नई पुस्तकों से भरा जाता रहना चाहिए। उसके लिए नियमित अर्थ व्यवस्था का भी प्रबन्ध करना चाहिए। इसके लिए संस्थापन और संचालन को सद्भाव भरा मन्दिर, एक देवालय समझकर उसकी अभ्यर्थना के लिए कुछ उठा न रखना चाहिये।

एक कमरे में पुस्तकालय स्थापित कर देने भर से काम न चलेगा। होना यह चाहिए कि हर शिक्षित के घर तक पुस्तकें पहुँचाना और वापस लेने का कार्य सेवाभावी लोकसेवी स्वयं श्रमदान करें इस प्रक्रिया को जीवन्त रखने का उत्तरदायित्व उठाएँ। इस प्रकार मुफ्त में घर बैठे उपयोगी पुस्तकें मिलती रहने से लोगों को उस ज्ञान संवेदना का रसास्वादन करने का अवसर मिलेगा।

शिक्षित सत्साहित्य पढ़ें और कम से कम अपने परिवार के सभी शिक्षित, अशिक्षित लोगों को उसे पढ़कर सुनाएँ। इस प्रकार पुस्तकालय के माध्यम से शिक्षितों को और शिक्षितों के माध्यम से अशिक्षितों को सर्वसाधारण को, उस ज्ञान चेतना का आलोक पहुँचाने की शृंखला बन जाएगी।

प्रौढ़-पाठशाला या बाल-संस्कारशाला की पढ़ाई चिरस्थायी नहीं है। साक्षरता शिक्षण कुछ ही महीनों के प्रयत्न से पूरा हो सकता है। इसके बाद उस प्रक्रिया का अन्त नहीं हो जाना चाहिए, वरन् ज्ञान नेत्र खुल जाने के उपरान्त उनसे उपयोगी दृष्टि देखने का कार्य चल पड़ना चाहिए। साक्षरता आरम्भ है। उससे प्राथमिकता भर पूरी होती है। ज्ञान नेत्र के बन्द कपाटों को खोल देना भर है। अब भवन के भतीर प्रकाश में, उसमें रखी बहुमूल्य वस्तुओं को देखना और लाभ उठाना भी तो बन पड़ना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा से साक्षरता की विधा पूरी होते ही जीवन साहित्य एवं समाज विज्ञान की पुस्तकें नियमित रूप से पढ़ते रहने की उत्तर साक्षरता की शिक्षण की रीति-नीति अपनाई जानी चाहिए, तभी शिक्षा का समुचित लाभ उठाया जा सकेगा।

बाल-संस्कारशालाओं के छात्रों में भी बचे समय में स्वाध्याय करते रहने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। वे कठिन पुस्तकें नहीं समझ सकें, तो हल्की-फुलकी पुस्तकें उपलब्ध करानी चाहिए। सरल साहित्य भी बाजार में तलाशा जा सकता है। पर वह होना ऐसा चाहिए जो मात्र मनोरंजन ही बनकर न रह जाय। बेतुकी पुस्तकों से पाठकों का दृष्टिकोण विकृत होता है और चरित्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए जिस प्रकार आहार की स्वच्छता और पौष्टिकता का ध्यान रखा जाता है, उसी प्रकार पठनीय साहित्य उसी को माना जाना चाहिए जो विवेक जागृत करे और उपयोगी विषयों से पाठक को अवगत कराए।

साक्षरता विस्तार समय की सबसे बड़ी आवश्यकता

शिक्षा किसी भी विकसित राष्ट्र की अनिवार्य आवश्यकता है। इसी आधार पर प्रगतिशीलता हस्तगत होती है। उपलब्ध ज्ञान के स्तर पर सम्पदा के अनेक पक्ष विकसित होते हैं। उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकना, दूसरों की सेवा सहायता प्राप्त कर सकना इसी से सम्भव है। पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि संसार में आधे पेट भूखे सोने वालों की संख्या जितनी है, उससे कहीं अधिक वे लोग हैं, जिनको निरक्षर कहते हैं। निरक्षरों की सख्या बढ़ना एक प्रकार से संसार में अपंगों की भरमार ही होना है। कारण स्पष्ट है कि बिना पढ़े-लिखे लोग न केवल व्यक्तिगत रूप से कोई प्रगति करने में असमर्थ होते हैं वरन् समाज और राष्ट्र की उन्नति में भी बाधक बनते हैं।

अनपढ़ और अनगढ़ समुदाय अपने जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता फलत: दीनहीन एवं दयनीय स्थिति में पड़ा समाज पर भार बनकर रह जाता है। अत: अब समय आ गया है कि प्रगति की दिशा में तेजी से बढ़ती दुनिया में उसकी आधी से अधिक आबादी का बौद्धिक पिछड़ापन दूर किया जाय। इस निमित्त प्रौढ़ शिक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित करना और उन्हें सफल बनाना नितान्त आवश्यक है।

निरक्षरता उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा है। मनुष्य के पतन और दु:ख-दरिद्रता की जड़ में अशिक्षा है। अपने देश को ही लें तो यहाँ प्राय: ९० करोड़ की विशाल आबादी में ५० करोड़ से अधिक व्यक्ति अशिक्षित हैं। इनमें से अधिसंख्य निरक्षर दूरवर्ती बिखरे देहातों में रहते हैं, जहाँ न शिक्षा का महत्त्व समझा जाता है और न उसके लिए आवश्यक सुविधाएँ ही उपलब्ध हैं। उत्साह के अभाव में वे लोग समाधान ढूँढ़ने का भी प्रयत्न नहीं करते। जहाँ शिक्षा का महत्त्व न समझा गया हो, इस ओर उन्हें अभिप्रेरित न किया गया हो, उसके लिए प्रयत्न भी क्यों चलेगा ? उत्साह क्यों उभरेगा ? यही कारण है कि वहाँ कोई बड़ी उपलब्धि भी हस्तगत नहीं होती है। वे लोग किसी प्रकार अपनी आजीविका भले ही कमाते रहें पर समाज का ऋण चुकाने जैसा कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते और जो लोग केवल अपने लिए ही जीने को विवश हों, उन्हें समाज की, राष्ट्र की प्रगति में सहायक कैसे कहा जा सकता है ? कदम से कदम मिलाकर न चल पाने के कारण वे समाज के पिछड़ेपन का एक कारण बनते हैं।

निरक्षरता दूर करने के लिए साक्षरता, प्रौढ़ शिक्षा, क्रियात्मक साक्षरता जैसे नामों से सरकारी, अर्द्ध-सरकारी स्तर पर बहुत कुछ प्रयत्न किया जाता रहा है। अध्यापकों एवं प्रौढ़ शिक्षा अधिकारियों, पर्यवेक्षकों आदि की एक विपुल जनसंख्या इसी शिक्षा प्रयोग में लगी हुई है। शिक्षा नीति पर लम्बी-चौड़ी चर्चाएँ होती रहती हैं, रिपोर्ट तैयार होती और योजनाएँ बनती रहती हैं। फिर भी सफलताएँ बहुत सीमित रही हैं। इतनी बड़ी जनसंख्या को साक्षर बना सकना अकेले सरकारी तन्त्र के बलबूते की बात नहीं हैं। कारण स्पष्ट है कि बढ़ती आबादी के कारण नवोदित छात्रों के लिए सरकार को नवीन स्कूल कॉलेज खोलने के लिए पर्याप्त सुविधा-साधन जुटा पाना ही मुश्किल पड़ रहा है फिर प्रौढ़ नर-नारियों की शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हो ? एक तो इन लोगों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि की कमी है, दूसरे रोज कुँआ खोदने और पानी पीने वाले इस विशाल अभावग्रस्त समुदाय में यदि पढ़ाई-लिखाई के प्रति उत्साह उमंगें भी तो इसके लिए उन्हें रात्रि में ही कुछ समय मिल पाता है। उनके लिए इन थोड़े घण्टों के लिए अल्प वेतन श्रेणी के अध्यापक कहाँ से मिलें ? बिना पूरे वतन के कोई क्यों कर इस बन्धन में बँधने को तैयार होगा ? फिर इतनी बड़ी संख्या में निरक्षरों के लिए लाखों नये प्रौढ़-विद्यालय कैसे खुलें ? उनमें पढ़ाई-लिखाई के प्रति अभिरुचि कैसे जागृत हो ? उत्साह कैसे उभरे ? यह सभी समस्याएँ इतनी जटिल हैं जिनके समाधान सहज सम्भव नहीं दीखते।

विश्व के कितने ही देशों के उदाहरण हमारे सामने हैं, जहाँ की अधिकांश जनता कभी निरक्षर थी। परन्तु जब पढ़ाई-लिखाई का महत्त्व समझा गया, लोगों में इसके प्रति अभिरुचि जगी तो वहाँ जनसहयोग के आधार पर शिक्षा-सम्वर्द्धन को एक 'आन्दोलन' के रूप में चलाया गया और देखते-देखते कुछ वर्षों में ही सारे देशवासियों को साक्षर बना दिया। बड़े देश रूस और चीन के अतिरिक्त निकारागुआ, अर्जेन्टीना, ईराक, युगाण्डा, केन्या,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्यूबा, जोर्डन, पूर्व जर्मनी, हंगरी, पोलैण्ड, पनामा, बुल्गारिया, रोमानिया, लीबिया, सीरिया, सूडान, सिंगापुर आदि देशों में प्रौढ़ शिक्षा को बहुत व्यापक स्तर पर चलाया गया है। इन देशों में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का पर्याय मानकर उसे सुनियोजित ढंग से भावनात्मक स्तर पर क्रियान्वित किया गया है। यही कारण है कि छोटे-छोटे कृषि प्रधान देश भी अब अपनी बुद्धिमत्ता और कौशल का विकास कर प्रमुख औद्योगिक देश बन गए हैं। वहाँ शिक्षितों में उदार विचारशीलता को भावनात्मक स्तर पर उभारा गया है और उन्हें देशवासियों की मानसिक अपंगता को दूर करने, उन्हें साक्षर बनाने के काम पर स्वैच्छिक रूप से लगाया गया है। इन देशों में अवैतनिक स्वयं सेवी शिक्षकों की एक संगठित सेना सी बन गई है, जो गाँव-गाँव जाकर लोगों में शिक्षा के प्रति उत्साह जगाती और उन्हें साक्षर बनाती है। प्रशिक्षण का एक ऐसा वातावरण बन गया है, जिसमें समानता, पारस्परिक सहयोग तथा विश्वास के साथ शिक्षित युवक-युवतियाँ अशिक्षितों को अपने साथ लेते और उन्हें साक्षर बनाते चले जाते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में निकारागुआ सबसे अग्रणी देश है। निरक्षरता उन्मूलन में जिस द्रुतगति से उसने सफलता पाई है, वह विश्व भर में अपने ढंग की अद्वितीय है। सन् १९७९ में जब नागरिकों ने गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंका और स्वतन्त्रता हासिल की तब आधे से अधिक देशवासी निरक्षर थे। ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षितों का अनुपात ८५ प्रतिशत था। स्वतन्त्र सरकार के समक्ष विकास योजनाओं में राष्ट्रीय साक्षरता अभियान चलाना अति आवश्यक था। परन्तु इसके कार्यान्वयन में गम्भीर आर्थिक संकट एवं शिक्षकों की कमी प्रमुख बाधाएँ थीं। इस विषम परिस्थिति में अपने निरक्षर देशवासी भाइयों को साक्षर बनाने का संकल्प लिया पढ़े-लिखे नवयुवक एवं युवतियों ने। जो युवा पीढ़ी पहले देश की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रही थी, उसी 'क्रान्तिकारी ब्रिगेदिस्टा' के सदस्य लगन के साथ राष्ट्रीय साक्षरता अभियान में जुट गए। सामुदायिक अध्ययन दलों का संगठन किया गया। जगह-जगह अस्थायी स्कूल चलने लगे। बच्चों से लेकर बड़े-बूढ़ों तक को साक्षर बनाया जाने लगा। पाँच महीनों की अल्प अवधि में ही चार लाख से अधिक नर-नारियों ने पढ़ने-लिखने की आरम्भिक शिक्षा प्राप्त कर ली। हजारों युवाओं ने देश की गरीबी और संस्कृति के बारे में अध्ययन किया और तदनुरूप लोगों को सिखाने-पढ़ाने में जुट गए। सन् १९८० में प्रायः सम्पूर्ण शिक्षित और अशिक्षित वर्ग साक्षरता आन्दोलन से जुड़ गया। उज्ज्वल भविष्य के प्रति आस्था, सच्ची लगन और तत्परता ने कठिन कार्य को भी आसान बना दिया।

जिस बुनियादी शिक्षा के लिए विपुल धन राशि जुटानी पड़ती, योजनाएँ बनतीं, शिक्षक तैयार किए जाते और उसके पूर्ण होने में वर्षों का समय लगता, उस जटिल कार्य योजना को समर्पित सेवाभावी उदारचेता राष्ट्रीय साक्षरता जेहाद को स्वयं युवा वर्ग ने वर्ष भर में पूर्ण कर दिखाया। साक्षरों ने अपने पास-पड़ौस के निरक्षरों को कारखानों के शिक्षित मजदूरों ने अपने साथी मजदूरों को, फैक्टरियों में ही अवकाश के समय पढ़ाना-लिखना आरम्भ कर दिया। दूरवर्ती कृषकों और पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों तक पहुँचकर नवयुवकों ने उन्हें अक्षर ज्ञान कराया। कम पढ़ी-लिखी महिला समूहों ने अपना अलग मोर्चा सँभाला। शहर वालों ने शहरवासियों को सिखाया सभी देशवासियों ने अन्यान्य कार्यों के अतिरिक्त पढ़ने-पढ़ाने, सीखने-सिखाने में अपने-अपने ढंग से योगदान दिया। सभी का उद्देश्य एक था कि निकारागुआवासी बदलते समाज में प्रगतिशील दुनिया में भागीदारी के लिए आवश्यक ज्ञान-कौशल व अनुभव प्राप्त करें, जिससे वे प्रगति के दौर में पीछे न रहें।

इस सामूहिक प्रयास ने एक वर्ष में ही निरक्षरता के कलंक को धो दिया। १९८१ के आरम्भ में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार निकारागुआ में मात्र १३ प्रतिशत निरक्षर रह गए थे। इनमें से अधिकांश वे व्यक्ति सम्मिलित थे, जो या तो रुग्ण थे अथवा जिनकी आँखें खराब हो गई थीं। लिख-पढ़ नहीं सकते थे। अब उस देश में उच्च शिक्षण का अभियान भी समूह प्रक्रिया के आधार पर ही चलाया जा रहा है। सामूहिक जिम्मेदारी की शिक्षण-पद्धति के आधार पर उन्हें यह सफलता हस्तगत हुई है। हर शिक्षित व्यक्ति अपने से कम पढ़े व्यक्ति को प्रशिक्षित करता है। जिन्होंने पढ़ना-लिखना सीख लिया है वे स्थायी प्रौढ़ शिक्षा के सहभागी बन जाते हैं।

सन् १९१७ की क्रान्ति से पूर्व सोवियत संघ भी सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था, आर्थिक दृष्टि से जर्जर और शैक्षणिक दृष्टि से निरक्षर था। किन्तु जारशाही से मुक्ति के बाद देश में फैली व्यापक निरक्षरता के विरुद्ध उसने जिस प्रकार के संघर्ष किया और न केवल इस कलंक से पीछा छुड़ाया वरन् विकसित और समुन्नत श्रेणी में जा पहुँचा। हमारे सामने साक्षरता अभियान के ये कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

निश्चय ही निकारागुआ, क्यूबा और सोवियत रूस जैसे देशों के साक्षरता अभियान से बहुत कुछ प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं और अपने देश की दो-तिहाई जनता को जो सर्वथा निरक्षर है, उसे साक्षर बना सकते हैं। प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता इतनी बड़ी है, जिसे बाल शिक्षा की तुलना में अनेक गुनी विशद समझा जा सकता है। यह समस्या ऐसी है, जो पिछड़ेपन के लिए जिम्मेदार है और प्रगति की दिशा में सोचने-समझने एवं कदम बढ़ाने तक में अवरोध उत्पन्न करती है। ऐसी दशा में यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अति-आवश्यक हो जाता है कि जैसे भी बन पड़े, अपने माथे पर लगे निरक्षरता के इस कलंक को धोया जाए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षा ही वह साधन है, जिसने मानव को नर-पशु स्तर से ऊँचा उठाकर सृष्टि का मुकुटमणि कहलाने वाले जीव 'मनुष्य' की श्रेणी में बैठ सकने योग्य बनाया है।

शिक्षा-सम्वर्द्धन युग की एक महती आवश्यकता

शिक्षा जीवन विकास के लिए एक अनिवार्यता है। हर युग में इसे महत्ता प्राप्त होती रही है। इस व्यवस्था का स्वरूप भले ही बदलता रहा हो, पर वह प्रचलन में हमेशा अनिवार्य रूप से रही है। कोई जमाना था, जब मनुष्य का कामचलाऊ जानकारियों से काम चल जाता था। एक-दूसरे से कह-पूछकर आवश्यक जानकारियाँ प्राप्त कर ली जाती थी। तब बिना शिक्षा के भी किसी प्रकार निर्वाह हो जाता था, पर अब समय सर्वथा बदल गया है। व्यक्ति और समाज के साथ इतनी अधिक समस्याएँ जुड़ गई हैं कि उनका समाधान बिना उपयुक्त शिक्षा के सम्भव नहीं हो सकता। दुनिया जिस तेजी से साथ बढ़ रही है, उसमें प्रगति मात्र सुविधा-साधनों की ही नहीं हुई है, उलझनों का क्षेत्र भी बढ़ गया है। उनसे निपटने के लिए हर किसी को अधिक जानकारी सम्पन्न होना आवश्यक हो गया है। समाज संरचना भी जटिल होती जा रही है। अत: प्रगति की दिशा में बढ़ने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गया है।

मनुष्य जिस समाज में रहता है, उसकी एक सभ्यता है, सुसंस्कृत आचरण की उससे अपेक्षा की जाती है। समाज में संव्याप्त अवांछनीयताओं का स्वरूप समझने और उससे पार पाने के लिए शिक्षा का सहारा लिए बिना काम चलता नहीं। यदि इस दिशा में उपेक्षा बरती जाय तो अनपढ़ रहने वाला अनगढ़ ही बना रहेगा। आदिम काल के वनवासी शरीर से बलिष्ठ भले ही रहे हों, पर आज के विकसित मनुष्य की तुलना में उन्हें अनगढ़ ही माना जाएगा। वर्तमान प्रगति की घुड़दौड़ में कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए शिक्षा के बिना किसी प्रकार गुजारा नहीं। समय की माँग है कि स्थिरता और प्रगति बनाए रखने के लिए प्रस्तुत असंख्य समस्याओं से निपटने के लिए पढ़ना-लिखना उसी प्रकार आवश्यक समझा जाना चाहिए जैसा कि पेट भरने के लिए भोजन। सभ्यता के इस युग में अशिक्षित और असभ्य कहलाना किसी समझदार को शोभा नहीं देता। विद्या रूपी नेत्र खुले बिना एक प्रकार से अन्ध जैसी स्थिति ही बनी रहती है। अधिसंख्य लोग अभी भी भारत में अशिक्षित ही हैं।

आँकड़े बताते हैं कि इन दिनों विश्व की एक चौथाई से अधिक आबादी अशिक्षित है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्था यूनेस्को के अनुसार सन् १९७० में ३३ प्रतिशत लोग अशिक्षित थे, जिनमें १५ वर्ष से अधिक आयु के निरक्षरों की संख्या लगभग ७१ करोड़ थी, जो सन् १९८८ में बढ़कर ८९ करोड़ हो गई। अब यह संख्या ९० करोड़ से भी ऊपर जा पहुँची है, जिसमें सबसे अधिक निरक्षर अफ्रीका और एशिया में बसते हैं। पुरुषों की तुलना में महिलाओं का अनुपात १० प्रतिशत अधिक है। विश्व बैंक ने अपने एक सर्वेक्षण में बताया कि शताब्दी के अंत तक दुनिया में एक अरब निरक्षर होंगे, जिनमें से आधे भारत में होंगे। अभी भी अपने देश बिना पढ़े-लिखे लोगों की संख्या ५० करोड़ है, जिसमें महिलाओं का अनुपात सर्वाधिक है। मात्र केरल ही देश का एक ऐसा प्रान्त है, जहाँ साक्षरता ९०.५९ प्रतिशत है। इस प्रदेश के ज्यादातर क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ शत-प्रतिशत लोग साक्षर हैं। इसके बाद तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश जैसे दक्षिणी राज्यों में शिक्षा की स्थिति बेहतर है। महाराष्ट्र तथा पश्चिम बंगाल में यह अनुपात क्रमश: ६३·०५ एवं ५७·७२ प्रतिशत है। सबसे कम साक्षरता बिहार में ३८·५४ प्रतिशत है। इसके बाद राजस्थान में ३८·८१ प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में, ४९·७१ प्रतिशत तथा मध्य प्रदेश में ४३·४५ प्रतिशत है। इन दिनों देश की आबादी जिस अनुपात से बढ़ रही है, उस हिसाब से प्रत्येक दस वर्ष में सात फीसदी निरक्षर व्यक्ति और जुड़ जाते हैं। यह एक ऐसी विषम स्थिति है, जो विकास के समस्त प्रयासों को निगल जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अशिक्षा के इस अभिशाप को कैसे दूर किया जाय ? एक-चौथाई मनुष्यों को इस दुर्भाग्य से कैसे उबारा जाय ? इस प्रश्न को प्राथमिकता देने वाले राष्ट्र भी किसी समुचित समाधान पर पहुँच नहीं पाते ? सरकारें यदि इन सभी को पढ़ाएँ तो उसे जितना अभी बच्चों को पढ़ाने के लिए व्यय करना पड़ता है, उससे कई गुना अधिक संरजाम प्रौढ़ों के लिए जुटाना पड़ेगा, इसके लिए कितनी इमारत, कितने साधन, उपकरण और अध्यापक चाहिए, इसका अनुमान लगाने पर यही तथ्य सामने आता है कि मात्र इसी एक कार्य में बजट का बड़ा अंश खप जायगा। स्कूल-कॉलेजों के लिए जमीन भी कम न घिरेगी। फिर भारत जैसे बहुत आबादी वाले देश में यदि साक्षरता की मुहिम तेजी से निरन्तर चलती भी रहे, तो भी प्रतिवर्ष करोड़ों की संख्या में नवागन्तुकों के जुड़ जाने से यह प्रयास दीर्घकाल में ही सम्भव हो सकता है और वह भी तब, जबकि साक्षरता दर तथा जनसंख्या दर में पर्याप्त तालमेल बना रहे। 'रीसेंट लिटरेसी ट्रेण्ड्स इन इण्डिया' नामक अपने अनुसंधानपूर्ण कृति में सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् द्वय श्री ओ. पी. शर्मा एवं अमेरिका के के. डी. रदरफोर्ड ने इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक प्रकाश डाला है।

शिक्षा के बिना न तो प्रगति ही सम्भव है और न नागरिकों के व्यक्तित्व का विकास ही, इस तथ्य से प्राय: सभी अवगत हैं। स्कूली बच्चों की नई पीढ़ी तो इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता का समझने भी लगी है और अभिभावक भी यह अनुभव करने लगे हैं कि बच्चों को बिना पढ़ा रखने पर उनकी आजीविका की, विवाह-शादी की समस्या भारी पड़ेगी। इसलिए उन्हें तो बिरले ही रोकते हैं। रुकावट है तो वयस्क अशिक्षितों के सम्बन्ध में, जिन्हें गतिशीलता के इस युग में यथास्थिति में नहीं रहने दिया जा सकता। जिन बच्चों ने स्कूल में प्रवेश लिया है, वे तो प्राय: बीस वर्ष बाद कहीं कुछ बड़े उत्तरदायित्व सँभालने और देश की प्रगति में योगदान दे सकने योग्य बन सकेंगे। प्रश्न तो आज का है। बीस वर्ष तक प्रतीक्षा में नहीं बैठा जा सकता। समय की गति और माँग इतनी तीव्र है कि उनका सामना करने के लिए वर्तमान पीढ़ी को ही कार्यक्षेत्र में उतरना पड़ेगा।

इस तरह प्रौढ़ नर-नारियों का शिक्षा-सम्वर्द्धन आज की अतिशय महत्त्वपूर्ण समाज सेवा है। कारण स्पष्ट है कि पेट भरने के साधन जुटाने भर से आज के मनुष्य की जिम्मेदारियाँ पूरी नहीं होतीं। उसे अपनी, परिवार की समुदाय की, क्षेत्र की, देश की समस्याओं से भी जूझना पड़ता है और सर्वतोमुखी प्रगति के निमित्त कारगर योगदान देना होता है। इसकी क्षमता उपलब्ध करने के लिए उच्च शिक्षित बन सकना न सही, पर साक्षरता तो अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। अनेक क्षेत्रों की अनेक अभीष्ट जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ ऐसा जानना-समझना पड़ेगा। समय की महती आवश्यकताओं को देखते हुए निरक्षरों की शिक्षा नितान्त आवश्यक हो गई है, क्योंकि उसके बिना समय की समस्याओं से जूझना और प्रगति के पथ पर आगे बढ़ना-बढ़ाना अब सम्भव नहीं रहा है। जिनका व्यक्तित्व भी अब अनपढ़ रहते हुए सभ्य जनों की पंक्ति में बैठने योग्य नहीं बनता है, उन्हें अशिक्षा के अभिशाप से छूटने-छुड़ाने के लिए हर समर्थ को आकुल-व्याकुल बनना पड़ेगा। 'विद्यादान को सर्वोपरि दान' की मान्यता विकसित करनी पड़ेगी। इस प्रकार लोकमानस बनाने के उपरान्त ही दुर्गति से उबरने का कौशल बन सकेगा।

शिक्षा-सम्वर्द्धन को व्यापक बनाने के लिए हर एक को शिक्षित बनाने के लिए एक बड़ा आन्दोलन चलाने की आवश्यकता है। यदि उत्कण्ठा, उभरे, आवश्यकता अनुभव हो, वर्तमान स्थिति बुरी लगे तो पढ़ने के लिए मनुष्य स्वयं दौड़ सकता है। पढ़ने वाले अपने बलबूते साधन जुटा सकते हैं। अन्य जरूरतें पूरी करने की तरह पढ़ाने वालों को पैसा देकर भी आवश्यकता पूरी की जा सकती है। अनिच्छा की मन:स्थिति में तो लोकसेवियों के अनुरोध तक गले नहीं उतरते, लगता है हमें अकारण हैरान, मजबूर किया जा रहा है। ऐसी दशा में पढ़ाने का प्रबन्ध करने वाले भी अपने प्रयत्नों को असफल होते ही देख सकेंगे।

सरकार इस सम्बन्ध में उतना नहीं कर सकती, जितना कि व्यापक समस्या को हल करने के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके लिए हमें वर्तमान शिक्षितों में यह भावना जगानी पड़ेगी कि वे विद्या ऋण चुकाने के लिए, कुछ समय अनपढ़ों को पढ़ाने के लिए लगाने का कर्त्तव्य धर्म समझें और उसके लिए समयदान देने में आनकानी न करें। यदि विद्यादान को सर्वोपरि पुण्यफलदायक होने की बात गले से नीचे उतारी जा सके, तो ऐसे असंख्य लोग मिल सकेंगे जो शिक्षित होने के साथ-साथ बैठे ठाली समय काटते रहते हैं। रिटायरों, पेन्शनरों का एक बहुत बड़ा समुदाय है, जो इस विधा को अपनाने में अपने खाली समय का सदुपयोग करने लगे तो प्रौढ़ शिक्षा को सुलझाने में असाधारण स्तर की सहायता मिल सकती है।

क्यूबा ने अपने देश में अशिक्षा की समस्या इस प्रकार हल की कि स्कूल-कॉलेजों से निकलने वाले छात्रों के प्रमाण-पत्र तब तक के लिए, रोक लिए जब तक कि वे अपने निकटवर्ती कम से कम दो अशिक्षितों को साक्षर न बना दें। सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए भी दो अशिक्षितों को पढ़ाकर आने का प्रमाण-पत्र भी आवश्यक घोषित किया गया। अपने देश में भी डिग्री प्रमाण-पत्र पाने तथा नौकरी या चुनाव में खड़े होने जैसे सम्मानस्पद पद प्राप्त करने के लिए शिक्षित होने की तरह ही शिक्षा सम्वर्द्धन के अपने श्रमदान का प्रमाण-पत्र अनिवार्य शर्त के रूप में जोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त समाज सेवा से जुड़े, धर्मक्षेत्र से जुड़े लोग शिक्षा को धर्मचेतना के अविच्छिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत करते हुए यदि योजनाबद्ध रूप से कार्य कर सकें, तो न शिक्षार्थियों की कमी रहेगी, न शिक्षकों की ओर न इस प्रयोजन में धन लगाने वालों की। आवश्यकता उत्साह उभारने भर की है। यदि यह प्रयोजन पूरा हो गया तो समझना चाहिए कि अभीष्ट सफलता का लक्ष्य पूरा होने के निकट पहुँच गया

शिक्षा विस्तार की पुण्य प्रक्रिया

अपने देश में ७० प्रतिशत लोग पिछड़े देहातों में रहते हैं और प्राय: इतने ही अनपढ़ हैं। अशिक्षा का एक अभिशाप अव्यवस्था भी है। वे कूपमण्डूक की तरह अपने छोटे बौद्धिक दायरे में रहते हैं और समझते हैं "दुनिया इतनी ही छोटी है, जितनी उन्होंने देखी या सुनी है।" फलत: जो कुछ इर्द-गिर्द देखते हैं, उससे आगे की बात न तो सोच पाते हैं, न कोई उपयोगी कदम उठा पाते हैं। संसार में कितनी प्रगति हुई है और उसके लिए कितने उपयोगी कदम उठे हैं ? यह उन्हें विदित ही नहीं होता। इसलिए गई-गुजरी स्थिति में ऊँचे नहीं उठ पाते हैं।

पिछड़ापन गरीबी से नहीं अशिक्षा से आता है। सच पूछा जाय तो अशिक्षा का अभिशाप गरीबी से भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ा है। क्योंकि ज्ञान के नेत्र बन्द रहने से अशिक्षित अपनी दुर्दशा का कारण और निवारण समझ ही नहीं पाता और यह भी जान नहीं पाता कि प्रगतिशील बनने वालों ने क्या उपाय अपनाए और क्या कदम उठाए हैं ? सुदूर क्षेत्रों और अनेक समुदायों की जानकारी प्राप्त करना घूमने से नहीं, पुस्तकें पढ़ने से ही विदित होती है।

जिस प्रकार हम 'गरीबी भगाओ' की बात सुनते हैं, उससे भी अधिक उत्साह के साथ हमें 'अशिक्षा हटाओ' की बात को भी महत्त्वपूर्ण समझना चाहिए और दोनों को हटाने के लिए दोनों ही कदम उठाने चाहिए। दो पहिए की गाड़ी चलती है। दो हाथ से ताली बजती है। एक हाथ वाला लूला एक आँख वाला काना और आधी नाक वाला नकटा कहलाता है। इसी प्रकार गरीब की तरह अशिक्षित भी कुरूप एवं अधूरा माना जाता है। वह अपनी दुर्दशाग्रस्त स्थिति से निकल नहीं पाता। जिस प्रकार तैरने और चलने के लिए दोनों हाथों-पैरों का उपयोग करना पड़ता है, उसी प्रकार दुर्गति से उबरने के लिए हमें गरीबी से ही नहीं, अशिक्षा से भी पीछा छुड़ाना चाहिए।

यह कैसे बन पड़े ? इसके लिए पहला उपाय तो यह है, जो लड़की-लड़के स्कूल में भेजे जा सकते हों, उन्हें वहाँ भेजना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि हमारे बच्चों को नौकरी थोड़ी ही करनी है, जो पढ़ने भेजें। वस्तुतः नौकरी और पढ़ाई का कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षा तो व्यक्तित्व उभारने, प्रतिभा निखारने के लिए प्राप्त की जाती है, जिसकी गरीब, अमीर, नौकर, व्यवसायी, किसान, शिल्पी आदि सभी को आवश्यकता समान रूप से पड़ती है। सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने के लिए नर और नारी दोनों को ही शिक्षा की वैसी ही आवश्यकता है, जैसी कि पेट भरने के लिए अन्न-जल की। शिक्षा के लिए कोई आयु निर्धारित नहीं है। जिस प्रकार साफ-सुथरा रहने के लिए हर आयु में प्रयत्न करना चाहिए, उसी प्रकार शिक्षा का आरम्भ करने, उसे बढ़ाने के लिए तब तक प्रयत्न करना चाहिए, जब तक जीवन है। यह सोचना गलत है कि बचपन या किशोरावस्था में ही पढ़ना चाहिए। आयु बढ़ जाने पर पढ़ाई आरम्भ की जाय, तो भी हर्ज नहीं, शुभ कर्म जब से भी आरम्भ किया जा सके, तभी से अच्छा।

प्रश्न यह है कि अपने देश के उन समर्थ ७० प्रतिशत लोगों को पढ़ाया कैसे जाय ? इसके लिए सरकार पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि वह बच्चों और किशोरों की पढ़ाई का ही पूरा प्रबन्ध नहीं कर पा रही है, तो फिर दो-तिहाई वयस्कों के पढ़ाने के लिए इतने अध्यापक कहाँ से जुटा पाएगी ? फिर दूसरी बात यह भी है कि लोग अपना पेट पालने के धन्धे में लगे रहते हैं। पढ़ने के लिए समय कहाँ से आए ?

उपरोक्त दोनों कठिनाइयों का हल हो सकता है। यदि बड़ी आयु के अशिक्षितों के मन से यह बात निकाल दी जाय, कि पढ़ना छोटी उम्र में ही हो सकता है, बड़ी आयु में पढ़ने में शर्म लगती है। शर्म बुरे काम करते हुए आनी चाहिए। श्रेष्ठ काम जब से आरम्भ किए जा सकें, तभी से अच्छे। यदि बड़ी आयु के लोगों में से यह संकोच निकाला जा सके, तो पुरुषों को रात्रि में और महिलाओं को तीसरे प्रहर इतना ही समय इस अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए मिल सकता है। प्रयत्न करके वह समय पढ़ने के लिए निकाला जा सकता है।

अब अध्यापकों का प्रश्न आता है। इतने अध्यापक नौकरी देकर मिल सकें, यह कठिन है। जिन्हें पढ़ने में रुचि ही नहीं है, वे समय निकाल सकें तो ही बहुत है। वे अध्यापकों को ट्यूशन फीस भी देंगे, ऐसी मनःस्थिति कम से कम वर्तमान समय में तो लोगों की है ही नहीं। अध्यापक ऐसे जुटाने पड़ेंगे, जो पुण्य-परमार्थ की दृष्टि से, अपना धर्म-कर्त्तव्य समझकर इतना करने को तैयार हो सकें।

शास्त्रों में लिखा है कि हर शिक्षित के ऊपर एक विद्या ऋण भी होता है। इस एक में ही देव ऋण, पितृ ऋण भी समा जाते हैं। विद्या कोई अपने आप नहीं पढ़ सकता। वह दूसरों के अनुग्रह से ही पढ़ी जाती है। जिन पूर्वजों ने भाषा का एवं लिपि का, आविष्कार किया, जिन्होंने पुस्तकें लिखीं, जिनने पढ़ाया उन सभी का ऋण मनुष्य पर है और वह तभी चुकता है, जब दूसरों को पुण्य परमार्थ भाव से पढ़ाए। प्राचीनकाल में विद्या का और औषधि का मूल्य लेना निषिद्ध माना जाता था। इन कृत्यों का पुण्य ही इतना बड़ा होता है कि सांसारिक मूल्य लेने की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए।

अपने समाज में नौकरी से रिटायर्ड, गृह कार्यों से निवृत्त अथवा जिन्हें भगवान ने भोजन कमाने का पहले से ही प्रबन्ध कर दिया है, उन तीनों के लिए उच्चकोटि का पुण्य-परमार्थ यही रह जाता है कि वह अपने बचे समय को अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में लगाएँ और इन दिनों जिन पुण्यात्मा अध्यापकों की आवश्यकता पड़ रही है, उसकी पूर्ति करें।

गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले ऐसी प्रौढ़ पाठशाला खुलनी चाहिए, जिनमें रात्रि के समय वयस्क पुरुषों को एक जगह एकत्रित करके उन्हें पढ़ाने का क्रम चलाया जा सके।

जो बच्चे स्कूलों में पढ़ते हैं, उनकी पढ़ाई वहाँ पूरी नहीं हो पाती। उनके पास स्कूल से बचा हुआ जो समय शेष रहता हो, उसमें स्कूली पढ़ाई पूरी करने के अतिरिक्त शिष्टाचार, सभ्यता, नैतिकता, सहकारिता आदि सद्गुणों का प्रशिक्षण विशेष रूप से दिया जाय, क्योंकि इन्हें प्राप्त किए बिना उच्च शिक्षा भी एक तरह से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरर्थक ही रह जाती है। जाड़े के दिनों में सबेरे का और गर्मियों की शाम का समय स्कूली बच्चों के लिए सुविधाजनक रहता है। उस समय में उनके लिए बाल-संस्कारशालाओं का प्रबन्ध गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले में किया जाय।

शिक्षित नारियों में से भी कितनी ही ऐसी होती हैं, जिनके पास बारह से तीन बजे तक का समय खाली रहता है। वे उसे, ऐसे ही आराम, विश्राम, मनोरंजन में लगाने की अपेक्षा मुहल्ले-पड़ौस की स्त्रियों को पढ़ाने में लगाए, तो एक पाठशाला सहज ही चल सकती है। यदि संभव हो, तो इसी के साथ सिलाई भी जोड़ी जा सकती है, क्योंकि इसमें उन्हें एक गृह उद्योग भी सीखने को मिलता है। घरेलू शाक-वाटिका का प्रशिक्षण भी ऐसा है, जिसके सहारे हर नारी बचत के रूप में कमाई कर सकती है। यह विषय जुड़ जाने से नारी शिक्षा को और भी अधिक आकर्षक बनाया जा सकता है।

समग्र प्रगति का सामयिक लोकशिक्षण एक अनिवार्यता

शिक्षा का महत्त्व समझने वाले प्रत्येक विचारशील को यह अनुभव होता है कि इस उपलब्धि के बिना पिछड़ेपन से पीछा छुड़ाना कठिन होगा। इसलिए बालकों के लिए तो स्कूल-कॉलेज खुले ही हैं, साथ ही प्रौढ़ शिक्षा पर भी जोर दिया जा रहा है ताकि वर्तमान पीढ़ी से कर्तव्यपालन की उपयुक्त आशा की जा सके। बच्चे तो एक-दो दशक के बाद ही कुछ प्रभावशाली भूमिका निभाने की स्थिति में होंगे। जबकि समय की माँग इतनी तीव्र है कि अभीष्ट परिवर्तन और परिवर्द्धन में तनिक भी विलम्ब नहीं होना चाहिए। वयस्क नर-नारियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा इसलिये आवश्यक मानी जा रही है और उस पर आवश्यक जोर भी दिया जा रहा है।

इन दिनों पिछड़े वर्गों को विशेष आरक्षण प्रायः हर क्षेत्र में दिया जा रहा है। इस प्रकार महिलाओं को भी तीस प्रतिशत का आरक्षण अनेक विभागों में किया जा रहा है। दायित्वों को समझने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण पाने और योग्यता बढ़ाने की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसीलिए भी तत्काल प्रौढ़ शिक्षा को अति सामयिक माना जा रहा है। मान्यता के साथ कोई मतभेद न होते हुए भी यहाँ एक असमंजस यह होता है कि साक्षरता से आरम्भ करके उपयोगी विषयों की शिक्षा देना और परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उसे उपयुक्त मानने का जो विषय स्कूली शिक्षार्थियों पर लागू होता है, वह निजी क्रियाकलापों में अत्यधिक व्यस्त रहने वाले नर-नारियों पर यथावत लागू नहीं किया जा सकता है। कारण कि एक तो उनमें उत्साह की कमी बहुत रहती है फिर पढ़ने के लिए समय भी नहीं मिलता। किसी प्रकार साक्षरता का अभ्यास करा भी दिया जाय तो तुरन्त ही एक नई आवश्यकता सामने आती है कि समाज की समस्याओं के परिचित होने और उनका समाधान सुझाने वाले साहित्य को कहाँ तो पाया जाय और फिर कैसे पढ़ा जाय ? जो पढ़ा है वह भी उपयुक्त है कि नहीं, गले उतरा या नहीं, इसे कैसे जाँचा जाय ? और इतना सब न बन पड़े तो मात्र साक्षरता भर से वह प्रयोजन कैसे सधेगा ? जिसमें कि पिछड़े वर्गों के कंधों पर आई तात्कालिक जिम्मेदारियों का निर्वाह बन पड़े ? योग्यता इतनी बढ़ जाय कि अनुभव के आधार पर विकास प्रक्रिया में उपयुक्त योगदान देना भली प्रकार बन पड़े।

फिर किया क्या जाय ? जिसके लिए बहुमुखी विकास प्रयोजनों की उपयुक्त भूमिका निभा सकने योग्य बहुसंख्यक पिछड़े स्तर की जनता का मानस समय रहते उतना ऊँचा उठ सके, जितना कि इन्हीं दिनों नितान्त आवश्यक है।

इस हेतु प्रगति उपक्रम से सम्बन्धित विषयों की उपयुक्त जानकारी देने वाली एक ऐसी विधा अपनानी चाहिए, जो हाथों द्वारा अपना चमत्कारी प्रभाव प्रदर्शित कर सके। जिसके लिए स्कूली छात्रों वाली समयसाध्य परिपाटी अपनाने की बात अनिवार्य न रहे। यह प्रयोजन ऐसे अवलम्बन से ही सम्भव हो सकता है, जिसमें साक्षर और निरक्षर दोनों को ही समान रूप से सामयिक दायित्वों का निर्वाह कर सकने जितनी जानकारी तेजी से कराई जा सके। उसके लिए लम्बे समय की प्रतीक्षा न करनी पड़े।

इस दृष्टि से सत्र प्रक्रिया ही उपयुक्त पड़ती है। पाँच-सात दिन का सत्र यदि पूरी एकाग्रता और व्यस्तता के साथ सम्पन्न कराया जा सके, तो उतने से भी किसी सीमा तक काम चल सकता है। मटरगश्ती, आवारागर्दी के लिये प्रशिक्षण सत्रों की लकीर पिटी, तब तो यही कहा जा सकता है कि श्रम निरर्थक गया पर महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह प्रयास चल रहा है और वर्षों में एकत्रित हो सकने वाली योग्यता थोड़े ही दिनों में अर्जित करनी हो, तो निश्चय ही पूरी तरह महत्त्व समझने वाले शिक्षार्थी-शिक्षक लक्ष्य पर पूरा ध्यान एकत्रित कर सकेंगे और जिम्मेदारी के साथ समझाया गया ज्ञान इस प्रयोजनों को पूरा कर सकेगा, जो आपत्ति धर्म के अनुरूप नितान्त आवश्यक है।

अच्छा तो यह है कि विकास के दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों से सभी को अवगत कराया जाय। इसमें शिक्षित-अशिक्षित का भेद न किया जाय क्योंकि इस प्रसंग पर गहराई से किसी भी वर्ग ने गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया है। इसलिए अभी प्रयोजन के सम्बन्ध में सभी को एक प्रकार से ऊँचा स्तर का माना जा सकता है और युगधर्म की रूपरेखा एवं कार्यपद्धति से जन-जन को अवगत कराया जाना आवश्यक है। सभी को नये सिरे से उपरोक्त सत्र योजना के अन्तर्गत एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्धारित पाठ्य-पद्धति का प्रशिक्षण दिया जाय। अच्छा हो सत्र के अन्त में उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की परीक्षा ली जाय ताकि गधे, घोड़े सभी को एक लाठी से हाँके जाने की विडम्बना न बन पड़े।

यदि इतनी बड़ी योजना कम समय में सम्पन्न किए जाने की व्यवस्था न बनती हो, तो इतना तो करना ही चाहिए कि पिछड़े वर्गों को, अशिक्षितों को, महिलाओं को नए समय के, नए उत्तरदायित्व वहन करने हेतु उन्हें समय के साथ चलने की शिक्षा उन माध्यमों से देनी चाहिए, जिसके लिए साक्षरता की, उपयुक्त साहित्य की लम्बी मंजिल पार करनी पड़े। स्कूलों की तरह कक्षाओं में उपस्थित होने, भारी पाठ्यक्रम खरीदने और परीक्षाएँ पास करने की आवश्यकता न पड़े। इसके लिए सप्ताह में एक दिन या दो दिन की ऐसी दो-दो घण्टे की प्रश्नोत्तर शैली पर आवश्यक शिक्षा दी जा सके, जिसमें इनका साप्ताहिक सत्संग भी आ जाता है। शान्तिकुंज के प्रज्ञा मण्डलों में यह साप्ताहिक सत्संग पद्धति नियमित रूप से चलती है और उसमें आत्म-परिष्कार, परिवार-निर्माण, समाज-विकास जैसे सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों पर ऐसा प्रकाश डाला जाता रहा है, जो सामयिक समस्याओं का विवेकपूर्ण पद्धति से समाधान कर सकें। ऐसी प्रक्रिया यदि सर्वत्र चल सके, तो उससे शिक्षित और अशिक्षित, पिछड़े और उन्नत सभी वर्ग युग धर्म की शिक्षा नये सिरे से प्राप्त कर सकेंगे, समय के साथ चल सकने में समर्थ हो सकेंगे।

जहाँ बिजली, बैटरी आदि का प्रबन्ध सम्भव न हो वहाँ वीडियो, टेप रिकार्डर, स्लाइड प्रोजैक्टर यंत्र भी उस आवश्यकता को आंशिक रूप से पूरी कर सकते हैं। यह धनसाध्य कार्य है। इस स्तर का लोकशिक्षण सरकारी सहायता अथवा सम्पन्नसेवी संगठनों द्वारा बन सकता है। दूरदर्शन और रेडियो भी अगर चाहें, तो इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं। बड़े रूप में कुछ न बन पड़े तो छोटा घरेलू स्लाइड प्रोजैक्टर शांतिकुंज ने विनिर्मित किया है और तीन सौ रुपये जितनी छोटी पूँजी से बनवाया जा सकता है। स्लाइडें अभीष्ट विचारों की बनानी पड़ेंगी और उनका विवेचन मौखिक रूप से या टेपरिकार्डर की सहायता से करना होगा।

नाटक, संगीत-समारोह, कविता सम्मेलन, अभिनय, भजनोपदेश, लोकगीत, लोकनृत्य आदि भी इस प्रयोजन के लिए काम आ सकते हैं। कुछ समय पूर्व आँखों के सामने मोटे शीशे को रखकर छोटे चित्र को बड़ा दिखाने वाले उपकरण चलते थे। उनके माध्यम से भी घर-घर जाकर युग चेतना का संदेश सुनाना सम्भव हो सकता है। चलती-फिरती चित्र प्रदर्शनियाँ भी इस प्रयोजन के लिए उपयोगी हो सकती हैं। स्थान-स्थान पर कम या अधिक दिनों के ऐसे सत्र भी लगाए जा सकते हैं, जिनमें कि सुनने वालों की सुविधा के समय का विशेष ध्यान रखा गया हो। तात्कालिक शिक्षण देकर जनसाधारण को समय के साथ चलने के लिए यह सर्वसुलभ तरीका हो सकता है।

इस स्तर के प्रशिक्षण के लिए पूरे समय के अध्यापक नियुक्त नहीं किए जा सकते। स्थानीय लोगों में से ही रिटायर स्तर के लोग समुचित मार्गदर्शन प्राप्त करके सेवा-साधना के रूप में यह प्रशिक्षण कार्य अवैतनिक रूप से भी कर सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि जहाँ अवैतनिक युग शिक्षक न मिलें, वहाँ उन्हें समय के हिसाब से पारिश्रमिक दे दिया जाय, फिर भी यह कार्य पुण्य परमार्थ का, लोकसेवा का, नवनिर्माण का है, इस तथ्य को भुला नहीं दिया जाय अन्यथा वेतन व्यवस्था के आधार पर तो खर्च भी बहुत पड़ेगा और प्रचलन के स्तर की खाना पूरी भर होती रहेगी।

प्रौढ़ शिक्षा से लेकर युगचेतना, सामाजिक प्रगति तक के सभी स्तर के प्रशिक्षण इन दिनों इसलिए कठिन पड़ रहे हैं कि परम्परावादी ढाँचे में ढले हुए लोग किन्हीं नये सिरे से आरम्भ किए गए कार्यों का महत्त्व समझ नहीं पाते। उनके प्रति उपेक्षा दिखाते और उपहास करते हैं। भले ही जो बताया जाता रहा है वह कितने ही महत्व का क्यों न हो, इस कठिनाई से जूझ सकना आधी समस्या का समाधान है। इस हेतु लोकमानस तैयार करने के लिए ऐसे आयोजनों, समारोहों, प्रदर्शनों की आवश्यकता पड़ेगी, जो लोगों का ध्यान अनायास ही अपनी ओर खींच सके। जिनमें लोकशिक्षण और लोकमंगल के दोनों तथ्यों का समान समावेश रह सके। अनेक प्रयोगों के उपरान्त शान्तिकुंज के कार्यकर्त्ताओं ने दीपयज्ञ की शैली को अधिक प्रभावी एवं अधिक लोक-ग्राह्य पाया है। एक तश्तरी में दीपक, अगरबत्ती जलाकर रख लिए जाने तथा संक्षिप्त पूजा कृत्य कर लेने भर से श्रद्धासिक्त वातावरण बन जाता है और जनसमुदाय भी बड़ी संख्या में एकत्रित हो जाता है। खर्च तो इसमें नहीं के बराबर है। बड़ी भाग-दौड़ करने और साधन-सामग्री जुटाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जहाँ यह प्रयोग सफल होता बन पड़े, वहाँ उसे अन्यथा कोई और ऐसा तरीका खोजना चाहिए, जिससे प्रगतिशीलता के लिये संघर्षरत लोगों पर छाई हुई अन्यमनस्कता से जूझा जा सकेगा। वर्तमान समय में लोकव्यवस्था जिन लोगों के हाथ में है, उनमें से अधिक पुरातन पंथी और प्रतिगामी विचारधारा के हैं। जिनका मानस बदलना और रुचि लेने लगने के मूड तक ले आना सुविधाजनक रहेगा। अन्यथा एक ही उपाय रह जाता है कि प्रौढ़ और किशोरों की, छात्र-छात्राओं की मण्डलियों में प्रवेश किया जाय और उन्हें पढ़ाई जारी रखने के साथ-साथ नवनिर्माण की इस प्रभात वेला में अपना उत्साह नियोजित करने के लिये कहा जाय। गाँधीजी ने अपने आन्दोलन में छात्रों का भी आह्वान किया था। जयप्रकाश नारायण ने अपने समग्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रान्ति आन्दोलन में नवयुवकों को ही प्रमुखतापूर्वक आह्वान किया था। संसार भर में अन्यत्र भी छोटी बड़ी क्रान्तियों में छात्रों के उभरते उत्साह की भूमिका असाधारण रही है।

अपने समय में अन्त्योदय का, सर्वोदय का उभार, गाँधीजी के स्वप्नों को साकार करने का उपयुक्त अवसर है। स्वतन्त्रता प्राप्ति की उपलब्धि का वटवृक्ष अब इस स्थिति में पहुँचा है कि उसे फूल-फलों से, पत्रों से लदा हुआ सुविस्तृत छायादार वृक्ष के रूप में देखा जा सके। उसकी छत्र-छाया में बैठकर युगधर्म के निर्वाह का समग्र परिवर्तन प्रस्तुत करने वाला अनुष्ठान सम्पन्न किया जा सके। इसके लिए अधिकार सम्पन्न पुरानी पीढ़ी आवश्यक सहयोग न दे तो फिर एक ही उपाय है कि नवोदित उमंगों को जहाँ भी पाया जाय, वहीं से बटोरा जाय और साथ लेकर चला जाय।

दायित्वों को ओढ़ लेने की बात उतनी कठिन नहीं है, जितनी कि उनका वहन करना, निबाहना। निकृष्ट स्वार्थ साधना और पतनोन्मुख प्रवाह में तो अनगढ़ लोग भी तनिक-सा अवसर पाते ही बहने लगते हैं। यहाँ तक कि उनकी रोकथाम करना भी कठिन पड़ता है। नशेबाजी का बढ़ता प्रचलन इसका एक छोटा-सा उदाहरण है। कठिनाई तब पड़ती है, जब ऊँचे उठने, आगे बढ़ने की चुनौती स्वीकारी और पूरी कर दिखाई जाय। इन दिनों ऐसा ही असाधारण समय है, जिसमें जहाँ अनेक प्रगतिशील कदम उठाए जाने हैं, वहाँ छाए हुए कुहरे को निरस्त कर सकने वाला प्रकाश एवं ऊर्जा भरा वातावरण भी उत्पन्न करना है। गंगा स्वर्ग से धरती पर आने के लिए सहमत हो गई थीं, पर कठिनाई इस चट्टान की थी, जिस पर वह उतनी ऊँचाई से गिर सकें, उसका दबाव सहन कर सके। इसके लिए और कोई आगे आता दिखाई नहीं दिया, तो शिवजी ने अपनी जटाओं को बिखेरकर वह सुयोग बनाया, जिससे गंगावतरण सम्भव हो सका। आज भी यही होना चाहिए। शिवजी की जटाओं की तरह स्वल्प महत्त्व के दीखने वाले प्रगतिशील समुदाय को आगे आना चाहिए। लोकमानस को नवजागरण से अनुप्राणित करके वह माहौल बनाना चाहिए, जिसमें अगले दिनों सम्भावित उज्ज्वल भविष्य की संरचना सरल और सम्भव हो सके।

कठिनाइयों की पाठशाला में साहस का प्रशिक्षण

शरीर और मन को अनुकूलताएँ रुचिकर लगती हैं उन्हें जुटाने के लिए मनुष्य एक समूचा पुरुषार्थ लगा रहता है। जीवनयापन के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाई जायँ, यह उचित है पर यह नहीं भूलना चाहिए कि चाहते हुए भी यह जरूरी नहीं कि सदा अभीष्ट प्रकार की परिस्थितियाँ बनी रहेंगी। कठिनाइयाँ प्रतिकूलताएँ भी जीवनपथ पर प्रस्तुत होती हैं तथा मनुष्य के धैर्य एवं जीवट की परीक्षा लेती हैं। अनभ्यस्त शरीर और मन को ऐसे अवसरों पर अधिक परेशानी होती है। उपस्थित कठिनाइयों एवं संकटों को वे व्यक्ति अभिशाप मानते हैं जिन्होंने सतत् अनुकूलताओं में ही रहना सीखा है।

प्राय:देखा यह जाता है कि संकटों के अवसर पर अनभ्यस्त अपना मन ही अधिक समस्या खड़ा करता है। आरम्भ से ही उसे हर तरह की परिस्थितियों में रहने के लिए प्रशिक्षित और अभ्यस्त किया गया होता, तो उपस्थित होने वाली कठिनाइयाँ भी खेल-खिलबाड़ जैसी महसूस होती। पुरुषार्थ एवं जीवट को निखारने का उन्हें भी माध्यम माना जाता है तथा उतना ही उपयोगी उन्हें भी समझा जाता है जितना कि अनुकूल परिस्थितियों को।

पर बिरले होते हैं जो अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों में एक जैसे निस्पृह बने रहते हैं और अपने मन को दोनों ही में सन्तुलित बनाए रखते हैं। अन्यथा अधिकांश की प्रसन्नता-अप्रसन्नता परिस्थितियों पर अवलम्बित होती है। वे अभीष्ट तरह की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध रहने पर मोद मनाते तथा उनके तिरोहित होते ही शोकातुर हो उठते हैं। थोड़े से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं। जो कठिनाइयों तथा संघर्षों को स्वयं आमंत्रित करते हैं। सुविधाओं तथा ढर्रे का जीवन उन्हें नहीं रुचता। कठिनाइयों, संकटों से जूझे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ता। वे जानते हैं कि उनका सामना किए बिना आन्तरिक जीवट को उभरने और सुदृढ़ बनने का अवसर नहीं मिल सकता। ऐसे ही व्यक्ति शूरवीर, साहसी मनस्वी बनते हैं। स्वयं धन्य होते और दूसरों को प्रेरणा-प्रकाश देते हैं।

प्राचीनकाल की ऋषि परम्परा के शिक्षण में ऐसी व्यवस्था रहती थी कि बालक की मनोभूमि को सबल, काया से समर्थ और सुदृढ़ बनाने के लिए वे सारे प्रयोग किये जाएँ, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हों। गुरुकुलों में ऐसा ही शिक्षण चलता था। तप और तितिक्षा का कठोर अभ्यास शिक्षार्थी से कराया जाता था ताकि भावी जीवन में आने वाले किसी संकट-चुनौती का सामना करने में वह समर्थ हो सके। गुरुकुलों में प्रवेश लेने तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रों को अनुकूलताओं में नहीं, प्रतिकूलताओं में जीना सिखाया जाता था। उस शिक्षण प्रक्रिया का परिणाम यह होता था कि विद्यालय से निकलने वाला छात्र हर दृष्टि से समर्थ और समक्ष होता था। जीवन में आने वाले अवरोध उन्हें विचलित नहीं कर पाते थे।

परिस्थितियाँ बदलीं और साथ में यह शिक्षण-पद्धति भी। मनुष्य के चिन्तन में भारी हेर-फेर आया। यह मान्यता बनती चली गई कि अनुकूलताओं में ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव है। फलत: आरम्भ से ही बालकों को अभिभावक हर प्रकार की सुविधाएँ देने का प्रयास करते हैं। उन्हें तप-तितिक्षामय जीवन का अभ्यास नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराया जाता। यही कारण है कि जब कभी भी प्रतिकूलताएँ प्रस्तुत होती हैं, ऐसे बालक उनका सामना करने में असमर्थ सिद्ध होते हैं।

कुछ विद्यालय आज भी ऐसे हैं जो जीवट को प्रखर बनाने का व्यावहरिक प्रशिक्षण देते हैं। उदाहरणार्थ जगल एण्ड स्नो सरवाइल स्कूल एण्डियन एयर फोर्स की ओर से भेजे गए वायुयान चालकों को ऐसी ट्रेनिंग दी जाती है, जिससे वे हर तरह के संकटों का सामना करने में सक्षम हो सकें। हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार शिक्षण की प्रणाली अत्यन्त रोमांचक होती है। सामान्यतया विमान चालकों को हर तरह के क्षेत्र से होकर उड़ान भरनी होती है। हिमालय की ऊँचाई पर स्थिति सघन वनों अथवा हिमाच्छदित प्रदेशों अथवा मरुस्थलों से होकर भी चालकों को होकर गुजरना पड़ता है। यदि इन दुर्गम प्रदेशों में कोई दुर्घटना घटती है, तो किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। इसका शिक्षण एवं अभ्यास चालकों से कराया जाता है। इन स्थानों पर बिना किसी बाह्य सहायता के उसे किस तरह प्रतिकूलताओं से जूझते हुए बाहर निकलना चाहिए इसका प्रशिक्षण दिया जाता है ?

पैराशूट द्वारा रंगरूट को हिमाच्छादित प्रदेश में अज्ञात शिखर पर छोड़ दिया जाता है। साथ में भोजन पानी तथा अन्य आवश्यक साधन अत्यल्प मात्रा में उसके साथ होते हैं। सर्दी, वर्षा, तूफान, हिमपात तथा वन्य प्राणियों जैसे संकटों का उसे सामना करना पड़ता है अल्प साधनों के सहारे उसे प्रस्तुत होने वाले हर संकट से जूझना पड़ता है। प्रमुख समस्या सामने आती है प्रकृति-विपदाओं से अपनी सुरक्षा किस प्रकार की जाय ? आहार की व्यवस्था कैसे जुटाई जाय तथा अपनी रक्षा हिंसक जीवों से कैसे की जाय ? थोड़ी भी असतर्कता उसे मृत्यु के मुँह में धकेल सकती है। अस्तु, उसे पूरी जागरूकता का परिचय देना पड़ता है।

प्रशिक्षण में कितने ही प्रकार के अभ्यास कराए जाते हैं। अल्प आहार में अधिक से अधिक दिन तक कैसे जीवित रहा जा सकता है ? यह कष्टसाध्य अभ्यास हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में करना पड़ता है। जल के अभाव में कुछ दिनों तक जीवित रहने की क्षमता के विकास के लिए चालक को भीषण तापक्रम वाले रेगिस्तानी इलाकों में छोड़ दिया जाता है। थोड़ी-सी पानी की मात्रा उसके साथ होती है। उसके सहारे उसे अधिक से अधिक दिनों तक मरुप्रदेशों में गुजारा करना पड़ता है। पैदल ही उसे तपते हुए सैकड़ों मील की दूरी तय करके सेना के पड़ाव तक पहुँचना पड़ता है।

बीहड़ जंगलों में उसे प्रशिक्षण काल में छोड़ दिया जाता है, यह परखने के लिए कि अविज्ञात क्षेत्रों से वह अपनी रक्षा करते हुए किस प्रकार निकल सकता है ? थोड़े से खाद्यान्न और पानी के सहारे वह बीहड़ों में कई दिनों तक भटकता हुआ सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए मार्ग ढूँढ़ता है। उसे कितनी बार शेर, बाघ तथा जंगली हाथी जैसे हिंसक जीवों का सामना करना पड़ता है। वनों की बीहड़ता से निकलने के लिए उसे अपने मनोबल एवं साहस का पूरा-पूरा परिचय देना पड़ता है। हिमाच्छदित प्रदेश में रहने का अभ्यास और भी अधिक कष्टसाध्य है। शून्य डिग्री से भी नीचे तापक्रम में शरीर को रहने के लिए अभ्यस्त करना एक कठोर परीक्षा की अवधि होती है। शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को निखारने एवं समर्थ बनाने वाली शिक्षण की इन प्रक्रियाओं से होकर गुजारने के बाद शिक्षार्थी को उत्तीर्ण घोषित किया जाता है। इस अवधि में उसकी मनोभूमि इतनी दृढ़ बन जाती है कि हर प्रकार के संकट-चुनौतियों का सामना वह कर सके।

यह उदाहरण यहाँ इसलिए देना पड़ा ताकि हर व्यक्ति कठिनाइयों का भी महत्त्व समझ सकें तथा उन्हें सामर्थ्य को विकसित करने का एक माध्यम माने न कि अभिशाप। स्वेच्छापूर्वक आरम्भ से ही शरीर और मन को प्रतिकूलताओं में रहने का अभ्यस्त बनाया जा सके तो मनुष्य को उसके जीवन में अप्रत्याशित रूप में प्रस्तुत होने वाले संकट विचलित नहीं कर सकते और वह प्रत्येक का सामना हँसते हुए कर सकता है।

अधूरी शिक्षा से ही सन्तोष न कर लीजिए

आजकल बौद्धिक ज्ञान को शिक्षा कहते हैं। मास्टरी, डॉक्टरी, इन्जीनियरी, कला-कौशल आदि की योग्यताएँ शिक्षा कहलाती हैं। इनके द्वारा धन, मान तथा सुख सामग्री की प्राप्ति होती है। क्या शिक्षा का प्रयोजन यही है ? नहीं, केवल इतने मात्र से काम नहीं चल सकता। शरीर को आनन्द मिला पर आत्मा अशान्त रही तो वह वैभव फीका है, निस्सार है। सभी आनन्द वह है जिसमें सांसारिक और आत्मिक जीवन का उभयपक्षीय उन्नति एवं तृप्ति प्राप्त हो। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पूर्णरूपेण सुखी बनाना है।

हम संसार की अनेक बातें जानते हैं, पर अपनी आत्मसत्ता के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है। दुनियादारी स्वार्थ में हम भले ही चौकस हों, पर आत्मिक स्वार्थों के क्षेत्र में पग-पग पर बाजी-हारते हैं। थोड़ी-सी भोग-सामग्री हमारे पास भले ही जमा हो जाय पर आत्मिक सम्पत्तियों से प्राय: हम रीते ही रहते हैं। यह समझ किस काम की ? इस शिक्षा से, इस चतुराई से क्या लाभ, जिसके द्वारा एकांगी, तुच्छ को प्राप्त करना तो सुलभ हो जाय पर वास्तविक लाभ की पहचान और उपलब्धि में कुछ भी प्रयोजन सिद्ध न हो। शिक्षा तो वह है—जिससे बुद्धि का उचित परिमार्जन हो और जीवन के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर पहलू पर ठीक तरह विचार कर सकने की क्षमता प्राप्त हो जाय।

कहते हैं कि इंसान को इशारा काफी होता है। जो संकेत मात्र से साधारण विचार बुद्धि से अपना हित अनहित समझ लें। कुमार्ग पर चलने से अपरिमित हानि होती है और लाभ अत्यन्त तुच्छ और क्षणिक। जिसे कौड़ी के मोल हीरा बेचते हुए झिझक नहीं होती, उसे शिक्षित किस प्रकार कहा जाय ? शिक्षित कहना तो दूर उसे तो इंसान तक नहीं कह सकते, क्योंकि "इंसान को इशारा काफी होता है।" जब कोई अनुचित कार्य किया जाता है, तो आत्मा इशारा करती है, अन्तःकरण, पुकारता है कि यह न करो यह अनुचित है। यह बड़ा जोरदार इशारा है, जो इशारा नहीं समझता और केवल लोभ तथा भय को ही समझता है वह तो पशु है। उसे तो नर पशु ही कहा जा सकता है।

सांसारिक जानकारी की बहुत-सी बातें स्कूलों में सिखाई जाती हैं, वे उचित हैं और आवश्यक भी, पर इतने मात्र से ही सन्तुष्ट हो बैठना पर्याप्त न होगा। हमें शिक्षा का वही भाग भी प्राप्त करना चाहिए, जिससे सत् असत् का विवेक होता है और सच्चे स्वार्थ साधन के लिए उत्साह पैदा हाता है। ऐसी शिक्षा के लिए स्वाध्याय, सत्संग, संयम, सदाचार तथा सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय लेना होता है। ऐसी शिक्षा अपने प्रकाश से अन्तरात्मा के अन्धकार को दूर करके आत्मिक और सांसारिक जीवन को सुखी बना सकती है।

नवनिर्माण के लिए समग्र शिक्षा नितान्त आवश्यक

मनुष्य का व्यक्तित्व ढालने और समाज की दिशा निर्धारण करने में सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम शिक्षा है। निरक्षर व्यक्ति के ज्ञानचक्षु एक प्रकार से बन्द ही रहते हैं। जितनी सीमा तक उसे देखने-सुनने का अवसर मिलता है, उतनी ही उसकी ज्ञान वृद्धि परिधि सीमित रहती है। जीवन और विश्व अब इतना जटिल हो गया है कि उसकी गुत्थियों को सुलझाने के लिए बहुत जानने और समझने की आवश्यकता रहती है। यह प्रयोजन शिक्षा के बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए व्यक्तित्व, मस्तिष्क और दृष्टिकोण परिष्कृत करने के लिए शिक्षा की महती आवश्यकता सदा बनी रहेगी। परिस्थितियों की जटिलता जितनी बढ़ी है। उसी क्रम से शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

अपना देश दुर्भाग्यवश शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़ा है। अभी लगभग ३० प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हो पाए हैं। निरक्षर तीन गुने से भी अधिक हैं। बौद्धिक दृष्टि से समर्थ हुए बिना न अपने आप में सफल, समर्थ कहा जा सकता है और न राष्ट्र का गौरव बढ़ा सकने योग्य क्षमता सँजो पाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए प्रबल प्रयत्न जाने चाहिए और क्यूबा जैसे उन प्रगतिशील देशों का अनुकरण करना चाहिए, जिन्होंने अपने यहाँ निरक्षरता के साथ युद्ध स्तर पर लड़ाई लड़ी और पाँच वर्ष के भीतर उसे मारकर भगा दिया। यह सब दूरदर्शी सरकार और प्रखर लोकमत के संयुक्त प्रयत्नों से ही सम्भव हो सकता है।

अपनी सरकार इन दिनों जिस जाल-जंजाल में फँस गई है उसके लिए उसी उलझन को सुलझाना कठिन पड़ रहा है। कोई बड़ी सूझ-बूझ प्रदर्शित करने या साहसिक कदम उठाने की उससे आशा करना व्यर्थ है। वह बनी रहे, चलती रहे, इतना भी बहुत है। हमें बड़े कदम जन-स्तर पर उठाने पड़ेंगे अन्यथा समय तेजी से निकलता जाएगा और प्रगति की दौड़ में हम पिछड़ते चले जाएँगे। निरक्षरता, निवारण के लिए हम में से प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को 'ज्ञानऋण' चुकाने के लिए कुछ न कुछ करने की कसम खानी चाहिए और जितना कुछ बन पड़े अधिक से अधिक बड़ा अनुदान लेकर भारत माता के चरणों में उपस्थित होना चाहिए।

बच्चे स्कूलों में पढ़ते हैं। यह स्कूल भी इतने अपर्याप्त हैं कि उनमें सभी विद्याध्ययन के अभिलाषी बालकों के लिए जगह नहीं। देहातों में मीलों तक स्कूल नहीं होते। छोटे बच्चे दूर चलकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने कैसे पहुँचें ? हाई-स्कूल, कॉलेजों का बुरा हाल है। तीसरी श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र जो आधे से अधिक होते हैं। कोई विद्यालय में भरती करने को तैयार नहीं होता। उसे अपना परीक्षाफल बढ़िया जाने और पुरस्कार प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है। बच्चों के भविष्य की नहीं। ऐसी दिशा में किसी कारणवश जिसका डिवीजन बिगड़ गया, उस सुयोग्य बालक को भी मन-मसोस कर अपने पढ़ने से वंचित रहना पड़ता है। जो पढ़ जाते हैं वे नौकरी कर सकने भर की योग्यता प्राप्त करके निकलते हैं। आजीविका के लिए नौकरी ढूँढ़ते हैं, सो मिलती नहीं। बेकार शिक्षितों की संख्या आकाश छूने लगी है और जोशीले नये खून की वह बेरोजगारी बेचैन समाज में भयंकर विकृतियाँ लेकर उग्र हो रही हैं। इसके दुष्परिणाम हम आए दिनों आँखों के आगे देखते हैं।

सरकार सूझ-बूझ के साथ शिक्षा प्रणाली की दिशा निर्धारित करती तो कितना अच्छा होता ? जापान की शिक्षा में शिल्प, उद्योग और कला-कौशल अविछिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। वहाँ के छात्र या तो अपना कुटीर उद्योग चलाते हैं या पड़ौस की फैक्टरी में सम्मानपूर्ण आजीविका प्राप्त करते हैं। उन्हें नौकरी के लिए जूती चटकाने दरवाजे-दरवाजे पर ठोकरें खाते नहीं फिरना पड़ता है। यूगोस्लेविया में कृषि, नार्वे में पशुपालन जैसे उद्योगों को प्रधानता देकर अपने नवयुवकों के लिए आजीविका का पथ प्रशस्त किया है। अपने देश में भी कुछ ऐसा ही हो सकता था, हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्रों के निर्माण, लोकमानस का निर्धारण शिक्षा के माध्यम से होता है। जर्मनी ने दो बड़े युद्ध आरम्भ किए। यहाँ की जनता को उस प्रकार की उग्र-आक्रामक बनाने का श्रेय यहाँ की शिक्षा को है। विलियम कैसर ने शिक्षा में ऐसे तत्त्व मिलाए थे कि वहाँ का लोकमानस विश्व विजय का स्वप्न देखने लगा। यह भावना इतनी प्रबल हुई कि प्रथम विश्व युद्ध उन्हीं लोगों ने आरम्भ कर दिया। दूसरा महायुद्ध भी जर्मनों ने ही शुरू किया हिटलर ने सारे शिक्षा तन्त्र को इस प्रकार सँजोया कि लोग प्रथम युद्ध की पराजय को भूलकर सौ गुने उत्साह से दूसरे युद्ध की तैयारी करने लगे। दोनों महायुद्ध ऐतिहासिक महायुद्ध हैं। लगभग सारा विश्व यदि जर्मनी के प्रतिरोध में खड़ा न हुआ होता, तो उसकी विश्व विजय वाली अभिलाषा न जाने कितनी आगे बढ़ गई होती और न जाने कितनी सफल हो गई होती ? परिस्थितियों का पाशा पलटा और जर्मनी दूसरी बार भी हारा यह दूसरी बात है। यहाँ प्रसंग शिक्षा के प्रभाव का चल रहा था। शिक्षा में यदि प्राण घुला हुआ हो तो उसके माध्यम से विनाशों से लेकर विकास तक का असुरता से लेकर देवत्व तक का—सृजन किया जा सकता है। मनुष्य की शक्ति अनन्त है और उसे उभारना तथा दिशा देने का काम शिक्षा के माध्यम से ही तो सम्पन्न होता है। यही कारण है कि हम सदा के शिक्षक की—गुरु की महिमा अति श्रद्धापूर्वक स्मरण करते आ रहे हैं।

जर्मनी का तो एक उदाहरण मात्र दिया गया है। बारीकी से देखा जाय तो संसार के सभी प्रगतिशील देशों ने छोटी स्थिति से बढ़कर ऊपर उठने तक के प्रत्येक कदम की सफलता शिक्षा प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन करके ही सम्पन्न की है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जापान, रूस, चीन आदि में जो चमत्कार एक शताब्दी के भीतर हुए, उनकी सम्पन्नता का श्रेय वहाँ की शिक्षा-पद्धति निर्धारणकर्त्ताओं को ही दिया जा सकता है। काश हमारे देश में भी ऐसी ही सूझ-बूझ रही होती तो विगत सैंतालीस वर्षों में अपने-अपने साधनों के कारण उससे कहीं आगे होते, जहाँ तक कि हमसे भी ३ वर्ष बाद साम्यवादी शासन हाथ में लेकर आज चीन निवासी पहुँच गए हैं।

हमें हर काम के लिए सरकार का मुँह नहीं ताकते रहना चाहिए। बहुत-से कार्य ऐसे हैं, जो जन स्तर पर बड़ी सफलता से किए जा सकते हैं। धर्म को ही लीजिए। मन्दिरों, तीर्थों और धार्मिक कर्मकाण्डों में जनता का हर वर्ष ३०० अरब रुपया लगता है और लगभग १ करोड़ व्यक्तियों का श्रम उसमें नियोजित है। ५६ लाख सन्त, महात्मा जनगणना के आधार पर गिने गए हैं। आधा-चौथाई या एक दो घण्टे उस प्रयोजन में लगे रहने वाले के समय का लेखा-जोखा लिया जाय तो वह भी मिलाकर इतना ही बैठेगा और यह स्पष्ट दिखाई देगा कि १ करोड़ व्यक्तियों का समय उसमें निरन्तर लगता रहता है। इन धर्म-संस्थानों में जो स्थायी सम्पत्ति लगी है उसका मूल्य कूता जाय तो सरकारी इमारतों से कम नहीं अधिक ही बैठेगा। यह सब जनस्तर पर—बिना सरकार की एक पाई सहायता के सम्भव होता है। जनता जिसे पसन्द करती है, उसके लिए विपुल धन, जन साधनों का जुटाया जा सकना कुछ भी कठिन नहीं है।

शिक्षा की समस्या को हम जनस्तर पर लें। जनता को उसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता उसी प्रकार समझावें, जैसी कि धार्मिकता की समझाई गई है तो कोई कारण नहीं कि इस पुण्य-प्रयोजन के लिए जन सहयोग न मिल सके। यह हो सकता है और होना चाहिए। जन स्तर पर बड़े-बड़े काम हो सकते हैं। वह आत्मबोध, आत्मविश्वास पनप सके, इस दृष्टि से भी निरक्षरता-निवारण जैसे आन्दोलनों को चलाया और सफल बनाया जाना चाहिए।

युग-निर्माण योजना ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में शिक्षा प्रसार को प्रथम स्थान दिया है। सोचा यह गया है कि दो-तिहाई से अधिक अशिक्षितों की संख्या उनकी है जो प्रौढ़ हैं—काम से लगे हैं—व्यस्त हैं। स्कूलों में तो बच्चे पढ़ रहे हैं। इन वयस्कों के पढ़ने का कोई प्रबन्ध नहीं। इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अगले कुछ वर्ष मनुष्य जाति के भाग्य का फैसला करने वाले निर्णायक वर्ष हैं। इनमें प्रधान भूमिका उन्हीं की होगी जो इन दिनों प्रौढ़ हैं। स्कूलों में जो बच्चे इन दिनों पढ़ रहे हैं। जब तक वयस्क होकर अपने हाथ में उत्तरदायित्व सँभालेंगे तब तक दुनिया इधर से उधर हो चुकी होगी। नई पीढ़ी सुयोग्य बनकर जब काम सँभालेगी, तब तक के लिए इन्तजार करने की अब कतई गुंजायश नहीं। महत्वपूर्ण निर्णय तो उन्हें करने होंगे जो आज वयस्क हैं और इन्हीं दिनों महत्वपूर्ण भूमिकाएँ प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकते हैं। ''इतने बड़े हो गए, अब तक न पढ़े तो आगे क्या पढ़ सकेंगे ?'' यह निरर्थक संकोच छोड़कर हमें आज से ही सारे राष्ट्र को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने में लग पड़ना चाहिए। बौद्धिक क्षमता भावनात्मक उत्कृष्टता बढ़ने से ही व्यक्ति समर्थ बनेगा और समर्थ व्यक्तियों का सुगठित राष्ट्र को शक्तिशाली एवं प्रगतिशील कहला सकने का अधिकारी बन पावेगा।

हमें गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले गाँव-गाँव प्रौढ़ पाठशालाओं की अति व्यापक शृंखला बखेर देनी चाहिए। पुरुषों के लिए रात्रि पाठशालाएँ और महिलाओं के लिए तीसरे पहर की अपराह्न शालाएँ ठीक रह सकती हैं। इनमें प्रधानता वयस्क नर-नारियों की हो। बालक भी आना चाहें तो वे भी आवें। यों जनस्तर पर पाँच वर्ष से कम आयु के शिशु संस्कार मन्दिरों की भी आवश्यकता है पर उन्हें अधिक सुयोग्य व्यक्ति ही चला सकते हैं। जहाँ जैसा प्रबन्ध हो सके वहाँ वैसा किया जाय, अन्यथा पुरुषों की रात्रि पाठशालाओं और महिलाओं की अपराह्न शालाओं का तो क्रम चल ही पड़ना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापन के लिए रिटायर्ड लोग आगे आवें तो उनकी ढलती आयु सार्थक हो जाय। अपने धर्म में, ढलती आयु जनता की सम्पत्ति मानी गई है और उसे लोकसेवा में नियोजित कर, वानप्रस्थ स्तर का जीवनयापन करने के लिए जोर दिया गया है, यह लुप्तप्राय धर्म परम्परा पुनः जीवित और जाग्रत करने की आवश्यकता है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों से छुटकारा प्राप्त सेवा निवृत्त जिनके पास गुजारे के लिए आजीविका के साधन मौजूद हैं—ऐसे लोग इस प्रकार के विद्या दान में अपना पूरा समय दे सकते हैं। यही उनके अवशेष जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। अन्य सेवा-भावी व्यक्ति भी रोजी-रोटी कमाने में आठ घण्टे का समय देने के उपरान्त शेष समय का कुछ भाग इस पुण्य-प्रयोजन में लगा सकते हैं। आमतौर से दिन में ही नौकरी, दुकान, कृषि आदि करनी पड़ती है। रात्रि का समय प्रायः सभी के पास खाली रहता है। इस समय को रात्रि पाठशाला के लिए कोई भी भावनाशील देशभक्त व्यक्ति बड़ी आसानी से लगा सकता है। शिक्षित कुमारियाँ, विधवाएँ, अध्यापिकाएँ तथा खाते-पीते घरों की वे महिलाएँ, जिन्हें घरेलू काम कम रहते हैं, तीसरे प्रहर की महिला पाठशालाएँ चला सकती हैं। देशभक्ति और लोकमंगल की भावनाएँ तनिक भी उभार लेने लगें तो बड़ी आसानी से लाखों सुशिक्षितों की सेवा सेना इस निरक्षरता विरोधी संघर्ष में अगणित मोर्चे सँभाल सकती है। युग निर्माण की इस पुण्य घड़ी में शिक्षित वर्ग ने भी यदि अपना कुछ कर्तव्य न समझा और इतने सामान्य से काम के लिए थोड़ा-सा समय दान देने से भी इन्कार कर दिया, तो समझना चाहिए हमारा दुर्भाग्य जो हजार वर्ष से पीछे पड़ा हुआ था, उसका अन्त अभी नहीं हुआ। क्षुद्रता, संकीर्णता और स्वार्थपरता के पाप पंक में आकंठ व्यक्ति जो लोकमंगल के लिए तनिक भी त्याग न कर सके एक प्रकार से मनुष्यता को कलंकित ही करता है और वह समाज को विविध विधि पीड़ा प्रताड़ना में ही धकेलता है। पिछले दिनों हमारे व्यक्तित्व इसी ओछे स्तर के बने रहे, फलस्वरूप राजनैतिक परतन्त्रता, उत्पीड़न, फूट विग्रह, अभाव, दारिद्रय शोषण एवं पद-दलन की विभीषिकाएँ सहते रहे। अब वह स्तर बदला जाना चाहिए। शिक्षितों में लोकमंगल के लिए सक्रिय उत्साह उत्पन्न होना चाहिए। उस उत्साह का सर्वोत्तम प्रकार जनजागरण के लिए शिक्षा प्रसार में ही प्रयुक्त हो सकता है।

निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए किसी विशेष पाठ्यक्रम या पाठ्य-पुस्तकों की जरूरत नहीं है। इस स्तर की पुस्तकें हर जगह मिलती हैं। पट्टी, खड़िया, स्लेट, पेन्सिल, कापी, कलम, स्याही जैसे उपकरण सर्वत्र मिल जाते हैं। अक्षर ज्ञान, गिनती, पहाड़े, किन्हीं भी प्रारम्भिक पुस्तकों से आरम्भ कराए जा सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए गीता प्रेस गोरखपुर ने आरम्भिक साक्षरता की ३-४ बालपोथी बहुत अच्छी छापी हैं। इसके कुछ आगे बढ़ने पर आर्य समाज विचारों की धर्म शिक्षा नामक प्रश्नोत्तर पुस्तक कई भागों में बिकती है। आरम्भिक पुस्तकों की कमी नहीं। जहाँ जो उपलब्ध हो सके उनके आधार पर निरक्षरों को इतना ज्ञान कराया जाना चाहिए कि वे पढ़ने-लिखने में भली-भाँति समर्थ हो सकें और हिसाब, भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र एवं सामान्य ज्ञान की साधारण जानकारी प्राप्त कर सकें। यह शिक्षण छह महीने का पर्याप्त हो सकता है। प्रौढ़ आयु के लोग छह महीने में इतना पढ़-लिख सकते हैं कि उन्हें निरक्षरों की पंक्ति से हटाकर साक्षरों की श्रेणी में बिठाया जा सके। अपनी प्रत्येक शाखा में इस प्रकार साक्षरता प्रसार के प्रयत्न आरम्भ किए जाने चाहिए और अपने घर-परिवार, पास-पड़ौस तथा परिचय क्षेत्र में कोई निरक्षर न रहने देने की मुहीम सँभालने में जुट जाना चाहिए। इस प्रयत्न से हम अगले तीन चार वर्ष में ही आज की समस्त प्रौढ़ जनता को साक्षर बनाने में सफल और समर्थ हो सकते हैं।

जो काम सरकार करोड़ों-अरबों रुपया खर्च करके नहीं कर सकती, उसे हम लोकसेवा में विश्वास करने वाले व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा समय दान देकर देखते-देखते सम्पन्न कर सकते हैं और अपना निरक्षर देश जादू की तरह शिक्षा के आलोक से आलोकित हो सकता है।

साक्षरता प्रसार के अतिरिक्त शिक्षा का मूल प्रयोजन, आदर्श और उद्देश्य पूरा करने की बात आती है। मात्र साक्षरता ही पर्याप्त नहीं। हमें यह भी करना ही चाहिए कि अशिक्षितों से लेकर शिक्षितों तक को व्यक्ति, परिवार और समाज के सम्मुख प्रस्तुत वर्तमान समस्याओं की जानकारी कराएँ और उनके समाधान प्रस्तुत करें। पिछली हजार वर्ष की राजनैतिक गुलामी ने हमें इतने अधिक बौद्धिक अभिशाप दिए हैं कि एक प्रकार से अपना विचार तन्त्र लगभग उलटा और विकृत हो ही चला है। अज्ञानान्धकार में भटकते हुए हमने स्वच्छ विचार पद्धति को लगभग गँवा ही दिया है। सोचने का अपना जो आज का ढंग है, वह ऐसा अनुपयुक्त है कि यदि उसे ज्यों का त्यों बनाए रखा गया तो उज्ज्वल भविष्य की किरण कभी भी प्रकट न हो सकेंगी। इस तथ्य को भुलाया नहीं जाना चाहिए कि व्यक्ति और समाज का उत्थान-पतन पूर्णतया उसकी चित्त प्रणाली पर निर्भर रहता है। आस्थाएँ, मान्यताएँ, अभिरुचियाँ एवं विचारणाएँ ही अपने स्तर के अनुरूप भली या बुरी परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं और उन्हीं के जाल-जंजाल में उलझते, सुलझते हम दुःखी-सुखी दिखाई पड़ते हैं। अपकर्ष से उत्कर्ष की ओर चलना हो तो सबसे प्रथम कार्य यही करना पड़ता है कि अपनी चिन्तन पद्धति में जहाँ भी विकृतियाँ आ गई हों, उन्हें समझें और सुधारें। इस परिवर्तन के बिना पतन को उत्थान में परिणित कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना ज्ञान-यज्ञ अभियान इसी प्रयोजन के लिए है। विचार क्रान्ति आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा प्रसार आन्दोलनों के लिए इस पुण्य-प्रक्रिया को अविच्छिन्न रूप से जोड़ रखना चाहिए। प्रौढ़ पाठशालाओं में साक्षरता के अतिरिक्त सारी शक्ति इसी केन्द्र बिन्दु पर नियोजित की जानी चाहिए। कहना न होगा कि अपना साहित्य प्रकाशन कार्यक्रम इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर आरम्भ किया गया है। अब तक प्राय: तीन हजार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें आज की लगभग सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है और समाधान प्रस्तुत किए गए हैं। उन्हें एक प्रकार से विचार क्रान्ति की राष्ट्रीय नवनिर्माण की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित योजना कहा जा सकता है। यों उन्हें सर्वसाधारण में इन्हें वितरण करने-पढ़ाने और वापस लेने के कार्यक्रम पर जोर दिया जाता है। पर अपनी शिक्षा योजना में इन्हें पाठ्यक्रम के रूप में भी प्रयुक्त किया जाना चाहिए। यदि ठीक तरह से इन्हें पढ़ा, पढ़ाया, सुनाया और समझाया जा सके तो भारतीय नवनिर्माण के वे सारे पथ प्रशस्त हो सकते हैं, जिनकी आज अनिवार्य रूप से नितान्त आवश्यकता है।

सार्वजनिक लोकशिक्षा की मुहीम सँभालनी ही होगी

अपने देश की दो बड़ी विभीषिकाएँ हैं। एक गरीबी दूसरी अशिक्षा। इन दोनों की शाखा-प्रशाखाएँ इतनी फूटी हैं जिनका कोई ठिकाना नहीं। इनके नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं। उन सबकी अलग-अलग गणना करना उनके स्वरूप कारण और निवारण खोजना व्यर्थ है। रक्त दूषित हो जाने पर फुंसी, फोड़े, चकत्ते आदि अनेक विग्रह दीख पड़ते हैं। उन सबका अलग-अलग उपचार खोजना और उपचार करने में शक्ति का अपव्यय करना व्यर्थ है। रक्त शोधन के एक ही उपाय से सब विग्रह निपटते हैं। सड़ी नाली में से अनेकानेक आकृति के कृमि-कीटक उपजते हैं। उन सबको गिनना और मारना व्यर्थ है। नाली की आद्योपान्त सफाई ही उस गन्दगी और कृमि उपज का उपाय है। गरीबी, बेकारी, अस्वस्थ्यता, अपराध आदि उत्पन्न होते हैं। अशिक्षा के कारण मनुष्य को चिन्तन का सही तरीका की नहीं मिलता। फलत: वह शिक्षा की भूल-भुलैयों में भटकता और जो चाहे सो अनीति बरतता है। अशिक्षित को अन्धा कहा गया है। इतना ही नहीं उसे कँटीली झाड़ियों वाले भूल-भुलैयों में भटकने वाला भी कह सकते हैं। उचित-अनुचित का सही निर्णय करते उससे बन ही नहीं पड़ता। इसलिए अपना और पराया अहित ही करता है। ऐसे नर-पशुओं की संख्या बढ़ते जाने से किसी देश का पिछड़ापन ही बढ़ता है। फलत: संकटों और विग्रहों में बढ़ोत्तरी ही होती जाती है। अभ्युदय तो बेचारे अपना और पराया कर ही कैसे सकेंगे ?

शिक्षा का मतलब इतना ही नहीं है कि आदमी चिट्ठी पत्री, हिसाब-किताब पढ़-लिख लें और मौज आ तो रामायण, हनुमान चालीसा का पाठ कर ले। शिक्षा का तात्पर्य है व्यक्ति और समाज के सामने बढ़ती जाने वाली असंख्य समस्याओं का कारण और निवारण समझने लायक मस्तिष्क विकसित करना। इसके लिए समय के अनुरूप बढ़ती हुई समस्याओं के कारण, स्वरूप एवं प्रामाणिक समाधान समझाना जरूरी है। अब यह कार्य परस्पर वार्तालाप से नहीं हो सकता, इसके लिए विज्ञ मनीषियों द्वारा प्रस्तुत किया गया साहित्य पढ़ना, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा समय की गति को समझना जरूरी है। यह कार्य पुस्तकालयों के माध्यम से ही हो सकता है। अपने देशवासियों की आर्थिक स्थिति और अभिरुचि ऐसी नहीं है कि समग्र शिक्षा की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली पुस्तकें खरीदकर पढ़ सकना सम्भव हो सके। इसके लिए पुस्तकालयों को लगभग उतनी ही बड़ी व्यवस्था करनी पड़ेगी, जितनी कि सरकार ने स्कूलों की कर रखी है। समान शिक्षा तन्त्र में अब स्कूलों से कम नहीं वरन् अधिक महत्व पुस्तकालयों को देना होगा। अन्यथा साक्षर होने पर भी हमें सामयिक समस्याओं और उनके उपयुक्त समाधानों को समझाना सम्भव न होगा।

पुस्तकालय तन्त्र को खड़ा करने के लिए लोक-सेवी सहकारी संस्थाओं का गठन करना पड़ेगा। उन्हीं से यह आशा की जा सकेगी कि ७० प्रतिशत निरक्षर नर-नारियों को साक्षर तो बनाया जा सके। जो साक्षर तक नहीं हो पाया, वह पुस्तकालयों में सद्ज्ञान, साहित्य से लाभ किस प्रकार उठा सकेगा ?

जिस प्रकार बेकारी गरीबी दूर करने के लिए औद्योगिक सहकारी संगठनों की आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार अशिक्षा के दैत्य की भयानकता समझते हुए मिल-जुलकर उसका प्रतिरोध करना पड़ेगा। इसके लिए लोकसेवी सार्वजनिक संस्थाएँ गठित करने, उनके लिए आवश्यक साधन जुटाने और उत्साहपूर्वक चलाने की आवश्यकता है।

यों अपने देश में संस्था संगठनों की कमी नहीं है। पर उनमें से अधिकांश बेतुकी और मनमौजी हैं। कथा-कीर्तन वाले धार्मिक संगठन गली-मुहल्ले में देखे जा सकते हैं। आए दिन मन्दिर और धर्मशालाएँ भी बनती रहती हैं। उदारमना प्याऊ और सदावर्त लगवाते, दवाखाने खुलवाते देखे जाते हैं। तीर्थयात्रा और प्रीतिभोजों में भी वैयक्तिक एवं सामूहिक पैसा तथा समय खर्च होता रहता है। पर लोग यह भूल जाते हैं कि प्राथमिकता किसे दी जाए ? जड़ को सींचने का उपक्रम कैसे अपनाया जाएँ?

जितनी गम्भीरता से विचार किया जाएगा उतने ही निश्चयपूर्वक दो निष्कर्षों पर पहुँचना पड़ेगा कि पेट और अक्ल दो ही चीजें मनुष्य जीवन में प्रमुख हैं। इन्हें छोड़कर इधर-उधर की बेतुकी-बेसिलसिले की बात करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से समय, श्रम और धन का अपव्यय मात्र होता है। हमें सहकारी आन्दोलन के अन्तर्गत ही शिक्षा प्रसार के कार्य को हाथ में लेना चाहिए और उसे नितान्त उपयोगी पुनीततम पुण्य-परमार्थ मानना चाहिए। सरकारी सहयोग से सहकारी संगठन बनते हैं क्योंकि उसमें अनुभव तथा पूँजी की जितनी आवश्यकता है, वह सरकारी स्रोतों से ही उपलब्ध होते हैं। वह पैसा ब्याज समेत लौटाना भी पड़ता है। इसलिए उसका पहिए लुढ़कते रहने में कुछ बड़ी कठिनाई भी नहीं है। किन्तु पारमार्थिक संस्थाओं में जो पैसा लग जाता है, उसके लौटने का कोई आधार नहीं है। किसी के मन में पुण्य-परमार्थ की बात आये और साथ ही विचारशीलता का भी समावेश होता हो तो शिक्षा प्रसार की बात ही सुझाई जानी चाहिए। इसका प्रथम चरण प्रौढ़ नर-नारियों को साक्षर बनाना और दूसरा चरण साक्षरों की जीवन कला के हर पथ पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक को पढ़ाने और वापस लेने का क्रम चलाना है। पुस्तकालय-योजना के बिना अक्षर ज्ञान वाली साक्षरता मनोरंजन मात्र है। शिक्षा का उद्देश्य समय के साथ उत्पन्न हुई समस्याओं का स्वरूप और समाधान बताना है। इस आवश्यकता की पूर्ति और विचारशील साहित्य वाले पुस्तकालय के अतिरिक्त और किसी प्रकार नहीं हो सकती।

विद्या ऋण चुकाने के लिए उन शिक्षितों से थोड़ा समय निश्चित रूप से इन शिक्षा संस्थानों को चलाने के लिए देते रहने का आग्रह करना चाहिए, जिनमें विचारशीलता के बीजांकुर हैं। उनसे अपनी कमाई का एक अंश इस सर्वश्रेष्ठ परमार्थ के लिए देते रहने का अनुरोध करना चाहिए।

संस्था संगठित करने के लिए उसका उद्देश्य, कार्यक्रम, विधान, जनसाधारण को समझाना पड़ता है। कार्य संचालन के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। आरम्भिक साधन-सामग्री जुटाने के लिए मूलधन के रूप में राशि, उसके उपरान्त मासिक खर्च के लिए सदस्यों द्वारा दिया जाने वाला अनुदान तथा संस्था संगठन का आरम्भिक स्वरूप यही या इससे मिलता-जुलता होता है। इसके सेवाक्रम में लाभ उठाने वालों को निश्चित समय पर एकत्रित होते रहने का अपना कार्य उत्साहपूर्वक जारी रखना पड़ता है।

जिस शिक्षण के लिए यह संगठन स्थापित किए जाएँ, उनमें साक्षरता प्रचार या पुस्तकों का पठन-पाठन ही नहीं समझना चाहिए, वस्तुतः यह जीवन विधा के सर्वांगीण प्रशिक्षण के आरम्भिक एवं दृश्यमान चरण है। असली उद्देश्य है ? जीवन का सर्वतोमुखी विकास एवं संव्याप्त अवांछनीयताओं की हानियों को समझते हुए उनसे जूझने के लिए जनमानस को उभारना। समाज में इन दिनों कितनी ही बुराइयों की भरमार है ? कुरीतियाँ और दुष्प्रवृत्तियों ने जनमानस में अपनी गहरी जड़ें जमा ली हैं। इसलिए न वे अखरती हैं, न उनके दुष्परिणाम सूझते हैं जिस मार्ग पर बहुत जन चलते हैं, उसी को अपनाने के लिए सर्वसाधारण का मन होता है। यह दयनीय स्थिति है जिसमें मनुष्य दुष्प्रवृत्तियों को स्वाभाविक मानने लगे और उससे हटने-हटाने का षड्यन्त्र न करें। कहना न होगा कि कि देश को भूतकाल में कितने ही संकटों एवं लांछनों को वहन करना पड़ा है और अभी भी वे प्रकारान्तर से अपनी अनुपयुक्तता का परिचय देते हुए संत्रस्त कर रहे हैं। जाति-पाँति की ऊँच-नीच, पर्दा-प्रथा, भिक्षा-व्यवसाय, दहेज, शादियों में अपव्यय, मृतक भोज जैसी अनेकों प्रथाये चल रही हैं। जिनके कारण हमें पिछड़े एवं उपहासास्पद बनना पड़ता है। श्रम का तिरस्कार, फैशन, शृंगार, विलासी रहन-सहन यह ऐसे दुर्गुण हैं, जो प्रगतिशीलता के मार्ग में चट्टान बनकर खड़े रहते हैं। सज्जनता और शालीनता से भरा-पूरा व्यक्तित्व विवेकवान समाज और अनीति हर पक्ष से लड़ने का साहस जैसी सद्प्रवृत्तियों को जगाने में अन्यान्य उपायों के साथ सावर्जनिक लोकशिक्षा की अगली मुहीम सँभालनी चाहिए। जिनके भी मन में पुण्य परमार्थ का, जनकल्याण का भाव हो उन्हें इन सत्प्रवृत्तियों को उभारने के लिए उपरोक्त संस्था संगठन की सहकारिता विकसित करने के लिए कहा जा सकता है। सेवाभाव अनेकों के मन में उपजता है। पुण्य-परमार्थ अनेकों व्यक्ति करना चाहते हैं पर मार्ग सही विदित न होने से वे अपनी क्षमता को निरर्थक प्रयोजनों में नष्ट करते हैं और सस्ती वाहवाही लूटने में लगे रहते हैं।

इस सन्दर्भ में ईसाई मिशन का कार्य देखने, समझने और सराहना करने योग्य है। उनकी स्थापनाएँ धर्मप्रचार के लिए होती हैं। पर प्रत्यक्ष कार्यक्रम के रूप में वे हर जगह छोटे-बड़े विद्यालय चलाते हैं। पढ़ाने के साथ किसी भी विषय का समावेश सरलतापूर्वक किया जा सकता है। वे ऐसा करते भी हैं। किसी अनभ्यस्त बात को गले उतारने के लिए शिक्षा की, साहित्य की अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है। अन्यथा व्यक्ति अपने अभ्यास और लोगों द्वारा अपनाए गए प्रवचन को ही सब कुछ समझता है। उसे ही पकड़े हठपूर्वक जमा रहता है। व्यवहार बदलने के लिए विचार बदलना आवश्यक है।

संस्थाएँ अनेकों तरह की बनती और चलती हैं। लोग अपनी मर्जी के अनुसार कुछ भी बनाने-बिगाड़ने में स्वतन्त्र हैं किन्तु आज की स्थिति में सर्वतोमुखी सुधार परिवर्तन करने के लिए यह उपाय अपनाना चाहिए कि व्यक्ति और समाज को परिष्कृत करने वाला साहित्य अधिकाधिक व्यक्तियों को पढ़ने-सुनने के लिए मिलता रहे। इसका प्रथम चरण साक्षरता प्रसार कहा जा चुका है। ३० प्रतिशत बच्चे स्कूलों में किताब गणित पढ़-सीख आते हैं। इसमें किसी को क्या सन्तोष हो सकता है ? समर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज तो वयस्कों का होता है। ७० प्रतिशत नर-नारी अपने देश में बिना पढ़े हैं। उन्हें साक्षर बनाने की मुहीम हमें परमार्थ क्षेत्र से पूरी करनी होगी। जिस प्रकार निर्वाह साधन कमाना, परिवार का दायित्व सँभालना मनुष्य का कर्तव्य है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य समाज को शिक्षित एवं विचारशील बनाने के लिए पारमार्थिक प्रयत्न करना भी आत्मा की भूख को पूरा करना है। आन्तरिक उल्लास से विकास में भी इससे बढ़कर और कोई उपचार नहीं हो सकता।

समय की आवश्यकता को देखते हुए गरीबी, बेकारी मिटाने के लिए सहकारी समितियों की स्थापना करना और उनके द्वारा गृह उद्योगों का माहौल बनाना एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य है। ठीक इसी प्रकार लोकमानस को ऊँचा उठाने वाली दूसरी सामूहिक सेवा है शिक्षा प्रसार की। इसके लिए प्रौढ़ शिक्षा तथा पुस्तकालय प्रक्रिया को गतिशील बनाने के लिए हम में से प्रत्येक को कुछ न कुछ प्रयत्न करना ही चाहिए।

विकास में साधनों का नहीं शिक्षा का महत्त्व है

मानवी विकास में साधनों के योगदान की बात मोटी बुद्धि भी जानती है। अमीर लोग मौज उड़ाते, बुद्धिमान समझे जाते और वाहवाही लूटते हैं। शरीर भी अपेक्षाकृत स्वस्थ, सुन्दर रहता है। सफलता और सुविधा पाने पर मन का प्रसन्न रहना और उत्साह के वातावरण में अधिक सूझ-बूझ का परिचय देना भी एक हद तक सही है। लोकप्रचलन में भी यही मान्यता जड़ पकड़ती जा रही है कि उसके पास अधिक साधन होंगे वह अधिक समुन्नत होता चला जाएगा। इस प्रतिपादन का जोर-शोर से समर्थन साम्यवाद ने किया। उसने प्रगति का प्रमुख माध्यम अर्थ को माना और सम्पन्नों के हाथ की सम्पदा का सर्वसाधारण में वितरण करने और सभी को समृद्ध बनाने की बात पर पूरा जोर दिया। वे लोग वितरण तक ही अपने प्रयोग अग्रगामी बना सके, सम्पन्नता उनके हाथ नहीं लगी। अमेरिका ने एक कदम आगे बढ़कर वह रास्ता अपना लिया, जिससे उस देश के नागरिक धनवान एवं सुविधा-सम्पन्न कहला सके। इतने पर भी मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ है कि व्यक्तित्व की दृष्टि से मनुष्य अर्थ साधनों के सहारे सुविकसित हो सकता है या नहीं—इस कसौटी पर रूस-चीन जैसे साम्यवादी और अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश के नागरिकों की व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए किसी उत्साहवर्द्धक निष्कर्ष पर पहुँचते नहीं बनता। व्यक्तिगत रूप से मध्य-पूर्व के तेल देशों पर आधिपत्य जमाए, शहंशाहों की दौलत कुबेर के खजाने जितनी हो चली, फिर भी उनके व्यक्तिगत वातावरण और क्रियाकृत्यों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि साधन सम्पन्न लोग सुविकसित स्तर के ही होते हैं। संसार भर में भरे पड़े असंख्य साधन सम्पन्नों को इस कसौटी पर कसने से यह विश्वास नहीं होता कि लोकमान्यता के अनुसार यदि अमीरी बढ़ा दी जाय तो उसके उपभोक्ता उस स्तर के बन सकेंगे, जिसे उत्कृष्टता सम्पन्न या समुन्नत व्यक्तित्व से सुसज्जित कहा जा सके।

साधनों के बाद स्वास्थ्य का नम्बर आता है। बलिष्ठता की महिमा से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। काया सुखी रहती और सुन्दर लगती है। बिना थके अधिक श्रम करना और अधिक कमाना बन पड़ता है। मित्रों की हिम्मत बढ़ती है और शत्रुओं पर आतंक छाता है। सामान्य-जन बलिष्ठों के सामने अनायास ही झेंपते और उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। लड़ाई-झगड़ों में तो उन्हीं को श्रेय मिलता है। पुलिस-फौज जैसे महकमों में भर्ती करते समय बलिष्ठता को प्रमुखता मिलती है। खेलों और दंगलों में जीतने वाले इसी स्तर के लोग होते हैं। मध्यकाल के सामन्त युग में इसी स्तर के लोगों का बोलवाला था। वे गिरोह बनाकर अपना राज्य बनाते और आक्रमण-आतंक के सहारे राजा-महाराजा बन बैठते थे। युद्धों की हार-जीत भी इन बलिष्ठ योद्धाओं के बाहुबल पर ही निर्भर रहती थी।

इन दिनों सामर्थ्य का केन्द्र-बिन्दु बाहुबल से हटकर यन्त्र-उपकरणों और अस्त्र-शस्त्रों पर केन्द्रित हो गया है। अतएव अब बलिष्ठों का प्राचीनकाल जितना महत्त्व नहीं रहा। वे जहाँ-तहाँ आतंक उत्पन्न करते भर देखे जाते हैं। रचनात्मक कार्यों में उनकी भूमिका नहीं के बराबर है। जहाँ तक उत्कृष्ट व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, वहाँ तक सुदृढ़ और सुन्दरों को पंक्तिबद्ध करके गम्भीर पर्यवेक्षण करने वाले किसी उत्साहवर्द्धक नतीजे पर नहीं पहुँचते। उन्हें जो ईश्वरीय देन मिली है या प्रयत्नपूर्वक उन्होंने जो सुदृढ़ता उपार्जित की है, उस पर प्रसन्नता एवं शुभकामना व्यक्त करते हुए भी यह आशा नहीं बँधती कि इस स्तर की प्रगति होती चले तो भविष्य में महामानवों की आवश्यकता पूरी हो सकेगी।

इससे आगे शिक्षा का क्षेत्र आता है। सुझाव यह है कि स्कूली पढ़ाई में ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाय, जिसमें मानवी सद्गुणों की महत्ता समझाई जाय और उसे ऐसी गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, जिनके सहारे मनुष्य समर्थ, सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली बन सके। तर्क की दृष्टि से यह सुझाव सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है कोई बात समझ में आने पर ही मनुष्य कुछ करने के लिए अग्रसर होता है। चिन्तन और प्रयास जिस स्तर के होते हैं, उसी की छाप अन्तराग पर पड़ती है और उसी दिशा धारा में चलते रहने का अभ्यास संस्कार बन जाता है। यह संस्कार ही व्यक्तित्व है, इसलिए शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को सुविकसित बनाने की बात समझ में आती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह प्रयोग प्राचीनकाल में गुरुकुलों के माध्यम से चलता रहा है और सफल भी हुआ है। पर यह सफलता मिली तभी है, जब शिक्षा की जानकारी प्रधान नहीं जीवन का स्वरूप, उपयोग उसकी गरिमा के अनुरूप क्रिया-पद्धति का अभ्यास कराने की उसमें प्रधानता रखी गई थी। सांसारिक जानकारियाँ सर्वसाधारण को एक सीमित दायरे की ही चाहिए। विश्व व्यवस्था का सामान्य परिचय होना ही पर्याप्त है। उन दिनों जिन्हें जिस विषय में विशेषता प्राप्त करनी होती थी, वे उस विषय को अतिरिक्त रूप से पढ़ते थे। सामान्यतया विद्या को विशुद्ध रूप से जीवन विद्या अथवा ब्रह्मविद्या के नाम से ही जाना जाता था। पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों का माहात्म्य, अभ्यास एवं प्रतिफल बताने वाले प्रसंग प्रस्तुत किए जाते थे। साथ ही छात्रों की दिनचर्या एवं कार्यपद्धति तदनुरूप बनाई जाती थी। सहकर्मियों की गतिविधियाँ भी तदनुरूप रहती थीं। समूचा वातावरण ऐसा रहता था, जिसमें एक की गतिविधियों से दूसरे को उपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने एवं अनुकरण करने का अवसर मिले। संचित कुसंस्कार उभरने पर उनके शमन-समाधान के लिए क्या किया जाय—इसकी अनुशासन-व्यवस्था भी ऐसी रहती थी, जिसमें अवांछनीयता के पनपने की गुंजायश न रहे। चेतावनी, पश्चाताप, प्रायश्चित, प्रताड़नापरक अनुशासनों की प्रखरता रहने से उस वातावरण में अवांछनीयताएँ एक तो सहज उभरती ही न थीं। कहीं उछलीं तो उसका निराकरण भी विवेक, संयम और अनुशासन से भरे-पूरे वातावरण में सरलतापूर्वक होता रहता था।

यह प्रयोग इन दिनों जहाँ भी चल रहे हैं, वहाँ व्यवस्था के अनुरूप सफल हो रहे हैं। गुरुकुलों का प्राचीनकाल जैसा उपक्रम जहाँ भी चला है, वहाँ उसकी उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सफल सिद्ध हुई है।

इसके अतिरिक्त व्यक्ति को बदलने और ढालने के लिए शिक्षण और दबाव की दुहरी कार्य पद्धति अपनाकर ब्रेनवाशिंग का प्रयोग अधिनायकवादी देशों में चला है—वहाँ कैदियों का शिक्षण और दबाव भरे ऐसे वातावरण में रखा जाता है, जिसके कारण पुराने चिन्तन एवं अभ्यास को छोड़ने तथा नये ढाँचे में ढालने की विवशता सामने आ खड़ी हो और दूसरा कोई मार्ग ही शेष न रह जाय। इन कैदियों को आरम्भ में तो यह प्रतिकूलता कष्टकर होती है, पर पीछे उन्हें विवशता को स्वाभाविकता अनुभव करने और तदनुरूप गतिविधियाँ अपनाने की आदत पड़ जाती है। सरकस में काम करने वाले जानवरों की आदतें बदलने जैसा ही यह प्रयोग है। बकरे को देखते ही उस पर झपटने वाला सिंह तब सरकस में बकरे को अपनी पीठ पर बिठाते समय कोई हुज्जत नहीं करता। आग को देखते ही भागने वाले हिंस्र पशु आग के घेरे में घुसते-निकलते हैं, तो प्रतीत होता है कि उनकी आदतों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया।

साम्यवादी प्रचलन के आरम्भिक दौर में विरोधी लोगों को बदलने के लिए ऐसे ब्रेनवाशिंग के प्रयोग हुए हैं। जिन्होंने उस नये ढाँचे में ढलने से इन्कार किया है—वे मौत के घाट उतारे गए हैं। अभी भी अपराधियों एवं युद्ध कैदियों को बदलने के लिए उस क्षेत्र में ऐसे ही प्रयोग चलने के समाचार मिलते रहते हैं।

लोकशिक्षण की ऐसी ही कुछ विशेष प्रयोग पद्धतियाँ अपनाकर हिटलर के जमाने में जर्मन जनता को भी एक खास ढाँचे में ढाला गया और उन्हें विशिष्ट बिरादरी के लोग होने का अनुभव कराया गया था। नीत्से का अतिमानव हिटलर की चाण्डाल चौकड़ी पर छाया था और उस उन्माद में प्रायः समूचा जर्मन समाजग्रस्त हुआ था।

ब्रेनवाशिंग का तरीका नैतिक दृष्टि से बौद्धिक बलात्कार है, उसमें मनुष्य को मिट्टी का ढेला मानकर मनमर्जी ढालने का प्रयत्न किया जाता है और यह भुला दिया जाता है कि उसके भी कुछ मौलिक अधिकार हैं और उसे भी अपनी अन्तरात्मा के अनुरूप सोचने तथा करने की सुविधा रहनी चाहिए।

यहाँ उस प्रयोग की चर्चा इसलिए की गई है कि उसे भी एक विशेष शिक्षण-पद्धति में सम्मिलित किया गया है। वस्तुतः ब्रेनवाशिंग का सौम्य, शालीन और सदुद्देश्य पूर्ण तरीका वह है, जिसमें प्रशिक्षण, अभ्यास एवं वातावरण की अनुकूलताएँ जुटाकर मनुष्य को कुसंस्कारिता त्यागकर सुसंस्कारिता अपनाने की सुविधा उत्पन्न की जाती है। बच्चों के लिए गुरुकुल और बड़ों के लिए आरण्यक इसी प्रयोजन के लिए चलते थे और अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतया सफल रहते थे। उस पद्धति को यदि पुनर्जीवित किया जा सके तो निश्चय ही शिक्षा के माध्यम से उच्चस्तरीय व्यक्तित्व ढालने का उद्देश्य उत्साहवर्द्धक मात्रा में सफल हो सकता है। उसमें ब्रेनवाशिंग जैसा बलात्कार भी नहीं है और स्वेच्छापूर्वक अन्तःप्रेरणा के सहारे आत्म-परिष्कार का उपक्रम भी चल पड़ता है।

यदि ऐसा परिवर्तन अभीष्ट हो तो वर्तमान शिक्षा पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा, उसमें से अनावश्यक और अप्रासंगिक जानकारियों का जंजाल हल्का करना होगा। सामान्य शिक्षा में सामान्य ज्ञान उतना ही रहे जितना संसार की सर्वोपयोगी जानकारियों के लिए नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तकों में जीवन के अन्तरंग एवं बहिरंग पक्षों को सुविकसित बनाते हुए अति मानव स्तर तक पहुँचने की प्रभावी रूपरेखा का उसमें सघन समावेश किया जाय। इतना ही नहीं उस प्रक्रिया को हृदयंगम कराने वाला, अभ्यास में उतारने वाला उपक्रम भी चलता रहे और वातावरण भी मिलता रहे तभी शिक्षा को व्यक्तित्व के विकास में सहायक बनाया जा सकेगा। इन तथ्यों का आज की शिक्षण-पद्धति में समावेश

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न रहने से उसकी परिणिति नाजुक बाबुओं की अथवा बेकारों की बिरादरी बढ़ाने में ही होती रहेगी। काम की प्रतिभाएँ तो उस क्षेत्र में थोड़ी ही उपलब्ध हो सकेंगी।

समग्र शिक्षा में मात्र पाठ्यक्रम ही सब कुछ नहीं है। वातावरण एवं उपक्रम का महत्त्व उससे कहीं अधिक है। इसलिए विद्यालयों से भी अधिक महत्व छात्रावासों का है। दोनों ही संयुक्त व्यवस्था रहनी चाहिए। अन्यथा घर परिवारों का विकृत वातावरण पाठ्यक्रम में समाविष्ट शालीनता पर भी बुहारी लगाता रहेगा। व्यक्ति अनुकरण प्रिय है, उस पर संगति का, वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रयोजन में परिवारों की स्थिति व्यवस्था पर नये सिरे से विचार करना होगा। अन्यथा स्कूली शिक्षा मात्र मस्तिष्कीय विकासभर का प्रयोजन पूरा करेगी, उस से व्यक्तित्वों के निर्माण में कोई कारगर सहायता न मिल सकेगी।

शिक्षा के आधार पर व्यक्तित्वों के विकास का प्रयोजन पूरा हो सकता है, पर उसे अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति कर सकने के उपयुक्त बनाने के लिए उतना ही परिवर्तन आवश्यक है, जितना कि पिछड़े मनुष्य को महामानव बनाने वाले सरंजाम जुटाने के सम्बन्ध में सोचा जा सकता है। इसके लिए पाठ्यक्रमों का कायाकल्प करने एवं प्रभावोत्पादक वातावरण में जकड़ने की व्यवस्था बनानी पड़ेगी। स्कूलों पर यह काम नहीं छोड़ा जा सकता। साहित्य, कला, संगीत, अभिनय, प्रदर्शन जैसे लोकशिक्षण से सम्बन्धित सभी माध्यमों का प्रवाह इस दिशा में मोड़ना पड़ेगा, जिससे लोकचिन्तन को, प्रथा प्रचलन को, निर्वाहक्रम की उत्कृष्टता के साथ जोड़ने में प्रस्तुत अवरोधों का अन्त होता चला जाय। ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्वों के विकास की जो बात सोची गई थी, उसके सफल सार्थक होने का समय आ गया। इस माध्यम को इतना प्रखर होना चाहिए कि उससे ब्रेनवाशिंग का मूल उद्देश्य पूरा हो सके। यहाँ एक बात भली-भाँति समझनी होगी कि उस प्रयोजन के लिए स्कूली पढ़ाई को ही पर्याप्त नहीं माना जाएगा वरन् लेखनी और वाणी के समूचे क्षेत्र को इस प्रकार नियोजित करना होगा कि उसमें से विषाक्त तत्त्वों को हटाया जा सके। सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, अखबार, पुस्तकों, तस्वीरों आदि का सुविस्तृत क्षेत्र प्रकारान्तर से लोकशिक्षण का ही काम करता और उसका संयुक्त वजन, स्कूली पढ़ाई की तुलना में अत्यधिक भारी बैठता है। अस्तु-लोकशिक्षण की बात सोचते समय समस्त विचारोत्तेजक माध्यमों को साथ लेकर चलना होगा।

ऊँचे महल कम और मजबूत झोंपड़े अधिक बनें

मौलिक प्रश्न दो हैं। एक यह कि थोड़े स्थानों पर भव्यता खड़ी की जाय या बिखरे हुए सभी स्थानों का पोषण किया जाय। इनमें से एक पाश्चात्य पद्धति है, जिसके अनुसार कुछ चुने हुए स्थानों को चकाचौंध उत्पन्न जैसी शानशौकत का बना दिया जाय ताकि अपनी प्रगति की दर्शन झाँकी कराकर साथियों की दृष्टि में अपनी उन्नति या बुद्धिमत्ता का ढिंढोरा पिट सके। दूसरी नीति यह है कि देश की उन जड़ों को सींचा जाय जहाँ जमीन से पोषण प्राप्त करके पेड़ को चिरस्थायी और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। एक केन्द्रीयकरण की नीति है, दूसरी विकेन्द्रीकरण की। दूसरी नीति गाँधीवादी है जिसे 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' भी कहा जा सकता है। सर्वोदयी नीति भी।

दृष्टिकोण का यह अन्तर शिक्षा क्षेत्र में भी अपनाया जाना चाहिए। समझा जाना चाहिए कि भारत देहात प्रधान है, उसकी प्राय: ७० प्रतिशत आबादी देहातों में रहती है और प्राय: उतना ही अनुपात अशिक्षितों का भी है। असली भारत यही है। हमें उसकी प्रारम्भिक आवश्यकताएँ पूरी करनी चाहिए। जिस प्रकार पेयजल, बिजली और सड़क गाँव तक पहुँचाने का ध्यान रखा जाता है वैसी ही प्लानिंग हमें शिक्षा के सम्बन्ध में करना चाहिए। विश्वविद्यालय, कॉलेज, उच्चस्तरीय शिक्षा के लिए उतना ही प्रबन्ध करना चाहिए जितनी कि देश को आवश्यकता है, जिन्हें भावी प्रगति को देखते हुए काम दिया जा सकता है, इससे सुशिक्षितों की बेकारी के कारण असन्तोष की स्थिति भी न आवेगी और जो देहात पिछड़ेपन के गर्त में पड़े हुए हैं उन्हें भी ऊँचे उठने का अवसर मिल जाएगा। इस प्रकार जिस समाजवाद की, समतावाद की दुहाई सम्बन्धी शिक्षा नीति में साक्षरता प्रसार पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाय और बजट में अन्यत्र से कटौती के उस मद में अधिक से अधिक साधन जुटाए जाएँ। वे साधन सस्ते हों तो भी हर्ज नहीं है।

शिक्षा में एक विशेष कमी इन दिनों रह रही है वह यह है कि उसके साथ उन जानकारियों को जोड़कर नहीं रखा गया है, जिन्हें जीवन विज्ञान कहा जाना चाहिए। यह साइन्स पढ़ाने से भी अधिक आवश्यक है। व्यक्ति किस प्रकार नीरोग रहे, स्वच्छता का वातावरण किस प्रकार बनाएँ। संयुक्त परिवार में जो विग्रह चलते हैं। उसका समाधान, शादियों तथा दूसरी कुरीतियों में धन का अपव्यय किस प्रकार रुके, नारियों को पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोगिनी कैसे बनाया जाय ? जाति-पाँति जन्य ऊँच-नीच से कैसे पीछा छूटे ? भिक्षुकों को काम में कैसे लगाया जाय ? वोट सम्बन्धी उत्तरदायित्व समझने के लिए दृष्टिकोण विकसित कैसे किया जाय ? अन्धविश्वासों और प्रगतिशीलता के परम्परावाद से आगे कैसे बढ़ा जाय ? उपार्जन क्षेत्र में स्वावलम्बी कैसे बना जाय ? आदि अनेकों बातें हैं, जिन्हें समझाने का उतना प्रखर-प्रयास नहीं किया गया जितना कि उन्हें प्रभावित या सहमत करने के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक था। जनसंख्या वृद्धि रोकने और बाल-विवाह से हाथ रोकने तक की समझदारी अभी गाँव में नहीं आई है। इन बातों को भी शिक्षा का अंग माना जाय और पाठ्य-पुस्तकों में उनका समावेश किया जाय यदि इसकी गुंजायश न हो तो विद्यालय स्तर का एक सार्वजनीन आन्दोलन पुस्तकालयों का भी चलाया जाय। व्यक्तित्व का परिष्कार और समाज का नवनिर्माण विषय भी शिक्षा के साथ जुड़ने चाहिए। इन दोनों के बीच सघन तारतम्य होना चाहिये। इस नव निर्माण के आरम्भिक साहित्य को पढ़ाने या सुनाने की बात हमारे ध्यान में पूरी तरह बनी रहनी चाहिए। अन्यथा समूचा देहाती समाज चिन्तन की दृष्टि से पिछड़ा ही बना रहेगा और उसका चरित्र व्यवहार जनजातियों जैसा ही बना रहेगा।

सर्वतोमुखी प्रगति के लिए शिक्षा का अवलम्बन लेने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं, उसका विस्तार ही नहीं, स्तर भी ऊँचा उठना चाहिए। देश बड़ा होने के कारण उसके बालकों और वयस्कों दोनों को ही सही चिन्तन और विवेकपूर्ण योजनाएँ अपनाने के लिए तैयार करना होगा। यह दायित्व भी शिक्षा को अपने ऊपर लेना चाहिए। उसका क्षेत्र और स्तर ऊँचा उठाने की अभी भारी गुंजायश है। इस दिशा में ढील या भूल करना राष्ट्र के उत्थान में एक भारी व्यवधान ही बना रहेगा।

ऊँची शिक्षा के लिए पारंगत लोग किस प्रकार तैयार किये जाएँ ? इस सम्बन्ध में आवश्यकता से अधिक काम हुआ है। इसलिए उस विषय में इन पंक्तियों में कुछ अधिक नहीं लिखा जा रहा है। नितान्त आवश्यक यह है कि शिक्षा का इतना विस्तार किया जाय जिससे देहातों में रहने वाले ही नहीं शहरों के भी बड़ी संख्या में रहने वाले अशिक्षितों को सभ्य स्तर का बनाया जा सके। इसके लिए लिखने-पढ़ने भर की सामान्य साक्षरता ही पर्याप्त न होगी। उसके साथ व्यक्ति-समाज को हर स्तर से समुन्नत बनाने वाले तथ्यों का समावेश करना पड़ेगा। इसके लिए पाठ्य-पुस्तकें बदलने या उनके साथ प्रगति समर्थक विषयों को अलग से जोड़ना होगा।

चूँकि अशिक्षितों की संख्या बहुत अधिक है। वह बिखरी हुई भी है इसलिए आरम्भिक चरण उस पढ़ाई को व्यापक बनाने के रूप में होना चाहिए, जो समय के अनुरूप कर्तव्यों और सुधारों से जन-जन को, बाल, वृद्ध और नर-नारी को अवगत करा सके। उसके लिए छोटी कक्षाओं तक सीमित कम समय में पूरी हो सकने वाली शिक्षा-पद्धति अपनाने की आवश्यकता है। इसके लिए जूनियर हाई स्कूलों तक व्यापक बनाने की बात कही गई है। यदि यह अपर्याप्त मालूम पड़े तो इसे मैट्रिक स्तर तक का बनाया जा सकता है। किन्तु उन बढ़ती कक्षाओं में उन्हीं विषयों की प्रधानता होनी चाहिए, जो आज के मनुष्य का चिन्तन-चरित्र और व्यवहार सम्बन्धी मार्गदर्शन कर सके, व्यक्ति और समाज को हर दृष्टि से समुन्नत बना सके।

'गरीबी हटाओ' का लक्ष्य घोषित करना आवश्यक है। पर उतना ही महत्त्व अशिक्षा भगाओ को भी मिलना चाहिए। अन्यथा अनगढ़ समुदाय कुछ उपार्जन बढ़ा लेने पर भी उसका सदुपयोग न कर सकेगा। देखते हैं कि बढ़ती महँगाई का सबसे अधिक लाभ किसान को मिला है। पर वह विवाह-शादी, मुकद्दमेबाजी, नशा, फैशन, जेवर आदि में वह सारा पैसा बर्बाद हो गया और पिछड़पन वैसा ही बना हुआ है जैसा कि मन्दी के जमाने में था। यदि लोकशिक्षण में उन्हें सदुपयोग की बात समझ में आ गई होती तो स्थिति वैसी न रहती जैसी कि आज है। कृषि सम्बन्धी विश्वविद्यालयों में होने वाली शोधों और गृहउद्योग सम्बन्धी प्रयोगशालाओं के निर्धारणों को जन-जन तक पहुँचने का अवसर मिला होता, उन्हें अपनाने के लिए दबाव पड़ता होता तो आर्थिक दृष्टि से किसान कहीं अधिक अच्छी दशा में होता।

योजनाएँ अनेकों बनीं और बन रही हैं। शोधें ढेरों हुई और हो रही हैं। पर उस विचारणा को जन-जन तक पहुँचाने और उन्हें कार्यान्वित करने को छोटे-बड़े नमूने बना कर दिखाए गए होते तो वे उपयोगी बातें जन-जीवन का अंग बन गई होतीं और देश आर्थिक दृष्टि से ही नहीं नैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी कहीं अधिक समुन्नत हो गया होता। इस दिशा में बरती गई शिथिलता का अब तो अन्त होना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक समानान्तर शिक्षातन्त्र

बौद्धिक प्रगति की प्रक्रिया ही शिक्षा

प्रकृति अपनी ओर से प्राणियों को स्वाभाविक ज्ञान उतनी ही मात्रा में प्रदान करती है, जिसके सहारे वह अपना अस्तित्व बनाए रह सके। उदरपूर्ति इसलिए आवश्यक है कि शरीर की मशीन को यदि आवश्यक तेल-पानी न मिले तो वह चलती किस प्रकार रहे ? श्रम किए बिना काया के कलपुर्जे जाम होकर निकम्मे बन सकते हैं। इसलिए दौड़-धूप आवश्यक है। यह प्रयोजन पेट में भूख लगने पर उससे उत्पन्न व्याकुलता के आधार पर बन पड़ता है। सभी प्राणी आहार जुटाने के लिए भाग-दौड़ करते और अक्ल चलाते हैं। इस आधार पर प्राणियों की हलचल चलती रहती है और अपने शरीर निर्वाह में व्यस्त रहकर अपनी स्वस्थता अक्षुण्ण बनाए रहते हैं।

प्रकृति की एक और भी अपेक्षा प्राणियों से है कि अपनी प्रजातियाँ बनाए रहें। प्राणि समुदाय यों कभी-कभी कारणवश लड़ते-झगड़ते भी देखे गए हैं, पर उनमें स्वाभाविक उत्कण्ठा यह रहती है कि विश्वउद्यान में इनके वर्ग का पौधा भी पहचान बनाए रखे। इसके लिए प्रजनन आवश्यक हो जाता है, पर वह बड़ा झंझट भरा और कष्टसाध्य है। प्राणी इस पीड़ादायक और दायित्व भरे काम में क्यों हाथ डाले ? इस आशंका को ध्यान में रखते हुए रतिकर्म की सरसता का विलक्षण आधार जोड़ दिया गया है। वयस्क होने पर नर-मादा इसके लिए उत्सुक, उल्लसित होने लगते हैं। जोड़ा ढूँढ़ते हैं। यौनाचार का जुगाड़ बिठाते हैं और हाथों-हाथ गर्भधारण के चक्कर में फँस जाते हैं। चूहे भी पिंजड़ेदान में रखी खाद्य सामग्री के लालच में ही उसमें प्रवेश करते और बुरी तरह बन्दी बन जाते हैं।

प्राणियों के लिए प्रजनन भी ऐसी व्यवस्था है, जिसे साँप-छछूँदर की तरह न उगलते बनता है न निगलते। फिर भी नियति की व्यापक विडम्बना कामुकता के रूप में उस प्रयोजन में प्रवृत्त करती है, जिसमें उत्पादक को भले ही त्रास मिलता हो, पर प्रकृति का प्रजाति-संरक्षण प्रयोजन पूरा होता रहता है। कामुकता के प्रभाव में कुछ संदेह रहे तो उसकी पूर्ति शिशुओं के प्रति जननी में पाई जाने वाली वात्सल्य भावना से पूरी हो जाती है। नर भी मादा के साथ सहयोग बनाए रहने की सुविधा को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव सहायता देता रहता है। बच्चों का प्रजनन और पोषण उनकी प्रकृति प्रदत्त ज्ञान सीमा को किसी कदर और भी बढ़ा देता है। यही हैं उत्सर्जन के लिए उत्साहित करने वाले दो आधार। उन्हीं की परिधि में आवश्यक व्यवस्था और आत्मरक्षा जैसी कुछ और प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हो जाती हैं और प्राणी श्रम व्यवस्था के अतिरिक्त अपनी ज्ञान परिधि को भी बनाए रहता है। सृष्टि का क्रम उसी प्रकार चलता रहता है।

मनुष्य की अपनी विशेषता का ज्ञान शरीर की संरचना के लचीलेपन पर तो आश्रित है ही, इसके अतिरिक्त उसकी दूसरी विशेषता है कि उपार्जित ज्ञान सम्पदा को बढ़ाते रहना। अपना कौशल उसने इसी आधार पर बढ़ाया है। प्रकृति को, परिस्थितियों को अपने लिए अधिक उपयोगी बनाने में उसने जो दौड़-धूप की है, उसे विज्ञान की उपलब्धि कहा जा सकता है। यह ज्ञान और विज्ञान ही मनुष्य की विशेषता है। इसमें जो जितना प्रवीण है, वह उतना ही सुखी, सौभाग्यशाली माना जाता है। यह बौद्धिक प्रगति की प्रक्रिया 'शिक्षा' कहलाती है। इसे यों तो घर-परिवार, समुदाय की गतिविधियों का अनुसरण करते हुए भी एक सीमा तक प्राप्त कर लिया जाता है, पर उसका सुव्यवस्थित प्रबन्ध विद्यालय के माध्यम से ही बन पड़ता है। लोकव्यवहार और अनुभव का सम्पादन भी एक अंश में शिक्षा-सम्वर्द्धन का प्रयोजन पूरा करता रहा है।

कभी शिक्षा का महत्त्व नगण्य भी रहा होगा। गाँव-कबीले स्कूलों की सहायता के भी बिना अपना निर्वाह किसी कदर चलाते रहते हैं, पर अब विकासक्रम के अधिक तीव्रता अपना लेने पर स्थिति ऐसी बन गई है कि बिना पढ़े लोगों को प्रगति की दौड़ में बहुत पीछे रह जाना पड़ता है। अनेक जानकारियाँ जो पढ़ाई के माध्यम से मिल सकती थीं, उनके हाथ नहीं लग पातीं, फलतः सर्वत्र चल रही प्रतिस्पर्द्धा में वे पिछड़ जाते हैं और घाटे में रहते हैं। बिना पढ़ा सुविधा के क्षेत्र में काफी पीछे रह जाता है और चतुर लोगों द्वारा उस भोलेपन का शोषण भी कम नहीं होता। मूढ़मान्यताएँ और अन्ध परम्पराएँ ऐसे ही लोगों पर अधिक छाई रहती हैं और वे उपार्जन से लेकर उपयोग की कला में अपने को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घाटे में रहा अनुभव करते हैं। यही कारण है कि अब आजीविका उपार्जन की तरह ज्ञान-अर्जन को भी आवश्यक माना जाने लगा है और शिक्षा व्यवस्था को अधिक सुलभ और व्यापक बनाने के लिए यथासम्भव सभी ओर से प्रयत्न चल रहे हैं। बच्चे भी शिक्षितों का बड़प्पन देखते हुए उसके लिए लालायित रहते हैं। पहले जैसी आनाकानी अब नहीं पाई जाती, जबकि बालक घर रहने और खेल-कूदों का, मौज-मस्ती का अवसर चूकना नहीं चाहते थे और पढ़ने में आनाकानी करते थे।

शिक्षा की दिशा में उत्साह और अवसर बढ़ रहा है यह प्रसन्नता की बात है, पर साथ ही देखना यह भी है कि उसमें कहीं सार्थक की न्यूनता और अनावश्यक भार की विडम्बना तो नहीं जड़ जमा रही है। ढर्रे का प्रचलन अभ्यास में आ जाता है और फिर जैसा भी कुछ वह है, उसी रूप में सुहाने लगता है। यहाँ तक कि उसे सदोष होते हुए भी निर्दोष मान लिया जाता है। उदाहरण के लिए, भोजन में भुने-तलने और शक्कर, मसाले की भरमार को स्वादिष्टता के साथ जोड़ लिया गया है। उसके बिना आहार गले तक नहीं उतरता। जबकि यह समूचा स्वाद परिकर मंद विषाक्तता की भूमिका बनाता और स्वास्थ्य को बुरी तरह बर्बाद करता रहता है, पर अभ्यास तो अभ्यास जो ठहरा। आदतों की अपनी सत्ता है, वे भली हों या बुरी, आरम्भ में धीरे-धीरे स्वभाव में प्रवेश करती हैं, पीछे एक प्रकार से अनिवार्यता बन जाती हैं। सुहाने भी लगती हैं। तर्क बुद्धि उनका समर्थन करने लगती है और छोड़ने की बात सोचते समय अन्तर्द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। प्रचलन भले ही बौद्धिक क्षेत्र के हों अथवा व्यवहार परम्परा के, समयानुसार जीवन में अपना स्थान बना लेते हैं। वे उचित आवश्यक लगते हैं। इतना ही नहीं उनमें खोट ढूँढ़ने और सुधार करने के लिए जिस दूरदर्शी विवेकशीलता की आवश्यकता पड़ती है, वह भी धूमिल पड़ जाती है और 'जो है सो है' का ढर्रा अपनी धुरी पर घूमने लगता है।

शिक्षा के सम्बन्ध में यह विचार करने योग्य है कि वह वर्तमान रूप में समुचित या पर्याप्त है अथवा नहीं ? यदि उसमें कुछ कमी रहती है, तो उसकी पूर्ति के लिए क्या कुछ नये सिरे से सोचा या किया जाना चाहिए, जो अब तक नहीं बन पड़ा है। प्रगति का यही अकाट्य सिद्धान्त है। सुधार के लिए विवेक अपनाए रहने पर अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त करने की सम्भावना बन पड़ती है। यदि पूर्वाग्रहों को अपनाए रहा जाय तो विग्रह जड़ जमाए बैठे रहेंगे और सत्य की खोज वाला वह प्रवाह रुक जाएगा जो अब तक चलता चला गया है और आदिम काल की स्थिति से ऊँचे उठते हुए आज की प्रगतिशील कहलाने वाली स्थिति तक पहुँच सकना सम्भव हुआ है।

चर्चा शिक्षा प्रसंग की है। उसका उपार्जन, बहुज्ञता जैसे पक्ष सराहनीय ही माने जाएँगे, पर साथ ही इस बात की भी गुंजाइश है कि सर्वसाधारण के जीवन में बहुत काम न आने वाले, मात्र बहुज्ञता बढ़ाने वाले उस भार को कम किया जाय, जो छात्रों पर अनावश्यक दबाव डालते हैं और परीक्षा में अधिक नम्बर लाने की ललक में कुछ घिसे-पिटे विषयों पर ही ध्यान एकाग्र किए रहने, समय को जोड़े रहने के लिए बाधित करते हैं। इस दबाव में मानसिक क्षमता बढ़ती नहीं घटती है, विशेषतया उस दिशा में जब यह समझा जाने लगे कि इस रटाई का व्यावहारिक जीवन में कदाचित ही और कुछ उपयोग बन पड़े। ऐसे प्रसंग प्रचलित पाठ्य विधि में से हटा दिये जाएँ, तो उससे प्रत्यक्ष लाभ यह होगा कि उपयोगी समझे जाने वाले प्रसंगों को अधिक पढ़ने-समझने के लिए सहज रुचि बढ़ेगी और कसौटी पर यही खरा उतरने वाला ज्ञान हर किसी के लिए उत्साह का विषय रहेगा। अपनाया भी अधिक तन्मयता के साथ जायेगा।

अनावश्यक में कटौती, इसके लिए पथ-प्रशस्त करती है कि जो उपयोगी है, उसके लिए अधिक श्रम किया जाय, अधिक तन्मयता के साथ समझने, पकड़ने के लिए अधिक श्रम किया जाय। इस दृष्टि से यदि प्रचलित शिक्षा की नये सिरे से समीक्षा की जा सके, तो यह बहुत ही हितकर होगा।

कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें किसी विशेष दिशाधारा अपनाने वालों के लिए बड़ा उपयोगी माना जाता है। विशेषज्ञों की अभिवृद्धि भी आवश्यक है, पर उसके लिए अतिरिक्त साधन, अतिरिक्त शक्ति नियोजन इसी अनुपात में किया जाना चाहिए कि आवश्यकता को देखते हुए अभीष्ट प्रयोजनों में खप सकें। उतना काम न होने या न मिलने की दशा में यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि इतना समय, श्रम और धन निरर्थक ही चला गया। क्योंकि उसका कोई उपयोग कर सकना सम्भव न हो सका।

होना यह चाहिए कि सर्वसाधारण की शिक्षा और विशेषज्ञों की शिक्षा का प्रथम विभाजन कर दिया जाय और छात्रों में से किसे चुनना है, उसके लिए रुचि एवं सम्भावना को देखते हुए चयन करने का अवसर दिया जाय। इस प्रकार दोनों ही पक्षों को अपने लिए जो उपयुक्त है, उसे अपनाने का अवसर मिल जाएगा।

सर्वसाधारण का स्वास्थ्य संरक्षण, स्वच्छता के हर पक्ष का अवगाहन, परिवार व्यवस्था में आए दिन आते रहने वाले उतार-चढ़ाव, प्रत्येक प्रयोजन में व्याख्या तत्त्व का आवश्यक समापन, रोगी परिचर्या, आहार के पोषक तत्त्वों को सुरक्षित रखा जाना, शिष्टाचार का अभ्यास, सहकारिता का प्रयोग और अनुभव, शिशु विकास, नारी वर्ग का अभिनव पुनरुत्थान, हरितमा सम्वर्द्धन, उपयोगी और अनुपयोगी का अन्तर, सामाजिक प्रचलनों में अनुचित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समावेशों का निराकरण और उनके स्थान पर सामयिक विधि-व्यवस्था का प्रचलन, एकता और समता में व्यवधान उत्पन्न करने वाली विचारधारा का समीकरण जैसे अनेक विषय ऐसे हैं, जिन्हें हमारी सामान्य शिक्षा में बढ़-चढ़कर स्थान मिलना चाहिए। इन आधारों को भली प्रकार हृदयंगम कराने वाले तर्क, तथ्य और प्रमाणों का इतना सारगर्भित और सामयिक समाधान होना चाहिए कि जिन्हें सामान्य बुद्धि के छात्र भी सरलतापूर्वक अपना सकें।

चरित्रनिष्ठा, नागरिकता, सामाजिकता ऐसे प्रसंग हैं, जिनकी न केवल उथली जानकारी का विहंगावलोकन पर्याप्त समझने की तरह चुंचु प्रवेश के स्तर का ज्ञान कराया जाय, वरन् उतना समृद्ध प्रशिक्षण हो कि विद्यार्थी को उन्हें मानने के लिए ही नहीं वरन् हृदयंगम करने के लिए सहमत होना पड़े।

यहाँ धर्म शिक्षा की बात नहीं कही जा रही है क्योंकि उस शब्द के साथ साम्प्रदायिकता का गहरा समावेश हो गया है और उनके बीच इतने अधिक मतभेद हैं कि किसी एक के प्रतिपादनों को महत्त्व देने पर न केवल दूसरों की अवज्ञा होने के आरोप लगने लगेंगे, वरन् पूर्वाग्रहों के आधार पर वितंडावाद भी उससे खड़ा होगा। इससे शालीनता, सदाशयता, सज्जनता और प्रगतिशीलता की परिधि में आने वाले उन्हीं विषयों को सामान्य शिक्षा का अंग बनाया जाय जो लगभग निर्विवाद हैं और सामान्य विचारशीलता जिनका समर्थन करती है।

काश, शिक्षा ऐसी रही होती

जनसाधारण के लिए अनिवार्य स्तर की मानी जाने वाली शिक्षा में उन सभी प्रसंगों का अधिक विस्तृत समावेश किए जाने की आवश्यकता है, जो सामान्य व्यवहार के साथ मानवी गरिमा के अनुरूप प्रायः सभी आदर्शों का समावेश करते हों। इसके लिए चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की तीनों विधाओं का सुविस्तृत समावेश इसलिए आवश्यक है कि इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक विचार किए जाने की महत्ता ही नहीं समझी गई। शिक्षा-पद्धति में उसका समुचित समावेश नहीं हुआ और न सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक मंचों से इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उतना कुछ बन पड़ा, जिसे संतोषजनक कहा जा सके। यदि इस मान्यता के अनिवार्य पक्षों को गम्भीरतापूर्वक समझा और समझाया गया होता, तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त इन चालीस वर्षों में हम अपनी वर्तमान और आगामी पीढ़ी को व्यक्तित्ववान, प्रतिभावान और कर्त्तव्यनिष्ठ बना सके होते। शिक्षा का प्रयोजन यदि चित्र-विचित्र जानकारियों से छात्रों को लादने की अपेक्षा यह सोचा गया होता कि प्रामाणिकता और प्रखरता सम्पन्न जनसमुदाय का निर्माण करना है, तो उस दिशा में गम्भीर प्रयत्न हुए होते और उसके परिणाम भी तदनुरूप आए होते। शिक्षा के साथ यदि आजीविका उपार्जन के अनेकानेक आधारों में से जो प्रमुख हैं, उन्हें विशेष रूप से पढ़ाया गया होता, तो वह अवरोध उत्पन्न न होता, जिसमें फँसा हुआ हर शिक्षार्थी दफ्तर का बाबू बनने की आशा-आकांक्षा सँजोये रहता है। अफसरों की महत्त्वाकांक्षाएँ तो दिवास्वप्न बनकर रह जाती हैं, किन्तु कुर्सी तोड़ बाबू बनने की भी बड़ी धूमिल आशा रह जाती है। हर साल हजारों की संख्या में पढ़ाई पूरी करके निकलने वालों में से सभी का एक लक्ष्य होता है—नौकरी। सम्भव है यह अँग्रेजों के जमाने में बड़ा सौभाग्य माना जाता हो और सुगमता से हस्तगत हो भी जाता हो, पर आज की परिस्थितियों में वह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है कि हर शिक्षित को नौकरी मिल ही जाय। कुछ करने की इच्छा या योग्यता न हो, तो अनजाने क्षेत्र में प्रवेश कैसे पाया जाय ? और सफल कैसे हुआ जाय ? यही कारण है कि शिक्षितों को उद्योगों के लिए सरकारी ऋण मिलने की सुविधा से कुछ बात बनी नहीं। अनुभवहीनता, आरामतलबी और गैर जिम्मेदारी के माहौल में फँसा हुआ कोई व्यक्ति व्यवसाय क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। इसलिए यदि शिक्षा को उद्योगमुखी बनाया जाना था, तो उसके साथ उन क्रियाकलापों को भी सिखाया जाता, जो अपने देश में सरलतापूर्वक सफल हो सकते हैं। कृषि, पशुपालन तो देश में परम्परागत और बहुसंख्यक लोगों द्वारा अपनाए जाने वाले उद्योग हैं। इनके अतिरिक्त अब तीसरा आधार कुटीर उद्योगों का और बचता है, जिनके आधार पर देश की अधिकांश आवश्यकताएँ जनसाधारण द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। 'गाँव बनाएँ और शहर खपायें' का सिद्धान्त ऐसा है, जिसकी व्यावहारिकता में किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है।

कृषि और पशुपालन ही अपने देश का प्रमुख उद्योग है। उसमें सुधार की अभी बहुत गुंजाइश है। यह जानकारी कृषक वर्ग के छात्रों को अधिक गम्भीरतापूर्वक दी जाने लगे, तो हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति में नया परिवर्तन हो सकता है। मुधमक्खी पालन भी इसी वर्ग का उद्योग है, जिसे यदि बढ़ाया जा सके, तो पौष्टिक आहार अभिवृद्धि के साथ-साथ कृषि के क्षेत्र में भी पैदावार बढ़ सकती है। कुटीर उद्योगों में तीसरे नम्बर का है—कपड़ा उद्योग। यदि इसका निर्माण गृहउद्योगों की परिधि में ही सीमित रहे, तो मिलों के कारण बेकारी बढ़ने का जो लांछन लगता है, वह न लगे और बेरोजगारी की समस्या का समाधान होने में लगभग सफलता ही मिल गई, यह समझा जा सकता है। कपड़ा उद्योग के साथ सिलाई, धुलाई, रँगाई, छपाई जैसे अनेकों सहकारिक उद्योग जुड़ते हैं और यदि उनका प्रचलन सहकारिता के आधार पर व्यवस्थापूर्वक होने लगे, तो शिक्षितों या अशिक्षितों में से किसी को भी बेकारी की शिकायत न करनी पड़े। जनजीवन में सामान्यतया काम आने वाली अनेकों वस्तुएँ ऐसी हैं, जो कुटीर उद्योग क्षेत्र के अन्तर्गत देहातों में ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनने लगें, तो समझना चाहिए कि खादी आन्दोलन समयानुसार विकसित होकर स्वदेशी अर्थात कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत आ गया और देहातों की अर्थव्यवस्था के लिए ऐसा आधार मिल गया, जिसके लिए हर शिक्षित को आशा रहती है कि उसे आजीविका की दृष्टि से हैरान न रहना पड़े। सर्वसाधारण के लिए निर्धारित शिक्षा में इन विषयों का समावेश होना चाहिए। भले ही इसके लिए पाठ्यक्रमों में, से उन विषयों को घटाना या हटाना पड़े, जो बहुमुखी जानकारियों में वृद्धि तो करता है, पर उनका व्यावहारिक उपयोग सर्वथा संदिग्ध है।

साधनों को किसी प्रकार उपलब्ध कर लेना एक बात है और उनका श्रेष्ठतम उपयोग करके अपने तथा अन्यान्यों के लिए उनके सत्परिणाम प्राप्त कर सकना सर्वथा दूसरी। पहले पक्ष को चतुरता एवं श्रमशीलता के समन्वय से सरलतापूर्वक पाया जा सकता है। कई बार उसमें अनीति और धूर्तता भी काम दे जाती है। उत्तराधिकार जैसे संयोगों में बिना प्रयास के भी बहुत कुछ मिलते देखा गया है, किन्तु उपलब्धियों का सदुपयोग करके उनके सत्परिणाम हस्तगत कर सकना दूरदर्शिता एवं शालीनता के समन्वय बिना बन नहीं पड़ता। इस प्रसंग में अनेक सद्गुणों के समन्वय से बना परिष्कृत व्यक्तित्व भी कम योगदान नहीं करता। चिन्तन की उत्कृष्टता ही इस स्तर का व्यक्तित्व विनिर्मित कर पाती है। इसके साथ सुव्यवस्था बनाने और सज्जनों का सहकार, परामर्श प्राप्त करने की भी आवश्यकता पड़ती है। चेतना क्षेत्र के यह सभी साधन जिस आधार पर विनिर्मित होते हैं, वह शिक्षा ही है।

अच्छा होता है कि एक ही शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत मनुष्य की उलझी हुई सभी समस्याओं का समाधान उपलब्ध हो गया होता। एक ही अवलम्बन के सहारे अभावों से छुटकारा और आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन कर सकने का राजमार्ग मिल गया होता। समग्र शिक्षा की आवश्यकता तभी पूरी हो सकती है, जब वह व्यक्ति की समानता और प्रतिभा को साथ-साथ विकसित कर सके। प्राचीनकाल की गुरुकुल पद्धति में यही प्रयत्न होता था। पुस्तकें हाथ से लिखीं जाने के कारण इतनी अधिक संख्या में इतनी सरलतापूर्वक उपलब्ध नहीं होती थीं, जितनी कि इन दिनों होती हैं। ऐसी दशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संकेतों और सुझावों को ही लिपिबद्ध किया जाता था। उनके पढ़ने-समझने में भी बहुत समय नहीं लगता था। फिर छात्रावास और विद्यालय की सम्मिलित व्यवस्थाएँ जुटाकर पूरा समय वहाँ किस प्रकार, किस प्रयोजन के लिए व्यतीत होता था ? इसका उत्तर स्पष्ट है कि जीवन के साथ अविच्छिन्न रूप से जिन सद्गुणों के जुड़ने की आवश्यकता पड़ती है, उनका अभ्यास करते रहने में ही गुरुकुल में व्यतीत होने वाली किशोरावस्था की समूची अवधि उसी प्रयोजन के लिए नियोजित रहती थी। इसी में पढ़ना-लिखना तथा लोकव्यवहार से सम्बन्धित सामान्य ज्ञान भी पढ़ लिया जाता था। जोर इस बात पर दिया जाता था कि गुण, कर्म, स्वभाव के तीनों आयाम वहाँ उत्कृष्टता के ढाँचे में ढलते रहें और जब विद्यालय छोड़कर घर वापस लौटा जाय, तो उन सुशिक्षितों को नर-रत्नों की श्रेणी में गिने जाने योग्य पाया जाय। उनमें यह विशेषता देखी जाय कि अपनी नाव तो सरलतापूर्वक खेते ही रहें, साथ ही उसमें बिठाकर अनेकानेक अन्यान्यों को इस पार से उस पार तक पहुँचा सकें। शिक्षा की सार्थकता इससे कम में बनती ही नहीं। अपनी वर्तमान शिक्षा प्रणाली की कार्यपद्धति को उसी पुरातन ढाँचे में ढाला जा सकना बन पड़ा होता, तो शिक्षितों को हर दृष्टि से सुविकसित और स्वावलम्बी पाया गया होता।

इन दिनों भी शिक्षा बड़ी बोझिल है। उसे पूरी करने में बिना नकल किए अच्छे नम्बर से उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को कठोर श्रमशीलता के साथ एकाग्रता अपनानी पड़ती है। फिर भी इसके बदले उन्हें ऐसी जानकारियों का भार ही वहन करना पड़ता है, जिनका एक अंश ही कदाचित व्यावहारिक जीवन में काम आता हो। यही कारण है कि छात्र परीक्षा देने के उपरान्त स्वाध्यायशील नहीं बनते। जो पढ़ा था, उसे भूल जाते हैं, क्योंकि विवेक द्वारा यह स्वीकारा नहीं गया कि जिसे तन्मयता के साथ पढ़े रहे हैं, वे भावी जीवन की दैनिक आवश्यकताओं के समाधान में कुछ कहने लायक योगदान दे सकेंगी।

आवश्यकता ऐसी शिक्षा की ही भूतकाल से रही है और भविष्य में भी रहेगी, जो संसार की अन्यान्य विधाओं का सार-संक्षेप कथा रूप में बता भले ही दे, पर हर सामान्य बालक को वही पढ़ाए, जो जीवन के किसी महत्त्वपूर्ण विषय से शिक्षार्थी को अपरिचित न रहने दे।

जिन्हें किन्हीं विशेष विषयों का विशेषज्ञ बनाना हो, उनके लिए अतिरिक्त प्रतिभाशाली, अतिरिक्त रुचि वाले छात्रों को तलाशा जाय और देखा जाय कि उनका कितना समय सामयिक आवश्यकताओं को पूरा करने में खप सकेगा। उनके लिए उस स्तर की पढ़ाई का प्रबन्ध इसी सीमा तक किया जाय, जिसकी कि वर्तमान ढाँचे में खपने की गुंजाइश है। इस नीति के अपनाए जाने पर शिक्षितों को बेकारी जैसी कोई समस्या न रहेगी।

अतिरिक्त शिक्षा का स्वयं प्रबन्ध करें

सुसम्पन्नों के पास अतिरिक्त साधन होने के कारण उनकी रुचि इस बात में रहती है कि उनकी सुविधाएँ तथा आवश्यकताएँ उस स्तर की हैं, जिन्हें देखकर जनसाधारण को उनकी समृद्धि का, स्तर की विशिष्टता का परिचय मिलता रहे। उनके वस्त्र, परिधान, वाहन, अभ्यास, रुझान इसी बात को ध्यान में रखकर विनिर्मित किये जाते हैं कि उन्हें साधारण श्रेणी के लोगों में अपनी गणना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना स्वीकार नहीं। देखा गया है कि अमीरों के लड़के खर्चीले स्कूलों में ही भर्ती होते हैं। वहाँ उनके अनुरूप सजधज और सुविधा-सामग्री की बहुलता होती है। इस हेतु उन्हें अतिरिक्त खर्च करना अखरता नहीं, वरन् इज्जत का सवाल बनाकर वहीं पढ़ाना पड़ता है, जहाँ का खर्च बढ़ा-चढ़ा है। ऐसे लोगों की महत्त्वाकांक्षाएँ भी बढ़ी-चढ़ी होती हैं और अपने बालकों को कोई ऊँचा पदाधिकारी, अफसर, उद्योगपति बनने से कम की कल्पना ही नहीं करते। उनके हिसाब से विशेषज्ञता की शिक्षा वाला पाठ्यक्रम ही उपयुक्त हो सकता है, किन्तु उन्हें अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार विशेषज्ञों को मिलने वाली असाधारण पदवी प्राप्त करने के लिए महँगी और जब कभी, जहाँ-तहाँ काम आने वाली विशेष व्यवस्था रहे तो अच्छा ही है, इससे विशेषज्ञों की आवश्यकता पूर्ति होगी, पर सर्वसाधारण के लिए परिस्थितिवश एक सीमित मर्यादा में ही गुजारा करना होगा। ऐसी दशा में उनको जीवन विद्या से सम्बन्धित विषय ही प्रमुखता से पढ़ाए जाएँ, जिससे वे सभ्य नागरिक और सुसंस्कृत समाजनिष्ठ बनकर आर्थिक दृष्टि से सामान्य रहते हुए व्यक्तित्व की दृष्टि से आदरणीय एवं अनुकरणीय बन सकें। जिस लक्ष्य पर पहुँचना हो, उसी मार्ग को अपनाया जाय, अभीष्ट प्रयोजन के लिए ही समय, श्रम एवं धन का उपयोग किया जाय। इस तथ्य का ध्यान रखने पर किसी को भी शिक्षा पद्धति पर दोषारोपण करने का अवसर न मिलेगा।

देखना यह है कि जीवन कला से सम्बन्धित जो प्रसंग प्रचलित शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत नहीं आता हो अथवा जिनका संकेत मात्र रखकर काम चला लिया जाता हो, उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध किया जाय, उपेक्षा करने से तो अपनी नई पीढ़ी विकसित व्यक्तित्व की दृष्टि से पिछड़ी ही बनी रहेगी।

दोषारोपण करने का यह समय नहीं है। हमें देखना है कि जो बाजार में सरलतापूर्वक उपलब्ध नहीं है, उसके उत्पादन के लिए अपने निज के प्रयत्नों से अभाव की पूर्ति करने का सरंजाम जुटाया जाए। आवश्यक नहीं कि हर काम के लिए सरकार का ही मुँह ताका जाय। ऐसी अनेकों व्यवस्थाएँ हैं, जो जनसाधारण को ही अपने प्रयत्न से स्वयं जुटानी पड़ती हैं। रसोई पकाने, कपड़े धोने, साफ-सुथरे रहने, बीमारी का इलाज करने, विवाह-शादी करने, सौदा खरीदने जैसे काम हमें स्वयं ही करने पड़ते हैं। सरकार का इन कामों में कोई बड़ा योगदान नहीं होता है। अखबार पढ़ने, हजामत बनाने की आवश्यकता पड़ती है, तो उसे स्वयं ही करते हैं। बच्चे पैदा होने, मृतक की अन्त्येष्टि करने, टूटी-फूटी छत की मरम्मत करने, घर में बढ़े हुए कृमि-कीटकों से निपटने की जिम्मेदारी हर नागरिक की अपनी है। इन कार्यों में सरकारी सहायता मिले ही, इसके लिए सरकार को बाधित नहीं किया जाता। प्रगति और अवगति का सरंजाम मनुष्य अपनी रुचि के अनुरूप स्वयं ही जुटाता है। अन्धविश्वासों में निरत रहने या विवेकशीलता अपनाने के लिए भी तो व्यक्ति स्वतन्त्र है। सरकार तो मर्यादा उल्लंघन करने वालों को पकड़ने और सजा दिलाने की भूमिका ही निभा पाती है। उसके साधन भी सीमित हैं। फिर जिन लोगों को योजनाएँ बनानी पड़ती हैं, उनका भी उथला दृष्टिकोण होता है। उसे इच्छानुसार ढालना, बदलना या विनिर्मित कर सकना भी तो सहज सम्भव नहीं है।

शिक्षा व्यवस्था का बहुत ही अंश ऐसा है, जो सरकार नहीं कर पा रही है। उसके लिए दोषारोपण करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि अपनी आवश्यकता देखते हुए अपने साधन स्वयं जुटाएँ। घर-परिवार की सारी व्यवस्था तो हम स्वयं ही निबाहते हैं। फिर शिक्षा में जो कमी आज दीखती है, उनकी पूर्ति के लिए मिल-जुलकर व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती।

सरकार टैक्स जबरन वसूल करती है, पर ऐसे अनेक टैक्स हैं, जो हम स्वेच्छापूर्वक निरन्तर देते रहते हैं। बच्चों का भरण-पोषण, वृद्धों की सेवा, तीज-त्यौहार, दान-पुण्य, तीर्थयात्रा, सेवा-सहायता जैसे कार्य व्यक्तिगत रूप से मिल-जुलकर सम्पन्न किए जाते हैं। फिर यह क्यों नहीं हो सकता कि अपने बालकों को अधिक सुयोग्य बनाने में जो कमी स्कूलों में रह जाती है, उसे व्यक्तिगत प्रयास से सहकारिता के आधार पर जुटाने का प्रबन्ध करें।

इस सन्दर्भ में यह आवश्यक है कि प्रौढ़ शिक्षा को आवश्यक समझने की तरह यह भी महत्त्वपूर्ण माना जाय कि विद्यार्थियों के लिए अतिरिक्त शिक्षा का सामूहिक प्रयत्न किया जाय। इसके लिए प्रज्ञामण्डलों द्वारा अपने-अपने स्थानों पर बाल-संस्कारशालायें चलाई जा रही हैं। स्कूली समय के अलावा बचे हुए समय में इसके लिए दो घण्टे अलग से नियत किए जाते हैं। स्कूली कार्य का एक नियम यह भी है कि छात्र घर से काम करके लाने के लिए कुछ होम वर्क साथ ले जाया करें और दूसरे दिन उसे पूरा करके लाया करें। देखा जाता है कि बच्चे घर आने पर दूसरे मौज-मस्ती के कामों में लग जाते हैं। होम वर्क पूरा करने के लिए घर में कोई नियमित वातावरण नहीं होता, इसलिए वह हो नहीं पाता। स्कूलों में पढ़ाई भर होती है। वहाँ अभ्यास के लिए अतिरिक्त समय कहाँ मिल पाता है ? इसके बिना छात्रों को डिवीजन गँवाना पड़ता है या फेल हो जाते हैं। इस कठिनाई का सरल समाधान दो घण्टे नित्य चलने वाली बाल-संस्कारशालाएँ कर सकती हैं। होम वर्क पूरा करने की जिम्मेदारियाँ वे भली प्रकार निभा सकती हैं।

इसके अतिरिक्त जीवन के साथ जुड़े हुए अन्यान्य विषय अछूते रह जाते हैं। इन्हें उन्हीं दो घण्टों में पूरा कराया जा सकता है। एक घण्टा होम वर्क के लिए और एक घण्टा सुसंस्कारिता के लिए, जीवन कला के अनेक विषयों पर क्रमशः प्रकाश डालने और अभ्यास कराने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए नियत रखे जा सकते हैं। इस प्रकार स्कूलों में रहने वाली कमी बाल-संस्कारशाला आन्दोलन को व्यापक बनाकर अपने बलबूते ही पूरी की जा सकती है।

हर रिटायर या सुविधा-सम्पन्न ढलती आयु वाले को इसके लिए सहमत किया जाय कि उसे 'विद्या ऋण' चुकाना है। धार्मिक लोग देवऋण, गुरुऋण, पितृऋण आदि की चर्चा किया करते हैं। पर सच्चाई यह है कि विद्या ऋण का चुकाया, जाना सबसे अधिक आवश्यक है। वानप्रस्थ न सधे, तो कम से कम ज्ञान दान के लिए दो घण्टे निकालते रहने के लिए हर शिक्षित में भाव संवेदना उभारी ही जानी चाहिए। इसी प्रकार ८० करोड़ नागरिकों के लिए प्रायः ८० लाख अध्यापकों की आवश्यकता को पूरा कर सकना सम्भव हो सकता है। इतने लोगों को वेतन पर रखना असम्भव है। इसी प्रकार समाजनिष्ठा की परमार्थ भावना का पूरी तरह समापन हो जाने पर मनुष्य हिंसकों जैसा हृदयहीन होकर रह जाएगा। हमें समय दानी अध्यापक निकाल कर समय की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करनी चाहिए।

संस्कारों में नैतिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का आदर्शवादी अनुबन्ध पालन करने की बात आती है। इस प्रशिक्षण को बाल-संस्कारशालाओं के माध्यम से दिया जाय। जहाँ सम्भव हो, वहाँ सप्ताह में एक दिन या दो दिन के गृहउद्योगों का प्रशिक्षण भी चलाने की बात सोची जाय। मानसिक स्वास्थ्य को समर्थ बनाए रहने के लिए संगीत ज्ञान की भी आवश्यकता है। उसके सहारे अपनी और दूसरों की सद्भावनाओं को उत्तेजित, जीवित किया जा सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए स्काउटिंग जैसे प्रशिक्षण की ही तरह मानसिक स्वास्थ्य में सरसता लाने के लिए वाद्य यंत्रों सहित युग संगीत के अभ्यास को भी सामान्य शिक्षणक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

हर शिक्षित दो अशिक्षितों को प्राथमिक शिक्षा से सम्पन्न करने का प्रयत्न करे। अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में वे कार्यरत रहें, तो प्रौढ़ शिक्षा की अति विकट समस्या सरल हो सकती है। साप्ताहिक सत्संगों का उपक्रम पुनर्जीवित किया जा सके, तो उसके सहारे भी सम्मान और संस्कृति के दोनों पक्षों के प्रति लोकनिष्ठा में अभिवृद्धि की जा सकती है।

बौद्धिक कायाकल्प में समर्थ शिक्षा

मोटेतौर पर अर्थकारी विद्या का ही कुछ महत्त्व समझा गया है। 'कुछ' शब्द का उल्लेख इसलिए किया गया है कि उस ओर सर्वसाधारण की उत्सुकता न होने से ही अपने देश में तीन-चौथाई निरक्षर हैं। यदि महत्त्व समझा गया होता और उत्साह रहा होता तो हर कोई अपने अड़ौस-पड़ौस में ही ऐसा सहायक खोज सकता था, जो उसे पढ़ाने में सहायता कर देता। आवश्यकता समझी जाने पर उसके लिए पैसा भी खर्च किया जा सकता था। आखिर साबुन जैसी जरूरत के लिए भी पेट भरने के अतिरिक्त कुछ खर्च कर ही लिया जाता है। विद्या प्राप्ति को यदि मानसिक भूख बुझाने के लिए उतना ही आवश्यक समझा गया होता, जैसा कि पेट भरने की अनिवार्य आवश्यकता समझी जाती है, तो उसके लिए हर किसी के द्वारा सतत् प्रयत्न किया जाता। जिस प्रकार शरीर की पुष्टि और अभिवृद्धि का क्रम चलता रहता है, उसी प्रकार मानसिक विकास का लाभ भी हर किसी को मिल गया होता, पर उस उपेक्षा का क्या किया और क्या कहा जाय ? जिसके कारण अति महत्त्वपूर्ण को भी उपेक्षा के गर्त में डाल रखा गया है।

सरकार और समाज की भी इस सम्बन्ध में बढ़-चढ़कर भूमिका होनी चाहिए। इतने पर भी यही नहीं समझ लेना चाहिए कि जनस्तर पर इसके लिए व्यक्तिगत प्रयासों की आवश्यकता न होगी। हर शिक्षित को अपने पड़ौस से अशिक्षा को हटाने के लिए वैसा ही प्रयत्न करना चाहिए, जैसा कि अपने घर का ही नहीं, पड़ौस में जमा कचरा हटाने की व्यवस्था की जाती है। हर शिक्षित अपने सम्पर्क के दो पड़ौसियों को प्राथमिक शाला स्तर का शिक्षित बनाना अपना नैतिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य माने और उसके लिए धर्मधारणा स्तर का मानस बनाए, तो यह कठिन दीखने वाली अत्यन्त व्यापक समस्या भी सरल हो सकती है।

साक्षरता की परिधि पूरी कर लेने पर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि युग चेतना के अनुरूप लगभग सभी प्रसंगों में जो भारी परिवर्तन लाया जाना है, उसकी पृष्ठभूमि तैयार हो गई। अभी ऐसा बहुत कुछ है, जिसे नये सिरे से समझने-समझाने, विचारने, बदलने और विवेक सम्मत दृष्टिकोण अपनाने के उपरान्त ही अभीष्ट परिवर्तन की भूमिका बन पड़ने की आशा की जा सकती है। साक्षरता के उपरान्त स्वाध्याय दूसरी कड़ी है। इसके बिना शिक्षा की साक्षरता कहाँ बन पड़ती है ?

इस निमित्त नये सिरे से, नये चिन्तन की आवश्यकता पूरी कर सकने वाले साहित्य की आवश्यकता पड़ेगी, जो आज की भ्रान्तियों और समस्याओं का ऐसा समाधान प्रस्तुत कर सके, जो वर्तमान को व्यवस्थित और भविष्य को उज्ज्वल बना सकने में समर्थ हो।

सोये मनुष्य को खाने-पीने की कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ती, पर जब वह जगता है, तो न केवल शरीर पोषण, वरन् मानसिक परिश्रम, आजीविका उपार्जन, गृह प्रबन्ध, सम्पर्क सम्मेलन, आदान-प्रदान जैसे अनेक विषयों को क्रियान्वित करने की आवश्यकता पड़ती है और उन्हें पूरा किए बिना काम नहीं चलता। ठीक इसी प्रकार बौद्धिक क्षेत्र में प्रसुप्त स्तर का निर्वाह कर रही जनता जब अनिद्रा से विरत होगी, तो उसे नई दुनिया के हर प्रयोजन को नये सिरे से समझने और नई नीति अपनाने की आवश्यकता पड़ेगी। यह कार्य स्वाध्याय सामग्री प्रस्तुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

करने से ही सम्भव हो सकता है। एक व्यक्ति को एक व्यक्ति पढ़ाए, यदि यह योजना असम्भव लगती है तो उसका दूसरा विकल्प यही हो सकता है कि जनसाधारण को साक्षर बनाने के उपरान्त उसे युग साहित्य उपलब्ध कराया जाय। सामयिक समस्याओं को समझने के लिए इस सीमा तक उत्साह जगाया जाय कि उसे पढ़े बिना हर व्यक्ति अपने को अधूरा समझे और उसकी पूर्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक कार्यों की तरह प्रयत्न करे।

इस कार्य के लिए हर व्यक्ति को आये दिन पुस्तकें खरीदते रहने की व्यवस्था बनाने के लिए सहमत न किया जा सकेगा। प्रस्तुत गरीबी और उपेक्षा की स्थिति में वह सम्भव भी नहीं है। इसलिए व्यावहारिक उपाय एक ही है कि हर गाँव, मोहल्ले में ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना हो, जिसमें मात्र नवसृजन का साहित्य ही उपलब्ध हो। अनेक अप्रासांगिक विषयों की भरमार करके पुस्तकालय को चूँ-चूँ का मुरब्बा न बनाया जाय।

युगसृजन सेवा में संलग्न पुस्तकालयों का यह कर्त्तव्य भी बन पड़ता है कि शिक्षितों की मनःस्थिति को देखते हुए उनके घर-घर निःशुल्क रूप से विशिष्ट साहित्य पहुँचाने और उसे वापस लाने का प्रबन्ध किया जाय। इस प्रकार का एक छोटा केन्द्र भी परिकर के सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों को नवयुग के अभिनव चलन की विद्या को समझाने में समर्थ हो सकता है। इसके लिए आर्थिक भार भी किसी को वहन न करना पड़ेगा, पुस्तकालय का खर्च ऐसे ज्ञानघटों की स्थापना से चल सकता है, जिनमें दस-बीस पैसा रोज डालने वाले सदस्यों के स्वल्प सहयोग से ही आवश्यक आर्थिक व्यवस्था चलती और बनती रहे।

साक्षरता सम्वर्द्धन का प्रथम चरण उठने की सम्भावना इसलिए है कि सरकार, स्वयं सेवी संगठन और अभिनव वातावरण इसके लिए अपने-अपने ढंग से प्रयत्नशील हैं, पर प्रथम चरण उठने के उपरान्त दूसरा प्रयास क्या होगा ? इस सम्बन्ध में अभी कुछ सूझ या बन पड़ नहीं रहा है। इस ओर भी ध्यान उसी प्रकार दिया जाना चाहिए, जैसा कि रोटी के अतिरिक्त पानी के लिए आवश्यक प्रबन्ध किया जाता है। युग साहित्य सृजन, उनका भाषायी प्रकाशन तथा चल पुस्तकालयों की स्थापना का प्रबन्ध कर लेने पर एक बात पूरी हो जाएगी कि शिक्षा विस्तार से जो लाभ सोचा गया है, वह सचमुच ही मिलने लगे अन्यथा मात्र अक्षर ज्ञान ऐसा ही है, जैसा कि बीज बोने के उपरान्त उसके लिए आवश्यक खाद-पानी, रखवाली, निराई-गुड़ाई आदि की ओर से सर्वथा मुँह मोड़ लेना।

इस सन्दर्भ में दृश्य और श्रव्य स्तर के ज्ञानवर्द्धक उपकरणों का भी उपयोग किया जा सकता है। प्रेस का सफल संसाधन हाथ लग गया है। अब इसके बाद टेपरिकार्डर, लाउडस्पीकर, स्लाइड प्रोजेक्टर जैसे उपकरण किसी सीमा तक काम दे सकते हैं। चित्र प्रदर्शनियों का भी अपना उपयोग है। नाटक, अभिनय आदि का जहाँ प्रबन्ध बन पड़े, जहाँ संगीत मण्डलियों का गठन सम्भव हो, वहाँ उनके लिए भी प्रयत्न किया जाय। बौद्धिक कायाकल्प में काम आ सकने वाले जितने भी माध्यम उपलब्ध हो सकें, वहाँ उन्हें जुटाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है।

यह प्रचार क्रिया का पूर्वार्द्ध है, जिसमें विचार गोष्ठियाँ, आयोजन, समारोह आदि की गणना भी हो सकती है। इसके बाद भी अगला पक्ष अपनी आवश्यकता सम्बन्धी माँग करने में चुप नहीं बैठता। वह चाहता है कि स्कूली ढंग का प्रयास-प्रशिक्षण भी निरन्तर चलता रहे। अध्ययन जीवन का एक अविछिन्न अंग बनकर रहे, जो ज्ञान मात्र पुस्तकों के सहारे गले नहीं उतरता, उसका स्वरूप भी देखने के लिए, अनुभव बढ़ाने के लिए उपलब्ध हो। शिल्प, कला, उद्योग जैसे विषय मात्र बौद्धिक स्तर की पढ़ाई में पूरे नहीं हो जाते, वरन् अपने साथ प्रत्यक्ष अभ्यास भी जुड़ा रखना चाहते हैं, जिनको प्रत्यक्ष देखने के साथ अनुभव या अभ्यास बढ़ाया जा सके। शिक्षा का उत्तरार्द्ध इसी को समझा जाना चाहिए। चल पुस्तकालयों की प्रमुख प्रक्रिया अपने आप में अति महत्त्वपूर्ण तो है, पर उसे सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनुभव और अभ्यास की उसमें कमी बनी ही रहती है, जिसकी पूर्ति विशेष अध्यापक के मार्गदर्शन में चलने वाले नियमित प्रशिक्षण से ही हो सकती है। प्रबन्ध इसका भी होना चाहिए। चूँकि जनस्तर पर इसके लिए प्रबन्ध बन पड़ना भी कठिन है, इसलिए बाल-शिक्षा की तरह वयस्कों की ऐसी पाठशालाओं का हर जगह प्रबन्ध होना चाहिए, जिसमें व्यावहारिक जीवन की आवश्यकता और समस्याओं को नीतिमत्ता के आधार पर हल करने का प्रशिक्षण मिलता रहे। इसके लिए भी उतनी ही जिज्ञासा से—आकुल-व्याकुल स्तर के शिक्षार्थी ढूँढ़ने पड़ेंगे। छात्रों और अध्यापकों की आवश्यकता भावना स्तर पर पूरी करने से ही कुछ ठोस प्रयास बन पड़ेगा अन्यथा अध्यापकों को वेतन और छात्रों को छात्रवृत्ति जैसे अनुदान प्रलोभन देने की नीति के लिए प्रबन्ध नहीं बन पड़ेगा। थोड़ों के लिए थोड़ा काम एक मॉडल खड़ा करने के स्तर पर तो सम्भव हो सकता है, पर संसार के ६०० करोड़ अथवा देश की ८५ करोड़ की सीमा तक जा पहुँची जनता के इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए इतना अधिक धन चाहिए, जिसे कदाचित कुबेर भी पूरा न कर सके।

हमें समझ लेना चाहिए कि शरीर के लिए प्राणवायु की जिस प्रकार सर्वप्रथम आवश्यकता है, उसी प्रकार हर विधा के विद्यार्थी को बौद्धिक और भावना क्षेत्र में भी निष्णात और विवेकसम्पन्न होना चाहिए। उत्थान एवं विकास में समग्रता लाने के लिए ऐसी शिक्षा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनिवार्य आवश्यकता है, जो जन-जन के मन-मन में प्रगतिशीलता के तत्त्वों को प्रतिष्ठापित कर सके। चिकित्सालयों, विद्यालयों की आवश्यकता से हर कोई परिचित है। एक नया प्रयास होना चाहिए कि मानसिक विकास के लिए चरित्र और व्यवहार में क्रान्ति लाने के लिए युग चेतना प्रदान करने वाली अभिनव शिक्षा प्रक्रिया का विकास भी अनिवार्य रूप से हो।

शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता

शरीर रक्षा के लिए जिस प्रकार भोजन, वस्त्र, निवास आदि की आवश्यकता है, उसी प्रकार प्रकट शरीर से भी बढ़कर अधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष मनःक्षेत्र को सही स्थिति में रखे जाने की अतिशय आवश्यकता है। शरीर से तगड़े दीखने वाले भी यदि मानसिक रूप से पिछड़े हुए हैं तो समझना चाहिए कि उनकी गणना एक प्रकार से पिछड़े, गए-गुजरे, अनपढ़ स्तर के लोगों में ही होगी। वे न तो जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं का महत्त्व समझ सकेंगे और न उन्हें जुटाने के लिए उत्साह प्रदर्शित करेंगे। अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्ति शारीरिक रुग्णता से ग्रसित लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक घाटे में रहते हैं। कदाचित उन्हें अन्धे के हाथ बटेर लगने की तरह कोई अनायास सुयोग हाथ भी लग जाय, तो उसका सदुपयोग अनगढ़ों द्वारा बन पड़ना सम्भव नहीं, दुरुपयोग तो अपने आप में विपत्ति ही है, जो धन-सम्पदा हाथ लगने पर भी दुर्व्यसन, अहंकार और अनाचार अपनाने के लिए ही उत्तेजित करता है। ऐसी दशा में शारीरिक समर्थता, आर्थिक सम्पन्नता की तुलना में भी मानसिक प्रखरता को प्रमुखता मिलती है और विचारशीलों द्वारा उसी की अभ्यर्थना होती है।

व्यक्तिगत समझदारी की प्रथम मान्यता है कि गुण, कर्म, स्वभाव के रूप में ऊँचे उठने वाले व्यक्ति परिष्कार के लिए हर सम्भव उपाय करें। इसे सर्वोपरि महत्त्व की सम्पदा मानें और उसके संचय, संकलन में किसी प्रकार की कोताही न बरतें। भोजन शरीर को जीवित रखता है, तो ज्ञान बुद्धिमत्ता, भावसंवेदना जैसी चेतनात्मक विभूतियों को उपलब्ध कराने में काम आता है। शारीरिक समर्थता अपने स्थान पर आवश्यक है, पर यदि दृष्टिकोण का परिमार्जन, क्रियाकलापों में उत्कृष्टता का समावेश नहीं हुआ तो समझना चाहिए कि कृमि-कीटकों जैसा ही जीवन जीते मनुष्य ने व्यर्थ ही एक सुयोग को गँवाया।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आप्तजनों ने हर किसी को स्वाध्यायशील होने के लिए कहा है और उसकी आवश्यकता को क्षुधा निवारण की तरह उपलब्ध करने-कराने पर जोर दिया है।

इस मार्ग में सबसे अधिक वह मूढ़ता है, जो मनुष्य को मात्र शरीर होने की मान्यता देती है और पेट भरने भर से संतुष्ट हो जाती है। जबकि उठनी वह भूख भी उतनी ही तीव्रता से चाहिए कि मनुष्य मानसिक दृष्टि से विवेकशीलों में गिना जा सके और ऐसे निर्णय-निर्धारण कर सकने में समर्थ हो जो मानवी गरिमा को उभारते-निखारते रहते हैं।

प्रयत्नशीलों ने अनगढ़ वन्य जन्तुओं को सरकस के कलाकार बना लिया है और उन्हें इतनी कमाई करने में समर्थ बना दिया है कि उस परिकर के समस्त कर्मचारियों की उदरपूर्ति में महती भूमिका निभा सकें। कबूतर संदेशवाहक का कार्य करते हैं। घोड़े दौड़ वाली लॉटरी जीतते हैं और सेना पुलिस के असाधारण सहयोगी माने जाते हैं। प्रशिक्षण ऐसा चमत्कार है, जिसके सहारे सपेरे और मदारी रीछ, बन्दर जैसे जानवरों की कमाई से अपना परिवार पाल लेते हैं। मनुष्य का यदि उपयोगी प्रशिक्षण बन पड़े तो वह शिल्पी, संगीतज्ञ, कलाकार, साहित्यकार, इंजीनियर, प्रशिक्षक, डॉक्टर, वैज्ञानिक आदि न जाने कितने कला-कौशलों से सम्पन्न होकर अपने तथा दूसरों के लिए असाधारण रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह तो भौतिक पदार्थ परक शिक्षण की बात हुई, पर उसे बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, भाव संवेदना, आदर्शवादिता जैसे दिव्य गुणों को अभ्यस्त बनाया जा सके, तो समझना चाहिए कि उसे अनुकरणीय, अभिनन्दनीय महामानव बनने का सुयोग-सौभाग्य हस्तगत हो गया है। तत्त्वदर्शी, तपस्वी को एक प्रकार से धरती के देवताओं में ही गिना जाता है, जो न केवल अपना कल्याण करते हैं, वरन् दूसरों के लिए भी सर्वतोमुखी प्रगति की प्रेरणा देने में अग्रिम भूमिका निभाते हैं। चन्दन वृक्ष के निकट उगने वाले झाड़-झंखाड़ों के सुगंधित हो जाने की मान्यता प्रसिद्ध है, पर उससे भी अधिक प्रामाणिक तथ्य यह है कि आत्मचेतना के धनी अपने उदात्त परामर्श और प्रभाव से समीप क्षेत्र के समुदाय को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने में निश्चित रूप से सफल, समर्थ होते हैं।

उत्थान और पतन का मार्ग कोई अनायास ही नहीं अपना लेता। इनमें से जिन्हें जो पसन्द आता है, उसे अपना लेते हैं और अपना बोया आप काटते हैं। आश्चर्य इस बात का है कि हर कोई सुखी, समृद्ध, स्वस्थ और प्रसन्न रहना चाहता है, पर उन्हें प्राप्त करने से वंचित रहता है। किसान यदि खेत में ज्वार बोए और चना उपजे तो समझना चाहिए कि यह प्रकृति विपर्यय नहीं है, वरन् अपने ही किसी क्रिया-कृत्य में कोई ऐसी चूक हुई है, जिससे अभीष्ट से प्रतिकूल परिणाम सामने आया।

माया शब्द की परिभाष-व्याख्या अवांछनीयता के अर्थों में होती है। उसे जाल-जंजाल एवं भवबन्धन भी कहा जाता है। इससे मुक्ति पाने को परम पुरुषार्थ, जीवन लक्ष्य आदि कहा जाता है। दार्शनिक स्तर पर की जाने वाली विवेचना का अर्थ इतना ही है कि भ्रम-जंजाल में न उलझा जाय, भ्रान्तियों में भटकना, भुलावे में पड़ना, मृगतृष्णा अपनाने का उदाहरण बनना आदि प्रतिपादनों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीधा अर्थ इतना ही है। जीवन की गरिमा के अनुरूप उसका सदुपयोग नहीं बन पड़ता है। इसका कारण वे भ्रान्तियाँ हैं, जो जीवन के स्वरूप, उद्देश्य और उपयोग के सम्बन्ध में ऐसे भ्रम-जंजालों में उलझा देती हैं, जो देखने भर में चमकदार प्रतीत होते हैं, पर जब परिणाम सामने आता है तो साँप पकड़ने या आग छूने की तरह कष्टकर सिद्ध होते हैं। सच्चाई का सीधा मार्ग है। ईमानदारी अति सरल है। यदि इस राजमार्ग के प्रति आस्था बनी रहे तो आतुरता में लम्बी छलाँग लगाने के व्यामोह में पगडण्डी ढूँढ़ने और झाड़ियों में उलझने की आवश्यकता न पड़े और जिम्मेदारियाँ पूरी करने और भ्रान्तियों में उलझने से बचने की बहादुरी दिखा सकने वाला श्रेय अनायास ही हस्तगत होता रहे।

इतनी जानकारी सभी को है कि बिना पढ़े पिछड़ों में माने जाते हैं। ज्ञान के क्षेत्र में उन्हें—'गूलर के भुनगे' अथवा 'कुँए के मेंढक' होने का व्यंग्य-तिरस्कार सहना पड़ता है, पर यह जानकर अत्यधिक आश्चर्य होना चाहिए कि समझदारों में भी नासमझी की कमी नहीं होती। पढ़ों में से ऐसे भी कितने ही होते हैं, जिन्हें पढ़ा-पढ़ाया कहने से अत्युक्ति का दोष नहीं लगता। व्यवसाय कौशल में निश्चय ही पढ़े लोग अधिक कुशल और कमाऊ होते हैं, पर इतने भर से यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने जीवन सम्पदा को शालीनता से सुसज्जित करने का कला-कौशल हस्तगत किया कि नहीं। अन्तःकरण में प्रफुल्लता और प्रसन्नता समाविष्ट कर सकेगा या नहीं। आत्मसंतोष और दैवी-अनुग्रह मिला या नहीं। लोगों ने उन्हें प्रामाणिक, प्रखर, अनुकरणीय एवं अभिनन्दनीय माना कि नहीं। वस्तुतः यही वे उपलब्धियाँ हैं, जिन्हें अर्जित करने वाला कृतकृत्य होता है। आश्चर्य इसी बात का है कि सुशिक्षित, विद्वान, बुद्धिमान बन जाने पर भी वे इस सन्दर्भ में असाधारण चूक करते हैं कि राजमार्ग किधर से जाता है और पगडण्डियों में भटकते रहने पर किन दुष्परिणामों का सामना करना पड़ता है। मूढ़मान्यताएँ, अन्ध परम्पराएँ, दुर्भावनाएँ, कुत्सा और कुण्ठाएँ, ललक और लिप्साएँ ऐसा कुछ प्रपंच रच देती हैं कि व्यक्ति कुछ का कुछ करने लगता है।

जीवन ईश्वर देता है। उसका भरण-पोषण समाज के सहयोग एवं पदार्थ वैभव के आधार पर होता है। यह लाभ हर प्राणी को मिलता है किन्तु मनुष्य के सौभाग्य का उदय तब होता है जब उसे सार्थक विद्या की उपलब्धि होती है। इसके लिए साक्षरता आवश्यक तो है, पर अनिवार्य नहीं कि सभी पढ़े-लिखे लोग विद्यावान होते हों, ऐसी बात नहीं। उसकी व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए जिससे पढ़े और बिना पढ़े दोनों ही समान रूप से लाभ उठा सकें।

शिक्षा सम्वर्द्धन तन्त्र का पुनर्जीवन

सरकारी तन्त्र द्वारा स्कूली शिक्षा प्रयोजन के लिए एक सुविस्तृत ढाँचा खड़ा किया हुआ है। जिसमें अध्यापक, शिक्षार्थी, इमारत, फर्नीचर, उपकरण आदि अनेक खर्चीली आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इसके लिए टैक्सों के रूप में हर नागरिक को अपनी-अपनी स्थिति के अनुरूप कर देना पड़ता है। विद्यार्थी भी फीस के रूप में उसकी आंशिक पूर्ति करते हैं। यह शिक्षा तन्त्र के एक भाग की व्यवस्था हुई। इसके समानान्तर विद्या-विस्तार का दूसरा पक्ष है, जिसकी व्यवस्था सरकारी व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं आती तो उसे सर्वसाधारण के सहयोग से विशिष्ट जनों द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए। दोनों के बीच टकराव की आवश्यकता नहीं है। एक-दूसरे के पूरक बनकर भी रह सकते हैं।

प्राचीनकाल में इस दायित्व को सँभालने के लिए एक वर्ग विशेष अग्रणी रहता था। उस समुदाय को पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी प्रकार से निरत रहने का अनुभव था। ब्राह्मण, साधु इसी दायित्व की महान जिम्मेदारी उठाते रहने के कारण ही कृतार्थ जनसमुदाय द्वारा मूर्धन्य माने और सम्मानास्पद समझे जाते थे। उनके निर्वाह की व्यवस्था करने को सभी आतुर रहते थे। चूँकि वे अपनी गरिमा के अनुरूप निजी आवश्यकताएँ न्यून रखते थे। उनकी उदार आवश्यकताएँ भी इतनी कम रहती थीं कि उनकी दान-दक्षिणा के रूप में पूर्ति करने के लिए जनसाधारण में श्रद्धापूरित आतुरता रहती थी। ब्राह्मण गृहस्थ रूप में रहते थे और स्थानीय या क्षेत्रीय आवश्यकता सँभालते थे। परिव्राजक, साधुजन इस निमित्त परिभ्रमण करते रहते थे। इसके अतिरिक्त ढलती आयु का हर व्यक्ति वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप गृहस्थ और विरक्त का मध्यवर्ती वानप्रस्थ जीवन जीता था। फलतः इन लोकसेवियों का समुदाय इतना विस्तृत और सन्नध रहता कि जनता को उनसे लाभ उठाने की सुविधा निरन्तर घर बैठे बिना किसी प्रयास के मिलती रहती थी। सत्परिणाम भी तदनुरूप ही होते थे। न किसी को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता था और न निरक्षरताजन्य कष्ट किसी को कहीं भुगतना पड़ता था। इस प्रकार जीवन को उत्कृष्टता, आदर्शवादिता के साथ जोड़ने वाली भावसंवेदना को हृदयंगम करने-कराने का अवसर पर्व-त्यौहारों, संस्कारों, धार्मिक कर्मकाण्डों के श्रद्धासिक्त वातावरण में वैयक्तिक या सामूहिक रूप से उनके द्वारा मिलता रहता था। इस निमित्त गुरुकुलों, आश्रमों, आरण्यकों, वानप्रस्थाश्रमों में शिक्षार्थियों और अध्यापकों के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधा उपलब्ध रहती थी। इतना ही नहीं स्थानीय आवश्यकता को देखते हुए स्थान-स्थान पर, गाँव-गाँव में प्रायः छोटे-बड़े देवालय विनिर्मित होते थे, जिनके भवनों में अथवा जुड़े हुए उद्यानों में शिक्षा व्यवस्था की आपूर्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती रहती थी। सरलतापूर्वक वह ढाँचा सशक्त रूप में खड़ा रहता था, जो मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक उत्कृष्टता से सर्वसाधारण को लाभान्वित कराता रहे। सतयुगी सुख-शान्ति भरा वातावरण भी उसी माहौल में बनता था और व्यक्तिगत शालीनता तथा सामूहिक सहकारिता के आधार पर समूचा समाज इस प्रकार की मंगलमयी प्रगतिशीलता का जिस आनन्दपूर्वक निर्वाह करता था उसको आज भी सतयुग के—ऋषि युग के नाम से श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है।

इन दिनों परिस्थितियों में भारी हेर-फेर हुआ है। जानकारियाँ भर-बढ़ाने वाली शिक्षा का प्रचलन रह गया है। ऐसा कोई समर्थ तन्त्र खड़ा नहीं हो सका, जो मानवी गरिमा के अनुरूप गुण, कर्म, स्वभाव में आदर्शवादी उत्कृष्टता को हृदयंगम करा सके। जन-जन में श्रेष्ठता, उत्कृष्टता का अभीष्ट अनुपात भरा रह सके। समाज का वातावरण ऐसा बन सके, जिसमें निकृष्टता को विजातीय द्रव्य की तरह बहिष्कृत करने की कड़ी व्यवस्था हो। साधु-ब्राह्मण भी वंश और वेश के रूप भर से अपनी प्राचीनता का परिचय देते हैं। समग्र शिक्षा सम्वर्द्धन की कोई सुनियोजित योजना या कार्य पद्धति उनके सामने नहीं है। देवताओं के एजेण्ट के रूप में ही वे अपना रौब जमाते और सेवा के बदले में मौज-मस्ती का निर्वाह तथा बिना सेवा-साधनों के ही विपुल सम्मान पाते रहते हैं। ऐसी दशा में उन्हें पुरातन कष्टसाध्य परिपाटी को पुनः अपनाने के लिए समहत कराना प्रायः असम्भव ही है। इस सन्दर्भ में बड़ी आशा लगाने की गुंजाइश भी नहीं है।

जहाँ तक शिक्षक समुदाय का प्रश्न है, वहाँ वानप्रस्थ परम्परा के पुनर्जागरण के सम्बन्ध में कुछ आशा की जा सकती है। ढलती आयु में अथवा जिन्हें सुविधा हो वे इससे पूर्व ही आधे गृहस्थ और आधे विरक्त का स्तर अपनाएँ, तो उनकी आजीविका के लिए दूसरों पर निर्भर न रहना पड़ेगा और आधा समय परमार्थ के लिए लग जाने पर उस आवश्यकता की पूर्ति होती रहेगी, जिसके बिना मनुष्य भावनात्मक क्षेत्र में लुंज-पुंज स्तर का बन कर रह रहा है। भले ही इसमें सुविधा-साधन कुछ अधिक मात्रा में मिलते रहें।

इन दिनों लोगों पर एक नया जुनून चढ़ा है कि पूजा-पाठ में कुछ टंट-घंट करने भर से स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि आदि चमत्कारी विभूतियाँ मिल सकती हैं अथवा उचित-अनुचित स्तर की मनोकामनाएँ देवी-देवताओं के मनुहार से चुटकी बजाते पूर्ण हो सकती हैं। यदि इस भ्रम-जंजाल को हटाया-घटाया जा सके, तो आध्यात्मिक धार्मिक क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला एक बहुत बड़ा समुदाय अपने बहुमूल्य समय और साधनों का उपयोग विद्या विस्तार जैसे लोकमंगल के कार्यों में नियोजित कर सकता है और क्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में सच्चे पुण्य-परमार्थ का भाजन बन सकता है।

इस प्रवाह परिवर्तन के लिए मान्यताओं में परिवर्तन लाने वाले आन्दोलन अभियान यदि न चल सकें, तो फिर एक-दूसरी मान्यता जनमानस में बिठाई जाय कि न्यूनतम दो घण्टे का समय हर कोई अपनी जीवनचर्या में सुनिश्चित रखे और अपनी निज की परिस्थिति तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप लोकमंगल के निमित्त लगाने लगे। कहना न होगा कि लोकमंगल के प्रथम प्रयोजन में शिक्षा-सम्वर्द्धन और भावनात्मक परिष्कार के दो ही पक्ष आते हैं। अच्छा होता यह दोनों सम्मिलित रूप से ही चल सके होते, पर यदि किसी कारण वैसा नहीं है तो नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली शिक्षा प्रणाली का धार्मिक स्तर पर विकास किया जाना चाहिए। उस प्रयोजन को पूरा कर सकने में समर्थ शिक्षकों को तैयार करने की अतिरिक्त व्यवस्था बन पड़नी चाहिए।

एक और तीसरा पक्ष है, जिनके साथ में लोकमानस के साथ सम्पर्क साधने वाले साधन हैं, वे उन्हें अपने ढंग से इस प्रकार मोड़ें कि आज की सर्वोपरि आवश्यकता जनमानस में श्रद्धा-सम्वर्द्धन का कार्य भी सम्मिलित कर लें। पत्रकारों, साहित्यकारों की गणना अग्रिम पंक्ति में होती है। उन्हें आश्रय देने वाले प्रकाशक, विक्रेता भी इसी वर्ग में आते हैं। वे चाहें तो अपनी लेखनी, पूँजी, साधनों एवं व्यवस्था बुद्धि का इस प्रकार प्रयोग कर सकते हैं कि सत्साहित्य की कमी न रहे। उसका मूल्य भी ऐसा होना चाहिए, जिसे देश की गरीबी और उपेक्षा से पीड़ित जनता खरीदने में अपने को असमर्थ अनुभव न करे। महँगी पुस्तकें अमेरिका जैसे देशों में सरलतापूर्वक खप सकती हैं, पर भारत में सत्साहित्य प्रकाशन के साथ-साथ उसके लिए विक्रय का विशिष्ट तन्त्र खड़ा करना पड़ेगा, साथ ही उसका मूल्य औचित्य की सीमा में ही रखना पड़ेगा।

दैनिक अखबारों में प्रायः एक पूरा पेज सिनेमा के लिए, एक खेलों के लिए, एक व्यापार के लिए सुरक्षित रहता है। इनमें एक-एक चौथाई कमी कर दी जाय तो एक पेज व्यक्तित्व निर्माण हेतु लोकशिक्षण के लिए भी आसानी से निकल सकता है। प्रकाशक जहाँ अन्यान्य विषयों की महँगी पुस्तकें छापते हैं, वहाँ एक अलग विभाग इसके लिए भी निकाल सकते हैं कि मानवी गरिमा के आदर्शवादी पक्ष के निमित्त भी एक विशेष क्रियाकलाप चलते रहें और देश की अति महत्त्वपूर्ण भाव संवेदना की दिशाधारा को प्रश्रय मिल सके।

जनमानस सिनेमा क्षेत्र में बम्बईया स्तर के आशिक-मासूक प्रकरण को देखते-देखते इतना ऊब गया है कि उसे कुछ ऐसा भी देखने को मिलना चाहिए, जो मानवी गरिमा का किसी प्रकार पोषण कर सके। उदाहरण के लिए रामायण, महाभारत जैसी फिल्मों को जन सम्मान मिला है। हजारों फिल्म निर्माताओं में से सैकड़ों न सही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कुछ दहाइयाँ भी इस स्तर के निर्माण को अपना सकें तो इन्हें विश्वास करना चाहिए कि भले ही धन कुबेर न बन सकें, पर साधारण रूप में घाटे में नहीं रहेंगे।

वीडियो भी अब कुसमुसा रहा है। उसे सरकारी क्षेत्र में प्रवेश न मिले तो वीडियो लाइब्रेरियों के माध्यम से भी कम से कम इतना करने का अवसर मिल ही सकता है कि संतोष की साँस ली जा सके और भविष्य के लिए कुछ आशाएँ बँध सकें। चित्रकारों की भी अपनी एक दुनिया है। छोटी होते हुए भी उसकी क्षमता नगण्य नहीं है। चित्र-प्रदर्शिनियाँ ऐसी बन सकती हैं, जिनके आधार पर उत्सवों की शोभा बढ़ सके और साथ ही जनजागरण का प्रयोजन भी पूरा हो सके। धर्मोपदेशक भी आला-बाला बखानते रहने के स्थान पर विचारपूर्वक कुछ सृजनात्मक पक्ष भी उभारते रहें, तो वे भी युग धर्म के निर्वाह में, शिक्षा-सम्वर्द्धन प्रक्रिया में साझेदार बन सकते हैं।

उपेक्षा से अवगति

लोकरंजन के साथ लोकमंगल का सम्मिश्रण अपने आप में एक विशिष्ट शैली है। उसे यदि योजनाबद्ध रूप से कार्यान्वित किया जा सके, तो उसके लिए भी अभी गुंजाइश समाप्त नहीं हुई है, यह मानकर चला जा सकता है।

यों सिनेमा ने मनोरंजन विधा पर एकाधिकार कर लिया है और जो कुछ भी गुंजाइश रह गई थी, उसे टी. वी. ने अपने आँचल में समेट लिया है। आम आदमी अब अपने एकाकी प्रयत्न से चाहे, जब चाहे जितना लाभ उठा सकने में समर्थ है।

इनकी सरलता और आकर्षण को देखते हुए एक प्रकार से मनोरंजन क्षेत्र का अधिपति इन्हीं को कहा जा सकता है। इतने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता कि परम्परागत मनोरंजन के साधन भी किसी न किसी प्रकार अभी जीवित हैं। प्रयत्न किया जा सके तो उनको पुनर्जीवित करके भी सद्भाव-सम्वर्द्धन के क्षेत्र में इतना कुछ किया जा सकता है, जिसे नगण्य कहकर सर्वथा उपहासास्पद न ठहराया जा सके। दन्त मंजनों से मार्केट भरे पड़े हैं, फिर भी हरी दातौन का प्रचलन अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। पकवान, मिष्ठान की पाक विद्या का आश्चर्यजनक विस्तार हो जाने पर भी सत्तू अपनी जगह पर अभी भी जीवित है और चना-चबेना का प्रचलन पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है।

मनोरंजन के क्षेत्र में रामलीला, रासलीला से लेकर नौटंकी, आल्हाखण्ड, ढोलामारू स्तर के ग्राम्य मनोरंजन जहाँ-कहीं भी व्यवस्थापूर्वक जीवित हैं, वे अपनी आवश्यकता समाप्त हो गई, अनुभव नहीं करते। नर्तकियों का अश्लील प्रदर्शन सामन्तशाही के साथ समाप्त होते ही होते लड़खड़ा गया, पर नाटकों का कलामंच अभी भी छोटे-बड़े आकार-प्रकार में नये रूप से उभर रहा है। नृत्य नाटिकाओं की नई संस्कृति कलामंच के रूप में नये सिरे से पैर जमा रही है। अभिनय के अन्य अनेकों नये आकार-प्रकार विनिर्मित हुए हैं और वे शहरों से लेकर गाँव तक में अपने प्रशंसक बिखरे हुए देख पाते हैं। जो धैर्यवान हैं, उनके अस्तित्व कल निखार के साथ-साथ ख्याति बढ़ने पर अधिक लोकप्रिय भी हो रहे हैं। जनजातियों के लोकनृत्य अभी भी रुचिपूर्वक देखे जाते हैं। त्यौहारों और मेलों में ग्रामीण कलाकार एकत्रित होते और लोकरंजन के साथ-साथ अपनी अच्छी आजीविका भी कमा लेते हैं।

मदारी, सपेरे, बाजीगरों के कबीले अभी भी अपने पूर्वजों की तरह अपने परिवार का पालन करते और लोगों की नीरसता को तोड़कर नये उल्लास का अवसर प्रदान करते हैं। कठपुतली वाले पूरी तरह पलायन नहीं कर गए, वरन् उन्होंने अपनी कला को नई तकनीक के साथ नये रूप में विनिर्मित किया है। यह सिलसिला पूरी तरह समाप्त हो जाएगा, यह आशंका नहीं ही करनी चाहिए। मिलों का पिसा आटा ही बाजार में अधिकांश दुकानों पर बिकता है, फिर भी हाथ चक्कियाँ अभी भी जीवित हैं और अपनी उपयोगिता के कारण सम्भवतः चिरकाल तक चलती रहेंगी। भले ही उनका उपयोग करने वाले पिछड़े वर्ग के लोग ही क्यों न कहलाते रहे हों। बिजली का प्रचलन तेजी से होता जा रहा है, फिर भी दीपक या लालटेन की आवश्यकता सदा-सर्वदा के लिए समाप्त नहीं होने जा रही है।

मनोरंजन के प्राचीन साधन इसलिए लड़खड़ाए कि उनका समय के अनुरूप विकास, निखार किए जाने का कोई प्रबन्ध न हो सका। साथ ही अब लोकमानस उनके साथ उपयोगी विधाओं के समावेश के लिए इच्छा अभिरुचि में आवश्यक परिवर्तन कर रहा है और घिसे-पिटे प्रदर्शनों के आधार पर नवीनता के समावेश की इच्छा करता है। यदि किसी दूरदर्शी मार्गदर्शन में लोकरंजन की विधा के साथ लोकमंगल के तत्त्व भी जोड़ देने के प्रयत्न किए गए होते तो परम्परागत मनोरंजन की भारत जैसे देश में तो स्थिरता और आवश्यकता बनी ही रह सकती है। पिछले दिनों की भूल को अभी भी सुधारे जाने की गुंजाइश है। लोकरंजन को लोकमंगल के साथ जोड़कर प्राचीन मनोरंजन कला को अब भी पुनर्जीवित किये जाने की गुंजाइश है और यदि उसकी दिशाधारा जनमानस के परिष्कार की दिशा में मोड़ दी जाय, तो निश्चय ही उसे विचारक्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जा सकता है।

जिस प्रकार युगचेतना का मार्गदर्शन कर सकने वाले साहित्य का स्वरूप निर्धारण किसी युग मनीषा का प्रतिनिधित्व करने वाले तन्त्र के संरक्षण में नियोजित किए जाने की आवश्यकता है, उसी प्रकार संगीत, चित्र,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिनय, मनोरंजन आदि के सभी क्षेत्रों के वर्तमान स्वरूप को नई दिशा देने के लिए उच्चस्तरीय विचार मंथन किए जाने की आवश्यकता है।

युग साहित्य सृजन और युग चिन्तन के, प्रवचन प्रशिक्षण के सांगोपांग स्वरूप निर्धारण की योजनाबद्ध प्रक्रिया आवश्यक है। उसी पर इन सभी माध्यमों पर विचार किया जाना चाहिए, जो जनमानस को प्रभावित करते हैं। आश्चर्यपूर्वक घटिया स्तर पर इन महत्त्वपूर्ण माध्यमों का यदि दुरुपयोग ही होता रहा, तो कला और विद्या तीनों ही उल्टे परिणाम उत्पन्न करेंगी और प्रगति के स्थान पर अवगति का आधार बनेंगी।

विभिन्न व्यवसायों में निरत लोग अपने-अपने उद्योगों को अधिक विकसित एवं उपयोगी बनाने के लिए मिल-जुलकर बैठते एवं विचार-विनिमय करते हैं। यह रीति-नीति उन सबको अपनानी चाहिए, जो विद्या का महत्त्व समझते और उसमें निखार-विस्तार की आवश्यकता अनुभव करते हैं। यों एकाकी मनुष्य भी कुछ न कुछ कर ही सकता है। अपना उदाहरण प्रस्तुत करके कई अन्यों को अनुसरण के लिए प्रेरित कर सकता है। लोगों को विश्वास होता है कि सेवा-साधनों के लिए भावसंवेदना अभी भी जीवित है और समस्त संसार निकृष्ट स्वार्थपरता की चपेट में नहीं आया है। इससे श्रद्धा, विश्वास को सम्बल मिलता है। यह भी कहा तो अच्छा ही जाएगा, किन्तु विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस प्रयोजन के लिए अनेक लोगों से सम्बन्ध जुड़ता है, उसे मिल-जुलकर करने और योजनाबद्ध रीति-नीति अपनाने में सामूहिकता का लाभ मिलता है और प्रगति की सम्भावना का अधिक सशक्त आधार बनता है।

शिक्षा के व्यावहारिक और भावनात्मक पक्षों को उभारने का कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है। देश की दृष्टि में ऐसे लोग ८५ करोड़ हैं और संसार भर के सम्बन्ध में बात सोची जाय तो ६०० करोड़ व्यक्तियों की योजना बनानी पड़ेगी और उसके लिए ऐसा आधार खड़ा करना पड़ेगा जो आरम्भ भले ही एक बिन्दु से हो, पर उसका विस्तार अतीव व्यापक होता चला जाय। तालाब में ढेला तो एक जगह गिरता है, पर उससे समूचा जलाशय प्रभावित होता है। विद्या विस्तार के सम्बन्ध में भी यही आधार अपनाना पड़ेगा।

विचारणीय यह है कि सद्ज्ञान का आलोक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इन दिनों इतना उपेक्षित क्यों हो रहा है ? अत्यधिक लाभदायक होते हुए भी लोग उसकी अवमानना क्यों कर रहे हैं ? जब हर क्षेत्र में विकसित होने की उत्कण्ठा जग रही है, तो ऐसा क्यों हो रहा है कि लोग जीवन के सर्वोत्कृष्ट तत्त्व विवेक को क्यों अनदेखा कर रहे हैं। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उत्कृष्टता के समावेश की परिणति से क्यों अनजान बने हुए हैं ?

पैसे का महत्त्व समझा गया है कि उसके बदले इच्छित सुविधा-साधन खरीदे जा सकते हैं, इसलिए लोग बिना ननुनच के अर्थ-उपार्जन के लिए घनघोर प्रयत्न करते और नीति-अनीति तक का विचार नहीं करते। इस प्रकार बुद्धि का मूल्य समझा गया है कि चतुरता के बल पर प्रगति का पथ-प्रशस्त किया जाता है। स्कूली शिक्षा को भी इसी श्रेणी में गिना जाता है और लोग उसके लिए प्रयत्नशील रहने और खर्च करने में संकोच नहीं करते। सौन्दर्य का महत्त्व समझा जाता है और लोग शृंगार के निमित्त बहुत सारा समय और धन खर्च करते हैं। प्रशंसा में गर्व अनुभव होता है। इन लाभों को समझ लिए जाने के कारण लोग इनके लिए बहुत कुछ करते हैं। जहाँ माहात्म्य विदित नहीं वहाँ अरुचि रहती है। पूजा-अर्चा के सम्बन्ध में भी यही बात है।

खेद इस बात का है कि जिन पिछड़े लोगों ने शिक्षा की उपयोगिता नहीं समझी, वे समय और सुविधा होने पर भी पढ़ने की उपेक्षा करते हैं। जिन्होंने महत्त्व समझा है वे दिन में मेहनत करके रात में पढ़ते हैं और विद्वान बनते हैं, पर जिन्हें उसकी उपयोगिता दीखती नहीं वे स्कूल में प्रवेश पाकर भी बीच में छोड़ बैठते हैं। विद्या का विषय तो और भी अधिक दूरदर्शिता से सम्बन्धित है। यदि प्रतिभा परिष्कार के दूरगामी परिणामों से चेतना प्रभावित न हो तो उसकी लालसा क्यों जगे ? और कोई उसके विकास हेतु किसलिए संयम बरते और श्रेष्ठता, सम्पादन के लिए क्यों प्रयत्नशील बने ?

माहात्म्य समझा और समझाया जाय

प्राणियों की प्रत्यक्ष अभिलाषा एक ही है—'सुख' अपनी समझ और स्थिति के कारण वे जिसमें सुख मानते हैं, उसी के लिए प्रयास करने लगते हैं। समय और श्रम भी उसी में लगाते हैं। यहाँ तक कि खतरे भी उठाते हैं। लक्ष्य एक ही है कि सुख किस उपलब्धि में माना गया। प्रयासों का सिलसिला उसी निमित्त चल पड़ेगा। अनुभूति करने में इन्द्रियाँ प्रमुख हैं। पेट का सम्बन्ध मुख से जोड़ा जाता है। आहार की आवश्यकता पेट में उठती तो है, पर उसे उदरस्थ करने में मुँह ही प्रधान रहता है। स्वादेन्द्रिय मुख ही है। उसी मार्ग में उदरपूर्णा का सुख पाया जाता है। प्रौढ़ता विकसित होने पर जननेन्द्रिय भी उत्तेजित होने लगती है। मस्तिष्क को प्रभावित करती है, और काम-कौतुक का ताना-बाना बुना जाने लगता है। नेत्र भी अनेक दृश्य देखना चाहते हैं, इसलिए परिभ्रमण के लिए पैरों को, पंखों को बाधित होना पड़ता है। अन्यान्य इन्द्रियाँ भी अपने-अपने ढंग की अनुभूतियाँ करती हैं। त्वचा को सर्दी-गर्मी की समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है और हलचलें आरम्भ हो जाती हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि शरीरगत सुख के लिए प्रयत्नों की शृंखला चलती रहती है। आराम से पड़े रहना भी इसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसंग का एक पक्ष है। सुख जिसमें भी शरीर अनुभव करे, मोटेतौर से उसके लिए 'प्राणी-समुदाय' को प्रयत्नरत रहते देखा गया है। अन्यान्य प्रयत्न तभी होते हैं, जब सुख के केन्द्र-बिन्दु में किसी प्रकार कोई परिवर्तन बन पड़े।

सुख को दूसरे शब्दों में लाभ भी कह सकते हैं। सुख क्षणिक होता है और लाभ स्थिर। किन्तु दोनों ही प्रेरणाप्रद हैं। कुछ करने के लिए, कष्ट सहने और पुरुषार्थरत होने की प्रेरणा तभी मिलती है, जब उसे करने में लाभ दीख पड़े। यह दूसरी बात है कि दृष्टिकोण के परिष्कृत या दूषित होने की स्थिति में किस सम्बन्ध में क्या सोचा या क्या माना गया।

इन दिनों लोग जो कुछ सोचते, मानते और करते हैं, उनके सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण यह बन गया है कि इस प्रकार कम प्रयास में अधिक लाभ मिलेगा। अनाचारों के पीछे यही मान्यता काम कर रही होती है। उसे बल इसलिए मिलता है कि इर्द-गिर्द के अनेकों लोग प्रायः अनीति अपनाते और मौज-मजा उड़ाते देखे जाते हैं। इतनी दूरदर्शिता सामान्यजनों में नहीं पाई जाती कि वह यह अनुमान लगा सकें कि कुछ ही समय उपरान्त इसका क्या परिणाम निकलेगा ? तात्कालिक लाभ के बदले दूरगामी हानियाँ उठाने का सिलसिला तो नहीं चल पड़ेगा। जुआरी, लवार, लफंगे, व्यभिचारी, अनाचारी चतुर तो होते हैं पर उनमें यह दूरदर्शिता नहीं होती कि कुछ ही समय उपरान्त इसके क्या परिणाम निकलने प्रारम्भ हो जाएँगे और वे कितने लम्बे समय तक लगातार चलते रहेंगे। इसी भूल में क्षणिक तात्कालिक सुख के लिए लोग अनर्थ करते और उसी में सुख या आराम का समावेश मानते रहते हैं। इस कारण सत्प्रवृत्तियों से, सद्गुणों से, सत्कर्मों से लोग वंचित रह जाते हैं। जिन्हें अपनाते हैं, वह तत्काल कैसा ही चमकदार क्यों न हो, परिणाम प्रस्तुत करते समय इतना घाटा देता है कि मानो कुछ के बदले कुछ अपना लिया गया है। अबोध बालक साँप या आग को चमकदार खिलौना मानकर पकड़ने का प्रयत्न करते हैं, पर उन बड़ों को क्या कहा जाय ? जो मात्र वर्तमान के आकर्षण को ही देखते हैं और उसकी भावी प्रतिक्रिया का अनुमान लगाने में अक्षम बने रहते हैं।

प्रस्तुत प्रचलन को देखते हुए यही उचित दीखता है कि उपयोगी कार्यों के लिए सत्परिणामों को इस प्रकार प्रयुक्त किया जाय कि वे कर्म और फल के बीच में जो अन्तर रहता है, उसके व्यामोह से भ्रमित होने से बच जाएँ।

प्रसंग विद्याध्ययन या शिक्षा अधिग्रहण का है। अशिक्षित लोग साधन या अवसर के अभाव में नहीं रहते, वरन् उसे निरर्थक तक मानते हैं। सोचते हैं जब बिना पढ़े ही दिन कट जाता है, तो व्यर्थ ही क्यों एक नया झंझट मोल लिया जाय। कई सोचते हैं कि पढ़ाई सिर्फ नौकरी के काम आती है। महिलाओं को घर-गृहस्थी के काम तक सीमित रहने की परम्परा है। जब नौकरी करनी नहीं तो पढ़ाई में बेकार समय क्यों गँवाया जाय। कई सोचते हैं कि घर में परम्परागत कृषि या व्यवसाय के साधन मौजूद हैं, तो पढ़ने-पढ़ाने में बच्चों का समय क्यों खपाया जाय ? पढ़ने पर उन्हें नौकरी के लिए दूर-दराज जाना पड़ सकता है। इससे तो घर पर बने रहना ही अच्छा है। ऐसी-वैसी बातें लोगों को सूझती रहती हैं। आयु बढ़ जाने पर तो वे सोचते हैं कि पढ़ने का समय निकल गया है। अब ढलती उम्र में पढ़ने में न तो शोभा है, न उपयोगिता। मूढ़मान्यताएँ ही शिक्षा प्राप्ति के उत्साह को ठण्डा कर देती हैं। पढ़ने की कई सुविधाएँ सामने रहने पर भी वे उसकी उपेक्षा करते हैं। यहाँ तक कि इस हेतु सेवा-सुविधा देने वालों का असहयोग-तिरस्कार तक करने लगते हैं। साधन जुटाने का प्रबन्ध तो दूसरे कर सकते हैं, पर जब ग्रहण करने वाले ही अरुचि दिखाते हों, तो कोई क्या करे ? यह सब जबरदस्ती तो कराया नहीं जा सकता। अधिकांश अशिक्षित अपनी या अभिभावकों के इसी विकृत सोच के कारण शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। जो इसके लिए उनकी सेवा-सहायता करना चाहते हैं, वे भी दूसरे पक्ष की ओर से उपेक्षा दिखाए जाने पर निराश होकर प्रयास छोड़ बैठते हैं। देखा गया है कि प्रौढ़ शिक्षा के निमित्त स्थापित स्कूलों में छात्रों की सर्वथा कमी ही बनी रहती है। यद्यपि उसी इलाके में इससे अधिक लोग अशिक्षित होते हैं, जिनके लिए अच्छा विद्यालय चल सके। कामों की जिम्मेदारी सिर पर हो तो भी दो घण्टे का समय तो सुविधानुसार निकल ही सकता है, पर उसे भी कोई निकालता नहीं। फिर शिक्षा सम्बन्धी प्रगति कैसे हो ? नई पीढ़ी के लिए विचारशील या साधनसम्पन्न ही कमाऊ न होने तक किसी प्रकार कुछ करते रहते हैं। बाद में घर का बोझ ऊपर आते ही उस दिशा से मुँह मोड़ लेते हैं।

अधिक स्कूल-कॉलिज खुलें, इस प्रस्ताव से किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, पर कठिनाई यह है कि सम्पन्नों के बच्चे तो ऊँचे स्तर के स्कूलों में प्रवेश पाने के लिए धक्का-मुक्की करते हैं, पर अधिकांश जन-समुदाय इस दिशा में उत्साह दिखाने में उपेक्षा ही बरतता है। देश में बढ़ती हुई निरक्षरता का एक बड़ा कारण यह भी है। इसलिए शिक्षा-सम्वर्द्धन की बात सोचने से पहले उसके प्रचार का आश्रय लेना चाहिए, जो हर किसी को पढ़ने के लिए समझा सके और उससे वंचित रहने पर होने वाली हानियों को भी उदाहरणों समेत इस प्रकार समझाए कि उपेक्षा, उत्सुकता में बदल सके। आरम्भिक शिक्षा वर्णमाला से नहीं, वरन् उस प्रचार से होनी चाहिए जिससे प्रभावित होकर शिक्षा योग्य हर व्यक्ति उसके लिए उत्साहित हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन की समस्याओं का समाधान कर सकने वाली संजीवनी विद्या का संक्षिप्त नाम ही विद्या है। यह शिक्षित-अशिक्षित सभी के लिए समान रूप से लाभदायक है। गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता की मात्रा का समुचित समावेश हुए बिना तो शिक्षित भी अशिक्षितों से कहीं अधिक अपनी और दूसरों की हानि करते हैं। भाषा-ज्ञान अथवा कुछ असंगत विषयों को पढ़ लेने भर से कदाचित सरकारी नौकरियों में उसका कुछ उपयोग हो भी जाता है, पर अशिष्टता, उच्छृंखलता, अस्त-व्यस्तता जैसे दुर्गुणों के रहते तो शिक्षा का यत्किंचित लाभ ही मिल पाता है। कई बार तो अनर्गल पढ़ने और अनैतिकता अपना लेने पर शिक्षित अपेक्षाकृत अशिक्षितों से भी भारी पड़ते हैं। भले ही वे अधिक कमा लेने और अधिक शेखी बघारने में किसी प्रकार कुछ सीमा तक सफल भले ही हो लें।

विचार-विपर्यय का इन दिनों जो वातावरण बना है, उससे अवांछनीयता, मूढ़मान्यता, अन्ध-परम्परा आदि के क्षेत्र तक ही सीमित समझा जाता है, पर वास्तविकता यह है कि समन्वय वाली शिक्षा के अभाव में मनुष्य व्यक्तित्व की दृष्टि से पिछड़ा या अनगढ़ ही रह जाता है। बाहर के लोगों को चतुरता के बल पर प्रभावित भी किया जाता है, पर दुर्बुद्धि के रहते अपनी और अपनों की जो हानि होती है, उसकी भरपाई किसी प्रकार नहीं हो सकती।

अशिक्षा में रम गए वातावरण में नया प्रकाश परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षित बनने और अशिक्षित रहने की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों को नये सिरे से जनमानस में उतारने का प्रयत्न किया जाय। उत्सुकता बढ़ेगी तो उत्साह भी उभरेगा और जो अनुपलब्ध है, उसे प्राप्त करने के लिए सब ओर से दबाव पड़ने लगेगा। इस सन्दर्भ में तुलनात्मक प्रकिया के उदाहरणों को प्रस्तुत करना पहला काम होना चाहिए। यदि उपयोगिता समझी और उत्कण्ठा जग सके, तो साधनों के अभाव को चुनौती देते हुए भी व्यक्ति आगे बढ़ सकता है। उत्कण्ठा और इच्छाशक्ति का मिला-जुला संकल्प यदि अपनी प्रखरता का परिचय देने लगे तो समझना चाहिए कि असफलता और कठिनाई की बहुत बड़ी मंजिल पार कर ली गई।

शिक्षा सम्वर्द्धन के साधन जुटाना तो आवश्यक है, पर अपने देश में तो यह और भी अधिक आवश्यक है कि जिन लोगों का मानस शिक्षा का माहात्म्य समझ नहीं सका है, उनमें उत्साह उभारने के लिए लाभदायक पक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाय कि उपेक्षा को उत्सुकता में परिवर्तित किया जा सके।

शिक्षितों की नैतिक जिम्मेदारी

स्वस्थ मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि अस्वस्थों की कठिनाई समझें और उसे नीरोग बनाने के लिए परिचर्या, परमार्थ-सहायता, चिकित्सा आदि के द्वारा पिछड़ों की सहायता करें। दुर्घटना हो जाने पर यदि समर्थ लोग भावनाशील हों तो अविलम्ब सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं। बच्चों की असमर्थता को ध्यान में रखते हुए बड़े उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने में संतोष और हर्ष का अनुभव करते हैं। इसी मानवी भावचेतना से प्रेरित होकर धनिकों को निर्धनों की सहायता करने के लिए, कोई प्रबन्ध करने के लिए, अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होना पड़ता है। पशु-पक्षी तक सहचरों पर मुसीबत आने पर परस्पर इकट्ठे होकर प्रतिकार का उपाय करते देखे गए हैं।

धनी और निर्धन के बीच पाए जाने वाले अन्तर को, अनौचित्य को सभी जानते हैं और समता के पक्षधर यह प्रयास करते हैं कि किसी प्रकार यह विषमता जितनी दूर हो सके, की जानी चाहिए। इसके लिए कुछ बड़े कदम उठाने के लिए धनिकों पर ही दबाव डाला जाता है। इसी स्तर की विषमता में शिक्षितों और अशिक्षितों में अन्तर भी समझा जाना चाहिए और यह प्रयत्न होना चाहिए कि अपने क्षेत्र के अमसर्थों की गई-गुजरी स्थिति को सुधारने के लिए अपना विशेष कर्त्तव्य मानें। पहलवान लोग दूसरों को बलवान बनाने के लिए व्यायामशालाओं की स्थापना करते हैं। संगीतज्ञ एकाकीपन में संतुष्ट नहीं रहते और वे अपने जैसों को ढूँढ़कर एक संगीत मण्डली बना लेते हैं। चीटियाँ, दीमक और मधुमक्खियाँ तक अपने वर्ग वालों के साथ सहयोग के सम्बन्ध बनाती हैं। शिक्षितों की भी अशिक्षा दूर करने में ऐसी ही भूमिका होनी चाहिए।

जाति-पाँति के नाम पर चलने वाली ऊँच-नीच की मान्यता कितनी अदूरदर्शितापूर्ण है, इसे सभी जानते हैं और प्रयत्नपूर्वक उसे दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में ऊँची जाति वालों पर विशेष दबाव पड़ रहा है। नर और नारी की असमानता को भी सामाजिक प्रगति में असाधारण रूप से बाधक माना जाने लगा है और दूर करने के लिए पुरुष वर्ग को हठवादिता छोड़ने के लिए और समता की स्थापना में सहायक होने के लिए विशेष रूप से कहा जा रहा है। यों जाति और लिंग के क्षेत्रों में बरती जाने वाली असमानता के विरुद्ध कानून बना हुआ है, पर उतने भर को पर्याप्त नहीं माना जा रहा। निरंतर यह जोर दिया जा रहा है कि सुविधाजनक स्थिति में रहने वाले पहल करें और पिछड़े वर्ग को समानता की स्थिति में लाने के लिए प्रायश्चित स्तर के प्रबल प्रयास करें।

अशिक्षा के क्षेत्र में भी यही आदर्श अपनाया और प्रयास चलना चाहिए। इस सन्दर्भ में सरकार का, समाज का, अभिभावकों का, छात्रों का अपना-अपना कर्त्तव्य है। जो उन्हें निबाहना ही चाहिए। किन्तु बात इतने भर से समाप्त नहीं हो जाती। एक बड़ा वर्ग है, जिसे इस विषमता को दूर करने के लिए अपनी महती भूमिका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निभानी चाहिए और वह है—शिक्षितों का समुदाय। उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि उस सम्पदा से रहित लोगों के पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए उदारता अपनाएँ और अपने पास जो विशेष है, उसे अभावग्रस्तों तक पहुँचाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न करें। इस सन्दर्भ में कृपणता न दिखाएँ।

हर किसी के पास थोड़ा-बहुत फालतू समय रहता है। कोई भी ऐसा नहीं जिसे अहर्निश काम ही करना पड़ता हो। विनोद, विश्राम में कुछ न कुछ समय लगता ही है। इस उद्देश्य की पूर्ति काम बदलने से भी हो जाती है।

अशिक्षितों को शिक्षित बनाने की प्रक्रिया ऐसी है, जिसे उच्चकोटि का परमार्थ कहा जा सकता है। अन्य प्रकार के दान ऐसे हैं, जिनका प्रतिफल अन्य योनियों में भी सुविधा-साधनों के रूप में मिल सकता है। किन्तु विद्या को तो मनुष्य जीवन में ही उपलब्ध किया जा सकता है, जिसने विद्या दान के रूप में ब्रह्म दान दिया है, वह मनुष्य शरीर भी प्राप्त करके रहेगा और दान के अनुरूप विद्यावान भी बनेगा। कीचड़ में फँसे हुए को घसीटकर किनारे पर ले आना पुण्य है, तो अशिक्षा के कीचड़ में से निकालकर स्वच्छ हवा में साँस लेने जैसी स्थिति में ले आना क्या वैसा ही परमार्थ नहीं माना जाएगा ?

ज्ञान निजी पुरुषार्थ भाव का फल नहीं है। उसे वर्तमान रूप में लाने तक के प्रयास में पीढ़ी-दर-पीढ़ी असंख्यों का योगदान जुड़ता आया है। इसलिए विद्या को सामाजिक अनुदान माना जाता है। उसे प्राप्त करने में अध्यापकों, पुस्तकों, पुस्तक-लेखकों, विद्यालय व्यवस्था बनाने वालों, अभिभावकों आदि के अनेकों प्रयास एवं श्रम-सहयोग जुड़ा रहता है। इसलिए शिक्षा को सामाजिक अनुदान माना गया है। वह एक प्रकार का ऋण है। शास्त्रों में इसकी विद्या ऋण के रूप में चर्चा की गई है। इसे भी अन्य ऋणों की तरह चुकाया जाना आवश्यक है अन्यथा ऋण मार बैठने वालों की जो दुर्गति होती है वही उनकी भी होती है, जो स्वयं तो दूसरों की सहायता से विद्या लाभ ले सके किन्तु बदले में अन्यों को शिक्षित बनाने के लिए ऋण मुक्ति जैसे कर्त्तव्यपालन में आना-कानी करने लगे।

विद्या ऋण चुकाने के लिए प्रयत्न करना भी ऐसा ही है जैसा कि पालन-पोषण का अनुदान देने वाले अभिभावकों की सेवा करना। समूचा समाज एक ही सूत्र-शृंखला में बँधा हुआ है। एक से लिया हुआ ऋण किसी दूसरे जरूरतमंद को चुका देने से भी ऋण मुक्ति हो जाती है। किसी छात्र को कहीं से छात्रवृत्ति मिली, वह पढ़-लिखकर कमाने लगा हो, तो उसका कर्त्तव्य है कि अन्य जरूरतमन्द छात्रों की सहायता करके उस ऋण को चुकाए, जो उसे छात्रवृत्ति के रूप में कहीं से मिला था। विद्यादान के सम्बन्ध में भी यही बात है, जिसने कहीं से भी ज्ञान प्राप्त किया है, उसका मौलिक कर्त्तव्य है कि अशिक्षित वर्ग के उस अभाव को दूर करने में प्रयत्न करे और सेवा-धर्म निबाहे।

यदि हर शिक्षित कुछ अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में अपना समय लगाता है, तो उसका प्रतिफल ऋण मुक्ति के रूप में तो मिलेगा ही, पिछड़ेपन को दूर करने में पुण्य अर्जित करने का श्रेय भी है, जिसकी परिणति सब प्रकार श्रेयस्कर ही हो सकती है।

निरक्षरता का अभिशाप दरिद्रता से भी बढ़कर है। साधनों के अभाव में भी शरीर की रक्षा किसी प्रकार होती रह सकती है, किन्तु शिक्षा के अभाव में मनुष्य उन अगणित जानकारियों से वंचित रह जाता है, जो सभ्य समुदाय का सदस्य कहलाने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। बुद्धि का समन्वय हुए बिना मात्र शारीरिक श्रम सीमित आजीविका ही दे सकता है, पर यदि जानकारियों का बाहुल्य है, तो कठिनाइयों से निपटने और अवगति से उबरने के अनेक उपाय सोचे और जाने जा सकते हैं। समय की माँग अब इतनी अधिक बढ़ गई है कि समुचित जानकारी का, समझदारी का आश्रय लिए बिना गुजारा नहीं। बुद्धिबल बढ़ाने में शिक्षा का अवलम्बन आवश्यक है। बहुमुखी जानकारियाँ प्राप्त करने में अब एकमात्र उपाय ही शेष रहा है कि साहित्य के माध्यम से विचारशीलता अर्जित की जाय। उसके सहारे अपनी सूझ-बूझ और कुशलता को बढ़ाया जाय। ज्ञान सम्पदा से वंचित व्यक्तियों को मानसिक दृष्टि से पिछड़ा ही माना जाएगा, भले ही उसे गुजारे के कोई साधन ढूँढ़ निकालने में यत्किंचित सफलता ही क्यों न प्राप्त हो गई हो। जिस युग में हमें रहना पड़ रहा है, उसकी समस्याओं, आवश्यकताओं और समाधानों को समझने के लिए शिक्षा की एक प्रकार से अनिवार्य आवश्यकता हो गई है, इतनी अनिवार्य कि उससे इन्कार किया ही नहीं जा सकता।

यों हर नागरिक को शिक्षित होने का अवसर प्रदान करना, सरकार और समाज का भी कर्त्तव्य है, पर अपने देश में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ बढ़ाए गए प्रयत्न भी कम ही पड़ते जा रहे हैं। अशिक्षितों का अनुपात बढ़ता ही जा रहा है। यद्यपि शिक्षा की मद में खर्च बढ़ाने, स्कूल खोलने आदि के प्रयत्न यथासम्भव चल ही रहे हैं। जनसंख्या की वृद्धि को देखते हुए सभी नागरिकों को शिक्षित बना सकने के लिए मात्र सरकार पर निर्भर रहने से काम नहीं चलेगा। इसमें स्वेच्छा, सहयोग की एक बड़ी मात्रा का जुड़ना आवश्यक है। तभी सन्तुलन बिठाया जा सकना सम्भव होगा।

युग धर्म के अनुरूप ऐसा अभियान तेजी से चलना चाहिए, जिसमें शिक्षा की उपयोगिता से अपरिचित लोगों को उस अति महत्त्वपूर्ण जानकारी द्वारा पढ़ने के लिए उत्सुक और तत्पर बनाया जा सके। इसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि हर शिक्षित अपने आपको एक स्वेच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवी अध्यापक अनुभव करे और अपने सम्पर्क क्षेत्र में जिन्हें भी अशिक्षित स्तर का पाए, उन्हें पढ़ाने के लिए अपने प्रभाव का पूरा-पूरा उपयोग करे। पढ़ाने में बिना किसी प्रतिदान की अपेक्षा किए, सेवा भाव से इस हेतु समय निकालें कि अशिक्षितों की संख्या दिन-दिन घटती चली जाय। यह कार्य विद्यार्थी भी कर सकते हैं। गर्मियों में प्रायः दो महीने की छुट्टी होती है। यदि कम से कम दो को साक्षर बनाने के लिए उस समय को नियोजित किया जा सके और अरुचि वाले क्षेत्रों में उनके घर जाकर अपना सेवा निवेदन प्रस्तुत किया जाय, तो अपेक्षा यही की जानी चाहिए कि उस अनुरोध को ठुकराया न जाएगा। विद्यार्थी, अध्यापक, रिटायर एवं उदारचेता सेवाभावी जन यदि मिल-जुलकर निरक्षरता के अभिशाप को, देश के माथे पर लगे कलंक के टीके को हटाने का प्रयत्न करें, तो उसके अतीव श्रेयस्कर परिणाम सामने आ सकते हैं।

बुद्धि विपर्यय को उलटने की विधा

मनुष्य को अन्यान्य प्राणियों की तुलना में असाधारण संरचना वाला शरीर और अद्भुत प्रतिभाओं का भण्डार उपलब्ध हुआ है। यह न तो सृष्टा का पक्षपात है और न अनायास हाथ लगा संयोग ही है। उतना बहुमूल्य और अनन्त विभूतियों से भरा-पूरा जीवन मिलने के साथ ही अनेकानेक उच्चस्तरीय कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भी कंधे पर लादे गए हैं, जिनके नियोजन हेतु उसे उच्चस्तरीय आदर्शवादिता अपनानी होती है। दिव्य अनुबन्धों और उपलब्धियों के सम्बन्ध में संयम, अनुशासन बरतना होता है, ताकि वह न केवल जातियों के लिए वरन्, प्राणिमात्र के लिए स्नेह-सहयोग का परिचय दे सके। सर्वतोमुखी प्रगति का कर्णधार भी बन सके और प्रगति का पथ-प्रशस्त करते हुए सार्वजनिक सुख-शान्ति का सरंजाम जुटा सके।

देखा जाता है कि सत्ता प्राप्ति के अहंकार में उद्धत आचरण करते एवं उच्छृंखलता बरतते हुए सत्ताधीशों के क्रियाकलापों का सिलसिला चलता है। एक समर्थ को उद्धता बरतते देखकर उसका स्वाद चखने के लिए अनेकों का मन ललचाने लगता है। पतन सरल है। प्रकृति प्रवाह भी उसमें सहायता करता है, किन्तु उत्कृष्टता वरण करने में संयम ही नहीं बरतना पड़ता, वरन् दिव्य प्रेरणाओं को जगाने और अनुकरणीय, अभिनन्दनीय आचरण करने के लिए विवश एवं उत्कृष्टता अपनाए रहने का साहस भी प्रदर्शित करना पड़ता है। इसी स्थिति में वह जीवन का उद्देश्य और सृष्टा का मनोरंजन पूरा कर पाता है, पर वैसा कोई विरले ही कर पाते हैं। अधिकांश तो ऐसा जीवन जीते हैं, जिसे नर-वानरों जैसा कहा जा सके। उनके चिन्तन, चरित्र में उन तत्त्वों का समावेश कम ही दीखता है, जिसके लिए आशा की जाती और अपेक्षा कर ली जाती है। परिणाम यह होता है कि स्वयं को जहाँ भटकाव की प्रताड़ना सहनी पड़ती है, वहाँ दूसरों के लिए भी ऐसी परम्पराएँ बनती हैं, जिस पर चलने से पतन और पराभव ही हाथ लग सकें। लोग एक-दूसरे का अनुकरण करते और अंधी भेड़ों के एक के पीछे एक चलती रहने पर खड्ड में गिर मरने का उदाहरण बनते हैं। इन दिनों का बुद्धि विपर्यय यही है। इसी को अनाचरण भी कह सकते हैं। व्यवहार की समीक्षा करने पर दुःख और आश्चर्य ही होता है कि उच्च पदासीनों द्वारा इस प्रकार का भ्रष्टाचार किस कारण अपनाया गया ? जब निर्वाह के साधन रूप में प्रकृति सम्पदा का भरपूर उपयोग कर सकने की सुविधा उसे प्राप्त है, तो फिर अनाचार अपनाने की, स्तर से इतना नीचे उतरने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?

इसे विडम्बना ही कहना चाहिए कि जिससे विशेषतया प्रतिभाशाली ग्रस्त हैं और सामान्यजनों को अपने पीछे चलने के लिए अनायास ही उत्तेजित करते हैं। छूत की बीमारी की तरह दुश्चिन्तन आज का सहज स्वभाव बन गया है, साथ ही आचरण में इतनी भ्रष्टता भर गई है मानो यही मनुष्य की नियति है।

मैल को साबुन से हटाया जाता है। कीचड़ साफ करने के लिए कड़ी बुहारी और अच्छी जलधार चाहिए। गिरे को उठाने के लिए अपेक्षाकृत ऊँचे स्थान पर खड़ा होना पड़ता है। अध्यापक वही हो सकता है जो विद्यार्थी की तुलना में अधिक प्रवीण, पारंगत हो। इस दृष्टि से भ्रष्टचिन्तन के कारण दुष्ट अनाचरण पर उतारू लोगों को सही मार्ग पर ले चलने की जिम्मेदारी उन पर आती है, जो अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति में हों। इसके बिना नैतिक क्षेत्र में उत्कृष्टता अपनाने का प्रशिक्षण देने वाले **'पर उपदेश कुशल'** बनकर रह जाते हैं। लोकमानस में उत्कृष्टता का समावेश करने की महती आवश्यकता पूरी कर सकने वाले ऐसे व्यक्ति चाहिए, जो स्वयं को अन्यान्यों की तुलना में अधिक आदर्श एवं उत्कृष्ट सिद्ध कर सकें। जहाँ तक धर्म-धारणा का सम्बन्ध है, उसे लोक प्रचलन में पारंगत करा सकने में ऐसे ही लोग समर्थ होते हैं। दुर्भाग्य इसी बात का है कि कथनी और करनी में समग्र रूप से मानवी दायित्वों का निर्वाह करते हुए बहुत कम लोग दीख पड़ते हैं। इसी अभाव के कारण सुधारवादी प्रक्रिया जाम होकर रह जाती है।

मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं, आदतों और गतिविधियों को बदलना कठिन पड़ता है। विशेषतया तब, जब उसे निष्कृष्टता से विरत करके उत्कृष्टता के साथ जोड़ना हो। यह सब मात्र पढ़ने-समझने भर से सम्पन्न नहीं होता। इसके लिए इतना दबाव पड़ना चाहिए, जितना कि लोहे को किसी दूसरी शक्ल में बदलने के लिए आवश्यक होता है। इस हेतु ऐसे उदाहरण सामने होने चाहिए, जो अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकें कि परिष्कृत जीवन जी सकना न तो असम्भव है और न अव्यावहारिक। उसे श्रेष्ठता, वरिष्ठता के ढाँचे में आसानी से ढाला जा सकता है और उसका लाभ आत्मसंतोष, जनसम्मान तथा प्रामाणिकता के आधार पर उच्चस्तरीय प्रगति करने, भावना बनाने वाले दैवी अनुग्रह की तरह नकद धर्म के रूप में हाथों-हाथ मिल सकता है।

ऐसे ही व्यक्तियों का परामर्श लोगों को विश्वस्त प्रतीत होता है, अन्तःकरण में उतरता है और अनुकरण के लिए कटिबद्ध होता है। विषय चरित्रनिष्ठा का हो या शिल्प-संगीत का, उसके लिए आवश्यक यह है कि शिक्षक को अपने विषय में प्रवीण, पारंगत होना चाहिए। इससे कम में न तो शिक्षार्थी प्रभावित होते हैं और न वे बातें गले उतरती हैं। अनुभवहीन-अनभ्यस्तों द्वारा ऊँची उड़ान के रूप में, कथा-गाथा के रूप में कुछ भी कहा जाता रहे, लोग उसके अनुसरण हेतु तैयार नहीं होंगे। इन दिनों भी पूजा-पाठ के समय किन्हीं धर्म-ग्रन्थों का पाठन, वाचन भी सम्मिलित रहता है। मुद्दतों तक आए दिन पढ़ा दुहराया जाता है, फिर भी देखा जाता है कि वह सब लकीर पीटने की तरह एक क्रिया-कृत्य मात्र बनकर रह जाता है। उसका एक अंश भी जीवनचर्या में अपना स्थान नहीं बना पाता। सन्त-महन्तों के, कथावाचकों के प्रवचन आए दिन सुनने को मिलते रहते हैं, पर सुनने वाले मात्र कथन प्रतिपादन की शैली भर की समीक्षा करके बात समाप्त कर लेते हैं। यदि ऐसा न होता तो लेखनी और वाणी द्वारा उत्कृष्टता की पक्षधर क्रान्ति कर सकना सम्भव हो गया होता, किन्तु देखते हैं कि चक्का जहाँ का तहाँ जाम है। ऐसे लोग कर्मक्षेत्र में दीख ही नहीं पड़ते, जो अपनी करनी से ही नहीं, आचरण और व्यवहार द्वारा दूसरों को अपने जैसा बना सकने में सफल हो सकें। अपने प्रतिपादन को कार्यरूप में परिणति होते देख या दिखा सकें। यदि इतना न बन पड़े तो उत्कर्ष प्रयासों की उपयोगिता ही क्या रह गई ?

इस समस्या का समाधान एक ही है कि जो लोक मानस को परिष्कृत, उदारचेता एवं आदर्श बनाना चाहते हैं, वे अपने को वैसा बनाकर दिखाएँ। इस प्रकार का दिखावा होता तो है, पर उसमें छल ही छल भरा रहता है, जो छिपाए छिपता नहीं, निकटवर्तियों की जानकारी से आगे बढ़कर कानोंकान असंख्यों तक जा पहुँचता है, फिर यह भी नहीं हो सकता कि बनावट को लम्बे समय तक पर्दे के पीछे छिपाए रख सकें। छद्म जब प्रकट होता है तो उसकी प्रतिक्रिया और भी बुरी होती है। लोगों का दूसरे सुधारकों पर से भी विश्वास उठ जाता है और आशंका तथा संकट के वातावरण में ऐसा कुछ बन नहीं पड़ता, जिसमें निकृष्टतता के साथ घुले हुए प्रचलनों को उलट सकना सम्भव हो।

जीवनोत्कर्ष की शिक्षा को ही संजीवनी विद्या कहते हैं। इसके उपदेशक को ऐसा साँचा बनना पड़ता है, जिसके सम्पर्क में आने वाले पदार्थ उसी आकृति में ढलते चले जाएँ। अनाचारी, व्यभिचारी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि कथनी और करनी एक हो तो उसका भला-बुरा प्रभाव सम्पर्क क्षेत्र में पड़ेगा अवश्य। जब अनाचारियों के गिरोह बन जाते हैं और उनके चलाए कुचक्र में अनेकों फँस जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि अपने व्यक्तित्व को हर कसौटी पर प्रामाणिक सिद्ध करने वाले अन्यान्यों को अपने मार्गदर्शन में चलाने के लिए अनेकों सामान्य जन विनिर्मित न कर सकें, पर वैसा हो नहीं रहा है। इसका कारण स्पष्टतः एक ही है कि ऐसे निस्वार्थ और आदर्शवादी सेवा-साधकों का सर्वथा अभाव दीख पड़ता है, जो वाचालता से आगे बढ़कर अपनी उत्कृष्टता से दूसरों के अन्तःकरण में प्रवेश पा सकें और ऐसे प्रचलनों को गति दे सकें, जो लोकचिन्तन और लोकव्यवहार में आदर्शवादी परम्पराओं को प्रोत्साहित एवं अग्रगामी बन सकें।

प्राचीनकाल में जब यह सब नहीं था तो जनसाधारण को भी शालीनता, सदाशयता अपनाते हुए देखा जाता था और कर्तव्य बोध का हर क्षेत्र कार्यान्वित किया जाता था। सतयुग के रूप में उसी भूतकाल को श्रद्धासिक्त स्मरण किया जाता है। यदि वर्तमान अनौचित्य अखरता है, तो उसे बदलने के लिए प्रबल प्रयास करने का उत्साह हो तो उसका आरम्भ अपने आप से करना चाहिए, जिसे देख-परखकर लोग इस बात का विश्वास कर सकें कि मानवी गरिमा के अनुरूप जीवनयापन कर सकना उतना कठिन नहीं है, जितना कि समझा जाता है।

अनाचार अपनाकर दुर्जन कुछ न कुछ तात्कालिक लाभ उठा लेते हैं। इतना भर उदाहरण असंख्यों को वही दिशाधारा अपनाने के लिए बाधित करता है। नई युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करने के लिए साहस के धनी यदि कार्यक्षेत्र में उतरें, तो उन्हें इसके लिए धुँआधार भाषण करने की कला सीखने की आवश्यकता पड़ेगी। अपने वर्तमान स्वभाव और पिछले दिनों के इतिहास को खुली पुस्तक की तरह प्रस्तुत करने भर से ऐसा बहुत कुछ बन पड़ सकता है, जिसमें उत्कृष्टता का पक्षधर वातावरण बन सके और अनेकों को उस राजमार्ग पर उत्साहपूर्वक चलते हुए देखा जा सके।

शिक्षित, अशिक्षितों को ढूँढ़ें और उकसाएँ

समर्थ लोग दवा के लिए अस्पताल चले जाते हैं, पर जो असमर्थ होते हैं, उनके लिए डॉक्टर को भी मरीज के घर पहुँचना पड़ता है। लोग बाजार में सौदा खरीदने जाते हैं, पर जो महिलाएँ घर से बाहर नहीं निकल पातीं, उनके लिए फेरी वाले जरूरी चीजें धकेल गाड़ी पर लादकर मुहल्ले-मुहल्ले पहुँचते हैं। जिन्हें शिक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का महत्त्व मालूम है, जो उसकी उपयोगिता, आवश्यकता समझते हैं, वे स्कूलों में भर्ती होने से लेकर अध्यापकों के घरों तक जा पहुँचने का रास्ता निकालते हैं। इन दिनों स्थिति ऐसी ही है, जिसमें अधिकांश लोगों के मन में से पढ़ने की उत्सुकता चली गई है। उन मानसिक रूप से असमर्थों के यहाँ उन उदारचेताओं को जाना पड़ेगा, जो अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि उपलब्धियों को मिल-बाँटकर खाया जाय। अमीरों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पड़ौसी भूखे तो नहीं सो रहे हैं। जो इतनी भी उदारता नहीं अपनाते, उन्हें निष्ठुर कहा जाता है। यों यह अपनी इच्छा की बात है कि गिरों को उठाने, उठों को आगे बढ़ाने में किसी प्रकार की मदद करें न करें। कानून इसके लिए मजबूर नहीं करता। पर आत्मा का अपना कानून है, जो दुःख बँटाने और सुख बाँटने के लिए बेतरह कचोटता है। जो उस आवाज को दबोचते, दुत्कारते रहते हैं, उनसे परमात्मा भी रूठा रहता है। विश्वात्मा पूछता है कि जब बादल—पेड़, बीजों का उत्पादन, परमार्थ का ध्यान रखते हैं, पशु-पक्षियों तक दूसरों के काम आते हैं, तो मनुष्य ही एक ऐसा क्यों हो, जिसे अंशदान निकालना भारी पड़े।

शास्त्रकार कहते हैं कि जो अकेले खाता है, चोर है। जब कहीं से हमें भी अनुदान रूप से ही बहुत कुछ मिलता रहा है, तो विद्यादान जैसे सुगम कार्य को हाथ में लेते हुए ही क्यों हिचकिचाना चाहिए। सरकारी दफ्तरों की बात अलग है कि जिसकी गरज पड़े वह वहाँ पहुँचे। पर पवन तो हर जीवधारी के पास बिना बुलाये ही पहुँचता है और साँस लेने का अवसर देकर उनकी प्राण रक्षा करता है। नदिया स्वयं बहती और बादल स्वयं बरसते हैं। उन्हें जरूरतमंदों का ध्यान जो रहता है, जिसके भीतर ऐसी उमंग न उठती हो, उसे पाषाण-हृदय के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा ?

यों विद्या प्रत्यक्षतः कोई सम्पत्ति नहीं है, पर यह भी निश्चित है कि उसके आधार पर विकसित हुआ व्यक्तित्व अनेक स्तर की उपलब्धियाँ हस्तगत करने में समर्थ होता है। जबकि अशिक्षितों को बौद्धिक दृष्टि से अनगढ़ ही रहना पड़ता है। शारीरिक श्रम के आधार पर ही निर्वाह की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस दयनीय विषमता का अन्त होना ही चाहिए। आर्थिक समता का समर्थन अर्थशास्त्री मुक्त कण्ठ से करते हैं। समाजवाद, साम्यवाद इसके प्रबल समर्थक हैं। प्रजातन्त्र में भी एक सीमा तक ही निजी सम्पदा की छूट है। अतिरिक्त आय को तो कई प्रकार के टैक्स लगाकर सरकार द्वारा समाज हित में वापस ले लिया जाता है। धर्मदर्शन में दान-पुण्य की महत्ता इसीलिए गाई गई है कि जिसके पास जो बढ़ा हुआ है, वह उसे दूसरे अभावग्रस्तों को बाँट देंगे। सृष्टा का यही क्रम है। सूरज, चाँद, सितारे यही करते हैं। पृथ्वी की उदारता यदि न रहे, कृपणता अपना ले तो समझना चाहिए कि आहार संकट की चपेट में आकर मनुष्य समेत हर जीवधारी को भूख से तड़पकर मरना पड़ेगा। कृतज्ञता की, ऋण मुक्ति की, उदारता की परम्परा शिथिल या समाप्त हो जाय, तो इस संसार में नीरवता, निस्तब्धता के अतिरिक्त और कुछ शेष न रहेगा। प्रकृति की इन प्रेरणाओं को मनुष्य भी अपनाते रहें, इसी में उनका कल्याण है। संचय ही करता रहे तो पेट आहार के दबाव में उमड़ी हवा की भरमार से और मलाशय मूत्र-विष्ठा का संचय बढ़ते जाने से स्वयं ही फट पड़ने की स्थिति तक पहुँच जाएगा। यह भूल मनुष्य जैसे विचारशाली को तो करनी ही नहीं चाहिए। धन-दान की जिनमें सामर्थ्य नहीं है, वे भी समयदान तो कर ही सकते हैं। अनगढ़ों को कुछ ऊँची बात न सूझ पड़े तो वे क्षमा के पात्र भी हो सकते हैं, पर जो शिक्षित होते हुए भी दूसरों को अशिक्षा से उबारने की जिम्मेदारी से इन्कार करते रहते हों, उनके लिए क्या किया जाय ?

बच्चों को समझाकर, धमकाकर, लालच दिखाकर स्कूल भेजा जा सकता है, पर जिनकी ढेरों आयु आंशिक स्तर के ही अभ्यास करते रहने के कारण ज्ञान-विज्ञान की उत्कण्ठा प्रसुप्त हो जाय, मूर्च्छित स्थिति में चली जाय तो इसमें आश्चर्य भी क्या है ? समाज में यदि हर किसी को शिक्षित बनाने के लिए दबाव या प्रचलन रहा होता तो सम्भवतः सभी लोग उसी प्रवाह में बहते और परम्परा का निर्वाह करते हुए पढ़ने के लिए किसी न किसी प्रकार अवसर निकाल लेते, पर जब दीख पड़ता है कि मात्र पढ़े-लिखे थोड़े ही हैं तो समझ लिया जाता है कि थोड़े से अमीर बनने की तरह से थोड़ों के ही भाग्य में विद्या पाना लिखा होगा। वनवासी, कबीले तो शिक्षा का महत्त्व समझने तक से इन्कार कर देते हैं। उन्हें सहमत करना तो आगे की बात है।

इन परिस्थितियों में शिक्षितों के लिए स्वयं का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे स्वयं अशिक्षितों की तलाश करें, उनके पास पहुँचें। सम्पर्क साधें और विचार-विनिमय इस उद्देश्य से आरम्भ करें कि वे पढ़ने का महत्त्व स्वीकार सकें, यदि इसके लिए कोई उनकी सहायता करता है, तो उसे स्वीकार करने से इन्कार न करें।

अब से प्रायः एक सौ वर्ष पहले देश में चाय पीने की प्रथा न थी। चाय व्यवसाय में कम ही लोगों को रोटी मिली थी। चाय कम्पनियों के योजनाकारों ने एक उपाय खोजा। कर्मचारी गर्म चाय की नन्हीं-सी केतली हाथ में लेकर घरों में पहुँचते तथा मुफ्त में एक कुल्हड़ चाय पिलाते और कहते कि यदि उन्हें पसन्द आई है तो एक पैसे कीमत का चाय का पैकेट खरीद लें और उससे चार कप अपने आप बना लें। यह प्रचार घर-घर से लेकर हाट-बाजारों तक में पूरी तत्परता के साथ चलाया गया। लोगों को चस्का लगा और चाय की खपत होने लगी। आज तो ऐसी स्थिति है कि अधिकांश लोग चाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के आदी हैं। इस व्यापार में लाखों लोग कार्यरत हैं। चारपाई छोड़ते ही चाय की माँग होती है। आतिथ्य सत्कार का, सुस्ताने का भी चाय ही माध्यम बन गई है।

शिक्षा के प्रचार में कितनों की ही जिम्मेदारी है। अनपढ़ों में उत्साह भरा जाय, सरकार पैसा खर्च करे, समाज में उपयुक्त स्थान और सम्मान पाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पग-पग पर दिखाई पड़े, किन्तु बात इतने भर से समाप्त नहीं होती। इस आन्दोलन में एक बड़ा पक्ष शिक्षित समुदाय का है। वे अपने दैनिक आवश्यक कार्यों की सूची में हो इस बात को भी सम्मिलित कर लें कि किन्हीं या किसी अशिक्षित को शिक्षित बनाने के लिए उनका प्रयास हर दिन चलता रहेगा। भले ही इस तलाश के लिए मुहल्ले-पड़ौस में ही क्यों न जाना पड़े ? ढूँढ़ने पर भगवान भी मिल जाते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि अपने या पराए घर में कोई ऐसे प्रौढ़ नर-नारी न मिलें, जिन्हें शिक्षा का महत्त्व समझाया और उसके लिए उत्साह दिखाने हेतु सहमत न किया जा सके।

आरम्भ में चस्का लगाने के लिए प्रारम्भिक पुस्तक, स्लेट, पेन्सिल आदि अपने पास से देना पड़े तो वह भी करना चाहिए। अपनी सुविधा का ध्यान रखते हुए भी समय और स्थान निर्धारित करना चाहिए। आरम्भ में यह समझना चाहिए कि गरज पढ़ाने वाले की ही पड़ी है, क्योंकि उच्चतम स्तर का पुण्य-परमार्थ कमाने का सुयोग उसी को प्राप्त करना है। रोजगार जहाँ से मिलता-सधता है, वहाँ दौड़-दौड़कर जाते हैं। मंदिरों, घाटों और गिरिजाघरों में लोग अपनी आकांक्षा पूरी करने जाते हैं। चुनाव के दिनों में लोग वोटरों के घरों पर कई-कई बार चक्कर लगाते हैं और कई प्रकार की मीठी-मीठी बातें करके उन्हें अपने पक्ष में वोट डालने के लिए मनाते हैं। ठीक यही नीति शिक्षकों को अपने छोटे भाइयों को खोज निकालने के लिए अपनानी चाहिए और एक बार मना कर देने पर भी मान-अपमान का ध्यान न करना चाहिए। थोड़े-थोड़े समय बाद किसी बहाने सम्पर्क साधते रहना चाहिए और मतलब की बात इस रूप में प्रस्तुत करते रहना चाहिए, जिससे अन्त में उन्हें सहमत होना ही पड़े। यह कला बीमा कम्पनी के एजेण्टों से भी सीखी जा सकती है।

अभी वह समय नहीं आया कि प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र बना देने, बोर्ड टाँग देने और एक अध्यापक बिठा देने भर से काम चल जाय। शिक्षार्थियों की भीड़ लग जाय और शिक्षा केन्द्र सफलता के साथ चलने लगें और शिक्षा संस्थायें अपनी सफलता की शेखी बघारने लगें। यह समय आने में तब तक देर ही होती रहेगी, जब तक कि सर्वसाधारण के गले यह तथ्य न उतारा जाय कि अशिक्षा, दरिद्रता से भी बुरी है। उसमें आलस्य, प्रमाद बरतने के कारण इतना घाटे में रहना पड़ता है जिसकी क्षतिपूर्ति और किसी प्रकार न हो सके। इस प्रगतिशीलता के जमाने में अशिक्षितों को पग-पग पर तिरस्कृत होना पड़ता है और घाटा उठाना पड़ता है। उससे बचने के लिए प्राइमरी स्तर की शिक्षा तो हर किसी को प्राप्त कर ही लेनी चाहिए। भले ही उसकी आयु कितनी ही अधिक क्यों न हो गई हो। भले ही उसे निर्धारित काम-धन्धों में कितना ही व्यस्त क्यों न रहना पड़ता हो ?

शिक्षा की गुणवत्ता इसमें है कि वह अपनी बात इतने तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कह सके कि समझने वाले को उसे समझने या मानने का मन बन सके। वकील लोग तो अपने केस को जिताने के लिए सारी शक्ति दाँव पर लगा देते हैं। शिक्षितों में से हर-एक को यह ही भूमिका निभानी चाहिए। उन्हें अनुभव करना चाहिए कि उनकी शिक्षा की सार्थकता इसके बिना बन नहीं पड़ेगी कि कुछ अशिक्षितों को पढ़ाने में अपने निज के प्रयास-पुरुषार्थ का नियोजन करें।

यों अपने बदले में कोई दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति करके शिक्षा-सम्वर्द्धन के काम में लगाया जा सकता है और युग धर्म के निर्वाह में अपने को सम्मिलित किया जा सकता है, पर अधिक अच्छा यही है कि इस प्रयास में अपना निज का श्रम, समय और मनोयोग नियोजित किया जा सके।

सन्तान को क्यों पढ़ाएँ ? क्या पढ़ाएँ ?

दुनिया अब सिमटकर समीप आ गई है और बारीकियों में जाने के कारण विस्तृत भी हो गई है। उसके भले-बुरे पक्षों को समझना और आत्मरक्षा तथा प्रगति के लिए उपयुक्त रीति-नीति निर्धारित करना इन दिनों अतीव दुरूह होता जा रहा है। इसके लिए आज के व्यक्ति की ज्ञान परिधि पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत होनी चाहिए। अन्यथा शान्तिपूर्वक रह सकना कठिन हो जाएगा, पिछड़ापन गले बँधा रहेगा। चारों ओर फैली अवांछनीयताओं से बच निकलना आज अतीव कठिन है। प्रतिस्पर्धाओं और अवरोधों के बीच प्रगति और प्रतिभा उपार्जित कर सकना तो और भी दुष्कर है। इन दिनों बौद्धिक प्रखरता के बिना किसी का गुजारा नहीं। इसीलिए शिक्षा की आवश्यकता भले ही पूर्वकाल में उतनी न रही हो, आज तो इतनी अधिक है कि उसके बिना गति ही नहीं। पिछले दिन शान्ति और सौजन्य के थे। उनमें पारस्परिक स्नेह, सहयोग और संयम, संतोष के सहारे जिन्दगी के दिन आसानी से कट जाते थे। आज की दुनिया विचित्र है। चैन से दिन गुजारने की गुंजाइश नहीं रही। आत्मरक्षा की आवश्यकता शान्ति और प्रगति से भी पहले बन गई है। शान्ति से रहने वाले को जीवित रहने नहीं दिया दिया जाता। ऐसे विलक्षण युग में शिक्षा का कवच पहनकर ही निर्वाह हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भोजन, वस्त्र के बाद आज के युग में तीसरी आवश्यकता शिक्षा की है। इसलिए हर समझदार आदमी अपनी न सही अपने बच्चों की शिक्षा की ओर तो ध्यान देता ही है और यथासम्भव उसके प्रयत्न भी करता है। जितनी तेजी से चाहिए उतनी तो नहीं पर यथासम्भव शिक्षा वृद्धि के उपाय भी हो रहे हैं। स्कूल खुलते जाते हैं और छात्रों की संख्या बढ़ती जाती है। जनसाधारण को शिक्षा की उपयोगिता भी समझ में आती जाती है और बिना बहुत समझाए-बुझाए लोग स्वेच्छापूर्वक अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने की बात सोचने लगे हैं। कुछ समय पहले लड़कियों को पढ़ाना व्यर्थ समझा जाता था पर अब विचारशीलता बढ़ने के साथ-साथ कन्या शिक्षा के लिए भी उत्साह बढ़ रहा है। इसे प्रगति की ओर ले चलने वाला शुभ चिह्न ही कहा जा सकता है। शिक्षा का महत्त्व तो सदा ही रहा है, आज तो वह जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।

शिक्षा वृद्धि की दिशा में सन्तोषजनक आधार खड़े भी नहीं हो पाए हैं कि उनसे पूर्व ही इस क्षेत्र में भारी संकट खड़ा हो गया है। जिसने विचित्र समस्या उत्पन्न कर दी है। मुँह में भरा हुआ गरम दूध न पीते बनता है न उगलते। साँप-छछूँदर की-सी स्थिति हो गई है। शिक्षितों की बेकारी और कुसंस्कारिता का दुहरा संकट सामने है और हर विचारशील को नये सिरे से यह विचार करना पड़ रहा है कि बच्चों को पढ़ाना उचित भी है या नहीं। उसमें लाभ है या हानि। यह अपने समय का विचित्र धर्म संकट है कि शिक्षा की सर्वमान्य उपयोगिता के बारे में पिछड़े लोगों की तरह यह विचार करना पड़े कि शिक्षा से कोई पेट थोड़े ही भरता है ? इसलिए उसके लिए व्यर्थ परिश्रम क्यों किया जाय ? आज पिछड़ों को तो नहीं प्रगतिशीलों को उस ढंग से विचार करना पड़ रहा है, जिसे कि कुछ समय पूर्व प्रतिगामी कहा जाता था।

रोजगार दफ्तरों में अर्जी देने वालों की संख्या इतनी भयावह है कि इतनों को स्थान मिल सकना एक शताब्दी तक भी सम्भव न हो सकेगा। फिर भी जो नाम नोट नहीं कराते, उनकी संख्या तो इन पंजीकृतों की अपेक्षा कई गुनी अधिक है। वे नौकरी पाने के लिए हाथ-पैर पीटते रहते हैं। सरकारी न सही गैर सरकारी सही, पेट भरने लायक न सही आधे पेट लायक सही, बैठे से बेगार भली वाली कहावत चरितार्थ होती है और जिन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिली, उनकी दशा देखते हुए भारी चिन्ता होती है। इससे निर्वाह समस्या ही नहीं नैतिक और सामाजिक स्थिति पर भी घातक असर पड़ता है। महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप साधन न मिलने से जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, वह भीतर ही भीतर घुटता रहे तो व्यक्तित्व को कुंठित-विकृत बनाता है। बाहर फूटे तो समाज में अनाचारों एवं अपराधों का ताँता लगा देता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करना हो तो अशिक्षित श्रमजीवियों की तुलना में शिक्षित बेरोजगारों की मनःस्थिति और परिस्थिति की तुलना करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। निश्चित रूप से शिक्षित घाटे में रहता है। अभिभावकों ने जिस आशा से महँगी शिक्षा की व्यवस्था में अपने घर का अर्थ-सन्तुलन लड़खड़ा दिया, उनकी आशाएँ जब निराशा में बदलती हैं तो उन्हें भी पुरानी पीढ़ी के पिछड़े लोगों की तरह ही यह सोचना पड़ता है कि शिक्षा से क्या लाभ ?

अभिभावक ही नहीं ये शिक्षित युवक भी इसी बात का गणित लगाते हैं कि उसकी पढ़ाई पर जितना पैसा लगा, यदि वह बैंक में जमा किया जाता और जितने समय पढ़ना पड़ा, उतने दिन का ब्याज मिलता तो उस पूँजी की मासिक ब्याज इतनी हो जाती जितनी कि इन दिनों नौकरी में मिलना भी कठिन हो रहा है। वह यह भी हिसाब लगाता है कि जितने वर्ष जितने मनोयोग से पढ़ना पड़ा, उतने समय किसी छोटे-मोटे धन्धे में लगा रहा गया होता, गाय-भैंस भी पाल लिए होते तो उसकी अपनी कमाई भी इतनी हो जाती कि उसे पूँजी बनाकर सारी जिन्दगी मजे में कट जाती, शिक्षाकाल में व्यय हुए श्रम और धन की बर्बादी की बात सोचने वाले अभिभावकों और शिक्षितों की निराशा और चिन्ता की व्यापकता अपने समय की विचारशीलता के लिए एक भारी चुनौती है। ऐसी चुनौती जो अपना उत्तर तत्काल माँगती है। यह जन-जन की, घर-घर की समस्या। प्रश्न वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं, अगली पीढ़ी के लिए भी है। जो पढ़ रहे हैं उनके सम्बन्ध में भी इसी प्रकार सोचना पड़ रहा है जैसा कि वर्तमान शिक्षित बेकारों के सम्बन्ध में।

शिक्षा की निरर्थकता के पक्ष में यदि चिन्तन ढुलने लगे तो इसे एक भयानक दुर्भाग्य कहना चाहिए। यह तथ्य सर्वमान्य है कि भोजन और वस्त्र के बाद तीसरी आवश्यकता शिक्षा की ही है। उसके बिना मनुष्य कूप-मण्डूक बनकर रह जाता है। व्यापक जानकारियों के बिना आत्मरक्षा से लेकर प्रगति की सम्भावनाओं तक के लिए शिक्षा पर ही आश्रित रहना होगा। उसके अभाव में पिछड़ेपन की स्थिति ही गले बँधती है। बौद्धिक दरिद्रता सबसे बुरी है। अशिक्षा का अभिशाप रुग्णता जैसा ही कष्टकारक है। उसके कारण चिन्तन का क्षेत्र ही अवरुद्ध हो जाता है। यह सीमाबद्ध बन्धन वैसे ही हैं, जैसे बन्दियों को कारागार में रहकर सहने पड़ते हैं। इस युग में ऐसी दयनीय स्थिति में कोई रहना नहीं चाहेगा। किसी को रहने भी नहीं देना चाहिए।

दोनों तथ्य अपनी जगह पर चट्टान की तरह अडिग हैं। शिक्षा की उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। शिक्षितों की बेकारी से उत्पन्न निराशा को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। कोढ़ में खाज की तरह यह एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

नई कठिनाई और भी है, वह है शिक्षा के साथ घुसपैठ करती हुई कुसंस्कारिता। जिसके कारण प्रतिभा, प्रखरता और सज्जनता की सम्पदा घटती है। शिक्षित हो या अशिक्षित जो भी इन मानवी मूल्यों से स्थिर रखने वाली विशेषताओं को गँवाने या घटाने लगेगा, उसे असम्मान और असहयोग का भाजन बनना पड़ेगा। इस दृष्टि से भी शिक्षितों को अपेक्षाकृत अधिक घाटा उठाते ही देखा जा रहा है।

शारीरिक श्रम की अवहेलना, सज-धज की प्रतिस्पर्धा, उच्छृंखलता में प्रगतिशीलता की मान्यता जैसे दुर्गुण न जाने कहाँ से हमारी कर्णधार पीढ़ी पर आक्रमण कर रहे हैं। शिक्षा के अमृत के साथ यह विषाक्तता न जाने कहाँ से प्रवेश पा रही है ? एक से एक उच्च शिक्षित अध्यापकों के रहते न जाने क्यों शालीनता, सज्जनता और विनयशीलता के प्रशिक्षण से वंचित रहना पड़ रहा है। समस्त सुविधा और व्यवस्थाओं के रहते हुए भी न जाने क्यों अनुशासन नहीं निभ रहा है। दोष कौन किसको दें ? सम्बन्धित पक्षों में से कौन अपने को निर्दोष सिद्ध करे ? अभिभावक, अध्यापक, छात्र में से कौन कितना दोषी है ? विद्यालयों को शालीन पीढ़ी ढालने में सफलता क्यों नहीं मिलती। उत्कृष्ट गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से हमारे नौ निहालों को क्यों वंचित रहना पड़ता है। सरकार को इस सम्बन्ध में क्या करना चाहिए था ? पाठ्य-पद्धति क्या होनी चाहिए थी ? गुरुकुलों जैसा वातावरण किस प्रकार हमारे विद्यालयों और छात्रालयों में रहना चाहिए ? इन प्रश्नों का समाधान मूर्धन्य लोगों के हाथ में है। सर्वसाधारण को इतनी व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप या सुधार कर सकना अपने लिए कठिन ही दीखता है। इतने पर भी उलझनों के कारण कठिनाई तो सहनी ही पड़ती है। उससे छुटकारा तो मिलता नहीं दीखता।

मात्र एक बेकारी का प्रश्न ही कम कष्टकारक नहीं है फिर यदि शिक्षितों में अपेक्षित शालीनता की जो कमी दीखती है वह और भी अधिक खटकती है। उस अभाव से सम्बद्ध परिजनों को ही कष्ट होता हो सो बात नहीं है। उनके कन्धों पर जब महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व आते हैं, तब उत्कृष्टता की कमी के रहते वे उन्हें भी पूरा नहीं कर पाते फलतः समाज को उन आशाओं से वंचित रहना पड़ता है, जो स्वभावतः सुशिक्षितों से की जाती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि निर्माण और प्रगति की आशा जिसे पीढ़ी से समस्त समाज करता है उनकी पूर्ति परिष्कृत व्यक्तित्वों के अभाव में हो न सके। आज की शिक्षा के सिर पर यह दुहरा कलंक है। बेरोजगारी फैलाने और व्यक्तित्व सम्पन्न प्रतिभाएँ न दे पाने के दोष से वह बच नहीं पा रही है। भले ही उसके कारण कुछ भी गिनाए जाते रहें।

इस निराशाजनक परिस्थिति की सर्वनाशी प्रतिक्रिया से बचने के लिए दो उपाय हैं, जिनमें से एक शासन सत्ता द्वारा अपनाए जाने योग्य है, दूसरा सर्वसाधारण द्वारा। दोनों पक्ष मिलकर काम करें तब तो सोने में सुगन्ध की तरह मंगलमय समाधान निकल सकता है। पर यदि दोनों में से एक भी समाधान के लिए तत्परतापूर्वक कटिबद्ध हो सके, तो निराशा को आशा में बदला जा सकता है।

शिक्षा-पद्धति का मुख नौकरी की योग्यता पैदा करने की दिशा में एकदम मोड़ दिया जाय। लार्ड मैकाले की अँग्रेजी पढ़े किरानियों की जरूरत थी इसलिए उसने उसे अपने ढंग से गढ़ा। आज वे परिस्थितियाँ नहीं रहीं तो उसी क्रम को आँखें बन्द करके क्यों चलने दिया जाय ? क्यों न हमारे विद्यालयों का उद्देश्य सुयोग्य कृषक, शिल्पी और कलाकार बनाना हो ? सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान क्यों न उसमें जुड़ा रहे ? इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, गणित आदि विशेष विषयों में निष्णात बनने वालों के लिए विशेष व्यवस्था रहे। सर्वसाधारण की शिक्षा का स्तर इतना ही रहे कि वे सद्गुणी और स्वावलम्बी नागरिक बन सकें। नौकरी ढूँढ़ने की अपेक्षा वे अपने बाहुबल और बुद्धिबल से सौम्य-सरल जीवन जी सकें। ऐसी शिक्षा-पद्धति का नये सिरे से गठन होना चाहिए। लकीर पीटते रहना उसके लिए चुनौती है, जो शिक्षा का उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर उठाते हैं।

भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ऐसी है जिसमें देश का औद्योगीकरण नये सिरे से होना चाहिए, निर्माण के लिए बड़े कारखाने चलें। भारी मशीनें वे ही बनाएँ। इसके अतिरिक्त दैनिक आवश्यकता की सभी वस्तुएँ छोटे कारखानों में बनें और वे गाँव-गाँव फैलें। सरकारी विकास संस्थान कच्चा माल देने और बना खरीदने बेचने का उत्तरदायित्व सँभाले। इस नीति को अपनाने से कृषि से बचे हुए अन्य सभी लोगों को आजीविका मिल सकती है। शासकीय सेवाओं में कला, साहित्य, उद्योग आदि में जितनी खपत है, उतने उसमें चले जाएँ। शेष सभी को राष्ट्रीय आवश्यकता की अनेकानेक वस्तुओं के उत्पादन से आजीविका उपार्जन का अवसर मिलता रहे। इस प्रणाली का जापान में सफल प्रयोग हुआ है। अपने देश के लिए भी उसी का अनुकरण उपयोगी हो सकता है। इस देश में पशुपालन को भी कृषि के समतुल्य ही विकसित करने की गुंजाइश है। दूध के रूप में उपयोगी खाद्य दे सकने और भारवहन की प्रतिद्वन्द्विता में मशीनों को पछाड़ सकते हैं।

इन प्रयोगों को छोटे रूप में तो जहाँ सम्भव हो व्यक्तिगत रूप से भी समर्थ लोग कर सकते हैं, पर वस्तुतः यह सब व्यापक रूप से कर सकना शासन के ही हाथ में है। जर्मनी ने कुछ समय पूर्व अपनी नई पीढ़ी में शिक्षा के माध्यम से युग चेतना भरी थी। रूस में भी इस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिशा में गम्भीर प्रयत्न हुए हैं। अपने देश में सुयोग्य नागरिकों का गठन यदि वस्तुतः अभीष्ट है, तो पाठ्यक्रम और वातावरण में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता होती। सरकार को समझाया भी जाय और इसके लिए दबाया भी जाय। अब कहते, सोचते, टालते रहने का समय नहीं रहा। जो हो सकता है उसके लिए तत्काल निर्णय लेने और बड़े कदम उठाने की आवश्यकता है।

सर्वसाधारण को अपने बालकों की शिक्षा व्यवस्था करने के साथ-साथ एक निष्कर्ष पर आरम्भ में ही पहुँच जाना चाहिए कि पढ़ाई नौकरी के लिए, ज्ञान और व्यक्तित्व विकसित करने के लिए होनी चाहिए। उसी को पर्याप्त मान लिया जाय और बालकों के लिए वह मार्ग आरम्भ में ही निश्चित किया जाय, जिस आधार पर उन्हें आजीविका कमानी है। विचारशील लोग सरकारी नौकरियों का मोह एकदम छोड़ दें और अपने बालकों के लिए स्वावलम्बी उपार्जन की बात सोचें। यदि कहीं कुछ नौकरियाँ हैं भी तो उन्हें विशिष्ट प्रतिभाओं के लिए अथवा इन दिनों मारे-मारे फिरने वालों के लिए छोड़ दिया जाय। जिन्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता, वे भी कम नहीं हैं, उन्हें प्रचलित प्रवाह के अनुरूप नौकरी ढूँढ़ने की बात ही सूझेगी। इनके रास्ते में से उन्हें हट जाना चाहिए, जो मौलिक रूप से सोचने और दूसरा विकल्प ढूँढ़ सकने में समर्थ हैं।

स्कूली शिक्षा जहाँ सम्भव है, उसका लाभ उठाया ही जाना चाहिए। नये स्कूल खुलवाने और उनमें अधिक छात्र पहुँचाने की प्रक्रिया चलती रहे, तो हर्ज नहीं। पर एक बात भली प्रकार ध्यान रखने योग्य है कि आज की परिस्थिति में ऐसी समानान्तर शिक्षा की रात्रि पाठशाला भी चलनी चाहिए, जिनमें आजीविका उपार्जन, चरित्र गठन एवं जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान की शिक्षा-प्रक्रिया स्कूल से बचे समय में चलती रहे। इसकी व्यवस्था के लिए सरकार का मुँह तकने की आवश्यकता नहीं है। यह व्यवस्था विचारशील लोगों के नेतृत्व में हर जगह मिल-जुलकर सम्पन्न की जा सकती है। उसे कल्पना या योजना न समझा जाय, वरन् समय की अनिवार्य आवश्यकता समझते हुए उसका प्रबन्ध तत्काल किया जाय। इसे रचनात्मक कार्यक्रमों में सर्वप्रमुख माना जाय।

प्रौढ़ शिक्षा की व्यापक व्यवस्था भी जनसहयोग से ही चलनी चाहिए। देश की तीन-चौथाई अशिक्षित जनता को वैतनिक अध्यापकों की नियुक्ति तथा साधन-सामग्री जुटाने की क्षमता वर्तमान अर्थ साधनों से कर सकना सरकार के लिए सम्भव नहीं है। जो वह नहीं कर सकती, उसके लिए आशा करना भी व्यर्थ है और दबाव डालना भी। अशिक्षा का अभिशाप दरिद्रता से भी भयंकर है। उसकी निवृत्ति के लिए हमें जनसहयोग के क्षेत्र में ही प्रयत्न करने होंगे। दरिद्रता मिटाने की जिम्मेदारी सरकार के कन्धों पर छोड़कर निश्चिन्त हो बैठना मूर्खता है। इसलिए वैज्ञानिक पुरुषार्थ एवं सरकारी प्रयासों को ही प्रमुखता देनी होगी। ठीक इसी प्रकार शिक्षा की सम्पदा का महत्त्व समझने वालों को इसके लिए वैज्ञानिक पुरुषार्थ एवं संगठित प्रयास का आश्रय लेना होगा। ऐसी प्रौढ़ पाठशालाएँ, रात्रि पाठशालाएँ हर जगह जनसहयोग से खुलनी चाहिए, जो अशिक्षितों को शिक्षित और शिक्षितों को स्वावलम्बी, सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर उठा सकें।

जिन्हें शिक्षा की उपयोगिता पर विश्वास हो, जो शिक्षा का लाभ, स्वावलम्बन एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों के रूप में देखने के इच्छुक हों, उन्हें वर्तमान और भविष्य को सुखद बनाने की दृष्टि से इस दिशा में कुछ विशेष पुरुषार्थ करना होगा। इनमें से एक है, अपने प्रभाव क्षेत्र के बालकों को अनावश्यक शिक्षा के भार से बचाकर उपयोगी ज्ञान सम्पादन में नियोजित रखना। दूसरा है जनसहयोग से ऐसी शिक्षण प्रक्रिया का समर्थ ढाँचा खड़ा करना, जो अवकाश के समय में समस्त शिक्षार्थियों की ज्ञानपिपासा पूरी कर सकने में समर्थ हो। यह कार्य रात्रि पाठशालाओं का तन्त्र भली प्रकार पूरी कर सकता है। इसकी पूरक व्यवस्था होगी। गाँव-गाँव ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना, जिनमें कूड़ा-करकट नहीं—युग सृजन की अभीष्ट आवश्यकताएँ पूरा कर सकने की सामग्री रहे और उसे घर-घर, जन-जन तक पहुँचाने और वापस लाने का प्रबन्ध बने।

विद्या को अमृत कहा गया है। यह अमृत सही रूप में रहे और सर्व-साधारण को सुविधापूर्वक मिले तो अपने समाज को देवोपम बनने में देर नहीं लगेगी।

सोवियत विद्यार्थी का जीवनक्रम

छात्र तथा छात्राएँ ही किसी भी राष्ट्र का भविष्य होते हैं। उनकी प्रगति एवं विकासक्रम पर ही राष्ट्र का भावी नेतृत्व निर्भर करता है। आइये, देखें रूस में, छात्र तथा छात्राएँ अपना जीवनक्रम किस प्रकार का रखते हैं ? तथा वहाँ की सरकार का उसमें कितना और कैसा योगदान रहता है ? हो सकता है कहीं कोई तत्त्व ऐसा मिल जाय जो हमारे यहाँ के शिक्षार्थियों को कुछ 'नवीन' प्रदान कर सके।

सोवियत संघ में उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्ययन करने वाले २३७९००० छात्रों एवं २०९१००० छात्राओं में अपनी-अपनी रुचियाँ तथा विशेषताएँ हैं। गणित संकाय में असाधारण प्रतिभा वाले छात्रों की गणना इसमें नहीं की गई है। इनकी आयु १५ वर्ष अथवा उससे कम है। उच्च शिक्षा पा रहे शिक्षार्थियों की आयु सामान्यतः १७ से ३५ वर्ष के बीच है।

सोवियत विद्यार्थी स्वभावतः ही आशावादी होते हैं। खेल में प्रायः सभी की रुचि होती है। खेल को स्वास्थ्य तथा मनोरंजन दोनों दृष्टियों से ही अत्यधिक उपयोगी माना जाता है। यहाँ के कई छात्र प्रसिद्धि प्राप्त ओलम्पिक खिलाड़ी हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका कार्यक्रम एकदम निश्चित तथा व्यवस्थित रहता है। निजी कार्यों के लिए उन्हें केवल तीन घण्टे ही मिलते हैं, जिन्हें वे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत कर सकते हैं। शेष इक्कीस घण्टे क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करने, भोजन तथा निद्रा के लिए नियत रहते हैं।

छुट्टियों में वे बजाय यों ही कहीं निरर्थक घूमने की अपेक्षा कुछ रचनात्मक कार्य करना ही अधिक पसन्द करते हैं। गर्मी की छुट्टियों में छात्र एवं छात्राएँ टोलियाँ बनाकर निकलते हैं और खेती में किसानों को मदद करते तथा नये-नये खेती के तरीकों से अवगत कराते हैं। कुछ विद्यार्थी छोटे-छोटे निर्माण कार्य भी कर डालते हैं।

उनके शौक, सामान्यतः पर्यटन द्वारा जानकारियाँ हासिल करना, फोटोग्राफी, संगीत, नाट्यकला तथा शोध कार्य करना ही होते हैं। स्वभाव भी अधिकतर विनोदप्रिय, उत्साही तथा परिश्रमशील होता है।

सभी महाविद्यालयों में छात्र शोध सोसायटियों के सदस्य के नाते उत्पादन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित शोध कार्यों में प्रतिवर्ष बीस करोड़ रूबल मूल्य की सहायता करते हैं। स्वावलम्बन तथा स्वाभिमान—दो गुण विशेष रूप से पाए जाते हैं इनमें।

इनके प्रिय विषयों में विज्ञान तथा तकनीक प्रमुख हैं। एक सर्वे के अनुसार यहाँ की प्रत्येक पीढ़ी—अपनी पिछली पीढ़ी की अपेक्षा ज्ञान में आठ गुनी वृद्धि कर लेती है। अतः दिन-प्रतिदिन यहाँ के पाठ्यक्रम बड़े होते जा रहे हैं। आज एक इन्जीनियर के डिप्लोमा कोर्स में लगभग साठ विषय समाहित रहते हैं।

सामाजिकता भी यहाँ के विद्यार्थियों का एक विशिष्ट गुण है। लगभग एक-तिहाई विद्यार्थी किसी न किसी क्लब या सोसायटी, विदेशों से मैत्री सोसायटी प्रकृति या प्राचीन स्मारक परीक्षण सोसायटी, डाक टिकट, क्लब, नर्सरी आदि के सदस्य होते हैं। छात्राएँ शिशु सदनों में कार्य करने में विशेष रुचि रखती हैं और यह प्रशिक्षण उन्हें भविष्य में एक सफल माता बनने में बड़ा सहायक होता है।

अपने मित्रों तथा परिचितों के प्रति ये सामान्यतः उदार, नम्र, शिष्ट तथा ईमानदार होते हैं। समय पर एक-दूसरे की सहायता करने का गुण इनमें बचपन से ही विकसित हो जाता है। बच्चे यहाँ राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में देखे जाते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा का व्यय भार अधिकांशतः राज्य ही वहन करता है। सोवियत संघ में प्रतिवर्ष लगभग ५१०००० छात्र एवं छात्राओं को डिप्लोमा प्रदान किए जाते हैं। इन विभिन्न विषयों के डिप्लोमा कोर्स को पूरा करने में प्रति विद्यार्थी कितना व्यय आता है ? इसका लेखा-जोखा बड़ा ही दिलचस्प है।

इन्जीनियरी के प्रशिक्षण में एक छात्र के ऊपर वहाँ की सरकार लगभग १०६० रूबल प्रतिवर्ष व्यय करती है।

कृषि इन्स्टीट्यूट में प्रति छात्र लगभग १०२३ रूबल व्यय आता है एक वर्ष में।

शिक्षा सम्बन्धी कॉलेज में ८२९ रूबल तथा मेडिकल कॉलेज में प्रति विद्यार्थी ८२७ रूबल व्यय होता है। विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष ९२७ रूबल बैठता है। संक्षेप में एक डिप्लोमा पर औसत व्यय लगभग पाँच हजार रूबल पड़ता है। यह एक पर्याप्त बड़ी धनराशि है। किन्तु राज्य यह सोचकर व्यय करता है कि ये विद्यार्थी अपनी प्राप्त योग्यता से राष्ट्र का भविष्य सँभालेंगे, देश को समुन्नत बनाएँगे तथा विश्व में अपनी जन्मभूमि का नाम ऊँचा करेंगे।

प्रत्येक विद्यार्थी इस विश्वास के साथ पूरे मनोयोग से विद्याध्ययन करता है कि जिस विषय में भी उसकी रुचि है, उसे सांगोपांग सीखने के पश्चात उसे निश्चित ही काम मिल जाएगा और जीविका का प्रश्न हल करने के लिए उसे भटकना नहीं पड़ेगा। वहाँ की सरकार अपने इस उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभाती है कि जिसने जो योग्यता ग्रहण की है, उसे उस दिशा में काम मिलना ही चाहिए।

इस व्यय भार के अतिरिक्त भी सरकार विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न छात्रों को वजीफे के तौर पर कुछ प्रतिशत तक धनराशि देती है। कुछ छात्र अधिक स्वावलम्बी होते हैं और वे कुछ धन अतिरिक्त श्रम द्वारा भी अर्जित कर लेते हैं। कुछ विद्यार्थियों के माता-पिता भी इतने समर्थ होते हैं कि वे धन की कमी अनुभव नहीं होने देते। किन्तु विद्यार्थियों की सहज मनोवृत्ति उपार्जन करने की होती है।

यों पारस्परिक सहयोग से सरकार तथा छात्र-छात्राएँ निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होते रहते हैं। दोनों एक-दूसरे के विश्वासपात्र हैं और दोनों एक-दूसरे के पूरक। दैनिक जीवन की सुविधाओं के अतिरिक्त सोवियत संघ में इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि विद्यार्थी का मनोबल दृढ़ बने, चरित्र ऊँचा उठे तथा व्यक्तित्व निखरा हुआ हो।

एक प्रोफेसर ने अपने शिक्षार्थियों को उद्‌बोधन करते हुए कुछ शब्द कहे थे—वे बहुत ही सारपूर्ण हैं—"आप छात्र हो गए हैं। आपको इतनी नई बातों का पता लगाना है कि इन सबको याद रखना असम्भव होगा। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात आपको यह सिखाई जाएगी कि जिसे सब लोग देखते हैं, उसे देखिए। किन्तु वह बात सोचिए, जिसे आपसे पहले किसी ने न सोचा हो। इसी प्रकार आदमी शोधकर्त्ता बनता है।" यह है वह साँचा जिसमें मनोभूमियाँ गढ़ी जाती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को शिक्षा ही नहीं सुसंस्कार भी दें

बचपन सीखने की सबसे बड़ी अवधि है। उस अवधि में अचेतन इतना अधिक सचेतन होता है कि जो कुछ ग्रहण कर लेता है, उसे आजीवन अपनाए रहता है। बच्चों की प्रत्यक्ष समझ तो कमजोर होती है, पर उसकी सूक्ष्म ग्रहण शक्ति इतनी अधिक होती है कि उसे आधारशिला कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

दस वर्ष तक बालकपन माना गया है और इसके बाद के दस वर्ष तक का बालक बीस वर्ष की आयु तक का किशोर होता है। यही आयु है, जिसमें अभिभावकों की, अध्यापकों की सम्बन्धी-हितैषियों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। बीस वर्ष में प्रायः मनुष्य समझदार हो जाता है, अपना भला-बुरा समझने लगता है और अपनी बुद्धि के सहारे अपने भले-बुरे का निर्णय कर सकता है। यों इस आयु में भी श्रेष्ठ-सज्जनों की संगति की आवश्यकता रहती है।

दस वर्ष तक के गुण, कर्म, स्वभाव का निर्माण अभिभावक और परिवार के लोग करते हैं। दस वर्ष तक बच्चा प्रायः माता-पिता और अभिभावकों के बीच रहता है। स्कूल पढ़ने जाता है, तो वहाँ सभी अजनबी होते हैं। ज्यादातर समय उसे घर-परिवार में ही व्यतीत करना पड़ता है। उस समय में वह जो कुछ सीखता, समझता है, परिवार के लोग ही उसके वास्तविक शिक्षक होते हैं। इस आयु में बच्चे की तर्क बुद्धि तो इतनी विकसित नहीं होती कि वह किसी बात पर बहस कर सके, पर जो कुछ देखता है, वह उसकी नकल करने लगता है। अचेतन मन में उस वातावरण का सार-संक्षेप स्वयमेव घुसकर बैठता चला जाता है। यह अनुकरण की अवधि है। इसलिए बच्चे का स्वभाव जैसा भी बनना है, वह माता-पिता को, परिवार के लोगों को करके दिखाना चाहिए। उन्हीं पर वह बहुत कुछ निर्भर रहता है। अध्यापकों के साथ उस आयु में घनिष्ठता नहीं हो पाती, इसलिए उसका कहना वह डर की वजह से मानता है, किन्तु परिवार वाले को अपना समझता है और उसका अनुकरण आत्मीयता के कारण सहज श्रद्धावश करता है।

प्रारम्भिक शिक्षा, स्वच्छता से आरम्भ की जानी चाहिए। इसका तरीका यह है कि अभिभावक स्वयं साफ-सुथरा रहे। भोजन से पूर्व हाथ धोना, खाने के बाद कुल्ला करना, कपड़े-जूते यथास्थान रखना, कोई वस्तु मैली हो जाय तो उसे घर के लोगों से कहकर साफ-सुथरा कराना, बिस्तर, कमरा अस्त-व्यस्त पड़ा रहे, तो व्यवस्थित रखना, अपनी पुस्तकें, कलम, स्लेट, पेंसिल आदि यथास्थान रखें, कोई वस्तु बेतरतीब न पड़ी रहे। मलमूत्र त्यागने का स्थान और समय नियत रहे। इसे स्वच्छता या सुव्यवस्था कहना चाहिए। जो वस्तुएँ काम में आती हैं, उन्हें सँभालकर नियत स्थान पर सही तरीके से रखने की बात आदि बातें अभिभावक स्वयं भी करें और बच्चों को भी उसके लाभ बताते रहें। गलती करने पर रोक दिया करें या स्वयं सँभाल दिया करें। यह भी हो सकता है कि उस साज-सम्भाल में अभिभावक बच्चे को साथ लगा लिया करें। इससे उसे साज-सँभाल का, सफाई का अभ्यास पड़ेगा।

दर्पण देखने की आदत पाँच वर्ष के बाद ही डालनी चाहिए, ताकि बाल, दाँत, नाक आदि कोई मैले-कुचैले, बेतरतीब तो नहीं हैं, इसकी जानकारी और सुधारने की इच्छा होती रहे। नाखून बढ़ने नहीं देने चाहिए। उन्हें सप्ताह में एक बार तो काटते ही रहना चाहिए। नाखूनों के जरिये रोगों के कीटाणु पेट में पहुँचते हैं और कई तरह की कई बीमारियाँ खड़ी करते हैं। पैरों को कीचड़ या गन्दी चीजों से लिपटाया नहीं होना चाहिए। पैरों के नाखून की जड़ें भी मुलायम होती हैं, उनमें चिपकी गन्दगी भी शरीर में प्रवेश कर जाती है।

बच्चा थोड़ा समझदार हो जाय तो उसे मंजन या बुश करना सिखाना चाहिए। बुश गलत रीति से करने पर मसूड़ों में झिरी पड़ जाती हैं और उनमें खराबी आने का डर रहता है। दाँत न माँजने से वे पीले हो जाते हैं। कीड़ा लगने, केविटी बनने का भी डर रहता है। बालों में कंघी करना सिखाना चाहिए, ताकि जुएँ या फूसी उनकी जड़ों में अड्डा न बना लें। साबुन का सही प्रयोग भी आना चाहिए, ताकि चमड़ी पर कहीं मैल न जमने पाए और साबुन भी अनावश्यक रूप से न घिसने पाए।

बच्चे को प्यार-दुलार करना चाहिए। उनकी इच्छा साथ घूमने की होती है। इसलिए गोदी में या अँगुली पकड़कर उन्हें थोड़ी दूर घुमाने ले जाना चाहिए। ऐसी आदत नहीं डालनी चाहिए कि वह गोदी में चढ़ने के लिए मचलने लगे। जब भोजन अपने हाथों करने लगे तो उसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देना चाहिए, ताकि जूठन न छोड़े। बच्चों को अपनी खुराक की मात्रा और समय का स्मरण नहीं रहता, इसलिए वे बार-बार माँगते हैं, जो खाने बैठता है, उसी के साथ बैठ जाते हैं, जरूरत से ज्यादा खा जाते हैं। इससे उनका पेट खराब हो जाता है। भारी गरिष्ठ एवं मिर्च-मसाले वाली वस्तुएँ भी उन्हें अनुकूल नहीं पड़तीं। इसलिए सुपाच्य भोजन उचित मात्रा में कम-से-कम तीन घण्टे के अन्तर से देना चाहिए। दाँत निकल आने पर भोजन चबाकर खाने लगें, इसे पास बैठकर सिखाना चाहिए, अन्यथा उन्हें जरा-सा चख कर निगल जाने आदत पड़ जाती है। फल, शाक, चावल, खिचड़ी, दूध, दलिया जैसी वस्तुएँ देना ठीक रहता है। मिठाइयाँ या तली हुई चीजें खाने की आदत नहीं डालनी चाहिए। भोजनों के बीच-बीच में थोड़ा पानी पीने की आदत भी डालनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के सामने घर के बच्चों को या बड़ों को नहीं डाँटना चाहिए और न गाली-गलौज देनी चाहिए। यह अनोखी बातें उनके सामने यदा-कदा ही आती हैं, इसलिए वे कौतूहलवश उनकी नकल करने का प्रयास करने लगते हैं। घर में कई बालक रहते हैं। किसी को कम प्यार किसी को अधिक, ऐसा नहीं करना चाहिए। इससे वे तिरस्कार या ईर्ष्या का भाव अपनाने लगते हैं।

सफाई के लाभों से अवगत कराने के साथ-साथ उन्हें शिष्टाचार सिखाना भी आरम्भ करना चाहिए। बड़ों को नित्य, अभिवादन की आदत डालनी चाहिए। वे भूल जाएँ तो अपनी ओर से करना चाहिए। उनका स्वाभिमान जगाने के लिए नाम के साथ 'जी' लगाने की परम्परा डालनी चाहिए। रसिक जी, ललित जी आदि कहकर ही उन्हें सम्बोधित करना चाहिए। बदले में वे भी भाई साहब, बहनजी, माताजी, ताईजी आदि कहना सीखें। इस सभ्य परम्परा का प्रचलन आरम्भ से ही करना चाहिए। अधूरा नाम लेना या 'तू' कहकर बोलना ठीक नहीं। आप कहने की आदत का बचपन से ही समावेश करना चाहिए। बहुत छोटी आयु तक तो बच्चे अपनी ही सफाई का ध्यान रख पाते हैं। थोड़ी आयु होने पर अपने से छोटे बच्चों की सफाई करने या कराने का अभ्यास डालना चाहिए।

बच्चों को हमें खेलने का अवसर देना चाहिए, पर खिलौने ऐसे न हों जो गन्दगी फैलाएँ, वरन् ऐसे हों, जिससे वे चलना, रेंगना आदि सीख सकें एवं उनकी रचनात्मक बुद्धि का भी विकास होता रहे। तस्वीरों वाली, खिलौने वाली पुस्तकें बच्चे अधिक आसानी से पढ़ते हैं। अक्षर भी बड़े-बड़े हों, जिससे उनकी आँखों पर अनावश्यक दबाव न पड़े।

स्कूली पढ़ाई का क्रम ऐसा हो, जिसमें बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा अवकाश मिलता रहे। लगातार पढ़ने से वे ऊबने लगते हैं। पुस्तकें पढ़ाने के समय उन्हें प्रश्न पूछने और उत्तर देने का अवसर देना चाहिए, ताकि वे बाहरी ज्ञान भी प्राप्त करते रहें और सामान्य ज्ञान की जानकारी मिलने से बुद्धि का विकास भी हो और मनोरंजन भी। सफाई के साथ शिष्टाचार का और पढ़ाई के साथ अनेक विषयों के सामान्य ज्ञान का अभ्यास कराया जाना चाहिए। इसके लिए प्रश्नोत्तर ही सही तरीका है। ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन का सम्मिश्रण, दस वर्ष से कम आयु के बच्चे को पढ़ाने का सही तरीका है। जो अभिभावक अपने बच्चे को बहुत होशियार बनाना चाहते हैं—जल्दी ऊँची तैयारी करना चाहते हैं—स्कूल, ट्यूशन, स्वयं पढ़ाना, इस प्रकार तीन गुना दबाव डालते हैं, उसका प्रतिफल यह होता है कि बच्चों का व्यक्तित्व और मस्तिष्क दबने-भिचने लगता है और जो स्वाभाविक, मानसिक विकास होना चाहिए, उसमें बाधा पड़ती है। ऐसे बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य भी गड़बड़ाता है और मानसिक दृष्टि से भी वे दब्बू हो जाते हैं। इसलिए स्कूल में ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि खेलकूद की भी गुंजाइश रहे, आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा उभरे तथा उत्साह बढ़े।

फ़िजिकल ट्रेनिंग के आज-कल कितने ही तरीके निकले हैं। इसमें फौजी अनुशासन का समावेश भी रहता है और अंग-संचालन का भी ऐसा सुनियोजित क्रम रहता है, जिसमें किसी अंग पर कम किसी पर ज्यादा दबाव न पड़े। वह वैज्ञानिक भी है, स्काउटिंग आदि में भी उसी को अधिक महत्त्व दिया गया है। यों अपने क्षेत्रीय और ग्रामीण खेलों को भी साथ में जुड़ा हुआ रखा जा सकता है।

मानसिक शिक्षा का पुस्तकीय पढ़ाई और शारीरिक बलिष्ठता के लिए ड्रिल तथा दूसरे खेलों का समावेश करना चाहिए, पर उसमें कोई ऐसा नहीं हो जो किसी अवयव पर बड़ी चोट लगा दे। मल्ल विद्या, पहलवानी, दण्डबैठक जैसे कड़े खेलों की अपेक्षा ड्रिल पद्धति कहीं अच्छी है। स्काउटिंग की शिक्षा में इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का समावेश है। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है और उसमें से जितना भाग स्थानीय परिस्थितियों में सम्भव हो, उतना अपना लेना चाहिए।

दस वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को खेलों की दिशा में प्रोत्साहन देना चाहिए। उससे स्वास्थ्य, उत्साह और प्रतिस्पर्धा का भाव जगता है। परम्परागत खेलों में से उन्हीं को लेना चाहिए, जिसमें आँख आदि कोमल अंग को चोट लगने का डर न हो।

किशोर अवस्था में नया जोश और नया उत्साह उभरता है। इस आयु में कुछ करने की, कर दिखाने की इच्छा बलवती होती है। यदि कुसंग का सम्पर्क चल पड़े तो बच्चे इसी अवधि में चोरी, चालाकी, छेड़छाड़, चकमेबाजी जैसी बातें सीख लेते हैं। उनके सम्बन्ध में नैतिकता का व्यतिक्रम होने की बात तो सोचते नहीं, अपनी चतुराई प्रदर्शित करने का प्रयत्न और करते हैं। आपस में लड़ना-झगड़ना, परीक्षा के समय नकल करना, अध्यापकों के किसी बात पर डाँटने पर क्रुद्ध होकर उनसे लड़ने-झगड़ने के लिए तैयार हो जाना जैसी अनुचित बात करने लगते हैं। कारण यह है कि उस अवधि में नागरिकता, नैतिकता, समाजनिष्ठा से सम्बन्धित उचित-अनुचित का बोध जाग्रत नहीं होता और न प्रयत्नपूर्वक कराया जाता है।

धर्म का अर्थ सज्जनता, समाजनिष्ठा एवं नीतिमत्ता ही है, पर आज तो वह भी साम्प्रदायिक रीति-रिवाजों में सीमाबद्ध होकर रह गया है। उनके रीति-रिवाजों में भी भिन्नताएँ हैं। उन्हीं को विवाद का विषय बना लेते हैं और आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। धार्मिक कर्मकाण्डों में जो तत्त्व-दर्शन या पूजा-पाठ है, वह अधिकांश तो अपने-अपने गुरुओं-महन्तों का चलाया हुआ है, उसमें समय-समय पर सुधार-परिवर्तन भी होता रहता है। एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म सार्वभौम धर्म में सर्वत्र एकता है, वह नीति, सदाचार, संयम, उदारता जैसे नीति-नियमों पर टिका हुआ है। हमें उसी के वास्तविक रूप को हृदयंगम करना चाहिए और रीति-रिवाजों में जो मतभेद है, उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिए।

किशोरों का जोश-खरोश अक्सर उद्दण्डता में, अहंकार में और प्रचलनों को तोड़ने के रूप में उभरता देखा गया है। कभी तो वह विकृति अश्लील छेड़खानियों तक जा पहुँचती है। गुरुजनों का कर्त्तव्य है कि इस आयु के बालकों के लिए एक आँख प्यार की और दूसरी सुधार की रखी जाय। प्यार की इसलिए कि उनके साथ आत्मीयता, घनिष्ठता बनी रहे। पराएपन जैसा विरोधाभास उत्पन्न न होने पाए और सुधार की टेढ़ी आँख इसलिए कि उनके उभरते हुए दोष-दुर्गुणों पर नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। यह कार्य इतनी कुशलता से होना चाहिए कि साँप मरे न लाठी टूटे, लड़के समीक्षा सुनकर भड़कने न लगें। वस्तुस्थिति का कहना इसलिए आवश्यक है कि उसे कड़ाई के साथ कहे बिना सीधे रास्ते पर नहीं लाया जा सकता। मात्र नम्रता अपनाने से तो वे बात को हँसी-मजाक में टाल देते हैं और उस गलती की गम्भीरता नहीं समझते और कई बार तो उल्टे चिढ़ने-चिढ़ाने लगते हैं। बुद्धिमानी इसी में है कि बीच का रास्ता निकाला जाय और विरोध-आक्रोश बढ़ाए बिना सुधार का उद्देश्य पूरा हो जाय।

किशोरावस्था में नैतिक शिक्षा-दीक्षा की समस्या बड़ी टेढ़ी है। इसे अकेले अध्यापक या अभिभावक हल नहीं कर सकते। दोनों ही लड़ाई-झगड़े और उद्दण्डता से डरते हैं। समझाने-बुझाने में वे अपनी हेकड़ी दिखाते हैं और बगावत करने पर उतारू होते हैं। कोई ऐसा कड़ा दण्ड भी नहीं दिया जा सकता, जिससे उनका भविष्य बिगड़े और बदनामी हो। ऐसी दशा में अध्यापकों और अभिभावकों को मिल-जुलकर ही रास्ता निकालना चाहिए। दोनों के बीच पारस्परिक परामर्श होता रहे और ऐसा रास्ता निकलता रहे कि लड़के बागी न होने पावें। उन्हें समझाने-बुझाने से लेकर किसी काम का नेतृत्व भी देना चाहिए। वस्तुतः उद्दण्डता, नेतागिरी की आकांक्षा से उभरती है और दूसरी के मुकाबले अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए लड़के कुछ न कुछ उटपटाँग करते हैं। ऐसे लड़कों के सामने उन महामानवों के चरित्र विशेष रूप से रखने चाहिए, जिन्होंने अपनी प्रतिभा को आदर्श स्थापित करने या लोकोपयोगी महत्त्वपूर्ण काम करने में लगाया और अन्ततः सामान्य लोगों की तुलना में असामान्य भी बने और यशस्वी भी कहलाए। प्रतिभा को एक दुधारी तलवार की तरह समझने का प्रयत्न करना चाहिए, जिसका दुरुपयोग होने पर मनुष्य गया-गुजरा हो जाता है। बदनाम होता है और दण्ड भुगतता है। इसके विपरीत जिन्होंने प्रतिभा का सदुपयोग किया वे आगे बढ़े, ऊँचे बने और सिरमौर कहलाए। ऐसे लड़कों की प्रतिभा और महत्त्वाकांक्षा यदि श्रेष्ठता की दिशा में मोड़ी जा सके, तो वे आगे चलकर कुछ ऐसे काम भी कर सकते हैं, जो उनके लिए ही नहीं समूचे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हों और बड़प्पन का अधिकारी बनाएँ। प्रतिभा दुधारी तलवार है, वह गलत मार्ग पर चल पड़े तो अपना और दूसरों का विनाश भी करती है, किन्तु यदि वह उच्च प्रयोजनों में लग पड़े तो ऐसा काम कर गुजरती है, जो सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करे और उस व्यक्ति को यशस्वी, मनस्वी बनाए। ऐसे लोगों से निपटना है तो टेढ़ी खीर, पर यदि उन्हें अध्यापक और अभिभावक रचनात्मक ढंग से सुधारें, तो उनका वह सुधारना भी कठिन नहीं होता।

वातावरण का सर्वदा बड़ा प्रभाव पड़ता है। अध्यापकों की अपेक्षा, अभिभावकों की लापरवाही और स्कूल की अव्यवस्था ये तीन मिलकर आमतौर से लड़कों को उद्दण्ड बनाती हैं। उन्हें अपने जैसे सहायक और भी मिल जाते हैं तो बात और भी बढ़ जाती है।

बाल-संस्कारशालाएँ चलाएँ

ऐसी स्थिति में यही उचित है कि जगह-जगह बाल संस्कारशालाएँ स्थापित हों। उनमें किशोरावस्था के आरम्भ में सौम्य स्वभाव के लड़कों को भर्ती किया जाय। पुस्तकीय ज्ञान पूरा कराने के अतिरिक्त उन प्रसंगों में उत्थान-पतन के जो कारण सन्निहित हों, उनकी व्यवस्था आकर्षक ढंग से इस प्रकार की जाय कि छात्रों को कुमार्ग की हानियों और सन्मार्ग के सत्परिणामों का बोध भली प्रकार होता रहे। ज्ञान देना ही नहीं वातावरण बनाना भी बाल-संस्कारशालाओं का उद्देश्य होना चाहिए। उनमें से जो जिस दिशा में प्रगति कर रहे हों, उनकी भरपूर प्रशंसा की जाय और उनके अभिभावकों तक उनकी वरिष्ठता का परिचय पहुँचाया जाय। प्रशंसा से बालकों के हौंसले बढ़ते हैं, इस तथ्य को सदा ध्यान में रखना चाहिए।

यदि किसी से चूक हो रही हो तो सबके सामने निन्दा रूप में नहीं वरन् अकेले में उसकी भरपूर प्रशंसा करते हुए उस छोटी-सी गलती कर बैठने की हानि को समझाना चाहिए और सिद्ध करना चाहिए कि उद्दण्डता बरतने से दूसरों की जितनी हानि होती है, उसकी तुलना में अपनी कहीं अधिक होती है। अकेले में ही धीरे से गलती समझा देने से बच्चे समझ जाते हैं और फिर वैसी गलती नहीं करते। बदनामी हो जाने पर तो वे उद्दण्ड भी हो जाते हैं और विरोधी भी।

बाल-संस्कारशाला के छात्रों की प्रगति की प्रशंसा करते रहना चाहिए। इससे छात्र अपने आप को प्रतिष्ठा का अधिकारी मानते हैं और ऐसी भूल नहीं करते, जिससे उनकी निन्दा हो। प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर सभी उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों को नकल करने की आदत होती है। आजकल समाज में अवांछनीय प्रवृत्तियों का वातावरण है। वैसी ही घटनाओं की चर्चा पढ़ते या सुनते हैं तो उनका मन भी उसी प्रकार की नकल करने का होता है। इसलिए अपनी बाल-संस्कारशाला में पुरातन समय के आदर्शवादी महामानवों के सत्प्रसंग ही एकत्रित करने चाहिए और उन्हीं को चर्चा का विषय बनाना चाहिए। इन दिनों दैनिक अखबारों में हत्या, चोरी, व्यभिचार आदि के समाचारों की भरमार रहती है। ऐसे प्रसंग जब कहीं पढ़ने-सुनने को मिलें तो उनकी भरपूर निन्दा करने में भी नहीं चूकना चाहिए।

आदर्शवादी घटनाएँ भी कभी-कभी अखबारों में प्रकाशित हो जाती हैं। उनकी कटिंग काटकर फाइल बना लेनी चाहिए। पुरातन काल के ऐसे संस्मरण भी संग्रह करते रहने चाहिए। यह सब एक फाइल में संग्रहीत हों, तो उन्हें पढ़ने पर यह प्रभाव भी पड़ जाता है कि इन दिनों भी नीति, सदाचार जीवित है, इन्हें पढ़ने से यह छाप पड़ती है कि आज का समय सर्वथा बुराइयों से भरा हुआ ही नहीं है, अच्छाइयाँ भी जीवित हैं। इससे सदाचरण को प्रोत्साहन मिलता है।

यदि सुनने और पढ़ने में दुष्टता ही आती रहे, तो पढ़ने वालों का मन भी उन्हीं बुरी बातों की ओर लुढ़कने लगता है। इसलिए अपने पुस्तकालयों में सत्साहित्य ही संग्रह करना चाहिए। अश्लील, अनैतिक, कुकर्मों का विवरण बताने वाले साहित्य से बच्चों को जितना बचाया जा सके उतना ही अच्छा है। वे एक प्रकार से विषतुल्य दुष्प्रभाव डालती हैं।

शिष्टाचार में कुछ बातें विशेष रूप से ध्यान रखने की हैं कि बड़े अपनों से छोटों का नाम लेते समय नाम के साथ 'जी' लगावें किन्तु छोटे बड़ों के नाम न लेकर रिश्ते के साथ सम्बोधन करें। जैसे भाईसाहब, चाचाजी, ताऊजी, दादाजी आदि। बड़े छोटों से तुम कह सकते हैं किन्तु छोटों को बड़े के लिए 'आप' का प्रयोग करते हुए वार्तालाप करना चाहिए। गाँव में जाति-बिरादरी के हिसाब से ही ऊँच-नीच की गणना होती है। नाई, धोबी, मेहतर आदि को छोटी जाति मानकर बच्चे भी उसका नाम लेने या 'तू' सम्बोधन के साथ वार्ता बड़ों की देखा-देखी करने लगते हैं। यह अनुचित है। कोई किसी जाति-बिरादरी का क्यों न हो, बड़ों को सदा 'आप' सम्बोधन से ही बोलना चाहिए और नाम के आगे 'जी' अवश्य लगाना चाहिए। रिश्ते के साथ सम्बोधन कर बोलने वाला सभ्य-सुशील समझा जाता है। अपने को बोलने की अच्छी आदत पड़ती है। महिलाओं को बहिनजी, चाचीजी, ताईजी, बुआजी आदि सम्बोधनों से पुकारना चाहिए।

कई बच्चों को अपने सगों से तो जी खोलकर बोलने की आदत होती है, किन्तु जो कम घनिष्ठ और अपरिचित होते हैं, उनके साथ बोलने में झिझक लगती है। पूछी गई बात का सही उत्तर भी नहीं दे पाते, ऐसे शर्मीले लड़के झेंपू, बुद्धू आदि समझे जाते हैं और उनकी उपेक्षा होने लगती है। वार्तालाप के अवसर पर यह नहीं सोचना चाहिए कि यह पराए हैं। अपने ही साथ का समझकर निधड़क बातें करनी चाहिए। ऐसे को होशियार समझा जाता है।

बड़ी उम्र होने पर तो लड़के और लड़कियों में थोड़ी झिझक का सिलसिला चल पड़ता है पर छोटे बच्चों और बच्चियों के बीच किसी प्रकार के भेद की आवश्यकता नहीं है। इससे नर और नारी के बीच खाई चौड़ी होती है। लड़के और लड़कियों के बीच इतना अधिक भेद-भाव नहीं बढ़ने देना चाहिए। प्राइमरी स्कूल में दोनों साथ-साथ पढ़ें तो हर्ज नहीं। हाईस्कूल, कॉलेज आदि में अलग-अलग शिक्षण रहे तो ठीक है, क्योंकि तब तक वे किशोर आयु के हो चुके होते हैं।

बाल-संस्कारशाला का उद्देश्य यह है कि स्कूल से बचा हुआ समय बच्चे आवारागर्दी या कुसंग में न लगाने पावें। वह समय अच्छे वातावरण में नियोजित हो, मनोरंजन भी होता रहे और कुछ शिक्षा भी मिलती रहे। घर में बच्चे सभी घुले-मिले रहते हैं, तब उनका व्यवहार बराबरी जैसा हो जाता है। तनिक-तनिक-सी बात पर अपशब्द बोलने या लड़ाई-झगड़ा करने लगते हैं। यह आदत छुड़ाने के लिए आवश्यक है कि बाहर के लोगों एवं घरवालों के साथ घुलें-मिलें और पराएपन को छोड़कर शिष्टाचार बरतें। साथ-साथ रहना सीखें अन्यथा ऐसी आदत पड़ जाती है कि घरवालों के साथ ही खुलकर बच्चे बोल पाते हैं। बाहर वालों से झिझकते हैं। यह पराएपन की दब्बू या झेंपूपन की आदत छुड़ाने के लिए बच्चों को सामाजिक स्वभाव का बनाना चाहिए। यों यह लाभ स्कूलों की कक्षाओं में, खेल की टीमों में भी मिलता है। पर बाल-संस्कारशाला में उनके अधिक समीपवर्ती होने के कारण जी खोलकर बात या व्यवहार करने में और भी अधिक सुविधा होती है। इसलिए यह पाठशालाएँ दस-बीस से अधिक बालकों की नहीं बननी चाहिए। अन्यथा उनके बीच घनिष्ठता का व्यवहार नहीं बन पड़ता।

बच्चों को कई बार आलस्य की आदत पड़ जाती है। कोई काम करते हैं, तो यह इन्तजार देखते रहते हैं कि इसे कोई और करले, हमें हाथ-पैर न चलाने पड़ें। काम आगे बढ़कर न करना पड़े। यह भी अशिष्टता, अस्वच्छता की तरह एक बुरी बात है। होना यह चाहिए कि किसी काम की जरूरत पड़ रही है या कहा जा रहा है, तो स्वयं आगे बढ़कर उसे करना चाहिए। ऐसे फुर्तीले लड़के आगे चलकर तेजस्वी निकलते हैं और प्रगतिशील होते हैं। जो मेहनत से बचते हैं, आलसी प्रकृति के होते हैं, वे आगे चलकर हर बात में फिसड्डी रहते हैं। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आलस की आदत आगे चलकर उनकी उन्नति में पग-पग पर रोड़े अटकाती रहती है। उत्साही बच्चों के चेहरे फूल जैसे खिले हुए रहते हैं, किन्तु जो सुस्त होते हैं, वे मेहनत से तो थोड़ा बच जाते हैं पर चेहरे पर मुर्दनी छाई रहती है। उन्हें अशिष्ट भी समझा जाता है। बच्चों की सुन्दरता इसमें है कि वे गेंद की तरह उछलते-फुदकते रहें। कोई काम सामने हो तो स्वयं दौड़कर उसे पकड़ें और अच्छे नम्बर से पास होने की तरह प्रयत्न करें।

खेलने की वस्तुएँ, पुस्तकें, फर्श आदि जो चीजें विद्यालय की हों, उन्हें कार्य समाप्त होने पर उठाकर जहाँ की तहाँ ठीक तौर से रखकर ताला-कुंजी बन्द करने में अग्रणी रहने की कोशिश करनी चाहिए। सुस्त या काहिल नहीं बनना चाहिए।

प्रज्ञा प्रशिक्षण पाठशाला का समय दिन की पढ़ाई दुहराने, खेलने-कूदने तथा गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता का समावेश करने के लिए है। समय का विभाजन इस प्रकार करना चाहिए कि तीनों के लिए समय मिलता रहे। पढ़ाई के नियमित घण्टे नित्य रखकर एक दिन खेलकूद, एक दिन शिष्टाचार, शिक्षण क्रम भी बारी-बारी से चलाया जा सकता है।

टोली का कोई सदस्य किसी दिन गैरहाजिर हो तो दौड़कर उसके यहाँ से इसके कारण की सुध ली जानी चाहिए। यदि कुछ हारी-बीमारी जैसी बात हो तो कक्षा समाप्त होने के उपरान्त उसके घर सहानुभूति प्रकट करने, हिम्मत बँधाने और कुछ काम अपने योग्य हो तो उसकी बात पूछने के लिए उसके घर जाना चाहिए। इससे आत्मीयता एवं घनिष्ठता बढ़ती है। एकाकीपन की अपेक्षा घनिष्ठता का व्यवहार अधिक मात्रा में करना चाहिए। किसी न किसी बहाने अपनी घनिष्ठता का क्षेत्र बढ़ाना चाहिए, जो दूसरों के काम आते हैं और सहायता के लिए आगे बढ़कर हाथ बँटाते हैं, वे अनायास ही दूसरों के प्यारे बन जाते हैं। उनकी इज्जत भी होती है। संकीर्णता को ही क्षुद्रता माना गया है और उदारता ही महानता है। जिन्हें महानता सुहाती हो, उन्हें उदार बनना चाहिए। साथियों की सहायता में तो सदा तत्पर रहना चाहिए। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अपने काम के लिए दूसरों की सहायता कम से कम माँगी या स्वीकार की जाय, अन्यथा माँगने की आदत अपना सम्मान घटा देगी।

बाल संस्कारशाला में स्काउटिंग के नियम भी सम्मिलित रहते हैं। सभी को प्रयुक्त करने का अवसर नहीं मिलता तो उनमें से जितने सम्भव हों, उतने ही जानने और काम में लाने चाहिए। ये पुस्तकें अपने पुस्तकालय में अवश्य रखनी चाहिए। इसी प्रकार शिष्टाचार की, सभ्यता की शिक्षा देने वाली पुस्तकें भी अपने पुस्तकालय में रखनी चाहिए और उन्हें घर ले जाकर पढ़ना चाहिए।

सुन्दर लिपि, लेखन, कला, भाषा, ज्ञान, शब्दकोष बढ़ाने के लिए यदि बन पड़े तो एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकालनी चाहिए। उसमें दो-दो पृष्ठ के एक जैसी कलम एवं स्याही से अच्छे लेख लिखने चाहिए। लेखों के विषय और उनमें रहने वाले प्वाइण्ट अध्यापक से पूछ लेने चाहिए। उन्हें सुन्दर अक्षरों में लिखना चाहिए। सभी के लेखों को सम्मिलित करके उसकी एक जिल्ददार कापी बना लेनी चाहिए। वही उस महीने की मासिक पत्रिका बन जाएगी।

जो विषय लिखा हो उसी का बारी-बारी व्याख्यान के रूप में विचार व्यक्त करने का भी अभ्यास करना चाहिए। लेखन और भाषण या दोनों ही अच्छा बनाएँ। हर महीने एक वाद-विवाद प्रतियोगिता और एक लेख संग्रह की मासिक पत्रिका का क्रम चलता रहे, तो उससे विचार अभिव्यक्ति की योग्यता बढ़ती है और आगे चलकर बहुत काम आती है।

प्रज्ञा प्रशिक्षण के पुस्तकालय में फर्स्ट एड—रोगी परिचर्या, सामान्य गृहविज्ञान—इन तीनों विषयों की पुस्तकें भी रहनी चाहिए और उन्हें पढ़ने-पढ़ाने का क्रम इस प्रकार चलना चाहिए कि परीक्षा में भले ही उत्तीर्ण न हों पर इन सब बातों का ज्ञान पूरी तरह हो जाय और उन्हें दूसरों को पढ़ाना पड़े तो भी पढ़ाया जा सके। मात्र ऐसा ही नहीं कि स्वयं तो उन बातों को जान लें किन्तु किन्हीं दूसरों को, घरवालों को समझाना चाहें तो अधूरे ज्ञान की तरह अचकचाने लगें।

रिटायर्ड शिक्षितों के लिए अपने खाली समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि वे मिल-जुलकर इस प्रकार का संगठन बनावें कि हर बच्चों तथा किशोरों के खाली समय की जरा भी बर्बादी न होने पाए। वे इस प्रशिक्षण को एक प्रकार से मनोरंजन क्लब समझने लगें। सभी उसमें स्वेच्छापूर्वक उत्साह के साथ आने लगें, तो समय के सदुपयोग के साथ-साथ वह परमार्थ भी सध जाता है। समय ऐसा ईश्वरीय वरदान है कि यदि उसे सत्प्रयोजनों में लगाया जाय तो पारस पत्थर का काम देता है और मनुष्य को विचारशील, सद्गुणी एवं प्रगतिशील बना देता है। ऐसे ही लोग संसार में महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कर सकते हैं। इसके ठीक विपरीत जिन्होंने अपना समय आवारागर्दी में, कुसंग में, अनुपयुक्त वातावरण में रहकर बिताया, समझना चाहिए उन्होंने अपने व्यक्तित्व को पतन के गर्त में गिरा दिया और भविष्य को अन्धकारमय बना लिया। इसलिए सेवा धर्म में जिन्हें अभिरुचि है, उन्हें व्यक्तित्व को सुयोग्य बनाने के कार्य को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। दीन-दुःखियों की सेवा करना भी एक काम है, पर उसे साधन-सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। बालकों के लिए तो इतना ही संकेत है कि वे अपने को उत्कृष्ट स्तर का बनाएँ, जिससे जो भी अपने सम्पर्क में आए वह सद्गुणी और प्रगतिशील बने। ऐसा वे तभी कर सकते हैं, जब उनका निज का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार उच्चकोटि का हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह शिक्षाएँ स्कूलों में नहीं हैं। उन्हें पढ़ने और पढ़ाने का प्रबन्ध हमें अलग से करना चाहिए। इस कार्य में कई ओर से प्रयत्न किए जाने की आवश्यकता है। अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बालकों को और किशोरों को बाल-संस्कारशाला में भर्ती कराने के लिए सिखावन दें और जोर डालें। इसी प्रकार विचारशील लोगों को चाहिए कि वे बालकों की मीटिंग करके या उनसे अलग-अलग सम्पर्क साधकर यह प्रयत्न करें कि वे इस प्रशिक्षण में सम्मिलित होकर मनोरंजन के साथ-साथ सत्प्रवृत्तियाँ उभारने का दुहरा लाभ प्राप्त करें। इस पढ़ाई की महत्ता पूरा जोर देकर उसके लाभ बताते हुए समझानी चाहिए ताकि विद्यार्थी उसे अपने लिए एक बन्धन न मानें वरन् उत्साहपूर्वक इसके लिए तैयार हों। तीसरा पक्ष अध्यापकों का है। रिटायर स्तर के लोग तो खाली रहते ही हैं। वे बाल-कल्याण में संलग्न होकर अपना मनोरंजन और समयक्षेप तो कर ही सकते हैं साथ ही बाल-निर्माण से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण परमार्थ कार्य भी करते रह सकते हैं। दूसरे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी और प्रशंसा होगी।

जहाँ बूढ़े लोग इसके लिए पूरे उत्साहपूर्वक तैयार न हों, वहाँ युवक एवं प्रौढ़ भी इस कार्य के लिए समयदान देते रह सकते हैं। काम धन्धे से तो अधिकांश लोग दिन छिपने से पहले ही निवृत्त हो जाते हैं। इसके बाद समय खाली ही रहता है। देखा गया है कि उसे अधिकांश व्यक्ति ताश, शतरंज, टी. वी., रेडियो आदि की अनावश्यक बातों में गँवा देते हैं। उस समय में कटौती करके यदि बाल-प्रशिक्षण में लगाना शुरू कर दें, तो उससे सुयोग्य नागरिक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य वे करते रह सकते हैं।

जीवन में सेवा के लिए कुछ स्थान होना चाहिए। लोभ, मोह, अहंकार में सोते-जागते सारा समय लोग लगा देते हैं और यह वे भूल जाते हैं कि मानवता के प्रति, राष्ट्र के प्रति कुछ काम भी हमारे हैं। उन जिम्मेदारियों से इन्कार करना एक प्रकार से अपने धर्म कर्त्तव्य से इन्कार करना ही है। समाज तभी उठ सकता है, जब सब व्यक्ति दूसरों को उठाने का प्रयत्न करें। इसमें बड़ों का कर्त्तव्य छोटों के लिए अधिक बैठता है। युवक एवं किशोर छोटे बच्चों को सुयोग्य, सद्गुणी बनावें। युवक और प्रौढ़ किशोरों की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लें। बूढ़े प्रौढ़ों को कर्त्तव्यों का उद्बोधन कराएँ और उनका व्यक्तित्व ऊँचा उठाएँ तो समझना चाहिए कि एक बहुत बड़ा काम चल पड़ा। जो कार्य लाखों-करोड़ों रुपया खर्च करके भी देश की इतनी भलाई का काम नहीं हो सकता, जितना कि संस्कारशाला की योजना बनाने और उसे उत्साहपूर्वक चलाने से हो सकता है।

उपरोक्त कामों में ही एक काम पौधे लगाने का है। अपने घरों में घरेलू शाक-वाटिका लगाने का शौक बालकों को लगा दिया जाय, तो जहाँ उनका ज्ञान, उत्साह बढ़ेगा, वहाँ वे घर-भर के लिए शाक-भाजी उगाकर अपनी योग्यता एवं विशेषता का परिचय भी दे सकते हैं।

हर ऋतु में कोई न कोई शाक-भाजी उगाई जा सकती है। उसके बीज भी बाजार में अथवा नर्सरियों में मिल सकते हैं। जिनके पास थोड़ी भी खाली जगह है, वे उतनी में ही मेहनत करके अपने सारे घर के लिए शाक-भाजी उगा सकते हैं। वे आँगन में, छप्परों पर और छतों पर भी बोई, उगाई जा सकती हैं। थोड़े उत्साह की, दिलचस्पी की, मेहनत की आवश्यकता पड़ती है। बालकों में इस कार्य के सहारे उन गुणों का बीजारोपण एवं अभिवर्द्धन किया जा सकता है। यह कार्य अभिभावक बच्चों को साथ लेकर करा सकते हैं। संस्कारशाला के अध्यापक बच्चों के घरों में जाकर उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकते हैं। यह एक ऐसा घरेलू उद्योग है, जिसमें कोई बड़ी पूँजी नहीं लगानी पड़ती। यदि जमीन न हो तो गमले, टूटे घड़े, पुरानी पेटियाँ आदि इसमें काम आ सकती हैं। साप्ताहिक छुट्टी के दिन अथवा त्यौहारों की छुट्टी में बच्चे खाली रहते हैं। उस दिन के लिए इस प्रकार के काम सुरक्षित रखे जा सकते हैं तथा उनके दैनिक कार्य निर्धारण में भी। बच्चों को नए कामों में उत्साह भी होता है। फिर जब उन्हें यह प्रतीत होगा कि उन्होंने परिश्रम से कुछ कमाया भी और उसका लाभ घर के दूसरे लोगों को मिला तो उन्हें और भी अधिक प्रसन्नता होती है। मनोबल और कौशल बढ़ाने के लाभ ऐसे हैं, शाक-सब्जी की कीमत की तुलना में जिनका दूरगामी प्रतिफल और भी अधिक है।

इस प्रकार यदि विद्यालय पुराना हो जाय और लड़के कुछ क्रिया-कुशल दीखने लगें, तो टूट-फूट की मरम्मत के कितने ही काम ऐसे हैं, जो सप्ताह में एक या दो दिन अतिरिक्त रूप से सिखाए जा सकते हैं। घर की लालटेन, स्टोव, बक्से, ताले, कुन्दे जैसी छोटी-मोटी चीजें घर में टूटती-फूटती हैं। मरम्मत के लिए दुकानें ढूँढ़ते फिरने की अपेक्षा अक्सर उन्हें लोग फेंक देते हैं और नई खरीद लेते हैं। यदि टूट-फूट की मरम्मत का अभ्यास हो तो अपने घरों की वस्तुएँ लड़के विद्यालय में ठीक कराने जा सकते हैं। पुरानी चीज नई हो जाती है, अपने को नये कौशल सीखने को मिलते हैं। साथ ही इस मरम्मत को होते देखकर साथी बच्चों को अभ्यास भी हो जाता है कि वे घर में ऐसे अवसर आने पर उनकी मरम्मत कैसे कर सकते हैं। कीमती कपड़ों को कभी-कभी कीड़े खा जाते हैं और उनमें छेद करके बेकार कर देते हैं, यदि रफू करने का अभ्यास सीख लिया जाय तो कीमती कपड़े नये सिरे से ठीक कराए जा सकते हैं। इस प्रकार के निर्माण कार्यों से मात्र पैसे की बचत ही नहीं होती, व्यक्तिगत कुशलता, हाथ का अभ्यास और दिमाग का स्तर बढ़ता है। ज्ञान मात्र पुस्तकों से ही नहीं बढ़ता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हस्तकला से भी जो कुशलता प्राप्त होती है, वह अपने स्तर की एक विशेषता लिए हुए होती है। उसे पुस्तकीय ज्ञान से कम महत्त्व का नहीं समझा जा सकता। बाल संस्कारशाला में जहाँ घर की पढ़ाई को परिपक्व कराया जाय, खेल-कूद-व्यायाम से उनका स्वास्थ्य सुधारा जाय, वहाँ यदि अवसर मिलता रहे तो ऐसे हस्त-कौशल भी सीखने का प्रबन्ध करना चाहिए, जो पैसे ही नहीं बचाएँ वरन् प्रतिभा-कुशलता भी बढ़ाएँ।

इतने प्रकार के मनोरंजन कार्य करते रहने से बच्चों का सर्वतोमुखी विकास होता है। अपने यहाँ यही एक बड़ी कमी है कि पुस्तकों के सहारे सामान्य ज्ञान की जानकारी तो बता दी जाती है किन्तु वह शिक्षण नहीं दिया जाता, जिससे व्यक्ति हस्तकौशल में, शिल्प में प्रवीणता बढ़ा सके और मस्तिष्क की बहुमुखी विशेषताओं में से अन्यान्यों को भी समुन्नत बनाने में सहायक सिद्ध हो सके। इस कमी की पूर्ति हम बाल-संस्कारशालाओं के माध्यम से कर सकते हैं।

दूसरों की चीजें या मेहनत का लाभ खुद उठाने की अनुचित प्रक्रिया एक प्रकार की चोरी है। यह दुर्गुण किसी भी बच्चे में पैदा नहीं होने देना चाहिए। बच्चों को अपने-पराए का भान नहीं होता। सो जिस वस्तु को भी ललचाने वाली देखते हैं, उसे लेने का प्रयत्न करते हैं। खरीदने को पैसे नहीं होते, माँगने पर मिलने की आशा नहीं होती, तो वे उसे चुराने लगते हैं। छोटे बच्चों में यह दोष अकारण आरम्भ हो जाता है। आदत पड़ने पर पेंसिल, कापी आदि वस्तुएँ साथियों की चुराने लगते हैं। खाने-पीने की कोई मिठाई जैसी वस्तु घर आई हो और बाँटने पर दूसरे भाई-बहन के हिस्से की अलग रखी होती है, तो मौका पाकर उसमें से चुरा लेते हैं। इस आयु में उन्हें नैतिकता-अनैतिकता का ज्ञान नहीं होता। यह भूल उन्हें छोटी उम्र में ही समझा देनी चाहिए कि दूसरों के हक या अधिकार की वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए। माँगने में अपनी मान-हानि होती है, भिखारी स्तर का समझा जाता है और बिना पूछे ले लेना चोरी है। चोरी अपराध है। समाज में चोर का अपमान भी होता है और उसे दण्ड भी मिलता है। इसलिए जिस चीज के लिए मन चले, उसी को प्राप्त करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। अपना मन रोकना चाहिए। यदि वस्तु जरूरी है तो माँ या पिताजी से आग्रह करके उसे खरीदने या प्राप्त करने का अनुरोध करना चाहिए। यह लत पड़ जाने पर मनुष्य बड़ा होकर बड़ी चोरी करने लगता है और अपना विश्वास खो बैठता है। दण्ड भी पाता है। उस पर से विश्वास उठ जाता है। इतना सतत् समझाए जाने पर क्रमशः सुसंस्कार जमने लगते हैं।

इसी प्रकार बचपन में दूसरा दोष झूठ बोलने का पड़ने लगता है। कोई गलत काम करने पर उसका दण्ड मिलने के भय से झूठ बोलते हैं। बच्चों को आरम्भ से ही शिक्षा देनी चाहिए कि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लोभ से किसी की नकल न करें और किसी की फुसलाहट में आकर अपनी शेखी न बघारें। अक्सर छोटे बच्चों में चोरी और झूठ की आदत पड़ जाती है। इन दोनों के कारण कितना अपमान होता है, कितना विश्वास उठ जाता है और कितना दण्ड मिलता है ? यह बातें सभी को समझा देनी चाहिए। कोई बच्चा गलती कर बैठा हो तो वस्तु को वापस करने और गलती के लिए माँफी माँगने का दण्ड पता चलते ही दे देना चाहिए। ताकि वह भविष्य में वैसा न करे। बड़े होने पर दूसरी बुरी आदतें भी पड़ती हैं। गलत बहाना बनाकर या चोरी करके घर से पैसे ले जाते हैं और उन्हें बेकार कामों में खर्च कर देते हैं। कभी-कभी गन्दे लड़कों की देखा-देखी गाली-गलौज देने की आदत सीख जाते हैं। इन कुटेवों का पता चलने पर उन्हें प्यारपूर्वक यह समझाना चाहिए कि यह आदतें बढ़ जाने पर मनुष्य का कितना तिरस्कार करती हैं और लोगों की दृष्टि में घृणास्पद बनाती हैं।

यह बातें किस्से-कहानियों के माध्यम से भी समझाई जा सकती हैं कि किन बुराइयों के बदले कितना पछताना पड़ता है और किस प्रकार व्यक्ति का मान और विश्वास गिर जाता है। 'बड़ों का बचपन' जैसी पुस्तकें बार-बार पढ़ानी-सुनानी चाहिए ताकि वे समझ सकें कि बड़े होने पर महानता प्राप्त करने के लिए छोटेपन से ही अच्छी आदतों का अभ्यास करना कितना आवश्यक है ?

किशोर लड़कों के चाल-चलन पर और भी कड़ी नजर रखनी चाहिए, क्योंकि वे बुरे लड़कों के कुसंग में और भी कितनी तरह की बुराइयाँ सीख लेते हैं और बुद्धि का विकास होने से वे ऐसी चतुरता बरतते हैं कि गलती पकड़ में न आवे। उन्हें विशेष रूप से कुसंग से बचाना चाहिए और सम्पर्क ऐसे लोगों के साथ रखने का प्रोत्साहन देना चाहिए, जिनके साथ रहकर सभ्य व्यवहार और सद्गुण, सभ्यता, सुसंस्कारिता की आदतें सीखें।

स्कूल में हर समय बच्चे बँधे नहीं रह सकते। घर आने पर इतनी कड़ी नजर रखी नहीं जा सकती कि वे किन्हीं अनगढ़ कामों में तो नहीं लगे रहे। खेल-कूद से भी रोका नहीं जा सकता। पेड़ों पर चढ़ना, गुल्ली-डण्डा खेलना आदि वैसे ही ऐसे काम हो सकते हैं, जिससे आँख आदि को कोई बड़ी चोट लग जाने का भय हो। ऐसी दशा में यही उपाय सर्वोत्तम रहता है कि बाल संस्कारशाला का प्रबन्ध अपने या दूसरों के बच्चों का हित साधन करने की दृष्टि से प्रबन्ध किया जाय। इसमें बच्चों का हित तो है ही जिनके पास फालतू समय है, वे ऐसे रचनात्मक कामों में अपना समय लगाकर समाज का हित भी कर सकते हैं और अपने आप को परमार्थ कार्यों में लगाए रह सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुराने समय में यह प्रथा थी कि अपने दैनिक जीवन में सेवा कार्यों के लिए कुछ समय सुरक्षित रखते थे। समयदान को ऊँचा दर्जे का पुण्य मानते थे। इसे मानवी धर्म कर्त्तव्य का अविच्छिन्न अंग मानते थे। पर अब तो समय की परम्परा ही उल्टी हो गई है। व्यक्ति स्वार्थ में ही चौबीसों घण्टे डूबा रहता है। परमार्थ की बात तो सोचता नहीं। इस प्रचलन को उलटने की आवश्यकता है।

आधी आयु घर-गृहस्थी के लिए, आधी परमार्थ के लिए लगाने की नीति वानप्रस्थ परम्परा कहलाती थी और उसे सभी लोग निष्ठापूर्वक पालन करते थे। अब फिर उस देव संस्कृति से सम्बन्धित प्रथा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। जिनमें कर्त्तव्य धर्म की भावना है, उन्हें सबसे सरल विधि बाल-संस्कारशाला चलाने की अपनानी चाहिए। हर गाँव पीछे एक शाला इस प्रकार की तो होनी चाहिए। कई लोकसेवी हों और बच्चे अधिक हों, तो उसकी कई शाखाएँ बना लेनी चाहिए ताकि अधिक बच्चों को पढ़ाने के लिए अधिक अध्यापकों की आवश्यकता पूरी हो सके।

जहाँ सुविधा हो वहाँ तीन वर्ष के बच्चों में भी यह पाठशालाएँ कक्षाओं के हिसाब से आरम्भ की जा सकती हैं, क्योंकि घरों का वातावरण ऐसा नहीं रहा जिससे छोटे बच्चे भी सुसंस्कार सीख सकें। घर में घिरे रहने पर कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते हैं। उनके लिए किण्डर-गार्डन, शिशु-शिक्षण की छोटी पाठशाला बनाई जा सकती है। इससे बच्चे घरेलू कुसंस्कारों से बचेंगे और अभिभावकों को हर समय उनकी चौकीदारी न करनी पड़ेगी। साथ ही कुछ न कुछ बुद्धिवर्द्धक सुसंस्कारिता की शिक्षा भी प्राप्त करेंगे।

बाल-संस्कारशालाएँ आज की महती आवश्यकता है। इसके लिए ऐसे सेवाभावी सुशिक्षितों की आवश्यकता है, जो अपना बहुमूल्य समय इस पुनीत कार्य में लगा सकें। सेवाभावी न मिलें तो ऐसे लोग ढूँढ़ने चाहिए, जो थोड़ा पारिश्रमिक लेकर इस पुनीत कार्य में लग सकें।

मात्र सरकारी स्कूलों के सहारे यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न नहीं कराए जा सकते, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार पाठ्यक्रम पूरा कराने की ही बात सिर पर सवार रहती है, संस्कारों का वे महत्त्व ही नहीं समझते। ऐसे अध्यापकों की आवश्यकता तभी पूरी हो सकती थी, जब प्राचीन काल जैसी गुरुकुल पद्धति का प्रचलन रहा होता। अब इस पद्धति के अभाव की पूर्ति हमें बाल-संस्कारशालाएँ जनस्तर पर विनिर्मित करके ही पूरी करनी चाहिए।

प्रज्ञा संस्थान कोई भी ऐसा न रहे, जहाँ ऐसी पाठशालाएँ न चलती हों। हर शाखा स्वाध्याय मण्डल में ऐसी संस्कारशालाएँ चल पड़नी चाहिए।

सद्ज्ञान सम्वर्द्धन

युगशिल्पियों का पुनीत कर्त्तव्य

अगले दिनों नवसृजन के निमित्त अनेकों कार्य करने होंगे, जिसमें शिक्षा प्रचार सर्वप्रथम है। इससे मनुष्य का मानसिक विकास होता है और अन्यत्र कहाँ क्या हो रहा है, क्या हो चुका है ? इसकी जानकारी प्राप्त करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचना सरल पड़ता है कि भूलों को न दुहराया जाय और जो प्रगतिशीलता के तथ्य हैं, उन्हें समझा और अपनाया जाय। इस तुलना के लिए व्यापक शिक्षा, अध्यापन और परिचय प्राप्त करने की आवश्यकता है। यह हस्तगत न हो सके तो वनवासी, आदिवासियों की तरह किसी सीमित क्षेत्र के कोने में पड़े, आदिम युग के ढर्रे-ढकोसलों को अपनाए हुए, सबसे अलग-थलग रहते हुए, गया-गुजरा, पिछड़ा जीवन जीना पड़ेगा।

शिक्षा मात्र चिट्ठी लिख लेना या पढ़ने तक ही सीमित नहीं। चिट्ठा-पत्री या हिसाब-जोड़-बाकी सीख जाना शिक्षा का आरम्भ हो सकता है, पर उतने मात्र से वह स्थिति नहीं बनती कि मानसिक बुद्धिमत्ता विकसित हो और अपनी भूलों को सुधारने और कमियों को पूरा करने की प्रेरणा मिले। इसके लिए शिक्षा के अन्य अंगों को भी अपनाना पड़ेगा और उसे सीमित क्षेत्र तक आबद्ध न रखकर इस स्थिति तक पहुँचाना पड़ेगा कि बिना अधिक समय गँवाए जनसमुदाय को विज्ञ और सुसंस्कृत समाज में बदला जा सके।

इसके लिए प्राथमिक पाठशाला स्तर की पढ़ाई को शिक्षा का शुभारम्भ कहा जा सकता है, पर बात इतने से नहीं बनती। बच्चा खड़ा होने लगे और दीवाल पकड़कर चलने लगे तो उसे उत्साहवर्द्धक तो माना जा सकता है, पर सन्तोषजनक नहीं। सन्तोषजनक स्थिति तब आती है जब बालक वयस्क होकर अपने पैरों पर लम्बी यात्राएँ करने लगे। सिर पर भारी बोझ लादकर भी बिना डगमगाए निश्चित दूरी पार कर सके। तैराकी का अवसर आ पड़े तो नदी प्रवाह को चीरते हुए दूसरे किनारे तक पहुँच सके। हमारी शिक्षा सर्वांगपूर्ण होनी चाहिए। उसमें व्यक्तित्व के समग्र विकास से लेकर जनसमुदाय को समुन्नत स्तर का बनाने वाली सम्भावनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। अनुपयुक्तताओं से जूझकर उन्हें टेढ़ी से सीधी करने की सामर्थ्य भी सम्मिलित है।

अपने देश में प्राथमिक शिक्षा तक का समुचित मात्रा में उपलब्ध न होना एक कलंक है। इस काले टीके को तो अपने सिर से हटाने का हर किसी को प्रयत्न करना चाहिए। जो इतने पर भी सहमत न हों तो उन्हें समझाने-बुझाने से लेकर बाधित करने और सब्जबाग दिखाने तक के वे सभी उपाय अपनाए जाने चाहिए, जो बालकों को सहमत करने के लिए अपनाए जाते हैं। किन्तु बात यहीं तक समाप्त नहीं होती। शिक्षा को उस स्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक पहुँचाना चाहिए, जिससे साहित्य किसी प्रभावी प्रचारक की तरह समझकर नये सिरे से परिमार्जन, परिष्कार करने में समर्थ, सक्षम हो सके।

इसके लिए दूसरा उपाय पुस्तकालयों की स्थापना है। उच्च शिक्षा उन्हीं के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। हर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वह जीवन और समाज से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याओं को प्रभावी ढंग से समझाने वाली पुस्तकों को खरीदता रहे। बौद्धिक भोजन की भी मनुष्य को उतनी ही आवश्यकता है, जितनी कि पेट भरने के लिए सन्तुलित आहार की। मनुष्य बुद्धि प्रधान है। फिर आज की दुनिया इतनी सुविस्तृत हो गई है कि उसमें विचारों की अगणित शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकल पड़ी हैं, उन्हें न जाना जाय तो यह निर्णय करना कठिन पड़ता है कि कौन-सा मार्ग लक्ष्य तक ले जाता है और कौन-सा झाड़-झंखाड़ों में भटकाता है। इस उलझन में से जनमानस को केवल सत्साहित्य ही निकाल सकता है।

मनुष्य सारे जीवन विद्यालयों में नहीं पढ़ सकता। आवश्यक विषयों के निष्णातों का सम्पर्क भी सुलभ नहीं है। ऐसी दशा में युग मनीषियों का सामयिक मार्गदर्शन करने वाली पुस्तकें ही एकमात्र अवलम्बन हो सकती हैं।

कभी ज्ञानवृद्धि के लिए सत्संगों की भी उपयोगिता थी। पर आज इससे ठीक उल्टा है। जो विज्ञजन उपयोगी मार्गदर्शन कर सकते हैं, वे व्यस्त हैं। उन्हें अपने ही ढेरों काम निबटाने होते हैं। फिर वे हर जिज्ञासु तक समय पर पहुँच भी नहीं सकते। जो भोंदू, बेहूदे, निठल्ले हैं, वे ही अक्सर सत्संग के नाम पर मजमे लगाते हैं और ऐसी बातें समझाते हैं जो यथार्थता के समीप नहीं ले जातीं वरन् दूर हटाती हैं। इसलिए उपयोगी सत्संग तो कभी किसी भाग्यवान को ही मिल सकते हैं। उसकी आवश्यकता अब सत्साहित्य से ही पूरी करनी पड़ती है। स्वाध्याय और सत्संग के दोनों ही प्रयोजन अब सत्साहित्य से ही पूरे होते हैं। बौद्धिक विकास के लिए उन्हीं का अवलम्बन लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। पाठशाला को प्रथम चरण और पुस्तकालय को उसका अन्तिम सोपान कहा जाय, तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

जिन्हें अनपढ़ों के लिए प्रौढ़ शिक्षा एवं बाल संस्कारशाला का प्रथम प्रयास करना हो, उन्हीं के लिए दूसरा कार्य यह भी सामने खड़ा है कि वे लगे हाथों पुस्तकालयों की स्थापना भी करें। मृतक पुस्तकालय वह है जहाँ एक कमरे में बहुत-सी पुस्तकें खरीद या बटोरकर साज-सज्जा हेतु जमा कर दी जाती हैं। जीवित पुस्तकालय वे हैं, जिनमें सामयिक समस्याओं पर अधिकारी, मनीषियों द्वारा प्रकाश डाला जाता रहा है। साथ ही उनमें व्यक्तियों को सुधारने, उभारने का कसौटी पर रखा हुआ खास प्रतिपादन भी विद्यमान है। यह सब आज की परिस्थितियों के साथ ताल-मेल रखता हुआ होना चाहिए। प्राचीनकाल के कथा-पुराण अपने समय की स्थिति भर बताते हैं। उनसे कुछ भले-बुरे निष्कर्ष तो निकाले जा सकते हैं, पर यह नहीं हो सकता कि आज की समस्याओं का हल मिल सके। आज की बनी रोटी ही आज का काम देती है। सौ वर्ष पुरानी बातों को नुमाइश में लेकर रखा जा सकता है, पर खाकर आज की भूख बुझाने का प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। पुरातन साहित्य को आदरपूर्वक सुरक्षित तो रखा जा सकता है, पर उनसे आज की बदली हुई परिस्थिति में सामयिक परामर्श के मार्गदर्शन की आशा नहीं की जा सकती।

आश्चर्य है कि अपने देश में युग साहित्य लिखा नहीं गया। फिर भी जहाँ-तहाँ से ढूँढ़-ढाँढ़कर कामचलाऊ प्रबन्ध किया जा सकता है, किन्तु आवश्यकता अब आगे इस बात की पड़ेगी कि उसके लिए उपयुक्त स्थान मिले तथा पुस्तकें खरीदने की व्यवस्था बने। इसका प्रबन्ध करने के लिए जिस धनराशि की आवश्यकता पड़ेगी, उसका सन्तुलन किस प्रकार बिठाया जाय ?

अपने देश में दान-पुण्य तो बहुत होता है, पर उसके पीछे चार मनोवृत्तियाँ काम करती देखी जाती हैं। एक स्वर्गलोक में स्थान रिजर्व होना, दूसरा पापों के कर्मफल से छुटकारा मिलना, तीसरे धर्मध्वजी होने की कीर्तिपताका फहराना, चौथे अपनी निजी कोई ऐसी योजना बनाना, जिसके कारण उन्हें किसी पंथ या योजना का संचालक माना जा सके। ये ऊलजलूल मान्यताएँ शेख चिल्ली जैसी महत्त्वाकांक्षाएँ ही बहुसंख्य के सिर पर छाई रहती हैं।

यही कारण है कि गाँव-गाँव छुट-पुट, टुन-मुन, मंदिर-मढ़ियाँ बनी हुई हैं, जबकि मुसलमानों में सामूहिकता, सहयोग से बनी एक बड़ी मस्जिद और ईसाइयों में एक सम्मिलित गिरजा होता है। यहाँ हिन्दू धर्म के असंख्यों समुदाय उपजे और एक की पूँछ में से दूसरे निकलते चले गए। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं ने धन, समय, श्रम, विचार और भूमि की असाधारण बर्बादी की। यश के लिए इमारतें तो बनाईं पर यह प्रबन्ध न किया कि उन्हें पीछे चलते रहने हेतु कोई अर्थपरक और व्यक्तिपरक ऐसा सुनियोजन किया जाय कि वे पीछे भी किसी प्रकार चलते रहें, जो चीज व्यक्ति विशेष ने अपने व्यक्तिगत गौरव या यश के लिए बनाई है, उसमें दूसरे क्यों सहयोग दें ? किस मुँह से कोई उसकी सहायता के लिए याचना करे।

अब इस कुप्रथा का, संकीर्णता का अन्त होना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा के लिए, पुस्तकालयों के लिए, बालकों के लिए तथा अन्यान्य आवश्यकताओं के लिए सर्वप्रथम इमारत की आवश्यकता पड़ेगी। इसकी पूर्ति के लिए सबसे उपयुक्त तरीका यह है कि जहाँ आँगन और कमरों वाली इमारतें, धर्म प्रयोजनों के लिए बनाई गई हैं। उन्हें शिक्षा प्रयोजनों के लिए दान कर दिया जाय। उनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

थोड़ी तोड़-फोड़ उलट-पलट करके इस योग्य बना लिया जाय कि उनमें शिक्षा संस्थान एवं पुस्तकालयों की स्थापना होने से वस्तुतः उस प्रयोजन की पूर्ति हो सके, जिसकी मूल भावना से उन्हें बनाया गया था। पर संकीर्ण-स्वार्थपरता ने उनका स्वरूप व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसा, निरर्थक की विडम्बना जैसा बनाकर खड़ा कर दिया है। जो हो चुका सो हो चुका, अब उनके ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिए और धर्म संस्थानों को शिक्षण संस्थाओं में बदला जाना चाहिए।

प्राचीनकाल में देवमन्दिर इसीलिए बनते थे कि उनके कार्यकर्त्ताओं का निर्वाह भगवान के भोग के नाम पर चलता रहे। उन पर किसी का एहसान न चढ़े। किसी के आगे हाथ न पसारना पड़े। भगवान के निमित्त लोग स्वेच्छापूर्वक उनमें खाद्य सामग्री, वस्त्र आदि चढ़ाते रहें और कार्यकर्त्ताओं का निर्वाह तथा उस संस्थान से सम्बन्धित रचनात्मक गतिविधियों का खर्च चलता रहे। विवाह-शादियों पर, जन्मोत्सवों पर लोग विशेष रूप से भगवान के दर्शन करने जाते थे और वहाँ श्रद्धानुसार भेंट-पूजा भी चढ़ाते थे। भगवान को किसी की सेवा सहायता नहीं चाहिए पर सत्प्रवृत्तियों का परिपोषण तो साधनों के सहारे ही होता है, इसलिए उसका प्रबन्ध मन्दिरों में प्रतिमा स्थापना के सहारे चलता रहा। वस्तुतः वे देवालय स्थानीय रचनात्मक प्रयोजनों का संचालन होते रहने के लिए बनाए जाते थे और प्रतिमा कक्ष के अतिरिक्त इतने स्थान खाली रखे जाते थे कि उनमें अनेकों रचनात्मक प्रवृत्तियों का सुसंचालन होता रहे।

मन्दिरों में पूजा आदि के लिए नियुक्त व्यक्ति स्थानीय गतिविधियाँ चलाने के अतिरिक्त समीपवर्ती गाँवों को भी अपना कार्यक्षेत्र बना लेते थे। इसलिए उन्हें पुजारी ही नहीं मण्डलेश्वर भी कहा जाता था। सात दिन में सात गाँव के हिसाब से छोटे-छोटे मण्डल होते थे और उन सब में जागरण के, अभ्युदय के प्रसंग में लगे हुए व्यक्तियों को मण्डलेश्वर कहा जाता था। जिनकी प्रतिभा बढ़ी-चढ़ी होती थी, जिनके अधिक सहायक होते थे, जो अधिक बड़े क्षेत्र को सँभाल सकते थे, महीने में एक दिन तो स्वयं भी जा सकते थे; ऐसे धर्म पुरोहितों को मण्डलेश्वर कहा जाता था। उन दिनों धर्मसेवकों से लेकर जनसाधारण तक सभी की मान्यता थी कि भावनात्मक, चारित्रिक, सेवाभावी कार्यक्रमों को चलाया जाना ही भगवान की असली पूजा है। प्रतिमाएँ तो उनके दृश्य प्रतीक के रूप में स्थापित की जाती थीं। उन्हें महामानवों के अवतारों के आदर्श चरित्रों के अनुकरण, अभिनन्दन के निमित्त स्थापित किया जाता था और उन्हें अधिष्ठाता लोग उनके निमित्त सत्प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन करते थे। वे इतना तो जानते ही थे कि भगवान को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करना या निर्वाह की व्यवस्था करना, भेंट-पूजा चढ़ाना आवश्यक नहीं है। वे तो मात्र सत्कर्मों से प्रसन्न होते हैं। सत्कर्मों का सूत्र-संचालन करने के निमित्त बने हुए देवालय भगवान के घर माने जाते थे और उन्हें तदनुरूप समुचित मान-सम्मान ही नहीं, आर्थिक एवं श्रमपरक सहयोग भी दिया जाता था।

धर्मशालाएँ भी इसी निमित्त बनती थीं। प्रचारकों, सेवाभावियों को उनमें निवास करते हुए स्थानीय सत्प्रवृत्तियाँ चलाने की सुविधा रहती थी। सैलानियों को मुफ्त में ठहराकर अपनी प्रशंसा कराने की इच्छा किसी की भी नहीं होती थी। मुफ्त में समर्थों को देना और लेना उन दिनों रिश्वत लेने की तरह बुरा माना जाता था। धर्मशालाओं का उद्देश्य मात्र धर्म प्रयोजनों का उसे केन्द्र बनाना और वहाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप गतिविधियों को चलाने के रूप में था। यह कार्य पद्धति सहज विवेक से अपनाई जाती थी।

प्रगतिशील धर्म तन्त्र की उपयोगिता शासन तन्त्र के समकक्ष ही है। सरकारी कार्य संचालन हेतु स्टाफ एवं भवन की व्यवस्था सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों पर होती थी। प्राइमरी स्कूल, पंचायत घर आदि तो जगह-जगह खुल चुके हैं या खुल रहे हैं। धर्म तन्त्र को जब नवजीवन प्रदान किया गया है और उसे अपना उद्देश्य पूरा कर सकने में समर्थ बनाया जा रहा है, तो आवश्यक है कि उसके स्थानीय सूत्र-संचालन के निमित्त हर गाँव पीछे एक धर्म केन्द्र हो।

इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयत्न यह होना चाहिए कि उपयुक्त आकार के उपयुक्त स्थान पर कोई मन्दिर हो या धर्मशालाएँ हों तो उनके मालिकों को समझा-बुझाकर इसके लिए सहमत किया जाय कि जिस उद्देश्य के लिए इनका निर्माण हुआ है, उसी के निमित्त इनका उपयोग भी होने दिया जाय।

जिनके पास लम्बे-चौड़े निजी मकान हैं, किन्तु उनमें रहने वालों की संख्या कम रह गई है, उनसे भी अनुरोध किया जा सकता है कि इन मकानों का उपयोग किसी उपयोगी कार्य के लिए होने देकर अपने लोक-परलोक सँभालें और इन इमारतों को ऐसे ही टूट-फूट जाने से बचाएँ।

गायत्री प्रज्ञापीठें या प्रज्ञा संस्थान अनेकों स्थानों पर बने हैं। जब उनका शिलान्यास, प्राण-प्रतिष्ठा या उद्घाटन समारोह हुआ था तब भी यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि देश में बने अन्धाधुन्ध मन्दिरों में यह एक और नई संस्था नहीं जोड़ी जा रही है। इसका नाम भी गायत्री मन्दिर नहीं रखा जा रहा है। प्रज्ञापीठ नामकरण के पीछे इसका उद्देश्य स्पष्ट है। शिक्षा और विद्या का समन्वय 'प्रज्ञा' कहा जाता है। 'पीठ' कहते हैं संस्थान को। इस निर्माण के पीछे लोकमानस के परिष्कार का—शिक्षा सम्वर्द्धन का, युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने का उद्देश्य सन्निहित है। इन देवालयों की भावी गतिविधियाँ चिह्न-पूजा जैसी नहीं होनी चाहिए, वरन् इन संस्थानों की इमारत का उपयोग प्रज्ञा प्रसार के अतिरिक्त और किसी काम में नहीं होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो लोग उद्देश्य को भूलकर भटकाव में पड़ गए हों और गायत्री माता की पूजा, आरती तक उसका प्रयोग कर रहे हों, उन्हें सचेत किया जाना चाहिए कि लक्ष्य के प्रति विश्वासघात न करें। जितने प्रयत्नों से इस निर्माण के लिए जमीन प्राप्त करने और इमारत बनाने के लिए धन इकट्ठा करने की दौड़-धूप की गई थी, इससे कम नहीं, वरन् अधिक ही प्रयत्न उसके संचालन में करना चाहिए। सन्तान उत्पन्न कर लेना सुगम है, पर उसे सुयोग्य, समर्थ, स्वावलम्बी, सुसंस्कारी बनाना कठिन। इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए जो प्रजनन की दिशा में कदम बढ़ाते हैं, उन्हीं की दूरदर्शिता सराहनीय है अन्यथा आवारा बच्चे पैदा करने में तो अभिभावकों और बच्चों की दुर्गति ही दुर्गति है। प्रज्ञापीठों का निर्माण इतनी जल्दी दुर्भाग्यपूर्ण और दुर्गतिग्रस्त होने लगे तो यह बुरी बात है। अभी तो उन्हें बने कुछ ही वर्ष हुए हैं। यदि उत्साह इतनी जल्दी समाप्त हो गया, लक्ष्य इतनी जल्दी विस्मृत कर दिया गया तो समझना चाहिए कि एक पश्चात्ताप योग्य दुर्घटना ही घटित होने लगी।

जो हो नव जागरण का प्रयास तो हर कीमत पर चलना चाहिए। निरक्षरों को साक्षरता और साक्षरों को सामयिक विचारशीलता का प्रशिक्षण हर कीमत पर होना चाहिए और भावनाशील प्रगतिवादी को अपने समय का एक कहने लायक अंश इस निमित्त लगाते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रज्ञा प्रशिक्षण पाठशालाएँ हर गाँव, मुहल्लों में चलनी चाहिए। इसमें न्यूनतम १० छात्र और ३ संचालकों की समिति इस प्रकार कुल १३ व्यक्तियों का छोटा-सा संगठन विनिर्मित करना है। इतने विचारशील पहले से न भी हों तो प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने बुद्धि-कौशल से इतने साधन जुटा सकते हैं।

आरम्भ में इस विद्यालय में, किसी चौपाल को, बड़े कमरे को, छायादार पेड़ को या किराए का कमरा लेकर अपनी गतिविधि प्रारम्भ की जा सकती है; पर यह कार्य मात्र तीन माह, छह महीने या वर्ष भर का नहीं है, इसे निरन्तर वर्षों तक चलाया जाना है। एक त्रैमासिक सत्र के छात्रों का पाठ्यक्रम पूरा होने से पहले ही नये की भर्ती हो जानी चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को यह कार्य सौंपा गया है कि वह अपनी तीन माह की पढ़ाई करते हुए अपने स्थान पर एक नया व्यक्ति ढूँढ़कर नियुक्त करता जाय। छोटे बच्चे पढ़ते जाएँगे तो बड़े लोग भी शिक्षण की उपयोगिता समझते जाएँगे। इस प्रकार छात्रों की संख्या कभी भी घटने वाली नहीं है। वह बढ़ती ही जाएगी। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि पाठशाला का, पुस्तकालय का अपना कोई निजी स्थान भी हो।

उस खण्डहर या विशालकाय किले की क्या महत्ता, जिनमें दिन भर उल्लू, चमगादड़ और अबाबील कुहराम मचाते रहें और रातभर डरावने भूत नाचें। उसकी तुलना में चाणक्य जैसी छोटी-सी फूस की झोपड़ी भली, जिसमें बैठकर एक प्रतिभावान, गुप्त साम्राज्य की और नालन्दा विश्वविद्यालय की योजनाएँ बनाता हो। बड़े विशालकाय, देवालयों को उन छोटी-सी झोपड़ियों पर निछावर किया जा सकता है, जिसमें महाराष्ट्र के महावीर मन्दिर बने थे। जिसके इर्द-गिर्द व्यायामशालाएँ और पाठशालाएँ चलती थीं, जहाँ से शिवाजी के लिए भावभरा सहयोग जुटा था।

अगले दिनों प्रज्ञापीठें बनें तो उनमें पाठशाला और पुस्तकालय के लिए सुनिश्चित स्थान हो। एक व्यक्ति के निवास की गुंजाइश हो, ऐसा नमूना शान्तिकुंज में बना हुआ है। उसमें उन दिनों १५ हजार की लागत लगी थी। अब स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कुछ न्यूनाधिक भी हो सकती है। इसकी एक दीवार में बीचों-बीच गायत्री माता की एक हजार रुपये की प्रतिमा लगा दी है। यह भी न बन पड़े तो बड़े साइज के चित्र से भी काम चलाया जा सकता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य बात है कि नई इमारत बनाना आवश्यक नहीं, जितना कि पाठशाला और पुस्तकालय का प्रबन्ध करना।

आज विचारोत्तेजक पुस्तकें पढ़ने में लोगों को रुचि नहीं है। मनोरंजक, भोंडी कहानियों की ही माँग रहती है, विचारशील पुस्तकालयों को सक्रिय बनाने के लिए लोगों के घरों तक पुस्तकें पहुँचाने और वापस लाने का प्रबन्ध करना पड़ेगा। चस्का लगने पर तो वे स्वयं लेने पहुँचेंगे। परन्तु जब तक वह स्थिति नहीं आती, झोला पुस्तकालय या चल पुस्तकालय, ज्ञानरथ ही सफल हो सकते हैं। इसलिए स्वयंसेवकों को, विद्यालय के छात्रों को, अपने-अपने मुहल्ले के शिक्षित नर-नारियों के साथ सम्पर्क बनाने की जिम्मेदारी उठानी पड़ेगी। पैसे के अभाव में समय और श्रम ही उसका स्थानापन्न हो सकता है।

इतने पर भी विचारक्रान्ति आन्दोलन को—प्रज्ञा अभियान को व्यापक बनाने के लिए और भी कितने ही उपकरणों की, साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। इन सबके लिए पैसा चाहिए। इसके लिए वर्तमान धनिक वर्ग से कोई बड़ी आशा नहीं करनी चाहिए। वे रचनात्मक कार्यों के लिए नहीं अपनी कीर्तिध्वजा फहराने के अतिरिक्त और किसी काम पर कदाचित ही कुछ खर्च करते हों। ऐसी दशा में एक ही उपाय रह जाता है कि प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक को अपने यहाँ बीस पैसा नित्य जमा करने वाला ज्ञानघट या एक मुट्ठी अन्न डालने वाला धर्मघट स्थापित करना चाहिए। उसे जमा खर्च करने वाला व्यक्ति इतना प्रामाणिक होना चाहिए कि इस भिक्षा धान्य से भी कटौती करके अपनी जेब न भरने लगे। हर महीने सभी व्यक्तियों को हिसाब समझाता रहे, जहाँ प्रज्ञा प्रशिक्षण के लिए छात्रों और अध्यापकों का जुगाड़ बिठाना है, वहाँ सूत्र-संचालकों को यह प्रयत्न भी करना चाहिए कि अपने क्षेत्र में अधिकाधिक ज्ञानघटों, धर्म घटों की स्थापना का प्रसार हो। जिनका जन्म दिन मनाया जाता है, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रशिक्षण प्राप्त करने आते हैं वे तो मिशन की कार्यविधि से प्रभावित होकर अपने यहाँ इन स्थापनाओं को कर ही लेते हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे मध्यवर्ती सुसम्पन्नों तक भी मिशन का प्रकाश पहुँचाना चाहिए, जो खाते-पीते हैं और एक दिन की आदमनी इस पुण्य प्रयोजन के लिए दे सकने की स्थिति में समर्थ हैं। इस प्रकार आजीविका संग्रह के उपायों पर भी ध्यान रखा जाय तो आवश्यक खर्चों की पूर्ति सरलतापूर्वक होती रहेगी।

स्लाइड प्रोजेक्टर, लाउडस्पीकर, टेपरिकार्डर, कैसेट्स, संगीत उपकरण आदि कितनी ही वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनके लिए आए दिन खर्च की जरूरत पड़ती है। टाट पट्टी, बिजली, ब्लेकबोर्ड, पुस्तकें आदि कितनी ही वस्तुएँ ऐसी हैं जो पैसा माँगती हैं। निजी इमारत छोटी भी बनानी पड़े तो उसका खर्च अलावा है। दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखने के लिए स्याही, ब्रुश, बिक्री के लिए ज्ञानवर्द्धक सामग्री यह सभी साधन ऐसे हैं जो हर शिक्षा केन्द्र के पास होने ही चाहिए। कई झोला पुस्तकालय और न्यूनतम ज्ञान रथ भी चाहिए। इनके लिए पैसा जुटाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। इसके लिए प्रधान आधार ज्ञानघट और महीने में एक दिन की आजीविका को ही केन्द्र बिन्दु बनाया जा सकता है। कोई उदारमना कभी अतिरिक्त सहायता कर दे, तो बात दूसरी है। इसके लिए प्रयास चलते भी रहना चाहिए।

समय और श्रम खर्च करने के लिए प्रेरणा देने वाली जिस प्रकार भाव-गरिमा की सारी व्यवस्था जुटाने की आवश्यकता है, धर्मतन्त्र को पुनर्जीवित करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है, ठीक उसी प्रकार यह भी ध्यान रखने योग्य बातें हैं कि इन प्रयोजनों के लिए आवश्यक उपकरण, धनराशि भी चाहते हैं। इसकी संगति आसानी से बिठाई जा सकती है। कठिनाई तब पड़ती है जब संग्रहकर्त्ता अपनी ईमानदारी और प्रामाणिकता में अँगुली उठाने जैसी स्थिति पैदा कर लेते हैं। देने वालों को या अन्य सदस्यों को हिसाब-किताब समझाने में आना-कानी करते हैं। इतने भर से लोग अनुमान लगा लेते हैं कि कहीं दाल में काला है और वे फिर अविश्वास के वातावरण में अपना हाथ खींच लेते हैं और दूसरे देने वालों को भी नकारात्मक परामर्श देते हैं। अस्तु, जहाँ-कहीं भी सार्वजनिक गतिविधियों का प्रसंग हो वहाँ हिसाब-किताब की सफाई रखना नितान्त आवश्यक है।

एक विद्यालय अपने त्रैमासिक चार सत्रों के बाद एक वार्षिक स्मारिका प्रकाशित करता रहे और समीपवर्ती लोगों से उसके लिए विज्ञापन एकत्रित करता रहे तो उस प्रयास से भी प्राय पाँच हजार रुपये की बचत हो सकती है। साथ ही व्यवसायी वर्ग में मिशन के प्रवेश का एक नया द्वार खुल सकता है। पर इस प्रयत्न को भी कोई निजी व्यवसाय न बनाने पाए और बचत का पैसा जेब में न रखने पाए, इस पर कड़ी निगरानी रखने की जरूरत है। संगठन जिस कारण बदनाम होते हैं और भविष्य के लिए सहयोग की सम्भावना समाप्त करते हैं, वह पैसे के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करता ही है। यदि इसकी सुव्यवस्था हो और बचत को हाथों-हाथ मिशन की किसी आवश्यकता पूर्ति में लगा दिया—जो यह एक ऐसा सरल मार्ग है, जिससे यश और धन दोनों मिलते हैं और इस आधार पर क्षेत्रीय कार्यक्रमों में प्रगति का आधार बनता है। समय-समय पर मिशन के सहयोगियों से अन्य आधारों पर भी कुछ संग्रह किया जा सकता है और महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति हाथों-हाथ हो सकती है।

यों गृह उद्योग, कुरीति निवारण जैसे अनेकों कार्य ऐसे हैं जो हाथों-हाथ काम में लिए जा सकते हैं और उनके सहारे मिशन के कार्यकर्त्ता हाथों-हाथ कुछ आर्थिक बचत भी कर सकते हैं। घरों में शाक-भाजी उत्पादन ऐसा ही कार्य है, जिसे सबसे सरल और सबसे अधिक लाभदायक धन्धा कहा जा सकता है। यह बारहों महीने अदल-बदलकर चल सकता है और स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है। दूसरा कार्य विवाह-शादियों में खर्च न करना। धूम-धाम, प्रदर्शन, प्रीतिभोज में कितना पैसा खर्च होता है, उसे दोनों पक्ष मिलकर बचाएँ तो उसमें दोनों परिवारों को फलने-फूलने का अवसर मिल सकता है। परस्पर सद्भाव भी गहरा हो सकता है। जो देना हो वह दोनों ओर से नकदी के रूप में दिया जाय और उसे स्थायी धन के रूप में लम्बे समय तक सुरक्षित रखने के लिए वधू के नाम बैंक में जमा कर दिया जाय, तो आर्थिक दृष्टि से एक बड़ी बचत हो सकती है और उसका एक अंश प्रज्ञा प्रशिक्षण और उससे सम्बन्धित अन्यान्य क्रियाकलापों में लगाया जा सकता है। इसी प्रकार जन्म दिवसोत्सव, विवाह दिवसोत्सव आदि के खुशी भरे अवसर ऐसे हैं, जिन पर होने वाला खर्च राष्ट्र के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुण्य-परमार्थ प्रज्ञा प्रशिक्षण में लगाया जा सकता है।

धन की भाँति ही इस प्रयोजन के लिए लगनशील कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की भी आवश्यकता है, जो छात्रों को बड़ी संख्या में जुटाने के लिए प्रयत्नरत रहें। कोई बात कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, पर उसका माहात्म्य और प्रतिफल नहीं समझाया गया तो लोग उपेक्षा एवं उदासी ही दिखाते रहते हैं। न विद्यार्थी इसके लिए तैयार होते हैं और न अध्यापक इस पुण्य-प्रयास में सहयोग देने के लिए आगे आते हैं। अनजान होना सबसे बड़ा व्यवधान है। इसे दूर करने के लिए गोष्ठियों में अथवा एक-एक करके लोगों से मिलना और शिक्षा प्रसार की इस योजना में इन्हें सम्मिलित करना चाहिए। दूसरों को प्रोत्साहित करना इस बात पर निर्भर है कि किसने किस प्रकार, कितना सम्पर्क साधा ? और अपना विषय कितनी गहराई तक उनके गले उतारा ? इस प्रकार प्रथम चरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में सफलता मिल जाने पर न तो छात्रों की संख्या में कमी रहती है, न अध्यापक मिलने की। यदि इस दिशा में कुछ लोग आगे बढ़ने के लिए तैयार न हुए तो योजना कागजों पर लिखी या छपी रह जाएगी। उसे कार्यान्वित होने का अवसर न मिल सकेगा। इसलिए छात्रों और अध्यापकों से भी अधिक महिमा और उपयोगिता उनकी है, जो प्रयास के सत्परिणामों से अधिकाधिक लोगों को परिचित, अवगत एवं हृदयंगम करा सकें।

यों पढ़ने-पढ़ाने के अनेकानेक विषय हैं, उनमें व्यवसाय, उपार्जन सम्बन्धी जानकारियाँ देने वाले भी कितने ही हैं। उन्हें लोग पढ़ना चाहते हैं। मनोरंजन तो सर्वप्रिय विषय है। किस्से-कहानियाँ कौन नहीं पढ़ना चाहता ? अश्लील पुस्तकें तो किराया देकर भी बुकसेलरों से पढ़ने ले जाते हैं। सिनेमा सम्बन्धी पत्रिकाएँ भी बहुत रुचिकर होती हैं। पर लोकप्रिय विषयों का संग्रह करके पाठकों की संख्या बढ़ा लेना किसी पुस्तकालय या विद्यालय की सफलता नहीं है। विद्यार्थियों के अभिभावक अपने बच्चों को खर्चीले, शानदार पब्लिक स्कूलों में पढ़ानें के लिए भर्ती मात्र के लिए ढेरों पैसा खर्च करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि जीवन की गरिमा और प्रगति किन बातों पर टिकी हुई है। उथला शिष्टाचार भर सीख लेने से लोगों को इतना ही विदित हो सकता है कि वह किसी खर्चीले स्कूल में पढ़े तो हैं पर जब तक व्यक्ति में शालीनता, दूरदर्शिता और समझदारी का विकास न हो तब तक उथले शिष्टाचार और महँगे रहन-सहन का अभ्यास करा देने पर वे आदतें आगे चलकर छात्रों में कृत्रिमता, फिजूलखर्ची और परावलम्बन की ही आदतें डालती हैं। पग-पग पर बढ़ी-चढ़ी सुविधाओं की माँग करती हैं। ऐसे विद्यार्थी यदि ऊँचे अफसर और अधिक कमाऊ बन गए तो वहाँ भी वही करेंगे। वैसे भी उन्हें साधारण लोगों के बीच रहते हुए परेशानी ही उत्पन्न होगी। बचपन का खर्चीलापन बड़े होने पर तब बहुत दुःखदायक होता है, जब परिस्थितिवश उस अनुपात से रहन-सहन बनाए रहने और अनाप-शनाप पैसा खर्च करने की सुविधा हाथ से चली जाती है।

वस्तुतः अपनी शिक्षा योजना विशेषतः देहात एवं कस्बा स्तर के निवासियों के लिए है। उसमें वे लोग भी सम्मिलित हैं, जो आजीविका के लिए अस्थायी रूप से शहरों में परिवार आ बसे हैं। इस वर्ग में न तो शिक्षा के प्रति उत्साह है और न ऐसा प्रबन्ध है ही, जिसके माध्यम से वे निकटवर्ती स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ने के लिए भेज सकें। साक्षरता से वंचित देहातों का अधिकांश समुदाय और शहरों की झुग्गी-झोपड़ियों में बसा हुआ एक अशिक्षित समुदाय और है।

अशिक्षा ने एक नई कठिनाई यह उत्पन्न की है कि देहाती क्षेत्रों में उनकी स्थानीय बोलियों में काफी अन्तर पड़ गया है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि ३०-४० मील पर बसे हुए लोग अपनी परम्परागत बोलियाँ बोलते हैं, जिन्हें समझने में एक-दूसरे को बड़ी कठिनाई होती है। जन-जातियों में यह कठिनाई और बढ़ी-चढ़ी है। वे अपने कबीलों में चली आ रही भाषाएँ ही प्रायः बोलते-समझते हैं। शुद्ध हिन्दी को आधी-अधूरी वे समझ तो लेते हैं, पर उसे बोल सकना उनके लिए कठिन पड़ता है। ऐसी दशा में एक तो साक्षरता ही उनके लिए कठिन पड़ती है, दूसरे पारस्परिक वार्तालाप तक भी सम्भव नहीं हो पाता। सरलता तभी होती है जब उसी क्षेत्र के निवासी उसी भाषा के बोलने, समझने वाले व्यक्ति अध्ययन का कार्य कराएँ। प्रौढ़ शिक्षा में पुस्तकें पढ़ने में भी यही कठिनाई होती है। वे अक्षरों को पढ़ तो लेते हैं, पर उनका भावार्थ समझने में उन्हें विशेष रूप से कठिनाई होती है, इसके दो ही समाधान हैं कि या तो उस कबीले की भाषाओं से परिचित लोगों को ही अध्यापक नियुक्त किया जाय और हिन्दी में छपी पुस्तकों का सारांश बताने के अतिरिक्त उनका शब्दकोष और व्याकरण भी पढ़ायें। ऐसे अध्यापकों के चयन और दायित्व सौंपने के सम्बन्ध में समुचित दौड़-धूप करनी चाहिए।

दूसरा उपाय यह है कि क्षेत्रीय या कबायली भाषाओं में मोटे अक्षरों की ऐसी पुस्तकें छापी जाएँ, जिसमें प्रमुख सिद्धान्तों का तो उल्लेख किया जाय पर उनकी विवेचना करते हुए गले उतारने का काम उन अध्यापकों को सौंपा जाय जो दुभाषिए का काम कर सकें।

तीसरा उपाय यह है कि जिन अध्यापकों को जिन क्षेत्रीय भाषाओं में काम करने के लिए भेजा जाय, उन्हें वहीं की न केवल भाषा वरन् संस्कृति भी जाननी चाहिए ताकि उनके बीच घुल-मिल सकें। ईसाई पादरी जिन कबीलों में, देहाती क्षेत्रों में काम करने के लिए जाते हैं, उन्हें वहाँ की भाषा, संस्कृति, परम्परा, मनोवृत्ति आदि के बारे में तब तक अध्ययन कराया जाता है, जब तक वे आवश्यक जानकारी से पूरी तरह स्वयं को सम्पन्न नहीं कर लेते। ऐसे समुदाय के बीच एक नया कदम भी उठाना पड़ सकता है कि वे एक समय, एक स्थान पर एकत्रित हों। अध्यापक उनके लिए समय नियत करके एक-दो घण्टे के लिए वहाँ पहुँचा करें और शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराया करें।

विदेशों में यह असुविधा नहीं है। एक तो वहाँ निरक्षरता का अनुपात कम है। दूसरे अँग्रेजी को विश्व भाषा के रूप में अधिकांश लोग जिनमें देहाती भी सम्मिलित हैं, समझ लेते हैं इस प्रकार एक भाषा-भाषी को दूसरे क्षेत्र के देहातों में जाकर किसी विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। यही नहीं फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि भाषाएँ अपने-अपने देशों में जन-जन तक खूब प्रचलित हैं; पर अपने देश में यह सुविधा नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत की सरकारी मान्यता प्राप्त भाषाएँ तो १७ हैं, पर देहातों में—कबीलों में करोड़ों लोग जो बोलते हैं, उनकी भिन्नताएँ हजारों किस्म की हो जाती हैं, उसके लिए क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दकोष, व्याकरण, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का ताल-मेल बिठाने वाली पुस्तकों की संरचना एवं प्रकाशन आवश्यक है। अन्यथा विद्यालय खोल देने, अध्यापक नियुक्त कर देने पर भी उद्देश्य की पूर्ति न हो सकेगी, जो प्रौढ़ शिक्षा और बाल संस्कारशाला के लिए किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार के भाषायी पिछड़ेपन में ग्रस्त करोड़ों व्यक्ति हैं, उनकी ओर ध्यान न दिया जाय तो शिक्षा में अधूरापन ही रह जाएगा।

पिछड़े वर्गों की बेकारी दूर करने का यह भी तरीका सबसे सुगम है कि मध्यवर्ती शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे अपने भाषायी क्षेत्रों में जाकर शिक्षा प्रचार का काम करें। भाषायी समस्या हल हो जाने पर तो उन्हें शहरी उच्च शिक्षा वाले स्कूलों में भर्ती होना कठिन नहीं रहेगा। बात बच्चों की ही नहीं बड़ों की भी है। प्रौढ़ शिक्षा तो क्षेत्रीय भाषाओं में ही दी जा सकती है।

अशिक्षित और पिछड़े वर्गों की कुरीतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। सुधार का दृष्टिकोण लेकर चलने वाले को यह देखना होगा कि कहाँ क्या अनुचित प्रचलन है ? वहाँ उन्हीं की चर्चा की जाय। उदाहरणार्थ जन-जातियों में लड़की वाले को लड़का वाला दहेज देता है। उत्सवों में कई दिनों तक घर की बनी शराब का दौर चलता रहता है। बीमारियों का इलाज करने की अपेक्षा वे झाड़-फूँक वालों के फेर में पड़े रहते हैं और जीवन से हाथ धो बैठते हैं। स्वच्छता की आदत नहीं है। मिल-जुलकर साथ-साथ रहने की अपेक्षा दूर-दूर, अलग-अलग झोंपड़े बनाकर रहते हैं। अवसर मिलने पर लूट-खसोट में भी नहीं चूकते। भाषा में कर्कशता और व्यवहार में उजड्डता रहने के कारण तनिक-तनिक-सी बात पर इतने झगड़े बढ़ जाते हैं कि जान लेने और देने में कोई अचम्भा नहीं लगता। इन बुराइयों में से जो कुरीति जिस क्षेत्र में पाई जाय, उन्हें धीरे-धीरे समझा-बुझाकर दूर करनी चाहिए। इनकी मान्यताओं की कटु निन्दा करने पर तो उल्टा पड़ते हैं और सुधार के ही विरुद्ध पड़ जाते हैं।

विकसित क्षेत्रों में तो यातायात की भी सुविधा है और सरकारी स्कूलों की भी। पर हम पिछड़े क्षेत्रों में प्रवेश करके उन्हें सुधारना और उठाना है तो अपनी कठिनाइयों को ध्यान में रखना व अपने को उस ढाँचे में ढालना होगा, जिसके माध्यम से उन तक पहुँच सकना और उनका विश्वास, सहयोग प्राप्त कर सकना सम्भव हो। ईसाई मिशनरियाँ यही करती हैं। अच्छा हो कि सुधारक वर्ग उन्हीं समुदायों से निकलें और स्वयं उनका मार्गदर्शन करते हुए प्रगति क्रम को सरल बनाएँ।

हमारा उद्देश्य जनजागरण है इसलिए पढ़ना इतना ही है जो व्यक्ति, की निजी गरिमा को ऊँची उठा सके और इर्द-गिर्द बिखरी हुई समस्याओं का सीधा समाधान प्रस्तुत कर सके। विषय बड़ा है, उसके लिए थोड़ी पुस्तकें कामचलाऊ तो हो सकती हैं, पर पर्याप्त नहीं। इसके लिए अन्य सहायक पुस्तकें भी चाहिए। जिसके सहारे अध्यापकों को विस्तारपूर्वक पढ़ाना और छात्रों को पढ़ना सम्भव हो सके। छात्रों को तद्विषयक पढ़ना हो तो इसके लिए एक पुस्तकालय जुड़ा रहना चाहिए, जिसके सहारे प्रति सप्ताह के छह दिनों में छात्र और अध्यापक अगले सप्ताह के लिए अपनी विशेष तैयारी करते रहें। ज्ञान को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। उसे अधिकाधिक विस्तृत किया जाना चाहिए। इसके लिए उपयोगी पुस्तकों का संग्रह करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। इस सन्दर्भ में 'युग निर्माण योजना' ने कितनी ही छोटी-बड़ी पुस्तकें छापी हैं, उन्हें अपनी अर्थव्यवस्था के अनुरूप मँगाते रहना चाहिए। योजना यह है कि प्रत्येक प्रज्ञा पुस्तकालय में एक हजार पुस्तकें हों। उसमें व्यक्ति, परिवार और समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने वाली पुस्तकें हों। इस संग्रहालय के लिए विद्यालय की भाँति पुस्तकालय व्यवस्था के निमित्त भी अर्थ साधन जुटाने चाहिए और यह मानकर चलना चाहिए कि विद्यालय में नियमित और प्रश्नोत्तर के रूप में पढ़ाई चलाने के अतिरिक्त बचे हुए छह दिनों में स्वाध्याय व्यवस्था नियमित रूप से चलती रहे और छात्रों का ज्ञान इतना बढ़ता रहे, जिससे वे अगले दिनों अपना स्वतन्त्र विद्यालय और पुस्तकालय चलाने के अतिरिक्त स्वयं वक्ता और गायक की भूमिका भी निभा सकें।

जो प्रज्ञा प्रशिक्षणों के माध्यम से सीखा गया है, उसे अधिकाधिक विस्तृत क्षेत्र में व्यापक बनाना, इस मिशन से जुड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। समूचे देश को, समूचे विश्व को विचारशील बनाने की प्रक्रिया इसी क्रम में सम्पन्न हो सकेगी।

इस समूची शिक्षा के दो अंग और भी हैं, उन्हें विस्तृत नहीं किया जाना चाहिए। उनके साधन जुटने चाहिए, शिक्षण मिलना चाहिए और अभ्यास चलना चाहिए। इनमें से एक है प्रवचन और दूसरा है संगीत। बोलना भी एक कला है। सामूहिक भाषण में व्यक्ति प्रायः हड़बड़ा जाता है, उसकी मानसिक स्थिति अस्त-व्यस्त हो जाती है। ऐसी दशा में वह जो कुछ कहना चाहता है, वह नहीं कर पाता अथवा अपनी बात रुक-रुककर कहता है। ऐसी स्थिति में उपहास करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि विद्यालय की एक वर्ष की अवधि में ही गोष्ठियों में प्रवचन का, बड़े समारोहों में भाषण का अभ्यास कर लिया जाय। एक वर्ष का समय इसके लिए कम नहीं होना चाहिए। किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नियमित अभ्यास चलता रहे। यह कार्य घर पर प्रज्ञा पुराण की दैनिक कथा कहते रहने अथवा मिशन की अन्यान्य पुस्तकें सुनाते रहने का नियम बना लेने से अभ्यास में प्रवीणता मिल सकती है।

इसी प्रकार संगीत के सम्बन्ध में विद्यालय में जाकर स्वयं वाद्य यंत्रों का या गायन का अभ्यास कर लेना पर्याप्त नहीं है। वरन् जो विद्या सीखी है, उसे घर के अन्य लोगों में से जिनमें भी रुचि देखें, उनकी एक मण्डली बनाकर घर में संगीत का एक छोटा-सा कीर्तन-मण्डल बना लिया जाय, इसके सहारे दैनिक भजन कीर्तन का माहौल भी बना रहे। कथा-कीर्तन का संयुक्त कार्यक्रम एवं जो विद्यालय में सीखा है, उसका अभ्यास अपने घर पर भी चलाना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। एक तो यह कि शिक्षार्थी को पढ़ने का ही नहीं पढ़ाने का भी अवसर मिलता रहेगा और उस दुहरे उपक्रम से दुहरा अभ्यास होता चलेगा। दूसरा यह कि अपने घर की एक निजी संगीत मण्डली भी बन जाएगी और उसके सहारे घर के वातावरण में से रूखापन पलायन होकर सरसता भरने लगेगी। आवश्यकता पड़ने पर इस मण्डली का उपयोग पड़ौस में, जन्मोत्सव, पर्व-त्यौहार, संस्कार आदि अवसरों पर किया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त विद्यालय का एक और पूरक पक्ष है—'पौरोहित्य'। अब तक यह कार्य केवल दक्षिणा बँटोरने वाली मण्डली के जिम्मे रहता आया है। वे कर्मकाण्डों के बहाने ढेरों पैसों की वस्तुएँ मँगा लेते हैं और उन्हें अपने घर समेट ले जाते हैं। भोजन, दक्षिणा आदि में ढेरों खर्च कराने पर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। इस झंझट और खर्च की वजह से अधिकांश लोगों ने संस्कार-पर्व आदि सार्वजनिक समारोह के कृत्य ही बन्द कर दिए हैं और देश की श्रेष्ठ परम्पराओं का एक प्रकार से लोप ही होता जा रहा है। उनके माध्यम से परिवारों और मुहल्ले, गाँवों में जो देवत्व का सामूहिक शिक्षण ही समाप्त होता जा रहा है, वह भी होता चलेगा। वस्तुतः आज की अनास्थाजन्य दुर्दशापूर्ण स्थिति को बदलना भी अपने इन्हीं प्रज्ञा-प्रशिक्षण विद्यालयों का काम है।

साप्ताहिक विद्यालयों का काफी व्यस्त कार्यक्रम है। एक दिन पढ़ी पुस्तक पर छह दिन विचार-विनिमय चलता रहेगा और उन्हें समझने-समझाने का अवसर मिलेगा। इसी प्रकार दूसरा विषय प्रवचन और संगीत है। इसके मोटे सिद्धान्त समझाने और अभ्यास करने की शिक्षा, परीक्षा तो विद्यालयों में ही होगी पर अभ्यास लोग घर पर किया करेंगे। इसलिए अच्छा हो, सभी छात्र विद्यालय के यन्त्र-उपकरणों का ही प्रयोग करने की अपेक्षा अपने-अपने निजी साधन खरीद लें और उनके सहारे अपना अभ्यास एवं परिवार के लोगों का प्रशिक्षण चलाया करें। घर में कथा करने के दैनिक अभ्यास से प्रवचन कला भी निखरती है और घर के एकाध अन्य व्यक्ति को भी उस कला को विकसित करने का अवसर मिलता है।

अपने सभी कर्मकाण्डों, शुभ अवसरों, त्यौहारों, जन्मदिनों पर गायत्री हवन करना पर्याप्त माना जा सकता है। इसके लिए गायत्री हवन पद्धति के सभी मन्त्र-श्लोकों को जवानी याद करना तो कठिन पड़ेगा पर इस विषय में छपी पुस्तिका का एक बार रोज पारायण कर लेते रहने और उच्चारण की अशुद्धियों को शुद्ध करते रहने के अभ्यास से उसके सभी क्रिया-कृत्यों समेत करने की प्रवीणता प्राप्त हो सकती है, इस प्रकार घर का हर शिक्षित और वयस्क सदस्य गायत्री यज्ञ करने में अर्थात घर के सभी पर्व-संस्कार कराने में प्रवीण हो सकता है।

हवन सामग्री में इन दिनों घोटाला भी चलता है और महँगाई के अतिरिक्त उपयुक्त समय पर वस्तुएँ न मिलने का भी संकट हो सकता है। इसलिए शाकल्य के स्थान पर खीर, गुड़, शुद्ध घी का सम्मिश्रण अपने घर ही तैयार करके हवन किया जा सकता है। मंत्रोच्चार मिल-जुलकर करें। इस प्रकार समस्त कर्मकाण्डों की कुंजी एक ही सब तालों को खोल देगी, जिस प्रकार शिक्षार्थी विद्यालय से आकर गायत्री यज्ञ का विधि-विधान सीखें, उसी प्रकार अपने परिवार के वयस्क और शिक्षित नर-नारियों को भी सिखाएँ। सीखने और सिखाने का यह क्रम संयुक्त रहने से दुहरा काम देने वाला है। शिक्षार्थी ने जो सीखा है, उसकी जानकारी अपने परिवार को भी देगा। उसी प्रकार का वातावरण अपने घर पर बनाएगा। उन्हीं शिक्षाओं को परिवार की परिधि में अभ्यास कराने का भी प्रयत्न करेगा। इस प्रकार दस छात्रों और तीन संचालकों का समूचा परिकर अपने-अपने परिवारों में उसी प्रक्रिया को गतिशील बनाने का प्रयत्न करेंगे, तो १३ व्यक्तियों में ही नहीं, १३ परिवारों में भी इस परिपाटी का प्रवेश होने लगेगा। इस आधार पर फैली हुई, बढ़ती हुई जानकारी एक वर्ष में ५२ व्यक्ति के माध्यम से अगले वर्ष के लिए नये छात्र तैयार करने, नये परिवारों में उस परम्परा के प्रवेश करने का अवसर भी प्रदान करेगी।

आरम्भ दस छात्रों से करने की बात इसलिए सोची गई है कि वे प्राणवान होंगे, तो अपनी योग्यता निखारते हुए दूसरों के लिए आदर्श बनेंगे और यह सत्प्रयास एक-दूसरे तक, दूसरे से तीसरे तक बढ़ते हुए उसके ग्राम-मुहल्ले में ही नहीं, समीपवर्ती क्षेत्रों में भी प्रचलित होगा। हर विद्यार्थी के जिम्मे अनिवार्यतः यह उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि आरम्भ किए हुए विद्यालय के दस छात्र नये बनाने के अतिरिक्त जब भी अवसर मिले अपने प्रशिक्षण का लाभ अनेक लोगों को दें और अपने परिवार का जितना अधिक विस्तार हो सकना सम्भव हो, उसमें चूक न करें। कम से कम अपने मुहल्लों में युग चेतना का प्रकाश वितरण करने का काम तो हर छात्र को अपने जिम्मे ही लेना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यज्ञशाला को अधिक आकर्षक और शोभायमान बनाने का तरीका यह है कि विद्यालय के संचालक उस प्रयोजन में काम आने वाली वस्तुओं का जुगाड़ एक ही जगह बनाकर रखें। मण्डप बनाने के लिए आठ फुटे चार बाँस नीचे चार बाल्टियों में मिट्टी भरकर उन्हें खड़ा कर देना; इतने भर से यज्ञ मण्डप का ढाँचा बन जाता है। बाँसों की खपच्चियों को हरे पत्तों से, चमकीली पन्नी के वन्दनवारों से, कपड़े की चाँदनी से सजाया जा सकता है। कुण्ड खोदने की अपेक्षा मिट्टी की चौकोर वेदी बना लेने से काम चल जाता है। कलश, यज्ञ पात्र, पूर्णाहुति पात्र आदि जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें भी विद्यालय में ही रखा जाय। उपयोग के लिए लोग वहीं से ले जाएँ और वापस कर दिया करें। यही है अशिक्षा निवारण हेतु समग्र शिक्षण की रूपरेखा एवं उसका सर्वांगपूर्ण स्वरूप।

शिक्षा का अभियान चलाएँ

मनुष्य का सामान्य ज्ञान उतना ही होता है, जितना उसका वातावरण होता है। इससे वह जीवनयापन की मोटी-मोटी बातें खाना, कपड़ा पहनना, स्थानीय भाषा का उच्चारण तो सीख सकता है, पर इतने से लौकिक और आत्मिक विकास की आवश्यकता पूर्ण नहीं हो सकती। आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं के हल के लिए देश की आन्तरिक स्थिति, दूर देशों और सुदूरभूत की बातों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। यह कार्य पहले लोग जनसम्पर्क द्वारा पूरा करते थे। शिक्षित, सन्त, ज्ञानी, महात्माओं के पास आश्रमों में ऐसे सत्संग-समारोह हुआ करते थे, जहाँ लोगों को आत्मविश्वास का प्रशिक्षण और सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी दी जाती रहती थी, उससे उनकी लौकिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाया करती थी और सबके लिए विशेष शिक्षा की जरूरत न पड़ती थी।

पहले लोग तीर्थयात्राएँ भी इसी उद्देश्य से करते थे। इससे उन्हें ज्ञान प्राप्त होता था। आत्मज्ञान—वहाँ निवास करने वाले विद्वानों के द्वारा प्राप्त होता था, भौगोलिक-भ्रमण के द्वारा, सामाजिक दूर-दूर से आए हुए यात्रियों के सम्पर्क के द्वारा। तब प्रायः सारे देश में संस्कृत भाषा सामान्य रूप से बोली जाती थी। इसलिए यह कार्य काफी सरल होते थे और लोगों को शिक्षा के अभाव में भी इतना ज्ञान मिल जाता था, जिसमें वे मानव जीवन के उद्देश्य को समझ भी लेते थे और सम्पन्न भी कर लेते थे।

पर आज संसार बहुत बढ़ गया है। सामाजिक परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। भाषाएँ और संस्कृतियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि सम्पर्क के द्वारा उन सबको जानना कठिन है, तो भी मनुष्य जीवन में ज्ञान से दृष्टिकोण परिमार्जित होता है, विचार आते हैं और निर्णय की क्षमता आती है। यह मनुष्य जीवन के विकास के परम आवश्यक तत्त्व हैं, तो विद्या मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक हुई। तब भी थी, आज भी है। पहले साधन विकसित न थे, समस्याएँ भी थोड़ी थीं, इसलिए जन-सम्पर्क से कार्य चल जाता था पर अब वृहत विश्व की विपुल परिस्थितियों का ज्ञान केवल पुस्तकों द्वारा ही सम्भव है और उसके लिए साक्षरता ही अनिवार्य है। शिक्षा के द्वारा केवल लौकिक ज्ञान ही बढ़े तो भी कुछ हर्ज नहीं; पर यदि उसकी व्यवस्था न हो तो मनुष्य सीमित और संकीर्ण ही रह जाता है। वेदशास्त्रों में अथाह ज्ञान भरा है पर कोई व्यक्ति पढ़ा-लिखा न हो तो उस ज्ञान का लाभ वह कैसे प्राप्त कर सकता है ? लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए यदि निरक्षर हुए तो लाभ तो मिलेगा, पर कम और दूसरों के आश्रित होकर ही सम्भव हो सकेगा।

शिक्षा आत्मा का भोजन है—मनुष्य को परतन्त्रता, सामाजिक समस्याओं और कुरीतियों से छुटकारा पाने का अधिकार वहीं तक सम्भव है, जहाँ तक शिक्षा मिली हो। शिक्षा के बिना अच्छाई और बुराई में भेद नहीं किया जा सकता। सामाजिक ज्ञान और राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने की समर्थता भी शिक्षा में ही है, उसके अभाव में जीवन भर के कार्य और उद्देश्य स्पष्ट नहीं होते।

प्रसिद्ध विद्वान एडीसन ने एक स्थान पर लिखा है—"शिक्षा मनुष्य की आत्मा के लिए उसी तरह है, जिस तरह संगमरमर के टुकड़े के लिए शिल्प कला। शिक्षा के बिना आत्मा भोंड़ी रह जाती है।" शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि करना ही नहीं अपितु उसका ध्येय मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित करना है, दार्शनिक जॉन जी. हिवन का कथन है—"शिक्षा के बिना जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को निभाने की योग्यता नहीं आती।" महाकवि निराला की सम्मत्ति में—"संसार में जितने प्रकार की उपलब्धियाँ हैं, शिक्षा उन सबसे बढ़कर है।" हर्बर्ट स्पेन्सर ने शिक्षा को "चरित्र निर्माण का उद्देश्य" बताया है। मानसरोवर के—प्रणेता मुंशी प्रेमचन्द ने लिखा है—"दरिद्र से दरिद्र हिन्दुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाय। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा, बल्कि इसलिए कि विद्या मानवी शील का शृंगार है। विद्या का धर्म है—आत्मिक उन्नति। शिक्षा का फल है—उदारता, त्याग, सदिच्छा, सहानुभूति, न्यायपरता और दयाशीलता।"

'ड्यूटीज ऑफ मैन' के लेखक सुप्रसिद्ध विचारक जोजफ मेजिनी ने एक जगह लिखा है—"शिक्षा आपकी आत्मा का भोजन है। शिक्षा के बिना आपकी योग्यताएँ सुप्त और निष्क्रिय रहती हैं। यदि एक बीज बिना हल चले खेत में डाल दिया जाय और उसे पानी न मिले, तो जो दशा उसकी होती है, वही शिक्षा से रहित मनुष्य की होती है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा से लौकिक और भौतिक लाभ—शिक्षा का प्रत्यक्ष लाभ हम सबके लिए स्पष्ट है। आज विकसित संसार में तो ज्ञान और शिक्षा का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अब जाति-पाँति के आधार पर महत्त्व पाने का युग समाप्त हुआ। सम्मान, पद और प्रतिष्ठा उसी को मिलती है, जो अधिक पढ़ा-लिखा होता है। कक्षा दस पास व्यक्ति को साधारण रेल, डाक, तार की क्लर्की अथवा ऐसी ही कोई नौकरी मिल जाती है, पर एम. ए., बी. ए. पास व्यक्ति को ऊँचे-ऊँचे पद मिलते हैं। लोकसेवा आयोग के प्रतिष्ठित स्थान अधिक पढ़े-लिखों को ही मिलते हैं। डाक्टर, वकील, इन्जीनियर भी उनकी शिक्षा के अनुरूप ही बनते हैं, यह पद सबको नहीं मिल जाते, जो अधिक पढ़े-लिखे होते हैं, उन्हें अच्छा दर्जा, कम पढ़े-लिखों को छोटा दर्जा मिलता है।

पर अनपढ़ों को तो केवल शारीरिक श्रम से उपार्जित आजीविका पर निर्भर रहना पड़ता है। किसान और मजदूर, कुली, ठेले ढोने वाले सबसे कड़ी मेहनत करने वाला वर्ग है, पर उनके रहन-सहन का स्तर, सुखोपभोग के साधन पढ़े-लिखे, बुद्धिजीवी व्यक्तियों की अपेक्षा काफी निम्न स्तर का होता है। दिन भर काम और बोझा ढोने पर भी शाम को तीन या दो रुपये से अधिक की मजदूरी नहीं हो पाती, एक इन्जीनियर सौ-दो-सौ रुपये सहज पा जाता है, डॉक्टर १५०-२०० रुपये प्रतिदिन कमाता है, वकीलों की आमदनी कभी-कभी इससे ऊँचे स्तर तक जा पहुँचती है। इसमें शिक्षा द्वारा प्राप्त उनके ज्ञान का ही चमत्कार होता है।

सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा भी पढ़े-लिखों को ही अधिक मिलती है। अनपढ़ लोग प्रायः छोटी-छोटी योजनाओं के लिए भी पढ़ने वालों की शरण ताकते हैं। चिट्ठी-पत्री के साधारण कामों से लेकर मामले मुकदमों तक के लिए उन्हें पढ़े-लिखों के पास जाना पड़ता है। कहावत है—

मातु पिता बैरी भये जिन न पढ़ाये बाल।
हंस समाज गये कहो बक के कौन हवाल।।

अर्थात—जो लोग अनपढ़ होते हैं, शिक्षित समाज में उनकी अवस्था ऐसी ही होती है, जैसी हंसों की सभा में बगुले की। उस समय लोगों को अपने माता-पिता भी दुश्मन लगते हैं और उनके न पढ़ाने पर लोग क्षोभ करते हैं, जो उचित भी है। शिक्षा के बिना कहीं भी सम्मान नहीं मिलता। मिले भी कैसे उसके बिना मनुष्य का मानसिक स्तर भी तो ऊपर नहीं उठ पाता।

अब राजनीति भी सामान्य जीवन का अंग बन गई है। न चाहते हुए भी लोगों को वोट देना पड़ता है। प्रजातन्त्रात्मक सत्ता में राजनैतिक सहयोग से कोई सामाजिक व्यक्ति वंचित नहीं रह सकता। इन कर्त्तव्यों के समुचित पालन की योग्यता भी किसी पढ़े-लिखे में ही हो सकती है। कर्त्तव्यों के साथ अधिकारों की जानकारी न होना भी हानिकारक होती है और यह हानि केवल अशिक्षितों को ही भुगतनी पड़ती है, जिन्हें समाज में अपनी स्थिति का सही ज्ञान नहीं होता।

राजनैतिक उम्मीदवार बनाना हो तो—सामाजिक कार्यकर्त्ता का कर्त्तव्य निभाना हो तो—सरकारी नौकरी, अच्छा रोजगार, अच्छा व्यवसाय, कोई भी अच्छी प्रतिष्ठा का काम करना हो और उसके द्वारा लौकिक और भौतिक महत्वाकांक्षाओं की तृप्ति करनी हो तो उसका प्रमुख आधार है—शिक्षा। शिक्षा के बिना वह ज्ञान नहीं होता, जिससे उपर्युक्त कर्त्तव्यों का पालन हो सके। इसलिए संसार में कहीं भी ऐसा नियम नहीं है, जिससे कोई महत्त्वपूर्ण स्थान किसी अनपढ़ या अशिक्षित को मिल सकता हो।

बिना पढ़े नर पशु कहावें—शास्त्रकार का कथन है—**"विद्या विहीनः पशुभिः समाना।"** "विद्या के बिना मनुष्य पशु के समान है।" विद्वानों ने भी शिक्षाविहीन मनुष्य के विषय में ऐसी ही तुलना की है। यह दोनों बातें एक-दूसरे की परिपूरक हैं। शिक्षा के द्वारा बुद्धि की वृद्धि होती है और विद्या के द्वारा चरित्र सम्बन्धी योग्यताओं की। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान होता है और योग्यता आती है। शिक्षा के बिना विद्या क्रियाशील नहीं हो सकती, उसी प्रकार विद्या के बिना शिक्षा बेजान होती है, दोनों में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

निरक्षरता मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा कलंक है, क्योंकि उससे मनुष्य की पशु संज्ञा बनी रहती है। पशु हजारों-लाखों वर्षों से जंगलों में रहते चले आए हैं, उनका जीवन स्वार्थ का जीवन होता है। जो अधिक बलवान, दुर्द्धष और अधिक तीखे नख-दाँतों वाला होता है, वही दूसरे जानवरों को पकड़कर खा जाता है। स्वार्थ और असमानता का जीवन ही जीना हो तब तो दूसरी बात है, पर यदि उस कष्टदायक स्थिति से ऊपर उठना हो तो किसी ऐसे उद्योग की आवश्यकता होगी, जो इस प्रकार अज्ञानावस्था से मनुष्य को बाहर निकाल दे। पशुता को मिटाकर प्राकृतिक भोगों को न्यायपूर्वक सबके लिए भोगने का अधिकार प्रदान करने वाला उद्योग—शिक्षा ही हो सकती है, जिससे मनुष्य का ज्ञान, विवेक, बुद्धि और विचार बढ़ता है।

एक छोटा-सा महावत एक बड़े भीमकाय हाथी को अपने वश में रखता है क्योंकि उसमें ज्ञान और चतुरता होती है। यह दोनों बातें मनुष्य में न हों तो उसका शरीर से बलवान होना हाथी होने के समान ही है। १००-२०० जानवरों को एक बाड़े में बन्द करके एक किसान, एक डण्डे द्वारा ही उन पर शासन करता रहता है। पशु चाहें तो बाड़े को तोड़कर निकल जाएँ पर उनमें वैसा ज्ञान नहीं होता। अशिक्षित समाज भी बाड़े में बन्द उन पशुओं की तरह ही है, जिसे कोई साधारण-सी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शक्ति अपने प्रभुत्व में बनाए रख सकती है। मुट्ठी भर अँग्रेज हिन्दुस्तान पर शासन करते थे, उसके मुख्य कारणों में यहाँ के लोगों की अशिक्षा भी थी। पशु का लक्षण यही है कि जो अपनी शक्तियों को न पहचाने। शिक्षा के अभाव में मनुष्य भी अपनी आन्तरिक शक्तियों को नहीं पहचान पाता, इसलिए वह परिस्थितियों और दुर्बलताओं का दास बना रहता है। शिक्षाविहीन मनुष्य को पशु कहने का यही मुख्य कारण है। अतः शिक्षा प्राप्त करना और बच्चों को शिक्षित बनाना मनुष्य का धर्म-कर्त्तव्य है। यह एक प्रकार से समाज की सेवा ही मानी जाएगी, यदि हम स्वयं शिक्षित बनें और अपनी सन्तान को शिक्षित होने का पूरा-पूरा अवसर प्रदान करें।

अशिक्षा बनाम असभ्यता—अशिक्षा अनपढ़ों के लिए ही दुःखद नहीं होती वरन् वह एक प्रकार का जातीय कलंक है। ऐसे व्यक्ति जहाँ भी होते हैं, जहाँ भी जाते हैं, उन्हें अपमान और उपेक्षाएँ ही मिलती हैं। उन्हें स्वयं भी आत्महीनता और संकोच होता है, जिससे वे लोक व्यवहार के आदर्श से भी गिर जाते हैं। 'शिक्षा का आदर्श' नामक पुस्तक में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने अपने अमेरिका प्रवास का एक मार्मिक संस्मरण दिया है, जिसमें भारतीयों की अशिक्षा के कारण उनकी तकलीफों का स्पष्ट दिग्दर्शन कराया गया है। स्वामीजी लिखते हैं—

"जिन दिनों मैं अमरीका में पढ़ा करता था तो मुझे अपने देशबन्धु सिख भाइयों को देखभाल करने जाना पड़ता था। अमरीका प्रवासी ये भारतीय शिक्षाविहीन होने के कारण कुलियों का काम करते हैं। अपने घरवालों को चिट्ठियाँ भेजने के लिए उन्हें दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। सोचने की बात है कि उस भलेमानस की क्या दशा होती होगी, जो अपनी स्त्री को समाचार भेजने के लिए दूसरों पर अवलम्बित है और इस अभागे भारत में ऐसे करोड़ों मनुष्य हैं, इसे अपनी जाति की असभ्यता ही कहनी चाहिए। एक बार ऐसा हुआ कि कारणवश मैं उनके डेरे पर न जा सका। उन्होंने किसी नावाकिफ चलते-पुरजे को बुलाकर उससे अपने घर भेजने के लिए मनीआर्डर लिखवाए। उस धूर्त ने उन मनीआर्डरों को अपने घर के पते पर भेज झूँठी रसीदें बनाकर उनको दे दीं। वे लोग क्या जानते थे कि उनके पसीने से कमाया हुआ धन एक पढ़े-लिखे आदमी की धूर्तता से इस प्रकार छिन जायेगा। ढाई-तीन महीने के बाद उन्हें पता चला कि घर मनीआर्डर नहीं पहुँचे और उनका पैसा धूर्तों द्वारा ठग लिया गया है। दुनिया में ऐसे करोड़ों व्यक्ति हैं, जो इस अविद्या का टैक्स देते हैं। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने जहाँ पाँच क्लेशों का जिक्र किया है, वहाँ अविद्या को सबसे मुख्य कारण बताया है। जितनी सामाजिक बीमारियाँ पैदा होती हैं, उन सबका कारण अविद्या है।"

दुनिया के प्रायः सभी सभ्य कहलाने वाले देश अधिक शिक्षित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में ऐसे ही देश शिरोमणि बने बैठे हैं। भले ही सिद्धान्तों में कोई श्रेष्ठता न हो, पर भारत के लोग तो अपनी आन्तरिक स्थिति में भी मजबूत नहीं हैं। यहाँ की अशिक्षित ग्रामीण जनता आमतौर पर सेठ-साहूकारों और धूर्त सरकारी कर्मचारियों द्वारा ठगी जाती है। इस प्रकार वे जहाँ अपनी हानि उठाते हैं, वहाँ एक प्रकार से अनैतिक तत्त्वों को प्रोत्साहन भी देते हैं। बाहरी लोगों में इसका गलत प्रभाव पड़ता है और धर्म व संस्कृति की श्रेष्ठता होते हुए भी हमें असभ्य माना जाता है।

विकास में बाधक अशिक्षा—पतन और दुःख के तीन कारण माने गए हैं—(१) गरीबी, (२) बीमारी, (३) अशिक्षा। इस तरह हमारे विकास में १/३ हिस्से की बाधक तो अशिक्षा है ही, साथ ही शेष दो कारणों का मुख्य कारण भी अशिक्षा ही है। विकास की पृष्ठभूमि में अशिक्षा को हटाना सर्वप्रथम है। यदि इसे दूर कर लेते हैं तो यह हमारे लिए बहुत बड़ी विजय होती है, क्योंकि इससे विचार और ज्ञान का मार्ग प्रशस्त होता है, जो विकास का परमावश्यक तत्त्व है।

भारतवर्ष में केवल २० प्रतिशत लोग पढ़े-लिखे हैं, शेष ८० प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। तात्पर्य यह है कि ६० करोड़ जनता की मानसिक स्थिति का कोई अस्तित्व नहीं है। उन्हें जिस तरह चलाया जाता है, उधर ही चल पड़ते हैं। धर्मभीरु होने के कारण यहाँ की अशिक्षा 'कोढ़ में खाज' वाली कहावत चरितार्थ करती है। सामाजिक जीवन में अन्धविश्वास, छुआछूत, भेदभाव, जाति-पाँति आदि बुराइयों के प्रचलन इसी कारण से हैं। इन मूढ़मान्यताओं में ग्रस्त होने के कारण देश के ८० प्रतिशत व्यक्ति या तो भाग्य को कोसते रहते हैं अथवा वे जिस स्थिति में पड़े हुए हैं, उसी में सन्तोष किए रहते हैं। फलस्वरूप शेष संसार के साथ प्रगति में उनकी अवस्था बिल्कुल पिछड़ी हुई बनी रहती है। विकास की अनेक योजनाएँ होने के बावजूद भी आशातीत परिणामों का उपलब्ध न होना बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर है कि अशिक्षित जनता विकास पर विश्वास नहीं करती, उसे प्रत्येक कार्य से सन्देह बना रहता है, उनकी स्वयं की विचार और निर्णय शक्ति कोई सहयोग नहीं दे पाती। अन्ततः या तो वे उपलब्ध साधनों का उपयोग नहीं कर पाते अथवा वे ठगे जाते हैं, जिससे उनका विश्वास जाता रहता है और प्रगति की आकांक्षा यों ही बेकार सिद्ध हो जाती है। समाज कल्याण की कर्मचारी महिलाएँ गाँवों में जाती हैं, तो उन्हें आश्चर्य भरी दृष्टि से देखते हैं। मानसिक स्तर के गिरे होने के कारण देहाती लोग घिसी-पिटी अवस्था ही पसन्द करते हैं, उसके ऊपर की कोई बात या तो उन्हें कौतूहल जान पड़ती है अथवा बुराई और इसीलिए वे सरकारी योजनाओं का भी कोई लाभ नहीं उठा पाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भौतिक प्रगति ही नहीं नैतिक या आध्यात्मिक उपदेश समझने की सामर्थ्य भी अनपढ़ों में नहीं होती। मनुष्य के कर्त्तव्य और कार्यक्रमों का महत्त्व समझ सकें, इसके लिए सुविकसित मनोभूमि चाहिए और यह केवल साक्षरता से ही सम्भव है। अतः अब जबकि देश बहुमुखी प्रगति की आकांक्षा कर रहा है, तो साक्षरता को एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य समझकर उसे युद्ध स्तर पर चलाना चाहिए। जिन लोगों को सौभाग्य से शिक्षित होने का अवसर मिला है, उन्हें स्वाधीनता आन्दोलन की तरह मानसिक पराधीनता दूर करने के लिये साक्षरता आन्दोलन चलाना चाहिए।

अशिक्षा के मूल कारण—शहरों में अधिकांश लोग शिक्षित होते हैं, जो नहीं भी होते वे शिक्षितों के सम्पर्क में होने के कारण विचार और ज्ञान के महत्त्व को समझने लगे हैं। फलस्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से शहरों में साक्षरता का व्यापक प्रसार हुआ है। अधिकांश बालकों को शिक्षित होने का अवसर मिल रहा है, पर ग्रामीण लोग शिक्षा के महत्त्व को अभी भी नहीं समझते, इसलिए उनमें इस चेतना का अभी तक अभाव है। बच्चों की शिक्षा के लिए धन होना कोई बड़ी बात नहीं। जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा वैसे ही निःशुल्क कर दी गई है। थोड़ी-सी किताब-कापियों के खर्च से छोटी कक्षाओं में काम चल जाता है। बड़ी कक्षाओं का खर्च भी अभिभावकों को किसी प्रकार पेट काटकर बचाना ही चाहिए। हिन्दुस्तान में जेवरों की प्रथा होने से हर घर में हजार-दो हजार के गहने बेकार रखे मिल जाएँगे। धन का अभाव तो यही दूर कर सकते हैं, पर वस्तुतः धन की कमी अशिक्षा का कारण नहीं है।

मुख्य बात यह है कि लोगों की यह भ्रान्ति धारणा बन गई है कि केवल नौकरी के लिए ही पढ़ाना चाहिए। गाँवों में किसान होते हैं और वे समझते हैं कि बच्चे को अन्ततः कृषि करनी है, उसके लिए पढ़ाने की क्या जरूरत ? जिन लोगों की अच्छी आजीविका होती है और धन की कमी नहीं होती, वे इसी कारण से बच्चों को पढ़ने को नहीं भेजते। भले ही उन्हें गाँवों में रहना हो और कृषि आदि ग्रामीण उद्योग करने हों तो भी शिक्षा का महत्त्व कम नहीं हो जाता। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, कनाडा आदि के किसान एम. ए., बी. ए. की शिक्षा प्राप्त किए होते हैं। इन देशों में कृषि की उपज देखकर यही मानना पड़ता है कि कृषि आदि ग्रामीण उद्योग भी शिक्षा के अभाव में विकसित नहीं हो सकते। शारीरिक विकास के लिये जिसे प्रकार स्नान, व्यायाम, भोजन, शयन आदि आवश्यक हैं, मानसिक विकास के लिये शिक्षा का महत्त्व भी उसी तरह सबके लिये एक जैसा ही है, चाहे वे गाँव में रहते हों और उनका धन्धा ग्रामीण हो अथवा शहरी हो और नौकरी-पेशा करते हों। शिक्षा की कमी के कारण यदि नौकरी में अच्छी तरक्की नहीं हो सकती तो खेती के कार्यों में भी अशिक्षितों का विकास नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्येक अभिभावक को नौकरी वाला भ्रम निकालकर बच्चों को उदारतापूर्वक कष्ट सहकर भी पढ़ाना चाहिए। बच्चों को एक बार खेलकूद के साधनों से वंचित रखा जा सकता है, पर उन्हें शिक्षा से वंचित रखना एक तरह से उनके साथ अन्याय करना ही है।

स्त्री शिक्षा आवश्यक नहीं, अनिवार्य—समाज की अन्तःचेतना गृहस्थाश्रम को माना गया है। गृहस्थ का आधार-सूत्र स्त्री-पुरुष की मिली-जुली इकाई को मानते हैं। इस प्रकार जब कभी समाज-संस्कार की आवश्यकता प्रतीत होती है, तो समाज के इसी मूलाधार गृहस्थ-जीवन को ही अधिक दृढ़, सुसंस्कृत और सुव्यवस्थित बनाने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

उत्तम चरित्र का निर्माण संस्कारवान गृहस्थ में ही सम्भव है। कर्मशीलता, दृढ़ता और नैतिक जाग्रति भी पारिवारिक सौमनस्यता पर अवलम्बित है। देश, जाति और संस्कृति इसी से प्रभावित होते हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुरुष की जाग्रति मात्र पर्याप्त नहीं है। नारी की विशेषताएँ भी उतनी ही अनिवार्य हैं। बाह्य समुन्नति और आन्तरिक सद्भाव मिलकर ही गृहस्थ जीवन को निर्मल, पवित्र एवं उद्दात बनाते हैं। इसके लिए स्त्रियों के भी संस्कारवान होने की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पुरुष की। आज हमारे गृहस्थ जीवन में बड़े कुसंस्कार घुसे पड़े हैं। मनोबल की हीनता, चारित्रिक पतन, भय, क्रोध, कलह और कटुता के कारण पारिवारिक जीवन बुरी तरह अस्त-व्यस्त हो चुका है। हमारी अविवेकपूर्ण परम्पराएँ इसके लिए जवाबदार हैं, स्त्री शिक्षा इनमें प्रमुख है। गृहस्थ की दुर्दशा का कारण आज नारियों की अशिक्षा ही है। ज्ञान के अभाव में उनका न तो बौद्धिक विकास हो पाता है और न नैतिक। इससे जातीय विकास के मार्ग में एक जबर्दस्त बाधा उत्पन्न हो रही है।

इस सम्बन्ध में आज का मूढ़तावादी समाज अनेक कुतर्क व भ्रान्तिमूलक धारणाएँ बनाए बैठा है। कितने ही लोगों की यह मान्यता है कि स्त्री शिक्षा से अनर्थ होते हैं। पढ़ी-लिखी स्त्रियों से गृह-संचालन, सन्तान पालन, भोजन व्यवस्था व पुरुषों की देख-रेख नहीं हो पाती। इस प्रकार के मूढ़तापूर्ण सर्वथा आधारहीन भ्रम को आज पाश्चात्य देशों की प्रगति को देखकर दूर किया जा सकता है। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, जापान आदि में स्त्रियों को शिक्षा की पूरी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इससे इन देशों की प्रगति में सहायता ही मिली है। उनके बच्चों का लालन-पालन ठीक प्रकार नहीं होता, ऐसा कहने का कोई कारण नहीं।

जो शिक्षा पुरुष में मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक गुणों का प्रकाश करती है, उससे स्त्रियों के भी मन और हृदय उन्नत और विशाल बनते हैं। इससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह पुरुष को विवेकवान बनाती है। उसकी महानता जगाकर पुरुषार्थ जगाती है। गृह-व्यवस्था, सन्तान-पालन का कार्य और भी बुद्धिमत्तापूर्ण चला पाने की क्षमता उन्हें मिलती है, जिससे सुख-संतोष और शान्ति की परिस्थितियाँ बढ़ती हैं। शिक्षित नारियाँ हर प्रकार से पुरुषों को सहयोग दे सकती हैं, इसलिए स्त्री शिक्षा भी उतनी ही अनिवार्य है, जितनी पुरुषों की शिक्षा। इस ओर हमारा पूरा-पूरा ध्यान होना चाहिए। कन्याओं को पढ़ाना सभी दृष्टि से लाभकर है। विवाहों में दहेज न दिया जाय व उतना धन खर्च कर कन्या को सुयोग्य बना दिया जाए, तो यह सबसे अच्छा दहेज और कन्या के साथ उपकार होगा। आजकल जिस तरह लोग अच्छा पढ़ा-लिखा घर-वर चाहते हैं, वहाँ वरपक्ष वालों की भी यह ख्वाहिश रहती है कि कन्या पढ़ी-लिखी हो। दाम्पत्य जीवन में विचार-समानता के लिए लड़की का पढ़ा-लिखा होना भी आवश्यक है।

विवाह के बाद कभी-कभी आकस्मिक दुर्घटनाएँ घट जाती हैं, पति कमाने योग्य नहीं रहते अथवा लड़कियों को विधवा का जीवन बिताना पड़ता है। हिन्दू समाज में विधवा का जीवन कितना निराशापूर्ण होता है, यह सभी जानते हैं। एक-दो बच्चे हों और घर के दूसरे व्यक्ति अच्छे न हों तो उनका शेष जीवन बिताना कठिन हो जाता है। यदि वह शिक्षित हो तो अपना वैध्यव्य ठीक तरह बिता सकती है, अपना गुजारा आप कर सकती है। अपने ज्ञान का लाभ बच्चों को दे सकती है। कभी-कभी पति के न रहने पर बच्चे उच्छृंखल या कुमार्गगामी हो जाते हैं और वे अपनी माता को छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में शिक्षा ही नारी की सहायक हो सकती है। पति की आमदनी कम हो या वह किसी शारीरिक, मानसिक असमर्थता में ग्रसित हो जाय तो सुशिक्षित नारी गृहस्थ की नाव को लेकर पार लगा सकती है, जबकि अशिक्षित को परमुखापेक्षी एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ बनना पड़ता है। अतः शिक्षा को हो सच्चा दहेज मानकर लोगों का धर्म है कि वे लड़कियों को अवश्य शिक्षित बनाएँ।

निरक्षरता मिटाओ आन्दोलन—समाजसेवी व्यक्तियों, पंचायतों के सदस्यों और युग निर्माण योजना के समाजसेवी राष्ट्र-भक्तों को इस अभियान में अपना हाथ बँटाना चाहिए। छोटी-छोटी टोलियाँ बनाकर लोगों के पास जाना चाहिए। सामूहिक और व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित कर लोगों को समझाना चाहिए "भाई बच्चों को पढ़ाना बहुत जरूरी है, वे पढ़-लिख जाएँगे तो यह कोई आवश्यक नहीं कि नौकरी ही करें, धरेलू व्यवसाय करेंगे तो उसमें भी अधिक सहयोग दे सकेंगे। जिस तरह किसान फसल उगाने के लिये खेतों में बीज डालता है, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का बीज है, जिससे ज्ञान और विचार की कृषि समुन्नत होगी और उसका लाभ किसी भी व्यवसाय, रोजगार और उद्योग-धन्धे में किया जा सकता है। जमीन, जायदाद, सोना-चाँदी आदि नष्ट हो सकते हैं, पर जिसके पास विद्या-बुद्धि है, वह कभी भी, कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में अपना गुजारा कर सकता है। पढ़े-लिखे व्यक्तियों का व्यक्तित्व प्रभावशाली रहता है, शिक्षितों की संख्या बढ़ेगी तो समाज, देश, जाति की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, इसलिए भले ही खेत, जेवर, बर्तन, मकान बेचने पड़ें पर बच्चों को स्कूल अवश्य भेजें।" ऐसे विचार घर-घर लोगों को पहुँचाने चाहिए। पुरानी मान्यताओं का खण्डन कर उनमें शिक्षा की रुचि पैदा करनी चाहिए। यह कार्य छोटे-छोटे पर्चे छपाकर उनका वितरण करके विद्यारम्भ संस्कार, बसन्तपंचमी पर्व आदि के अवसर पर प्रवचन द्वारा भी सम्पन्न किया जाना चाहिए। लोगों को मनोवृत्ति शिक्षा की ओर आकर्षित होना बहुत आवश्यक है। इस तरह के विचार-प्रेरक वाक्य दीवारों पर लिखे जा सकते हैं। कलैण्डर और ऐसे वाक्य-लिखित कार्ड घरों में टाँगे और बाँटे जा सकते हैं, जिससे अविद्या के दुर्गुणों और विद्या की आवश्यकता की प्रेरणा मिलती है।

'स्कूल चलो' अभियान—गर्मियों की छुट्टी जून में होती हैं और जुलाई से नये वर्ष की शिक्षा के लिए भरती और दाखिले का काम शुरू होता है, उस समय विशेष रूप से संगठित होकर 'स्कूल चलो' अभियान चलाया जाए। गाँव में जितने स्कूल जाने योग्य बच्चे हों उनकी एक लिस्ट बना ली जाय और ग्राम पंचायतों के प्रधान, मुखिया अथवा किन्हीं स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों को लेकर घर-घर और अभिभावकों को समझाएँ कि बच्चों को स्कूल भेजें। स्थानीय अध्यापक भी इस टोली में सम्मिलित रहें, उन बच्चों से व्यक्तिगत सम्पर्क कराया जाय। बच्चों को प्रायः अध्यापकों की मार का डर रहता है, तो उन्हें समझाकर प्यार से स्कूल जाने के लिए राजी कर लिया जाए और उन्हें समझाया जाय कि अब पुराना जमाना नहीं रहा, आधुनिक शिक्षक मार से नहीं प्यार से पढ़ाते हैं। बहुत-से गाँवों में बच्चों को आकर्षित करने के लिये विद्यालय खुलने के दिनों में रेबड़ी, बताशे आदि का प्रसाद बाँटा जाता है, इससे गाँवों के बच्चे स्वतः जाने लगते हैं, ऐसा भी किया जा सकता है। गाँव में अशिक्षित लोग रहते हैं वे शिक्षा के महत्त्व को नहीं समझते, उन्हें समझाकर उनके बच्चों को विद्यालय लाया जाए। इस प्रकार जहाँ विद्यार्थियों की कमी का प्रश्न है, उसे दूर किया जा सकता है, संख्या दूनी-तिगुनी बढ़ाई जा सकती है। जून के आखिरी सप्ताह से लेकर जुलाई भर यह आन्दोलन चलाया जाय तो विद्यार्थियों की संख्या स्कूलों में दुगुनी कर देना कोई असम्भव बात न रहे।

कक्षाएँ और विद्यालय बढ़ें—लोगों में समझदारी बढ़ेगी, शिक्षा का प्रसार होगा तो नये स्कूलों की स्थापना और कक्षाएँ बढ़ाने की आवश्यकता भी बढ़ेगी। पुराने स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़े तो सेक्शन बढ़ा दिए जाएँ और बच्चों के बैठने के लिए एक-दो कमरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की अथवा छप्पर डालकर बरामदों की व्यवस्था कर ली जाए। जहाँ पहले से विद्यालय न हों वहाँ नये विद्यालयों का प्रबन्ध किया जाए और उसके लिए सामूहिक श्रमदान कराया जाय, चन्दा इकट्ठा कर लिया जाय, दान माँगा जाय। विद्यालय राष्ट्र के जाग्रत मन्दिर होते हैं। विद्या सरस्वती का स्वरूप है अतः विद्यालय को सरस्वती देवी का प्रतिष्ठान समझकर विद्यालय खुलवाना लोगों को धर्म-पुण्य का कार्य समझकर उसके लिए दान देना चाहिए। जिनके पास साधन हों, वे स्वयं स्कूल खुलवाएँ प्रियजन की स्मृति में मृतक भोजों का धन बचाकर भी विद्यालय का प्रबन्ध किया जा सकता है।

थोड़ी कम आजीविका लेकर अध्यापन कर सकें, ऐसे अध्यापकों की भी व्यवस्था की जा सकती है। कुछ दिन प्राइवेट स्कूल चलाकर बाद में छात्रों की संख्या अच्छी हो जाय तो सरकार से ही अनुदान की याचना की जा सकती है। सरकार उनका प्रबन्ध स्वयं अपने हाथ में ले सकती है अथवा उनका प्रबन्ध कर सकती है। सरकारी सम्पर्क और सहायता के लिए एम. एल. ए., जिला-परिषद्, विकास खण्ड आदि के प्रभावशाली व्यक्तियों का भी सहयोग लिया जा सकता है।

प्राइमरी कक्षाओं के विद्यार्थी १२-१३ वर्ष की आयु से अधिक नहीं होते। अतः उनमें सहशिक्षा की व्यवस्था अनुपयुक्त नहीं। कन्याओं के लिए पृथक प्राइमरी विद्यालय खोलने की अपेक्षा उस धन का उपयोग कन्याओं के लिये जूनियर हाईस्कूल अथवा कन्या माध्यमिक विद्यालय खोलने में किया जाना चाहिए।

रात्रि-विद्यालय—पाश्चात्य देशों में शिक्षा विकास के काफी अधिक साधन जुटाए गए हैं। ऐसी सुविधाएँ लोगों को मिली हैं कि वे आजीवन अपनी सामान्य जीवन व्यवस्था चलाते हुए भी लोग विद्याध्ययन करते रह सकें 'रात्रि विद्यालयों' का प्रचलन उन्हीं में से एक है। बड़ी उम्र के आदमियों को जिन्होंने अपनी गृहस्थी बना ली होती है अथवा जो लोग आजीविका का भार उठा लेते हैं और उसके लिए दिन में काम करना पड़ता है, उनके लिए सुविधानुकूल ऐसे विद्यालय हैं, जिनमें एक रेगुलर छात्र की तरह वे सायंकाल ६ से १० या ७ से ११ बजे तक चार घण्टे जाकर अपने इच्छित विषय पढ़ सकें। इनसे उनका धन्धा, आजीविका क्रम भी चलता रहता है और आगे की पढ़ाई भी चलती रहती है। इससे उनकी योग्यता तो बढ़ती ही है, आजीविका के साधन भी बढ़ते हैं, नौकरियों में तरक्की भी होती है। इस तरह वहाँ के लोग हमारे ऋषियों के समान आजीवन विद्यार्थी बने रहते हैं।

ऐसी पाठशालाएँ अपने यहाँ भी चलनी चाहिए। शहरों में यह काम बड़े मजे से चल सकता है। बड़े विद्यालय के लिए जहाँ प्रबन्ध न हो सके—वहाँ ट्यूशन प्रथा द्वारा छोटी-छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम बनाकर पढ़ाया जाये। जैसे एक मुहल्ले में १० लड़के हाईस्कूल की परीक्षा दे चुके हैं पर आगे पढ़ने के लिए उनके पास समय नहीं है। ऐसे वयस्कों की एक सूची बनाकर उन्हें इण्टर की परीक्षा के लिए तैयार किया जाय और प्रत्येक से १०-१० रुपए मासिक इकट्ठे करके ट्यूशन पद्धति की व्यवस्था कर उन्हें प्रतिदिन ३-४ घण्टे सामूहिक रूप से पढ़ाया जाए। कई अवकाश प्राप्त अध्यापक इसके लिये आसानी से मिल सकते हैं। यह प्रबन्ध उत्साही कार्यकर्त्ता कर सकते हैं। इससे शिक्षा के विकास की सम्भावनायें बढ़ेंगी।

धन्धों व शिल्पिक शिक्षा के स्कूल—ऐसे विद्यालय भी खुलने चाहिए, जिनका पाठ्यक्रम केवल पुस्तकपरक ही न हो वरन् लोगों को उद्योग-धन्धों की शिल्प अथवा किसी ऐसी कला की व्यावहारिक जानकारी मिलें, जिससे वे अपनी आजीविका का प्रश्न हल कर सकें। शिक्षा बढ़ेगी तो शिक्षितों की संख्या भी बढ़ेगी। आजकल लोग नौकरी का दृष्टिकोण बनाकर पढ़ते हैं, पर यदि पढ़े-लिखों की संख्या बढ़ी तो सबको नौकरियाँ कहाँ से मिल पाएँगी ? थोड़ी-सी शिक्षा विकसित हुई उसी में बेरोजगारी तमाशा बनी हुई है, आगे तो यह एक बहुत उग्र समस्या का रूप धारण कर सकती है, इसको दूर रखने के लिए अभी भी शिल्पिक स्कूलों का प्रचलन होना चाहिये। यह विद्यालय दिन में भी चलाए जा सकते हैं और रात में भी। इसमें स्थानीय सुविधाओं का ध्यान होना चाहिए।

ऐसे विद्यालयों की संख्या हमारे यहाँ १९६०-६१ में केवल ४१३० थी और उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या केवल ३३८६०९ थी। इनमें से अधिकांश धन्धे वही थे जिनकी सरकार को तात्कालिक आवश्यकता है, जैसे रेल के डिब्बों के लिये बढ़ईगीरी के काम, गृह उद्योग, पोलिटेक्निक विद्यालय, नर्सरी आदि। पर यह संख्या और विषय अभी काफी थोड़े हैं। इसमें काफी प्रसार की सम्भावना है। टाइपराइटिंग, कम्पोज, साइकिल फिट करना, रेडियो बनाना, साबुन उद्योग, कागज बनाना, स्त्रियों के लिए कॉमर्स, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, नर्सिंग आदि के विषय पढ़ाए जा सकते हैं। इनका लोग व्यक्तिगत लाभ उठा सकते हैं और इसके द्वारा उन्हें नौकरियाँ भी मिल सकती हैं। इस तरह के विद्यालयों में भी एक या दो घण्टे साक्षरता कार्यक्रम रखना चाहिये।

विदेशों में ऐसे भी स्कूल हैं, जहाँ स्त्री-पुरुषों को दाम्पत्य जीवन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पशुपालन आदि गृहस्थ जीवन को समुन्नत बनाने के लिए रात्रि पाठशालाएँ चलाई जाती हैं। सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था लाने और उसके नवनिर्माण की दृष्टि से ऐसे विद्यालयों की हमारे देश को बड़ी आवश्यकता है।

प्रौढ़ शिक्षा—छोटी उम्र के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के लिए सरकारी और गैर-सरकारी प्रयत्नों में काफी प्रसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो रहा है, इससे यह आशा बनी है कि आगे चलकर इस दिशा में अच्छी प्रगति होगी और देश का कोई भी बालक निरक्षर न रहेगा। पर इस समय हमारे देश में ८० प्रतिशत वयस्क निरक्षर हैं, समाज विकास के पथ पर इतनी बड़ी जनसंख्या का अशिक्षित होना एक बहुत बड़ी बाधा है, जिसे सरकारी मशीनरी हल करने से तो दूर रही। अधिकांश भ्रष्टाचार केवल इसीलिए बढ़ा कि इन अशिक्षितों को सरकारी योजनाओं और स्वतन्त्रता के उद्देश्य की जानकारी न हुई और अनैतिक तत्त्वों ने उसका लाभ उठाया, फलस्वरूप भ्रष्टाचार तेजी से पनपा और सारे देश में फैल गया। योजनाओं में बहुत खर्च करके भी उनका लाभ लोगों को बहुत कम मिला है। इसके लिए प्रौढ़ों की निरक्षरता कुछ कम जबावदार नहीं है।

समाज की दिशा मोड़ने के लिए एक ऐसा जोरदार आन्दोलन चलाने की आवश्यकता है, जिससे देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति न रहे, जिसे कम से कम पढ़ना और लिखना न आता हो। बच्चे तो पढ़-लिखकर काफी देर में आएँगे और राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ में लेंगे, तब तक निरक्षर बुजुर्ग उनके मन और मस्तिष्क में अपनी तरह के कुसंस्कार और दोष भरते रहेंगे तो बुराइयों, रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों का क्रम बहुत दिनों तक इसी तरह चलता रहेगा। राष्ट्र के तुरन्त निर्माण के लिए बच्चों से अधिक प्रौढ़ों को शिक्षा की आवश्यकता है।

प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य—प्रौढ़ शिक्षा का एक प्रधान कार्य प्रौढ़ों में ज्ञान लाभ की आकांक्षा जाग्रत करना है। गाँवों में जो जड़ता स्वाभाविक रूप से परिलक्षित होती है, उसके कारण उनमें नये ज्ञान लाभ की आकांक्षा जाग्रत नहीं होती। प्रौढ़ लोग यह भी कहा करते हैं कि अब तो उनकी इतनी उम्र हो गई, बुड्ढे हो गए अब पढ़कर क्या करेंगे ? किन्तु ज्ञान की आवश्यकता संस्कारों के निर्माण के लिए है और संस्कार मनुष्य के साथ जन्म-जन्मान्तरों तक विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार आज का याद हुआ सबके रात्रि की ८ घण्टे की गहरी निद्रा के बाद दूसरे दिन भी मस्तिष्क में बना रहता है, उसी प्रकार इस जीवन में प्राप्त ज्ञान की संस्कार रूप में स्मृति रेखाएँ अगले जन्मों में भी मस्तिष्क में बनी रहती हैं। कई बार लोग ऐसी चेष्टाएँ करते हैं, जो उनकी इस जीवन की प्रवृत्ति नहीं होती। लोग उस पर आश्चर्य करते हैं, पर तत्त्ववेत्ता ऋषियों के कथानुसार यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। पूर्व जीवन में मनुष्य का जैसा ज्ञान होता है, उसका लाभ उसे अगले जीवन में भी अव्यक्त रूप से मिलता है। यह पूर्व ज्ञान हमें भी मिलेगा, मिलता है यह बात आज के हर प्रौढ़ को मालूम होनी चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा के विषय—**(१) व्यक्तिगत**—जिसमें अक्षर ज्ञान, पत्र-पत्रिकाएँ, धार्मिक पुस्तकें पढ़ना, समाचार-पत्र पढ़ना, पुस्तकालयों से पुस्तकें लेकर पढ़ना आदि कार्यों में उनको कठिनाई न हो। थोड़ा गणित जिसमें जोड़, बाकी, गुणा, भाग के अतिरिक्त सामान्य जीवन का हिसाब लगाना आ जाए। इसमें किसानों को खेती सम्बन्धी, मजदूरों और व्यवसायियों को उनके व्यवसाय से सम्बन्धित गणित सम्मिलित रहे।

(२) परिवार के पालन-पोषण और उसके निर्माण सम्बन्धी आवश्यकताओं का ज्ञान होना। बालकों के चरित्र निर्माण सम्बन्धी जानकारी। इसके लिए अखण्ड ज्योति संस्थान ने अलग से एक ट्रेक्ट प्रकाशित कर दिया है।

(३) सामाजिक—इसमें लोगों से मिलना-जुलना, उठना-बैठना, संस्कार पर्व मानना, सामूहिक सफाई, रोगों की रोकथाम आदि का सामान्य प्रशिक्षण। वोट का महत्त्व, राजनैतिक अधिकार व कर्त्तव्य, पंचायतों के चुनावों में भाग लेना, ग्राम-निर्माण की मोटी-मोटी बातें शामिल की जायें।

(४) सांस्कृतिक कार्यक्रम—कीर्तन, सामूहिक जप-तप, व्रत, अनुष्ठान, यज्ञायोजन, सामूहिक-प्रार्थना, रामायण-पारायण, गीता-कथा आदि की विधियाँ, भाषण और प्रवचन करना, दोहा-अन्त्याक्षरी आदि विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों की जानकारी और उनका अभ्यास।

इन कार्यक्रमों को लेकर चलने से प्रौढ़ शिक्षा में लोगों को रुचि भी बनी रहेगी, लोगों को लाभ भी होगा। बौद्धिक विकास के साथ-साथ सामयिक कार्यक्रमों में सहयोग हो तो उससे सामाजिक जीवन में एक नई चेतना आना भी स्वाभाविक है।

जीवन की सार्थकता शिक्षा द्वारा ही सम्भव है—अब इस तथ्य से संसार के सभी व्यक्ति परिचित हो गये हैं कि शिक्षा के बिना मानव जीवन सार्थक नहीं समझा जा सकता। यदि जीवन का अर्थ केवल खाना-पीना और प्रजनन ही समझा जाय, जैसा हमारे बहुसंख्यक अनपढ़ भाई कहा करते हैं तो प्रश्न होता है कि फिर पशु और मनुष्य में अन्तर ही क्या रहा ? खाना और प्रजनन—ये दो कार्य तो सभी पशु और कीड़े-मकोड़े तक करते रहते हैं। वरन् इन कार्यों में मनुष्यों को जितना परिश्रम करना पड़ता है, चिन्ता करनी पड़ती है, पशुओं को उसका दशमांस भी नहीं करना पड़ता। जंगल के हिरन, सूअर आदि प्राणी घूमते-फिरते, खेलते-कूदते ही अपना पेट भर लेते हैं। उनको न किसी की खुशामद करनी पड़ती है, न झिड़कियाँ खानी पड़ती हैं, न पैसा-रुपया इकट्ठा करने की चिन्ता करनी पड़ती है। यदि शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता न जान पड़े तो पशु हमसे अच्छे माने जाएँगे।

पर अब संसार के अर्द्धसभ्य और जंगली कहे जाने वाले लोग भी समझने लगे हैं कि अगर संसार में सुख और सम्मान प्राप्त करना हो तो उसके लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य है। इस समय संसार में ज्ञान-विज्ञान का प्रचार बड़ी तेजी से हो रहा है और जीवन के हर एक अंग में उसका प्रवेश हो रहा है और तो क्या खेती जैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय को ले लीजिए, जिसमें शारीरिक परिश्रम की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है और जिसे हमारे देश में अधिकांश अशिक्षित व्यक्ति ही कर रहे हैं। पर अब कृषि विज्ञान में नई-नई खोजें हो रही हैं, जिनका विवरण और लाभों का परिचय सर्वसाधारण को कृषि पुस्तिकाओं और मासिक पत्रिकाओं द्वारा कराया जाता है। जो लोग उनसे लाभ उठाते हैं, वे इन्हीं दस वर्षों में प्रति बीघा दो-तीन मन अनाज पैदा करने की बजाय १०-१५ मन पैदा कर रहे हैं। इसी प्रकार जो लोग मामूली मजदूरी करके दो-तीन रुपया रोज से अधिक नहीं कमा सकते थे, वे कारीगरी और वैज्ञानिक विधियों की पुस्तकों का अध्ययन करके सहज में दस रुपया प्रतिदिन कमाने लग जाते हैं।

अब से सौ वर्ष पहले अमरीका में एक करोड़ नीग्रो (हब्शी) गुलाम बने हुए थे। विद्या और शिक्षा के अभाव में उनकी स्थिति बिल्कुल जानवरों जैसी थी और उनके गोरे मालिक उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी करते थे। काम में गफलत करने पर यदि मालिक किसी गुलाम को पीटते-पीटते मार भी डालता तो कानून की दृष्टि से उसे कसूरवार नहीं माना जाता था। पर जब सन् १८६३ में अमरीका के प्रेसीडेण्ट अब्राहम लिंकन ने अपना बलिदान देकर सब गुलामों को स्वतन्त्र बना दिया, तो थोड़े ही समय बाद उनको अनुभव होने लगा कि बिना शिक्षा के उनका उद्धार नहीं हो सकता। इससे पहले गुलामी की दशा में तो किसी प्रकार पढ़ना-लिखना उनके लिये एक अपराध के समान दण्डनीय माना जाता था पर अब कानून में गुलामी से छुटकारा पा जाने पर भी उनके पढ़ने-लिखने की कोई व्यवस्था न थी। सामान्य सरकारी स्कूलों में तो वे घुस नहीं सकते थे, न गोरे लड़कों के साथ बैठकर पढ़ सकने की उनको अनुमति थी।

तब कुछ उदारमना गोरों ने ही उनके लिये एक पृथक स्कूल खोला। उसमें दूर-दूर के स्थानों से बड़ी आयु के नीग्रो आकर उसमें थोड़ी-बहुत शिक्षा पाने लगे। उसी समय बुकर टी. वाशिंगटन नामक नीग्रो ने जो उस समय लड़का ही था, अपनी जाति की इस निरक्षरता के अभिशाप को अनुभव किया। वह धनाभाव से सैकड़ों मील पैदल चलकर उस स्कूल में पढ़ने को पहुँचा और मेहनत-मजदूरी करके उसने उच्च कक्षा तक की योग्यता प्राप्त की। इसके पश्चात स्वयं 'टस्केजी' नामक स्थान में एक विद्यालय स्थापित किया, जो आज अस्सी वर्ष से अमरीका के नीग्रो जनों में शिक्षा का प्रचार कर रहा है। इस अकेले व्यक्ति के प्रयत्न ने अमरीका के पशुवत नीग्रो जनों की कायापलट कर दी और आज वे अनेक देशों के नागरिकों की अपेक्षा अधिक शिक्षित बनकर सभ्य और शिष्ट लोगों का-सा जीवन बिता रहे हैं। नीग्रो जनों के विशेष स्कूलों और कॉलेजों की संख्या बढ़कर हजारों तक पहुँच गई है।

शिक्षा ही संसार में वह शक्ति है, जिसकी सहायता से मनुष्य निम्न धरातल से उठकर उच्चासन प्राप्त कर सकता है। यद्यपि शिक्षित हो सकने के अनेक मार्ग हैं और पुराने जमाने में कितने ही व्यक्ति बिना अक्षराभ्यास के भी सत्संगति और व्यावहारिक कार्यों द्वारा पर्याप्त ज्ञान उपार्जन कर लेते थे। पर उसमें बहुत अधिक समय लगता था और उनका ज्ञान सीमित ही होता था। पर पढ़ना-लिखना और पुस्तकावलोकन एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य थोड़े समय और अल्प परिश्रम में संसार की सैकड़ों विद्याओं, कलाओं और सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस विधि से वह संसार के समस्त नये और पुराने महापुरुषों के सत्कार्यों का परिचय प्राप्त कर सकता है और उनके सदुपदेशों का लाभ उठा सकता है। जो व्यक्ति या समाज अपनी निम्न अवस्था से उठकर संसार में अपना गौरवयुक्त स्थान प्राप्त करना चाहता है। उसके लिये साक्षर होना परमावश्यक है।

शिक्षित अपना उत्तरदायित्व सँभालें—प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम आसान भी हैं, सेवा भावना भी है और मनोरंजन भी। रात में दो घण्टे पढ़ने के लिये कोई भी व्यक्ति अपना कमरा, चौपाल या खाली पड़ा मकान दे सकता है। गाँव में काफी लोग शिक्षित होते हैं, जिन्हें शाम को कोई काम नहीं होता, उस समय १ घण्टा समय निकालना कोई कठिन बात नहीं है।

प्रारम्भ में ऐसी कठिनाई आती है कि बड़ी उम्र के लोग पढ़ने में संकोच अनुभव करते हैं। लोगों को समझाना चाहिए कि विद्याध्ययन के लिए कोई उम्र निर्धारित नहीं, मनुष्य का सारा जीवन ही विद्याध्ययन के लिए है। पढ़ने के लिए मृत्युपर्यन्त कुछ न कुछ समय निकालना चाहिए। लोकमान्यतिलक बिना स्वाध्याय किए भोजन नहीं करते थे। गोविन्द महादेव रानाडे अपने नाई से बँगला पढ़ते थे। राहुल संस्कृतायन ने जीवन भर पढ़कर दुनिया की २१ भाषाएँ सीखीं। सन्त विनोबा ने जीवन में अनेक व्यस्त कार्यक्रमों के बीच भी रूसी भाषा पढ़ते रहे है। इस प्रकार के प्रेरणाप्रद दृष्टान्त, प्रसंग और संस्मरण से लोगों को प्रेरित कर कुछ विद्यार्थी चुन लेने चाहिए।

पुरुषों को दिनभर काम करना पड़ता है, इसलिए उन्हें सूर्यास्त के पीछे सुविधा का समय रहता है। इसलिये प्रौढ़ पाठशालाएँ रात्रि में ही चलानी चाहिये। प्रारम्भ में कुछ भजन-कीर्तन हो जाया करें, जिससे लोगों का मनोरंजन हो जाएगा और उनकी थकान दूर हो जाया करेगी। महिलाओं को दोपहर के भोजन के पश्चात और शाम के बीच तीसरे प्रहर का समय उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है। महिलाओं को पढ़ाने के लिये कोई वृद्ध अध्यापक अथवा कोई शिक्षित स्त्री ही रहे और प्रबन्ध ऐसे स्थान में रहे, जहाँ किसी को आपत्ति न हो। उन्हें अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त सिलाई, स्वास्थ्य, सफाई,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिशुपालन, अच्छे गाने आदि सिखाना भी रहे। हमारी शिक्षा का उद्देश्य अक्षर ज्ञान ही न होकर अच्छे संस्कारों का सम्वर्द्धन भी होना चाहिए, इसलिए बीच-बीच में आध्यात्मिक कार्यक्रमों को सम्मिलित रखना भी जरूरी है।

हर शिक्षित पति, धर्मपत्नी को पढ़ाए—समाज सेवा के पुण्य कार्य के लिए उन्हें अवकाश न मिले और यदि वे समाज को साक्षर बनाने में किसी प्रकार का सहयोग न कर सकें तो न सही, पर अपनी धर्मपत्नी को अशिक्षित रखना पढ़े-लिखे पतियों के लिए लज्जा की बात है। पढ़े-लिखे नवयुवकों को अनपढ़ पत्नी मिलने पर चिढ़ होती है, पर यदि लोग समय निकालकर एक घण्टा अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाया करें, तो थोड़े दिनों में ही वे अपनी धर्म-पत्नियों को पत्र-व्यवहार करने योग्य बना सकते हैं।

जिनकी पत्नियाँ कक्षा ४ तक पढ़ी हों उन्हें जूनियर हाईस्कूल, हाईस्कूल तथा जितना सम्भव हो और आगे पढ़ना चाहिए। पारस्परिकता, सेवाभावना, प्रेम और आत्मीयता के विकास के लिए भी यह बहुत उपयोगी सुझाव है। कुछ देर परस्पर समीप बैठकर अपनी धर्मपत्नी की योग्यता बढ़ाने का कार्य लोग करें तो आधी निरक्षरता का अन्त देखते-देखते हो सकता है, साथ ही दाम्पत्य-जीवन में नई चेतना का आविर्भाव हो सकता है।

हमारे देश में लड़कों की शिक्षा का काफी विकास हुआ है, पर नारी वर्ग इस क्षेत्र में काफी पिछड़ा है। ग्रामीण क्षेत्र में यह अभिशाप और भी विस्तृत है, इस कलंक को धोने का सरल उपाय यह है कि प्रत्येक पुरुष कम से कम अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाने के लिए प्रतिदिन कुछ समय अवश्य निकालें। राष्ट्र की निरक्षरता को दूर करने के लिए हममें से प्रत्येक जो कुछ सहयोग बन पड़े, उससे पीछे नहीं रहना चाहिए।

आजकल बिना पढ़े-लिखे का भविष्य अन्धकारमय है—समाज में बिना पढ़े-लिखे या कम पढ़े-लिखे को कोई नहीं पूछता। हर कोई उसका मन ही मन तिरस्कार करते हैं। गँवार और उजड्ड समझकर अलग हटने और न बातें करने की कोशिश करते हैं। उससे कोई सलाह-मशविरा नहीं करता, ऊँचे कामों में जनता का नेतृत्व करने के लिए नहीं चुनता। सार्वजनिक संस्थाओं में अशिक्षित को कोई पद नहीं मिलता, न मान व सम्मान ही प्राप्त होता है। समाज में आदर और सम्मान के पात्र वे ही व्यक्ति होते हैं, जो सुशिक्षित और सुसंस्कृत हैं और जिन्हें देश-विदेश की नई से नई गतिविधि का पूरा ज्ञान है।

अर्थ भी उन्हीं के पास ठहरता है, जो व्यापार-वाणिज्य करना जानते हैं या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पद्धति से पूर्ण परिचित होते हैं। उन्हें मालूम रहता है कि किस व्यापार में कितना लाभ हो सकता है ? किस व्यापार की कितनी सम्भावनाएँ हैं। वह जमाना गया जिसमें बिना पढ़े-लिखे व्यापार किया करते थे या मामूली दुकान लगाकर अच्छी जीविका उपार्जन कर लिया करते थे। आज के विकसित युग में केवल चतुर और शिक्षित व्यक्ति ही सफल और कुशल व्यापारी बन सकता है। वह आकर्षक बातें करने के ढंग जानता है, ग्राहक को पटा सकता है, व्यापारिक ऋण प्राप्त कर सकता है और वैज्ञानिक तरीकों से व्यापार कर अधिक आय कमा सकता है। मूर्ख के पास धन नहीं ठहरता और उसे हानि की भी अधिक सम्भावना बनी रहती है। प्रायः अशिक्षित व्यापारी दुकान का हिसाब-किताब रखने में कुशल नहीं होते। वे नहीं जानते कि किस मद में कितना व्यय करना चाहिए? कहाँ से कितना रुपया बचना चाहिये ? किस सुरक्षित स्थान पर जमा करना चाहिए ? इनकम-टैक्स, सेल्सटैक्स इत्यादि का हिसाब कैसे रखना चाहिए ? विदेशियों से कैसे व्यापार चलता रहे ? ये सब बातें आधुनिक रूप से सुशिक्षित व्यापारी ही सफलता से पूर्ण कर सकता है।

घर और परिवार में शिक्षित व्यक्ति को हर कोई आदर की दृष्टि से देखता है, पूरा मान-सम्मान, सेवा और प्यार देता है। अपढ़, गँवार सदस्य प्रायः उपहास तथा अविश्वास के ही पात्र रहते हैं। शिक्षित की पत्नी अपने पति को मन से सच्चा प्यार देती है, क्योंकि गुप्त रूप से उसके मन में शिक्षा के कारण एक गुप्त आदर का भाव बना रहता है। बाल-बच्चे अपने योग्य और सुशिक्षित पिता की आज्ञा पालने करने में गर्व का अनुभव करते हैं। उन्हें यह कहने में एक गर्व का अनुभव होता है कि हमारे पिता विद्वान हैं। पढ़े-लिखे पिता को उसके बच्चे मूर्ख नहीं बना सकते, न धोखा ही दे सकते हैं। वे जानते हैं कि उनका शिक्षित पिता बाल-मनोविज्ञान अच्छी तरह समझता है।

आपका बड़प्पन बुद्धि बढ़ाने में है—

पठतो नास्ति मूर्खत्व जपतो नास्ति पातकम् ।
जाग्रतस्तु भयं नास्ति कलहो नास्ति मौनिनः।।

जो निरन्तर अध्ययनशील होता है, उसमें मूर्खता नहीं रहती है। जो बराबर जप करता रहता है, उसमें कोई पातक नहीं रह सकता। जो जागता रहता है, उसे किसी का भी भय नहीं हो सकता। जो मौन धारण करने वाला होता है, उससे किसी का भी कलह नहीं होता है।

मनुष्य और पशु में केवल बुद्धि और विवेक का अन्तर है। जबकि पशु केवल एक क्षण की बात सोच-विचार सकता है, मनुष्य अपने विकसित बुद्धि बल के सहारे दिन, मास, वर्षों और युगों तक की बात सोच सकता है और उसके अनुसार अपने जीवन को ढाल सकता और लाभ उठा सकता है।

मनुष्य ने अपने विकसित मस्तिष्क द्वारा ही संसार के समग्र अल्प विकसित पशुओं पर शासन किया है, आज हम ज्ञान, विज्ञान, उद्योग, यातायात अथवा चिकित्सा में जो महान विकास कर रहे हैं, वे सब मनुष्य की विलक्षण बुद्धि के अद्भुत चमत्कार हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके समुचित विकास और परिष्कार के द्वारा ही मनुष्य का जीवन धन्य होता है। जहाँ बुद्धि का विकास नहीं है, वहाँ मनुष्य है किन्तु वह तो बिना सींग और पूँछ के एक तुच्छ, अल्प विकसित जीवमात्र रह जाता है।

अपनी बुद्धि के ठीक विकास और उपयोग द्वारा ही मनुष्य में गलत-सही, उत्कृष्ट-निकृष्ट, धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य, विवेक-अविवेक का निर्णय होता है। जिस तरह हवाई जहाज में लगा हुआ दिशायन्त्र चालक को सही मार्ग का दर्शन कराता है, उसी तरह मानव शरीर में बुद्धि का स्थान है।

बुद्धि ही ऐसी कसौटी है, जिस पर मनुष्य जीवन को, परिवार को, समाज, जगत और ऊँची-नीची हर एक परिस्थिति को परखकर ठीक-ठीक निर्णय पर पहुँचा सकता है।

जिस प्रकार नेत्रहीन के लिए मनोरम दृश्य व्यर्थ है, उसी तरह नासमझ आदमी के लिए जीवन और जगत के मधुर रहस्य, शास्त्र-वार्त्ता, ज्ञान-विज्ञान आदि मनुष्य की बुद्धि के संग्रहीत खजाने, साहित्य, कथाएँ, उन्नति की योजनाएँ सब व्यर्थ हैं। बुद्धि विकास के बिना जीवन जड़ है, पशु तुल्य है। बुद्धिहीन के लिए यही दुनिया जानवरों से भरी हुई है। जीवन का उद्देश्य, उन्नति की नाना दिशाएँ, अच्छाई-बुराई, उत्थान और पतन का कोई मतलब नहीं है।

संसार में जो आश्चर्यजनक उन्नति, विलक्षण प्रगति, तीव्रगति, बहुमुखी विकास, नई खोज और अन्वेषण हो रहे हैं, वे सब मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट देन इस बुद्धि बल के ही चमत्कार हैं।

शास्त्रकारों ने एक बड़े रहस्य का उद्घाटन इन शब्दों में किया है—

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नास्त्यगम्य हि किंचन ।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्यनासिपाणया ॥

याद रखिए, बुद्धिमानों की बुद्धि के समक्ष संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। बुद्धि से ही शस्त्रहीन चाणक्य ने सशस्त्र नन्द वंश का नाश कर डाला।

मनुष्य के हाथ-पैरों की अर्थात मानवीय शरीर की स्थूल शक्ति अन्य पशुओं के मुकाबले में भी गई बीती है। यदि मनुष्य उनसे कुश्ती लड़ने लगे, तो निश्चय ही वह शारीरिक ताकत में हार मानेगा। शारीरिक शक्ति प्रत्यक्ष में एक सीमा तक ही फायदेमन्द सिद्ध हो सकती है, लेकिन मानवीय उर्वरा बुद्धि की ताकत अति व्यापक है। वह दूर तक भी प्रभाव डाल सकती है।

''दीर्घं बुद्धिस्ततो बाहू याभ्या दूरहिनस्ति सः।''

ठीक ही कहा है; बुद्धिमान व्यक्ति की भुजाएँ बड़ी लम्बी होती हैं, जिनकी ताकत से वह दूर तक वार कर सकता है।

महर्षि व्यास के अनुसार—**''बुद्धि श्रेष्ठानि कर्माणि''** अर्थात मनुष्य की बुद्धि से विचारपूर्वक किए गए कार्य ही श्रेष्ठ होते हैं।

बुद्धि मनुष्य के लिए दैवी विभूतियों में उच्चकोटि का वरदान है। इसके सहारे अपने जीवन को अधिक उन्नत, समाहत और प्रभावशाली बना सकता है। समाज और इस समुन्नत संसोर में जो कुछ मनुष्य द्वारा किया हुआ अद्भुत काम मिलता है, वह उसकी बुद्धि की ही देन है।

कहावत है—''बुद्धिमान का एक दिन मूर्ख के जीवनभर के बराबर होता है।'' इसका साफ मतलब यह है कि समझदार आदमी अक्ल के ठीक उपयोग से वह काम कर डालता है, जो साधारण आदमी जिन्दगीभर नहीं कर पाते।

याद रखिए, यदि आप जिन्दगी में सम्मान पाना चाहते हैं, तो आपको आज से, अभी से ही अपनी बुद्धि का विकास करना शुरू कर देना चाहिए। बुद्धि को विकसित, संस्कारी और समर्थ बनाने व मनुष्य को अधिकाधिक आगे बढ़ने और बड़ी-बड़ी उन्नति करने की इच्छा पैदा होती है। जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती है, अच्छाई-बुराई, अपने हानि-लाभ और उन्नति-अवनति का भेद आता-जाता है। बुद्धि को अधिकाधिक प्रौढ़ व्यापक और परिपक्व बनाने के लिए ज्ञान की साधना और विचारों की अर्चना करना आवश्यक है। ज्ञान और विचार साधन के क्षेत्र में हम जितना ही नये विचारों को मन में रखना और फिर अपने ढंग से सोचना शुरू करेंगे, उतना ही हमारी बुद्धि का विकास होगा।

बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने के लिए सबसे बड़ी जरूरत यह है कि हमारे अपने मन में नये ज्ञान को ग्रहण करने, नई बात सीखने और अपनी बुद्धि को बढ़ाने की तीव्र और उत्कट लगन होनी चाहिए। सीखने के लिए मानव जाति का संचित अब तक का ज्ञान कुछ कम नहीं है। नाना क्षेत्रों में मानवीय बुद्धि अर्जित ज्ञान का अथाह भण्डार भरा पड़ा है। एक-एक विषय पर असंख्य पुस्तकें मौजूद हैं। ढेरों पत्र-पत्रिकाएँ प्रतिदिन छप रही हैं। इसके अतिरिक्त संसार की खुली पुस्तक—इस समाज में हर समय कुछ न कुछ सीखने को मिलता ही रहता है। दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की लालसा होनी चाहिए।

दूसरी बात है, दूसरों को सिखाने की। स्वयं अर्जित या स्वाध्याय से एकत्रित ज्ञान को दूसरे को सिखाने से भी हमारी बुद्धि का विकास होता है। वस्तुतः दूसरों के माध्यम से ही जो कुछ सीखा हुआ है, वह परिष्कृत होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान कहीं से, किसी से, किसी मूल्य पर मिले, लेना ही अच्छा है। सीखने के क्षेत्र में दूसरों के विचारों से या दृष्टिकोण से परहेज नहीं करना चाहिए। जिससे हम सीखें वही गुरु है। ऐसे अनेक गुरु हो सकते हैं। भारत के व्यक्ति ज्ञान प्राप्ति में हमेशा उदार रहे हैं। हमारी परम्परा के अनुसार ज्ञान की प्राप्ति में हमने किसी से परहेज नहीं किया है। संसारभर के विचारों का हमने प्रयोग किया और जो उपयुक्त लगा, उसे स्वीकार करने में आना-कानी नहीं की। बुद्धि की साधना करने वाले के लिए अपनी ग्रहणशक्ति को एकांगी नहीं बनाना चाहिए। अपने आपको किसी एक ही विचारधारा में कैद नहीं कर लेना चाहिए। जो ऐसी भूल कर बैठते हैं, उनकी बुद्धि भी एकांगी बन जाती है। वह नाना दिशाओं में विकसित नहीं हो पाती।

प्रसिद्ध विचारक बेकन ने ठीक ही कहा है—"ईश्वर ने बुद्धि की कोई सीमा निश्चित नहीं की है।"

सचमुच बुद्धि के साधक के लिए, सद्ज्ञान, विवेक और सरस्वती की उपासना करने वाले को किसी भी स्थिति में पहुँचकर यह नहीं मान लेना चाहिए कि अब पढ़ाई-लिखाई समाप्त हो चुकी है और अब सीखने जैसी कोई बात नहीं रही है। स्मरण रखिए ज्ञान समुद्र की भाँति अनन्त और अगाध है। उसकी कोई सीमा नहीं है। ज्ञान नित नूतन विकासक्रम की गोद में पलता है। इसलिए बुद्धि, विकास और उन्नति की कोई सीमा नहीं हो सकती। प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमी के लिए नया सीखने को बहुत कुछ शेष रहता है, क्योंकि मानव-ज्ञान भी बड़ी तेज रफ्तार से बढ़ता ही जाता है।

ज्ञानवर्द्धन की अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं, नये-नये क्षेत्र हैं, बुद्धि को बढ़ाने के लिए सब प्रणालियों में घुसकर देखें। किसी एक संस्था, विचार-प्रणाली या धर्म सम्प्रदाय से संकुचित नियम या क्षेत्र में बँधकर न देखें जहाँ-जहाँ भी सद्ज्ञान के नये स्रोत प्रकाश में आएँ, वहाँ-वहाँ ही अपनी बुद्धि को उसमें प्रवेश करना चाहिए। अध्यात्म, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति, विज्ञान, धर्म-संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में अपनी गति बढ़ावें। आपकी योग्यता किसी क्षेत्र में कम रह सकती है। जिसमें कम हो उसी में बढ़नी चाहिए, क्योंकि समस्त ज्ञान परस्पर जुड़ा हुआ है। सब कुछ एक है। आपके ज्ञानार्जन का क्षेत्र जितना व्यापक होगा, उतना ही आपकी बुद्धि भी विशाल और व्यापक बनेगी।

विद्यावान बनें, ऊँचे उठें—मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता क्या है ? आदमी का असली गौरव किसे कहा जाय ? मानवता की दैवी विभूति वास्तव में क्या है ?

शास्त्रकारों ने इन प्रश्नों का उत्तर इन शब्दों में दिया है—

'गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
यद्यपि स्यान्न फलदा, सुलभा सान्यजन्मनि ॥'

"हे मनुष्यो ! उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो, तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो। (क्योंकि विद्या ही मानव की सर्वोत्तम विभूति है।) विद्या इस जीवन में फलवती न हुई, तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जाएगी।

सच्चा मनुष्य वही है, जिसके पास विद्यारूपी धन है। बिना ज्ञान के व्यक्ति अन्य जानवरों के समान निरा पशु ही है। विद्या से ही मनुष्य जीवन सार्थक होता है, क्योंकि वही मनुष्य के आत्मविकास का साधन है। संसार में विद्या से बढ़कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। विद्या के कारण ही मनुष्य समाज, परिवार और जीवन के आनन्द, उल्लास, सम्मान आदि का सुख लूटता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। अविद्या या अज्ञान ही सब असफलताओं की जड़ है। जन्म से सब मनुष्य थोड़े-बहुत अन्तर के साथ बराबर से होते हैं, पर किसी विशेष क्षेत्र का ज्ञान, शिक्षण और विशेष अध्ययन ही उन्हें दूसरों से आगे बढ़ाता है। जिस आदमी के पास जमीन-जायदाद, रुपया आदि नहीं है, विद्या उसका सहायक और परममित्र होती है, जीविका उपार्जन का साधन बन जाती है।

एक विचारक के शब्दों में, "विद्या नवयुवक का सहारा, धनवान का यश और प्रौढ़ व्यक्ति का सुख-साधन होता है। विद्या मिलने से मनुष्य विचारशील, एकाग्रचित और परिश्रमशील बनता है। विद्या हमारी समृद्धि में आभूषण, विपत्ति में शरण स्थान और समस्त कालों में मनोरंजन का साधन होती है। विद्या का अन्तिम ध्येय परमात्मा को जानना है।"

मनुष्य को परखने की कसौटी उसके पूर्वजनों द्वारा कमाया गया धन, सम्पत्ति या जमीन-जायदाद नहीं है, न रूप-सौन्दर्य है। विद्या, बुद्धि, सद्ज्ञान, सद्बुद्धि और विवेक के मापदण्ड से ही मनुष्य के व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की परख होती है। इस दुनिया में पैसे वाले को नहीं विद्वान को ही सच्चा धनी कहना चाहिए। सच पूछा जाय तो आदमी की योग्यता, विद्वता और प्रतिभा ही उसके बड़प्पन की कसौटी है।

दुनिया के समझदार आदमी विद्वान का ही आदर और जनता उसी का सार्वजनिक सम्मान करती है। महान पुरुष सदैव ऐसे ही अधिकारी पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, जिन्हें विद्या के माध्यम से ही प्रवीणता प्राप्त हुई हो।

महाराज धृतराष्ट्र को, कौरवों तथा पाण्डवों को शस्त्र-प्रशिक्षण के लिए किसी सुयोग्य आचार्य की आवश्यकता थी, किन्तु कोई विद्वान राजगुरु उन्हें दिखाई न दिया। एक दिन द्रोणाचार्य भी उनकी सभा में आए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धनुर्विद्या में इतने प्रवीण आचार्य का पाण्डित्य देखकर महाराज मुग्ध हो गए और उन्होंने समझ लिया कि इनके पास रहकर बालकों के चरित्र का विकास हो सकेगा। अकेले शस्त्र-प्रशिक्षण की बात रही होती तो वह कार्य कोई भी कर सकता था। नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए चरित्र, सद्ज्ञान, विद्वत्ता और प्रतिभा सभी एक साथ एक ही व्यक्ति में मिलना जरूरी था।

प्राचीनकाल में अध्यापन कार्य इसलिए सबसे कठिन काम समझा जाता था और कोई हर प्रकार से उन्नत चरित्र वाला विद्वान ही शिक्षक बनने का साहस कर सकता था। ऐसे व्यक्ति को शिक्षण का कार्य सौंपा जाता था, जो अक्षर ज्ञान के साथ मनुष्य की प्रतिभा विकसित करने के लिए सामर्थ्यवान हो सके। यह तत्त्व विद्या ही है, जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती है और ऊँचे स्तर पर पहुँचाती है। गिरे हुए समाज के उद्धार के लिए भी विद्या की अनिवार्य आवश्यकता है।

आधुनिक विद्या का स्वरूप कुछ बदल गया है। उसमें नैतिक शिक्षण और चरित्र-निर्माण के लिए कोई स्थान नहीं है, कोरी बौद्धिक उन्नति की ओर ही प्रयत्न है। विद्यार्थियों का चरित्र-बल, कर्म-शक्ति, आशा-विश्वास, उत्साह, पौरुष, संयम और सात्विकता जाग्रत करने की शक्ति उसमें नहीं है।

जिस विद्या में कर्त्तव्य शक्ति को प्रेरणा न मिलती हो, स्वतन्त्र रूप से विचार करने की बुद्धि न आती हो, परिस्थितियों से टकराने की सामर्थ्य जो न दे सके, वह विद्या निस्तेज है, बिल्कुल निष्प्राण है।

आज का युग ऐसी दिखावटी विद्या ही दे रहा है। हमारे असंख्य विद्यार्थी कला, विज्ञान और वाणिज्य की डिग्रियाँ प्राप्त करके निकलते हैं, तो उनमें छल-कपट, धूर्तता, दुश्चरित्रता, फैशनपरस्ती, विलासिता, द्वेष और अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। आज के कलियुगी विद्यार्थियों की करतूतें किससे छिपी हैं ? तनिक-तनिक-सी बातों पर हड़तालें, मार-पीट, लूट-खसोट, झगड़ेबाजी, परीक्षा में नकल, लड़कियों से गन्दा मजाक, धूर्तता, अशिष्ट शब्दों का प्रयोग, भारी खर्च करने की आदत, सिनेमा, सिगरेट और पान इत्यादि व्यसन हर कोई देख सकता है। स्वतन्त्र चिन्तन का उनमें बिल्कुल अभाव होता है।

विचारों की पराधीनता का नाम अविद्या है, जिस पाठ्यक्रम में ऊपर बताई गई त्रुटियाँ हों, वह अविद्या ही कही जाएगी।

जो ज्ञान मनुष्य के अच्छे संस्कारों को जाग्रत करे, मनुष्य के चरित्र के सर्वोत्कृष्ट तत्त्वों को विकसित करे और उसकी उत्तम वृत्तियों को बढ़ाकर ऊँचा उठा दे, वही विद्या माननी चाहिए। ज्ञान मनुष्य को स्वाधीन बनाए, साहसी बनाए, विद्या कहलाने का गौरव उसे ही मिल सकता है। अध्यात्म रामायण में बड़े ही सुन्दर शब्दों में विद्या-अविद्या का उल्लेख मिलता है—

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता।
नहि देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति मन्यते।।

अर्थात—'मैं देह हूँ''—इस बुद्धि का नाम अविद्या है। मैं देह नहीं आत्मा हूँ, इसका ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची विद्या है।

विकास का अर्थ इहलौकिक सम्पदाओं की विपुलता प्राप्त कर लेना नहीं है, वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक जाग्रति का लक्षण है। मनुष्य का स्वत्त्व उसकी आत्मा और उसकी विशेषताएँ—सद्गुण, सत्प्रवृत्ति और सदाचार। आत्मा की इन विशेषताओं को उपलब्ध करना ही इस जन्म का उद्देश्य है और जो इस दशा में हमारी चेतना को अग्रसर करे, वही सच्ची विद्या है। क्रमशः आदमी इस स्तर तक ऊँचा उठ सकता है।

जो ज्ञान मनुष्य को सही दिशा, उन्नति का सही मार्ग और जीवन का सच्चा प्रकाश दिखाती है, उसे अध्यात्म कहते हैं। इस अध्यात्म को जाग्रत करने का काम आपको शुरू से ही करना होगा। विवेक जगाने वाली विद्या न रही तो पतित होना स्वाभाविक ही है। मनुष्य के भीतर जो पशुत्व है, जो गन्दगी है, उसे दूर करने का एकमात्र उपाय विद्या की प्रवीणता ही है। जब तक जीवन की दिशा सात्विक नहीं होती, गुण, कर्म और स्वभाव में सततत्त्वों का समावेश नहीं होता, मनुष्य की जड़ता और पशुता तब तक दूर नहीं हो सकती। अध्यात्म विद्या सुखी जीवन की प्रमुख आवश्यकता है।

आप मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति उस विद्या, उस विद्वता और सद्ज्ञान को अधिकाधिक प्राप्त कीजिए। जिस विद्वता से मनुष्य स्वयं ही अपना योग्य साथी बनता है, जिससे वह अपनी जीविका कमाता है, जिन्दगी सुख और सम्पन्नता से काटता है। उसके लिए सच्ची लगन और गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है। विद्या आत्मा की प्यास है। इसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से ही होती है। जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्या की प्रमुख आवश्यकता है। कठोर प्रयत्नों से भी इसे प्राप्त किया जाना चाहिए।

सतत् अध्ययनशील रहें—यदि आदमी कुछ पढ़ता-लिखता न रहे पुस्तकें, समाचार-पत्र, मासिक-पत्र इत्यादि कुछ न कुछ देखता न रहे तो पढ़ी हुई पुरानी बातें भी भूल जाती हैं। जैसे सीखने की क्रिया है, वैसे ही भूलने की क्रिया भी तीव्र है। प्रायः देखा जाता है कि कोई उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद जो विद्यार्थी, वकील अथवा डॉक्टर अपना अध्ययन और नई-नई पुस्तकों को पढ़ना बन्द कर देता है, उसका ज्ञान पुराना पड़ जाता है। जो नये ज्ञान को लगातार संग्रह करता रहता है और अपना ज्ञान अप-टू-डेट रखता है, वह दूसरों का विश्वास पा जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार की विचारधारा को मोड़ देने वाले विचारक, विद्वान, पत्रकार और लेखक प्रतिदिन घण्टों स्वाध्याय में लगे रहते हैं। जो स्वाध्यायशील रहता है, उसका ज्ञान आधुनिक और विद्या जाग्रत रहती है। प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते रहने वाले अपने ज्ञान-कोष में बूँद-बूँद इकट्ठा करके उसे अक्षय बना लिया करते हैं। यदि आप में अपने ज्ञान को बढ़ाने की सच्ची और तीव्र इच्छा है, तो आप अवश्य ही खुद पढ़ेंगे, फालतू समय को व्यर्थ के कार्यों से बचाकर नये ज्ञान की प्राप्ति में लगाएँगे।

यह दुनिया लगातार बड़ी तेजी, रफ्तार से बहु दिशाओं में निरन्तर तीव्र गति से आगे बढ़ती जा रही है। मनुष्य की सच्ची बौद्धिक सम्पत्ति तो आखिर ज्ञान ही है। आज के प्रबुद्ध मनुष्य हर क्षेत्र में नये-नये अनुसन्धान, नई-नई खोजें और जानकारियाँ प्राप्त कर रहे हैं, ढेरों रिसर्च हो रहे हैं, ज्ञान के नये-नये स्रोत खुल गए हैं। नया ज्ञान ही मानवता की कीमती पूँजी है। अध्ययनशील व्यक्ति को यह पूँजी सहज ही में उपलब्ध रहती है। वह एक जागरूक नागरिक की तरह ही जीवन में जीने का सुख पाता है। वह मूढ़मति जैसा नहीं होता कि उसे अपने आस-पास गुजरने वाली वस्तुस्थिति का भी ज्ञान न हो।

किन्हीं कारणों से जिन्हें विद्याध्ययन का अवसर नहीं मिल सका, जो स्वयं ही ग्रन्थों का पठन-पाठन नहीं कर सकते, उन्हें चाहिए कि बुद्धि बढ़ाने के लिए अध्ययनशील व्यक्तियों का सत्संग करें, महात्माओं और व्याख्यानदाताओं से सम्पर्क स्थापित करें और एकाग्रतापूर्वक आँखों के स्थान पर कानों से स्वाध्याय करें। ऐसा करते रहने से उन्हें भी बाद में वे सब लाभ प्राप्त होंगे, जो एक स्वाध्यायशील को हुआ करते हैं। ''मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ''—ऐसा सोचने और करने वाला अपने प्रमाद का ही परिचय देता है। जो पढ़ नहीं सकता, उसे श्रवण रूपी स्वाध्याय के सत्संग में लगे रहना चाहिए।

सद्ज्ञान सम्वर्द्धन का पुण्य-परमार्थ

स्कूलों में एक निर्धारित समय में पूरा हो सकने वाला निर्धारित पुस्तकों का पाठ्यक्रम पूरा कराया जाता है। छोटे बच्चों के लिए अथवा सीमित विषयों की सीमित जानकारी प्राप्त करने वालों के लिए यह पद्धति उपयोगी हो सकती है। शिक्षा का सरकारी मापदण्ड यही है। नौकरी मिलने में जिन प्रमाण-पत्रों की आवश्यकता पड़ती है, वे निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा कर लेने पर मिले हुए होते हैं। पढ़ते भी लोग इसी निमित्त हैं, श्रम और धन भी खर्च करते हैं। पढ़ने और पढ़ाने वालों की प्रशंसा भी इसी आधार पर होती है।

किन्तु जिन्हें ज्ञान की पिपासा है, किसी विषय विशेष में अधिक ज्ञान अर्जित करने का जिनका मन होता है अथवा जीवन में काम आने वाली, समाज को प्रभावित करने वाली किन्हीं समस्याओं पर अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिए स्कूली ज्ञान सर्वदा अपर्याप्त रहता है। उन्हें अपने प्रिय विषय की उच्चस्तरीय अनेकानेक पुस्तकें पढ़नी होती हैं।

हर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वह अभीष्ट ज्ञान की पुस्तकें मँगा सके। इसके लिए हर जगह पुस्तकालयों का ही आश्रय लिया जाता है, हर विषय की अनेकानेक पुस्तकें मँगाने में जो पूँजी लगती है। साज-सँभाल की लेने और देने की जो व्यवस्था बनती है, उसके लिए उपयुक्त स्थान से लेकर फर्नीचर और एक आदमी के वेतन का खर्च संगठित संस्था ही कर सकती है। उसका बजट भी इतना होना चाहिए जिसमें न केवल चालू खर्च की पूर्ति होती रहे, वरन् हर महीने नया बहुमुखी साहित्य मँगाते रहने की राशि भी स्थायी खर्च में सम्मिलित रहे।

अधिक लोगों को अधिक व्यसनी बनाने के लिए शिक्षित नर-नारियों से सम्पर्क साधना और उन्हें उत्साहित, सहमत करना पुस्तकालय की ही सम्पर्क समिति का काम होना चाहिए। वह जनसम्पर्क साधने का मुहल्लेवार ऐसा कार्यक्रम बनाएँ कि नगर का एक भी व्यक्ति ऐसा न बचे, जिसे पुस्तकालय द्वारा ज्ञान सम्वर्द्धन का लाभ विदित न हो। उनकी प्रकृति और आवश्यकता के अनुरूप कौन पुस्तकें उपयोगी हो सकती हैं, यह परामर्श भी दिए जाने की आवश्यकता है। यह क्रम चलाए बिना उपयोगी साहित्य मँगा लेने पर भी वह अचार के घड़े की तरह जहाँ का तहाँ रखा रहेगा। आवश्यकता तो इस बात की भी है, कि जहाँ जनसम्पर्क साधकर शिक्षितों को अपनी अभिरुचि एवं आवश्यकता की पुस्तकों की नामावली सुझाई जाय, वहाँ उनके घर पुस्तक पहुँचाने और वापस लाने का भी प्रबन्ध रहे।

अपने देश में एक तो शिक्षित ही कम हैं। फिर जो हैं उनमें से विद्याव्यसनी लोगों की संख्या बहुत कम है। स्कूल छोड़ने के बाद प्रायः पुस्तकों को नमस्कार कर लिया जाता है और लिखने-पढ़ने की उतनी ही प्रक्रिया चलती है, जो व्यवसाय के काम आती है। बहुत हुआ तो खाली समय में मनोरंजक पुस्तकें किसी से माँग-जाँचकर ऐसी ले ली जाती हैं, जिनमें हँसी-दिल्लगी या जासूसी-तिलस्म, अय्यासी जैसे विषय हों। कामुकता भड़काने वाले अश्लील उपन्यास भी लोगों को रुचते हैं। लोगों की सामान्य, स्वाभाविक प्रकृति पढ़ने के सम्बन्ध में इसी सीमा तक सीमित होकर रह गई है। जैसे फिल्में भी उथले स्तर की मनोरंजन प्रसंगों की ही दर्शकों से सिनेमा घर भरे रहती हैं, ठीक वही बात पुस्तक पढ़ने के सम्बन्ध में भी है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर ऐसा ही उथला साहित्य भरा रहता है। शिक्षितों का लोकमानस प्रायः इसी स्तर का पाया जाता है। किसी को कुछ पढ़ना हो तो लोग इसी स्तर की पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें पढ़कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना मनोरंजन करते हैं। इस मनोभूमि को उलटने के लिए ऐसे पुस्तकालयों की आवश्यकता है, जो जीवन के साथ जुड़े हुए अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत कर सके और सामाजिक विकृतियों के कारण होने वाली हानियों का स्वरूप समझाते हुए उनसे पीछा छुड़ाने का मार्ग सुझा सके। कोई किसी विषय का विशेषज्ञ बनना चाहता है, तो उसके लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सके।

इसके लिए दुहरी आवश्यकता है, एक तो पुस्तकालय के पहुँचने में सुलभ स्थान पर स्थापना—दूसरे उसमें पर्याप्त पुस्तकें होना। यह साहित्य कूड़े-करकट जैसा लोकरुचि के अनुरूप नहीं वरन् ऐसा होना चाहिए जो पाठकों को ऊँचा उठाने, बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सके। ऐसी पुस्तकें कई व्यक्ति एक साथ माँग सकते हैं इसलिए कुछ पुस्तकों के दुहरे-तिहरे सैट भी होने चाहिए। यह सारा सरंजाम ऐसा हो, जिसे जुटाने में आरम्भिक पूँजी भी बड़ी लगेगी और पीछे एक व्यक्ति की नियुक्ति, मकान, मरम्मत तथा हर महीने नई-नई पुस्तकें मँगाते रहने का खर्च चलाता रहे। स्थायी फण्ड तथा मासिक खर्च की दोनों ही व्यवस्थाएँ चलनी चाहिए। पढ़ने वालों से मासिक फीस तब वसूल होती है, जब वे स्वेच्छापूर्वक पढ़ने में रस और रुचि लेने लगें। उसके पूर्व तो उनसे सम्पर्क साधने का समय और मुफ्त में घर जा-जाकर उपयोगी पुस्तकें देने और वापस लाने का झंझट स्वयं ही उठाना पड़ता है। उसे भले ही संस्था के उत्साही सदस्य सेवा भावना से उठाएँ या फिर एक व्यक्ति इसी निमित्त स्थायी रूप से वेतन देकर रखा जाय। एक तरीका यह भी है कि जो एक व्यक्ति स्थायी रूप से रखा गया है, वह चार घण्टे सम्पर्क साधने में लगाए और चार घण्टे पुस्तकालय खोलकर बैठे।

समूचे कार्यक्रम पर दृष्टिपात किया जाय तो जितने असाधारण महत्त्व का है, उतना ही खर्चीला भी है। यह किसी देवालय, कुँआ, तालाब बनाने या सदावर्त बाँटने से कम पुण्य-परमार्थ का काम नहीं है। लोगों के लिए शारीरिक सुविधा-साधन जुटा देना ही पुण्य नहीं है, वरन् किसी को सद्ज्ञान-सम्वर्द्धन की दृष्टि से अधिक विचारशील बनाना उससे अनेक गुना श्रेयस्कर है। धर्मशाला, सदावर्त आदि के द्वारा शरीरों को लाभ दिया जाता है, वह सुविधा कुछ ही समय सुख देती है, किन्तु सत्साहित्य के द्वारा मिला हुआ ज्ञान दान किसी का चिन्तन और चरित्र उठा सकता है, व्यक्तित्व उभार सकता है। इस प्रकार वह लाभ चिरस्थायी रहता है और यह प्रकाश एक से दूसरे तक पहुँचते रहने के कारण अनन्त पुण्य फलदायक बन सकता है। इस कारण अन्न दान की तुलना में ब्रह्म दान का प्रतिफल हजार गुना अधिक माना गया है। कठिनाई एक ही है कि विद्या का महत्त्व एवं प्रतिफल समझा नहीं गया। इसलिए अनजान लोगों की दृष्टि में पुस्तकालय योजना छोटी हो सकती है, किन्तु विज्ञजन विद्यालय की तुलना में पुस्तकालय का महत्त्व कम नहीं आँक सकते।

प्रचलन न होने पर भी, महत्त्व न समझे जाने पर भी विचारशील लोगों का काम यह है कि जो श्रेयस्कर है, उसमें लोगों की रुचि पैदा करें और जिससे अत्यधिक हित साधन हो सकता है, उसे अनिच्छापूर्वक भी गले उतारें।

प्रज्ञा पुस्तकालय यों छोटे-से-छोटा इस प्रकार भी बन सकता है कि अपने अंशदान से सस्ते ट्रेक्ट-फोल्डर खरीदते रहा जाय और निजी श्रमदान से सम्पर्क साधकर पढ़ने, देने और वापस लेने का क्रम चलाया जाय, किन्तु यदि साधन सम्पन्न संस्थान खड़ा करना है, तो फिर उसके लिए आरम्भिक राशि की जरूरत पड़ेगी। यह जितनी अधिक सम्भव हो सके, प्रयत्न किया जाय और उसमें छाँटी हुई ज्ञानवर्धक पुस्तकें बड़ी संख्या में खरीदने का प्रबन्ध किया जाय। अखण्ड ज्योति पाठक के यहाँ समय-समय पर खरीदा गया युग साहित्य हो सकता है। उनसे माँगकर भी पुस्तकालय के भण्डार में थोड़ा-बहुत अभिवर्द्धन हो सकता है।

यों ज्ञान की अगणित धारायें हैं। इनमें कुछ ऐसी भी हैं, जो अधिक सांसारिक जानकारियाँ बढ़ाने और अपने व्यवसाय की अभिवृद्धि में सहायक हो सकती हैं। विदेशों में हर समझदार व्यक्ति आजीवन विद्यार्थी रहता है। स्कूली समय पूरा हो जाने के उपरान्त पुस्तकालयों को ही अपना स्कूल समझता है और उनके सहारे अपनी ज्ञान-सम्पदा स्कूली पढ़ाई की तुलना में अनेक गुनी अधिक बढ़ा लेता है। बौद्धिक ज्ञान की अभिवृद्धि के साथ-साथ सांसारिक प्रगतिशीलता का बढ़ना भी सुनिश्चित है। जिस प्रकार हर व्यक्ति को कमाने-खाने में रुचि रहती है, उसी प्रकार समझदार लोग अपनी ज्ञान सम्पदा बढ़ाकर प्रगति पथ प्रशस्त करते हैं। प्रधानमन्त्री पद की अत्यधिक व्यस्तता और समय की कमी रहने पर भी पं. जवाहर लाल नेहरू रात को बारह से दो बजे तक उपयोगी पुस्तकें पढ़ते थे। इसके लिए उन्हें अपनी नींद के घण्टों में कटौती करनी पड़ती थी। संसार भर के समझदार, राजनेता, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, व्यवसायी, चिकित्सक, सेनापति आदि अपनी ज्ञान वृद्धि के लिए आजीवन नियमित पढ़ने की प्रक्रिया जारी रखते हैं। उसे जीवन के सर्वोत्तम कार्यों में से एक अति महत्त्व का काम मानते हैं। सम्पन्न लोग निजी खरीद करके घरेलू पुस्तकें भी मँगा सकते हैं, किन्तु जिनकी भूख अधिक और साधन कम हैं, उन्हें पुस्तकालयों का ही आश्रय लेना पड़ता है। जिन विचारशीलों ने पुस्तकालय स्थापना का काम हाथ में लिया है, उन्होंने विश्वास किया है कि अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर के काम में हाथ डाला जा रहा है। किसी सामान्य जन को मन्दिर बनाने में जो भाव तुष्टि होती है, विचारशील उसकी तुलना में अनेक गुना उत्साह और संतोष पुस्तकालय निर्माण में करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने देश में आर्थिक पिछड़ापन जितना है, उसकी तुलना में बौद्धिक सम्पदा की कमी और भी अधिक है। गरीबी से जितना कष्ट होता है, उसे सभी जानते हैं, किन्तु कोई विरले हीं समझ पाते हैं कि बौद्धिक पिछड़ेपन के कारण जीवन अन्धकूप में ही पड़ा रहता है और उसे प्रगतिशील समाज का सदस्य बनने तथा व्यक्तित्व को प्रतिभावान बनाने का सुयोग कभी मिलता ही नहीं। गरीबी उतनी बड़ी लानत नहीं है, जितनी कि विचारशीलता के क्षेत्र में मनुष्य का कूप-मण्डूक बना रहना।

अपने देश में—प्रतिगामिता जीवन के हर क्षेत्र में छाई हुई है। मानवोचित विचारशीलता की सर्वत्र भारी कमी दिखाई पड़ती है और विरले ही जानते हैं कि समय ने अगणित समस्याएँ क्यों कर उत्पन्न की हैं। उन्होंने कितनी क्षति पहुँचाई है और यदि उनसे पीछा छुड़ाना है, तो क्या सोचना और क्या करना चाहिए ?

विचार क्रान्ति अभियान आज की महती आवश्यकता है। जनमानस में दूरदर्शिता और प्रगतिशीलता भरने के लिए ज्ञान यज्ञ की जितनी उपयोगिता है, उतनी और किसी की नहीं। देश का दुर्भाग्य है कि इतने लेखक और प्रकाशकों के दिन-रात कार्यरत रहते हुए भी लोकरंजन का कूड़ा-करकट ही छपता रहता है। लोक-निर्माण के लिए सभी आवश्यक विषयों पर प्रकाश डालने वाला साहित्य चिराग हाथ में लेकर जहाँ-तहाँ ही उसकी हल्की-फुल्की झाँकी होती है। इस दिशा में युग निर्माण योजना के अन्तर्गत सभी सामयिक विषयों पर योजनाबद्ध प्रकाशन किया गया है। साधन स्वल्प होने के कारण कम मूल्य की पुस्तकें और विशेषतया फोल्डर सीरीज लिखी-छापी गई हैं। फिर भी आशा की जा सकती है कि व्यक्ति और समाज के समाने खड़ी हुई उलझनों में से अधिकांश का प्रगतिशील समाधान इस साहित्य में—बड़े रूप में न सही—सार-संक्षेप रूप में सरलतापूर्वक पाया जा सकेगा।

ढूँढ़ने पर भी अन्यत्र भी ऐसी पुस्तकें मिल सकती हैं, जो बच्चों की, महिलाओं की, परिवारों की, वयोवृद्धों की अगणित उलझनों का हल प्रस्तुत कर सकें। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, शिक्षा सम्बन्धी, आजीविका सम्बन्धी, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक प्रश्न भी इन दिनों कितने ही ऐसे हैं, जो सही मार्गदर्शन के अभाव में दिन-दिन उलझते ही चले जा रहे हैं और मनुष्यों को निजी तथा सामाजिक जीवन में बुरी तरह हैरान कर रहे हैं। दूरदर्शी विवेकवान ऐसे विचारक हर जगह उपलब्ध नहीं हैं, जिनके पास जाकर प्रस्तुत कठिनाइयों में से उबरा जा सके। फिर जहाँ हैं भी वहाँ उन्हें इतना समय नहीं कि जनसमुदाय की उलझनों को सुनें-समझें और उनकी परिस्थिति के अनुरूप समाधान का स्वरूप बताने-समझाने में उत्साह दिखावें। ऐसी दशा में उपयोगी साहित्य ही दल-दल में फँसे हुए को बाँह पकड़कर उबारने में समर्थ हो सकता है। पुस्तकालय की स्थापना विज्ञजनों को सदा-सर्वदा अपने समीप रखने और जब भी, जिस भी प्रसंग पर कुछ पूछना हो, उसे बताने के लिए तत्पर रहें और कितनी देर तक, बिना दिन-रात का ख्याल किए अपना परामर्श अनेक तर्क, प्रमाणों समेत प्रस्तुत करते रहें। यह इतना बड़ा परमार्थ है कि अन्य किसी तथाकथित धर्म कृत्य से उसकी तुलना नहीं हो सकती।

यदि किसी गाँव-नगर में उपरोक्त योजना के साथ-साथ जन-जन से सम्पर्क साधने और पढ़ाने, वापस लेने की व्यवस्था वाला साधन सम्पन्न पुस्तकालय चलाया जा सके, तो वहाँ के समस्त शिक्षित वर्ग को युग चेतना से अवगत-अनुप्राणित होने का सुअवसर मिल सकता है। जो बिना पढ़े हैं, उन्हें सुनने-सुनाने की प्रक्रिया चलाकर वह लाभ उपलब्ध कराया जाय। घरों में यह प्रचलन होना चाहिए कि रात्रि के भोजन के उपरान्त और सोने के बीच का जो समय खाली बचता है, उसे पढ़े लोग अपने घर के बिना पढ़े लोगों को युग साहित्य सुनाया करें। साथ ही इस प्रसंग पर भी विचार-विनिमय किया करें कि वैसी कोई उलझन अपने परिवार में किसी सदस्य के सामने तो नहीं है। यदि है तो युग साहित्य में बताए हुए मार्गदर्शन के आधार पर उस कठिनाई का निराकरण कर सुधार परिवर्तन करने में हो सकता है। इस प्रकार सायंकाल पठन-श्रवण नियमित बना लेने से शिक्षितों की तरह अशिक्षितों को भी प्राणवान सत्संग का लाभ मिलता रह सकता है।

कभी किसी सभा-सम्मेलन में किसी सामूहिक समस्या का समाधान बताना हो तो युगसाहित्य में से तद्विषयक परामर्श ढूँढ़कर वक्ता की तरह लाउडस्पीकर पर सुनाया जा सकता है। यह ऐसी अच्छी प्रक्रिया है, जिसके आधार पर समय-समय पर आवश्यक विषय पर विद्वान, वक्ता का परामर्श सुनने का उपस्थित जनता को सहज सुयोग मिल सकता है। प्रस्तावित प्रज्ञा पुस्तकालय इतने प्राणवान और उपयोगी होंगे कि उसे देखते हुए स्थापना के लिए किया गया श्रम और खर्चे हुए धन का एक-एक कण सार्थक हुआ अनुभव होगा। हर व्यक्ति को एक-एक करके किसी प्रसंग पर उसकी विकृतियों का सुधार तथा जो नये सिरे से करना है, उसका स्वरूप समझना कठिन है, किन्तु पुस्तकालय की स्थापना—उसमें मात्र आदर्शवादी साहित्य रखना—साहित्य को स्थानीय शिक्षितों तक पहुँचाना, वापस लाना ऐसा उपक्रम है जिससे नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक क्रान्ति के तीनों ही उद्देश्य पूरे हो सकते हैं। संव्याप्त कूड़े-करकट को—धुंध और अंधड़ को—निरस्त करने के लिए प्रज्ञा पुस्तकालयों की योजना अद्वितीय है। इसे अपनाने और कर गुजरने का साहस प्रत्येक विचारशील को जुटाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ज्ञान-सम्पदा कमाने में उपेक्षा न बरतें

शिक्षा के अभाव में मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से अन्धा होता है। उसकी जानकारी उतनी ही रहेगी, जितनी कि सम्पर्क क्षेत्र से हस्तगत हुई है। सम्पर्क क्षेत्र हर किसी का बहुत छोटा होता है। उसके प्रचलन भी क्षेत्रीय होते हैं, जबकि दुनिया बहुत बड़ी है। व्यापक जानकारियों के सहारे बुद्धि को यह सोच सकने का अवसर मिलता है कि क्या सोचना, करना और बनना उचित है ? कूपमण्डूक और ट्यूलर के भुनगे की दुनिया बहुत छोटी होती है। वे सोचते हैं, यह संसार इतना ही बड़ा है, जितना कि सामने प्रस्तुत है। ज्ञान-सम्पदा जिनके पास जितनी है, उन्हें मनुष्यों में उतना ही वरिष्ठ समझा जाता है। जिन्हें सीमित दायरे को ही सब कुछ मानने के लिए विवश करने वाली मनःस्थिति मिली है, पिछड़ापन उन्हीं पर सवार रहता है। ऐसों को ही हठवादी, सनकी देखा जाता है। बुद्धि-विस्तार का अवरुद्ध होना एक प्रकार से कारागार में बन्द रहना है। इस अभिशाप से छूटने के लिए शिक्षा का आश्रय लेना पड़ता है। इसी के सहारे भूतकाल की घटनाएँ, वर्तमान की परिस्थितियों एवं भावी सम्भावनाओं की जानकारी मिलती है। इसी आधार पर मनुष्य प्रगतिशीलता अपनाने में समर्थ होता है। अशिक्षित को अन्धा कहा जाता है। यह दृश्य रूप में गलत होने पर भी, तथ्यतः सही है।

व्यसनों में विद्या व्यसन ही सराहनीय एवं श्रेयस्कर है। उसके प्रति अभिरुचि आजीवन बनी रहनी चाहिए। इस संचय से कभी तृप्ति नहीं होना चाहिए। उसे बुरे किस्म की दरिद्रता ही माना जाय और हटाने के लिए गरीबी मिटाओ जैसा उत्साह उत्पन्न करना चाहिए। इसके लिए अपने देश की स्थिति देखते हुए प्रौढ़ शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। बच्चों को तो स्कूलों में जगह भी मिलती है और अभिभावकों से प्रेरणा सुविधा भी, पर जो बड़े हो चुके, अनेक उत्तरदायित्वों को वहन करते और व्यस्त रहते हैं, उनके लिए स्कूली शिक्षा के द्वार एक प्रकार से बन्द ही समझे जाने चाहिए। उनके लिए प्रौढ़ पाठशालाओं की व्यवस्था बननी चाहिए। आमतौर पर महिलाओं को तीसरे प्रहर और पुरुषों को रात्रि के समय थोड़ा अवकाश रहता है। उसी अवसर पर उन्हें पढ़ने और पढ़ाने का प्रबन्ध उत्साहपूर्वक किया जाना चाहिए।

निरक्षरता के अभिशाप से मुक्ति पाने का एकमात्र यही उपाय है। सरकार से बालकों की शिक्षा व्यवस्था भी ठीक तरह बन नहीं पा रही है। ऐसी दशा में वह ७० प्रतिशत जनता की अशिक्षा दूर करने का प्रबन्ध कर सकेगी—यह सोचना व्यर्थ है। यह कार्य सार्वजनिक सेवा-साधना के क्षेत्र को ही अपने कन्धों पर उठाना चाहिए और तत्परतापूर्वक पूर्ण करना चाहिए, प्रौढ़ पाठशालाओं का संस्थापन और संचालन देव मन्दिरों की स्थापना की तुलना में किसी भी प्रकार कम महत्त्व का कार्य नहीं है।

शिक्षा प्रसार का कार्य प्रौढ़ शिक्षा एवं स्कूली-व्यवस्था के माध्यम से हो सकता है, यह प्रथम चरण है। द्वितीय चरण साक्षरों के लिए पुस्तकालयों के रूप में होना चाहिए, अन्यथा शिक्षा का उपयोग मात्र चिट्ठा-पत्री का, हिसाब-किताब लिखने तक ही सीमित रहेगा और उतने भर से सद्ज्ञान सम्वर्द्धन का प्रयोजन पूरा न हो सकेगा। इस निमित्त उपयोगी साहित्य के अधिकाधिक अध्ययन का उपक्रम बनना चाहिए। स्पष्ट है कि अपने देशवासियों की न तो आर्थिक स्थिति इस योग्य है और न अभिरुचि ही इतनी विकसित हुई है कि व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित अनेकानेक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत कर सकें, उपयोगी जानकारियों का दायरा बढ़ा सकें। ऐसी दशा में उस आवश्यकता की पूर्ति सार्वजनिक पुस्तकालयों के सहारे ही सम्भव हो सकती है।

कूड़े-कचरे से भरे पुस्तकालय ही जहाँ-तहाँ दिख पड़ते हैं। हमें न केवल प्रौढ़ पाठशालाओं का प्रचलन करना चाहिए वरन् ऐसे पुस्तकालय भी स्थापित करने चाहिए, जिनमें उपयोगी जानकारियाँ तथा उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ निरन्तर उपलब्ध होती रहें। सार्वजनिक स्थापनाओं में पाठशालाओं, पुस्तकालयों तथा व्यायामशालाओं को अत्यधिक महत्त्व मिलना चाहिए। इन प्रयत्नों में विज्ञजनों को अग्रिम भूमिका निभाने का नेतृत्व करना चाहिए और जन-जन को इन सत्प्रवृत्तियों में पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिए।

साक्षरता-सम्वर्द्धन और सामान्य ज्ञान का अर्जन, प्रौढ़-पाठशालाओं और पुस्तकालयों के माध्यम से हो सकता है। इसके बाद भी एक अतिरिक्त आवश्यकता भी अपने स्थान पर यथावत बनी रहती है कि विशेष अभिरुचि आवश्यकता पूर्ति के लिए अभीष्ट ज्ञान-सम्पादन किस प्रकार हो ? इसके लिए विशिष्ट स्तर के पाठ्यक्रम चलाने वाले विशिष्ट विद्यालयों की व्यवस्था होनी चाहिए। कितने लोग हैं, जो अपनी रुचि, प्रगति अथवा आजीविका से सम्बन्धित विषयों की अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, पर इसके लिए न तो स्कूलों-कॉलेजों में काम छोड़कर भर्ती होने जैसी उनकी परिस्थिति है और न सुविधा के समय कुछ पढ़ सकने, सीख सकने की कहीं कोई सुविधा। ऐसी दशा में अधिक योग्यता एवं दक्षता बढ़ाने का द्वार एक प्रकार से बन्द जैसा ही रहता है। इच्छुक की उत्कण्ठा कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो, किन्तु विवशता के कारण मन-मसोसकर ही रहना पड़ता है।

होना यह चाहिए कि विषयों के विशेष विद्यालय चलें। उनके खुलने का समय ऐसा हो, जिसमें कार्यरत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा एवं विद्या २.५५

व्यक्ति थोड़ा-बहुत अवकाश पाते हों। समृद्ध वर्गों में प्रायः शनिवार-रविवार की छुट्टियाँ रहती हैं। कहीं शनिवार को आधी छुट्टी रहती है। इस प्रकार डेढ़ या दो दिन हर सप्ताह अवकाश के मिलते हैं। सप्ताह में एक दिन की छुट्टी तो सर्वत्र होती है। इन दिनों ऐसी कक्षाएँ लग सकती हैं, जिसमें अपनी रुचि का विषय पढ़ने की, प्रवीणता बढ़ाने की सुविधा मिल सके।

अपने देश में कृषि, पशुपालन एवं वस्त्र निर्माण जैसे प्रमुख उद्योगों में अधिकांश जनसमुदाय संलग्न है, किन्तु कामचलाऊ जानकारी या कुशलता के सहारे ही उनका ढर्रा ज्यों-त्यों करके घूमता रहता है। इन विषयों में यदि प्रवीणता बढ़ सके, तो वे लोग अपना काम अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं, अभिनव निर्धारणों से अवगत हो सकते और अधिक लाभ उठा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भी अनेक विषय हैं। आजीविका से सम्बन्ध रखने वाले शिल्प उद्योग अनेकों हैं। कलाप्रेमियों को अपने विषय में अधिक सुयोग्य बनने के लिए बहुत कुछ जानने-सीखने की आवश्यकता रहती है। स्वास्थ्य रक्षा, मानसिक सन्तुलन, परिवार निर्माण जैसी दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का विस्तृत अध्ययन होने पर ही अपने कार्यक्षेत्र में अधिक सफल-समर्थ बना जा सकता है। महिलाओं को धात्री कला, शिशु-पोषण, पाक विज्ञान, गृह-व्यवस्था, लोकव्यवहार जैसे विषयों का वर्तमान ज्ञान बहुत ही सीमित मात्रा में होता है। कई बार तो उन जानकारियों में भ्रान्तियाँ तथा विकृतियाँ इतनी भरी होती हैं कि उस स्थिति को अनाड़ी रहने से अधिक हानिकारक कहा जा सकता है। इन विषयों में पारंगत-प्रवीणता दिला सकने वाली सामयिक पाठशालाओं की जितनी अधिक व्यवस्था बन सके, उतना ही उत्तम है।

शिल्पी, कलाकार, समाजसेवी, व्यवसायी इन दिनों आधे-अधूरे समझ से, पिछले ज्ञान से ही अपना काम चलाते हैं, जबकि समय तेजी से आगे बढ़ रहा है और हर क्षेत्र में नई जानकारियों, नई उपलब्धियों का भण्डार बढ़ता और भरता ही चला जा रहा है। समय के साथ चलने वाले नफे में रहते हैं और पिछड़ जाने वाले प्रतिस्पर्धा में पीछे रहते हैं और घाटा उठाते हैं। समाज व्यवस्था, तत्त्व-दर्शन एवं राजनीति की उथल-पुथल हर व्यक्ति को प्रकारान्तर से प्रभावित करती है। उन प्रसंगों से हमें अनजान नहीं रखना चाहिए। इन सामान्य विषयों के अतिरिक्त भी अनेक ऐसे विषय हैं, जिनकी विभिन्न परिस्थितियों के व्यक्ति असाधारण आवश्यकता अनुभव करते हैं और चाहते हैं कि साथियों की तुलना में अधिक प्रवीण-पारंगत बनकर प्रगति के पथ पर तेजी से आगे बढ़ें।

विदेशों में इस प्रकार के सामयिक एवं प्रासंगिक विद्यालयों का बाहुल्य रहता है। जनस्तर पर वे खुलते हैं और फीस देकर सुविधा के साथ लोग उनमें पढ़ते हैं। स्कूली शिक्षा में जितने छात्र प्रवेश पाते हैं, उनकी तुलना में इन सामयिक पाठशालाओं के छात्र कम नहीं, वरन् अधिक ही रहते हैं। इस प्रकार शिक्षा-सम्वर्द्धन में सरकारी प्रयत्न पर निर्भर रहकर लोग अपने पैरों खड़े होते हैं और अपनी आवश्यकता को अपनी व्यवस्था के सहारे पूर्ण करते हैं। अपने देश में हर नगर में ऐसी सुविधा बनाने के लिए विज्ञजनों को आगे आना चाहिए और ज्ञान-सम्वर्द्धन क्षेत्र की एक अनसुलझी समस्या को सुलझाने में दत्तचित होना चाहिए।

यह शिक्षा क्षेत्र की सार्वजनिक आवश्यकता का विहंगावलोकन हुआ। अब व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षेत्र की शिक्षा व्यवस्था पर भी दृष्टिपात किया जाना चाहिए। घर में एक परम्परा पड़े कि अधिक पढ़े अपने से कम पढ़ों को पढ़ाने की जिम्मेदारी उठाएँ और उसे पूरा करें। निर्धन बच्चे ट्यूशन पढ़ाकर अपना खर्च निकालते हैं साथ ही स्वयं भी अध्ययनरत रहकर अच्छे नम्बरों से पास होते हैं। यह परम्परा हमारे हर घर-परिवार में चलनी चाहिए। अधिक शिक्षितों को अपने से कम पढ़ों को पढ़ाने और अपने स्तर तक बढ़ा ले चलने की रुचि होनी चाहिए। इसमें अपने काम में हर्ज होने जैसी बात नहीं सोचनी चाहिए। अध्यापन भी एक कला है, विद्यादान भी एक गौरव है। उस उपार्जन के लिए हर दूरदर्शी, भावनाशील को अपना समय नियोजित रखना चाहिए। परिवारों में शिक्षा-सम्वर्द्धन की प्रक्रिया इसी आधार पर अग्रगामी रह सकती है। रात्रि को कहानियाँ सुनाने, प्रज्ञा-पुराण जैसी कथाएँ कहने का मनोरंजक किन्तु प्रेरणाप्रद प्रशिक्षण जारी रहना चाहिए।

जिन सुशिक्षितों के पास थोड़ा अवकाश निकल सकता है, वे अपने क्षेत्र में उपरोक्त शिक्षा प्रसार प्रयोजनों में उसे शिक्षा ऋण चुकाने के निमित्त लगाने की उदारता दिखाएँ। यह कार्य दुःख-दारिद्रय मिटाने के लिए दिखाई गई उदारता से कम महत्त्व का नहीं है, सुविधा-सम्वर्द्धन की भी आवश्यकता है, पर विचारणा को विकसित करने में समर्थ ज्ञान-सम्पदा की उपयोगिता उससे किसी भी प्रकार कम नहीं है। व्यक्ति और समाज को समुन्नत बनाने के लिए जिन कार्यों को हाथ में लिया जाना चाहिए, उनमें प्रमुखता देने योग्य शिक्षा-सम्वर्द्धन है। इसके बिना न व्यक्तित्व निखरता है, न प्रगति का पथ प्रशस्त होता है। यों विद्या का दुरुपयोग भी हो सकता है, किन्तु संसार में जो कुछ महानता सम्पन्न हुआ है, उसमें शिक्षा की भूमिका निश्चित रूप से सम्मिलित रही है। अपने समय के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा निमित्त कारण, शिक्षा के अभाव को तत्परतापूर्वक दूर करना चाहिए। इस सन्दर्भ में हर विद्या प्रेमी का कुछ न कुछ योगदान रहना ही चाहिए।

अपने बच्चों को पढ़ाते समय एक बात नोट करनी चाहिए कि नौकरी के लिए पढ़ाई के दिन अब बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीछे रहे गए। यदि शिक्षा का विस्तार बढ़ता गया और हर किसी ने नौकरी के लिए हाथ फैलाया, तो वह असम्भव माँग किसी भी प्रकार पूरी न हो सकेगी। इतने नौकरी चाहने वालों को आखिर नौकर रखेगा कौन ? समय रहते हमें सोचना चाहिए कि स्वास्थ्य की तरह ही शिक्षा है, उसमें व्यक्तित्व, कौशल निखरता है। उसमें आजीविका, उपार्जन में परोक्ष रूप से सहायता मिलती है। पर यह सम्भव नहीं कि हर शिक्षित को नौकरी मिल ही जाय, फिर नौकरी में स्वाभिमान घटता है और भविष्य की सुखद सम्भावनाओं पर अंकुश लगता है। स्वतन्त्र विकास की बात सोचनी चाहिए और कृषि, उद्योग, शिल्प, व्यवसाय जैसे आधार अपनाकर आजीविका अर्जित करने की बात सोचनी चाहिए। कुटीर उद्योगों की अपने देश में काफी गुंजाइश है। निर्वाह का काम आने वाली सामग्री का उत्पादन सहकारी प्रयासों से अपने-अपने क्षेत्र में ही करना चाहिए। लोगों को इसके लिए तैयार किया जाय कि कुटीर उद्योगों की वस्तुओं का ही उपयोग करें। वे अपेक्षाकृत भौंडी या महँगी ही क्यों न लगें। विदेशी या बड़े कारखानों के उत्पादन तभी काम में लाने चाहिए, जब वे हाथ, मजदूरों द्वारा छोटे कारखानों में बनती ही न हों।

अच्छा होता, सरकार ऐसे कुटीर उद्योगों के साथ चलने वाली बड़े कारखानों की प्रतियोगिता रोकती और उत्पादन के कुछ क्षेत्र मात्र उन्हीं के लिए सुरक्षित कर देती। इससे बढ़ती जाने वाली बेकारी पर रोकथाम होती है और हर हाथ को काम मिलने की व्यवस्था बनती। जब तक वैसा नहीं बन पड़ता, तब तक भी निराश बैठने की अपेक्षा जन-सहयोग से कुटीर उद्योगों को जीवित रखने वाला वातावरण बनाना चाहिए। शिक्षितों को नौकरी की बात सोचने की अपेक्षा अन्यान्य उद्योगों के सहारे अपने निर्वाह की बात सोचनी चाहिए। असम्भव की आशा साधना और उसकी पूर्ति न होने पर खीजते फिरना अनुचित है। शिक्षा माध्यमिक स्तर की प्राप्त की जाय या कॉलेज स्तर की, यह अपनी रुचि और परिस्थिति के ऊपर निर्भर है, पर एक बात हर हालत में नोट रखनी चाहिए कि सरकारी नौकरी प्राप्त करने की दृष्टि से पढ़ाई में पूँजी लगाना निश्चित रूप से घाटे के व्यवसाय में हाथ डालना है।

औसत शिक्षित का पाठ्यक्रम उस जानकारी से भरा-पूरा होना चाहिए, जो सामान्य जीवन एवं लोक-व्यवहार में काम आती है। अनावश्यक विषयों का छात्रों के मस्तिष्क पर बोझ लादना और कुछ रट-रटाकर पास होने का वर्तमान प्रचलन अनुचित है। अच्छा हो इस जंजाल से निकलकर ऐसी शिक्षा-पद्धति बने, जो सामान्य जीवन के पग-पग पर काम आए। ऐसी शिक्षा-पद्धति गैर-सरकारी रूप में विकसित की जा सकती है। जब भोजन, वस्त्र आदि बिना सरकारी सहायता के जनस्तर पर प्राप्त करने की व्यवस्था है, तो अपने उपयोग की शिक्षा का प्रबन्धन जनस्तर पर क्यों नहीं हो सकता। हर बात के लिए सरकार का ही मुँह क्यों ताका जाय ? विशेषतया जब नौकरी पर से ध्यान हटा लिया जाय, तब तो ऐसी व्यवस्था बनने में कोई कठिनाई नहीं ही होनी चाहिए।

गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले पाठशाला, मल्लशाला चल पड़ें

प्रज्ञा संस्थानों को नवनिर्माण के निमित्त अनेकानेक गतिविधियों को कार्यान्वित करना है। आरम्भ में जनजागरण के लिए जनसम्पर्क की पंचसूत्री योजना का अनिवार्य एवं प्रमुख उत्तरदायित्व सँभालने के लिए कहा गया है ताकि जनसमर्थन और जनसहयोग का लाभ हाथों-हाथ मिल सके। इस पुरुषार्थ के लिए क्षमता चाहिए। नवसृजन में जनशक्ति ही प्रधान है। उसी का उपार्जन करने के लिए पंचसूत्री योजना में विचार-परिष्कार की सेवा-साधना को प्रत्यक्ष, सक्रिय बनाने के लिए यह निर्धारण किया गया है कि युग चेतना का आलोक सर्वत्र पहुँचाने के लिए घर-घर अलख जगाया जाय और जन-जन से सम्पर्क साधा जाय।

जहाँ उस चरण को पूरा कर लिया गया, वहाँ दूसरा कदम अन्य रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए उठाना चाहिए। अगले प्रयासों में दो प्रमुख हैं। शिक्षा विस्तार और स्वास्थ्य सम्वर्द्धन। स्वास्थ्य से शरीर और शिक्षा से मन की प्रखरता निखरती है। यदि यह दोनों क्षेत्र गई-गुजरी स्थिति में बने रहें तो व्यक्ति दीन-दुर्बल बना रहेगा। उस पर पिछड़ापन ही लदा रहेगा। अशिक्षा और दुर्बलता से छुटकारा पाने के बाद ही सम्पन्नता के स्वप्न देखे जा सकते हैं। हमें क्रमिक प्रगति की व्यावहारिकता अपनानी चाहिए।

अपने देश की जनसंख्या में ७० प्रतिशत अशिक्षित हैं। शिक्षित बनाने की पूरी जिम्मेदारी सरकार पर नहीं छोड़ी जा सकती। उसके लिए बच्चों को पढ़ाना ही कठिन पड़ता है। तब शेष ५० प्रतिशत प्रौढ़ निरक्षरों को शिक्षित बनाने के लिए विशालकाय तन्त्र खड़ा करना और उतना बड़ा व्यय भार उठाना, उसके लिए असम्भव है। सम्भव होगा तो नये टैक्सों से दरिद्र जनता की रही बची कमर भी टूट जाएगी। यही संव्याप्त दुर्बलता और रुग्णता के सम्बन्ध में भी है। इस अभिशाप से तो ९० प्रतिशत लोग ग्रसित हैं। उनको पौष्टिक भोजन देने, व्यायाम-व्यवस्था बनाने तथा अस्पताल खोलने की बात इतनी बड़ी है कि उसे सम्पन्न करने के लिए सरकार को समूचा बजट इसी एक काम के लिए नियोजित करना होगा, फिर भी यह आशा नहीं कि आन्तरिक सहयोग के बिना और बाहरी सहायता कुछ कारगर हो भी सकेगी या नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थ गुरु रामदास ने अपने प्रभाव क्षेत्र के हर गाँव में महावीर मन्दिर बनाए थे। हनुमान की तरह वलिष्ठ और साहसी बनने का लक्ष्य जन-जन के मन में निश्चित कराया था। इस हेतु हर महावीर मन्दिर के साथ एक व्यायामशाला भी अविच्छिन्न रखी थी। बच्चों के लिए शिक्षण और वयस्कों के लिए सत्संग की व्यवस्था की थी। महामना मालवीय ने अपने स्वरचित एक श्लोक में भी जन जाग्रति के केन्द्रों की रूपरेखा बनाई थी। उसमें—''**ग्रामे-ग्रामे—पाठशाला, मल्लशाला, प्रतिपर्व महोत्सवः**'' पाठशाला, व्यायामशाला और पर्व-त्यौहारों के आयोजन इन तीन को प्रमुखता दी थी।

समर्थ रामदास और महामना मालवीय का अनुकरण करते हुए प्रज्ञा संस्थानों की स्थापना हुई तथा योजना बनी है। तदनुसार उन सभी कार्यक्रमों को क्रियापद्धति में सम्मिलित रखा गया है। पंचसूत्री योजना के अनुसार जन सम्पर्क सधते ही—जनसमर्थन और जनसहयोग हस्तगत होते ही उन महत्त्वपूर्ण कामों में हाथ डालना चाहिए, जिन पर लोकमानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के उभयपक्षीय प्रयोजन सिद्ध हो सकें।

प्रौढ़ शिक्षा का, साक्षरता प्रसार का, शिक्षितों को अधिक शिक्षित बनाने का, कार्यक्रम ऐसी पाठशालाओं की स्थापना चाहता है, जो कार्यरतों के अवकाश समय में उन्हें पढ़ाने की सुविधा प्रदान कर सके। निश्चित है कि इसके लिए अन्यमनस्कता हटाकर शिक्षा के लिए उत्साह उत्पन्न करना ही बहुत बड़ा मोर्चा है। वर्तमान परिस्थितियों में यह आशा नहीं की जा सकती कि शिक्षार्थी फीस देकर पढ़ेंगे और अध्यापक वेतन पर रखे जायेंगे तथा पाठशालाओं की निजी इमारतें बनेंगी या किराये पर ली जाएँगी, यह समूचा ढाँचा निःशुल्क ही खड़ा करना होगा, अध्यापकों से दो घण्टे समय माँगा जाएगा। जो ऐसी मनोभूमि एवं परिस्थिति में हैं उतने समय के लिए स्थान भी माँगे ही जाएँगे। धर्मशाला, देवालय, वृक्ष तले जहाँ भी जैसी सुविधा हो यह पाठशालाएँ चलेंगी। जन-जन से सम्पर्क साधकर बाल-वृद्ध, नर-नारी इसके लिए प्रोत्साहित किए जाएँगे, जिससे कि वे पढ़ने का महत्त्व समझें। निरक्षर से साक्षर बनें और साक्षर आगे की पढ़ाई जारी रखें। आवश्यक नहीं कि यह प्रशिक्षण सरकारी पाठ्यक्रम के अनुरूप ही हो। आज की परिस्थितियों में जो सोचना एवं करना है। उन सभी दैनिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं की जानकारी एवं प्रवीणता बढ़ाने वाली शिक्षण प्रक्रिया निर्धारित की जा सकती है। विदेशों में ऐसे सामयिक स्कूलों की भरमार रहती है, जिनमें व्यक्ति अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुरूप अपनी योग्यता की वृद्धि कर सकें। ऐसा ही तन्त्र प्रज्ञा संस्थानों को अपनी इमारतों में बिठाना पड़ेगा। लोगों की इच्छा, आवश्यकता तथा मिशन की योजना का सम्मिश्रण करते हुए एक आकर्षक एवं दूरदर्शितापूर्ण पाठ्य विधि का निर्धारण तनिक भी कठिन नहीं है। अगले दिनों वही करना भी है। फिर जहाँ सुविधा भी है, वहाँ आज से ही उसका शुभारम्भ क्यों न किया जाय ?

शिक्षा प्रसार के अतिरिक्त दूसरा कदम है—स्वास्थ्य सम्वर्द्धन। इसके लिए ऐसे स्वास्थ्य केन्द्र बनने चाहिए, जहाँ आहार-विहार सम्बन्धी वर्तमान कुप्रचलनों की हानियाँ तथा उनमें जो सुधार बिना किसी कठिनाई के सम्भव है, उसकी उपयोगी प्रक्रिया समझाई जानी चाहिए। उन केन्द्रों में व्यायामशाला का एक पक्ष निश्चित रूप से जुड़ा रहे। इस प्रयास में न केवल स्वास्थ्य रक्षा वरन् साहसिकता और कौशल की अभिवृद्धि भी सम्मिलित है। लाठी, तलवार और शस्त्रों के चलाने का अभ्यास करने से आत्मविश्वास एवं शौर्य-साहस और प्रवृत्तियाँ परिपक्व होती हैं। भले ही उन्हें चलाने की आवश्यकता कभी भी न पड़े।

कुछ ही दिनों पूर्व गाँव-गाँव अखाड़े थे। खेलकूदों का सभी को शौक था। दंगल और प्रतियोगिताएँ होती थीं। तब लोगों का स्वास्थ्य और मनोबल बढ़ा-चढ़ा रहता था। आज वह शौक सिमटता, उठता जा रहा है। टूर्नामेण्ट, एशियाड, ओलम्पिक आदि बड़े लोगों के शुगल भारी खर्चीले होते हुए भी चलते रहते हैं। पर जनजीवन से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। गाँव-गाँव खेलकूदों, व्यायामों, प्रतियोगिताओं के सहारे सर्वसाधारण की स्वास्थ्य रक्षा प्रवृत्तियों को बढ़ाया जा सकता है। इस दिशा में दूसरे लोग उपेक्षा बरतते हैं, बरतते रहें पर हमें तो प्रसुप्त और उपेक्षित सत्प्रवृत्तियों को नये सिरे से उभारना है। प्रज्ञा अभियान के व्यायाम आन्दोलन को न केवल शारीरिक श्रम अभ्यास के रूप में वरन् स्वास्थ्य रक्षा के सभी पक्षों को सम्मिलित रखते हुए आगे बढ़ाना है। शरीर संरचना की जानकारी, प्राथमिक चिकित्सा, परिचर्या, आहारविहार सम्बन्धी सभी आवश्यक जानकारियाँ, खेलकूद, आसन-प्राणायाम, शस्त्र-संचालन आदि सभी आवश्यक विषयों में सम्मिलित रखकर ही एक समग्र स्वास्थ्य आन्दोलन का स्वरूप बनता है। प्रज्ञा संस्थानों को अपने संरक्षण में इसी ढाँचे को खड़ा करना चाहिए। शिक्षा और स्वास्थ्य को समान महत्त्व देते हुए इन दोनों ही रचनात्मक कार्यक्रमों को अपने हाथ में लेना चाहिए। जहाँ भी छोटे-बड़े प्रज्ञा संस्थान बने हैं, वहाँ अनिवार्य रूप से और जहाँ वैसा कुछ नहीं बन सका है वहाँ प्रज्ञा परिजनों द्वारा, यह प्रक्रिया निजी रूप में कार्यान्वित की जानी चाहिए। कोई सार्वजनिक स्वरूप न बन पड़े, तो कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि हर घर-परिवार में उपरोक्त दोनों ही रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जाय। परिवार भी एक छोटा-सा समुदाय है। उस क्षेत्र में इन दोनों प्रयोगों के लिए गुंजाइश रहती है। नियमित अध्ययन न बन पड़े तो स्वाध्याय-सत्संग की कोई न कोई परिपाटी रात्रि के अवकाशकाल में चल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। अतः नित्य कर्म से निवृत्ति होने के समय ही पन्द्रह मिनट से लेकर आधे घण्टे तक का एक कार्यक्रम सरल व्यायाम के रूप में आसन-प्राणायाम का भी रखा जा सकता है। जिन्हें बाहर मैदान में सामूहिक रूप में कुछ करने की सुविधा नहीं है, उनके लिए आँगन या छत पर भी इस प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। अड़चन मात्र एक ही है कि जिस प्रक्रिया का पूर्व अभ्यास नहीं है, उसे नये सिरे से किस प्रकार आरम्भ किया जाय ? इसमें थोड़े-से साहस और उत्साह की आवश्यकता आरम्भ में तो पड़ेगी पर जहाँ एक सप्ताह यह ढर्रा चल पड़ा, समझना चाहिए कि वहाँ एक अत्यन्त उपयोगी परम्परा का प्रयत्न आरम्भ हो गया और उसके दूरगामी परिणाम निकट भविष्य में ही दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

उपरोक्त दोनों बड़े कामों को बड़े रूप में आरम्भ करने से पूर्व यह अधिक सरल एवं सुविधाजनक रहेगा कि छोटे रूप में उनका श्री गणेश किया जाय। उसमें अपेक्षाकृत सफलता भी अधिक रहेगी और सरलता की सम्भावना भी अधिक मात्रा में रहेगी।

शिक्षा और स्वास्थ्य सम्वर्द्धन की संयुक्त प्रक्रिया पाँचवीं कक्षा के बालकों से लेकर आठवीं कक्षा तक के बालकों से आरम्भ की जाय। उनके लिए ट्यूटोरियल कक्षाएँ चलाई जाएँ। सरकारी स्कूलों की पढ़ाई भर से आजकल काम नहीं चलता। ट्यूशन की मोटी राशि देकर मास्टरों को घर बुलाने की मनःस्थिति एवं परिस्थिति हर अभिभावक की नहीं होती। ऐसी दशा में बालकों को अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हो सकना कठिन पड़ता है—अपने मन से अकेले पढ़ते रहें, ऐसा उनका स्वभाव नहीं होता। फेल हो जाने या डिवीजन बिगड़ जाने पर उनका मनोबल टूट जाता है और कितने ही सदा के लिए पढ़ना छोड़ देते हैं। थर्ड डिवीजन पास होने पर भविष्य नहीं बनता। इन कठिनाइयों का समाधान यह है कि प्रज्ञा संस्थानों द्वारा बाल-संस्कार पाठशालाएँ- उनके स्कूली समय को छोड़कर चलाई जायँ। फीस कुछ भी न ली जाय। इस पाठशाला में अनेकों छात्र आग्रहपूर्वक सम्मिलित होंगे। आम पाठक भी खुशी-खुशी उन्हें भेजेंगे। इस दृष्टि से भी कि स्कूली समय से अवकाश मिलने पर दंगा मचाते, आवारागर्दी में घूमते और कुसंग में पड़कर भविष्य बिगाड़ते हैं। इस झंझट से बचने के लिए भी हित इसी में है कि बच्चे इन बाल-संस्कार के निमित्त बनाई गई प्रज्ञा पाठशालाओं में पढ़ने जाया करें। इसमें अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने और संस्कार प्राप्त करने का दुहरा लाभ है।

जिस प्रकार अन्य कामों के लिए विचारशील उदार-चेताओं से समय माँगा जाता है, उसी प्रकार पाठशालाओं में पढ़ने के लिए बिना मूल्य पुरुषार्थियों से समय देते रहने के लिए आग्रह किया जा सकता है, जिनका ऐसे कार्यों में उत्साह है। आवश्यक नहीं कि सेवा निवृत्त ही यह उत्साह दिखाएँ। व्यवसाय-नौकरी आदि में रहते हुए भी इस हेतु दे सकने वाले और पाठशाला के समय पर पढ़ाने के लिये पहुँचते रहने वाले लोग तलाश करने पर अवश्य ही मिल सकते हैं। एक बार समूचे गाँव के हर घर पें टोली बनाकर पहुँचा जाय और उपरोक्त कक्षाओं के बारे में बच्चों के अभिभावकों को उसके लाभों से अवगत कराया जाय तो पहले दिन के प्रयास में ही शिक्षार्थियों की भर्ती उत्साहवर्द्धक संख्या में हो सकती है।

स्थान की दृष्टि से प्रज्ञा संस्थानों का हाल-बरामदा या आँगन इस प्रयोजन के लिए सर्वोत्तम है। इससे उपयोगी सेवा-साधना में संलग्न होने से संस्थानों की गरिमा बढ़ती है और जन-जन की सहानुभूति अर्जित होती है। बच्चों से प्रयास आरम्भ करना इसलिए सरल है कि उसकी व्यवस्था बनाने में कहीं भी कठिनाई नहीं हो सकती। जबकि प्रौढ़ नर-नारियों को पढ़ना आरम्भ करने के लिए सहमत करना कठिन है। वे इसमें अपनी हेटी समझते हैं और संकोचवश आना-कानी करते हैं। बच्चों को समझाने पर उनमें से कितने ही समझ भी जाते हैं। पर वह कार्य हमें आगे कभी के लिए छोड़ देना चाहिए। श्रीगणेश बालकों की पाठशाला से करना चाहिए।

इस प्रयोजन के लिए ५-६-७-८ कक्षाओं के लिए एक प्रश्नोत्तरी बनाई जाएगी, जिसमें हर कक्षा के बच्चों के लिए दैनिक जीवन में आने वाले प्रसंगों में अध्यात्म दर्शन का समावेश करने वाले समाधान प्रस्तुत किए जाएँगे। यह चार प्रश्नोत्तरी ही उपरोक्त कक्षाओं की विशिष्ट पाठ्य पुस्तक होंगी। इसके अतिरिक्त सारा पाठ्यक्रम सरकारी रहेगा। जो स्कूलों में पढ़ाया जाना है, उसी को परिपक्व कराया जायेगा, ताकि ट्यूशन पढ़ाने की आवश्यकता न रहे। साथ ही परीक्षा में उत्तीर्ण होने की सम्भावना सुनिश्चित रहे।

व्यायाम आन्दोलन भी अगले दिनों किशोरों, युवकों एवं प्रौढ़ों को सम्मिलित करते हुए चलाया जाना है, पर अभी इतना हो सकता है कि उपरोक्त चार कक्षाओं के जो बालक प्रज्ञा संस्थान की पाठशाला में पढ़ने आया करें, उन्हीं को आधा घण्टे का खेलकूद, स्काउटिंग, ड्रिल, फर्स्ट एड परिचर्या, आसन-प्राणायाम आदि का भी कार्यक्रम जुड़ा रखा जाय। इस प्रयोजन के लिए यह प्रक्रिया एक सुगम व्यायाम के रूप में प्रचलित की जा रही है। उसमें शरीर के प्रायः सभी अंग-अवयवों का व्यायाम हो जाता है। साथ है श्वाँस-प्रश्वाँस क्रिया से सम्बन्धित प्रयासों का भी ऐसा प्रभाव रहता है, जो मनोबल एवं बुद्धि वैभव बढ़ाने में उपयुक्त योगदान दे सकें। यह आसन व्यायाम क्रम ऐसा है, जिसे न केवल पाठशाला में वरन् घर में बालकों, महिलाओं तथा वृद्धों को भी सिखाया, कराया जा सकता है। जो पाठशाला नहीं जा सकते, उनके लिए भी यह आधा घण्टे की व्यायाम कक्षाएँ ऐसी हैं, जो मुहल्ले-मुहल्ले सत्र व्यवस्था के अनुरूप लगाई जा सकती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा-साधना के सहारे व्यक्तित्व का उत्कर्ष

ज्ञान प्राप्ति का आंशिक प्रयोजन तो सुनने, पढ़ने-पढ़ाने से भी पूरा हो जाता है, पर वह चिरस्थाई नहीं होता। समय बीतते-बीतते विस्मृति में उतर जाता है। बड़े घरों की लड़कियाँ कॉलेज में होमसाइंस पढ़ते समय पाक कला भी जान लेती हैं। पर यदि उन्हें माँ के घर उसका अभ्यास न करना पड़े, तो सुसराल पहुँचकर वे रसोई में जाने पर अनाड़ी सिद्ध होती हैं। यही बात संगीत आदि कला-कौशल के सम्बन्ध में भी है। वे बहुत दिन छूटे रहने पर अभ्यास से उतर जाते हैं और उनका प्रयोग करना पड़े तो असाधारण कठिनाई अनुभव करते हैं। काम-धन्धों में फँस जाने पर स्कूली पढ़ाई विस्मृत हो जाती है। अखाड़ा जाना बन्द कर देने पर पहलवानों के दाँव-पेंच स्मृति से उतर जाते हैं। यही कारण है कि सैनिकों की लड़ाई की सम्भावना न हो तो भी परेड रखनी पड़ती है। मात्र युद्ध कला के समझ लेना पर्याप्त नहीं माना जाता, शिक्षा के क्षेत्र में भी यही बात है। जो लोग स्वाध्याय जारी रखते हैं, उनके मस्तिष्क में सद्ज्ञान के सिद्धान्त घूमते रहते हैं। जो उस ओर से मुँह मोड़ लेते हैं वे किसी समय के स्नातक होते हुए भी वर्तमान जीवन में उन सब विषयों से अनजान जैसे बन जाते हैं।

ज्ञान की परिपक्वता कर्म से होती है। इस सिद्धान्त को भली प्रकार समझ लिया जाना चाहिए और जो उपयोगी है, उसे जीवन व्यवहार में सुनिश्चित स्थान देना चाहिए।

सत् शिक्षा उसे कहते हैं, जिसमें निजी जीवन में पुण्य और सामाजिक जीवन में परमार्थ बढ़ाने की शिक्षा दी गई है। इसके लिए आलस्य-प्रमाद से लेकर कुटेवों और दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने का प्रबल प्रयत्न करना पड़ता है। इतना ही नहीं, इसके लिए भी प्रयत्नशील रहना पड़ता है कि जिस ज्ञान को तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण आदि के सहारे श्रेयस्कर मान लिया गया है, उसे क्रियान्वित करते रहने की भी व्यवस्था बनाई जाय। अन्यथा जो सीखा गया वह मानसिक भार मात्र बनकर रह जाएगा। सूक्ति है कि ज्ञान के अभाव में मनुष्य अन्धा रहता है और कर्म के अभाव में पंगा। बात तब बनती है जब आँखें खोलकर गन्तव्य की ओर देखा भी जाता रहे और पैरों से निर्धारित लक्ष्य की ओर चलते भी रहा जाय। दोनों का सुयोग-संयोग आवश्यक है। इसलिए शास्त्रकारों ने ज्ञान योग को पूरक भक्ति योग का बनाया है। इन दोनों का समुचित क्रम चलता रहे तो समयानुसार उपलब्ध उत्कृष्टता, भाव-संवेदना के रूप में विकसित होती है। उदारता, करुणा, सेवा साधना के रूप में विकसित होती है। यही भक्ति योग है। भक्ति की संवेदनाओं की निर्झरिणी निरन्तर बहती रहे, इसके लिए दान-पुण्य, सेवा सहायता के पूजा-अर्चा के कर्मकाण्ड भी करने पड़ते हैं ताकि विकसित हुई श्रद्धा को निरन्तर खाद, पानी मिलता रहे। पूजा-अर्चा छोड़ देने पर कुछ सिद्धान्त विश्वास भले ही मन में जमे रहें, पर भक्ति स्तर की उमंगें तो प्रायः शिथिल ही हो जाती हैं।

यह तथ्य संजीवन विद्या के नाम से जानी जाने वाली उस जीवन कला के सम्बन्ध में समझा जाना चाहिए, जो कि उत्कर्ष और विकास का केन्द्र-बिन्दु है। उसे पाठ्य-पुस्तकों के रूप में सुनना, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन के सहारे अध्यवसायरत रहना यह सभी आवश्यक है। इतने पर भी मानसिक क्षेत्र के क्रियाकलाप ही हैं, इन्हें अभ्यास में उतार लेने के लिए कर्मकाण्डों के रूप में भी इन्हें क्रियान्वित करने की योजना बननी और चरितार्थ होती रहनी चाहिए। इसके लिए नियमित रूप से समयदान और अंशदान अपने क्रम में कटौती करके निश्चित रूप से निकाला जाना चाहिए। उसका उपयोग भी साथ-साथ होते चलना चाहिए। कभी एक बार बहुत समय निकालकर बड़ा परमार्थ कर लिया, फिर मुद्दतों के लिए चुप हो गए तो फिर समझना चाहिए कि सत्प्रवृत्तियाँ चर्चा का विषय बनकर रह जाएँगी, उन्हें सुसंस्कार के रूप में परिपक्व होने का अवसर न मिलेगा।

निजी जीवन में उपासना, व्यायाम, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन के लिए कुछ सुनिश्चित समय रखना चाहिए। इस आधार पर यह मान्यता पकती है कि ऐसी परमसत्ता के साथ जुड़े हुए हैं, जिसका समझने योग्य स्वरूप आदर्शों का समुच्चय है। आदर्शों की जीवनचर्या में साधन रूप से समाविष्ट करने की प्रेरणा प्रायः इसी अभ्यास के सहारे विकसित होती है। मनोकामना पूर्ति के लिए ईश्वर के सामने दाँत निपोरते रहना एक विडम्बना हो सकती है। निष्फल भी और उपहासास्पद भी, किन्तु यदि आदर्शों को किसी केन्द्र-बिन्दु के साथ अपने आपको समर्पित भाव में जोड़ा जाय, तो ईश्वरीय सत्प्रवृत्तियाँ जीवन की पृष्ठभूमि पर प्रत्यक्ष रूप से उतरने लगती हैं। गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का, शालीनता का समुचित समावेश करती है। महानता, सज्जनता अपनाकर व्यक्ति सर्वतोमुखी प्रगति की ओर बढ़ता है। इस उपलब्धि को हस्तगत करने के लिए उपासनात्मक प्रक्रिया को यदि आदर्शवादिता अपनाने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया माना जाए, तो भी इस धर्म कृत्य की उपयोगिता निखरकर आती है।

परिवार की सुव्यवस्था का कार्य नौकरों या महिलाओं पर पूरी तरह नहीं छोड़ा जाना चाहिए। उसे जीवनोपयोगी सभी प्रशिक्षणों की प्रयोगशाला का, पाठशाला का रूप मिलना चाहिए। घर के सभी कामों को सब लोग एक साथ, एक जोश में, एक योजना के अन्तर्गत करें और उनके क्रम में व्यक्तियों की नियुक्ति फेर-बदलकर होती रहे, तो हर व्यक्ति अपनी-अपनी समझ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सामर्थ्य के अनुरूप न केवल रचनात्मक क्रियाकलाप में प्रवीण हो सकता है वरन् उसके साथ ही जीवन के कई उपयोगी दार्शनिक पक्ष भी हृदयंगम करता रह सकता है। हर कार्य के पीछे कुछ सिद्धान्त भी जुड़े होते हैं। सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणित करना होता है और कार्य के साथ जुड़ी हुई सिद्धान्त शृंखला का अवलोकन करना पड़ता है। यह शैली अपनाई जा सके तो अपने और दूसरों के कृत्य हमें इतना कुछ सिखा सकते हैं, जिससे अनुभव भरी शिक्षा की आवश्यकता पूरी हो सके।

परिवार निर्माण के कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं, जिन्हें घर के हर सदस्य को सिखाना, अभ्यास में उतारना आवश्यक होता है। ऐसे सद्गुणों में श्रमशीलता, मितव्ययिता, विनम्रता, सज्जनता, स्वच्छता, सुव्यवस्था, सहकारिता, दिनचर्या जैसी कितनी ही सत्प्रवृत्तियाँ हैं, जिहें पारिवारिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करते हुए न केवल क्रियान्वित किया जा सकता है, वरन् उनकी व्याख्या-विवेचना करते हुए यह भी अनुभव कराया जाय कि यह छोटी-छोटी बातें विकसित होकर समयानुसार मनुष्य को प्रतिभा, प्रखरता, प्रामाणिकता के क्षेत्र में अत्यन्त सुयोग्य सिद्ध कर सकती हैं। इतने भर से कोई व्यक्ति सफलता, प्रतिष्ठा के क्षेत्र में उच्च शिखर तक पहुँच सकता है। सेवा-साधना और प्रशिक्षण की दृष्टि से परिवार का छोटा क्षेत्र ऐसा है, जिसमें अनेकानेक उच्चस्तरीय सिद्धान्तों का बीजारोपण किया जा सकता है। परिजनों को शिक्षार्थी मानते हुए उन्हें सत्प्रवृत्ति से सम्बन्धित जीवन कला का हर पक्ष समझाया और अभ्यास करने में लगाया जा सकता है। इस प्रयोग में शिक्षक की अपनी योग्यता तो बढ़ती ही है, अध्यापक की शिक्षा सदा हरी-भरी बनी रहती है, दूसरों के लिए मेंहदी पीसने वाले के अपने हाथ भी रच जाते हैं।

व्यक्तिगत सुव्यवस्था और परिवार की संस्कार दीक्षा के अतिरिक्त अगला चरण समाज-सेवा का आता है। इसमें प्राथमिकता शिक्षा-सम्वर्द्धन को मिलनी चाहिए। प्रौढ़पाठशाला, बाल-संस्कारशाला, पुस्तकालय योजना, गृहशिल्प विद्यालय जैसी अनेकों उपयोगी विषयों से अवगत एवं अभ्यस्त करा सकती है। इन्हें कुछेक उत्साही सेवाभावी मिलकर किसी न किसी रूप में, कहीं भी कार्यान्वित कर सकते हैं। यह प्रयास गति पकड़ ले तो उनके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त सामूहिक सेवा-साधना के अनेकों रूप हैं। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इस सन्दर्भ में नये सिरे से सोचा और कार्य रूप में परिणित करने, कराने के लिए अग्रसर हुआ जा सकता है। कुछ साथी-सहयोगी अपनी मित्र-मण्डली में से ही जुटाए जा सकते हैं। कोई न मिले तो सार्वजनिक सेवा के कार्यक्षेत्र में एकाकी अपने बलबूते भी उतरा जा सकता है।

गाँव-मुहल्ले की व्यायामशालाएँ बन सकती हैं। उनमें मात्र खेलकूदों का, दण्ड बैठक का घिसापिटा उपक्रम ही न चलता रहे, वरन् शरीर-संरचना, आहार-विहार, स्वच्छता, स्वास्थ्य रक्षा, शिष्टाचार, सेवा-धर्म का रसास्वादन जैसी आवश्यक विधाओं को सिखाते, समझाते रहने का एक पाठ्यक्रम जुड़ा रहना चाहिए। स्काउटिंग व्यायामशालाओं का अनिवार्य विषय हो। इसी प्रकार फर्स्ट एड, होम नर्सिंग आदि की शिक्षा भी इन स्वास्थ्य-केन्द्रों में चलाई जाती रहे। आयु और क्षमता के अनुरूप हर किसी को इन व्यायामशालाओं से सीखने को मिले।

सामूहिक श्रमदान एक स्वतन्त्र आन्दोलन है। जिसे पाठशाला, व्यायामशाला की तरह ही उपयोगी माना जा सकता है। इसके हेतु स्थानीय उत्साहीजनों की एक मण्डली गठित की जाय, जो स्थानीय समस्याओं को समझाने, आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अवसर ढूँढ़ती रहे और उन्हें पूरा करने के लिए संकल्पयुक्त साहस जुटाती रहे। गन्दगी की समस्या हर जगह विकृत रूप में देखी जाती है। सफाई कर्मचारी उतने मिल नहीं पाते। जो मिलते हैं, वे पूरे मन से काम नहीं करते। इसलिए गन्दगी यथास्थान पड़ी रहती है और सड़कर बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। देहाती क्षेत्रों में तो गली-कूचे बुरी तरह सड़ते हैं। उससे प्रत्यक्षतः दुर्गन्ध, कुरुचि एवं परोक्ष रूप में बीमारियाँ पनपती हैं। श्रमदान मण्डलियाँ गाँव की सफाई का कार्य तो आसानी से हाथ में ले सकती हैं। पशुओं और मनुष्यों के मल-मूत्र को उपयोगी खाद के रूप में परिणित करने के निमित्त अपनी श्रम-सेवा को नियोजित कर सकती हैं। कुओं की, तालाबों की सफाई होते रहना भी आवश्यक है। इससे स्वास्थ्य-रक्षा की और अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति का सीधा सम्बन्ध है। गाँधी जी सेवा-कार्यों में सफाई अभियान को कलात्मक दृष्टिकोण का परिचायक मानते थे और अन्यान्यों को प्रेरणा देने वाला प्रत्यक्ष मार्गदर्शन भी।

दुष्प्रवृत्तियों की, दुर्जनों की रोकथाम करने के लिए, जागरूकता को सक्रिय रखने के लिए रात को पहरा देने की एक नई सेवा-साधना भी चलाई जा सकती है। इसमें संलग्न व्यक्ति अपने को न केवल सुरक्षा का वरन् समाज का, मर्यादाओं को यथास्थान बनाए रहने वाला प्रखर प्रहरी अनुभव करने लगता है। इस आधार पर वह सुधारात्मक बड़े काम भी करता है।

नशेबाजी और खर्चीली शादियाँ अपने देश की सबसे बड़ी बुराइयाँ हैं। जन्म-जाति के आधार पर माने जाने वाली ऊँच-नीच प्रक्रिया, नारी की उपेक्षा-अवहेलना जैसे प्रचलन भी इस योग्य हैं कि उन्हें वैयक्तिक परामर्श के साथ-साथ उखाड़ने वाले सुधार अभियान भी चलाए जाने चाहिए। शिक्षा की सार्थकता इतना करने पर ही पूरी हुई मानी जानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छात्र-निर्माण में शिक्षकों एवं अभिभावकों की महती भूमिका

गुरु की गरिमा, महत्ता एवं जिम्मेदारी

शिक्षा की महत्ता और गरिमा, उपयोगिता और आवश्यकता का वर्णन अनादि काल से लेकर अब तक के सभी मनीषियों ने पूरा जोर देते हुए किया है। यही कारण है कि 'विद्या से अमृत प्राप्त होने' जैसे सूत्रों का प्रचलन हुआ। सरस्वती पूजन प्रकारान्तर से विद्या की ही अभ्यर्थना है। गणेश पूजन भी इसी सन्दर्भ में किया जाता है। विद्वान सर्वत्र पूजे जाते हैं, जबकि शासन अधिकारी केवल अपने क्षेत्र में ही पूजे जाते हैं। धन-सम्पत्ति जिस-तिस प्रकार खर्च होती, चुराई जाती, नष्ट की जाती भी देखी जाती है, किन्तु ज्ञान-सम्पदा बाँटने पर अन्य पदार्थों की तरह घटती नहीं, बल्कि और अधिक बढ़ती ही रहती है। सुसंस्कारिता के रूप में यह जन्म-जन्मान्तरों तक साथ देती रहती है।

विद्यादान को सर्वोत्कृष्ट दान माना गया है। अन्न, वस्त्र, औषधि, धन आदि के अनुदान कष्ट-पीड़ितों-अभावग्रस्तों की सामयिक सहायता भरकर पाते हैं। उससे तत्काल राहत तो मिलती है, जो आवश्यक भी है; परन्तु चिरस्थाई समाधान इतने भर से नहीं होता। इसके लिए श्रमशीलता, दूरदर्शिता, सूझ-बूझ के सहारे, स्वावलम्बन के चिरस्थायी प्रबन्ध करने होते हैं। यह सब योग्यता एवं प्रतिभा के सहारे ही किया जा सकता है। स्पष्ट है कि स्थिर समाधान के लिए, सुविकसित-समुन्नत स्तर पाने के लिए शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इन आधारों के सहारे स्वयं भी पार हुआ जा सकता है और अपनी नाव में बैठकर औरों को भी पार किया जा सकता है।

उदार हृदय व्यक्ति कष्ट-पीड़ितों, अभावग्रस्तों की सामयिक सहायता करते भी रहते हैं, परन्तु जब किसी स्थिर समाधान की बात सोची जाती है, उबारने-उठाने का मार्ग खोजते हैं, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि सम्बन्धित समुदाय को अधिक से अधिक ज्ञान सम्पन्न किया जाय, योग्य बनाया जाय। इसके लिए शिक्षा व्यवस्था का ही सहारा लेना होता है। इतना चिन्तन करने पर समाज के स्थायी विकास के लिए शिक्षण तन्त्र को सुविकसित एवं समुन्नत बनाने की आवश्यकता को स्वीकार करना ही पड़ता है।

इस प्रयास में समाज के सभी वर्ग सहयोग कर सकते हैं। अशिक्षित स्वयं शिक्षित बनने में उत्साह लें और शिक्षित व्यक्ति दूसरों को अधिक से अधिक शिक्षा प्रदान करने में रस लें। इनके अतिरिक्त तीसरा वर्ग वह है, जो शिक्षा सम्वर्द्धन के साधन जुटाता है। इमारत, उपकरण, वेतन आदि की व्यवस्था करता है। जो इसका महत्त्व समझते हैं, वे इस हेतु अपनी दानशीलता, उदारता का परिचय देते हैं। स्वयं से उतना न बन पड़े तो उदार तवियत के सम्पन्न व्यक्तियों को, शिक्षा की उपयोगिता समझाकर इस दान सहयोग से मिलने वाले पुण्य का स्मरण दिलाकर, चन्दा इकट्ठा करके इस आवश्यकता को पूरा करते हैं। इस प्रकार सभी अपने क्षेत्र में शिक्षा विस्तार प्रक्रिया को अधिकाधिक गति दे सकते हैं।

सरकार भी इसका एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उसका शिक्षा विभाग इसी प्रकार के ताने-बाने बुनता रहता है। विद्यालय खोलने और उन्हें चलाने में सरकारी प्रयत्न भी बहुत कुछ करते दिखाई देते हैं। इस सन्दर्भ में बढ़ती आबादी और देश की बढ़ती आवश्यकताओं को देखते हुए शिक्षा के नये-नये आयाम भी खड़े किए जा रहे हैं। सोचने वाले इस विषय पर सोचते हैं और नई-नई योजनाएँ बनाते हैं। चालू क्रम में सुधार, परिवर्तन, सम्वर्द्धन के लिए ऐसे उपाय खोजे जाते हैं कि अधिक से अधिक व्यक्तियों तक शिक्षा का अधिक से अधिक लाभ पहुँचाया जा सके।

इतने पर भी जो हो चुका है, हो रहा है, उसकी तुलना में अगले दिनों और भी अधिक बड़े कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखना होगा कि शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ शिक्षा का स्तर उठाना भी आवश्यक है। स्तर उठाने का अर्थ है शिक्षा के स्वावलम्बन और सुसंस्कारिता प्रधान पक्षों को अधिक समुन्नत बनाया जाना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वावलम्बन के निमित्त गाँधीजी द्वारा सुझाए गए 'बुनियादी-तालीम' के सिद्धान्त अपनाने पड़ेंगे। छात्र शिक्षा के साथ-साथ ऐसा कुछ सीखता रहे, जिसके सहारे बिना नौकरी खोजे वह अपने क्षेत्र में, अपने बलबूते ही अपनी आजीविका चला सके। इस प्रतिपादन में गृह-उद्योग की ओर संकेत किया गया है। इस प्रसंग को विचारकों और व्यवस्थापकों के ऊपर छोड़कर आगे बढ़ने के अलावा और कोई चारा नहीं है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन की विद्या। विद्यार्थी में इसे गहराई से जमाने-सींचने के लिए आज की परिस्थितियों में अकेला अध्यापक वर्ग भी बिना किसी बाहरी सहायता के बहुत कुछ करके दिखा सकता है। इस सच्चाई को चरितार्थ कर दिखाने वाले अनेकों उदाहरण मौजूद हैं। अध्यापक को अपनी गरिमा समझने और चरितार्थ कर दिखाने में वर्तमान परिस्थितियाँ भी बाधा नहीं पहुँचा सकतीं। जहाँ शिक्षण-तन्त्र के वेतनमान सुविधा-साधनों को बढ़ाए जाने की बात है, वहाँ तक तो अधिकाधिक साधन जुटाने का समर्थन ही किया जाएगा। पर इसमें यदि कुछ कमी रहे, अड़चन पड़े, तो भी यह तो हो ही सकता है कि अध्यापकगण अपनी गुरु-गरिमा को अपने ही बलबूते बनाए रहें और अपने गौरव का महत्त्व अनुभव करते हुए बढ़ते चलें।

शिक्षा एक प्रतिपादन है। उसका मूर्तरूप शिक्षक है। छात्रों का व्यक्तित्व सुधारने, उभारने में यों अभिभावकों को प्रधान रूप से जिम्मेदार माना जाता है, पर गहराई से सोचा या देखा जाय तो इस दायित्व से अध्यापक भी बचते नहीं हैं। उनकी भूमिका छात्रों का व्यक्तित्व विनिर्मित करने में अपने ढंग की अनौखी है। अभिभावक भी यह कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकते। कारण कि अभिभावकों में बच्चों के प्रति लाड़-दुलार इतना भरा रहता है कि उनकी त्रुटियों को बहुधा वे समझ नहीं पाते और न उसे सुधारने के लिए आवश्यक समझदारी सँजोए हुए होते हैं, इसके अतिरिक्त बालकों का घर पर बीतने वाला समय प्रायः खाने, सोने, मस्ती करने और स्कूल की तैयारी में ही निकल जाता है। वे अभिभावक के साथ उस सन्दर्भ में नहीं घुलते-मिलते हैं, जिससे कि सुधारने और प्रगतिशील बनाने के लिए जिन प्रयासों की आवश्यकता है, उन्हें ठीक प्रकार पूरा किया जा सके। सबसे बड़ी बात है—बाल-विकास के लिए मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक पक्षों की समुचित जानकारी का अभाव। अभिभावकों में इसे जानने, सीखने की न तो आवश्यकता अनुभव होती है और न अभिरुचि, इस दृष्टि से वे भी बड़ी आयु के अनजान व्यक्ति ही समझे जा सकते हैं।

वैसे अभिभावकों को उसी स्थिति में नहीं रहना चाहिए। बालकों को जन्म देने और पालने-पोसने के अतिरिक्त उनमें यह समझ भी होनी चाहिए कि जिन मेहमानों को घर में बुलाकर बिठाया गया है, उनकी सुरक्षा, सुविधा की ही नहीं, प्रगति और प्रसन्नता की बात भी सोची जाय। उन्हें उस गुण, कर्म और स्वभाव की सम्पदा से सुसम्पन्न बनाया जाय, जो उनके व्यक्तित्व को निखार सकती है और भविष्य को सुधार सकती हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि अभिभावक अपने परिपूर्ण उत्तरदायित्व का तत्त्व-दर्शन न तो समझते हैं और न समझने का प्रयास ही करते हैं। माताएँ प्रायः अशिक्षित या अल्पशिक्षित होती हैं। उन पर गृह कार्यों की व्यस्तता और अस्तव्यस्तता के कारण रुग्णता छाई रहती है। वे बालकों के लिए शरीर सुविधा जुटाती रहें तो भी गनीमत है। उन्हें कोसने, गाली देने, पीटने की एकमात्र सुधार के नाम पर बरती जाने वाली प्रक्रिया को कम से कम बरतें तो भी उन्हें धन्यवाद दिया जा सकता है, जो बालकों को सुसंस्कारी एवं प्रगतिशील बना सकें, ऐसी माताएँ विरली ही होती हैं। शेष तो जन्मदात्री मात्र रहकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेती हैं।

सरकार के लिए यही बहुत है कि वह स्कूलों के लिए इमारत, उपकरण, कार्यक्रम, वेतन, निरीक्षण, पदोन्नति, तबादले आदि की व्यवस्था बनाती है। सरकार कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसका क्षेत्र से सीधा सम्पर्क बनता हो और वह लम्बी अवधि तक निरन्तर बना रहता हो। यह तो शिक्षकों से ही बन पड़ता है। उन्हें शिक्षा की जीवन्त प्रतिमा कहना चाहिए। देवताओं की प्रतिमा पत्थर की, धातु की बनती है, पर शिक्षा के देवता तो हाड़-माँस के होते हैं—पढ़े-लिखे, सुयोग्य, सुशिक्षित और भावनाशील। यदि देश का भविष्य उज्ज्वल होना है तो उसमें प्रधान भूमिका नई पीढ़ी की होगी। नई पीढ़ी को प्रखरता के ढाँचे में ढालने में समर्थ यदि कोई शक्ति है, तो वह शिक्षा के मूर्तिमान देवता शिक्षक की उत्कृष्टता ही है। उसी पर भावी प्रगति की आशा केन्द्रीभूत समझी जा सकती है।

विद्यार्थी अपने समय का महत्त्वपूर्ण भाग अध्यापकों के साथ रहकर विद्यालयों में गुजारते हैं। उनके प्रति सहज श्रद्धा और कृतज्ञता का भाव भी रहता है। जो विद्या दान देते हैं, उच्च शिक्षित हैं, अपनी सहायता से छात्रों को भावी जीवन में सुयोग्य, सम्पन्न बना सकने के लिए अभूतपूर्व भूमिका निभाते हैं, उनके उपकारों को कोई कैसे भुला सकता है। उनसे आयु में ही नहीं हर हालत में छोटी स्थिति वाले छात्रों पर उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की छाप पड़नी ही चाहिए। अध्यापकों का अनुशासन सहज स्वाभाविक है। आते-जाते समय उनका अभिनन्दन होता है। उनके कक्षा में प्रवेश करते ही स्तब्धता छा जाती है। जो बच्चे घर में उद्दण्डता बरतते हैं, वे भी स्कूल के अनुशासन में सीधे हो जाते हैं। कोई जरूरी नहीं कि इसके लिए हमेशा दण्ड देने की कठोरता अपनानी पड़े, पर अनुशासित वातावरण को बनाए रखना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापक का अपना काम है। यह तनिक भी कठिन नहीं है। यदि शिक्षक का निजी जीवन चरित्र ठीक हो और व्यवहार शालीनता से भरा-पूरा हो तो कोई कारण नहीं कि छात्र उनका अनुशासन न माने, प्रेरणा ग्रहण न करे और दिए गए तथ्यपूर्ण परामर्श पर ध्यान न दे। माना कि समय की चाल उल्टी है और उच्छृंखलता के माहौल ने शिक्षार्थियों में भी उद्दण्डता भर दी है। इतने पर भी निराशा जैसी कोई बात नहीं है। अनगढ़ पशुओं को सरकस वाले चतुराई के साथ वशवर्ती कर लेते और उन्हें आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाने योग्य बना लेते हैं। फिर कोई कारण नहीं कि गुरु गरिमा सही स्थिति में होने पर छात्रों को स्कूली पाठ्यक्रम में निष्णात और व्यक्तित्व की दृष्टि से समुन्नत, सुसंस्कृत न बनाया जा सके।

माता, पिता और गुरु को त्रिदेवों की उपमा दी गई है। उनमें से माता जन्म देती है, पिता पोषण करता है, किन्तु गुरु तो नर पामर को शिक्षा-दीक्षा से अलंकृत करके नर देवों की पंक्ति में बिठा देता है। इसी कारण उसके लिए अधिक श्रद्धा व्यक्त की गई है, उसे आदर, मान आदि दिया गया है। पर गरिमा के अनुरूप शिक्षक को अपना स्तर ऐसे साँचे के सदृश्य बनाना चाहिए जिसके सम्पर्क में आने वाले कच्ची मिट्टी जैसे बच्चे मन मोहक खिलौनों के रूप में ढलते चल जाएँ। ऐसा कर पाने पर ही यह अपेक्षा की जा सकती है कि न केवल छात्र अभिभावकों का समुदाय, वरन् सारा समाज उन्हें भाव भरी श्रद्धा प्रदान करेगा। उनका आदेश मानने में पीछे न रहेगा।

शिक्षा को स्कूली पाठ्यक्रम कहा जाय तो सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन से सम्बन्धित सभी प्रयासों को दीक्षा कहना होगा। स्कूली पढ़ाई पूरी कराना तो आवश्यक है ही। इसे वेतन के लिए किया गया परिश्रम भी माना जा सकता है, पर बात इतने तक सीमित नहीं समझी जा सकती। करणीय यह भी है कि जिस प्रकार माता-पिता बच्चों के प्रति भावनाशील और प्रयत्नरत रहते हैं, उसी प्रकार अध्यापक भी अपने सम्पर्क के छात्रों में शालीनता, सज्जनता, श्रमशीलता, जिम्मेदारी, बहादुरी, ईमानदारी और समझदारी जैसी सत्प्रवृत्तियों को विकसित करने में कुछ उठा न रखें। यह प्रयास ही उनकी वह सेवा होगी, जिसके आधार पर सुविकसित नई पीढ़ी को, समाज के नव-निर्माण को श्रेय-सुयोग मिलेगा। इन्हीं प्रयत्नों में निरत रहने वाले शिक्षक समूचे समाज को अपना ऋणी बना सकते हैं। स्वयं ही अपनी गरिमा में भी चार चाँद लगा सकते हैं।

बाल-विकास में अध्यापकों और अभिभावकों की भूमिका

शिक्षा के दो पहलू हैं—एक कौशल का विकास, दूसरा व्यक्तित्व का परिष्कार। कौशल के विकास में कोई भी प्रशिक्षित और प्रतिभाशाली अध्यापक सफल हो सकता है। कृषि, शिल्प, पशुपालन, गृह-उद्योग, संगीत, कला, व्यायाम आदि विषय कौशल से सम्बन्धित हैं। इनके लिए क्रियाकुशल अध्यापक और अनुभव, उपकरणों को जुटा लेने भर से काम चल सकता है। ऐसे प्रवीण लोग आसानी से मिल भी जाते हैं। वे काम की तलाश में जहाँ-तहाँ फिरते भी रहते हैं। क्योंकि प्रतिभा के इच्छित आजीविका उपलब्ध कर नहीं पाते। जिन्हें अपने बच्चे लाड़ले लगते हैं, वे ऐसे अध्यापकों को घर पर ट्यूशन के लिए बुला सकते हैं और यदि आवश्यक समझें तो प्राइवेट परीक्षा दिलाकर प्रमाण-पत्र भी प्राप्त कर सकते हैं। हितोपदेश, पंचतन्त्र की कथाएँ ऐसी हैं जिसमें अवज्ञाकारी राजकुमारों को विष्णुशर्मा ने कहानी-किस्से सुनाकर राजकाज के योग्य बना दिया था। यह छोटी बात है। इस आवश्यकता की पूर्ति श्रीमन्त तो बड़ी आसानी से कर सकते हैं।

कठिनाई शिक्षा के उस सन्दर्भ के सम्बन्ध में है, जो बच्चों को सद्गुणी और सुसंस्कारी बनाती है। इसके लिए कितने ही उपाय अपनाने पड़ते हैं। जिनमें पहला है अभिभावक का निजी चरित्र और परिवार का वातावरण। क्योंकि उसी क्षेत्र में बालकों को अधिक समय तक रहना होता है। घनिष्ठता भी उन्हीं के साथ जुड़ती है और वह उनके क्रियाकलापों की नकल करने का प्रयास करता है। सुसंस्कारी परिवार में पले और बुद्धिमान अभिभावकों द्वारा पैनी दृष्टि से निखारे गए बालक सद्गुणी ही बनते हैं और सज्जनता की परम्परा को अपने स्वभाव का अंग बना लेते हैं। उन्हें अलग से शिष्टाचार पढ़ाने की कोई बड़ी आवश्यकता नहीं पड़ती। समय-समय पर संकेत करते रहने, याद दिलाते रहने भर से परिवार की परम्पराओं को वे सहज ही अपना लेते हैं।

उचित यह है कि जिन्हें बालकों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान है, जो उन्हें सुयोग्य नागरिक और देश के भविष्य में योगदान दे सकने योग्य बनाना चाहते हैं, वे सन्तानोत्पादन से पूर्व उनके विकास का उपयुक्त वातावरण बनाने हेतु उपयुक्त साधन जुटाने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न इस रूप में सफल हो सकता है कि विशेषतया माता और सामान्यतया घर के अन्य वे सभी लोग जो बच्चे के सम्पर्क में अधिक आते हैं, अपने को इस स्तर का सद्गुणी बनाएँ जिनकी नकल करते हुए बालक स्वयमेव सत्प्रवृत्तियों का अभ्यासी बन सके। उनकी कोई क्रिया ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिनका अनुकरण करने से बच्चे का स्वभाव बिगड़ने की आशंका हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वस्तुतः शिक्षा का आरम्भ अभिभावकों से होना चाहिए। उनके लिए पाठ्य पुस्तकें बननी चाहिए और यदि सम्भव हो तो उन्हें भी अपने ढंग से ऐसी ट्रेनिंग प्राप्त करनी चाहिए, जैसी कि स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों को अध्यापन प्रक्रिया की विधि-व्यवस्था सीखनी पड़ती है।

आँखें मूँदकर कामवासना की पूर्ति के लिए अन्धाधुंध बच्चे उत्पन्न करते चलना पत्नी के स्वास्थ्य को और बच्चों के भविष्य को बिगाड़ने के बराबर है। बच्चे प्यार के भूखे होते हैं। उनके अन्तराल में जो कुछ बिठाया जाना हो प्यार के साथ बिठाया जाना ही सम्भव है। इसके लिए माता के पास समय होना चाहिए और पिता के पास भी। घर में दिनचर्या में शालीनता का समावेश माताएँ रखें और पिता प्रातः-सायं उन्हें अपने साथ सैर कराने को ले जाया करें। इस सान्निध्य से घनिष्ठता उत्पन्न होती है और वह बालकों के स्वभाव पर उपयोगी छाप छोड़ने में समर्थ होती है।

परिवार यदि संयुक्त है। एक घर में कई लोग रहते हैं तो उनमें से विशेषतया विज्ञ लोगों को अपने ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करते रहने चाहिए, जिससे उन्हें अच्छी आदतें सीखने और अपनाने में सहायता मिले।

बच्चे की समुचित देखभाल करने के लिए यह आवश्यक है कि बड़ा बच्चा किसी कदर अपने को सँभालने की स्थिति तक पहुँच जाय, तब नये बच्चे का आगमन हो। यह अन्तर तीन से पाँच वर्ष तक का होना चाहिए अन्यथा जल्दी-जल्दी जन्मे बालकों से किसी की ओर भी पूरी तरह ध्यान दे सकना सम्भव न होगा। हर बच्चे के हिस्से में अभिभावकों का थोड़ा-सा प्यार, थोड़ा-सा ध्यान और थोड़ा-सा साधन मात्र लग सकेगा। इससे उनमें से प्रत्येक को असंतोष बना रहेगा और उपेक्षित मानता रहेगा।

बच्चे देखने में छोटे लगते हैं, पर जीवन के आरम्भिक दिनों में उनकी गतिशीलता और ग्रहण शक्ति असाधारण होती है। यदि ऐसा न होता तो वे नौ महीने जैसे स्वल्प काल में अपना शरीर कैसे बना लेते और वंश परम्परा तथा जननी की मनःस्थिति का इतना अधिक प्रभाव कैसे ग्रहण कर लेते ?

छोटी आयु के बच्चे स्कूल जाने से पहले खेल-खिलौने में, कहानियाँ सुनने में, साथियों के साथ मन बहलाने में अपना समय बिताते हैं। इन प्रसंगों में स्तर गया-गुजरा न हो, सुरुचि को बढ़ाने वाला हो ऐसा प्रबन्ध किया जाय। उनके आहार का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय। उनकी पाचनशक्ति को ध्यान में रखते हुए बड़ों की तुलना में आहार की भिन्नता रहनी चाहिए। भोजन का समय एवं मात्रा भी उसके अनुरूप रखनी चाहिए। लाड़-प्यार में साथ खिलाने की बात बच्चों का पेट और स्वास्थ्य खराब करती है। स्वच्छता के संस्कार आरम्भ में ही डाले जाने चाहिए। शिष्टाचार का प्रशिक्षण आरम्भिक दिनों से ही देना आरम्भ कर देना चाहिए।

इसके बाद घर के लोगों का कर्त्तव्य है कि स्कूल में भर्ती कर देना ही सब कुछ न समझें, पढ़ाई कितनी व्यस्तता एवं कड़ाई से होती है मात्र इतना ही न देखें। वरन् इस बात पर अधिक ध्यान दें कि अध्यापकगण प्रकारान्तर से बाल व्यक्तित्व के विकास में अभिभावकों जैसी सतर्कता, आत्मीयता और दिलचस्पी लेने की स्थिति में हैं या नहीं। स्कूल के वातावरण में सत्प्रवृत्तियों का समावेश रख पा रहे हैं या नहीं। उनका व्यक्तित्व कोमल मन वाले बालकों पर उपयोगी छाप छोड़ने जैसा है या नहीं। बच्चों के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे चलते हैं ? भीतर कोई दुष्प्रवृत्तियाँ तो नहीं पनप रहीं।

अच्छा हो अभिभावकों और अध्यापकों की विचारगोष्ठियाँ समय-समय पर होती रहें और न केवल एक बच्चे के सम्बन्ध में वरन् समूचे स्कूल को एक परिवार समझते हुए उसमें सुसंस्कारिता की दृष्टि से विचार किया जाता रहे। बच्चों में जो अच्छाइयाँ विकसित हो रही हों, उन्हें और अधिक प्रोत्साहित करने के लिए अभिभावक और अध्यापक समान रूप से प्रयत्न करें। इसी प्रकार किसी दोष-दुर्गुणों के पनपने के लक्षण दीख पड़ें, तो उसे सुधारने के लिए दोनों ही क्षेत्रों से प्रयत्न किया जाय।

स्कूली समय विभाजन में ऐसी गुंजाइश अवश्य रहनी चाहिए, जिसमें अलग-अलग गुटों में या सामूहिक रूप से अध्यापकों और अभिभावकों का मिलन तथा विचार-विनिमय होता रहे। देखा गया है कि इस प्रकार के प्रबन्ध की परम्परा बहुत कम विद्यालयों में है। इतने आवश्यक विषय की नितान्त उपेक्षा नहीं ही होनी चाहिए।

आयु बढ़ने के साथ-साथ यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि कुसंग में बैठने या बुरी लतें सीखने का सिलसिला तो नहीं चल पड़ा। किशोर अवस्था इस सन्दर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य है। नये खून में उत्साह बहुत होता है। जोश की, महत्त्वाकांक्षाओं की, साहस प्रदर्शन की उत्कंठा बढ़ती है। यदि इन दिनों दुर्भाग्य से कुसंग की दिशा में पैर उठने लगे तो उसका परिणाम आरम्भ में तो परिलक्षित नहीं होता, पर बड़े होने पर जब बुरी आदतों का अभ्यास परिपक्व हो जाता है, तो उन्हें छुड़ाना कठिन पड़ता है। कई बार बच्चों में किसी बहाने घर वालों से पैसे प्राप्त करके या चोरी करके बीड़ी, सिगरेट, जुआ, आवारागर्दी में सैर-सपाटे करना आदि आदतों का चस्का पड़ जाता है। यही आदतें बड़े होने पर व्यक्तित्व को कुसंस्कारी बना देती हैं। इसलिए बच्चों को खेलने आदि की उपयुक्त छूट देते हुए भी यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि कहीं कुसंग की छाया तो नहीं पड़ने लगी। गलतियों को कच्ची आयु में सुधार देना सरल पड़ता है पर जब वे बड़े हो जाते हैं तो फिर पकी लकड़ी को सीधा करना कठिन होता है।

पाठ्य पुस्तकों में जीवन-काल के हर पक्ष पर प्रकाश डालने वाले अध्ययन होने चाहिए। शारीरिक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों की जिन समस्याओं का मनुष्य को सामना करना पड़ता है उनके उतार-चढ़ावों के स्वरूप और समाधान से शिक्षार्थियों को अवगत कराया जाना चाहिए। आज की परिस्थितियों में अवांछनीयताओं का, अन्धविश्वासों का, कुरीतियों का बहुत प्रचलन है, उनकी हानियाँ समझ सकने योग्य छात्रों के मस्तिष्क का विकास हो सके, ऐसा पाठ्यक्रम शिक्षा पद्धति में सम्मिलित रहना चाहिए। मानवी गरिमा और जिम्मेदारी से सम्बन्धित सभी प्रसंगों पर प्रकाश डाला जाना चाहिए। इसमें किसी धर्म सम्प्रदाय की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। यह मार्गदर्शन मानवता के साथ जुड़ी हुई आदर्शवादिता को तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरणों के आधार पर ही छात्रों की मान्यताओं में उतारा जा सकता है।

धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ यह नहीं है कि जनसंख्या वृद्धि जैसे राष्ट्रीय महत्त्व के विषय पर इसलिए चर्चा न की जाय कि इससे अमुक अपनी परम्पराओं की दुहाई देकर राष्ट्रीय प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाएँ। ऐसे तो आदिवासी समुदाय का अलग-अलग घर बनाकर रहना, जनसम्पर्क से बचना और अन्धविश्वासों को न छोड़ने का आग्रह करना भी ऐसा प्रसंग बन जाएगा, जिस पर परम्पराओं में हस्तक्षेप करने के नाम पर सुधार की कोई बात कहना ही कठिन होने लगेगा और राष्ट्रीय प्रगति के कामों में बाधा उत्पन्न करने वाली कुरीतियों के सम्बन्ध में कुछ कहना ही सम्भव न होगा। धर्मनिरपेक्षता बड़ी बात है परन्तु मानवी गरिमा और उच्च आदर्शों का समर्थन भी ऐसा महत्त्वहीन नहीं है, जिसकी उपेक्षा की जा सके।

छात्रों के विकास में घर और स्कूल की भूमिका

ऊँचे ज्ञान की भी अपने स्थान पर आवश्यकता है। डाक्टर, वकील, इन्जीनियर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक, प्रबन्धक, स्तर के लोग भी विकासोन्मुख देश के लिए चाहिए ही। उनके प्रशिक्षण का स्वतन्त्र प्रबन्ध हो। ग्राम्योन्मुखी शिक्षा सर्वसाधारण के लिए होनी चाहिए, क्योंकि अपने देश की ७० प्रतिशत आबादी उसी क्षेत्र में रहती है। वह गरीब भी है और अशिक्षित भी। उस वर्ग के बालकों की शिक्षा ऐसी हो जो अपने परम्पराग्रस्त क्षेत्रों में कारगर सिद्ध हो सके। गाँवों के नये निर्माण में सहायक हो और शिक्षितों को शहर में काम तलाश करने के लिए न भागना पड़े।

उच्चस्तरीय शिक्षा का विस्तार कितना हो ? इसका अनुमान विशेषज्ञों को लगाना चाहिए कि उनकी कितनी आवश्यकता पड़ेगी ? उनके लिए कितना कार्यक्षेत्र है। विशेषज्ञों के शिक्षण संस्थान उसी अनुपात से बनाए जाएँ। ताकि उन्हें ऊँची नौकरी करने या निजी कारोबार चलाने में कठिनाई न हो। स्वभावतः ऐसी शिक्षा महँगी होती है और बौद्धिक कौशल भी अधिक चाहती है। उच्चस्तरीय विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए इन सभी बातों पर विचार कर लिया जाना चाहिए। इस पर्यवेक्षण के आधार पर उतने ही छात्र उच्चस्तरीय प्रशिक्षण में प्रवेश पा सकेंगे। तब वह धमा-चौकड़ी न मचेगी, जिसमें एक स्थान खाली होने पर सौ के प्रार्थना-पत्र पहुँचते हैं।

इस प्रकार विद्यालयों का आवश्यकताओं की पूर्ति के तथ्य को ध्यान में रखते हुए विस्तार किया जाय तो उसका उपयुक्त प्रतिफल दृष्टिगोचर होगा। फिर किसी को यह कहना न पड़ेगा कि शिक्षा किसी काम न आई। उसमें हमारा श्रम, समय, पैसा निरर्थक गुम गया।

आठवीं कक्षा—जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा निःशुल्क हो सके तो अतीव उत्तम अन्यथा प्राथमिक शिक्षा के लिए तो किसी प्रकार की फीस होनी ही नहीं चाहिए। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की बहुलता के लिए प्रारम्भिक खर्च भवन निर्माण का होता है। उसके लिए ऐसे डिजायन बनाए जाएँ जो देहात के अनुरूप और कम लागत के हों। इन्हें ठेकेदारों से न बनवाकर उस क्षेत्र की पंचायत, ग्राम सभा या शिक्षा समिति को दिया जाय। बहुमूल्य सामग्री लगाने की अपेक्षा बाँस-बल्ली, खपरैल, टिन, सीमेण्ट सीट आदि से बनाया जा सकता है। आच्छादन के लिए सीमेण्ट की खपरैल अधिक सुविधाजनक रहेगी, जैसी कि पिछले दिनों मिलिटरी बैरिकों में लगती रही है। कॉलेज भी सस्ती लागत के हों तो हर्ज नहीं। खुले विश्वविद्यालयों की चर्चा इन दिनों जोरों से चल रही है। उसे व्यावहारिक रूप मिलना चाहिए। उनका ताम-झाम गुरुकुल स्तर का हो तभी उसमें शान है। भारतीयता की झलक उन्हीं में मिल सकेगी।

कौन क्या शिक्षा प्राप्त करे ? इसका निर्णय करने से पूर्व उसे यह सोचना होगा कि वर्तमान स्थिति, भावी सम्भावना तथा सुविधा-साधनों का तालमेल कौन किस प्रकार बिठा सकेगा ? पुरातनकाल में वर्ण-व्यवस्था का यही आधार था कि व्यवसायों में परम्परागत कौशल और कार्य क्षेत्र की सुविधा यथावत् बनी रहे। न किसी को अनावश्यक महत्त्वाकांक्षा सँजोनी पड़े और न किसी को निराश होना पड़े। देश को सभी स्तर के कार्यकर्त्ता और व्यवसाय चाहिए। आवश्यकताएँ अनेकानेक हैं और उनकी पूर्ति के लिए सभी वर्ग के, सभी विशेषताओं के व्यक्ति चाहिए। उन सभी का उत्पादन प्रशिक्षण चलना चाहिए। मात्र नौकरी चाहने वाले, अफसर बनने वाले ही ढाले जाते रहेंगे तो गतिरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

शिक्षार्थी, शिक्षक, विद्यालय, वातावरण, अभिभावक इन सभी का तालमेल ठीक चलने से शिक्षा की सफलता और उपयुक्तता बन पड़ती है। इन सभी पक्षों की ओर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए, जिससे दोष या श्रेय किसी एक पक्ष को न मिले। सभी उस सफलताजन्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसन्नता के समान रूप से भागीदार हों। यह सब स्वेच्छा पर नहीं छोड़ देना चाहिए वरन् ऐसे निरीक्षण की व्यवस्था हो, जिसमें असावधानियों का समय रहते समाधान होता रहे। एक-दूसरे की कठिनाइयों की जानकारी होने से ही उनका उपाय खोजा जा सकता है।

बच्चों को स्कूल में भर्ती करके अभिवावकों को निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए। किशोरावस्था ऐसी है जिसमें जोश बहुत और होश कम होता है। कुसंग में पड़ने, दुर्गुण सीखने, उद्दण्ड बनने की आशंका इन्हीं दिनों रहती है। साथ ही यह भी है कि शालीनता और सत्प्रवृत्तियों का स्वभाव में समावेश भी ठीक इन्हीं दिनों होता है। बच्चों पर अविश्वास करना ठीक नहीं, पर बारीक नजर इस बात की भी रखी जानी चाहिए कि शिक्षा में समुचित अभिरुचि लेने के अतिरिक्त शिष्टाचार में कहीं कोई छिद्र तो नहीं बन रहा है। अनुशासन के प्रति उपेक्षावृत्ति तो नहीं पनप रही है।

बच्चों का अधिकांश समय घर में या स्कूल में व्यतीत होता है। पढ़ाई का कार्य अध्यापक पूरा करते हैं। पर व्यक्तिगत सम्पर्क साधने का कोई उपयुक्त माध्यम न होने के कारण उन्हें यह पता नहीं चलता कि घर पर लड़कों का रहन-सहन क्या रहता है ? इसी प्रकार अभिभावकों को यह पता नहीं चल पाता कि स्कूल के समय में विद्यार्थी किस प्रकार की गतिविधियाँ अपनाता है ? और अपने स्वभाव का परिचय किस स्तर का देता है ? अच्छा हो हर कक्षा के अध्यापक अपने विद्यार्थियों की गोष्ठियाँ भी लिया करें और सामान्य सिद्धान्त सार्वजनिक रूप से एवं व्यक्तिगत चर्चा निजी रूप से किया करें। इस प्रकार दोनों समझदार वर्गों के प्रयत्न से बच्चों की प्रगति का उपाय-उपचार चलता रह सकता है।

छात्रों की पढ़ाई पर ही नहीं व्यवहार पर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रतिभा निखारने का ठीक यही समय है। व्यक्तित्व का जैसा भी कुछ भला-बुरा निर्माण कच्ची आयु में बन जाता है। प्रायः आजीवन वैसा ही बना रहता है। आयु पकने पर समझदारी तो बढ़ती है पर आदतें जिस प्रकार की उठती आयु में बन जाती हैं, प्रायः वैसी ही बनी रहती हैं। इसलिए शिक्षा के साथ दीक्षा का भी समावेश होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापकों और अभिभावकों की चरित्रनिष्ठा कार्य प्रणाली असंदिग्ध हो। उनकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अवांछनीयता बच्चों से बच नहीं सकती। उनकी संवेदनशीलता अच्छाइयों की अपेक्षा बुराइयों की ओर अधिक आकर्षित होती है। यहाँ खोट के कोई छिद्र रहेंगे तो छात्रों का व्यक्तित्व निखर न पाएगा। भले ही वे तीव्र बुद्धि के कारण प्रतिभा किसी भी स्तर की अर्जित कर लें।

स्कूलों का वातावरण बनाने की चेष्टा अध्यापकों को करनी चाहिए। वहाँ स्वच्छता, शालीनता, सहकारिता और

निर्धारित कार्यक्रमों को पूरा करने में तल्लीनता का वातावरण रहे। इसी प्रकार घर में उन्हें दुलार और सहानुभूति तो मिले ही, साथ ही सत्प्रयत्नों की प्रशंसा भी होती रहे। सुधार और समीक्षा का क्रम तो चले, पर वह इतना कड़ुवा न हो कि खीज उत्पन्न करे और बच्चों को विद्रोही बना दे। घर और स्कूल दोनों का वातावरण बच्चों को सुविकसित करता है। इसी प्रकार अध्यापक और अभिभावक अपने-अपने ढंग से अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हुए छात्रों को समुन्नत स्तर का बना सकते हैं।

छात्र जीवन निर्माण करें

सबसे पहले मानव जीवन प्राप्त करने वाला प्राणी अपने पूर्व जन्म के कर्मानुसार अपनी माँ के गर्भ से संसार में आता है। प्रारम्भ से प्राप्त माँ-बाप के सहयोग से बाल्यावस्था का प्रथम चरण व्यतीत करके द्वितीय चरण में शिक्षकों के सहयोग में भेजा जाता है और वहीं से उसका जीवन निर्माण शुरू होता है। शिक्षा के साथ-साथ वह वहाँ शासन में रहना तथा शासन करना भी सीखता है और शिक्षकों के अनुकूल आचरणों का समावेश भी उसमें पूर्ण रूप से हो जाता है। यही कारण है कि आज का भारत उत्थान की तरफ न जाकर पतनोन्मुख हो रहा है क्योंकि प्रायः आज का शिक्षक वर्ग भारतीय संस्कृति के विपरीत है। कुम्भकार अवा में पकाने से पहले घड़े की जैसी मीनाकारी करता है, वही अन्त तक रहती है। इसी तरह बाल्यावस्था में जैसी शिक्षा-दीक्षा में बालक रहता है वैसा ही जीवन का निर्माण होता है।

इसलिए बालकों के अभिभावकों को विशेष तौर से सोचना चाहिए कि आधुनिक शिक्षकों के ऊपर ही सारा भार बालकों का सौंपकर निश्चिन्त न हो जावें—अपितु उनके अलावा रहन-सहन, सदाचार आदि के विषय में—पूर्ण रूप से सतर्क रहें क्योंकि महापुरुषों की यथार्थ उक्ति है कि जिसका प्रातः नष्ट हो गया, उसका सम्पूर्ण दिन खत्म हो गया और जिसकी बाल्यावस्था बिगड़ गई, उसका जीवन समाप्त हो गया। जिसका आचरण चला गया उसका सर्वस्व नष्ट हो गया। यह प्रायः देखा गया है कि जिन लोगों के पूर्व संस्कार कमजोर हैं, उन्हीं पर सहवास और संगति का प्रबल प्रभाव पड़ता है। हमारे प्रातः स्मरणीय स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने पाश्चात्य संस्कृति से संतप्त शिक्षणालयों में शिक्षा प्राप्त करके भी अपने वास्तविक अध्यात्म प्रकाश से सारे जगत को प्रकाशित किया।

इस प्रकार अच्छे अभिभावक तथा शिक्षकों के सहवास में रहकर संसार संग्राम में विजयी होने के अनुकूल गुणों को ग्रहण करके गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर सन्त विनोबा की भाँति लोकसेवा में संलग्न हो जावें। समय की प्रति मिनट को अमूल्य समझकर स्वास्थ्य के नियमों का पूर्ण रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पालन करते हुए और ईश्वर की उपासना के बल पर विघ्नों को पराजित कर वर्तमान को सुधारते हुए भूत-भविष्यत का पूरा ध्यान रखते हुए—सच्ची जनसेवा में जुट जावें, अपने संकटकालीन तथा सफलजनक अनुभव संसार को बताते हुए आगे बढ़ें और शास्त्र की मर्यादानुकूल गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने वाले लोग तो सबसे पहले सात्विक गुरु की खोज करें।

इस समय में वास्तविक सन्तों का अभाव-सा है किन्तु सच्ची लगन वालों को अवश्य निधि मिलती है। प्रयत्न करने पर भी यदि सफलता न मिले तो सच्छात्रों के वचनानुसार अपने जीवन को बनावें। ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ लोकोपकार के लिए जीवन निर्मित करें। फैशनपरस्ती की मूर्खता से दूर रहकर वास्तविक सौन्दर्य की कुंजी ब्रह्मचर्य तथा सदाचार का पालन करें। अपने जीवन से लोगों को शिक्षा देता हुआ, समय के सच्चे रहस्य को समझकर चलना शुरू करें। नवयुवक विद्यार्थी अपना निर्माण इस तरह करके लोगों को सत्प्रेरणा देना शुरू करें तो थोड़े ही समय में भारत का भाग्य चमकने लगे।

शिक्षकों का महान उत्तरदायित्व

हमारे धर्मशास्त्रों में माता, पिता आचार्य तीनों को बालक के जीवन निर्माण में महत्त्वपूर्ण माना है। माँ-बाप उसका पालन-पोषण, सम्वर्द्धन करते हैं तो आचार्य उसके बौद्धिक, आत्मिक, चारित्रिक गुणों का विकास करता है, उसे जीवन और संसार की शिक्षा देता है। उसकी चेतना को जागरूक बनाता है। इसीलिए हमारे यहाँ आचार्य गुरु को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसे पूजनीय माना गया है। आचार्य के शिक्षण, उसके जीवन व्यवहार, चरित्र से ही बालक जीवन जीने का ढंग सीखता है, आचार्य की महती प्रतिष्ठा हमारे यहाँ इसीलिए हुई।

पुरानी आचार्य परम्परा परिस्थितियोंवश समय के परिवर्तन के कारण समाप्त हो गई है फिर भी आज का शिक्षक अध्यापक बहुत कुछ अंशों में उसका ही आधुनिक रूपान्तर है। समय के साथ शिक्षा-पद्धति, पाठ्यक्रम आदि में परावर्तन हो सकता है, लेकिन गुरु और शिष्य का सम्बन्ध सदैव रहता है और रहेगा।

आज हमारे यहाँ शिक्षक हैं, अध्यापक हैं, वे छात्रों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा भी देते हैं किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात जीवन निर्माण का व्यावहारिक शिक्षण आज नहीं हो पाता। आज गुरु-शिष्य, शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध पहले जैसा नहीं रहा। केवल कुछ अक्षरीय ज्ञान दे देने, एक निश्चित समय तक कक्षा में उपस्थित रहकर कुछ पढ़ा देने के बाद शिक्षक का कार्य समाप्त हो जाता है तथा पाठ पढ़ने के बाद विद्यार्थी का।

अध्यापक और विद्यार्थी के बीच जो स्नेह, भाव, आत्मीयता, सौहार्द्र, समीपता की आवश्यकता है, वह आज नहीं है और यही कारण है कि आज का विद्यार्थी डिग्री, डिप्लोमा ले लेता है लेकिन व्यावहारिक जीवन का शिक्षण, चरित्र, ज्ञान, उत्कृष्ट व्यक्तित्व का उसमें अभाव रहता है। इन सबके बिना विद्या अधूरी है। जो जीवन को प्रकाशित न करे, पुष्ट न बनावे वह विद्या किस काम की ?

और चरित्र निर्माण की, व्यवहारिकता की शिक्षा पुस्तकों से नहीं मिल सकती। वह भी व्यक्ति की समीपता से, उसके चरित्र, आचरण को देखने, समझने से प्राप्त होती है, जो आज की शिक्षा-पद्धति में नहीं के बराबर है। निःसन्देह हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति में इसका बहुत ध्यान रखा गया था। आचार्य और विद्यार्थी का सहजीवन आश्रमों में बीतता था। उस समय विद्यार्थी पाठ ही नहीं सीखता था अपितु आचार्य के जीवन से चरित्र, व्यवहार को सीख भी लेता था। इसी सत्य पर प्रकाश डालते हुए एक बार कवीन्द्र रबीन्द्र ने कहा था—

"शिक्षा के सम्बन्ध में एक महान सत्य हमने सीखा था। हमने यह जाना था कि मनुष्य से ही मनुष्य सीख सकता है। जिस तरह जल से ही जलाशय भरता है, दीप से ही दीप जलता है, उसी प्रकार प्राण से प्राण सचेत होता है। चरित्र को देखकर ही चरित्र बनता है। गुरु के सम्पर्क-सान्निध्य, उनके जीवन से प्रेरणा लेकर ही मनुष्य-मनुष्य बनता है।" आज का "शिक्षक महोदय प्राण नहीं दे सकता, चरित्र नहीं देता, वह पाठ दे सकता है। इसीलिए आज का छात्र किसी दफ्तर, अदालत का एक बाबू बन सकता है लेकिन मनुष्य नहीं बन पाता।"

आज शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बहुत बड़ी खाई पैदा हो गई है—सम्बन्धों की। यद्यपि इसका कारण आज की सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ भी हैं लेकिन जो शिक्षक हैं, अध्यापक हैं, व्यक्तिगत तौर पर इस जिम्मेदारी से नहीं बच सकते। एक बार शिक्षक दिवस पर बोलते हुए एक केन्द्रीय मन्त्री महोदय ने कहा था—"आप तो विद्यार्थियों की परीक्षा साल में एक बार या दो बार लेते हैं किन्तु विद्यार्थी तो आपकी परीक्षा प्रतिदिन, प्रति घण्टे, प्रतिक्षण ही लेते रहते हैं। वे आपको कक्षा में आते देखते हैं, पढ़ाते देखते हैं, सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार करते देखते हैं और फिर कक्षा के बाहर दूसरों के साथ मिलते-जुलते भी देखते हैं। वे जैसा आपको देखते हैं वैसा ही स्वयं भी सीखते हैं, करते हैं। इसलिए जैसे आप होंगे, वैसे ही आपके विद्यार्थी भारत के ये नौ-निहाल भी होंगे।"

मन्त्री महोदय के उक्त सारगर्भित शब्दों से शिक्षकों की जिम्मेदारी जो व्यक्तिगत रूप से उनके ऊपर है, उससे इन्कार करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती और बच्चों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, चारित्रिक त्रुटियों के लिए कुछ सीमा तक शिक्षकों को भी उत्तरदायी माना जाय तो ठीक ही होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ तक भी कोई बड़ी बात नहीं कि शिक्षक बच्चों को अच्छी बातें नहीं सिखाते, किन्तु जब अपने गलत व्यवहार और चारित्रिक त्रुटियों से बच्चों के सामने गलत आचरण करते हैं, तो यह एक अक्षम्य सामाजिक अपराध ही है। हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चों के समक्ष अध्यापक लोग बीड़ी पीते हैं। भद्दे हँसी-मजाक करते हैं। अपने दोस्तों के लिए, कई शिक्षक तो बच्चों के द्वारा बीड़ी, पान, सिगरेट मँगाते हैं। बड़े स्कूल, कॉलेजों में विद्यार्थियों के साथ हँसी-मजाक पूर्ण बराबरी का व्यवहार, कई अनर्गल विषयों पर वार्तालाप करना, अपना चारित्रिक स्तर निम्न रखना, ऐसी कई बातें हैं, जो विद्यार्थियों के समक्ष गलत उदाहरण पेश करती हैं। यद्यपि आजकल के विद्यार्थी भी दूध के धुले नहीं हैं तथापि शिक्षकों का उत्तरदायित्व अधिक है। बच्चा यदि गलत आचरण करता है, तो वह अभिभावकों की त्रुटि का परिणाम है। इसी तरह विद्यार्थी यदि अनुशासनहीन और उद्दण्ड बनते हैं, तो यह शिक्षकों की भूल-गलती का परिणाम ही माना जाएगा।

यद्यपि आज का शिक्षक वर्ग उन वर्गों में से है, जिस के उद्धार की सबसे अधिक आवश्यकता है। हमारे देश का शिक्षक बहुत ही सामान्य स्थिति में जीवन-निर्वाह करता है। इसके अतिरिक्त जीवन की जटिलताएँ बढ़ जाने, छात्रों की बढ़ी हुई संख्या के कारण भी आज के शिक्षक के लिए छात्रों से व्यक्तिगत सम्पर्क रखना कठिन हो गया है। लेकिन एक स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक के नाते अपने समस्त अभाव, अभियोगों, व्यक्तिगत कठिनाइयों में हम अपने उत्तरदायित्वपूर्ण कर्त्तव्यों से विमुख नहीं हो सकते। परोपकार और लोक-कल्याण की भावना रखकर ही शिक्षकों को बच्चों के जीवन निर्माण की दिशा में अग्रसर होना पड़ेगा। यह सच है कि प्रारम्भिक जीवन के लम्बे शिक्षाकाल में विद्यार्थी और शिक्षक का सम्पर्क बड़े ही महत्त्व का है। यदि इस समय में बिना किसी लाभ की भावना से भी यदि बच्चों के जीवन निर्माण की दिशा में शिक्षक वर्ग ध्यान दें तो यह एक बहुत बड़ा पुण्य कार्य होगा। कोई सन्देह नहीं कि इन्हीं बच्चों में से महापुरुष, विद्वान, तपस्वी, लोकसेवी, जननायक, कुशल नेता निकलकर न आवें। जिस देश में सुयोग्य व्यक्तियों की बहुतायत होती है, वह देश गिर नहीं सकता, न उसे कोई हानि ही पहुँचा सकता है।

हमारे देश, समाज, सभ्यता, संस्कृति का भार बहुत कुछ शिक्षकों के कन्धों पर ही रखा है। अपने इस उत्तरदायित्व को समझते हुए बच्चों के उत्कृष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करने में अधिकाधिक प्रयास आवश्यक है। आज के शिक्षकों की यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

अध्यापक समुदाय अपनी गरिमा व दायित्व समझें

किसी भी समाज के अध्यापक का अपना विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। पुरानी और नई पीढ़ी के मध्य वह न केवल एक सेतु का कार्य करता है वरन् आने वाली पीढ़ी को कल के समाज का नेतृत्व सम्हालने और उसके गम्भीर उत्तरदायित्वों को वहन करने योग्य भी शिक्षक ही बनाता है। यह ठीक है कि किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके अपने पुरुषार्थ और अपनी साधना के बल पर ही होता है किन्तु मार्गदर्शन—शिक्षण का भी अपना महत्त्व है। अध्यापक नई पीढ़ी के शिक्षण और मार्गदर्शन का कार्य करता है। इसलिए समाज में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकाल में इसीलिए बालक को शिक्षा दी जाती थी—**'आचार्य देवो भव'** अर्थात जो तुम्हारा शिक्षण करता है, उसे देवता मानकर सम्मान दो।

अध्यापक या शिक्षक को यह सम्मान देने की व्यवस्था अकारण ही नहीं की गई थी। वास्तव में समाज को ऊँचा उठाने और नई प्रतिभाओं को विकसित करने में उस समय के आचार्यों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता था। उनके महान दायित्वों को देखकर ही समाज में उन्हें यह प्रतिष्ठा दी जाती थी।

अध्यापकों का महत्त्व आज के युग में भी कम नहीं हुआ है। भले ही वे स्वयं को एक वेतनभोगी कर्मचारी और समाज का उपेक्षित अंग समझते हों, किन्तु इससे इनका महत्त्व या दायित्व कम नहीं हो जाता। शिक्षा का अर्थ आजकल वह नहीं रहा, जो प्राचीनकाल में समझा जाता था। अर्थात व्यक्ति के समग्र विकास की आवश्यकता। यह आजकल प्रचलित शिक्षा-पद्धति से न तो पूरी होती है और न अध्यापक अपने इस महान दायित्व को समझते हैं। यदि समझते भी हैं तो उसे अनुभव नहीं करते। उनकी दृष्टि में अध्यापक का वैसा ही कार्य है, जैसा कि किसी क्लर्क या ऑफिस कर्मचारी का काम। स्कूल के घण्टों में अपनी ड्यूटी पूरी कर देने, नियत समय पर ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिखकर बता देने, पुस्तक पढ़कर सुना देने अथवा उसकी व्यवस्था कर देने भर को ही अध्यापक अपना काम समझते हैं। काम ही नहीं व्यवसाय, जिसके बदले उन्हें प्रतिमास एक निश्चित रकम वेतन के रूप में मिल जाती है। वे समझते हैं कि स्कूल में जाकर हम पढ़ा देते हैं। चार-पाँच घण्टे पढ़ाने के बाद हमारा दायित्व पूरा हो जाता है। उसके बाद विद्यार्थी से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहता और न ही हमारी कोई जिम्मेदारी।

कुछ घण्टे केवल पढ़ा देने भर से कर्त्तव्य पूरा हो जाने तथा साल में बहुत-सी छुट्टियाँ मिलने के कारण बहुत-से व्यक्ति यह समझते हैं कि अध्यापन सबसे सरल व्यवसाय है और सबसे आराम की नौकरी है। जिसमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम कम और आराम ज्यादा मिलता है। अध्ययन के प्रति इस उथले दृष्टिकोण के कारण शिक्षण जैसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक, राष्ट्रीय आवश्यकता को जहाँ व्यवसाय का रूप मिला है, वहीं अध्यापक की गरिमा भी कम हुई है।

अध्यापन न तो कोई व्यवसाय है और न बच्चों को अक्षर-ज्ञान, विविध जानकारियाँ प्राप्त करा देने जैसा साधारण कार्य है। यदि अक्षर-ज्ञान को ही शिक्षण की संज्ञा दे दी जाए तो इस स्तर का शिक्षण दो-चार महीने में ही पूरा किया जा सकता है। यदि विविध जानकारियों को इकट्ठा कर विद्यार्थियों के सामने ही प्रस्तुत कर देना अध्यापक का कार्य हो तो वह कार्य पुस्तकों के द्वारा भी सम्भव हो सकता है। उसके लिए वर्षों तक स्कूल जाना और प्रतिदिन घण्टों मगजपच्ची करना अनावश्यक है, लेकिन दुर्भाग्य से अध्यापन का यही अर्थ लगाया जाता है और शिक्षक का कार्य इतना भर समझा जाता है। शिक्षा और शिक्षक के महत्त्व तथा दायित्व को इतने क्षुद्र दायरे में ही सीमित कर देना न केवल अनुचित है, वरन् उससे कई हानियाँ भी हैं। विद्यार्थी और अध्यापक के औपचारिक सम्बन्ध, छात्रों द्वारा अध्यापकों की अवहेलना तथा शिक्षकों द्वारा अपने विद्यार्थियों के सामने अपनी गरिमा न रखना, छात्र-अध्यापक के सम्बन्धों में तनाव, तज्जनित आक्रोश, छात्रों की उद्दण्डता और शिक्षकों की कुढ़न आदि कई दुःस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। इस कारण उनके आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ और एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व के नहीं बन पाते।

यद्यपि आजकल की समूची शिक्षा व्यवस्था ही दोषपूर्ण है। आवश्यकता उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करने की है। सरकारी स्तर पर इसके प्रयास भी चल रहे हैं। इसका शुभारम्भ अध्यापकों द्वारा अपना महत्त्व समझने तथा विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करने से होना चाहिए। प्राचीनकाल में हमारे देश में अध्यापक को गुरु कहा जाता था। बच्चे जैसे ही कुछ बड़े होते और थोड़ा-बहुत सोचने-समझने लगते, उनका वेदारम्भ संस्कार करा दिया जाता और उन्हें योग्य गुरु के संरक्षण में किसी आश्रम में भेज दिया जाता था। बालक आश्रमों में ही अपना सारा समय व्यतीत करता था। उस आश्रम का वातावरण इतना परिष्कृत और स्नेहपूर्ण रहता था कि बच्चों को वहाँ रहकर अपने माता-पिता की कभी याद भी नहीं आती थी। आश्रम के कुलपति-आचार्य के सान्निध्य में रहकर, उनका स्नेह पीयूष पीकर और उनके ज्ञान व अनुभव से अपने व्यक्तित्व के कंचन को तपाकर निकलता था। गुरुकुलों से विदा होते समय छात्र इस योग्य हो जाते थे कि वे अपने पारिवारिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभा सकें। बचपन में कोरे कागज की तरह गुरुकुल भेजे जाने वाले छात्र गुरुकुल से लौटते समय जीवनोपयोगी सभी विद्याओं में पारंगत और चरित्र तथा व्यक्तित्व की दृष्टि से एक श्रेष्ठ नागरिक बन जाते थे। इस सबका श्रेय उस समय गुरुकुल के आचार्यों को ही दिया जाता था और वे अपना सारा समय विद्यार्थियों को योग्य बनाने में व्यस्त रहते थे।

उस समय के अध्यापकों या गुरुओं का स्वरूप एक तपस्वी, वत्सलतापूर्ण अभिभावक और व्यक्तित्व के माध्यम से शिक्षा देने वाले ऋषि का होता था, न कोई लौकिक आकर्षण। उस व्यवस्था को ज्यों का त्यों पुनः लौटाया नहीं जा सकता परन्तु जिन आदर्शों के आधार पर वह व्यवस्था संचालित होती थी, उन्हें तो स्थापित किया ही जा सकता है। आज के युग में आर्थिक आवश्यकताओं की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पहले गुरुकुलों की व्यवस्था जनसहयोग से ही चलती थी। सहज श्रद्धा से प्रेरित होकर उदारतापूर्वक लोग जो कुछ देते थे, उसके अतिरिक्त अपने छात्रों को साथ लेकर श्रम द्वारा जीवनोपयोगी आवश्यकताओं का उत्पादन किया जाता था। अब छात्रों का शिक्षण वेतनभोगी अध्यापक करते हैं। ये भी वेतन बढ़ाने के लिए हड़ताल करते देखे जाते हैं। प्राचीनकाल में शिक्षकों, गुरुओं द्वारा इस सम्बन्ध में कोई बहुत बड़ी आर्थिक अपेक्षाएँ नहीं की जाती थीं। विलासिता के स्थान पर सादगी, सुविधाओं के स्थान पर तपस्वी जीवन ही उनका आदर्श होता था।

अध्यापकों का आदर्श भी यही होना चाहिए। उन्हें साधन-सुविधाओं की माँग करने, वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने के स्थान पर अपनी गरिमा को सार्थक करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। सम्पन्न जीवन व्यतीत करने के लिए औरों की देखा-देखी प्रतिस्पर्धा और भागदौड़ में ही अपनी शक्तियाँ लगाई जाती रहें, तो फिर मूल उद्देश्य गौण हो जाता है। साधन-सुविधाएँ बढ़ा लेने पर दूसरों की दृष्टि में बड़ा आदमी भले ही बना जा सकता है पर उससे अपने महान दायित्व को पूरा करने में कोई सहायता मिलने की अपेक्षा अवरोध ही ज्यादा खड़े होते हैं। वैसे भी अध्यापकों को कोई ज्यादा वेतन नहीं मिलता। यदि धन सम्बन्धी आवश्यकताओं का विस्तार किया गया तो उसके लिए दूसरे उपाय काम में लेने पड़ेंगे। स्वाभाविक ही वैसी दशा में मुख्य कर्त्तव्य से ध्यान हटेगा और उसका परिणाम अच्छा होगा, यह आशा नहीं की जा सकती। अध्यापकों को यह मानकर चलना चाहिए कि उन्हें अपने छात्रों को लैक्चर द्वारा सम्बन्धित विषयों की जानकारी भर नहीं देनी है बल्कि अपने आचरण और रहन-सहन द्वारा उनके सामने एक आदर्श रखना है, जिससे वे प्रेरणा ले सकें। वस्तुतः कहने-सुनने का इतना प्रभाव नहीं होता जितना कि अपने व्यक्तित्व के माध्यम से बताने का। अध्यापक यदि अपने चरित्र और व्यक्तित्व द्वारा भी छात्रों को शिक्षा दे सकें, तो सुयोग्य नागरिकों के निर्माण की आवश्यकता तो पूरी होगी ही, छात्रों की दृष्टि में भी अध्यापक का स्थान ऊँचा उठेगा और उन्हें श्रद्धा मिलेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत से शिक्षक अपने छात्रों के सामने ही ऐसी हीन हरकतें करते रहते हैं, जिससे उनके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती है। माता-पिता के बाद बच्चा बाहर के किसी बड़े व्यक्ति के सम्पर्क में आता है तो वह अध्यापक ही है। छोटे बच्चे अध्यापकों को उसी श्रद्धा और सम्मान से देखते हैं परन्तु बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, वह बड़े लोगों के आचरण को अपने विवेक की कसौटी पर कसने लगता है तो प्राय: शिक्षक के प्रति श्रद्धा भावना पर ठेस ही पहुँचती है। इन दिनों छात्रों में अनुशासनहीनता और उद्दण्डता की वृत्तियाँ भी अधिकांशत: ऐसे कारणों से ही उत्पन्न होती हैं कि उनके सामने ऐसा कोई व्यक्तित्व नहीं होता, जिसके प्रति वे श्रद्धा रख सकें।

शिक्षक स्वयं अपने प्रति छात्रों में श्रद्धा उत्पन्न करें इसके साथ यह भी आवश्यक है कि अभिभावक भी उनके प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार करें। देखा जाता है कि साधारण-सी बातों पर छात्र को झिड़क देने पर उनके माँ-बाप ही अध्यापकों का अपमान करने पर तुल जाते हैं। यदि अध्यापक ने छात्र को डाँटा-फटकारा भी है, तो किसी दुर्भावना से ऐसा नहीं किया होगा—यह विचार करना ही चाहिए। समझना चाहिए कि अध्यापक ने छात्र को किसी गलती पर उसके हित के लिए ही सख्ती की होगी। किन्तु स्वयं अभिभावकों का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में साफ नहीं रहता। वे समझते हैं कि अध्यापक एक राजकीय कर्मचारी है, जिसे सरकार से वेतन मिलता है। हमारा बच्चा स्कूल में पढ़ने जाता है—हम उसकी पढ़ाई के लिए फीस देते हैं। इससे अधिक विद्यालय से और अध्यापक से हमारे बच्चे का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दोनों पक्षों द्वारा—अध्यापकों, छात्रों और उनके अभिभावकों द्वारा अपनाए जाने वाली इन भ्रान्त धारणाओं के कारण अध्यापक को समाज में समुचित स्थान नहीं मिल पाता। प्राचीनकाल में अध्यापक अथवा आचार्य आर्थिक दृष्टि से कोई बड़ा लाभ नहीं उठाते थे, परन्तु उन्हें शिष्यों से तथा अन्य नागरिकों द्वारा भरपूर सम्मान मिलता था। छात्र तो उनके चरणों में हमेशा नत रहते ही थे, माता-पिता भी उनकी सेवा-पूजा करते थे। उस समय समाज में गुरु को, आश्रम के अधिष्ठाता को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। जबकि आज के युग में अध्यापक बहुत ही उपेक्षित व्यक्ति है। अध्यापकगण स्वयं अपना महत्त्व और दायित्व समझें—इसके साथ-साथ समाज का भी आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह शिक्षक को समुचित सम्मान और प्रतिष्ठा दें। उनकी दैनन्दिन आवश्यकता की पूर्ति का दायित्व शासन पर न छोड़कर स्वयं अपने कन्धे पर लें।

अध्यापकों की योग्यता और जिम्मेदारी

अध्यापक की शिक्षा और परीक्षा में भविष्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है। जो विषय शिक्षार्थियों को पढ़ाए जाने हैं उनके सम्बन्ध में अध्यापकों को न केवल ज्ञान वरन् अनुभव भी होना चाहिए।

अध्यापक की योग्यता इतनी ही पर्याप्त न समझी जाय कि वह निर्धारित पाठ्य पुस्तकों में से प्राय: पूछे जाने वाले विषयों को पढ़ाकर छात्रों को उत्तीर्ण करा दें और अपने दायित्व से छुटकारा पाएँ। वरन् उसका मूल दायित्व यह होना चाहिए कि जो छात्र उनसे पढ़कर निकलें वे स्वस्थता, प्रतिभा एवं शालीनता की दृष्टि से ऊँचे स्तर के सिद्ध हों। इसके लिए पाठ पढ़ा देना पर्याप्त नहीं वरन् निज का जीवन भी इस स्तर का ढालना होगा कि वे अभिभावक स्तर की भूमिका निभा सकें और विद्यार्थियों को अपना निज का बालक समझकर उसका व्यक्तित्व विकसित करने एवं भविष्य उज्ज्वल बनाने में कुछ उठा न रखें। इसके लिए उन्हें छात्रों से निजी सम्पर्क बनाने होंगे और व्यक्तिगत रूप से यह तथ्य ध्यान में रखने होंगे कि उनमें किस स्तर की प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन हो रहा है।

जर्मनी, जापान, इजराइल आदि देशों ने अपने देश के नागरिकों का स्तर ऊँचा उठाया, उन्होंने सर्वप्रथम अपने विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकें बदली थीं और उनमें वे प्रसंग भरे थे, जिन्हें पढ़कर छात्र विचारणा के एक विशेष ढाँचे में ढल सके।

वर्तमान परिस्थितियों में अपने देश के शासक वैसा करने की स्थिति में तो नहीं हैं पर इस कार्य को अध्यापक निजी स्तर पर कर सकते हैं। जो भी पाठ्य-पुस्तकें सामने हैं, उनमें से जिन प्रसंगों में सत्प्रवृत्तियों के सत्परिणाम और दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम निकलते दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें अपनी टिप्पणियों के साथ इस तरह पढ़ाएँ जिससे छात्रों को भलाई और बुराई का अन्तर तथा उसका प्रतिफल समझने का अवसर मिले।

भलाई से तात्पर्य यहाँ दान-पुण्य करने या अपराधियों को क्षमा करके दया दिखाने जैसे अतिवाद से नहीं है। वरन् यह है कि मानवी गौरव के संरक्षण और अभिवर्द्धन के लिए किस प्रकार क्या सेवा की जाय और कहाँ कितने विरोध, असहयोग एवं संघर्ष का रास्ता अपनाया जाय। लोग भले मनुष्य बनें, इसके साथ ही परोक्ष रूप से यह भी जुड़ा हुआ है कि उसके लिए अपनाये गए अनौचित्य को छुड़ाया जाय। इसके लिए भले ही उनकी इच्छा के विरुद्ध दबाव डालने का कार्य भी हाथ में क्यों न लिया जाय। प्रचलित कुरीतियों में से अनेकों ऐसी हैं, जिनका परित्याग अविलम्ब आवश्यक है। अध्यापक को इस सन्दर्भ में निरपेक्ष नहीं चाहिए। वरन् अपने आपको एक लोक शिक्षक के रूप में विकसित करना चाहिए।

नये समाज के निर्माताओं को न केवल छात्रों को पढ़ा कर हाथ हिलाते हुए घर चला जाना चाहिए। वरन् स्कूल के थोड़े से घण्टों की पढ़ाई के अतिरिक्त यह भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहिए कि छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क साधें, वे अपने पास बुलाने से आ भी सकते हैं और उनके घरों पर भी पुरोहित की तरह जाया जा सकता है। उन्हें विद्यार्थी को हर दृष्टि से सुविकसित बनाने के लिए परामर्श करते रहना चाहिए, ताकि बालकों का भविष्य बनने में कोई कठिनाई न रहे।

जहाँ भी अध्यापकों ने अपने निजी जीवन में चरित्र-निष्ठा, सादगी और सज्जनता और आत्मीयता का परिचय, दिया है, भरपूर श्रम किया है, उन्होंने अपनी संस्थाओं की प्रगति तथा ख्याति में चार चाँद लगाए हैं।

अध्यापक अपने आदर्श से मार्गदर्शन दें

स्कूली शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को प्रस्तुत परिस्थितियों, सन्दर्भ एवं प्रसंगों की समुचित जानकारी देना है। इस दृष्टि से भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि विषयों की जानकारी पाठ्य-पुस्तकों में समावेश है। यह सभी विषय नवोदित छात्रों को अधिक जानकारी और वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए समाविष्ट किए गए हैं। इस जानकारी की उपयोगिता, आवश्यकता कम नहीं है। इसी कारण शिक्षा का वर्तमान ढाँचा खड़ा किया गया है। उसी प्रयोजन के लिए स्कूल, कॉलेज खुले हैं, अध्यापक नियुक्त किए गए हैं, परीक्षाएँ होती हैं और उत्तीर्णों को प्रमाण-पत्र व पुरस्कार आदि मिलते हैं। इसी आधार पर उनके ज्ञान विस्तार का मूल्यांकन किया जाता है और उसी के अनुरूप उपयुक्त पदों पर उनकी नियुक्ति भी होती है, अथवा व्यवसाय आदि में अपनी जानकारियों के आधार पर अधिक कुशल सिद्ध होते एवं सफल बनते हैं। इस प्रकार प्रचलित शिक्षण प्रक्रिया को भी उपयोगी एवं आवश्यक समझते हुए सराहा जा सकता है। उसकी अवमानना करने जैसा तो कोई कारण ही नहीं है।

अभी जो है, उसकी प्रशंसा करते हुए भी जो कमी है, उसकी ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। यदि वह कमी अखरे तो उसे दूर करने का प्रयास भी चलना चाहिए। चिन्तन की उत्कृष्टता, चरित्र की प्रामाणिकता और न्यायोचित परस्पर सहकार की प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं, जिन्हें शिक्षण काल में ही छात्रों में अंकुरित और पल्लवित किया जाना चाहिए। क्योंकि गुण, कर्म, स्वभाव में सत्प्रवृत्तियों का समावेश हुए बिना व्यक्तित्व उस स्तर तक नहीं उभरता, जिससे आत्मसंतोष मिल सके, प्रतिभा उभर सके और प्रामाणिकता के आधार पर जनसाधारण का सम्मान एवं सहयोग अर्जित करना सम्भव हो सके।

इस आवश्यकता की पूर्ति शिक्षण के साथ-साथ ही होती चले, यह आशा की जानी उपयुक्त ही है। क्योंकि हरी लकड़ी मोड़ी जा सकती है, गीली मिट्टी से बर्तन, खिलौने बन सकते हैं। धातु को नरम बनाकर ही उसे किसी ढाँचे में ढालकर उपयोगी उपकरण के स्तर तक पहुँचाया जा सकता है। संस्कार ग्रहण करने की सही आयु उठती उम्र ही है। उसमें प्रधान उपलब्धि शिक्षा के रूप में अर्जित की जाती है। किन्तु साथ ही यह भी सही है कि इन्हीं दिनों वातावरण के अनुरूप नवोदित बालकों का व्यक्तित्व भी भले-बुरे स्तर का विनिर्मित होता है। कुसंग एवं सत्संग उन्हें अत्यधिक प्रभावित करते हैं। स्कूलों में प्रवेश पाने से लेकर उसे छोड़ने तक की यह सन्धि ऐसी होती है, जिसमें भावसंवेदनाओं का अत्यधिक उभार रहता है। वे वातावरण से, सम्बद्ध व्यक्तियों से प्रेरणाएँ ग्रहण करते और उन्हें जीवनक्रम में उतार कर परिपक्व करते जाते हैं। यही संचय विकसित स्थिति में पहुँचने पर व्यक्तित्व एवं चरित्र रूप में दृष्टिगोचर होता है।

इन तथ्यों को समझते हुए शिक्षण काल में लगने वाले बहुमूल्य समय में ही नीतिनिष्ठ और समाजनिष्ठ की मनोभूमि बनाई जानी चाहिए। उन्हें श्रेष्ठ नागरिक एवं प्रतिभावान पुरुषार्थी बनाए जाने के लिए समुचित प्रयत्न होना चाहिए। आदतों का परिमार्जन एवं परिष्कार इन्हीं दिनों सम्भव है। इस सम्भावना को सार्थक कर दिखाने पर ही यह आशा-अपेक्षा की जा सकती है कि समय आने पर श्रेष्ठ नागरिक बन सकेंगे। समाज को समुन्नत बनाने में योगदान दे सकेंगे। अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व के द्वारा देश, धर्म, समाज और संस्कृति की मूल्यवान सेवा कर सकेंगे। यही वैयक्तिक और राष्ट्रीय समृद्धि भी है। किसी देश के सुयोग्य नागरिक ही उसकी प्रगति के मूलभूत आधार होते हैं। महामानवों का मूल्य इतना अधिक होता है, जिस पर कुबेर की सम्पदा न्यौछावर की जा सके। प्रखरता सम्पन्न व्यक्ति ही पिछड़ेपन की परिस्थितियों को समाप्त करने एवं हर क्षेत्र में प्रगतिशीलता का वर्चस्व भरने में सफल होते हैं। सुविकसित, सुसंस्कृत प्रतिभाओं को नर देव माना गया है। इस स्थिति तक कैसे पहुँचा जाय ? सामान्य से असामान्य स्तर का बनने में किस प्रकार सफलता पाई जाय ? इस प्रसंग पर हर विचारशील को गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि राष्ट्र की उदीयमान प्रतिभाओं को, स्कूल-कॉलेज में पढ़ने वाले छात्रों को, ग्राम-शहर में रहने वाले नवयुवकों को राष्ट्र की उदीयमान भवितव्यता मानकर उन्हें शिक्षित बनाने के साथ-साथ सुसंस्कृत बनाने के लिए कुछ उठा न रखा जाय।

यह सब कैसे हो सकता है ? इतने बड़े काम में हाथ कौन डाले ? उसे पूरा कर दिखाने का व्रत कौन धारण करे ? इसके उत्तर में एक ही केन्द्र पर निगाह जा टिकती है, वह है शिक्षातंत्र। इसमें सूत्र-संचालक, अधिकारी, नीति निर्माताओं का उच्चवर्ग तो प्रमुख है ही, क्योंकि उन्हीं के इशारे पर छात्रों को पढ़ाई की सारी सुविधाएँ, योजनाएँ मिलती हैं। परन्तु इस प्रक्रिया का व्यावहारिक कार्यभार शिक्षक ही सँभालते हैं। आर्कीटैक्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा एवं विद्या ३.१२

किसी इमारत का नक्शा भर बनाकर अपना काम पूरा करता है। उसकी नींव खोदने से लेकर, इमारत खड़ी करने और छत डालने तक की पूरी प्रक्रिया, सज-मजदूर लुहार, बढ़ई आदि शिल्पी-श्रमजीवी ही मिलकर पूरी करते हैं। शिक्षातन्त्र के विशाल क्षेत्र में, अग्रिम मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों की तरह, शिक्षक समुदाय की ही प्रधान भूमिका रहती है। श्रेय का दावेदार कोई भी क्यों न बने, पर यदि नई पीढ़ी का स्तर वास्तव में ही ऊँचा उठाना है, तो उसमें पहली श्रेणी की भूमिका निभाने में अध्यापकों का श्रम और मनोयोग ही चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करता दिखाई देगा। इस प्रकार उन्हें प्रकारान्तर से नींव के पत्थर जैसी स्थिति में रहने वाले राष्ट्र निर्माता ही कहा जा सकता है। स्वतन्त्रता के बाद जो राहत की साँस लेने का जनसाधारण को अवसर मिला है, उसे प्रगतिशीलता की दिशा में देने का कार्य अध्यापक ही कर सकते हैं। अध्यापकों में भी वे वन्दनीय, अभिनन्दनीय हैं, जिन्हें उपाध्याय का, आचार्य का श्रेय तथा सम्मान मिल सके।

सामान्य अध्यापक पाठ्यक्रम पूरा करने भर में अपनी जिम्मेदारी समेट लेते हैं। छात्र पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं। अध्यापक अपनी कक्षा में उस पढ़ाई को सुव्यवस्थित बनाने की विधि-व्यवस्था बना देते हैं। ढर्रा इसी प्रकार चलता रहता है और परीक्षा देकर फेल-पास होने का क्रम भी चलता रहता है। पास होने वाले छात्रों में उत्साह और फेल होने वालों में निराशा, दुःख देखा जाता है। इस घुड़दौड़ में आगे निकलने वालों को प्रमाण-पत्र तो मिलते हैं पर निश्चित नहीं कि उनके आधार पर कोई अच्छी नौकरी मिल सकेगी या नहीं ? फेल होने वाले बच्चे फिर से पढ़ते हैं या निराश होकर बैठ जाते हैं। पर स्वावलम्बन के आधार पर आजीविका उपार्जन के सम्बन्ध में इस समुदाय के सभी सदस्यों को अनिश्चितता ही घेरे रहती है।

शिक्षा में स्वावलम्बन के लिए उपयुक्त कला-कौशल का समावेश होने की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। उनके लिए व्यापक प्रबन्ध करना जरूरी है। सुसंस्कारिता की दिशा में एक प्रयास यह हो सकता है कि पाठ्य-पुस्तकों में एक प्रकरण नीतिनिष्ठा को उभारने के लिए भी जुड़ा रहे। सामूहिकता, सहकारिता, समाजसेवा, शालीनता, सद्भावना जैसी सत्प्रवृत्तियों को अपनाने, उन्हें व्यावहारिक जीवन में उतारने की सीख भी दी जाती रहे। इस मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का समाधान सुझाया जाये और सद्गुणों के अभ्यास का कोई सुनिश्चित तरीका बताया जाए। पर वैसी कोई सांगोपांग व्यवस्था अभी बन नहीं पाई है। इस सन्दर्भ में कहा तो बहुत कुछ जाता रहा है, उसकी आवश्यकता का समर्थन भी किया जाता है, पर यह सब उथला ही रह जाता है। अनिवार्य पाठ्यक्रम बनाने और उसे सभी कक्षाओं में लागू करने का कोई सरकारी प्रबन्ध अभी तक हो नहीं सका है।

एक डर यह बना रहता है कि नीतिनिष्ठा के पाठ्यक्रम को कहीं धर्म सम्प्रदाय का शिक्षण न कहा जाने लगे ? उसे साम्प्रदायिकता का विष बीज फैलाना न मान लिया जाय ? वस्तुतः इस प्रकार भ्रमग्रस्त होने का कोई कारण नहीं है। धर्म निरपेक्ष राज्य में साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता। उसके लिए मनाही है भी। पर नीतिनिष्ठा को भी उसी लपेट में ले लेना सर्वथा अनुचित है। हो सकता है कि साम्प्रदायिक मान्यताओं में नीति का समर्थन न हो, पर इसी कारण नीतिनिष्ठा को सम्प्रदायवाद कहकर उसकी उपेक्षा-अवमानना भी तो नहीं की जा सकती। नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र आदि निर्विवाद रूप से पढ़ाए जा सकते हैं, तो आदर्शवादिता का पक्षधर आचार शास्त्र क्यों नहीं पढ़ाया जा सकता ? जीवनी विद्या को महत्त्वहीन करके उपेक्षित कैसे किया जा सकता है ? उसे शिक्षण-पद्धति का अविच्छिन्न अंग क्यों नहीं बनाया जा सकता ? आखिर संख्या में अधिक होना ही तो सब कुछ नहीं है, व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का भी तो अपना मूल्य है। इस विषय से अपरिचित रहकर, दृष्टिकोण, चरित्र, व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश भी तो नहीं किया जा सकता। इस अभाव के रहते, किसी से महानता अपनाने और समाज का अभिनन्दनीय घटक बनने की आशा भी तो नहीं की जा सकती।

सरकारी पाठ्यक्रम में यदि नैतिक शिक्षा का अविच्छिन्न आधार का समावेश नहीं है, तो भी उस आवश्यकता को कम से कम शिक्षक तो अनुभव करें और निजी तौर से उस सम्बन्ध में जो कुछ बन पड़ सकता है, उसे करने के लिए तत्परता बरतें, प्रयत्नशील रहें। अभिभावक की तरह अध्यापक की भी कुछ नैतिक जिम्मेदारियाँ हैं। जिस तरह अभिभावक बालकों के लिए रोटी-कपड़े का प्रबन्ध करके अपनी जिम्मेदारियों से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते, उसी प्रकार अध्यापक भी कोर्स की पढ़ाई पढ़ाकर उन उत्तरदायित्वों से छुटकारा नहीं पा सकते, जो अनायास उनकी गुरु गरिमा के साथ सघन रूप में जुड़ गए हैं।

निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करते समय वे बीच-बीच में ऐसी टिप्पणियाँ जोड़ते रह सकते हैं, जिनसे छात्रों को अतिरिक्त दिशा मिलती रहे। वे अपनी निर्धारित पढ़ाई तो दिलचस्पी के साथ पूरी करें ही, पर साथ ही यह भी उत्कंठा जग पड़े कि उन्हें संव्याप्त दुष्प्रवृत्तियों से बचना है, दुष्परिणाम भुगतने के लिए विवश करने वाले कुचक्र में नहीं फँसना है। अपने स्तर को क्रमशः इसी प्रकार विकसित करते जाना है जिससे उनकी गणना प्रामाणिक, जिम्मेदार, प्रतिभावान लोगों में होने लगे। इसके लिए जिस प्रकार का मानव बनाया जाना आवश्यक है, उसे पाठ्यक्रम की विवेचना करते हुए भी हृदयंगम कराया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नीति शिक्षा कहने-सुनने में तो सरल है पर वह अति कठिन है। इसके लिए सबसे पहले अध्यापक को अपना बाहरी और आन्तरिक जीवन ऐसे साँचे में ढालना होता है, जिसका अनुगमन करते हुए सम्बन्धित छात्र अनायास ही प्रामाणिक एवं शालीनता के ढाँचे में ढलने लगें। वाणी, सिद्धान्तवाद का महत्त्व और स्वरूप समझाने में किसी तरह सफल हो जाती है, पर सबसे अधिक प्रभाव परामर्शदाता के परिष्कृत व्यक्तित्व का ही पड़ता है।

आज की परिस्थितियों में कठिनाई समझी जाने वाली नीति शिक्षा को व्यावहारिक और ग्राह्य बनाने का गौरवमय उत्तरदायित्व शिक्षकों पर आता है। वाणी से दिए जाने वाले मार्गदर्शन के साथ-साथ उन्हें चरित्र द्वारा दिए जाने वाले शिक्षण की विधा विकसित करनी होगी। यदि अपने गौरव का अनुभव किया जा सके, तो ऐसा करना कठिन नहीं, रोचक और मनोरम हो जाता है। उसमें घाटा कहीं भी नहीं। छात्रों, अभिभावकों के श्रद्धापात्र बनते ही शिक्षकों को वह उच्चस्तरीय सम्मान और सहयोग प्राप्त होने लगता है, जिसके लिए बड़े-बड़े नेता, अधिकारी तरसते हैं।

शिक्षा में सुसंस्कारिता का समन्वय

प्राथमिक कक्षाओं के लिए तो अध्यापक आवश्यक हैं, क्योंकि उन दिनों बालकों का बौद्धिक विकास अत्यन्त सीमित होता है। सहारे के बिना, उनके लिए सम्भव नहीं कि वर्णाक्षर, स्वर, व्यंजन, गणित आदि की प्रारम्भिक आवश्यकता भी अपने बलबूते पूरी कर सकें। इसलिए प्राथमिक पाठशाला में तो पाठ्यक्रम पढ़ने वालों की सहायता अनिवार्य रूप से आवश्यक रहती है। इसके उपरान्त जैसे-जैसे छात्रों की समझदारी बढ़ती जाती है, अध्यापकों के मार्गदर्शन की आवश्यकता कम होती जाती है। अनेकों छात्र हैं जो घर पर पढ़कर परीक्षा देते हैं और पास होते रहते हैं। ऐसे प्राइवेट कहे जाने वाले छात्रों की संख्या रेगुलर छात्रों की संख्या के लगभग जा पहुँचती है। वे कुन्जियों, गाइडों, गैस पेपर्स आदि से काम चला लेते हैं। कभी-कभी कुछ समय के लिए ट्यूटोरियल प्राइवेट स्कूलों में भी प्रवेश लेते हैं। इस प्रकार उनकी नाव पार लगती रहती है। लड़कियाँ तो अधिकतर उसी पद्धति को अपनाती और स्नातकोत्तर परीक्षा तक पास कर लेती हैं। सयानी होने पर उनके अभिभावक उन्हें कॉलेजों में भेजने से कतराते हैं। विशेषतया देहाती लड़कियाँ तो शहरी बोर्डिंग में रहकर पढ़ने की व्यवस्था से वंचित ही रहती हैं।

तात्पर्य यह है कि बिना अध्यापकों के काम चलाने वाला तन्त्र विकसित होता जाता है। पत्राचार विद्यालय, खुले विश्वविद्यालय, रेडियो, टेलीविजन आदि द्वारा सिखाए जाने वाले पाठ्यक्रम यह सिद्ध करते हैं कि हमारा रुख किस ओर है। अभी भी एम. ए., कानून आदि के छात्र एक घण्टे के लिए कॉलेज की कक्षा में बैठते हैं, बाकी तो सभी तैयारी उन्हें घर पर रहकर ही करनी पड़ती है। यदि स्कूली भर्ती को एच्छिक विषय बना दिया जाय और ट्यूटोरिल स्कूलों में पढ़ाई करने की सुविधा मिल जाय तो फिर देखा जा सकता है कि स्कूल में नियमित भर्ती वाली पसन्द भी कितनों की रहती है ? कारण स्पष्ट है कि पढ़ाने वाले जो कुछ पढ़ाते हैं, वह इतना रहस्यमय या महत्त्वपूर्ण नहीं होता, जिसके लिए भर्ती होकर समय का बंधन बाँधने, फीस देने तथा घर और स्कूल के बीच चक्कर काटने का जोखिम उठाना आवश्यक हो। अनुशासन और व्यवस्था की दृष्टि से स्कूलों का ढाँचा खड़ा रखने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। सोचा जाता है कि पाठशालाओं के वातावरण में शिक्षार्थी अनुशासन सीखता है, पढ़ाई का तरीका सीखता है, सामूहिकता का लाभ उठाता है। पर यदि अभिभावक यह देखने लगें कि बालक के सुधरने, सुसंस्कृत होने जैसी सुविधा स्कूलों में नहीं रही है और वहाँ पाई जाने वाली उच्छृंखलता पनप रही है, तो यह भी हो सकता है कि स्कूलों में भर्ती कराने की अनिवार्यता का महत्त्व घटने लगे। उस स्थिति में प्राइवेट पढ़ाई की प्रवृत्ति पनपे तो यह भी हो सकता है कि जनमत के दबाव से सरकार भी वैसी छूट देने लगे। इससे उसे भी आर्थिक बचत का प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। दूसरे प्रकार के अन्यान्य खर्चों में बचत होती है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि उपयोगिता ही किसी तन्त्र को स्थायित्व प्रदान कर सकती है। मान एवं महत्त्व बनाए रख सकती है। उसमें यदि कमी पड़ेगी, तो निश्चित ही उपेक्षा और अवमानना बढ़ेगी। चिह्न पूजा के लिए होने वाली घेर-बटोर से लोग ऊबने लगेंगे और बन्धनों में रहकर दूसरा रास्ता ढूँढ़ लेंगे।

गैर सरकारी नर्सरी, माण्टेसरी पब्लिक स्कूलों की बाढ़-सी आ रही है। उनकी संख्या तथा छात्रों की भर्ती की संख्या भी निरन्तर बढ़ती जाती है। यद्यपि इस प्रकार के तन्त्र सरकारी स्कूलों की तुलना में काफी महँगे होते हैं फिर भी जिन्हें थोड़ी भी आर्थिक सुविधा है, वे बच्चों को उन्हीं स्कूलों में भेजना पसन्द करते हैं। आकर्षण केवल यही है कि वहाँ मात्र पाठ्यक्रम ही पूरा नहीं कराया जाता, वरन् बाल-विकास की दिशा में अन्य प्रयत्न भी मनोयोगपूर्वक किए जाते हैं।

सामान्यजन भी यह जानते हैं कि जब पढ़ने के बाद नौकरी मिलना दिनों-दिन कठिन होता जा रहा है। तो बच्चों को व्यर्थ क्यों उसमें उलझाए रखा जाय ? उस समय को बचाकर उसे घरेलू व्यवसायों में क्यों न लगाया जाय, ताकि वह अनुभव प्राप्त करने के साथ-साथ काम में हाथ भी बँटाने लगे। इससे पढ़ाई का खर्च भी बचता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और आमदनी में भी कुछ न कुछ अभिवृद्धि होती है। इस कारण अनेकों छात्र अभिभावकों के इस परामर्श में सार देखते हैं और पढ़ाई की चिह्न पूजा छोड़कर काम-धाम सँभालने लगते हैं।

विचारणीय है कि शिक्षा के प्रति ऐसी उपेक्षा और बगावत क्यों पनप रही है ? अभी उसका विस्फोट नहीं हुआ है, पर यह सहज ही जाना जा सकता है कि माहौल किस प्रकार का बन रहा है। असन्तोष की स्थिति लम्बे समय तक नहीं बनी रह सकती, उसका विकल्प उभरता है। शिक्षा का स्तर गिरने से छात्रों और अध्यापकों के बीच की खाई चौड़ी होती जाती है। इस कारण उभरा आक्रोश कई बार इस हद तक पहुँच जाता है कि शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच विग्रह खड़ा हो जाता है। उससे अशोभनीय और अवांछनीय घटनाएँ घटित होती हैं। असन्तोष अभिभावकों में भी रहता है, इसलिए वे उपद्रवी बच्चों को डाँटने की अपेक्षा उन्हीं का पक्ष लेने लगते हैं। पाठ्यक्रम उथले मन से पढ़ाया जाता और सुसंस्कारिता के लिए कारगर प्रयास नहीं किए जाते, इन दो शिकायतों को अभिभावक प्राय: दुहराते रहते हैं और अपने असन्तोष की अभिव्यक्ति समय-समय पर करते रहते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य पढ़ाई पूरी करा देना मात्र दीख पड़ता है। अन्य कोई विशेषता वहाँ से हस्तगत न होने पर प्रत्यक्षदर्शी इस प्रकार सोच भी सकता है। इसका दोष किसे दिया जाय ? शिक्षातन्त्र तो अप्रत्यक्ष है। प्रत्यक्षत: तो उसके संचालक, सम्बद्ध अध्यापक ही दिखते हैं। इसलिए दोष या तन्त्र की कमी भी, उसे प्रत्यक्ष स्वरूप देने वाले अध्यापक में ही दीखती है। असन्तोष का कारण कुछ भी हो, पर प्रत्यक्षवादी उस कमी को अध्यापकों की उपेक्षा या अयोग्यता ही मानते हैं। ऐसी लोकमान्यता के कारण छात्रों की, अभिभावकों की गहरी श्रद्धा अध्यापकों को मिलती नहीं। उन्हें गुरु गरिमा का प्रतिनिधि मानने का भाव जागता नहीं। स्वाभाविक है कि ऐसी दशा में उन्हें उस उच्चस्तरीय मान सम्मान से वंचित रह जाना पड़ता है, जिसके कि वे आरम्भ से ही अधिकारी रहे हैं। आज भी वह सम्मान अध्यापक वर्ग को प्राप्त हो, ऐसी आशा-अपेक्षा की जाती है।

प्राचीनकाल में गुरुकुल प्रणाली थी। घरों से बहुत दूर वन-आरण्यकों में वे स्थापित होते थे। घर आने-जाने की न स्वीकृति मिलती थी और न सुविधा होती थी। उन संस्थाओं में रहन-सहन, आहार-विहार का ऐसा क्रम निर्धारित रहता था कि जिसमें गरीब-अमीर का अन्तर न दिख पड़े। वे संस्थाएँ भिक्षाटन, दान-दक्षिणा से चलती थीं। डाक, मनीआर्डर प्रणाली न होने से अभिभावक नियमित खर्च भेज नहीं पाते थे। ऐसी दशा में सभी को गुरुकुलों में मितव्ययता का मार्ग अपनाना ही पड़ता था। छात्र सुसम्पन्न परिवारों जैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं कर पाते थे। यही नहीं, गुरुकुल व्यवस्था सम्बन्धी अनेक कार्य श्रम से मिल-जुलकर छात्रों को ही करने पड़ते थे। उदाहरणार्थ—आश्रम की स्वच्छता, गौओं को चराना, उनकी सँभाल करना, सब्जी उगाना, बागवानी, जंगल से ईंधन इकट्ठा करके लाना, भिक्षा माँग कर लाना, झोपड़ियों की मरम्मत आदि अनेक श्रमसाध्य काम करने होते थे।

गुरुकुल इस प्रकार असुविधाओं से भरे होते हुए भी, दूर-दूर क्षेत्रों के विचारशील व्यक्ति अपने बालकों को बड़ी उत्कण्ठा से उनमें भर्ती कराते थे। अपने बालकों को आँखों के आगे सुविधाओं के बीच रखने की स्वाभाविक इच्छाओं पर नियन्त्रण रखते हुए, छाती पर पत्थर रखकर फूल से बच्चों को कष्टसाध्य जीवन में प्रसन्नतापूर्वक भेजते थे।

ऐसा क्यों होता था ? क्या वे अभिभावक नितान्त दरिद्र या निष्ठुर थे ? वास्तव में इनमें से एक भी बात नहीं थी। प्रत्यक्ष कारण यह था कि गुरुकुलों से निकलने वाले छात्र, जहाँ कई विद्याओं के ज्ञाता होते थे, वहाँ उनकी प्रतिभा में शालीनता, पुरुषार्थ परायणता के चार चाँद लगे होते थे। इन उपलब्धियों को देखकर न केवल अभिभावक कृतकृत्य होते थे, वरन् पड़ौसी भी छात्रों को हर दृष्टि से सुसंस्कृत, समुन्नत देखकर भाव-विभोर हो उठते थे। उन प्रत्यक्ष उदाहरणों को देखकर अन्यान्य लोग भी अपने बच्चे को बड़ी उत्कण्ठा से गुरुकुलों में भर्ती कराते थे। जिन्हें प्रवेश का अवसर मिल जाता था, वे अपना भाग्योदय हुआ अनुभव करते थे।

गुरुकुलों में पढ़ाई के लिए पाठ्य-पुस्तकें थोड़ी ही होती थीं। उन दिनों प्रेस नहीं थे। कागज भी कम मिलता था। इसलिए हाथ से ही पोथियाँ तैयार की जाती थीं। उनमें सूत्र-संकेत भरे रहते थे, ताकि उनके सहारे पढ़ाए गये विषय की स्मृति उभरती रहे। शिक्षा मानसिक और व्यावहारिक होती थी। अधिक समय तो व्यवहार-कुशलता उभारने और उसके साथ ही आदर्शवादिता, शालीनता आदि का अभ्यास कराने का उपक्रम चलता था। अध्यापकगण इसी पक्ष को पूरा करने में अपनी अधिकांश शक्ति नियोजित करते थे। उन दिनों परीक्षा और सफलता की जाँच-पड़ताल इसी आधार पर होती थी कि किसने मानवी गरिमा के अनुरूप प्रतिभा उभारने में, किस सीमा तक प्रगति की। छात्र, अभिभावक, अध्यापक सभी शिक्षा की सार्थकता को इसी कसौटी पर कसते थे।

यही सब कारण थे, जिससे उन दिनों गुरुकुलों से निकलने वाले छात्र नर-रत्न कहे जाते थे। वे अपनी चरित्र निष्ठा, प्रतिभा और लोकसेवी प्रवृत्ति में इतने खरे पाए जाते थे कि सर्वसाधारण द्वारा उन्हें सतत् सम्मान और सहयोग प्राप्त होता रहे। ऐसे ही सुशिक्षित छात्रों का जिन दिनों बाहुल्य था, उन दिनों यह देश ३३ करोड़ जनसंख्या वाला वृहत्तर भारत तैतीस कोटि देवताओं का निवास माना जाता था। इसलिए उन नर-रत्नों की जन्मभूमि को **'स्वर्गादपि गरीयसी'** होने का, विश्व श्रद्धा से सिंचित होने का गौरव मिलता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीनकालीन सतयुग और कुछ नहीं गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा-पद्धति का चमत्कार था। सर्वजनीन बहुमुखी पुनरुत्थान के लिए हमें उसी विद्या, उसी परिपाटी से प्रेरणा लेनी होगी। समय के साथ परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। इसलिए ठीक प्राचीनकाल जैसी विधि-व्यवस्था तो नहीं अपनाई जा सकती, पूरी तरह से उसी की प्रतिमूर्ति खड़ी करना सम्भव नहीं है। परन्तु इतना तो हो ही सकता है कि उस पद्धति का स्वरूप एवं अनुशासन गम्भीरतापूर्वक समझा जाय और उतने भर को वर्तमान शिक्षाक्रम में समाविष्ट कर लिया जाय। परिस्थितियाँ बदल जाने से उसी पद्धति को तो ज्यों का त्यों नहीं लाया जा सकता, पर वह सिद्धान्त तो शाश्वत है। शिक्षा के साथ प्रतिभा निखार और सुसंस्कारिता-सम्वर्द्धन का क्रम तो जोड़ा जा सकता है। इसे तो अध्यापक वर्ग द्वारा, अपने ही बलबूते प्रारम्भ किया और बहुत हद तक सफल बनाया जा सकता है। तीसरा पक्ष स्वावलम्बन भी शिक्षा के साथ सुसम्बद्ध होना चाहिए। पर इसके लिए शिक्षातन्त्र की मनःस्थिति और परिस्थिति ही कुछ कर सकेगी। जनस्तर पर भी वैसा प्रबन्ध बन पड़ना सम्भव है।

आज के अध्यापक को अपनी गरिमा और जिम्मेदारी अधिक गम्भीरता से समझनी चाहिए। शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता जोड़ने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा शिक्षा की उपेक्षा और शिक्षकों की अवज्ञा का जो माहौल चल पड़ा है, वह बढ़ता ही जाएगा। अरुचिपूर्वक किसी तरह पाठ्यक्रम पूरा करा देने पर तो शिक्षक अपनी उपयोगिता और महत्ता में से एक भी बनाए न रह सकेंगे। इसलिए विद्यार्थियों की उन्नति और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की दोनों दृष्टियों से शिक्षकवर्ग को यह नया क्रम अपनाना ही होगा।

शिक्षा ही नहीं दीक्षा भी

गिराना सरल है, उठाना कठिन। एक माचिस की तीली एक छप्पर से आगे बढ़कर पूरे गाँव को स्वाहा कर सकती है। पर उतना बड़ा साधन सम्पन्न गाँव ज्यों का त्यों खड़ा करने में असाधारण रूप से समय, साधन और श्रम लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। छत पर खड़े व्यक्ति को हल्का सा धक्का देकर जमीन पर गिराया जा सकता है। उसे हाथ-पैर टूटने जैसा आघात लगाया जा सकता है। किन्तु कुँए का पानी नीचे से ऊपर लाने के लिए रस्सी, बाल्टी ही काफी नहीं, तदनुरूप शक्ति नियोजित करने की भी आवश्यकता पड़ती है। वातावरण में अस्वच्छता फैलाना हो तो बिना जड़ की अमरबेल की तरह ही समूचे पेड़ को आच्छादित किया जा सकता है। काई और जलकुम्भी देखते-देखते सारे जलाशय पर छा जाती हैं परन्तु उपयोगी कृषि करने के लिए तो भूमि को उर्वर बनाने, बढ़िया बीज डालने, खाद, पानी, रखवाली जैसे अनेक प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। यही बात मनुष्य में सत्प्रवृत्तियाँ उभारने के सम्बन्ध में भी लागू होती है। उसे अपनाने में नाविक जैसा साहस, कौशल एवं पराक्रम चाहिए, तभी स्वयं नदी पार करना और अन्यों को पार उतारना सम्भव होता है।

शिक्षक यों देखने में सामान्य वेतन पाने वाले और निर्धारित पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ बतलाते रहने वाले श्रमिक भर प्रतीत होते हैं, पर गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो उनकी उपयोगिता, आवश्यकता एवं गरिमा असाधारण प्रतीत होती है। उनके ऊपर लदी जिम्मेदारियाँ इतनी भारी प्रतीत होती हैं, जिनको उठाने, इधर-उधर ले जाने के लिए क्रेनों की आवश्यकता पड़ती है। यों शिक्षकों का मोटा काम, पाठ्यक्रम पूरा करा देना, छात्रों को उपदेश-परामर्श भर देना प्रतीत होता है, परन्तु बात इतने भर से बनती नहीं है। पढ़ाई पूरी करने में सहायता देने वाले तो अब अनेकों मार्ग निकल आए हैं। भविष्य में और भी ऐसी सरलताएँ, सुविधाएँ आविष्कृत हो सकती हैं जो छात्रों को पाठ पढ़ा देने वाले कार्य का स्थान ले लें। तब हो सकता है कि ऐसी स्थिति में नियुक्त अध्यापकों को ज्यों-त्यों करके अपना समय गुजारना पड़े, या आवश्यकता घट जाने पर कोई दूसरा काम तलाशना पड़े ? कम उपयोगी वस्तुओं और व्यक्तियों का भार किसी हद तक कुछ समय तक वहन भर कर लिया जाता है। उन्हें अनिवार्य स्तर की आवश्यकता मान कर, सिर माथे पर बिठाने जैसा सम्मान और महत्त्व नहीं दिया जा सकता। तिरस्कृत-उपेक्षित अध्यापक को वैसी प्रसन्नता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती जैसी गुरुकुल युग में होती रही और भविष्य में भी होनी चाहिए।

अध्यापक गौरवान्वित हों, उनका उच्चस्तरीय मूल्यांकन किया जाय, अभिभावक उनके प्रति कृतज्ञ रहें, छात्र बड़े अधिकारी या व्यापारी बन जाने पर भी उनके कारणों की धूलि मस्तक पर रखते रहें, यह तभी सम्भव है, जब अध्यापक व्यक्तित्वों में प्रतिभा और सुसंस्कारिता उभारने की बढ़ी-चढ़ी जिम्मेदारी वहन करें। भले ही यह कार्य वर्तमान शिक्षा पद्धति का अंग न माना जाता हो, भले ही इसकी अनिवार्यता उनकी वेतन की शर्तों में शामिल न हो, भले ही कानूनी ढंग से उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य न किया जा सकता हो, तो भी उनके पद की गौरव गरिमा इस बात के लिए विवश करती है कि वे अपने छात्रों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए अभिभावकों जितना ही रस लें। अभिभावक शिक्षण कला में प्रवीण नहीं होते। सुसंस्कारिता का महत्त्व उन्होंने नहीं समझा और इसके लिए कोई दिशाधारा भी उन्हें ज्ञात नहीं होती। ऐसी दशा में अनजान होने के कारण अभिभावकों को तो क्षमा भी किया जा सकता है, पर अध्यापक इस जिम्मेदारी से बच नहीं सकते। वे यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकते कि उन्हें पाठ्यक्रम पूरा करने भर का वेतन मिलता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न मानवी मूल्यों के संरक्षण और अभिवर्द्धन का है। वह स्वभावत: उन्हें ही हल करना होगा, जिन्हें उसके लिए अवसर प्राप्त है। इच्छा या अनिच्छा में उन्हें ही लोक कल्याण की व्यापक दृष्टि से सोचना पड़ेगा और उसका हल निकालना पड़ेगा। सामने आ खड़ी जिम्मेदारी को स्वयं ही वहन करना होगा। क्योंकि इसका विकल्प है ही नहीं। यह कार्य किसी अन्य विभाग से नहीं कराया जा सकता। इसे नौकरों से नहीं कराया जा सकता, न वैज्ञानिक, इन्जीनियर, डॉक्टर, वकील, व्यवसायी ही इसे पूरा सकते हैं। क्योंकि उनका गीली मिट्टी की तरह कच्ची उम्र के, विकास के लिए उपयुक्त मनोभूमि वाले छात्र वर्ग के साथ निकट का सम्पर्क ही नहीं बन पाता। बिना सम्पर्क बने कोई किसी के व्यक्तित्व-परिष्कार के लिए कुछ कर भी नहीं सकता।

केवल अध्यापक ही ऐसा वर्ग है, जो नई पीढ़ी को न केवल शिक्षित साक्षर बनाता है, वरन् अपनी शिक्षक स्थिति के कारण उन्हें सुसंस्कृत भी बना सकता है। किसान ही कृषि कर सकते है जुलाहे नहीं, क्योंकि कार्य करने के लिए विषय की प्रवीणता भी चाहिए और अवसर भी। अन्य वर्ग कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, उन्हें वह अवसर प्राप्त नहीं कि व्यक्तित्व के विकास के सही आयु वाले छात्र उनके सम्पर्क में लगातार बने रहें। यह कार्य धर्मोपदेशक भी नहीं कर सकते, क्योंकि वे थोड़ी देर घटाटोप की तरह बरस कर हवा के साथ उड़ जाते हैं। सिंचाई के लिए तो पौधे के अनुसार समय-समय पर रिमझिम बरसने वाले बादल चाहिए। धर्मोपदेशक, नेता आदि उत्तेजना पैदा करके बाढ़ जैसा उभार ला सकते हैं, पर वे छात्रों को सुविकसित बनाने वाला वह काम नहीं कर सकते, जो उनके साथ लम्बे समय तक रहने वाले, श्रद्धासिक्त अध्यापक कर सकते हैं। इसलिए भावी पीढ़ी को व्यक्तित्व सम्पन्न, प्रतिभावान, प्रामाणिक एवं प्रखरता सम्पन्न बनाने की आशा-अपेक्षा अन्य किसी वर्ग से नहीं की जा सकती।

महामारी फैलने पर उससे सम्बन्धित विशेषज्ञों और कुशल चिकित्सकों की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। जिनके प्राणों पर बीत रही है, ऐसे रोगी तथा उस पर परिवार के रोते-कलपते सदस्य अपनी सारी आशाओं का केन्द्र चिकित्सक को मानते हैं। उसे भगवान समझ सकते हैं, जो उनके अन्धकारमय भविष्य और संत्रस्त वर्तमान को हटा सकने में समर्थ समझा जाता है। उसके साथ पीड़ित पक्ष की भावसंवेदना, आशा-अपेक्षा पूरी तरह जुड़ जाती है। वे सोचते हैं कि यदि चिकित्सक पूरा ध्यान दें तो उस पीड़ित परिवार की जीवन नौका पार लग सकती है। जिनका समय नहीं आ गया है, उन्हें छोड़कर अधिकांश को बचा लेने का श्रेय अनुभवी चिकित्सक प्राप्त कर सकता है। इसके बदले निर्धारित फीस के अतिरिक्त जन्म भर याद रहने वाली कृतज्ञता, सद्भावना उन्हें चिरकाल तक मिलती रहती है। अध्यापक भी ऐसे ही चिकित्सक हैं, जो अनगढ़-टूटे व्यक्तियों को श्रेष्ठ-समुन्नत बनाने में सहज सफल हो सकते हैं।

इसके विपरीत यदि बीमारी की भयंकरता, महामारी के 'हाहाकार' की 'त्राहि-त्राहि' मची होने पर भी, चिकित्सक उपेक्षा बरतें, समय रहते हुए भी चिकित्सा में प्रमाद बरतें और मौज-मस्ती को प्रधानता दें तो वह व्यवहार हर किसी की दृष्टि में अखरेगा। उससे रोगियों को तो हानि उठानी ही पड़ेगी, चिकित्सक भी निन्दा, तिरस्कार का भाजन बनेगा। उसे अपयश भी मिलेगा और वह आत्मसन्तोष का लाभ भी नहीं पा सकेगा। इस कारण भविष्य में उसे जनसहयोग भी न मिलेगा। स्वार्थी प्रमादी को प्रतिष्ठा कहाँ मिलती है ? उसका सहायक कौन बनता है ? उसके लिए प्रशंसा के शब्द किसके मुँह से निकलते हैं ?

यही बात अध्यापकों के ऊपर भी ज्यों की त्यों लागू होती है। उदीयमान पीढ़ी के बारे में उक्ति है कि 'पूत के पाँव पालने में ही दीखने लगते हैं।' अगले दिनों छात्रों को देश की बागडोर सँभालनी है, समाज की सुव्यवस्था बनानी है, प्रगति की योजनाएँ साकार करके दिखानी हैं। यदि उनका व्यक्तित्व उच्चस्तरीय नहीं हुआ, तो उन्नत भविष्य की आशा पर तुषारापात हो जाएगा। चरित्रहीन व्यक्ति कितने ही क्रिया-कुशल क्यों न हों घटिया स्तर की मनोभूमि के रहते समग्र उत्थान का कार्य पूरा न कर सकेंगे। वे अपनी कृतियों में छिद्र रखेंगे और उन्हीं में होकर उत्कर्ष की आशा का सार तत्त्व बहा देने का दोष लगता दिखाई देगा। ऐसी दशा में किसी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का कोई महत्त्वपूर्ण कार्य बन नहीं पड़ेगा। यदि ज्यों-त्यों करके लोग दिन गुजारते रहे, प्रगति के प्राणवान आधार खड़े न हो सके, तो बदलते समय की बढ़ती माँगों को कैसे पूरा किया जा सकेगा। उसकी पूर्ति का दायित्व कौन वहन करेगा ?

शिक्षा, साक्षरता की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता। यह तो पेट को भोजन देने की तरह मस्तिष्क को विकसित करने, समझ-बूझ और कौशल बढ़ाने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। इसे सभी जानते भी हैं और मानते भी हैं। इसी आधार पर समूचा शिक्षा का तन्त्र खड़ा किया गया है। अनुभव वृद्धि की दृष्टि से अन्यान्य उपाय भी काम में लाए जाते हैं। यह सब तो यथावत चलने ही चाहिए। वरन् इन प्रयासों में और भी अधिक अभिवृद्धि होनी चाहिए, ताकि अधिक सूझबूझ वाले, अधिक सुशिक्षित और क्रिया-कुशल व्यक्ति विनिर्मित हो सकें। इतने पर भी यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि यदि व्यक्तित्वों में शालीनता का समावेश न हुआ, दृष्टिकोण का परिष्कार और व्यवहार में सदाशयता का, चरित्रनिष्ठा का पुट न लग सका तो चतुर होते हुए भी लोग खोखले बनकर रह जाएँगे। आदर्शवादिता के अभाव में उस शून्य को भरने के लिए निकृष्टता चढ़ दौड़गी, घटियापन बढ़ेगा। उस आधार पर संकीर्ण-स्वार्थपरता की आपाधापी भर बढ़ सकती है, सार्वजनिक उत्कर्ष की सुव्यवस्था तो बन ही नहीं सकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न यह उभरता है कि उच्चस्तरीय व्यक्तित्व, महामानव स्तर की प्रामाणिक, परमार्थ-परायण प्रतिभाओं का समुचित निर्माण क्यों नहीं हुआ ? क्यों नहीं हो रहा है ? इसका सहज उत्तर यही बन पड़ता है कि उसके लिए निर्माणकर्ता तत्परता के साथ संलग्न नहीं हुए। बनाए बिना भी कोई वस्तु क्या अपने आप बनती है ? बनाने का समुचित प्रयास नहीं हुआ, तो न बनाने की शिकायत तो रहनी ही थी ? विस्तार पर ध्यान नहीं दिया गया तो देश में अन्न संकट पैदा हो गया था। उसे दूर करने के लिए हरित क्रान्ति के रूप में व्यापक अभियान चलाया गया, तभी उसे दूर करने के लिए बड़े-बड़े बाँध से लेकर छोटे-छोटे ट्यूबवेलों तक के विकास पर शक्ति लगानी पड़ी। इसी तरह श्रेष्ठ व्यक्तित्वों के अकाल को दूर करने के लिए भी सुनिश्चित प्रयास करने ही होंगे।

व्यक्ति और समाज के निर्माण में शासकों, विचारकों, साहित्यकारों, कलाकारों, सुसम्पन्नों आदि का अपने ढंग का योगदान हो सकता है। वे जैसा कुछ भला-बुरा सोचते हैं, उसका परिणाम भी सामने आता है। उन सबको भी नवसृजन के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। इतने पर भी प्रधान जिम्मेदारी अध्यापक की ही बनती है। हर किसी की आशा का केन्द्र-बिन्दु वहीं आकर जमता है। वह केवल पाठ पढ़ाकर ही छुटकारा न पाए। गुरुजनों, अभिभावकों जैसी व्यवस्था बनने, वातावरण पैदा करने में रुचि लें तो इस गई-गुजरी स्थिति में भी बहुत कुछ सफलता मिल सकती है, अभी भी उसके हाथ में जो अवसर, शक्ति, सुविधा और समय है, उसका उपयोग करें तो प्रयोजन सध सकता है। पाठ्यक्रम पूरा कराने के साथ ही साथ छात्रों का व्यक्तित्व उभारने, प्रतिभा निखारने और उन्हें आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनाने में पर्याप्त सफलता मिल सकती है। शिक्षा के साथ दीक्षा का समन्वय इसी को कहते हैं। जिन अध्यापकों ने भी इस दिशा में संकल्पपूर्वक कदम उठाए हैं, वे पूरी तरह सफल होकर रहे हैं। उन्हें इस दिशा में सक्रिय होने से लाभ ही लाभ मिले। वेतनमान तो जो था वह रहा ही, उसमें तो कमी होनी ही नहीं थी। साथ में लोकसम्मान, यश और आत्मसन्तोष अतिरिक्त मिला। सारे क्षेत्र में वे प्रचुर सम्मान और सहयोग पाते हुए सुखी जीवन जी सके।

सतसंकल्प पूरे किए जा सकते हैं

महान देशभक्त स्वर्गीय राजा महेन्द्रप्रताप बहुत समय तक सोचते रहे कि देश को आजाद कराने और समुन्नत स्तर तक पहुँचाने के लिए क्या किया जाय ? क्या उपाय अपनाए जाने चाहिए ? अनेकों दृष्टिकोणों से अनेक योजनाएँ बनाते रहने के उपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महान कार्य सम्पन्न करने के लिए महामानव स्तर की प्रतिभाएँ चाहिए। उन्हें कहाँ पाया जाय ? उत्तर था कि ऐसे लोग बने-बनाए कहीं नहीं मिलते, न वे कहीं से आयात किए जाते हैं। पुराने समय के कुछ लोग वैसे रहे भी हों तो उनकी आयु ढल जाने पर कार्य शक्ति नहीं रहती। पुरुषार्थ तो उठती और परिपक्व आयु में ही करते बन पड़ता है। इसे नवयुवकों में ही पाया जा सकता है। वे भी कहीं विनिर्मित नहीं मिलते। अपनी आवश्यकता के अनुरूप समय की माँग को देखते हुए अपने ढंग से, अपने ढाँचे में ढाले जाते हैं। इसलिए एक ऐसा विद्यालय खोजा जाना चाहिए, जिसमें न केवल प्रचलित सामान्य शिक्षा दी जाय वरन् प्रतिभाएँ ढालने का काम भी साथ-साथ चले। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति इसी प्रयोजन के लिए दान कर दी और प्रेम महाविद्यालय नाम से एक विद्यालय वृन्दावन में खड़ा किया गया।

इमारत को विद्यालय तो कहा जाता है, बोर्ड भी वैसा ही लगता है, पढ़ाने का साज-सरंजाम एवं पाठ्यक्रम भी सभी में प्रायः मिलता-जुलता ही होता है। इसकी न्यूनाधिकता से कुछ बहुत फर्क नहीं होता। असल बात है शिक्षा का स्तर, उनकी आदर्शवादिता और छात्रों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढालने की लगन। डॉक्टर सम्पूर्णानन्द जो बाद में उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री और राजस्थान के राज्यपाल बने, उसी विद्यालय में अध्यापक थे। इसी स्तर के आचार्य जुगलकिशोरजी बाद में उत्तरप्रदेश सरकार में शिक्षामन्त्री बने। प्रो. कृष्ण चन्द्र जो लम्बे समय तक केन्द्रीय पार्लियामेन्ट के सदस्य रहे, वे और इसी स्तर के अन्यान्य अध्यापक भी थे, वे सब विद्यालय के छात्रों के साथ इस प्रकार गुँथ गए कि कीट-भृंग की किंवदन्ती चरितार्थ हुई। पढ़ने वाले आजादी के दीवानों के ढाँचे में ढल गए। सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ हुआ। प्रेम महाविद्यालय के पुराने और वर्तमान के सभी छात्र उसमें कूद पड़े। प्रान्त का आन्दोलन अग्रणी रहा। उसमें इन छात्रों की भूमिका ही प्रमुख थी। अँग्रेज सरकार को पता चला तो सभी नये पुराने छात्र ढूँढ़-ढूँढ़कर गिरफ्तार कर लिए गए। विद्यालय सील किया गया, उसकी सम्पत्ति जब्त की गई। इसे कहते हैं पढ़ाई-ढलाई।

यही विचार अनेकों के मन में कौंधा। योगी अरविन्द ने कलकत्ता में नेशनल कॉलेज बनाया, तो बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने काशी विद्यापीठ, सरदार पटेल के प्रयत्न से गुजरात विद्यापीठ बनी। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की। इन सभी संस्थानों में अध्यापक इस स्तर से नियुक्त किए गए, जो पेट भरने के लिए नहीं, कुछ कर दिखाने की लगन लेकर योग्यता से कहीं कम वेतन लेकर टकसालों में खरे सोने के सिक्के ढालने में लगे रहें।

प्राचीनकाल में देश-विदेशों में बौद्धिक क्रान्ति करने के लिए नालन्दा विश्वविद्यालय और तक्षशिला विश्वविद्यालयों ने महती भूमिका निवाही। उन्होंने कुमार जीव जैसे प्रचण्ड प्रतिभा के धनी धर्म प्रचारक ढाले, जिसकी यश गाथा सुनते-सुनते जी नहीं भरता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अत्यावश्यक नहीं कि इस स्तर के संस्थान बनाने, चलाने में आरम्भिक पूँजी जुटाने के लिए सरकार का मुँह ताकना पड़े या धनीमानियों के सामने अनिवार्य रूप में पल्ला पसारना पड़े। अध्यापकों का स्तर उनके विद्यालयों के लिए न केवल पर्याप्त छात्र जुटा देता है वरन् आवश्यक साधन भी अपने चुम्बकत्व से खींचकर बुला लेता है। राजस्थान के श्री हीरालाल शास्त्री ने एक पेड़ के नीचे बैठकर थोड़ी सी कन्याओं को स्वयं पढ़ाना शुरू किया था। ख्याति फैली तो थोड़े ही दिनों में वहाँ विश्वविद्यालय स्तर का वनस्थली विद्यालय बनकर खड़ा हो गया। शेखावटी के स्वामी केशवानन्द अल्पशिक्षित होते हुए भी उस इलाके में गाँव-गाँव प्राथमिक विद्यालयों से लेकर कॉलेजों तक की शृंखला खड़ी करने में सफल हुए। दोनों ही सज्जनों को जनता ने सिर-नेत्रों पर बिठाया। हीरालाल शास्त्री राजस्थान के मुख्यमंत्री रहे और स्वामी केशवानन्द लम्बे समय तक केन्द्रीय लोकसभा के सदस्य रहे। उत्तरप्रदेश राठ-हमीरपुर में ब्रह्मानन्द विद्यालय प्रसिद्ध है। आगरा जिले में बाबा दूधाधारी द्वारा स्थापित कॉलेज का इतिहास भी इसी प्रकार का है। अलीगढ़ जिले के सासनी गाँव में लक्ष्मी देवी ने अपने बलबूते जंगली, झाड़-झंखाड़ों को काटकर कन्या गुरुकुल खड़ा किया। ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, जिनमें जीवट वाले व्यक्तियों ने न केवल स्वयं अध्ययन कार्य किया वरन् आवश्यक साधनों को भी जुटाया।

बात जीवट की चल रही है। यदि उसका अस्तित्व मौजूद हो तो साधन भी जुटाए जा सकते हैं और छात्रों के व्यक्तित्व अध्यापकों के ढाँचे में ढल सकते हैं। इस सन्दर्भ में स्वामी श्रद्धानन्द का उल्लेख विशेष रूप से करना पड़ता है। उन्होंने न केवल अपना घर बेचकर छप्पर के नीचे दस विद्यार्थियों को लेकर विद्यालय चलाया वरन् छात्रों को लोकसेवी बनाने की दिशा में भी बहुत कुछ कर दिखाया। उस विद्यालय के आरम्भिक छात्रों में से अधिकांश ऐसे रहे, जिन्होंने देश का गौरव बढ़ाने वाले एक से एक बढ़कर काम किए। विनोबा के पवनार आश्रम ने भी अनेकों सर्वोदयी कार्यकर्ता राष्ट्र को प्रदान किए। मथुरा का चम्पा अग्रवाल कॉलेज का भी ऐसा ही इतिहास है, जो प्राथमिकशाला से बढ़ते-बढ़ते डिग्री कॉलेज तक पहुँचा। इसकी प्रगति के पीछे मास्टर जगदीश प्रसाद की लगन ही महती भूमिका आदि से अन्त तक निभाती रही। महर्षि कर्वे का महिला विद्यालय प्रसिद्ध है। प्रयाग महिला विद्यापीठ भी अपने संस्थापकों की यश गाथा गाती रहेगी, इन उदाहरणों के माध्यम से कहा इतना भर जा रहा है कि जीवट वाले अध्यापक विद्यालय की आवश्यक साधन-सामग्री ही नहीं जुटा लेते वरन् छात्रों को भी कुछ से कुछ बना देते हैं। अरस्तू, सुकरात, कन्फ्यूसिस ऐसे ही प्रतापी अध्यापक थे। सुदामा के गुरुकुल की आर्थिक कठिनाइयों का समाधान करने के लिए कृष्ण ने अपनी द्वारिका वाली समूची सम्पदा सुदामापुरी में स्थानान्तरित कर दी थी। चाणक्य मूलत: अध्यापक ही थे, शासन के प्रधानमन्त्री गौण रूप से ही रहे। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के संदीपन ऋषि के गुरुकुल ऐसे थे, जिनमें पढ़कर राम और कृष्ण भगवान रूप में प्रख्यात हुए। गोपालकृष्ण गोखले राजनैतिक क्षेत्र में बहुत कुछ करते हुए भी मूलत: शिक्षा सम्वर्द्धन के लिए समर्पित रूप से जुटे रहे।

आवश्यक नहीं कि सभी अध्यापक उपरोक्त उदाहरणों का अनुगमन करें, उतने ही बड़े कदम उठाएँ। पर यह तो हो ही सकता है कि वे वेतन की शर्तों के साथ जुड़ी हुई निर्धारित प्रक्रिया को ज्यों का त्यों करके पूरा न करते रहें, वरन् अपने सांस्कृतिक गौरव को भी समझें। अपने विशेष सम्मान भरे पद के अनुरूप विशिष्ट उत्तरदायित्वों को समझें और उन्हें पूरा करने के लिए अतिरिक्त रूप में भी कुछ न कुछ करते रहें।

अध्यापक वर्ग में से जिनके भी अन्त:करण में यह प्रेरणा उभरे कि उन्हें सौंपे गए छात्रों के व्यक्तित्व निखारने और भविष्य उज्ज्वल बनाने हैं, तो उन्हें उसके प्रति अभिभावक स्तर की ममता उभारनी पड़ेगी, पढ़ाने की चिह्न-पूजा तक सीमित न रहकर उन्हें स्नेहासिक्त आत्मीयता के बंधनों में बाँधना पड़ेगा। जहाँ ऐसी स्थापना होगी, वहाँ छात्र भी उनके प्रति सघन श्रद्धा व्यक्त करने में पीछे न रहेंगे। अनुशासन तोड़ने की शिकायत उत्पन्न न होने देंगे। छात्रों की उच्छृंखलता के अनेक कारणों में से यह भी एक है कि उन्हें संरक्षकों से आवश्यक दुलार, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन नहीं मिलता। कोरे उपदेश एक कान से सुने जाते हैं और दूसरे कान से बाहर निकाल दिए जाते हैं। भावना ही हृदय के मर्मस्थल तक पहुँचती है। यदि सम्बद्ध छात्रों को अध्यापकगण आत्मीयता की जंजीर में जकड़े रहें तो वे भी रस्सी तुड़ाकर भागने और मनमानी करने की धृष्टता धारण न करेंगे। इस तथ्य की यथार्थता को कोई कहीं भी, कभी भी जाँच सकता है।

इस आधार को अपनाने पर स्वभाव में कुछ प्रारम्भिक परिवर्तन करने होते हैं। उनमें से एक यह है कि सदा सौम्य स्वर अपनाया जाय। जो भी कहा जाय शान्तिपूर्वक, मधुर स्वर से, कहा जाय। मुद्रा हँसती-मुस्कराती रखी जाय। अन्यान्यों की तरह छात्रों को भी सम्मान दिया जाय, उनके गुणों की प्रशंसा भी समय-समय पर करते रहा जाय। भले ही वे गुण थोड़े या हल्के ही क्यों न हों। उत्तेजित, आवेशग्रस्त, कर्कश स्वर में कुछ भी नहीं कहा जाना चाहिए। उपयुक्त बात को भी अनुपयुक्त ढंग से नहीं कहा जाना चाहिए। उठती आयु के बच्चे बहुत संवेदनशील होते हैं। उन्हें अपने आत्मसम्मान में थोड़ी-सी चोट पड़नी भी सहन नहीं होती। कुछ और भले ही न मिले पर आदर और दुलार की अनुभूति तो होनी ही चाहिए, हित-अनहित समझने की दूरदर्शिता उनमें नहीं होती। वे अपना-पराया समझने का निर्णय इस आधार पर करते हैं कि किसने मीठे स्वर में बात की, किसने कड़वे-कर्कश स्वर में।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुलार-तिरस्कार का, मानापमान का, अनुभव बालक बहुत छोटी आयु से ही करने लगते हैं। ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, यह संवेदनशीलता और भी बढ़ जाती है। आत्म-निरीक्षण का माद्दा विकसित न होने के कारण वे किसी का वास्तविक उद्देश्य तो समझ नहीं पाते, बाह्य व्यवहार को ही सब कुछ मान बैठते हैं और उसी आधार पर किसी को हितैषी, विद्वेषी मान लेते हैं। जिसे हितैषी समझते हैं उसके लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। विद्वेषी होने का भान होने पर विदक और उचट जाते हैं। ऐसी दशा में परामर्श मानना कैसे बन पड़ेगा ? कुनैन की गोली, चीनी की चासनी चढ़ाकर पानी के सहारे गले उतरवाई जाती है। ऐसी चतुरता विशेषतया बालकों के किशोरों के साथ तो बरती ही जानी चाहिए। इतना अपना सुधार करने के उपरान्त ही सलाह देने, मार्गदर्शन करने की बात मानी, अपनाई जाने की आशा करनी चाहिए।

आत्म भाव जताने का एक और सरल तरीका यह है कि अध्यापक अपने छात्रों के नाम याद रखें और यथा अवसर उन्हें नाम लेकर पुकारें, गोत्र लगाया जाता हो तो उसे भी लगाएँ। नाम के अन्त में जी का प्रयोग करें। छोटों को सम्मान देने में बड़ों की हेठी नहीं होती वरन् उनका मन जीतने की यह एक अच्छी पद्धति है। इससे अपनी आदत सुधरती है और जिसे सम्बोधित किया गया है, उसे प्रसन्नता होती है। स्मरणशक्ति कमजोर हो तो डायरी में हुलिया और नाम की संगति नोट कर ली जाय, इतने भर से नाम और रूप की संगति बैठ जाती है और नाम लेकर पुकारने में जो कठिनाई प्रायः आती है, वह सहज ही दूर हो जाती है।

वार्तालाप जिस भी विषय पर करना हो उसका सिलसिला चालू रखते हुए भी यह किया जाना चाहिए कि उसकी अच्छाइयों, सफलताओं, सराहनीय क्रियाओं को ध्यान में रखा जाय और उनकी चर्चा की पुट लगाते रहा जाय। इतने भर से विद्यार्थी अपने मार्गदर्शक के प्रति आत्मीयता जोड़ लेता है, श्रद्धा बढ़ाता है और परामर्श मानता है। इस आधार पर उसके सुधार वाली बात को क्रमशः आगे बढ़ाया जा सकता है।

इस सबके लिए बाहर से साधन बढ़ाने की नहीं अंतरंग साधना बढ़ाने की आवश्यकता है। साधना सम्पन्न शिक्षक जब संकल्प लेकर आगे बढ़ता है, तो आवश्यक साधन भी जुटने लगते हैं। साधनों का अभाव ऐसे मनस्वियों के संकल्प में न कभी जुटने लगते हैं। साधनों का अभाव ऐसे मनस्वियों के संकल्प में न कभी बाधक बन सकता है और न भविष्य में बाधक बन सकेगा। जिन भावनाशील अध्यापकों के मन-मस्तिष्क में ऐसे संकल्प उभरें, वे कुछ कर गुजरने में झिझकें नहीं। सीमित मात्रा में ही करें, पर सुनिश्चितता के साथ करें, तो समय की महती आवश्यकता की पूर्ति का एक नया चक्र प्रारम्भ हो सकता है।

अध्यापकों और छात्रों के बीच सघन सम्पर्क बने

अभिभावकों और बालकों के बीच आत्मीयता का सघन सम्बन्ध होता है। इसी से प्रेरित होकर वे बालकों के लिए सभी आवश्यक साधन-सामग्री जुटाते रहते हैं। आवश्यक काम छोड़कर भी उन्हें प्रसन्नता प्रदान करने के लिए खिलाते, दुलारते हैं। उनके नटखटपन पर क्रोध न लाकर उसे दर-गुजर करते रहते हैं, यथासम्भव समझाते-बुझाते रहते हैं, विवेक जगाते, औचित्य-अनौचित्य का भेद समझाते रहते हैं। उनका भविष्य उज्ज्वल होने की आशा लगाए रहते हैं, कमियों को दूर करते हैं। खीज और निराशा से ग्रसित नहीं होते, वरन् आस्थापूर्वक अपने पक्ष का कर्तव्य पालन करने में कुछ उठा नहीं रखते, भले ही बालक उपेक्षा-अवमानना ही क्यों न बरतते रहें। जिस हद तक सम्भव है, वे उन्हें सुयोग्य-समुन्नत बनाने की आशा ही नहीं सँजोये रखते, वरन् इस सन्दर्भ में जो कुछ बन पड़ता है, उसे कर दिखाने में भी भूल नहीं करते। वे जानते हैं कि बच्चे के बनने-बिगड़ने में उन्हें भी श्रेय या अपयश मिलने वाला है। इसलिए बच्चों की अनुपयुक्त प्रतिक्रिया दीख पड़ने पर भी अपने पक्ष पर आँच नहीं आने देते।

अभिभावकों से बढ़कर दायित्व अध्यापकों का है, क्योंकि जो क्षमता, परिस्थिति एवं सहज श्रद्धा उन्हें उपलब्ध है, वह अभिभावकों के पास प्रायः नहीं ही होती है। छात्रों के उत्थान-पतन में वे भी समान रूप से भागीदार माने जाते हैं। जिस कक्षा का रिजल्ट खराब हो जाता है, उसके सम्बन्ध में शिक्षकों से जबाव-तलब किया जाता है। दोषी पाए जाने पर उन्हें तबादले का, पदावनति का तथा दूसरे प्रकार का दण्ड दिया जाता है। यों कसूर अधिकतर विद्यार्थियों का ही होता है। प्रायः मन लगाकर न पढ़ने के कारण ही वे फेल होते हैं। तो भी विषय को आकर्षक बनाकर व छात्रों में दिलचस्पी पैदा न कर सकने की अक्षमता के कारण अध्यापकों की भी भर्त्सना होती है। छात्रों की ओर से, अभिभावकों की ओर से, अधिकारियों की ओर से उन्हीं की खिंचाई होती है।

यों साधारणतया अध्यापक ऐसी दुर्घटनाओं में अपनी कोई खोट नहीं देखते और अपने सम्बन्ध में निर्दोष होने की मान्यता रखकर, मन ही मन झुँझलाते, खीजते रहते हैं। तो भी यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो उन पर यह आरोप आता है कि असफल छात्रों की गतिविधियों में कहाँ कब कमी रही है, इसका अनुमान वे न लगा सके। उस कमी को दूर करने के लिए जो उपाय सम्भव थे, उसके सम्बन्ध में न तो निर्धारण कर सके और न उन्हें चरितार्थ करने के लिए कोई कारगर कदम ही बढ़ा सके।

छोटों की गलतियाँ होने पर भी बड़ों को ही उनका दोषी बनाए जाने का आम प्रचलन है। बच्चों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा एवं विद्या ३.२०

शरारत पर पड़ौसी उनके माँ-बाप से ही लड़ने लगते हैं, कि तुम्हीं लोगों ने बच्चों को सिर पर चढ़ाया और बिगाड़ा है। उन्हें ही खरी-ओटी सुननी पड़ती है। यहाँ तक कि कई बार तो हाथा-पाई, मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। वधू का कसूर उसके पति पर थोपा जाता है कि वह उसे क्यों कायदा करना न सिखा सका। यहाँ तक कि किसी के पालतू कुत्ते द्वारा किसी राहगीर को काट लिए जाने पर, उसके मालिक की खबर ली जाती है। यही बात अनगढ़, कुसंस्कारी बच्चों के सम्बन्ध में भी है। फेल होने पर तो अध्यापकों का सिर नीचा होता ही है, पर यदि उनमें दोष-दुर्गुण पनपते हैं, कुसंस्कारिता उभरती है तो प्रकारान्तर से उसका दोष अभिभावकों की तरह अध्यापकों पर भी कम नहीं आता। बच्चों का सुधार और अपना बचाव करने के दोनों उद्देश्य तभी पूरे होते हैं जब उस सन्दर्भ में समुचित सावधानी बरती जाय और सुधार-परिष्कार का प्रयास सम्पर्क काल में निरन्तर करते रहा जाय।

इस प्रयास की पृष्ठभूमि इस आधार पर बनती है कि शिक्षार्थी और शिक्षक के बीच पारस्परिक सम्बन्ध कैसे किस स्तर के रह रहे हैं। यदि दोनों पक्ष भावसंवेदनाओं में बँधे रह सकें, तो सुधार प्रयोजन सहज ही पूरा होता रहेगा, प्रगति प्रयासों को भी सफलता मिलेगी। साथ ही पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला भी इस प्रकार चल पड़ेगा, जिसकी उत्साहवर्द्धक सफलता सहज ही उपलब्ध हो सके।

इस ओर अग्रसर होने के लिए प्रथम कार्य यही सामने आता है कि छात्रों और शिक्षकों के बीच किसी प्रकार सम्बन्ध मधुर हों। यदि इतना बन पड़े तो समझना चाहिए कि द्वार खुल गया और समस्याओं को सुलझाने वाला आधार बन गया। इसके लिए किसी अतिरिक्त कौशल की आवश्यकता नहीं है। गाय दूध देती है, बछड़ा पीता है। इसलिए पहले शिक्षकों की ओर से ही इतना अपनत्व विकसित किया जाय कि वह छात्रों को अनुभव होने लगे। यथार्थता छिपती नहीं। पोल बनावट की ही खुलती है। इसलिए हर शिक्षक को यह मानकर चलना चाहिए कि छात्र उनके अपने बालक हैं। अभिभावकों की तरह उनके हित-अनहित का ध्यान उन्हें भी रखना है। भार वहन उन्हें ही करना है। सुधार-परिष्कार के सम्बन्ध में उनकी जिम्मेदारी दूनी है। अभिभावक तो दुलारने और अर्थव्यवस्था जुटाने भर तक सीमित कार्य कर पाते हैं। जिस स्थिति में वे हैं, उसमें इससे अधिक की कोई आशा भी नहीं की जाती। एक हाथ में लकवा या पोलियो हो जाने पर दूसरा हाथ ही दोनों के बदले का काम अकेला ही करता है। लँगड़ा व्यक्ति लकड़ी की टाँग लगाकर भी एक पैर से चल लेता है। अध्यापकगण अपने को ऐसी परिस्थितियों से बँधा हुआ अनुभव करें। अभिभावकों से जितना बने उससे सन्तोष करें। अधिक दायित्व निभाने के लिए उनका मार्गदर्शन करते रहें। छात्रों की तरह उनके अभिभावकों को भी स्वयं सुधरने और उसकी छाप बालकों पर छोड़ने की प्रेरणा देनी चाहिए। जो उन्हें करना चाहिए, जो रीति-नीति अपनानी चाहिए, इनका मार्गदर्शक विचारशील अध्यापकों से बढ़कर और कोई हो नहीं सकता।

गलती करने पर कड़ी डाँट पिलाने या भर्त्सना करने का तरीका गलत है। इसकी प्रतिक्रिया विवाद, प्रतिरोध, दुराग्रह के रूप में सामने आती है। पुराने जमाने में बाप-बेटे को, सास-बहू को, शिक्षक-छात्र को गलतियों पर धमकाने, अपशब्द कहने और मारने पीटने तक के अभ्यस्त रहते थे। उनका दूसरी ओर से कोई बड़ा प्रतिरोध भी नहीं होता था, पर अब समय बदल गया है। हर किसी में अहमन्यता अधिक बढ़ गई है। कोई किसी भी कारण अपनी निन्दा-भर्त्सना नहीं सुनना चाहता। मारपीट, गाली-गलौज जैसी बात का तो समय ही नहीं रहा। इससे सुधार के स्थान पर मार्गदर्शक को उलटे विद्रोह-प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। बदला लेने को उतारू पक्ष से मूँछें नीची करके किसी प्रकार समझौता करना पड़ेगा। इस स्थिति को आने न देना ही श्रेयस्कर है। समझना चाहिए पुराना समय चला गया, साथ ही प्रताड़ना देकर अनुशासन बनाए रखना भी असम्भव हो गया है।

अब नैतिक मूल्यों के जीवन में समावेश हेतु छात्रों को सहमत करने का प्रसंग आता है। प्रत्यक्ष विश्व व्यवस्था के यों तो अनेक पक्ष पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हैं। बालकों की आयु और व्यवस्थाओं में अनुरूप उन जानकारियों का विस्तार होता चलता है। जिन्हें अध्यापकगण जानते भी हैं और सिखाते भी हैं। प्रशिक्षण-ट्रेनिंग विद्यालयों में उन्होंने इस विधि को भली प्रकार जाना भी है। पुस्तकों की कुंजियाँ भी मिलती हैं। यह ढर्रा तो अपनी पटरी पर लुढ़कता ही रहता है और फेल पास होते-हवाते विद्यार्थी भी सब जान ही लेते हैं। न जानने या कम जानने पर इतनी ही हानि है कि उपयुक्त पद पर नियुक्त न हो सके। इस स्थिति में भी व्यक्ति मजदूरी, फेरी, उद्योग आदि अपनाकर किसी प्रकार अपना गुजारा कर ही लेता है। इन पंक्तियों में ध्यान उस केन्द्र पर आकर्षित किया गया है, जिसमें कमी रहने पर व्यक्ति स्वयं गई-गुजरी स्थिति में रहता है और अपने सम्पर्क क्षेत्र को भी उलझाता, सताता रहता है। यह केन्द्र है नीतिनिष्ठा का, जिसके अन्तर्गत व्यक्तित्व की आदर्शवादिता और लोकव्यवहार में शालीनता आती है। इसे दूसरे शब्दों में नागरिकता एवं सामाजिकता भी कह सकते हैं। इसके कुछ थोड़े से सन्दर्भ पाठ्य-पुस्तकों में पाए तो जाते हैं पर यह नहीं बताया जाता कि इन्हें जीवन में, कार्य में कैसे समाविष्ट किया जाय ? अवरोधक दुष्प्रवृत्तियों को निरस्त कैसे किया जाय, ताकि व्यक्तित्व को प्रतिभा सम्पन्न बनाने का अवसर मिले ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार समाज के साथ उच्चस्तरीय अनुबन्धों में बँधकर कैसे रहा जाय ? ऐसा व्यवहार कैसे बनाया जाय, जिसमें आत्मसंयम का निरन्तर रसास्वादन होता रहे और लोकसम्मान एवं सहयोग विपुल रूप में उपलब्ध होता रहे ? गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार कर लेने पर व्यक्ति अपने लिए, परिवार के लिए, समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यह सब इस प्रकार समझाया जाना चाहिए, जिसमें गहरे तर्क, प्रभावोत्पादक तथ्य और उन उदाहरणों की भरमार हो, जिनमें आदर्श अपनाने पर मिलने वाले अनेकानेक लाभों का विस्तारपूर्वक वर्णन हो। साथ ही यह भी बताया जाय कि सद्गुणों की, सत्प्रवृत्तियों की उपेक्षा-अवहेलना करने पर व्यक्ति किस प्रकार अनगढ़ बना रहता है और पतनोन्मुख परिस्थितियों के दल-दल में फिसल जाता है। वस्तुतः यही शिक्षा का प्राण है। इसे हृदयंगम न कर पाने पर ही व्यक्ति अपने लिए ही नहीं परिवार और समाज के लिए भी अभिशाप बनकर रहता है। इस संजीवनी विद्या को सर्वसाधारण के अन्तराल में बिठाने की हिमायत यहाँ की जा रही है। विशेषतया अध्यापकों पर यह दबाव डाला जा रहा है कि अपने परिकर के शिक्षार्थियों को जीवन कला के सन्दर्भ में प्रवीण, पारंगत बनाएँ।

जानकारी, सुदूर क्षेत्रों की और आए दिन काम में न आने वाले विषयों की भी प्राप्त की जा सके, तो हर्ज नहीं। अधिक जानना अधिक अच्छा होता है। पर देखना यह भी है कि आकाश-पाताल का ब्यौरा बटोरने की धुन में कहीं दैनिक जीवन के साथ गुँथी हुई उन समस्याओं की उपेक्षा न होने लगे, जिनके अभाव में शान्तिपूर्ण या प्रगतिशील जीवन जी सकने की बात ही नहीं बनती। शारीरिक स्वच्छता, मानसिक सन्तुलन, अर्थ का उपार्जन, उपयोग, परिवार का सौमनस्य, सामाजिक आदान-प्रदान, मान्यताएँ और आस्थाएँ, प्रथा और परम्पराएँ आदि प्रसंग ऐसे हैं जो जीवन को असाधारण रूप से प्रभावित करते हैं। यदि किसी के पास इन विषयों की समुचित जानकारी नहीं है और इन क्षेत्रों में आती रहने वाली अनेकानेक उलझनों को भली प्रकार सुलझा सकने की क्षमता नहीं है, तो उसे गये-गुजरे स्तर का जीवन रोते-कलपते, खीजते-खिजाते जीना पड़ेगा। ऐसा आजकल हर तरफ होता देखा जा सकता है। कारण यही है कि जिन विषयों की जानकारी की आवश्यकता थोड़े से गिने-चुने लोगों को पड़ती है, वे विषय सब को पढ़ाए, रटाए जा रहे हैं। परन्तु जिन विषयों-अभ्यासों की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में, प्रत्येक कदम पर है, उनके लिए कोई व्यवस्था नहीं बन सकी है। ऊपर दर्शाए गए वे विषय उपेक्षा में ही पड़े हुए हैं।

इन विषयों को अनिवार्य स्तर की प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए। यदि उनका समुचित समावेश पाठ्यक्रमों में नहीं हुआ है, तो उन्हें विचारशील अध्यापकों को अपनी ओर से पढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस महत्त्वपूर्ण दायित्व से अध्यापक वर्ग मुक्त नहीं हो सकता। जब तक व्यापक स्तर पर इस दिशा में व्यवस्था नहीं होती, तब तक 'कुछ न होने से कुछ भला' की नीति अपनानी होगी, शिक्षकों को अपने स्तर पर यह भूमिका स्वतः हाथ में लेनी होगी।

समय की महती आवश्यकता और उसकी आपूर्ति

संजीवनी विद्या का, नैतिकता की शिक्षा का व्यावहारिक जीवन में आदर्शवादिता के सरल-समन्वय का कार्यक्षेत्र अत्यन्त ही विशद् है। इस प्रयास को कथा-पुराणों के आधार पर समझाने का प्रयत्न धर्मोपदेशकों के द्वारा किया जाता रहा है, किन्तु वह प्रयत्न अतिवादिता से, अव्यावहारिकता से भरा होता है। कहने-सुनने में भले ही अच्छा लगता हो, उससे कुछ प्रकाम भले ही शिलता हो, पर ऐसा नहीं कि कोई मध्यवृत्ति एवं औसत परिस्थितियों के लोग उन्हें काम में ला सकें। पथ प्रदर्शन में सामयिक समस्याओं और परिस्थितियों पर ध्यान देना होता है। पुरातनकाल में परिस्थितियाँ भी दूसरी थीं और कठिनाइयाँ, समस्याएँ भी दूसरी। दृष्टिकोण उन दिनों अपने ढंग का था। इसलिए जो समाधान धर्मोपदेशकों द्वारा सुझाये जाते हैं, वे आदर्शों की दृष्टि से सराहनीय होने पर भी व्यावहारिकता के साथ जुड़ सकने जैसे नहीं होते। फिर उनमें बिखराव भी बहुत है। एक प्रसंग को एक तारतम्य में तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण के आधार पर समझा देना आज की बौद्धिकता में अनुकूल पड़ता है। जो बात कही जाय उसका आदि से अन्त तक निर्वाह हो, तभी किसी तथ्य का समझना-समझाना लाभप्रद होता है। अनेक विषयों का विहंगावलोकन करते हुए कुछ बातों का उल्लेख करना और फिर उन्हें अधूरी छोड़कर किसी अन्य विषय पर भी इसी स्तर की चर्चा करने लगना एक-एक कौतुक-कौतूहल जैसा हो जाता है। अब तक वे प्रवक्ता अत्यधिक गम्भीर, महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक जीवन कला को जिस-तिस रूप में इसी प्रकार व्यक्त करते रहे हैं। इसका निष्कर्ष देखते हुए यही कहा जा सकता है कि हवाई उड़ानें उड़ाई जाती रही हैं। विषय के हर पक्ष पर गहरा और सुविस्तृत प्रकाश डालने वाले प्रयत्न कम ही हुए हैं। ऐसा साहित्य भी बहुत कुछ खोजने पर छुट-पुट रूप में जहाँ-तहाँ ही मिलता है। अरस्तू, सुकरात, काण्ट, कन्फ्यूशियस जैसे दार्शनिक भी अब नहीं दिखते, जो मात्र जीवन का व्यवहार पक्ष समझाने के लिए पाठशालाएँ चलाएँ उसकी उच्चस्तरीय उपयोगिता समझें, चिन्तन की गहराई में उतरें अपने ज्ञान और अनुभव की पूँजी बढ़ाएँ और उसे अपने शिष्यों को उपेक्षापूर्वक नहीं वरन् इतनी तन्मयता, आत्मीयता के साथ पढ़ाएँ कि पढ़ने और सुनने वाले के अन्तराल में वह जड़ जमा कर बैठ जाए। सुनने वाला उसी ढाँचे में ढल जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय के महत्त्व और उसे समझने-समझाने के लिए उपयुक्त प्रतिपादन उपलब्ध न होने पर आज के शिक्षक की जिम्मेदारियाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ा देना सरल है, क्योंकि उसके लिए पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध हैं। अड़चन पड़ने पर कुंजियों से सहायता ली जा सकती है। फिर पढ़ाने की शैली उन टीचर ट्रेनिंगों में भी उपलब्ध है, जिनमें उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही शिक्षकों की नियुक्ति होती है, पर ऐसी कोई समग्र सुविधा जीवन कला के सम्बन्ध में कहीं देखने को नहीं मिलती। उसका तारतम्य तो अपने बलबूते बिठाना पड़ता है। दूसरे तो इस सम्बन्ध में हल्का-फुल्का परामर्श ही दे सकते हैं, रीति-नीति, दिशाधारा मात्र बता सकते हैं, पर उसमें पात्रता के अनुरूप किस छात्र को क्या बताया जाय, यह निष्कर्ष निकालना विचारशील अध्यापक का ही काम है।

नैतिक शिक्षा की इन दिनों बहुत चर्चा है, पर वह भी दिशा संकेत मात्र है। उसमें कम से कम स्काउटिंग, फर्स्ट एड, पर्वतारोहण जैसे सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पक्ष तो मिश्रित होने ही चाहिए। परम्परागत प्रवचन शैली अपनाने पर तो लाभ यत्किंचित ही हो पाता है। कुतुबनुमा की तरह दिशा संकेतों में व्यावहारिकता की कमी रह ही जाती है।

यहाँ कठिनाई एक और है कि विभिन्न व्यक्तियों का स्तर अलग-अलग प्रकार का होता है और उनकी दृष्टि भी अपने-अपने ढंग की होती है। जिन दुर्गुणों से छुड़ाया जाना है, वे भी एक जैसे नहीं होते। जिन सत्प्रवृत्तियों की जिसमें जो कमी है, उन्हें उसी की आवश्यकता के अनुरूप बढ़ाया जाता है। व्यक्तियों के पूर्वाग्रह अपने-अपने ढंग के कठोर होते हैं। कई तो इतने दुराग्राही होते हैं कि अपनी अनुपयुक्त स्थिति को ही सही मानते हैं। उसी के समर्थन में अड़े रहते हैं। सुधार परिवर्तन की बात स्वीकार करना तो दूर, वे उन्हें समझने तक को तैयार नहीं होते। समीक्षा में भर्त्सना की गन्ध ढूँढ़ते हैं। परामर्शदाता को विद्वेषी एवं अपमान करने वाला मान बैठते हैं।

सुनने-सुनाने भर की बात तो किसी प्रकार निभ जाती है, पर जब उनके अनुरूप स्वभाव, अभ्यास को बदलने का प्रश्न सामने आता है तो वे बिदक जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में शिक्षक क्या करें ? जिन छात्रों में उत्कृष्टता के समावेश का जो उत्तरदायित्व सिर पर आया है, उसे सही रूप में कर सकने के लिए क्या मार्ग अपनाया जाय ? यह उनकी समझ में भी नहीं आता। ऐसी दशा में वे भी अपने हिस्से की चिह्न पूजा करके दूसरे साथियों की तरह छुटकारा पा लेते हैं। बात जहाँ की तहाँ अड़ी रह जाती है।

अच्छा होता मूर्धन्य विचारकों, समाज-सुधारकों, शिक्षाशास्त्रियों और शासनाध्यक्षों ने इस तथ्य की उच्चस्तरीय सार्थकता समझी होती और उसे प्रशिक्षण के साथ गूँथ देने की योजना बनाई होती। गुरुकुल प्रणाली यदि इन दिनों यथावत अपनाई नहीं जा सकती, तो कम से कम उसका आधार तो समझा गया होता, जिसमें छात्र और अध्यापक के बीच आत्मीयता मिश्रित घनिष्ठता आवश्यक समझी जाती। विद्यार्थियों को उपयुक्त वातवरण दिया जाता था, ताकि सभी साथी-सहचरों के क्रियाकलाप को देखकर भी अनुकरण करने को मन करता रहे, सरलतापर्वूक उपयुक्त स्तर के व्यक्तित्व को ढाले जाने का प्रयोजन पूरा होता रहे। यह प्रक्रिया किन्हीं अंशों में तो अपनाई भी जा सकती है। इस परम्परा को अपनाए जाने की दिशा में न्यूनाधिक कुछ तो प्रयत्न हो सकता है। अपने विद्यालय में उन सिद्धान्तों को किसी न किसी रूप में, किसी न किसी हद तक कार्यान्वित होने में कुछ तो सफल हुआ ही जा सकता है।

अच्छा होता कि विचारकों ने यह सोचा होता कि सामान्य दीख पड़ने वाले व्यक्तियों की प्रतिभा उभारी जा सकती है, उनके दृष्टिकोण संयम और उत्साह को बल दिया जा सकता है। साहस उभारा जा सकता है। चरित्र का धनी, अनुशासित, विवेकशील, ईमानदार, कर्मनिष्ठ जैसा सद्गुण सम्पन्न उन्हें बनाया जा सकता है।

व्यक्तित्वों का निर्माण, राष्ट्र की, विश्व की, मानवता की महती आवश्यकता है। विशेषतया आज के अनास्था, अवांछनीयता एवं नैतिक अराजकता के वातावरण में पुराने मूल्यांकन, आधार और प्रचलन बदल गए, नई पीढ़ी की नई संस्कृति ने जड़ पकड़ी। इसमें प्रामाणिकता और प्रखरता अपनाने के लिए अभिरुचि रह नहीं गई। उसी का प्रतिफल है कि व्यक्ति और समाज को अनेकानेक समस्याएँ उलझन में डाले हुए हैं। अनेकानेक संकट सहने पड़ रहे हैं। इनका समग्र समाधान तब तक नहीं निकल सकता, जब तक कि जनसाधारण को मानवीय गरिमा के अनुरूप अपना दृष्टिकोण एवं क्रियाकलाप ढालने के लिए सहमत-तत्पर न किया जाय। यह महती आवश्यकता है। इस बुद्धिवाद के युग में इस घेरे में लोकमानस को अनुशासित करने के लिए ऐसे प्रतिपादनों की आवश्यकता है, जो तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरणों से भरा-पूरा हो। पर अभी ऐसा कुछ क्रमबद्ध नहीं है, न प्रतिपादन, न प्रशिक्षण।

इन अभाव को दरिद्रता के समतुल्य, तत्काल सुलझाए जाने योग्य समस्या माना जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में ऐसा प्राणवान क्रमबद्ध साहित्य सृजा जाय, जिसमें समय की प्रवृत्तियों, मान्यताओं को उत्कृष्टता की दिशा में भेजने के लिए ऐसा प्राण विद्यमान हो जो उलटे को उलट कर सीधा कर सके। इसके निमित्त विज्ञजनों को आवश्यक सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्रित करनी चाहिए। इस संग्रह के निमित्त युद्ध स्तर पर कार्य होना चाहिए। इतना गोला-बारूद संग्रह किया जाय, जिससे प्रस्तुत अवांछनीयता का दुर्ग विस्मार किया जा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छा हो इस प्रयोजन को एक स्वतन्त्र विज्ञान माना जाय। उसे शिक्षा का अंग रखा जाय। साथ ही अतिरिक्त विश्वविद्यालय जैसा तन्त्र खड़ा किया जाय, जो प्रस्तुत आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाले महामनीषियों का सृजन कर सके। शोधकर्ताओं के लिए आवश्यक सामग्री संसार भर से एकत्रित करके एक स्थान पर उसे जमा कर सके। शोधार्थियों के लिए ऐसा अवलम्बन नितान्त आवश्यक है।

बड़े रूप में जब तक वैसा नहीं बन पड़ता तब तक हाथ पर हाथ रख कर बैठे नहीं रहा जा सकता है। प्रस्तुत साधनों से ही जो कुछ बन पड़ सकता है, वह किया जाना चाहिए। इस दायित्व को सँभालने के लिए अध्यापक समुदाय ही कुछ कर सकने में समर्थ हो सकता है।

शिक्षा के सहारे ही जर्मनी में नाजीवाद का आवेश उभरा था। साम्यवादी देश भी इसी आधार पर नई पीढ़ी को अपने मन्तव्यों के प्रति समर्थक बना पाए। बुद्धकाल में विश्वव्यापी धर्मचक्र प्रवर्तन की भूमिका निभाने में नालन्दा, तक्षशिला विश्वविद्यालय तथा अनेकानेक विहार, संघाराम अपने प्रयत्नों से समय का कायाकल्प कर सकने में समर्थ रहे। इन दिनों वैसे तन्त्र खड़े करने में यदि हर समर्थ क्षेत्र उदास दिखता है तो भी निराशा की कोई बात नहीं, मात्र अध्यापक वर्ग ही यदि गहराई से विचार करके प्रयोजन की गम्भीरता अनुभव करे और उसकी पूर्ति के लिए निजी पुरुषार्थ के सहारे कटिबद्ध हो चले, तो इतने भर से आश्चर्यचकित कर देने वाली सफलता मिल सकती है।

निर्धारित पाठ्यक्रमों में नैतिक शिक्षा को गूँथा जा सकता है, जो पढ़ाया जाता है, उसमें अनेक घटनाक्रम, इतिहास, आख्यान भी रहते हैं। इनमें से जिन्होंने दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाईं, उन्हें पतन-पराभव का मुँह देखना पड़ा और जो सदाशयता, सच्चरित्रता, परमार्थ परायणता के पक्षधर रहे, उनने न केवल आत्म-सन्तोष और सुयश अर्जित किया वरन् सांसारिक क्षेत्र में भी कुछ बड़े काम कर सकने, महामानवों की पंक्ति में जा बैठने में समर्थ हुए। जिन्होंने धूर्तता के सहारे प्रगति की, उन्होंने भी आदर्शवादिता का ही व्याघ्र चर्म ओढ़ा। इस प्रकार के सन्दर्भ हर दिन के कार्यों में न्यूनाधिक संख्या में मिलते रहते हैं। इसमें हल्का-फुल्का प्रकाश अतिरिक्त रूप में डाला जाता रहे तो शिक्षार्थियों की मनोभूमि कुछ उपयोगी, आदर्शवादी मान्यताएँ धीरे-धीरे अपनाती रह सकती हैं। वह पुट निरन्तर लगते रहने से उत्कृष्टता की पक्षधर मनोभूमि परिपक्व होती रह सकती है। यह संकलन सामान्य स्तर के छात्रों को समयानुसार उदाहरण के रूप में व्यक्तित्ववान बनाए रह सकता है।

यह जोड़-तोड़ हर पाठ्य विषय के साथ बिठाया जा सकता है। यहाँ तक की गणित जैसा रूखा विषय भी इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। ''दस चोरों में छह पकड़े गए। दो अस्तव्यस्तता के कारण बीमार पड़े एक की अप्रतिष्ठा फैली और वह असहयोग के कारण बेकार हो गया। बताओ उनमें से कितने सही स्थिति में बचे।'' बाल कथा के इस छोटे से प्रश्न में भी नैतिकता के समर्थक संकेत भी मिल सकते हैं। इसी प्रकार भूगोल, गणित, इतिहास, भाषा, विज्ञान आदि किसी भी विषय के पढ़ाते समय उसमें से ऐसे निष्कर्ष ढूँढ़े और कहे जा सकते हैं जो दुष्प्रवृत्तियों की हानियों और सत्प्रवृत्तियों की उपलब्धियों को प्रकट करते हों।

किस विषय के साथ किस प्रकार मानवीय आदर्शों, उच्च जीवन मूल्यों का पृष्ठ लगाया जाय ? कैसे किसके साथ क्या संगति बिठाली जाय ? इस पर पर्याप्त मार्गदर्शन युक्त साहित्य लिखा जा सकता है। समय की पुकार पर अगले चरण में वैसा होगा भी। परन्तु अभी तो भावनाशील शिक्षकों को परस्पर परामर्श करके ही सम्बन्धित सूत्रों का निर्धारण कर लेना समयानुकूल है।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा के लिए एक सराहनीय प्रपत्र

स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में एक भाषण देते हुए कहा था—''जो शिक्षा विद्यार्थियों में सिंह के समान साहस न भर सके, उन्हें संसार के झंझावात से आगे बढ़ने की शक्ति न दे सके, भला वह भी कोई शिक्षा है ?'' दुर्भाग्यवश भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली अपनी कुछ कमियों के कारण ऐसे ही घटिया स्तर की है, जिससे नई पीढ़ी के व्यक्तियों के उज्ज्वल निर्माण की सम्भावना प्रायः नहीं ही पूरी हो रही है। नैतिक शिक्षा का समन्वय किए बिना यह कमी दूर हो भी नहीं सकती।

यों सरकारी शिक्षा संहिता की धारा ८४ में नैतिक एवं मानवतावादी शिक्षा के पाठ्यक्रमों में उचित सम्मान देने की चर्चा है और नित्य १० मिनट एवं सप्ताह के एक घण्टा अनिवार्य रूप से इस प्रयोजन के लिए लगाने का निर्देश है लेकिन शायद ही कहीं कभी उसका प्रयोग होता हो। समय की माँग थी कि परिस्थितियों को अधिक नहीं बिगड़ने देना हो तो अब समय रहते इस दिशा में कुछ किया ही जाना चाहिए।

प्रसन्नता की बात है कि यह प्रयोग उत्तरप्रदेश के बहरायच जिले से प्रारम्भ हुआ। दो वर्ष पूर्व वहाँ शिक्षा शास्त्रियों, प्राचार्य एवं अभिभावकों का एक सम्मेलन इस सन्दर्भ में बुलाया गया, जिसमें इस दिशा में संगठित परिषद की स्थापना की गई। उसका विधान-स्वरूप तथा कार्यक्रम निश्चित हुआ। अध्यक्ष वयोवृद्ध समाजसेवी पं. भगवानदीन मिश्र बनाए गए।

इस थोड़ी ही अवधि में परिषद ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसे यह आशा हो चली है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा प्रसार आन्दोलन विस्तार पकड़ेगा और उससे उत्तरप्रदेश ही नहीं समस्त देश का शिक्षा क्षेत्र प्रभावित होगा। परिषद ने जिला स्तर पर इस अवधि में कई छोटे-बड़े सम्मेलन, सेमीनार, शिविर तथा आयोजन करके छात्रों, अध्यापकों तथा अभिभावकों का रचनात्मक मार्गदर्शन किया है कि उन्हें छात्रों की बढ़ती हुई अनुशासनहीनता को रोकने और नैतिक सद्गुणों की अभिवृद्धि के लिए क्या करना चाहिए। सर्वोदय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मिहींपुरवा के प्राचार्य श्री कन्हैयालाल श्रीवास्तव, जो परिषद के मंत्री भी हैं अपने विद्यालयों में उन प्रयोगों का सफल परीक्षण भी करते रहे हैं, जिससे इस क्षेत्र की शिक्षा संस्थाओं को बड़ा उत्साह और प्रकाश मिला है।

अभी हाल में परिषद के तत्वाधान में श्री कन्हैयालालजी ने 'नैतिक शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं रूपरेखा' विषय पर कक्षा ६, ७, ८ के छात्रों के लिए पुस्तकें भी प्रस्तुत की हैं, जिनकी सहायता से विभिन्न विषयों के नियमित पाठ्यक्रमों के साथ-साथ नैतिक शिक्षण किस प्रकार चलाया जाय तथा बालकों से इस सन्दर्भ में किस प्रकार क्या कराया जाय ? इस विषय पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। उपरोक्त तीन कक्षाओं की पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। विचार है कि नैतिक शिक्षा की परीक्षाएँ भी विद्यालयों में चलाई जाएँ और उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाण-पत्र भी उनका उत्साह बढ़ाने के लिए दिए जाएँ।

उत्तरप्रदेश की सरकार द्वारा भी प्रस्तुत योजना को सारे प्रान्त में प्रचलित करने पर विचार किया जा रहा है। विद्यालय स्वतन्त्र रूप से तो इसे अपने यहाँ कार्यान्वित कर ही सकते हैं। जिन अध्यापकों को छात्रों के चरित्र-निर्माण में रुचि हो, वे उपरोक्त योजना के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने तथा सम्बन्ध बनाने के लिए श्री कन्हैयालाल श्रीवास्तव मंत्री शिक्षा परिषद पोस्ट मिहींपुरवा, बहरायच के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

योजना अभिनन्दनीय है। अच्छा होता ऐसे प्रयास राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त होते ही सरकार या गैर-सरकारी स्तर पर आरम्भ कर दिए गए होते, तो इस लम्बी अवधि में निश्चय ही हमारी शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं का स्तर आज की तुलना में बहुत ऊँचा होता।

सृजनात्मक क्षमता विकसित हो

सृजनात्मक चिन्तन की महत्ता को समझा जा सके तथा उसे जीवन में उतारने-विकसित करने की कला ज्ञात हो सके, तो कोई भी व्यक्ति अपनी अदक्षता, अक्षमता एवं अज्ञानता को मिटाकर सक्रिय एवं सार्थक जीवन जी सकता है। विद्यार्थी जीवन में तो सृजनात्मक योग्यता का विशेष महत्त्व है। इससे उनमें निर्णयात्मक क्षमता का विकास होता है और वे अपनी समस्याओं, कमजोरियों, अज्ञानताओं का निदान आसानी से खोज लेते हैं। बौद्धिक दृष्टि से तो वे विकसित ही हैं साथ ही समाजोपयोगी कार्य करने की उनकी क्षमता में भी अभिवृद्धि होती है।

व्यक्तित्व को प्रतिभा सम्पन्न बनाने में पारिवारिक वातावरण का, स्कूली पाठ्यक्रम का, अभिभावकों—अध्यापकों का योगदान आवश्यक है। क्योंकि इस आधार पर विकसित हुई प्रतिभा ही बालकों का भविष्य उज्जवल बनाती है। पुस्तकों का भार इतना अधिक नहीं पड़ना चाहिए कि वे अन्य ऐसे कामों में भाग ही न ले सकें, जो प्रतिभा सम्वर्द्धन के लिए—सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन के निमित्त आवश्यक हैं।

मूर्धन्य शिक्षाशास्त्री श्री एम. के. रैना ने अपने शोधग्रन्थ—'ए स्टडी ऑफ सम कोरिलेट्स आफ क्रिएटिविटी इन इन्डियन स्टूडेन्ट्स' में कहा है कि व्यक्तित्व की सृजनात्मक योग्यता की दृष्टि से अपने देश में बहुत कम ध्यान दिया जाता है। यह बात उन्होंने टोरेन्स टेस्ट के आधार पर कही है। उनके अनुसार कम सृजनात्मक योग्यता वाले विद्यार्थियों की तुलना में उच्च सृजनात्मक क्षमता रखने वालों में सहनशीलता, स्वायत्तता, परिवर्तन, उपलब्धि एवं महत्त्व प्राप्त करने की कुशलता अधिक देखी गई है। ऐसी लड़कियों में परिवर्तन एवं सहनशीलता की भावना निम्न योग्यता वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक थी। सृजनात्मकता के अभाव में लड़के अधिक उच्छृंखलता बरतते देखे गए हैं।

लड़कियों को प्राय: जीवन के आरम्भ से ही कुछ न कुछ करते रहना एवं सक्रिय जीवन जीना पड़ता है अत: उनकी क्षमता का विकास एवं निखार भी तदनुरूप अधिक होता है। उनकी उपलब्धियों भी अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी-चढ़ी रहती हैं। शालीनता-सहनशीलता आदि सद्गुणों में भी वे सर्वोपरि मानी जाती हैं। निराशा की भावना उनमें बहुत कम पाई जाती है। सृजनात्मक चिन्तन के कारण वे पढ़ने और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने में अग्रणी देखी गई हैं।

इंजीनियरिंग के विद्यार्थियों की मनोदशा में प्रस्तुत एक शोध प्रबन्ध 'सरटेन डिफरेन्शियेटिंग पर्सनालिटी' में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें घरेलू जीवन तथा अध्ययनकाल में जो विद्यार्थी किन्हीं रचनात्मक कामों में लगे रहे वे आगे चलकर अच्छी प्रगति कर सके और जो छात्र मात्र किताबी कीड़े बने रहे, अथवा सबसे अलग-अलग रहे, वे ज्यों-त्यों करके गुजारा ही कर सके।

वस्तुत: सृजनात्मक जीवन की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। विद्वान पामामोटो ने अपने शोधपत्र 'क्रिएटिविटी—ब्लाइंड मेन्स रिपोर्ट आन द एलीफैन्ट' में कहा है कि 'क्रिएटिविटी' लगभग उस हाथी के समान है, जिसे अन्धे छूकर अपनी-अपनी तरह परिभाषित करते रहे किन्तु उसकी समग्र जानकारी से सभी अनभिज्ञ ही बने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहे। इसे अधिक स्पष्ट करते हुए मूर्धन्य मनीषी सिम्पसन ने अपनी कृति 'क्रिएटिव इमैजिनेशन' में कहा है कि यह वह उपक्रम है जिसमें व्यक्ति अपनी सामान्य विचारधारा से हटकर रचनात्मक दिशा में प्रवेश करता है और परिणामस्वरूप प्रतिभाशाली एवं व्यक्तित्व सम्पन्न बनता है।

अभिरुचियों एवं योग्यताओं की दृष्टि से सृजनात्मकता के अनेक रूप हो सकते हैं। 'स्टूडेण्ट्स एप्टीट्यूड' नामक अपनी पुस्तक में सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी अलपोर्ट ने कहा है कि विद्यार्थियों की विचारधाराएँ, उनकी मनोवृत्तियाँ अथवा अभिरुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उनकी योग्यता, प्रतिभा एवं व्यक्तित्व विकास का निर्धारण बहुधा इन्हीं तत्वों द्वारा सम्पन्न होता है। अपनी दूसरी पुस्तक—'द स्टडी आफ वेल्यूज' में अधिक स्पष्ट करते हुए अलपोर्ट लिखते हैं कि आर्थिक अभिरुचि रखने वाले विद्यार्थी किसी वस्तु का मूल्यांकन उपयोगिता की दृष्टि से करते हैं। उनका विशेष ध्यान भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि पर ही केन्द्रित होता है। इस प्रकृति के व्यक्ति प्राय: व्यापारी होते हैं, जो वस्तुओं के उत्पादन, उपभोग एवं मूल्य की त्रिधारा से सम्पत्ति अर्जित करने में व्यस्त रहते हैं। ऐसे लोग प्राय: व्यावहारिक शिक्षा को अधिक पसन्द करते हैं, सैद्धान्तिक एवं आदर्शवादी शिक्षा उनके लिए कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती। कला का मूल्यांकन भी वह आर्थिक दृष्टि से ही करते हैं। ईश्वर में उनकी आस्था इसलिए होती है कि वह उन्हें मालदार-सम्पन्न बनाने में सहायक होगा।

दूसरे वर्ग का विद्यार्थी अपनी उपलब्धियाँ सुन्दरता, शान्त और सद्भाव में ही खोजता है। आर्थिक क्षेत्र के उत्पादन, व्यापार, विज्ञापन आदि को वह अपने सिद्धान्तों के विपरीत मानता है। सामाजिक क्षेत्र के रचनात्मक कार्यों में उसकी अभिरुचि हो सकती है किन्तु प्राय: देखने में आता है कि ऐसे व्यक्ति व्यक्तिवाद एवं आत्मनिर्भरता की ओर अधिक अग्रसर होते हैं।

तीसरा वर्ग उन लोगों का है, जिनका झुकाव व्यक्तियों में स्नेह-सौजन्य को बढ़ावा देने—प्रोत्साहित करने की ओर होता है। परमार्थपरायणता ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है। उनकी नजर में उपरोक्त दोनों वर्ग सामाजिक उत्तरदायित्वों की दृष्टि से उदासीन एवं कर्तव्यच्युत दिखाई देते हैं। इस विचारधारा वाले व्यक्ति राजनीतिज्ञों की तुलना में एक समाजसेवी कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को अधिक महत्त्व देते हैं। प्रख्यात मनीषी स्प्रेन्जर के अनुसार ऐसा व्यक्ति नि:स्वार्थी तो होता ही है धार्मिकता के बिल्कुल सन्निकट भी होता है।

कुछ रचनात्मक विद्यार्थियों की अभिरुचि 'एकता' में होती है। वह आध्यात्मिकता के परिपोषक होते हैं। उनकी प्रवृत्ति विश्व-ब्रह्माण्ड में एकत्व दर्शन की होती है। इनमें से कुछ रहस्यवादी होते हैं और धार्मिक अनुभवों को जीवन में उतारने के पक्षधर होते हैं। अपने प्रत्येक कार्य क्रियाकलाप, उमंग, अनुराग के साथ ही सृष्टि में घटित होने वाले समस्त घटनाक्रमों में उन्हें ईश्वरीय सत्ता की ही दिव्य झाँकी दिखाई देती है। कुछ व्यक्ति अध्यात्म की गहराई में प्रवेश करना चाहते हैं और इसके लिए भारतीय ऋषियों की तरह तपस्वी जीवनयापन करते, ध्यान, उपासना, चिन्तन, मनन आदि का आश्रय लेते हैं। समन्वय ही उनका प्रमुख लक्ष्य जो ठहरा। इसी प्रकार और भी कितनी ही सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं।

आवश्यक नहीं कि सृजनात्मक शक्तियों के विकास का मार्गदर्शन स्कूली पाठ्यक्रमों में ही सम्मिलित हो। यह सब अपनी सूझ-बूझ के अनुसार अभिभावक भी अपने बालक में सृजनात्मक चिन्तन एवं उसे विकसित करने की आदत डाल सकते हैं। उसकी अभिरुचि के कई विकल्प सामने रखकर परीक्षा करनी चाहिए कि उनमें से जो अधिक श्रेयस्कर हो, उसे बढ़ाने का विशेष रूप से योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाना चाहिए। यह कार्य स्कूलों के अध्यापक खेलकूद अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सहारे आगे बढ़ा सकते हैं। प्रतियोगिता द्वारा उत्साहवर्द्धन से भी इन सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्द्धन होता है।

उपलब्ध उदाहरणों एवं साधनों का प्रयोग

जनसाधारण की आम मान्यता यह बनती जाती है कि चोर-चालाक नफे में रहते हैं। वे दूसरों को भुलावे में डालकर अपना उल्लू सरलतापूर्वक सीधा कर सकते हैं। जल्दी धनी बन सकते हैं। सीधे मार्ग पर चलकर जो सफलता देर में मिलती है, उसे टेढ़े-तिरछे मार्ग पर चल कर जल्दी प्राप्त किया जा सकता है। इस मान्यता की पुष्टि निकटवर्ती क्षेत्र में फैले पड़े इस प्रकार के उदाहरणों से भी होती रहती है। हथेली पर सरसों जमाने के लिए आतुर व्यक्ति किसी ऐसी बाजीगरी, बेईमानी को सीखने, चरितार्थ करने के लिए आतुर रहते हैं, जिसमें सतत् प्रयत्न की श्रमशीलता न अपनानी पड़े, प्रामाणिकता सिद्ध करके विश्वास जीतने और सहयोग पाने के लिए धैर्य रखने, प्रतीक्षा करने की आवश्यकता न पड़े। जिनकी इस प्रकार की मान्यता पक जाती है, वे इसी फिराक में रहते हैं कि बेईमानी, बदमाशी का कोई ऐसा तरीका ढूँढ़ निकालें, जिसे अपनाकर जल्दी ही प्रचुर लाभ कमाया जा सके। अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाकर लोगों की आँखों में चकाचौंध पैदा की जा सके। प्रलोभन या दबाव देकर कइयों को साथी-सहयोगी बनने के लिए बाधित किया जा सके। यह छद्म इन दिनों तेजी से बढ़ रहा है और समाज वृक्ष को अमरबेल की तरह आच्छादित कर रहा है। एक दूसरे को प्रोत्साहित करने, सहयोग करने के लिए चोर-चोर मौसेरे भाई भी बढ़ते चले जाते हैं। गिरोह बन जाते हैं। वे एक दूसरे की अनीति में सहायता ही नहीं करते वरन् आपस में एक दूसरों को निर्दोष सिद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने में भी साक्षी बनकर रहते हैं। निन्दा न होने देने में ढाल बनते हैं और ऐसे सरंजाम खड़े करते हैं, जिनमें भर्त्सना के स्थान पर प्रशंसा मिलने लगे। इसी को कहते हैं कुचक्र-षड्यन्त्र। यह कला बहुत विकसित होती जा रही है। सामान्य मानस के लोग ऐसे ही उदाहरणों को अनुकरणीय मान लेते हैं। उस मार्ग को अपनाने में चतुरता अनुभव करते हैं। दाँव लग जाने पर उस धूर्तता को बुद्धिमत्ता सिद्ध करते हैं और शेखी बघारते हैं।

यह मान्यता एवं प्रचलन एक से दूसरे पर पहुँचते हैं, उन्हें प्रभावित करके अपने चंगुल में जकड़ते हैं। छूत की बीमारी की तरह यह व्याधि बढ़ती ही चली जाती है। अनैतिकता का प्रवाह इसी आधार पर तेजी पकड़ता जाता है। दूरदर्शिता के अभाव में लोग अन्तिम परिणामों का अनुमान नहीं लगा पाते। कुकर्मों के दुष्परिणामों की बात नहीं सोच पाते और तात्कालिक लाभ के लिए कुछ भी करने को, यहाँ तक कि अनीति अपनाने को भी तैयार हो जाते हैं।

जनसाधारण का स्वभाव अनुकरणप्रिय होता है। बच्चे इसी आधार पर अपनी अभिरुचि विकसित करते हैं, भाषा ज्ञान सीखते हैं और पसन्दगी-नापसन्दगी का निर्धारण करते हैं। बड़े हो जाने पर भी यह सिलसिला चलता रहता है। संगति का फल सभी जानते हैं। सुसंग और कुसंग से किस प्रकार मनुष्य प्रभावित होता है इसके उदाहरण अपने ही इर्द-गिर्द ढेरों ढूँढ़े जा सकते हैं।

गिरना सरल है, उठना कठिन। पतनोन्मुख प्रवृत्ति अधिक आकर्षक होती है। वे तात्कालिक लाभ देने वाली भी प्रतीत होती हैं और कौतूहलवर्द्धक भी लगती हैं। छोटे बच्चे आग, साँप जैसी चमकीली वस्तुओं को पकड़ने के लिए लपकते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि इसका परिणाम क्या हो सकता है। सामान्यजन भी दूरगामी परिणामों का विचार नहीं कर पाते।

नशेबाजी जैसे दोष इसी कारण पनपे हैं। आरम्भिक दिनों में उत्तेजना का चस्का मनोरम लगता है। पर कुछ ही दिनों में वह अभ्यास में उतरकर न छूटने वाली आदत बन जाता है। उसके कारण नशेबाज बदनामी सहता, दरिद्र बनता, शरीर को जर्जर करता, परिवार को विपत्ति में डुबाता और अन्त में बेमौत मरता है। यह कालान्तर में मिलने वाला परिणाम है, पर पहले दिन तो खुमारी लाने वाला चस्का ही सब कुछ प्रतीत होता है। लत उसी कारण बड़ी होती है। अन्य दुष्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। वे एक दूसरे पर चढ़ दौड़ती हैं और सुविस्तृत क्षेत्र को अपने कब्जे में जकड़ लेती हैं। इन दिनों अनैतिकता का व्यापक प्रचलन इसी कारण बढ़ता चला जाता है।

कुछ मनस्वी ऐसे भी होते हैं जो सुदृढ़ता, परिपक्वता के आधार पर दूसरे अनेकों को बदल देते हैं, बिगड़े वातावरण को सुधार देते हैं। पर अधिकांश ऐसे नहीं होते, वे क्षीण मनोबल के रहते हैं। दूसरों को प्रभावित नहीं कर पाते, स्वयं प्रभावित होते और वातावरण के बहाव में, आँधी में उड़ने वाले पत्तों की तरह कहीं से कहीं पहुँचते रहते हैं। वातावरण ही उन पर छाया रहता है। बाजीगर 'वातावरण' के इशारे पर वे कठपुतली की तरह नाचते रहते हैं।

तथ्य के अनुरूप उचित तो यह होता है कि उत्कृष्टता का वातावरण बने और समझदारों का समुदाय उसमें रहकर अपना उत्साहवर्द्धक विकास करे। उपयुक्त वातवरण जहाँ हो वहाँ जा पहुँचना या श्रेष्ठता के वातवरण को अपने इर्द-गिर्द आच्छादित कर लेना, उत्कर्ष के अभ्युदय के, परिवर्तन परिष्कार के यही दो उपाय हैं। किन्तु कठिनाई यह है कि ऐसा किस प्रकार सम्भव हो ? दुष्प्रवृत्तियों से भरा वातावरण कैसे हम से दूर हो ? कैसे हम उनसे परे हो पाएँ ? दोनों ही सम्भावनाएँ समान रूप से कठिन हैं।

इतने पर भी इसका एक सरल हल उपलब्ध है। महामानव जीवित रूप से अपने समीपवर्ती क्षेत्र में भले ही न हों पर उनकी कथा-गाथाओं में पाया जाने वाला ऐतिहासिक स्वरूप, इस उद्देश्य के लिए लिखे गए जीवन साहित्य में संग्रहीत पाया जा सकता है। उसे बार-बार मनोयोगपूर्वक पढ़ा जा सकता है। उन्हें समीप विद्यमान अनुभव किया जा सकता है और उनकी श्रेष्ठताओं को हृदयंगम करने के लिए, जीवन में उतारने के लिए सम्बद्ध हुआ जा सकता है। यह स्वयं भी अपने निमित्त किया जा सकता है और दूसरे अन्यान्यों को भी उपलब्ध कराया जा सकता है।

निकटवर्ती एवं समीपवर्ती क्षेत्र में मानवी गरिमा से सुसम्पन्न व्यक्ति यदि सरलतापूर्वक न खोजे जा सकें तो दूरवर्ती, पूर्ववर्ती सम्पन्न व्यक्तियों की तलाश करनी पड़ेगी। यह प्रक्रिया श्रमसाध्य तो है, पर असम्भव नहीं। ऐतिहासिक, पौराणिक कथा-गाथाओं का समुद्र-मन्थन करने से ऐसे ढेरों उदाहरण हस्तगत हो सकते हैं। किसी महापुरुष के समस्त जीवन का घटनाक्रम सुनना आवश्यक नहीं। काम इतने भर से चल सकता है कि उनके वही अंश लिए जाएँ, जिनमें नीति शिक्षा का कोई घटनाक्रम या संवाद अत्यन्त स्पष्ट रूप से निखरा हो। ऐसे उदाहरण देशी और विदेशी कहीं के भी हो सकते हैं। उनमें नर-नारी, बालक, वृद्ध, अपंग सभी आ सकते हैं। ऐसा एक संकलन युग निर्माण योजना, मथुरा से 'प्रज्ञा-पुराण' नाम से पाँच खण्डों में प्रकाशित भी हुआ है। अभी इस प्रसंग में और भी विशेष संकलन बढ़ाने की आवश्यकता है।

तर्क, तथ्य आदि के आधार पर विवेचनात्मक भाषण देना सुगम है क्योंकि उसमें शब्दों को लच्छेदार बनाकर विवेचना पक्ष को विस्तृत तो बनाया जा सकता है, पर उसमें सरसता नहीं आ सकती। विशेषतया तथ्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हृदयंगम करने का अवसर तो मिलता ही नहीं। कारण यह है कि लोगों की प्रधान प्रवृत्ति अनुकरण की है। अनुकरणीय घटनाएँ ही होती हैं। वे प्रत्यक्ष न हों, पुरातन ऐतिहासिक भी हो सकती हैं। दुर्भाग्य से ऐसा कोई संकलन हुआ नहीं है, जिसे शिक्षण हेतु प्राध्यापकों के हाथ में थमाया जा सके। प्रथम बार इस दृष्टि से प्रज्ञा पुराण तथा महापुरुषों की जीवनियों का ही संकलन हुआ है। बन पड़ा तो ऐतिहासिक, प्रामाणिक घटनाओं का सुनियोजन क्रमबद्ध संकलन हम लोग प्रकाशित करेंगे, जिनके उद्धरण देते हुए नीति शिक्षा पक्ष के अनेक पहलुओं को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके, उनके अनुकरण पर जोर दिया जा सके।

पुस्तकों के अतिरिक्त इस प्रयोजन के लिए चित्रों एवं संगीतों का भी प्रयोग हो सकता है। नाटक, प्रहसन, वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ भी एक सीमा तक इस प्रयोजन की पूर्ति कर सकती हैं। यह साधन उपकरण किस प्रकार एकत्रित किये जाएँ ? उन्हें कैसे विनिर्मित किया जाय ? उनकी व्यवस्था बनाने एवं प्रदर्शन करने के लिए किस स्तर की योजना बनाई जाएँ, यह सभी विचारणीय हैं। शिक्षा विभाग के पास इन कार्यों के लिए सम्भवतः कोई बड़ा बजट नहीं है, न प्रशिक्षित कार्यकर्ता हैं, जो लोकमंगल और लोकरंजन के समन्वय की रूपरेखा बनाकर ऐसा तन्त्र खड़ा कर सकें, जो ब्रेन वाशिंग की, लोकमानस के कायाकल्प की व्यवस्था बना सके। इस आवश्यकता की पूर्ति हमें स्थानीय साधनों से ही करके फिलहाल किसी प्रकार काम चलाना होगा।

संगीत एक बहुत अच्छा माध्यम है। विद्यार्थियों में भी उसके प्रति अभिरुचि होती है। वाद्ययंत्रों की अच्छी व्यवस्था न बन पड़े तो ढपली, मजीरा, घुँघरू का ही प्रयोग करें। एक दो सप्ताह के अभ्यास से ही इनमें कक्षा के कई छात्रों को कुशल बनाया जा सकता है। प्रसंगों के अनुरूप कविताएँ और गीत जहाँ-तहाँ से संकलित किए जा सकते हैं। जिनके मधुर कंठ हों, उनके द्वारा ठीक तरह गा सकने की शिक्षा दी जा सकती है। इस प्रकार एक छोटी संगीत मण्डली हर कक्षा में बन सकती है। कक्षा-क्रम से बनी इन मण्डलियों को अलग-अलग अभ्यास प्रदर्शन करने का अवसर दिया जा सकता है। उनकी प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जा सकती हैं।

चित्रावलियाँ प्रकाशित कराई जा सकती हैं। जिनमें नीति पक्ष का समर्थन करने वाले प्रसंगों का चित्रण हो सकता है। बड़े चार्ट भी बनाए जा सकते हैं। सधे हुए हाथ वाले विद्यार्थियों से चार्ट बनवाकर उन्हें कक्षाओं में लगाया जा सकता है।

सस्ते स्लाइड प्रोजेक्टर भी बन सकते हैं। जहाँ बिजली हो, थोड़ा अन्धेरा किया जा सकता हो, वहाँ इन छोटे स्लाइड प्रोजेक्टरों से भी आदर्शों को आँखों के सामने प्रस्तुत करने की बात बन सकती है। प्रज्ञा अभियान, शान्तिकुंज हरिद्वार द्वारा इस विद्या का सफल प्रयोग हो भी रहा है। नैतिक मूल्यों को प्रोत्साहन देने वाले प्रसंगों की स्लाइडें और स्लाइड प्रोजेक्टरों की व्यवस्था भी की गई है।

छोटे-छोटे एकांकी नाटक बन सकते हैं और उन्हें बिना किसी साज-सज्जा के उपलब्ध साधनों से ही यत्किंचित सज-धज करते हुए बिना मंच के खुले में भी प्रदर्शित किया जा सकता है। उपयुक्त एकांकी खोजने पर बाजार में भी मिल सकते हैं और परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षकगण स्वयं भी लिख सकते हैं। बात उस दिशा में उत्साह उभारने भर की है।

कवि सम्मेलन तो नहीं पर कविता सम्मेलन आसानी से हो सकते हैं। किसी भी कवि की कविता को उनके नाम की चर्चा करते हुए प्रतिनिधि रूप में उसे सुनाया जा सकता है। यों इन दिनों समारोहपूर्वक होने वाले कवि सम्मेलन भी आदर्शों की सीमा में सीमित रहकर, यह कार्य बड़े रूप में कर सकते हैं। पर उन तक अपनी छोटी आवाज न पहुँचे तो काव्य संगीत अभिनय का सम्मिश्रण करके, अपनी सूझ-बूझ के आधार पर छोटी-मोटी स्थानीय व्यवस्था तो बन ही सकती है।

यह सब ऐसी विधाएँ हैं, जिनके लिए थोड़े से साधनों से काम चल सकता है। यह साधन स्कूलों के सामान्य बजट से अथवा किन्हीं उदार व्यक्तियों के सहयोग से सहज ही जुटाए जा सकते हैं। आवश्यक इतना भर है कि शिक्षक वर्ग इनका महत्त्व समझ कर, बड़ी कल्पनाओं में खोया न रहकर, प्रभावशाली ढंग से इन सामान्य परन्तु प्रभावशाली विधाओं का प्रयोग करने के लिए कमर कस लें। इतने भर से किशोर हृदयों में आदर्शवादी उमंगें जगाने के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है।

युगधर्म के दस लक्षण

पुरातन काल में नीतिशास्त्र को धर्मशास्त्र के अन्तर्गत लिया जाता था। बाद में साम्प्रदायिक मान्यताएँ और प्रथा परम्पराएँ भी उसके साथ जुड़ गईं। सम्प्रदायों के प्रतिपादनों में अनेकों स्थल ऐसे हैं जो एक दूसरे से मेल नहीं खाते। इसीलिए विवाद उठते हैं और पूर्वाग्रह आपस में टकराते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्यता के हित में यही उपयुक्त है कि सम्प्रदायों को सहिष्णुतापूर्वक रहने दिया जाय। उनमें जो बातें सर्वोपयोगी और नीति सम्मत मिलें, उन्हें अपनाते और सराहते रहा जाय। विग्रह का अवसर देने वाले प्रचलनों या प्रतिपादनों की चर्चा को टालते रहा जाय।

नीतिशास्त्र को धर्मशास्त्र के साथ जोड़ना हो तो उसके अन्तर्गत आने वाली आदर्शवादी स्थापनाओं को प्रत्येक सम्प्रदाय द्वारा प्रोत्साहन दिया जाय। उन्हीं को प्रकाश में लाया जाय और उन्हीं को प्रचारित किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज की परिस्थितियों में विवेकपूर्ण अध्ययन करने पर पाया जाता है कि धर्म धारण की प्रमुख स्थापनाओं में, तत्वदर्शन की दिशा-धाराओं में भी परस्पर अन्तर है। जैसे—अहिंसा शब्द को ही लें, तो उस सन्दर्भ में अनेक पक्ष-विपक्ष उभर कर सामने आते हैं। जैन और बौद्ध धर्मों में अहिंसा को प्रमुखता और प्राथमिकता दी गई है, पर शक्ति धर्म में देवताओं के सामने पशुबलि देने का प्रावधान है। अन्यान्य धर्मों के विभिन्न त्यौहारों पर पशु बलि धार्मिक परम्परा के अन्तर्गत की जाती है। उनमें प्रसाद के रूप में माँस परोसा जाता है। इस विभेद को दूर कैसे किया जाय ?

सत्य के सम्बन्ध में ऐसे ही द्वन्द्व सामने आते हैं। उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के नाम पर राजनीति में, सेना में, गुप्तचर विभागों में तो दुराव अपना कर भेद लेने की, भेद न खुलने देने की व्यवस्था है ही। समय-समय पर अध्यात्मवादी भी अपवाद प्रस्तुत करते रहे हैं। बच्चों का मन रखने के लिए अथवा दुष्टों की दुष्टता निरस्त करने के लिए प्रयत्क्ष सत्य की मर्यादाएँ तोड़ी जाती हैं। भगवान कृष्ण के जीवन में ऐसे ही कई उतार-चढ़ाव हैं। इस दृष्टि से धर्म लक्षणों की कोई स्पष्ट रेखा खींची हुई नहीं है। विभिन्न स्थलों पर धर्म के भिन्न-भिन्न लक्षणों का प्रतिपादन मिलता है। इस आधार पर भी कोई सर्वसम्मत अभिमत उभर कर सामने नहीं आता।

ऐसी स्थिति में परम्परागत विधि निषेधों की ऊहापोह में न उलझ कर शाश्वतधर्म 'युगधर्म' के नाम से नीति नियमों का वर्गीकरण करके उन्हें स्वीकार कर लेना हमारे लिए अधिक उपयोगी होगा। धर्म के अनेक लक्षण हैं प्रत्येक, लक्षण में अनेक बारीकियाँ हैं। उन सब का जोड़-तोड़ बिठाने पर धर्म के प्रमुख अंगों की संख्या भी इतनी बड़ी हो जाती है कि उनके निर्वाह की सतर्कता बरतना तो दूर उन्हें पूरी तरह याद रखना भी कठिन हो जाता है।

ऐसी दशा में यही उपयुक्त लगता है कि सामयिक समस्याओं का समाधान कर सकने वाले, सामयिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकने वाले नीति-नियमों को ही प्रमुखता दी जाय और उन्हें ही ऊपर उठाया-उछाला जाय। उन्हें सार्वभौमिकता एवं सज्जनता की कसौटी पर जाँचते हुए खरे स्तर तक पहुँचाया जाय। इन दिनों कई दुर्गुण असाधारण रूप से पनप रहे हैं। वे प्राचीनकाल में इतने उग्ररूप में नहीं थे, इसलिए तब उनके प्रतिरोध पर अधिक जोर देने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई। परन्तु आज की स्थिति में उनकी उपेक्षा का अर्थ है, विनाश को निमंत्रण देना। इसलिए अब उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके विरोध-प्रतिरोध के लिए सशक्त तन्त्र खड़े करने ही होंगे।

उदाहरण के लिए नशेबाजी को ही लें। प्राचीनकाल में उसे उतनी बड़ी विकृति नहीं माना गया था। क्योंकि तब नशे के नाम पर तीव्र प्रतिक्रिया वाले अत्यधिक हानिकारक पदार्थों का प्रचलन नहीं था। जो थे, वे सौम्य नशे थे और उपयुक्त परिस्थितियों में उनके मर्यादित उपयोग से उतनी हानि की सम्भावना नहीं थी। उनमें किन्हीं अंशों में औषधीय गुण भी रहते थे तथा उस रूप में चिकित्सक की सलाह से लेने में कोई दोष नहीं माना जाता था। परन्तु आज तो स्थिति भयंकर है। इतने तीव्र नशीले पदार्थ विकसित कर लिए गए हैं कि उन्हें जहर से कम कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उस पर भी नशा सेवन व्यसन से आगे बढ़कर फैशन बनता जा रहा है। सेवन की कोई मर्यादा ही नहीं रह गई है। तीव्र नशे और उनके अमर्यादित सेवन की प्रतिक्रियाएँ समूचे समाज को ही जर्जर किए डाल रही हैं। ऐसी स्थिति में यदि नशे को भारी अधर्म ठहराया जाय तो इस निर्धारण को सही और समयानुकूल ही कहा जायेगा।

यही बात छल-छद्म के सम्बन्ध में भी है। प्राचीन काल में सत्य व्यवहार एक सीधी सादी बात के रूप में सहज स्वीकार्य था। कभी दो व्यक्ति या वर्ग आपस में टकराते थे, तो उनमें आमने-सामने सीधा संघर्ष ही होता था। पर आज तो अधिकांश व्यक्तिगत या सामूहिक लड़ाइयाँ छल-प्रपंच के आधार पर लड़ी जाती हैं। पहले तो कूटनीति की भी कोई आचार संहिता थी, जिसमें उसे सीमित प्रसंगों में, सीमित मात्रा में ही प्रयुक्त किया जाता था। पर अब तो छल-प्रपंच की कोई सीमा मर्यादा भी नहीं रह गई। भाइयों और पड़ौसियों-सहकर्मियों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक, कोई पक्ष इससे मुक्त नहीं है। विपक्ष को धोखे में डालकर विश्वासघात की सीमा तक जाकर भी अपनी कथित जीत के ताने-बाने बुनना सामान्य बात हो गई है। मित्र बनकर शत्रुता करने वाले, शौर्य के स्थान पर धोखेबाजी की धूर्तता बरतने वाले अपने को कुशल शिकारी जैसा श्रेय दिलाना चाहते हैं। मानो मछलीमार, चिड़ीमार ही सबसे बड़े वीर विजेता कहलाने लगे हैं।

पुरातनकाल में यह प्रवृत्ति नहीं थी। दिन में युद्ध करके दिन छिपे बाद सभी सैनिक शत्रुपक्ष की ओर से निश्चिन्त होकर आराम करते थे। विरोधी पक्षों की ओर से लड़ने वाले भी शाम होने पर परस्पर मिल लेते थे, सलाह कर लेते थे। पर अब तो विश्वासघात को, छल को ही रणनीति का प्रमुख अंग मान लिया गया है।

लड़ाई ही नहीं सामान्य जन-जीवन में छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए भी छल-प्रपंच का ही प्रयोग होता देखा जाता है। पैसा समेटने के लिए, यश लूटने के लिए, मेरे को आगे और तेरे को पीछे धकेलने के लिए, कदम-कदम पर धोखेबाजी तथा विश्वासघात को ही प्रमुख हथियार मानकर प्रयुक्त होते देखा जाता है। ऐसी स्थिति में जब मनुष्य का मनुष्य पर से, मनुष्यता पर से ही विश्वास टूटा जा रहा है, तो छल को कौशल नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधर्म कहकर ही उस पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाना होगा। प्राचीनकाल में ऐसी वीभत्स स्थिति पैदा न होने से पहले ही उसे इतना घातक घोषित न किया गया हो परन्तु आज तो उसे सर्वसम्मत अधर्म घोषित करना ही होगा।

कथन का अभिप्राय इतना भर है कि समय की समस्याओं का अध्ययन करते हुए उन्हें सुलझा सकने योग्य नीति निर्धारण करने होंगे। उनको ही प्रचार और लोकशिक्षण का आधार बनाना होगा। व्यक्ति और समाज की उलझी हुई समस्याओं का जो समग्र समाधान दे सके, उसे ही 'युगधर्म' कहा जा सकता है। ऐसे नीति निर्धारण को जनजीवन में प्रमुखता मिले ऐसा वातावरण बनाना होगा।

युग की आवश्यकता के अनुरूप धर्म धारण या नीतिनिष्ठा के सूत्रों को इन दिनों इस प्रकार वर्गीकृत किया जाय तो ठीक रहेगा—

(१) शालीनता—सज्जनता, भलमनसाहत, विनम्रता का सहज स्वभाव, वाणी और व्यवहार से उसका परिचय देना। दूसरों को, छोटे-बड़े सभी को उचित सम्मान देना। वाणी में मधुरता, सहजता और सार-संक्षेप में समावेश का अभ्यास। अधिकार से अधिक कर्तव्यों का ध्यान रखना। विषादों और विग्रहों से यथासम्भव बचना। विचारों में आदान-प्रदान का क्रम चलता रह सके, ऐसा सन्तुलन बनाए रखना। सुधार के लिए स्वयं को प्रस्तुत करने का सहज उत्साह बनाए रखना।

(२) दूरदर्शिता—निर्धारणों और प्रयासों के दूरगामी परिणामों को समझना और महत्त्व देना। उतावली में, आवेश में आकर्षणवश ऐसा कुछ न करना जिससे तत्काल थोड़ा लाभ पाने के बाद भविष्य में तिरस्कार सहना और पश्चात्ताप करना पड़े।

(३) तत्परता-सुव्यवस्था—श्रमशीलता, जागरूकता बनाए रखना। शारीरिक आलस्य और मानसिक प्रमाद का उन्मूलन। समय को सुनियोजित क्रियाकलापों में व्यस्त रखना। हर क्षण को सार्थक सदुपयोगों में लगाने की प्रखरता। हाथ के काम में समग्र मनोयोग से लगना। निरर्थक कल्पनाओं में मानसिक क्षमताओं को अस्त-व्यस्त न होने देना। शरीर, वस्त्र, स्थान, उपकरण सभी में स्वच्छता और सुरुचि का सौम्य संयोग रखना। वस्तुओं को यथास्थान करीने से जमाने की आदत। दिनचर्या, कार्य पद्धति एवं योजनाओं में सुनियोजन का तारतम्य जीवन के किसी भी क्षेत्र में अस्त-व्यस्तता न रहने देना अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न मानना।

(४) ईमानदारी—किसी को धोखा न देना। वस्तु स्थिति से बहुत आगे बढ़कर शेखी न बघारना। छल प्रपंच का आश्रय न लेना। करनी और कथनी में अन्तर न आने देना। अन्याय, अनौचित्य से बचकर रहना। बेईमानी को अपने विचारों और कार्यों में समाविष्ट न होने देना। अनीति न करना, न कराना और न उसका समर्थन करना।

(५) जिम्मेदारी—कर्तव्यपरायणता, शारीरिक स्वास्थ्य का, मानसिक सन्तुलन का, आर्थिक सुव्यवस्था का तारतम्य बिठाए रखना। सौंपे गए कार्यों, आश्रित या अधीनस्थ व्यक्तियों के समुचित निर्वाह और विकास की क्षमता और भावना बनाये रखना। कोई ऐसा कार्य न करना जिसका अनुसरण करने पर अन्यान्यों को पतन के गर्त में गिरना पड़े, दुःख उठाना पड़े। वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में प्रामाणिकता, उत्कृष्टता बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहना। देश, धर्म, समाज और संस्कृति के प्रति कर्तव्यों को अनुभव करना और उनका निर्वाह करना।

(६) आस्तिकता—ईश्वर को सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय, कल्याणकारी चेतना शक्ति का प्रवाह मानना। उस दिव्यधारा को व्यक्तित्व में अधिक से अधिक समाविष्ट करने के लिए अभ्यर्थना, उपासना करना। परब्रह्म को सर्वव्यापी और न्यायकारी मानते हुए कर्मफल की सुनिश्चितता पर विश्वास करना। उसे विश्व-व्यवस्था का अनिवार्य अंग मानकर चलना। प्रतिफल मिलने में देरी होती हो, तो भी उसको अकाट्य मानकर कुकर्मों से बचे रहने के सम्बन्ध में सतर्क रहना। व्यक्तित्व को, उसमें सन्निहित विभूतियों को परमपिता की धरोहर मानना और उसके सदुपयोग के लिए जागरूक रहना। इस हेतु व्यक्तित्व में पवित्रता, प्रामाणिकता और प्रखरता बढ़ाते हुए सच्चे अर्थों में अध्यात्मवादी बनना।

(७) परमार्थ परायणता—जरूरतमन्दों की आवश्यकताएँ पूरी करने में हर्ष की अनुभूति होना। दीनों, दुखियों, गिरे हुओं को अभावों, दुःखों और पतन से ऊपर उठाने के पुण्य कार्य को अपने पवित्र कर्तव्य के रूप में स्वीकार करना और उसे नियमित रूप से दिनचर्या का अंग बनाकर चलना। अपने धन, समय, प्रतिभा, योग्यता, प्रभाव आदि का निर्धारित अंश उस निमित्त मनायोगपूर्वक लगाते रहना। ऐसा करने में गौरव एवं सन्तोष की अनुभूति करना। इस क्रम में अन्यों को जोड़ते रहने का प्रयास-पुरुषार्थ करते रहना।

(८) संयमशीलता—इन्द्रियों को व्यसनों में न भटकने देना। चटोरापन, कामुकता, अतिवाचालता, आवारागर्दी जैसी दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश रखना। समय की सुनियोजित निर्धारण-दिनचर्या बनाकर चलना। समय काटने-बर्बाद करने की मनोवृत्ति से बचना। प्रत्येक क्षण के अच्छे से अच्छे उपयोग के लिए तत्पर रहना। अर्थ को, और साधन को, उपयोगी हितकारी कार्यों में ही लगाना। फैशन, विलासिता, अहंता के प्रदर्शन के लिए खर्चीले सरंजाम जुटाने में कड़ाई से कटौती करना। उपयोगी कार्यों के लिए बचत करना, अनावश्यक संग्रह से बचना। विचारों को श्रेष्ठ रचनात्मक कार्यों में इस प्रकार सुनियोजित किए रहना कि कुकल्पनाएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उठने का अवसर ही न मिले। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, प्रपंच आदि का ताना-बाना बुना ही न जा सके। उद्वेग उठने, उत्तेजित होने की गुंजायश ही न रहे।

(९) उदार आत्मीयता, सहकारिता—अपने आपको समष्टि का, विराट् का एक अंग मानना। सबमें परमात्मा चेतना या आत्मचेतना का अंश देखते हुए भेद से ऊपर उठकर विशाल हृदय-आत्मीयता का प्रमाण देना। संकीर्ण स्वार्थपरता के भाव मन में आने देना। सहयोग लेने और देने की प्रवृत्ति और कला का विकास करना। एक वृहत परिवार का अंग होने का भाव बनाए रखना। मिल-जुलकर रहने, मिल-बाँटकर खाने और साथ-साथ काम करने में प्रसन्नता अनुभव करना।

(१०) प्रखरता—कठिनाइयों, अवरोधों को पार करते हुए लक्ष्य तक बढ़ने की क्षमता, साहसिकता। आदर्शों को अपनाने, विकारों को हटाने, कठिनाइयों में अविचलित रहने योग्य मनोबल। कुरीतियों, अनीतियों को नकारने और उनका प्रतिरोध कर सकने योग्य संकल्प बल। सन्मार्ग पर चल पड़ने की ही नहीं, उसे बना लेने की भी सहज प्रवृत्ति का विकास।

उपरोक्त दस सूत्रों को युगधर्म की मान्यता दी जा सकती है। विभिन्न मतमतान्तरों-सम्प्रदायों को मानने वालों को भी इन्हें अपनाने में सैद्धान्तिक कठिनाई नहीं होगी। क्योंकि प्रकारान्तर से सभी विचारकों ने इन्हें स्वीकार किया है। कहीं किसी नियम विशेष की लक्ष्मण रेखा बन गई हो, वहाँ उसे इन. दस सूत्रों में से किसी के साथ, उसकी समस्वरता देखते हुए मिलाया जा सकता है। अनेकानेक नीति-नियमों को इन दस सूत्रों की परिधि में समेटा जा सकता है। योगदर्शन में वर्णित अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान आदि दस नियम इन्हीं में आ जाते हैं। मनु के दस धर्म लक्षण और महात्मा गाँधी के सप्त महाव्रत भी घुमा-फिराकर इन्हीं सूत्रों में सन्निहित हो जाते हैं।

यदि हर सद्गुण के लिए एक-एक नियम बनाया जाय तो उनकी संख्या सैकड़ों-हजारों तक जा पहुँचेगी, फिर उन्हें याद रखना ही कठिन हो जाएगा। उन्हें जन सामान्य को कण्ठस्थ, जीवन में समाविष्ट करना तो असम्भव जैसा लगेगा। अस्तु, सार-संक्षेप में सीमित दस सूत्रों को ही लेकर चलना ठीक रहेगा।

इन सूत्रों की परिधि में दार्शनिक क्षेत्र में प्रतिपादित आस्तिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता का, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का, गीतोक्त दैवी सम्पदाओं आदि का भी समावेश हो जाता है। समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सभी अनुशासन संयमशीलता के अन्तर्गत और नागरिकता के नियम शालीनता के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसी प्रकार कहीं यदि कुछ छूटता दिखे तो उन्हें इन्हीं सूत्रों के साथ ही जोड़ते हुए चला जा सकता है। इन्हें युगधर्म का शाश्वत धर्म का नाम देकर सार्वभौम स्तर पर लागू किया जा सकता है।

इन सूत्रों को छात्रों तक पहुँचाने में कठिनाई नहीं होगी। परन्तु उन्हें यह सूत्र रटा भर देने से काम नहीं चलेगा। इनके महत्त्व, प्रतिफल आदि समझाने होंगे। व्यावहारिक रूप देने में आने वाली कठिनाइयों का समाधान करना होगा। यह सब कार्य जनजीवन में अथवा ऐतिहासिक, धार्मिक कथाओं के उदाहरणों के माध्यम से किए जा सकते हैं। जिन धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध छात्र हों, उन्हीं धाराओं के उदाहरण अधिक ग्राह्य हो सकते हैं। यह सब ताने-बाने थोड़ी-सी रुचि लेने से ही बुने जाने सम्भव हैं।

सेवा-सहकारिता का अभ्यास ही नहीं, चस्का भी

कुछ विषय ऐसे हैं जिन्हें पुस्तकों के माध्यम से अथवा प्रवचन द्वारा सिखाया-समझाया जा सकता है। उनके लिए प्रत्यक्ष प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगर्भ, खगोल आदि ऐसे विषय हैं जिनकी पृष्ठभूमि जान लेने से काम चल सकता है। तत्व दर्शन को भी पुस्तकों के सहारे अथवा कथा, सत्संगों, विवेचनों में सम्मिलित होकर जानने-समझने का अवसर मिल सकता है। किन्तु कुछ विषय ऐसे हैं, जिनमें प्रयोगों की, उपचार-उपकरणों की आवश्यकता होती है। शरीरशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, संगीत, शिल्प विज्ञान आदि को समझने-समझाने के लिए प्रयोगों की, साधन सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें मात्र स्वाध्याय-सत्संग के द्वारा नहीं समझाया जा सकता है। अन्तराल की गहरी परतों तक किसी तथ्य को पहुँचाने के लिए ऐसे दृश्यों, आयोजनों की आवश्यकता पड़ती है, जो जिज्ञासु की अनभिज्ञता को भिज्ञता में बदल सके। विषय की उपलब्धियों से अवगत होकर उन्हें कार्यान्वित करने के लिए तत्पर हो सके।

शिक्षा ऐसा ही विषय है, जो मात्र कथन-श्रवण से पूरा नहीं होता। पुस्तकें जानकारी तो देती हैं पर वस्तुस्थिति भली प्रकार समझ सकने की गहराई तक नहीं पहुँचाती। उनके लिए प्रयोगों की आवश्यकता पड़ती है। साधन जुटाने होते हैं। संगीत सीखने के लिए न केवल वाद्ययन्त्र चाहिए, वरन् स्वर ज्ञान कराने वाला और भूलों को सुधारने वाला निष्णात शिक्षक का योगदान भी साथ-साथ चलना चाहिए। विज्ञान की कक्षाओं के लिए प्रयोगशाला आवश्यक समझी जाती है। गृह-विज्ञान, पाक-विज्ञान, धात्रिकला जैसे विषयों के सन्दर्भ में भी प्रत्यक्ष प्रयोग तथा आवश्यक दृश्य साधन जुटाने पर ही काम चलता है। छोटे बच्चे किन्डरगार्डेन उपकरण, बालफ्रेम, ब्लैकबोर्ड आदि के सहारे ही अपने विषय में आगे बढ़ पाते हैं। प्राथमिक कक्षाओं की पुस्तकों में चित्रों की भरमार रहती है, ताकि न केवल श्रव्य, वरन् दृश्य भी उनकी ज्ञानवृद्धि के लिए सामने प्रस्तुत रह सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यायामशालाओं में बौद्धिक कम और क्रियापक्ष अधिक रहता है। शल्यक्रिया, नटविद्या, बाजीगरी, अभिनय आदि बिना अभ्यास के, बिना मार्गदर्शक की सहायता के सीखे नहीं जा सकते।

नीति शिक्षा में वातावारण की उपयुक्तता पर बहुत जोर दिया गया है, ताकि निर्धारित सिद्धान्तों का प्रयोग उस परिकर में देखा जा सके। नाटक, अभिनय, फिल्म भी प्रकारान्तर से अभिरुचि को दिशा विशेष में मोड़ने, साधने का ही काम करते हैं। फौजी ड्रिल में भी अभ्यास की महत्ता सर्वोपरि है। छावनियों में युद्धाभ्यास होते रहते हैं। स्काउटिंग में जितना बौद्धिक है, उससे अधिक क्रिया-पक्ष। उसके लिए प्रयोगों को कर दिखाने के रूप में परीक्षा ली जाती है। कैम्प फायर मनोविनोद मात्र नहीं है। उनमें विभिन्न परिस्थिति में क्या कर दिखाने की आवश्यकता पड़ती है, इसे व्यवहार में लाया जाता है। उस परिकर में क्रिया-कुशलता ही सराही जाती और पुरस्कृत होती है। समग्र शिक्षा मात्र पुस्तकों के लेक्चरों के सहारे पूरी नहीं होती, उसके साथ क्रिया प्रयोग भी जोड़ने पड़ते हैं। यदि उनकी उपेक्षा-अवहेलना होती रहती है तो उस भूल को शीघ्र ही सुधारा जाना चाहिए। शिक्षा-पद्धति का एक अंग अनुभव अभ्यास भी होना चाहिए। यों इसके लिए छात्रों की मण्डली बनाकर पर्यटन की सुविधा दी जाती है, पर उसमें मनोरंजन मात्र कर लिया तो क्या काम बनेगा। जो कुछ देखा जाता है उससे मिलने वाली शिक्षा एवं प्रेरणा को हृदयंगम करते चलने वाले उस प्रयोजन की पूर्ति, उत्साही सूक्ष्म बुद्धि वाले प्रशिक्षकों द्वारा की जानी चाहिए।

शिक्षार्थियों में सुसंस्कारिता-सम्वर्द्धन के लिए भी मात्र जानकारी देने से काम नहीं चलेगा, प्रयोगों का सहारा लेना ही पड़ेगा। इसके लिए यदि समुचित परिपूर्ण व्यवस्था नहीं है, तो वे प्रयोग जहाँ होते हैं, वहाँ जाकर अथवा अपने निजी आयोजन करते हुए उन दोनों पक्षों की कमी को पूरा करना चाहिए।

सामूहिक रूप से समाज सेवा के अभ्यास इस निमित्त आवश्यक हैं। छात्रों को उनके स्तर के अनुरूप संगठित किया जाय। खेलने-कूदने का अवसर दिया जाय, ताकि उनकी व्यवहार कुशलता, स्फूर्ति, तत्परता, जागरूकता एवं सहकारिता का, सतर्कता का अनुपात बढ़े। खेलों में हार-जीत के आधार पर निराश उत्तेजित होने का अवसर नहीं आने देना चाहिए। वरन् खिलाड़ी भावना का हँसते-हँसाते विनोद करने का माद्दा बढ़ाना चाहिए। आत्म-रक्षा के लिए, साहसिकता बढ़ाने के लिए लाठी चलाने जैसे अभ्यास भी उपयोग में लाए जाने चाहिए।

व्यायामशाला के साथ रक्षा एवं आपत्तिकालीन व्यवस्था की जानकारी भी जुड़ी रहनी चाहिए। इस दृष्टि से स्काउटिंग में फर्स्ट-एड, होम नर्सिंग, घरेलू चिकित्सा जैसे विषय जुड़े रहते हैं। उन्हें ऐच्छिक नहीं रहने दिया जाना चाहिए। अनिवार्य न होते हुए भी समझा-बुझाकर अधिकांश छात्रों को उसमें भाग लेते रहने के लिए प्रोत्साहित करते रहना चाहिए। स्वच्छता अपने आप में एक समग्र विषय है। उसका हर पक्ष स्वास्थ्य केन्द्रों में सिखाया जाना चाहिए। व्यायामशालाओं को मात्र पहलवानी का विषय न माना जाय, वरन् उन्हें स्वास्थ्य संरक्षण, सक्रियता सम्वर्द्धन के रूप में शिक्षा का एक अविच्छिन्न विषय मानकर चलना चाहिए।

गैरसरकारी स्तर पर स्कूलों में गृह-उद्योग नहीं सिखाए जा सकते। स्थान की कमी, शिक्षकों और साधनों का अभाव कैसे पूरा हो ? कच्चा माल कहाँ से जुटाया जाय ? बनी हुई वस्तुएँ कहाँ बेची जाएँ ? इन प्रश्नों का हल न मिलने पर वह प्रयोग क्रमबद्ध रूप में नहीं चल सकता। पर दो उद्योग ऐसे हैं, जिन्हें शिक्षक सामान्य जानकारी जुटाकर अपने बलबूते छात्रों की सहायता से चला सकते हैं। इनमें से एक है घरेलू शाक-वाटिका। विभिन्न मौसमों में बोए-उगाए जाने वाले शाकों का पता लगाकर उन्हें टोकरियों में, गमलों में भी बोया उगाया जा सकता है। दूसरा है टूट-फूट की मरम्मत बर्तन, फर्नीचर स्टोव, पुस्तकें कपड़े आदि की मरम्मत करना सीख लेने पर टूटी-फूटी वस्तुओं को भी नई के सदृश्य बनाया जा सकता है। पुरानी फेंककर नई खरीदने में जो पैसा खर्च होता है, उसे बचाया जा सकता है। यह दोनों उद्योग ऐसे हैं जो सामान्य कुशलता से कम पूँजी में कहीं भी चल सकते हैं। इनके द्वारा होने वाली बचत का हिसाब लगाया जाय तो वह छोटे-मोटे गृह-उद्योगों के बराबर जा पहुँचती है। साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, स्याहियाँ बनाना, खिलौने बनाना आदि उद्योग भी ऐसे हैं, जिनमें अधिक पूँजी नहीं खपानी पड़ती, जो माल बनता है उसे निर्माणकर्ता ही सस्ते मोल में खरीद सकते हैं। साथ ही उन कौशलों में प्रवीण भी हो सकते हैं।

यह भी हो सकता है कि जहाँ देहात के लिए उपयोगी उद्योग चलते हों, वहाँ छात्रों को ले जाकर उनके बारे में अधिक से अधिक जानकारी दी जाय, लुहार, बढ़ई, दर्जी, कुम्हार, बुनकर आदि घरेलू उद्योग कर लेते हैं। उन्हें कार्यान्वित होते गाँव-गाँव देखा जा सकता है। उनके बनाने में लगने वाला सामान, उपकरण, औजार, श्रम, काम आदि की जानकारी सहज ही दी जा सकती है। उनसे होने वाली आमदनी का, विक्रय के मारकेट का भी विस्तारपूर्वक विवरण दिया जा सकता है। कुछ बड़े कारखाने हों तो जहाँ वे चलते हैं, वहाँ छात्रों को ले जाकर उनका ब्यौरा बताया जा सकता है ताकि उन्हें यह विदित रहे कि नौकरी ढूँढ़ने का एक विकल्प गृह-उद्योगों को अपनाना भी हो सकता है। कृषि, पशुपालन तो देश के प्रमुख उद्योग हैं। उनको परिष्कृत ढंग से करने और अधिक लाभ कमाने का ज्ञान भी अध्यापक छात्रों को जहाँ-तहाँ ले जाकर सरलतापूर्वक करा सकते हैं। मधुमक्खी पालन पर ध्यान दिया जा सके तो वह भी लाभदायक उद्योग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कभी-कभी छात्रों की छोटी-छोटी मण्डलियाँ बनाकर घरेलू कामकाज को मिल-जुलकर करने की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। भोजन बनाना, कपड़े धोना, सफाई रखना, मकान की पुताई, मरम्मत, सजावट, पुस्तकों की जिल्दें आदि कितने ही कौशल ऐसे हैं, जिन्हें सीखने में जहाँ मनोरंजन होता है, वहाँ मिल-जुलकर काम करने की सहकारी प्रवृत्ति भी पनपती है। घरों में इस प्रकार का प्रचलन चल पड़े तो परिवार के सभी सदस्य मिल-जुलकर सारे काम एक दो घण्टे में ही समेट सकते हैं। महिलाएँ जो गोरखधन्धे में ही मस्त रहती हैं, वे कुछ अवकाश पा सकती हैं और उसे अपने बच्चों की पढ़ाई में लगाकर योग्यता बढ़ा सकती हैं। इस बचे हुए समय में स्त्रियाँ घरेलू उद्योगों के सहारे कुछ कमा भी सकती हैं।

व्यक्तिगत सद्गुणों की अभिवृद्धि का अभ्यास परमार्थपरायणता से होता है। पुण्य कमाना इसी को कहते हैं। लोकसेवा के लिए कुछ कदम उठाने की बात तभी बनती है, जब भीतर से सद्भावनाएँ उभरें। सस्ती नेतागीरी और झूठी वाहवाही लूटने के लिए प्रपंच, आडम्बर खड़े करने वालों की बात दूसरी है। वे कहते बहुत हैं, दिखावा भी बहुत करते हैं, पर सेवाकृत्यों में समय लगाने एवं अनुदान अर्पित करने में तनिक भी उत्साह नहीं दिखाते। सद्गुण बढ़ चले या बढ़ने जा रहे हैं, इसकी एक ही परीक्षा है कि उदार सेवा साधना में संलग्न होने की उमंग उभरी या नहीं ? यदि उभरी होगी तो वे अवसर पाते ही उस प्रसंग में जुट पड़ने से पीछे न हटेंगे। इस प्रयोजन के लिए सेवा समिति जैसे छोटे-छोटे समुदायों का गठन किया जाना चाहिए।

सामूहिक सेवा कार्यों में गाँव की, गली-मुहल्लों की नालियों, कुओं के इर्द-गिर्द कीचड़ की, तालाबों की सफाई करने का कार्य ऐसा है जो सामान्य दीखते हुए भी असाधारण रूप से उपयोगी है। गन्दगी से बीमारी फैलती है। कुरुचि और दुर्गन्ध से वातावरण दूषित होता है। कचरे को खाद के रूप में परिवर्तित करके उसे मूल्यवान ही बनाया जा सकता है। सफाई करने वाले कर्मचारियों के अभाव की पूर्ति यह बाल-मण्डलियाँ कर सकती हैं। रात्रि को पहरा देने का काम भी ऐसा है, जिससे सभी की जागरूकता, सवाधानी बढ़ती है और चोरों-उचक्कों की दाल नहीं गलती।

मिल-जुलकर वृक्षारोपण किया जा सकता है। पौधशालाएँ लगाई जा सकती हैं। घर-घर आँगनबाड़ी लगाने का चस्का लगाया जा सकता है। जिनकी लिपि अच्छी है, वे दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखकर वातावरण को प्रेरणाप्रद बना सकते हैं।

रोगियों की सेवा-परिचर्या का काम भी मिल-जुलकर हाथ में लिया जा सकता है। सामूहिक आयोजनों का प्रबन्ध मिल-जुलकर कर किया जा सकता है। इनमें शिक्षाप्रद एकांकी-नाटक, कविता-सम्मेलन, गायन-वादन जैसे माध्यमों से जहाँ अपनी योग्यता बढ़ाई जा सकती है, वहाँ जनता के लिए शिक्षाप्रद मनोरंजन भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

ढूँढ़ने पर ऐसे अनेक काम विभिन्न स्तर के मिल सकते हैं, जिनमें सेवा, सहायता, सहकारिता की उदार भावना जुड़ी हुई हो। इस हेतु स्काउटिंग या सेवा समिति जैसे छोटे-छोटे संगठन हर जगह खड़े किए जा सकते हैं। इस प्रकार की पाठ्येतर गतिविधियों (एक्सट्राकैरी कुलर एक्टिविटीज) के लिए शिक्षानीति में भी पर्याप्त स्थान है। उसके लिए समय और बजट दोनों ही साधिकार, नियमानुसार भी निकाले जा सकते हैं। पर्याप्त संख्या में विद्यार्थियों में इनके प्रति उत्साह भी होता है। पर शिक्षक वर्ग द्वारा पहले किए बिना यह कुछ भी कार्य किए-निभाए नहीं जा सकते। विद्यार्थी इन्हें स्वतन्त्र रूप से अपने बूते नहीं चला सकते। परन्तु यदि शिक्षक रुचि लें, उल्लास जगाएँ तो आसानी से ऐसी गतिविधियाँ चलती रह सकती हैं, जिनके माध्यम से सेवा के प्रति छात्रों में सहज रस पैदा हो जाय। एक बार रस पैदा हो जाने पर वे जीवन भर उस क्रम को चलाते रह सकते हैं।

अध्यापकों की नई पीढ़ी— नई जिम्मेदारी

ग्रामोन्मुख शिक्षा प्रणाली में जहाँ पाठ्य-पुस्तकों में से साहित्यिकता घटाकर जीवनोपयोगी विषयों का समावेश करना आवश्यक है, वहाँ यह भी आवश्यक है कि शिक्षकों और शिक्षिकाओं को इस दायित्व को निभाने के लिये नये सिरे से भर्ती या ट्रेन्ड किया जाय। जूनियर हाईस्कूल तक पढ़ाने में दो वर्ष की और मैट्रिक तक पढ़ों को एक वर्ष की ट्रेनिंग देने से काम चल सकता है। पाठ्य-पुस्तकों में अध्यापकों ने स्वयं भी वही पढ़ा होगा, जो नये छात्रों को सिखाना है। इस प्रकार उनकी आधी ट्रेनिंग निज की पढ़ाई के समय से पूरी हो जाएगी, पढ़ाने की शैली भर सिखाने की जिम्मेदारियों को ईमानदारी से निभाने, पढ़ाने की ट्रेनिंग में शामिल होनी चाहिए।

इस स्तर के अध्यापक बहुत ऊँचे वेतन की माँग न करेंगे। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति मितव्ययता अपनाकर औसत भारतीय स्तर का जीवन भी जी सकते हैं। इसलिए जितने दाम में एम. ए., बी. एड. अध्यापक आता है। उससे आधे में नये अध्यापक मिल सकते हैं और व्यापक विस्तार का कार्य सुलभ हो सकता है। शिक्षितों में से हजारों-लाखों को काम मिल सकता है।

अधिक वेतन की आवश्यकता तब पड़ती है, जब अध्यापकों के तबादले घर से बहुत दूर कर दिए जाते हैं। मकान किराये पर लेने, बच्चों की देखभाल के लिए घर जाने, परिवार व्यवस्था न सँभाल पाने आदि कारणों से जिनका तबादला दूर हो गया है वे चिन्तित भी रहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं और खर्च दुहरा बढ़ जाने से आर्थिक कठिनाई बढ़ने पर कोई उल्टा-सीधा मार्ग सोचते हैं। छुट्टियाँ लेने तथा गैरहाजिरी करने की आवश्यकता भी उन्हीं को अधिक पड़ती है यह प्रथा बन्द होनी चाहिए और ग्रामसेवक, पटवारी, पंचायत सेक्रेटरी, अध्यापक आदि कम वेतन वाले लोगों को इतनी सुविधा मिलनी चाहिए कि वे अपने निवास स्थान से बहुत दूर न भेजे जाएँ। १० मील तक दूरी हो तो उन्हें साइकिल एलाउन्स देकर कठिनाई को सरल बनाया जा सकता है।

महिलाओं के सम्बन्ध में और भी अधिक विचारणीय प्रश्न है। उनका दूर तबादला कर देने पर सुरक्षा, बच्चों की देखभाल, स्वास्थ्य सम्बन्धी आदि अनेकों प्रश्न सामने आ खड़े होते हैं, इसलिए इस वर्ग के लोगों को दूर न भेजा जाय। महिलाओं के सम्बन्ध में और भी उदारता बरतने की आवश्यकता है।

अपने देश के पिछड़ेपन में एक बड़ी बात यह सिर पर लदी है कि व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता। अधिकारों के लिए लड़ता है सो ठीक है पर कर्त्तव्यों को भी तो उतना ही स्थान मिलना चाहिए। जिन अध्यापकों के बच्चे अधिक फेल या पास हों उन्हें स्थिति के अनुरूप दण्ड-पुरस्कार भी मिलना चाहिए। जो लोग मानवी गरिमा के साथ अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं सोचते, उन्हें इसके लिए बाधित करने का प्रबन्ध भी होना चाहिए।

इसके लिए उनके मार्गदर्शक एवं निरीक्षक ऐसे होने चाहिए, जो निजी राग-द्वेष से ऊँचे रहकर न केवल अध्यापकों को पूरा काम करने के लिए विवश करें वरन् जब जहाँ गड़बड़ी दीखे वहाँ कुछ दिन ठहर कर पटरी पर से उतरी हुई गाड़ी को लाइन पर लाने का प्रयत्न करें।

गर्मी के दिनों में प्राय: दो महीने छुट्टी होती है। बच्चे उतने दिनों सुस्ता लेते हैं। अध्यापकों के लिए एक महीने की छुट्टी ही पर्याप्त होनी चाहिए। उन्हें एक महीने के लिए हर साल ट्रेनिंग पर बुलाया जाय ताकि उनकी कठिनाइयों का निराकरण और भावी सुधार-परिष्कार के सम्बन्ध में बहुत कुछ बताया जाय। इस शिक्षण में उनकी श्रद्धा और जिम्मेदारी का स्तर बढ़ाने की बात को प्रमुखता दी जानी चाहिए ताकि वे अपने को सच्चे अर्थों में नये समाज के निर्माता अनुभव कर सकें।

गुरु पद के अनुरूप दायित्व भी

आज के बच्चे कल के राष्ट्र निर्माता हैं। अगले दिनों उन्हीं को देश की बागडोर सँभालनी है। अस्तु, जैसा आज का बाल-समुदाय होगा, वैसा ही देश का भविष्य बनेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमें पूरी शक्ति नई पीढ़ी के निर्माण में लगानी चाहिए।

शिक्षा प्रसार की ओर हमें सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यही उचित है कि प्राथमिक पाठशालाएँ गाँव-गाँव खुलें। बड़े गाँवों में जूनियर हाईस्कूल और बड़े कस्बों में हाईस्कूल जितने अधिक स्थापित किए जा सकें उतने किए जाएँ। कॉलेजों की संख्या घटाई जाय, उसमें प्रतिभाशाली छात्र उतनी ही संख्या में पढ़ें, जितनों को काम मिलने की आशा हो।

इस प्रकार कॉलेजों का खर्च घटकर स्कूल और हाईस्कूलों का खर्च बढ़ेगा, तो उसमें विशेष अन्तर न पड़ेगा यदि पड़ेगा भी तो उसे अन्य मदों से कटौती करके भी नये टैक्स लगाकर पूरा करना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने का साहस हमें करना ही चाहिए। नई इमारतें न बन सकें तो प्राचीनकाल जैसी बड़े पेड़ों के नीचे कक्षाएँ चलानी चाहिए या खपरैल, टिनशेड आदि के सस्ते निर्माण करके उनसे काम चलाना चाहिए।

स्कूलों में कई महीने की छुट्टियाँ होती हैं। पूरे ५२ रविवार, २८ त्यौहार, दो महीने की गर्मियों की छुट्टी इस प्रकार प्राय: पाँच महीने की छुट्टियाँ हो जाती हैं। अध्यापकों को पढ़ाई के सात माह में कुछ नियत घण्टे पढ़ाने पड़ते हैं। ४५ मिनट का एक घण्टा होता है। इस ७ माह में तीन या चार पीरियड भी एक अध्यापक ले व इसे पूरे एक साल में फैला दें तो कुल मिलाकर डेढ़ पीरियड ही प्रतिदन एक-एक अध्यापक के पल्ले पड़ता है, जो नहीं के बराबर है। इस प्रकार वस्तुत: १ घण्टा छोड़कर रोज का सारा समय उनका खाली रहता है।

अध्यापकों को वेतन कम मिलता है, तो उसे बढ़ाया जाना चाहिए। पर काम के घण्टे उनके भी उतने ही होने चाहिए जितने कि अभिभावकों के होते हैं। माता बच्चों के किसी न किसी काम से लगी रहती है। पिता भी जो कड़ी मेहनत करता है, उसमें से रूखी-सूखी पेट में डाल लेने के अतिरिक्त जो बचता है, उसे बच्चों के पालन-पोषण और भविष्य निर्माण में ही खर्च करता है। माता-पिता दोनों ही प्राय: १६ घण्टे बालकों को लिए खटते हैं।

अध्यापक का स्थान भी यही है। उसे गुरु कहते हैं। गुरु का दर्जा और भी बड़ा है। माँ-बाप तो स्वल्प शिक्षित होने के कारण बच्चों को सुसंस्कारी बनाने में समर्थ न होने के कारण यह कार्य 'गुरु' को सौंपते हैं। माता-पिता और गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी गई है। अध्यापक अपना सम्मान स्वभावत: वैसा ही चाहते भी हैं। उनकी अधिकांश माँग उचित हैं पर कर्तव्य को भी तो भुलाया नहीं जा सकता है। छात्रों को अनाथों की भीड़ नहीं माना जाना चाहिए वरन् ठीक वही करना चाहिए जो माता-पिता करते हैं। इसके लिए उनसे भी १६ घण्टे श्रम की आशा की जाय तो अनुचित न होगा और उसमें उपेक्षा बरतने पर यदि वह सम्मान नहीं मिलता, तो उसमें बुरा मानने जैसी कोई बात भी नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ा देना एक बहुत ही हल्का और छोटा काम है। पुस्तकों में जो नहीं है। उसे अपनी समझ से पढ़ाना चाहिए। अपना चरित्र इतना ऊँचा रखना चाहिए कि छात्रों और अभिभावकों का सिर उनके चरणों में झुके। बहुत से विषय पाठ्य-पुस्तकों में नहीं हैं, पर अध्यापक को जानना चाहिए कि छात्रों के समग्र विकास के लिए क्या आवश्यक है ? उसे व्यक्तिगत समय में से पढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिए। शिष्टता, शालीनता, प्रतिभा, स्वावलम्बन आदि का विकास ऐसा ही है, जिन्हें अध्यापक अपनी समझ से कर गुजरें।

देश का चिन्तन और चरित्र बदल सकने में समर्थ अध्यापक

उपरोक्त पंक्तियाँ इस दृष्टि से लिखी गई हैं कि देश की आवश्यकताओं को देखते हुए शिक्षा की नई पद्धति का निर्माण होगा। विदेशों की नकल करने की मनोवृत्ति में वे तत्व भी भर गए हैं जिनके कारण हमें योजनाओं की भी वैसी ही नकल करना अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न लगता है। आज जो भी स्थिति हो—आज जैसी भी पाठ्य-पद्धति हो; हमारा पूरा-पूरा विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं जब हमें अपने देश की स्थिति और आवश्यकता को ध्यान रखते हुए शिक्षण-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ेंगे। ऐसा परिवर्तन, जो समय की विकृतियों से जूझने और प्रगति का व्यावहारिक मार्ग अपनाने में समर्थ हो।

वह समय कब आएगा, कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि अपने मूर्धन्यों को व्यवहारवादी बनने में अभी देर लगे। ऐसी दशा में विचारणीय है कि क्या अध्यापक वर्ग अपने निज के बलबूते कुछ नहीं कर सकता ?

यदि यह वर्ग अपनी गुरु गरिमा को ध्यान में रखते हुए, छात्रों का व्यक्तित्व विकसित करते हुए उनका भविष्य उज्ज्वल बनाने की बात सोचने लगे तो इतने भर से बहुत काम चल सकता है। जिस प्रकार अभिभावक बच्चों के लिए दिन भर सोलह घण्टे खटते रहते हैं। उसी प्रकार अध्यापक निजी परिवार का निर्वाह करने के लिए सरकारी वेतन से सन्तुष्ट रहकर छात्रों के कल्याण की बात सोचें और उसके निमित्त जो बन पड़े, उसे करने के लिए यथासम्भव प्रयत्न करें।

'औसत नागरिक स्तर का निर्वाह' अगले समय की सर्वमान्य नीति होगी। अध्यापक छात्रों के, देश के गुरु होने के नाते इस आदर्श को अपने आप पर लागू कर सकते हैं। वेतन पर गुजारा करने, अतिरिक्त कमाई के लिए मन न चलने की बात वे सोचने लगें तो उन्हें सच्चे अर्थों में गुरु या 'साधु-ब्राह्मण' कहा जा सकेगा। इसी वर्ग ने भूतकाल में निजी महत्त्वाकांक्षाओं को तिलांजलि देकर निरन्तर लोकमंगल में निरत रहने का व्रत लिया था और देश के नागरिकों को देवोपम बनाने का श्रेय प्राप्त किया था। यदि अन्य अनेकानेक कठिनाइयों, शिकायतों की ओर ध्यान देने की अपेक्षा अपने कर्त्तव्यपालन की बात सोचने लगे तो यह अकेला वर्ग ही देश का कायाकल्प कर सकता है। छात्र उन्हें समुचित सम्मान देते हैं। उनके अभिभावक भी बड़ी आशाएँ करके कृतज्ञ रहते हैं। यदि एक विद्यालय से सम्बन्धित छात्रों के इस परिवार को देखा जाय तो बच्चों और अभिभावकों की संख्या ही सैकड़ों-हजारों हो जाती है। उनके साथ सम्पर्क साधकर पढ़ाई में प्रगति से लेकर व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी चर्चा के लिए योजनाबद्ध एवं क्रमबद्ध रूप से समय निकालने की इच्छा हो तो वे आसानी से कर सकते हैं। इसके लिए समय की कमी रहने जैसा बहाना बनाना भी नितान्त असंगत है।

महिला और पुरुषों की प्रौढ़ शिक्षा पाठशाला का क्रम इस प्रकार चलाया जा सकता है कि एक दिन महिलाओं का, एक दिन पुरुषों का प्रशिक्षण क्रम चले। ग्रामोपयोगी पुस्तकालय चलाना अध्यापकों के लिए नितान्त सुगम है। वे बच्चों द्वारा अभिभावकों के लिए पढ़ने का, सुनाने का सिलसिला चलाते रह सकते हैं। खेलकूदों में ग्रामीण स्तर के खेलकूद, व्यायाम, ड्रिल, फर्स्टएड आदि का प्रशिक्षण रविवार की साप्ताहिक छुट्टी के दिनों किया जा सकता है। एक स्कूल में कई-कई अध्यापक होते हैं। घरेलू कामों के लिए कभी किसी को इन कामों से अवकाश लेने की आवश्यकता आ पड़े तो, उसकी स्थान पूर्ति दूसरे कर सकते हैं। इस प्रकार एक स्कूल के अध्यापक ही मिल-जुलकर ऐसी योजना बना सकते हैं कि न केवल विद्यार्थियों को वरन् समूचे गाँव को प्रगतिशील शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सकता है। विद्यार्थी तो हर कसौटी पर खरे सिद्ध हो सकते हैं। बच्चों का जन्मदिवसोत्सव उनके घर में मनाने की परम्परा आरम्भ करके सभी सभी घरों में बच्चों के प्रति बड़ों के और बड़ों के प्रति बच्चों के कर्त्तव्य का प्रशिक्षण भाव भरे वातावरण में किया जा सकता है, यहाँ हम अध्यापक को कुल-पुरोहित—ग्राम पुरोहित के उस आसन पर आसीन कर रहे हैं, जिसमें कि कभी उनके ऊपर स्वर्ग से पुष्प बरसाने की तरह समूचे गाँव की श्रद्धा बरसती थी और वे वेतन की दृष्टि से सामान्य स्तर का रहन-सहन रखते हुए भी 'सादा जीवन उच्च विचार' सिद्धान्त की प्रत्यक्ष प्रतिमूर्ति बने रहते थे।

स्कूल भले ही चार-पाँच घण्टे खुले पर अध्यापक के लिए तो उतने बच्चों का अभिभावक होने के नाते सोलह घण्टे का काम बना रहना चाहिए। इसमें उन्हें थकान आने वाली नहीं है। वरन् कर्मयोगी की तरह निरन्तर प्रगति और प्रसन्नता बढ़ती रहेगी। परिवार का काम उनकी पत्नी या बड़ी आयु के भाई-बच्चे सँभालने की जिम्मेदारी आ पड़ने पर उसे भली प्रकार निर्वाह करते रहेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन पंक्तियों का लेखक एक ऐसे देहात में जन्मा जहाँ कक्षा चार तक का प्राइमरी स्कूल था। प्रधानाध्यापक को सभी लड़कों का परिचय तथा नाम याद था। जो बच्चे होते थे उन्हें सायंकाल अपने घर पर दो घण्टे पढ़ाने के लिए बुलाते थे। जो होशियार होते थे उन्हें अधिक सुयोग्य बनाने के लिए सूर्योदय से पूर्व ही बुला लेते थे। अभिभावक उन्हें लेकर पहुँचते थे। ट्यूशन-फीस जैसी कोई बात नाम की भी न थी। वार्षिक परीक्षा तीन मील दूर के गाँव में होती थी। वह सेन्टर था, बारह प्राइमरी स्कूलों की परीक्षा का। डिप्टी साहब परीक्षा लेने आते थे। नकल के रिवाज का तब तक जन्म भी न हुआ था। पूरे सेन्टर के १२ स्कूलों में ऊँचे नम्बर लाने वालों के लिए दो रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलने का प्रावधान था। इसमें से अपने गाँव के विद्यार्थियों में से बीस के लगभग छात्रवृत्ति जीतकर आते थे।

मथुरा में एक विधवा ने अपनी छोटी-सी सम्पत्ति लगाकर प्राइमरी स्कूल खुलवा दिया। एक ही अध्यापक था। हिन्दी मिडिल पास। विद्यालय ने तरक्की की। मिडिल स्कूल बना। प्रधानाध्यापक ने उसके अनुरूप परीक्षा पास की। यही सिलसिला चलता रहा। विद्यालय की प्रगति के साथ-साथ अध्यापक स्वयं भी पढ़ता व योग्यता बढ़ाता रहा। अन्त में 'चम्पा अग्रवाल कालेज' बना और उसे आरम्भ करने वाला वही अध्यापक एम. ए., बी. एड. बना। रिटायर होने पर उनके द्वारा पढ़ाए छात्रों ने मिलकर एक गुरु-अभिनन्दन उत्सव किया जिसमें ढेरों आई. ए. एस., पी. सी. एस. अफसर थे।

इस विद्यालय की ख्याति सुनकर प्रो. सत्येन्द्रजी अपना योगदान करने आ गए थे। छात्रों की भरमार रहती थी। दूर-दूर क्षेत्रों के विद्यार्थी अपने निकटवर्ती स्कूल छोड़कर मथुरा पढ़ने आते थे। इसे कहते हैं—अध्यापकों की लगनशीलता और जिम्मेदारी।

गुरु प्रदत्त शिक्षा-पद्धति की विशेषता

"मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ, भूमि मेरी माता है। मेरा जीवन मातृभूमि की सेवा में अर्पण रहेगा। लोक-कल्याण की सेवा के लिए समर्पित रहेगा। मैं सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान और शक्ति से उद्दीप्त रखूँगा। गुरुदेव द्वारा प्रदत्त शक्ति से मैं अपने राष्ट्र को जीवित और जाग्रत रखूँगा। मेरे जीवित रहने तक मेरे धर्म और संस्कृति को आँच नहीं आने पाएगी।"

तब के २५ वर्षीय स्नातक की, जो गुरुकुल से विदा होने पर उपरोक्त प्रकार की प्रतिज्ञा लेता था, बौद्धिक प्रतिभा, उद्दात्त भावना और उच्चतम आध्यात्मिक संस्कारों का पता इस एक ही वाक्य से चल जाता है। यह विशेषता स्नातकों की अपनी नहीं होती थी वरन् उन्हें गुरुकुल विद्यालयों के वातावरण में इस प्रकार ढाला जाता था। श्रेय प्राचीन गुरुकुलों और आचार्यों को है, जिनकी शिक्षा-पद्धति ऐसी थी जो मनुष्य को न केवल आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के दार्शनिक और तात्विक ज्ञान से ओत-प्रोत बनाती थी वरन् उनमें ऐसी शक्ति और प्रतिभा का भी विकास करती थी, जो अपने को ही नहीं सारे समाज को ऊर्ध्वगामी बनाए रखने में समर्थ होती थी।

आज की टूटी-फूटी लकीर में चल रहे ऐसे विद्यालयों में छात्रों के सादे जीवन, सरल वेष-भूषा को देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि गुरुकुलीय शिक्षा विद्यार्थियों को कमजोर बनाती है किन्तु यह निरी बिडम्बना मात्र है। गुरुकुल के छात्रों में वह गम्भीर शक्ति होती थी, जिसे सम्भवत: आज का निर्बल छात्र वहन करने में भी समर्थ न हो। जिन्हें इस प्रकार के शिक्षण की एक किरण का भी अनुमान है, वे उसकी तेजस्विता और प्रखरता से भी अनभिज्ञ नहीं हो सकते।

पाणिनि की तरह व्याकरण, पातंजलि की तरह योग, चरक और सुश्रुत की तरह औषधिशास्त्र, मनु, याज्ञवल्क्य आदि के संविधानों में अत्यन्त सूक्ष्म तत्वज्ञान और बौद्धिक शक्तियों का अवतरण हुआ है। गुरुकुलों में अरण्यक और उपनिषदों की रचना हुई। उपपुराण और पुराण लिखे गए। गुरुकुलों में आविष्कृत ज्ञान का सहारा लेकर आज पाश्चात्य देश छोटे-छोटे खिलौने उड़ा रहे हैं।

हमारा बौद्धिक ज्ञान उससे भी विलक्षण और परिपूर्ण रहा है। बिन्दु में सिन्धु, राई में पर्वत, अणु में विभु का साक्षात्कार यदि किसी की समझ में न चढ़े, सत्यता में सन्देह हो तो भी स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—'इतनी उच्च कल्पना भी संसार में कोई नहीं कर सका।' हमने परमानन्द को स्वर्ग से उतार कर अपनी जन्मभूमि में रख दिया। हम बड़े गर्व से कहते हैं ईश्वर मेरा है, मेरे भारतवर्ष का है। यह कोई विक्षिप्तता नहीं, तादात्म की सही रूपरेखा है। इस देश के संकल्प-बल के आगे देवता तो क्या परमात्मा को भी नतमस्तक होना पड़ा है।"

फिर कौन कह सकता है कि हमारी संस्कृति और शिक्षा-पद्धति कमजोर थी। यह तो हमारे आध्यात्मिक अभ्युत्थान, ज्ञान-गरिमा का संक्षिप्त चित्रण है, जिसके द्वारा यहाँ का जनजीवन अविद्या रूपी आवरण का अपसारण कर जीवनमुक्ति का आनन्द लिया करता था। शारीरिक और सामाजिक शक्ति-समृद्धता में भी हम किसी से पीछे नहीं रहे।

विज्ञान इतना आगे बढ़ चुका है पर अभी महाभारत काल जैसे भी इच्छा-चालित शस्त्र और आग्नेयास्त्र नहीं बन पाए। शारीरिक शक्तियों की प्रौढ़ता के बारे में तो कहना ही क्या ? शान्त तपोभूमियों के वातावरण में रहने वाले परिश्रमी बालकों के मुख जिस तेज से दमदमाया करते थे, आज उसकी कल्पना भी किसी चेहरे पर नहीं झाँकती। पीले और निचोड़े विद्यार्थी ही इधर-उधर डोलते दिखाई देते हैं। १०० वर्ष तक १०० बसन्तों का आनन्द लेने की शारीरिक क्षमता का निर्माण भी गुरुकुलों में ही होता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ स्वार्थ नहीं परमार्थ को पूजा जाता था, अनात्म नहीं आत्मवत् सर्वभूतेषु की प्रतिष्ठा थी वहाँ—

''जिमि सुख सम्पत्ति बिनहिं बुलाए।
धर्मशील पहँ जाहिं सुहाए।।''

वाली कहावत चरितार्थ होती थी। इस तरह का सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व और वातावरण बनाने में नींव का काम गुरुकुलों में होता था। समाज की सम्पूर्ण समृद्धि और सुव्यवस्था का कारण वह शिक्षा-पद्धति ही थी जो आचार्यों के संरक्षण में रखकर किशोरों को दिलाई जाती थी।

विद्यार्थियों को इनमें राष्ट्र-सेवा और जन-सेवा की, संयम और नियमपूर्वक त्याग एवं तप पूर्ण जीवन जीने की, आचार्य, अतिथि, माता-पिता और भाई के प्रति आदर और श्रद्धा की उच्च भावना रखने की शिक्षा दी जाती थी। सादा जीवन और उच्च चिन्तन यद्यपि उनका आदर्श रहता था, पर ज्ञान और शक्ति के जगमगाते सूर्य ही हुआ करते थे तब के विद्यार्थी। साँचे में ढाले हुए यही बालक जब गृहस्थ धर्म को सँभालते थे, तो वहाँ भी सुख और सौभाग्य का स्वर्ग उपस्थित कर देते थे।

शिक्षा का जीवन से पूर्ण सम्बन्ध था। व्यक्ति के अज्ञान किंवा अविद्या के नाश के अतिरिक्त उसके गुण, कर्म, स्वभाव, आचार-विचार, दृष्टिकोण, बल, विवेक चातुर्य तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का विकास अर्थात सर्वशक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व का विकास हमारे गुरुकुलों में दी जाने वाली शिक्षा का उद्देश्य होता था। उस शिक्षा-पद्धति की उपयोगिता और व्यावहारिकता का तो कहना ही क्या ?

आज का विद्यार्थी अस्त-व्यस्त है। न उसकी शारीरिक शक्तियाँ मुखर हैं, न बौद्धिक। स्कूल से निकलते वह अनुशासनहीनता, चारित्रिक पतन, मनोविकारों का बोझ और कन्धे पर डाल लेता है। फिर जब वह गृहस्थ में प्रवेश करता है तो वहाँ भी कलह, क्रूरता, स्वेच्छाचारिता, आलस्य, अकर्मण्यता के अतिरिक्त कोई नया जीवन नहीं जगा पाता। हो भी कैसे सकता है। कमजोर नींव पर खड़ा मकान आखिर कमजोर ही हो सकता है।

जो शिक्षा शिक्षार्थी को अपना ही ज्ञान नहीं करा सकती, जीवन की समस्याओं का सम्यक बोध नहीं करा सकती, उसमें चाहे इतिहास पढ़ाया जाय अथवा नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, शरीर या जीवविज्ञान वह कभी उपयोगी नहीं हो सकती। मनुष्य अपने आप में आध्यात्मिक तथ्य और सत्य है जब तक उसकी शिक्षापद्धति में आध्यात्मिकता की नींव नहीं पड़ती, तब तक वह शिक्षार्थी को उसके वास्तविक लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकती। उल्टे गड़बड़ी ही पैदा कर सकती है। बन्दर के हाथ तलवार दे देने जैसी परिस्थिति आज सर्वत्र बन रही है। बुराइयों के साथ बढ़ी हुई बौद्धिक शक्ति से विनाशकारी परिस्थितियों का ही निर्माण हो सकता है, सो वही आज हो भी रहा है।

यह स्थिति आज सबके सामने है। तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है—'क्या हमारी शिक्षा-पद्धति उपयुक्त है ?' कोई भी विचारशील व्यक्ति यह मानने को तैयार नहीं होगा। तब फिर वही पीछे लौटने की बात याद आती है। वही शिक्षा हमारे काम आ सकती है, जो हमारे शरीर, मन और बौद्धिक संस्थान को ज्ञान और शक्ति से प्रखर बना सके और इस प्रकार के उच्च संस्कार, उच्च भावना जगा सके, जिसमें विद्यार्थी अपनी ही नहीं अपने समाज के उत्थान की बात सोच सके। वह गर्व से कह सके—**''माता भूमि पुत्रोऽहं,''** ''मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, भूमि मेरी माता है।'' यह केवल प्राचीन शिक्षा-पद्धति के संस्कारों से ही सम्भव है। समय आ गया है जब हमें उसे पुनः जगाना पड़ेगा। अपने गुरुकुलों को पुनः प्रतिष्ठित और प्रसारित करना होगा।

आदर्श गुरु-शिष्य परम्परा फिर जागे

तैतिरीय उपनिषद में **'मातृदेवी भवः', 'पितृ देवो भव'** के साथ **'आचार्य देवो भव'** कहकर गुरु का महत्त्व माता-पिता के तुल्य बताया है। इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो **'गुरु साक्षात् परब्रह्म'** कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है। वस्तु स्थिति भी ऐसी ही है। बच्चे के पालन-पोषण का कार्य माता-पिता करते हैं किन्तु उसे संस्कारवान बनाकर सुसभ्य नागरिक बनाना आचार्य की जिम्मेदारी है। इस महान उत्तरदायित्व के कारण ही गुरु मनुष्य समाज का देवता है। उसकी महत्ता पर जितना लिखा जाय उतना कम है।

हमारी प्राचीन पद्धति के अनुसार जैसे ही बालक की बुद्धि का विकास प्रारम्भ हो, उसे योग्य गुरु को सौंप देने का विधान है। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी पूर्ण शिक्षित होने तक अपने गुरु के समीप रहकर जहाँ अक्षराभ्यास, भाषा-बोध, व्याकरण साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन करते थे, वहाँ उन्हें चरित्र, सदाचरण, पवित्रता, आन्तरिक निर्मलता, अतिथि सेवा भ्रातृ-भावना, सहयोग, सहानुभूति, परदुःखकातरता और परोपकार की भी शिक्षा दी जाती थी। मानसिकता प्रौढ़ता, विचारशक्ति, उत्तम स्वास्थ्य और शुद्ध जीवन लेकर स्नातक जिस क्षेत्र में प्रवेश करते थे, उसी में सत्य को प्रतिस्थापित कर योग्य नागरिक कहलाने का श्रेय प्राप्त करते थे। जो अपने चरित्र और विद्वता को कसौटी पर कसकर पूर्णता प्राप्त कर लेते थे, शिक्षा का गुरुतर कार्य उन्हीं को सौंपा जाता था। ताकि वे विद्यार्थियों को अक्षर ज्ञान के साथ सद्गुणों की क्रियात्मक शिक्षा भी दे सकें। इसके लिए वे पहले अपने उद्दात चरित्र की परीक्षा देते थे। जिनमें विद्यार्थियों के चरित्र और ज्ञान को परिपक्व बनाने की उनके मन और जीवन को सत्प्रेरणाएँ देकर उत्कृष्ट बनाने की क्षमता होती थी, उन्हें ही आचार्यत्व का गौरवपूर्ण पद प्राप्त होता था। श्रेष्ठ चरित्र की आधारशिला पर विनिर्मित बालकों का जीवन भी तब भव्य और भला बनता था।

आज गुरु की आज्ञाओं का पालन करना तथा उनकी सेवा करना प्रतिगामिता का चिह्न समझा जाता है। शिक्षा क्षेत्र में भौतिक शिक्षा-पद्धति का पूर्णतया प्रचलन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने से अब शिक्षक भी वैसे निष्ठावान नहीं रहे। शिक्षकों का कार्य पाठ्य विषय को किसी तरह प्रतिपादित करके समझा देना और विद्यार्थियों ने शिक्षा का उद्देश्य केवल प्रमाण-पत्र पा लेना समझ लिया है। शिक्षा के क्षेत्र में श्रद्धा प्राय: विलुप्त हो चली है और सभी ओर अनुशासनविहीनता ही दृष्टिगोचर हो रही है। व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देने का कोई प्रयोजन नहीं रह गया। नागरिक जीवन में प्रवेश पाने तक बालकों में इस कारण से न तो बौद्धिक आत्मनिर्भरता आ पाती है और न वे जीवन के सदुद्देश्य को ही समझ पाते हैं। सामाजिक जीवन जो अस्त-व्यस्त हो रहा है, वह इसी के कारण है।

गुरु की महत्ता शिक्षा और गुणों तक ही सीमित नहीं है। सही ज्ञान का दिग्दर्शन कराना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। मनुष्य संसार की अनेक समृद्धियाँ प्राप्त करले, सुख और सुविधाओं की किसी तरह की कमी न हो तो भी उसके शान्तिमय जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इस सृष्टि के 'कारण' और 'उद्देश्य' को समझे बिना शाश्वत आनन्द की अनुभूति नहीं होती। यह ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का मूल उद्देश्य है। विद्यार्थी जीवन में मनुष्य की बुद्धि कोमल और ग्रहणशील होती है। अत: श्रेष्ठ संस्कारों के बीज उनमें डालना इस समय आवश्यक होता है। ब्रह्म सूत्र का प्रथम सूत्र—**'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'**—विद्यार्थी के मन की ज्ञान पिपासा को प्रकट करता है। विश्व की रहस्यमयी गुत्थियों को सुलझा कर परम सत्य की खोज करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य भी है। लक्ष्य पूर्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना अनुभवी पथ-प्रदर्शक की देख-रेख में ही सम्पन्न हो सकती है। गुरु शब्द में 'ब्रह्मविद्या' का बोध होता है। साधना और 'ब्रह्मविद्या' के निष्णान्त आचार्य यह समझते थे कि साधना काल में साधक के जीवन में जो मोड़ और परिवर्तन लाने होते हैं, उसके लिए विद्यार्थी जीवन सब से उचित है। इस समय मस्तिष्क में श्रद्धा और विश्वास अधिक होता है किन्तु मानसिक परिपक्वता प्राप्त कर लेने के बाद लोगों के विचार और संस्कारों को बदलना कठिन हो जाता है। इसके लिए अधिक शक्ति, समय और श्रम लगाकर भी परिणाम थोड़े ही निकलते हैं। विद्यार्थी जीवन में बुद्धि का उदय होता है इसलिए उसमें आसानी से श्रद्धा उत्पन्न करके ब्रह्मतत्व की ओर प्रेरित किया जा सकता है। इस बात को भारतीय आचार्यों ने गहराई तक समझ लिया था, इसीलिए जीवन के प्रारम्भ में ही शिक्षा के साथ साधना का समन्वय किया गया था।

गुरु के सान्निध्य में रहकर शिष्य साधना का तेजस्वी जीवन बिताते थे। तपोवेष्ठित होने से उनका शरीर स्वर्ण जैसा देदीप्यवान होता था। संसार की कठिनाइयों से संघर्ष करने की उनमें शक्ति होती थी। वार्तालाप, विवेचन, विश्लेषण और विचार-विनिमय के द्वारा उनमें गम्भीर चिन्तन की प्रवृत्ति जागती थी। साधना और स्वाध्याय के सम्मिश्रण से उनको आत्मज्ञान की अनुभूति हो जाती थी। विद्यार्थी केवल गुण-पुंज या ज्ञान-पुंज ही नहीं शक्ति-पुंज होकर भी निकलते थे। फलस्वरूप उन्हें भौतिक सुखों की कोई आकांक्षा न होती थी, तब वे अधिकार नहीं कर्त्तव्य माँगते थे। सेवा को वे व्रत समझते थे। साहस और कर्मठता उनमें कूट-कूट कर भरी होती थी। मनुष्य शरीर के रूप में उनमें स्वयं देवत्व निवास करता था। ऐसे मेधावी पुरुषों से यह भारत भूमि भरी पूरी थी। यहाँ सुख और समृद्धि की वर्षा हुआ करती थी।

गुरु के समीप रहकर जहाँ शिष्य इस तरह की ओजस्विता धारण करते थे, वहाँ गुरु-विहीन पुरुषों की भर्त्सना भी होती थी। 'निगुरा' शब्द एक तरह की गाली समझी जाती थी। इसे एक तरह का सामाजिक अपराध समझा जाता था। माता-पिता पहले ही यह व्यवस्था बना लेते थे कि बालक को किसी आचारवान तथा गुणवान गुरु के समीप भेज देना चाहिए। इससे वे अपने बालकों को गुरु-विहीन होने के अपराध से बचा लेते थे।

ज्ञानवान तथा बुद्धिमान आचार्यों के मार्गदर्शन में रहकर जीवन की सर्वांगपूर्ण शिक्षा इस देश के नागरिकों ने पाई थी, इसी से वे अपने ज्ञान, संस्कृति और सभ्यता को प्रकाशित रख सके। गुरुकुलों के रूप में न सही, उतने व्यापक क्षेत्र में भी भले ही न हो किन्तु यह परम्परा अभी पूर्णरूप से मृत नहीं हुई है। आज भी ब्रह्मविद्या के जानकार आचार्य और 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के जिज्ञासु शिष्य यहाँ विद्यमान हैं किन्तु उनकी संख्या इतनी कम है कि वे किसी तरह लोकजीवन में प्रकाश उत्पन्न नहीं कर पा रहे। फिर भी सन्तोष यह है कि 'गुरु गौरव' अभी भी यहाँ सुरक्षित है और उसका पूर्ण विकास भी सम्भव है। इसमें कुछ देर भले ही लगे किन्तु आत्मा की ज्ञान-पिपासा को अधिक दिन तक भुलाया नहीं जा सकता। उसके जागने का समय अब करीब आ पहुँचा है।

एक बार फिर से विचार करना पड़ेगा कि पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित आधुनिक शिक्षा-संस्थाओं में जो व्यवस्था चल रही है, उससे क्या मानवीय जीवन की समस्याएँ पूरी होती हैं ? आज की शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य अर्थ प्राप्ति और कामोपभोग रह गया है। जीवन निर्माण तथा राष्ट्र के उत्थान के लिए ऐसी शिक्षा से कोई लाभ नहीं हो सकता। विद्यार्थी जीवन में तपश्चर्या, तत्परता और संयम भावना जाग्रत करने की आवश्यकता है। इसके लिए गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में अनुशासन का भाव पैदा करना आवश्यक है।

इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम योग्य, विचारवान, दृढ़चरित्र तथा ब्रह्मवेत्ता अध्यापकों को ढूँढ़ निकालना पड़ेगा। शिक्षा की नींव जब तक चरित्रवान व्यक्तियों के हाथों में नहीं पड़ेगी, तब तक जातीय-विकास की समस्या हल न होगी। जो स्वयं प्रकाश फैलाने वाला है, यदि वही अँधेरे में ठोकर खाकर गिरे तो दूसरों को वह उजाला क्या देगा ? राष्ट्र को ज्ञानावान, प्रकाशवान तथा शक्तिवान बनाने के लिए गुरु और शिष्य परम्परा का सुधार नितान्त आवश्यक है। लोकजीवन में विकास की समस्या इसके बिना कभी भी पूरी न होगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यापकों का दायित्व है छात्रों का निर्माण

कोई ग्रामीण सज्जन अपने पुत्र के पास जो उनके गाँव के पास ही एक कस्बे में अध्यापक थे—आए। ग्रामीण सज्जन के पुत्र उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में पढ़ाते थे। एक शाम जब वे कस्बे के बाहर नदी तट पर घूमकर घर लौटे, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका बेटा अपने मित्र के साथ कमरे में बैठा सिगरेट का धुँआ बड़ी शान के साथ उड़ा रहा है और गप्पें लड़ाने के साथ निर्लज्ज हँसी-मजाक भी कर रहा है। आश्चर्य इस लिए कि आज तक उन्होंने ऐसे शब्द अपने बेटे के मुँह से नहीं सुने थे और किसी ने शिकायत भी नहीं की कि आपका बेटा सिगरेट पीता है तथा इतनी निर्लज्ज हँसी-मजाक भी किया करता है।

सोचा, दोस्त के चले जाने पर इस विषय में बात करूँगा। यहाँ के वातावरण में वह अपने आपको इस कदर गिरा दे और वह भी अध्यापक होते हुए, यह तो बहुत गलत बात है। यदि उसके विद्यार्थियों को यह पता चल जाए तो उनके हृदय में क्या सम्मान रहेगा अपने शिक्षक का। उक्त ग्रामीण सज्जन को विद्यालय देखने और पढ़ने का बहुत कम वर्षों तक ही अवसर मिला था और उन्हें इस अवधि में एक भी क्षण ऐसा याद नहीं आ रहा था कि जब सुना हो कि मास्टरजी बीड़ी पी रहे थे या किसी से गप्पें लड़ा रहे थे।

मित्र के चले जाने पर पुत्र से पूछकर ही उन्होंने चैन लिया। परन्तु चैन क्षण भर तक ही मिल पाया था—उस क्षण तक ही जब तक कि उन्होंने अपने पुत्र से पूछी गई बात का उत्तर नहीं सुन लिया था। पुत्र ने पिता के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था—"पिताजी आप तो उस जमाने की बात करते हैं जब एक अध्यापक मुश्किल से २०-२५ छात्रों को पढ़ाया करता था और छात्र श्रद्धावश अपने गुरु के लिए दूध-मलाई-घी और न जाने क्या-क्या तरावट की चीजें भेंट में लाया करते थे आज .....आज तो एक मास्टर पचास-साठ लड़कों की क्लास लेता है और आधुनिक सभ्यता में उसका दिमाग कितना तनावग्रस्त हो जाता है। इस बात का आपको पता ही नहीं है। उस तनाव से छुटकारा पाने के लिए ही मुझे मजबूर होकर यह सब करना पड़ता है।"

पुत्र के जबाव ने पिता को निरुत्तर कर दिया और सीधा-सादा ग्रामीण अपने बेटे की बातों का जवाब खोजने में अपने आपको असमर्थ पा रहा था। लेकिन इसके बावजूद भी अध्यापक पुत्र ने अपना भाषण बन्द नहीं किया और इन शब्दों के बाद पुत्र ने जो बात कही, उसे सुनकर तो ग्रामीण को अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। अध्यापक ने कहा था—रही छात्रों की बात तो उनकी श्रद्धा शिक्षकों पर रत्ती भर भी नहीं रही है। जरा भी सख्त व्यवहार किया अध्यापक ने, किसी विद्यार्थी से कि मारपीट हो जाती है। आपको नहीं मालूम है पिताजी कि छात्रों से कैसे निभाव करना पड़ता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिसे आप अभी मेरा मित्र समझ रहे थे वह मेरा स्टूडेण्ट है।

क्या—वृद्ध ग्रामीण लगभग चीख-सा उठा—वह तुम्हारा छात्र था और तुम्हारे साथ सिगरेट पी रहा था।

'नहीं'। वह मेरे साथ नहीं पी रहा था—पुत्र ने व्यंग्य की-सी हँसी हँसते हुए कहा—"वह तो बेचारा चुपके-चुपके सब लोगों से नजर बचा कर पिया करता है।" और पिता ने बड़े निराश होकर कहा नजर बचा कर ही सही पीता तो है। पियेगा क्यों नहीं जिस व्यक्ति के हाथ में समाज ने उसके निर्माण का दायित्व सौंपा है, वही गलत हो गया हो तो क्यों नहीं पियेगा।

उपरोक्त घटना उस पीढ़ी के कई वृद्धजनों की आप बीती है, जिन्हें किसी ऐसे अध्यापक का पिता होना पड़ा है जो अध्यापन को मात्र जीविका का साधन या व्यवसाय भर समझता है। यद्यपि सभी शिक्षकों को इस श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, फिर भी ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जो शिक्षा दान को किसी दुकानदारी की तरह समझते हैं।

आधुनिकता के ज्वार और पाश्चात्य सभ्यता के संस्कारों ने स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश में और भी अनर्थकारी प्रभाव दिखाया है। यही कारण है कि कई शिक्षक छात्रों से अपना सम्बन्ध केवल दो व्यवसायियों का सा मानते हैं। शिक्षक नियत समय पर पाठशाला में उपस्थित हो जाए, नियत अवधि में अपना पाठ्यक्रम पूरा कर दे और नियत मात्रा में नोट्स लिखवा दे—इतने मात्र से ही अपने दायित्व को भलीभाँति पूरा कर रहा है, नहीं कहा जा सकता।

अध्यापकों को समाज ने, राष्ट्र ने एक महानतम उत्तरदायित्व सौंपा है, जो उन्हें पाठ्य-पुस्तकों के शिक्षक रूप तक जानकारी भर देने वाले व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहने देता। यदि यही बात हुई होती कि अध्यापकों के माध्यम से छात्रों को विश्व की जानकारियों, साहित्य की धाराओं और सामाजिक गतिविधियों से अवगत ही करना है, तो यह आवश्यकता केवल पुस्तकों से ही पूरी की जा सकती थी। अक्षर ज्ञान तो परम्परागत रूप से परिवार का ही कोई सदस्य भी करवा सकता था।

लेकिन नहीं ! अध्यापक महज जानकारियों का साधन ही नहीं है, उससे भी गुरुतर दायित्व शिक्षक को सौंपा गया है और वह है छात्रों को एक अच्छे और सच्चे नागरिक के व्यक्तित्व का स्वामी बनाने का। इस प्रकार अध्यापक मात्र विद्या के शिक्षक ही नहीं परोक्ष रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र के सर्वमान्य तथा मूल नेता हैं। नेता का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह जनता को समुचित जीवन जीने की कला का मार्ग सुझाएँ और ऐसे मार्गों का ज्ञान कराएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन पर चल कर समाज उन्नति तथा विकास की मंजिलें पूरी करता हुआ सुख-शांति की दिशा में अग्रसर हो सके।

लेकिन आज अध्यापक अपने इस गुरुतम उत्तरदायित्व को भलीभाँति कहाँ निभा पा रहे हैं। छात्र वर्ग आज बड़ा उद्दण्ड, उच्छृंखल और अनुशासनहीन है इसके अन्य अनेकों कारणों के साथ-साथ एक कारण यह भी है कि अध्यापक वर्ग अपने इस महानतम दायित्व को स्वीकार करने तथा उसे निष्ठापूर्वक पूरा करने में संकोच कर रहा है। छात्रों की बढ़ती जा रही समस्याओं और अध्यापकों की निरपेक्षता के बहुत से कारण हैं। इन कारणों में से एक तो यह हो सकता है कि अध्यापक को वह वांछित वातावरण नहीं मिल पा रहा है, जो छात्र निर्माण के लिए आवश्यक है। दूसरा यह हो सकता है कि अध्यापक अपनी सीमाओं में स्वतन्त्र नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र का ढाँचा इतना बिगड़ गया है, जिससे बेचारे अध्यापक को भी प्रभावित होना पड़ रहा है।

इन परिस्थितियों में भी कई अध्यापक ऐसे हैं जो अपने दायित्व के प्रति जागरूक हैं तथा ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा से ओत-प्रोत हैं। लेकिन नया अनर्थकारी दृष्टिकोण अपनाए रहने वालों की भी कमी नहीं है। अध्यापकों के वर्ग की गरिमा और महत्ता से परिचित समाज का हितचिंतक शिक्षकों की ओर ही आशाभरी दृष्टि से देखता है और अपेक्षा करता है कि आज के अन्धकार भरे समय में राष्ट्र की नवरचना के लिए वे ही आलोक की किरणें बनकर आगे बढ़ेंगे।

यह भी एक तथ्य है कि छात्रों का चरित्र-निर्माण अध्यापक जितनी आसानी से कर सकते हैं, उतनी आसानी से और कोई अन्य सामाजिक अथवा राष्ट्रीय नेता गण नहीं कर सकते हैं। अन्य नेता तो क्या छात्रों पर जितना प्रभाव अध्यापकों का पड़ सकता है, उतना तो अभिभावकों का भी नहीं होता। कई घरों में बच्चे माता-पिता से 'मास्टर जी तो ऐसा कह रहे थे' कहते हुए मतभेद व्यक्त करते हुए पाए जाते हैं।

इसलिए कहना नहीं होगा कि छात्रों को सही दिशा-निर्देश देने के लिए अध्यापकों को स्वयं अपना आत्म-निरीक्षण करना होगा कि उनके अपने व्यक्तित्व और स्वभाव का छात्रों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण का दायित्व ध्यान में है भी या नहीं ? या हम भी केवल अध्यापन को जीविकोपार्जन का साधन भर मानते हैं। विद्यार्थी हमारे स्वयं के व्यक्तित्व से क्या प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करते हैं। यदि उन्हें अनुशासित नागरिकता, कर्त्तव्यनिष्ठा और श्रमशीलता की प्रेरणा नहीं मिलती है तो हमारे व्यक्तित्व में कौन-सी कमियाँ हैं जो दूर करनी चाहिए, हटायी जानी चाहिए। निष्पक्ष आत्मावलोकन और स्वयं के व्यक्तित्व गठन में तत्परता, कर्तव्यनिष्ठा अध्यापन की पहली कसौटी है। अन्यथा शिक्षक और दस दुकानदार में क्या अन्तर है जो पैसों के लिए अपनी वस्तुएँ चाहे जैसी हों बेचा करता है।

शिक्षक और शिक्षार्थियों के सम्बन्ध

भारत की भावी पीढ़ी को अनुशासित, विनम्र तथा सुयोग्य बनाने के लिए आवश्यक है कि उनमें अपने शिक्षकों के प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव बढ़ाया जाए। शिक्षार्थियों के बीच दिन-दिन बिगड़ते जा रहे सम्बन्धों में जो तत्व काम कर रहा है, वह अश्रद्धा की भावना ही है, जो विद्यार्थियों में अपने शिक्षकों के प्रति बढ़ती जा रही है। इस अश्रद्धा के जहाँ अनेक अन्य कारण हैं, वहाँ कुछ अभिभावकों की भूल तथा उदासीनता भी है। यदि वे चाहें और प्रयत्न करें तो कोई कारण नहीं कि छात्रों का यह दोष दूर न हो जाए।

ऐसा नहीं कि यह सुधार केवल शिक्षकों के ही हित में होगा। इस सुधार का लाभ छात्रों तथा खुद उनके अभिभावकों को भी कम नहीं होगा। स्पष्ट है कि जो छात्र अपने अध्यापक के प्रति, जो उसका ज्ञानदाता गुरु है, धृष्ट तथा अविनीत होगा, वह घर में गुरुजनों के प्रति भी अनुशासित तथा विनम्र नहीं हो सकता। विनम्रता फूल में रहने वाली सुगन्ध की तरह एक मानवीय गुण है, वह यदि एक स्थान पर प्रकट होगा तो दूसरे स्थान पर भी ठीक उसी प्रकार प्रकट होगा, जिस प्रकार फूल की सुगन्ध हर व्यक्ति के प्रति समान रूप से ही प्रकट होती रहती है। जिस छात्र में गुरुओं के प्रति आदर भावना होती है, उसकी प्रतिभा आपसे आप परिष्कृत होती रहती है और वह तत्परता से ज्ञानार्जन करता जाता रहता है। श्रद्धालु छात्र शिक्षक की हर बात बड़े ध्यान से सुनता है और विश्वासपूर्वक ग्रहण किया करता है। वह अदब तथा अपना हितैषी समझकर गुरु के दिये निर्देश का आस्थापूर्वक पालन करता रहता है, जिससे उसमें चारित्रिक बल का विकास होता है। जो विनम्र है, अनुशासित तथा चरित्रबल का धनी है, वह संसार की कौनसी सफलता, कौनसी सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता। संसार में जो भी लोग उल्लेखनीय उन्नति करते दिखलाई देते हैं। यदि उनके विद्यार्थी जीवन का पता लगाया जाये तो कदाचित ही कोई व्यक्ति ऐसा निकले जो अध्यापकों, शिक्षकों तथा गुरुओं के प्रति धृष्ट अश्रद्धालु अथवा अविनीत रहा हो। संसार की सारी उन्नतियों का मूल अनुशासन तथा श्रद्धा की पवित्र भावना में निहित रहता है। अनुशासन तथा श्रद्धाशून्य व्यक्ति जीवन में कदाचित ही उन्नति कर पाते हैं। अस्तु, अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बालकों को शिक्षकों के प्रति अधिकाधिक श्रद्धालु बनाने का प्रयत्न करें। यह प्रयत्न प्रत्यक्ष रूप से शिक्षकों के प्रति आदर बढ़ाने जैसा जरूर लगता है किन्तु परोक्ष रूप में अपने प्रति भी उसी प्रकार आदर बढ़ाने के समान है। जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पवित्र प्रयत्न में छात्रों का हित, शिक्षकों को सम्मान और खुद अभिभावकों का आनन्द सन्निहित हो, उसे न करने में बुद्धिमानी जैसी बात तो मालूम नहीं होती।

शिक्षकों के प्रति छात्रों की श्रद्धा तथा आदर भाव बढ़ाने के लिए अभिभावक क्या करें ? सबसे पहले तो वे स्वयं उनके प्रति आदर भाव रखें और अवसर आने पर प्रकट भी करें। जिनमें है, उन अभिभावकों का यह भाव कि वे बच्चों की फीस देते हैं, शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें पढ़ाए, क्योंकि वह संस्था का नौकर है। शिक्षक का पढ़ाना और विद्यार्थी का पढ़ना अलग-अलग दीखने पर भी एक प्रक्रिया है, एक शुल्क देता है दूसरा वेतन पाता है, फिर इसमें श्रद्धा-भक्ति का क्या प्रश्न उठता है। हम छात्र के पिता अथवा अभिभावक हैं और शिक्षक पढ़ाने वाला। हम दोनों का दर्जा बराबर है, तब हमारे द्वारा शिक्षकों का कोई विशेष आदर किया जाए इसकी तो कोई आवश्यकता दृष्टिगोचर नहीं होती, अपने मन-मस्तिष्क से निकाल देना चाहिये। ज्ञान-गुरु का दर्जा पिता से ऊँचा होता है। पिता यदि माँस पिण्ड के रूप में किसी जीव को जन्म देता है तो ज्ञान-गुरु उसे मनुष्य के रूप में दूसरा जन्म देता है जो पहले जन्म से महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा के बिना मनुष्य, मनुष्य होकर भी पशु बना रहता है। उसमें मनुष्यता के विकास के लिये शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है। उसे जो भी देगा उसका दर्जा बहुत ऊँचा होगा। इसके लिए चाहे कोई बाहरी व्यक्ति बने चाहे स्वयं अभिभावक। किसी न किसी को शिक्षा गुरु बनाना ही होगा और जो शिक्षा गुरु होगा उसका दर्जा ऊँचा होगा ही।

अबोध अभिभावक अपने बालकों के शिक्षक को देखकर बहुत बार अभिवादन तक नहीं करते, वे समझते रहते हैं कि यह तो उस संस्था का नौकर है, जिसके आधार विद्यार्थियों में मेरा भी एक लड़का है। यह दम्भ एक तो यों ही मानवता के नाते ठीक नहीं। फिर किसी शिक्षक के प्रति तो यह और भी उचित नहीं। शिक्षक के मिलने पर अभिभावक को तुरन्त अभिवादन करना चाहिए। वह भावी राष्ट्र-निर्माता होता है। बच्चों का बहुत सीमा तक भाग्य-विधाता होता है, निश्चय ही वह अभिवादन का अधिकारी है। यह सभ्यता तथा भारतीयता दोनों के नाते उचित एवं आवश्यक है। अच्छा तो यही है कि इसमें श्रेष्ठता भी बाधा न बने।

अभिभावकों द्वारा आदर पाकर शिक्षक की आत्मा पुलक उठती है। वह अपने पद की गरिमा अनुभव करता, जिससे उसमें उत्तरदायित्व की वृद्धि होती है। विनम्र अभिभावक के बालक की तरफ उसका प्रेम स्वाभाविक रूप से बढ़ जाता है। जिसका लाभ उसे पहुँचे बिना नहीं रहता। बच्चे के शिक्षक के आने पर उसका उठकर स्वागत करना चाहिए। वह गुरु है, राष्ट्र का गुरु है भले ही उस समय वह उन अभिभावक का गुरु न हो। अभ्यागत का स्वागत खड़े होकर ही करना चाहिए और जाते समय उसे द्वार तक पहुँचाना भारतीय संस्कृति की विशेषता है, आर्य मान्यता है। जिसका पालन सभी को करना ही चाहिए। यह नियम, अभ्यर्थनार्थ सामान्य व्यक्तियों तक के लिए है फिर गुरु तो गुरु ही है। इस प्रकार अभिभावक द्वारा अपने शिक्षक का आदर होते देख छात्र स्वयं भी उनका आदर तथा अदब करने लगेगा।

अभिभावकों को चाहिए कि वे शिक्षकों की निन्दा तो कभी न करें। एक तो निन्दा, दिशुनता की तरह एक दुर्व्यसन है, जो किसी भी भद्र व्यक्ति के लिए अशोभनीय है। फिर गुरु की निन्दा करना तो और भी बुरा है। निन्दा करने से शिक्षक का तो कुछ बिगड़ता नहीं छात्र में जरूर उनके प्रति अनादर भाव बढ़ता है। यह एक दोष है बच्चों को किसी भी दोष से सुरक्षित रखना हर अभिभावक का न केवल कर्त्तव्य ही बल्कि धर्म है। जो विद्यार्थी अपने अभिभावक को शिक्षक की निन्दा करते देखता-सुनता है वह भी निन्दा करने लगता है। जिसकी निन्दा करेगा उसके प्रति अश्रद्धालु तथा धृष्ट होना स्वाभाविक है। जिस छात्र में ऐसा दोष आया नहीं कि विद्या सम्बन्धी उसका भविष्य अन्धकार से घिरा नहीं।

यदि कोई कारण है और उसका प्रमाण भी तो किसी हद तक आलोचना तो की जा सकती है, सो भी स्वस्थ एवं सृजनात्मक। कटु-कर्कश अथवा ध्वंसात्मक नहीं। बल्कि इससे अच्छा यह रहे कि आलोचना करने के बजाय चलकर शिक्षक के पास पहुँचा जाए और विचार-विनिमय द्वारा आलोचना का कारण दूर कर लिया जाए। सभी अध्यापक दूध के धोए नहीं होते वे भी आखिर मनुष्य होते हैं। उनमें भी कमी तथा दोष हो सकता है और शिकायत का मौका आ सकता है। ऐसे अवसर पर भी भद्रता से नीचे उतर कर अध्यापक को उल्टी-सीधी नहीं सुनाने लगना चाहिए और न उसके पास जाकर देश काल का विचार किए बिना एकदम बरस ही पड़ना चाहिए। यदि कोई शिकवा करना है तो उन्हें अलग बुलाकर धीरे-धीरे भद्र शब्दों में ही करना चाहिए। इस प्रकार कि यदि वहाँ पर कोई छात्र मौजूद हो तो उनको उसका पता न चले अन्यथा उन पर कुप्रभाव पड़ेगा। बात यदि गम्भीर हो और आपस में न निपटती हो तो भद्रतापूर्वक उच्चाधिकारियों तक पहुँचा जा सकता है। यह सब कुछ किया जा सकता है किन्तु उनकी खुलेआम निन्दा करना अथवा छात्रों के सम्मुख ही आलोचना पर टूट जाना, इस प्रकार कि उसके स्वाभिमान को ठेस लगे, किसी प्रकार भी उचित अथवा समीचीन नहीं। इस विषय में अभिभावकों को अधिक से अधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। जो अभिभावक शिक्षकों की निन्दा नहीं करते, उनके बच्चे भी उनकी आलोचना करते नहीं पाए जाते; फलस्वरूप अध्यापक की अधिकाधिक शुभभावनाओं के अधिकारी बनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आजकल शिक्षा, शिक्षार्थी, शिक्षा संस्थाएँ तथा शिक्षा-पद्धति सभ्य वर्ग में वार्तालाप का विषय बनी हुई हैं। कारण स्पष्ट है आए दिन विद्यार्थियों की हड़तालें, उपद्रव तथा आन्दोलन। यह चर्चाएँ न केवल घरों, बैठकों अथवा सभा-सोसाइटियों में ही नहीं होती बल्कि रेलों, बसों, पार्कों, रास्तों, होटलों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर भी होती रहती हैं। ऐसे समय अभिभावकों को संयम से काम लेना चाहिए। उन्हें खुलेआम सार्वजनिक स्थानों पर अध्यापकों की आलोचना नहीं करने लगना चाहिये। उन स्थानों पर न केवल जनता ही बल्कि विद्यार्थी भी रहते हैं। शिक्षकों के विरुद्ध आलोचनापूर्ण चर्चा सुनकर शिक्षकों के प्रति उनकी श्रद्धा कम होती है। चर्चा का उत्तर चर्चा से दिया ही जाता है। तथापि यदि शिक्षकों की कटु आलोचना बचाई जा सके तो ज्यादा अच्छा रहे और यदि शिक्षकों के विषय में बिना कुछ कहे न बने तो विद्यार्थी वर्ग की वर्तमान दुरास्था का दोष उन्हें कम से कम दिया जाए और विद्यार्थियों की तुलना में तो उन्हें पूर्णत: निर्दोष ही बतलाना ठीक रहेगा। इस प्रकार यदि कोई छात्र उस चर्चा को सुन भी रहे होंगे तो शिक्षकों के प्रति उनकी अश्रद्धा को प्रोत्साहन न मिलेगा। वे अधिकाधिक अपने को ही दोषी समझेंगे और लोक-लज्जा के साथ अपने हित के, आत्मसुधार के लिए तत्पर हो सकते हैं।

बहुत-से अभिभावक अपने लाड़लों की शिकायत सुनकर उनका समर्थन करने लगते हैं और शिक्षकों के प्रति अन्यथा विचार व्यक्त करने लगते हैं। यह स्वभाव छात्रों को अश्रद्धालु बनाने का सीध-साधा प्रयत्न है। जो किसी प्रकार भी हितकर नहीं है। इस समर्थन का छात्र पर कुप्रभाव पड़ता है और वह आधिकाधिक अविनीत बन जाता है। बात सही भी हो तब भी छात्र को ही शिकायती भावना के प्रति हतोत्साह करना चाहिए। भले ही उसे कुछ कटाह हो, इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए, यदि कोई बुराई दूर करने में बच्चों को कोई-कोई कष्टकर बात भी हो तो भी अधिक भावुकता में नहीं बह जाना चाहिए। बच्चे की शिकायत सुनकर शिक्षकों के पास उलाहना लेकर तो कदापि नहीं जाना चाहिए। इससे तो उस छात्र का दु:साहस और भी बढ़ जाएगा और वह अध्यापक के प्रति अदब ही खो बैठेगा और समय-समय पर उनका अपमान करने में भी नहीं चूकेगा। अपने बच्चे को ऐसे गलत रास्ते पर डालने का मतलब है, उसकी जिन्दगी खराब करना।

बहुत बार अभिभावक बच्चों की शिक्षा प्रगति देखने बैठ जाते हैं और उन्हें कमजोर पाकर तुरन्त निराशा व्यक्त करते हुए अध्यापकों की आलोचना करते हुए बड़बड़ाने लगते हैं—आजकल अध्यापक पढ़ाते क्या हैं ? बेगार टालते हैं। तैयारी करके नहीं आते यों ही उल्टा-सीधा वक्त काटकर वीरिभद्र पूरा कर देते हैं। जब उन्हें खुद ही कुछ नहीं आता तो पढ़ाएँगे क्या खाक ? बच्चे बेचारे भी क्या करें जब इन्हें ठीक से पढ़ाया ही नहीं जाएगा तो योग्यता बढ़ेगी भी कहाँ से। अभिभावकों का इस प्रकार बड़बड़ा उठना बच्चों पर बड़ा बुरा प्रभाव डालता है। वे अपने शिक्षकों को नालायक और निकम्मा समझकर उनके प्रति और भी अश्राद्ध हो जाते हैं। अपनी गलती अध्यापकों के सिर जाती देखकर बड़े खुश होते हैं। उनको यह खुशी उन्हें और भी कामचोर बना देती है और वे पढ़ने की ओर से और भी उदासीन होने लगते हैं। पढ़ाई में कमजोर देखकर शिक्षक की आलोचना के स्थान पर छात्र की ही भर्त्सना की जानी चाहिए। उसे ही अधिक मेहनत करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। बच्चों के सम्मुख शिक्षक की खामी निकालना ठीक नहीं। ऐसे बच्चे अध्यापक की बात ठीक से नहीं सुनते फलत: अपनी ही हानि करते रहते हैं।

इस प्रकार अभिभावक अध्यापकों की आलोचना अथवा निन्दा न करते हुए बच्चों में उनके प्रति अधिकाधिक श्रद्धा बढ़ाने का प्रयत्न करें और इस बात की प्रेरणा दें कि वे अपने शिक्षकों का अधिकाधिक आदर करें, उनके प्रति अधिक से अधिक आस्थावान तथा विनम्र बने रहें। ऐसा करने से शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के सम्बन्ध अच्छे होंगे और छात्रों की वर्तमान दुरावस्था में सुधार होगा।

विद्यार्थियों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला जाय

परिवार की तरह विद्यालय भी सामूहिकता के साथ जुड़े हुए सद्गुणों के विकास का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकाल में बालकों को गुरुकुलों में पढ़ने के लिए इसी दृष्टि से भेजा जाता था कि वहाँ की पारिवारिकता उच्चकोटि की रहने से उसमें रहकर छात्रों को व्यक्तित्व विकास का समुचित आधार मिल सके। वहाँ उपाध्याय ही अभिभावक की भूमिका निभाते थे। माता का दुलार, संरक्षण एवं समर्थन उन्हें गुरु-पत्नी से मिल जाता था। ऐसी दशा में छात्रों को घर छोड़ने का अभाव खटकता नहीं था।

इन दिनों शिक्षा प्रणाली की उस समग्रता में बहुत कुछ कमी रह जाती है। सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करके किसी प्रकार पास होना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। अध्यापक और छात्र इतने भर से ही अपने स्कूली कर्तव्य की पूर्ति मान लेते हैं। जबकि होना यह चाहिए कि अभिभावकों की कमियों को अध्यापक पूरा करें। इतना ही नहीं सद्भाव भरा सम्बन्ध दोनों पक्षों में इस स्तर का बना रहे कि व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी परामर्श अध्यापकों द्वारा दिए जाने पर छात्र उसे अपना सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाठ्यपुस्तकों की पढ़ाई आवश्यक तो है, पर समझना चाहिए कि इतना ही पर्याप्त नहीं। उठती आयु ही प्रवृत्तियों को अपनाने की अवधि होती है। बड़े होने पर तो जो आदतें अपना ली जाती हैं, वे ही परिपक्व होती रहती हैं। उनमें सुधार करना कठिन पड़ता है। बचपन और किशोरावस्था में शरीर यात्रा के उपरान्त का समय स्कूली परिसर में ही बीतता है। वहाँ अध्यापक वर्ग आमतौर से अभिभावकों की तुलना में अधिक योग्य होता है। इसलिए आशा की जाती है कि उनके सम्पर्क में शिक्षार्थी न केवल पढ़ाई अच्छी तरह पूरी करेंगे वरन् उन सद्गुणों का अभ्यास भी करेंगे, जो घर की तुलना में स्कूलों के सहकारी वातावरण में अधिक अच्छी तरह उपलब्ध हो सकते हैं। अध्यापक यदि इस ओर भी ध्यान दें और सच्चे मन से प्रयत्न करें तो अभिभावकों की कमी को इन विद्या मन्दिरों में पूरा किया जा सकता है। शिक्षा की समग्रता इसी प्रकार बनती है अन्यथा उसे मात्र पढ़ाई का शिल्प-शिक्षण भर कहा जा सकता है। कारीगरों के साथ रहकर श्रमिक जिस प्रकार उस विषय की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं यदि उतना ही स्कूलों में बन पड़ा तो समझना चाहिए कि गुरु-शिष्य परम्परा की गरिमा समाप्त हो गई। पढ़ाई तो घर रहकर भी की जा सकती है। ट्यूटर लगाकर या पत्राचार उपक्रम के सहारे भी पूरी की जा सकती है। स्कूलों की उपयोगिता तभी बनती है जब वहाँ छात्रों को अपने व्यक्तित्व विकास का भी समुचित अवसर मिलता रहे। यह कार्य पढ़ाई के साथ भी चलता रह सकता है। इसके लिए छात्रों की उत्सुक जिज्ञासा और अध्यापकों की गुरु-गरिमा को सजीव-सक्रिय बनाए रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। भले ही इसके लिए सरकारी अनिवार्यता न हो, पर उस पर कोई रोक भी तो नहीं नहीं है। अच्छाई सीखने और सिखाने के प्रयत्न तो सदा सराहे ही जाते हैं। इसमें छात्रों का हित होता है। अध्यापक की गरिमा बढ़ती है। अभिभावक इस सुयोग के लिए कृतज्ञ रहते हैं और समूचा समाज यह अनुभव करता है कि राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने की शिक्षणतन्त्र द्वारा महती सेवा-साधना सम्पन्न हो गई।

कारखानों में मशीनें और श्रमिक काम करते हैं। उनके हर पक्ष की साज-सँभाल किए रहने वाले को ही मैनेजर कहते हैं। वह यह भी प्रयत्न करता है कि बने माल को खपाने के लिए ग्राहकों को संतुष्ट बनाए रखने की व्यवस्था भी बनी रहे। कारखाना इसी आधार पर ख्याति प्राप्त करता और नफे में चलता है। मैनेजर की प्रतिष्ठा एवं पदोन्नति भी इसी पर निर्भर है। ठीक यही बात परिवार संचालन एवं स्कूली अध्ययन-अध्यापन पर लागू होती है। उस तन्त्र का सुसंचालन ही उसकी सर्वतोमुखी सफलता का आधार है। प्रबन्धक की बुद्धि यों तो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक कार्यों में भी इतनी ही अभीष्ट समझी जाती है, पर तब इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है, जब मनुष्य को अधिक शिष्ट, सभ्य और आदर्शवादी बनाने का लक्ष्य सामने हो। सरकस के प्रशिक्षिकों को इसलिए अधिक सराहा जाता है कि वे अनगढ़ ही नहीं खूँखार जानवरों को भी कलाकारों जैसे कौतुक करने के लिए अभ्यस्त बना लेते हैं। पारिवारिक वातावरण और स्कूल परिकर की सार्थकता-प्रतिष्ठा तब ही है, जबकि अनगढ़ स्तर के समुदाय को सुसंस्कारी बनाने में इस स्तर तक सफल हो सकें कि उनके माध्यम से प्रतिभाओं का निर्माण हो। समाज को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रहती है और उसकी पूर्ति के लिए बहुमुखी चेष्टाएँ होती रहती हैं। इस प्रयास में इतना और जुड़ना चाहिए कि परिष्कृत व्यक्तित्वों का निर्माण सर्वोपरि है। उन्हीं के पास वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रयोजनों को पूरा कर सकने की क्षमता एवं साहसिकता होती है। शेष लोग तो खर्चने और बर्बाद करने में ही लगे रहते हैं। वे उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष खड़ा करने में ही अपने स्वभाव और प्रयास को निरर्थक करते रहते हैं। इनके द्वारा खोदी गई खाई को वे प्रतिभाएँ ही भरती हैं, जिनका व्यक्तित्व उस स्तर की विशेषता से सम्पन्न होता है। इन्हीं का उपार्जन देश-समाज की महती आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रमुख उपाय है।

साधन जुटाना सभी की चाह रहती है और उपयोगिता भी समझ में आती है, पर यह भुला दिया जाता है कि प्रतिभावान ही महत्त्वपूर्ण उत्पादन एवं निर्माण कर पाते हैं। सदुपयोग करना और भी कठिन है। जो इन दोनों कसौटियों पर खरे उतरते हैं वे ही समुन्नत-सुसंस्कृत होने के साथ-साथ सुसम्पन्न भी बनते हैं। उन्हीं के माध्यम से बड़े साधन जुटा सकना सम्भव होता है।

प्रगति किसी भी क्षेत्र की क्यों न हो, उसे प्रतिभाशाली लोग ही सम्पन्न करते हैं। यहाँ तक कि हेय दुरभिसंधियाँ रच सकना भी उन्हीं से बन पड़ता है। फिर श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ सकना, बढ़ा सकना तो उसके बिना बन ही कैसे पड़े ? सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग यही है। इतिहास में जिनने भी कुछ अविस्मरणीय काम किए हैं, उन सभी में प्रतिभा विद्यमान थी, जिसमें सज्जनता का समुचित समावेश रहा, जिन्होंने अपनी शक्तियों का एक कण भी बर्बाद नहीं किया और अपने विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति में समग्र तन्मयता और तत्परता के साथ जुटे रहे। अस्त-व्यस्त स्तर के लोग तो किसी प्रकार दिन ही काट पाते हैं। अथवा जो दूसरों का कमाया है, उसे बर्बाद करते रहते हैं।

अभिभावकों और अध्यापकों की इस प्रयोजन में सबसे बड़ी भूमिका रहती है। कारण कि उठती उम्र उन्हीं के संरक्षण में गुजरती है। हरी लकड़ी को किसी भी दिशा में मोड़ा जा सकता है। गीली मिट्टी से किसी भी प्रकार के खिलौने-बर्तन बन सकते हैं, किन्तु सूखी मिट्टी या लकड़ी जैसी भी है वैसी ही बनी रहती है। टूट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है, पर बदलती नहीं। यही बात मनुष्यों के सम्बन्ध में भी है। तरुण हो जाने के उपरान्त प्राय: कम ही लोग सुधर पाते हैं। आरम्भ में जमीं बुरी आदतें और अधिक पनप तो सकती हैं, पर उनमें सुधार-परिवर्तन होना कुछ अपवाद में ही देखा जाता है।

अभिभावक बच्चों को हँसाने, खिलाने, सजाने जैसे कृत्यों में ही लगे रहते हैं। उन्हें यह नहीं सूझता कि आँगन में खेलने वाले बालकों को यदि सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढाला जा सके तो वे अपनी गरिमा बढ़ाने और दूसरों की असाधारण सेवा कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिए हँसाने-खिलाने के कौतुक काम नहीं देते वरन् उनकी प्रवृत्तियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए उनमें उत्कृष्टता के बीज सावधानीपूर्वक बोए जाने चाहिए। यह कार्य उथली दृष्टि से नहीं हो जाता वरन् उसी प्रकार करना होता है, जिस प्रकार स्वर्णकार सोने की डली को अपने हस्त कौशल के सहारे आकर्षक आभूषणों के रूप में गढ़कर यशस्वी एवं लाभान्वित होता है। बालकों के सम्बन्ध में भी यही नीति अपनाई जानी चाहिए। सच्चे अर्थों में अभिभावक बनने के लिए इससे कम में काम नहीं चलता।

अध्यापकों का काम भी इससे कम गम्भीर एवं जटिल नहीं है। मोटेतौर पर निर्धारित पाठ्यक्रम का पूरा करा देना ही उनका काम माना जाता है। छात्र भी इतने से ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और अभिभावक इससे अधिक आशा-अपेक्षा नहीं करते। यह शिथिलता, उपेक्षा एवं अपूर्णता तीनों ही पक्षों पर लांछन लगाती है और छात्र के भविष्य तथा समाज के प्रति कर्त्तव्यपालन में एक बाधा बनकर अड़ी रहती है। अच्छे डिवीजन से पास होने में अच्छी नौकरी पा लेने भर से उसकी उपयोगिता सिद्ध नहीं हो जाती। कमाई की दृष्टि से तो कई बहुत कम पढ़े व्यवसायी भी उनसे अधिक कमा लेते हैं। शिक्षा की सार्थकता तब बनती है जब उसकी छत्रछाया में अधिक सुसंस्कृत, अधिक प्रतिभावान एवं अधिक क्रियाकुशल व्यक्तित्व का निर्माण हो। इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाना अध्यापन तन्त्र का कर्त्तव्य है।

सामूहिक उपदेश देने भर से बात नहीं बनती वरन् यह भी आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक छात्र की मन:स्थिति एवं रुझान प्रवाह पर ध्यान रखा जाय। उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध सूत्र जोड़ा जाय और परिस्थितियों के अनुरूप ऐसे सुझाव देते रहा जाय, जिससे भटकाव से बचना व प्रगति पथ पर सही रीति से चल सकना सम्भव हो सके। इसके लिए मार्गदर्शक का निज का व्यक्तित्व भी ऐसा होना चाहिए जो प्रभाव छोड़ने में न केवल ज्ञान की दृष्टि से वरन् चरित्र की दृष्टि से भी समर्थ हो। जिन विद्यालयों के छात्र न केवल बुद्धिमान वरन् चरित्रनिष्ठ एवं समाजनिष्ठ बनकर निकलें, समझना चाहिए कि शिक्षा को सार्थक करने वाली विशिष्टता बन पड़ी। हर शिक्षक, हर विद्यालय इन विशेषताओं को उत्पन्न करने के लिए प्राणप्रण से प्रयत्न करे तभी उसका गौरव है।

उद्योग, व्यवसाय के क्षेत्र में भी, कारखानों, दफ्तरों के अन्तर्गत बड़ी जनसंख्या काम करती है। यदि वहाँ श्रमिकों को रोटी और मालिकों को रोजी भर मिल सकी तो समझना चाहिए कि यहाँ शरीर रक्षा में काम आने वाले निर्वाह भर की व्यवस्था है। इतना ही पर्याप्त नहीं। होना यह भी चाहिए कि जितने व्यक्ति जिस परिकर में काम करते हैं, उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में कर्त्तव्यपरायण होने की शिक्षा-प्रेरणा भी मिलती रहे। वे न केवल कारखाने के प्रति निष्ठावान रहें वरन् अपनी निजी जीवन में भी क्रिया-कुशल, सुव्यवस्थित एवं नीतिवान बनकर रहें। राष्ट्रीय प्रगति का वास्तविक आधार उत्पादन भर बढ़ा लेना नहीं है वरन् यह भी है कि नागरिकों में आदर्शवाद के प्रति निष्ठा और समाज में सद्भाव बनाए रहने वाली शालीनता अपनाये रहने की एक लोकरुचि समुन्नत स्तर की बनी रहे। ऐसा प्रशिक्षण एवं वातावरण भी उन सभी परिसरों में होना चाहिए, जहाँ अनेक लोग एकत्रित होते हैं। भले ही वे आते रोटी पाने के लिए ही हों, पर उन्हें वहाँ से वेतनों के अतिरिक्त ऐसा उत्साह भी साथ लेकर लौटना चाहिए कि निजी जीवन को मानवी मर्यादाओं के अनुरूप विकसित कर सकें। जहाँ प्रत्यक्ष प्रयोजनों के लिए कार्यक्रम बनते हैं वहाँ एक कड़ी यह भी जुड़ी रहनी चाहिए कि बिना दबाव के जुड़े घटक सिद्धान्तवादी और कर्तव्यपरायण बन सकें। इस व्यवस्था के बन पड़ने पर वे दफ्तर, कारखाने सराहने योग्य बन सकते हैं जहाँ अभीष्ट उत्पादन ही नहीं होता वरन् चरित्रों को भी उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाला जाता है।

कामगार अधिक सुविधा चाहते हैं और मालिक अपने लाभांश अथवा निर्धारण की पूर्ति भर से सन्तुष्ट हो जाते हैं। होना यह भी चाहिए कि जैसे सेना में अनुशासन, देशभक्ति एवं कर्तव्यपालन सिखाने के लिए युद्ध कौशल की तरह प्रयत्न किया जाता है, वैसा ही व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रेरणा उन सभी संस्थानों में हो जो छात्रों या व्यक्तियों को अपने साथ जोड़कर रखती है।

सामाजिक उत्कर्ष की जड़ें शिशु-शिक्षण में

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के चौदहवें संस्करण में शिक्षा की परिभाषा यह दी गई है कि "शिक्षा समाज के वयोवृद्ध लोगों का वह प्रयत्न है, जिसके द्वारा वे आगे आने वाली पीढ़ी का जीवन अपने आदर्शों के अनुरूप ढालते हैं।" इसका अर्थ हुआ कि शिक्षा का उद्देश्य किसी समाज के सदस्यों को इस योग्य बनाता है कि वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी सार्थक एवं श्रेष्ठ जीवन जी सकें, आज के शिशु ही कल के समर्थ नागरिक हैं, इसलिए उनके शिक्षण से ही कल के श्रेष्ठ, उन्नत नागरिक तैयार हो सकते हैं।

जो समाज शिक्षा का कोई श्रेष्ठ स्वरूप सभी सदस्यों के लिए विकसित नहीं कर पाता, वह उन्नत समाज नहीं बन पाता। जो बच्चे श्रेष्ठ एवं सार्थक जीवन जीना नहीं सीख सकते, वे कभी भी उज्ज्वल भविष्य के स्वामी भी नहीं बन सकते।

प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों से प्यार करता है। उनके भविष्य उज्ज्वल-उज्ज्वलतर हो, इस हेतु प्रयासरत रहता है। किन्तु उज्ज्वल भविष्य की उसकी कल्पना क्या है ? यह उसके द्वारा अपने बच्चों को दी जा रही शिक्षा की प्रक्रिया एवं पद्धति को देखकर जाना जा सकता है।

सामाजिक स्तर पर इस दृष्टि से देखने पर हताशा ही हाथ लगती है। अँग्रेजों ने जो शिक्षा प्रणाली स्थापित की थी उसका उद्देश्य स्पष्ट था, अँग्रेजी शासन के लिए अनुकूल नौकर, कर्मचारी तैयार करना। स्वाधीनता की प्राप्ति के पैंतालीस वर्ष बाद भी शिक्षा का मूल ढाँचा वही रहे आने का अर्थ स्पष्ट है, हमारे समाज के समर्थ लोग अभी भी ऐसे ही नागरिकों का निर्माण करना चाहते हैं, जो नौकरियों की प्रतियोगिता में पड़ना, ऊँचा पद, ऊँचे वेतन और अधिकाधिक पैसा पाना इसे ही जीवन का लक्ष्य मानें। शिक्षा सदैव गरिमा से जुड़ा करती है। जैसी प्रेरणा देने वाली शिक्षा-पद्धति होगी, वैसी ही प्रवृत्ति के विकास को उस समाज में गौरवान्वित किया जाएगा। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय समाज में प्रत्येक अभिभावक अपने बच्चों के बारे में यही बात गौरवास्पद समझता है कि उसका बच्चा ऐसा पद पाए और इतने पैसे कमाए कि वह यशस्वी हो जाए। व्यक्ति की यशस्विता की यही कसौटी बन गई है कि वह दुनियादारी में कितना बढ़ा-चढ़ा सिद्ध हो। यदि विज्ञान कुछ ही दिनों में ऐसे परखनली शिशु गढ़ने लगे, जिनके चरित्र और गुण-अवगुण इच्छानुसार गढ़ने सम्भव हों, तो वैसे बच्चे खरीद सकने में समर्थ अधिकांश माँ-बाप यही चाहेंगे कि हमें ऐसी सन्तान मिले, जो ऊँचा अफसर या बड़ा सेठ बने या फिर जोड़-तोड़ में समर्थ नेता बने। सच्चरित्र, सत्यान्वेषी, आदर्शों के लिए अडिग, आस्था सम्पन्न, संघर्षशील, तेजस्वी सन्तानों की माँग शायद ही कोई करे। हाँ, सभी पड़ौसी को यह सलाह अवश्य देंगे कि आप ऐसी ही सन्तान का मॉडल खरीदें, आपका नाम होगा, किन्तु अपना नाम सभी किसी दुनियादार पैसे वाले बेटे के माँ-बाप के रूप में ही चलाना चाहेंगे।

जहाँ इस तरह का खुला लक्ष्य हो, वह समाज समता और सौहार्द्र की दिशा में कैसे बढ़ सकता है? जहाँ उचित-अनुचित किसी भी रीति से पद-पैसा पाना, बटोरना ही काम्य और वरेण्य समझा जाएगा, वहाँ जो प्रतिस्पर्धा होगी, वह श्रेष्ठ, सच्चरित्र व्यक्तित्व की दृष्टि से समुन्नत नागरिक बनने की नहीं हो सकती।

यद्यपि इन दिनों हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति यह कहने में नहीं चूकता कि 'बच्चे ही भविष्य हैं' किन्तु वह बच्चों को उज्ज्वल चरित्र बनाने में कोई रुचि रखता है, यह देखने में नहीं आता। बच्चे ही भविष्य हैं और भविष्य उज्ज्वल, श्रेष्ठ, समुन्नत बनाना है तो बच्चों के व्यक्तित्व को वैसा बनाने के अधिकाधिक प्रयास किए ही जाने चाहिए और उसे सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का स्वरूप ऐसा निर्धारित किया जाना चाहिए कि वह उनमें श्रेष्ठ संस्कारों को, उत्कृष्ट भावनाओं को उदात्त चिन्तन और पवित्र आचरण की प्रवृत्तियाँ को विकसित करे।

शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग निश्चय ही पाठशालाएँ भी हैं और उनके वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन भी आवश्यक है। शिक्षापद्धति में आवश्यकता की बात कही तो सर्वत्र जाती है। किन्तु स्कूल शिक्षाओं में आमूल चूल परिवर्तन की कोई स्पष्ट स्थिति अभी तक विनिर्मित नहीं हो सकी है। जो लोग स्वयं ही शिक्षा-नीति, शिक्षण-पद्धति, शिक्षण-पाठ्यक्रम, शिक्षण-संस्थाएँ तथा शिक्षा के मानदण्ड गढ़ते, बनाते और चलाते हैं, वे ही उसी शिक्षा-पद्धति को कोसते-धिक्कारते हैं तथा परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हैं, इस पर भी परिवर्तन होता नहीं दीखता, तो समझा यही जाना चाहिए कि यह अपूर्ण पहेली अभी सुलझने वाली नहीं। स्कूली शिक्षा के ढर्रे के बदलने में अभी समय लगेगा।

किन्तु इस स्कूली शिक्षा पर सारा दोष डालकर कोई भी अभिभावक मुक्त नहीं हो सकता। यों तो, उस पद्धति के निर्माण में भी एक मतदाता, नागरिक और प्रबुद्ध व्यक्ति के नाते किसी न किसी रूप में हर व्यक्ति का हाथ समझा जाना चाहिए। परन्तु जनसामान्य को उस शिक्षा-पद्धति के लिए प्रत्यक्षतः अधिक जिम्मेदार न भी माना जाए, तो भी अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रधान दायित्व अभिभावकों पर ही है। क्योंकि शिक्षा प्रदान करने का एकमात्र माध्यम स्कूल नहीं है। एक वर्ष या एक दिन में कुल मिलाकर कितना समय बच्चा पाठशाला में बिताता है, उससे बहुत अधिक समय वह अन्यत्र बिताता है। घर, पास-पड़ौस, मुहल्ले और समाज में भी बच्चों की शिक्षा-दीक्षा होती रहती है, वह मात्र पाठशाला तक सीमित नहीं होती। इस तथ्य को सदैव ध्यान में रखा जाना चाहिए। बच्चे की मानसिकता का, प्रवृत्तियों का और संस्कारों का निर्माण मात्र पाठशाला में नहीं होता। इससे कहीं अधिक यह निर्माण अन्यत्र होता है। शाला के बाहर के वातावरण का प्रभाव शाला में कतई कम नहीं होता, इसलिए शिशु-शिक्षण को पाठशाला तक सीमित समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए और पाठशालाओं पर दोष डालकर स्वयं को भारमुक्त समझ बैठने का भ्रम नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पालना चाहिए। बच्चों में संस्कार पनप रहे हैं, उनकी जो मानसिकता उभर रही है, उसकी जिम्मेदारी माता-पिता एवं पास-पड़ौस पर अधिक है, पाठशाला पर कम। जैसा कि प्रारम्भ में उद्धृत 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' की परिभाषा में स्पष्ट है—शिक्षा समाज के प्रौढ़ परिपक्व लोगों का वह प्रयत्न है, जो बच्चों का संस्कार विनिर्मित करता है। यह प्रयत्न पाठशाला तक सीमित नहीं रहता। क्योंकि शालेय शिक्षा के स्वरूप के निर्माता, राजनेता एवं शिक्षाशास्त्री तथा उस शिक्षा को प्रदान करने वाले अध्यापक लोग भर ही समाज के प्रौढ़ परिपक्व सदस्य नहीं हैं। अपितु हर माता-पिता और सामान्य नागरिक भी समाज के उतने ही महत्त्वपूर्ण प्रौढ़ सदस्य हैं और बच्चों के संस्कार निर्माण की दिशा में उनके द्वारा किए गए प्रयत्न भी शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं। शिक्षा मात्र पाठशाला में नहीं दी जाती, वह घर, मुहल्ले पास-पड़ौस में भी दी जाती है और स्कूली समय में ही नहीं दिन भर चलती रहती है। इसलिए जो भी लोग अपने बच्चे का और सम्पूर्ण समाज का भविष्य उज्ज्वल देखना चाहते हैं, उन्हें स्वयं अपने द्वारा दिए जा रहे शिक्षण को उन्नत बनाना होगा। बच्चे के सामने हम स्वयं अपने आचरण से कैसा प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित करते हैं, उसके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए कितने सजग रहते हैं उसमें अन्तर्निहित दिव्यताओं, उत्कृष्टताओं को उभारने, सँवारने के लिए कितने और किस स्तर के प्रयास करते हैं। यह सब शिक्षण का ही अंग है। अत: प्रत्येक जिम्मेदार माता-पिता एवं प्रबुद्ध नागरिक को बच्चों के सतशिक्षण, सत्संस्कार सम्वर्द्धन के वे प्रयास तो तत्काल ही आरम्भ कर देने चाहिए, जो उनके अपने हाथ में हैं। बच्चों में श्रेष्ठ संस्कार डालना ही वास्तविक शिक्षण है और यह शिक्षण बड़ी सीमा तक पाठशाला के बाहर ही होता है। सामाजिक उत्कर्ष की जड़ें मुख्यत: इसी शिशु शिक्षण में हैं। व्यक्ति निर्माण का जितना अधिक श्रेष्ठ वातावरण परिवार एवं समाज में होगा, शिशु का व्यक्तित्व उतना ही अधिक विकसित होता जाएगा और उसी सीमा तक समाज के निर्माण के उत्कर्ष के पथ प्रशस्त होते जाएँगे। शालाएँ शिक्षा का स्वरूप बदलने के प्रयास तो चलने ही चाहिए। किन्तु घर-परिवार में प्रदान किए जाने वाले शिक्षण की ओर उससे कम नहीं अधिक ही ध्यान देना चाहिए। तभी समाज में सुयोग्य नागरिकों की संख्या बढ़ेगी।

प्रशिक्षण की अनिवार्यता, उपादेयता

वातावरण बनाने में मन:स्थिति की बहुत बड़ी भूमिका होती है। कभी भारत भूमि को देव भूमि की संज्ञा दी गई थी और ३३ कोटि देवताओं की उपस्थिति यहाँ मानी जाती थी। तब न आज जैसे सुविधा-साधन थे, न वैज्ञानिक प्रगति थी, लोग नितान्त पिछड़ी दशा में रहते थे, किन्तु चरित्र-चिन्तन की दृष्टि से उनका व्यक्तित्व अनुपम-अद्भुत था। इसी कारण सुखी भी थे, पर आज की परिस्थितियाँ इतनी बदल चुकी हैं कि आरम्भ की तुलना में इसे जमीन-आसमान जितना अन्तर भी कहा जा सकता है। साधन-सुविधाओं के अम्बार लग गए हैं। विज्ञान की प्रगति ने क्षणमात्र में पृथ्वी को एक कोने से दूसरे कोने में जोड़ने के सरंजाम जुटा दिये हैं। इतना सब बन पड़ने के बावजूद भी हम खिन्न-विपन्न ही दिखाई पड़ते हैं, ऐसा क्यों हुआ ? इसके कारण की तलाश में जब गहराई में उतरते हैं, तो पता चलता है कि मन:स्थिति के प्रशिक्षण के अभाव में ही यह सारी विपन्नताएँ उठ खड़ी हुईं। प्रशिक्षण के माध्यम से यदि उसे प्राचीनकाल जैसी स्थिति में उत्कृष्ट बनाए रखा गया होता, तो आज सतयुगी वातावरण से भी सुखद स्थिति में हम रहते दिखाई पड़ते।

प्रशिक्षण की आवश्यकता और महत्ता पर आज के विचारक और बुद्धिजीवी एक मत हैं। यही वह साँचा है, जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व ढाला और वातावरण बदला जाता है। अनेकों मतभेदों के बावजूद अधिकांश चिन्तक इसके दो घटकों—कुशल प्रशिक्षक एवं अनुकूल वातावरण की इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया में प्रधानता मानते हैं। सामयिक उपयोगिताओं, आवश्यकताओं, परिस्थितियों के अनुरूप व्यावहारिक स्तर पर प्रशिक्षण की विधियों में विभेद हो सकता है, पर मूलत: इसके उद्देश्य दो ही हैं—वैयक्तिक और सामाजिक विकास, इसमें प्रधानता वैयक्तिक विकास की है, क्योंकि इसी की नींव पर सामाजिक विकास की भव्यता टिकी हुई है। वैयक्तिक विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए चिन्तक यूकेन कहते हैं कि इसका तात्पर्य विपुल सुख-सविधाएँ अर्जित करना नहीं, अपितु आध्यात्मिकता के सोपानों पर चलना है। द्विविध प्रकार के उत्कर्ष का मर्म प्रशिक्षण में निहित है। इसके बिना दोनों में से एक भी सम्भव नहीं है। अनगढ़ शिशु के जन्मते ही उसे सुगढ़ बनाने का दायित्व उसके अभिभावकों पर आता है और वे ही इसके प्रशिक्षक होते हैं और इसमें सहायक होता है घर का वातावरण। यदि वे इस कला से भिज्ञ हैं, वातवरण अनुकूल है, तो वे उनको गढ़ने में समर्थ होते हैं और राष्ट्र को उत्कृष्ट नर-रत्न प्रदान कर सकने का गौरव पाकर गौरवान्वित होते हैं।

अभिभावकों द्वारा दिया गया, घर में पाया गया प्रशिक्षण जहाँ विकास की नींव विनिर्मित करता है, वहीं महल बनाने का काम विद्यालयों पर आ पड़ता है। शिक्षाविद प्रो. लिस्टर स्मिथ के अनुसार स्कूल मात्र सैद्धान्तिक ज्ञान देने वाली संस्था नहीं होनी चाहिए। यथार्थ में इसका कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका वातावरण एवं शिक्षकों की प्रशिक्षण कला प्रशिक्षणार्थी के व्यक्तित्व को भी सुगढ़ बनाने में प्रयुक्त होने चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का तीसरा चरण अथवा यों कहें कि मजबूत नींव पर भव्य महल बन जाने के बाद इसको चमचमाते कंगूरों से सुशोभित करने का कार्य सामाजिक परिवेश और समाज को नेतृत्व प्रदान करने वाली विभूतियों द्वारा सम्भव होता है।

प्रशिक्षण के ये तीन महत्त्वपूर्ण चरण हैं, जिनसे गुजरकर मनुष्येतर प्राणियों के बच्चों से भी हीन-दुर्बल और गया-गुजरा दिखाई पड़ने वाला मानव शिशु विकास के उस शिखर पर जा बैठता है, जिससे उसे राजकुमार होने एवं देवमानव बनने की गरिमा प्राप्त होती है।

इसकी उपयोगिता, आवश्यकता और महत्ता जाँचने-परखने के लिए समय-समय पर विविध प्रयोग भी होते रहे हैं। मानव ही नहीं मानवेतर प्राणियों को भी विविध प्रशिक्षण प्रणालियों एवं वातावरण की उपयुक्तता से गुजारकर उन्हें उच्चस्तरीय बनाया गया है। इस सन्दर्भ में अमेरिका के मिसीसिपी राज्य के अन्तर्गत 'पोपरबिल' नाम के कस्बे के निवासी केलर ब्रिलैण्ड तथा उनकी पत्नी मरियम ने विशेष प्रयत्न किए हैं। उन्होंने लगभग चालीस किस्म के जीवों को अपने स्कूल में भर्ती किया है, जिनमें मछली, चूहे, कुत्ते, बिल्ली, तोते आदि सभी प्रकार के प्राणी शामिल हैं। अब तक उनके इस प्राणी विद्यालय से एक हजार से भी अधिक प्राणी आश्चर्यजनक कार्य कर सकने और आकर्षण केन्द्र बन सकने योग्य विशेषता अर्जित करके विदा हो चुके हैं। इसी विद्यालय की एक कक्षा की मुर्गियाँ आज्ञा देने पर जूल बॉक्स का स्विच दबाकर रिकार्ड चालू कर देती हैं और स्वयं भी उसकी ध्वनि पर लय-ताल के साथ नृत्य करती हैं।

मुर्गे टीम बनाकर पेशेवर खिलाड़ियों जैसे अपने-अपने स्थानों पर खड़े होते और 'बेसबॉल' बिल्कुल सही ढंग से खेलते हैं। उनमें न कोई बेईमानी करता है, न आलस्य, लापरवाही। जो भी दल हार जाता है, वह बिना किसी झगड़ा-झंझट के पैर फैलाकर रेत में बैठ जाता है।

रेनडियर प्रेस की मशीन चलाते, कुत्ते बास्केट बाल खेलते, बत्तखें स्वसंचालित तेल की मशीन को चलाती हैं व असंख्यों दर्शक उसका आनन्द लेते हैं। यहाँ खरगोश पियानो बजाते, गेंद खेलते हैं। यह सारा प्रशिक्षण पुरस्कार द्वारा उत्साहवर्द्धन करके दिया जाता है। पीछे जब वे मालिक की मर्जी समझने और निभाने का संकेत समझ लेते हैं, तो प्रत्येक सफलता पर स्वादिष्ट भोजन का उपहार दिया जाने लगता है। इस प्रकार उत्साहवर्द्धन द्वारा प्रशिक्षण सम्पन्न होता है।

ब्रिलैण्ड केलर का दो-सौ अस्सी एकड़ में बना प्राणी प्रशिक्षण गृह 'एनीमल बीहेवियर इण्टरप्राइज' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अन्तर्गत अनेक जीवों की प्रशिक्षित कर उनकी बौद्धिक क्षमता का विकास कर अधिकाधिक उपयोगी और फायदेमंद बनाया जा रहा है।

ब्रिलैण्ड की तरह ही आस्ट्रेलिया के लिण्डसेस्मिट ने अनेक बन्दरों को प्रशिक्षित किया है। उनसे वह कृषि के विभिन्न कार्य करवाते हैं। उदाहरण के लिए एक बन्दर 'जानी' ट्रैक्टर से खेत जोतने की कला में निष्णात है। अन्य बन्दर कृषि के अन्य कार्य जैसे आलू खोदना, निराई करना आदि करते हैं। इसके अलावा उन्हें अन्य छोटे, किन्तु उपयोगी कार्यों जैसे गेहूँ बीनना, चावल फटकना आदि में भली प्रकार प्रशिक्षित किया गया है।

निश्चय ही प्रशिक्षण की महिमा अद्भुत है। उस प्रक्रिया को स्कूली छात्रों तक ही सीमित न रहने दिया जाय वरन् अविकसितों को भी उनका लाभ मिल सके, ऐसे नये उपाय खोजना, शिक्षा विज्ञानियों, अनुसंधानकर्त्ताओं का कर्तव्य है।

सानडियागों चिड़ियाघर में पालतू बन्दरों पर अनुसंधानकर्त्ताओं ने कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण उनकी बुद्धिमत्ता बढ़ाने के सम्बन्ध में किए हैं। उन्हें पुरस्कार देकर बहुत कुछ करा लेने और प्रशिक्षण कर लेने में सफलता भी मिली है। पैसे देकर बाजार में वस्तुएँ खरीदी जाती हैं, इस विनिमय पद्धति को इन बन्दरों ने सीख लिया और खरीदने-बेचने की कला में उस्ताद बन गए। उन्हें खरीदना सिखाया गया। इसके लिए उनके पिंजड़े में पैसे बिखेर दिए जाते और उनमें से बड़े सिक्के लाने पर उन्हें केले और छोटे सिक्कों के बदले बेर दिए जाते। केला बन्दरों का प्रिय आहार है, अतः वे प्रायः बड़ा सिक्का की खोज कर लाने का प्रयत्न करते। समझदारी का थोड़ा विकास होते ही वे सिक्के के ढेर में से बड़े सिक्के खोजकर इकट्ठे करने लगे और जैसे ही विक्रेता पिंजड़े के सामने आता, बन्दर उन्हें बड़े सिक्के सौंपते और केले प्राप्त कर लेते। छोटे सिक्कों के ढेर जमा होते गए और उधर बेर की बिक्री भी बन्द हो गई। यह बन्दरों की विकसित बुद्धिमत्ता थी कि किसके बदले क्या प्राप्त करना है ? इसका तालमेल बिठाने में उन्हें देर नहीं लगी।

प्रशिक्षण का सिलसिला आगे बढ़ा। सिक्कों के स्थान पर रंगीन पत्थरों के टुकड़े रखे जाने लगे। किस रंग के टुकड़े से क्या खरीदा जा सकता है, यह सिखाने में बहुत दिन नहीं लगे। वे अच्छे-खासे खरीददार बन गए। जैसे ही कोई दुकानदार पास में आता, अपनी-अपनी पसन्द की चीजें खरीदने लगते। आश्चर्य यह कि जिन पदार्थों को प्राप्त करने में अभिरुचि नहीं होती, उनके लिए प्रयुक्त होने वाले टुकड़ों की वे सर्वथा उपेक्षा करते, जबकि काम के पत्थरों को समेटने के लिए वे परस्पर छीन-झपट करते। इसके बाद उन्हें संग्रह करने और छिपाकर रखने की भी कला सीख ली। साथियों द्वारा संग्रहीत सिक्के चुरा न लिए जाएँ, इसके लिए छिपाने की दृष्टि से भी उन्होंने अनेक उपाय खोजे और अपनाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उक्त प्रयोग-परीक्षणों के आधार पर अनुसंधानकर्त्ता वैज्ञानिकों ने निष्कर्ष निकाला कि पशु-पक्षियों को बुद्धि विकसित होने का अवसर मिले तो वे भी योग्य बन सकते हैं, जिससे मनुष्य के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी बन सकें। अन्यान्य पालतू पशुओं के सम्बन्ध में यही हुआ है। मनुष्य के सम्पर्क में आने पर ही उन्होंने उसका सहयोग करना और अनुशासन पालन सीखा है। जिन्हें अभी तक वैसा अवसर नहीं मिला, वे अभी भी बिदकते, दूर भागते हैं और पकड़ में न आने का भरपूर प्रयत्न करते हैं। पकड़े जाने पर भी इच्छित कार्य करने को सहज सहमत नहीं होते। जंगली गायें, भैंस, कुत्ते, गधे, बिलाव आदि इसके साक्षी हैं। वे अपनी बिरादरी वाले पालतू समुदाय से सर्वथा भिन्न आचरण करते हैं और सहयोग के लिए जल्दी तैयार नहीं होते। उन्हें पालतू बनाने और अनुशासन सिखाने में मनुष्य को लम्बा समय लगा है।

वस्तुतः योग्यता सम्वर्द्धन में प्रशिक्षण की सबसे अहम् भूमिका होती है। उसके सहारे ही अन्धों को लिखना-पढ़ना और गूँगों को कुछ काम के शब्द बोलना सिखा लेने में सफलता मिली है और उनके लिए तरह-तरह के उपकरण विकसित हुए हैं। अब सोचा जा रहा है कि पागलों और अविकसित मस्तिष्क वालों को सर्वथा निरुपयोगी न रहने दिया जाय। उनके द्वारा होने वाले अवांछनीय कृत्यों को रोका जाय। प्रताड़ित करने, जेल में धकेल देने की अपेक्षा यह माना जाने लगा है कि उनकी वर्तमान मानसिक स्थिति का अध्ययन करते हुए इस प्रकार का प्रशिक्षण क्रम खोजा जाय, जिसके सहारे वे समस्या बन कर समाज पर बोझ बनकर न रहें।

प्रशिक्षण के उक्त विविध प्रयोगों एवं उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब निम्नकोटि के माने जाने वाले प्राणी प्रशिक्षण प्रक्रिया द्वारा अपना विकास कर सकते हैं, स्वयं को उच्चस्तरीय बना सकते हैं तो सृष्टि का मुकुटमणि समझा जाने वाला मनुष्य यह क्यों मानने लगता है कि आज की परिस्थितियों को, स्वयं को एवं अपने बच्चों को अच्छी दिशा में मोड़ना-मरोड़ना उसके बूते की बात नहीं रही।

किसी समय की परिस्थिति उस समय के लोकमानस की मनःस्थिति विशेष के कारण होती है। कभी धरती का वातावरण सतयुगी था। लोग सुखी-सन्तुष्ट दिखाई पड़ते थे। इसके पीछे उनकी उच्च व उत्कृष्ट मनःस्थिति ही कारणभूत तत्व था, पर आज सुविधा-साधन बढ़ जाने के बावजूद भी मनःस्थिति वैसी नहीं रह जाने के कारण लोग कष्ट-कठिनाई में दिखाई पड़ते हैं। आखिर ऐसा क्यों हुआ ? जब इस पर गम्भीरता से विचार करते हैं, तो पता चलता है कि मनःस्थिति विनिर्मित करने वाली, मनोभूमि गढ़ने वाली संस्थाओं ने ही अपनी जिम्मेदारियाँ निभानी बन्द कर दीं। परिवार जिसे प्रशिक्षण की प्रथम पाठशाला कहा जाता है, उसने स्वयं को सिर्फ शिशु के पालन-पोषण तक ही सीमित कर लिया है। उसकी मनःस्थिति और मनोभूमि भी कोई चीज होती है और उसे मिट्टी के कच्चे बर्तन को पकाने की तरह आरम्भ से ही सुसंस्कारी बनाना चाहिए, इसे तो उसने लगभग भुला ही दिया है। इस आशय के लिए स्कूलों पर आश्रित रहने लगे। स्कूल में अध्यापक भी विषयों की जानकारी भर दे देने में अपने कार्य की इतिश्री मान लेते हैं। कठिनाई यहीं से आरम्भ होती है। जहाँ विशिष्ट और उत्कृष्ट वातावरण बनाने वाली मनःस्थितियाँ विनिर्मित होनी चाहिए, उसके स्थान पर वातावरण से प्रभावित होने वाली मनःस्थितियाँ बनने लगती हैं।

इतना सब होते हुए भी व्यक्ति यदि चाहे तो समाज अथवा वातावरण को न सही, स्वयं को स्वयं के बलबूते पर अपनी मनःस्थिति बदलकर अपने को आध्यात्मिक रूप से सुविकसित अथवा सुखी-संतुष्ट तो बना ही सकता है। इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जिन्होंने उदात्त मनःस्थिति विनिर्मित करने वाले आरम्भिक प्रशिक्षण के अभाव में भी अपने को बदला और महान बने। कालिदास, तुलसीदास, अंगुलिमाल आदि ऐसे ही व्यक्तित्व हैं। ऐसा आज भी सम्भव है यदि व्यक्ति तनिक अपनी मनःस्थिति बदल ले, तो आज की प्रतिकूल परिस्थिति में भी सुखी-सन्तुष्ट जीवन जीता हुआ सतयुग का आनन्द लाभ ले सकता है। यह भी प्रकारान्तर से मन का प्रशिक्षण ही हुआ और यदि इसके साथ-साथ अनुकूल वातावरण भी मिल जाएँ, तो परिणाम सोने में सुगन्ध प्राप्त होने जैसा हो सकता है। इतना पुरुषार्थ किए बिना न तो व्यक्ति सुखी रह सकता है और न समाज को बदलने का दावा कर सकता है। क्योंकि समाज भी व्यक्तियों का समूह है। व्यक्तियों के बदलने से समाज स्वतः बदल जाएगा।

प्रशिक्षण के उपयुक्त सही वातावरण

राजा एक राज्य का शासन करता है। पुरोहित का एक गाँव यजमान होता है। एक गाँव का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार परिष्कृत करने में एक भावनाशील अध्यापक ऐसी शानदार भूमिका निभा सकता है, जिसे कायाकल्प के समतुल्य कहा जा सके। शर्त एक ही है कि उसे अपने पद के गौरव का भान हो और सच्चे मन से अपना सारा समय उसी कार्य को उच्चस्तरीय मनोविनोद मान कर लगाए रह सके। समय की कमी का प्रश्न नहीं है। प्रश्न भावना की उत्कृष्टता में कमी होने का है। यह कार्य वेतन के लिए काम करने वाले, ऊपरी आमदनी का अवसर तलाश करते रहने वाले श्रमिकों का नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिछले दिनों अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होना ही छात्रों और अध्यापकों की प्रशंसा का केन्द्र माना जाता था। अब नई समस्याएँ सामने आने से इस सफलता के सम्बन्ध में नये सिरे से सोचा जाने लगा है। शिक्षितों की बेरोजगारी से उत्पन्न हुआ असन्तोष गुण्डागीरी की ओर मुड़ता है। उत्तीर्ण होने से पूर्व ही वह भयानक आशंका उन्हें संत्रस्त करने लगती है और नशेबाजी से लेकर अपराध स्तर की गुण्डागर्दी इस समुदाय में फैलने लगी है। नकल करके, डराकर, लोभ देकर पास होना तो आम बात हो गई है। ऐसी दशा में उत्तीर्ण हुए और काम पर चिपकाए हुए लोग भी अयोग्यता के कारण अपना काम सही तरीके से पूरा नहीं कर पाते और जिस भ्रष्टाचार के सहारे पास हुए थे, उसे पूरे समाज में फैला देने के अवसर तलाशते रहते हैं। ऐसी बहुसंख्यक घटनाओं ने मूर्धन्यों का ध्यान इस ओर खींचा है कि विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा भी दी जाय और इसके लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम बनें। यह प्रसन्नता की बात है। यह पहले से ही समझा और किया गया होता तो और भी अच्छा होता। नैतिक शिक्षा की पाठ्य-पुस्तकें बनें और उनकी कक्षाएँ चलें, यह हर दृष्टि से प्रशंसनीय है। पर यदि इसे वस्तुतः वैसा बनाना हो तो पुस्तकें छपने के साथ-साथ अध्यापकों को भी उसी ढाँचे में ढलना पड़ेगा। क्योंकि चरित्र का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह चरित्रवानों से ही उपलब्ध हो सकता है। मिट्टी के खिलौना से लेकर पुर्जे और आभूषण तक साँचे में ढाले जाते हैं। साँचे यदि सही हैं, तो उनमें ढली हुई वस्तु भी बढ़िया बनेगी।

अध्यापकों के शिक्षण में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उन्हें सच्चे अर्थों में राष्ट्र निर्माता बनाना है। बच्चों का पाठ पढ़ाकर उत्तीर्ण कर देना भर उनका काम नहीं है वरन् जिस क्षेत्र में उन्हें काम करना है, उस समस्त परिकर की नैतिक शिक्षा देनी है। अन्यथा अनैतिक वातावरण में समय गुजारने वाले बच्चे स्कूली नैतिक शिक्षा को एक औपचारिकता मात्र मानकर भुला देने और जैसे थे वैसे ही बने रहेंगे।

अध्यापकों की ट्रेनिंग दैनिक स्तर की हो। जिसमें वे अपना चरित्र ऊँचा रखने का अभ्यास करें और इस स्तर तक पहुँचे कि उनके सम्पर्क में आने वाले छात्र भी उनका रहन-सहन, आचार-व्यवहार देखकर अनायास ही प्रभावित हों और पुस्तकों में पढ़ाई जाने वाली बातों को यथार्थ मान सकें। इसके लिए उन्हें उत्तीर्ण करने और काम सौंपने से पूर्व यह भलीभाँति जाँच लिया जाय कि उन्होंने अपना वास्तविक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व समझा या नहीं, उसमें प्रवीण पारंगत हुए या नहीं।

दुर्गुणों से बचे रहने के अतिरिक्त सेवा-भावना और तत्परता अध्यापक के प्रधान गुण होने चाहिए और इसकी जाँच-पड़ताल गुप्तचर स्तर पर निरन्तर निगाह रखते हुए की जानी चाहिए। जो इस आदर्शवादिता में अनुत्तीर्ण हों उन्हें तो पूरी तरह अयोग्य ठहरा दिया जाय। अनुग्रह अंक भले ही किसी अन्य विषय में कितने ही दे दिए जाएँ। उनकी पूर्ति तो वे पीछे भी कर सकते हैं। पर आदतों का बदलना यदि इस कठिन परीक्षा काल में न हो सके तो भविष्य के लिए उनसे क्या आशा की जा सकती है ? ऊपर के लेखों में अध्यापक वर्ग के लिए कितने ही काम सौंप दिए गए हैं। एक सद्गृहस्थ अनेक तरह की व्यवस्था करता है और उनका तालमेल अपनी व्यवस्था बुद्धि से मिला सकता है पर यदि धीमा काम का प्रभाव उन पर भी आया हो तो हर स्कूल से जुड़ा हुआ एक जनसम्पर्क अधिकारी अलग से नियुक्त किया जा सकता है। जो बच्चे के अभिभावकों से सम्पर्क रखे और यह सिखाए कि निजी जीवन की सफल तथा बच्चों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए किस प्रकार सोचना चाहिए और किस प्रकार क्या अस्वीकार और क्या अंगीकार कराना चाहिए ? सरकार ने ग्रामसेवकों की नियुक्ति की है। उनके जिम्मे कृषि उद्योगों सम्बन्धी आर्थिक बातें ही हैं। यहाँ उससे भिन्न प्रकार की नियुक्ति और जिम्मेदारी की चर्चा की गई है। वे प्रौढ़ पाठशाला, वृक्षारोपण, परिवार नियोजन, कुरीतियाँ उन्मूलन आदि के कार्यों को हाथ में लें तथा ऊँच-नीच, पर्दाप्रथा, अन्धविश्वास कुरीति समुदाय से लोहा लें। यह भावना स्तर के ग्रामसेवक अध्यापक होंगे। इन्हें हर स्कूल के साथ पृथक से भी रखा जा सकता है, जो निरन्तर इसी स्तर का ताना-बाना बुनते रहें और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन में अपना कौशल दिखाते रहें।

कितने ही घर-परिवारों की स्थिति अच्छी नहीं होती उनमें सद्गुणों की दृष्टि से अनेकों कमियाँ पाई जाती हैं। ऐसी दशा में उपयोगी यह होगा कि उन्हें विद्यालय के छात्रावास में रखा जाय और उसका प्रबन्ध ऐसे हाथों में हो जो अवकाश के समय भरपूर मनोरंजन कराते रहें, उसी के साथ सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण कराते रहें। छात्रावास संचालक को सच्चे अर्थों में सुयोग्य अभिभावक होना चाहिए, जो अपने छात्रों को हँसते-हँसाते व्यस्त भी रखें उस व्यस्तता में वे विनोद अनुभव करें और सद्गुणों का अभ्यास करें।

आजकल छात्रावास बहुत महँगे हो गए हैं। उनमें लाभ सम्पन्न लोग तो उठा लेते हैं पर गरीबों को किफायत का ध्यान रखते हुए निजी प्रबन्ध करना पड़ता है, उसमें उन्हें मनचाही छूट रहती है और कुमार्ग अपनाने का अधिक अवसर रहता है। अच्छा हो बोर्डिंग देहाती स्तर के अनुरूप हों और उनमें लागत कम आवे। बीच के ठेकेदारों को मुनाफा न कमाने दिया जाय, सम्भव हो तो सरकार उसमें कुछ छूट उसी प्रकार दे जैसे कि मिलिट्री के या दूसरे प्रकार के दफ्तरों में केन्टीनों को दी जाती है। नैतिक शिक्षा का यह एक महत्त्वपूर्ण आधार है कि जो नैतिक शिक्षा के नाम पर पुस्तकों में पढ़ा हो,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे व्यवहार में उतारने की प्रत्यक्ष शिक्षा छात्रावासों में मिले और जब वे लड़के छुट्टियों में घर जायें तो घर वालों के दुर्गुण न सीखें वरन् अपनी अच्छाइयों का प्रदर्शन करके अपना तथा अपने विद्यालय का गौरव बढ़ाएँ, समतामय जीवनयापन करने के लिए इन छात्रावासों में ढले हुए बालक कहीं अधिक उपयुक्त हो सकते हैं।

अपना काम अपने हाथ करने, नौकरों का सहारा न तकने की वृत्ति स्वावलम्बन की दृष्टि से अति उपयोगी है। श्रमशीलता, मितव्ययता, शिष्टाचार, सुव्यवस्था, सहकारिता जैसे गुण ही किसी व्यक्ति के भावी जीवन को समुन्नत बनाने में काम आते हैं। छात्रावास में इन गुणों का बीजारोपण हो तो बड़े होने पर बड़े कामों में भी उनके उपयोग की आदत बनी रहती है और छोटी परिस्थितियाँ पैदा होने पर भी महान बनने का अवसर प्रदान करती हैं।

अनुशासन सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है, वही आगे चलकर सुव्यवस्था के रूप में विकसित होता है, जो अपनी, अपने सामान की, कार्य की, साथियों की सुव्यवस्था बना सकता है, समझना चाहिए कि उसका भविष्य उन्नत है। स्काउटिंग आन्दोलन का आधार उसी स्तर की योग्यता बढ़ाने के लिए किया गया था। उन पुरानी बातों को हमें नवीन की तरह अपनाना चाहिए।

सुधार परिवर्तन की सरल प्रक्रिया

जिस प्रकार कृषि, व्यवसाय, उद्योग, शिल्प आदि में उसकी समानता अर्जित करने के लिए पूरा ध्यान देना पड़ता है, उसी प्रकार परिवार संचालन में भी सतर्कता बरतनी पड़ती है। यदि उसका एक भी पक्ष गड़बड़ाने लगे, तो छोटे पुर्जे की खराबी में पूरी मशीन बन्द हो जाने जैसा संकट उठ खड़ा होता है। सम्पन्नता कितनी ही आवश्यक क्यों न हो ? पर वही सब कुछ नहीं है। कई बार तो वह सर्प को दूध पिलाने की तरह अनर्थकारी भी बन जाती है। दुर्गुणों को पोषण मिलता है और वे दुष्प्रवृत्तियों का रूप धारण करके ऐसे संकट खड़े करती हैं, जिनसे गरीब, मध्यवर्ती लोग सहज ही बच पाते हैं।

मनुष्य जीवन की प्रगति और अवगति का प्रधान कारण है—उसके व्यक्तित्व का स्तर। वह यदि सुसंस्कृत, सुविकसित हो तो समझना चाहिए कि उत्कर्ष, अभ्युदय के सारे स्रोत खुल गए। सुख-शान्ति में रहने, साथियों की प्रसन्नता, कृतज्ञता, सहकारिता प्राप्त होते रहने के संरजाम जुट गए। यदि इसके विपरीत अपना व्यक्तित्व गया-गुजरा, हेय और अनगढ़ रहा तो समझना चाहिए कि प्रचुर सुविधा-साधन होते हुए भी चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में विकृतियाँ भरे रहने के कारण परिस्थिति विग्रहकारी ही बनी रहेगी। न स्वयं चैन से रहना बन सकेगा और न ही साथियों को संतुष्ट रख सकना। उलझी हुई समस्याएँ और भी अधिक उलझती जावेंगी, उस जाल-जंजाल में निकल सकने के लिए कोई उपाय न सूझ पड़ेगा। ऐसी दशा में स्वजन-सम्बन्धी भी कोई कारगर सहायता कर सकने में समर्थ न हो सकेंगे। जीवन रोते-रुलाते, गिरते-गिराते व्यतीत होगा। भले ही दोष किसी का समझा जाता रहे। संसार दर्पण की तरह है, उसमें अपना ही प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। जो गए-गुजरे स्तर के हैं, उन्हें प्रगति और प्रसन्नता का अवसर कभी भी नहीं मिल सकता।

इस तथ्य को समझते हुए परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता का समावेश निरन्तर होना चाहिए। इस कार्य में परिवार के वरिष्ठ एवं समझदार लोगों का विशेष उत्तरदायित्व है। श्रमशीलता, शिष्टता, मितव्ययिता, व्यवस्था एवं सहकारिता के पंचशीलों को पाँच देवों की तरह आराध्य मानने की बात हर एक के गले उतारनी चाहिए। उनकी महिमा एवं महत्ता विस्तारपूर्वक समझानी चाहिए। ऐसे परामर्श कठिन पड़ते हों तो फिर दूसरा तरीका एक ही बच जाता है कि प्रगतिशील लोगों के जीवन चरित्रों, संस्मरणों के प्रेरणाप्रद प्रसंग समय-समय पर सुनाते रहा जाय। अच्छा तो यह है कि रात्रि को अवकाश के समय घरेलू मनोरंजन की तरह कथा-कहानियाँ कहते रहने का क्रम चलाया जाय। यह तद्विषयक पुस्तकों के सहारे हो सकता है। घर में ऐसा साहित्य रहना ही चाहिए, जिसे पढ़ने सुनने से उत्कर्ष की दिशाधारा का परिचय मिले। कहानियाँ स्वयं में एक अच्छा मनोरंजन हैं। उसमें लोकरुचि भी होती है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों पर तीन चौथाई कथा साहित्य मिलता है क्योंकि माँग और विक्रय भी उसी की रहती है। वेद केवल चार बनकर ही समाप्त हो गए, पर पुराण अठारह बने। इतना ही नहीं, इसके बाद अठारह उपपुराण भी बने। इनमें से प्रत्येक का कलेवर इतना बड़ा है, जिसे वेदों, उपनिषदों की तुलना में कहीं अधिक विस्तार वाला देखा जा सकता है। यह कथा सुनने की लोकरुचि का प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह छोटों से लेकर बूढ़ों तक को समान रूप से प्रिय होता है।

पंचतन्त्र ग्रन्थ के निर्माण की कथा प्रसिद्ध है। एक राजा के लड़के बड़े उजड्ड थे। पढ़ाने वाले किसी अध्यापक को टिकने न देते थे। पढ़ने-लिखने में तनिक भी रुचि नहीं लेते थे। राजा को चिन्ता हुई कि इनका भविष्य कैसे बनेगा ? उसने घोषणा की कि जो अध्यापक हमारे लड़कों को पढ़ाने और सुधारने में सफल होगा, उसे मुँहमाँगा पुरस्कार दिया जाएगा। कई विद्वान आये और हार मानकर वापस लौट गए।

अन्त में एक विष्णु शर्मा नामक विद्वान आए। उन्होंने नया बीड़ा उठाया और नया तरीका अपनाया। वे मात्र कहानियाँ सुनाते थे। राजकुमारों की धीरे-धीरे इसमें दिलचस्पी बढ़ी और वे देर तक अध्यापक के पास बैठकर कहानियाँ सुनते रहते। वे कथाएँ बड़ी सारगर्भित होती थीं। उनमें जीवन विकास के तथ्यों का भरपूर समावेश रहता था। सुनने वाले लड़कों के मन में वे तथ्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी उतरते गए। उन्हें अपने भविष्य और विकास के सम्बन्ध में सोचने का अवसर मिला। फलतः उनकी विचारधारा बदलती चली गई। वे सही मार्ग समझने के साथ-साथ उस पर चलने भी लग गए। इस प्रकार कुछ ही दिन में उनकी समस्त गतिविधियाँ सन्तोषजनक एवं उत्साहवर्द्धक बन गईं। पढ़ने-लिखने लगे। धीरे-धीरे ऐसे बन गये जैसा कि राजा चाहता था। पण्डित को मुँहमाँगा पुरस्कार मिला और वह कथा ग्रन्थ पंचतन्त्र के नाम से लोकप्रिय हुआ।

यह एक घटना भर है, जिसने पुराने समय की सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति की। अब जीवन के अनेक पक्ष प्रकाश में आए हैं। समस्याएँ प्रकट हुई और उनके समाधान आवश्यक जान पड़े हैं। अस्तु, कथा साहित्य भी समय के अनुरूप होना चाहिए, ऐसा अनुरूप जो व्यक्तित्व विकास के सभी पक्षों पर प्रकाश डाल सकने में सक्षम हो।

दुर्भाग्य एक ही है लेखकों, प्रकाशकों और बुकसेलरों की फौज खड़ी हो जाने पर भी ऐसा साहित्य नहीं सृजा जा सका, जो व्यक्तित्व विकास की आवश्यकता पूरी करने में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके। कुत्साओं को भड़काने वाला, दिशा भ्रम उत्पन्न करने वाला साहित्य तो नित्य नये पहाड़ की तरह उपजता चला जाता है, पर उसमें दिशा बोध करा सकने वाली क्षमता नहीं के बराबर होती है। इतने पर भी उपयोगिता का समूल बीज नाश नहीं हुआ है। खोजने पर सत्साहित्य भी मिल जाता है। भले ही वह खोदा पहाड़ और निकली चुहिया वाली उक्ति ही चरितार्थ करता है। भले ही स्वल्प मात्रा में जहाँ-तहाँ उपलब्ध क्यों न होता हो ? ढूँढ़ने वाले कोयले की खदान में से हीरा ढूँढ़ निकालते हैं। खारे समुद्र में गोता लगाकर मोती बटोर लाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि व्यक्तित्व विकास में सहायक सिद्ध होने वाला साहित्य कहीं न कहीं से कामचलाऊ मात्रा में खोजा न जा सके। इसी को घरों में अवकाश के समय पढ़ने की, सुनने की व्यवस्था होनी चाहिए। यह सामग्री विवेचना परक भी हो सकती है और कथा-प्रसंगों से सम्बन्धित भी। दोनों ही पक्ष उपयोगी हैं। बच्चों की समझ में कहानियाँ ही आती हैं, पर बड़े तो विचारोत्तेजक सामग्री में भी रस ले सकते हैं और उस आधार पर ऐसा बहुत कुछ हृदयंगम कर सकते हैं, जो समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में उत्साहवर्द्धक रूप से सहायक सिद्ध हो सके।

यों निजी विचार-विनिमय का भी महत्त्व है और उस आधार पर भी परिवार के सदस्यों के साथ उनकी स्थिति और आवश्यकता के अनुरूप विचार-विनिमय किए जाते रहने का क्रम चलता रह सकता है। वार्तालाप और परामर्श मात्र भौतिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही नहीं होते रहना चाहिए। वार्तालाप इस सन्दर्भ में भी होते रहना चाहिए कि चिन्तन और चरित्र में अपेक्षाकृत कैसे अधिक सुधार तथा विकास किया जाता रह सकता है ? इसमें भिन्न-भिन्न लोगों के लिए उनकी स्थिति को देखते हुए अलग-अलग प्रकार के परामर्श आवश्यक हो सकते हैं। हर व्यक्ति की समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। हर किसी को अपनी स्थिति के अनुरूप प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर करने वाला व्यावहारिक परामर्श चाहिए। मात्र सिद्धान्तों की चर्चा-विवेचना भर कर देने से काम नहीं चलता। इसके लिए भिन्न-भिन्न स्तर का परामर्श, मार्गदर्शन चाहिए। उसे समय-समय पर उपलब्ध कराते रहना परिवार के प्रभावशाली सदस्यों का काम है।

इस सन्दर्भ में एक बड़ी कठिनाई यह है कि किसी भी व्यक्ति को अपने सुधार के सम्बन्ध में दूसरों का परामर्श रास नहीं आता। इसमें वह अपना अपमान समझता है। सभी की मान्यता है कि दुनिया में डेढ़ अक्ल है, जिसमें एक उसकी और शेष आधी समस्त संसार की। अपने को हर कोई सर्वेसर्वा, सुयोग्य मानता है। कोई जब उसकी समीक्षा करता है तो उसे इसमें अपना अपमान लगता है और बताने वाले को अपना विरोधी, विद्वेषी मान बैठता है। इस मनोवैज्ञानिक कठिनाई से बचने का एक ही उपाय है कि सीधी शिक्षा न देकर किसी अन्य की घटना का सन्दर्भ देते हुए उसे तथ्य से अवगत कराया जाय। यह कार्य कहानियों, संस्मरणों के माध्यम से अधिक अच्छी तरह हो सकता है। वह उपलब्ध न हो तो विवेचनात्मक पुस्तकों के वे अंश विशेष अनुरोध करके पढ़ाए-सुनाए जा सकते हैं, जिनमें उनकी निजी समस्याओं पर सार्वजनिक रूप से प्रकाश डाला गया है। यदि उस प्रकार की पुस्तकों का लेखक कोई प्रामाणिक व्यक्ति हो तो और भी अच्छा। ऐसी दशा में यह कहा जा सकता है कि यह परामर्श उन लेखक महोदय का है जो तुम्हारे लिए फिट बैठता है। इस पर विचार किया जाय और यदि उचित लगे तो उस परामर्श को अपना भी लिया जाय। यह तरीका अधिक सटीक और अधिक प्रभावशाली है। गीता के प्रतिपादनों को इसीलिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वह भगवान कृष्ण के मुख से कही गई है। यदि इस सन्दर्भ को हटा दिया जाय और उन्हीं प्रतिपादनों को अपने विचार कह कर सुनाया जाय, तो उसकी उपेक्षा ही होगी और मान्यता देने में सन्देह भी बना रहेगा। यही बात अन्य प्रसंगों के सम्बन्ध में भी है। घर के लोगों को कोई सिद्धान्त की बात, उनके स्वभाव से विपरीत स्तर की कही जाय तो 'घर का जोगी जोगड़ा अन्य गाँव का सिद्ध' वाली कहावत सिद्ध होती है। जिन लोगों को साथ-साथ रहना होता है, उन्हें अपने परिचय के कारण सामान्य समझा जाता है और महत्त्व नहीं मिलता। इस कठिनाई से पार पाने का यही तरीका ठीक पड़ता है, जो सुधार-परिवर्तन घर वालों में कराए जाने हैं, उनके सम्बन्ध में आवश्यक शिक्षा स्वयं के विचार न बताकर किसी प्रामाणिक व्यक्ति का मन्तव्य बताया जाना चाहिए। यही बात कथा-संस्मरणों के माध्यम से भी गले उतारी जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न जारी रखा जाय। निराश न हुआ जाय। प्रगति धीमे क्रम से होती हो, तो भी धैर्य रखा जाय। सतत् प्रयास निष्फल नहीं जाते हैं। समयानुसार फलित होते और अपना लक्ष्य पूरा करके रहते हैं।

छात्रों को नैतिक शिक्षा आरम्भ से अन्त तक दी जाय

देश का भविष्य उन लोगों के हाथ है जो आज शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भावी उत्तरदायित्वों को सँभालने वाले हैं। प्रगति और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि भावी जिम्मेदारियाँ सँभालने वालों को नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट बनाया जाय। अन्यथा योजनाएँ कितनी ही उत्तम क्यों न हों, उन्हें चलाने वाले यदि उपयुक्त स्तर के न हुए तो सफलता संदिग्ध रहेगी।

इसलिए अभिभावकों का, विज्ञजनों का और शिक्षा संचालकों का यह सोचना ठीक है कि सच्चरित्रता को भी शिक्षा के साथ-साथ ही सुदृढ़ करने के लिए प्रयत्नरत हुआ जाय।

गीली मिट्टी से इच्छित आकार के बर्तन बन सकते हैं। सूखने पर वह ढलती नहीं बिखर जाती है। गीली लकड़ी को मोड़ा जा सकता है पर सूख जाने पर वैसा सम्भव नहीं।

बालकपन और किशोरावस्था ऐसी है, जिनमें पूर्वाग्रह नहीं होते और संस्कार भी परिपक्व नहीं होते। ऐसी दशा में यदि शिक्षा के साथ नीतिनिष्ठा का समावेश रहे तो उसका अच्छा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्राचीनकाल में गुरुकुलों के ढले विद्यार्थी नर-रत्न बनकर निकलते थे। इसमें जहाँ पाठ्यक्रम का महत्त्व था वहाँ अध्यापन शैली की विशेषता भी अपना काम करती थी।

अभिभावकों के प्रति बालकों को सहज श्रद्धा होती है। यदि अध्यापक का स्तर उपयुक्त हो तो विद्यार्थी उन्हें भी अभिभावकों जैसा मान देते हैं और आमतौर से उचित अनुशासन को स्वीकार भी करते हैं। उनके विचारों और परामर्शों का छात्रों की दृष्टि में सहज सम्मान होता है। अतएव नैतिक शिक्षा यदि उनके द्वारा दी जाय तो निश्चित रूप से उपयोगी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। इसके अपवाद भी देखे गए और उद्दण्डता भी अवांछनीय स्थिति पैदा करती है। पर ऐसा कम ही होता है।

नैतिक शिक्षा का स्वरूप एवं आधार क्या हो। इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार व्यक्त किए जाते रहे हैं। सामान्यतया यह कहा जाता है कि उसमें धार्मिक मान्यताओं का समावेश किया जाय। पर वह भारत जैसे धर्म निरपेक्ष देश के लिए कठिन है। धर्म सम्प्रदायों में इतने मतभेद हैं कि एक का प्रतिपादन दूसरे के प्रतिकूल पड़ता है और विग्रह खड़ा होने का भय रहता है।

जैसे हिन्दू धर्म में सत्य के उपरान्त अहिंसा का भी नम्बर आता है। अनके धर्म सम्प्रदाय ऐसे हैं, जिनमें पशुबलि धर्मकृत्य के रूप में प्रचलित है और माँसाहार का निषेध नहीं है। ऐसी ही और बातें भी हो सकती हैं, जो आरम्भ से ही मतभेद खड़ा कर दें और गाड़ी आगे न बढ़ने दें। ईश्वर के अस्तित्व तक के सम्बन्ध में जैन और बौद्ध जैसे सम्प्रदायों में मान्यता नहीं है, फिर उसका प्रतिपादन या खण्डन विवादास्पद हो जाता है। ऐसी दशा में धर्म निरपेक्ष राज्य में यही उचित है कि नैतिकता का आधार नीतिशास्त्र, नागरिकता, समाजनिष्ठा, सज्जनता, उदारता जैसे विषयों को ही मानकर चला जाय। इन तत्वों की उपयोगिता का प्रतिपादन तर्क, तथ्य, प्रमाण एवं उदाहरण प्रस्तुत कर किया जा सकता है।

सत्प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में विज्ञजनों की परिभाषा प्रायः मिलती-जुलती है। सज्जन और दुर्जन के अन्तर को सामान्य बुद्धि से भी समझाया जा सकता है इसलिए नैतिकता का सामान्य अर्थ, सज्जनता या चरित्रनिष्ठा समझा जाय तो वह विवादास्पद न बनने पावेगा। एक उक्ति है कि हमें दूसरों के साथ वह व्यवहार करना चाहिए, जो दूसरों से अपने लिए चाहते हैं। संक्षेप में इतने छोटे सूत्र में नैतिकता का प्रतिपादन हो सकता है और उदाहरणों से यह बताया जा सकता है कि किस अवसर पर किस तरह, किसके साथ क्या व्यवहार करना नहीं चाहिए। इस परिभाषा में दुष्टों को दण्ड देना भी सम्मिलित हो जाता है।

सूत्र रूप में मानवी गरिमा के अनुरूप आचरण को सज्जनता या नैतिकता कहा जाता है। यह सूत्र जीवन व्यवहार के हर पक्ष पर लागू होता है। आहार, व्यवहार, उपार्जन, व्यवसाय, परिवार, समाज, शासन आदि क्षेत्रों में नैतिकता का प्रयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है ? किन्तु मूल तथ्य एक ही रहता है।

प्रश्न यह है कि छात्रों को अध्यापक नैतिकता की शिक्षा किस प्रकार दें। इसलिए उनका संक्षिप्त मार्गदर्शन हो सकता है। पर इतने से लम्बे समय तक पढ़ने वालों से उस प्रयोजन को गले उतारने के लिए लगातार यह प्रयत्न चलना चाहिए, इसके लिए निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों में से ही इतना अधिक मनोरंजक मसाला निकल सकता है कि अध्यापकों को उसे समझाने में और छात्रों को समझने में कठिनाई न पड़े।

निर्धारित पाठ्यक्रमों में सामान्यतया साहित्य, गणित भूगोल, इतिहास आदि विषयों का समावेश होता है। आगे चलकर बड़ी कक्षाओं में समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषय जुड़ते हैं और उनकी बारीकियों का विवेचन भी होता है। अध्यापक उन्हीं विषयों को पढ़ाते हुए सज्जनता के सत्परिणाम और दुर्जनता के दुष्परिणाम भली प्रकार समझा सकते हैं। इसके लिए उनकी निजी टिप्पणी या समीक्षा से काम चल जाएगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतिहास में भलों की भलाई का—बुरों की बुराई का उल्लेख है। साथ ही ऐसे संकेत भी है जिनसे यह सिद्ध किया जा सकता है कि चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की भिन्नता के कारण किस प्रकार क्या भले-बुरे परिणाम सहन करने पड़े।

यह बात छोटी कक्षाओं से भी लागू होती है। ग-गाय, घ-घड़ी वाली प्रथम पुस्तक में गाय को परोपकार और घड़ी द्वारा समय का अनुशासन रूप में थोड़ी व्याख्या के साथ छोटे बालकों को तनिक-सी टिप्पणी जोड़ देने से काम चल सकता है। गणित में ऐसे ही उदाहरण हो सकते हैं। चार चोर चोरी को गए। एक मारा गया। एक पकड़ा गया। बाकी बिना चोरी किये दण्ड भय से घर लौट आए। बताओ लौटने वालों की संख्या कितनी थी। इस प्रश्न को पूछते हुए यह बताया जा सकता है कि चोरी करने वाले किस प्रकार दण्ड पाते हैं और जो समझदारी अपनाकर गलती सुधार लेते हैं, उसका सम्मान और विश्वास बना रहता है। अर्थशास्त्र पढ़ाते हुए यह बताया जा सकता है कि जो दुकानदार खराब माल बेचता है, उससे ठगे जाने पर ग्राहक रुष्ट हो जाते हैं। दूसरों को भी सचेत करते हैं। फलतः आरम्भ में लोभवश उन्नति अपनाने वाले की दुकान ठप्प हो जाती है, जबकि ईमानदारी से सही माल उचित मूल्य पर बेचने वाले व्यवसायी थोड़ा मुनाफा लेने पर भी अधिक बिक्री के कारण मालामाल हो जाते हैं।

नैतिकता इतना व्यापक विषय है और उसके प्रयोग इतने अधिक प्रकार के हैं कि वे थोड़े मार्गदर्शन द्वारा सूत्र रूप में ही आ सकते हैं। उसकी विस्तृत विवेचना आदि से लेकर अन्त तक करते रहने की सूझ-बूझ तो अध्यापकों को स्वयं ही विनिर्मित और प्रदर्शित करनी होगी।

अनुशासित छात्र ही प्रगतिशील समाज के कर्णधार

शिक्षा का लक्ष्य है छात्र को स्वावलम्बी बनाना और ऐसे व्यक्तित्व से सुसम्पन्न करना, जो समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। किसी शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता-अनुपयोगिता का मापदण्ड यही हो सकता है कि शिक्षा के बाद छात्र अपनी जीवन की गाड़ी खींच सकने योग्य बने या नहीं तथा समाज में सत्प्रवृत्तियाँ फैलाने योग्य उनका व्यक्तित्व विनिर्मित हो सका अथवा नहीं।

आज देश की शिक्षा प्रणाली पूर्णरूप से असफल होती दीख रही है। शिक्षा की असफलता के मोटे-मोटे तीन लक्षण हैं। विद्यार्थी अनुशासित हों, योग्य हों और उनमें कर्मठता का भाव हो। किन्तु आज छात्रों में इन तीनों गुणों का सर्वथा अभाव दीखता है।

जहाँ तक अनुशासनहीनता का प्रश्न है। छात्रों के आन्दोलन, आए दिन संस्थाओं की हड़तालें, शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के झगड़े, पुलिस तथा यदा-कदा पब्लिक से झगड़े, राह चलते छात्रों की अवांछनीय गतिविधियाँ इसका स्पष्ट प्रमाण है। छात्रों की अनुशासनहीनता से आज सारा देश परेशान है। सरकार तथा अभिभावक चिन्तित हैं। विचारवान वर्ग पशोपेश में हैं। इन सबका चिन्तित होना ठीक भी है। जिन पर देश का भविष्य निर्भर है, सारी उन्नति तथा विकास का जिन्हें आधार बनना, राष्ट्र की सभ्यता-संस्कृति की जिन पर जिम्मेदारी है, जिन्हें राजनीति, व्यापार, व्यवसाय, शासन-प्रशासन में आना है, उनके अनुशासन की यह दशा देखकर कौन चिन्तित न हो उठेगा ?

किसी शिक्षक की डाँट, कोई नया नियम, साधारण-सा परिवर्तन, सामान्य आदेश आज छात्रों को पराकाष्ठा तक उत्तेजित कर देता है। तत्काल स्कूल-कॉलिजों में हड़ताल हो जाती है, जुलूस निकलने और मीटिंग होने लगती हैं, शान्ति व्यवस्था को खतरा पैदा हो जाता है। प्रबन्ध का उपक्रम मारपीट की नौबत ला देता है। पुलिस से लड़ना, दुकानों को लूट लेना, कार्यालयों में आग लगा देना साधारण बात हो जाती है। जिन छात्रों का प्रमुख कर्त्तव्य ज्ञानार्जन होता है, उनकी यह अपराधमूलक उत्तेजना और अनुशासनहीनता देखकर कभी-कभी विचार आता है कि क्या देश का भविष्य दुर्भाग्य के गर्भ में है। यह अनुशासनहीन तरुण कैसे तो व्यक्तिगत भला करेंगे, कैसे योग्य शासक, प्रशासक, इन्जीनियर, राजपुरुष बनकर देश की बागडोर सँभालेंगे और किस बलबूते पर अनुशासन तथा योग्यता लेकर अपने-अपने देश की राजनीति में उतरे विदेशी तरुणों से पार पाएँगे ? निःसन्देह विद्यार्थियों का यह पतनचिन्ता का ही नहीं खतरे का भी विषय है।

अयोग्यता के सम्बन्ध में देख लीजिए। सबसे पहले परीक्षा फलों पर दृष्टि डालिए। अधिक से अधिक तीस-पैंतीस और कभी-कभी चालीस-पैंतालीस प्रतिशत तक बस ! उसमें भी श्रेणियाँ देख लीजिए। थोड़े से अपवाद रूप प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी में घोषित होंगे नहीं तो तीसरी सबसे निम्न श्रेणी की ही भरमार रहती है। विशेष योग्यता तो दुर्लभ ही रहती है। यह हाल साधारण विषयों के विद्यार्थियों का है। तकनीकी, गणित, विज्ञान आदि के महान विद्यार्थियों का हाल तो और भी बुरा है। वकालत तथा न्याय, औषधि अथवा चिकित्सा के क्षेत्र में जाने वाले विद्यार्थियों को आजकल ज्यादातर छोटी-छोटी नौकरियाँ खोजते या करते ही अधिकतर देखा जाता है। इसके अतिरिक्त परीक्षाओं में नकल की घटनाएर, अध्यापकों को धमका कर नम्बर बढ़वाने का उपक्रम अथवा परीक्षकों के घरों से लेकर बोर्ड तक की दौड़-धूप अयोग्यता के प्रमाण के सिवाय और क्या है ? स्वस्थ होने पर भी डाक्टरी आधार पर परीक्षा स्थगित कर देना, बीच में परचे छोड़ देना अथवा बार-बार फार्म भर कर परीक्षा न देना क्या है ? छात्रों की अयोग्यता की ही निशानी तो है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छात्रों में यदि योग्यता बढ़ी है तो फैशन तथा प्रदर्शन के क्षेत्र में। फिल्मी तारिकाओं तथा अभिनेताओं के पूरे परिचय जानने में; उनसे पत्रव्यवहार करना और सिने सम्बन्धी समाचार पत्र पढ़ने में, सड़कों पर उनके भौंड़े अभिनय की नकल करने और फिल्मी प्रकार के बाजारू रोमांस प्रकट करने में। प्रगति की है बीड़ी, सिगरेट, पान भंग, ठण्डाई और शराब तक पीने में। होटलों तथा रेस्टोरेन्टों में बैठकर फिल्मों तथा फिल्म के अभिनेताओं पर बात करने और उनके गन्दे गाने गाते हुए घूमने में, यह सब उनकी अयोग्यता का प्रमाण नहीं है तो और क्या है ?

कर्मठता का हाल यह है कि स्कूल-कॉलेजों से निकलते ही आवेदन-पत्र लिए कार्यालयों की वर्षों खाक छानते घूमते हैं। जाने कितने तो इस दौड़-धूप में ओवर ऐज होकर सरकारी नौकरी के अयोग्य ही हो जाते हैं। अफसरी मिल जाती अच्छा होगा, अफसरी न मिले मातहती मिल जाए, नहीं इन्स्पेक्टरी ही सही। यह भी नहीं तो कम से कम क्लर्की तो मिल ही जाए। जीवन का यह पतनोन्मुख ध्येय अकर्मण्यता का जीता-जागता प्रमाण है। डाक्टरी पढ़कर अपना चिकित्सालय स्थापित करना तो दूर मेडिकल सर्विस की परीक्षाएँ तक नहीं पास कर पाते और इन दोनों प्रयत्नों से निराश होकर दवाओं की एजेन्सी पर उतर जाते हैं और जैसे-तैसे जीवन की गाड़ी घसीटते हैं। वकालत पास करके गरजती हुई प्रेक्टिस का विकास करना क्या, उतने पैसे भी रोज नहीं कमा पाते जितनी धुलाई के कपड़े मैले कर डालते हैं ? ऊबकर वकालत छोड़ते और कहीं किसी आफिस में कलम घिसते अथवा पुरुषार्थी वकील की फाइलें व किताबें सँभालते नजर आते हैं। यदि इन हतोत्साह शिक्षित तरुणों में जरा भी कर्मठता हो तो कोई कारण नहीं कि जो लक्ष्य लेकर उन्होंने शिक्षा पाई है, वह पूरा न हो जाए। परिश्रमपूर्वक यदि वे अपने विषय के पारंगत हों, स्वाध्याय के आधार पर सामान्य ज्ञान से ओत-प्रोत हों तो कोई कारण नहीं कि प्रतियोगिताओं तथा साक्षात्कारों से अपना-सा मुँह लेकर लौट आएँ। देश को योग्यताओं की हर क्षेत्र में बहुत आवश्यकता है। स्थानों की कमी नहीं। कमी है कर्मठता तथा योग्यता की। फिर सरकार अथवा सरकारी कार्यालय ही तो कर्म क्षेत्र नहीं है। धरती, वन, वनस्पति, पहाड़, समुद्र, आकाश, अन्तरिक्ष, समाज देश-विदेश ही क्या सारा संसार ही कर्म क्षेत्र है। कर्मवीर जिसने परिश्रम तथा पुरुषार्थ का पाठ पढ़ा है, उसका महत्त्व समझा है, वह कहीं भी किसी क्षेत्र में अपना पैर जमा सकता है। उन्नति तथा प्रगति कर सकता है। केवल सामान्य तौर पर हाथ-पैर हिलाने से पद व पदवी नहीं मिला करती, उसके लिए पेशानी पर मोती जैसे चमकने वाले पसीने का मूल्य चुकाना पड़ता है। फैशनेबुल वेश-भूषा पहन कर यार-दोस्तों के साथ मटरगस्ती करना एक बात है और कटिबद्ध सैनिक की तरह जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने का प्रयत्न दूसरी बात। विद्या का लाभ तो हर क्षेत्र में है। नौकरी नहीं व्यवसाय पकड़िए, व्यवसाय नहीं तो खेती की तरफ जाइये। किन्तु यह सब सम्भव तो तभी हो सकता है, जब आराम से जो कुछ मिल जाये की भावना छोड़कर पुरुषार्थ के बल पर मुझे यह पाना है—की भावना बनाई जाए और कार्यक्षेत्र में प्रेत की तरह जुट पड़ा जाए। किन्तु कहाँ, आज के भारतीय तरुणों में यह उत्साह कहाँ दिखाई देता है ? यदि ऐसा ही हो तो क्या सात-आठ प्रतिशत अन्न की कमी और योजनाओं में तकनीकी पदों के लिए विदेशों की ओर देखने की कमी को न पूरी किया जाए। आज छात्रों की यह दीन दशा देश को किस दयनीय स्थिति में डाल सकती है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

छात्रों की अनुशासनहीनता और उसके कारण बढ़ी अयोग्यता तथा अकर्मण्यता का कारण खोजने पर यहाँ विदित होता है कि आज के विद्यार्थी में शिक्षक तथा शिक्षा के प्रति घोर अश्रद्धा पैदा हो गई है। इसका बहुत कुछ दोष विगत पराधीनता की दी हुई प्रवृत्तियों को तो दिया ही जा सकता है किन्तु वर्तमान की बहुत-सी परिस्थितियाँ भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि आज शिक्षा एक व्यवसाय बन गई है। शिक्षा संस्थाएँ देश तथा तरुणों की कल्याण भावना से खड़ी नहीं की जा रही हैं। उनके पीछे कुछ स्वार्थमय मन्तव्य भी रहने लगा है। इसलिए संस्थापकों तथा संचालकों का ध्यान छात्रों के हित, उनकी पढ़ाई तथा योग्यता की ओर जितना नहीं दिया जाता है। उतना अपने स्वार्थ तथा हितों की ओर दिया जाने लगा है। उन सारी योजनाओं तथा कार्यक्रमों में से जो विद्यार्थियों के विकास में सहायक हो सकते हैं। अधिकांश यों ही टाल दिये जाते हैं। निदान विद्यार्थियों का वास्तविक विकास रुक जाता है और वे गलत रास्ते पर चल निकलते हैं।

शिक्षक भी अपने आपको छात्रों का गुरु अथवा शिक्षा अभिभावक न समझ कर संस्था का नौकर समझते हैं। उन्हें जितनी चिन्ता संस्था के अधिकारियों को प्रसन्न रखने की रहती है उतनी चिन्ता छात्रों के विकास की नहीं रहती। आज शिक्षकों का अधिकांश प्रयत्न यह रहने लगा है कि किसी प्रकार निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा हो जाए और परीक्षाफल का प्रतिशत आ जाए, फिर छात्रों में योग्यता आवे चाहे न आवे। इसके लिए अनेक शिक्षक छात्रों को पाठ रटा दिया करते हैं और इस योग्य कर दिया करते हैं कि ये किसी प्रकार ३३ प्रतिशत अंक ले आवें, बस। बहुत से अध्यापकों को हर साल यह आरोप लगता रहता है कि वे परीक्षाओं में छात्रों को नकल करने का अवसर दे दिया करते हैं। अनेक अध्यापक परचे तक आउट करा देते हैं और बहुत से कक्षा में इसलिए योग्यतापूर्वक नहीं पढ़ाते कि छात्र उनकी ट्यूशन कर लें। अनेक बार तो छात्र मास्टरों की ट्यूशन इसलिए कर लेते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं कि साल भर पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी। उनका ट्यूटर या तो परचा बतला देगा अथवा नम्बर बढ़ा देगा। साथ ही अध्यापक भी पढ़ाने के लिए पढ़ने के परिश्रम से विरत रहते हैं। वे अपनी कमजोरी को या तो बालकों को यों ही बतलाकर छिपाते रहते हैं। अथवा उल्टा-सीधा, गलत-सलत पढ़ा कर वक्त काट देते हैं। शिक्षकों में कहना होगा कि उत्तरदायित्व की भावना की कमी हो गई है। वे अपने आपको केवल संस्था का नौकर समझते हैं और उसी भावना से काम करते हैं। शिक्षकों में उत्तरदायित्व तथा गुरुता का यह अभाव विद्यार्थियों में व्याप्त अनुशासनहीनता, अयोग्यता तथा अकर्मण्यता एक बड़ा कारण है।

इधर सामाजिक वातावरण, सिनेमा तथा आधुनिकता ने भी छात्रों को लुन्ज-पुन्ज बना दिया है। भारतीय भावनाओं का अभाव उनको गुरु के प्रति श्रद्धा से विरत करता जा रहा है। जिन छात्रों में गुरु के प्रति श्रद्धा न होगी वे ठीक से विद्या प्राप्त कर सकते हैं यह सम्भव नहीं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली दिन-दिन वैदेशिक होती जा रही है। शिक्षा योजनाओं में अधिकतर वही आदर्श लाए जा रहे हैं, जो विदेशी भावना के निकट और भारतीय भावना से दूर होते हैं। ऐसी दशा में नीम-अँग्रेज यह भारतीय छात्र गुरु भक्ति की भावना से किस प्रकार प्रेरित हो सकते हैं। आज छात्रों तथा शिक्षकों के बीच बेतकल्लुफी एक फैशन बन गई है। मिल जाने पर छात्र अपने गुरुओं से आदरपूर्वक वार्तालाप न करके मित्रों जैसा व्यवहार करते देखे जाते हैं, बहुत बार तो स्पर्धा एवं ईर्ष्यावश शिक्षक विद्यार्थियों को दूसरे शिक्षकों के प्रति अनास्थावान बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। अनेक बहके हुए स्वार्थी राजनेता लोग भी इस तरुण रक्त को अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए भड़काया तथा अनियन्त्रित बनाया करते हैं। अभिभावक भी स्कूल भेजने के बाद बच्चों की देखरेख की ओर से उदासीन हो जाते हैं। वे विद्यार्थियों द्वारा शिक्षकों की, की जाने वाली आलोचना को बड़े चाव से सुनते, विश्वास करते और कभी-कभी उनकी शिकायत भी करते हैं। इन सब अवांछनीय गतिविधियों ने विद्यार्थियों को शिक्षकों के विरुद्ध अश्रद्धालु बना दिया है। संसार का कोई भी कार्य श्रद्धा के अभाव में सफल नहीं होता, तब विद्या की प्रगति तो शत-प्रतिशत श्रद्धा पर निर्भर है।

इस प्रकार, जिसके कारण विद्यार्थी बिगड़ते जा रहे हैं। वह कमी एक ओर नहीं लगभग सभी ओर है। छात्र अपने जीवन के बिगड़ने-बनने पर ध्यान दें, शिक्षक अपने को राष्ट्र निर्माण का उत्तरदायित्व समझें और अभिभावक उन पर गुरु-भक्ति की छाप डालें—साथ ही सरकार देश की शिक्षा प्रणाली में से वैदेशिकता कम कर अधिकाधिक भारतीयता का समावेश करे, तब ही इस संस्था का हल होना प्रारम्भ होगा अन्यथा स्थिति के दिन-दिन अधिक बिगड़ने के ही लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

छात्रों की इस अनुशासनहीनता के कारणों में सचमुच शिक्षा की कमी भी एक कारण हो सकती है। शिक्षा का मूल एवं मुख्य उद्देश्य है, जीवन का सम्यक् संस्कार एवं विकास करना। मन और मस्तिष्क से उच्छृंखलता, अव्यवस्था, अनागरिकता आदि की जड़ताएँ निकालकर उनके स्थान पर सभ्य एवं सुशील संस्कारों की स्थापना करना। यदि शिक्षित होने के बाद भी व्यक्ति में मनुष्यता के गुणों का विकास नहीं होता तो उसका पढ़ना बेकार है और यदि शिक्षित होने के बाद किसी में अवगुणों की वृद्धि होती है, तब तो वह शिक्षा उसके लिए वरदान नहीं अभिशाप ही समझनी चाहिए।

प्राय: देखा यह जाता है कि छात्रों की अनुशासनहीनता दसवीं कक्षा के बाद कॉलिज जीवन में उग्ररूप धारण करने लगती है। दसवीं कक्षा तक वे ज्यों-ज्यों थोड़ा-बहुत नियन्त्रित रहा करते हैं। इसका कारण यही समझ में आता है कि दसवीं कक्षा तक कच्ची आयु और बौद्धिक अपरिपक्वता के कारण उनमें गुरुजनों के प्रति थोड़ी बहुत श्रद्धा तथा भय बना रहता है, जो आगे चलकर वय तथा बौद्धिकता की वृद्धि के कारण समाप्त हो जाता है और उनमें तरुणाई की उच्छृंखलता बढ़ने लगती है।

किशोर अवस्था की प्रारम्भिक शिक्षा के समय यदि छात्रों में अनुशासन भावना की नींव रखी जाय, तो आगे चलकर उनके संस्कार इसी दिशा में पनपें और विकसित हों। बाल्यकाल में बोए हुए संस्कारों के बीज आगामी जीवन में फल लाया करते हैं। उस समय छात्रों का मन-मस्तिष्क जिस साँचे में ढाल दिया जाता है। उनका जीवन वैसा ही बन जाता है।

अनुशासन तथा नैतिकता की शिक्षा पाठ्यक्रम के समान ही आवश्यक समझकर उसी तत्परता तथा विधि के साथ दी जाया करे, तो कोई कारण नहीं कि वे अपने आगामी कॉलिज काल में अनुशासनहीन हो जाएँ। किन्तु ऐसा नहीं किया जा रहा है। उच्चस्तरीय शिक्षा की अभिवृद्धि की अपेक्षा मूल शिक्षा अर्थात प्रारम्भिक शिक्षा की आवश्यकताओं की ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। प्रारम्भ के अनपढ़ छात्र, कॉलिजों तथा विश्वविद्यालयों में आकर बेकार हो जाते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा में सुधार बहुत कुछ अनुशासनहीनता दूर करने में सहायक हो सकता है।

अधिकतर अदक्ष छात्र ही अनुशासनहीन हुआ करते हैं। पढ़ने-लिखने में उनका मन नहीं लगता। अच्छे विद्यार्थी के लक्षणों से रहित होने से गुरुजनों के प्रति श्रद्धा नहीं होती। श्रेणी, श्रेय अथवा सराहना के योग्य नहीं होते, आगामी जीवन के उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ रहते और जीवन का कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता—इसी प्रकार की मानसिक शून्यताओं से जन्मी हीन भावना को दबाने के लिए अदक्ष एवं अयोग्य छात्र अनुशासनहीनता को शान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझने लगते हैं। ऐसे विद्यार्थी विद्या प्राप्त करने के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में नहीं आते बल्कि कालिज जीवन की फैशनबाजी में अपना जीवन तथा अभिभावकों का पैसा बर्बाद करने के लिए आया करते हैं। जिन विद्यार्थियों के लक्षण पढ़ने के होते हैं, वे पढ़ाई के सिवाय बेकार की खुराफातों में नहीं पड़ते।

निम्न कक्षाओं में आए उच्च श्रेणी के विद्यार्थी ही यदि महाविद्यालयों में लिए जाया करें और निम्न श्रेणी के अप्रखर, अदक्ष अथवा अकुशल छात्रों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाए तो उच्चस्तरीय कक्षाओं में अवांछनीय तत्वों का प्रवेश बहुत कम हो जाए, जिससे छात्रों में बढ़ रही अनुशासनहीनता में बहुत कुछ सुधार हो सकता है। अयोग्य विद्यार्थियों के लिए तो साक्षरता का महत्त्व वही है, जो उच्चस्तरीय शिक्षा का। जिस प्रकार वे दसवीं कक्षा पास करके कोई छोटी-मोटी नौकरी कर सकते हैं। उसी प्रकार एम. ए. पास करने के बाद भी कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। इस प्रकार के प्रतिबन्ध से अपनी अयोग्यता के कारण या तो वे उच्च कक्षाओं में प्रवेश वंचित रहेंगे या उसका लाभ उठाने के योग्य बनने का प्रयत्न करेंगे। यह योग्यता प्रतिबन्ध नीची कक्षाओं में ही ऊँची कक्षाओं के इच्छुक विद्यार्थी को सावधान कर दिया करेगा, जिससे वे सारी खुराफात छोड़कर श्रेणी लाने के लिए एकाग्र होकर अध्ययन में ही संलग्न रहने लगेंगे। इस प्रकार से संख्या वृद्धि के स्थान पर छात्रों की गुण-वृद्धि राष्ट्र के लिए अधिक कल्याणकारी होगी।

गुरुजनों का आदर कीजिए

आदत या स्वभाव का व्यक्ति के जीवन में वैसा ही स्थान है, जैसा स्थान सामाजिक जीवन में रीतिरिवाजों का है। उत्तम शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि व्यक्ति को जीवन में अच्छी आदतों से सज्जित व समलंकृत किया जावे। व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाना उत्तम शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। किन्तु दुर्देव से हमारी पाठशालाओं का शिक्षण-क्रम कुछ ऐसा है तथा हमारे घरों का वातावरण भी इतना प्रतिकूल है कि छात्र जितना अधिक पढ़ते जाते हैं, उतने ही अधिक वे अविनयी व उद्धत होते जाते हैं। ज्यों-ज्यों आजकल का तथाकथित ज्ञान विद्यार्थियों के मस्तिष्क में घुसता जाता है त्यों-त्यों विनय या शील बाहर निकलता जाता है। आजकल की विद्या का नशा ठीक शराब जैसा ही है। शराब के सम्बन्ध में इटालियन लोगों में यह कहावत प्रचलित है कि जब शराब अन्दर जाती है तो सद्बुद्धि बाहर निकल आती है। आज भी विद्या मदिरा के प्रभाव से सद्बुद्धि व उत्तमशील भाग खड़े हुए हैं। ऐसे समय में इस ज्ञान के प्रचार की, विद्या की शोभा विनय से है, आवश्यकता दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

विद्यार्थियों को विनयशील बनाने के लिए भगीरथ जैसे प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। बल्कि यदि हम चौकन्ने रहें, असावधानी व प्रमाद को स्थान न दें तो हमें अनेक छोटे-छोटे ऐसे अवसर प्राप्त होंगे, जिनका सदुपयोग कर हम बालकों को अपनी इच्छानुसार विनयशील एवं सम्पन्न बना सकते हैं। बच्चे अविनयी इसलिए होते हैं कि न तो हम स्वयं संयत व्यवहार करते हैं और न स्वयं बच्चों को सुसंयत रखने की क्षमता रखते हैं। बच्चा हमारे सामने अपने बड़े भाई या बहिन या स्वयं हमारा ही नाम लेता है, तो हम हँस देते हैं। हम सोचते हैं कि बच्चा शब्दों का उच्चारण करना सीख रहा है तो उसे सफल होते देख हम प्रसन्न हो उठते हैं। हमारा बच्चा जब अन्य बच्चे को गाली देता है या अपने से बड़े किसी व्यक्ति को छड़ी से मारता है, तो उस साहस को देखकर हमें प्रसन्नता होती है। बच्चा जो हमारी आज्ञा को टाल देता है तो हम भी आज्ञापालन पर जोर नहीं देते और फिर जब वह बड़ा होकर पूर्णतया उच्छृंखल, निरंकुश और उद्धत हो जाता है तब हम अपने भाग्य को कोसते हैं। जो वातावरण हम उसके सामने उपस्थित करते हैं उस वातावरण में पलने वाला बालक उद्धत और अविनयी न हो तो क्या हो ? दोष हमारा है और हम दैव को दोष देते हैं।

इस दयनीय परिस्थिति से त्राण पाने के लिए हमें अपने बच्चों के लिए सुन्दर और स्वस्थ परिस्थिति का निर्माण करना होगा। सुन्दर वातावरण व मानसिक परिस्थितियों का निर्माण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। कारण यह है कि किसी विशेष परिस्थिति में बालकों को रखने का अर्थ है, उन्हें दूसरी परिस्थितियों से साफ दूर रखना। यदि हम बालकों के लिए अच्छी परिस्थिति का निर्माण कर देंगे तो वे बिना प्रयास बुराइयों से बच जावेंगे। क्योंकि एक अच्छे वातावरण में रहने वाला बालक दूसरे वातावरण के कार्य कर ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ, नित्य माता-पिता को प्रणाम करने वालों के वातावरण के लड़के न अपने माता-पिता को गाली दे सकते हैं, न मार सकते हैं और न उनका नाम ले सकते हैं। अतएव हमें बच्चों को सुन्दर वातावरण में रखकर बुरे वातावरण से इतनी दूर रखना चाहिए कि बुरे वातावरण में पले व्यक्तियों जैसे आचरण करना उनके लिए कठिन हो जावे। सुन्दर वातावरण में रहने से बालक अपने आप बुरे वातावरण व उसके प्रभाव से दूर रहेंगे। अतएव जो हम चाहते हों कि उनके बच्चे विनयशील निकलें, अभी से वैसा वातावरण तैयार करने का प्रयत्न करना चाहिए। बालक के जन्म से पहले ही यह सब होना चाहिए।

यदि दुर्भाग्यवश प्रारम्भ से ही हमने वातावरण सुधारने का प्रयत्न नहीं किया है, तो भी हमें हताश नहीं होना चाहिए। जब से हम सुधार करना प्रारम्भ करेंगे तब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही हमें अपने प्रयत्नों का फल मिलना शुरू हो जायगा। सत् प्रयत्न कभी निरर्थक नहीं होते। कल्याणकारी कर्मों को करने वाला कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होता, अतएव जब से हम चेत जावें तभी से सत् प्रयत्न आरम्भ कर दें। कल्पना कीजिए कि आपके माँ-बाप या अन्य गुरुजन जीवित हैं और आपके बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं, तो यदि आप आज से ही यह निश्चय कर लेते हैं कि हम अपने माँ-बाप और गुरुजनों के नित्य प्रातःकाल चरण-स्पर्श करेंगे तो आपके बच्चे आपकी इस रीति से प्रभावित हुए बिना न रहेंगे। उनके कोमल चित्त पर अदृष्ट रूप से पवित्र संस्कार जमा होते जाएँगे और बड़े होने पर वे भी आपके इस आचरण का अनुकरण करेंगे।

माता-पिता को प्रणाम करने का पवित्र प्रभाव आप पर भी पड़ेगा। यदि आपके गुरुजनों की धारणा आपके प्रति अभी तक अच्छी नहीं रही है, तो आपके प्रणाम करने का तात्कालिक असर यह होगा कि उनकी भावनाएँ आपके प्रति शुद्ध हो चलेंगी और आपको उनका आशीर्वाद मिलना प्रारम्भ हो जायगा। यदि आपके प्रति उन्होंने कुछ गलत धारणाएँ बना ली हैं, तो वे गलत धारणाएँ धीरे-धीरे काफूर हो जावेंगी और सच्चे मन से वे आपके लिए शुभकामनाएँ करेंगे, जो कि निष्फल नहीं होंगी।

यदि आप अपने गुरुजनों को नित्य प्रति प्रणाम करते हैं और आपकी पत्नी भी स्वेच्छा से अपने सास-सुसर और अन्य गुरुजनों को नित्यशः प्रणाम करती है, तो विचारिए तो सही कि इस छोटे से कृत्य का सम्पूर्ण कुटुम्ब पर कैसा स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा। पहला प्रभाव तो यह होगा कि सास-बहू का आपसी मन-मुटाव और मतभेद दूर होने लगेगा। बहू को सास का अनुग्रह प्राप्त होगा और उनकी कृपा-दृष्टि से घर के वातावरण में अधिकाधिक शांति आती जावेगी। बहू जब सास को नित्यशः प्रणाम करने का संकल्प कर लेगी तो उसके हृदय में भी सास के प्रति पूज्य-भाव उत्पन्न होंगे, जिसके परिणामस्वरूप सभी अपनी-अपनी मर्यादाओं के भीतर रहेंगे, कोई मर्यादाओं का उल्लंघन कर अनुचित चेष्टाएँ न करेंगे और दोनों ओर से हृदय अधिकाधिक शुद्ध होता जायगा। मैं समझता हूँ कि कौटुम्बिक मर्यादाओं के पालन के लिए गुरुजनों को प्रणाम करने जैसी छोटी-छोटी बातें अनिवार्य हैं। इनके बिना एक सम्मिलित कुटुम्ब की एकता कायम नहीं रखी जा सकती। अतएव हमें चाहिए कि हम गुरुजनों को प्रणाम करने जैसी छोटी-छोटी बातों का महत्त्व समझें, स्वयं अभिवादनशील बनें और अपने बच्चों को भी अपने गुरुजनों को नित्यशः प्रणाम करने की शिक्षा दें।

शास्त्र कहते हैं कि नित्य वृद्धों की सेवा करने वाले अभिवादनशील व्यक्तियों की आयु, विद्या, यश और बल नित्य बढ़ते जाते हैं। अभिवादनशील व्यक्ति का यश तो निश्चय ही बढ़ता है पर उसका बल और विद्या भी बढ़ती है, यह भी ध्रुव सत्य है। जो अभिवादनशील है, जिसने वृद्धों की सेवा का व्रत लिया है वह अपने लिए एक विशेष प्रकार के वातावरण का निर्माण कर लेता है, जिसमें कि प्रमाद, अविद्या, असंयम आदि दुर्गुण पनप नहीं सकते, अतएव वह सेवाव्रती व्यक्ति आप से आप नित्यशः दूषित वातावरण से दूर-दूर हटता चला जाता है और सुन्दर वातावरण के क्रमशः निकट पहुँचता हुआ समस्त सद्गुणों और पवित्र वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है।

किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने सूत्र रूप कहा है—वे अदब, बे नसीब

—बा अदब, बा नसीब। अर्थात अविनयी अभागा होता है और विनयी भाग्यवान। इस छोटी-सी उक्ति में कितनी सच्चाई भरी है, इसे यदि हम समझ लें तो सद्विद्या का रहस्य हमें समझ में आ जाएगा अन्यथा हमारा सारा ज्ञान एक बोझ मात्र और निरर्थक है।

छात्र सामयिक समस्याओं से अवगत हों

इस देश में धार्मिक कथा-प्रवचनों की, राजनैतिक सभा-अधिवेशनों की धूम रहती है। इसका कारण यह है कि पढ़ने में जितनी समझ नियोजित करनी पड़ती है, उसकी तुलना में बात अधिक सरलतापूर्वक कानों के माध्यम से मस्तिष्क तक जा पहुँचती है। फिर बहुत लोगों का एक स्थान पर एकत्रित होना अपने आप में एक ऐसा मनोरंजन है, जिसका लाभ हर कोई उठाना चाहता है। यही कारण है कि इस सिनेमा प्रधान युग में भी देहातों में रामलीला, रासलीला, ढोला, मारू आदि नाटक-प्रहसन अभी भी अपना अस्तित्व कायम रखे हुए हैं।

हमें जीवन निर्माण और समाज निर्माण का उद्देश्य लेकर ऐसे साप्ताहिक सत्संगों का क्रम चलाना चाहिए जिनमें आकाश-पाताल की नहीं, प्रस्तुत समस्याओं की ही चर्चा हो और उस आधार पर मनुष्य उस ज्ञान का सम्पादन कर सके, जो ज्वलन्त समस्याओं के सन्दर्भ में विभिन्न क्षेत्रों से उलझे सुलझाए जाने वाले समाधानों की भ्रान्ति निपटाने और सही मार्गदर्शन में समर्थ हो सकें।

अपने देश में विलगाववाद की दुष्प्रवृत्ति इतनी विषम हो चली है कि देशवासियों में एक जाति, एक राष्ट्र, एक समाज की भावना बन ही नहीं पाती। बनती है तो परिपुष्ट नहीं हो पाती, उथली रह जाती है। बाहर से नारंगी एक लगती है, पर भीतर से उसकी फाँकें अलग-अलग होती हैं। सम्प्रदायवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद अपनी सीमित मर्यादा में न रहकर अन्यों को हेय या द्वेष बुद्धि से दीखने लगते हैं। इसका प्रतिफल प्रत्यक्षः फूट या विग्रह ही है। इन बुराइयों के रहते देशवासी सबल नहीं हो सकता, जिस प्रकार इजराइल, जापान आदि देशभक्ति के झण्डे के नीचे एकत्रित होते और मिलजुल कर राष्ट्रीय समस्याओं को हल करते तथा परस्पर सघन आत्मीयता बनाए रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिन्दू समाज में एक और अभिशाप है—जन्म-जाति के नाम पर एक दूसरे को छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच मानना। प्रश्न सवर्ण-असवर्ण का ही है। वैसी ही बिलगता सभी छोटे समुदायों में दीख पड़ती है। सवर्ण अपनी उपजाति के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं। दूसरे सवर्णों के साथ उनका रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं चलता। यही बात असवर्णों के बारे में है। एक अछूत जाति दूसरी अछूत जाति को नीचा-ऊँचा मानती है और उसके साथ अपने रोटी-बेटी के रिश्ते नहीं जोड़ते। इस प्रकार हम सब फूट या अलगाव के बुरी तरह शिकार हैं। यदि यह पुरानी परम्पराएँ जल्दी ही नहीं मिट सकती हैं, तो हमें कम से कम सहिष्णु और उदार तो होना ही चाहिए। खरबूजे पर ऊपर लकीरें होती हैं पर भीतर झाँकने पर उनका गूदा एक ही होता है। यह स्थिति उत्पन्न किये बिना भीतरी अलगावाद हमें खोखला करता रहेगा।

यही बात स्त्रियों के सम्बन्ध में भी है। यों उन पर घर-गृहस्थी का काम भी कम नहीं रहता। पर पर्दाप्रथा द्वारा उत्पन्न की गई बेवशी द्वारा वे किसी मुसीबत के समय अपना एवं बच्चों का भरण-पोषण नहीं कर पातीं। पति के न रहने या परित्याग कर देने की स्थिति में नारी का निर्वाह कठिन हो जाता है और बच्चों का भरण-पोषण एवं शिक्षा-चिकित्सा जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति तो और भी कठिन हो जाती है। आजीवन घर के कैदखाने में बन्द रहने के कारण उनका मनोबल भी टूट जाता है। ऐसी दशा में वह क्या करे, यह समझ में नहीं आता। कई बच्चों के परिवार का दायित्व न ससुराल वाले उठाते हैं और न पिता पक्ष वाले। ऐसी दशा में पड़ी हुई महिलाओं की दुर्दशा देखते हुए करुणा से कलेजा फटता है और उन लोगों पर भारी क्रोध आता है, जो उन्हें पिंजड़े की तरह कैद करके रखते हैं। इसके पीछे उनका यह अविश्वास काम करता है कि यदि महिलाएँ जनसम्पर्क क्षेत्र में उतरीं तो वे अपना शील गँवा बैठेंगी। फिर पुरुष के सम्बन्ध में भी स्त्रियाँ ऐसा ही सन्देह करने लगें और पुरुषों को कैद रखना चाहें तो फिर उसे किस न्याय के अनुसार अनुचित कहा जाएगा ?

आधी जनसंख्या स्त्रियों के रूप में अपंग बनी हुई है। जातिगत ऊँच-नीच की भावना ने हमें एक होते हुए भी टुकड़ों में बाँट दिया है। विवाह के समय सवर्णों में लड़के का मोल वसूल किया जाता है और असवर्णों में लड़की का। यह पैसा धूमधाम के निरर्थक अपव्यय में चला जाता है और हमें गरीबी तथा बेईमानी के चंगुल में फँसना पड़ता है। भिक्षा व्यवसाय पर ६० लाख लोग उतारू हैं और तरह-तरह के अन्धविश्वास फैलाते रहते हैं। नशेबाजी इन सब के ऊपर है, जो पैसा भी खर्च करती है, अस्वस्थता के भार से भी लाद देती है।

देश में प्रचलित कुछ प्रमुख बुराइयों की ऊपर की पंक्तियों में चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त छुटपुट और भी अनेकों हैं। इनके विरुद्ध युद्ध स्तर पर मोर्चा न खोला गया तो हम गरीबी, बेकारी, अशिक्षा, अस्वस्थता जैसे अभिशापों से पीछा न छुड़ा सकेंगे और कभी एक समर्थ समाज की तरह समुन्नत न हो सकेंगे। जिस बर्तन की तली में अनेकों छेद हों, उसमें पानी भरने से, समाज को प्रगतिशील बनाने के उपचार किस प्रकार सफल हो सकेंगे ?

प्रगति के लिए जो करने को पड़ा है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। ६५ प्रतिशत लोगों को साक्षर बनाना साक्षरों तक प्रगतिशील साहित्य पहुँचाना—व्यायामशाला के नाम से स्वास्थ्य केन्द्र चलाना और शारीरिक, मानसिक बल बढ़ाना अपने आप में एक बड़ा काम है। उत्पादन बढ़ाना और बेरोजगारी दूर करना ऐसे प्रसंग हैं, जिनके लिए जनसहयोग की भारी आवश्यकता है। सरकार चाहे तो भी इतने उत्तरदायित्व अपने बलबूते नहीं उठा सकती।

इन दिनों समाजसेवियों का वैसा समुदाय उफनना चाहिए, जैसा कि बुद्ध एवं गाँधी के जमाने में उभरा था। उन्हें सर्वप्रथम एक ही काम करना चाहिए, जनमानस को परिष्कृत करना। इसके लिए सत्साहित्य से भी अधिक आवश्यक है, अवकाश के दिनों में छोटे-बड़े सत्संग समारोहों का आयोजन जिनमें शिक्षित और अशिक्षित सभी अपने-अपने ढंग से लाभ उठा सकें।

परम्परा के नाम पर चल रही अगणित कुरीतियों को दूर करने के लिए हममें से अधिकांश विज्ञजनों को कार्यक्षेत्र में उतरना चाहिए, जो स्वाध्याय और सत्संग प्रयोजनों में सामयिक आवश्यकताओं का समावेश करके ऐसा वातावरण विनिर्मित कर सकें, जिसके सहारे शिक्षितों और अशिक्षितों के बीच फैला हुआ अपने-अपने ढंग का पिछड़ापन दूर हो सके।

यह कार्य छुट्टी के दिनों या घण्टों में बौद्धिक शिक्षण के रूप में अतिरिक्त रूप से चलाया जा सकता है। सम्मिलित होने में भी सभी को सुविधा न हो तो इसे ऐच्छिक विषय माना जाय। इस प्रशिक्षण में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई जाय तो वह और भी अधिक अच्छा रहेगा। सुकरात की यही शैली थी। इस आधार पर सुनने वालों की निजी विचार शक्ति को अधिक प्रखर बनने का अवसर मिलता है।

नकल करके उत्तीर्ण होने की कुचेष्टा

जिस प्रकार अभिभावक इस विषय में सावधानी बरतते हैं कि उनके बच्चे पढ़ने में परिश्रम करते हैं या नहीं, उसी प्रकार उन्हें इस बात से भी सावधान रहना चाहिए कि कहीं उनमें परीक्षा में नकल करके पास होने की प्रवृत्ति तो नहीं पनप रही है। इसका जरा भी आभास मिलते ही उनको उसकी हानियाँ समझाइए, सख्ती कीजिये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और एक बार स्कूल छुड़ा देने के लिए भले तैयार हो जाइए, किन्तु उसकी इस अपराधी प्रवृत्ति से कदापि समझौता मत कीजिए। स्कूल छुड़ा देने से वह अशिक्षित रह सकता है किन्तु अपराधी होने से बच जाएगा। शिक्षित अपराधी बच्चे से अशिक्षित सज्जन बच्चा कहीं अच्छा है। शुरू में माता-पिता से अपने अपराध के प्रति उदासीनता पाकर बच्चे आगे चल कर बड़े अपराधी बन जाते हैं। एक पेंसिल की छोटी-सी चोरी से प्रोत्साहित होकर सुलताना इतना बड़ा डाकू बन गया। बचपन के छोटे-छोटे ऐसे अपराध जो देखने में आते हैं तुच्छ मालूम होते हैं और माता-पिता द्वारा उपेक्षित कर दिए जाते हैं, आगे चलकर बच्चों को इतना बड़ा अपराधी बना देते हैं कि वह न केवल समाज के लिये ही कंटक बन जाते हैं बल्कि कुल को भी डुबा देते और माता-पिता के लिये घोर यातना के कारण बनते हैं। विश्वास रखिए जेलों के भीतर और बाहर समाज में जितने भी अपराधी दिखलाई देते हैं, उनके निर्माण में अवश्य ही माता-पिता की उस उदासीनता का हाथ रहा, जो उन्हें बचपन में इनके प्रथम अपराध के प्रति बरती है। अन्यथा बच्चे स्वभाव से भोले और भले होते हैं, भगवान का बालरूप माने जाते हैं। यदि आप चाहते हैं कि आपके बच्चे आगे चलकर अपराधी न बनें तो उनकी परीक्षा में नकल करके पास होने की प्रवृत्ति को रोकिए और सख्ती से रोकिए।

बहुत बार अभिभावक बच्चों के इस अपराध की उपेक्षा इसलिए कर देते हैं कि बच्चे का वर्ष और उनका पैसा व्यर्थ न चला जाए। वे सोचते हैं कि फेल हो जाने पर बच्चे को ठेस लगेगी, उसका उत्साह टूट जाएगा। मित्रों तथा सम्बन्धियों में उपहास होगा। इसका एक साल और मेरा पैसा खराब होगा। इसलिए यह किसी तरह नकल करके ही सही पास हो जाये वही अच्छा है। ऐसे अभिभावक अदूरदर्शी कहे जाएँगे। वे वर्तमान हितरूपी अहित को देखते हैं किन्तु भविष्य की भयानकता नहीं देखते।

परीक्षा में नकल करने की स्वतन्त्रता तो होती नहीं। बड़ी सख्ती तथा देख-भाल रखी जाती है। ऐसी दशा में सौ में निन्यानबे नकलची लड़के पकड़े जाते हैं और तब उनकी जो दुर्दशा होती है, वह वर्ष तथा पैसे की हानि से कहीं खेदपूर्ण होती है। साधारण रूप से फेल हो जाने की अपेक्षा नकल के कारण परीक्षा से निकाले जाने का अपवाद कहीं अधिक गहरा, उपहासास्पद एवं लज्जानक होता है। उदाहरण के लिए एक ऐसे विद्यार्थी का जिक्र किया जाता है, नकल के कारण जिसकी पूरी जिन्दगी ही बरबाद हो गई।

घटना लखनऊ विश्वविद्यालय के १९६० के परीक्षा काल की है। इस साल दो सौ पचास विद्यार्थी नकल करने के अपराध में परीक्षा से ही नहीं विश्वविद्यालय से निकाले गए थे। उनमें से एक मेरे मित्र का सम्बन्धी भी था। यह लड़का उस साल कानून के प्रथम वर्ष की परीक्षा दे रहा था। नकल करते पकड़ लिया गया। बहुत कुछ रोया, गिड़गिड़ाया और पैरों पड़ा, परन्तु २ वर्ष के लिए विश्वविद्यालय की सभी परीक्षाओं से निष्कासित कर दिया गया। यह लड़का जब अपना-सा मुँह लेकर घर आया तो उससे पूछा गया कि सच-सच बताओ क्या बात थी ? उसने बताया कि वह अपने बाँए हाथ पर कानून की केवल तीन धाराएँ ११३, ११५, १२१ नोट करके ले गया था। निरीक्षक जब निरीक्षण करते हुए पीछे से आया तब उसने मेरा वह हाथ पकड़ लिया। वाइसचांसलर को रिपोर्ट कर दी। फलतः मैं परीक्षा से निकाल दिया गया। अपना अपराध स्वीकार करने में उस विद्यार्थी ने जिस ईमानदारी का परिचय दिया, परीक्षा में भी यदि उसी ईमानदारी का परिचय देता तो शायद उसकी वह दुर्दशा न होती जो आगे चल कर हुई।

इस लड़के का पिता लेखपाल था, जिसकी मासिक आय कठिनता से साठ-सत्तर रुपए थी। घर पर कुछ खेती आदि से थोड़ी-सी आय और हो जाती थी। अपने पूरे परिवार को अभाव की स्थिति में डाल कर वह इस बड़े लड़के को इस आशा से वकालत की उच्च शिक्षा दिला रहा था कि कुछ दिनों में बेटा वकील बन जाएगा, सारे दुःख दूर हो जायेंगे। किन्तु सपूत ने अपनी हरकत से पिता का हृदय सदा के लिए टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

खुद भी यह लड़का पहले बड़ी अच्छी तरह रहता था। पैन्ट-सूट पहन कर जब घर आता था तो सभी छोटे-बड़े उसका आदर किया करते थे। छोटे भाई-बहन उसे अपना आदर्श बड़ा भाई मानते थे और पूरा अदब करते थे। घर वालों को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। पास-पड़ौस के बड़े-बूढ़े तक उससे मिलने आते थे। किन्तु इस नकल की घटना के बाद से सभी उससे घृणा करने लगे। बाहर के लोग जो पहले बड़ा आदर करते थे, उपहास उड़ाने लगे। बच्चे तक—'कहो वकील साहब, मालूम होता है ऐसे ही टीप-टाप कर अभी तक पास होते रहे हो।' कह कर व्यंग्य करने लगे। जिनको बात करने की तमीज नहीं थी वे तक उसकी आलोचना करने लगे और उपदेश देने लगे। इस भयानक स्थिति का परिणाम यह हुआ कि वह एक माह में सूख कर काँटा हो गया। उसे चिन्ता तथा आत्मग्लानि की यातना से पेचिश की बीमारी हो गई। जिसके सूट की क्रीज कभी टूटने न पाती थी वह फटे, गन्दे कपड़े पहने उपेक्षित अवस्था में इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा। लोगों के सामने उसे आते डर लगने लगा। चुपचाप चारपाई पर रोगी की तरह पड़े-पड़े दिन काटता रहने लगा। सारी शान, सारा शौकत, सारा सम्मान और सारा भविष्य कानून की तीन धाराओं की नकल करने के उपक्रम में मिट्टी में मिल गया। इसकी ही नहीं, नकल करने वाले लगभग सभी विद्यार्थियों की यही दशा होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहना न होगा कि ईमानदारी से फेल हो जाने की अपेक्षा नकल करने के परिणाम में जो हानियाँ होती हैं, वे कहीं अधिक गहरी, बड़ी और दूरगामी होती हैं। इसलिए अभिभावकों को बच्चे का वर्ष, अपना व्यय और फेल हो जाने के अपवाद को बचाने के लालच में उनकी नकल करने की प्रवृत्ति को किसी प्रकार न तो प्रोत्साहित ही करना चाहिए और न उपेक्षित ही। सफलता-असफलता तो जीवन के साथ लगी ही रहती हैं। यदि लड़का किसी कारणवश इस साल रह जाएगा, तो मेहनत करके दूसरे साल निकल जाएगा। नकल करने के कारण इस प्रकार उसकी जिन्दगी तो नहीं खराब होगी।

नकल करने के अभ्यासी लड़के, इसी बल पर साल भर मटरगश्ती किया करते हैं। हर साल, हर कक्षा में और हर आवश्यक परचे में इस विधि का प्रयोग करते रहने से—बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी, कभी न कभी पकड़ा ही जाएगा और तब सारे भूत-भविष्य के साथ उस यातना को पाएगा ही, जो नकलची के लिए निश्चित है। फिर नकल करके क्यों न एम. ए. पास कर लिया जाए, श्रेणी पाली जाए किन्तु योग्यता के नाम पर क्या हाथ आयेगा ? शून्य ! प्रमाण पत्र के साथ यह योग्यता का शून्य जीवन के किस काम आएगा। शिक्षा तथा परीक्षा का मन्तव्य तो योग्यता प्राप्त करने का होता है। जब वही न मिल सकी तो अपना समय, पिता का पैसा, मानवीय आदर्श और नैतिकता की हानि से क्या लाभ ?

नकल करके पास होने वाले विद्यार्थी शत-प्रतिशत अयोग्य होते हैं। अयोग्य व्यक्ति कितनी ही बड़ी डिग्री लेकर, किसी भी क्षेत्र में क्यों न जाएँ—असफल ही रहेगा, दूसरों की सहायता तथा योग्यता का मुँहताज रहेगा। उसकी डिग्री, उसकी अयोग्यता के कारण और भी उपहास का विषय बनेगी। लोग उठते-बैठते ताना मारेंगे कि भाई हैं तो एम. ए. पास लेकिन सही एक चिट्ठी भी नहीं लिख सकते। मालूम होता है कि फ्री स्कूल में पढ़े हों या नकल करके पास होते रहे हो ? कम पढ़े-लिखे की अयोग्यता तो क्षमा की जा सकती है किन्तु ऊँची उपाधि वाले की अयोग्यता कदापि क्षम्य नहीं है। ऐसे अयोग्य डिग्री होल्डरों का तो सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। यह वे गैर-ईमानदार तथा कथित शिक्षित होते हैं। जो शिक्षा में लगा समय और अपने पिता की गाढ़ी कमाई असार्थक बना देते हैं और उपाधि के अनुरूप समाज के किसी काम नहीं आते। उपाधि-पत्र के बल पर जहाँ-तहाँ जिस-तिस से शान बघारते फिरते हैं।

नकल का अपराधी विद्यार्थी हो सकता है कि खुला हुआ चोर-डाकू न बने। वह किसी का माल न चुराये, किसी के घर डाका भले ही न मारे तब भी वह और तरह की चोरी-डकैतियाँ करेगा। कार्यालय के काम की चोरी, अपनी अयोग्यता छिपाने की चोरी जैसी न जाने कितने प्रकार की चोरियाँ, प्रवंचनाएँ होंगी जो वह आगे चलकर कदम-कदम पर करेगा। व्यवसायिक क्षेत्र में चालाकी, मक्कारी, प्रतारणा, धोखेधड़ी से वह कभी भी संकोच न करेगा। बचपन की चोर-प्रवृत्ति के दोषी ही तो आगे चलकर चोर-बाजारी, जखीरेबाजी, काला-बाजारी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, मिश्रण तथा टैक्सों की चोरी करके समाज तथा राष्ट्रीय हित की हानि किया करते हैं। ऐसे प्रच्छन्न चोर प्रत्यक्ष अपराधियों से अधिक भयानक होते हैं। इसलिए हर अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वे बच्चों की नकल करने की प्रवृत्ति को प्रयत्नपूर्वक रोकें और किसी प्रकार भी किसी भावुकता अथवा लोभ में न आवें। जो बच्चे परीक्षक को धोखा दे सकते हैं, अपनी आत्मा को धोखा दे सकते हैं वे अपने अभिभावकों को धोखा नहीं देंगे, ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। इस सिद्धान्त को कभी भी न भूलना चाहिए कि शिक्षित अपराधी की अपेक्षा अशिक्षित सज्जन लड़का ज्यादा अच्छा होता है।

बच्चों को पढ़ाया जाना आवश्यक है। यह ठीक है किन्तु इसका यह आशय तो कदापि नहीं कि उन्हें अनुचित तरीकों से परीक्षा पास करने की छूट दे दी जाए। उन्हें पढ़ाई में परिश्रम करने की प्रेरणा दीजिए। इस विषय में स्वयं सहायक बनिए और यथासाध्य वह हर प्रयत्न कीजिए, जिससे वह अवश्य पढ़े और योग्य बने किन्तु अनुचित रूप से परीक्षा पास करने की छूट कभी मत दीजिये। शिक्षा के विषय में यदि आपके सारे प्रयत्न असफल हो जाते हैं तो अच्छा है कि आप उसे स्कूल से उठा लीजिए और किसी दूसरे काम-धन्धे में लगाइए। बच्चा किसी प्रकार पढ़ ही जाए इस निरर्थक आकांक्षा के वशीभूत होकर उमंग और पैसा बर्बाद करने की जरूरत नहीं।

बच्चों को बतलाइए कि यदि वह दो बार नकल करके सफल हो जाएगा तो तीसरी बार अवश्य पकड़ा जाएगा और तब न केवल उसकी जिन्दगी बर्बाद हो जाएगी बल्कि माता-पिता की भी बदनामी होगी। जो विद्यार्थी नकल करते पकड़ा जाता है, वह न केवल साथियों तथा समाज की दृष्टि में गिर जाता है बल्कि स्वयं अपनी और अपने अभिभावकों की नजर में भी गिर जाता है। वह हर परिचित से बचने के लिए रास्ता काटता फिरता है। उसके प्रमाण-पत्र में प्रधानाचार्य का चरित्र सम्बन्धी नोट अच्छा नहीं मिलता। जिससे उसकी सारी योग्यताएँ व्यर्थ चली जाती हैं। ऐसी दशा में उसे न तो किसी स्कूल में प्रवेश मिलता है और न सरकारी नौकरी। सब ओर से उसका विश्वास उठ जाता है। वह दीन-दुनिया कहीं का भी नहीं रहता। कहा जाता है कि 'पहाड़ से गिरा व्यक्ति तो बच सकता है किन्तु निगाहों से गिरा व्यक्ति किसी प्रकार नहीं बच पाता'—निश्चय ही उसका ऐसा पतन हो जाता है कि फिर लाख प्रयत्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने पर भी उबरते नहीं बनता। बचपन में इस प्रकार नकल आदि करके जो विद्यार्थी अपना नैतिक पतन कर लिया करते हैं, वे आगे चलकर अच्छे नागरिक सिद्ध नहीं होते। लोग उन्हें शंका तथा सन्देह की दृष्टि से देखा करते हैं। जो विद्यार्थी नकल में पकड़ा जाता है, वह परीक्षा से निकाल दिया जाता है। उसका वर्ष भर का परिश्रम नष्ट हो जाता है। माता-पिता उसे अपनी गाढ़ी कमाई से पुस्तकें, शुल्क तथा अन्य खर्चे देते हैं, नंगे-भूखे रह कर उसकी शिक्षा, सुविधा का प्रबन्ध करते हैं किन्तु नकल करने की जरा-सी भूल से उनके किए-कराए पर पानी फिर जाता है। उनकी आशायें टूट जाती हैं और मार्मिक वेदना होती है। इसलिए बच्चों को परीक्षा में नकल करके पास होने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। उन्हें ईमानदारी से परिश्रम करना चाहिये।

यों तो परीक्षा उत्तीर्ण करने की और वह भी अच्छे नम्बरों से महत्त्वाकांक्षा अच्छी है। पर वह होनी चाहिए योग्यता पर अवलम्बित। तभी उसका भावी जीवन में कुछ कहने योग्य महत्त्व हो सकता है। नकल करके, पूछकर या दूसरों की सहायता से पास हो जाने का महत्त्व भले ही मोटी बुद्धिवालों के द्वारा समझा जाता हो पर वस्तुतः वैसा है नहीं।

कोई समय था जब उत्तीर्ण होने का प्रमाण-पत्र भी नौकरी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त था और एक बार जमा लेने के बाद 'सीनियरटी' के हिसाब से पदोन्नति होती चली जाती थी। पर आज परिस्थितियाँ सर्वथा बदल गई हैं। स्थान सीमित और शिक्षित युवकों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि अनुपात को देखते हुए शिक्षा और नौकरी के बीच कोई सीधा सम्बन्ध रह नहीं गया है, हर शिक्षित को यह आशा नहीं करनी चाहिए कि प्रमाण-पत्र के उपरान्त उसे नौकरी आवश्य ही मिल जाएगी। तब या तो प्राइवेट नौकरियाँ करनी पड़ेंगी या कोई निजी व्यवसाय चलाना पड़ेगा। तब समुचित अध्ययन न करके जिस-तिस तिकड़म के आधार पर प्राप्त किया गया प्रमाण-पत्र किसी काम नहीं आता। जहाँ योग्यता का परिचय देने की पग-पग पर आवश्यकता होती है, वहाँ प्रमाण-पत्र दिखाकर कोई कार्य नहीं चलता वरन् उल्टा उपहास होता है। अनुपयुक्त कूड़े-करकट को गले बाँधकर कोई क्या करेगा ? क्यों उसके लिए जगह घेरे और पैसा खर्चेगा। ऐसी स्थिति में पश्चाताप होता है कि पढ़ाई के दिनों का समय आवारागर्दी में गँवा कर सारी अकल क्यों तिकड़म भिड़ाने में लगाई। क्यों न उन दिनों योग्यता वृद्धि के अवसर का सदुपयोग किया। यदि योग्यता पूरी नहीं होती तो बिना प्रमाण-पत्र रहे भी स्थान और सम्मान मिल सकता था। इसके बिना डिग्रियों का पग-पग पर तिरस्कार होता है।

आवेदनकर्ताओं की संख्या अत्यधिक और रिक्त स्थानों की संख्या नगण्य होने पर नियुक्तियाँ भी योग्यतम के चुनाव के आधार पर होती हैं। हर नियुक्ति के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा में होकर गुजरना पड़ता है। उसमें योग्यता ही काम आती है। जिस-तिस प्रकार डिग्री प्राप्त कर लेने वाले इस प्रतिस्पर्धा में ठहर नहीं पाते। निराश वापस लौटते हैं और दूसरों का उपहास सहते हैं निजी कार्य में डिग्री के अनुरूप योग्यता न होने पर गालियाँ सुननी और लातें खानी पड़ती हैं। यह दुर्भाग्य जहाँ भी जाते हैं, वहीं पीछे लगकर रहता है। फलतः पश्चाताप भी सदा ही करना पड़ता है कि यदि हमने पढ़ने के समय पढ़ा होता और जैसे-तैसे पास होने की चतुरता को न अपनाया होता तो सदा पछताते रहने का अवसर सामने न खड़ा रहता।

गलत तरीके से पास होना अपनी आत्मा के सामने झूठा बनना है। साथ ही शासन के साथ छल और जनता-जनार्दन के साथ विश्वासघात करना है। भविष्य को अँधेरे गर्त में धकेलना है, इतनी हानियाँ उठाकर यदि एक कागज का टुकड़ा प्राप्त कर लिया और सफलता का अहंकार जीत लिया तो उसमें लाभ की अपेक्षा हानि सैकड़ों गुनी है। जो विद्यार्थी काल में ही अपराध करके सफलता पाने का रास्ता अपनाते हैं, वे बड़े होकर बड़े अपराध न करने लगेंगे, इसका कोई भरोसा नहीं। जो करता है उसे भरना भी पड़ता है, यह एक अटल सिद्धान्त है। परीक्षा के प्रसंग में अपराधी प्रवृत्ति अपनाने में छोटी बात भले ही प्रतीत होती हो। पर हानि उतनी ही पहुँचती है, जितनी आत्महनन और छल-कपट करने वालों को उठानी पड़ती है। बात हवा के साथ फैलती है। जिन्होंने साथियों से पूछकर, अध्यापकों को डराकर जाँचने वालों का लुभाकर अपने साथ अनेकों को अपराधी बनाया है, वे हर दृष्टि से हेय हैं। उनकी निन्दा ही होती है और होनी ही चाहिए। जो उन्हीं की बिरादरी में प्रपंची हैं, वे ही उनकी धूर्तता की मुँह सामने प्रशंसा कर सकते हैं। पीठ पीछे तो वे भी उनका चरित्र गया-गुजरा होने की बात करते हैं। कम से कम अपने मन में सदा उनका असम्मान ही करते हैं। व्यवहार करते डरते हैं कि हमारे साथ भी कोई ऐसी ही चालबाजी न चली जाय।

ज्ञान-सम्वर्द्धन के प्रति आस्था ही विद्यार्थी जीवन का गौरव है। इसके लिए समुचित तत्परता और तन्मयता का उपयोग करना पड़ता है। यह सद्गुण शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ बढ़ाये जाएँ, तो उसमें सफलता के साथ-साथ स्वभाव को प्रगतिशील बनाने का दुहरा लाभ है। यह प्रवृत्ति यदि विद्यार्थी जीवन में ही अभ्यस्त हो जाती है तो उसका प्रभाव जीवन के हर प्रयोजन में दृष्टिगोचर होता है और अनेकों समस्याओं से निपटने में सहायक सिद्ध होता है। विद्याध्ययन एक प्रकार का योगाभ्यास है। उसमें छल का समावेश करना तो महान सम्भावनाओं से वंचित होने के समान है। योग भ्रष्ट जिस प्रकार अनिष्ट के भागी बनते हैं, उसी प्रकार अध्ययन काल में आलस्य, प्रमाद बरतने वाले और उत्तीर्ण होने की सफलता दुष्ट आचरण अपनाकर प्राप्त करने वाले अपनी महती हानि करते हैं। समाज के साथ अनाचार करने के साथ-साथ यह अपने पतन का पथ प्रशस्त करना तो प्रत्यक्ष ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि पढ़ने में प्रमाद किया गया है, तो उसका प्रायश्चित एक वर्ष अनुत्तीर्ण होने के रूप में ही करना चाहिए, इस भूल को सुधारने की आदत पड़ेगी तो प्रत्यक्ष लाभ यह होगा कि अगले वर्ष तक दूना समय मिल जाने के कारण अच्छे डिवीजन में उत्तीर्ण होने का अवसर मिलेगा, आजकल किसी महत्त्वपूर्ण द्वार में प्रवेश करने के लिए ऊँचे डिवीजन की प्रधान आवश्यकता रहती है। थर्ड डिवीजन पास होना फेल होने से भी बुरा पड़ता है क्योंकि उसके कारण किसी गौरवास्पद क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए द्वार ही बन्द हो जाता है।

किसी देश का भविष्य उसकी नई पीढ़ी पर ही निर्भर रहता है। युवकों का हीन चरित्र, हीन दृष्टिकोण समूचे देश के पतन की घोषणा है। जो आज के विद्यार्थी हैं, वे ही कल के शासक, व्यवसायी, विद्वान, कलाकार हैं, यदि उन्होंने ठगी की अनैतिक आदतें आरम्भ से ही अपनालीं तो कोई भरोसा नहीं कि वे भविष्य में अब किसी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को सँभालेंगे तो उसमें वैसे ही अनाचार की भरमार न कर देंगे। ऐसी दशा में समझना चाहिए कि प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही होगा।

छात्रों का निर्माण अध्यापक करें

समाज की नवरचना के उपाय सोचते-सोचते इस निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि यदि अध्यापक वर्ग इस शुभ अभियान में अपना थोड़ा-सा भी समय देंगे तो शीघ्र ही आशाजनक फल सामने आते दिखाई देने लगेंगे।

सक्रिय विचार क्रान्ति की सफलता के लिए चुने जाने वाले वर्गों में से अध्यापकों से विश्वासपूर्ण अपेक्षा करने का विशेष कारण यह है कि अध्यापक वर्ग अपेक्षाकृत अधिक जागरूक, चिन्तक, स्रष्टा, सन्तोषी तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होता है। उसका ऐसा होना स्वभावत: देश के भावी नागरिकों का निर्माता होता है। वह अपने छात्रों को जिस प्रकार का बनाकर समाज को देगा, ठीक उसी प्रकार का प्रशासन तथा राष्ट्र बनेगा।

अध्यापक मात्र विद्या के शिक्षक ही नहीं, बल्कि परोक्ष रूप से सम्पूर्ण राष्ट्र के सर्वमान्य तथा मूल नेता का एक प्रमुख कर्त्तव्य यही होता है कि वह जनता को समुचित जीवन-मार्ग का ज्ञान कराए और ऐसे रास्तों पर चलाए, जिस पर चलकर समाज उन्नति तथा विकास की मंजिलें पार करता हुआ अधिक से अधिक सुख-शांति की दिशा में बढ़ सके। अध्यापक यह सब करते ही हैं। जहाँ वह अपने छात्रों को विषय ज्ञान कराता है, वहाँ उन्हें जीवन के लिए उपयोगी नैतिक शिक्षा देकर मानवोचित गुणों का विकास भी करने का प्रयत्न किया करता है। यह बात गलत नहीं है कि आज शिक्षक अपने गुरुतर उत्तरदायित्व को वांछित सीमा तक नहीं निभा रहे हैं, जिससे समाज में वे सुखकर परिस्थितियाँ दिखाई नहीं दे रही हैं, जिनकी कोई भी राष्ट्र अथवा समाज स्वाभाविक अपेक्षा रखता है, छात्र वर्ग आज उद्दण्ड तथा अनुशासनहीन दिखाई दे रहा है। किन्तु इसके अन्य अनेक भिन्न कारण हैं। इन कारणों में से एक कारण तो यह हो सकता है कि अध्यापक को वह वांछित वातावरण नहीं मिल पा रहा है, जो छात्र निर्माण के लिए आवश्यक होता है। दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि अध्यापक आज अपनी सीमाओं में स्वतन्त्र नहीं हैं। तीसरा कारण यह भी है कि आज राष्ट्र का पूरा ढाँचा ही बिगड़ गया है, जिससे बेचारे अध्यापक को भी प्रभावित होना पड़ रहा है। फिर भी इन प्रतिबन्धों, परिस्थितियों तथा प्रभावों के होते हुए अध्यापक वर्ग आज भी काफी ईमानदारी तथा कर्त्तव्य-निष्ठा के साथ राष्ट्र निर्माण की जिज्ञासा से काफी दूर तक ओत-प्रोत है। इसलिए कोई भी राष्ट्र तथा समाज का हितचिन्तक आशा भरी दृष्टि से अध्यापकों की ओर देख सकता है और अपेक्षा कर सकता है कि आज के अँधेरे में वह राष्ट्र की नव रचना में प्रकाश की किरण बन कर आगे बढ़ेंगे।

छात्रों का चरित्र-निर्माण जितनी आसानी से अध्यापक कर सकते हैं, उतनी आसानी से न तो अभिभावक कर सकते हैं और न अन्य सामाजिक अथवा राष्ट्रीय नेतागण। अन्य नेताओं की तो बात ही क्या छात्रों पर जितना प्रभाव अध्यापक का होता है, उतना अभिभावकों का भी नहीं। एक बार कोई छात्र अपने अभिभावक की आज्ञा पालन अथवा उसके उपदेशों में विश्वास करने में मीन-मेख कर सकता है किन्तु अध्यापक के प्रति उसका विश्वास रहता ही है। अध्यापकों को अपने छात्रों पर फैले हुए इस अधिकारपूर्ण प्रभाव का व्यक्ति निर्माण के रूप में, राष्ट्र निर्माण की दिशा में अवश्य ही उपयोग करना चाहिए। आज तक की राष्ट्रीय आन्दोलन तथा बलिदान परम्परा इस बात की साक्षी है कि देश-धर्म के लिए उत्सर्ग करने वालों को प्रेरणा देने वाले अभिभावक नहीं अध्यापक ही रहे हैं। राष्ट्र के नेताओं एवं निर्माताओं के निर्माता मूल रूप से वे अध्यापक ही रहे हैं जिन्होंने उन्हें अपनी छत्र-छाया में पढ़ाया और शिक्षा दी। गुलामी के अन्धकार युग में जिन अध्यापकों ने राष्ट्र के निर्माताओं को प्रकाश दे दिया वे आज स्वाधीनता के युग में राष्ट्र की गिरी दशा सुधारने में उदासीनता दिखलाएँगे, इसका न तो कोई कारण दीखता है और न ऐसा विश्वास ही किया जा सकता है।

अपनी भूमिका समझें

पिछले अपकाल में जिन विकृत पीढ़ियों का समाज में आगमन हो गया है, वह तो हो ही गया है उसका सुधार करना जन नेताओं तथा समाज के पथप्रदर्शकों का काम है। हाथी के दाँत बहार निकल आये हैं। उनकी ओर ध्यान केन्द्रित न करें अर्थात समाज में जो प्रौढ़ वर्ग सक्रिय है, उसका सुधार करना धार्मिक एवं सामाजिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नेताओं का काम है। अध्यापकों का कर्त्तव्य है कि उनके संरक्षण में शिक्षा पाती हुई जो नई पौध पल रही है, उनके वांछित विकास की ओर ध्यान केन्द्रित करें और अपने पूरे ईमान के साथ उनके संस्कारों की ऐसी रचना करें कि जब भारत के वे भावी नागरिक समाज में उतरें, तो संसार एक साथ चकित होकर भारतीय समाज को आमूल बदलते हुआ देखे।

छोटी-छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों से लेकर उच्चतम कक्षाओं के छात्रों को भी अध्यापक अपने संसर्ग के प्रभाव से आदर्श नागरिक बनाने में बहुत सफल हो सकते हैं। छोटी कक्षा के विद्यार्थी जो अभी विकसित नहीं हुए, उनके चिन्तन तथा स्वभाव में आमूल-चूल परिवर्तन कर सकना कठिन नहीं। उनकी जिज्ञासा तथा ग्रहणशीलता सहज ही बहुत अधिक होती है। उच्च कक्षाओं के विकसित मस्तिष्क वाले युवकों में हित-अहित सोचने की क्षमता आ जाती है। उनमें उपद्रवी तथा विद्रोही प्रवृत्तियाँ इसलिए ही पनप रही हैं कि उन्हें भला-बुरा कहने वाले, रूखे उपदेश देने वाले बहुत हैं, किन्तु उनके प्रति संवेदना एवं सहानुभूति रखते हुए उन्हें सही दिशा-निर्देश देने की क्षमता तथा इच्छा सम्पन्न व्यक्ति उन्हें खोजने पर भी नहीं मिलता। अध्यापक इस कमी की पूर्ति बखूबी कर सकते हैं, इसके लिए उनके मनोवैज्ञानिक स्तर एवं उनकी स्नेह की भूख को समझकर समुचित ढंग अपनाने भर की आवश्यकता है।

वैसे तो स्कूल के 'कैरीकुलम' (कार्यक्रम) में ऐसी बहुत-सी विधियाँ दी होती हैं, जिनके द्वारा छात्रों के मनोविकास तथा चरित्र निर्माण में सहायता मिल सकती है पर अधिक प्रगति तभी होगी, जब अध्यापक व्यक्तिगत रूप से इस दशा में कुछ अधिक अभिरुचि लेने लगें, अधिक जिम्मेदारी अनुभव करें और अधिक प्रयत्नशील रहें।

विद्यार्थियों के मस्तिष्क में विचार आन्दोलन जगाने के लिए आवश्यक है कि उनकी विचारधारा को उस अशुभ, अवांछनीय दिशा में बहने से रोका जाए जो दिशा उन्होंने पारिवारिक वातावरण, संगति अथवा किन्हीं अन्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर अनजाने में ग्रहण कर ली है। जिस पद्धति से विद्यार्थी अपने आप को चला रहा है अध्यापक को चाहिए कि वह उसका अध्ययन करे और इस बात को समझे कि कौनसा विद्यार्थी किस प्रकार की जीवन-पद्धति अपनाता चला जा रहा है। अपना मनोविकास किस दिशा में कर रहा है ? विद्यार्थियों की चित्तवृत्तियों का अध्ययन कर लेने के बाद अध्यापक को चाहिए कि वह अपने छात्रों का विचार सम्पादन करे। उनके मस्तिष्क से अवांछित विचारों अथवा वृत्तियों को निकाले और वांछित विचारों तथा वृत्तियों की स्थापना करे।

विचार सम्पादन का यह कार्य कठिन तथा समय साध्य प्रतीत हो सकता है और विचार आ सकता है कि कोई अध्यापक पाठशाला भर के सारे छात्रों पर कैसे तो दृष्टि रख सकता है ? कैसे उनकी चित्तवृत्तियों तथा विचारधाराओं का अध्ययन कर सकता है और कैसे उनका सम्पादन कर अवांछनीयताओं को वांछनीयताओं से स्थानापन्न कर सकता है ? यह काम तो बड़ा व्यापक और बड़ा कठिन विदित होता है।

किन्तु बात ऐसी नहीं है। ऐसा तब लगता है जब कोई एक अध्यापक ही यह सारा दायित्व केवल अपने पर समझे। यह कर्त्तव्य केवल किसी एक अध्यापक का नहीं है और न एक अध्यापक इस वृहत् कार्य को कर सकता है। इस विचार अध्ययन तथा सम्पादन का कार्यक्रम स्कूल के प्रत्येक अध्यापक को अपना कर्त्तव्य समझना होगा और तत्परता से सावधानीपूर्वक उसमें लगना होगा। जब प्रत्येक अध्यापक समान रूप से स्थिति के अनुसार विद्यार्थी अथवा विद्यार्थियों पर दृष्टि रखेगा तो क्रम से सारे विद्यार्थी ही उनकी नजर के सामने आएँगे, जिससे प्रत्येक अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी के स्वभाव से परिचित हो जाएगा।

यहाँ पर यह बात भी हो सकती है कि किसी विद्यार्थी के विषय में अध्यापक के बीच विचार-वैचित्र्य हो। इस प्रकार वैचित्र्य को समता में लाने के लिए अध्यापकों को आपस में विचार-विमर्श करते रहना चाहिए। केवल किसी विद्यार्थी के विषय में विचार समीकरण के लिए ही क्यों ? यों भी छात्रों के बीच कार्यक्रम के माध्यम से चरित्र निर्माण करने के लिए भी तो अध्यापकों की विचारगोष्ठी होते रहना आवश्यक है। अपनी सामाजिक विचारगोष्ठियों के अवसर पर अध्यापकों को छात्रों में संस्कार सृजन करने के लिए पहले से ही रूपरेखा तैयार करते रहना चाहिए और एक निर्धारित प्रकार से अपना कार्यक्रम चलाना चाहिए। इस प्रकार एक प्रकार तथा एक पद्धति से रचना क्रम को क्रियान्वित करने से विद्यार्थियों पर डाले जाने वाले संस्कार जल्दी जड़ पकड़ने लगेंगे और निर्माण अभियान वेग से चल निकलेगा। अध्यापकों की विचारगोष्ठियाँ किस समय हों और विद्यार्थियों को किस समय, क्या शिक्षा दी जावे इसका निश्चय अध्यापकों को देशकाल के अनुसार अपनी तथा विद्यार्थियों की सुविधा के अनुसार स्वयं कर लेना चाहिए। सारांश यह कि अध्यापक वर्ग को विद्यार्थियों की चरित्र रचना के काम में ठीक उसी भावना के साथ करने में लगना चाहिए, जिस प्रकार कोई विशाल एवं महत्त्वपूर्ण निर्माण कार्य करने के लिए इंजीनियरों तथा शिल्पियों का मण्डल विचार करने के उपरान्त एक मन तथा एक मत से कार्य में लग जाता है। विद्यार्थियों के रूप में राष्ट्र रचना का कार्य किसी भी उपयोगी स्थापत्य रचना से हजारों-लाखों गुना आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है।

बच्चों के जीवन निर्माण की सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने के लिए उन्हें उपयुक्त, अनुरूप साहित्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ाया जाना चाहिए। यह विचार साहित्य विवेचना अथवा गवेषणापूर्ण होने के स्थान पर सरल-सुबोध, रोचक तथा उद्देश्यपूर्ण ही होना चाहिए। यदि यह साहित्य कथा, कहानियों तथा कविताओं के रूप में हो तो अधिक सार्थक तथा प्रभावकारी होगा। अनुरूप विचार साहित्य संचय करने के लिए अध्यापकों को स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए। इस विषय में उन्हें विद्यार्थियों अथवा उनके अभिभावकों पर निर्भर नहीं करना चाहिये। हाँ इतना किया जा सकता है कि वांछित विचार साहित्य संचालित करने के लिए अभिभावकों की सहमति से विद्यार्थियों से एक दो-दो रुपए प्रतिमाह चन्दा इकट्ठा किया जा सकता है। चुनी हुई पुस्तकें इस पुस्तकालय में हों और उन्हें पढ़ने में अभिरुचि जगाने के लिए विशेष प्रयत्न किये जाएँ। अमुक पुस्तक अमुक बच्चा पढ़कर लाये, उसका निष्कर्ष सुनाये, ऐसी प्रेरणा देते रहने से बच्चों में जीवन-निर्माण का साहित्य पढ़ने की आकांक्षा उत्पन्न हो सकती है।

विचार साहित्य की खोजबीन तथा उसको संचित करने तक विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमों में से ऐसे पाठ चुने जा सकते हैं, जो आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति करते हों। शिक्षाप्रद पाठों को केवल परीक्षा के लिए पढ़ाने से आगे बढ़कर इस ढंग से पढ़ाया जा सकता है कि उनका प्रभाव स्मृति पर पड़ने के साथ-साथ मन और मस्तिष्क पर संस्कार रूप में भी पड़े। पाठ्य पुस्तकों में भी इस प्रकार के उपयोगी पाठों की कमी नहीं रहती। इसके अतिरिक्त यदि अध्यापक चाहे और प्रयत्न करे तो न केवल साहित्य अथवा भाषा की पुस्तकों से ही बल्कि भूगोल, इतिहास, गणित आदि विषयों को पढ़ाते तथा समझाते समय भी ऐसे सूत्रों तथा पहेलियों का समावेश कर सकता है जो संस्कार सृजन के उद्देश्य में सहायक हो सकते हैं। किसी भी विषय को किसी दिशा में मोड़कर समझाया जा सकता है और ऐसा कर सकना किसी भी विचारशील अध्यापक की क्षमता परिधि में हो सकता है। तात्पर्य यह है कि कोई भी अध्यापक कोई भी विषय क्यों न पढ़ा रहा हो, उसको समझाते समय शैली में किसी भी संस्कार के लिए विचारों का पुट दे सकता है। विद्यार्थियों में विषय के प्रति ऊँची भावना जगाते हुए उदात्त मनोवृत्ति का बीज बो सकता है जो कि आगे चलकर किसी भी दिशा में वांछित फल ला सकता है, इस प्रकार यदि हमारा अध्यापक वर्ग चाहे और प्रयत्न करे. तो गिनती गिनाने से लेकर कविता तक हर विषय के माध्यम से विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण का कार्य कर सकता है।

भावात्मक नव-निर्माण के विचार साहित्य की बालोपयोगी पुस्तकें हों यह आवश्यक है किन्तु इतना अनिवार्य नहीं है कि यदि पुस्तकों का अभाव है, तो यह कार्य हो ही नहीं सकता। इसका एक सरल-सा मार्ग यह है कि अध्यापक स्वयं ही एक बोलती पुस्तक बन जाएँ। अध्यापकों को चाहिए कि बड़ी-बड़ी पुस्तकों में से अनुरूप प्रकरण स्वयं पढ़ें और बच्चों के योग्य प्रसंगों को स्वयं गढ़लें और उन्हें कथा, कहानी, संस्मरण अथवा उदाहरण के रूप में बच्चों को सुनाएँ। ऐसा करने से अध्यापकों में अधिक पढ़ने की रुचि बढ़ेगी, ज्ञानवर्द्धन होगा, वक्तृत्व विकसित होगा और कभी भी प्रसंग अथवा प्रकरण से उपयोगी तत्व निकाल लेने की दक्षता प्राप्त होगी, जिसमें आगे चलकर वे बालोपयोगी छोटी-छोटी पुस्तकें लिख सकने में समर्थ हो सकते हैं, ज्ञान तथा सन्दर्भ पूर्ण होने से अध्यापक विद्यार्थियों के लिए अधिकाधिक आकर्षण तथा श्रद्धा के पात्र बन जाएँगे, जिससे उनमें विद्यार्थियों का विश्वास बढ़ेगा और वे उनकी बात भावनापूर्वक मानने लगेंगे। इस प्रकार पुस्तकीय अथवा मौखिक विचार साहित्य पढ़ाने से छात्रों में भी ज्ञान की वृद्धि होगी, जिससे उनके चरित्र निर्माण में बहुत सहायता मिलेगी।

कविता-सम्मेलन—बच्चों के बौद्धिक विकास तथा विचार संस्कार के लिए कविता-सम्मेलन अथवा कविता पाठ की सामयिक गोष्ठियाँ भी बहुत उपयुक्त हो सकती हैं। पद्यबद्ध भाव, गद्य से अधिक शीघ्र तथा स्थायी प्रभाव डालते हैं। साथ ही बच्चे भावपूर्ण कविताओं को शीघ्र याद भी कर लिया करते हैं और उन्हें गुन-गुनाया भी करते हैं, जिससे पद्य के भाव उनके अन्तर्मन पर अनजाने ही प्रभाव डालते रहते हैं।

अध्यापकों को चाहिए कि वे अपने छात्रों की साप्ताहिक, मासिक अथवा उपयुक्त सामयिक काव्य गोष्ठियाँ कराते रहें। इन गोष्ठियों में बच्चे को कविता पाठ के लिए रचनाएँ स्वयं चुन कर दे देना ही अधिक उपयुक्त होगा। कच्ची बुद्धि के बच्चे अपनी रुचि के अनुसार तो कविताएँ चुन सकते हैं किन्तु उद्देश्य के अनुसार नहीं। कविताओं का चुनाव आदर्श साहित्य से ही करना ठीक रहेगा। सरल भाषा तथा सरल शैली की कविताएँ ही बच्चों के लिए चुनी जानी चाहिए। ऐसी कविताएँ बच्चे जल्दी से याद भी कर सकते हैं, समझ भी सकते हैं और उनका सस्वर सुन्दर पाठ भी कर सकते हैं। ऐसा करने से बच्चों में दिनों-दिन सत्साहित्य पढ़ने की रुचि विकसित होती जाएगी, जिससे आगे चलकर वे सिनेमा के गन्दे गाने अथवा बाजारू गीतों को अपनाने से बच जाएँगे एक बार रुचि में ऊँचाई आ जाने से फिर उनके हृदयों में ओछी रुचि के लिए अवसर नहीं रहेगा। जिन पढ़े-लिखे बालकों में सत्साहित्य पढ़ने की रुचि पैदा हो गई मानो उनके चरित्र-निर्माण का आधा काम पूरा हो गया। अपनी रुचि के स्तर से ही मनुष्य अपना ऊँचा-नीचा जीवन-क्रम चुन लिया करता है।

काव्य सम्मेलन के अवसर पर पाठ करने के लिए बच्चों को ऐसी कविताओं का ही निर्देश करना चाहिए जो सरल एवं सुबोध तो हों ही साथ ही संगीतात्मक भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हों। सस्वर संगीत में एक दैवी गुण होता है। वह यह कि संगीत के स्वर मनुष्य के मन-मस्तिष्क पर बड़ा भी शुभ प्रभाव डालते हैं, जिससे बहुत से जान तथा अनजान विकारों का परिमार्जन होता रहता है और फिर जब संगीत के साथ शिवत्वपूर्ण भाव सौष्टव का समावेश हो जाता है तब तो सोने में सुगन्ध का ही संयोग उपस्थित हो जाया करता है। शिवत्वपूर्ण शुभ संगीत का अभ्यास किसी के भी मनोविकास तथा चरित्र-निर्माण में जादू का काम किया करता है।

कविता पाठ के लिए रचनाओं का चुनाव करते समय अध्यापकों को एक विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रचनाओं में जीवन विकास सम्बन्धी ही भाव भरे गए हों। इस जीवन विकास के दायरे में मानवता के वे उच्च गुण भी आते हैं, जिनमें से साहस, सद्भावना, सहयोग, सत्य, श्रम, वीरता, भगवद्भक्ति, राष्ट्रभक्ति, समाज-सेवा आदि गिनाए जा सकते हैं आशय यह कि कविता पाठ के लिए बच्चों को ऐसी ही रचनाएँ निर्देश की जाएँ, जो उनके आचरण निर्माण में सहायक हो सकें। संयमशीलता, शालीनता, अनुशासन, आज्ञापालन, पारस्परिकता आदि विशेषताएँ भी निर्वाचनीय कविताओं में होना अपेक्षित है।

काव्य-सम्मेलन के अवसर पर इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि कोई छात्र अपेक्षाकृत अधिक वाहवाही न पा जाए और कोई उपेक्षित अथवा निरुत्साहित न हो जाय। बच्चों के काव्य-सम्मेलन में यदि अस्वस्थ स्पर्धा का वातावरण रहा तो उनमें परस्पर प्रेम होने के स्थान पर ईर्ष्या-द्वेष का सूत्रपात हो जाएगा और तब ऐसे कलुषित भाव की विद्यमानता में बच्चों के वांछित चरित्र निर्माण की आशा करना मात्र दुराशा ही होगी। अच्छे विद्यार्थियों की प्रशंसा होना आवश्यक है। वे इसके अवश्य अधिकारी भी होते हैं किन्तु प्रशंसा इस प्रकार से की जानी चाहिए, जिससे सराहनीय को अभिमान न होने पावे और अन्य दूसरे अपने को अपदस्थ अथवा हीन समझने लगें। ऐसी स्थिति में क्या सराहनीय और क्या साधारण दोनों प्रकार के विद्यार्थियों की मानसिक हानि होगी।

यह भी सम्भव है कि काव्य में रुचि उत्पन्न हो जाने से अनेक बच्चे आगे चलकर स्वयं भी कविता लिखने लगें। उस समय उनकी काव्य रचना, शैली तथा विषय उसी प्रकार का हो सकता है जिसका कि अभ्यास वे अपने पूर्व सम्मेलन में कर चुके हैं। इसलिए काव्य-सम्मेलनों के लिए विद्यार्थियों को कविताएँ चुनवाते समय अध्यापकों को पूरी तरह सतर्क रहना चाहिए और इस दूरगामी दृष्टिकोण से ही रचनाओं का संकलन करना चाहिए कि इनमें से अनेक आगे चलकर कवि बनेंगे। उनको उन्हीं कविताओं का अभ्यास कराना चाहिए, जिनको अध्यापक समाज रचना तथा राष्ट्र-निर्माण के लिए आवश्यक समझते हों। बच्चों में चरित्र निर्माण की नींव रखते समय ही दूर भविष्य के चित्र को सामने स्पष्ट कर लेना ही बुद्धिमानी होगी। बच्चे में कोई रुचि अथवा संस्कार सृजन करते समय इस तथ्य को अदृष्टिगोचर नहीं करना चाहिए कि आज के बच्चे भविष्य के नागरिक हैं। यह जिस प्रकार का चरित्र लेकर समाज में उतरेंगे, उसी प्रकार का हमारा शासन तथा प्रशासन बनेगा।

कविता के पाठ के साथ-साथ यथासम्भव बच्चों से पठित कविता के अर्थ तथा भावों की व्याख्या की जा सकती है। जिससे उनमें समझदारी तो बढ़ेगी ही साथ ही शिक्षकीय क्षमता का भी श्रीगणेश होगा और किसी प्रकार के प्रकरण का अर्थ करने की उनकी एक विशिष्ट शैली भी बनेगी। उत्तम काव्य पाठ तथा अर्थ विवेचना पर छात्रों को पुरस्कार भी दिए जा सकते हैं। इन पुरस्कारों का प्रबन्ध भी अभिभावकों द्वारा चन्दे से किया जा सकता है। साथ ही यह पुरस्कार वस्तु के स्थान पर प्रमाण एवं प्रशंसा पत्रों के रूप में भी हो सकते हैं।

अन्त्याक्षरी सम्मेलन—काव्य-सम्मेलनों की तरह अन्त्याक्षरी सम्मेलन भी विद्यार्थियों की रुचि, विकास तथा चरित्र-निर्माण में बहुत सहायक हो सकते हैं। अन्त्याक्षरी मनोरंजन बालकों की स्मरणशक्ति को बढ़ाने में अमोघ रसायन का काम करता है। अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता का वातावरण बड़ा ही मनोरंजक, प्रसन्न तथा उत्साहपूर्ण रहा करता है। इसमें सफलता पाने के लिए छात्र बड़े मनोयोग से दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठे, सवैया, घनाक्षरी आदि याद करते हैं। अन्तिम अक्षर से प्रारम्भ अनिवार्य होने के कारण बच्चे आवश्यक छन्दों को खोज-खोजकर क्रम से याद किया करते हैं। इससे अधिक न सही कुछ न कुछ अन्वेषण बुद्धि का विकास होता ही है और कुछ न सही तो विद्यार्थी इसी खोज के अन्तर्गत ही अनेक पुस्तकें ही पढ़ें। अन्त्याक्षरी में तड़पड़ बोलते रहने से उनमें वाक् वैदग्ध्य की वृद्धि हो सकती है, इस सम्बन्ध में उनकी झिझक खुल सकती है, स्मरणशक्ति में विश्वास बढ़ जाता है जो कि आगे चलकर उनके बहुत काम आएगा

अन्त्याक्षरी में तुलसीकृत रामायण का तो अधिकतम उपयोग है ही, साथ ही विद्यार्थियों को वृन्द, रहीम, दादू आदि सत्साहित्यकारों के दोहे तथा गिरधर आदि कवियों की नीति तथा अनुभवपरक कुण्डलियाँ आधुनिक कवियों के अच्छे-अच्छे पदों के साथ सरल संस्कृत के नीति, धर्म तथा चरित्र-निर्माण के श्लोकों को भी उपयोग करने के निर्देश देना चाहिए। इससे बच्चों में प्राचीनता के साथ नवीनता का मेल करने की रुचि बढ़ेगी। भारतीय संस्कृति में पुरातन तथा नवीनता सम्मेलन एक विशेष गुण है। विद्यार्थियों में इस समन्वय गुण का विकास होना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक दोहा अन्त्याक्षरी पुस्तक अखण्ड ज्योति प्रेस, मथुरा से भी छपी है।

इस अन्त्याक्षरी सम्मेलन में एक विशेष बात का ध्यान रखना है कि उसमें शोर-शराबा अथवा हुल्लड़बाजी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं होनी चाहिए। यह होता तभी है जब छात्रों का किसी प्रतियोगी छात्र को रोकने का अधिकार दे दिया जाता है। अध्यापकों को चाहिए कि वे स्वयं ही उसका निरीक्षण एवं निर्णय करें, किसी प्रस्तुत प्रत्युत्तर पर प्रशंसा अथवा किसी के निरुत्तर होने पर हँसी के शब्दों की अभिव्यक्ति वातावरण को अवांछनीय बना देगी, जिससे कि अन्त्याक्षरी का उद्देश्य ज्ञानवर्द्धन, स्मृतिशक्ति विकास तथा चरित्र निर्माण ही नष्ट हो जाएगा। अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता में भी काव्य-सम्मेलन की तरह ही पुरस्कार की व्यवस्था की जा सकती है। अन्त्याक्षरी कार्यक्रम से जहाँ छात्रों में प्रत्युत्पन्न बुद्धि का विकास होगा वहाँ साहित्य में भी अभिरुचि बढ़ेगी जो कि उनके चरित्र-निर्माण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। इन सब कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य बच्चों का रुचि परिमार्जन ही होना चाहिए।

भाषण प्रतियोगिता—भाषण प्रतियोगिता बच्चों के मनोविकास में कुछ कम सहायक नहीं होगी। यह बात जरूर है कि शुरू-शुरू में कोई बच्चा यदि वह स्वभाव से ठीक वाचाल नहीं है, तो प्रतियोगिता में खड़े होकर गोष्ठी के सामने बोलने में झिझकेगा और लड़खड़ाएगा। किन्तु इस स्वाभाविक प्रतिक्रिया से किसी बच्चे के प्रति अध्यापकों को निराशापूर्ण भाव नहीं बना लेना चाहिए। हर बच्चे को इस प्रकार प्रोत्साहित करते रहना चाहिए मानो वह अपने अध्यापकों की दृष्टि में होनहार है। इससे उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा, जो उनके विकास के लिए मन के मार्ग खोल देगा। कतिपय बार ऐसा करने से बच्चे बोल निकलेंगे और तब भाषण प्रतियोगिताएँ सफल होने लगेंगी।

विद्यालयों में भाषण प्रतियोगिताएँ होती भी रहती हैं। एक तो वे छोटी कक्षाओं से प्रारम्भ नहीं होती, केवल नवीं-दसवीं कक्षाओं से प्रारम्भ होती हैं। दूसरे वे केवल भाषण प्रतियोगिताएँ न होकर वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ हुआ करती हैं, जिन्हें अँग्रेजी में 'डिबेट' कहते हैं। इन वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में विद्यार्थी दो टोलियों में बँटकर निर्धारित विषय के पक्ष तथा विपक्ष में बोला करते हैं। इस प्रकार 'डिबेट' पद्धति से होता यह है कि कुछ विद्यार्थी किसी के उज्ज्वल पक्ष के विश्वासी हो जाते हैं और कुछ अँधेरे पक्ष के अथवा दोनों पक्षों के तर्कजाल में फँसकर विषय के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं बना पाते हैं और जानकारी के रूप में शून्य ही पाते हैं।

वाद-विवाद की यह पद्धति एक प्रकार से केवल शाब्दिक मनोरंजन अथवा बौद्धिक विलास जैसी ही होती है। इसका कोई विशेष उद्देश्य अथवा मन्तव्य नहीं होता। अपना एक निश्चित एवं स्थायी उद्देश्य यह होना चाहिए कि छात्रों में उदात्त ज्ञान जगाना और उनका चरित्र-निर्माण करना, जिससे वह आगे चलकर शुभ एवं शुद्ध बन सकें।

अपने इस मंगल मन्तव्य को पूरा करने के लिए अपने अध्यापकों को भाषण की वाद-विवाद पद्धति को तो नहीं अपनाना है, साथ ही गुणपरक ऐसे विषयों को निर्धारित करना है जिनके विषय में दो मत का होना अस्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, यह विषय सत्य, संयम ईमानदारी, अस्वार्थ परिश्रम, पुरुषार्थ, देशभक्ति, राष्ट्रनिष्ठा, समाजसेवा, अनुशासन, उत्तरदायित्व, शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, सहानुभूति, सौहार्द्र, सहयोग तथा सहकारिता आदि हो सकते हैं। खींचतान करके अतर्क्य विषयों के सम्बन्ध में भी विपक्षी तर्क सोचे जा सकते हैं—किन्तु अपने को ऐसा नहीं करना है। सारे विद्यार्थियों को महानताओं एवं गुणों के पक्ष में ही बोलने को प्रेरित किया जाना चाहिए। इस प्रकार जब छोटे-छोटे छात्र गुणों के ही पक्ष में कहेंगे, बोलेंगे और सुनेंगे तो अवश्य ही उनमें गुणों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी और वे गुणी बनेंगे। उनके संस्कार शुभ से सराबोर होकर अशुभ त्याग करने लगेंगे। इस प्रकार भावी नागरिकों के चरित्र रचना की योजना का उद्देश्य पूरा होने लगेगा। निषेधात्मक पक्ष में बोलना हो तो नशेबाजी, उच्छृंखलता, आलस, बेईमानी, अनैतिकता, असंयम आदि बुराइयों के खण्डन पर बोला जा सकता है।

भाषण प्रतियोगिता की तैयारी में अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों का हाथ बँटाना बहुत आवश्यक है। एक तो बच्चे उस समय तक किसी विषय में गतिमान होने में समर्थ नहीं होते, दूसरे यदि तैयारी का भार उन्हीं पर डाल दिया जाएगा, तो वे उलझन के साथ उल्टा-सीधा सोच-सोचकर थकेंगे, समय खराब करेंगे, ऊबेंगे—जिससे कि इस कार्यक्रम के प्रति उनमें अन्यमनस्कता उत्पन्न होगी अथवा वे किन्हीं दूसरे लोगों के पास सहायता के लिए दौड़ेंगे। यह ठीक न होगा। कोई अन्य अनजान व्यक्ति बच्चों को उल्टे-सीधे प्वाइन्ट भी बता सकता है। जिससे बालकों की निर्धारित मानसिक धाराओं में विक्षेप उत्पन्न होगा, इन अवांछनीय सम्भावनाओं से बचाने के लिए बच्चों के भाषण प्रतियोगिता की तैयारी स्वयं अध्यापकों को ही करानी चाहिए।

प्रतियोगिता स्थल पर विद्यार्थी किस प्रकार बैठते हैं, वक्तव्य के स्थान पर किस प्रकार भाषण प्रारम्भ करते हैं, उतार-चढ़ाव के साथ किस प्रकार बोलते हैं, संकेत इंगित तथा भाव-भंगिमाओं को किस प्रकार व्यक्त करते हैं ? इन सब बातों पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। ध्यान तो रखना है साथ ही उन्हें इसके लिए उचित प्रशिक्षण देना भी जरूरी है। इन सब बातों को भी भाषण की तैयारी में शामिल कर लेना चाहिए। इन बातों के प्रशिक्षण में मूल बिन्दु यह होना चाहिए कि बैठने-बोलने तथा अभिव्यक्तियाँ देने में विद्यार्थियों की भंगिमाओं में गम्भीरता, उत्तरदायित्व तथा अनुशासन का अभाव तो नहीं है, साथ ही एक शोभा बनी रहे, एक प्रसन्नता बनी रहे, कोई बोझिलपन न आने पावे। भाषण गोष्ठी का कक्ष अथवा स्थान उपयुक्त उपकरणों से सजा लिया जाए तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत ही अच्छा रहे। इन सज्जा-उपकरणों में संसार के बड़े-बड़े वक्ताओं के चित्र तथा हस्तलिखित भाषणों के अंश भी हो सकते हैं। अन्य महात्माओं एवं महापुरुषों की पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ भी अनुपयुक्त न होंगी। तात्पर्य यह है कि भाषण स्थल की सज्जा इस ढंग से की जाए कि वहाँ का वातावरण आयोजन के अनुरूप अनुभव हो। मानव मस्तिष्क पर वातावरण तथा स्वयं की भाव-भंगिमाओं का बड़ा प्रभाव पड़ता है, इससे संस्कार सृजन में बड़ी सुविधा रहती है। सुन्दर वातावरण मनुष्य की गंदगी दूर करके सुन्दर बनाता है।

अनिवार्य एकांकी—चरित्र निर्माण के लिए एकांकी नाटक भी बड़े उपयुक्त एवं उपयोगी हुआ करते हैं। अतएव समय-समय पर इनका प्रदर्शन भी होता रहना चाहिए। यद्यपि 'कैम्प फायर' जैसे एक दृश्य वाले तथा अनेक एकांकी नाटक यदा-कदा विद्यालयों में आयोजित किए जाते हैं किन्तु वे होते बहुधा मात्र मनोरंजन के लिए ही हैं। उनमें से अधिकांश या तो व्यंगात्मक, हास्यास्पद अथवा विदूषणात्मक ही होते हैं अथवा किसी को प्रसन्न करने के लिए प्रशंसात्मक होते हैं। राष्ट्र रचना का उद्देश्य इस प्रकार के निरर्थक एकांकी पूरा नहीं कर सकते हैं। अपना उद्देश्य तो गुण आचरण अथवा चरित्रपरक एकांकी की पूरा कर सकते हैं। अध्यापकों को चाहिए कि वे इस प्रकार के उपयोगी नाटक साहित्य खोज लें और बच्चों को उनकी तैयारी स्वयं कराएँ। यदि ऐसे उद्देश्यपूर्ण नाटक कम मिलें तो आवश्यकतानुसार लिखे अथवा लिखाए जा सकतें हैं। नाटकों में नाट्य-शास्त्रीय तत्व होना उतना आवश्यक नहीं जितना कि आशय उद्देश्य तत्व। इन एकांकी नाटकों के विषय भी काव्य अथवा भाषण प्रतियोगिता के विषयों की तरह गुणपरक ही होना आवश्यक है। इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य बालकों को कलाकार बनाना नहीं होना चाहिए बल्कि इस कला के माध्यम से उन्हें अभ्यास कराके गुणी बनाना ही होना चाहिए। इन एकांकियों के माध्यम से छात्र अभिनेता बनने के स्थान पर आत्मसृजेता बनें यही वांछनीय होगा।

अभिनय के लिए चुने जाने वाले छात्र जहाँ तक हो सयाने और ठीक से बोल सकने वाले ही हों। एकांकी में विदूषक का अभिनय और जहाँ तक सम्भव हो नारी पात्र न हो और यदि नारी पात्र अनिवार्य ही हों तो उनकी स्थिति पुनीत एवं पूजनीय ही हो। एकांकी में नृत्य विकास, शानशौकत, प्रदर्शन, फैशन अथवा व्यसनपूर्ण दृश्य न रखे जाएँ। नशा-व्यसनों सम्बन्धी दृश्यों को तो बहिष्कृत ही रखना ठीक होगा। यद्यपि यह असम्भव नहीं कि बुराइयों के परिणाम से उनकी निषेधात्मक शिक्षा के तत्सम्बन्धी दृश्य दिखाना जरूरी हो जाए तथापि उन दृश्यों को इस ढंग से आयोजित किया जाए कि उनका प्रभाव क्या तो अभिनेता और क्या दर्शक, किसी पर अनुकूल न पड़े। उन दृश्यों के प्रति घृणा का ही उद्रेक हो, आकर्षण नहीं। यह बात सलाप के स्तर तथा अभिनय की शिथिलता से लाई जा सकती है। ऐसे दृश्यों में अभिनय दक्षता अथवा कला की सुन्दरता के लोभ का त्याग करना ही कल्याणकर होगा। नहीं तो सबसे सीधी बात यह है कि उज्ज्वल पक्ष अथवा विधेयात्मक एकांकी ही चुना जाय और जहाँ तक सम्भव हो बुराई से बचाने की शिक्षा देने के लिए बुराई का निषेधात्मक पहलू भी छोड़ दिया जाए, पूरा नाटक अच्छे गुणों से ही भरा हुआ हो।

भाषण प्रतियोगिता की भाँति नाटक की तैयारी भी अध्यापकगण स्वयं ही कराएँ। दूसरों से मदद लेने अथवा अन्यों को शामिल करने के उद्देश्य में व्याघात पड़ सकता है। जहाँ तक नाटक में गीतों के समावेश का प्रश्न है, उसकी तैयारी जरूर ही किसी संगीतज्ञ से कराई जा सकती है और यदि इससे भी बचना आवश्यक है तो गीतों के स्थान पर अच्छे कवियों के गेय तथा आदर्श पदों का उपयोग किया जा सकता है। कविताओं के गेय पदों का अभ्यास कोई भी सुकंठ वाला बालक सरलता से कर सकता है।

एकांकी नाटक की मंच-सज्जा तथा वेष-भूषा के विषय में अधिक चिन्तित अथवा बहुव्ययी होने की आवश्यकता नहीं। सामान्य वेष-भूषा तथा साधारण परदों तथा वस्त्रों से काम चलाया जा सकता है। अभिनेताओं के प्रसाधन तथा विन्यास को भी महत्त्व न दिया जाय। रंग-रोगन की जरा भी जरूरत नहीं है। यह नाटक कला की दृष्टि से नहीं संलाप, सदाशय तथा विषयवस्तु की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण होने चाहिए। इसके लिए किसी विशेष मंच की रचना करना भी आवश्यक नहीं है, यह किसी भी कक्षा में साधारण ऊँचाई करके खेले जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि इन्हें कम से कम व्ययी तथा विभ्रमपूर्ण और अधिक से अधिक सौम्य, सरल तथा शिक्षापूर्ण बनाया जाना चाहिए।

पर्व-त्यौहार और जयन्तियाँ—विचार शोधन तथा चरित्र रचना के लिए महापुरुषों की जयन्तियाँ, तिथियाँ, तथा राष्ट्रीय त्यौहारों का आयोजन करना भी कुछ कम उपयोगी नहीं है। ऐसे अवसरों पर बच्चों को इकट्ठा करके महापुरुषों की जीवनी सुनाकर उनमें पवित्र विचारों तथा महान कार्यों की प्रेरणा भरी जा सकती है। पर्वों तथा त्यौहारों की अन्तर्कथाएँ बताने के साथ-साथ उन्हें उनका महत्त्व बताया जा सकता है और यह विश्वांस पैदा किया जा सकता है कि मानव जीवन का प्रत्येक दिन एक पावन पर्व है। इसे पवित्रता, प्रसन्नता तथा उपयोगिता के साथ ही यापन करना चाहिए। इस प्रकार बालकों में निःसन्देह जीवन के प्रति एक नैतिक निष्ठा का प्रादुर्भाव किया जा सकता है। जयन्तियों के अवसर पर दिवस-नायक की मांगलिक स्मृति में बच्चों को मिठाई बाँटी जा सकती हैं किन्तु इस भावना तथा विश्वास से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि मानो वह मिष्ठान अमुक महापुरुष का मांगलिक प्रसाद है, जो उन्हें इसलिए दिया गया है कि वे उसे प्राप्त कर उन महापुरुषों की तरह अपना जीवन बनाएँ और वे संसार में उनके उद्देश्यों के आगे बढ़ाएँ। त्यौहारों, पर्वों, जन्म-दिवसों तथा विशेष दिनों पर चर्चा के बौद्धिक विकास का उद्योग करना बहुत आवश्यक है। इस प्रवर्तन के लिए उन्हें आवसरिक तथ्य बताए जा सकते हैं और पहले से ही प्रशिक्षित करके तैयार किया जा सकता है। ऐसे ही अवसरों पर बोलने के बाद में विद्यार्थियों से आदर्श व्यक्ति बनने तथा बुराइयों को त्यागने के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कराए जा सकते हैं। यदि इस प्रकार का कार्यक्रम कक्षा अनु-कक्षा में होता चले तो आरम्भ से लेकर प्रौढ़ता तक विचारों, भावनाओं, विश्वासों तथा संकल्पों के प्रत्यावर्तन के प्रभाव से प्रत्येक छात्र अवश्य ही आदर्श के साँचे में ढल जाय, किसी बात की निरन्तर पुनरावृत्ति व्यक्ति को वैसा ही बना देती है। इस प्रकार कमनीय कार्यक्रम से भरा-पूरा विद्यार्थियों का शिक्षा काल उन्हें भविष्य में ऐसा सुशील नागरिक बना सकता है कि आज के विकृत भारत का कायाकल्प होकर एक विशाल भारत के रूप में संसार के सामने अधिक समय नहीं, एक दशाब्द में ही आ सकता है और तब एक बार राष्ट्र में नैतिकता पूर्ण सात्विक धाराएँ बह निकलने से देश का गौरव दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता चला जाएगा। आदरणीय अध्यापकों को इस महान राष्ट्र रचना के पावन अनुष्ठान में योग देना ही चाहिए।

विद्यार्थियों में सामाजिकता तथा नैतिकता की प्रेरणा देने के जहाँ उपयुक्त पृष्ठों के कतिपय कार्यक्रम उपयोगी हैं, वहाँ इस उद्देश्य प्रसार का एक क्षेत्र और भी है जिसे भी अध्यापकों को अछूता नहीं छोड़ना चाहिए। वह है अभिभावकों का क्षेत्र। बच्चे में चारित्रिक चेतना तो उत्पन्न की जानी चाहिए, साथ ही अभिभावकों के हृदयों में भी इस योजना की उपादेयता के प्रति विश्वास एवं निष्ठा पैदा की जानी चाहिए। इससे अध्यापकों को अपने राष्ट्र रचना के कर्तव्य क्रम में सुविधा रहेगी।

बच्चों के कार्यक्रम में अभिभावकों को न केवल अवगत रखना ही पर्याप्त है बल्कि दर्शक के रूप में उन्हें सम्मिलित करना भी आवश्यक है। बच्चों के गुणपरक कार्य में अभिभावकों को सम्मिलित कर लेने से अभिभावकों को बच्चों का विकास देखकर प्रसन्नता होगी, जिससे उनको योजना के क्रमों के प्रति आश्वासन प्राप्त होगा और वे सदा यथासाध्य सहयोग एवं सहायता करने को उद्धृत रहेंगे।

सामाजिक कुरीतियाँ

समाज में फैली दहेज आदि की कुप्रथाओं तथा विवाह विषयक कुरीतियों को भी सदा-सर्वदा के लिए दूर करने के लिए भावी-पीढ़ी के विद्यार्थियों में उनके विरुद्ध घृणा के बीज बोने भी आवश्यक हैं। अध्यापकों को चाहिए कि दहेज प्रथा के कारण होने वाली कन्याओं की दयनीय दशा से नवोदित नागरिकों को अवगत कराएँ और कथाएँ, घटनाएँ तथा समाचारों को सुना-पढ़वाकर कन्याओं के प्रति उनके सुकमार हृदयों में सहानुभूति उत्पन्न करें और उदाहरणों के माध्यम से कुरीतियों एवं कुप्रथाओं का विरोध कर सकने का साहस जगाएँ।

यह कार्य नाटकों तथा भाषण प्रतियोगिता के माध्यम से भी पूरा किया जा सकता है। एक बार यदि छात्रों के विकासोन्मुख हृदयों में कुरीतियों के विरुद्ध घृणा का भाव पैदा किया जा सका तो समझना चाहिए कि समाज में फैली विकृतियों की जड़ पर कुठाराघात कर दिया गया। यह कार्य अध्यापक वर्ग सफलतापूर्वक कर सकता है।

विद्यार्थी बहुधा विकसित होते हैं। बहुत छोटेपन से न भी सही किन्तु कैशोर्य के शुरू होते ही उनमें बहुत-सी बात अपना लेने की जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है। यह जिज्ञासा अधिकतर उनमें विलास सम्बन्धी बातों के प्रति ही होती है, जिससे कि वे प्राय: अनेक कुटेवों के शिकार बन जाते हैं। इस अवस्था में ही अक्सर वे पान, बीड़ी-सिगरेट तथा अन्य प्रकार के नशों का करना सीख लेते हैं। अस्तु, आवश्यक है कि अध्यापकगण उस समय उन्हें कुटेवों तथा दुर्व्यसनों से बचाने के लिए सावधानी पूर्वक प्रयत्न करें।

आस्तिकता एवं ईश्वर विश्वास

विद्यार्थियों के आचरणहीन हो जाने के कारणों में एक बड़ा कारण आस्तिकता का अभाव भी है। ईश्वर में विश्वास और उसके सर्वदर्शी तथा सर्वव्यापक होने की भावना लोगों को बहुत कुछ अपक्रमों से बचाए रखती है। सच्चा आस्तिक एक तो अपकर्मों की ओर स्वभावत: उन्मुख नहीं होता है और यदि कभी ऐसा संयोग घटित भी हो जाता है तो वह उसके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं करता। करते हुए भी न करूँ का भाव बना रहता है, जो कि उसकी आत्मा को कलुषित होने से बचाए रहने के साथ-साथ आगे के लिए हतोत्साह किए रहता है और फिर अपकर्माक्रांत आस्तिक आत्मा से प्रायश्चित करता हुआ भगवान से क्षमा के लिए कातर निवेदन किया करता है और सदैव ही अपनी रक्षा करने की प्रार्थना करता है। उसकी कातर पुकार सुनकर परमात्मा सदैव ही उसकी रक्षा तथा सहायता करता है। इस प्रकार आस्तिकता किसी भी अपकर्म से बचाए रखने में बहुत कुछ सहायक होती है।

सादगी और शालीनता

सब कुछ जानने, बूझने तथा अपनाने के बावजूद भी यदि विद्यार्थी वर्ग जीवन में व्यवस्था न सीख पाया, तो उसका सुन्दर चरित्र भी असुन्दर हो जायगा। जितना जीवन अव्यवस्थित है, अस्त-व्यस्त एवं अनियमित है। वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानो सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है, जीवन को सुन्दर एवं सुरूपवान बनाने के लिए विद्यार्थियों में व्यवस्थित रहन-सहन की चेतना भरना नितान्त आवश्यक है।

अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों की व्यवस्था पर हर समय तीव्र दृष्टि रखें और किसी भी प्रकार की अस्त-व्यस्तता देखते ही टोकने तथा सँभालने में आलस्य न करें। ऐसा यदि उनको दिन में एक हजार बार करना पड़े तब भी उससे ऊबने की आवश्यकता नहीं, विद्यार्थियों में व्यवस्था का अभ्यास होना उनके जीवन का सबसे सफल निर्माण है। साथ ही अध्यापकों को भी अपना आचरण ऐसा बनाना चाहिए, जो उन्हें व्यवस्थित बनाने में सहायक उदाहरण बन सके।

स्वास्थ्य संरक्षण की समस्या—स्वास्थ्य मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ सम्पदा है। इसको प्राप्त करने तथा बढ़ाने की सबसे उपयुक्त आयु बाल्यकाल ही है। जो बालक अपने विद्यार्थी जीवन में ही स्वास्थ्य के प्रति रुचिवान हो जाते हैं, फिर आगे चलकर वे कभी भी उसकी उपेक्षा नहीं करते और आजीवन एक स्वस्थ जीवन का सुख भोगा करते हैं। इसलिए अध्यापकों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें।

स्वास्थ्य लाभ के लिए विद्यार्थियों के लिए सबसे उत्तम व्यायाम है—खेलना। हॉकी, फुटबाल, वालीबाल, बास्केटबाल, क्रिकेट, बैडमेन्टन आदि खेलों के साथ कबड्डी, छूना-पकड़ना, दौड़ना, कूदना, डम्बल, जिम्नास्टिक, तैरना और न जाने इस प्रकार के कितने खेल हो सकते हैं। इनमें से जिन विद्यार्थियों के लिए जो खेल उपयुक्त हों और परिस्थितियों के अनुसार अनुकूल हों उन्हें नित्य ही खिलाया जाना चाहिए। खेलों द्वारा विद्यार्थियों में स्वास्थ्य की अभिरुचि पैदा करने के लिए उनमें प्रतियोगिताएँ कराकर पुरस्कार भी वितरित किए जा सकते हैं। किन्तु इन प्रतियोगिताएँ को कराते समय यह ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि विद्यार्थियों में परस्पर हार-जीत की ईर्ष्यापूर्ण प्रतिस्पर्धा न होने पाए। इसके लिए प्रतियोगिताओं तथा खेलों का महत्त्व समझाते हुए उनमें खिलाड़ी की भावना से खेलने का भाव बैठाया जा सकता है। प्रतियोगिता में उतरने से पूर्व उनका हाथ मिलवाना तथा खेल के बाद उनका हाथ मिलवाना और एक साथ बिठालकर स्वल्पाहार कराया जाना, उनमें आई हार-जीत की भावना को दूर कर सकता है।

सद्वृत्तियों का आविर्भाव

इस प्रकार के जितने प्रयत्न बच्चों की प्रगति के लिए किए जाते हैं, उनका उद्देश्य यही होता है कि उनकी मानसिक और शारीरिक शक्तियों का अधिकाधिक विकास हो। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जन्म से ही कोई बालक श्रेष्ठ और शक्तिवान नहीं होता। माता के गर्भ से पैदा होते समय सभी बच्चे लगभग एक से ही होते हैं। पर बाद में उसका लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा जिस प्रकार की जाती है, उससे ही विद्वान अथवा मूर्ख, कमजोर अथवा बलवान, सद्गुणी या दुर्गणी होते हैं। बच्चों को माता-पिता का संगी-साथियों का शिक्षक और मार्गदर्शकों का जैसा व्यवहार प्राप्त होता है वैसे ही वह बन जाते हैं।

इस दृष्टि से बालकों के चरित्र-निर्माण का प्रथम उत्तरदायित्व माता-पिता और दूसरा अध्यापकों का होता है। अगर ये लोग स्वयं उच्च चरित्रवान और कर्त्तव्यपरायण हों तो उनकी देख-रेख में रहने वाले बच्चे भी सद्गुण सम्पन्न और कर्त्तव्यनिष्ठ बनेंगे और यदि उनमें स्वयं तरह-तरह के दोष भरे हैं और वे आलसी तथा प्रमादी हैं तो उनके द्वारा बालकों का सुधार के बजाय बिगाड़ ही अधिक होगा। जो माता-पिता स्वयं चटोरे हैं वे बालक को जिह्वा संयम अथवा आस्वादव्रत की शिक्षा किस प्रकार दे सकते हैं ? इसी प्रकार जो शिक्षक स्वयं बीड़ी, सिगरेट फूँकते रहते हैं, वे लड़कों को धूम्रपान के दोषों से कैसे बचा सकते हैं।

आजकल देखने में प्रायः यह आता है कि माता-पिता अपने बच्चों के प्रति मोहग्रस्त होते हैं और उनमें उत्तम आदतों और चरित्र की दृढ़ता उत्पन्न करने के बजाय उनकी झूठी-सच्ची माँगों को बिना विचार किए पूरा कर देने और मिठाई, चटपटे पदार्थ खिला-पिला देने में ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझ लेते हैं। इससे बच्चे आरम्भ से ही जिद्दी, चटोरे और कमजोर बन जाते हैं। आगे चलकर जब वे स्कूल जाने लगते हैं तो वहाँ के अध्यापक उनको पाठ्यक्रम की पुस्तकें पढ़ा देना ही अपना कर्त्तव्य मानते हैं और वह भी प्रायः ऐसे बेढंगेपन से जिससे उसकी मानसिक शक्तियों की वृद्धि होने के बजाय वह रट कर या चालाकी से काम चलाना ही सीखता है।

विद्या और बुद्धि की उन्नति होने से भी बढ़कर आवश्यक बात है बालकों के चरित्र का सुधार और हृदय में सद्वृत्तियों का बीजारोपण। यद्यपि इन विषयों के पाठ स्कूली पुस्तकों में रहते हैं और अध्यापक उनको पढ़ाते भी हैं, पर वह पढ़ाना तोते को रटाने की अपेक्षा अधिक नहीं होता। सच्चरित्रता तथा परोपकार के पाठ पढ़ाते हुए भी वे बालकों के स्वभाव और प्रवृत्तियों की तरफ से आँखें मूँदे रहते हैं, उनको जो कुछ शिक्षा इस सम्बन्ध में प्राप्त होती है, वह अपने समवयस्क अथवा बड़ी आयु के लड़कों द्वारा ही प्राप्त होती है। ये बड़े लड़के स्कूलों के दूषित वातावरण से तरह-तरह के दोषों के शिकार बने रहते हैं और नये बालकों को भी उन्हीं सब गन्दी और शैतानी आदतों को सिखाते हैं। अध्यापकों की लापरवाही और आलस्य का नतीजा यह होता है कि सीधे-सुशील बालक भी कुसंग के कारण बिगड़ने लगते हैं और थोड़े समय में पूरे उद्दण्ड और शरारती बन जाते हैं। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ना-लिखना तो कम सीखते हैं, पर शौक, फैशन और अनेक प्रकार के दुर्गुणों के अवश्य अभ्यस्त बनते चले जाते हैं। कुछ समय पश्चात जब वे अवज्ञाकारी और धृष्ट बन कर घर वालों और स्वयं अध्यापकों को भी तंग करने लगते हैं और अनेक बार तो किसी बात पर बिगड़ कर डण्डा और छुरा लेकर आक्रमणकारी बन जाते हैं, तब सबको अपनी भूल का पता लगता है।

लड़कों के चरित्र तथा स्वभाव का नाश होने में एक बहुत मुख्य कारण आजकल सिनेमा भी हो गया है। जहाँ आरम्भ में इसे मनोरंजन और शिक्षा का माध्यम समझा गया था। वहाँ अब यह दोष और दुर्गुणों को शिक्षक बन गया है, सस्ते और दिखावटी प्रेम से लेकर बैंक डकैतियों तक की तालीम आज लड़के सिनेमा से प्राप्त कर रहे हैं। माता-पिता और शिक्षक स्वयं सिनेमा के प्रेमी होते हैं, वे लड़कों को उससे कैसे रोक सकते हैं? उधर सरकार को उससे करोड़ों रुपए का टैक्स प्राप्त हो जाता है वह भी उसकी उन्नति के मार्ग में बाधक होना नहीं चाहती। रह गई सिनेमा कम्पनियाँ, उनका उद्देश्य धन बटोरने के सिवाय और कुछ हो नहीं सकता। चाहे देश चौपट हो और चाहे भावी सन्तान कुँए में पड़े, उनकी तो प्रतिमास दो चार लाख की आमदनी होनी चाहिए। नतीजा यह हुआ है कि देश में और विशेषत: छात्रों में दोष-दुर्गुणों की बाढ़ आ गई है और सब कोई उसका प्रतिकार करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

स्कूलों में लड़कों को बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास करने के लिए तरह-तरह के आयोजन होना आवश्यक है और उनसे कुछ लाभ भी होता है पर उन सब के साथ ही चरित्र और स्वभाव का सुधार होना आवश्यक है। हमारे बालक आगे चलकर सभ्य और शिष्ट नागरिक बनें और देश और समाज को प्रगति-मार्ग पर अग्रसर करने में सहायक हों, यह सबसे पहली और आवश्यक शर्त है, इसका ध्यान रखना प्रत्येक अध्यापक का परम कर्त्तव्य होना चाहिए।

यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि अध्यापक का पद बड़ा महत्त्वपूर्ण है और उनके ऊपर समाज तथा राष्ट्र के निर्माण का बहुत अधिक उत्तरदायित्व है। प्राचीन भारत में इसी कारण ऋषियों और ब्राह्मणों को बहुत अधिक सम्मानीय स्थान दिया था क्योंकि वे अपनी जाति के शिक्षक और मार्गदर्शक थे। यद्यपि उस समय पुस्तकों के लिखे जाने की प्रणाली प्रचलित नहीं हुई थी और न कागज, कलम, दवात का प्रयोग ही होने लगा था, फिर भी अपनी अद्भुत स्मरणशक्ति के आधार पर ही वे वेद से लेकर चौंसठ विद्याओं तक का ज्ञान प्राप्त कर सकने में समर्थ थे। उस समय बहुसंख्यक व्यक्तियों के पास शिक्षक को उनका पारिश्रमिक देने के लिए किसी प्रकार की सम्पत्ति भी नहीं होती थी। फिर भी वे कर्त्तव्यपरायण अध्यापक विद्यार्थियों को विद्यादान ही नहीं करते थे। किसी विधि से उनके भोजन, वस्त्र और आवास की व्यवस्था भी करते थे शिष्य लोग उनके कृषि कार्य तथा पशुपालन में सहायता देते रहते थे किसी विधि से उनके भोजन, वस्त्र और आवास की व्यवस्था भी करते थे। जिससे उनके निर्वाह की समस्या भी हल हो जाती थी और उनको जीवनोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता था। इस प्रकार के अध्यापक अपने यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के सच्चे हितचिन्तक और अभिभावक का कर्तव्यपालन करने वाले थे।

इसी प्रकार यूनान में भी जो गत चार-पाँच हजार वर्षों से मानव सभ्यता के विकास में भारत का सहयोगी था, शिक्षक को समाज में सर्वोच्च पद प्राप्त था। वहाँ बालकों और युवकों की शिक्षा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया था और राज्य की तरफ से इस बात पर विशेष दृष्टि रखी जाती थी कि शिक्षक और अध्यापक अपना कर्त्तव्य उचित रीति से पालन करते हैं या नहीं। वहाँ पर शिक्षकों को पर्याप्त अधिकार भी दिए गए थे और शारीरिक विकास तथा शस्त्र-संचालन की अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने में अगर किसी की अंग हानि मृत्यु हो जाय तो भी उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाती थी। वहाँ के बड़े बादशाह भी अपने पुत्रों की शिक्षा के लिए योग्य शिक्षक तलाश करके नियुक्त करते थे। संसार विजयी सिकन्दर अपनी महान सफलता का श्रेय अपने गुरु अरस्तू को ही देता था और आजीवन उसके सम्मुख विनयावत भाव से ही रहा। अरस्तू के गुरु प्लेटो (अफलातून) का नाम भी आज तक संसार में प्रसिद्ध है और समस्त योरोपीय विद्वान तथा दार्शनिक उसको अपना आदि मार्गप्रदर्शक मानते आए हैं। जो दर्जा सिकन्दर की सफलता की दृष्टि से अरस्तू का था, वही महत्त्व भारत में मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त और उसके गुरु चाणक्य को है। उसे भी आज तक अपने कर्त्तव्य का सर्वोत्तम रीति से पालन करने के निमित्त सम्मानित किया जाता है। क्या हमारे वर्तमान अध्यापकगण अपने इन पूर्वजों के उदाहरण से प्रेरणा लेकर अपने शिष्यों को सच्चे अर्थों में सुयोग्य बनाने की कुछ चेष्टा करेंगे।

अभिभावकों का सहयोग

बच्चों के कार्यक्रमों के अवसर पर अभिभावकों को बुलाने के साथ-साथ अध्यापकों को उनके घरों पर भी जाना चाहिए। समय-समय पर उनकी बैठकें करना और उनमें बच्चों द्वारा राष्ट्र रचना की योजना पर वार्तालाप तथा विचार-विमर्श करना चाहिए। इस प्रकार बच्चों को महत्त्व देने से अभिभावकों के हृदय में उनके प्रति ममता की तथा मूल्य का बोध होगा और तब वे बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में उद्देश्यपूर्ण उत्तरदायित्व का समावेश करने लगेंगे, अभिभावकों का यह विकसित व्यवहार बच्चों के मानसिक तथा चरित्र विकास में बहुत सहायक होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार जब अध्यापक एवं अभिभावक एक साथ बच्चों की चारित्रिक रचना में लग जाएँगे तो कौन कह सकता है कि राष्ट्र का उद्धार होते देर लगेगी।

अभिभावक बच्चों का विकास और उनका चरित्र निर्माण किस प्रकार करें ? यह भी उन्हें अध्यापकों द्वारा ही बताया जाना चाहिए। इस प्रकार अध्यापक तथा अभिभावकों के प्रयत्नों में एकरूपता रहने से बच्चों की मनोनीति रचना स्निग्धतापूर्वक होती चली जाएगी और घर तथा विद्यालय में एक जैसा वातावरण मिलने से बच्चों के संस्कार तेजी से शुभम् की ओर अग्रसर होते चले जाएँगे। उभय स्थानों पर एक जैसा वातावरण रहने से यह शंका कदापि न रहेगी कि बालक विद्यालय से जो वातावरण लेकर आए, वह घर के कटुतापूर्ण व्यवहार से क्षीण हो जाए।

जिन घरों के अभिभावक पढ़े-लिखे न हों उन्हें भी घरों का विचार तथा पठन-पाठन की गोष्ठियों में संकोच नहीं करना चाहिए। ऐसे अभिभावकों को चाहिए कि वे गोष्ठियाँ तो अपने तत्वावधान में कराएँ और पुस्तकें तथा समाचार-पत्र बच्चों से पढ़वा कर सुनें। अभिभावक पढ़कर सुनाते हैं अथवा बच्चे, तात्पर्य इस बात से नहीं है तात्पर्य है घरों में विचारगोष्ठियाँ होने से।

अभिभावकों को इस राष्ट्र रचना में सहयोगी बनने की प्रेरणा देने के लिए अच्छा हो कि अध्यापकों की तीन-तीन, चार-चार की टोलियाँ जाएँ। अनेकों के जाने तथा कहने से अभिभावकों पर जल्दी प्रभाव पड़ेगा और वे हर बात मानने को तैयार हो जाएँगे। अनेक अध्यापक अनेक प्रकार से अनेक बातों को समझा और उनका हानि-लाभ बतला सकते हैं।

इस प्रकार यह कतिपय कार्यक्रम निवेदन कर देने के बाद आगे प्रार्थना है कि ये सब कार्यक्रम राष्ट्र-रचना का उद्देश्य तभी पूरा कर सकते हैं, जब अध्यापक वर्ग इनके प्रति मन-वचन-कर्म से निष्ठावान बनें और विद्यार्थियों से पूर्व स्वयं उनके लिए आदर्श निर्देशक बनें। जब तक अध्यापकगण स्वयं भी योजनानुकूल न बनेंगे, तब तक वे अपने कर्त्तव्य में कृतकृत्य नहीं हो सकते। इसलिए उन्हें अपने गुण, कर्म, स्वभाव को ऐसे परिष्कृत ढाँचे में ढालना चाहिए, जिसके सम्पर्क में आने वाले बच्चे स्वयं ही आवश्यक प्रेरणा एवं प्रकाश प्राप्त कर सकें।

अवकाश काल का सदुपयोग हो

अवकाश का अर्थ बेकार पड़े रहना अथवा सोते रहना नहीं है और न उसका यह भी आशय है, जिन्हें अवकाश मिला है, वे बेकार में इधर-उधर बैठकर और गप लड़ाकर समय नष्ट कर डालें। अवकाश का तात्पर्य है निरन्तर किए जाने वाले को कुछ समय के लिए स्थगित करके कुछ ऐसा काम करना, जिससे नवीनता आए, मन-मस्तिष्क में कुछ परिवर्तन आए, नया ज्ञान मिले और मनोरंजन हो।

पढ़ने वाले लड़कों को वर्ष में सब मिलाकर लगभग छह माह का अवकाश प्राप्त होता है। इस अवकाश में से यदि त्यौहारों तथा साप्ताहिक छुट्टियाँ निकाल दी जाएँ, तब भी यह अवकाश का समय चार साढ़े चार माह का तो बच ही जाता है। उसमें गर्मी की छुट्टी तो एक साथ ही लगभग दो माह की होती हैं। यह सारा अवकाश बच्चे घर में पड़े-पड़े सोते हुए बिताते हैं अथवा नाते-रिश्तेदारी में, विवाह-शादी करके। इस अवकाश का कोई समुचित उपयोग हो सके तो निश्चित है कि इस अवधि में बच्चे बहुत-सा नया ज्ञान और अर्थ तक उपार्जन कर सकते हैं।

नौकरी पेशा अथवा अभिभावकों को छोड़कर लगभग अन्य सारे अभिभावकों में से किसी के खेती का काम होता है, तो किसी के यहाँ रोजगार और दुकानदारी होती है। ऐसे अभिभावकों को चाहिए कि वे अपने बच्चों को अवकाश के समय में उन कामों में लगाया करें, यह कभी न सोचें कि यह तो पढ़ने-लिखने वाले हैं, इनका मन-मस्तिष्क इसमें कभी नहीं लग सकता। खेलकूद लेने दिया जाय। जब समय आएगा, काम-काज सिर पर आ पड़ेगा तो आप कर लेंगे, अभिभावकों की यह विचार धारा अवैज्ञानिक है। जिन बच्चों को शुरू से ही थोड़ा-थोड़ा काम में लगाया जाता रहता है, उनका उस काम में इस प्रकार से प्रशिक्षण होता चलता है उन्हें उसकी बाहरी व भीतरी बातें पता चलती हैं। मस्तिष्क का उसकी बारीकियों तथा कठिनाइयों से परिचय होता है। उनकी रुचि बढ़ती जाती है और जब वे पढ़ाई पूरी करने के बाद वह काम अपने हाथों में लेते हैं, तो वह उनके लिए बहुत नवीन या कठिन नहीं होता।

अवकाश का समय जिस प्रकार से चाहें खराब करें, बच्चों को इसकी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए। उन दिनों उसका सामान्य नियम-बन्धन भी टूट जाता है। पढ़ाई-लिखाई का काम करना एक तरह से स्थगित हो जाता है। इसलिए समय पर उठना, स्कूल के लिए तैयारी करना, समय पर पढ़ना और समय पर खेलने के सारे नियम शिथिल हो जाते हैं, जिससे उनमें आलस्य, अव्यवस्था तथा अनियमितता की दुर्बलता पैदा हो जाती है, जो स्कूल खुलने के बाद बहुत-सा समय लेकर दूर हो पाती है। इसलिए उनको अवकाश के दिनों में सोने, मटरगश्ती करने अथवा जहा-तहाँ निठल्ले उठने-बैठने की छूट कदापि नहीं दी जानी चाहिए। अवकाश होने पर उन्हें किसी उपयोगी काम में लगाया जाना चाहिए। यह उनके भविष्य के लिए हितकारी होगा। बेकार फिरते रहने से उनमें अनेक प्रकार के विकार, व्यसन भी पैदा हो सकते हैं। इन सबकी सम्भावनाएँ बच्चों को काम में लगाए रहने से दूर हो जाती है।

प्रगतिशील देशों में छात्रों का अवकाश बेकार नहीं जाने दिया जाता है। उनमें संस्थाओं तथा सरकार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहयोग से छात्रों के अवकाश शिविरों का आयोजन किया जाता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका को ले लीजिए; वहाँ ये शिविर बड़े व्यावहारिक ढंग से चलाए जाते हैं और प्रतिवर्ष इनमें अधिकाधिक छात्र आकृष्ट होते रहते हैं। उन अवकाश शिविरों में उन्हें सुन्दर आहार, उचित काम, खेलकूद और स्वस्थ मनोरंजन के अवसर दिए जाते हैं। मनोवैज्ञानिक निर्देश, प्राथमिक चिकित्सा, जन-सेवा, व्यायाम, खेलकूद, तैराकी, भोजन बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्हीं शिविरों में उन्हें नैतिकता, देशभक्ति तथा संसार की राजनीति पर प्रवचन तथा भाषण भी दिये जाते हैं और दिलाए भी जाते हैं। विद्यार्थियों में नई रुचि तथा नई चेतना भी होती है। उनका मन पूरी तरह से लगता और वे शिविरों से प्राप्त ज्ञान का उपयोग भी अपनी योग्यता प्रदर्शित करने में किया करते हैं।

अमेरिका की तरह छात्रों के अवकाश शिविरों का प्रचलन रूस में भी है। वहाँ इनका आयोजन शिक्षा बोर्ड करता है। यद्यपि अभिभावकों से कुछ अनुदान लिया जरूर जाता है। किन्तु इनका अधिकांश व्यय शिक्षा बोर्ड ही किया करता है। प्रत्येक विद्यालय अपना समयावकाश का शिविर स्वयं आयोजित करता है। किसी पूर्व निश्चित स्थान पर बच्चों के रहने का प्रबन्ध झोंपड़ों, लकड़ी के मकानों अथवा पुराने ग्रामों के खाली पड़े निवासों में कर दिया जाता है। इन शिविरों में स्वास्थ्य, विश्राम तथा मनोरंजन के कार्यक्रमों के सिवाय विद्यार्थियों को नागरिकता की शिक्षा भी दी जाती है। इन शिविरों में बच्चों की टोली बँट जाती है, जो बारी-बारी से सबके लिए भोजन बनाती और खिलाने की व्यवस्था करती है। इस प्रकार उनको न केवल पाक विद्या का अभ्यास होता है बल्कि प्रीति तथा सहभोज का आनन्द मिलता है।

अवकाश कार्यक्रमों से निवृत्त होकर विद्यार्थी स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी मनमौज के मनोरंजन कर सकते हैं। इस समय कोई तो पेड़ों पर चढ़ने का अभ्यास करता है, कोई हरी-हरी घास पर बैठकर वार्तालाप करते हैं। कोई अपनी कूची और रंग लेकर प्रकृति का चित्रण किया करता है। कोई कविता लिखता तो कोई संगीत का आनन्द लेता है। इसके अतिरिक्त क्षेत्र की सफाई, शिविरों की व्यवस्था तथा दूर-दूर तक सैर-सपाटों का कार्यक्रम भी रहता है। द्वितीय महायुद्ध के समय रूस के छात्रों ने सत्र की छुट्टियाँ अपने अध्यापकों की देख-रेख में सामूहिक तथा सहकारी खेतों में काम करने में ही बिताई थीं। १९४२ के अवकाश में पैंतालीस लाख छात्रों और आठ लाख अध्यापकों ने खेती में हाथ बँटाया था। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे बच्चों ने विभिन्न कार्यों के लिए फलों, कुकुरमुत्तों और औषधियों का भी संग्रह किया था। केवल बीस प्रदेशों के बच्चों ने स्थानीय अधिकारियों को लगभग तीन सौ चवालीस टन फुरवा, घड़का, कुकुरमुत्ता, ग्यारह सौ तिरेपन टन बेरी और फल और ग्यारह सौ पचास टन औषधियों का संग्रह भेंट किया था। बच्चों की यह राष्ट्रीय सेवा किसी भी दृष्टिकोण से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। कौन कह सकता है कि बच्चों की इस देशभक्ति के इस परिश्रम तथा इस पुरुषार्थ से स्वाधीनता की रक्षा में कितना योगदान किया था।

इन्हीं अवकाश शिविरों के अवसर पर बच्चों को सहकारिता, सहयोग, राष्ट्रीयता तथा नागरिकता की शिक्षा व्यावहारिक रूप से दी जाती है। सरकारी खेती और सामूहिक फार्मिंग का प्रशिक्षण दिया जाता है। इन भौतिक लाभों के अतिरिक्त इन शिविरों से छात्रों को भावनात्मक लाभ भी कम नहीं होता। इससे उनमें पारस्परिकता, प्रेम सौहार्द्र की भावना बढ़ती है। वे सहकारिता तथा मिल-जुलकर काम करने के मूल्य को समझते हैं, उनमें भाई-चारे का भाव बढ़ता है और कितना अच्छा हो कि भारत में भी ऐसे छात्रों के अवकाश शिविर आयोजित किए जाएँ और उनको उपयोगी काम तथा महान चरित्रों की शिक्षा दी जाया करे। सरकार तथा संस्थाओं से आशा की ही जा सकती है, साथ ही अभिभावकों से भी यह आशा करना अनुचित नहीं कि वे अपने बच्चों को छुट्टियाँ आलस में न बिताने दें, उन्हें ऐसे उपयोगी कामों में लगाते रहें जिनका सुफल वे स्वयं पावें और उनका राष्ट्र भी। अध्यापक तथा अभिभावक मिलकर किसी न किसी प्रकार इस प्रकार के छोटे-छोटे छात्र शिविरों का आयोजन कर सकते हैं और देश व समाज के हित में उन्हें करने ही चाहिए। यदि भावना है तो सब कुछ हो सकना सम्भव है।

बच्चों की शिक्षा और दीक्षा दोनों आवश्यक

संसार में निर्बल और प्रभावहीन रहकर जीने में कोई मजा नहीं है। जो निर्बल अथवा प्रभावहीन होता है उसे कोई पूछता नहीं, सभी उसे अपना शिकार बनाने की कोशिश किया करते हैं। जीवन में निर्बल होने का अर्थ है संसार के कुटिल तथा स्वार्थी लोगों का भोजन बन जाना।

निर्बलता और प्रभावहीनता का कारण है—अज्ञान और अज्ञान का कारण है अशिक्षा और संसार की गतिविधि से दूर रहना। जो अशिक्षित है वह किसी से ठीक तरह बात कर सकने में असमर्थ रहता है और दूसरों की बात भी ठीक प्रकार से नहीं समझ सकता। अध्ययन द्वारा महापुरुषों के विचारों तथा अनुभवों का लाभ नहीं उठा सकता, इसलिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा बहुत आवश्यक है।

केवल शिक्षा ही ज्ञान की संवाहिका नहीं हो सकती। किसी ने एम. ए., बी. ए. तक शिक्षा भी प्राप्त कर ली किन्तु वह समाज से दूर-दूर संसार की गतिविधियों से विरत आत्मलीन जैसा रहता है, न लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सम्पर्क में आता है और न विचारों का आदान-प्रदान ही करता है, तो उसकी शिक्षा उसके क्या काम आ सकती है ? इस प्रकार एकाकी रहकर वह अपनी विद्या का लाभ न स्वयं उठा पाता है और न किसी दूसरे को दे पाता है। संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? लोगों की विचारधारा किस ओर बह रही है, वर्तमान परिस्थितियों में हमें क्या और कैसे करना चाहिए ? इसका ज्ञान प्राप्त किए बिना अपनी दिशा, कार्यपद्धति और साधनों का निर्णय नहीं किया जा सकता। जिसे अपने आस-पास की गतिविधि तथा परिस्थिति की जानकारी नहीं, वह शिक्षित होने पर भी अज्ञानी ही माना जाएगा। इसलिए ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिक्षा पाना और संसार का अध्ययन करते रहना बहुत आवश्यक है।

शिक्षा का समारम्भ बचपन से होता है। पाँच-छह वर्ष की आयु में जबकि प्राय: शिक्षा प्रारम्भ की जाती है, बच्चों के पास अपनी स्वयं की समझ नहीं होती। वे अपना अच्छा-बुरा भी नहीं समझ पाते। साथ ही उनमें पढ़ने की स्वत: प्रेरणा नहीं होती। उस समय तो उन्हें खेलना और शरारत करना ही पसन्द होता है। पढ़ने के लिए जिस दिन से बिठाले जाते हैं, उस दिन तक उनका एकमात्र काम खेलना ही होता है। पढ़ाई उनके लिए सर्वथा नवीन तथा स्वभाव अथवा अभ्यास के विरुद्ध होती है। तभी वे उस विषय में अभिभावकों तथा अध्यापकों को काफी दिनों तक परेशान करते रहते हैं, किन्तु जब धीरे-धीरे अन्य बच्चों के साथ अभ्यस्त हो जाते हैं फिर अपने आप पाठशाला जाने लगते हैं। उनका अभ्यास उस दिशा में ढल जाता है, किन्तु इसके लिए अभिभावकों को काफी परिश्रम करना पड़ता है। उन्हें उस सम्बन्ध में बड़ा सावधान तथा सतर्क रहना होता है। बच्चे की गाड़ी जब चल निकलती है, तो फिर वे असावधान अथवा उदासीन हो जाते हैं।

पढ़ाई के सम्बन्ध में बच्चों की गाड़ी चल निकलने के बाद अभिभावकों का तटस्थ हो जाना अथवा सोचकर असावधान हो जाना कि अब तो वह स्कूल जाने ही लगा है, अपने को परेशान होने की क्या जरूरत। अब बच्चा और अध्यापक आप निपटते रहेंगे, ठीक नहीं। अभिभावकों की इस उदासीनता से बच्चों की शैक्षणिक प्रगति मन्द हो जाती है। अभिभावकों को, जब तक बच्चे पूरी तरह आत्म-प्रबुद्ध न हो जाएँ, उनकी पढ़ाई और प्रगति में पूरी-पूरी दिलचस्पी लेते रहना और प्रेरणा देते रहना चाहिए। इससे वे उत्तरोत्तर तेजी से बढ़ते चले जाते हैं।

अभिभावकों को चाहिए कि वे नित्यप्रति सायंकाल घण्टा-आध घण्टा बच्चों की पढ़ाई-लिखाई देखने के लिए बैठा करें। इस समय वे उनसे स्कूल में क्या पढ़ाई चल रही है, कितना पाठ्यक्रम हो चुका है और कितना शेष है, इसका पता लगाया करें, साथ ही उससे पढ़े पाठों के विषय में प्रश्न करके यह पता लगाया करें कि बच्चे जो पाठ पढ़ चुके होते हैं, वह याद भी करते हैं या नहीं ? उनकी कापियाँ देखा करें और पता लगाया करें कि वे अपना काम ठीक से कर रहे हैं या नहीं ? जो गलतियाँ ठीक की जाती हैं, उन्हें बार-बार लिख कर अभ्यास कर लेते हैं या यों ही छोड़ देते हैं।

इस देखा-भाली के अतिरिक्त अभिभावकों को चाहिए कि वे उस समय बच्चों से पढ़ाई के विषय में इस प्रकार बात-चीत किया करें, जिससे वे शिक्षा की गरिमा अनुभव करें और प्रेरणा पायें। इसी समय बच्चों को स्वयं भी कुछ न कुछ पढ़ाना चाहिए और कभी-कभी उनकी परीक्षा लेकर यह पता भी करना चाहिए कि वे किस गति से प्रगति कर रहे हैं। इस प्रकार बच्चों की पढ़ाई में स्वयं भाग लेकर उनकी अभिरुचि बढ़ाते रहना चाहिए, जो अभिभावक बच्चों की पढ़ाई में स्वयं रुचि नहीं लेते, उनके बच्चे प्राय: पढ़ने-लिखने में कम ही रुचिवान हो पाते हैं।

बच्चों की शिक्षा के लिए केवल मात्र अध्यापकों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। अध्यापकों के लिए कोई एक ही विद्यार्थी तो नहीं होता, उन्हें तो पचासों विद्यार्थियों के साथ माथापच्ची करनी पड़ती है। पचास जगह बँटा हुआ उनका ध्यान तथा समय बच्चों को अधिक लाभ नहीं पहुँचा पाता। इसलिए अभिभावकों को बच्चों को स्वयं भी थोड़ा समय देकर उस कमी को पूरा करते रहना चाहिए।

यह तो रही पुस्तकीय शिक्षा की बात। इसके अतिरिक्त एक शिक्षा और है जिसे अनुभवीय अथवा यथार्थ शिक्षा कहा जा सकता है। वह यह कि बच्चों को संसार का यथार्थ अथवा व्यावहारिक ज्ञान कराया जाए। इसके दो तरीके हैं—एक यह है कि बच्चों को अपने साथ बाजार, सभा, सोसाइटियों तथा मेलों, उत्सवों में ले जाना चाहिए। ऐसे अवसरों पर अभिभावक बाजार की चीजों, उनके भावों तथा उपयोग के विषय में बतलावें और दिखलावें कि लोग एक-दूसरे से किस प्रकार बर्तते तथा व्यवहार करते हैं ? यह भी उन्हें बतलाना तथा समझाना चाहिए। व्यावहारिक ज्ञान के लिए बच्चे बड़े ही उत्सुक तथा जिज्ञासु होते हैं। अभिभावकों को अपने प्रयत्न से उनको उनके इस गुण का लाभ पहुँचाना ही चाहिए।

साथ ही अभिभावकों को चाहिए कि वे नित्य-प्रति प्रात:-सायं बच्चों को बस्ती से दूर कुछ देर के लिए घुमाने ले जाएँ। ऐसे अवसर पर उन्हें प्राकृतिक दृश्यों, पक्षियों, सामान्य वनस्पतियों तथा यदि कोई मिले सके तो पशुओं के बावत बतलाएँ। साथ ही सूर्य-चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रों तथा एकान्तशून्य आदि के आधार पर आध्यात्मिक जिज्ञासा भी जगाते चलना चाहिए। इस प्रकार बच्चों में पुस्तकीय ज्ञान के साथ व्यावहारिक जगत और अध्यात्म ज्ञान का क्रम बढ़ता चलेगा। एक बुद्धिमान अभिभावक ने अपनी इस व्यावहारिक विधि का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"मैं अपने दोनों किशोर बच्चों को अपरिचित सड़कों पर भेजता हूँ और निर्देश दे देता हूँ कि एक घण्टे घूमकर आओ और मुझे बतलाओ कि तुमने कहाँ क्या देखा ? जब वे लौटकर आते हैं तब मैं उनसे उनकी जानकारी के विषय में प्रश्न करता हूँ। उत्तर सन्तोषजनक न होने पर दूसरे दिन उन्हें फिर निर्देश के साथ भेजता हूँ कि वे रास्ते की हर चीज और घटना को खूब ध्यान से देखते चलें और उनका महत्त्व तथा विशेषताएँ हृदयंगम करते जाएँ। वे जाते और वैसा ही करते हैं। वापस आने पर मेरे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देते हैं। इस प्रकार मैं देख रहा हूँ कि मेरे दोनों बच्चों का सांसारिक तथा व्यावहारिक ज्ञान दिन-दिन बढ़ता जा रहा है, जो उन्हें आगे चल कर जीवन यात्रा में बहुत सहायक तथा उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा पूरा विश्वास है।"

निस्सन्देह यह अभिभावक एक बुद्धिमान अभिभावक हैं और बच्चों के प्रति किसी पिता का क्या कर्त्तव्य है इसको अच्छी तरह जानते तथा पालन करते हैं। जिन बच्चों को हर चीज तथा घटना को ध्यान से देखने का अभ्यास हो जाता है, वे आगे चलकर बड़े अनुभवशील तथा व्यवहारकुशल नागरिक बनते हैं। उनका यह गुण हर बात और हर समस्या को ठीक से समझने और उसका हल निकालने में बड़ा सहायक होता है। शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकें पढ़कर परीक्षा पास कर लेना भर ही तो नहीं है। परीक्षा पास करना अनिवार्य है और उसके लिए स्वाध्याय करते रहना भी नितान्त आवश्यक है, जो प्रत्येक छात्र को करते ही रहना चाहिए तथा सच्चा ज्ञान तब तक नहीं होता जब तक विद्यार्थी परमात्मा के इस विशाल विश्वविद्यालय में सूक्ष्मदर्शिता के साथ पदार्थों तथा गतिविधियों का अध्ययन नहीं करता। इस अभाव में स्कूली शिक्षा अधूरी रह जाती है।

यदि बच्चों में जीवन के हर क्षेत्र में सावधान तथा जिज्ञासु बनकर उत्सुक आँख लेकर हर चीज को ठीक से देखते और समझते चलने की आदत का विकास कर दिया जाए, तो समझो उनके लिए ज्ञान के साथ सफलता का द्वार ही खोल दिया। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, नदी, पर्वत, आकाश तथा प्रकृति के सुन्दर दृश्य अपनी मुखरता एवं मौनता में महानतम शिक्षा का भण्डार भरे रहते हैं। जो शिक्षा का लाभ उठाने की पात्रता प्राप्त कर लेता है, वह विद्वान होने के साथ-साथ यथार्थ ज्ञान से परिपूर्ण अनुभवी मनुष्य बन जाता है। उसका प्रभाव बढ़ जाता, उसकी मनोशक्ति का विकास हो जाता, उसकी आत्मा प्रकाशित हो उठती और वह सफलता के सोपानों पर कदम रखता हुआ दिन-दिन आगे बढ़ता जाता है।

हारवर्ड विश्वविद्यालय के महान जीवशास्त्री प्रोफेसर श्री ऐगाजिस के पास जब कोई नया छात्र आता तब वे उसे एक मछली देते और कहा करते थे कि आधे या एक घण्टे तक इसे अच्छी तरह देखो। जब छात्र मछली देखकर वापस आता तो वे उससे उसके विषय में पूछते और कहते कि तुमने अभी मछली को ऊपरी तथा सरसरी नजर से देखा है। इसे गहरी नजर से गहराई तक देखकर आओ। ऐसा वे अनेक बार करते थे और जब छात्र में किसी चीज को गहराई के साथ देखने और समझने की बुद्धि का विकास हो जाता था, तब उसकी शिक्षा प्रारम्भ करते थे। ऐसा करने से उनके सभी छात्र न केवल परीक्षा में ही अच्छे अंकों में पास होते थे बल्कि शिक्षा के बाद एक सफल नागरिक सिद्ध होते थे।

अभिभावकों को चाहिए कि उनके बच्चे जब तक शिक्षा के क्षेत्र में अपनी बुद्धि तथा पैरों के बल खड़े होने लायक न हो जाएँ, उनकी शिक्षा तथा सांसारिक दीक्षा में पूरी रुचि लेते रहें। उन्हें अनुभव देते और उनका अनुभव बढ़ाते रहें। जो अभिभावक ऐसा स्वयं न करके बच्चों को पुस्तकों, शिक्षालयों तथा अध्यापकों पर छोड़ देते हैं, वे उनको शिक्षा के बाद भी कच्चा रह जाने देने की भूल करते हैं। अभिभावक होना उतना सुख नहीं जितना कि उत्तरदायित्व है। जब अभिभावक बने हैं अथवा बनने की तैयारी कर रहे हैं, तो इस उत्तरदायित्व के प्रति सदा सजग, सावधान तथा सक्रिय रहना ही होगा।

निश्चय ही वे अभिभावक खेद किए जाने के पात्र हैं जो बच्चों के प्रति अपना यह उत्तरदायित्व निर्वाह नहीं करते बल्कि इसके विपरीत आचरण किया करते हैं। बच्चे की पढ़ाई-लिखाई में रुचि लेना तो दूर उल्टे उनका हर्ज ही किया करते हैं। जिस समय बच्चे स्कूल से और अभिभावक काम से आकर घर इकट्ठे होते हैं, उनके आदेशों तथा अनुपालन का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है और बच्चों का सारा पढ़ाई-लिखाई का समय उनका काम करते ही व्यतीत हो जाता है। अभिभावक महोदय एक कुर्सी अथवा चारपाई पर बैठ गए और लगे पानी, पान तथा खान-पान यथास्थान और कहीं यदि वे बैठक में दोस्तों के साथ शतरंज-ताश का चौसर जमाए बैठे हैं तब तो बच्चे न केवल बाप के ही बल्कि मुँह बोले चाचा, ताऊ के भी अरदली बन जाते हैं। क्षण-क्षण पर उनकी आवाज पड़ती रहती। पानी लाना, पान ले आ भाई, देखो चाय बन गई, दौड़कर बर्फ तो लेआ जा, अपने ताऊ को सिगरेट तो ला दो। अम्मा से कहो कि क्या चाय बिना नाश्ते की चलेगी ? जिस समान की जरूरत हो दौड़कर बाजार से ले आओ, जरा घर तक तो चले जाओ बेटा अपनी चाची से कह आओ कि चाय भाई साहब के यहाँ पी ली है मेरे लिए न बनाएँ और देखो दूध न हो तो चाची को ला देना, आदि अनेकों काम करते-करते बेचारे बच्चे चूर हो जाते हैं। खाते-पीते तक नींद धर दबाती है और फिर कहाँ की पुस्तकें और कहाँ की पढ़ाई। सायंकाल तो ऐसा रहता है, इस प्रकार के न जाने कितने निरर्थक काम उनके लिए सबेरे भी लगे रहते हैं। इनके अतिरिक्त माता क्या उन्हें कुछ कम घर-गृहस्थी के कामों में लगाए रहती है ? यह अभिभावकत्व नहीं है, अन्याय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा-भाव का विकास भी आवश्यक है

जिन बच्चों में आरम्भ से सेवा की भावना का स्वस्थ विकास कर दिया जाता है, वे आगे चलकर अपने सेवा-भाव से समाज प्रतिष्ठा के पात्र बन जाते हैं। सेवा-पथ से चलकर हजारों ऐसे व्यक्ति उन्नति के महान शिखरों पर पहुँचे हैं, जिनके पास साधन नाम की कोई वस्तु ही न थी। उनके परिवार निर्धन और निरक्षर थे।

तन, मन और वाणी से दूसरे की सेवा में रहना स्वयं इतना बड़ा साधन है कि उसके सम्मुख किसी अन्य साधन की आवश्यकता ही नहीं रहती। साथ ही अन्य सारे साधन इस एक साधन के अनुगामी रहते हैं। क्योंकि जो व्यक्ति सेवा में सच्चे मन से लग जाएगा उसको सीमा के भीतर के सारे साधन अवश्य ही प्रस्तुत रहते हैं। इस प्रकार प्रत्येक की सेवा में तत्पर रहने से प्रत्येक के साधन सुलभ रहने से साधनों की प्रचुरता हो जाएगी।

किन्तु जो नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए ही सेवा करता है, वह दूसरे के साधन का अपनी निजी आवश्यकता अथवा उन्नति के लिए उपयोग नहीं करता। और सच बात तो यह है कि उसको किसी के साधनों की आवश्यकता ही नहीं रहती। सच्चा सेवा-भाव रखने वाले के लिए पथ के अवरोध स्वयं हटते और सफलताओं के द्वार खुलते चले जाते हैं। हर आदमी उसके सेवा-भाव से प्रसन्न हो, विनिमय रूप में कुछ न कुछ सहायता एवं सहयोग के लिए लालायित रहते हैं।

अस्तु, समाज के सुन्दर निर्माण और भविष्य में उन्नति के लिए बच्चे में सेवा-भाव का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। इस सेवा-भाव को विकसित करने के लिए परिवार सबसे सुन्दर संस्था है। धीरे-धीरे गुरुजनों की सेवा प्रारम्भ करके सारे परिवार की सेवा करने के भाव जागरण करना चाहिए।

किन्तु यह शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व सेवा के स्वरूप को भी समझ लेना चाहिए। साधारणत: सेवा के दो स्वरूप होते हैं। एक तो अपनी सुख-सुविधा और आराम के लिए सेवा लेना, दूसरी वह सेवा जो सहायता, सहयोग और सहानुभूति के रूप में की जाती है। जैसे लेटकर थकान दूर करने या नींद लाने के लिए हाथ-पैर दबवाना, शरीर की मालिश करना अथवा नहाने-धोने में उससे सहायता लेना। यह प्रथम प्रकार की सेवा है, जिससे बच्चे में वांछित सेवा-भाव का उदय न होगा। कदाचित इस प्रकार की सेवा दूसरों को प्रदान करने में उसे संकोच भी होगा और न कोई अन्य व्यक्ति इस प्रकार की सेवा लेने का अधिकारी ही होता है और न वह पसन्द ही करेगा।

विपत्ति के समय सहायता करना, किसी काम में सहयोग करना और दु:ख में सहानुभूति देना—जैसे असम्भाव्य घटना में दौड़ जाना, व्याह-शादी आदि उत्सवों में हाथ बँटाना, रोगादिक कष्टों में औषिध उपचार आदि का ध्यान रखना और कारुणिक अवसरों पर शान्ति और धैर्य देना दूसरे प्रकार की सेवा है। जिसको प्रदान करने में न तो बच्चे को संकोच होगा और न कोई दूसरा अपने को अनधिकारी समझेगा। इन दोनों प्रकार की सेवाओं में जो एक अन्तर है वह यह है कि प्रथम प्रकार की सेवा में सामान्यत: दास भाव है और दूसरे प्रकार की सेवा में परोपकार भाव।

अपनी व्यक्तिगत सेवा लेने का अधिकार होते हुए भी अभिभावकों को बच्चे में परोपकार भाव ही जाग्रत करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसका प्रारम्भ घर की व्यवस्था ठीक करते समय चीजों को उठाने-धरने में अपना हाथ बँटवाकर छोटे भाई-बहनों को पढ़ाने-लिखाने और पाठशाला जाने-आने में सहयोग कराकर तथा ऐसी सेवायें लेकर किया जा सकता है जिससे उसे उसका अभ्यास हो और रुचि उत्पन्न हो।

सेवा का अभ्यास कराने के साथ-साथ उसे उसकी प्रेरणा भी देना चाहिए। उसे नित्य प्रति परोपकार की महत्ता और उससे होने वाले लाभों को बतलाना चाहिए। उसको असहायों की सहायता और आवश्यकता के समय दूसरों के काम आने के नैतिक कर्त्तव्य और उसके ढंग का ज्ञान कराना चाहिए।

यद्यपि बच्चों को पाठशाला और अनेक अन्य अवसरों पर परोपकार की शिक्षा दी जाती है, किन्तु उसका कोई यथार्थ लाभ नहीं होता। उसका कारण है कि औपचारिक रूप से कार्यक्रमों के अनुसार उसे मौखिक उपदेश भर दे दिया जाता है। वास्तविक प्रेरणा नहीं दी जाती। वास्तविक प्रेरणा तो बच्चों को ठीक-ठीक अभिभावकों से ही प्राप्त हो सकती है। क्योंकि ऐसे कामों के लिए अन्यों की अपेक्षा माता-पिता के कथन का अधिक प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक प्राणी होने के कारण बच्चे से लेकर बूढ़े तक प्रत्येक मनुष्य में सेवा और सहयोग के कुछ सहज संस्कार भी होते हैं, किन्तु वे जगाए न जाने के कारण प्रत्यक्ष नहीं हो पाते। माता-पिता की प्रेरणा से वे संस्कार शीघ्र जाग सकते हैं। क्योंकि उनके कथन में बच्चे को अधिक विश्वास रहता है। वह जानता है कि माता-पिता उसे जिस बात के लिए कहेंगे, उसमें उसका हित ही निहित होगा।

बहुत से अभिभावक बच्चों को पैसे का लोभ देकर सेवा करने के लिए प्रेरित करते हैं। जैसे—"तुम मेरे एक घण्टा पैर दबाओ तो मैं तुम्हें दो आने दूँगा।" या "तुम मेरा अमुक कर दो तो मैं तुम्हें अमुक वस्तु दूँगा।" यद्यपि इसमें एक स्नेह और बच्चों को सेवा करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए प्रोत्साहित करने की भावना छिपी रहती है, तथापि इस प्रकार सेवाओं का सौदा करने से बच्चों के लोभी बन जाने का भय रहता है। फिर वे हर जगह और हर व्यक्ति से अपनी सेवा का मूल्य चाहने लगेंगे।

किसी बच्चे द्वारा काम किए जाने पर, सभ्यता के नाते हर व्यक्ति यह प्रयत्न करता है कि उसे इसके बदले में कुछ दिया अवश्य जाए। किन्तु बच्चे में इतनी निःस्वार्थता अवश्य होनी चाहिए कि वह विनम्रतापूर्वक उसे लेने से इन्कार कर दे। जो बच्चे अपनी सेवाओं का मूल्य ले लेते हैं। वे दूसरों की सहज सद्भावना और स्नेह से वंचित हो जाते हैं।

निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले बच्चे सबको प्यारे लगते हैं। सबके हृदय में उनके लिए एक आशीर्वाद का भाव रहता है। हर व्यक्ति अपनी आत्मा से उनके कल्याण की कामना करता है। इस प्रकार बच्चे के साथ ज्यों-ज्यों उसका सेवा कार्य बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसी अनुपात से समाज में अधिक से अधिक उसके प्रति सद्भावना का कोष बढ़ता जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि उसकी उपयोगिता इतनी बढ़ जाती है कि अधिक से अधिक जनसमुदाय उस पर निर्भर रहने लगता है और तब वह राष्ट्र और समाज का एक स्वस्थ नेतृत्व करने योग्य व्यक्ति मान लिया जाता है।

संसार के इतिहास में एक नहीं हजारों ऐसे उदाहरण हैं कि साधारण से साधारण व्यक्ति सामान्य सेवा मार्ग से चलते हुए राष्ट्र के महान से महान नेता हुए हैं। किन्तु यह होता तब ही है जब किसी का सेवा-भाव निःस्वार्थता की चरम सीमा पर होता है। बड़ी से बड़ी पदवी पर पहुँच कर भी वहाँ उसके सेवा-भाव में दोष आया नहीं कि वहीं से उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है। जहाँ अनन्त उन्नति के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं, वहाँ इस प्रकार के पतनों के उदाहरणों की भी कमी नहीं है।

अतएव जहाँ बच्चे में सेवा-भाव का विकास किया जाय, वहाँ निःस्वार्थ भावना के संस्कार भी डाले जाएँ। निःस्वार्थ सेवा करने में दिनों-दिन उसके प्रति उत्साह की वृद्धि होती है। इसके विपरीत स्वार्थपूर्ण सेवा-भाव आगे चलकर कुछ समय में अपने पर एक बोझ बन जाता है। जिसको वहन कर सकना सामर्थ्य के बाहर हो जाता है।

सेवा का कोई तात्कालिक मूल्य न लेते हुए भी यदि भविष्य की उन्नति का भी ध्यान रखा जाएगा, तो यह भी एक प्रकार का स्वार्थ ही होगा। क्योंकि इस प्रकार तो यह भाव अपने सेवा-मूल्यों को समाज में संचित करते रहने और आगे के नेतृत्व आदि के रूप में इकट्ठा वसूल कर लेने के समान ही होगा, जो उसकी सहज और सच्ची उन्नति में बाधक होगा।

अस्तु, बच्चों को क्या वर्तमान और क्या भविष्य में होने वाले किसी लाभ की भावना से मुक्त रखते हुए, उनमें निःस्वार्थ सेवा का भाव सदा के लिए ही उत्पन्न किया जाना चाहिए।

बच्चों को व्यवहार-कुशल बनाइए

बच्चों को व्यवहार-कुशल बनाने के लिए उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना बहुत आवश्यक है। जिन बच्चों में उत्तरदायित्व का भाव जाग जाता है, वे हर काम बड़ी होशियारी से करते हैं। हर समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनसे कोई काम बिगड़ न जाए। उन पर कोई अँगुली न उठा सके अथवा किसी समय वे उपहासास्पद न बन जायें।

व्यवहार-कुशलता का सीधा-सा अर्थ है कोई ऐसी बात या कोई ऐसा काम न करना, जिससे किसी को कोई तकलीफ पहुँचे अथवा वे आलोचना या उपहास के पात्र बन सकें।

यद्यपि सारे क्षेत्रों में किसी का पूर्णरूपेण कुशल हो सकना असम्भव के समकक्ष जैसी बात है, तथापि समाज में साधारण व्यवहार-कुशलता प्राप्त कर लेना सबके लिए सुसाध्य एवं आवश्यक है। जो सामान्य सामाजिक व्यवहार में कुशल नहीं होते, वे अन्दर से अच्छे होते हुए भी समाज में उचित स्थान नहीं पा सकते। लोग उनके विषय में यह कहकर आलोचना किया करते हैं कि अमुक व्यक्ति हो सकता है अन्दर से अच्छा हो किन्तु व्यवहार से अच्छा प्रतीत नहीं होता और समाज में इस प्रकार की धारणा लोगों को उसके प्रति शंकालु ही बनाए रखती है।

समाज में विनिमय, वार्तालाप, सम्बन्ध एवं सामंजस्य चार ऐसी बातें हैं, जिनकी पृष्ठभूमि पर ही सारे सामाजिक व्यवहार आधारित रहते हैं। इन चार बातों को ठीक से व्यवहार कर सकने की योग्यता प्राप्त कर लेना ही व्यवहार दक्षता है।

विनिमय का अर्थ है, आदान-प्रदान अथवा लेन-देन। जो पैसे का, भावनाओं का अथवा विचारों का हो सकता है। विनिमय व्यवहार में जहाँ तक हो सके सीमान्त स्पष्टता एवं ईमानदारी रखनी चाहिए। जैसे कोई वस्तु खरीदते समय अपनी चतुरता अथवा हीलोहुज्जत से दुकानदार को साधारण भाव से कम कीमत देने का प्रयत्न न करना चाहिए। क्योंकि इससे दुकानदार अपना नकुसान तो करेगा नहीं उल्टे अच्छा ग्राहक न समझ कर ऐसे व्यक्ति के हाथ कोई चीज बेचना पसन्द न करेगा और यदि एक बार, वह ग्राहक बनाने के लिए दब भी जाएगा तो दूसरी बार एक पैसे के दो पैसे वसूल कर लेगा और सबसे पहले घटिया चीज भिड़ाने की कोशिश करेगा। बार-बार ऐसा करने वाले व्यक्ति की साख ग्राहक के रूप में बाजार में कम हो जाती है और हजारों रुपए का सामान खरीदने पर वह आदर नहीं पा पाता जो उसे मिलना चाहिए।

अब रही कोई चीज बेचने की बात। कोई वस्तु बेचते समय सामान्य भाव से अधिक पैसे लेने के लिए बढ़ा-चढ़ा कर मूल्य बतलाना, घटिया चीज भिड़ाना या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असन्तोषजनक ढंग से विक्रय करने वाले की दुकानदार के रूप में साख खराब हो जाती है और वह एक बड़ा दुकानदार होने पर भी न तो अपेक्षित बड़प्पन पा सकता है और न अधिक समय तक अपनी स्थिति बनाए रख पाता है। धीरे-धीरे ग्राहक संख्या कम करता हुआ छोट-सा दुकानदार रह जाता है।

इसी प्रकार पैसा लेने-देने में, समय और परिणाम में यथासम्भव हेर-फेर करने का प्रयत्न न करना चाहिए और यदि किसी भ्रम, भूल या परिस्थितिवश ऐसा हो जाए या करना पड़े तो ईमानदारी से उनका स्पष्टीकरण करने में संकोच न करना चाहिए।

वार्तालाप में सत्यता, शिष्टता एवं देशकाल का विचार रखना चाहिए। सत्य यदि शिष्ट नहीं है अथवा शिष्टता, सत्यता से परे है या यह दोनों बातें देशकाल के अनुकूल नहीं हैं तो अनुचित ही मानी जाएँगी।

सम्बन्ध में मूलतः छोटे, समान, बड़े पद योग्यता एवं विशेषता के अनुसार छह प्रकार के होते हैं। जो जिस योग्य हो उससे उसी प्रकार का व्यवहार अपेक्षित है। इसके प्रतिकूल व्यवहार करना किसी भी दशा में ठीक नहीं है। जो जिस योग्य है उसको उसके अनुरूप स्थान देना बहुत बड़ी व्यवहार कुशलता है। छोटों से स्नेहिल, समानों से निःसंकोच और बड़ों से आदरपूर्वक वार्तालाप करना चाहिए। पद में बड़े और आयु में छोटे व्यक्ति भी आदर-अदब के अधिकारी होते हैं। अपने से अधिक योग्यता अथवा किसी क्षेत्र में विशेषता वाला (जैसे कला आदि) व्यक्ति भी अपने से बड़े अथवा उच्च पद पर न होते हुए भी सम्मान एवं सद्व्यवहार के पात्र होते हैं। उनसे व्यवहार करने में इन बातों का ध्यान रखना, न केवल आवश्यक ही अपितु अनिवार्य भी है।

सामंजस्य का अर्थ है, अपने को इस तरह का बनाना कि हर व्यक्ति हर परिस्थिति तथा हर स्थान से समुचित समानता दिखला सके। जैसे दूसरे के दुःख में दुःख, सुख में सुख, परिस्थिति से अनुकूलता, स्थान से निरपेक्षता का भाव प्रकट कर सकें। किसी के सुख-दुःख में उदासीन रहना, प्रतिकूल परिस्थिति में अधैर्य अथवा अयोग्य स्थान पर क्षोभ अथवा घृणा व्यक्त करना ठीक नहीं है। अपने अवांछित मानसिक आवेगों पर नियन्त्रण रखना व्यवहार कुशलता की महत्त्वपूर्ण शर्त है।

इस प्रकार इन व्यवहार सम्बन्धी आवश्यक बातों की शिक्षा देते हुए यदि बच्चों का पालन किया जाए तो कोई कारण नहीं कि वे व्यवहार कुशल न बन जाएँ। प्रारम्भ से ही बच्चों में चेतना का विकास किया जाना चाहिए, जिससे वे स्वतन्त्र व्यवहार करने की आयु तक पहुँचते-पहुँचते दक्षता प्राप्त कर लें। जिन बच्चों में इन बातों का विकास प्रारम्भ से नहीं किया जाएगा वे बच्चे उस आयु तक आवश्यक दक्षता प्राप्त न कर सकेंगे जिसमें पहुँच कर उनका कोई भी व्यवहार महत्त्व रखता है और अच्छा या बुरा माना जा सकता है।

बच्चे जब कुछ समझदार होने लगें, यह कार्यक्रम तभी से शुरू कर कर दिया जाना चाहिए। सबसे पहले उन्हें परिवार के सदस्यों का परिचय कराया जाना चाहिए और उसी अनुसार उनसे व्यवहार का अभ्यास। यह माता है, यह पिता है, वह बड़ी बहन है, यह बड़े भाई हैं, आदि बतलाते हुए भी बतलाना चाहिए कि उनके चरण छूना, उसके प्रति आदर रखना, उनकी आज्ञा मानना उसका परम कर्तव्य है। जो अपने से बड़े हैं, शिष्ट और अच्छे बच्चे उनसे तुम नहीं आप कहकर बोलते हैं। उनसे गुस्सा नहीं करते और न कभी उनका तिरस्कार करते हैं। इसका अभ्यास कराने के लिए जब भी इसमें से किसी को बुलवाएँ या उसे उनके पास किसी काम से भेजें तब कभी ऐसा निर्देश न दिया जाना चाहिए जिससे उसमें कोई अनादर का भाव पैदा होने की सम्भावना रहे। जैसे 'मुखिया को बुला लाओ', 'विमलेश को आवाज देना' या देखना, अम्मा क्या करती है ? इसके विपरीत कहना इस तरह चाहिए कि अपनी दादीजी को बुला लाइए अपने दद्दा, बड़े साहब या दादाजी को आवाज दीजिए। जरा देखकर आइए कि आपकी माताजी क्या कर रही हैं ? कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार निर्देश देने से उसमें आदर की भावना ताजी हो उठेगी और उन्हीं शब्दों में उनसे बोलेगा क्योंकि बच्चों के प्रारम्भिक शब्द और सम्बोधन परिवार के गुरुजनों के ही दिए होते हैं। इस प्रकार हर समय इस बात का ध्यान रखने से वह कुछ ही समय गुरुजनों से आदरपूर्वक व्यवहार करना सीख जाएगा।

व्यवहार में वार्तालाप का एक प्रमुख स्थान है। जिन बच्चों को शुरू में ही शब्दों और स्वर के संयम का अभ्यास करा दिया जाता है, वे आगे चलकर बड़े मधुर तथा उपयुक्त भाषी हो जाते हैं। शब्दों का गलत उच्चारण करना स्वर को अनावश्यक रूप में ऊँचा-नीचा करके बोलना अथवा वाक्यों को पूर्ण और ठीक न बोलना सम्भाषण का आकर्षण समाप्त कर देता है, जिससे दूसरों को उसकी बात न समझ में ठीक से आती है और न वे पसन्द ही करते हैं। अस्तु, शब्द स्वर और वाक्य विन्यास ठीक रखने के लिए बहुत पहले से प्रशिक्षण किया जाना चाहिए।

सम्भाषण में नम्रता तथा देश-काल और सम्बन्ध का विशेष ध्यान रखना चाहिए। किन्तु जिस भाषण में अधिक से अधिक सत्यता का समावेश नहीं है, वह नम्र और संयत होने पर अच्छा नहीं है। इससे बच्चा दूसरे की नजर में झूठा, गप्पी और अविश्वस्त हो जाता है और समाज में उसका आदर नहीं होता है।

इस प्रकार जो बच्चे विनिमय, वार्तालाप, सम्बन्ध और सामंजस्य के ज्ञान से परिपूर्ण कर दिए जाते हैं, वे निःसन्देह व्यवहार कुशल होकर समाज में अच्छे नागरिक बनकर अपना निश्चित स्थान प्राप्त कर लेते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के मित्र बनिए

समय के सिर छोड़े हुए बच्चों का विकास जंगली झाड़ियों की तरह होता है। जिन में फूल कम और काँटे अधिक होते हैं, उसमें भी अधिकतर फूल निर्गन्ध और गन्ध वाले फूल भी निरर्थक, निरुपयोगी रह जाते हैं। इसके विपरीत जिन बच्चों का पालन, पालन के रूप में किया जाता है, वे एक चतुर माली के व्यवस्थित उद्यान की भाँति सुन्दर और सुगन्धित होते हैं।

कुछ अभिभावक स्वभाव से बड़े सख्त और प्रभावशाली होते हैं। उनके आते ही घर में एक कोने से दूसरे कोने तक सन्नाटा छा जाता है। बच्चे जहाँ के तहाँ सहम कर ठिठक जाते हैं। सब खामोश हो जाते हैं। अगर बात भी करते हैं तो बहुत धीरे, जैसे कोई अपराध कर रहे हों। सब एक दूसरे की ओर आश्रय की दृष्टि से देखने लगते हैं। सारे काम निर्जीव यन्त्र की तरह होने लगते हैं। घर के पूरे वातावरण में एक निरुल्लास परिवर्तन आ जाता है।

मानने को तो इसे अनुशासन माना जा सकता है किन्तु इस प्रकार का नियन्त्रण होता है कुछ आतंक की जाति बिरादरी का। इसमें अदब से अधिक भय का अंश रहता है और भय की अनुभूति न किसी को पसन्द होती है और न उससे कुछ बनता है।

गृहस्वामी के आने से जो एक प्रसन्नतापूर्ण कृतज्ञता परिवार में फैलनी चाहिए, उसके स्थान पर सारे सदस्य एक प्रकार की परेशानी अनुभव करने लगते हैं। बच्चों को खासतौर से अपने मन में मस्तिष्क पर दबाव पड़ता मालूम होता है, जिससे वे बड़े अस्त-व्यस्त हो जाते हैं।

होना तो यह चाहिए कि पिता के आते ही सारे बच्चे पुलकित होकर पिताजी ! पिताजी ! कहते हुए चारों ओर से घेर लें और अपनी अपनी कहने-सुनने लगें और पिताजी अच्छा, 'हाँ यह बातें' कहते हुए हँसते-मुस्काते बच्चों से घिरे कमरे में पहुँचें किन्तु होता है इसके विपरीत। उनके प्रवेश की आहट पाते ही खेलते और हँसते हुए बच्चे सहसा चुप होकर कतराने लगते हैं। उनके अर्द्धचेतन में कुछ इस प्रकार की प्रतिक्रिया की झलक मार जाती है, अच्छा होता पिताजी अभी थोड़ी देर न आए होते। उनके देर से आने में जल्दी आ-जाने का आभास अनुभव होता है। यह अनुभूतियाँ श्रेयस्कर नहीं। इससे स्वाभाविक स्नेहिल प्रवृत्तियों का ह्रास हो जाता है।

कुछ अभिभावक बाहर की खीझ घर उतारा करते हैं। मानिए, उन्हें दफ्तर अथवा व्यावसायिक स्थान पर कुछ ऐसी स्थिति को सहन करना पड़ा है, जिससे उनके मन में एक क्षोभ पैदा हो गया है। उन्हें कोई गलत बात सुनकर सहन करनी पड़ी है अथवा कुछ नुकसान उठाना पड़ा है, जिससे उन्हें एक मानसिक व्यग्रता है। यह ठीक है कि इस स्थिति में कुछ अच्छा नहीं लगता, फिर भी इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि उसका बदला घर आकर बच्चों से लिया जाए, उन्हें बोलते या पास आते ही झिड़का और डाँटा जाए। क्षोभ का स्थान घर नहीं है, न बच्चे इसके दोषी हैं। बाहर का वातावरण बाहर और घर का वातावरण घर बनाए रखना व्यवहार कुशलता है। इनको एक दूसरे से बदलना या इनका सम्मिश्रण कर देना अनुचित है। इससे परिस्थिति सँभलती नहीं और बिगड़ जाती है इसीलिए देश-काल का विचार रखने की रीति पर जोर दिया गया है। अपने भावावेगों पर इतना नियन्त्रण अवश्य रखना चाहिए कि वे अयुक्त देश-काल में न प्रकट होने पावें।

बच्चों से ऐसा व्यवहार किया जाना चाहिए कि वे आपके आने पर प्रसन्न हो उठें और आने के समय आपकी प्रतीक्षा करें। जब वे अपनी-अपनी बातें, शिकायतें और मुकदमे आदि आपके सामने रखें, तो उनको सुनिए और चतुरता से उनका निराकरण करिए। उनके हँसने, बोलने में हिस्सा लीजिए, बात करिए, कुछ प्रसन्न होइए और उनको प्रसन्न कीजिए। जिससे आपकी उपस्थिति से घर का वातावरण आतंकपूर्ण न होकर प्रसन्नता पूर्ण ही रहे।

अनेक अभिभावक बच्चों की रुचि को कोई महत्त्व ही नहीं देते, सदैव ही उनकी रुचि पर अपनी रुचि स्थापित किए रहते हैं। उनकी छोटी से छोटी रुचि में अपना संशोधन किए बिना नहीं मानते। वे अपने इस विश्वास के वशीभूत रहते हैं कि बच्चा तो अक्ल का कच्चा होता ही है। उसकी पसन्द हर हालत में गलत होगी इसलिए उसमें उनका संशोधन आवश्यक है। यद्यपि उस संशोधन में एक आदत के सिवाय कोई गम्भीरता नहीं होती तथापि वैसा करेंगे अवश्य।

जैसे बच्चे ने कहा पिताजी मेरे लिए पीले रंग की पेंसिल लाइएगा कि तुरन्त पिताजी ने व्यवस्था दी "तुम तो बेवकूफ हो, पीले रंग की कहीं अच्छी होती है। पेंसिल तो नीले रंग की ही ठीक होती है।" जहाँ उसने कहा मेरे लिए 'जी' निब लाइएगा कि तत्काल बोले तभी तो तुम्हारा लेख खराब है, रिलीफ निब से लिखना चाहिए। इस प्रकार अन्य बड़ी-बड़ी चीजों और पसन्दगी की बात को क्या वे ऐसी जरा-जरा सी चीजों में भी संशोधन किए बिना नहीं मानते और उनके इस संशोधन में कोई स्थायी दृष्टिकोण नहीं रहता। उसके कहने से कभी ठीक बताई हुई चीज खराब और खराब बताई हुई चीज अच्छी बतला देंगे। जिससे वह कभी भी यह नहीं जान पाता कि कौनसी चीज ठीक है और कौन सी खराब। इससे किसी चीज का चुनाव करने में उसे उलझन होने लगती है। वह हर चीज खराब समझने लगता है। कुछ निर्णय करने में उसे आत्मविश्वास नहीं रहता।

हर अभिभावक को बच्चों पर कुछ करना ही होता है। उनके लिए चीजें खरीदनी होती हैं, उनकी आवश्यक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माँग की पूर्ति करनी होती है, इसके लिए अभिभावक अधिकतर करते यह हैं कि वे बहुत दिन तक बच्चों की माँगों और आवश्यकताओं को सुनते रहते हैं और फिर एक दिन सारी चीज लाकर ढेर लगा देते हैं। इस प्रकार एक दिन बाद उनकी इच्छाएँ और रुचियाँ जाग्रत होने लगती हैं और तब वे आवश्यक न होने पर नई चीजें चाहने लगते हैं, जो ठीक नहीं होता।

अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों की माँग पूरी करने के कार्यक्रम को इस प्रकार विभाजित करें कि उनका हर्ज भी न हो और प्रतिदिन या दूसरे तीसरे दिन एक न एक नई चीज घर में आती रहे। इस प्रकार बच्चों को प्रतिदिन प्रसन्न और खुश होने का अवसर रहता है और घर का वातावरण प्रफुल्लित रहा करता है, जो पारिवारिक जीवन के लिए बहुत शुभ है। जिन परिवारों में प्रसन्नता और प्रफुल्लता रहती है, वे परिवार धनवान न होते हुये भी सम्पन्न दिखाई देते हैं।

अभिभावक को यथासम्भव बच्चों की रुचि की रक्षा करनी चाहिए। उनकी रुचि पर अपनी रुचि को आदतन हठपूर्वक नहीं थोपना चाहिए। इससे पैसा खर्च करने पर भी बच्चे को सन्तोष नहीं होता। बच्चों की रुचि और प्रौढ़ों की रुचि में बहुत अन्तर होता है। चूँकि बच्चे की अपेक्षा अभिभावकों का उत्तरदायित्व अधिक होता है, इसलिए उन्हें बुद्धिमत्तापूर्वक बच्चों की रुचि से अपनी रुचि का साम्य स्थापित करना चाहिए। जिन बातों में वे समझें कि बच्चे की रुचि ठीक नहीं रहेगी या तो उसमें उनकी रुचि को अवसर ही न दीजिए या उसे ठीक-ठीक पता रहे कि पापा सही कहते हैं। इससे उसमें यह भावना न आने पाएगी कि छोटा होने के कारण उसकी बात नहीं मानी जाती है। अभिभावक के संशोधन में उपयोगिता, लाभ अथवा हित का समावेश अवश्य होना चाहिए। यों ही अकारण संशोधन ठीक नहीं, क्योंकि इस प्रकार की आदत स्वयं एक बचपना है, जो अभिभावक को शोभा नहीं देता।

बहुत बार बच्चों की बहुत-सी ऐसी उलझनें हो जाती हैं, जो उनके सुलझाए नहीं सुलझतीं। जैसे उनका किन्हीं दो वस्तुओं में से एक के लिए ही भाई-बहनों का उलझना। साथियों से झगड़ा हो जाना, हर काम बिगड़ जाना, पाठ और प्रश्न समझ में न आना, अध्यापक व अन्य गुरुजनों की नाराजगी दूर करना, कोई आशंका अथवा भय दूर करना।

ऐसी उलझनें आ जाने पर यह कह कर निराश नहीं छोड़ देना चाहिए कि तुम्हारा मामला है, तुम समझो या तुमने खुद जैसा किया उसको भरो। अपितु उनकी उलझन को ध्यानपूर्वक सुनिए और उसको पूरी तरह समझ कर और उसे समझा कर दूर करने में उसकी सहायता कीजिए। अपनी पुस्तकें, चीजें और कपड़े-लत्ते आदि रखने, उठाने, धरने और पहनने आदि में उनकी इस प्रकार सहायता कीजिए कि वे उसमें एक व्यवस्था की शिक्षा पा सकें। बच्चों को कपड़े-लत्ते पहनने, पेटी लगाने, नाड़ा बाँधने, पतलून पहनने, बूट बाँधने, उतारने और खोलने में उनकी तब तक मदद कीजिए। जब तक वे कायदे के साथ ठीक-ठीक पहन ओढ़ और बाँध खोल न पायें। क्योंकि यदि उन्हें शुरू में इसका ठीक-ठीक अभ्यास नहीं हो जाता तो उनकी यह आदत जीवन भर नहीं जाती और परेशानी होती है। गलत गाँठ लगाने और खोलने से कमरबन्द में फन्दा पड़ जाना, बनियान का सर में उलझ जाना, उल्टी कमीज उतारना, गलत कोट पहनना, बटन टूट जाना, पेटी उतर जाना आदि रोजमर्रा की बात हो जाती है। इससे उन्हें सदैव परेशानी भी होती है और देखने वाले उन्हें बेवकूफ और बेसऊर समझते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन की साधारण से साधारण बातों में उनकी तब तक अवश्य मदद की जानी चाहिए, जब तक वे ठीक से इसके अभ्यस्त न हो जाएँ। यह छोटी-छोटी उलझनें कभी-कभी बड़े-बड़े हर्ज और हानियों की कारण बन जाती हैं।

बच्चों की दीक्षा के लिए दमनात्मक रवैया नहीं अपनाना चाहिए। अपितु मैत्रीपूर्ण मार्गदर्शन द्वारा ही उन्हें दीक्षित करना चाहिए।

साधारणतः माता-पिता का यह विश्वास होता है कि उनकी सन्तान उनको ईश्वर प्रदत्त ऐसी सम्पत्ति है, जिसको वे जिस तरह चाहें उपयोग में ला सकते हैं। वे अपने सिवाय और तो और स्वयं बच्चे का भी अधिकार उस पर नहीं समझते और अपने इस अधिकार के प्रति सबसे अधिक जागरूक भी रहते हैं। वे सदैव यही चाहते हैं कि उनके बच्चे यन्त्रवत ही आज्ञानुवर्ती रहें और यदि किसी प्रकार वे उनके मौन मनोभावों के अनुसार परिचालित हो सकें, तब तो उनके सन्तोष का ठीक ही न रहे।

किन्तु वे यह नहीं सोचते कि जहाँ कोई बच्चा उनकी सन्तान है, वहाँ वह एक स्वतन्त्र इकाई भी है। जहाँ उस पर उनका अधिकार है, वहाँ कुछ अधिकार समाज और राष्ट्र का भी है। किसी का बच्चा होने के साथ-साथ वह समाज का एक घटक भी है, यदि आज वह अपने माता-पिता के सहारे समाज में चलता है, तो कल उसे एक स्वतन्त्र सदस्य की हैसियत से समाज में व्यवहार करना होगा। यदि उसको व्यावहारिक तैयारी कर समाज में न उतारा गया तो अवश्य ही वह अयोग्य विद्यार्थी की तरह असफल हो जाएगा और भले ही अनिवार्य आवश्यकताएँ उसे कुछ सिखालें, तथापि वह प्रारम्भ से तैयारी किए हुए व्यक्ति की भाँति कुशल न हो सकेगा। निःसन्देह वह समाज में पिछड़ा हुआ और घिसट-घिसट कर चलने वाला पंगु सदस्य होगा। जो न तो समाज से ही कुछ लाभ उठा सकेगा और न समाज को ही उससे कुछ लाभ हो सकेगा। अतएव अपना समझने के साथ-साथ बच्चे को एक स्वतन्त्र इकाई मानकर पालन-पोषण किया जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उससे ठीक-ठीक वैसा ही व्यवहार करना श्रेयस्कर है जैसा एक सभ्य नागरिक से करना है। उसे जन्मजात अपना अधिशासित समझकर हर समय आदेश की भाषा में न बोला जाय। इससे उसके मानसिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हर समय आदेश की भाषा सुनते-सुनते उसमें खिन्नता और मलीनता का प्रादुर्भाव होने लगता है। उसे हाथ का बरतन मानकर मिनट-मिनट पर छोटे-छोटे कामों के लिये दौड़ाना ठीक नहीं। इससे कर्त्तव्यों के प्रति अरुचि और गुरुजनों के प्रति अश्रद्धा होने लगती है, जिससे वह उनसे मुँह छिपाने की कोशिश करने लगता है।

बच्चों को महत्त्वहीन समझ कर व्यवहार करने से वे अपने को नगण्य और अनुपयोगी समझने लगते हैं, जिससे आगे चलकर उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है। किसी काम के न कर सकने अथवा बिगड़ जाने पर उनकी खिल्ली उड़ाना अथवा उनके किसी बचपन से मनोरंजन करना उचित नहीं है। इससे वे हतप्रभ और चिड़चिड़े हो जाते हैं। उनकी किसी निर्णय में दी हुई राय, कही हुई बात को, भले ही वह कोई अर्थ न रखती हो एक दम बहिष्कृत कर देने से उनकी हिम्मत टूट जाती है, जिससे ठीक बात कह सकने में भी हिचकने लगते हैं। उनसे बात-बात में यह कहना—'अजी तुम क्या जानो, अभी बच्चे हो' अच्छा स्वभाव नहीं है। उससे आगे बढ़ते हुए उनके बुद्धि-तत्व को धक्का लगता है, जिससे उनमें अयोग्यता अंकुरित हो सकती है।

इस प्रकार के और न जाने कितने व्यवहार हैं जो बच्चों से नहीं किए जाने चाहिए। किन्तु अभिभावक अपनी गुरुता के गर्व में बच्चों सम्बन्धी व्यवहार में सोच-विचार करना अपने गौरव के अनुरूप नहीं समझते, जबकि यही सबसे बड़े गौरव की बात है कि उनके व्यवहार से बच्चे होनहार बनकर समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकें।

बच्चों की सहज अनुकरण बुद्धि और सुकुमार मानसिक धरातल को ध्यान में रखकर ही व्यवहार करना चाहिए। जिससे यदि वे अनुकरण करें तो अच्छी बातों का और यदि कोई संस्कार उनके मन पर पड़े तो अच्छा ही पड़े।

बच्चों के पालन-पोषण का अर्थ केवल यही नहीं है कि भूख लगने पर रोटी खिला दी जाये, कपड़े फटने पर कपड़े बनवा दिए जाएँ, माँगने पर पैसे दे दिए जाएँ और जरूरत पड़ने पर पुस्तकें आदि ले दी जाएँ और इससे अधिक कुछ किया तो स्कूल की और खदेड़ दिया। बाकी अपनी खेलो-कूदो, पढ़ो-लिखो और बड़े होते रहो।

बच्चों का पालन-पोषण केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझकर ही नहीं राष्ट्र एवं समाज की धरोहर मान कर करना चाहिए। समाज की आगामी आवश्यकता को ध्यान में रखकर उनका निर्माण ठीक उस जिम्मेदारी से करना चाहिए, जिस प्रकार एक शिल्पी कोई भवन बनाता है अथवा कोई ईमानदार इन्जीनियर पुल का निर्माण कराता है।

बच्चों को क्षमता भर सुन्दर-से-सुन्दर वातावरण में रखना चाहिए। उनसे आदरपूर्वक बात की जानी चाहिए, जिससे उनके मन पर ऊँचे संस्कारों की छाप पड़े। जहाँ तक हो अधिक से अधिक उस स्तर की परिमार्जित भाषा में बात करनी चाहिए, जिस स्तर की कक्षा में वे पढ़ रहे हों। इससे उन्हें अच्छी भाषा बोलने-समझने का अभ्यास होगा और उनका शब्द-कोश बढ़ेगा। उनसे दिन में अवकाश के समय नियमित रूप से देश-विदेश के ऐसे विषयों पर कुछ न कुछ बात अवश्य करनी चाहिए, जिसको वे किसी हद तक समझ सकें और जिनमें उनकी रुचि और हित सन्निहित हो। इससे उनकी विचार परिधि का प्रसार होगा और उनमें सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक चेतना का स्फुरण होगा।

बच्चों को अदब सिखाने के लिए आवश्यक है कि उनका भी अदब किया जाए। उन्हें साधारण सामाजिक शिष्टाचार की शिक्षा दी जाए और परिवार में गुरुजनों तथा भाई-बहनों के साथ अभ्यास कराया जाए, उनकी झिझक दूर करने और मिलनसार बनाने के लिए घर आए अतिथियों और मित्रों का स्वागत करते समय उनके बच्चों का स्वागत बच्चों से कराना अधिक श्रेयस्कर होगा। आगन्तुकों के समकक्ष उनसे ऐसा व्यवहार किया जाना चाहिए, जिससे वे अपने को परिवार का महत्त्वपूर्ण अंग अनुभव कर सकें। इससे परिवार के माध्यम से उनमें सद्भावना का भाव बढ़ेगा और दूसरों के मन में उनके प्रति आदर उत्पन्न होगा। नवागन्तुकों के साथ परिचय कराते समय ऐसी शैली का प्रयोग किया करना चाहिये, जैसे वे एक दूसरे के पूरक हों।

कहने का तात्पर्य यह है कि बच्चों को ऐसे व्यवहार और वातावरण के बीच रखा जाना चाहिए, जिससे उनमें बड़प्पन और विनम्रता की भावना बढ़े। अवसर आने पर उन्हें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सुन्दर स्थानों पर साथ ले जाना चाहिए। इससे उनमें ज्ञान की वृद्धि होने के साथ-साथ नवीन स्थानों पर आचार-विचार और रहन-सहन से भी परिचय होगा, जो आगे चलकर उनको बहुत काम देगा।

इस प्रकार यदि प्रयत्न करके बच्चों की वर्तमान पीढ़ी को सभ्य सामाजिक बनाकर जीवन-क्षेत्र में उतारा जाये तो कोई कारण नहीं है कि आज का सड़ा-गला समाज सुन्दर और स्वस्थ रूप में न बदल जाए।

बच्चों की इस सामाजिक शिक्षा के लिए परिवार ही सबसे उपयुक्त संस्था है। क्योंकि इसके सब सदस्य एक दूसरे के स्वभाव से भली-भाँति परिचित होते हैं और एक नैसर्गिक सम्बन्ध सूत्र में बँधे होते हैं। भाई-बहनों के बीच अपने अभिभावकों की सहायता से वे जितना सुन्दर और स्थायी शिक्षण परिवार में पा सकते हैं उतना किसी बाहरी शिक्षा केन्द्र में नहीं। परिवार में छोटे-बड़े, तरुण, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी प्रकार के सदस्य स्वभावतः उपलब्ध रहते हैं। जिनके बीच क्या मौखिक और क्या व्यावहारिक, दोनों प्रकार की शिक्षा सहज रूप में दी जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। परिवार में शिक्षण के सारे उपादान और साधन पहले से ही मौजूद रहते हैं। उनको नये सिरे से संचय करने अथवा जानबूझ कर शिक्षण के लिए अनुकूल अवसर और अवस्थाएँ तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। परिवार में सब कुछ एक प्राकृतिक प्रवाह में चलता रहता है। कृत्रिमता से रहित जिस सहज स्वाभाविक सामाजिकता की आवश्यकता है, उसका ठीक-ठीक शिक्षण परिवार के अतिरिक्त और कहीं नहीं दिया जा सकता।

इस प्रकार कहना असत्य न होगा कि समय और समाज के अनुकूल जिस नागरिक ने अपना एक भी बच्चा सभ्य सामाजिकता के साथ आज राष्ट्र को दे दिया, उसने मानो एक अश्वमेध यज्ञ करने के बराबर पुण्य प्राप्त कर लिया।

शिक्षा और दीक्षा दोनों के सन्तुलित समन्वय से विकसित व्यक्तित्व को राष्ट्र की सेवा में अर्पित करना सचमुच एक महान पुण्य है।

बालकों की पढ़ाई का ध्यान रहे

मनुष्य जीवन की तीन आधारभूत प्राथमिक आवश्यकताएँ कही गई हैं—भोजन, वस्त्र और आवास। पर विचारशील एक और चौथी आवश्यकता भी अनिवार्य मानते हैं। वह आवश्यकता है शिक्षा। भरपेट भोजन, शीत-गर्मी के बचाव के लिए वस्त्र और रहने के लिए मकान तो स्थूल आवश्यकताएँ हैं, जो दिखाई देती हैं। पर चौथी आवश्यकता शिक्षा की गणना शायद इसलिए नहीं की गई हो कि करोड़ों लोगों का जीवन उसके बिना भी चलं रहा था। अभावग्रस्त स्थिति का जहाँ तक प्रश्न है, असंख्य लोग हैं ऐसे जिनके पास अपना घर नहीं है, पहनने, ओढ़ने को पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं और शरीर का समुचित पोषण हो सके वैसा सम्पूर्ण भोजन नहीं मिल पाता।

लेकिन प्राथमिक आवश्यकताएँ तो हैं। स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म का अधिक महत्त्व है। वृक्ष की अपेक्षा बीज अधिक कीमती होता है। उसी प्रकार प्राथमिकता का क्रम जमाना हो तो आज के समय में मनुष्य को भोजन, वस्त्र और मकान की अपेक्षा शिक्षा का पहला स्थान है। अशिक्षित और गँवार लोग थोड़ा-बहुत मेहनत-मजदूरी से या सामान्य अक्ल से कमाते हैं तथा उस कमाई का जिस तरह उपयोग करते हैं, उससे उनकी स्थिति ज्यों की त्यों ही बनी रहती है, जबकि शिक्षित और सभ्य व्यक्ति उतनी ही आमदनी में अच्छी प्रकार गुजारा कर लेते हैं।

भोजन, वस्त्र और आवास की आवश्यकताएँ स्वयं पूर्ण करने की जिम्मेदारी तो युवावस्था में आती है। बचपन में माता-पिता से ही वे पूरी होती रहती हैं, उनकी पूर्ति का दायित्व उन्हीं पर रहता है। विशेष ध्यान जिस प्राथमिक आवश्यकता पर अभिभावकों द्वारा दिया जाना चाहिए, वह है बच्चों की शिक्षा-दीक्षा। शिक्षा का मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है और उसकी ओर बचपन से ही ध्यान दे दिया जाए तो ठीक अन्यथा आगे मुश्किल है।

इसीलिए प्राचीन मनीषियों ने यह मर्यादा बाँध दी थी कि बच्चा पाँच वर्ष तक का होते ही गुरुकुल भेज दिया जाना चाहिए, ताकि वह विद्याध्ययन द्वारा अपनी क्षमताओं का विकास कर सके। कई स्थलों पर कहा गया है—"जागतिक सुख और पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति का साधन विद्या ही है। सभी उत्कृष्ट कर्मों की परिसमाप्ति ज्ञानपूर्ण कर्म में ही होती है तथा उसी से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास सम्भव होता है।"

प्राचीनकाल में विद्या का अर्थ व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास की सामर्थ्य से किया जाता था। यही कारण था कि उन्हें विषय विशेष के साथ सामान्य ज्ञान की जानकारी भी दे दी जाती थी और इस पद्धति से दी जाती थी कि छात्र उसके प्रभाव को अपने व्यक्तित्व में आत्मसात कर ले।

इस स्तर की विद्या का प्रबन्ध आज भले ही सम्भव न हो पर जैसी भी शिक्षा है, वह जीवन में उपयोग तो आती है। जिस युग में हम निवास कर रहे हैं, वह जनता का युग है। प्रजातन्त्र का युग है और प्रजातन्त्र तभी सफल हो सकता है, जबकि उस देश के नागरिक सुशिक्षित और समझदार हों।

शिक्षा की उपयोगिता कदम-कदम पर अनुभव की जाती है। अशिक्षित व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण से तो अनभिज्ञ रहता ही है, समय और समाज की गति तथा परिस्थितियों से भी अपरिचित रहता है। फलस्वरूप उसे कदम-कदम पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। अपनी समस्याओं का समाधान वह गाँठ की अक्ल से नहीं कर सकता, अपनी स्थिति के समाचार और दूरस्थ स्वजनों की सहायता पत्र लिखकर प्राप्त नहीं कर सकता, न उनके समाचारों को जान सकता है। बाजार में सबसे अधिक उसी के ठगाने का डर रहता है, किसी भी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर अपना ही नुकसान कर बैठने की सम्भावना भी उसी के साथ अधिक जुड़ी रहती है। यहाँ तक कि वह दूर की यात्रा भी निरापद रूप से नहीं कर सकता। जो काम बूते का हो उसे कर लेना उससे जो मिले उसके औन-पौने में अपना गुजारा चला लेना और अपने जैसे ही बच्चे पैदा कर डालना। इसी परिधि में उसका सारा जीवन चक्र घूमता रहता है और आरम्भ से लेकर अन्त तक अस्त-व्यस्त जीवन गुजार देता है।

अभिभावकों की जरा-सी नासमझी का कुछ उनकी सन्तानों को सारे जीवन भर भोगना पड़ता है। यद्यपि हमारे देश में शिक्षा प्रसार की ओर ध्यान दिया गया है तथा उसके लिए जोरदार असरकारी कदम उठाए गए हैं पर शिक्षितों की संख्या अभी बीस प्रतिशत से अधिक नहीं पहुँच सकी है। सौ में से बीस आदमी शिक्षित हैं, जिनमें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से अधिकांश की शिक्षा अक्षर ज्ञान तक सीमित है। सरकार कितना ही प्रचार करे पर वह जब तक माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की आवश्यकता अनुभव नहीं करेंगे, तब तक सन्तोषजनक उपलब्धियाँ मिलना मुश्किल है। आज के बच्चे कल के नागरिक हैं, भविष्य का भारत उन्हीं के हाथों में जाएगा और वे अशिक्षित तथा अज्ञानग्रस्त ही रहे, तो राष्ट्र का भविष्य क्या होगा और उसके लिए जिम्मेदार होंगे आज के अभिभावक, भावी पीढ़ी के निर्माता जो यह सोचते हैं कि बच्चों के लिए शिक्षा की क्या आवश्यकता ? जो धन्धा हम करते हैं वही बच्चों को सिखा देंगे। आप हल-बैल से खेती करते हैं और उन्नत किसानों ने ट्रैक्टर से खेती करना सीख लिया है। आपके हल बक्खर से तो आपका बच्चा जमीन भी नहीं जोत पाएगा और शिक्षित किसान बीज डाल लेगा तथा उसमें अंकुर फूटने लगेंगे।

आने वाला युग प्रतिस्पर्धा का युग है। हर व्यक्ति अपनी योग्यता का स्तर दूसरों से अधिक से अधिक उन्नीस रख कर ही जी सकेगा, अन्यथा वह बर्बाद हो जाएगा और उसकी बर्बादी का कारण होंगे माता-पिता जिन्होंने अपने बच्चों को शिक्षित और योग्य बनाने की बात ही नहीं सोची। उल्टे उन लोगों की हँसी उड़ाई जो अपने बच्चों को दो मील दूर स्कूल भेजते रहे।

ऐसे अभिभावकों के लिए ही कहा गया है—**''माता-पिता बैरी भये जो न पढ़ाये बाल।''** शास्त्रकारों ने भी स्पष्ट घोषणा की है—वह माता बैरी है और वह पिता शत्रु है जिन्होंने अपने बालक को समुचित रूप से शिक्षा देने की ओर ध्यान नहीं दिया।

और अशिक्षित व्यक्तियों की तुलना पशु से की गई है तथा कहा गया है—**'बिना पढ़े नर पशु कहावें,'** ऐसा क्यों कहा गया है। एक बच्चा सौभाग्य से पढ़-लिखकर विद्वान बन गया और दूसरा घर-गृहस्थी का ही काम सँभालता है। दोनों ही बच्चे एक ही माँ-बाप के सन्तान हैं पर दोनों में बड़ा अन्तर आ जाता है। यह बात अलग है। अनपढ़ भी शाम तक अपने भोजन की व्यवस्था कर ले लेकिन बोलचाल और रहन-सहन में जमीन आसमान का अन्तर रहेगा। पढ़ा-लिखा सलीके से बात-चीत करेगा, आगन्तुक का द्वार पर स्वागत करेगा व्यवहार कुशल होगा और अपना रहन-सहन सुसंस्कृत मनुष्यों जैसा रखेगा। जबकि बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति न तो तरीके से बातचीत कर सकेगा न व्यवहार कुशलता बरतेगा। ऐसे व्यक्ति को मनुष्य श्रेणी से अलग रखा जाय तो अस्वाभाविक नहीं है। क्योंकि उसके साथ माता-पिता ने शत्रुतापूर्ण बर्ताव किया है।

स्कूल भेजने के साथ यह भी ध्यान रहे

स्कूल में भर्ती कराने के बाद बच्चों का एक नया संसार प्रारम्भ होता है। अब तक वे अपने माँ के शासन में रहने का अनुभव करते थे। स्कूल जाना आरम्भ करने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति का, जो परिवार से बाहर का है शासन अनुभव होता है। अब तक वे परिवार के या आस-पड़ौस के बच्चों के साथ रहते थे, स्कूल में प्रवेश करते ही उनके अनुभव में बाहर के बच्चों का अहसास होता है। हर तरह से बच्चों के लिए पहली बार स्कूल जाना अपने ढंग का नया अनुभव है। प्रौढ़ दृष्टि से देखने पर भले ही इस बात का कोई महत्त्व न लगे परन्तु बच्चों के लिए यह एक नई अति महत्त्वपूर्ण और चौंका देने वाली घटना है। उस समय की अनुभूतियाँ वयस्क होने तक बहुत कुछ विस्मृत हो जाती हैं पर फिर भी याद की जाय तो घबराहट, हैरानी और आश्चर्य की एक झलक तो मिल ही सकती है।

यही कारण है कि स्कूल में घुसते ही बच्चे हिचकिचाने लगते हैं। वहाँ उनका जी घुटने लगता है। स्कूल का वातावरण उन्हें एक कारागार की तरह लगता है, जहाँ से वे जल्दी से जल्दी बाहर निकल जाना चाहते हैं। अत: बच्चों को स्कूल भेजते समय काफी मनोवैज्ञानिक समझबूझ रखने की आवश्यकता है। अन्यथा बच्चों के मन में स्कूल के प्रति एक स्थायी अरुचि घर कर जाती है और वे चाहकर भी कभी अच्छा विद्यार्थी नहीं बन सकते।

मनोवैज्ञानिक बातों का ध्यान रखते हुए भी बच्चों के मन से यद्यपि समूची हिचकिचाहट तो दूर नहीं की जा सकती। पर उनके मन में वह क्षमता अवश्य उत्पन्न की जा सकती है, जो नये वातावरण के अनुकूल बनने का आत्मविश्वास दिला सके। बच्चा स्कूल में प्रारम्भिक दिनों में उस प्रकार प्रवेश करता है, जैसे—बतख का बच्चा तालाब में उतर रहा हो, जाना पड़ रहा है—यह विवशता है और जाने का मन नहीं है। क्योंकि आस-पास सब कुछ नया ही नया और अनदेखा-सा है।

अत: स्कूल भेजने से पूर्व बच्चों को ऐसा साथी ढूँढ़ने में मदद देनी चाहिए, जो उसी की उम्र का हो और जिस कक्षा में भर्ती करना है उसमें ही पढ़ता हो। जहाँ तक हो सके आस-पास के ही बच्चे तलाश करना चाहिए, ताकि बच्चा अपने आस-पास फैले नये वातावरण में किसी को तो अपना विश्वस्त साथी पा सके, नयेपन की हिचकिचाहट दूर करने के लिए कुछ और पूर्वाभ्यास भी किए जा सकते हैं जैसे अपनी मौजूदगी में उसे किसी नए स्थान पर जाना, पास ही कहीं किसी काम से नई जगह पर अकेले भेजना।

स्कूल में उसे कई बच्चों का साथ मिलता है, जिनकी संख्या काफी बड़ी होती है। बच्चा अक्सर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भीड़-भाड़ से भी घबराता है। अत: उसे पहले अपने समवयस्क बच्चों के साथ मेल-जोल बढ़ाने का अवसर देना चाहिए, ऐसा होने पर उसे स्कूली साथियों के साथ हिल-मिल जाने में काफ़ी सहायता मिलेगी।

स्कूली में भर्ती करा देने के बाद अपनी सावधानियों से सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। बाद में भी अनवरत उसके स्कूल जीवन के प्रति स्वयं रुचि लेनी चाहिए। उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। आरम्भ में बच्चे स्कूल में भर्ती कराने के बाद अनियमितता बरतने लगते हैं। चार-छह घण्टे एक स्थान पर बँधे रहना उन्हें रुचिकर नहीं लगता। अत: वे अपने दूसरे अन्य साथियों के साथ स्कूल से भाग आते हैं और कहीं पर खेलते रहते है। अत: इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा नियमित रूप से स्कूल जा रहा है अथवा नहीं, नियमितता की यह आदत उस समय अच्छी तरह जानी जा सके, तो आगे वे अपना जीवन सुव्यवस्थित रखने के अभ्यस्त हो सकते हैं।

स्कूल जाने में अनियमितता बरतने का कारण भी वहाँ के वातावरण का अजनबीपन है। अत: माता-पिता दोनों को मिलाकर उसे वहाँ के अजनबी वातावरण के प्रति जिज्ञासु और श्रद्धालु बनाना चाहिए। इस दिशा में उनसे स्कूली कार्यकलापों के सम्बन्ध में प्रश्न, वहाँ के अध्यापकों की बातें, साथियों और सहपाठियों की जानकारी आदि प्रश्न जानते रहना चाहिए। माता-पिता के लिए ये जानकारियाँ भले ही व्यर्थ हों, पर इनसे बच्चों में एक जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है और वह स्कूल के प्रति और भी तीव्र लगन रखने लगता है।

पाठशाला जाते समय बच्चों को स्नेहपूर्वक विदा करना, प्रोत्साहन देना तथा लौटने पर प्रशंसात्मक बातें करना तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करता है। पाठशाला से लौटने पर बच्चे थक से जाते हैं। स्कूली टाइम में अनवरत श्रम करते रहने के कारण उनकी बाल सुलभ शक्तियाँ सहलाए जाने की अपेक्षा करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में इस प्रकार की बात उनके लिए टॉनिक का काम करती हैं। ऐसे वक्त पर तो भूलकर भी ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए, जिससे बच्चों को कष्ट अनुभव हो। थक जाने पर प्रौढ़ व्यक्तियों को भी बहुत जल्दी क्रोध आता है और उस समय व्यक्ति की संवेदना काफी नम रहती है। फिर वे तो बच्चे ठहरे। अत: उन्हें ऐसी बातें कहकर व्यर्थ नाराज करना उत्साह तोड़ देना जैसा है। जैसे बच्चा स्कूल से लौट कर कहता—माँ हम आ गए। झिड़क कर यह कहने की बजाय कि आ गए तो अच्छा किया। कौन सा तीर मार लाए, यह कहा जाय कि राजा बेटा आ गया। कब आए यह तो तुमने पता ही नहीं चलने दिया। बच्चे की सुखद अनुभूतियों को कितना चेतन करता है ?

स्कूली जीवन आरम्भ करने के साथ बच्चों में स्वावलम्बन की आदत डालने का प्रयास भी उसी समय किया जा सकता है। रुचिकर समय मिलने पर उन्हें कपड़े पहनना, बालों में कंघी करना, जूते पहनना जैसी बातें सिखाना चाहिए। यह नहीं कि किसी काम में लगे रहने पर खुद ही तैयार हो जाओ कह दें, वरन् जब अपने पास भी समय हो तब उसे प्रोत्साहित करते हुए इन कार्यों का प्रशिक्षण दें। दैनिक कार्यों का प्रशिक्षण व्यस्तता या शीघ्रता के लिए नहीं, संस्कार स्वभाव के लिए देना चाहिए और इसके लिए शांत वातावरण ही अधिक उपयुक्त है।

अपने नये जीवन में बच्चा नये समवयस्क लड़कों के सम्पर्क में आता है और अनेकों से प्रभावित होता तथा अनेकों से घृणा करता है। जिन बच्चों से प्रभावित होता है उनका साथ करने की भी चेष्टा करता है। ऐसे समय में पूरी सावधानी रखनी चाहिए और वह कैसे बच्चों के साथ रह रहा है तथा उनकी प्रवृत्ति और स्वभाव कैसा है, इनका ध्यान रखना चाहिए। पाठशाला की संगति के सम्बन्ध में बच्चे के दूसरे साथियों, अध्यापकों और स्वयं बच्चों से जाना जा सकता है। उसके व्यवहार, रहन-सहन और आदतों में आए परिवर्तनों से भी इन बातों का पता चलाया जा सकता है। कहना नहीं होगा कुसंगति से बचाया जाना चाहिए तथा अच्छे बच्चों का साथ करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

बच्चे स्वभाव से चंचल और गैर गम्भीर होते हैं। परन्तु कक्षा में उन्हें एकाग्रता और शांति से बैठना पड़ता है। शरारती बच्चों को भी पढ़ाई के समय अपने पर अंकुश रखना पड़ता है। यही कारण है कि बच्चे छुट्टी होने पर जब स्कूल से निकलते हैं, तो जोर से शोर करते हैं। एक प्रकार से उनके स्वभाव में आई थकान का ही यहाँ निराकरण होता है। इस प्रवृत्ति को घर पर ही दिशा देनी चाहिए और वे सन्ध्या समय थोड़े बहुत खेलों से अपनी मानसिक थकान मिटा लें इसका प्रबन्ध करना चाहिए।

यदि बालक को शिक्षित बनाना चाहते हैं तो अभिभावकों को बालक की शिक्षा के प्रति जो उदासीनता है, उसे त्यागना होगा। बच्चा स्कूल की अपेक्षा घर पर अधिक समय व्यतीत करता है। इस समय यदि उसे कोई निर्देशक नहीं मिल पाया तो बालक भी अध्ययन के प्रति आधा मन रखेगा। अस्तु, अभिभावक इस उत्तरदायित्व का वहन ऐसा समझ कर करें कि यह उनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है, जिसे उन्हें पूरा करना ही है। यदि अभिभावक इस ओर आगे बढ़ गए तो बालक को शिक्षा के विकास में बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। शिक्षा और दीक्षा दोनों की इस प्रकार समुचित व्यवस्था करने पर बालकों के व्यक्तित्व का उत्कृष्ट बनते चले जाना स्वाभाविक ही नहीं सुनिश्चित हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाल विकास केन्द्रों की स्थापना हो

स्कूली पढ़ाई तो बड़ी आयु में भी चलती रह सकती है। उस क्रम को आजीवन भी चलाया जा सकता है। स्वाध्याय भी इस प्रकार का अध्ययन ही है, जिसे ज्ञान प्राप्ति में अमोघ माध्यम माना जाता है। शरीर को नित्य आहार की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार मस्तिष्क उपयोगी ज्ञान-सम्वर्द्धन के लिए लालायित रहता है। इस क्षुधा को न बुझा पाने पर चिन्तन क्षेत्र में अनेकानेक विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। वे अनैतिकताओं, मूढ़मान्यताओं, सनकों, आवेगों, मनोविकारों के रूप में उभरती हैं। चेतना तन्त्र पर आक्रमण करके वे उसे खोखला बना देती हैं। भोजन न मिलने पर शरीर दिन-दिन दुर्बल होकर विकृत होता जाता है और मौत के मुँह में जा पड़ता है। इसी प्रकार जीवन की समस्याओं का समाधान करने वाला स्वाध्याय-सत्संग न मिलने पर चेतना तन्त्र जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और उसे गई-गुजरी, दीन-दयनीय स्थिति से घिरना पड़ता है। इसलिए साधना, स्वाध्याय, संयम, आराधना का अवलम्बन करते हुए स्वयं ही आगे बढ़ना और ऊँचे उठना पड़ता है।

पर यह स्थिति बचपन में नहीं रहती। उसमें अभिभावकों की सहायता अपेक्षित होती है। बालक अपने बलबूते निर्वाह के साधन नहीं जुटा सकता और न शिक्षा-व्यवसाय के लिए सफलतापूर्वक एकाकी कदम बढ़ा सकता है। उसे पग-पग पर संरक्षकों की सहायता अपेक्षित होती है। किशोरावस्था और भी अधिक विकट है। उसमें नये रक्त का उबाल-जोश तो भर देता है, पर होश विकसित नहीं होता जो उपयुक्त सम्पर्क एवं दिशा दर्शक वातावरण पर निर्भर है। अभिभावक बालकों के लिए अर्थ भार वहन करते हुए सुविधा-साधन जुटाते रहते हैं। अध्यापक स्कूली पाठयक्रम पूरा कराते रहते हैं। नित्य कर्म और अध्ययन के उपरान्त भी बालकों के पास ढेरों समय बच जाता है। इसे वे स्वच्छन्दतापूर्वक बिताते हैं। साथी ढूँढ़ते और उनके साथ रहकर घूमने-फिरने या दूसरे प्रकार से मनोरंजन करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रयास में उन्हें प्राय: ऐसे साथी मिल जाते हैं, जो आवारागर्दी में फिरते और दुर्व्यसनों में फँसे होते हैं। वे ही प्राय: साथी तलाशते और अपने ही जाल-जंजाल में फँसाते रहते हैं। यदि इस कुचक्र से बालकों को बचाया न जा सके, तो वे पढ़ाई में पिछड़ जाते हैं, स्वेच्छाचार अपनाते और साथियों जैसे दुर्व्यसनों में जा फँसते हैं। बचपन से लेकर किशोरावस्था के अन्त तक का समय ऐसा है, जिसे अत्यधिक साज-सँभाल की आवश्यकता पड़ती है। यदि उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया जाय, तो उच्छृंखलता के साथ जुड़ी हुई अनेकानेक दुष्प्रवृत्तियाँ भड़क सकती हैं और उस अनगढ़ का ही नहीं, सम्बद्ध लोगों का भी भविष्य अन्धकारमय बन सकता है। वे अनेकों उलझनों में उलझ सकते हैं।

प्राचीनकाल में गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा-पद्धति थी। बच्चे उनमें पढ़ने के साथ-साथ सुनियन्त्रित वातावरण के शिकंजे में भी कसे रहते थे। उनकी समूची दिनचर्या ऐसी कसी रहती थी, जिसमें मनोविनोद के साथ जुड़ा हुआ रचनात्मक क्रियाकलाप भी मिला रहता था। किशोरावस्था का खतरनाक समय इसी प्रकार बीत जाता था और जीवन विज्ञान के हर पक्ष को समझ लेने के पश्चात् युवावस्था के आरम्भ में वे घर लौटते थे और गृहस्थ जीवन की अनेकानेक जिम्मेदारियों में जुट जाते थे। अवांछनीयता अपनाने के लिए—कुमार्ग पर चलने के लिए कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रहती थी पर अब तो वह प्रणाली उठ-सी गई है। जहाँ-तहाँ उस परिपाटी के खण्डहर भर आकर्षक साइनबोर्डों से सजे दीखते हैं। विद्यालयों के साथ जुड़े हुए बोर्डिंगों में निवास-भोजन जैसी सुविधाएँ तो हैं, पर ऐसा नियन्त्रण, वातावरण, मार्ग-दर्शन नहीं है, जो वहाँ रहने वाले छात्रों को उत्कृष्टता के ढाँचे में ढाल सके।

यह आवश्यक व्यवस्था आज की परिस्थितियों में कैसे बने ? निर्धन लोग भी उसका लाभ लेने में कैसे समर्थ हों ? इसका एक ही उपाय है कि हर जगह बाल विकास केन्द्र स्थापित किए जाएँ। नित्य कर्म, भोजन, शयन, स्कूली पाठ्यक्रम के अतिरिक्त जो समय बचे, उसे इसी केन्द्र में रहते हुए बिताने का प्रचलन चलाया जाय।

बाल विकास केन्द्रों का प्रथम कार्य हो—स्कूली पढ़ाई को परिपक्व बनाना। आम शिकायत है कि अध्यापक लोग अपने पौन-पौन घण्टे के लेक्चरों में जो बात सुनाते हैं। उसे लड़के भी गम्भीरता से नहीं लेते, उस पर ध्यान नहीं देते। ज्यों-त्यों करके निर्धारित घण्टे काटते हैं। अध्यापक भी उतनी तन्मयता और गम्भीरता से कहाँ पढ़ाते हैं, जो विद्यार्थी के मस्तिष्क में कील की तरह गड़ती चली जाय। ऐसी दशा में पढ़ने-पढ़ाने की चिह्न पूजा ही चलती रहती है। उतने भर से ठीक तरह उत्तीर्ण होना और डिवीजन लाना कठिन पड़ता है, जिनके लिए ट्यूशन का प्रबन्ध हो जाता है, उनकी नाव पार लगती है, अन्यथा वह मँझधार में डूबती है। ट्यूशन की दरें भी बहुत महँगी हो गई हैं। उनका भार उठा सकना, धनी परिवारों के लिए ही सम्भव होता है। गरीबों के लिए तो ऐसा प्रबन्ध कर पाना असम्भव जैसा कठिन है। इन्हीं विडम्बनाओं में फँसे हुए बहुसंख्य छात्र अक्सर विद्रोही बन जाते हैं। नकल करने के लिए निरीक्षक-परीक्षकों को डराते-धमकाते हैं, प्रलोभन का प्रबन्ध करते हैं।

इस स्थिति में बचने का सरल उपाय यही है कि बाल विकास केन्द्र हर कक्षा के छात्रों के लिए ट्यूशन स्तर की पढ़ाई का नि:शुल्क प्रबन्ध करें। केन्द्र के खुलने का समय वह रखें जो स्कूली पढ़ाई एवं शरीर व्यवस्था के अतिरिक्त बचता है। गर्मी-सर्दियों में स्कूलों के समय अदलते-बदलते रहते हैं। उसी आधार पर इन केन्द्रों का समय भी बदल दिया जाया करे। नि:शुल्क ट्यूशन का लाभ प्राप्त करने के लिए हर समझदार विद्यार्थी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारशील अभिभावक उस व्यवस्था से लाभान्वित होने का प्रयत्न करेंगे। छात्रों की संख्या सहज ही पर्याप्त हो जायेगी। स्कूल से घर पर करने के लिए भी कुछ काम मिलता है। उसे भी केन्द्र में बैठकर अध्यापकों की सहायता से अधिक अच्छी तरह पूरा किया जा सकता है। विषयों के मूल सिद्धान्तों को अधिक अच्छी तरह समझा और हृदयंगम किया जा सकता है। बचपन में इस प्रकार की दुहरी शिक्षा-व्यवस्था बन पड़ने से सम्मिलित छात्रों की मेधा-प्रखरता विकसित होना स्वाभाविक है। इस कमाई के आधार पर भविष्य की उच्चशिक्षा के लिए नींव पक्की हो जाती है। प्रतिस्पर्धाओं में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आरम्भिक दिनों की तैयारी बहुत काम आती है। इस आधार पर मिली सफलताओं से बालकों का भविष्य उज्ज्वल बनता है। उन्हें महत्त्वपूर्ण प्रगति कर सकने, सम्मानप्रद स्थान मिलने में उत्साहवर्द्धक सफलता मिलती है।

बाल विकास केन्द्र की स्थापना सम्मिलित होने वाले छात्रों का हर दृष्टि से भविष्य उज्ज्वल बनाती है। उन्हें कुसंग से बर्बादी मोल लेने की गुंजाइश ही नहीं छोड़ती।

विकास केन्द्र के खुलने का आधा समय स्कूली पढ़ाई की पूर्ति के लिए सुरक्षित रखा जाय। शेष आधे को भिन्न प्रकार के विनोद-खेलकूद में लगाने के लिए सुरक्षित रखा जाय। इस मनोरंजन में भी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ जुड़ी रहें। विनोबा के शब्दों में बागवानी अपने ढंग का सर्वोत्तम व्यायाम है। उसमें शारीरिक श्रम, मानसिक मनोयोग का समान रूप से उपयोग होता है, साथ ही रचनात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने का अतिरिक्त लाभ मिलता है। बागवानी से, शाक-वाटिका से, पुष्पोद्यान से कुछ आर्थिक लाभ भी तो होता है। वह भले ही छात्र को व्यक्तिगत रूप से मिले या केन्द्र की सामूहिक प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए काम आए।

खेल-कूदों से शारीरिक और मानसिक स्तर का व्यायाम होता है और दोनों क्षेत्रों में परिपुष्ट होने का अवसर भी मिलता है। स्काउटिंग स्तर की प्रवृत्तियाँ साथ में जोड़ देने, फर्स्टएड जैसी कुशलताओं का समावेश रखने से मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही सहकारिता उभरती है, पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ती है, मिल-जुलकर काम करने के उत्साहवर्द्धक लाभ का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। फौजी कवायद स्तर की ट्रेनिंग स्वभाव में अनुशासन की स्थापना करती है। जो अनुशासन महत्त्व समझेगा, वह व्यवस्थित दिनचर्या बना कर उसका परिपालन करेगा, उसे उच्छृंखलता अपनाकर प्रामाणिकता गँवा बैठने के खतरे की भी जानकारी रहेगी, फलतः उस दुर्गति से सावधान रहेगा और बचेगा।

यही समय है, जिसमें हँसते-हँसाते जीवन विज्ञान के तथ्यों और सिद्धान्तों से भी कुशल अध्यापक शिक्षार्थियों को अवगत-अभ्यस्त कराते रह सकते हैं। धर्मोपदेशकों की तरह नीति-शिक्षा देने में कइयों को अनख भी लगता है और उसे सुनने में अपना अपमान जैसे होने लगता है। अहंकारिता के इस दौर में सभी अपने को सर्वांगपूर्ण समझते हैं। दूसरों द्वारा दिए गए दार्शनिक उपदेशों को सुन लिया जाय तो भी पीछे व्यंग्य-उपहास का दौर चल पड़ता है। अस्तु, समय को समझते हुए आदर्शवादी शिक्षण सीधे न देकर प्रकारान्तर से ही देने चाहिए। सुसंस्कारी परिवारों में अभी भी रात होते बच्चों को कथा-कहानियाँ सुनाई जाती हैं और बड़े भी उसमें रस लेते हैं। भले ही वे बच्चों के साथ न बैठ कर अन्य कामों में लगे रहें, पर ध्यान उनका कही जा रही कहानियों की ओर ही रहता है। यह परोक्ष धर्मोपदेश की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं मनोरंजन भरी हृदयग्राही पद्धति है। इसी आधार पर प्रज्ञा पुराण की कथाएँ भी लाखों परिवारों में कही-सुनी जा सकती हैं। यह बोए गए उत्कृष्टता के बीज समयानुसार श्रवणकर्ताओं के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में उभरते हैं, इस आधार पर सुसंस्कारिता पनपाने का उद्देश्य जितनी सरलतापूर्वक पूरा होता है, उतना और किसी प्रकार नहीं। प्राचीनकाल में कथा-पुराणों का कथन-श्रवण एक धर्मकृत्य माना जाता था और उतने भर से पुण्य-लाभ मिलने का माहात्म्य बताया जाता है। अब उसे नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान एवं विनोद का सम्मिलित स्वरूप समझा जा सकता है। बाल विकास केन्द्र के संचालक इस पद्धति को भी अपनाएँ और उपस्थित छात्रों में शिष्टता, सज्जनता, नागरिकता, समाजनिष्ठा जैसी सत्प्रवृत्तियाँ पनपाएँ। यदि यह प्रक्रिया जड़ पकड़ ले और सुविस्तृत हो चले, तो यह भी हो सकता है कि इस समग्र शिक्षा को संजीवनी विद्या नाम दिया जाय और उसकी परीक्षाएँ लेने, प्रमाण-पत्र देने का क्रम अपनाकर उत्साहवर्द्धन का एक नया स्रोत खुल जाय।

बाल विकास केन्द्रों की स्थापना की वही कार्य पद्धति है, जो प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित करने के लिए अपनाई जाती है। अध्यापकों की आवश्यकता उदारचेता शिक्षितों से विद्या ऋण चुकाने के लिए समयदान माँग कर पूरी की जानी चाहिए। अनेक धार्मिक, सामाजिक सज्जनोचित प्रवृत्तियाँ चन्दा माँग कर सम्पन्न की जाती हैं। शिक्षा सम्वर्द्धन आन्दोलनों को अग्रगामी बनाने के लिए यों धन की आवश्यकता भी किसी न किसी रूप में रहेगी ही। फिर अधिक आग्रह शिक्षितों से समय-दान का किया जाना चाहिए। हर स्थान पर ऐसे नर-नारी मिल सकते हैं, जिन्हें निजी काम करने के उपरान्त भी खाली समय रहता है। यदि वे उसे आलस्य-प्रमाद में, विनोद-व्यसन में खर्च न करके बाल विकास केन्द्र जैसे उच्चकोटि के परमार्थ में लगाने लगें, तो जहाँ योजना का सर्वोपरि पक्ष पूरा होगा, वहाँ समय-दानी भी सच्चे श्रेय का अधिकारी बनेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा-विस्तार ही समाज की प्रगति का मूल आधार

राष्ट्र से अशिक्षा की कलंक-कालिमा मिटाई जाय

मनुष्य की वे सारी कृतियाँ एवं प्रवृत्तियाँ पाप की परिभाषा में आती हैं, जिनसे उसकी लौकिक अथवा पारलौकिक सुसम्भावनाएँ नष्ट होती हैं। जिस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए हम मनुष्य योनि में आए हैं, उसी प्रकार उन्नति करते हुए परम पद को प्राप्त करें, यही इस मानव जीवन की सार्थकता है और यही उद्देश्य भी । इस महान उद्देश्य की पूर्ति पापपूर्ण निम्नताओं में गिरे रहने से कदापि सम्भव नहीं। इसके लिए मनुष्य को पुण्य प्रदायिनी शिक्षा का आश्रय लेना होगा। अशिक्षित व्यक्ति अज्ञानवश, जान-अनजान, सहज-सहठ, प्रत्यक्ष-परोक्ष, ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में किसी न किसी प्रकार के पाप का भागी बन रहता है। अज्ञानपूर्ण अन्तःकरण में पाप निवास न करे, बुद्धि भ्रमित न हो और मन निर्मल रहे यह सर्वथा असम्भव है। पाप-पुण्य की सूक्ष्म गतियों को न जानने के कारण जब विद्यावानों को आशंका बनी रहती है, तब जो अशिक्षित एवं अज्ञानी है, वह इस ओर से निरापद रह सकता है, ऐसा सोचना उपहासास्पद ही होगा।

काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट, कूट एवं कुटिलता जैसे विकारों एवं विकृतियों का जन्म एवं विवर्धन अविद्या के कारण ही होता है। चोरी, डकैती, व्यभिचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, हत्या तथा बेईमानी जैसे अपराधों की जन्मदात्री एवं धात्री अविद्या ही तो है। इस प्रकार की पाप-प्रताड़नाओं का शिकार बना मनुष्य भौतिक अथवा आत्मिक किसी प्रकार की उन्नति कर सकता है, ऐसी सम्भावना सर्वथा असम्भव ही कही जा सकती है।

विद्या रहित व्यक्ति की बुद्धि विकास से वंचित ही रहती है। उसमें अच्छाई-बुराई, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, पाप-पुण्य की निर्णय क्षमता का अभाव ही रहता है। ऐसा मंदबुद्धि व्यक्ति क्या लौकिक और क्या पारलौकिक कोई भी उन्नति करने योग्य नहीं होता। वह तो अन्य जीव-जन्तुओं की भाँति पेट एवं प्रमाद-प्रमोद की परिधि में पड़ा-पड़ा सड़ता रहता है। अज्ञान-अचेत होने से उसका ध्यान न तो आत्मा की ओर जाता है और न उसकी आवश्यकता की ओर। मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? यह प्रश्न उसकी विचार वीथि में कभी भूले-भटके भी नहीं आता। ऐसा जड़ जीवन जीते हुए मनुष्य का क्या कोई आध्यात्मिक भविष्य सम्भव हो सकता है ?

विद्या प्राप्ति का माध्यम शिक्षा है। साक्षरता से वह योग्यता प्राप्त हो सकती है, जिसमें विद्या का आन्तरिक विकास सम्भव हो सके। बेशक कई साक्षर व्यक्ति भी दुष्ट प्रकृति के देखे जाते हैं, पर इतना निश्चित है कि जिसे आत्मकल्याण का प्रकाश देने वाली विद्या प्राप्त हुई है, उसे पहले शिक्षित होने के सोपान पर कदम बढ़ाना पड़ा है। अशिक्षित व्यक्ति को आमतौर से आत्मकल्याण की ओर अग्रसर करने वाली ऋतम्भरा—प्रज्ञा विद्या से तो वंचित रहना ही पड़ता है, साथ ही लौकिक जीवन भी उसका हर प्रकार विपन्न ही रह जाता है।

आत्मिक उन्नति तो दूर अशिक्षित व्यक्ति भौतिक उन्नति कर सकने योग्य भी नहीं रहता। अनपढ़ एवं अशिक्षित व्यक्ति कदाचित ही कोई ऐसा मिल पाता है, जो कोई बड़ा आर्थिक आयोजन चला रहा हो अन्यथा अधिकांश में मेहनत, मजदूरी के छोटे-मोटे काम जैसे ठेला खींचना, बोझा ढोना, मिट्टी खोदना—ही करते देखे जाते हैं। बारह-बारह घण्टे कड़ी मेहनत करने के बाद भी अशिक्षित व्यक्ति कठिनता से ही इतनी आय कर पाता है जिससे सुविधापूर्वक अपने परिवार का पालन कर सके और अपने बच्चों को शिक्षा दिलाकर इस योग्य बना सके कि वे अपने जीवन का ठीक-ठीक विकास कर समाज में उपयुक्त स्थान पा सकें। अपनी ही तरह अपने बच्चों को शिक्षा न दिला सकने के कारण उन्हें भी जड़ जीवन बिताने के लिए विवश करता है। यह विवशताजन्य होने पर भी एक पारिवारिक पाप है, जिसका उसके कर्ता की आत्मा पर कुप्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

आचार-विचार, अधिकार-कर्तव्य तथा लोकाचार से अनभिज्ञ होने से अशिक्षित व्यक्ति अनायास ही अशिष्टता कर बैठता है, जिससे समाज में उसे असम्मान, तिरस्कार लांछन का पात्र बनना पड़ता है। मनुष्य की यह अवहेलना उसके मन, बुद्धि एवं आत्मा पर अशुभ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप क्षोभ, असन्तोष, खिन्नता, ग्लानि अथवा आत्महीनता के रूप में प्रतिफलित होती है। आत्महीन व्यक्ति संसार में कोई भौतिक अथवा आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ प्रायः नहीं ही देखा जाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असभ्यता एवं अशिष्टता, अशिक्षा की दो ऐसी प्रतिक्रियाएँ हैं जो मनुष्य का भविष्य ही नहीं भाग्य तक अन्धकारमय बना देती हैं। असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहार वाले व्यक्ति से समाज का कोई भी भलामानस सम्बन्ध रखने को तैयार नहीं होता। हर भला आदमी उससे दूर भागने की कोशिश किया करता है, ऐसी दशा में वह अपनी सामाजिकता की भूख को बुझाने के लिए व्यसनी, प्रमादी अथवा अपने जैसे ही मूढ़ मनुष्यों के सम्पर्क में जाएगा, जहाँ वह उन्हीं जैसी रीति-नीति सीख लेगा।

कुसंग में पड़कर मनुष्य न केवल व्यसनी बल्कि अपराधी भी बन जाता है। उचित-अनुचित का तो उसे यों ही ज्ञान नहीं होता, फिर व्यसनी जीवन के साथ मूढ़ मित्रों का साथ कोढ़ में खाज का काम करता है। अपराधी बनकर मनुष्य अपनी आत्मिक, पारिवारिक तथा नैतिक हानि तो करता ही है, समाज के लिए भी संकट उत्पन्न कर देता है। अपराध बढ़ जाने से समाज में असुरक्षा एवं भय की भावना बढ़ती है, जिससे हर भला आदमी अपनी मानमर्यादा तथा जानमाल के लिए चिन्तित रहने लगता है। इससे उन्नति की दिशा में चलते हुए लोगों के पैरों में शिथिलता आती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अशिक्षित व्यक्ति समाजिक पाप का भागी बनता है।

आज के प्रजातन्त्र युग में क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित कोई भी राजनीति से पृथक नहीं रह सकता। उसे और कुछ नहीं तो कम से कम वोट देने के रूप में तो उससे सम्बन्धित होना ही होगा। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपने वोट का मूल्य एवं महत्त्व नहीं समझता। चतुर, चालाक तथा अनेक कुटिल लोग मूढ़ मतदाता को छलकर, बहकाकर अथवा लोभ देकर अपना समर्थन कराने में सरलतापूर्वक सफल हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप शासकीय, प्रशासकीय, राष्ट्रीय तथा अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गतिरोध उत्पन्न हो जाते हैं। शासन सत्ता में मूढ़-मतदाताओं के कारण अप्रमाणिक तथा अवांछनीय तत्त्वों के पहुँच जाने से शासन-सूत्र शिथिल हो जाता है और अनिश्चय एवं अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके कुफल सम्पूर्ण राष्ट्र को समान रूप से भोगने पड़ते हैं। जिन-जिन देशों की जनता अराजक त्रास से त्राहि-त्राहि करती देखी-सुनी जाए, समझ लेना चाहिए कि वहाँ की जनता निश्चित रूप से मूढ़, अशिक्षित एवं अज्ञानी है, जिन्हें न तो अपने मत की महत्ता का ही पता है और न उनकी अविकसित बुद्धि में वह ज्ञान है, जिसके द्वारा वे उचित-अनुचित, पात्र-अपात्र अथवा भले-बुरे की पहचान कर सकें। अशिक्षा के कारण इस राजनीतिक संकट की सम्भावना सदा-सर्वदा सब जगह ही बनी रहती है।

शिक्षा के अभाव में मनुष्य का मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास अवरुद्ध हो जाता है, जिससे वह निम्न आचार-विचार का शिकार बना हुआ समाज एवं राष्ट्र पर कलंकपूर्ण भार की तरह बना रहता है। वह जहाँ भी जाता है वहाँ अपने राष्ट्र, समाज तथा जाति का नाम नीचा किया करता है। अशिक्षित व्यक्ति कर्तव्य के ज्ञान से वंचित होने के कारण या तो अन्याय की हानि सहन करता है अथवा दूसरों के साथ अन्याय किया करता है। दोनों दशाओं में यह अज्ञानता मनुष्य की उन्नति के लिए बहुत हानिकारक है। पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, आत्मिक अथवा आध्यात्मिक किसी धर्म का समुचित निर्वाह कर सकना अशिक्षित व्यक्ति के वश की बात नहीं होती।

भारतीय समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, छुआछूत, भेदभाव, ऊँच-नीच तथा जाति-पाँति आदि अशिक्षा की ही देन हैं। आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता, निराशा, निरुत्साह अथवा आवेग, अवज्ञा आदि मानसिक विकारों की जननी भी निरक्षरता ही है। इस प्रकार यदि विचार करते हुए गहराई से खोज की जाय तो कदाचित ही ऐसा कोई दुर्गुण, दुर्व्यसन अथवा दुष्कृत्यता पाई जा सके, जिसको निरक्षरता ने जन्म न दिया हो।

धर्म का ठीक-ठीक रूप न समझ सकने के कारण अशिक्षित व्यक्ति न जाने कितने देवी-देवताओं, भूत-पलीतों और मियाँ-मसानों की पूजा करते हैं। अशिक्षित नारियाँ तो इन अन्धविश्वासों की यहाँ तक वंदिनी होती हैं कि कभी-कभी ढोंगी तथा प्रपंची लोगों के बहकावे में आकर शील-सम्पत्ति तक खो बैठती हैं। धर्म के नाम पर अधर्म का पालन एक ऐसा पाप है, जो जीवात्मा को न जाने कितनी बार चौरासी लाख यौनियों की खाक छनाया करता है।

महामना ऋषि-मुनियों की सन्तान एवं सनातन ज्ञान के अधिकारी भारतवासी आज इस प्रकार अज्ञान में डूबे हुए हैं कि उनमें और अन्य जीव-जन्तुओं में कोई भेद ही नहीं दिखाई देता। गन्दगी, अश्लीलता, आचरणहीनता, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि के अवगुण तो उनके स्वभाव के अंग बन गए हैं। आत्मा-परमात्मा, धर्म एवं अध्यात्म सम्बन्धी ज्ञान तो उनके लिए स्वप्न की बातें होती जा रही हैं। आदर्श जीवन क्या होता है, मानवता किसे कहते हैं, राष्ट्रीयता का क्या स्वरूप है, सामाजिक जीवन की क्या मान्यताएँ हैं, धर्म किसे कहते हैं और उसके आचरण और अनाचरण से क्या लाभ-हानि होती है, इनमें से आज कितने भारतवासी, कितनी बातें सही रूप में जानते हैं ? अज्ञान का यह अन्धकार इस आर्ष एवं आर्षभूमि पर एक भयानक कलंक है। जिनके पास वेदों का ज्ञान हो, शास्त्रों का आलोक, सत्धर्म का धन हो उनका मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक रूप से दरिद्री बना रहना इस पाप का ही फल है, जिसे अविद्या कहते हैं और आज जो भारतवासियों के बीच व्योम-वेलि की तरह फैली हुई है।

व्यक्तिगत से सामाजिक स्तर तक, जब तक देश से निरक्षरता का कलंक दूर नहीं होता, अशिक्षा एवं अविद्या का पाप प्रायश्चित नहीं किया जाता, तब तक हम सबको

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार सामूहिक रूप में आत्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रोग, शोक, दुःख-दारिद्र, अपमान, अवज्ञा का शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक पतनपूर्ण अपावन जीवन यों ही जीते रहना पड़ेगा।

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास और चरित्र के निर्माण में निश्चय ही शिक्षा का असाधारण महत्त्व है। अशिक्षित व्यक्ति राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक हलचलों से न केवल अनभिज्ञ रहता है वरन् शिक्षा के अभाव में वह उन सामान्य जानकारियों से भी वंचित रह जाता है, जो जीवन को सरल, सुखद और सुविधापूर्ण बनाने के लिए अनिवार्य होती हैं। यों खाने-पीने और सोने जागने को ही मनुष्य जीवन का स्वरूप समझा जाय तो बात अलग है। इस दर्रे का जीवन तो पशु-पक्षी भी जी लेते हैं। यदि मनुष्य भी उसी स्तर का जीवन जीता रहा तो पशु-पक्षियों और जानवरों में क्या अन्तर रहा ? यदि मनुष्य को इन पशु-पक्षियों से भिन्न और उच्च स्थिति का प्राणी समझा जाय तो उसका कार्य क्षेत्र बढ़ने के साथ-साथ उसकी गतिविधियों का क्षेत्र भी व्यापक बन जाता है।

अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन के महत्त्व, समाज के प्रति अपने दायित्व और कर्तव्य, अपने अधिकार और मनुष्य जीवन की गरिमा को समझना तो दूर रहा, उल्टे अनेकानेक प्रकार की भ्रान्तियों और भ्रष्टताओं का शिकार बनता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षित व्यक्ति आचरण और चरित्र की दृष्टि से पूरी तरह उज्ज्वल जीवन जीते हैं। भ्रान्तियाँ और भ्रष्टताएँ उनमें भी होती हैं लेकिन रूढ़िग्रस्तता, अन्धविश्वास, संकीर्णता आदि कमजोरियाँ अशिक्षित व्यक्ति में अपेक्षाकृत अधिक होने की सम्भावना रहती है। अपने देश में पिछड़ेपन, अन्धविश्वासों का साम्राज्य, स्वतन्त्र होने पर भी उसकी गौरवानुभूति का अभाव आदि कई विसंगतियाँ व्याप्त हैं, इसका प्रमुख कारण अशिक्षा ही समझना चाहिए।

शिक्षा से तात्पर्य स्कूल जाने और वहाँ पढ़ने से ही नहीं है। स्कूल जाने और पढ़ना-लिखना सीखने का शुभारम्भ तो शिक्षा की प्रथम कक्षा है। जीवन को सफल बनाने, समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध होने की जानकारी, प्रशिक्षण वैयक्तिक एवं सामाजिक गतिविधियों का बोध आदि सभी विषय शिक्षा में समाहित हो जाते हैं। कुल मिलाकर मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं का परिचय तथा उनके विकास की कला जानना-सीखना शिक्षा में ही सम्मिलित है। अस्तु, शिक्षा से तात्पर्य स्कूली शिक्षा का एकांगीपन नहीं है वरन् उसमें सांसारिक ज्ञान, भौतिक और आत्मिक प्रगति तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक सुख-शान्ति की समुचित जानकारी का भी समावेश है।

इस व्यापक अर्थ को साकार करने के लिए पहला चरण निरक्षरता निवारण के रूप में ही उठाना पड़ेगा। साक्षरता के बाद ही दूसरी जानकारियाँ उपलब्ध कराने तथा जीवन को सार्थकता की दिशा प्रदान करने का कार्य सम्पन्न हो सकता है। अशिक्षित, निरक्षर व्यक्ति नव-निर्माण के प्रयत्नों में सहयोग देना तो दूर रहा, यह भी नहीं जानता कि इनका महत्त्व क्या है ? और यह क्यों आवश्यक है ? अपने देश में केवल २३ प्रतिशत लोग ही शिक्षित हैं। इनमें वे लोग भी आ गए हैं, जिन्हें केवल हस्ताक्षर करना आता है। बाकी ७७ प्रतिशत तो पूरी तरह निरक्षर हैं। अशिक्षित और निरक्षर लोगों की बहुलता के कारण ही भारतीय समाज बीसवीं शताब्दी में भी बेहद पिछड़ा और अविकसित माना जाता है। पश्चिमी लोगों की धारणा है कि भारत सपेरों, जादूगरों और साधु बाबाओं का देश है। इसमें कोई अतिरंजना नहीं है। जिस किसी ने भी यह बात कही होगी उसके सामने निश्चित रूप से ७० प्रतिशत वह भारतीय जनता रही होगी, जो पढ़ने-लिखने के नाम पर एक भी अक्षर नहीं पहचानती।

इस तथ्य के साथ शिक्षा के महत्त्व को समझना चाहिए और जिनके भी मन में अपने समाज और राष्ट्र के प्रति थोड़ी भी टीस है, उन्हें निरक्षरता को दूर करने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न करने चाहिए। कितनी ही बड़ी जनसंख्या अशिक्षित क्यों न हो, लेकिन विश्व की स्थिति को देखते हुए अब लोगों के मूल्यांकन का मापदण्ड बदल चुका है। पहले कभी जाति-पाँति, वर्ण, रूप-रंग और कुल-वंश के कारण किन्हीं लोगों को प्रतिष्ठा मिलती रही हो, लेकिन अब वे आधार नष्ट हो चले। अब शिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति ही सम्मान पाते हैं। सार्वजनिक प्रतिष्ठानों और सेवा-संस्थाओं की व्यवस्था पढ़े-लिखे योग्य व्यक्तियों के हाथ में ही सौंपी जाती है। बुद्धिजीवी और श्रमिक, अफसर और चपरासी, साहूकार और किसान के जीवन तथा प्रतिष्ठा में जो अन्तर दिखाई देता है, उसका मूल कारण शिक्षा ही है। ऊँचे सरकारी पदों पर प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को सँभालने के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त प्रशिक्षित व्यक्ति ही नियुक्त किए जाते हैं। इन्जीनियरों, वकीलों, डॉक्टरों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के व्यवस्थापकों की आय ठेला, रिक्शा चलाने वाले, कुलियों और मजदूरों की दैनिक आमदनी से कई गुना अधिक होती है। इसका एकमात्र कारण शिक्षा और अशिक्षा है।

शिक्षा का व्यापक प्रसार होने पर स्थिति में स्थूल परिवर्तन नहीं हो जाएगा कि मजदूर नहीं रहेंगे अथवा बुद्धिजीवी नहीं होंगे। समाज की विभिन्न आवश्यकताओं को देखते हुए कार्य क्षेत्रों का यह विभाजन क्रम तो यथावत रहेगा, लेकिन शिक्षा के प्रसार के साथ जो जागरूकता आएगी, वह लोगों में आत्मविश्वास उत्पन्न करेगी, उनके मन में से भीरुता का निराकरण करेगी और लोगों के मन-मस्तिष्क को जकड़े हुए विश्वासों, विचारों और मान्यताओं पर पुनर्दृष्टि डालने की क्षमता विकसित करेगी, जिससे समाज व्यवस्था में परिवर्तन की एक नई प्रक्रिया आरम्भ हो सकेगी। स्मरणीय है संसार के जितने

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी देशों में कोई सामयिक अथवा स्थाई परिवर्तन हुए हैं, उनमें शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों ने ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निवाही है।

इसके विपरीत अशिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों के ही विकास में बाधक है, उन्नति के मार्ग में रोड़ा है। हमारे पतन और दु:ख की जड़ में अशिक्षा ही है। अन्धविश्वास, भेदभाव, छुआछूत और कुप्रथाओं में जकड़ा हुआ भारतीय समाज अशिक्षा के कारण उन बन्धनों को खोलने नहीं देता। इस कारण निरक्षर, अशिक्षित लोग न प्रगतिशील विचारों को समझ पाते हैं, नहीं अपने नागरिक अधिकारों को जान पाते हैं। इस प्रकार समाज की, राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति की योजनाएँ अधर में ही लटकी रहती हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा का प्रसार करने के लिए व्यापक स्तर पर साक्षरता आन्दोलन चलाया जाय।

इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि निर्धनता को शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में बाधक नहीं बनने देना चाहिए। शिक्षा के महत्त्व को इस प्रकार समझाया और लोगों को हृदयंगम कराया जाय कि वे पेट काट कर भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए तत्पर हो उठें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्साही और सेवा-भावी व्यक्तियों को घर-घर घूमते हुए शिक्षा का महत्त्व समझाना चाहिए। जो लोग सोचते हैं कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनके लड़के-बच्चे निकम्मे हो जाएँगे, उनका यह भ्रम दूर किया जाना चाहिए। दीवारों पर विचारोत्तेजक वाक्य, कैलेण्डर, पोस्टरों आदि में अशिक्षा के दोषों और शिक्षा के लाभों का आकर्षक ढंग से प्रचार करना चाहिए। स्कूल जाने वाले बड़े विद्यार्थियों द्वारा अपने गाँवों में गर्मी की छुट्टियों के समय 'स्कूल चलो अभियान' चलाया जा सकता है। शिक्षकों द्वारा भी बड़े और लम्बे अवकाशों के समय शिक्षा प्रसार में सहयोग दिया जाना चाहिए। वेतन का लोभ छोड़कर छुट्टियों में ज्ञानयज्ञ के लिए हाथ बँटाना एक बहुत ही पुण्य कार्य हो सकता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मनुष्य को पशु श्रेणी से उठाकर मनुष्य स्तर तक पहुँचाने में केवल शिक्षा ही सहायक सिद्ध हो सकती है। विद्या ज्ञान शक्ति का, योग्यता सम्पादन का स्रोत है। वही चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण करती है। इस समय अपने देश के सामने निरक्षरता एक बहुत बड़ी चुनौती है। जब तक एक भी व्यक्ति अपने देश में निरक्षर रहता है, तब तक प्रत्येक साक्षर व्यक्ति को यह समझना चाहिए कि यह अपने राष्ट्र पर कलंक का धब्बा है।

शिक्षा द्वारा आत्मोन्नति

अशिक्षित होना बहुत बड़ा अभिशाप है। चाहे किसी में कितनी ही प्रकृतिदत्त योग्यताएँ हों, परन्तु यदि वह अनपढ़ है तो उसकी प्रतिभा-शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो पाएगा। केवल प्रतिभाओं का होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु शिक्षा द्वारा उनका विकसित होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार से पौष्टिक भोजन के अभाव में शरीर कृश हो जाता है, उसी प्रकार उत्तम पुस्तक रूपी पौष्टिक भोजन न मिलने से मानसिक शक्तियाँ भी क्षीण हो जाती हैं तथा मस्तिष्क उन्नत नहीं हो पाता।

पुस्तकें न केवल हमारी मानसिक शक्तियों को विकसित करती हैं, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारी सहायता करती हैं। यदि हम थके हुए हैं तो मनोरंजन करती हैं, एकाकी हैं तो श्रेष्ठ मित्र का सुख देती हैं, विपत्ति में पड़े हुए हैं तो प्रेरणा तथा समुचित मार्गदर्शन देती हैं।

पुस्तकों से केवल मनोरंजन ही नहीं होता अपितु ज्ञान भण्डार में भी वृद्धि होती है। इनके द्वारा घर बैठे देश-विदेशों की अनेक सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति, निवासियों तथा उनके आचार-विचार के सम्बन्ध में जान सकते हैं। वहाँ की साहित्यिक कृतियों का रसास्वादन कर सकते हैं।

अच्छी पुस्तकें पढ़ने से सद्गुणों का विकास होता है तथा बुराइयाँ दूर होती हैं। विनम्रता, सहिष्णुता, श्रमशीलता, सज्जनता, सेवा, परोपकार आदि की भावनाएँ हमारे अन्दर पल्लवित होती हैं।

निराशा और आपत्तियों के क्षणों में पुस्तकें अच्छे मित्र तथा मार्गदर्शक की भूमिका निबाहती हैं। सच्चा, हितैषी तथा उचित मन्त्रणा देने वाला मित्र मिलना संसार में दुर्लभ है। परन्तु पुस्तकें इस अभाव की पूर्ति करती हैं। एकाकी क्षणों में वे साथी के समान मन बहलाती हैं, विपत्ति के क्षणों में मित्र के समान अनुभवी तथा हितपूर्ण निर्देशन देती हैं। उनके सामीप्य में जिस अवर्णनीय आनन्द की अनुभूति होती है, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। अन्य प्रसन्नताएँ तो सीमित, सामयिक तथा अस्थायी होती हैं परन्तु अध्ययन से मिलने वाला आनन्द अनन्त तथा चिरकालीन होता है।

इन सब बातों को दृष्टिगत रखते हुए ही हमारे धर्म ग्रन्थों में स्वाध्याय पर बल दिया गया है तथा कहा गया है कि इस पृथ्वी और द्युलोक के बीच में जो कुछ भी है, उसमें स्वाध्याय सर्वोपरि है। धन-धान्य पूर्ण समस्त पृथ्वी का दान करने से जो पुण्य प्राप्त होता है उससे तिगुना पुण्य अथवा और भी अक्षय पुण्य उस व्यक्ति को मिलता है, जो प्रतिदिन स्वाध्याय करता है।

परन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे देश की ८० प्रतिशत जनता अज्ञान और अशिक्षा के गर्त में पड़ी हुई है। हम देखते हैं कि पुरुष और स्त्रियाँ विशेषत: २५ से ४० वर्ष की आयु तक के व्यक्ति शिक्षा के अभाव के कारण छोटे-मोटे कार्यों में अपनी शक्तियाँ नष्ट कर रहे हैं। अनपढ़ होने के कारण न तो उनकी मानसिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तियों का ही पूर्ण विकास हो पाता है और न जीवन स्तर ही उन्नत हो पाता है। बच्चों का पालन भी ऐसे लोग यथाविधि नहीं कर पाते।

अनपढ़ लोगों को शिक्षा प्राप्त करके अपनी उन्नति करने का प्रयास करना ही चाहिए। स्थान-स्थान पर ऐसे स्कूल हैं जो पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा देते हैं, बहुत से रात्रिकालीन विद्यालय भी हैं। उनसे लाभान्वित होना चाहिए। युग निर्माण योजना द्वारा संचालित विद्यालय इस ओर एक क्रान्तिकारी कदम है। जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में काम आने वाली, चरित्रगठन तथा नैतिक और भावनात्मक परिष्कार करने वाली शिक्षा उनमें दी जाती है। प्रत्येक परिजन को उससे लाभ उठाना ही चाहिए। जीवन विस्तृत है उसका लाभ उठाना ही चाहिए। एक बार दृढ़ निश्चय कीजिए कि आप शिक्षित व्यक्ति बनकर ही रहेंगे। यदि आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो उसका मूल्य अवश्य चुकाना होगा और एक दिन आप देखेंगे कि मानसिक शक्तियाँ तेजी से विकसित हो रही हैं। धीरे-धीरे ज्ञान का विशाल भण्डार आपके पास एकत्रित हो जाएगा जो कि प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति का नूतन द्वार खोल देगा।

शिक्षण का लक्ष्य हो— सोये को जगाना

शिक्षा के आधार पर ही व्यक्तित्व विकास के वे सभी प्रयोजन पूरे हो सकते हैं, जिनकी कि आदिम से आधुनिक, अनगढ़ से सुगढ़ मानव बनने के सम्बन्ध में चर्चा होती रहती है। कहने को तो भारतवर्ष में हम ९० करोड़ व्यक्ति रहते हैं पर जब सुसंस्कृत, सभ्य, जागे हुए व्यक्तियों की संख्या की बात चलती है तो हममें से करीब ५५ करोड़ से भी अधिक इस श्रेणी में नहीं आते। जो साक्षर हैं, उनमें भी मात्र अक्षर ज्ञान वालों की संख्या अधिक है, उनकी कम जो सही माने में सुसंस्कृत, जाग्रत नागरिक कहे जा सकें। प्रगति और शिक्षा का चोली-दामन का साथ है। शिक्षा चाहे वह संख्याबद्ध न होकर अनौपचारिक ही हो, सांस्कृतिक जागरण एवं व्यक्तित्व परिष्कार के लिए बहुत ही अनिवार्य है। शिक्षा के अभाव में वह कला-कौशल, जन्मजात प्रतिभा प्रसुप्त ही पड़ी रह जाती है, जिसका सदुपयोग किए जाने पर अपना व समाज का कुछ हित हो पाता है।

वस्तुत: मनुष्य का वास्तविक धन विद्या कहा गया है, वह तो आता-जाता रहता है। कोई कभी निर्धन से धनवान बन जाता है और कई धनवान कुछ ही समय में निर्धन होते देखे गए हैं। जिस सम्पत्ति पर अपना पूरी तरह अधिकार ही नहीं, उसे इच्छित ढंग से बढ़ाया और रखा ही नहीं जा सकता, उसे किस आधार पर अपना कहा जाय ? और कैसे उस पर गर्व किया जाय ? अपना कहने और गर्व करने लायक एक ही धन है, विद्या। जिसे न नाते-रिश्तेदार बाँट सकते हैं और न शत्रु नष्ट कर सकते हैं। धनवान को निर्धन होते तो कई बार देखा गया है, असंख्यों व्यक्ति परिस्थितियों की मार खाकर श्री सम्पन्न से दीन-हीन होते देखे गए पर आज तक कोई विद्वान अपनी विद्या विभूति को खोकर मूर्ख, अज्ञानी बन गया हो, ऐसा कहीं-कभी सुनने में नहीं आया।

अतएव धन-सम्पत्ति बढ़ाने से भी अधिक ज्ञान सम्पदा बढ़ाने की चिन्ता करनी चाहिए और उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। खेद की बात है कि अपना देश अभी इस दृष्टि से एकदम दीन-हीन है। जिस देश का एक बड़ा जन-समुदाय निरक्षर-अशिक्षित हो, उसकी सर्वतोमुखी प्रगति की सम्भावनाएँ धूमिल ही हैं। अस्तु, राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए सर्वप्रथम शिक्षा प्रसार को महत्त्व दिया जाना चाहिए। इसके लिए पूरी तरह सरकार पर निर्भर रहा जाय तो भी प्रगति अपेक्षित गति से नहीं होगी। आवश्यकता इस बात की है कि विचारशील और जागरूक व्यक्ति शिक्षित जनशक्ति का महत्त्व समझकर उसके निर्माण का प्रयास करें। सरकार की अपनी सीमाएँ होती हैं। वह उस सीमा के भीतर ही रहकर काम कर सकती है, जबकि इस प्रयोजन के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास किया जाना आवश्यक है।

इस प्रयोजन के लिये शिक्षित व्यक्ति समाज का ऋण 'विद्या ऋण' चुकाने के लिए आगे आएँ और अशिक्षित-निरक्षर व्यक्ति अपना संकोच-झिझक छोड़कर शिक्षा का लाभ प्राप्त करें। शिक्षितों में उत्साह और अशिक्षितों में अभिरुचि जाग्रत करने के लिए विचारशील व्यक्तियों को तन्मयता और निष्ठापूर्वक आगे आना चाहिए तथा हर व्यक्ति से सम्पर्क जुटाकर साक्षरता विस्तार की व्यवस्था बनानी चाहिए। शिक्षक और विद्यार्थी के लिए पढ़ाने तथा पढ़ने की सुविधा का क्या समय हो सकता है? स्थान कहाँ हो ? रोशनी, बिछावट, पाठ्य-पुस्तकों का कैसे प्रबन्ध हो ? यह कोई समस्याएँ नहीं हैं। इन आवश्यकताओं को आसानी से पूरा किया जा सकता है। यदि प्रबल उत्कण्ठा इस कार्य को पूरा करने के लिए उत्पन्न हो, इस प्रकार की अड़चनें जरा भी बाधक नहीं बन सकतीं। मूल प्रश्न इस तरह की मन:स्थिति पैदा करने का है, यदि मन:स्थिति पैदा करली गई तो हजारों बाधाएँ आने पर भी कोई समस्या अवरोध नहीं बन सकती है।

इस तरह की पाठशालाएँ व्यक्तिगत रूप से भी चलाई जा सकती हैं और सामूहिक रूप से भी। और यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है कि गली-मुहल्लों में हर जगह साक्षरता-सम्वर्द्धन पाठशालाएँ चलें।

यदि पाठशाला की व्यवस्था न हो सके तो थोड़े-थोड़े व्यक्तियों को एक स्थान पर इकट्ठे करके भी शिक्षण की व्यवस्था बनाई जा सकती है। थोड़े-थोड़े दिन एक-एक व्यक्ति को पढ़ाने का क्रम भी चलता रह सकता है। जहाँ जैसी स्थिति हो वहाँ उसके अनुरूप व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाकर शिक्षा विस्तार का क्रम आसानी से चलाया जा सकता है। यह व्यवस्था केवल पुरुषों, किशोरों, बालकों आदि के लिए ही नहीं, अपितु महिलाओं के लिए भी बनाई जानी चाहिए। महिलाओं की पाठशालाएँ महिलाओं द्वारा चलाई जानी चाहिए अथवा किन्हीं वृद्ध पुरुषों द्वारा। पति-पत्नी दोनों मिलकर भी इन्हें चला सकते हैं। प्रचलित प्रथा के अनुसार अड़चनें युवा अध्यापकों द्वारा पढ़ाए जाने पर ही आती है।

इस शिक्षण योजना में यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि साक्षरता से मतलब केवल हस्ताक्षर करना सिखा देने से नहीं है। जिन्हें इस शिक्षा कार्यक्रम में सम्मिलित किया जाय, उन्हें कम से कम इतना अक्षर ज्ञान तो होना ही चाहिए कि वह पुस्तकें, समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ आदि पढ़ सकें। इतना शब्दकोष तो प्रत्येक व्यक्ति के पास होना ही चाहिए कि वह पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकें आदि में आने वाले सामान्य कठिन शब्दों का अर्थ जान सके। इतना ज्ञान होने पर ही शिक्षित कहलाने की परिभाषा पूरी हो सकती है। अन्यथा वर्णमाला तो एक महीने में ही सीखी जा सकती है लेकिन उससे कुछ काम नहीं चलने वाला है। यदि यह ककहरा पूरा हो गया तो सुसंस्कारिता एवं कला-कौशल सम्वर्द्धन की शेष कमियाँ इन शालाओं में क्रमिक रूप से पूरी की जा सकती हैं।

इस तरह का पाठ्यक्रम निर्धारित करने में दोहरा लाभ है। भाषा ज्ञान तो बढ़ता ही रहेगा, उसके साथ-साथ जीवन की विभिन्न समस्याओं का हल भी मिलता रहेगा। यों शिक्षा का, ज्ञान का क्षेत्र असीम और अनन्त है, मनुष्य जीवन भर साधना करता रहे और उससे जो ज्ञान अर्जित हो तो वह कितना भी रहते हुए कम ही मालूम पड़ेगा। अधिकतम की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। लोगों की अपनी रुचि होती है और वे अपनी रुचि के अनुसार उसी दिशा में अध्ययन करके, उस विषय में अतिरिक्त योग्यता प्राप्त करते हैं, प्रश्न न्यूनतम का है और न्यूनतम किस मनुष्य के लिए कितना, क्या जानना आवश्यक है ? यह थोड़े से विचार और विश्लेषण द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। युग निर्माण योजना द्वारा इसके लिए एक न्यूनतम पाठ्य-पद्धति निर्धारित भी की गई है। यदि उतना ज्ञान किसी को अर्जित करा दिया जाय तो यह कामचलाऊ औसत शिक्षित होने की आवश्यकता पूरी कर सकता है। जब विनोबा इस आयु में भी चीनी भाषा सीखने का साहस दिखा सकते हैं, तो फिर किसी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

सामान्य ज्ञान की न्यूनतम शिक्षा को जनस्तर पर चलाया जा सकता है और उसका कोर्स एक वर्ष में पूरा किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार उसे कम या अधिक समय में पूरा होने योग्य भी बनाया जा सकता है।

वयस्क व्यक्तियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा चलाने के अतिरिक्त बच्चों की शिक्षा पर भी ध्यान देना चाहिए। अनुमान है कि अभी देहातों में जितने बच्चे स्कूलों में जाते हैं, कम से कम इतने ही ऐसे हैं जो नहीं जाते। इन्हें स्कूल भिजवाने के लिए तैयार करना चाहिए। गाँवों में लड़कों को तो फिर भी स्कूल भेज दिया जाता है, किन्तु लड़कियों को पढ़ाना तो एकदम ही बेकार समझा जाता है। इस संकीर्णता को बदलना चाहिए और लड़कों की तरह लड़कियों की शिक्षा की आवश्यकता समझकर लड़कियों को स्कूल भिजवाना चाहिए।

यदि राष्ट्र और समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की थोड़ी भी भावना विचारशील व्यक्तियों में उत्पन्न हो तो इस शिक्षा योजना को क्रियान्वित करने और शिक्षा का प्रसार करने में कोई भी कठिनाई नहीं है। ऐसे व्यक्ति यदि अपने को परिश्रम के लिए और अनगढ़ व्यक्तियों को अवकाश के समय में पढ़ने के लिए सहमत कर सकें और हर समर्थ व्यक्ति को साक्षर बनाने की योजना सफल बनाने में अपनी बौद्धिक क्षमता तथा व्यवहार कुशलता को दाँव पर लगा सकें तो अशिक्षा और निरक्षरता का कलंक मिटाने में कुछ ही वर्ष लगेंगे। इसके परिणाम जितने चमत्कारी हो सकते हैं, अन्य किसी भी तरह के प्रयास वैसा परिणाम प्रस्तुत नहीं कर सकते। इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ आरम्भ किया ही जाना चाहिए।

गरीबी की तरह अशिक्षा से भी जूझा जाय

आज भारत का औसत नागरिक गरीबी एवं अशिक्षा की दुहरी मार से बुरी तरह ग्रस्त है। दोनों ही उसे स्वतन्त्रता के पूर्व से ही विरासत में मिली हैं। साथ ही मिला है अकर्मण्यता का अनुदान। इन तीनों के समन्वय ने ऐसी स्थिति विनिर्मित कर दी है, जिसे असहनीय ही कहा जा सकता है।

जिस समुदाय में भारत का औसत ग्रामीण पला है। उसमें जैसे-तैसे जी तो लेता है। उदर पूर्णा किसी तरह हो जाती है। लेकिन पारिवारिक वातावरण विग्रह-कलह, गरीबी के मारे नरक जैसा बन गया है। अशिक्षा इसका मूल कारण है। ऐसे वातावरण को आमूल-चूल बदलने के लिए शिक्षा विस्तार और गरीबी उन्मूलन के दुहरे सघन प्रयास साथ-साथ चलाए जाने जरूरी हैं। अज्ञान के रहते, नये आर्थिक प्रगति के कार्यक्रम उनके गले कभी नहीं उतरेंगे। अभी तक जिस राष्ट्र ने प्रगति की है चाहे वह क्यूबा, इजराइल जैसा छोटा राष्ट्र हो अथवा यूरोपीय समाज, अशिक्षा निवारण ही उसका मूल आधार रहा है।

भारत में ग्रामीण संख्या अधिक है जो निरक्षरता और गरीबी के चंगुल में बुरी तरह फँसी है। जिस देश की अर्थव्यवस्था का आधार ऐसी अशिक्षित और गरीब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनसंख्या हो उस देश की प्रगति सम्पन्न देशों से प्रतिस्पर्धा का स्वप्न सँजोया जाना निरर्थक है। भारत में कभी भी साक्षरता, शिक्षा अथवा उच्च शिक्षा का विचार बनाया जाय तो यहाँ की संस्कृति, मानसिकता, पैतृक व्यवसाय को कभी भी न नकारा जाना चाहिए। वही तो उसकी मूल थाती है। उसी आधार पर बनी अनौपचारिक शिक्षा-पद्धति यहाँ सार्थक सिद्ध हो सकती है।

सन् १९४७ में केवल १४ प्रतिशत साक्षरता थी। १९८१ में यह साक्षरता बढ़कर ३४.४५ प्रतिशत हो गई। १९५१ में निरक्षरों की कुल संख्या २४.७० करोड़ थी। १९८१ में इनकी संख्या कम होने की अपेक्षा ६ करोड़ और अधिक बढ़ गई। इनमें १५ से ३५ की आयु के लगभग ९ करोड़ ७० लाख व्यक्ति थे, जो १९७८ में बढ़कर १० करोड़ हो गए। १९८३ में लगभग २०-२५ लाख और बढ़ गए। अभी भी प्राय: कुल आबादी की ७० प्रतिशत जनसंख्या अशिक्षित है।

यह गोरखधंधा समझने और देखने योग्य है। एक ओर शिक्षितों का अनुपात बढ़ता जा रहा है, दूसरी ओर निरक्षरों की संख्या कम नहीं हो रही, वरन् बढ़ रही है। इसका तात्पर्य यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की दौड़ में हमारी शिक्षा व्यवस्था पिछड़ती जा रही है। नवजात पीढ़ी के लिए उतना प्रबन्ध नहीं हो रहा, जितना कि वर्तमान पीढ़ी के लिए किसी प्रकार जुट पा रहा है।

जापान का उदाहरण हमारे सामने स्पष्ट है जहाँ शिक्षा का प्रतिशत चरम बिन्दु पर है। किन्तु उन्होंने अपने समाज के अनुरूप बहुमुखी शिक्षा का विकास किया है। जो खेत-खलिहान से लेकर कल-कारखानों तक में उपयोगी और लाभप्रद है। इसके अनुपात में भारत में शिक्षितों की संख्या जापान से अधिक है किन्तु रोजगार के लिए तरसती लम्बी कतारें इसी अनुपयोगी, अदूरदर्शी शिक्षा का परिणाम है। जापान, एशिया में शिक्षा, संस्कृति, उद्योग का अनुकरणीय उदाहरण है और लघु उद्योग व आधुनिक टेक्नोलॉजी के विकसित मानदण्डों की प्रगति के लिए प्रसिद्ध है। इसके विपरीत भारत अभी तक मैकाले शिक्षा पद्धति से मुक्ति नहीं पा सका है। जबकि नीतियाँ और कार्यक्रम उसके पास भी हैं।

भारतीय समाज के लिए गरीबी और निरक्षरता वस्तुत: ऐसे दो अभिशाप हैं जैसे कोढ़ में खाज। इनका उन्मूलन प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास किया जाना चाहिए जो यहाँ की समाज व्यवस्था के अनुकूल, अनुरूप हो एवं व्यावहारिक व ग्राह्य हो। पाठ्यक्रम में नैतिक व यांत्रिक शिक्षा को पैतृक व्यवसाय के विकास की सम्भावनाओं को दृष्टिगत रखकर ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। सदियों पुराने पैतृक धन्धे जो भारतीय समाज की बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर और आजीविका के मुख्य स्रोत व राष्ट्रीय आय के प्रमुख साधन हैं को नकारा नहीं जाना चाहिए। न इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाना चाहिए। शिक्षा बहुमुखी हो और उत्पादकता से जुड़ी हो और भारतीय समाज को ग्राह्य हो।

गरीबी और अशिक्षा में से किसे प्रथम और किसे द्वितीय माना जाय यह कहना कठिन है। मोटी दृष्टि से सर्वप्रथम पेट भरने का प्रबन्ध होना चाहिए इस सर्वसम्मत मान्यता को स्वीकार करने के उपरान्त दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है कि अशिक्षित समुदाय को अधिक उपार्जन की योग्यता विकसित करने के लिए शिक्षा के अभाव में बात कैसे बने ? पिछड़ापन और अशिक्षा एक दूसरे के साथ-साथ अविच्छिन्न रूप से जुडे हुए हैं। सामान्य लोक-व्यवहार, स्वास्थ्य-संरक्षण एवं आजीविका उपार्जन के लिए समय के अनुरूप ज्ञान चाहिए। पुरातन परिपाटी अपनाए रहने से इस प्रगति युग में किसी प्रकार भी काम चलने वाला नहीं है। दरिद्रता दूर करने के लिए जिस समयानुरूप ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता है, उसके लिए शिक्षा के बिना गाड़ी आगे चलती ही नहीं।

इस प्रकार दूरगामी प्रगति की आवश्यकता पर विचार करने से प्रतीत होता है कि अशिक्षा गरीबी से कम घातक नहीं है और उसके निवारण के निमित्त भी वैसे ही प्रयत्न होने चाहिए जैसे कि अर्थव्यवस्था सुधारने के लिए किए जाते हैं।

यहाँ एक प्रश्न और अड़ता है कि शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? क्या मोटी-मोटी पुस्तकों में उस सामान्य ज्ञान की भरमार रहना ही पर्याप्त है, जो दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने में तनिक भी सहयोग नहीं देतीं। भूगोल, इतिहास, रेखागणित आदि की भारी भरकम पाठ्य पुस्तकें किस शिक्षित के किस काम में, कितनी मात्रा में काम आईं ? यह किसी भी शिक्षित से पूछा जा सकता है। नौकरी लगने भर के काम आने वाली डिग्रियों में ही इस शिक्षा का लाभ मिलता है। यदि वह न मिले या न करनी हो तो यह सोचना पड़ता है कि इतना धन, श्रम, समय किस प्रयोजन के लिए व्यय हुआ ? उससे दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के, समस्याओं के समाधान में क्या योगदान मिला ?

हमारे शिक्षाशास्त्रियों और शासन-संचालकों को जन-जन द्वारा पूछे जाने वाले और हर छात्र के मन में निरन्तर उठने वाले इस असमंजस का समाधान करना चाहिए और शिक्षा की भारी एवं कष्टसाध्य प्रक्रिया को ऐसे ढाँचे में ढालना चाहिए कि उतने समय तक किए श्रम एवं लगाए गए धन के सम्बन्ध में शिक्षक और शिक्षार्थी गर्वयुक्त सन्तोष कर सकें कि जो कुछ सिखाया या सीखा गया वह काम आया और विनियोग सार्थक हुआ।

निरक्षरता निवारण के लिए मात्र सरकार पर निर्भर रहने से भी काम नहीं चलेगा। उसका बजट शिक्षा मद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से कम भारी नहीं है, फिर भी वह मात्र ३० प्रतिशत को ही साक्षर बना सकी। शेष ७० प्रतिशत को भी यदि पढ़ाना हो तो अब की अपेक्षा ढाई गुनी राशि चाहिए। इतने में तो सारा बजट ही चुक जाएगा। शिक्षा समस्या का समाधान करने के लिए जन आन्दोलन के रूप में सेवा-साधना के स्तर पर प्रयत्न चलने चाहिए। पुण्य परमार्थ के नाम पर लगने वाला समय और धन शिक्षा विस्तार में लगाना चाहिए। लोकसेवियों को अपने कार्यक्रमों को तत्काल राहत देने वाले और दयालुता प्रदर्शित करने वाले प्रयासों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन् शिक्षा-सम्वर्द्धन पर भी अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए और जनकल्याण का उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष मान कर जनसहयोग से इस प्रयोजन के लिए ऐसे शिक्षा संस्थान खड़े करने चाहिए, जिनमें व्यस्त एवं अभावग्रस्त लोग भी सुविधापूर्वक प्रवेश पा सकें और निरक्षरता के अभिशाप से अपना तथा समाज का पीछा छुड़ा सकें।

दो तिहाई जनता अन्धकार से कैसे निकले ?

शिक्षा हर वर्ग के, हर वय के व्यक्ति के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार कि भोजन-पानी। पिछले समय में अर्थशास्त्री भले ही यह मानते रहे हों कि जीवन की तीन मौलिक आवश्यकताएँ हैं भोजन, वस्त्र और मकान। पर आज के युग में प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इनके साथ चौथी मौलिक आवश्यकता के रूप में शिक्षा को भी अनिवार्य मानने लगा है। हमारे देश में १९५१-५२ में साक्षरता की दर १४ प्रतिशत थी। उस समय परिस्थितियाँ भिन्न थीं फिर भी जो प्रयास हुए, उनके सत्परिणाम सामने हैं और आज साक्षरता की दर ३५ प्रतिशत है।

एक मायने में यह प्रगति सराहनीय है पर इसी पर सन्तोष नहीं किया जा सकता क्योंकि अब भी दो तिहाई जनता निरक्षरता के अन्धकार में विश्व की प्रगति और देश के विकास से अलग-थलग कटी पड़ी है। इस समय शिक्षित या स्कूल में पढ़ रहे छात्रों की संख्या ३० करोड़ से कुछ ऊपर है जबकि ९० करोड़ की जनसंख्या वाले इस देश में पचास करोड़ लोगों को निरक्षरता के अन्धकार में ही जीना पड़ रहा है।

जो बच्चे आज स्कूलों में जा रहे हैं उन्हें देश की प्रगति में योगदान देने के लिए कम से कम पाँच दस वर्ष का समय लगेगा और सभ्यता का रथ अपने विकास के पथ पर इतनी तीव्र गति से दौड़ रहा है कि तब तक हाथ धर कर बैठे रहना बुद्धिमानी नहीं है। अतः बच्चों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि शेष करोड़ों लोगों को भी शिक्षा का लाभ समझाकर कम से कम साक्षर बनने—प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तो प्रेरित किया ही जाय।

इनमें से कईयों की उम्र ३०-४० वर्ष की भी होगी और कई बच्चे भी होंगे। तो साक्षरता बढ़ाने के लिए हमें दो दृष्टियों से काम करना होगा। पहला तो यह कि जो बच्चे स्कूल नहीं भेजे जा रहे हैं, उन्हें स्कूल भेजने के लिए अभिभावकों को प्रेरित किया जाय तथा जो घर-गृहस्थी और दुनियादारी के मैदान में अपने को उतरा हुआ मान चुके हैं, उन्हें न्यूनतम कामचलाऊ शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

स्कूल न जाने वाले बच्चे हों या अशिक्षित प्रौढ़ उनकी निरक्षरता का कारण अभिभावकों तथा स्वयं की अभिरुचि का अभाव ही उनकी अशिक्षा का कारण है। प्रायः लोग यह समझते हैं कि शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना ही है। इस दृष्टिकोण के कारण ही अधिकांश शिक्षित बेरोजगार युवक नौकरी प्राप्त करने के लिए यत्र-तत्र भटकते रहते हैं। जिन्हें देखकर अशिक्षितों के मन में शिक्षा के प्रति अनुत्साह का भाव आना स्वाभाविक है।

पढ़े-लिखे लोग अपना दृष्टिकोण बदलें और नौकरी तलाश करने की अपेक्षा स्वयं उपार्जित रोजगार धन्धों में लगें तो उनकी काम-धन्धे की समस्या का समाधान तो होगा ही, अशिक्षितों को भी अपना दृष्टिकोण बदलने में सहायता मिलेगी। पर इसके लिए अभी रुकने का समय नहीं है। शिक्षा के प्रति सर्वसाधारण का दृष्टिकोण बदलने के साथ-साथ अशिक्षित व्यक्तियों में भी इसी तरह का उत्साह जाग्रत किया जाना चाहिए कि वे पढ़ने-लिखने में रस लेने लगें।

यह कार्य शिक्षा का महत्त्व समझाने और उसे प्राप्त करने का उत्साह जाग्रत करने के रूप में आरम्भ होना चाहिए। पिछड़े युग में जबकि सभ्यता ने विकास का वर्तमान शिखर नहीं छुआ था, तब लोगों को पढ़ने-लिखने की आवश्यकता नहीं रही होगी। उस जमाने में कुलीन घरानों और दायित्वपूर्ण कार्यों में लगे व्यक्तियों के लिए ही शिक्षित होना आवश्यक था। राजा-महाराजा, सामन्त, मन्त्री, राजकर्मचारी और ब्राह्मणों, विद्वानों के अतिरिक्त शिक्षा के बिना तब हर किसी का काम आसानी से चल जाया करता होगा। तब सीधी-सपाट जिन्दगी रही होगी, खेत में बीज डाला, हल चलाया और अनाज पैदा किया अथवा मजदूरी, सेवाचर्या से ही लोगों का निर्वाह, आसानी से चल जाया करता था। उनमें सामान्य ज्ञान के अर्जन की आवश्यकता अनुभव ही नहीं होती होगी।

पर अब परिस्थितियाँ भिन्न हैं। विज्ञान ने सभ्यता के नये द्वार खोले और नये शिखर उपलब्ध करा दिए तो मनुष्य का जीवन भी जटिल हो गया है। अब केवल कमाने-खाने तक ही सीमित नहीं रहने दिया जा सकता। आज के समय में कदम-कदम पर ज्ञान और जानकारी की आवश्यकता पड़ती है। अशिक्षित व्यक्ति को इनसे अपरिचित रहने के कारण हर स्थान पर असुविधाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही सामना करना पड़ेगा। कहीं यात्रा करनी हो तो, दूर बैठे रिश्तेदार या घर के लोगों से पत्र-व्यवहार करना हो तो, खरीददारी, लेन-देन, सम्पर्क, लोकव्यवहार आदि तमाम जरूरी कार्यों में शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है और इस योग्यता के अभाव में अशिक्षित व्यक्ति को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है अथवा असफल होना पड़ता है।

कहा यहाँ तक जाता है कि बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति न केवल व्यक्तिगत रूप से कोई प्रगति करने में असमर्थ होते हैं, वरन् राष्ट्र और समाज की प्रगति में भी बाधक बनते हैं। वे किसी प्रकार अपनी जीविका भले ही कमाते रहें पर समाज का ऋण चुकाने जैसा कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते और जो लोग केवल अपने लिए ही जीने को विवश हों, उन्हें समाज की प्रगति में सहायक कैसे कहा जा सकता है। कदम से कदम मिलाकर न चल पाने के कारण वे समाज के पिछड़ेपन का एक कारण ही बनते हैं।

इस प्रकार कितने ही पक्ष हैं व्यावहारिक और भावनात्मक, जिनको आधार बनाकर अशिक्षित लोगों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दी जा सकती है, प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह कार्य शिक्षित व्यक्तियों को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि इसकी अगली कड़ी भी उन्हीं को पूरी करनी है।

इसके लिए निरक्षरता को दूर करने का कर्तव्य शिक्षित जनों को अपना दायित्व समझना चाहिए। पढ़े-लिखे सदस्यों वाले परिवार में जिस प्रकार यह स्थिति असह्य लगती है कि उसका कोई सदस्य अनपढ़ रह जाय। उसी गहराई के साथ अपने पड़ौसियों की अशिक्षित अवस्था को अनुभव किया जाय। किसी को भूखा-नंगा देखकर, किसी को अभावग्रस्त स्थिति में देखकर जो करुणा उमड़ती है, वही करुणा अशिक्षित व्यक्तियों को देखकर उमड़नी चाहिए। निरक्षर रहना बौद्धिक नग्नता की निशानी नहीं तो और क्या है।

अपने घर के पास-पड़ौस में स्कूल जाने योग्य जो बच्चे स्कूल में भर्ती न कराए गए हों, उनके अभिभावकों को इसके लिए तैयार करना चाहिए। वर्तमान समय की अशिक्षा जनित कठिनाइयों का परिचय देते हुए आगे आने वाली सम्भावनाओं की भीषणता से अवगत कराना चाहिए। दस-बीस साल बाद तो परिस्थितियाँ और भिन्न होंगी और तब मानवी सभ्यता जाने कहाँ पहुँच चुकी होगी। अभी-अभी कुछ वर्ष पूर्व, चन्द्रमा कविता का विषय बना हुआ था और उसके सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या कल्पनाएँ की जाती थीं। पर जब सन् १९७० में मानव ने चन्द्र धरातल पर अपने कदम रखे तो उन कल्पनाओं की आधार भित्ति ही टूट गई और यही नहीं कुछ समय पूर्व मनुष्य ने मंगलग्रह की वास्तविकता जानने में भी सफलता प्राप्त कर ली। कुछ वर्षों में ही विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली जितनी कि पिछले पच्चीस सौ साल में नहीं हुई और अगले दस-पाँच वर्षों में तो यह प्रगति पिछली सभी उपलब्धियों को पीछे छोड़ देगी। कहने का अर्थ यह कि समय के साथ-साथ मानवी सभ्यता भी द्रुतगति से दौड़ रही है और वैसी परिस्थिति में अशिक्षित रहकर समाज से पिछड़ना न केवल दुर्भाग्य होगा वरन् आने वाली पीढ़ी के लिए भी अभिशाप सिद्ध होगा।

छोटे बच्चों को स्कूल भेजने के साथ-साथ प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का दायित्व भी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति पर आ जाता है। प्रौढ़ सदस्यों को पढ़ने के लिए तैयार करने के समय मुख्य रूप से यही कहा जाता है कि अब पढ़-लिख कर क्या करना है। अब तो आधी उमर ही बीत गई और शेष आधी भी इसी प्रकार बीत जाएगी। उन्हें यह तथ्य अच्छी तरह समझाना चाहिए कि भविष्य चींटी की तरह रेंगने वालों का नहीं द्रुतगति से दौड़ने वालों का है और उनके जीते-जी ही ऐसी परिस्थितियाँ बन जाएँगी कि आज की अयोग्यता कल के लिए शूल की तरह चुभने वाला पश्चाताप बनेगी। उनके बच्चे ही उनके सामने किसी विकसित ग्रह के मनुष्य की तरह लगेंगे तथा शिक्षा प्राप्त करने की भी कोई निश्चित आयु है। कोई यह तो नहीं कहता कि साहब अब मरने चले हैं, कुछ दिन काटे या नहीं काटे, अब नये वस्त्र सिलवाने या कपड़ा पहनने से क्या फायदा, बिना कपड़े के ही काम चल जायगा। शारीरिक नग्नता को ढाँपना तो जरूरी लगता है फिर बौद्धिक दृष्टि से नंगा बने रहना ही किस तरह सहन हो जाता है।

प्रौढ़ व्यक्तियों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि जगाकर गाँव-गाँव और गली-गली में प्रौढ़ पाठशालाएँ खोली जानी चाहिए। ये पाठशालाएँ व्यक्तिगत रूप से भी खोली जा सकती हैं और सामूहिक रूप से भी । साधन उसी बस्ती में से अर्जित किए जा सकते हैं। स्थानीय लोगों से मिलकर, परामर्श और विचार-विनिमय कर स्थान निर्धारित किया जा सकता है, व्यक्तिगत रूप से एक शिक्षित व्यक्ति वर्ष भर में पाँच व्यक्तियों को भी साक्षर बनाए तो काफी कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की जा सकती हैं। समय की दृष्टि से फुरसत का समय ही उचित रह सकता है, जो रात्रि को ७-८ बजे बाद मिलता है। उस समय दो घण्टे रोज यदि गपशप और व्यर्थ के कामों में न लगाया जाय तथा उसका पारमार्थिक उपयोग किया जाय तो इस खाली समय का ही रचनात्मक उपयोग किया जा सकता है।

यदि स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापक ही अपना शाम का समय प्रौढ़ शिक्षा में लगाएँ, तो जिन-जिन गाँवों में स्कूल हैं, वहाँ-वहाँ कई निरक्षरों को शिक्षा का प्रकाश ग्रहण करने योग्य बनाया जा सकता है। प्रौढ़ पुरुषों को साक्षर बनाने के साथ-साथ प्रौढ़ महिलाओं को साक्षर बनाने का कार्य भी वही महत्त्व रखता है। महिलाओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राय: अपराह्न समय में अवकाश रहता है। घर के पढ़े-लिखे सदस्य या वृद्ध और रिटायर बुजुर्ग ही अनावश्यक संकोच त्यागकर घर की औरतों को पढ़ाना शुरू कर दें तो भी काफी शिक्षा का प्रसार होगा।

अभी हमारे देश में पारिवारिक दृष्टि से भी शिक्षा के विषय में असमानताएँ हैं। सामान्य पढ़े-लिखे पुरुषों की गृहिणियाँ प्राय: अशिक्षित होती हैं। मध्यम वर्ग और छोटे नौकर पेशा लोगों में तो यह स्थिति लगभग सभी परिवारों में है। तो शुरूआत परिवार से भी की जा सकती है। माँ, पत्नी, भौजाई, बहन, बहू घर के दायरे में ही कई अशिक्षित स्त्रियाँ मिल जाएँगी। यदि खाली समय में उन्हें पढ़ाया जाय, तो पूरे परिवार को ही शिक्षित बनाया जा सकता है।

इतना अक्षर ज्ञान तो हर किसी को होना चाहिए कि वह पुस्तकें आदि पढ़ सकें और शब्द-भण्डार भी प्रत्येक के पास इतना तो रहे ही कि थोड़े-बहुत कठिन शब्दों को समझने में असुविधा न हो और शुद्ध पढ़ सकें तथा शुद्ध लिख सकें। इतनी योग्यता अर्जित करने वाले को ही शिक्षित कहा जा सकता है अन्यथा वर्णमाला और मात्राएँ तो कुछ हफ्तों के अभ्यास से ही सीखी जा सकती हैं। लेकिन इतना मात्र पर्याप्त नहीं है।

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को साक्षरता-सम्वर्द्धन अपना दायित्व मानकर चलना चाहिए और वर्ष में कम से कम पाँच व्यक्तियों को साक्षर बनाने का व्रत लेकर चलना चाहिए। यदि सभी शिक्षित व्यक्ति यह लक्ष्य बनाकर चलें तो हमारे देश से अशिक्षा का अन्धकार थोड़े ही समय में हटाया जा सकता है। जो हटाया ही जाना चाहिए।

शिक्षित वर्ग लोक-शिक्षण का बीड़ा उठाए

किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में शिक्षा का बहुमूल्य योगदान रहता है। इसके अभाव में प्रगति पथ पर अग्रसर होना असम्भव है।

विश्व के अधिकांश प्रगतिशील देशों ने शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारा तथा साक्षरता के प्रसार के लिए हर सम्भव प्रयास भी किया है। तदनुरूप उन्हें सफलता भी हस्तगत हुई। क्यूबा, इजरायल, स्वीडन, डेनमार्क, यूगोस्लाविया, हंगरी, नार्वे, अल्बेनिया जैसे छोटे-छोटे राष्ट्रों ने भी शिक्षा जगत में क्रान्तिकारी कदम उठाकर विकसित राष्ट्रों की श्रेणी प्राप्त करने में सफलता पाई है। प्राय: इन सभी राष्ट्रों में आज ९० से ९५ प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित है तथा सभी सुखी व समुन्नत जीवन जी रहे हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत की वर्तमान स्थिति अत्यंत दयनीय है। यहाँ की ५४ प्रतिशत जनसंख्या अभी भी पूर्णत: अशिक्षित है। १९८१ की जनगणना के अनुसार देश में मात्र ३६.१७ प्रतिशत जनसंख्या साक्षर थी। इनमें कुछ ऐसे भी थे जिन्हें विधिवत शिक्षा प्राप्त नहीं हुई थी। पूर्णतया अशिक्षित लोगों की संख्या जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जा रही है, इनकी संख्या १९७१ के ३७.२३ करोड़ से बढ़कर १९८१ वर्ष में लगभग ४२.०१ करोड़ तक पहुँच गई।

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। यहाँ लगभग ६ लाख गाँव हैं जबकि शहर मात्र ६ हजार। देश की कुल जनसंख्या का ७० प्रतिशत गाँवों में ही निवास करती है। परन्तु शिक्षा की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यन्त ही पिछड़ा है। नगरों की तुलना में यहाँ की साक्षरता काफी कम है। १९७१ की जनगणना के अनुसार कुल साक्षरता २९.५ प्रतिशत थी, जिसमें ५२.५ प्रतिशत नगरी क्षेत्र में तथा मात्र २३.७ प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में थी।

समाज का एक और विशाल वर्ग है नारी का। देश की कुल जनसंख्या में लगभग आधी नारी हैं। दुर्भाग्यवश इतनी बड़ी जनशक्ति को आज प्राय: अशिक्षित स्थिति में ही रहना पड़ रहा है। तदनुरूप उनका पतन भी काफी हुआ। १९८१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार पुरुष तथा स्त्रियों में साक्षरता क्रमश: ४६.७ प्रतिशत तथा २४.९ प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियों की साक्षरता तो और भी कम है। १९७१ में किए गए पर्यवेक्षण के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता ३३.८ प्रतिशत तथा स्त्रियों की १३.२ प्रतिशत थी। नगरीय क्षेत्र में ६१.३ प्रतिशत पुरुष तथा ४२.३ प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर थीं। शिक्षा की यह विभिन्नता नारी जाति की प्रगति में अवरोध बनकर खड़ी है।

नर-नारी के बीच शिक्षा की यह विभिन्नता सिर्फ भारत जैसे विकासशील देशों की ही समस्या है। विकसित देशों में तो नारी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं। यूनेस्को द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार विभिन्न देशों में उच्च कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राओं का प्रतिशत इस प्रकार था—मिस्र ४० प्रतिशत, पूर्वी यूरोप, बल्गारिया, पोलैण्ड, रूमानिया, हंगरी, यूगोस्लाविया तथा चेकोस्लोवाकिया में ५० प्रतिशत, नीदरलैण्ड, नार्वे, पश्चिमी जर्मनी, ग्रीस में ४० प्रतिशत दक्षिणी अमेरिका के राज्यों में ४५ प्रतिशत। कोरिया, इंडोनेशिया में छात्राओं की संख्या छात्रों से दुगुनी है।

भारत में एक तिहाई जनसंख्या उनकी है, जिन्हें जंगलों अथवा गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। इन्हें आदिवासी तथा अनुसूचित जाति के रूप में जाना जाता है। इनमें साक्षर लोगों की संख्या अत्यंत कम है। १९७१ की जनगणना के अनुसार लगभग ११.३ प्रतिशत, आदिवासी तथा १४.६७ प्रतिशत अनुसूचित जाति के लोग साक्षर थे। शेष अशिक्षा का कोपभाजन बनकर अत्यंत दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे थे। इनमें पुरुषों तथा स्त्रियों की साक्षरता का अनुपात क्रमश: २०.४ तथा ५.०६ प्रतिशत और १७.६३ तथा ४.७५ प्रतिशत था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सन् १९६१ में प्राप्त आँकड़ों के अनुसार देश में सर्वाधिक साक्षरता केरल तथा चंडीगढ़ राज्य में क्रमशः ७०.१६ तथा ६१.२४ प्रतिशत थी और सबसे कम जम्मू कश्मीर में १८.३० प्रतिशत थी। दूसरे तरफ राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में भी साक्षरता अत्यल्प ही है। इनकी साक्षरता क्रमशः १८.७९; १९.९७, २१.६४ तथा २२.०३ प्रतिशत थी। बिहार प्रदेश के अन्तर्गत तो १९६१-७१ के दस वर्षों में साक्षरता में मात्र १.५७ प्रतिशत (१८.४० से बढ़कर १९.९७) की वृद्धि आँकी गई। दूसरे तरफ असम प्रदेश में इस अवधि में ५.१४ प्रतशित (२९.१४ से घटकर २४ प्रतिशत) की कमी आ गई।

बढ़ती अशिक्षा का एक प्रमुख कारण यह है कि पिछड़े वर्ग के अधिकांश व्यक्ति शिक्षा का महत्त्व नहीं समझते। उनकी गरीबी उतनी बाधक नहीं होती जितनी कि शिक्षा में अभिरुचि का अभाव। ऐसे वर्ग में रहने एवं पलने वाले बच्चों को शिक्षा के लिए न तो प्रोत्साहन मिल पाता, न ही उन्हें साक्षरता का महत्त्व बताया जाता है। फलतः पिछड़े वर्गों में पीढ़ी दर पीढ़ी अशिक्षा का अभिशाप और भी अधिक लदता जा रहा है। नारी जगत में फैली अशिक्षा का कारण थोड़े भिन्न स्तर का है। पिछड़े ही नहीं प्रगतिशीलों में भी यह भ्रान्ति बनी हुई है कि नारी को अन्ततः तो घर की ही मुहिम सँभालनी है। चूल्हे-चौके तक सीमित रहना है इसलिए अधिक पढ़ाने से लाभ क्या है। इस मान्यता के कारण ही अधिकांश लड़कियों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है। नारी शिक्षा की निरर्थकता के संबंध में दी जाने वाली दलीलों में औचित्य का थोड़ा भी स्थान नहीं है। जो यह कहते है कि नारी को गृहव्यवथा सँभालनी पड़ती है, उन्हें यह सत्य भली-भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए कि सुशिक्षित नारी ही घर की कुशल संचालिका तथा बच्चों की निर्मात्री हो सकती है।

समस्या का निवारण कैसे हो ? इसके लिए सरकार का मुँह तकने की आवश्यकता नहीं। यह एक सामाजिक समस्या है। अतः जो शिक्षित हैं वे आगे आएँ तथा शिक्षा के राष्ट्रव्यापी विस्तार में सहायक बनें। वर्तमान के पर्यवेक्षण के अनुसार भारत में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या ६ करोड़ के लगभग है, जिनकी आयु २० से लेकर ५० वर्ष तक है। यदि ये युवक अपना समय ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ समय रुक कर शिक्षा प्रसार में लगाएँ तो कुछ ही समय में शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन हो सकता है। इसके अतिरिक्त १२ प्रतिशत जनसंख्या उन वृद्धों की है, जो सेवा निवृत्त हो चुके हैं इनमें से आधे शिक्षित हैं। अपने जीवन का शेष समय अशिक्षितों को शिक्षित करने में लगा सकें तो राष्ट्र का सपना साकार हो सकता है। कॉलेज विश्वविद्यालय व अन्यान्य संस्थाओं द्वारा भी शिक्षा प्रसार का उत्तरदायित्व हाथ में लिया जा सकता है। वे अपने विद्यार्थियों तथा कार्यकर्ताओं के सेवा दल को अशिक्षित क्षेत्रों में शिक्षा प्रसार हेतु भेज सकें तो सफलता उनका अग्रगमन करेगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी कितने ही शिक्षित व्यक्ति हैं, जो नौकरी-पेशा हेतु शहरों की खाक छानते फिरते हैं। वे यदि अपना समय गाँव के शिक्षा प्रसार में ही लगाएँ तो उन्हें काम भी मिल जाएगा तथा ग्रामीण उत्थान भी हो सकेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में पाठशालाओं के शिक्षक भी रहा करते हैं। वे यदि अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ में न गँवाकर अशिक्षितों को साक्षर बनाने में लगाएँ तो गाँव का कायाकल्प हो जाए। वस्तुतः शिक्षा के सही उद्देश्य से आज जन-जन को अवगत कराना आवश्यक है। शिक्षा को नौकरी-प्राप्त करने का एकमात्र माध्यम मान लेना एक भ्रम है जिसे अविलम्ब दूर किया जाना चाहिए। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण प्राप्त करता है।

अभीष्ट उद्देश्य की जानकारी यदि जन-जन को कराई जा सके, तो कोई कारण नहीं कि वे इसे न अपनाएँ इसके लिए सेवाभावी शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अपना बहुमूल्य समय राष्ट्र हित में समर्पित करें। हमें क्यूबा व इजरायल से प्रेरणा लेनी चाहिए जहाँ कॉलेज के विद्यार्थी तथा शिक्षक वर्ग समय-समय पर ग्रामीण व अशिक्षित क्षेत्रों में जाते रहे और अपनी समस्त जनसंख्या को शिक्षित बनाने में सफल हो सके। हमारे देश में भी ऐसी नवचेतना की जाग्रति अभीष्ट है।

सारा बोझ सरकार पर ही न डालें

अभी तो सब किसी के लिए एक ही प्रकार की शिक्षण-पद्धति चल रही है पर आगे चलकर इसका विभाजन करना पड़ेगा कि विद्यार्थी को भावी जीवन में नया कार्य अपनाना है। अफसरी की नौकरी का ख्वाबी पुलाव बिखर जाने के उपरान्त अभिभावकों को निर्णय करना पड़ेगा कि बच्चे को किसके आधार पर आजीविका चलानी है। यह निर्णय हो जाने पर छात्रों का, अभिभावकों का अनिश्चयजन्य आक्रोश सहज ही दूर हो जाएगा और निश्चिन्ततापूर्वक अपने विषय का प्रशिक्षण जहाँ मिलता हो वहाँ चले जाना पड़ेगा। आवश्यक नहीं कि एक ही स्थान में सभी प्रकार की पढ़ाइयाँ पढ़ाई जाएँ। यहाँ जिस शिक्षा के समुचित साधन हों वहाँ उन छात्रों को भर्ती और शिक्षा होनी चाहिए। छात्रावास की व्यवस्था इस सूझ-बूझ और मितव्ययता के साथ हो कि वह घर की अपेक्षा बहुत अधिक महँगा न पड़े। जूनियर हाईस्कूल की आठवीं कक्षा में सार्वजनिक उपयोग की बातों का समावेश रहे भाषा और गणित के अतिरिक्त और जो कुछ भी पढ़ाया जाय, उसमें राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि का सार संक्षेप ही हो, बाकी पाठशाला की शैलियों से परिचित करने के स्थान पर ऐसे विषयों का समावेश हो, जो दैनिक एवं व्यावहारिक जीवन में आए दिन काम आती हैं। स्वास्थ्य, मानसिक सन्तुलन, परिवार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थव्यवस्था, समाज आदि की वर्तमान स्थिति का स्वरूप इसी आठवीं कक्षा तक पढ़ा दिया जाय। घरेलू शाक-वाटिका, रेल, बीमा, नागरिकता, सामाजिकता, स्वेच्छा आदि सभी आवश्यक विषय इसी परिधि में ले लिए जाएँ। यदि सरकार के लिए परिवर्तन करना कठिन हो तो ऐसी पुस्तकों का निजी तौर से अध्ययन कराने का प्रबन्ध किया जाय ताकि मनुष्य को जनसम्पर्क में पग-पग पर मूर्ख न बनना पड़े। क्षेत्रीय भाषा से आरम्भ किया जाय और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में द्वितीय भाषा माना जाय। जूनियर हाईस्कूल स्तर की शिक्षा को अनिवार्य शिक्षा की श्रेणी में लिया जाय। तब तक छात्र इस स्थिति में आ जाएगा कि अन्यत्र अपने विषय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए जा सके।

अभी कक्षा पाँच तक को प्राथमिक माना जाता है। इसका दायरा बहुत छोटा है। इसे प्रौढ़ शिक्षा के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है पर किसी 'शिक्षित' से उपयोगी ज्ञान की जैसी आशा की जानी चाहिए, वह आठवीं कक्षा तक की पढ़ाई के बिना पूर्ण नहीं हो सकती। इसमें भी कुछ परिशिष्ट जोड़े जाने चाहिए, भले ही व्यक्ति और समाज को अतिशय प्रभावित करने वाले विषयों को परिधि से बाहर रखा जाय। शिक्षा में रुचि लेने वाली सार्वजनिक संस्थाएँ इस परिशिष्ट प्रकरण को अग्रगामी बनाने के लिए कुछ निजी प्रयत्न कर सकती हैं। चाहें तो निजी परीक्षाएँ भी ले सकती हैं, भले ही वे मान्यता प्राप्त न हों।

आठवीं कक्षा के उपरान्त विद्यार्थी को अपने इच्छित व्यवसाय की दिशा में आवश्यक कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक मध्यवर्ती कोर्स पूरा करना चाहिए। अनुमानतः उसके लिए दो वर्ष पर्याप्त होना चाहिए। कृषि, पशुपालन, शिल्प, व्यवसाय, गृह-उद्योग, क्लर्की, प्रेस उद्योग, इलेक्ट्रिक फिटिंग, स्कूटर मरम्मत, अँग्रेजी या अन्य प्रान्तीय भाषा आदि विषयों के ऐसे विद्यालय हों जिसमें प्रशिक्षण के लिए आवश्यक साधन भी हों और छात्रावास की सुविधा भी। इसके उपरान्त छात्र की आयु बीस वर्ष हो जाती है और उससे कुछ कमाने की आशा भी की जाने लगती है। कुछ प्रतिशत उच्चस्तरीय परिवारों की बात दूसरी है। वे देश में या विदेशों में महँगी उच्चस्तरीय शिक्षा भी दिलाते रह सकते हैं। पर भारत के औसत नागरिक की आर्थिक सीमाओं के अन्तर्गत इतना ही है। अस्तु, हमारा दृष्टिकोण बड़े लोगों की उमंगों के अनुरूप नहीं, सर्वसाधारण की स्थिति का ध्यान रखते हुए बनना चाहिए और वह नीति बहुत लम्बी या बहुत महँगी नहीं होनी चाहिए।

भारत में पिछले दिनों दो वर्ष का डॉक्टरी कोर्स था—एल० एम० पी०। वे लोग खुशी से देहातों में चले जाते थे और वहाँ होने वाली सीमित आमदनी में ही अपना काम चला लेते थे। चीन में अभी भी बहुसंख्यक डॉक्टर प्रारम्भिक दो वर्षीय कोर्स ही करते हैं। जिन केसों में शल्य क्रिया आवश्यक है या विशेष उलझन है, उनके लिए जिलों या तहसीलों में बड़े अस्पताल बने हुए हैं। इसी प्रकार दो वर्ष पढ़ाई वाले जूनियर इन्जीनियर भी देहात प्रधान भारत के लिए वहाँ की स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।

अपने देश की गरीबी तथा आवश्यकता को देखते हुए हमें ऐसे ही मध्यम स्तर के कारीगर तैयार करने चाहिए जो सरलतापूर्वक अपना काम ढूँढ़कर थोड़ी पूँजी लगाकर काम करने लगें। वे सरकार के लिए, अपने लिए, परिवार के लिए सिर दर्द न बनेंगे और न शिक्षितों की बेकारी के जो दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं वे ही मिलेंगे।

हर काम सरकार पर छोड़ने की दीनता हमारे दिमागों में बुरी तरह समा गई है। ऐसी उपयोगी संस्थाएँ निजी तौर पर भी चलाई जा सकती हैं। उसके लिए अच्छे मिस्त्री, कारीगर सामान्य वेतन पर अपेक्षाकृत अधिक क्रिया-कुशल मिल सकते हैं।

अपने निजी कामों को हम निजी पुरुषार्थ से पूरा करते हैं फिर उपयोगी शिक्षा की लागत चुकाते हुए वैसा ही प्रबन्ध क्यों नहीं कर सकते?

निरक्षरता की समस्या का समाधान

शिक्षा की शक्ति को यदि आँका जाय तो वह सम्पदा, बलिष्ठता, शक्ति एवं प्रतिभा से कम नहीं बैठती। जिन देशों ने प्रगति की है उनमें शिक्षा का असाधारण योगदान रहा है। दूरदर्शी लोगों ने सदा अपने सम्पर्क क्षेत्र को या प्रभाव क्षेत्र को—सुशिक्षित बनाने का प्राणप्रण से प्रयत्न किया है और उस आधार पर आशातीत सफलता पाई है।

जनसंख्या की वृद्धि के कारण अपने देश में सरकारी शिक्षा पर व्यय बढ़ते जाने पर भी निरक्षरों की संख्या का अनुपात बढ़ता ही जा रहा है। यह कुचक्र तो सदा चलता ही रहेगा। सरकार द्वारा शिक्षा समस्या का हल निकलवाने का एक ही तरीका है कि जनता अपने ऊपर अन्धाधुन्ध टैक्स लगवाने को समुद्यत हो, यदि जनता नये टैक्सों के लिए सहमत न हो और सरकारी कोश इतने साधन जुटा न सके तो शिक्षा की अभिवृद्धि का एक ही उपाय शेष रह जाता है कि यह कार्य जनस्तर पर किया जाय। लोकसेवी संस्थाएँ शिक्षितों का समय-दान संग्रह करें और फिर उसे प्रौढ़ पुरुषों और महिलाओं को उनकी सुविधा का समय मालूम करके निःशुल्क रूप से शिक्षा के लिए नियोजित किया जाय।

आमतौर से पुरुषों के लिए रात्रि और महिलाओं के लिए तीसरे प्रहर का समय सुविधाजनक पड़ता है। कोई उत्साहीजन आगे बढ़कर ऐसा प्रबन्ध कर दे कि हर मुहल्ले से शिक्षार्थी एकत्रित हो जाया करें और अध्यापक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय पर पढ़ाने पहुँच जाया करें। इस प्रकार निरक्षरता की सीमा से तो ऊपर उठा ही जा सकता है। अँगूठा छाप कहलाने का कलंक तो धुल ही सकता है। महीने या एक साल की पढ़ाई भी इस प्रकार चलती रहे तो प्रौढ़ शिक्षार्थी इस स्थिति में आ सकते हैं कि अपनी रुचि की पुस्तकें खरीदकर या पुस्तकालय से उधार लेकर अपना ज्ञान बढ़ाते रह सकें। इस प्रकार शिक्षा की कमी का अकाल कम होता ही चलेगा।

इस आन्दोलन को सच्चे मन और पूरे जोश से चलाया जाय तो इसका परिणाम आशाजनक हो सकता है। ऐसी मुहल्ला-पाठशाला स्कूली बच्चों के लिए भी खुल सकती है। सभी जानते हैं कि मात्र स्कूली पढ़ाई से कोई छात्र अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण नहीं हो सकता। फिर पाठ्यक्रम में वो विषय भी तो सम्मिलित नहीं हैं, जो मनुष्य को व्यक्तित्व सम्पन्न और प्रतिभाशाली बनाते हैं। नीति-निष्ठा और समाज के प्रति जिम्मेदारी का भाव जागे बिना किसी ऊँची डिग्री प्राप्त को भी सच्चे अर्थों में सभ्य-सुसंस्कारी नहीं कहा जा सकता। स्कूली शिक्षा की इन कमियों को दूर करने के लिए यही उपयुक्त है कि सेवानिवृत्त, अनुभवी, आदर्शवादी अध्यापक एकत्र किए जाएँ और उनके द्वारा मुहल्ला गोष्ठियाँ चलाई जाएँ। योजना के कार्यान्वयन में कठिनाई एक ही है कि प्रतिभावान, उत्साहीजन इस सरंजाम को जुटाने के लिए आगे नहीं आते। यदि वे अपने प्रभाव और परिश्रम का उपयोग करें तो खाली बैठे शिक्षकों को उपरोक्त कार्यक्रम में सेवा भाव से योगदान करने के लिए उत्साहित कर सकते हैं। इसी प्रकार शिक्षा के महत्त्व से अनभिज्ञ व्यक्तियों को समझा-बुझाकर इस लाभ से लाभान्वित होने के लिए तैयार किया जा सकता है।

यह कोई खर्चीली विधा नहीं है। जिसके लिए किसी बड़े खर्च को जुटाने की आवश्यकता पड़े। बैठने का स्थान, टाट, पट्टी, लालटेन आदि के मामूली से खर्च कोई उदारचेता अपनी जेब से बिना कोई भारी दबाव अनुभव किए करते रह सकते हैं।

हर सुशिक्षित के मन पर यह भाव जमाया जाना चाहिए कि वह विद्या प्राप्त करके चुप न बैठे वरन् विद्या ऋण चुकाने के लिए अन्यान्यों को भी शिक्षित बनाने का प्रयत्न करे। वह प्रयास इस क्षेत्र में कई जगह कार्यान्वित एवं सफलतापूर्वक गतिशील हुए हैं। ऐसा देश भर में चलना चाहिए।

प्रगति की प्रथम सीढ़ी

व्यक्ति और समाज को समुन्नत बनाने के लिए जो प्रयत्न किए जाने हैं, उनमें चार प्रमुख हैं। वे ऐसे हैं, जिन्हें बिना किसी बाह्य सहायता के विचारशील उदारचेता मनुष्य मिल-जुलकर अपने प्रयासों से ही पूरा कर सकते हैं।

प्रगति के चार आधार हैं—(१) शिक्षा, (२) स्वास्थ्य, (३) आजीविका, (४) चिन्तन और स्वभाव का परिष्कार। इन चारों को प्रमुखता दी जाय और उनके अभिवर्द्धन के लिए प्रयास जारी रखा जाय, तो सफलता की दिशा में तेजी से आगे बढ़ा जा सकता है।

शिक्षा से तात्पर्य आमतौर से बच्चों की शिक्षा से समझा जाता है और उसके लिए स्कूल में भर्ती करा देना पर्याप्त माना जाता है। वहाँ पाठ्य-पुस्तकों में बहिर्जगत की अनेकानेक जानकारियाँ तो पढ़ाई जाती हैं, पर निजी जीवन में रहने वाली कमियों एवं आने वाली समस्याओं का समाधान करते रहने जैसे विषयों को अछूता ही छोड़ दिया जाता है। इसके लिए सम्भव हो तो ऐसे छात्रावासों की व्यवस्था करनी चाहिए, जो सस्ते भी पड़ें और व्यक्तित्व विकास में काम आने वाले उन गुण, कर्म, स्वभावों का परिष्कार करते चलें, जो मानवी उत्कर्ष के लिए नितान्त आवश्यक हैं। स्कूली पढ़ाई में रहने वाली कमी की पूर्ति छात्रावासों को करनी चाहिए। उनका संरक्षण इस दायित्व को निभा सकने में प्रवीण होना चाहिए। उनका निजी व्यक्तित्व भी ऐसा होना चाहिए जिसका सम्पर्क में रहने वाले छात्रों पर असाधारण प्रभाव पड़े।

छात्रावासों की कमी पूरी की जानी चाहिए, पढ़ाई और भोजन, वस्त्र की व्यवस्था का खर्च जिस प्रकार सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार छात्रावासों का प्रबन्ध भी स्वयंसेवी संस्थाओं को या अभिभावकों को करना ही चाहिए। घर का वातावरण अच्छा न हो तो विद्यार्थियों को छात्रावासों में ही रहने देना चाहिए।

जहाँ ऐसा न बन पड़े वहाँ स्कूली पढ़ाई से बचे हुए समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने के लिए जगह-जगह स्थानीय बाल-संस्कारशालाओं का प्रबन्ध करना चाहिए। संस्कारवान, सेवाभावी व्यक्ति आगे बढ़कर इसकी व्यवस्था करें। दो घण्टे रोज का यह प्रशिक्षण स्कूली पढ़ाई के होमवर्क की भी पूर्ति कर सकता है। खेलकूद मनोरंजन की भी व्यवस्था कर सकते हैं। कला-कौशल भी सिखा सकते हैं, साथ ही नागरिकता, सामाजिकता के निर्वाह का शिष्टाचार भी स्वभाव में उतारने का प्रयास करते रह सकते हैं। व्यक्ति और समाज के सामने जो समस्याएँ प्रस्तुत हैं या समयानुसार आती रह सकती हैं, उनके समाधान का मार्ग भी इन्हीं बाल-संस्कारशालाओं में सिखाया जाता रह सकता है। इस संबंध में अभिभावकों का निजी उत्तरदायित्व भी है। वे बालकों को दुलार देने के साथ-साथ सुधार की दृष्टि भी रखें। छूट देने के साथ-साथ अनुशासन के लिए भी प्रशिक्षित करें। घर का वातावरण ऐसा रखें, जिसमें उदीयमान पीढ़ी को चरित्र गठन की प्रेरणा मिले। अनुकरण द्वारा उपयुक्त ढाँचे में ढलने का अवसर मिले।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की शिक्षा में एक बात और ध्यान रखने की है कि भविष्य में उन्हें आजीविका उपार्जन किस प्रकार करना है। इन दिनों हर छात्र के मन में अच्छे वेतन वाली नौकरी प्राप्त करना ही लक्ष्य रहता है, पर अधिकांश के लिए यह अति कठिन पड़ता है। नौकरियाँ इतनी नहीं निकल सकतीं, जिनमें हर साल पढ़कर निकलने वाले छात्रों को खपाया जा सके। शिक्षा बढ़ रही है, यह ठीक है, पर यह उससे भी बड़ा सत्य है कि नौकरी न मिलने पर इनमें से अधिकांश को बेकार रहना पड़ता है। शिक्षाकाल में सँजोए गए रंगीन सपने जब साकार नहीं होते तो उनकी बड़ी निराशाजनक और दयनीय दशा होती है। इस बेकारी के दिनों में कई को तो कुसंग घेर लेता है और वे कुमार्ग पर चल पड़ते हैं।

इस कठिनाई को आरम्भ से ही ध्यान में रखना चाहिए और पढ़ाई के साथ उन विकल्पों पर भी विचार करते रहना चाहिए, जिन्हें अपनाकर वे स्वावलम्बी जीविकोपार्जन कर सकें। ऊँची पढ़ाई को ही सब कुछ मान बैठने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि शिल्प उद्योग, व्यवसाय के संदर्भ में विचार करते रहा जाय। उसके लिए अभ्यास करते और साधन जुटाते रहा जाय। बालकों की पढ़ाई के साथ-साथ उनमें सुसंस्कारिता बढ़ाने और नौकरी का विकल्प ढूँढ़ते रहने के लिए सहयोग किया जाय, मार्गदर्शन किया जाय।

यह बच्चों की बात हुई, पर वर्तमान पीढ़ी तो युवकों और प्रौढ़ों की है। वही उपार्जन करती, व्यवसाय बनाती और परिवार पालती है। सामूहिक, सामाजिक विकास, परिष्कार करना भी उसी के हाथ में है। इसके लिए सामाजिक शिक्षण उसे भी मिलना चाहिए।

अपने देश में प्राय: तीन-चौथाई व्यक्ति साधन रहित देहातों में रहते हैं। शहर और ग्रामों में मिलाकर अशिक्षित प्रौढ़ भी प्राय: इतने ही हैं। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रौढ़-शिक्षा का महत्त्व बाल-शिक्षा से भी किसी प्रकार कम नहीं, वरन् कुछ अधिक ही है। क्योंकि बालक तो एक-दो दशक के बाद ही दायित्वपूर्ण जीवन में प्रवेश करेंगे, पर प्रौढ़ों के हाथ में तो वर्तमान का निर्माण-निर्धारण पूरी तरह है। वे निरक्षर रहने की दशा में अनेक दृष्टियों से अनगढ़ ही बने रहते हैं, भले ही वे किसी अभ्यस्त माध्यम के सहारे आजीविका उपार्जित कर लेते हैं।

अशिक्षा और दरिद्रता सगी बहनें हैं। समीपवर्ती ज्ञान, अनुभव मात्र के सहारे जिन्हें दिन काटने पड़ें, उन्हें कूपमण्डूक ही कह सकते हैं। संसार में प्रगतिशीलता की दिशा में कितनी तेज घुड़दौड़ चल रही है, इसकी जानकारी उन्हें नगण्य जितनी ही होती है। ऐसी दशा में न वे अपने ज्ञान का, व्यक्तित्व का, भविष्य का उत्साहवर्द्धक निर्माण कर सकते हैं और न उन्हें लकीर से हटकर कुछ सोचने-करने का साहस होता है। इस समुदाय को भाग्य भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता और न यह कहकर उपेक्षा की जा सकती है कि यह इतने बड़े हो गए, अब क्या पढ़ेंगे। शिक्षा तो जीवन भर प्राप्त करते रहने की वस्तु है, उस पर आयु का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

वर्तमान वयस्कों के हाथ है। भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान को ही सँभालना-सुधारना पड़ता है। जिन लोगों के हाथ में समाज की, समय की बागडोर है, वे तरुण ही हैं। उन्हें अशिक्षित पड़ा रहने दिया जाय तो सामयिक प्रगतिशीलता की आशा नहीं की जा सकती और न उज्ज्वल भविष्य का ही आधार खड़ा किया जा सकता है। प्रौढ़ों का बचपन चला गया, वह लौट नहीं सकता, तो इसका यह मतलब नहीं कि जो बचपन में नहीं पढ़ सका, उसे वयस्क होने पर शिक्षित बनने की आशा ही छोड़ देनी चाहिए। उसकी उपलब्धि की आवश्यकता ही नहीं समझनी चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा को समय की सबसे बड़ी आवश्यकता मानकर चलना चाहिए और उसके लिए प्राइमरी स्कूल स्तर की शिक्षा तो हर नर-नारी को मिलनी चाहिए। सोचना यह है कि इसके लिए क्या किया जाय ? जो काम धन्धे से लगे हैं, उनके लिए यह तो सम्भव नहीं कि काम छोड़ कर स्कूलों में प्रवेश लें, पर इतना तो हो ही सकता है कि अवकाश के समय में वे थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ते रहें और कुछ दिनों में इस स्तर तक पहुँच जाएँ कि उन्हें साक्षरों में गिना जाने लगे। इसके लिए सभी प्रौढ़ नर-नारियों में निरक्षरता के अभिशाप से उबरने के लिए उत्साह उभारना चाहिए। यदि वे इस दिशा में अन्यमनस्क बने रहेंगे और उत्साह उत्पन्न न करेंगे तो कोई उन्हें बलपूर्वक तो पढ़ा नहीं सकेगा ? यदि इच्छा हो तो घर का ही कोई व्यक्ति उन्हें इस कार्य में सहायता दे सकता है। पड़ौसी-सम्बन्धियों में से भी कई ऐसे हो सकते हैं जो उनकी शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा को पूरा करने में सहायता करते रहें।

इस दिशा में वर्तमान शिक्षितों का भी कर्तव्य हो जाता है कि वे विद्या ऋण चुकाने के धर्म कर्तव्य को ध्यान में रखें, जिन्होंने शिक्षा पाई है, उनका यह भी कर्तव्य हो जाता है कि वे अन्यों को भी उस उपलब्धि से लाभान्वित करें। यदि हर शिक्षित यह प्रतिज्ञा कर ले कि उसे कम से कम पाँच निरक्षरों को साक्षर बनाना है, तो उसके लिए न तो समय निकालना कठिन है और न आस-पास में ऐसे प्रौढ़ नर-नारियों के मिल सकने में कठिनाई होगी, जिन्हें थोड़ा उत्साह जगाकर पढ़ने के लिए तैयार न किया जा सके। यदि यह प्रक्रिया चल पड़े तो अब की अपेक्षा कुछ ही समय में सभी अशिक्षित काम चलाऊ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और देश की महती समस्या का समाधान हो सकता है। ज्ञान वृद्धि से व्यक्ति भी लाभान्वित होता है, परिवार भी और समाज भी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एकाकीपन की अपेक्षा समूहगत प्रयत्नों में अधिक उत्साह रहता है, अकेला बच्चा मुश्किल से मन मारकर पढ़ पाता है, पर स्कूल में वही अपने साथी-संगियों के साथ उत्साहपूर्वक पढ़ता है। परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करके आगे निकलने का प्रयत्न करता है। यही प्रवृत्ति प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में भी पैदा की जा सकती है। इस हेतु स्थान-स्थान पर प्रौढ़-पाठशालाएँ स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। थोड़ी संख्या में भी शुभारम्भ हो सकता है। आवश्यक नहीं कि बड़ी संख्या में पढ़ने वाले मिलें तभी उस प्रयास का श्रीगणेश किया जाय।

इसके लिए कुछ प्राणवानों को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना होगा। उन्हें घर-घर जाकर पढ़ने वालों को समझा-बुझाकर उत्साहित, सहमत करना होगा। यही कार्य पढ़ने वालों को ढूँढ़ने के लिए करना होगा। जिन्हें थोड़ा अवकाश रहता है, जिनके मानस को जड़ता ने सर्वथा आच्छन्न नहीं कर रखा है; उन्हें इस राष्ट्र निर्माण के, मानवता के, सच्चे सेवा कार्य में सहयोग देने के लिए उद्यत किया जा सकता है।

अशिक्षा का कलंक मिटाना ही होगा

ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मनुष्य थोड़ी मात्रा में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। आँख, कान आदि की सामर्थ्य सीमित है। थोड़ी दूर का ही जो दृश्य दिखाई दे रहा है, शब्द सुनाई पड़ रहा है, उसी की जानकारी भर इनसे मिलती है। पशु-पक्षी भी इन्हीं के सहारे काम चलाते हैं, पर वह होता इतना ही है कि उस ज्ञान के आधार पर दैनिक निर्वाह का उपक्रम चल सके, मनुष्य भी इन्द्रिय ज्ञान के आधार पर निकटवर्ती जानकारियाँ ही प्राप्त करता रहे तो उसकी जानकारी भी वनमानुष स्तर की ही बनी रहेगी। सम्पर्क वाले व्यक्ति भी इससे कुछ ही अधिक ज्ञातव्य उपलब्ध करा सकेंगे। ऐसी दशा में कूपमण्डूक बनकर ही रहना पड़ेगा। उसे विशाल विश्व की समस्याएँ उनके समाधान-मुक्ति के आधारों से अपरिचित ही रहना पड़ेगा, इसलिए अशिक्षितों की स्थिति अनगढ़ों जैसी ही बनकर रह जाती है। उन्हें शिक्षितों, बहुज्ञों और सभ्य बुद्धिमानों का दर्जा नहीं मिलता।

शिक्षा को ज्ञान का नेत्र कहा गया है। चर्मचक्षुओं से आगे बढ़कर ज्ञान नेत्रों को आलोकित करने पर ही मनुष्य को विज्ञ बनने का अवसर मिलता है। भाषा और लिपि के सहारे ही दूरवर्ती एवं दिवंगत लोगों से सम्पर्क साधना, उनके द्वारा अर्जित की गई ज्ञानसम्पदा से लाभ उठा सकना सम्भव होता है। साहित्य में चिर अतीत का उल्लेख उपलब्ध है। इसमें अनेकानेक बहुमूल्य मणि-माणिक्य भरे पड़े हैं। इनसे वंचित रहना एक प्रकार के दुर्भाग्य से ग्रस्त रहना है। यह एक ऐसा दुर्भाग्य है कि यदि चाहा जाय तो उससे आसानी से छुटकारा मिल सकता है। शिक्षितों को खुले ज्ञान नेत्र वाले कहा जाता है। इस माध्यम से अपनी सम्पदा में अभिवृद्धि करते हुए अनेक कठिनाइयों से पार पाना, प्रगति के अनेक आधारों से अवगत होना सुगम एवं सम्भव हो सका है। सर्वविदित है कि ज्ञान के स्तर पर ही सम्पदा के अनेक पक्ष विकसित होते हैं। प्रगतिशीलता हस्तगत होती है और दूसरों की सेवा-सहायता प्राप्त कर सकना, उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकना सम्भव होता है। इसलिए शिक्षा का विस्तार करना मनुष्य जगत की सबसे बड़ी सेवा है। संसार की प्रगतिशीलता एवं सुविधा-सम्वर्द्धन भी इसे कह सकते हैं। इन लाभों को देखते हुए संसार की सर्वोपरि प्राथमिकता मिलने योग्य यदि कोई लक्ष्य है, तो उसे शिक्षा ही कह सकते हैं। उसके बिना व्यक्ति अपंग स्तर का ही रह जाता है। अशिक्षितों की संख्या बढ़ना एक प्रकार से संसार में अपंगों की भरमार ही होना है। इस आवश्यकता को पूर्ण करना एक प्रकार से संसार में सबसे अधिक कष्टदायक अभाव की पूर्ति करना है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि संसार में आधे पेट भूखे सोने वालों की संख्या जितनी है, उससे कहीं अधिक वे लोग हैं जिनको अशिक्षित कह सकते हैं। अपने देश को ही लें तो यहाँ प्रायः एक-चौथाई व्यक्ति ही ऐसे हैं जिन्हें शिक्षित कहा जा सकता है। शेष तीन चौथाई तो दूरवर्ती बिखरे देहात में ही रहते हैं। जहाँ न शिक्षा का महत्त्व समझा जाता है और न उसके लिए आवश्यक सुविधा-साधन हैं। यह अभाव भी नहीं अखरता। क्योंकि सम्पर्क क्षेत्र में अधिकांश नर-नारी अशिक्षित जीवन ही जीते हैं। ऐसी दशा में उन्हें वही स्वाभाविक लगता है। जिसका अभाव खटके नहीं उसकी पूर्ति का उत्साह भी क्यों उभरने लगा। उत्साह के अभाव में साधन ढूँढ़ने का भी प्रयत्न नहीं होता। जिसका महत्त्व न समझा गया हो, उसके लिए उत्साह क्यों उभरेगा, प्रयत्न क्यों चलेगा। बिना प्रयत्न के कभी किसी को कोई बड़ी उपलब्धि हस्तगत हुई भी नहीं है।

देश में आर्थिक अभावों की भी एक बड़ी कठिनाई है। इसके निराकरण का उपाय भी आवश्यक है। इस दिशा में सरकारी और व्यक्तिगत रूप से कुछ प्रयत्न हो भी रहा है और सफलता की दिशा में कुछ कदम बढ़ भी रहे हैं भले ही वे धीमी गति से ही क्यों न चल रहे हों। किन्तु इसी अभाव के समतुल्य शिक्षा का अभाव भी है। जिसकी ओर प्रयास दोनों ही ओर से उतना नहीं हो रहा है, जितना कि होना चाहिए।

व्यक्तिगत प्रयत्न जगाने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा की आवश्यकता, उसका महत्त्व एवं लाभ समझाना पड़ेगा। साथ ही यह भी हृदयंगम कराना होगा कि इस अभाव के रहते अन्यान्य अभावों की पूर्ति तो दूर इस प्रतिस्पर्धा के युग में निर्वाह की आवश्यकता भी भली प्रकार पूरी नहीं हो सकेगी। अधिक उपार्जन और उसके सदुपयोग में एक महती आवश्यकता शिक्षा की भी है, इसके बिना मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शारीरिक श्रम ही एक ऐसा माध्यम रह जाता है, जिसके आधार पर पुराने ढर्रे पर चलते हुए जो कुछ कमाया जा सके, उसी को भाग्य का विधान मानकर संतोष किया जा सके। कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योग यह तीन ही ग्राम्य जीवन के अर्थ उपार्जन के साधन हैं। इनमें से किसी को भी समय के अनुरूप अधिक लाभदायक बनाना हो तो उसके लिए इन विषयों की अधिकतम जानकारियों की आवश्यकता है। यह लाभ बिना शिक्षा का अवलम्बन लिए उपलब्ध हो सकना सम्भव नहीं। इसलिए 'गरीबी हटाओ' का अभियान आरम्भ करते हुए उसके साथ एक दूसरा पक्ष और जोड़ना पड़ेगा 'शिक्षा बढ़ाओ'। गरीबी और अशिक्षा को सहोदर बहनें कहा जा सकता है। दोनों की प्रकृति कुछ ऐसी है कि साथ-साथ ही रहती एवं विदा होती हैं। अपने देश में संव्याप्त गरीबी इसलिए अधिक अखरती है कि उसके कारण जो कष्ट सहने पड़ते हैं वे प्रत्यक्ष होते हैं। अशिक्षा चूँकि अदृश्य है, मानसिक है। इसलिए उसके बिना शरीर को कितना घाटे में रहना पड़ता है यह तथ्य समझ में नहीं आता और उसके निराकरण के लिए समुचित उत्साह प्रदर्शित नहीं किया जाता। यदि व्यक्ति की आकांक्षा उभरती तो अन्न, वस्त्र की तरह उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए समय निकलता, श्रम बन पड़ता, साधन जुटते और अभाव की पूर्ति होकर रहती।

हमारी एक प्रवृत्ति यह भी बन गई है कि हर कार्य के लिए सरकारी सहारा तकना। जो अपने पुरुषार्थ से किया जा सकता है, उसमें आलस्य-प्रमाद बरतना। इस दुर्गुण के कारण यह अपेक्षा की जाती है कि सरकार ही हर किसी के लिए आवश्यक शिक्षा का प्रबन्ध करे। पर यह विचार नहीं करते कि सरकार के लिए वैसा कर सकना सम्भव है या नहीं।

सरकार को इन दिनों मात्र स्कूल-कॉलेजों की नियमित पढ़ाई का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसमें अत्यधिक भारी धन शक्ति खर्च होती है। अभी कितने ही क्षेत्र ऐसे पड़े हैं, जहाँ नये स्कूल खुलने की, वर्तमान विद्यालयों में अधिक ऊँची कक्षाएँ बढ़ाने की आवश्यकता है। वह कार्य भी इसलिए रुका पड़ा है कि जितनी धनराशि इस मद में अभी खर्च होती है, उसकी तुलना में कहीं अधिक व्यय किए जाने की आवश्यकता है। यदि इसका प्रबन्ध किया जाय तो वर्तमान टैक्सों की तुलना में और अधिक कर जनता से वसूल करने होंगे। जनसाधारण की आर्थिक स्थिति महँगाई अथवा दूसरे कारणों से ही काफी गई-गुजरी है, इतने पर भी शिक्षा विकास के लिए नये टैक्स और लगाए जाएँ तो इसे जनता सहज स्वीकार न करेगी। प्रश्न जहाँ का तहाँ अड़ जायगा।

ऐसी दशा में अशिक्षा की व्यापक समस्या का समग्र समाधान ढूँढ़ने के लिए नये आधार सोचने और खड़े करने होंगे। ९० करोड़ आबादी के देश में ६० करोड़ अशिक्षितों की पढ़ाई का प्रबन्ध करना किसी सम्पन्न सरकार के लिए भी सम्भव नहीं हो सकता। वह कुछ प्रतिशत स्कूली नवोदित छात्रों का प्रबन्ध कर पाए तो भी बहुत है। फिर प्रौढ़ नर-नारियों की शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हो ? यहाँ एक समस्या और भी है कि यह सभी प्रौढ़-प्रौढ़ाएँ अपने-अपने निर्वाह-उपाय में भी व्यस्त रहते हैं। सरकारी स्कूलों में नियत समय कैसे पहुँचे ? घर का काम कैसे छोड़ें ? यदि वे पढ़ना चाहें तो वह समय उनकी सुविधा का, अवकाश का ही हो सकता है। पुरुषों को रात्रि में थोड़ा समय मिलता है। महिलाओं को मध्याह्नोत्तर तीसरे प्रहर के कुछ घण्टे किसी प्रकार बच सकते हैं। इन थोड़े घण्टों के लिए सरकार किस प्रकार नियमित अध्यापक नियत करे। थोड़े समय पढ़ाने के लिए पूरा वेतन कैसे दे। बिना पूरे वेतन के कोई अध्यापक किसलिए पूरे बन्धन में बँधे ? फिर ६० करोड़ अशिक्षितों के लिए लाखों नये प्रौढ़ विद्यालय कैसे खुलें ? यह सभी समस्याएँ एक से एक जटिल हैं। इनके समाधान सहज सम्भव नहीं। ऐसी दशा में यही एकमात्र विकल्प रह जाता है कि जनस्तर पर नया प्रयास, नये उत्साह के साथ व्यापक स्तर पर किया जाय। सरकार जो कुछ कर रही है, उसे उतना ही करने दिया जाय।

जीवन के अगणित कार्य ऐसे हैं जो जनसाधारण को अपने बलबूते ही करने पड़ते हैं। सरकार का उसमें कोई योगदान या हस्तक्षेप नहीं रहता। आहार, वस्त्र, विवाह-शादी, हारी-बीमारी, खेती-मजदूरी, मनोरंजन आदि अनेकों विषय ऐसे हैं, जिन्हें लोग अपने बलबूते ही हल करते हैं। सरकार से न इनके लिए फरियाद करते हैं और न उसके द्वारा इसके समाधानों की सम्भावनाओं पर कोई निर्भर रहता है। जब दैनिक आवश्यकताओं में से अधिकांश का समाधान अपने बलबूते किया जाता है, तो शिक्षा भी तो निजी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए निजी स्तर पर ढाँचा क्यों न खड़ा किया जाय ? यही सम्भव भी है और सुलभ भी।

इस निमित्त प्रौढ़ पाठशालाओं का एक समग्र तन्त्र खड़ा करना होगा। उसके लिए दो प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। एक यह कि अशिक्षित समुदाय को जनसम्पर्क से, प्रचार माध्यमों से इसके लिए सहमत किया जाय कि वे शिक्षा का महत्त्व स्वीकारें और अन्य आवश्यक कार्यों की तरह न्यूनतम दो घण्टे का अवकाश अपनी सुविधा के समय निकालें।

दूसरा पक्ष है अध्यापकों का। जिन छात्रों को अनेक दबाव-प्रलोभन देकर किसी प्रकार पढ़ने भर के लिए अनमने मन से तैयार किया गया है, उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अध्यापकों के वेतन के लिए महँगी फीस भी चुकाएँगे। इसलिए अध्यापक तलाश करने का एक ही कारगर उपाय है कि जिन शिक्षित नर-नारियों के पास थोड़ा अवकाश रहता है, जो सेवानिवृत्त हो चुके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं, जिनमें सेवा की लगन जगाई जा सकती है, उन्हें इस बात के लिए तैयार किया जाय कि वे न्यूनतम दो घण्टे नित्य प्रौढ़-शिक्षा के लिए निःस्वार्थ भाव से निःशुल्क देते रहने का व्रत लें और इसको सच्चे मन से दृढ़तापूर्वक निबाहें। इस धर्मभूमि वाले देश में इतनी श्रद्धा और पुण्य परमार्थ की भावना अभी जीवित है कि धन न सही दो घण्टे जैसा स्वल्प समय विद्यादान जैसे पुनीत कार्य के लिए दे सकें। आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार पढ़ने के लिए अशिक्षितों को नये सिरे से अवगत एवं उत्साहित करना है, उसी प्रकार जो शिक्षक की भूमिका निभा सकते हैं उन्हें भी योजना की रूपरेखा आवश्यकता और परिणत समझाते हुए उमंगों से भर दिया जाय और उत्साह को इस स्तर तक ले आया जाय कि वे निःशुल्क पढ़ाने के लिए अपना समय देते रहने के लिए प्रतिज्ञा ले सकें।

वयस्कों के लिए भी शिक्षा आवश्यक

हमारे देश में विश्व की जनसंख्या का छटवाँ भाग बसता है। इतनी विपुल जनशक्ति होने के कारण होना यह चाहिए था कि हम संसार के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरते। ऐसा तो नहीं हो सका है लेकिन दुनिया में सर्वाधिक अशिक्षित और निरक्षर व्यक्तियों वाले देश के आँकड़े इकट्ठे किये जाएँ तो सम्भवतः हमारा देश उस प्रथम पंक्ति में रहेगा। भारत की अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है। सन् १९७१ में की गई जनगणना के अनुसार यहाँ केवल ३० प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर हैं। शिक्षित भी नहीं, साक्षर अर्थात जो अक्षरों को पहचानते हों और चिट्ठी-पत्री भर लिख-पढ़ सकते हों।

भारत में शिक्षा प्रसार का कार्य मूलतः राज्य सरकारों द्वारा चलाया जाता है। १९५१ से इस दिशा में किए गए प्रयासों के परिणामस्वरूप तब की और अब की स्थिति में बहुत अन्तर भी आया है। अनेक राज्यों ने प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य निःशुल्क कर दी है, तथा अभिभावकों से अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए कहा जाने लगा परन्तु निरक्षरता का उन्मूलन जिस गति से होना चाहिए था, उस गति से नहीं हो सका। कारण बच्चे के लिए तो शिक्षा के अवसर सुलभ हैं किन्तु जो व्यक्ति बड़े हैं या युवक हो गए, वे तो बच्चों के साथ बैठ कर नहीं पढ़ सकते। ऐसे नागरिकों का प्रतिशत बहुत बड़ा है और जो अपने बचपन में कुछ पढ़ना-लिखना आरम्भ कर सके, उनके लिए तो शिक्षित कहलाने का गौरव प्राप्त हो सका परन्तु जो वह अवसर चूक गए उन्हें न शिक्षित होने की प्रेरणा मिली और न उस व्यवस्था का कोई लाभ।

इस स्थिति में परिवर्तन तो अभीष्ट है। शिक्षा समाज की इतनी बड़ी आवश्यकता है कि उसके लिए दूसरी पीढ़ी तक धैर्य रखने का कोई औचित्य नहीं है। अर्थात हम जहाँ और जिस स्थिति में हों वहीं से आगे बढ़ना प्रारम्भ कर दें। प्रौढ़ व्यक्तियों को—जिन्हें अपने बाल्यकाल में किसी स्कूल में जाने का अवसर नहीं मिल सका, उन्हें भी कम से कम साक्षर होने के लिए तो प्रेरित किया ही जाना चाहिए। जिससे कि उनमें अभिरुचि हो तो वे अपनी शिक्षा, योग्यता का विकास करते रह सकें। जीवन में शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत जीवन में ही अशिक्षित व्यक्तियों को जगह-जगह ठोकरें खाते और नये स्थानों पर भटकते देखा जा सकता है। अशिक्षित-निरक्षर व्यक्ति चार-पाँच सौ की जनसंख्या वाले अपने गाँव में रहकर ही भले निरापद ढंग से रह ले परन्तु शिक्षा के माध्यम से सम्भावित प्रगति उसके लिए अलभ्य ही रहती है। लोगों को कुछ अधकचरा बता देंगे और उसे जानकर ही सन्तोष करना पड़ेगा। एक बार में जितना और जैसा समझ में आया वहीं तक जाकर रुक जाना पड़ेगा। शिक्षा न होने के कारण जो कुछ भी पढ़वाया गया है अथवा सुना गया है, उसे स्वयं पढ़ने तथा दुबारा दोहराने की सामर्थ्य तो है नहीं।

अशिक्षा इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन में ज्ञान और योग्यता वृद्धि के द्वार रोकती है। उसके कारण व्यक्ति आँख रहते भी देख नहीं सकता, पैर होते चल नहीं सकता, बुद्धि होते हुए कोई उपयोगी बात समझ नहीं सकता। स्थिति पूरी तरह उस प्रकार की हो जाती है जैसे घना अन्धकार हो और उसमें चलने के लिए कहा जाय। प्रकाश के अभाव में बहुत से व्यक्ति तो चलने का प्रयास ही नहीं करेंगे और चलेंगे भी तो कहीं ठोकर खाएँगे, कहीं गिरेंगे-पड़ेंगे। परिचित मार्गों पर जिनसे हम कई बार गुजर चुके हैं—चलने में तो फिर भी पूर्व का अभ्यास काम दे जाता है परन्तु सर्वथा अनजानी और अनदेखी राहों पर प्रकाश के बिना एक कदम भी आगे बढ़ पाना सम्भव नहीं होता। जीवन भी ऐसी ही अनजानी और अनदेखी राह है, किसी को याद नहीं पड़ता कि वे इसी तरह का जीवन पहले भी व्यतीत कर चुके हैं और इन्हीं समस्याओं से पहले भी कभी जूझ चुके हैं। शिक्षा का प्रकाश—विद्या की ज्योति प्रत्येक नई स्थिति और अनागत सम्भावना को देखने-समझने की शक्ति देती है।

अन्धकार का निवारण करने के लिए बड़े स्तर पर प्रयास होते हैं। सड़कों-चौराहों और गलियों में प्रकाश की व्यवस्था की जाती है ताकि रात्रि के समय सभी लोग सुविधापूर्वक चल सकें। शिक्षा की व्यवस्था भी उसी प्रकार आवश्यक है। प्रकाश के लिए तो बाहरी साधनों से काम चलाया जा सकता है पर शिक्षा का प्रकाश अपनी स्मृति और बुद्धि को प्रशिक्षित किए बिना सम्भव नहीं है। यही प्रशिक्षण स्कूलों में बच्चों को दिया जाता है और प्रौढ़-शिक्षा के रूप में बड़ों के लिए भी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयास डालते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परन्तु प्रौढ़-शिक्षा भी एक अच्छी-खासी विडम्बना बनकर रह गई है। सरकार द्वारा प्रौढ़-शिक्षा के लिए कई स्थानों पर प्रौढ़शालायें खोली गईं, उनके अध्यापक भी नियुक्त किए गए किन्तु बड़ी उमर के व्यक्तियों में इसके लिए जरा भी उत्सुकता नहीं दिखाई दी। लगभग सभी स्थानों पर उनमें उत्साह का अभाव पाया गया। आवश्यक तो यह है कि किसी भी कार्यक्रम को जनस्तर पर सफल बनाने के लिए उसके प्रति लोगों में पहले उत्साह जगाया जाय। जनसाधारण में रुचि उत्पन्न की जाय। शिक्षा प्रचार के सम्बन्धों में और विशेषत: प्रौढ़-शिक्षा के लिए तो यह और भी ज्यादा आवश्यक है क्योंकि अपने सामने छोटे-छोटे बच्चों को वर्णमाला सीखते देखकर स्वयं भी वैसा ही सीखना और पढ़ना अटपटा-सा लग सकता है। इस संकोच के कारण ही अधिकांश व्यक्तियों में प्रौढ़ावस्था में पढ़ने-लिखने की उमंग नहीं देखी जाती। बहुधा लोग कहते हैं कि हमारा तो जीवन व्यतीत हो चुका या आधी जिंदगी तो गुजर गई, अब पढ़ने-लिखने से क्या फायदा ? उन्हें समझाया जाना चाहिए। शिक्षा या ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी उपयोगिता किसी अवस्था विशेष वाले व्यक्ति के लिए समाप्त हो जाती है वह बच्चों के खिलौने अथवा उनके क्रीड़ा-कौतुकों की तरह नहीं है कि आगे कभी उनसे खेलना अच्छा न समझा जाय।

पौष्टिक भोजन हर आयु के लिए आवश्यक है, स्वच्छ हवा बच्चों से लेकर बड़ों तक का स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए जरूरी है। स्वस्थ मनोरंजन और निश्चिन्तता-प्रफुल्लता सभी आयु वर्ग वालों के लिए आवश्यक और उपयोगी है। उसी प्रकार शिक्षा या ज्ञान भी व्यक्ति मात्र की आवश्यकता है। उसके लिए आयु, स्थिति और वय का कोई बन्धन-प्रतिबन्ध नहीं है। रहा प्रश्न उसे प्राप्त करने की आयु का तो वह भी निरा संकोच है, अन्यथा ऐसा कोई कारण नहीं है कि उसे केवल बच्चों की बात ही समझा जाय और बड़ों के लिए उसकी कोई आवश्यकता नहीं रहे या बचपन गुजर जाने के बाद जिसे प्राप्त नहीं किया जा सके।

बचपन से ही यदि शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता तो अच्छा ही रहता। परन्तु वह अवसर निकल गया तो शिक्षा इतने कम महत्त्व की वस्तु नहीं है कि उसे प्राप्त करने के लिए बाद में कोई प्रयत्न न किए जाएँ। बचपन में खिलौनों से नहीं खेला जा सका तो भी बड़ी उमर में उनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती परन्तु बचपन में यदि अच्छा स्वास्थ्य नहीं बनाया जा सका, तो सारी उमर ही बीमार रहकर सन्तुष्ट नहीं हुआ जा सकता। यह बहाना कोई नहीं करता कि क्या करें साहब अब तो स्वास्थ्य बनाने की उमर ही जाती रही। अब जैसा है वैसा ही स्वास्थ्य रहने दिया जाय। पहलवान बनने के लिए अच्छा होता यदि बचपन से ही दण्ड बैठक लगाई जाती। परन्तु ऐसा नहीं हो सका और बाद में किसी को पहलवानी का चस्का लगा तो वह उसी आयु में दण्ड-बैठक और व्यायाम शुरू कर देता है। प्रश्न आयु या स्थिति का नहीं है। प्रश्न इस बात का है कि शिक्षा के प्रति आम आदमी का क्या दृष्टिकोण है और उसमें कौनसे ऐसे परिवर्तन किए जाने चाहिए, जिससे कि वह शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हो उठे।

सर्वसाधारण में—जिनमें अशिक्षितों की संख्या ही अधिक है, शिक्षा के प्रति यही धारणा बनी हुई है कि वह बच्चों के लिए एक ऐसा काम है, जिसमें बच्चे इधर-उधर मारे-मारे फिरने की अपेक्षा एक स्थान पर बैठे और बँधे रह सकें। यही कारण है कि ग्रामीण परिवारों में वयस्क व्यक्ति स्वयं तो शिक्षा प्राप्त करना तो दूर रहा बच्चों तक का स्कूल फसल के मौसम पर छुड़वा देते हैं और उन्हें खेतों में काम करने के लिए लगा देते हैं। शिक्षा के प्रति जहाँ यह आमधारणा हो वहाँ स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए जोरदार प्रयत्न करने होंगे। जो व्यक्ति केवल संकोच के कारण ही शिक्षा की उपेक्षा करते हैं, उन्हें तो उपरोक्त आधारों पर समझाया जा सकता है पर जिन्हें पढ़ना-लिखना व्यर्थ का काम जँचता है, उन्हें धैर्यपूर्वक समझाने-बुझाने की आवश्यकता है।

प्रौढ़ व्यक्तियों में शिक्षा के प्रति अनुत्साह इसलिए भी देखा जाता है कि उन्हें समय न मिलने, साधन उपलब्ध न होने की शिकायतें रहती हैं। वस्तुत: तो ये कोई बड़े कारण नहीं हैं। जब ढेरों समय गप्पबाजी के लिए निकाल लेते हैं, अपना बहुत-सा समय और बहुत-सा पैसा अनावश्यक कार्यों में खर्च कर देते हैं तो कोई कारण नहीं है कि शिक्षा के लिए समय तथा साधनों का अभाव हो। अत्यन्त आवश्यक कार्य दूसरे जरूरी कामों को छोड़कर भी किए जाते हैं। अपना कोई प्रिय-स्वजन किसी दुर्घटना का शिकार हो गया हो तो सारे काम एक ओर छोड़कर उसे देखने के लिए जाया जाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई समस्या उत्पन्न हो गई हो तो उसके लिए सभी काम एक ओर रख दिये जाते हैं। आशय यह है कि आवश्यक और उपयोगी समझे जाने वाले कार्यों के लिए समय तथा साधनों की कमी कभी बाधक नहीं बनती। यह कठिनाई उत्पन्न तब होती है जब लगता हो कि कोई व्यर्थ का कार्य करने के लिए कहा जा रहा है। सीधे शब्दों में कहा जाय तो शिक्षा का महत्त्व न समझने के कारण ही प्रौढ़ व्यक्ति समय न मिलने तथा साधन उपलब्ध न होने का बहाना करते हैं।

प्रौढ़-शिक्षा की आवश्यकता स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही अनुभव की जाने लगी है और उसके लिए सरकारी स्तर पर प्रयास भी हुए हैं। परन्तु जनसहयोग के अभाव में उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। शिक्षा के प्रचार में वही व्यक्ति सहयोग देने की स्थिति में कहे जा सकते हैं, जो स्वयं भी शिक्षित हों। इस दृष्टि से समर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहयोगियों की संख्या और भी कम हुई। संख्या मुख्य नहीं है, मुख्य है उन थोड़े से व्यक्तियों की भी लगन। कोई चीज हमें अच्छी लगती है तो हम दूसरों के सामने उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाते। कस्बे या शहर के सिनेमागृह में लगी कोई अच्छी-सी फिल्म देखकर अपने मित्रों-परिचितों में प्रशंसा करते घूमते हैं। परन्तु स्वयं हम शिक्षित हैं तो दूसरों को शिक्षा का महत्त्व उसकी उपयोगिता और उसकी विशेषताओं से अवगत क्यों नहीं कराते। शिक्षा के प्रति यदि हमारे अन्तःकरण में प्रेम है तो उसका परिचय हम दूसरों को भी शिक्षा प्राप्ति के लिए प्रेरित कर दे सकते हैं। स्वयं हम समझते हैं कि शिक्षा प्राप्त कर हमने कोई उपलब्धि अर्जित कर ली है तो दूसरों को जो अशिक्षित हैं, उनको शिक्षा की महत्ता बताकर अपनी उपलब्धियों का गर्व अनुभव कर सकते हैं।

यदि शिक्षित व्यक्ति में अपनी उपलब्धि के प्रति गौरव का भाव उत्पन्न हो तो, जो अशिक्षित हैं उनमें भी देखकर शिक्षा के प्रति आकर्षण उत्पन्न होगा। व्यक्ति का स्तर ऊँचा उठेगा तो सम्पूर्ण राष्ट्र का स्तर अपने आप ही ऊँचा उठेगा और इस प्रकार सारे देश में प्रगतिशीलता दृष्टिगोचर होने लगेगी। आवश्यकता इस बात भर की है कि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अपने निरक्षर और अशिक्षित पड़ौसी को शिक्षा का महत्त्व समझाए तथा राष्ट्र के प्रति अपना दायित्व अनुभव करते हुए उसे साक्षर बनाए।

नव-निर्माण की आधारशिला— प्रौढ़-शिक्षा

अक्षर-ज्ञान के अभाव में शिक्षा की दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकती। फिर चेष्टा इस बात की करनी होगी कि नव-साक्षर लोगों को कहानियों, निबन्धों की पुस्तकों, भाषणों या साधनों द्वारा देश के इतिहास, परम्परा, वर्तमान लोकतन्त्र प्रणाली, राजनीतिक संस्थाओं के विभिन्न स्वरूप तथा उनकी कार्यपद्धति, नागरिकता के आदर्शों आदि की सामान्य जानकारी दे सकें। संक्षेप में, हमारा प्रयत्न इस बात का होना चाहिए कि व्यक्ति अपने सीमित संसार से बाहर निकले और व्यापक दृष्टिकोण अपनाए। उसकी चेतना में अपने, अपने परिवार, ग्राम और देश के प्रति जिम्मेदारी का अहसास जागे। प्रौढ़-शिक्षा का कार्यक्रम अपने आप में एक असाधारण कार्य है। प्रौढ़-शिक्षा के द्वारा हम आम आदमी को उसके दायित्व से परिचित कराते हैं।

जो भी समस्याएँ हमारी दिमागी जड़ता और मानसिक पिछड़ेपन से सम्बद्ध हैं, उनका उन्मूलन प्रौढ़-शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम द्वारा ही किया जा सकता है। जाति प्रथा, मद्यपान, छुआछूत, साम्प्रदायिकता वगैरह बुराइयाँ हमारी दिमागी गुलामी और रूढ़िवादिता के बड़े गवाह हैं, बल्कि उन्हीं की उपज हैं। इनको सिर्फ कानून बनाकर नहीं खत्म किया जा सकता। कानून एक सीमा तक मदद जरूर कर सकता है। इसमें ज्यादातर काम मानसिक प्रशिक्षण द्वारा करना है। यह काम प्रौढ़-शिक्षा द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है। जरूरत इस बात की है कि हमारे देशवासियों का दिमागी पुनरुत्थान किया जाए, उन्हें बताया जाए कि उनके देश की तरक्की किन कारणों से रुकी है, परिस्थितियों में वांछित सुधार कैसे लाया जा सकता है। तभी हम इन सामाजिक बुराइयों के खिलाफ जोरदार अभियान शुरू कर सकते हैं।

लोकतन्त्रात्मक समाजवाद की दिशा में जो कदम उठाए जा रहे हैं, उनकी भी सफलता साक्षरता और प्रौढ़-शिक्षा के कार्यक्रम की सफलता के बगैर सन्दिग्ध है। ग्राम पंचायत और सहकारी भण्डारों की ही बात लीजिए। ग्राम पंचायतों की स्थापना के पीछे जो उद्देश्य थे, क्या उनकी सम्यक् सिद्धि हो पाई है ? क्या ग्राम पंचायतों में चुनाव निष्पक्ष और योग्यता के आधार पर होता है ? क्या वहाँ आज भी साम्प्रदायिकता, जाति भेद आदि का प्राधान्य नहीं है ? और क्या, ग्राम पंचायतों से जिन कार्यों को सम्पन्न करने की उम्मीद बाँधी गई थी, वे कार्य हो रहे हैं ? सहकारिता का आन्दोलन जो वर्तमान महँगाई, मुनाफाखोरी और जमाखोरी की विषम स्थिति में उपभोक्ताओं के लिए तथा अन्य अनेक स्तरों पर कृषकों, मजदूरों आदि के लिए अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है—क्या सम्यक् रूप से चल रहा है ? मैं समझता हूँ कि अधिकांश जनता में सामाजिक जाग्रति का अभाव ही इसके लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। प्रौढ़-शिक्षा के प्रभावी कार्यक्रम द्वारा ही हमारी निश्चेष्टा दूर की जा सकती है।

यद्यपि प्रौढ़-शिक्षा में प्रशिक्षक ही सबसे महत्त्वपूर्ण भाग अदा करता है, तथापि पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियो, फिल्म वगैरह का महत्त्व कम नहीं है। खासकर प्रशिक्षक का कार्य विशिष्ट मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की अपेक्षा करता है। प्रशिक्षक को सिर्फ पेशे के ख्याल से या धनोपार्जन के लिए इस कार्य को नहीं स्वीकार करना चाहिए। सामाजिक पुनर्निर्माण की बलवती इच्छा उसके मन में होनी चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का लेखन, रेडियो के कार्यक्रम का निर्धारण तथा फिल्म की तकनीक ये तीनों चीजें प्रौढ़-शिक्षा की माँगों को दृष्टि में रखकर की जानी चाहिए। यह बड़े खेद की बात है कि प्रकाशकों का ध्यान इस दिशा मे विशेष रूप से नहीं गया है। व्यवसाय की दृष्टि से भी यह एक काफी लाभप्रद क्षेत्र हो सकता है। इससे प्रकाशनों की माँग का एक नया और विराट् क्षेत्र खुलेगा। रेडियो के कार्यक्रम भी हमारी अपेक्षाओं के अनुकूल होने चाहिए।

राष्ट्रीय नव-निर्माण की दिशा में प्रौढ़-शिक्षा के इस बुनियादी महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए हमें सिर्फ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारखानों और बाँधों की जरूरत ही नहीं है—उनके साथ ही, बल्कि उनसे पहले साक्षर और जागरूक जनता की जरूरत है। श्री वी० के० आर० वी० राव के शब्दों में, "निरक्षरता एक प्रकार का बौद्धिक परावलम्बन है और बौद्धिक परावलम्बन उतनी ही बुरी चीज है जितना शारीरिक परावलम्बन। यदि हम इस बौद्धिक परावलम्बन से मुक्ति पा जाएँ, तो फिर हम आर्थिक परावलम्बन से भी पीछा छुड़ाने में सफल हो जाएँगे"।

प्रौढ़-शिक्षा बाल-शिक्षा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण

बच्चों को शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, प्रौढ़ों को उससे भी अधिक समझी जानी चाहिए। बच्चे जब बड़े होंगे और अभिभावकों के हाथ से लेकर उत्तरदायित्वों को अपने कंधों पर लेंगे, तभी उनकी शिक्षा का उपयोग होता है। यह परिवर्तन प्राय: पच्चीस वर्ष से कम की आयु में नहीं हो पाता। अतएव बालकों को दो दशक और किशोरों को एक दशक इसकी प्रतीक्षा में लग जाता है। जो सीखा-सिखाया गया है उसका सुविस्तृत क्षेत्र में समाज को प्रभावित करने वाला उपयोग इससे पहले नहीं हो पाता। तात्कालिक समस्याओं के सुधार को ध्यान में रखते हुए यह बहुत लम्बी अवधि है। सामयिक कठिनाइयों के निवारण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इतने समय तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती।

सामयिक समस्याओं से प्रौढ़ों एवं वयस्कों को ही जूझना पड़ता है और गाड़ी जहाँ अड़ गई है उसे आगे धकेलने के लिए उन्हें ही तत्काल कटिबद्ध होना पड़ता है। इस समाधान में उनका संचित ज्ञान एवं अनुभव ही काम आता है। दूसरों से उपयोगी परामर्श तो कठिनाई से ही मिल जाते हैं क्योंकि वस्तुस्थिति के साथ तालमेल बिठाकर उपयोगी कदम उठाने के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन कर सकने की उतनी क्षमता किसी अन्य में होती है। अतएव अपने हाथों ही रोटी खानी पड़ती है, अपने पैरों ही खड़ा होना और चलना पड़ता है। अपना अनुभव एवं कौशल ही काम आता है।

प्रस्तुत कठिनाइयों का समाधान एवं उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण—दोनों ही आवश्यकताएँ एक-दूसरे के साथ गुँथी रहती हैं एक कदम के बाद दूसरा कदम उठता है। अवरोधों का निराकरण करने और अपेक्षाकृत अच्छी रीति-नीति अपनाने पर ही ऐसा ही कुछ बन पड़ता है जिसके सहारे समुन्नत परिस्थितियों को उपलब्ध कर सकना सम्भव हो सके। यह सब अनायास ही नहीं हो जाता। वर्तमान को उपयुक्त दिशा में मोड़ना-मरोड़ना-ढालना एवं अग्रसर करना पड़ता है। इसके लिए साहस तो चाहिए ही साथ ही सूझ-बूझ की भी आवश्यकता पड़ती है। क्षमता एवं कुशलता के बिना न सूझ-बूझ काम करती है और न मात्र उत्साह, साहस ही सफल हो पाता है। योग्यता का अपना महत्त्व और स्थान है। वस्तुत: सूझ-बूझ उसी के सहारे पनपती है।

सुखी-समुन्नत परिस्थितियाँ प्राप्त करने के लिए जो करनी आवश्यक है, उसकी योग्यता एवं समझदारी सम्पादित करने से ही काम चलता है। यह कैसे मिले ? इसके लिए आकाश से टपकने वाले वरदान जैसी अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए वरन् सोचा जाना चाहिए कि यह क्रमिक प्रयासों द्वारा बूँद-बूँद संचय से ही सम्भव होता है। व्यावहारिक जीवन की सामयिक समस्याओं के समाधान के लिए पग-पग पर सुविस्तृत ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अध्ययन के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। कोई समय था जब सबको फुरसत थी और सत्संग सुलभ था। परामर्श पाने और देने के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ थीं पर आज तो वैसा कुछ रह नहीं गया है। व्यस्तता के इस युग में अधिकारी परामर्श अत्यधिक कठिन है। अनगढ़ लोग ही फालतू घूमते और तथाकथित सत्संग की बकवास करते हुए लोगों को भ्रमग्रस्त करते रहते हैं। ऐसा सत्संग तो कुसंग से भी महँगा पड़ता है।

आज का सत्संग एक ही है—स्वाध्याय। स्वाध्याय का सामान्य अर्थ है—सामयिक समस्याओं का आदर्शवादी आधार पर समाधान कर सकने वाला प्रामाणिक मार्गदर्शन। अनभ्यस्त लोग मानव जीवन की इस महती आवश्यकता का न तो महत्त्व समझते हैं और न उसके लिए उत्साह दिखाते, प्रयत्न करते हैं। फलत: एक भारी बौद्धिक अभाव के बीच उन्हें गुजारा करना पड़ता है। इसकी पूर्ति अभीष्ट विषयों के गहन अध्ययन से ही सम्भव हो सकती है। स्मरण रहे यह अध्ययन उस स्कूली पढ़ाई से भिन्न स्तर का होगा, जो बच्चों को सामान्य ज्ञान कराने के लिए निर्धारित रहता है।

आमतौर से बढ़ती आयु के साथ आजीविका उपार्जन, अभिवर्द्धन की आवश्यकता पड़ती है। प्रौढ़ता के साथ-साथ परिवार की वे जिम्मेदारियाँ भी कंधों पर आती हैं, जिन्हें उन दिनों वयोवृद्ध लोग उठाते थे। जरा-जीर्ण स्थिति में वे कुछ कमा तो पाते नहीं उलटे दवादारू आदि के नये खर्च बढ़ाते हैं, जो पहले नहीं होते थे। इसी प्रकार नई पीढ़ी का विस्तार होता है और पत्नी के साथ-साथ उसके पितृगृह तथा सहेलियों का, बच्चों तथा उनके मित्रों का नया खर्च भी बढ़ जाता है। महँगाई और जीवनयापन की रीति-नीति भी प्राय: बढ़ती ही जाती है। इन कारणों से हर किसी की इच्छा होती है कि आजीविका बढ़े। इसके लिए कोई शार्टकट या पगडंडियाँ ढूँढ़ने से काम नहीं चलता। राजमार्ग अपनाना पड़ता है।

आजीविका अभिवृद्धि का राजमार्ग है—अधिक परिश्रम एवं खर्च में जहाँ भी कटौती सम्भव है, उसे करते रहना। इसके अतिरिक्त एक और भी बड़ी बात यह है कि अधिक आजीविका के लिए अधिक योग्यता चाहिए। इसके अभाव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में मात्र परिश्रम भी अधिक कारगर नहीं होता। अधिक योग्यता वाले अधिक ऊँचे काम कर सकते और कम समय-श्रम में अधिक उपार्जन करते देखे जाते हैं। जबकि योग्यता के अभाव में अधिक श्रम करने पर भी थोड़ी-सी ही अभिवृद्धि हस्तगत होती है। योग्यता के दो आधार हैं—अध्ययन एवं अनुभव। इसके लिए न केवल उत्साही ही वरन् तदनुकूल साधन भी चाहिए। इन साधनों का जुटाना उन विद्यालयों का काम है जो प्रौढ़ों-कार्य संलग्नों के लिए खुलते और उनकी सुविधा के समय चलते हैं।

सभी जानते हैं कि बचपन की स्कूली योग्यता नौकरी दिलाने आदि में काम आती है। ज्ञान उपलब्धि का यह प्रयास अनवरत क्रम से चलते रहना चाहिए। इसे कभी भी बन्द नहीं होने देना चाहिए। सच तो यह है कि यह ज्ञानसम्पादन प्रौढ़ों के लिए और भी अधिक आवश्यक होता है ताकि वे अपने व्यवसाय में अधिक योग्यता प्राप्त कर सकें और अधिक उपार्जन में सक्षम बन सकें। जिसके पास जो काम है उसके लिए और भी ऊँचे काम, ऊँचे स्तर पर करने का द्वार खुला होता है पर यह सब योग्यता वृद्धि के ऊपर ही अवलम्बित है। यह योग्यता अध्ययन ही नहीं क्रियात्मक अनुभव, अभ्यास से ही सम्बन्धित रहती है। इसलिए मात्र घर बैठे पुस्तकें पढ़ते रहने से भी काम नहीं चलता। इसलिए प्रवीण-पारंगतों का मार्गदर्शन तथा अभ्यास का साधन-वातावरण भी चाहिए। यह सब साधन सम्पन्न विद्यालय में ही सुलभ होता है।

प्रगतिशील देशों में स्कूली शिक्षा का जितना प्रबन्ध है उससे अधिक प्रौढ़ों को कामकाजी प्रशिक्षण देने और अधिक उन्नति कर सकने का पथ-प्रशस्त करने वाले विद्यालयों की व्यवस्था रहती है। बच्चों को एक ही समय में भूगोल, गणित, इतिहास, विज्ञान, भाषा आदि के अनेक विषयों की थोड़ी-थोड़ी जानकारी कराई जाती है पर इन प्रौढ़ विद्यालयों में विभिन्न वर्गों के व्यस्त लोगों के लिए उनकी दिशाधारा के अनुरूप अधिक प्रवीण-पारंगत होने वाले विद्यालय चलते हैं। उनमें अनेक विषय नहीं वरन् एक ही प्रसंग की धारा-उपधाराओं का अध्ययन कराया जाता है। लक्ष्य यह रहता है आज की तुलना में कल अधिक कौशल प्राप्त करके, अधिक उन्नति करना एवं अधिक उपार्जन में समर्थ बन सकना सम्भव हो सके। ऐसी शिक्षण संस्थाएँ सरकारी भी होती हैं और गैर सरकारी भी। फीस के आधार पर वे बिना किसी कठिनाई के चलती हैं। अपना खर्चा आप वहन करती हैं, जिन्हें प्रगति के लिए योग्यता बुद्धि की उपयोगिता आवश्यकता का ज्ञान है, वे उन्हें जीवित रखने के लिए अपनी जिम्मेदारी भी उठाते हैं। आवश्यक फीस देकर समुचित लाभ उठाते हैं।

मात्र आजीविका बुद्धि ही एकमात्र आवश्यकता नहीं है। मनुष्य जीवन के साथ अनेक पक्ष जुड़े हुए हैं, वे सभी उच्चस्तरीय ज्ञान के सहारे अधिक अच्छी तरह निभते हैं, जबकि उन प्रसंगों में स्वल्प जानकारी होने के कारण लड़खड़ाते-बिगड़ते रहते हैं। ऐसे कितने ही पक्ष हैं जिनकी प्रत्येक सद्ग्रहस्थ को अपने लिए, परिवार के लिए अधिक अच्छी जानकारी होने पर अधिक सुविधा-सम्वर्द्धन की संभावना रहती है। स्वास्थ्य रक्षा, आहार शासन, दाम्पत्ति जीवन, प्रजनन, शिशु-पोषण, पारिवारिक मनोविज्ञान अर्थ सन्तुलन जैसे कितने ही ऐसे विषय हैं, जिनकी सुविस्तृत जानकारी प्रत्येक सद्ग्रहस्थ को होनी चाहिए। न केवल गृहपति उन जानकारियों से अवगत रहे वरन् घर-परिवार के हर सदस्य को उस ज्ञान का उतना वितरण करते रहें, जितना कि उनके लिए अभीष्ट एवं हजम कर सकने जैसे स्तर का है। इस प्रकार विभिन्न विषयों की समुचित जानकारी रखने वाला परिवार सामान्य आर्थिक स्थिति का होने पर भी अनगढ़ स्तर के सुसम्पन्न परिवारों की तुलना में कहीं अधिक सुखी-समुन्नत, सुव्यवस्थित एवं सुसंस्कृत पाया जाता है। पिछड़ापन मात्र गरीबी की ही देन नहीं है, उसका वास्तविक कारण उपयुक्त ज्ञान का अभाव ही होता है।

मनुष्य का समाज के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। दूसरों के साथ व्यवहार कैसे किया जाय ? इस कला से बहुत कम लोग ही भिज्ञ होते हैं। शिष्टाचार नागरिक कर्तव्य, लोक-व्यवहार, समुचित जानकारी तथा निर्वाह की आदत न होने के कारण व्यक्तित्व अनगढ़, हेय, पिछड़ा हुआ रहता है। ऐसे व्यक्ति असभ्य, असंस्कृत समझे जाते हैं। साथ ही व्यंग्य-उपहास सहते, पग-पग पर ठोंकरे खाते और सहयोग उपलब्ध न कर सकने के कारण गई-गुजरी स्थिति में पड़े रहते हैं।

आजीविका उपार्जन अपनी जगह पर महत्त्वपूर्ण है। पर उसे ही सब कुछ नहीं मान लिया जाना चाहिए। स्वास्थ्य दृष्टिकोण, अर्थ सन्तुलन, लोक-व्यवहार, ग्रहस्थ संचालन के क्षेत्र भी ऐसे हैं जिनके साथ अनेकानेक समस्याओं के समाधान की आवश्यकताएँ जुड़ी हुई हैं। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में ऐसी सम्भावनाएँ भी विद्यमान हैं, जिन पर यदि ध्यान दिया जा सके, सुधारा-सँभाला जा सके तो समझना चाहिए कि प्रगति के वे क्षेत्र भी सुगम हो चले, जिनका महत्त्व सुविधा-सम्वर्द्धन और अर्थ उपार्जन से किसी भी प्रकार कम नहीं है।

इस समस्त परिकर पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि बच्चों को शिक्षा व्यवस्था जितनी अभीष्ट है, उससे कम प्रौढ़ों के लिए भी आवश्यक नहीं है। सच तो यह है कि यह और भी अधिक ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उससे व्यक्ति और समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं का समाधान होता है, जबकि बच्चों से किसी प्रकार की आशा दस-बीस वर्ष बाद ही पूरी किए जाने की अपेक्षा की जा सकती है, उस उपेक्षा में भी एक आशंका यह है कि बच्चे, बड़ों को जिस दिशा धारा में बहते देखेंगे, उसी का अनुसरण करेंगे। भले ही उन्हें स्कूलों में कुछ भी क्यों न पढ़ाया जाता रहा हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बालकों की शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंश स्कूलों में पूरा होता है, इसमें संदेह नहीं। किन्तु यह बात भी भुला नहीं दी जानी चाहिए कि वे मात्र पुस्तकों के आधार पर बनते-ढलते रहे हैं। उनके विकास-निर्माण में घर-परिवार के वातावरण का भी भारी प्रभाव रहता है। यह वातावरण अनुकूल कैसे बने और नई पीढ़ी उपयुक्त स्तर की कैसे बने ? इसके लिए जहाँ उपयुक्त शिक्षण संस्थान एवं पाठ्यक्रम की व्यवस्था बननी चाहिए, वहाँ उस क्षेत्र में भी सत्परम्पराओं का प्रचलन रहना चाहिए, जहाँ वे रहते, पलते और आश्रय पाते हैं और अधिकांश समय गुजारते हैं।

साक्षरता विस्तार एक अपरिहार्य राष्ट्रीय आवश्यकता

पिछली जनगणना के अनुसार अपने देश में ६० प्रतिशत से भी अधिक लोग निरक्षर थे। सरकार द्वारा प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित करने तथा माध्यमिक शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था करने के बाद स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या बढ़ी है। यद्यपि गाँवों में और शहरों में भी सभी बच्चे स्कूल नहीं जा पाते, फिर भी जितने जाते हैं उन्हें देखकर कहा जा सकता है कि लोगों में शिक्षा के प्रति पहले की अपेक्षा रुचि बढ़ी है। किन्तु इतने मात्र से ही अशिक्षा या निरक्षरता के निवारण की ओर से निश्चिन्त नहीं हुआ जा सकता। क्योंकि शिक्षा मात्र बालकों या किशोरों के लिए ही आवश्यक नहीं है। वह प्रौढ़ों के लिए भी उतनी ही आवश्यक है और इस समय प्रौढ़ अशिक्षितों की संख्या स्कूल न जाने वाले बच्चों से भी अधिक है।

अतः अशिक्षित प्रौढ़ों में भी पढ़ने-लिखने और शिक्षा प्राप्त करने की अभिरुचि जगानी आवश्यक है। उनकी यह कहकर उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि उनकी पढ़ने-लिखने की आयु नहीं रही। ऐसे अगणित उदाहरण हैं, जिन्होंने साठ वर्ष की आयु के बाद पढ़ना आरम्भ किया और वे उच्चकोटि के विद्वान बनकर अपने अर्जित ज्ञान से समाज की महती सेवा करने में सफल हुए। इस दृष्टि से निरक्षर वृद्ध व्यक्तियों को भी साक्षर बनाने का प्रयास किया जा सकता है और जिनकी आयु अभी तीस-चालीस वर्ष है, उन्हें तो अभी कम से कम बीस-तीस साल और काम करना है। उन्हें शिक्षित बनाने पर तो और अधिक ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

इस वय के वयस्क और प्रौढ़ व्यक्तियों को शिक्षित बनाना इसलिए भी आवश्यक है कि वास्तव में आज की अनेक समस्याओं से तो उन्हें ही जूझना है। जो बच्चे अभी दस-पन्द्रह वर्ष के हैं, वे पन्द्रह-बीस वर्ष बाद ही इस योग्य हो सकेंगे कि समाज में अपना कोई स्थान बना सकें और अपनी परिपक्व बुद्धि से कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें, जबकि इन दिनों परिस्थितियाँ ऐसी बनती चली जा रही हैं कि इन्हीं दिनों संसार के भाग्य का निर्माण होना है। प्रत्यक्ष और परोक्ष जगत में जो कुछ हलचलें इन दिनों गतिशील हैं, वे इन्हीं दिनों इधर या उधर का निपटारा कर देंगी। संसार जिस तेजी से दौड़ रहा है, उसे देखते हुए यह मानने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि अगले बीस-पच्चीस वर्षों में ही वह अपने जीवन और मरण का प्रश्न निपटा लेगा। अस्तु, इन दिनों जो कुछ भी महत्त्वपूर्ण होना है, किया या कराया जाना है, उसमें उन्हीं लोगों की प्रमुख भूमिका रहेगी जो इन दिनों वयस्क हैं, प्रौढ़ हैं, सक्रिय और समर्थ हैं।

नई पीढ़ी अगले बीस-पच्चीस वर्षों में जाकर समर्थ और सक्रिय हो सकेगी। तब तक तो परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत कुछ सम्पन्न हो चुकेगी। उस स्थिति में नई पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त उत्तरदायित्वों का ही वहन करेगी। इसलिए भी वर्तमान पीढ़ी को इतना सुयोग्य बनाया जाना आवश्यक है कि वह परिवर्तन की इस बेला में अपनी भूमिका समुचित रूप से निभा सके। परिवर्तन की घड़ियाँ इन दिनों इतनी व्यग्र हैं कि नई पीढ़ी के परिपक्व होने तक रुकी नहीं रह सकतीं। स्थिति की विषमता को समझना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि एक-एक पल कितना भारी पड़ रहा है ? महामारी फैलने पर जिसमें जितनी योग्यता होती है और जिसके पास जितने साधन होते हैं, वह उतनी ही योग्यता और साधनों को लेकर विपत्ति से निबटने के लिए जुट पड़ता है। इस दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए कि आज की स्थिति में नई पीढ़ी का इन्तजार करते रहना क्या उचित है ? स्पष्ट ही उत्तर नहीं में मिलेगा और यही आवश्यक प्रतीत होगा कि जो जहाँ है, वह वहीं से आसन्न संकट का समाधान करने के लिए तत्पर हो जाय।

प्रौढ़-शिक्षा को इसी प्रकार आज की और अभी की अनिवार्य आवश्यकता मानकर उसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या की तरह हल करना चाहिए क्योंकि इस शिक्षा का परिणाम कुछ ही समय में सामने आ सकता है, जबकि स्कूल जाने वाले बच्चों की शिक्षा का परिणाम और लाभ प्राप्त करने के लिए दस-पन्द्रह वर्षों से कम इन्तजार नहीं करना पड़ेगा। अतएव वयस्क स्त्री-पुरुषों के लिए प्रौढ़-शिक्षा की योजना तत्काल बनानी चाहिए और उसे तुरन्त कार्यान्वित करना चाहिए।

इसके लिए प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को आगे आना चाहिए तथा समाज का विद्याऋण चुकाने की आवश्यकता अनुभव करनी चाहिए। शिक्षित व्यक्तियों को यह प्रेरणा दी जाय कि हजारों भूखों के बीच बैठकर मिष्ठान तथा पकवान का आनन्द लेना जिस प्रकार निन्दनीय है, उसी प्रकार इस देश में ९० करोड़ जनता में से ६० करोड़ के लगभग निरक्षरों के बीच रहकर शिक्षा का, विद्या का लाभ अकेले उठाते रहना निष्ठुरता का द्योतक है। शास्त्रों में कहा गया है कि कंजूस धनवान, जो अपनी सम्पत्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की एक पाई भी दूसरों के लिए खर्च नहीं करता, वह मरने के बाद गड़े हुए धन पर साँप बनकर बैठता है। उसी प्रकार विद्यादान में कृपणता बरतने वाला व्यक्ति ब्रह्मराक्षस कहलाता है और आत्मा के दरबार में निष्ठुर ठहराया जाता है।

शिक्षित व्यक्ति ब्रह्मराक्षस और निष्ठुरता का कलंक अपने माथे पर न लगने दें और इस कलंक से बचने के लिए विद्यादान करें, अशिक्षितों को शिक्षित बनाएँ। इसी प्रकार अशिक्षितों को समझाया जाना चाहिए कि शिक्षा के बिना ज्ञान के नेत्र नहीं खुलते और निरक्षर व्यक्ति की गणना एक प्रकार के अंधों में ही की जाती है। जो यह सोचते हैं कि पेट भरने को मिल जाता है, फिर पढ़ने से क्या लाभ ? यह तर्क देने वाले इस भ्रम में रहते हैं कि पढ़ने का अर्थ नौकरी करना है। जहाँ-कहीं भी यह भ्रम हो उसे दूर किया जाना चाहिए, इस जड़ता को उखाड़ना चाहिए और समझाया जाना चाहिए कि शिक्षा अन्तःचेतना को विकसित करने की प्रथम सीढ़ी है। निरक्षर व्यक्ति को संसार में विद्यमान अमृत जैसे बहुमूल्य ज्ञान से वंचित रहना पड़ता है। बिना कपड़े पहने, नग्न ही बाहर निकलना जितना लज्जाजनक है, अशिक्षित रहते हुए अपनी बौद्धिक नग्नता का प्रदर्शन करना उससे कम लज्जाजनक नहीं है।

शिक्षितों और अशिक्षतों में यदि इस प्रकार की भावनाएँ जगाई जा सकें, तो हर किसी का ध्यान प्रौढ़-शिक्षा पर केन्द्रित हो सकता है। फिर दोनों पक्ष एक दूसरे को अपने आप ढूँढ़ लेंगे। इस प्रकार प्रौढ़-शिक्षा अभियान का शुभारम्भ करना और उसे गति देनी चाहिए। सर्वप्रथम अपने घर में निकटवर्ती सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक कुशलता के साथ पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाय। शिक्षा की आवश्यकता समझते हुए भी बहुत से लोग संकोच, झिझक और लज्जा अनुभव करने के कारण आनाकानी करते हैं। इस स्थिति में उनके सम्मान की रक्षा करते हुए अनुनय-विनय और प्रेम भरे आग्रह द्वारा घुमा-फिरा कर तैयार कर ही लेना चाहिए।

निरक्षरता को देश, जाति और समाज के माथे पर लगा कलंक समझ कर उसे हटाने-मिटाने के लिए हर जागरूक व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए। इसकी आवश्यकता और महत्त्व समझ कर प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न करे, तो अपना देश शीघ्र ही उन्नत राष्ट्रों की पंक्ति में पहुँच सकता है।

शिक्षा विस्तार के निमित्त नियोजित कई माध्यम

यह तथ्य सौ बार समझा और हजार बार समझाया जाना चाहिए कि मानवी विकास के हर पक्ष को प्रभावित करने वाली उस विद्या की हर किसी के लिए महती आवश्यकता है, जो उसके चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में उत्कृष्टता भर सके। मानवी गरिमा को समझने एवं तद्विषयक जिम्मेदारी को निबाहने के लिए भाव-संवेदना उभार सके, संकल्प शक्ति को जगा सके।

इसके लिए साक्षरता आवश्यक है, क्योंकि परामर्श एवं व्यक्तिगत अनुभव से जीवनोपयोगी अनेकानेक विषयों में से कुछ को ही सीमित मात्रा में जाना जा सकता है। जो बच जाता है, वह इतना अधिक होता है कि उसके लिए आप्तजनों, युग मनीषियों द्वारा विनिर्मित सत्साहित्य का आश्रय लिया जाय। उपयोगी विषयों की बहुलता ही किसी की दूरदर्शिता को बढ़ाती और उसे प्रगति के सन्मार्ग पर चलाती है।

इतने पर भी यह आशंका बनी ही रहेगी कि बड़ी संख्या में लोग साक्षर न बन सकें। उसका महत्त्व समझें और उस हेतु आवश्यक प्रयत्न करें। उन्हें अवकाश न मिले, अभिरुचि न मिले। परिस्थिति ऐसी न बने कि वे साक्षरता की उस सीमा तक पहुँच सकें, जहाँ जीवनदर्शन के साहित्य के मर्म को समझ सकना सम्भव होता है। अड़चनों की सम्भावना से हताश तो नहीं ही होना चाहिए। प्रगति प्रयास जारी रखने चाहिए और जनसमाज को शिक्षित बनाने का लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी, अपने परिवार की आवश्यक शक्ति इस केन्द्र पर केन्द्रित किए रहनी चाहिए। फिर भी इतने समय से भटकाव की खुमारी उतरने में कुछ तो समय लगेगा ही। पतन तो जल्दी होता है, पर प्रगति में समय लगता है। वृक्ष को काटकर एक घण्टे में गिराया जा सकता है, पर उसे रोपने और फलने-फूलने की स्थिति तक पहुँचाने में तो वर्षों का समय लगता ही है, लगेगा भी। तत्काल इस संदर्भ में अभीष्ट प्रतिफल मिलने की अपेक्षा नहीं की जा सकती, पर साथ ही तथ्य यह भी है कि प्रस्तुत हेय परिस्थिति को अधिक दिन बनाए भी नहीं रखा जा सकता। रुग्णता को लम्बे समय तक सहते रहने पर तो प्राण-संकट ही उपस्थित हो सकता है। इसलिए रोग का आक्रमण होने पर तत्काल चिकित्सा की व्यवस्था करनी पड़ती है। जनसमाज का स्तर यदि नैतिक, सामाजिक क्षेत्रों में गया-गुजरा रहा तो तेजी से बदलते विलम्ब करते रहने की बात अब अधिक दिनों नहीं चलती रह सकती। अभाव की पूर्ति एक उपाय से न बन पड़े तो उसके लिए दूसरे साधन अपनाने होंगे। सुधार-परिष्कार का, अभ्युदय-उत्कर्ष का लक्ष्य पूरा करने में शिथिलता तो बरती ही नहीं जा सकती।

शिक्षितों और अशिक्षितों के लिए समान रूप से आवश्यक शालीनता का प्रशिक्षण अधिक सरलता और सफलता के साथ साक्षरता बढ़ाकर स्वाध्याय की प्रवृत्ति जगाने से ही सम्भव है, पर बात ऐसी भी नहीं है कि मात्र लेखनी ही अभीष्ट प्रयोजन की सिद्धि कर पाए और कोई दूसरा आधार-अवलम्बन हो ही नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतिरिक्त उपाय खोजने पर चित्र प्रदर्शन और संगीत-संवेदना के दो और भी उपाय ऐसे हैं, जो शिक्षित अशिक्षित सभी को पतन के गर्त में धकेलते ही नहीं, उत्कर्ष के उच्च शिखर तक पहुँचाने में भी समर्थ हो सकते हैं।

चित्र प्रदर्शन के प्रसंग को सामने लें तो फिल्मों के प्रभाव से प्रभावित होने वाले जनमानस को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यह चित्र का ही चमत्कार है। अब दूरदर्शन भी उस आवश्यकता को पूरा करने लगा है। महामानवों के चित्र इसीलिए घरों-कमरों में टाँगे जाते हैं कि उनके महान व्यक्तित्व की झाँकी बार-बार होती रहे। प्रचार विभाग अपने कार्यों और उद्देश्य की जानकारी जनसाधारण को देने के लिए चित्र-प्रदर्शनियाँ लगाता है। विभिन्न विषयों में मार्गदर्शन एवं पथ-प्रदर्शन करने वाले बड़े साइज के रंगीन चार्ट छपते हैं। उनके आधार पर स्वास्थ्य, सफाई से लेकर अनेक विषयों की जानकारियाँ कराई जाती हैं। स्कूलों में भी भूगोल, इतिहास से सम्बन्धित चित्र टँगे रहते हैं। छोटे बच्चों की पुस्तकों में पाठ्य सामग्री से अधिक स्थान चित्र घेरे हुए होते हैं ताकि बालक को उस दृश्य के माध्यम से तथ्यों को समझने में सुविधा मिले।

उपरोक्त प्रसंगों में से किसका, कहाँ किस प्रकार उपयोग हो सकता है, इसका निर्णय तो चित्रकारों, प्रकाशकों, विक्रेताओं, वितरणकर्ताओं को अपनी शक्ति-सामर्थ्य आँकते हुए ही करना चाहिए। पर कुछ तो अत्यन्त सरल माध्यम ऐसे हैं जो अभी भी, एकाकी भी अपनाए जा सकते हैं और उनका लाभ निरन्तर सम्पर्क क्षेत्र में पहुँचाया जा सकता है। स्लाइड प्रोजेक्टर इसी प्रकार का सरल और सस्ता माध्यम है। उसे अँधेरे जैसे वातावरण में एक छोटे समुदाय में भली प्रकार दिखाया जा सकता है। चित्रों का उद्देश्य और परिचय मौखिक रूप से बताया जाता रहे तो दृश्य और श्रव्य का सम्मिश्रण चल पड़ता है। इस माध्यम के अभ्यास में अभ्यासी कुछ ही दिनों में कुशल वक्ता बन सकता है और गोष्ठियों, समारोहों, आयोजनों के माध्यम से जनसमुदाय का चिन्तन दिशा विशेष में प्रवाहित कर सकता है। यों सिनेमा की तुलना स्लाइड प्रोजेक्टर से नहीं की जा सकती। विपुल सम्पदा में चलने वाले फिल्म उद्योग को विशालकाय मिल-कारखाना माना जाय तो स्लाइड प्रोजेक्टर को चरखा मानना पड़ेगा। विस्तार और प्रभाव का अन्तर रहते हुए भी लघुता की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। हाथों का श्रम अभी भी विशालकाय बिजलीघरों की तुलना में कहीं अधिक उत्पादन करता है, साथ ही सस्ता भी पड़ता है। वे उपकरण मरम्मत करने वाले के घर भी नहीं जाते। हाथ की शक्ति जीवन भर साथ देती है। ऐसा ही कुछ चित्र-प्रदर्शन के सम्बन्ध में भी सोचा जा सकता है। इसी आधार पर उसका कोई उपयोगी माध्यम अपने क्षेत्रीय कार्यक्रम में सम्मिलित किया जा सकता है। इस सन्दर्भ में हमें गंभीरता से सोचना चाहिए और जहाँ जिसे जिस प्रकार कार्यान्वित किया जा सके, उसे उस प्रकार प्रचार के सस्ते, सरल माध्यम के रूप में कार्यान्वित करना चाहिए। संदर्भ में उत्पादकों की बड़ी भूमिका हो सकती है। प्रयोक्ता और खरीददार तो सामान्य स्तर के लोकसेवी भी हो सकते हैं।

दूसरा माध्यम है—संगीत, अभिनय। यों इन दिनों यह माध्यम रिकार्डों, फिल्मों, महँगे संगीत सम्मेलनों ने अपना लिया और उसी समुदाय का एकाधिकार भी बनता जा रहा है। प्राचीनकाल में संगीत कला राजाश्रय में पलती थी। अब उसे मनचले और कामुक प्रवृत्ति वाले अपने संरक्षण में लेते जा रहे हैं। इसी दुर्गति के कारण उससे उत्पन्न होने वाली दुष्प्रवृत्तियों की परिकल्पना करते हुए औरंगजेब ने वाद्य यन्त्रों को नष्ट करा दिया था और गायकों को देश निकाला दे दिया था। पर यह एकांगी निर्धारण रहा। उसके उपयोगी पक्ष भी हैं। नारद से लेकर मीरा, सूर, कबीर, चैतन्य महाप्रभु तक ने इस माध्यम को अपनाया था। मध्यकालीन अधिकांश सन्तों ने अपनी संगीत पर आधारित प्रचार मण्डलियाँ बनाई थीं। इनके माध्यम से हताश और विकृत जनमानस को दिशा देने एवं आशा की ज्योति जगाने में सफलता मिली। शिव का डमरू, कृष्ण की वंशी, नारद की वीणा, सरस्वती की सितार प्रसिद्ध हैं। मन्दिरों की पूजा-आरती अभी भी शंख, घड़ियाल, मृदंग, झाँझ, मँजीरा आदि के सहित सम्पन्न होती है। संकीर्तन व्यवस्था को धार्मिक कर्मकाण्डों जैसी मान्यता मिली हुई है। उसमें संगीत माध्यम ही प्रधान है।

पिछले दिनों जब सिनेमा, टेलीविजन जैसे माध्यमों का संगीत पर एकाधिकार नहीं हुआ था, तब संगीत मण्डलियाँ अपने-अपने क्षेत्र में अपना-अपना काम बड़ी सफलतापूर्वक करती थीं। उनके अपने-अपने ढंग थे। रामलीला, रासलीला, नौटंकी, आल्हा, ढोला, रसिया आदि लोकगीतों, लोकनृत्यों का अस्तित्व बना हुआ था और वह विकसित भी हो रहा था। अब उनके प्रयोग और दर्शक दोनों ही घट गए हैं। इसका प्रधान कारण उत्साह की कमी ही है। यदि भाव-संवेदनाएँ उभारने वाले इस अति प्रभावशाली पक्ष का महत्त्व और माहात्म्य समझा जा सके तो बिखरे हुए देहातों में उस पुरातन संगीत परम्परा को समुचित श्रेय और स्वागत मिल सकता है। विवाह-शादियों में, उत्सव-आयोजनों में, पर्व-त्यौहारों पर अभी भी घरों में निजी रूप से यह व्यवस्था चलती देखी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि रस मरा नहीं है। अस्तित्व मिटा नहीं है। आवश्यकता इस पक्ष को सामयिक बनाने और नये सिरे से सुगठित करने एवं प्राण भरने की है। संगीत-सम्मेलनों, कवि-सम्मेलनों के रूप में गीत, वाद्य माध्यम अपनाते हुए जनजागरण के कार्य में सफलतापूर्वक लम्बा मार्ग पार करते हुए लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्या मण्डली गठन किए बिना, समारोहों की भीड़ जुटाए बिना, कार्यकर्त्ताओं के लिए धन जुटाए बिना, मंच-पण्डाल की शोभा जुटाये बिना भी यह कार्य एकाकी रूप से हो सकता है ? इसका उत्तर 'हाँ' में विश्वासपूर्वक दिया जा सकता है। इसके लिए सिनेमा स्लाइड प्रोजेक्टर की तरह दूसरे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र माध्यम अपनाए जा सकते हैं। वे हैं (१) टेपरिकार्डर (२) लाउडस्पीकर। इन्हें खरीदने में आरम्भिक पूँजी की तरह कुछ तो लागत लगानी ही पड़ेगी, परन्तु आगे के लिए ऐसा कार्य खुल जायगा, जिस पर चिरकाल तक उत्साहपूर्वक चलते रहा जाय। उनके प्रभाव का रसास्वादन स्वयं करते रहा जाय और दूसरों को कराते रहा जाय।

टेपरिकार्डर के लिए भाव-भरे संगीतों के गुच्छक टेप कराए जा सकते हैं। उन्हें एकाकी सम्पर्क साधकर अथवा जितने जहाँ इकट्ठे हो सकें, वहाँ उतने इकट्ठे करके टेप माध्यम से न केवल भाव भरे संगीत एवं प्रेरणाप्रद भाषण भी सुनाए जा सकते हैं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति जनसम्पर्क साधते हुए एक ही दिन में सैकड़ों-हजारों को वह लाभ प्रदान कर सकता है, जो उत्कृष्ट संगीत सुनने एवं मार्मिक मार्गदर्शन करने वाले समारोह आयोजनों में सम्मिलित होकर उठाया जा सकता है। इसमें सहयोगियों को जुटाने एवं सम्मेलन बुलाने के लिए अनेक पेचीदे प्रयोग करने की भी आवश्यकता नहीं रह जाती।

सर्वांगीण उत्कर्ष के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि बनाने के लिए 'गरीबी हटाओ' आन्दोलन की तरह हमें 'शिक्षा बढ़ाओ' का रचनात्मक आन्दोलन भी अभीष्ट उत्साह उत्पन्न कर सकने वाली सीमा तक पहुँचाना पड़ेगा। इसके लिए प्रौढ़-शिक्षा के साथ पुस्तकालय संस्थापन की व्यवस्था तो करनी ही होगी, साथ ही चित्र प्रदर्शन एवं संगीत श्रवण के लिए सुनियोजित व्यवस्था भी बनाए रखनी होगी, ताकि लोकमानस के परिष्कार का प्रगति रथ आगे धकेलने वाले अनेक माध्यमों की सहायता से द्रुतगामी बनाया जा सके।

अध्ययन रुचि का विकास— महत्त्वपूर्ण आवश्यकता

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में शिक्षा का प्रचार बहुत कम था। विदेशी शासन की इस ओर कोई रुचि भी नहीं रही, क्योंकि उन्हें तो पराधीन राष्ट्र की सम्पदा का हरण और नागरिकों के श्रम का शोषण कर अपने हितों की पूर्ति करना था। इसलिए उन्होंने शिक्षा प्रचार पर उतना ही ध्यान दिया, जितना कि वे लाभदायक समझते थे। प्रसिद्ध है कि अँग्रेजों ने भारत में शिक्षण-व्यवस्था का ढाँचा इस प्रकार खड़ा किया कि उन्हें अपने कार्यालयों में काम करने के लिए सस्ते क्लर्क मिलते रहें। उस समय निरक्षरता का रोग इतना फैला हुआ था कि साधारण पढ़े-लिखों को भी बहुत योग्य समझा जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र के कर्णधारों का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक भी था फलतः शिक्षा प्रसार के कई कार्यक्रम बनाए गए। जनसाधारण में भी शिक्षा के प्रति अभिरुचि जाग्रत हुई और परिणामस्वरूप २० वर्षों में ही साक्षरता की दर दूनी हो गई।

व्यक्तित्व का विकास, विचारशीलता का अर्जन इस दृष्टि से एकदम अलग बात है और शिक्षा पूरी कर लेना अलग बात है। कम पढ़े-लिखे व्यक्ति भी स्वतन्त्र प्रयासों से तथाकथित शिक्षितों की अपेक्षा अधिक योग्यता सम्पन्न बन जाते हैं। वह केवल अध्ययन का रास्ता अपनाकर। सूक्ष्म दृष्टि से अपने आस-पास के वातावरण को देखने, समझने और उससे सीखने की प्रक्रिया को भी अध्ययन कहते हैं। किन्तु अध्ययन का सरल प्रकार ज्ञानराशि से—अच्छी पुस्तकों से सम्बन्ध बनाए रखने के रूप में आता है। इस प्रकार वातावरण तथा परिस्थितियों में अध्ययन की क्षमता भी अर्जित की जा सकती है। लेकिन शिक्षित व्यक्तियों को प्रायः इस ओर से उदासीन ही देखा जाता है। नौकरी प्राप्त कर लेना ही उनकी दृष्टि में शिक्षा की सबसे बड़ी सार्थकता और उसकी सन्तोष करने योग्य उपयोगिता है। यही कारण है कि शिक्षित व्यक्ति इस संकुचित धारणा के कारण व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं को भी सीमित-संकुचित ही बनाए रखते हैं और बौद्धिक दृष्टि से पंगु ही बने रहते हैं।

अपने देश में शिक्षा का प्रचार होने के बावजूद भी पिछड़ापन ज्यों का त्यों बना हुआ है, उसका कारण यही है कि स्कूल छोड़ने के बाद युवकों की, पढ़े-लिखे व्यक्तियों की मानसिकता संस्कारित होने से छूट जाती है। विदेशों में लोग स्कूल छोड़ने के बाद भी अपने मानसिक परिष्कार के लिए ज्ञान के स्रोतों से नियमित सम्पर्क बनाए रहते हैं। उन्हें नई-नई बातों की जानकारी मिलती रहती है। साधारण स्थिति के व्यक्ति भी उनसे लाभ उठाते हैं और व्यक्तिगत उन्नति के साथ राष्ट्र की प्रगति में भी सहयोग देते हैं। जिन व्यक्तियों के बारे में हम सोच भी नहीं सकते, वैसे व्यक्तियों ने विदेशों में बड़े-बड़े आविष्कार किए हैं। ड्रायवर, मजदूर, जूते सीने वाले, दर्जी और कुलियों जैसे व्यक्तियों ने विदेशों में ऐसे-ऐसे उपाय खोज निकाले और यन्त्र बना लिए, जिन्हें देखकर दाँतों तले अँगुली दबा लेनी पड़ी।

यह कैसे सम्भव हो सका। मात्र ज्ञानसम्पदा से सम्पर्क बनाए रहने पर। ज्ञान कोई ऐसी उपलब्धि नहीं है जिसे एक सीमा तक प्राप्त कर लेने के बाद सब कुछ जान लेने का सन्तोष किया जा सके। फिर विद्यालयों में तो किसी विषय की मात्र प्रारम्भिक जानकारी ही दी जाती है। उसमें और न जोड़ने पर वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है जैसी कि छोटी-सी पूँजी लेकर कोई व्यवसाय आरम्भ करने वाला व्यवसायी जो कि अपनी पूँजी बढ़ाने की बिल्कुल भी चिन्ता न करे। किसी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए पास की पूँजी के विनियोग और उसमें अभिवृद्धि दोनों ही आवश्यक हैं, उसी प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्ध ज्ञान के उपयोग और उसमें निरन्तर नया जोड़ते रहने की वृत्ति अपनाकर जीवन व्यवसाय में सफल हुआ जा सकता है। व्यापार, व्यवसाय में लगाई जाने वाली पूँजी तो घाटा होने पर कम हो सकती है, किन्तु ज्ञान सम्पदा के साथ—'ज्यों-ज्यों खर्चे त्यों बढ़े' वाली विशेष सुविधा जुड़ी हुई है। इसमें नुकसान तभी होता है जब इसे न बढ़ाने का प्रयास किया जाय और न ही उसका कोई उपयोग किया जाय। उपयोग में न आया हुआ अथवा प्राप्त में सन्तोष किया हुआ ज्ञान विस्मृति के गर्त में गिरकर नष्ट हो जाता है।

इस सम्पदा को बढ़ाने, अपनी योग्यताओं को विकसित और क्षमताओं को परिमार्जित करने का एक ही उपाय है—अध्ययन की वृत्ति। व्यक्तिगत रूप से किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों को बहुत पढ़ते-लिखते भले ही देखा जाय परन्तु—समूचे राष्ट्र के सन्दर्भ में देखें तो स्थिति बड़ी ही शोचनीय नजर आती है। दूसरे देशों से तुलना करें तब तो और भी संकोच होता है कि किस आधार पर हम अपने देश से पिछड़ापन हटाने और राष्ट्रीय जीवन का स्तर ऊँचा उठाने की आशा करें।

रूस की जनसंख्या भारत की जनसंख्या के लगभग एक तिहाई है परन्तु वहाँ के लोगों की अध्ययन प्रकृति के आँकड़े एकत्रित किये जाएँ तो प्रतीत होगा कि वहाँ के लोग वर्ष भर में उतना पढ़ लेते हैं जितना कि हमारे देशवासी दस वर्षों में मिलकर नहीं पढ़ पाते। एक विज्ञप्ति के अनुसार रूस में ८७०० समाचार-पत्र प्रकाशित होते हैं, जिनकी कुल वितरण संख्या १५ करोड़ है। वहाँ सर्वाधिक प्रसार संख्या वाले समाचार-पत्रों में प्रावदा प्रमुख है, जिसकी एक करोड़ प्रतियाँ छपती हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ ६३६७ पत्रिकाएँ छपती हैं, जिनकी लगभग १७ करोड़ प्रतियाँ वितरित होती हैं। जबकि हमारे देश में ८८९ दैनिक, ३ हजार साप्ताहिक तथा ७ हजार अन्य मासिक, पाक्षिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। इन पत्रों में से जिनकी प्रसार संख्या सबसे अधिक है उनकी प्रसार संख्या मात्र दो-ढाई लाख ही रही है।

यह तो पत्र-पत्रिकाओं की बात हुई। विदशों में किसी भी पुस्तक की पाँच-सात लाख प्रतियाँ आसानी से खरीद ली जाती हैं, जबकि अपने देश में अधिकांशत: दो-दो हजार के संस्करण छपते हैं और वे मुश्किल से बिकते हैं। किसी पुस्तक की लोकप्रियता चर्चित भी होती है तो उसकी बिक्री चालीस से पचास हजार तक ही होती है। ये आँकड़े बताते हैं कि आम भारतीय जनता में पढ़ने की, ज्ञान प्राप्त करने की रुचि का कितना अभाव है। विदेशों की तुलना में तो हमारे यहाँ कुछ भी नहीं पढ़ा जाता, जबकि सारे संसार की जनसंख्या का छठवाँ भाग हमारे देश की जनसंख्या है। अमेरिका और ब्रिटेन में कुल मिलाकर जितने लोग बसते हैं, उतने लोग यहाँ शिक्षित हैं फिर भी उन देशों की तुलना में यहाँ रत्ती भर भी पुस्तक-पत्रिकाएँ नहीं पढ़ी जातीं।

अध्ययन रुचि का अभाव शिक्षित व्यक्ति को नये ज्ञान से असम्बद्ध ही रखता है। परिणामस्वरूप कहाँ क्या हो रहा है ? इसका किसी को पता ही नहीं चल पाता। नई जानकारियों और नई सूचनाओं से अनभिज्ञ रहने के कारण होने वाली क्षति को तो किसी प्रकार सहन भी किया जा सकता है परन्तु सत्साहित्य से सम्पर्क न होने के कारण व्यक्तित्व की जो हानि होती है, उसकी पूर्ति किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती है। पेड़-पौधों के पोषण के लिए खाद, पानी आवश्यक है। उन्हें प्राप्त कर पेड़-पौधे फलते और फूलते हैं किन्तु उनकी जड़ों को यदि बढ़ने से रोक दिया जाय तो देवदारू के लम्बे पेड़ भी गेंदे और गुलाब के पौधे सरीखे जितने रह जाते हैं। ज्ञान वह आधार है जिस पर मनुष्य की जड़ें जमती और गहरी उतरती हैं। उन्हें आगे बढ़ने से रोकने का अर्थ है ऐसे अवरोध खड़े कर देना, जो जड़ों को गहराई में न जाने दे। ज्ञान के सम्पर्क की अवज्ञा करना-आगे बढ़ने का मार्ग न खोजना जड़ों को बढ़ने से स्वत: रोक देने जैसा है ? और यही कारण है कि शिक्षित व्यक्ति पढ़-लिख लेने के बावजूद भी यथास्थिति में ही बने रहते हैं और अपने व्यक्तित्व को ऊँचा नहीं उठने देते। जड़ें जब गहराई में नहीं जाएँगी, तो पेड़-पौधों का विकास स्वत: ही रुक जायगा। ज्ञान यदि प्राप्त नहीं किया जायगा तो व्यक्तित्व का क्षितिज अपने आप ही सिकुड़ जायगा।

व्यक्तित्व को पंगु और लुंज-पुंज दशा में ही रखे छोड़ना किसी की मात्र व्यक्तिगत क्षति ही नहीं है। कम शिक्षित लोग प्राय: अधिक शिक्षितों का ही अनुकरण करते हैं। छोटी स्थिति और निम्न वर्ग के व्यक्ति अपने से अच्छी स्थिति तथा उच्च वर्ग के लोगों को ही अपना आदर्श मानते हैं। जो गलतियाँ उनसे होती हैं, उन्हें वे भी करने लगते हैं और जो पद-चिह्न उनसे छूटते हैं उन्हीं पद-चिह्नों पर वे चलने लगते हैं, इस प्रकार समर्थ और प्रतिनिधि वर्ग की बुराइयों, कमियों का प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है। पढ़े-लिखे और शिक्षित व्यक्ति यदि व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से कोई आदर्श उपस्थित नहीं कर पाते, तो साधारणजन भी उस ओर से उदासीन ही रहता है, शिक्षितों में जो पिछड़ापन दिखाई देता है—अशिक्षित भी उसी में शान समझते हैं। इस प्रकार सारे समाज की हानि होती है। इसलिए शिक्षित व्यक्तियों को चाहिए कि वे मात्र डिग्री लेकर ही कोई बड़ी उपलब्धि प्राप्त करने का सन्तोष न कर लें वरन् प्राप्त की गई शिक्षा को एक दीपक समझें, जिसकी रोशनी में आगे बढ़ते रहना है। अपनी ज्ञानसम्पदा को बढ़ाते चलें और उस सम्पदा के माध्यम से व्यक्तित्व को समृद्ध, समर्थ व सम्पन्न बनाकर एक आदर्श प्रस्तुत करें। एक ऐसा आदर्श जिसे देखकर अन्य व्यक्तियों में भी व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने की ललक सहज ही जागने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रौढ़-शिक्षा का महत्त्व समझा जाय और उस पर जोर दिया जाय

अमेरिका में बालक, किशोर और युवक विद्यार्थियों की अपेक्षा उन विद्यार्थियों की संख्या कहीं अधिक है, जो गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर चुके हैं, कई-कई बच्चों के माँ-बाप हैं और जिन्हें आजीविका उपार्जन में व्यस्त रहना पड़ता है; फिर भी वे नियमित रूप से क्रमबद्ध शिक्षा प्राप्त करने में संलग्न हैं।

इन प्रौढ़ शिक्षार्थियों की संख्या इन दिनों ३ करोड़ है अर्थात उस देश के प्रत्येक चार व्यक्तियों में से एक प्रौढ़ शिक्षा प्राप्त कर रहा है। यह प्रौढ़ शिक्षा भारत जैसी नहीं है, जिसे निरक्षरों को साक्षर बनाने के रूप में जाना जाता है, यह लोग हाईस्कूल या कॉलेज की सामान्य कक्षाएँ तो अपने विद्यार्थी काल में ही पूरा कर चुके होते हैं। प्रौढ़ावस्था में तो वे अपनी रुचि के विषयों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में संलग्न रहते हैं, यह पढ़ाई यों आजीविका उपार्जन में भी सहायक होती है, पर उसका लक्ष्य प्रथम रूप में ज्ञानवृद्धि ही होता है। ज्ञानपिपासा को भी उस देश में भूख, प्यास, निद्रा, विनोद जैसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में ही गिना जाता है और उसकी पूर्ति के लिए प्रत्येक व्यक्ति प्राय: आजीवन प्रयत्नशील रहता है। यह एक शौक है—जिसमें विनोद और ज्ञानवृद्धि का दुहरा लाभ मिलता है। कुछ वर्ष पूर्व प्रौढ़ शिक्षार्थी ढाई करोड़ थे, पर अब वे ३ करोड़ हो गए हैं और आगे वह संख्या और भी अधिक बढ़ने की बात को ध्यान में रखते हुए शिक्षण संस्थाओं के विकास की योजना बनाई जा रही है, अकेले लॉन्स एंजेल्स नगर में प्रौढ़ वर्ग की रात्रि पाठशालाओं की उपस्थिति, सामान्य विद्यालयों के छात्रों की तुलना में ड्यौढ़ी थी।

शिकागो विश्वविद्यालय के निर्देशक यूजीन वैल्डन ने अपने एक प्रतिवेदन में कहा है—अमेरिकी नागरिक यह अनुभव करते हैं कि शिक्षण प्रक्रिया आजीवन चालू रहने योग्य एक प्रक्रिया है। यह कला, वाणिज्य और विज्ञान के क्षेत्र में तो इसलिए भी आवश्यक है कि नये अनुसंधानों के कारण पुराने तथ्य पिछड़ जाते हैं और नवीन शोधों से लाभ उठाने के लिए नये निष्कर्ष आवश्यक होते हैं। खेल, नृत्य, पर्यटन, संगीत, सामान्य ज्ञान के सम्बन्ध में भी सर्वसाधारण को गहरी रुचि है। स्त्रियाँ दाम्पत्य जीवन के हास-विलास, वेश विन्यास, शिशुपालन आदि विषयों के ऊँचे, अधिक ऊँचे कोर्स पूरे करती रहती हैं।

न्यूआलिर्यन्स (लुईजियैना) के अवकाश प्राप्त नाविक ८१ वर्षीय लोकस टकरे ने दर्शनशास्त्र की आरम्भिक कक्षा में अपना नाम लिखाया है और अब वे छटी कक्षा में पढ़ रहे हैं। इस प्रकार के कदम उठाना भारत में आश्चर्यजनक माना जाता है क्योंकि यहाँ बड़ी उम्र में स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का प्रचलन नहीं है, पर अमेरिका में ऐसी बात नहीं है। वहाँ यह एक बिल्कुल सामान्य बात है। छोटी उम्र के लड़के भी खेल-कूद पसन्द करते हैं और बड़ी उम्र वालों को भी इसमें रुचि रखने पर कोई रोक नहीं है। ठीक उसी प्रकार क्या बड़ी उम्र क्या छोटी उम्र इसमें नियमित रूप से विद्या पढ़ने में कोई अन्तर नहीं आता ।

अमेरिका में प्रौढ़शिक्षा नाम नहीं दिया गया है वरन् उसके लिए 'निरन्तर चालू रहने वाली शिक्षा' कह कर पुकारा जाता है। सरकारी योजनाओं में उसका उल्लेख इसी नाम से रहता है। शिक्षा विभाग का यह एक बहुत बड़ा कार्य है। कम से कम ३०० कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्रौढ़शिक्षा की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत छोटे-बड़े अनेक पाठ्यक्रम निर्धारित हैं। सेन्ट लुई विश्वविद्यालय द्वारा ८० पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं, जिनमें एक 'आज की दुनिया में मनुष्य और ईश्वर का ताल मेल' जैसा विषय भी सम्मिलित है। वाशिंगटन विश्वविद्यालय, सेन्ट लुई—मिसूरी में उन लोगों की शिक्षा व्यवस्था भी है जो रोज कुआँ खोदते, रोज पानी पीते हैं। जिनकी आजीविका निश्चित नहीं अथवा कम है। वे अपनी प्रौढ़-शिक्षा के साथ-साथ मजदूरी भी प्राप्त कर लेते हैं। और शिक्षाकाल को स्वावलम्बी बनकर पूरा कर लेते हैं। फ्लोरिडा विश्वविद्यालय ने ऐसे पाठ्यक्रम अधिक अपनाए हैं। जिनके सहारे मनुष्य अधिक विनोदी बन सके और हँसता-हँसाता रह सके। इनमें एक जादूगरी, संगीत, नृत्य, अभिनय एवं विदूषक के पाठ्यक्रम भी सम्मिलित हैं।

कैलोग, मिशिगन, जौर्जिया, ओक्ला, हीमा, नेबास्का, न्यूहैम्पशर, इलिनीया, इण्डियाना विश्वविद्यालयों ने प्रौढ़-शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से आने वालों के लिए छात्रावास भी बनाए हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जनता की बढ़ती हुई माँग पूरा करने के प्रति प्राय: प्रतिवर्ष नये कम्युनिटी कॉलेजों की स्थापना होते चलने का सिलसिला बँध गया है। सम्भवत: यह संख्या अगले दिनों और भी तेज करनी पड़ेगी।

वाल्टीमूर, मेरीलेण्ड के कम्युनिटी कॉलेज ने अधिक आयु के लोगों को अधिक प्रोत्साहन देने की दृष्टि से यह नियम बनाया है कि ६५ वर्ष से अधिक आयु के लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी और उन्हें शिक्षा शुल्क न देना पड़ेगा। कुछ ऐसे भी स्कूल हैं, जो केवल छुट्टियों के दिनों में ही खुलते हैं ताकि अधिक व्यस्त रहने वाले लोग उन्हीं सुविधा के दिनों में कुछ न कुछ सीख सकें। सरकार और व्यापारिक संस्थानों द्वारा यह परामर्श दिया जाता रहता है कि किस उद्योग में मन्दी आने से श्रमिकों की छटनी करनी पड़ेगी और किस धन्धे का विकास होने से उनमें नई भर्ती की जरूरत पड़ेगी। शिक्षित उद्योगों के श्रमिक समय से पूर्व शिक्षा प्राप्त करके नये उद्योगों के लिए उपयुक्त बन सकें और उनका स्थानान्तर करके ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधाजनक पग उठा लिए जाएँ, इसके लिए उन क्षेत्रों में नये-नये पाठ्यक्रम चालू कर दिए जाते हैं। इससे छटनी और भर्ती का सहज संतुलन बन जाता है और किसी प्रकार की उखाड़-पछाड़ नहीं करनी पड़ती।

नारी-शिक्षा के लिए अधिक प्रयत्न किए जाएँ

गृहस्थी को सुचारु रूप से चलाने के लिए गृहिणी का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। महिला जब तक निरक्षर रहेगी, वह कहीं से कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेगी। जो बचपन से अपने सुसंस्कृत परिवार में पली हो व आपसी व्यवहार तथा वातावरण से बहुत कुछ सीख गई हो वह बात दूसरी है। ऐसी भी बहुत-सी महिलाएँ होती हैं, जो पढ़ी-लिखी कुछ भी नहीं किन्तु उन्होंने इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि पढ़ी महिलाओं से भी वे आगे निकल जाती हैं।

महिलाओं के शिक्षित होने का तात्पर्य स्कूली शिक्षा से ही नहीं है। स्कूलों में भी लड़कियों के चरित्र का उचित विकास नहीं किया जाता और न उन्हें कोई गृहस्थी सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। स्कूलों में पढ़ना भी आवश्यक है तथा साथ ही साथ उनके गुणों के विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। लड़कियों के लिए ऐसे स्कूलों की व्यवस्था की जानी चाहिए, जहाँ उन्हें गृह व्यवस्था सम्बन्धी हर पहलू पर सिखाया जाय।

आज की कन्या कल की माँ है, जिसे एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व सँभालना है। देश को सुयोग्य नागरिक देकर अपना कर्तव्य निभाना है। शादी के तुरन्त बाद ही उसको घर का सभी कार्य सँभालना पड़ता है तथा एक महान जिम्मेदारी निभाने को नये गृह में प्रवेश करती है। वहाँ हर एक कार्य को सोच-समझ कर करना पड़ता है। घर को स्वर्ग बनाने की महान जिम्मेदारी भी उसी की बुद्धि पर निर्भर करती है।

अक्षर ज्ञान के अभाव में वह कुछ पढ़-लिख नहीं सकती। यदि उसने बचपन में कुछ नहीं सीखा है और शिक्षित है तो स्वाध्याय द्वारा वह अन्य गुण प्राप्त कर लेगी। पति, पुत्र, सास, ससुर से कैसे व्यवहार किया जाय, घर को किस तरीके से सजाना चाहिए आदि ? कई बातें न जानने पर भी स्वाध्याय द्वारा वह इतने गुण प्राप्त कर सकती है जिनका अब तक अभाव रहा। यदि वह अशिक्षित है तो पुस्तकें पढ़ना लिखना तो दूर रहा, वह यह भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेगी कि उसके ऊपर क्या-क्या महान जिम्मेदारियाँ हैं और कैसे उन्हें निभाए। ऐसी स्थिति में महिलाओं का शिक्षित होना तो इतना आवश्यक है जैसे दीपक को तेल।

बच्चे के भावी निर्माण का उत्तरदायित्व, घर की व्यवस्था, अतिथि सत्कार, परस्पर शिष्टाचार, सम्बन्ध आरोग्य ज्ञान, हिसाब-किताब जैसे अनेक छोटी-छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण बातें ऐसी है जिनका ज्ञान न होने से कितनी ही बड़ी-बड़ी मुसीबतें सामने आ खड़ी होती हैं। ये अधिकांश महिलाओं की बुद्धि पर ही निर्भर करती हैं। हर क्षेत्र में महिलाओं का अधिक हाथ रहता है संसार के प्रायः सभी महापुरुष सुयोग्य नारियों के हाथों में ही पल कर आए हैं।

समाज का जो विकृत स्वरूप आज हमारे सामने है, इसके लिए किसी एक को दोषी नहीं ठहरा सकते। आज की युवा पीढ़ी को यदि बचपन से ही परोपकार, दया, त्याग और देश प्रेम की शिक्षा दी जाती तो उनको वैसा ही कार्य करने की सूझती। किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य है कि पहले नारी शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें घर की चहारदीवारी में ही बन्द रखा। परिणामस्वरूप वे कुछ भी शिक्षा ग्रहण न कर सकीं और न अपनी सन्तान को कुछ शिक्षा दे सकीं। आज का हर व्यक्ति अपने ही स्वार्थ में डूबा हुआ है। अपने लाभ से दूसरों का गला घोंटने में भी नहीं चूकता। देश सेवा तक तो बात ही नहीं पहुँचती। इसका एक बहुत बड़ा कारण अयोग्य अशिक्षित और कुसंस्कारी माताएँ भी हैं।

पौधा कोई भी क्यों न हो उसे उपयुक्त भूमि व जल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्यक्तित्व के विकास के लिए माता का सहयोग अपेक्षित है। माता अपने आंतरिक संस्कारों को बालक के जन्म से ही पर्याप्त मात्रा में उनके मन, मस्तिष्क व हृदय में भर देती है। बच्चे की प्रकृति का आधे से अधिक भाग उसके जन्म से पूर्व ही बन चुका है। यदि माता सुसंस्कारी, सुशिक्षित एवं सुयोग्य है तो उसकी सन्तान भी वैसी ही होगी। माता यदि अनपढ़, गँवार हुई तो सन्तान भी वैसी ही होगी।

भारत गाँवों का ही देश है। आज अस्सी प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जो गाँवों में रहते हैं और वहाँ की महिलाएँ शिक्षा, सभ्यता से कोसों दूर हैं। गाँव की महिलाएँ अपने बच्चों को पढ़ाने के बजाय बचपन से ही काम कराने लग जाती हैं। छोटी उम्र में अधिक काम कराने व उचित पौष्टिक आहार न मिलने से बच्चों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। जैसे-तैसे जीवन को एक बोझ की तरह ढोकर जैसे आये थे वैसे ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। अमूल्य मानव जीवन की कीमत तथा सही उद्देश्य वे नहीं जान पाते। इसका मुख्य कारण है, गाँवों में स्त्री शिक्षा का अभाव। यदि महिलाएँ शिक्षित होंगी, अपना कर्तव्य समझेंगी तो वे अपनी सन्तान को वैसा योग्य बनाकर देश की आवश्यकता को पूरी करेंगी।

गृहिणियों में शिक्षा के अभाव से उसमें पाक विज्ञान, शिशु पालन, पारस्परिक व्यवहार आदि का उचित ज्ञान न होने से वह कितनी ही बार ससुराल में पति व अन्य सदस्यों द्वारा ठुकराई जाती है। यही नहीं कभी-कभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उसे पति व बच्चों से भी अलग हो जाना पड़ता है और उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है। अपनी आजीविका के लिए उसे कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन कठिनाइयों का वर्णन किया जाय तो हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता है।

शिशु-पालन कोई साधारण कार्य नहीं है। नन्हें से बालक का शरीर अत्यन्त कोमल होता है, जन्म के समय वह सर्वथा पराधीन होता है। उसकी भली प्रकार से साज-सँभाल करने, उठाने, रखने व उचित पौष्टिक आहार देने में अत्यन्त सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। यदि इन बरती जाने वाली सावधानियों का उसे ज्ञान नहीं है, तो बहुत बड़े खतरे भी मोल लेने पड़ जाते हैं, जिनके कारण जिन्दगी भर कष्ट उठाना पड़ता है। बच्चे का गर्भावस्था से ही भावी निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। माता को शरीरशास्त्र, आरोग्यशास्त्र, आहारशास्त्र, मनोविज्ञानशास्त्र आदि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। जिनकी पूर्ति शिक्षा के अभाव में गँवार महिलाएँ नहीं कर सकतीं।

गृह-व्यवस्था भी छोटा कार्य नहीं है। गृह-व्यवस्था के भी उतने ही विभाग होते हैं। जितने राज्य सरकार के होते हैं। शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिये तेज बुद्धि वाले ही कार्य कर सकते हैं। काम छोटा हो या बड़ा, सुविकसित मस्तिष्क की हर जगह आवश्यकता होती है। बिना सोचे-विचारे जो कार्य होगा उससे अव्यवस्था ही फैलेगी। घर के छोटे-छोटे कार्यों में होने वाले नुकसान पर भी यदि ध्यान जाय तो वह साल के अन्त में बहुत हो जाता है। इसी स्थिति की एक सुयोग्य गृहणी के साथ तुलना की जाय तो पता चलेगा कि उसने कितनी होशियारी व किफायतसारी से परिवार का बजट बनाने व बिगाड़ने में सहयोग दिया है।

नारी को गृहलक्ष्मी बताया गया है। नारी यदि सुविकसित, सुशिक्षित, सुसंस्कृत हो तो वह अपने पति के लिए, सन्तान के लिए, परिवार के लिए व स्वयं अपने लिए भी एक वरदान है। शरीर का निर्माण तो आहार-विहार से भी हो सकता है किन्तु व्यक्ति की मनोभूमि का निर्माण व विकास, जिस पर सर्वतोमुखी उन्नति-अवलम्बित है, आदर्श नारी के समुचित सहयोग बिना सम्भव नहीं। इन कार्यों को अध्यापक व उपदेशक भी पूर्ण नहीं कर सकते क्योंकि बालक अपनी आदतें व संस्कार माता के गर्भ से ही लेकर पैदा होता है।

किसी परिवार, समाज, देश एवं राष्ट्र की उन्नति तभी सम्भव है जब महिलाओं में शिक्षा, उद्योग, परिश्रम जैसे गुणों का विकास हो। महाराणा प्रताप, गाँधीजी व शिवाजी आदि अनेक महान व्यक्तियों की वीरता का श्रेय उनकी माताओं व पत्नियों को ही दिया जाता है। पुरुष को आगे बढ़ाने में नारी का अधिक हाथ रहता है। माता य पत्नी किसी भी रूप में उसे सहयोग अवश्य देती है।

गाड़ी को सुचारू रूप से चलाने के लिए उनके दोनों पहियों का सुदृढ़ होना आवश्यक है। यदि एक भी पहिया कमजोर रहा तो गाड़ी लड़खड़ा जाएगी! इसी प्रकार समाज रूपी रथ को चलाने के लिए दोनों पहिये स्त्री-पुरुष का सुयोग्य होना आवश्यक है। एक ही पहिए का सुधार करते रहे तो वह गाड़ी कभी चल ही नहीं सकती। नारी का शिक्षित होना हर दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

समाज, परिवार एवं देश को खुशी एवं सम्पन्न बनाने के लिए महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं व्यवसाय के लिए अभी जो राजनीतिक प्रयत्न हो रहे हैं वे नगण्य से हैं। वे केवल शहरों तक सीमित हैं। उनका लाभ व खर्च सम्पन्न परिवार ही उठा सकते हैं। भारत एक गाँव प्रधान देश है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए गाँवों में भी महिला शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए, महिलाओं में यह सीखने की प्रवृत्ति न हो तो उन्हें इनका महत्त्व समझा कर सीखने को उत्सुक करना चाहिए।

यदि हम अपने समाज व देश की उन्नति चाहते हैं तो उसके लिये यह आवश्यक है कि समाज के आधे अंग की उन्नति के ही प्रयत्न किये जाएँ। इसे प्रगति नहीं कह सकते। विभिन्न प्रयासों से यह कोशिश करनी चाहिये कि प्रत्येक महिला सुशिक्षित हो जाय। समग्र शिक्षा को अपने जीवन में उतार कर कार्यान्वित करें। घर-घर को स्वर्ग बना दें और हर मनुष्य देवता बन जाय, तब यही संसार स्वर्ग सदृश दीखने लगेगा। तभी महिला एक सच्ची गृहलक्ष्मी कहाने योग्य हो जाएगी।

बालक का प्रथम क्रीड़ास्थल माता की गोद ही है। वह जिस आवाहन की अनुभूति करता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। जननी के स्नेह, ममत्व एवं सौहार्द्र से अनुप्राणित बालक उसके आदेश को बड़ी तत्परता से मानता है। माता के आदेश पालन और अनुकरण में उसे सुख मिलता है। यों तो बच्चों परिवार के अन्य लोगों से भी घुलता-मिलता है परन्तु माता जैसी घनिष्टता किसी से भी स्थापित नहीं हो पाती। माता ही उसका प्रथम गुरु है और माता ही प्रथम पाठशाला है।

माँ बालक में सुसंस्कार और सद्वृत्तियाँ जगाने का कार्य तभी कर सकती है, जबकि वह स्वयं भी शिक्षित हो। अशिक्षित माँ के बालक कितने सद्गुणी बनेंगे—यह कहा नहीं जा सकता। विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महापुरुष हुए हैं उनके निर्माण और उत्थान में उनकी माता का प्रथम हाथ रहा है।

शास्त्रों में माता को बालक का प्रथम गुरु कहा गया है, इसके पीछे भी यही तथ्य अन्तर्निहित है कि माता ही सर्वप्रथम उसे आचार-व्यवहार की शिक्षा देती है तथा संसार की विविध वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कराती है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि पाँच वर्ष तक बालक का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो व्यक्तित्व और रुचि-रुझाव विकसित हो जाते हैं, आगे के जीवन में वही प्रस्फुरित होते हैं। प्रारम्भिक पाँच-छह वर्षों तक बालक पाठशाला तो जाता नहीं, अतएव माता के समीप्य में ही उसका विकास होता है। विचारवान माताएँ बालकों के मन में सद्विचार जगाने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह के बीज भी इसी आयु में ही बालकों के अन्दर रोप देती हैं।

बालक जैसे साथियों के मध्य रहता है तथा जैसी पुस्तकें पढ़ता है, वैसा ही प्रभाव इस पर पड़ता है। शिक्षित माता ही साथियों तथा पुस्तकों के चुनाव में सतर्कता बरत सकती हैं अन्यथा बालक उपन्यास आदि पढ़ता रहता है और मांता यही समझती है कि उनका लाड़ला पाठ्यक्रम से सम्बन्धित पुस्तकें पढ़ रहा है। बालक भी अशिक्षित माताओं को आसानी से बहका देते हैं और मनमानी करते हैं।

बालकों की संख्या का सीधा-साधा प्रभाव उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर पड़ता है। कम बालक होंगे तो उन्हें अच्छा भोजन तथा अच्छी शिक्षा माता-पिता दे सकेंगे। परन्तु परिवार नियोजन का यह प्रयास शिक्षित माता ही कर सकती है। अशिक्षित माता तो बच्चों को ईश्वर की देन और भाग्य की रेखा मानकर इस ओर तटस्थ रहती है। परन्तु शिक्षित माँ परिवार की सुख-शान्ति और बालकों के उज्ज्वल भविष्य को दृष्टिगत रखकर इस ओर समुचित कदम उठाती है।

एक सबसे आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य जो केवल शिक्षित माता ही कर सकती है, वह है बालक के अन्तर्द्वन्द्वों को समझना, उसके अन्तर्मन में उत्पन्न हुई कुण्ठाओं को जानना तथा कुशलतापूर्वक उन्हें दूर करना। प्रायः देखा जाता है कि बाल्यावस्था में उत्पन्न हुई कुण्ठाओं को यदि उस समय रहते ही दूर न कर दिया जाय तो वे आजीवन बनी रहती हैं तथा कभी-कभी घातक परिणाम भी प्रस्तुत कर देती हैं। परन्तु शिक्षित माता बच्चे का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन कर उसको सही निर्देशन देती है।

आज का बालक ही कल का नागरिक है। यदि प्रत्येक माता अपने दायित्व को भलीभाँति निभा पाए, देश को स्वस्थ, विचारशील तथा विद्वान नागरिक दे पाए तो किसी भी राष्ट्र को उन्नति के उच्चशिखर पर आरूढ़ होते तनिक भी देर न लगे।

प्रौढ़-शिक्षा के राष्ट्रीय बोर्ड ने जो आँकड़े प्रस्तुत किए हैं। उनसे यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि भारतीय महिलाओं में साक्षरता की गति बहुत मन्द रही है। समता के मानवीय अधिकार की प्राप्ति और नारी मुक्ति आन्दोलन की सफलता के मार्ग में यह धीमी गति बहुत बड़ी बाधा है। इस ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

आज हमारे देश में ८० प्रतिशत से अधिक महिलाएँ निरक्षर हैं। १५ से ४५ वर्ष की आयु वाली महिलाओं में तो यह निरक्षरता और भी अधिक है। शिक्षाविदों का अनुमान है कि इस निरक्षरता को समाप्त करने के लिए शिक्षा मंत्रालय को अरबों, खरबों रुपया व्यय करना होगा। यह एक गंभीर और विचारणीय तथ्य है। नियोजित ढंग से यदि यह रुपया व्यय किया जाय तो महिलाओं में साक्षरता शत-प्रतिशत हो सकती है। ऐसा शिक्षाशास्त्रियों का मत है।

शत-प्रतिशत न सही पर यह प्रयास किया जाना तो अति आवश्यक है कि साक्षरता में महिलाएँ पुरुषों के बराबर रहें, उनसे पीछे तो न रहें। नारी मुक्ति और नारी प्रगति के लिए यह एक अनिवार्य शर्त है। नारी जागरण का कार्य करने वाले समाजसेवी कार्यकर्ताओं और विशेषकर पढ़ी-लिखी महिलाओं को इस कार्य के लिए आगे आना चाहिये।

शिक्षित महिलाओं के सामने अनेकों रास्ते खुले हुए हैं। वे चाहें तो नौकरी करके अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकती हैं, राजनीति में भाग लेकर उच्च पद प्राप्त कर सकती हैं कला तथा साहित्य के क्षेत्र में नाम कमा सकती हैं, विज्ञान की दिशा में, अन्वेषण कर सकती हैं, समाज सेवा का तथा नारी जागरण का काम कर सकती हैं। आज के समय को देखते हुए वह नारी-जागरण का पथ ही चुनेगी। उसे यह कदापि सहन नहीं होगा कि वह अकेली श्रेय, सम्मान पाए तथा उसकी अन्य बहनें इसी प्रकार रूढ़िग्रस्त जीवन जिएँ।

देश की प्रगति के लिए सुयोग्य नागरिक चाहिये। उन नागरिकों का निर्माण करने वाली माताएँ यदि पददलित रहीं, रूढ़ियों के कीचड़ में ही फँसी रहीं, ज्ञान का प्रकाश उन तक नहीं पहुँचा तो वे किस क्षमता के आधार पर उनका निर्माण कर सकेंगी। समाज के दूसरे पहलू—नारी को अपनी क्षमता का भान कराना तथा उन्हें समय के साथ प्रगति कर सकने योग्य बनाने का भार कोई उठा सकती हैं तो वे हैं शिक्षित महिलाएँ। ऐसा करके वे अपने वर्ग को तो उठाएँगी पूरे समाज और राष्ट्र के उत्कर्ष का भी आधार प्रस्तुत करेंगी।

प्रौढ़ महिला शिक्षा योजना

युग प्रभात में जो महान परिवर्तन होने जा रहे हैं। उनके लिए नारी को अपनी उपयुक्त भूमिका निभानी पड़ेगी। इसमें समर्थ हो सकने के लिए प्रथम प्रयास 'शिक्षा' की उपलब्धि के रूप में ही हो सकता है अशिक्षित व्यक्ति भी एक प्रकार से अन्धा होता है। सम्पर्क क्षेत्र में जो सीमित जानकारियाँ उपलब्ध होती हैं उतने ही दायरे में उसका विचार चक्र घूमता रहता है। इससे आगे भी कुछ है क्या ? प्रस्तुत परिस्थितियों के अतिरिक्त भी कोई विकल्प है क्या, यह सोचना उसके लिए कठिन पड़ता है। कूपमण्डूक अपनी स्थिति में सन्तुष्ट रहता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और उसे ही पर्याप्त मानकर रह जाता है। कुछ अधिक करने की, अधिक पाने, देखने की इच्छा तो तब उठती है जब कुएँ से बाहर निकल कर बड़े क्षेत्र पर अपनी दृष्टि डालता है। अशिक्षित और शिक्षित की स्थिति में यही अन्तर होता है। 'यथास्थिति' असन्तोषजनक है, अपर्याप्त है, यह विचार तभी उठेगा जब नारी की आँखें संसार की स्थिति समझें और उसमें नारी को अपने बढ़ी-चढ़ी भूमिका समझने का अवसर मिले। भूतकालीन अपनी गौरव-गरिमा को समझना और आज की स्थिति में उसकी तुलना करना ही वह आकुलता उत्पन्न कर सकता है, जो किसी बड़े परिवर्तन के लिए नितान्त आवश्यक है, संसार की प्रगतिशील नारियाँ क्या कर रही हैं और किस स्थिति में रह रही हैं, इसकी तुलना कर सकना जब तक सम्भव न होगा, तब तक यह कठिन ही रहेगा कि भारतीय नारी परिवर्तन के लिए अभीष्ट उत्सुकता प्रकट करे।

शिक्षा हर दृष्टि से आवश्यक है। व्यक्तिगत जीवन भले ही किसी भी स्थिति का हो, शिक्षा के बिना गई-गुजरी स्थिति में ही पड़ा रहता है, क्योंकि शिक्षा के बिना चिन्तन के स्रोत ही नहीं खुलते और प्रतिभाशाली होते हुए भी वह मनुष्य अपने चिन्तन और विवेचन को विस्तृत नहीं कर सकता। अशिक्षा का यही सबसे बड़ा अभिशाप है। लोग शिक्षा को रोटी कमाने की कला समझते हैं, यह भूल है। रोटी तो शिक्षितों की तुलना में अशिक्षित भी अधिक कमा सकते हैं। अशिक्षा व्यक्तित्व को, चिन्तन को विकसित होने में असाधारण बाधक सिद्ध होती है, इसलिए 'बिना पढ़े नर पशु कहावे, सदा सैकड़ों दुःख उठावे' की सार्थक उक्ति सुनने को मिलती है।

पुनर्जागरण में नारी अपनी भूमिका समुचित रीति से निवाहने योग्य बन सके, इसके लिए उसे सर्वप्रथम अशिक्षा के गर्त में से उबारना होगा और उसके लिए व्यापक योजना बनाकर चलना होगा। स्त्री शिक्षा के नाम पर लड़कियों के दो-चार स्कूल खुलवा देने से इतने बड़े प्रयोजन की पूर्ति न हो सकेगी। आज प्रश्न समूचे नारी समाज को शिक्षित बनाने का है और वह भी भावी पीढ़ियों का नहीं, आज की नारी के सहारे आज ही परिवर्तन लाना है। अस्तु, समस्या को भविष्य में सुलझाते रहने योग्य मानकर नहीं चलना है। आज की नारी आज ही शिक्षित करनी पड़ेगी ताकि वह आज के परिवर्तनों में अपनी भूमिका का समुचित रीति से निर्वाह कर सके। हमें समूचे नारी समाज को-इन्हीं दिनों शिक्षित बनाने की विशालकाय योजना मस्तिष्क में रखनी होगी और उसी को पूरा करने के साधन जुटाने होंगे।

बच्चों की शिक्षा का प्रयत्न हो रहा है, सो ठीक है पर इतने भर से काम नहीं चल सकता। बच्चे दस-बीस वर्ष बाद समाज को प्रभावित करने की स्थिति में होंगे। समय जिस तेजी से बदल रहा है, उसे देखते हुए इतने समय तक हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठा जा सकता। वर्तमान पीढ़ी की, वर्तमान साधनों की उपेक्षा करके भविष्य की आशा लगाकर प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। हमें अपनी ७० प्रतिशत जनता को साक्षर एवं शिक्षित बनाना पड़ेगा ताकि भौतिक और आत्मिक प्रगति के अवरुद्ध द्वार खुल सकें, इसके लिए प्रौढ़शिक्षा पर बालशिक्षा से भी अधिक ध्यान देने की ओर अधिक बड़े प्रयास करने और साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ेगी।

प्रौढ़ नर-नारियों को शिक्षित करने की समस्या इतनी बड़ी है कि उसे सरकारी साधनों से पूरा किया जा सकना सम्भव नहीं। इसके लिए जनस्तर पर ही प्रबल प्रयत्न करने पड़ेंगे। निरन्तर प्रौढ़ पुरुषों को पढ़ाकर उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाना और राष्ट्रीय प्रगति में समुचित योगदान दे सकने के लिए प्रशिक्षित करना एक आवश्यक काम है, पर उससे अधिक प्राथमिकता देने योग्य समस्या नारी शिक्षा को है। पुरुषों की योग्यता का प्रभाव जितने क्षेत्र में होता है, नारी की स्थिति उससे कहीं अधिक बड़े क्षेत्र को प्रभावित करती है। भावी पीढ़ी के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर का बहुत कुछ निर्माण माता के द्वारा ही होता है। गर्भस्थ शिशु अपने शरीर में माता का रक्त, माँस लाता है और उसके चिन्तन, स्वभाव एवं चरित्र की भी बहुत बड़ी छाप माता की ही रहती है। जन्म लेने के बाद बच्चा माता का दूध पीता और उसी के साथ सोता, खाता, खेलता है। इस अवधि में अपने व्यक्तित्व का बहुत बड़ा भाग बीज रूप से माता द्वारा ही प्राप्त कर लेता है। उस स्रोत से उसे जैसा अनुदान मिलता है, वह उसी के अनुरूप ढलता है। इस तथ्य को समझते हुए हमें भावी पीढ़ी के निर्माण का आरम्भ उसकी माता का स्तर विकसित करने के ही साथ-साथ करना होगा। पुरुषों की शिक्षा, योग्यता आज की स्थिति को प्रभावित करेगी, पर नारी शिक्षा तो समूची भावी पीढ़ी का निर्धारण करती है और वह भली-बुरी परम्परा को क्रमशः अगली पीढ़ियों को भी प्रभावित करती चली जाती है।

विचारशील वर्ग इसे समझने और स्वीकार भी करने लगा है। किन्तु इतने भर से समस्या का समाधान नहीं हो जाता, उसके लिए व्यवस्थित प्रयास चाहिए। प्रयास की बात उठते ही लोग सरकार द्वारा उसकी पूर्ति की आकांक्षा करने लगते हैं। समाज की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास सामाजिक अवसर पर न करके अपने अनिवार्य उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने लगते हैं। यह बुरी आदत है कि हर उपयोगी कार्य के लिए सरकार का ही दरवाजा खटखटाया जाय। नारी शिक्षा जैसे कार्यों को जनस्तर पर क्यों पूरा नहीं किया जा सकता है ? कठिनाई यह है कि हम जनशक्ति की सामर्थ्य का कभी मूल्यांकन ही नहीं करते। यह महाकाली समस्त सम्पत्तियों, विभूतियों और उपलब्धियों की जननी है। सरकार का ढाँचा उसके नगण्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से टैक्स जैसे अनुदान आधार पर खड़ा है। सरकार को जितना मिलता है, लगभग उतना ही जनता नशेबाजी पर खुशी-खुशी निछावर कर देती है। तम्बाखू और शराब का सारा खर्च सरकारी टैक्सों से कहीं अधिक है। गंगा स्नान, तीर्थ यात्रा, देवपूजा, अनुष्ठान-उत्सवों पर होने वाले धार्मिक खर्च सरकारी टैक्सों की तुलना में प्रायः दूने हैं। जनता इसे बिना किसी दबाव और संकोच के पूरा करती है। विवाह-शादियों के दान-दहेज और धूमधाम में हर साल जितना पैसा खर्च होता है, वह भी पूरे सरकारी खर्च की तुलना में कहीं अधिक है। नशेबाजी, सिनेमा, पर्यटन, धर्मोत्सव, विवाह-शादी जैसे अनेकों खर्च हैं, जिन्हें पेट पालन एवं जीवन निर्वाह की अनिवार्य आवश्यकताओं में नहीं जोड़ा जा सकता। इन्हें लोग खुशी-खुशी करते हैं। श्रम-शक्ति, समय-शक्ति, धन-शक्ति, बुद्धि-शक्ति, प्रतिभा-शक्ति, भावना-शक्ति, संकल्प-शक्ति के अजस्र रत्न भण्डार जन समुद्र में छिपे पड़े हैं, यदि उन्हें खोजा और उभारा जा सके तो महान परिवर्तन के लिए अभीष्ट साधनों की कोई कमी न रहेगी। सरकार का मुँह ताकने की, किसी धनी, विद्वान, योगी, चमत्कारी नेता, अभिनेता का अनुग्रह पाने की आदत हमें छोड़नी चाहिए और सीधे जनता के कल्पवृक्ष तक पहुँचने की तैयारी करनी चाहिए। जो पाना है वहीं से पाया जा सकता है। जन भावना जिस भी दिशा में मुड़ जाती है, उसमें सफलता सुनिश्चित ही हो जाती है।

पेट भरने के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता शिक्षा की ही रह जाती है। शरीर जीवित रखने के लिए रोटी की और अन्तःचेतना को सशक्त रखने के लिए शिक्षा की जरूरत पड़ती है। लोकमानस ने शिक्षा का महत्त्व नहीं समझा और उसकी उपेक्षा की। अस्तु, उसके साधन न जुट सके। यदि ज्ञान की भूख जागृत रहती और उसके लिए माँग उठती तो सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर उसका प्रबन्ध होकर रहता। एक बार यदि दिशा की प्रबल भूख जग पड़े तो समझना चाहिए कि साधन जुटाने में अब कोई बड़ी कठिनाई शेष नहीं रह गई है। अपने शाखा संगठनों को इसके लिए ही प्रयास करने चाहिए।

प्रौढ़ महिला शिक्षा के लिए एक पाठशाला का संचालन अपने शाखा-संगठनों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम है। जिन संगठनों में थोड़ी समर्थता उत्पन्न हो जाय, उन्हें इसे तुरन्त अपने हाथ में लेना चाहिए। समय की दृष्टि से तीसरे प्रहर दो से पाँच बजे तक तीन घण्टे का समय ही इसके लिए उपयुक्त पड़ता है और सारा समय उनके लिए प्रायः व्यस्त ही रहता है। दोपहर के भोजन से निवृत्त होने और शाम का भोजन आरम्भ करने से पूर्व के जो घण्टे बच जाते हैं, उन्हें ही उनकी फुरसत का कहना चाहिए।

प्रारम्भ में कम से कम एक और बाद में कई-कई अध्यापिकाएँ इस प्रयोजन के लिए आवश्यक होंगी। स्थान का—अध्यापिकाओं का—प्रबन्ध बन जाय तो फिर शाखा की प्रतिभाशाली महिलाओं की टोली बना कर घर-घर जाना चाहिए और प्रौढ़ महिलाओं को शिक्षा की क्यां आवश्यकता है यह समझाना चाहिए। जो पढ़ने की स्थिति में दिखाई पड़ें उनके घर कई-कई बार चक्कर लगाने के उपरान्त ही उन्हें सहमत किया जा सकेगा। इसके लिए टोलियाँ कई-कई बार—कुछ-कुछ समय बाद जाती रहें तो ही कुछ काम चलेगा। शाखा के सहायक सभ्यों को ही सबसे पहले अपने-अपने घरों की महिलाएँ भेजनी पड़ेंगी।

पाठ्यक्रम में साक्षरता तो प्रथम ही है। निरक्षर महिलाओं को लिख-पढ़ लेने का सामान्य ज्ञान उसी स्तर पर आरम्भ कराया जाना चाहिए, जिस क्रम से स्कूली बच्चों को कराया जाता है। वे ही पाठ्य-पुस्तकें काम दे जाती हैं। स्कूली पुस्तकें बेचने वाली, यहाँ मिलने वाली, पुस्तकों में से ही उन्हें छाँटा जा सकता है। पाँचवे दर्जे तक की प्राथमिक शिक्षा में अपने और सरकारी पाठ्यक्रमों में कोई अन्तर नहीं आता।

आगे की पढ़ाई में अन्तर करना होगा। पाँचवी कक्षा की योग्यता के बाद की शिक्षा में अपना पाठ्यक्रम जीवनोपयोगी सामान्य भौतिक ज्ञान एवं व्यक्ति, परिवार और समाज की समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने वाली पुस्तकों का होना चाहिए। आज की कूपमण्डूक बनी नारी को इस प्रकार की बहुमुखी एवं जीवन विकास की दिशा में मार्गदर्शन करने वाली शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। साहित्य और व्याकरण का आवश्यक ज्ञान कराने के लिए इसी स्तर का प्रशिक्षण होना चाहिए।

लगभग पाँचवे दर्जे के स्तर की अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्रौढ़ महिलाएँ एक वर्ष में पूरा कर सकती हैं। प्रथम आरम्भ तो किसी भी महीने से किया जा सकता है, पर आगे चलकर पढ़ाई वर्ष कब से आरम्भ हो यह निर्धारित कर लेना पड़ेगा। साधारणतय जुलाई से आरम्भ करना अपने लिये भी सुविधाजनक रहेगा।

लड़कियों को अपनी स्कूली शिक्षा का घर पर अभ्यास कराने की दृष्टि से सहायक पाठशालाएँ चलाई जा सकती हैं, स्कूली समय के अतिरिक्त लड़कियों की सुविधा का अन्य समय दो घण्टे का रखा जाय तो उन छात्राओं को अपना स्कूली कोर्स सफलतापूर्वक पूरा करने की सुविधा मिल सकती है। लड़कों के लिए तो ट्यूशन लगा दिए जाते हैं, पर लड़कियों को ऐसी सुविधा कहाँ मिलती है। उन्हें तो गृहकार्यों में भी माता की सहायता करनी पड़ती हैं जबकि लड़कों को पूर्ण अवकाश रहता है। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए अपनी पाठशाला के अन्तर्गत विशेष कक्षाओं का प्रबन्ध किया जा सकता है। विवाह से पूर्व वाली पढ़ाई जिनकी अधूरी रह गई थी, वे इन पाठशालाओं के माध्यम से उसे पूरा कर सकती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अपनी योजना के अन्तर्गत घर, गली, मुहल्ले और गाँव में प्रौढ़ महिला पाठशालाओं की स्थापना होनी है। महिलाओं को अपने बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी और चौका-चूल्हा भी सँभालना पड़ता है, इसलिए उनके पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से बाहर जाना स्वल्प समय के लिए ही सम्भव हो सकता है। आमतौर से यह समय मध्याह्नोत्तर दो से पाँच बजे का, लगभग तीन घण्टे को ही होता है। इतना ही उन्हें अवकाश मिल सकता है। इतने में ही उनकी शिक्षा व्यवस्था चलनी है। यदि विद्यालय बहुत दूर होगा तो आने-लाने में ही सारा समय नष्ट हो जायगा। फिर सुरक्षा, किराया-भाड़ा आदि की समस्याएँ सामने आ सकती हैं। इसलिए समीपवर्ती स्थान ही उपयुक्त हो सकते हैं।

महिला जागरण शाखाएँ भी किसी पूरे नगर-कस्बे की नहीं बनाई गई हैं। गली, मुहल्ले, गाँव की छोटी परिधि में ही शाखा संगठन खड़े किये जा रहे हैं। बड़े नगरों में कई-कई शाखाएँ बना दी गई हैं, ताकि मिलना-जुलना आसानी से सम्भव हो सके। बड़े उत्सव आयोजनों में ही नगर की बड़ी शाखा में सब छोटी शाखाएँ सम्मिलित होती हैं। साधारणतया उनके कार्यक्रम अपने-अपने मुहल्ले में ही चलते रहते हैं। यही क्रम प्रौढ़ पाठशालाओं का भी चलेगा। किसी बड़े कस्बे या नगर की एक ही पाठशाला हो, ऐसा सोचना निरर्थक है। व्यावहारिक यही है कि प्रत्येक क्षेत्र की महिलाएँ अपनी अपनी छोटी शाखा बनावें और छोटी प्रौढ़ पाठशाला चलाएँ। ऊँची शिक्षा की जब आवश्यकता पड़ेगी तब तो अधिक बड़े क्षेत्र की आवश्यकता पूरी कर सकने वाला बड़ा विद्यालय ही बनेगा पर आरम्भिक ढाँचे छोटे-छोटे क्षेत्रों में बँटकर ही खड़े किए जा सकते हैं। इन पाठशालाओं के खुलने का समय भी तीसरे प्रहर के तीन घण्टे ही हो सकते हैं। दो से पाँच अथवा मौसम के अनुसार समय कुछ बदल कर भी रखा जा सकता है।

पाठशाला चलाने के लिए कई कदम उठाने पड़ेंगे। यथा— (१) शिक्षार्थिनियाँ जुटाना, (२) स्थान का प्रबन्ध, (३) अध्यापिकाओं की व्यवस्था, (४) पाठ्य-पद्धति का निर्धारण, (५) शिक्षा उपकरणों का एकत्रीकरण आदि। इस सबसे पहले हर किसी के मन में प्रौढ़ महिलाओं के शिक्षण की उपयोगिता और आवश्यकता बिठाने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली ऐसा प्रचार करने की आवश्यकता पडेगी, जो तथ्य, प्रमाण, उदाहरण आदि पर आधारित हो और हर किसी को वस्तुस्थिति समझने, स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सके। इसके लिए पर्चे, पोस्टर, विज्ञप्तियाँ आदि के छपे पत्रक बाँटने, बेचने, चिपकाने, पढ़ाने की आवश्यकता पड़ेगी। साथ ही प्रभावशाली नर-नारियों की ऐसी प्रचार टोलियाँ गठित करनी पड़ेंगी, जो अभीष्ट प्रयोजन के लिए आवश्यक वातावरण बनाने में सफल हो सकें। उन्हें अपना कुछ समय नियमित रूप से जनसम्पर्क के लिए देना होगा।

इस जनसम्पर्क कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रचार टोलियाँ अपने क्षेत्र में घर-घर जाकर नारी शिक्षा का महत्त्व समझावेंगी और ऐसा वातावरण विर्निमित करेंगी, जिसमें पढ़ने योग्य महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार हो सकें। आज की स्थिति में सबसे बड़ी और सबसे पहली कठिनाई यही है कि शिक्षा का महत्त्व ही भुला दिया गया है। न स्त्रियाँ पढ़ने को तैयार होती हैं और न उनके घर वाले इसके लिए इजाजत देते हैं। इसे व्यर्थ का काम माना जाता है। प्रचार टोलियों को पहला सिर दर्द यही ओढ़ना होगा कि वे घर के पुरुषों को—बड़ी-बूढ़ी महिलाओं को इजाजत देने के लिए और प्रौढ़ महिलाओं को पढ़ने के लिए तैयार कर सकें। पहिया लुढ़कने लगे तब तो एक की देखा देखी दूसरी भी तैयार हो सकती हैं और फिर शिक्षार्थिनियों की कमी नहीं रह सकती। पर आरम्भ में तो यह प्रथम सफलता प्राप्त करना ही कठिन पड़ेगा। इतना कर लिया गया तो समझना चाहिए कि आधी मंजिल पार हो गई।

उपयुक्त स्थान तलाश करना दूसरा काम है। इसके लिए आरम्भ में ही अपनी निज की इमारत बनाया या किराये का मकान लेना कठिन है। इसके लिए किसी का माँगा हुआ घर, कमरा, आँगन ही ढूँढ़ना होगा। दिन में लोग १० से ६ बजे तक दफ्तर एवं दुकानों पर चले जाते हैं और उनके कमरे खाली रहते हैं। अपने प्रौढ़ विद्यालय दो से पाँच बजे तक ही चलते हैं। उस बीच खाली कमरे का फर्नीचर आदि एक ओर खिसका कर जगह बनाई जा सकती है और उतने में पाठशाला चल सकती है। पढ़ाई समाप्त होते ही उस कमरे की झाड़ू लगाकर चीज यथास्थान जमाई जा सकती हैं और किसी को पता भी नहीं चल सकता कि यहाँ पीछे दूसरा काम भी किया गया है। मन्दिर, धर्मशाला, पुस्तकालय आदि सार्वजनिक स्थानों की खाली जगह भी इस प्रयोजन के काम आ सकती है। स्थान की सुविधा ऐसे ही बिना खर्च की जगह तलाश करके जुटानी पड़ेगी।

अध्यापिकाएँ भी वैतनिक रख सकना कठिन है। इसके लिए शिक्षित महिलाओं में सेवा भाव जगाना पड़ेगा और नियमित रूप से इस पुनीत कार्य के लिए कुछ समय देते रहने के लिए उन्हें तैयार करना पड़ेगा। स्कूली अध्यापिकाएँ अपना बचा समय इसके लिए दे सकती हैं। घरों में भी पढ़ी-लिखी महिलाएँ होती ही हैं। दो से पाँच तक का समय उनके पास भी अवकाश का रहता है, उनसे समय-दान की याचना करनी चाहिए। उनके घर वालों को इसके लिए आग्रह करना चाहिए। बूढ़े रिटायर पुरुष भी काम दे सकते हैं। शिक्षकों की व्यवस्था भी इसी प्रकार जुटानी पड़ेगी। यों शिक्षिकाओं से फीस और उदार व्यक्तियों से दान लेकर शिक्षार्थियों को कुछ जेब खर्च दिया जा सकता है। पर अच्छा यही कि लोगों में सेवा बुद्धि जगे और सार्वजनिक कार्यों के लिए अभीष्ट

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मात्रा में श्रमदान उपलब्ध हो सके। नव-निर्माण की व्यापक योजनाओं की सफलताओं का आधार यह स्वेच्छा सहयोग, श्रमदान ही हो सकता है।

पाठ्यक्रम के दो भाग हैं। एक साक्षरता वर्ग जिसमें स्कूली शिक्षा के अनुसार प्राथमिक शिक्षा, पाँचवे दर्जे जितनी हो। यह उनके लिए है, जिन्हें निरक्षर स्वल्प शिक्षित करना चाहिए। यह अनिवार्य वर्ग है। इसके लिए वही पाठ्यक्रम पर्याप्त है जो पाँचवे दर्जे तक स्थानीय स्कूलों में बालकों को पढ़ाया जाता है।

इससे आगे का विशेष वर्ग है, जिसमें साहित्य और व्याकरण का समुचित ज्ञान कराने के लिए भूगोल, इतिहास, गणित, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र आदि सामान्य विषयों का समावेश करना पड़ेगा। जीवन जीने की कला, शिशु-पालन, परिवार में भावनात्मक सद्भावनाएँ रखने वाला दृष्टिकोण, कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों से होने वली हानियाँ, व्यक्ति का समग्र निर्माण, शिष्टाचार, स्वास्थ्य शिक्षा, परिचर्या एवं चिकित्सा, फर्स्टएड, पाक विद्या, शिशुपालन, गृह-व्यवस्था एवं सुसज्जा, अर्थ संतुलन, टूट-फूट की मरम्मत, घरेलू शाक-वाटिका, बहीखाता, बैंक, बीमा, रेल, डाकखाना आदि के नियम, सेल्स टैक्स, इनकम टैक्स के लिए दाखिल कराने योग्य बहीखाता, सामान्य कानूनी ज्ञान जैसे दैनिक जीवन में काम आने योग्य प्रायः सभी विषयों का समावेश करना होगा। इसे लगभग जूनियर हाईस्कूल आठवीं कक्षा के समतुल्य कहा जा सकता है। इस पाठ्यक्रम की प्रायः सभी पुस्तकें नये दृष्टिकोण ने शान्तिकुंज में लिखी और छापी जा रही हैं। तब तक के लिए इन विषयों पर बाजार में मिलने वाली पुस्तकों से सहारा लेकर नोट लिखाए जा सकते हैं और प्रश्नोत्तर के रूप में वह प्रशिक्षण चलता रह सकता है।

अभी इतना लक्ष्य लेकर चलना पर्याप्त होगा कि आठवीं कक्षा स्तर का उपरोक्त पाठ्यक्रम पढ़ना ही प्रौढ़ शिक्षा योजना का लक्ष्य है। जहाँ अधिक पढ़ने का उत्साह हो, वहाँ प्रयाग महिला विद्यापीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आदि के पाठ्यक्रमों को अपनाकर उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

प्रथम सोपान जहाँ भी कार्यान्वित हो चले वहाँ द्वितीय सोपान का शिलान्यास किया जाना चाहिए। रचनात्मक कार्यों की दृष्टि से महिला प्रौढ़ पाठशाला को प्रथम स्थान दिया जाना चाहिए। उसमें अशिक्षितों को साक्षर बनाने का भी एक कार्यक्रम रहे, पर बात इतने तक ही सीमित न रखी जाय। शिक्षा का महत्त्व अभी अपने देश में उतना नहीं समझा जाता जितना आर्थिक लाभ एवं कलाकारिता को अधिक आकर्षक माना जाता है। इन माध्यमों का समावेश भी इन पाठशालाओं में रहना चाहिए। कितने ही गृह उद्योग हैं, जिन्हें सीखने का महत्त्व समझाया जा सकता है। कपड़ों की सिलाई, मरम्मत, पुराने बड़े कपड़ों में से छोटे निकालना, सही ढंग से धुलाई, रंगाई, इस्त्री कर सकना हर घर के उपयोगी उद्योग हैं। कढ़ाई तो निरर्थक अपव्यय है पर ऊनी स्वेटर, मफलर आदि बुनना सीखने में लाभ है। वस्त्र शिक्षा के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण दो उद्योग हैं, बर्तन, फर्नीचर, चारपाई, पुस्तकें, मकान, स्टोव, लालटेन आदि की मरम्मत, दूसरा शाक-वाटिका। टूट-फूट यदि स्वयं ठीक करना आता हो या दूसरे से करा लेने में उत्साह हो तो बहुत-सी बर्बादी बचाई जा सकती है। इसी प्रकार शाक-वाटिका से घर को फूल और बेलों से सुसज्जित बनाया जा सकता है, अदरक, मिर्च, धनिया, पोदीना जैसी चटनी की चीजें लगाकर हरे शाक भाजी जरा-सी जगह में लग सकती हैं। तोरई, लौकी, सेम आदि की बेलें तथा टमाटर, बैंगन, भिण्डी आदि के पौधे घर की शाक आवश्यकता को बहुत हद तक पूरा कर सकते हैं। सबसे बड़ा लाभ सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास है, जो इन साधनों से विकसित होकर जीवन के हर कार्य में प्रयुक्त होती है। यह प्रगति का सर्वतोमुखी पथ प्रशस्त करती है।

साबुन, स्याहियाँ, सुगन्धित तेल, मोमबत्ती, तरह-तरह के खिलौने आदि बनाने से घर की आवश्यकता तो पूरी होती है, साथ ही उन्हें व्यवस्थित रूप से औद्योगिक स्तर पर किया जा सके तो उनसे आर्थिक लाभ हो सकता है। स्थानीय खपत और प्रचलन को ध्यान में रखते हुए ऐसे अन्य अनेक काम भी हो सकते हैं, जिन्हें प्रौढ़ पाठशालाओं में गृह उद्योग की तरह सम्मिलित किया जा सकता है।

कलाकारिता में संगीत का सबसे अग्रिम स्थान है। उसे भावनाओं को मोड़ने तथा स्वस्थ मनोरंजन के साधन रूप में भली प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है। इसमें महिलाओं की सहज रुचि भी होती है। संगीत शिक्षण यदि चल पड़े तो यह कला बहुत ही उपयोगी होगी।

इन पाठशालाओं का आरम्भ तो स्वल्प साधनों से भी हो सकता है पर प्रयत्न यह करना चाहिए कि उन्हें अधिक साधन सम्पन्न स्तर पर अधिक व्यवस्थित एवं अधिक आकर्षक बनाया जाय। उससे अधिक छात्राएँ अधिक लाभ उठा सकती हैं और प्रभावित भी होती हैं। यों साधनहीन व्यक्ति भी अपने निज के पुस्तकालय से भी छोटा कार्य आरम्भ कर सकते हैं और कुछ को कुछ लाभ तो दे ही सकते हैं पर साधन सम्पन्न व्यवस्था की बात ही दूसरी है। सिलाई की मशीनें, ऊन बुनाई की मशीनें, टूट-फूट मरम्मत के उपकरण, संगीत शिक्षा के लिए बाजे आदि के कई-कई सैटों की आवश्यकता पड़ेगी ताकि मात्र तीन घण्टा खुलने वाली पाठशालाओं में अधिक छात्राओं का शिक्षण सम्भव हो सके। गृह-विज्ञान, धातृ कला, शिशुपालन, परिष्कृत पाक विद्या, परिवार की सुव्यवस्था तथा भावनात्मक सघनता, स्वास्थ्य रक्षा, परिचर्या, घरेलू चिकित्सा, सामान्य विज्ञान जैसे अनेक विषयों की कामचलाऊ जानकारी इन पाठशाओं में अनिवार्य रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पढ़ाई जानी है। उनके लिए पाठ्य-पुस्तकें पाठशाला की लायब्रेरी से मिलती रहें, तो जिन्हें शिक्षा में आकर्षण नहीं है उन्हें पुस्तक खरीदने में अनख मानने की आवश्यकता न पड़ेगी। बैठने के लिए फर्श, आलमारी, अध्यापिका के लिए ऊँची चौकी, घड़ी, रजिस्टर आदि कितने ही छोटे-बड़े ऐसे साधन चाहिए जिनमें पैसा लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। आरम्भ में किराये की या माँगे की इमारत से भी काम चल सकता है पर अन्तत: यदि अच्छा विद्यालय चलाना है तो उसके लिए अपनी इमारत भी ठीक है। यही इमारत तीसरे प्रहर प्रौढ़ विद्यालय के लिए, बाकी समय सत्संग आदि के लिए काम दे सकती है। इसे एक प्रकार से शाखा की सर्वतोमुखी गतिविधियों का केन्द्र ही कहना चाहिए।

शिक्षा आरम्भ में नि:शुल्क ही रखी जानी चाहिए। किन्तु खर्च की जरूरत तो पड़ेगी ही। इसकी पूर्ति के लिए उदार व्यक्तियों से अर्ध सहायता ली जानी चाहिए। मासिक एवं विशेष सहायता देने के लिए भावनाशील व्यक्तियों का द्वार खटखटाया जाना चाहिए। इसके लिए ज्ञानघटों की स्थापना की जा सकती है, जिसमें नित्य कुछ पैसे या अन्न डाला जा सके और उसें संग्रह करके खर्च चलाया जा सके।

नारी शिक्षा के लिए स्थायी विद्यालयों के अतिरिक्त पत्राचार शिक्षा-पद्धति का उपयोग भी किया जाना चाहिए। विदेशों में पत्र व्यवहार स्कूल बहुत हैं। विभिन्न विषयों की घर बैठे शिक्षा देने का यह उपयुक्त मार्ग है। जिन्हें स्कूल में नियत समय पर चलने वाली नियमित कक्षाओं में पहुँचने के लिए अवकाश नहीं है, वे उस पढ़ाई का लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। इन कठिनाइयों का हल करने के लिए पत्र-व्यवहार विद्यालयों की विधि-व्यवस्था बनाई गई है। जो पाठ कक्षाओं में मौखिक रूप से पढ़ाए जाते हैं, उन्हें लिखकर छाप दिया जाता है और उन छात्रों के पास भेज दिया जाता है, जो घर पर अपनी सुविधा का समय निकाल कर अमुक कक्षा का निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करना चाहते हैं।

पाठ घर बैठे पहुँचते रहते हैं, छात्र अपनी सुविधा के समय उनका अध्ययन करते रहते हैं। समझ में न आई हुई बात विद्यार्थी अपने विषय के अध्यापक से पत्र लिखकर पूछ सकते हैं और उत्तर में समाधान पा सकते हैं। इसी प्रकार अध्यापक लोग भी इन छात्रों से उनके अध्ययनक्रम की पत्र द्वारा ही जाँच करते हैं। पूछे गए प्रश्नों का उत्तर छात्रों को देना पड़ता है, फिर उनके सही या गलत होने की जानकारी छात्रों को मिल जाती है तथा आगे के परामर्श भी उन्हें मिल जाते हैं। यह पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रम स्कूलों में नियमित चलने वाली शिक्षाओं जितने कारगर तो नहीं हैं, फिर भी जिन्हें भर्ती होने और विधिवत पढ़ने की सुविधा नहीं है, उनके लिए यह पद्धति भी बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

परिवार संस्था का पुनर्निर्माण अपने आप में एक बहुत बड़ा शासन है। इसके साथ अनेकानेक समस्याएँ जुड़ी हुई हैं और वे सभी आज की स्थिति के अनुरूप समाधान चाहती हैं। यह प्रशिक्षण अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसे पूरा करने के लिए वह लिखना पड़ेगा, जो चिरपुरातन होने के साथ-साथ चिरनवीन भी कहा जा सके। चिरपुरातन इसलिए कि ऋषि प्रणीत दिव्य दर्शन द्वारा इंगित दिशा में चलने में कहीं भटक न जाएँ। चिरनवीन इसलिए कि हर युग के हर समय की अपनी स्थिति, अपनी उलझन और अपनी आवश्यकता होती है। उसे ध्यान में रखे बिना भूतकाल की किसी लकीर को पीट देने से कभी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अस्तु, परिवार संस्था को सुविकसित बनाने के लिए भी पुरातन आदर्श और नवीन व्यवहार का समन्वय करते हुए प्रशिक्षण का ढाँचा खड़ा करना पड़ेगा। ऐसा पाठ्यक्रम स्वल्प संक्षिप्त सूत्र में भी हो तो सकता है, पर उसे बदली परिस्थितियों के कारण तर्क और तथ्य शैली से समझना और प्रतिकूलता को अनुकूलता बना सकने जितनी गहराई तक उतरना काफी कठिन काम है। इसलिए विस्तार में ही जाना पड़ेगा, कुछ अधिक ही लिखना, छापना पड़ेगा। परिवार निर्माण का प्रशिक्षण बहुत कोशिश करने पर भी संक्षिप्त न रहे सकेगा। जो हो उसके लिखने का प्रयत्न चल पड़ा है और वह क्रम देर तक चलता रहेगा। समस्या का सांगोपांग हल प्रस्तुत करने तक यह सृजन जारी ही रहने वाला है। लेखन और प्रकाशन की गति अभी साधनों के अभाव से मन्द है किन्तु आशा की जानी चाहिए कि उसमें तीव्रता आएगी और समय की आवश्यकता को पूरा कर सकने में हम लोग महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करेंगे।

प्रस्तुत साहित्य को विशुद्ध पाठ्यक्रम माना जाय और उसे विचारशील वर्ग तक पहुँचने के लिए माध्यम की भूमिका निबाही जाय। इसके लिए आवश्यक है कि हर जगह चल-पुस्तकालय स्थापित हों। स्थिर पुस्तकालय इस आवश्यकता की पूर्ति बहुत हद तक नहीं कर सकते। पुस्तकें अपनी जगह बैठी रहती हैं। पढ़ने वाले गिने-चुने ऐसे लोग जाते हैं जिनके पास फुरसत होती है और साथ ही पढ़ने का शौक भी। इन शौकीन पढ़क्कू लोगों में अधिकांश लोग उथली, मनोरंजक, उत्तेजक चीजें पढ़ते हैं। आमतौर से उन्हीं की माँग रहती है। किसी भी पुस्तकालय अधिकारी से पूछा जा सकता है कि आप के पाठक क्या और क्या माँगते हैं ? वे लज्जा से अपना सिर झुकाए हुए निरुत्तर मिलेंगे। ऐसे पुस्तकालय कम हैं जिनमें प्रेरणाप्रद, आदर्शवादी साहित्य माँगने वालों की बहुलता रहती हो। अच्छी पुस्तकें तो जहाँ की तहाँ जड़वत बैठी रहती हैं। निजी रूप से उन्हें खरीद कर पढ़ने वाले तो बिरले ही होते हैं, इसलिए प्रकाशक उस हानिकारक क्षेत्र में हाथ भी नहीं डालते और वही छापते हैं जिसकी माँग होती है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहित्य के माध्यम से लोगों को समस्याओं के हल सुझाना आसान है यदि वैसा साहित्य हो तथा लोग उसे पढ़ें। साहित्य के अभाव की पूर्ति तो मिशनरी स्तर पर काफी तंगी से की जा रही है। युगान्तर चेतना के केन्द्रीय संगठन की ओर से ऐसे साहित्य के लेखन और प्रकाशन की व्यवस्था बनाई गई है जिसे व्यावसायिक लेखक और प्रकाशक आवश्यक मान कर भी घाटे के भय से हाथ नहीं लगाते। अगले दिनों उसे और भी अधिक तीव्र किया जाना है। किन्तु यह तो समाधान का केवल एक पक्ष हुआ। दूसरा पक्ष भी इससे कम महत्त्व का नहीं है और उसे भी पूरा करना होगा। पहला कार्य तो युग की माँग को सुन-समझ सकने वाले, उस कार्य में अपने आप को खपा देने के लिए कृत संकल्प गिने-चुने व्यक्ति, थोड़े से भावनाशील धन सम्पन्न व्यक्तियों के सहयोग से कर सकते हैं। किन्तु दूसरा कार्य ऐसा है जिसके लिए हर क्षेत्र में तथा हर स्तर पर प्रयास करने होंगे। वह कार्य है प्रशिक्षित साहित्य को घर घर, जन-जन तक पहुँचा देना। साहित्य तैयार कर लेने भर से यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि लोग सब उसे खोजकर, खरीद कर, माँग कर पढ़ लेंगे।

ऐसी दशा में चल-पुस्तकालय ही एकमात्र वह तरीका है जिसे अपनाकर घर-घर पहुँचा जा सकता है और जहाँ भी थोड़ी परिष्कृत अभिरुचि हो वहाँ घर बैठे उसे बढ़ावा दिया जा सकता है। अपने देश में एक तो वैसी ही शिक्षा की कमी है, जो पढ़े हैं उनमें भी अध्ययनशील कम हैं। जो पढ़ते हैं वे बेतुका पढ़ते हैं। ऐसी दशा में शिक्षितों की सुरुचि जगाना पहला काम है अन्यथा लोकमंगल के लिए प्रस्तुत किया गया साहित्य भी ज्यों का त्यों सड़ता रहेगा और उसका कोई उत्साहवर्द्धक उपयोग न हो सकेगा।

हम लोग मिल-जुलकर काम करें तो पुस्तकालय के रूप में महिला जागरण अभियान के अन्तर्गत परिवार निर्माण की प्रशिक्षण प्रक्रिया आसानी से चल सकती है। यह विषय विशेषतया महिलाओं का है अस्तु, शिक्षित स्त्रियों की सूची बनाना, उन तक पुस्तकें पहुँचाना और वापस लाना चल पुस्तकालय का यही स्वरूप हो सकता है। इसके लिए एक सेवा-भावी एवं स्वयं-सेविका महिला की आवश्यकता पड़ेगी, जो इस कार्य को संकोच और आलस्य छोड़कर उसे उत्साहपूर्वक सम्पन्न करती रहे। पुस्तकालय एक जगह रहे। सदस्याएँ साप्ताहिक सत्संग वाले दिन अपनी पसन्दगी की पुस्तकें स्वयं ले जाया करें और पिछली वापिस कर जाया करें। घर पर तो उनको जाना है, जो दूर रहती हैं, सदस्याएँ नहीं हैं एवं परिस्थिति वश आने-जाने में विवश हैं।

कन्या पाठशालाओं की अध्यापिकाओं, बड़ी आयु की छात्राओं को यह पढ़ाने का क्रम बनाया जा सकता है। खोज-बीन की जाय तो अपने नगर में ही ढेरों शिक्षित महिलाएँ ऐसी मिल जाएँगी, जिनको रुचि तो है पर काम की कोई चीज सीखती नहीं। इनकी आवश्यकता पूरी करने में अपनी पुस्तकालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। यों इसे पढ़ने में प्रतिबन्ध तो किसी पर नहीं है, पुरुष भी उनसे उतने ही लाभान्वित हो सकते हैं जितनी महिलाएँ। परिवार निर्माण में महिलाओं की भूमिका प्रधान तो रहती है पर सहयोग तो पुरुष का भी रहना ही चाहिए, इस दृष्टि में जो महिलाएँ इस साहित्य को पढ़ें, वे घर की महिलाओं को ही नहीं पुरुषों को भी पढ़ने का आग्रह किया करें, तो प्रशिक्षण की सर्वतोमुखी सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

महिला जागरण अभियान के अन्तर्गत परिवार निर्माण साहित्य का प्रकाशन एक प्रकार से अधिकारी प्राध्यापक द्वारा खोजपूर्ण चिन्तन, मन्थन और अनुभवपूर्ण पाठ्यक्रम कहा जा सकता है। पत्राचार विद्यालय के छात्रों की तरह लाखों, कराड़ों नर-नारियों को नियमित छात्र मानकर उनकी पाठन व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। इसका एकमात्र स्वरूप चल पुस्तकालय ही है। पत्र व्यवहार विद्यालय में हर छात्र को तगड़ी फीस देनी पड़ती है पर हमें अपने सभी छात्रों तक यह प्रशिक्षण निःशुल्क ही पहुँचाया जाना है। यह कार्य स्वयंसेवक स्तर पर ही हो सकता है। अपनी शाखाएँ इस कार्य को आसानी से पूरा कर सकती हैं। प्रत्येक सदस्य एवं सहयोगी अपने-अपने सम्पर्क क्षेत्र में कुछ समय निकाल कर झोला पुस्तकालय चलाया करें और देने तथा वापस लाने का कार्य स्वयं किया करें। वह व्यक्तिगत कार्यक्रम सामूहिक चल पुस्तकालय इसी प्रकार बनेगा कि शाखा कार्यालय में पुस्तकालय रहे। हर सदस्य अपने सम्पर्क क्षेत्र की महिलाओं और पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करके यह साहित्य पढ़ने के लिए सहमत करें। इन सहमत लोगों के घरों पर पुस्तकें नियमित रूप में पहुँचती और वापस आती रहें तो समझना चाहिए कि एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पत्राचार विद्यालय चल पड़ा और इस प्रशिक्षण में सहस्रों पाठकों को, छात्रों को, अग्रगामी सत्परिणाम उपलब्ध होने की सम्भावना बन गई।

ये सभी कार्यक्रम इस ढंग के हैं जिन्हें कोई सामान्य स्थिति का व्यक्ति भी आसानी से चालू कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसके महत्त्व और उसके प्रति अपने कर्तव्य को अनुभव किया जा सके। हर स्थान पर महिला जागरण शाखाओं अथवा इसके समर्थकों को इस दिशा में अविलम्ब प्रयास प्रारम्भ कर दिए जाने चाहिए। छोटे से छोटे प्रारम्भ से लेकर बड़े से बड़े अभियान का रूप इसे अपनी सामर्थ्य और परिस्थितियों के अनुसार दिया जा सकता है। यथासाध्य यह प्रयास हर स्थान पर तुरन्त प्रारम्भ कर दिए जावेंगे, ऐसी आशा की जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहलक्ष्मी की शिक्षा पितृगृह में

मनुष्य को ऊँचा उठाने में नारी की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण समझी जाती रही है। जैक फिशमैन ने अपनी पुस्तक 'माई डार्लिंग क्लैमेटाइन—दि स्टोरी ऑफ लेडी चर्चिल' में ऐसे कई उद्धरणों को उल्लेखित किया है, जिनके कारण सर विंस्टन चर्चिल को मैन ऑफ दि सैंचुरी की उपाधि तथा अनेकानेक प्रकार की सफलताओं को हस्तगत करने का सुअवसर मिला। उनकी सहधर्मिणी के सहयोग का ही यह प्रतिफल था। अब्राहम लिंकन की सफलताओं का रहस्य उनकी माँ द्वारा दिए गए संस्कारों को ही समझा जा सकता है। वे प्राय: कहा भी करते थे कि "मुझे जो कुछ जीवन में मिला है, वह माँ का ही ऋण है"।

एक नहीं ऐसे अनेकों उदाहरण हैं जिनमें स्त्रियों ने अपने पतियों एवं बच्चों का व्यक्तित्व निखारा। उनके दुर्गुणों को घटाने एवं मिटाने में असाधारण भूमिका निवाही। जिस परिवार में गईं, वहाँ व्यवस्था और सहकारिता की सत्प्रवृत्तियों को स्वयं आगे रहकर बढ़ाया तथा उस विषय में पूरे परिवार को रुचि लेना सिखाया।

किसी सद्ग्रस्थ को सुविकसित करने के लिए उसके सदस्यों को शिष्टाचार का अभ्यास कराया जाना चाहिए और मितव्ययी बनाया जाना चाहिए। आलस्य-प्रमाद जहाँ भी रहेंगे। लापरवाही, गैरजिम्मेदारी का स्वभाव रहेगा तो वहाँ एक के बाद दूसरी हानियों का सामना करना पड़ेगा। ऐसे परिवारों में वे गुण विकसित नहीं हो सकेंगे, जिन्हें सुसंस्कारिता कहा जाता है और सम्मान दिया जाता है।

शिक्षा के नाम पर लड़कियाँ निरर्थक पुस्तकों का बोझ ढोती रहती हैं और प्रमाण-पत्र पाने के लालच में ऐसे विषयों को रटने में समय लगाती रहती हैं, जो उनके जीवन में कभी काम नहीं आते।

नारी शिक्षा का स्वरूप और महत्त्व असाधारण है। इसलिए उसकी समग्रता के लिए परिवार की समझदार महिलाओं को वह उत्तरदायित्व सँभालना चाहिए। लड़के रोटी कमाने लगें तो उनका काम चल जाता है और सामान्यजनों को सामान्य काम मिल जाता है। लड़कियाँ सीधे पैसा तो नहीं कमातीं, पर कम खर्च में घर की शोभा-सज्जा बनाए रह सकती हैं। स्वयं काम में व्यस्त रहने के साथ-साथ परिवार के बड़ों या छोटों को साथ लगाए रह सकती हैं। स्वच्छता भी शोभा हैं। सादा जीवन उच्च विचार की नीति अपनाने पर हर किसी को बड़प्पन का श्रेय मिलता है। नारी को विशेष रूप से। क्योंकि उनमें से एक भी प्रगतिशील, परिश्रमी एवं मधुर स्वभाव की हो तो बच्चों या बड़ों को, मर्दों या महिलाओं को अपने ढाँचे में ढाल सकती हैं। सद्गुणों का बाहुल्य ही ऊँचे उठने और आगे बढ़ने में सहायक होता है। इन तथ्यों का अपनाना सभी के लिए श्रेयस्कर है। परन्तु नारी को यह सब विशेष रूप से जानना चाहिए, ताकि वह अपनी विशेषताओं से समूचे परिवार को अभ्यस्त कर सके।

कहावत है कि जो रूठे को मनाना और टूटे का बनाना जानता है, वह सचमुच ही बहुत बड़ा बुद्धिमान है। घर में आए दिन छोटी-मोटी बातों पर मनमुटाव और झगड़े-झंझट होते रहते हैं। उन्हें डरा-धमका कर नहीं आदर्शों के अवलम्बन का परामर्श देकर हँसते-हँसाते शान्त किया जा सकता है। जिसमें जो दुष्प्रवृत्ति पनपने लगी हो, उसे उसकी हानियाँ एकान्त में मधुर शब्दों में समझाकर परिवर्तन लाया जा सकता है। इसी प्रकार जो सद्गुण कम हों उसे अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर किया जा सकता है।

ऐसे घटनाक्रम गृह-संचालिका को अपनी स्मृति में बिठा लेने चाहिए, जिनको कथा-कहानी के ढंग में कहते हुए उन्हें ध्यानपूर्वक सुनने के लिए सहमत किया जा सकता है। मनुष्य का स्वभाव अजीब है। उनके दुर्गुण बताए जाएँ और भर्त्सना की जाय, तो वह उसे अपना अपमान मानता है और उसे शत्रु समझने लगता है। यदि सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने की शिक्षा दी जाय तो भी उसे सहन नहीं होता। तब वह नेता, धर्मोपदेशक कहकर व्यंग्य करने लगता है और उस कथन पर भी ध्यान नहीं देता। इसलिए उचित यही है कि कहीं अन्यत्र घटित हुई ऐतिहासिक, सामयिक घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनकी प्रशंसा या निंदा कर दी जाय। उन घटनाओं में कभी एक को कभी दूसरे को सम्बोधन करते हुए सुनाया जाय ताकि अन्य सभी लोगों को उनका निष्कर्ष समझने का कई बार अवसर मिल सके। इस प्रकार स्वाभाविक मुखमुद्रा में सत्प्रवृत्तियों के सत्परिणाम और दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणाम बताते रहा जाय, तो उसे अपनाए जाने की सम्भावना अधिक रहती है। जिनमें जो अच्छाइयाँ पहले से ही हों या नये सिरे से विकसित हो रही हों, उनकी उत्साहवर्द्धक एवं प्रशंसापरक चर्चा अवश्य करनी चाहिए। घरेलू व्यवहारशास्त्र पर यद्यपि कोई अच्छी पुस्तकें नहीं हैं, तो भी स्फुट प्रसंगों को जहाँ-तहाँ से जमा करके एक ऐसा भण्डार बना लेना चाहिए, जिसे कथानक या संस्मरण के ढंग से कहते हुए चलता-फिरता प्रशिक्षण क्रम गतिशील रखा जा सके।

बड़ी पीढ़ी का यह कर्तव्य है कि लड़कियों के थोड़ी समझदार होने के साथ-साथ ही ऐसा शिक्षण आरम्भ कर दिया जाय, ताकि वे उस सद्व्यवहार को पिता के घर में कार्यान्वित करती रहने के उपरान्त ससुराल में सरलतापूर्वक वैसा रौल अदा कर सकें और वहाँ सबसे प्रेम और सम्मान प्राप्त करते हुए उत्कर्ष का उपयोगी वातावरण बना सकें।

यह शिक्षाएँ ऐसी हैं, जिन्हें देने की जिम्मेदारी पिता के परिवार की है। जब प्रतीत हो कि लड़की इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग्य हो गई कि नये परिवार में जाकर अपनी विनम्रता और अच्छी आदतों से उस परिवार में सभी का मन मोह सकेगी और सच्चे अर्थों में गृहलक्ष्मी सिद्ध हो सकेगी, तभी विवाह की बात सोचनी चाहिए। अबोध बालिकाओं का विवाह कर देना गलत है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी १६ से २० वर्ष की आयु में लड़कियों की प्रजनन क्षमता में उफान आता है और वह विवाह के बाद थोड़े ही दिनों में कई बच्चों की माँ बन जाती हैं। उन्हें ठीक तरह सँभाल नहीं पातीं। पति के साथ बैठने, बात करने का भी समय नहीं निकाल पातीं। दबाव अधिक पड़ने से अपना संतुलन तक ठीक नहीं रख पातीं। इसलिए माता का कर्तव्य है कि लड़कियों का विवाह २० वर्ष से पहले न करें। जो बातें स्कूलों में नहीं पढ़ाई जातीं, उन व्यावहारिक बातों को, जीवन में उतार-चढ़ावों को घर पर भली प्रकार समझाने के बाद ही विवाह की बात सोचें। यही बातें उनके जीवन को शानदार बनाने के काम आती हैं।

महिलाओं की स्वावलम्बन शिक्षा

देहाती भारत में प्रायः समझदार वर्ग में भी १६-१८ के बीच की कन्याओं के विवाह का प्रचलन है। इसे खींचतान कर दो वर्ष और बढ़ाया जाय तो बीस वर्ष तक की बात खिंच सकती है। अधिक आयु की कन्याओं के लिए उपयुक्त वर न मिलने या बहुत दहेज माँगने का व्यवधान खड़ा होता है। बहकाने-बरगलाने वाले लफंगों की भी कमी नहीं। सिनेमा तथा अश्लील साहित्य उन्हें अधोगामी प्रवृत्तियों को दिशा में धकेलता है। ऐसी दशा में सद्गृहस्थ कन्याओं की बहुत अधिक आयु नहीं बढ़ाना चाहते। विशेषता इस दशा में कि जब पुरुषों के लिए नौकरियाँ मिलनी ही कठिन हो रही हैं, तब स्त्रियों को कहाँ मिलें। फिर पति से अलग स्थान पर एकाकी रह सकना किन्हीं साहसी महिलाओं के लिए ही सम्भव होता है। साथियों और हाकिमों के दबाव पड़ते हैं सो अलग।

ऐसी दशा में जो मध्यवर्ती सद्गृहस्थों का विचार है, उसका समर्थन ही करना पड़ता है। अब प्रश्न आता है कि इस अवधि में उन्हें क्या और किस क्रम से पढ़ाया जाय, ताकि विवाह की बात बीच में ही आ जाने से पढ़ाई अधूरी छोड़नी न पड़े।

कहा जा चुका है कि प्राथमिक शिक्षा प्रौढ़ों के लिए या अविकसित बालकों की खेलने-कूदने की आयु के लिए है। इसके बाद ६, ७, ८ की कक्षाओं का तीन वर्षीय जूनियर शिक्षा-क्रम ऐसा है, जिसे किशोरावस्था में पूरा कर लिया जाना चाहिए। वह भी लड़के-लड़की सबके लिए समान है। कम से कम उतना ज्ञान तो हर समझदार आदमी को होना चाहिए। भले ही वह लड़की हो या लड़का। उसी संदर्भ में कानूनी ज्ञान भी इतना जुड़ा होना चाहिए कि उत्तराधिकार, खेत, मकान, बँटवारा, धींगा-मुस्ती से अपना हक्क उगलवाना, किसी के किए हुए अनीतिपूर्ण आक्रमण का सामना करने जैसी सामान्य जानकारियों का समावेश हो।

इसके बाद दो वर्ष आजीविका उपार्जन में से कोई काम चुनने के लिए हैं। यह प्रशिक्षण सरकारी भी हो सकता है और गैर सरकारी भी। गाँधीजी जिस बेसिक शिक्षा की हिमायत करते थे, वह स्वावलम्बन पर निर्धारित थी। उनके प्रतिपादन को आधार मानकर देश की गरीबी को देखते हुए लम्बी शिक्षा न बन पड़ने की स्थिति में इसके लिए दो वर्ष का समय पर्याप्त होना चाहिए। इतने में पास, फेल होते-होते बीस वर्ष की आयु हो जाती है और उस आयु में इन दिनों उत्तरदायित्व सँभालने की आशा किया जाना उचित ही है।

लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ नये सिरे से विचार करना पड़ेगा क्योंकि बच्चों की, घर गृहस्थी की जिम्मेदारी सँभालते हुए घर छोड़कर अन्यत्र कठिनाई में ही जा सकती हैं। उन्हें ऐसे ही उद्योग सीखने चाहिए, जिन्हें घर रहते हुए सहायक धन्धे के रूप में आसानी से सम्पन्न किया जा सके।

ऐसे उद्योगों में एक अध्यापन हो सकता है। अगले दिनों निश्चित रूप से शिक्षा का विस्तार होगा। महिला शिक्षा का भी। महिला शिक्षा की ओर जो उपेक्षा बरती जा रही है, वह अगले दिनों न रहेगी। प्रौढ़-शिक्षा अनिवार्य स्तर की बनकर रहेगी और नई लड़कियाँ जूनियर हाईस्कूल तक जरूर पढ़ेंगी। उनके लिए वैसे स्कूल भी खुलेंगे क्योंकि देश में भी सह-शिक्षा के प्रति अवमानना का भाव ही चलता रहेगा। इसके अतिरिक्त अब की तरह आगे भी महिलाओं को यह छूट रहेगी कि वे घर रहकर पढ़ सकें और प्राइवेट परीक्षा दे सकें। इस स्थिति में कन्या शिक्षा ट्यूटोरियल स्कूलों की भी कमी न रहेगी ताकि लड़कियाँ घर के काम में भी कुछ हाथ बँटाती रहें।

लड़कियों को महिलाओं की शिक्षा का दो वर्षीय अध्यापन कोर्स कर लेना सर्वोत्तम रहेगा। वे कहीं भी छोटे बच्चों को, लड़कियों को, महिलाओं को इकट्ठी करके प्राइवेट स्कूल अपने घर पर ही चला सकेंगी और गुजारे जितना कमा भी सकेंगी।

महिलाओं के लिए दूसरा उद्योग है सिलाई, रँगाई, छपाई यह तीनों ही ऐसे हैं जिनमें घर पर रहकर भी काम मिलते रह सकते हैं। इसी के साथ और भी कई काम जुड़ जाते हैं। जैसे मोतियों की कढ़ाई, स्वेटरों की बुनाई, रफू करना, कसीदा काढ़ना आदि। ये सभी वस्त्रोद्योग के भीतर आते हैं। ड्राई क्लीनिंग का प्रचलन भी अब इतना बढ़ गया है कि मनुष्य हाथों-हाथ धुला कपड़ा चाहता है। कई दिन तक ठहरने की गुंजाइश नहीं होती। इस जल्दबाजी में धुलाई के पैसे भी अच्छे मिल सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोटे-बड़े उत्सव-त्यौहारों, प्रतिभोजों पर हलवाई बुलाना महँगा पड़ता है। आजकल पचास रुपये प्रतिदिन और एक आदमी भी साथ में बीस रुपये का दोनों का भोजन मिलाकर हलवाई की बात करते ही सौ रुपये का नोट ठण्डा होता है। इन निर्माणों में कोई महिला कुशल हो तो मिठाइयाँ, नमकीन, अचार आदि बनाकर आसानी से अच्छे पैसे कमा सकती हैं। महिलाएँ घरों में महिलाओं को बुलाना पसंद भी करती हैं।

छोटे-मोटे रासायनिक सामान बना लेना एक खिलवाड़ है। साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, पिसे हुए मसाले बनाना, पिसी हुई मेंहदी, पोदीना, मैथी आदि के पैकिट बाजार में बिकते हैं। गरम मसाले, रायते के मसाले, दाल के मसाले, पापड़, बड़ी आदि खाली समय में बन सकते हैं। इन कामों में अपनी निकटवर्ती दुर्बल अशिक्षित महिलाओं को भी साधारण मजूरी पर लगाया जा सकता है। इन कामों में बच्चे भी मदद कर सकते हैं। प्लास्टिक के वन्दनवार, स्टेज, फूल आदि बनाना भी कैंची की करामात भर है। इसी प्रकार पेपर बसी के कितने ही रंग-रूप के छोटे-बड़े खिलौने बन सकते हैं।

यों कोई कर सके तो एक छोटा-सा प्रेस लगा लेना भी कुछ कठिन नहीं है। उसमें उतनी पूँजी नहीं फँसानी पड़ती, जो किसी मध्यम स्तर के व्यक्ति के लिए कठिन पड़े। रबड़ की मोहरें भी इसी के साथ बनती रह सकती हैं।

घर-आँगन में शाकभाजी उगाना, शहद की मक्खी पालना आदि ऐसे काम हैं, जिनमें हाथ की मेहनत ही लगती है पर कुछ न कुछ आमदनी होने लगती है।

संगीत शिक्षा भी घर के वातावरण को उत्साहमय बनाती है। लड़कियों की शिक्षा में संगीत का एक विषय भी है। उसे भी सीखने वाली महिला की प्रतिष्ठा है। टूटे-फूटे बर्तनों, लालटेनों, स्टोवों को, बक्सों को सुधार देना एक काम है। यों किसी को बुरा न लगे तो जूतों पर पालिश कर देना भी कुछ बुरा काम नहीं है।

इनमें कुछ काम ऐसे हैं जो विद्यालयों में जाकर ही सीखने पड़ेंगे, पर कई काम ऐसे हैं जिन्हें जाकर महिलाएँ एक दूसरे को सिखा सकती हैं और उन्हें सीखने के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे कला-कौशल सीखने की अभिरुचि हो तो उनके सीखने का प्रबन्ध कहीं न कहीं से अवश्य हो जाता है।

नारी शिक्षा का एक अति महत्त्वपूर्ण विषय है—रोगी परिचर्या, प्रजनन, शिशु-पोषण, आहार विज्ञान, गृह-व्यवस्था, कपड़े धोना आदि । इन कार्यों को सीखा जा सके तो अपनी तथा दूसरों की जान बचा सकने जैसा सुयोग अपने हाथ में आ सकता है। गृहलक्ष्मी यदि चाहे तो घर के सभी क्लेश-द्वेष मिटाकर शान्ति का वातावरण उत्पन्न कर सकती है। अल्प बचत योजना, बीमा, फैमिली प्लानिंग, प्रौढ़ शिक्षा जैसे कुछ ऐसे कार्य भी हैं, जिन्हें पास-पड़ौस में आते-जाते रहने और समझने भर का काम करने से कुछ आमदनी हो सकती है।

अतिरिक्त उपार्जन अपनी बुद्धिमत्ता का प्रमाण देता है। इस पर भी यह भगवान न करे पति की सहायता के बिना ही निर्वाह का संकट आ खड़ा हो, तो उसके निवारण हेतु में डूबते गज को उबारने में भगवान जैसा हाथ यह उद्योग ही थाम सकते हैं।

अनेक समस्याएँ—एक हल

जीवन के किसी भी क्षेत्र की किसी भी समस्या को लिया जाय तो उसकी जड़ यही मिलेगी कि मनुष्य का भावना स्तर नीचा रहने से वहाँ अनेकों विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं और उनका तब तक कोई स्थायी हल नहीं निकल सकता, जब तक कि वास्तविक कारण में सुधार न किया जाय। जड़ को सींचे बिना पत्ते हरे नहीं हो सकते। व्यक्तित्व का सुधार, निर्माण एवं विकास किए बिना प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही पड़ा रहेगा।

सरकारी और सामाजिक स्तर पर सुख-समृद्धि बढ़ाने के—प्रगति और सुरक्षा के जो प्रयत्न किए जाते हैं, उनकी सफलता भी तभी सम्भव है, जब व्यक्तियों के भावनात्मक विकास का भी प्रयत्न चलता रहे। अधोगामी प्रवृत्ति के मनुष्य अच्छे को भी मिट्टी में मिला देते हैं। गन्दे नाले में थोड़ा गंगाजल गिराया जाय तो नाले की शुद्धि तो होने नहीं पाती, उल्टे गंगाजल व्यर्थ चला जाता है। बाह्य प्रयत्नों से बाह्य प्रदर्शन तो ठीक बन जाते हैं पर वास्तविक सुधार तभी होते हैं जब सच्चे हृदय से उनका स्वागत किया जाय। जनसहयोग के अभाव में बड़ी-बड़ी योजनाएँ भी कार्यान्वित नहीं हो पातीं, पर यदि जनसाधारण में सत्प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने का उत्साह हो तो बिना सरकारी या बाहरी सहयोग के भी बात कुछ बन सकती है।

वृक्षारोपण योजना के अन्तर्गत हर वर्ष सरकारी प्रयत्नों से लाखों, करोड़ों वृक्ष लगाए जाते हैं और वे पानी की कमी या ठीक देखभाल न होने से सूख जाते हैं। यदि स्थानीय लोग इस पवित्र कार्य का महत्त्व समझें और पानी लगावें या देखभाल करते रहने का उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर ले लें तो उनके ऊपर कोई विशेष भार नहीं पड़ेगा। पारी बना ली जाय तो बहुत दिन के बाद एक-एक का नम्बर आएगा। पर इतने कार्य से सारा देश तीन चार वर्षों में वृक्षों की हरियाली और फूलों की मधुरिमा से सुसज्जित हो सकता है। वर्षा की कमी, लकड़ी का अभाव, शुद्ध वायु की समस्या, भूमिरक्षण, नयनाभिराम हरियाली, फलों की उपलब्धि आदि अनेकों लाभों से सारी जनता लाभान्वित हो सकती है और प्रचुर सरकारी धन व्यय होने पर भी असफलता रहती है वह प्रश्न ही उत्पन्न न हो। बीज बोने और पौधे लगाने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ पैसे यदि खर्च होते भी हों तो धर्म के नाम पर करोड़ों, अरबों रुपया खर्च करने वाली जनता उसे भी सहज पूरा कर लेगी। इस प्रकार यदि जनभावना जाग्रत हो उठे तो वृक्षारोपण जैसी उपयोगी योजना बात की बात में हल हो सकती है। किन्तु यदि उसका अभाव रहे तो केवल सरकार के बलबूते कोई बड़ा काम बन पड़ेगा ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा की समस्या को लीजिए। सरकार ने इसके लिए छुटपुट प्रयत्न किए हैं। प्रौढ़ अध्यापक रखे हैं जो स्वेच्छा से इस कार्य में सहयोग दें, उनके लिए कुछ पुरस्कार प्रलोभन भी रखा है। पर इतने भर से कुछ बन नहीं पड़ रहा है। यदि देश का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति एक वर्ष में पाँच निरक्षरों को साक्षर बनाने का व्रत ले लें तो पाँच वर्ष के भीतर सारी जनता साक्षर बन सकती है, फिर एक भी व्यक्ति कहीं निरक्षर दिखाई न देगा। एक वर्ष में पाँच व्यक्तियों को साक्षर बनाने का कार्य इतना कठिन नहीं है कि उसके लिए समय निकाल सकना असम्भव प्रतीत हो। लोग ढेरों वक्त आलस और गपशप में लगाते हैं, क्या उसमें से एक घण्टा पवित्र काम के लिए नहीं निकल सकता ? इच्छा हो तो सब कुछ हो सकता है। यदि शिक्षा प्रसार का पुनीत कार्य अपने भावना स्तर में उपयोगी और आवश्यक जँच जाय तो हम उस कार्य में संलग्न रहकर राष्ट्र की एक भारी आवश्यकता को सहज ही पूरा कर सकते हैं।

अन्न की कमी और खाद्य समस्या राष्ट्र की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहेली है, उसे सुलझाने के लिए सरकार उत्पादन बढ़ाने की योजनाएँ चलाने और विदेशों से अन्न मँगाने में बहुत धन खर्च करती है। फिर भी वह उलझन सुलझती नहीं। यदि सप्ताह में एक दिन एक समय अन्न न खाने का अर्थात अर्थ उपवास रखने की प्रक्रिया को जनभावना में स्थान मिल सके तो पेट भी ठीक रहे, स्वास्थ्य सुधरे, आध्यात्मिक लाभ हो और अन्न की कमी का कठिन प्रश्न तत्काल हल हो जावे। जितनी कमी देश में रहती है वह सप्ताह में एक दिन अर्द्ध-उपवास करने की प्रक्रिया अपनाने से ही तुरन्त पूरी हो सकती है और इस कार्य में लगने वाला सरकारी धन सहज ही बच सकता है।

नैतिक शिक्षा की समस्या अत्यन्त पेचीदा दिखाई पड़ती है। स्कूलों में गणित, भूगोल आदि की पढ़ाई तो होती है पर नीति, सदाचार, संयम, अनुशासन, धर्म-कर्तव्य संस्कृति, आस्तिकता जैसे संस्कार डालने का कोई प्रबन्ध नहीं रहता। वस्तुतः इस प्रकार का उच्च शिक्षण कर सकना त्यागी, तपस्वी और आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले धार्मिक व्यक्तियों, साधु, ब्राह्मणों का काम है। इस देश में ५६ लाख व्यक्ति तो धर्म द्वारा आजीविका चलाने वाले ही मौजूद हैं। थोड़ा बहुत समय सेवा भाव से धर्म कार्यों में देते रहने वाले व्यक्ति भी कम से कम इतने तो माने ही जा सकते हैं। इस प्रकार एक करोड़ से ऊपर की धर्म सेना आज भी पूरी तरह सुसज्जित है। इन लोगों के पास समय भी है, रुचि भी है और योग्यता भी। कमी केवल भावना की है। यदि यह लोग यह स्वीकार करले कि जनमानस में आदर्श जीवन की प्रेरणा करना, सच्चा धर्म कार्य एवं ईश्वर का प्रिय पूजन है तो यह धर्म शिक्षा का भारी कार्य कर सकते हैं।

लोग खादी पहनना शुरू कर दें तो लगभग एक करोड़ लोगों की रोजी-रोटी की समस्या हल हो जाय। सफाई का महत्त्व समझ लें तो आधी बीमारियाँ दूर हो जाएँ। ईमानदारी और मेहनत की कमाई खाकर सादगी का जीवन बिताने की प्रवृत्ति जाग पड़े तो बढ़े हुए अपराधों का स्वयं ही अन्त हो जाय। पुलिस, कचहरी की आवश्यकता नाम मात्र को रह जाय। ढोंग, शेखी प्रदर्शन और अहंकार की पूर्ति के लिए होने वाला भारी अपव्यय यदि छिछोरेपन का घृणास्पद चिह्न मान लिया जाय और सादगी की सभ्य परिपाटी अपनाई जाने लगे, तो इन व्यर्थ कार्यों पर पानी की तरह बहने वाला पैसा आसानी से बच जाय। इस बचत का यदि जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्यों में सदुपयोग होने लगे तो जन जीवन की स्थिति ही दूसरी दिखाई देने लगे। यहाँ सर्वत्र स्वर्ग ही स्वर्ग बिखरा दृष्टिगोचर हो।

जो निर्माण कार्य करोड़ों रुपयों खर्च करने पर भी ठीक तरह पूरे नहीं होते, वे श्रमदान की जनभावना द्वारा बिना किसी खर्च के पूरे हो सकते हैं। उत्साह से भावनापूर्ण मनोबल के साथ कार्य करें तो गाँवों का विकास द्रुतगति से होने लगेगा। धर्म के आडम्बर में जो हर वर्ष अरबों रुपया खर्च होता है, यदि उसे सच्चे धर्म के लिए लगाया जाने लगे तो इस देश का बच्चा-बच्चा धर्मात्मा बन सकता है। बुद्ध धर्म का प्रसार सारे एशिया में कुछ हजार भिक्षुओं के प्रयत्न से हुआ था। ईसाई मिशनरी आज सारे संसार में फैले हुए हैं और अपने समाज को दिन दूने रात चौगुने वेग से बढ़ा रहे हैं। यदि वही लगन, वही भावना अपने लोगों में भी जाग पड़े तो भारतीय धर्म के महान आदर्शों को सारे संसार में फैलाया जा सकता है और विश्वशांति का स्थिर बीजारोपण हो सकता है।

सब समस्याओं की जड़ मनुष्य के मन में रहने वाली दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, उनके रुकने, सुधरने और बदलने से सब कुछ सहज ही बदल और सुधर सकता है। यदि यह न हो सका तो समस्याओं का स्वरूप बदलता और बढ़ता रहेगा। शरीर में विष भरा हो तो वह किसी बीमारी का बहाना लेकर बार-बार प्रकट होता ही रहेगा। इस प्रकार मन की शुद्धि से समाज में फैले हुए अगणित पाप-तापों का समाधान सम्भव होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार का प्रयास आवश्यक

पेट भरने के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता शिक्षा की ही रह जाती है। शरीर जीवित रखने के लिए रोटी की और अन्त:चेतना को सशक्त रखने के लिए शिक्षा की जरूरत पड़ती है। लोकमानस ने शिक्षा का महत्त्व नहीं समझा और उसकी उपेक्षा की। अत: उसके साधन न जुट सके। यदि ज्ञान की भूख जाग्रत रहती और उसके लिए माँग उठती तो सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर उसका प्रबन्ध होकर ही रहता। एक बार यदि शिक्षा की प्रबल भूख जाग पड़े, तो समझना चाहिए कि साधन जुटने में अब कोई बहुत बड़ी कठिनाई शेष नहीं रह गई है।

विचारशील वर्ग इसे अब समझने और स्वीकार भी करने लगा है। किन्तु इतने भर से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। उसके लिए व्यवस्थित प्रयास चाहिए। प्रयास की बात उठते ही लोग सरकार द्वारा उसकी पूर्ति की अपेक्षा करने लगते हैं। समाज की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयास सामाजिक स्तर पर न करके अपने अनिवार्य उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने लगते हैं। नारी शिक्षा जैसे कार्यों को जनस्तर पर क्यों पूरा नहीं किया जा सकता ? हमारा विचारशील वर्ग जनशक्ति की सामर्थ्य का कभी भी मूल्यांकन नहीं करता। यह महाकाली समस्त सम्पत्तियों, विभूतियों और उपलब्धियों की जननी है। सरकार का ढाँचा तो उसके नगण्य से टैक्स जैसे अनुदान के आधार पर खड़ा है। सरकार का अनुग्रह पाने की आदत हमें छोड़नी चाहिए और सीधे जनता के कल्पवृक्ष तक पहुँचने की तैयारी करनी चाहिए। जो पाना है, वहीं से पाया जा सकता है जनभावना जिस भी दिशा में मुड़ जाती है, उसमें सफलता सुनिश्चित ही हो जाती है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि स्थान-स्थान पर गैर सरकारी स्कूल-पाठशालाएँ खोलकर नये धंधे शुरू कर देने चाहिए। उनका यदि अपेक्षित परिणाम निकलता होता, तो सरकार द्वारा चलाए जा रहे विशाल तन्त्र से ही अब तक वह परिणाम बहुत कुछ प्राप्त हो गया होता। किन्तु आँकड़े बताते हैं कि उस दिशा में प्रगति अत्यल्प तथा अपर्याप्त ही हो पाई है।

वस्तुत: हमें शिक्षा-सम्बन्धी अपनी अवधारणा स्पष्ट करनी जरूरी है। विवेकानन्द ने कहा था—"मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति प्रदान करना ही शिक्षा है, यह प्रयास सफल बनाने वाली प्रक्रिया शिक्षा है।"

शिक्षा के मुख्य रूप तीन हैं, आकस्मिक, औपचारिक और अनौपचारिक। आकस्मिक शिक्षा वह शिक्षण है, जो जीने की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने परिवेश से स्वाभाविक तौर पर ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए बच्चा अपने शैशव में ही अपने शरीर पर नियन्त्रण तथा उसका उपयोग, अपनी मातृभाषा तथा निवास स्थान की भाषा तथा आरम्भिक शिष्टाचार आदि सीख लेता है। पारिवारिक परम्पराओं को शिशु इसी आकस्मिक शिक्षण प्रक्रिया द्वारा आत्मसात करता है। आकस्मिक शिक्षा में वह सभी कुछ आ जाता है, जो एक व्यक्ति समाज में पलने और बड़े होने की प्रक्रिया के फलस्वरूप सीखता।

स्कूली शिक्षा को औपचारिक शिक्षा कहा जाता है। जबकि अनौपचारिक शिक्षा के माध्यमों में धर्मतन्त्र, साहित्य, संगीत, नाटक, लोकनृत्य, लोकगीत, किस्से, कहावतें, किताबें, रेडियो, दूरदर्शन, संग्रहालय आदि सभी का समावेश हो जाता है। प्रौढ़ शिक्षा की सर्वोत्कृष्ट विधि अनौपचारिक शिक्षण ही है।

प्रौढ़-शिक्षा की दिशा में उत्साह भरे कदम उठें

लम्बे अन्धकार युग से निकलने के उपरान्त प्रगतिशीलता अपनाने की आवश्यकता अत्यधिक बढ़ रही है। संसार भर के प्रगतिशील लोग शिक्षा सम्वर्द्धन को भोजन की तरह ही एक अनिवार्य आवश्यकता मान रहे हैं। अपने देश के विचारशील लोगों की भी यह मान्यता है, यही चेष्टा भी। जैसे हर आदमी को रोटी मिलनी ही चाहिए, उसी प्रकार हर व्यक्ति को शिक्षित होना ही चाहिए। इसके बिना व्यक्ति आत्मचेतना के बहुमूल्य पक्षों से वंचित ही रहता है।

इन दिनों अपने देश में लगभग ३० प्रतिशत शिक्षित हैं, ७० प्रतिशत अशिक्षित। इसमें भी शहर कस्बे में पढ़े-लिखे लोग कुछ अधिक हैं, छोटे देहातों में बहुत कम। स्त्रियों में तो यह अनुपात और भी कम है। इस समस्या के समाधान का हर क्षेत्र में पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए। स्कूलों में पढ़ने योग्य बच्चे तो स्कूल में जाने भी लगे हैं। उनके लिए सरकारी, गैर सरकारी प्रयत्न भी चल रहे हैं पर उनकी समस्या विकट है, जो प्रौढ़ हो गए और समय रहते पढ़ने-लिखने का अवसर नहीं पा सके। इन दिनों इसी वर्ग का बाहुल्य है। समय की आवश्यकता को देखते हुए इस वर्ग को भी उपेक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। अभी बीस-पच्चीस साल तक अनेक प्रकार की जिम्मेदारियों का दायित्व इसी वर्ग को वहन करना पड़ेगा, जिसे प्रौढ़ अशिक्षित कहा जा सकता है।

इनकी अभिरुचि भी एक प्रकार से क्षीण हो गई है। बड़ी आयु में पढ़ते हुए संकोच भी लगता है। उत्साह की कमी से पढ़ने का प्रोत्साहन भी नहीं उभरता। इस पर भी कठिनाई यह है कि यदि इन प्रौढ़ अशिक्षितों को किसी प्रकार भूल सुधारने और नये सिरे से पढ़ना आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित करके उन्हें सहमत भी किया जाए तो पढ़ने के लिए समय नहीं निकलता और पढ़ाने वाले ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं मिलते, जो उनका संकोच छुड़ाकर उन्हें विशेष मनायोगपूर्वक पढ़ा सकें। समय निर्धारित करना भी एक बड़ी समस्या है। पढ़ाने वालों की सुविधा के समय प्राय: यह अनपढ़ उपस्थित नहीं हो पाते, उस समय उन्हें रोटी कमाने के प्रबन्ध में व्यस्त रहना पड़ता है। जब उन्हें फुरसत होती है तो अध्यापक उस समय नहीं पहुँच पाते पढ़ने वालों की व्यस्तता की तरह पढ़ाने वालों को भी अपनी निजी कार्यों के लिए समय चाहिए। कुसमय उपस्थित होने के लिए अध्यापक ही क्यों सहमत हों ? यह एक बड़ी कठिनाई है जिसके कारण इस दिशा में किए गए सरकारी प्रयत्नों को भी वैसी सफलता नहीं मिल पा रही, जैसी कि मिलनी चाहिए।

सुविधाजनक उपाय है कि लोकसेवी मिल-जुलकर प्रौढ़ शिक्षा सम्वर्द्धन का योजनाबद्ध प्रयत्न करें। मुहल्ले-मुहल्ले पुरुषों को पढ़ाने के लिए रात्रि पाठशालाएँ खुलें। भले ही वे दो घण्टे नित्य ही क्यों न चला करें। रात्रि का समय ही आमतौर से पुरुषों के लिए सुविधा का होता है। इसी प्रकार महिलाओं को फुरसत दूसरे प्रहर रहती है। बारह से चार के बीच का समय हर क्षेत्र के हर वर्ग की महिलाओं में थोड़ा खाली रहता है। उस समय हर मुहल्ले की महिलाएँ आसानी से इकट्ठी हो सकती हैं और उनके पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला चल सकता है।

आन्दोलन के आरम्भिक दिनों में वेतन पर अध्यापक-अध्यापिकाओं को रखा जा सकना कठिन है। जिनको मुश्किल से पढ़ने का महत्त्व समझाया और किसी प्रकार पढ़ने के लिए तैयार किया गया हो, उनसे ऐसी आशा किस प्रकार की जाए कि वे बड़ी फीस देकर अध्यापक नियुक्त करें। ऐसी दशा में एक ही आशा की किरण रह जाती है कि हर शिक्षित को विद्या ऋण चुकाने के लिए उसी प्रकार सहमत किया जाए जैसे कि अनपढ़ों को उस अभिशाप से छुटकारा दिलाने के लिए अनेक तर्क, प्रमाण, उदाहरण देकर किसी प्रकार तैयार किया जाता है। शिक्षितों में हर किसी से सम्पर्क साधा जाना चाहिए और उनकी उदारता, सद्भावना जगाकर इस बात के लिए सहमत किया जाना चाहिए कि वे दो घण्टे का समय प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए दिया करेंगे। पुरुष-पुरुषों को पढ़ावें और महिला-महिलाओं को। दोनों को एक साथ पढ़ाने की व्यवस्था शायद अपने रूढ़िवादी समाज में सफल न हो। यदि आपत्ति न उठे तो साथ-साथ पढ़ने-पढ़ाने में भी हर्ज नहीं है।

प्रौढ़ शिक्षा पाठ्यक्रम प्राइमरी स्कूलों जितना रखा जाय। पहली से पाँचवें दर्जे तक की सरकारी पुस्तकें ही इसमें काम आ सकती हैं। इसके लिए कोई नया पाठ्यक्रम ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है। पढ़ाई के समय में ही प्रश्नोत्तरी का क्रम भी आधे घण्टे का जुड़ा रखा जाए, जिसमें व्यक्तिगत जीवन को, परिवार व्यवस्था को तथा सामाजिक व्यवहार को सभ्य स्तर का बनाए रहने के सम्बन्ध में पूछने-बताने की प्रक्रिया चलती रहे। अच्छा होता इस विषय की आवश्यक पुस्तकें भी बाजार में मिल जातीं, जो प्रौढ़ों की योग्यता और आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखी गई होतीं। जब तक वह व्यवस्था सर्वत्र सुलभ न हो तब तक पूछने-बताने और कापी पर नोट लिखाने की पद्धति भी काम में लाई जा सकती है।

प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन गली-गली, मुहल्ले-मुहल्ले, गाँव-गाँव चलना चाहिए। इसके लिए घर-घर सम्पर्क साधने, जन-जन को समझाने के लिए लोकसेवियों की टोली निकलनी चाहिए। प्रथम चरण यही है कि पढ़ने वालों और पढ़ाने वालों को वस्तुस्थिति समझाई जानी चाहिए और उनकी भावनाएँ उभार कर इस पुनीत कार्य में सम्मिलित होने के लिए तैयार करना चाहिए। बिना इस तैयारी के पाठशालाएँ कौतूहल बनकर रह जाती हैं। दो-चार दिन कौतूहलवश आकर लोग अपना जोश समाप्त कर देते हैं। इन दिनों में अभी तक न पढ़ने वालों को प्रोत्साहित करने वाला कोई प्रबल प्रयास चला है और न पढ़ाने वालों को विद्या ऋण चुकाने के लिए—इस महान सेवा साधना के लिए सहमत करने के लिए उतना दबाव डाला गया है। जिससे कि वे संकीर्णता छोड़कर परमार्थ के लिए साहस जुटा सकें।

प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए महिलाओं को प्रोत्साहित करने से अधिक सफलता मिल सकती है। शिक्षित महिलाओं में भी कितनी ही इतनी उदार हो सकती हैं कि वे शिक्षिका के रूप में दो घण्टे नित्य की सेवा दे सकें। आवश्यकता उन लोकसेवियों की है, जो इस व्यवस्था को जुटाने के लिए अपने सम्पर्क क्षेत्र में दौड़धूप कर सकें। प्रसुप्ति को जाग्रति में बदल सकें। इतना करने भर से पुरुषों और महिलाओं की प्रौढ़ पाठशालाओं का स्वरूप देखते-देखते बड़ी संख्या में हो सकता है। यह प्रचलन एक व्यापक आन्दोलन के रूप में विकसित हो सके तो देश की वास्तविक प्रगति के पथ पर अग्रसर करने वाला एक अति प्रभावी कदम उठ सकता है।

एक तरीका यह भी हो सकता है कि हर शिक्षित व्यक्ति स्वयं अशिक्षितों को अपने सम्पर्क से ढूँढ़े। उनमें से कम से कम पाँच को साक्षर बनाने की जिम्मेदारी उठाए। ऐसा समय निर्धारित करें जो दोनों पक्षों को सुविधाजनक होता हो। पढ़ने वाले अपने घर बुलाए जा सकते हैं या उनके घर जाया जा सकता है। इच्छा गहरी और वास्तविक हो तो मार्ग निश्चित रूप से निकल सकता है। 'एक से पाँच' बनाने की शिक्षा-नीति इतनी सरल और सफल सिद्ध हो सकती है कि यदि उसके लिए कुछ लोग ही इस सेवा का महत्त्व समझने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे करने में जुट पड़ें, तो ग्वालवालों द्वारा लाठी का सहारा लगाकर गोवर्द्धन उठाने जैसा चमत्कार आँखों के सामने ही प्रस्तुत हुआ देखा जा सकता है।

इस आन्दोलन की धुरी सोई हुई अभिरुचि जगाने पर निर्भर है। भूख न हो तो भोजन कैसे तो रुचे और कैसे पचे ? शिक्षा से तात्कालिक और दूरवर्ती क्या लाभ है, यह तथ्य जन-जन को विशेषतया शिक्षितों को समझाया ही जाना चाहिए कि प्रगति की दिशा में बढ़ने के लिए शिक्षित होना अनिवार्य है। उस प्रयोजन की पूर्ति घर-घर जाकर अलख जगाकर व्यापक जनसम्पर्क से ही की जा सकती है।

शिक्षित युवा वर्ग का साक्षरता अभियान सफल हुआ

जो यांत्रिक वाहन दक्ष चालक के द्वारा नियन्त्रित होता है वह कितनों को अपनी मंजिल पर पहुँचा देता है किन्तु वही नियन्त्रण न रहने पर कई लोगों के प्राण संकट में डाल देता है। जो विद्युत हमारे कल-कारखाने चलाती है, अन्धेरे घर-मकानों में उजियारा करती है, गर्मी में हवा करती है, वही असावधानी व गलत प्रयोग की स्थिति में संकट व आगजनी का कारण बन जाती है। इससे शक्ति की महत्ता कम नहीं हो जाती। शक्ति अन्ततः शक्ति है। सदुपयोग हो तो वह लाख रुपए की, दुरुपयोग होने पर दो कौड़ी की भी नहीं। मानव के साथ भी यही तथ्य लागू होता है। युवा वर्ग की शक्ति, जो हड़ताल, नारेबाजी, घेराव, पथराव, नकलबाजी, उछलकूद व उच्छृंखलता के रूप में प्रकट हो रही है, वही यदि किसी अच्छी दिशा में मुड़ जाय तो पर्वतों का स्थान बदलने व नदियों की धारा की दिशा मोड़ने जैसा ही चमत्कार उपस्थित कर देती है। पिछले वर्ष पश्चिमी बंगाल के भोजडांगा नामक छोटे से गाँव में इस युवा शक्ति का ऐसा ही एक चमत्कार देखने को मिला है।

एक वर्ष पहले जहाँ इस गाँव में साक्षरों की संख्या मुश्किल से बीस प्रतिशत ही थी किन्तु एक वर्ष में ही यह संख्या बढ़कर सौ प्रतिशत हो गई है। अब इस गाँव में एक भी व्यक्ति निरक्षर नहीं रहा है। सब लोग साक्षर बन चुके हैं। यह भोजाडांगा गाँव के शिक्षित युवक-युवतियों की सूझ-बूझ, लगन, विवेकशीलता व दृढ़ संकल्प का परिणाम है कि वे उन लोगों को साक्षर बनाने में सफल हुए हैं जो यह कहते थे—"सारी उमर तो बिना पढ़े ही गुजर गई, अब मरते वक्त क्या खाक पढ़ाई करेंगे।"

बात यों शुरू हुई कि गाँव के एक बी० ए० पास युवक निशिकान्त ने किसी वयोवृद्ध के मुँह से यह सुना—"आज के लड़के तो किसी काम के नहीं, उन्हें सिवाय खुराफातों के कुछ सूझता हीं नहीं।" यह बात उसे चुभ गई। क्या अपने प्रति वयोवृद्धों के मन में बैठी इस धारणा को वे बदल नहीं सकते ? 'क्यों नहीं' उसी के भीतर से आवाज आई और इसी चुनौती को स्वीकार कर उसने यह साक्षरता अभियान चलाया। उसके साथियों ने भी उसके इस अभियान में सहर्ष भाग लेने की सहमति दी। फिर तो काम चल पड़ा बुजुर्गों ने अपने से आधी व एक तिहाई उम्र के लड़कों से पढ़ना नहीं स्वीकारा तो उन्हें समझाया, बुझाया गया, उनके सम्मान को यथावत बनाए रखने की बात कही गई। कुछ विवेकशील वृद्धों के बात गले उतर भी गई और गाँव की चौपाल में रात्रि पाठशाला चल पड़ी। एक दो दिन तो उपस्थिति कम रही पर धीरे-धीरे बढ़ने लगी और सभी बुजुर्ग और वयस्क आने लगे। बच्चों को भी स्कूल भेजने का अनिवार्य क्रम चलाया गया।

युवकों को इस तरह काम करते देख युवतियों की उमंगें भी लहरायीं और वे महिलाओं की अपराह्न शालाएँ चलाने लगीं। देखते ही देखते सारे गाँव में पढ़ने-लिखने का एक वातावरण बन गया। जो कुछ अड़ रहे थे। वे भी अब अल्पसंख्यक बन जाने के कारण अपनी हठधर्मी छोड़ पढ़ने बैठ गए।

हमारे देश में शिक्षा प्रसार की बड़ी आवश्यकता है। मुश्किल से पच्चीस प्रतिशत लोग साक्षर हैं। ऐसी स्थिति में जनतन्त्र की सफलता व राष्ट्र की प्रगति के स्वप्न देखना कितना बेमानी होता है। शिक्षा, समाज कल्याण, समाज-सेवा आदि के कार्य सेवा-भावना से जितनी अच्छी तरह सम्पादित हो सकते हैं। उतनी अच्छी तरह नौकरपेशा लोगों द्वारा नहीं, जिन्हें सरकार रखती है। आज के युवा वर्ग को यदि समुचित मार्गदर्शन मिले और उन पर समाज की जिम्मेदारी डाली जाय तो वे निश्चित रूप से अपनी शक्ति का सदुपयोग करते हुए समाज-सेवा में ऐसे ही कीर्तिमान स्थापित करें, जैसे भोजाडांगा में हुए हैं। यह युवा शक्ति जो आज विध्वंसक और उच्छृंखलतापूर्ण कार्यों में लगी हुई है वही यदि सृजन और सेवा की रचनात्मक प्रवृत्तियों में लग सके, तो निश्चित रूप से यह देश और समाज के लिए समस्या न बनकर प्रगति का सेतु बन जाय।

शिक्षा एवं साक्षरता का प्रसार किया जाय

धर्म दृष्टि से लोग दान-पुण्य करते, धर्मशाला बनवाते, औषधालय खुलवाते, भूखों को भोजन, नंगों को वस्त्र बाँटते। अपाहिजों की सेवा करते, सदाव्रत लगाते, अन्धों को राह दिखाते, गोदान व स्वर्णदान करते तथा आवश्यकता, अभाव से पीड़ितों की यथासाध्य सहायता करते। निश्चय ही यह और इन जैसे ही कितने परोपकार एवं परमार्थपरक कार्य, लोग करते रहते हैं। इनसे उन्हें पुण्य प्राप्त होता और परलोक का निर्माण भी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु एक पुण्य ऐसा भी है जो धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण से महान और उपयोगी है। उस पुण्य-परमार्थ से बढ़कर संसार में परोपकार का कोई काम नहीं—यह परमपावन एवं पुण्य पूर्ण परमार्थ है—मानव समाज का अज्ञानान्धकार दूर करना। अन्धकार में भटकते मनुष्यों को ज्ञान की दिव्य-दृष्टि देना अन्धों को आँखें देने के समान है। हर बुद्धिमान एवं पुण्येच्छुक व्यक्ति को इस पुण्य प्राप्ति के लिए यथासाध्य प्रयत्न करना ही चाहिए। आज के युग में यह सबसे बड़ा धर्म और सबसे बड़ा परोपकार माना जाएगा।

जो विचारक एवं विद्वान व्यक्ति हैं, उन्हें तो शिक्षितों के बीच ज्ञान का प्रकाश फैलाना ही चाहिए। इसके साथ जो लोग शिक्षित हैं, उन्हें अशिक्षितों एवं निरक्षरों के बीच शिक्षा एवं साक्षरता का प्रचार करना चाहिए। जो लोग अशिक्षित एवं निरक्षर होते हैं, वे बहुधा शिक्षा साक्षरता के प्रति अभिरुचि नहीं रखते और न उसकी आवश्यकता ही समझते हैं। वे अपनी यथावत स्थिति के अभ्यस्त ज्यों-त्यों काम चलाते रहने में ही सन्तुष्ट रहा करते हैं। ऐसे लोगों के बीच शिक्षा एवं साक्षरता का प्रचार करने के लिए पहले उनमें शिक्षा की आवश्यकता एवं अभिरुचि की भावना उत्पन्न करनी होगी।

शिक्षा की आवश्यकता अनुभव कराने के लिए शिक्षित लोगों को उन्हें समय-समय पर आवसरिक रूप से शिक्षा के लाभ और अशिक्षा की हानियों से अवगत कराना चाहिए, इसके लिए यही जरूरी नहीं कि लोगों को एकत्र करके भाषण-व्याख्यान ही दिए जाएँ। ऐसा भी किया जा सकता है—किन्तु नित्यप्रति इस दिशा में कुछ न कुछ सेवा करते रहने के लिए नित्यप्रति लोगों के पास जाया जाय और उनसे वार्तालाप के माध्यम से अपने उद्देश्य की पूर्ति की जाए। किन्हीं एक दो अशिक्षितों अथवा निरक्षरों को जो कि परिचित अथवा प्रभाव में हों लक्ष्य बनाकर भी यह सेवा सम्पादित की जा सकती है।

शिक्षा प्रचार के देवदूतों को चाहिए कि वे उन्हें बताएँ कि आज का समय शिक्षितों का समय है। शिक्षित लोग अपेक्षाकृत अधिक धन तथा सामाजिक सम्मान पा रहे हैं। यह प्रजातन्त्र का युग है। इसमें अपने कर्तव्य एवं अधिकारों के प्रति अधिक से अधिक जानकारी होना ही हितकर है। जो लोग पढ़े-लिखे होते हैं उनकी बुद्धि अपेक्षाकृत अधिक विकसित होती है। वे मत माध्यम से राजनीति में स्थान बनाकर सत्ता-सीमा में पहुँच जाते हैं। उन्हें इसका पता रहता है कि किसको मत देना ठीक होगा और किस प्रकार मत प्राप्त किया जा सकता है। समाचारों, खेलों, प्रसारणों एवं पुस्तकों का अध्ययन कर वे देश-विदेश की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक गतिविधियों से परिचित रहने के कारण अशिक्षितों की अपेक्षा उन्नति एवं सफलता के अवसरों का अधिक उपयोग कर सकते हैं। वे धूर्त, वंचक तथा अवसररूपियों से अपने अधिकारों एवं हितों की रक्षा करने में सावधान रहते हैं। प्रजातन्त्र के वर्तमान युग में अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का समुचित सन्तुलन बनाए रखकर शिक्षित लोग ही स्वतन्त्रता के सुन्दर सुख का रसास्वादन कर सकते हैं। अशिक्षित लोग भी करते हैं किन्तु अल्प एवं अवास्तविक रूप में। व्यापार, व्यवहार, आचार एवं विचार का सौंदर्य अधिकांश में शिक्षा पर ही निर्भर रहता है। शिक्षित व्यक्ति की भाषा शुद्ध, शिष्ट तथा सुष्ठ हुआ करती है जिसके प्रभाव से वह समाज के बीच वार्तालाप से अशिक्षितों की अपेक्षा अधिक लाभान्वित होता है। शिक्षा के सुकृत से मनुष्य को लाभ ही लाभ होता है।

इन भौतिक एवं भावनात्मक लाभों के अतिरिक्त आत्मिक एवं आध्यात्मिक लाभ तो शिक्षा का विशेष प्रसाद है। स्वाध्याय का सुख-चिन्तन एवं मनन का आनन्द, विद्वानों का सत्संग, व्याख्यानों का सार-प्रसारणों का प्रमोद, दुनिया का दर्शन, अनुभवों की शिक्षाओं का लाभ, शिक्षा के द्वारा ही ठीक-ठीक रूप में पाया जा सकता है। शिक्षा से मन, बुद्धि तथा आत्मा का विकास होता है। शिक्षा से हीन व्यक्ति ऐसे अनेक लाभों एवं अनुभवों से वंचित रह जाता है, जिससे शिक्षित व्यक्ति सहज लाभ उठाया करते हैं।

शिक्षा से होने वाले लाभों के साथ-साथ प्रचारार्थियों को अशिक्षा से होने वाली ऐसी सामान्य एवं नित्य-प्रतीय हानियों एवं असुविधाओं से भी अवगत कराना चाहिए, जो उनके जीवन में घटित होती रहती हैं किन्तु वे स्वभाव, संस्कार एवं अभ्यासवश न तो उनकी ओर ध्यान देते हैं और न उनका कष्ट अनुभव करते हैं।

उन्हें बतलाना चाहिए कि शिक्षा के अभाव में उन्हें अपनी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक चिट्ठियाँ और लिखा-पढ़ी के रुक्के लिखाने-पढ़ाने के लिए दूसरों के पास जाना पड़ता है, जिनका सही पढ़ा और लिखा जाना उनकी कृपा पर ही निर्भर रहता है। यदि कोई शिक्षित इस सहायता में वंचकता अथवा प्रमाद नहीं भी करता तब भी किसी का यह परावलम्बन एवं परमुखापेक्षण न तो उचित ही है और न शोभनीय। बहुत बार लोगों के पास इसके लिए समय नहीं रहता फिर भी शिष्टचार वश वे दु:ख दबाकर चिट्ठी-पत्री अथवा रुक्का-रसीद लिखने-पढ़ने के लिए विवश होते हैं। किसी में अपनी कमी के कारण इस प्रकार की विवशता उत्पन्न करना सभ्यतापूर्ण नागरिकता नहीं मानी जा सकती।

शिक्षा के अभाव में न्यायालयों, कार्यालयों एवं व्यवसायों में तो अपने न जाने कितने हितों की हानि उठानी पड़ती है। दरबान, दफ्तरी, पेशकार तथा अहलमदों के साथ बाबुओं, वकीलों की कृपा पर अपने अधिकारों, हितों तथा उद्देश्यों की सुरक्षा एवं जानकारी प्राप्त हो पाती है। यह अज्ञानजन्य स्थिति कितनी कष्टकारक होती है इसका अनुभव जब-तब अशिक्षितों को होता ही रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पैसे की लिखा-पढ़ी, वसीयत एवं वयनामे की कार्यवाही, टिकटों एवं स्टाम्पों के हिसाब-किताब में न जाने कितनी बार गलत एवं विचारहीन आदमियों के हाथों विडम्बित होना पड़ता है। रामायण, गीता, पुराण आदि की आत्म-कल्याणकारी पुस्तकों को पढ़वाने, सुनने के लिए परिवार अथवा पास-पड़ौस के शिक्षित लोगों का मुँह तकना तथा अनेक बार इन्कार तक सुनना पड़ता है। इससे आत्मा तो आध्यात्मिक लाभ से वंचित होती है, मन को भी दु:ख होता है।

इस प्रकार हानि-लाभ के प्रकाशन द्वारा लक्षित लोगों की दृष्टि में शिक्षा एवं साक्षरता का महत्त्व स्थापित कर देने के बाद भी यदि वे उस दिशा में उत्सुक न हों, तो उनमें प्रयत्नपूर्वक शिक्षा एवं साक्षरता की अभिरुचि उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए। उन्हें अच्छी जीवनोपयोगी पुस्तकें तथा प्रेरक कथाओं के साथ-साथ समाचार पत्र एवं पत्र-पत्रिकाएँ पढ़कर सुनानी चाहिए और इस ढंग से उनकी व्याख्या एवं विचेचन करना चाहिए जिससे उनको ज्ञान वृद्धि की जिज्ञासा और आनन्द अनुभव होने लगे। उनकी श्रवण की भूख पठन के लिए प्रेरित होने लगे। उन्हें शिक्षित लोगों के बीच ले जाना और परिचित कराना चाहिए।

इस प्रकार जब एक या अनेक शिक्षा अथवा साक्षरता के लिए तैयार हो जाएँ, तो तत्काल उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था बनानी चाहिए। व्यक्तिगत रूप से पढ़ाया जा सकता है, सामूहिक रूप से पाठशाला लगाई जा सकती है। रात्रि एवं प्रभात शिक्षा गोष्ठियों की व्यवस्था की जा सकती है। रात्रि पाठशालाओं के साथ प्रौढ़ पाठशालाएँ बहुत ही उपयोगी रहेंगी। इस प्रकार शिक्षा प्रसार का अधिकांश प्रचार प्रौढ़ों के बीच ही किया जाना चाहिए। क्योंकि बच्चों को तो पाठशाला जाने का अवसर रहता है, प्रौढ़ स्त्री-पुरुष जो निरक्षरता के कलंक से दूषित हो रहे हैं उन पर प्रयत्न किया जाना बहुत आवश्यक है। आइए हम सब शिक्षित लोग राष्ट्रीय तथा मानव समाज की अज्ञानरूपी निशा में सूर्योदय का प्रभात पुण्य प्राप्त करें और अपनी आत्मिक उन्नति द्वारा आध्यात्मिक तथ्य की ओर उठें।

शिक्षा प्रसार को जन आन्दोलन बनाना होगा

खेती-बाड़ी के लिए आवश्यक उपकरण एवं साधन हमें स्वयं ही जुटाने पड़ते हैं। विवाह-शादी का प्रबन्ध भी अपने निजी साधनों और प्रयासों पर निर्भर रहता है। कपड़े, मकान, हारी-बीमारी, रसोई, प्रजनन, बचत जैसे क्रियाकलापों में अपनी निज की सूझ-बूझ, प्रयत्नशीलता और साधन-सामग्री ही काम देती है। इसके लिए जिस-तिस से यत्किंचित सहायता भले ही मिल जाय पर तथ्यत: जीवन के साथ जुड़े हुए इन अनेकानेक पक्षों की व्यवस्था बनाने का दायित्व हमें स्वयं ही वहन करना पड़ता है। इन्हीं मदों में एक समग्र शिक्षा को भी जोड़ना चाहिए और उसका समाधान मिल-जुलकर करना चाहिए।

सरकारी तन्त्र भी जनता से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष टैक्स वसूल करके ही चलता है। उस राशि को लोग इच्छा या अनिच्छा से देते ही हैं। हर किसी ने समझ लिया है कि सरकारी टैक्स देना आवश्यक है। उसे चुराने-छिपाने पर कड़े राजदण्ड का भागी बनना पड़ता है। इसलिए बिना ननुनच किए उसे चुकाया एवं वसूल किया जाता रहता है। विवाह-शादियों में भी कम खर्च नहीं पड़ता । वह राशि भी प्राय: उतनी ही बैठ जाती है जितना कि सरकारी टैक्स चुकाना पड़ता है। अन्य कितने ही कार्य ऐसे हैं, जिनकी बड़ी राशि की येनकेन-प्रकारेण व्यवस्था करनी ही पड़ती है। जन्म-मरण के अवसर पर हर्ष एवं शोक मनाने के साथ-साथ खर्चीले प्रीतिभोज भी होते रहते हैं। हारी-बीमारी में, चिकित्सा-परिचर्या काम हर्ज होने जैसे बोझिल भार भी स्वयं ही वहन करने पड़ते हैं। तीर्थयात्रा, कथावार्ता आदि धर्मकृत्यों में भी खर्च करना पड़ता ही रहता है। चोरी-मुकदमा आदि के अप्रत्याशित खर्चे भी कभी-कभी आ पड़ते हैं और उनके लिए भी कहीं न कहीं से, किसी न किसी प्रकार प्रबन्ध करना ही पड़ता है। इन्हीं मदों में एक और बात जोड़नी चाहिए। वह है जनस्तर पर की जाने वाली समग्र शिक्षा की व्यवस्था।

जिस प्रकार अनेकों उदारचेत्ता, भावनाशील व्यक्ति निजी धन खर्च करके देवालय, धर्मशाला आदि बनाते हैं। जिस प्रकार कुछ लोग सार्वजनिक धन से कोई बड़े काम सम्पन्न करते हैं। उसके लिए चन्दा उगाहते हैं। संचालन समिति बनाते हैं। उसी प्रकार हर क्षेत्र में गैर सरकारी ऐसे शिक्षा संस्थान खड़े किए जा सकते हैं, जो सरकारी शिक्षा से छूटे हुए विषयों को छोटे छात्रों को ही नहीं कार्यरत वयस्कों को भी उनकी सुविधा के समय पर पढ़ा सकें। इसे एक प्रकार से विकसित प्रौढ़-शिक्षा भी कहा जा सकता है। प्रचलित प्रौढ़-शिक्षा में साक्षरता को ही लक्ष्य माना गया है। न कुछ से तो कुछ अच्छा। निरक्षरों को साक्षर बना देना भी कम उत्साहवर्द्धक नहीं है, पर उसे कारगर बनाना है तो उसे कुछ महीनों में समाप्त नहीं किया जा सकता, वरन् कई साल की पाठ्य-पद्धति बनाकर चलना होगा ताकि जीवनोपयोगी सभी विषयों का सुविस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकना सम्भव हो सके। इसे परिस्थितियों की विवशता में छोटा भी किया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि एक-एक विषय के अलग-अलग खण्ड हों और उन्हें एक-एक कदम बढ़ाते हुए पढ़ते रहा जाय। ऐसा भी हो सकता है कि सभी आवश्यक विषयों का समावेश करते हुए क्रमश: अधिक गहरी जानकारी प्राप्त करते रहने में निरत रहा जाय। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्णय लोकरुचि अथवा संस्थानों की सूझ-बूझ के आधार पर हो सकता है। मूल बात यह है कि यह प्रशिक्षण ढाँचा किस प्रकार खड़ा किया जाय। इसकी आधारशिला रखते हुए सरकारी शिक्षा से प्रतिद्वन्द्विता करने या समानान्तर उपक्रम चलाने की बात किसी को भी नहीं सोचनी चाहिए। यह पूरक निर्धारण है। जो छूटा हुआ है उसकी पूर्ति करना इसका उद्देश्य है। विशेषतया उन ९० प्रतिशत व्यक्तियों के लिए समग्र शिक्षा की व्यवस्था करनी है जो या तो निरक्षर हैं या स्वल्प शिक्षित। कार्य व्यस्त नर-नारियों को उनकी सुविधा के समय में उपयोगी ज्ञान प्रदान करना, इस प्रयास का आधारभूत लक्ष्य है।

ऐसे प्रयत्न पिछले दिनों होते रहे हैं और एक सीमा तक सफल भी हुए हैं। गैर सरकारी व्यवस्था के रूप में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग महिला विद्यापीठ, आर्यवीर दल आदि ने अपने विशेष पाठ्यक्रम चलाए थे। उस हेतु पुस्तकें छापीं, विद्यालय खोले और परीक्षा व्यवस्थाएँ कीं। वे कम लोकप्रिय नहीं हुईं। उन दिनों के उनके प्रयासों को असफल नहीं कहा जा सकता है। संस्कृत परीक्षाएँ पं० सातवलेकर के तत्वावधान में चलती थीं। कभी उनका बहुत प्रचलन और विस्तार था।

आर्य समाज ने गुरुकुलों की स्थापना इसी दृष्टि से हाथ में ली थी। उनके गैर सरकारी कोर्स थे और परीक्षाएँ भी निजी ही होती थीं। गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार, गुरुकुल वृन्दावन, कन्या गुरुकुल सासनी जैसी ढेरों संस्थाएँ ऐसी शिक्षा व्यवस्था जनसहयोग से अपने बलबूते चलाती थीं। अब तो प्रवाह ही बदल चला। गुरुकुल भी सरकारी लाइन पर आ गए। उसी की मान्यता, सहायता और पाठ्य-पद्धति अपनाने लगे। निज का स्वरूप तो नाम मात्र का रहने लगा है। इस निराशा का एक कारण भी था कि उनमें वैसी सर्वांगपूर्ण पाठ्य-पद्धति नहीं थी, जिसे पढ़ने के बाद शिक्षार्थी जीवन के हर क्षेत्र में समग्र प्रखरता अर्जित कर सकें और स्वावलम्बनपूर्वक स्वतंत्र जीवन बिता सके। कितनी ही संस्कृत पाठशालाएँ भी चलती हैं पर उनमें एक भाषा विशेष की जानकारी ही प्रधान रहती है। धर्म पक्ष का कुछ ज्ञान भी कराया जाता है।

उपरोक्त प्रयत्नों के पीछे उद्देश्य भले ही यह रहा है कि शिक्षार्थियों के लिए वह विधि-व्यवस्था जुटाई जाय जो सरकारी स्कूलों में पूरी नहीं हो पातीं। इतने पर भी उनका चिन्तन-निर्धारण इस दिशा में नहीं चला कि विद्यालय स्थापित करने तक सीमित न करके उसे सर्वजनीन कैसे बनाया जाय ? पिछड़े देहातों तक उसे कैसे पहुँचाया जाय और सच्चे अर्थों में जीवन विज्ञान में शिक्षार्थियों को किस प्रकार निष्णात बनाया जाय? इसके लिए जहाँ-तहाँ छुटपुट केन्द्र नमूने के रूप में तो बनाए जा सकते हैं। पर समस्या का समग्र समाधान तभी सम्भव है जब वह व्यापक बने और व्यस्त वयस्कों को जीवन विज्ञान की ऐसी शिक्षा देने का लक्ष्य रखे, जो पिछड़ेपन के हर पक्ष को बुहारती हो। प्रतिभा का, उत्कर्ष का हर पक्ष निखारती हो।

उपरोक्त शिक्षण व्यवस्था प्रौढ़ पाठशाला स्तर पर चलनी चाहिए और जहाँ भी व्यवस्था बन पड़े वहाँ से आरम्भ करके हर गाँव तक पहुँचाने के लिए क्रमिक प्रयास चलना चाहिए। इसके लिए पाठ्य-पुस्तकें बनें, जो लड़कों को, लड़कियों को, महिलाओं को, युवकों को, गृहस्थों को, वयोवृद्धों को, उनकी विशेष समस्याओं के विशेष समाधान प्रस्तुत कर सकें। वे समाधान भी सामयिक, व्यावहारिक एवं क्रियान्वयन में सरल-सम्भव होने चाहिए। ऊँची आदर्शवादिता सुनने-कहने में तो लच्छेदार लगती है पर उसका मन:स्थिति एवं परिस्थिति के साथ तालमेल नहीं बैठता। इसलिए उसे हृदयंगम कर सकना, व्यवहार में उतार सकना सम्भव नहीं हो पाता। वस्तु स्थिति समझी जानी चाहिए और चेष्टा इस स्तर की करनी चाहिए जो जनसाधारण के लिए सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से सरलतापूर्वक अपनाए जाने योग्य हो। उसके पीछे तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण इतने प्रबल होने चाहिए, जो हर विचारशील को प्रभावित एवं सहमत कर सकें। ऐसी पाठ्य-पुस्तकें यदि प्रस्तुत की जा सकें तो उन्हें पाठशाला के रूप में तो पढ़ाया ही जा सकता है। अन्यथा अवकाश के दिन उन्हें पढ़ाने, सुनाने, प्रश्नोत्तरी के आधार पर हृदयंगम कराने के लिए सत्संग स्तर का प्रयास हो तो तनिक-सा प्रयास करने पर क्रम व्यवस्था का ढर्रा घूम सकता है।

पाठ्यक्रम बनने के साथ ही अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी। वे वेतन देकर नहीं रखे जा सकते। इतने व्यापक कार्यक्रम हेतु वेतनभोगी शिक्षक जुटाने पर तो करोड़ों-अरबों की धनराशि अपेक्षित होगी। इसके लिए सेवानिवृत्त शिक्षित व्यक्तियों को विद्या ऋण चुकाने के रूप में नि:शुल्क सेवा के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यह प्राचीनकाल की वानप्रस्थ परम्परा जैसा उपक्रम है। आवश्यक नहीं कि निवृत्त शिक्षित ही इस क्षेत्र में उतरें। कार्यव्यस्त सेवाभावी भी इस हेतु न्यूनतम दो घण्टे का समयदान देने लगें, तो इस योजना के कार्यान्वयन में आवश्यक अध्यापकों की नियुक्ति वाली व्यवस्था पूरी हो सकती है। शिक्षा विस्तार के लिए समय-दान का आन्दोलन उसी उत्साह के साथ चलाया जाना चाहिए जैसा कि पिछले दिनों सत्याग्रह आन्दोलन, खादी आन्दोलन, भू-दान आन्दोलन आदि चले थे और उस आधार पर अनेकों कार्यकर्ता सेवा क्षेत्र में उतरे थे। उनके सहयोग से गोवर्द्धन उठाने और समुद्र सेतु बनने जैसे भारी-भरकम संकल्प पूरे हुए थे।

समग्र शिक्षा प्रसार को यदि जन-आन्दोलन बनाया जाना है, तो शिक्षितों को विद्या ऋण चुकाने के लिए एक आवेश उत्पन्न करना होगा। इसके लिए प्रचण्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आन्दोलन जैसी पृष्ठभूमि बनाई जाय। उसके लिए लेखनी वाणी का भरपूर प्रयत्न किया जाय। इस समुद्र मंथन से अनेकों नर-रत्न उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु निकल सकते हैं।

आवश्यक नहीं कि इस प्रयोजन के लिए निजी नई इमारत बनाई जाय। किसी का खाली कमरा, आँगन, चौपाल, देवालय, वृक्षों का झुरमुट जैसा कोई स्थान इसके लिए चुना जा सकता है। जहाँ ऐसी जगह नहीं मिल पाए, वहाँ स्थान किराये पर भी लिया जा सकता है और उसमें पारियाँ अदल-बदल कर कई कक्षाओं का संचालन किया जा सकता है।

अध्यापकों का समय-दान साधु-ब्राह्मण की वानप्रस्थ परम्परा को नये सिरे से बढ़ाकर उपलब्ध किया जा सकता है। इस देश की उदारता, धर्मपरायणता, पुण्य परमार्थ के प्रति रुझान प्रसिद्ध है। इन दिनों वह दिशा-भ्रम से संग्रस्त हो गया है। भटकाव में उलझ गया है। निहित स्वार्थ उसका शोषण कर रहा है। भ्रम-जंजालों में उलझा रहा है। इसलिए यह भाव-सम्वेदना और धन सम्पदा निरर्थक पाखण्डों में गल रही है। यदि यथार्थता को समझने-समझाने के लिए नए सिरे से शंखनाद किया जाय तो हर भावनाशील को यह अनुमान करने का अवसर मिलेगा कि शिक्षा ही सबसे बढ़कर धर्मकृत्य है। उससे दाता और गृहीता दोनों का कल्याण होता है।

चूँकि यह प्रक्रिया सर्वथा नई है, इसलिए उसके उपाध्याय अध्यापकों की प्रशिक्षण-पद्धति सिखाने की केन्द्रीय व्यवस्था भी होनी चाहिए। प्रयास स्वतन्त्रता आन्दोलन के दिनों कलकत्ता के नेशनल कॉलेज, वृन्दावन के प्रेम महाविद्यालय, वल्लभनगर की गुजरात विद्यापीठ, वाराणसी की काशी विद्यापीठ, गुरुकुल काँगड़ी आदि संस्थाओं द्वारा किया भी जा चुका है। उनमें पढ़कर निकले हुए छात्रों ने अपने समय में आश्चर्यचकित कर देने जैसा परिणाम उपस्थित कर दिखाया था। अभी भी शान्तिकुंज हरिद्वार में उसी पुण्य प्रक्रिया का प्राण प्रत्यावर्तन हो रहा है।

शिक्षित जन अपना दायित्व निभाने आगे आएँ

भारत जैसे देश में शिक्षा एक विशेष सुविधा, विशेष सहूलियत, विशेष सम्पदा है। जिन्हें वह प्राप्त है, उन्हें समाज के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि चारों ओर फैली अशिक्षा के बीच उन्हें यह अनुपम अवसर प्रदान किया गया।

डॉक्टर से अपेक्षा की जाती है कि स्वास्थ्य के नियमों और शरीर-संरचना के मूलभूत सिद्धान्तों की जो जानकारी दी गई है, उस प्रकाश को जनसाधारण तक फैलाए और समाज को इसका लाभ पहुँचाए। यही बात इन्जीनियर, प्रशासक, प्रध्यापक आदि सब पर लागू होती है।

किन्तु इन सबके बीच जो एक सामान्य तत्व है, उसे भुला दिया जाता है। वह यह कि ये सब और कुछ बाद में हैं, अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ पीछे हैं, सबसे पहले तो अशिक्षा के समुद्र में शिक्षा के प्रकाश स्तम्भ हैं। उस नाते प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का अशिक्षितों के प्रति यह दायित्व हो जाता है कि वह शिक्षा के उस प्रकाश को उन तक पहुँचाए, जिसने उनका जीवन धन्य बनाया है उन्हें आनन्द, शान्ति, उल्लास और प्रगति का सम्बल दिया है।

बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति न केवल व्यक्तिगत रूप से कोई प्रगति करने में असमर्थ होते हैं, वरन् राष्ट्र और समाज की प्रगति में बाधक बनते हैं। वे किसी प्रकार अपनी जीविका भले ही कमाते रहें पर समाज का ऋण चुकाने जैसा कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकते और जो अपने लोग केवल अपने लिए ही जीने को विवश हों उन्हें समाज की प्रगति में सहायक कैसे कहा जा सकता है। कदम से कदम मिलाकर न चल पाने के कारण वे समाज के पिछड़ेपन का एक कारण बनते हैं।

इस प्रकार कितने ही पक्ष हैं व्यावहारिक और भावनात्मक, जिनको आधार बनाकर अशिक्षित लोगों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दी जा सकती है, प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह कार्य शिक्षित व्यक्तियों को ही अपने हाथ में लेना चाहिए। क्योंकि इसकी अगली कड़ी भी उन्हीं को पूरी करनी है।

इसके लिए निरक्षरता को दूर करना शिक्षित जनों को अपना दायित्व समझना चाहिए। पढ़े-लिखे सदस्यों वाले परिवार में जिस प्रकार यह स्थिति असह्य लगती है कि उसका कोई सदस्य अनपढ़ रह जाय। उसी गहराई के साथ अपने पड़ौसियों की अशिक्षित अवस्था को अनुभव किया जाय। किसी को भूखा-नंगा देखकर जो करुणा उमड़ती है, वही करुणा अशिक्षित व्यक्तियों को देखकर उमड़नी चाहिए। निरक्षर रहना बौद्धिक नग्नता की निशानी नहीं तो और क्या है ?

अशिक्षा उन्नति के मार्गों में बड़ा रोड़ा है। हमारे पतन और दुःख की जड़ में अशिक्षा है। भारत में ८० प्रतिशत जनता निरक्षर है। अन्धविश्वास, भेदभाव, छुआछूत और कुप्रथाओं से जकड़ी हुई हमारी ग्रामीण जनता अपने दुर्भाग्य का रोना रोती है, अपनी दयनीय स्थिति से निकलने का उनमें साहस और आत्मविश्वास नहीं है। अनपढ़ होने के कारण वह प्रगतिशील योजनाएँ समझने में असमर्थ रहती है। नई योजनाओं का लाभ उन्हें नहीं मिल पाता, नये-नये वैज्ञानिक उपकरणों और साधनों का लाभ उठाने के लिए सुविकसित मनोभूमि की आवश्यकता है। यह शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। इसलिए शिक्षा का व्यापक विस्तार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अशिक्षितों में शिक्षा के प्रति अरुचि का कारण भी उनकी अज्ञानता ही है। वे शिक्षा के अन्य लाभों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन-देखा कर, उसके प्रति अपनी अवज्ञा इसलिए व्यक्त करते हैं, क्योंकि उसमें आत्महीनता घर कर जाती है। फिर सामाजिक विषमता के दबाव से उनका उत्साह भी मर जाता है। शिक्षा के प्रति सर्वसाधारण का दृष्टिकोण बदलने के साथ-साथ अशिक्षित व्यक्तियों में भी इसी तरह का उत्साह जाग्रत किया जाना चाहिए कि वे पढ़ने-लिखने में रस लेने लगें।

यह कार्य शिक्षा का महत्त्व समझने और उसे प्राप्त करने का उत्साह जाग्रत करने के रूप में आरम्भ होना चाहिए। पिछड़े युग में जबकि सभ्यता ने विकास का वर्तमान शिखर नहीं छुआ था, तब लोगों को पढ़ने-लिखने की आवश्यकता नहीं रही होगी। उस जमाने में कुलीन घरानों और दायित्वपूर्ण कार्यों में लगे व्यक्तियों के लिए ही शिक्षित होना आवश्यक था। राजा महाराजा, सामन्त, मन्त्री, राजकर्मचारी और ब्राह्मण-विद्वानों के अतिरिक्त शिक्षा के बिना तब हर किसी का काम चल जाया करता होगा। तब सीधी-सपाट जिन्दगी रही होगी, खेत में बीज डाला हल चलाया और अनाज पैदा किया अथवा मजदूरी, सेवाचर्या से ही लोगों का निर्वाह अपनी आसानी से चल जाया करता था। उनमें सामान्य ज्ञान के अर्जन की आवश्यकता अनुभव ही नहीं होती होगी।

पर अब परिस्थितियाँ भिन्न हैं। विज्ञान ने सभ्यता के नये द्वार खोले और नये शिखर उपलब्ध करा दिए तो मनुष्य का जीवन भी जटिल हो गया है। अब केवल कमाने-खाने तक ही सीमित नहीं रहने दिया जा सकता। आज के समय में कदम-कदम पर ज्ञान और जानकारी की आवश्यकता पड़ती है। अशिक्षित व्यक्ति को इनसे अपरिचित रहने के कारण हर स्थान पर असुविधाओं का ही सामना करना पड़ेगा। कहीं यात्रा करनी हो तो, दूर बैठे रिश्तेदार या घर के लोगों से पत्र-व्यवहार करना हो, तो खरीददारी, लेन-देन, सम्पर्क, लोकव्यवहार आदि तमाम जरूरी कार्यों में शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है और इस योग्यता के अभाव में अशिक्षित व्यक्ति को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है अथवा असफल होना पड़ता है।

सामाजिक संस्थाओं के सदस्यों को घर-घर घूमते हुए शिक्षा के महत्त्व को समझाना चाहिए। किसानों को समझाना चाहिए कि विद्या एक स्थायी महत्त्वपूर्ण सम्पदा है। कृषि के लिए भी विद्या और शिक्षा की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी व्यापार, उद्योग आदि में। दिवालों पर विचारोत्तेजक वाक्य, कलेण्डर, पोस्टरों में अशिक्षा के दोषों और शिक्षा के लाभों को आकर्षक ढंग से छपवाकर प्रचार करना चाहिए। गर्मी की छुट्टियों में 'स्कूल चलो' अभियान छात्रों द्वारा अपने अपने गाँवों में चलाया जा सकता है। शिक्षकों और अध्यापकों को भी बड़े-बड़े अवकाशों के लिए शिक्षा प्रसार के कार्यों में पूरा सहयोग देना चाहिए। वेतन का लोभ छोड़कर छुट्टियों में ज्ञान-यज्ञ में शिक्षकों को हाथ अवश्य बँटाना चाहिए।

अत: प्रौढ़ व्यक्तियों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि जगाकर गाँव-गाँव और गली-गली में प्रौढ़-पाठशालाएँ खोली जानी चाहिए। ये पाठशालाएँ व्यक्तिगत रूप से भी खोली जा सकती हैं और सामूहिक रूप से भी। साधन उसी बस्ती में से अर्जित किए जा सकते हैं। स्थानीय लोगों से मिलकर, परामर्श और विचार-विनिमय कर स्थान निर्धारित किया जा सकता है, व्यक्तिगत रूप से एक शिक्षित व्यक्ति वर्ष भर में पाँच व्यक्तियों को साक्षर बनाए तो काफी कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित की जा सकती हैं। समय की दृष्टि से फुरसत का समय ही उचित रह सकता है, जो रात्रि को ७-८ बजे बाद मिलता है। उस समय दो घण्टे रोज यदि गपशप और व्यर्थ के कामों में न लगाया जाय तथा उसका पारमार्थिक उपयोग किया जाय तो इस खाली समय का ही रचनात्मक उपयोग किया जा सकता है।

यदि स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापक ही अपना काम का समय प्रौढ़-शिक्षा मे लगाएँ, तो जिन-जिन गाँवों में स्कूल हैं, वहाँ-वहाँ कई निरक्षरों को शिक्षा का प्रकाश ग्रहण करने योग्य बनाया जा सकता है। प्रौढ़ पुरुषों को साक्षर बनाने का कार्य भी वही महत्त्व रखता है। महिलाओं को प्राय: अपराह्न समय में अवकाश रहता है। घर के पढ़े-लिखे सदस्य या वृद्ध और रिटायर बुजुर्ग ही अनावश्यक संकोच त्याग कर घर की औरतों को पढ़ाना शुरू कर दें तो भी काफी शिक्षा का प्रसार होगा।

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति को साक्षरता-सम्वर्द्धन अपना दायित्व मानकर चलना चाहिए और वर्ष में कम से कम पाँच व्यक्तियों को साक्षर बनाने का व्रत लेकर चलना चाहिए। यदि कोई शिक्षित व्यक्ति यह लक्ष्य बनाकर चले तो हमारे देश से अशिक्षा का अन्धकार थोड़े ही समय में हटाया जा सकता है।

शिक्षित व्यक्तियों से विकसित सामाजिक बोध की अपेक्षा की जाती है। अत: उन्हें अशिक्षितों के प्रति अपने इस सामाजिक दायित्व को पूरा करना ही चाहिए। अनेक आन्दोलन वे अपने समूह विशेष या वर्ग विशेष के लाभ के लिए चलाते हैं। सम्पूर्ण समाज के हित के लिए साक्षरता आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना उनका अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य माना जाएगा।

निरक्षरता का कलंक इस तरह मिटेगा

पिछड़ेपन के चिह्नों दारिद्रय के समकक्ष ही अज्ञान है। निर्वाह के साधन न मिलने पर शरीर दुर्बल होता है। उपयोगी जानकारियों के अभाव में मस्तिष्क भी अविकसित स्थिति में पड़ा रहता है और उसके लिए नित्य अनुभव में आने वाली गतिविधियों के अतिरिक्त कोई-कोई ऐसी उपयोगी जानकारी नहीं होती, जिसके सहारे वर्तमान स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ऊँचा उठने एवं आगे बढ़ने का प्रकाश उपलब्ध हो सके। व्यक्ति और समाज के सामने अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं उनका समाधान ढूँढ़ने के लिए विज्ञ व्यक्तियों का मार्गदर्शन आवश्यक होता है। यह सत्संग, सम्पर्क या परामर्श की प्रत्यक्ष व्यवस्था बनाकर तब प्राप्त किया जाय, यह अति कठिन है। ऐसे लोग अपने आस-पास तो रहते नहीं, फिर उनका समय भी व्यस्त रहता है, कई तो परलोकवासी भी बन गए होते हैं। ऐसी दशा में उनकी समीपता एवं सलाह का लाभ मात्र उनकी पुस्तकों से ही सम्भव हो सकता है। स्पष्ट है कि यह लाभ शिक्षित होने पर ही मिल सकता है। हम दूर-दूर तक भ्रमण करते नहीं रह सकते हैं पर संसार में कहाँ क्या हो रहा है ? कौन क्या कर रहा है ? उन प्रयास के क्या परिणाम उत्पन्न हो रहे हैं, इस प्रकार की जानकारी तभी सम्भव हो सकती है जब मनुष्य शिक्षित हो।

शिक्षा के बिना मनुष्य नेत्र रहते हुए भी अन्धा है। उसकी जानकारी कुँए के मेढक जितनी होती है। संसार का ज्ञान पुस्तकों में बंद है। उस दिव्य देवालय में उनका प्रवेश बंद है, जो बिना पढ़े हैं। ऐसे लोग तो जितना आँख से देख पाते हैं, कान से सुन पाते हैं उतनी ही जानकारी पाते हैं। ऐसे लोगों की ज्ञानसम्पदा बहुत ही स्वल्प होती है फलतः बौद्धिक दृष्टि से वे दरिद्र ही बने रहते हैं। स्पष्ट है कि आर्थिक दरिद्रता से मानसिक दरिद्रता, बौद्धिक दुर्बलता, जानकारियों की स्वल्प मात्रा भी जीवन विकास में कम अवरोध उत्पन्न नहीं करती। कई बार तो अज्ञान और दारिद्रय सहोदर भाई बनकर रहते हैं।

शिक्षा की उतनी ही आवश्यकता है जितनी आजीविका की। रोटी के बिना शरीर दुर्बल बनता है और शिक्षा के बिना मस्तिष्क की स्थिति अनगढ़, अनाड़ी जैसी बनी रहती है। बुद्धि कुशाग्र होने पर भी ऐसे लोग ज्ञातव्य से वंचित रहने के कारण कुछ बातों को छोड़कर महत्त्वपूर्ण तथ्यों से अपरिचित ही बने रहते हैं। ऐसे लोग किसी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में कोई कहने लायक भूमिका नहीं निभा सकते। स्वास्थ्य की दृष्टि से परिपुष्ट और अर्थ की दृष्टि से सम्पन्न बन जाने पर भी अशिक्षित व्यक्ति वस्तुतः पिछड़ेपन से ही ग्रसित रहता है। उसके निष्कर्ष, अनुभव एवं परामर्श प्रायः अधूरे और अनुपयुक्त ही होते हैं। ऐसे लोगों के लिए बहुमुखी प्रगति सम्भव ही नहीं हो पाती। अशिक्षितों में से किसी ने कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की हो, ऐसे उदाहरण कभी अपवाद स्वरूप ही देखे जाते हैं।

दरिद्रता निवारण की तरह ही हमें अशिक्षा के अभिशाप को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति की आवश्यकता अनुभव होती हो तो उसके प्रथम प्रयास में दरिद्रता की तरह ही अशिक्षा के उन्मूलन को लक्ष्य बनाकर चलना होगा। दरिद्रता उन्मूलन के लिए श्रमनिष्ठा, उपार्जन की योग्यता एवं उत्पादन व्यवसाय का क्षेत्र विकसित करने की आवश्यकता है। ठीक इसी प्रकार हर वर्ग के व्यक्तियों को आज की अपेक्षा शिक्षा के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने की उपयोगिता है। प्रगतिवान देशों की तुलना में अपने देश में शिक्षा की स्थिति अभी भी दयनीय है। प्रायः एक चौथाई मनुष्य पढ़े-लिखे और तीन-चौथाई बिना पढ़े हैं। निरक्षरता एक कलंक है। इससे छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक भावनाशील व्यक्ति को प्रबल प्रयत्न करने चाहिए।

सरकारी क्षेत्र अपनी स्थिति और शक्ति के अनुसार आवश्यक प्रयत्न कर रहे हैं। पर उतने भर से इतने बड़े देश का, इतना बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। सरकार का शिक्षा बजट काफी बढ़ा-चढ़ा है। उसे उपलब्ध कर राशि से सुरक्षा, संचार, यातायात, चिकित्सा आदि और भी कितने ही कार्ग करने पड़ते हैं। अस्तु, सीमित मात्रा में ही उसके लिए कुछ कर सकना सम्भव है। देखते हैं कि शिक्षा योग्य छात्रों और छात्राओं के लिए भी अभी स्कूली व्यवस्था उतनी नहीं बन पाई है कि सुविधापूर्वक समुचित शिक्षण सर्वत्र प्राप्त हो सके। छोटे देहात में स्कूल नहीं हैं। जहाँ हैं वहाँ भी प्राथमिक शिक्षा जितना ही प्रबंध है। आध्यात्मिक और उच्च शिक्षा पाने के लिए दूर-दूर पैदल चलकर जाना पड़ता है। जो वैसा नहीं कर सकते वे बालक शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। यह सब तो स्कूली शिक्षा की और बच्चों तथा किशोरों की बात हुई। अभी उन्हीं के लिए बहुत कुछ किया जाता है। यदि इन शिक्षा योग्य छात्रों के लिए सर्वत्र समुचित व्यवस्था जुटाई जाय तो आज की अपेक्षा कई गुना सरकारी बजट बनेगा और उसकी पूर्ति के लिए भारी कर लगेंगे।

स्कूलों में जा सकने योग्य बालकों में भी बड़ी समस्या प्रौढ़ निरक्षरों की है, जो आजीविका उपार्जन में संलग्न और व्यस्त हैं। बचपन से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त न कर सके, उन्हें ऐसे ही उपेक्षित नहीं छोड़ा जा सकता। वस्तुतः वर्तमान की सारी बागडोर उन्हीं के हाथ है। स्कूली बच्चों को तो अभी बड़ा होने और समाज का प्रभावशाली सदस्य बनने में, आवश्यक अनुभव संग्रह करने में काफी देर है। तब तक जो आज के प्रौढ़ लोग ही वर्तमान का संचालन और भविष्य का निर्माण करने की भूमिका निबाहेंगे। भविष्य की आशा में वर्तमान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। युग की आज की समस्याएँ तो आज के लोगों को ही हल करनी हैं।

देश का तीन-चौथाई अशिक्षित वर्ग ही वस्तुतः आज का भारत है। बहुमत तो उसी का है। इतने लोगों पर पिछड़ापन छाया रहा तो प्रगति कहाँ हुई ? इतना बड़ा समुदाय यदि बौद्धिक पिछड़ेपन से ग्रसित रहेगा तो राष्ट्र की अनेकानेक समस्याओं का समाधान और प्रगति का विधि-विधान किस प्रकार सम्पन्न हो सकेगा ? एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चौथाई शिक्षित लोग यदि किसी प्रकार की उन्नति कर भी लें तो तीन-चौथाई लोगों की अशिक्षा उन्हें पिछड़ी स्थिति में ही पड़ा रखेगी फिर हम अपने को प्रगतिशील कहने का गर्व-गौरव किस प्रकार अनुभव कर सकेंगे ?

बड़ी आयु के, व्यस्त वयस्कों को शिक्षा समस्या इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे स्कूली बालकों को पढ़ाने से कम महत्त्व किसी प्रकार नहीं दिया जा सकता। यदि वस्तुत: राष्ट्रीय प्रगति के लिए आज ही कुछ करना हो तो दरिद्रता निवारण के प्रयत्नों में प्रौढ़ों की शिक्षा साक्षरता को भी अविच्छिन्न बनाकर चलना चाहिए। आखिर आज की प्रगति का उत्तरदायित्व तो आज के ही लोगों को सँभालना है और यदि वे शिक्षा के अभाव में पिछड़ी मन:स्थिति में बने रहे तो फिर यह कैसे सम्भव होगा कि वे युग की आवश्यकताओं को समझ सकें, उन्हें हल करने योग्य अपने को ढाल सकें। मात्र शरीर से ही तो प्रगति के स्वप्न पूरे नहीं हो सकते। उसके लिए अभीष्ट जानकारी भी चाहिए और परिष्कृत दृष्टिकोण भी। यह शिक्षा के बिना सम्भव नहीं। हर व्यक्ति को उपयोगी जानकारियाँ तोते की तरह पढ़ाने के लिए तो उतने ही शिक्षक चाहिए जितने अशिक्षित। स्पष्ट है कि पुस्तकों के माध्यम से ही अपने समय की समस्याओं को सुलझाने वाला ज्ञान और दृष्टिकोण उपलब्ध हो सकता है। औरों के बल पर प्रगतिशील जनशक्ति अपनी प्रखरता के आधार समय की माँग पूरी कर सकती है।

शिक्षा संदर्भ में जन-उत्साह जाग्रत किया जाना चाहिए और उसके लिए गैर सरकारी प्रयत्नों को अग्रसर होना चाहिए। सरकार से ही हर बात की अपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। उसके माध्यम से जो कार्य जनता चाहेगी, उसका मूल्य भी तो टैक्सों के रूप में प्रजाजनों को ही देना होगा, फिर क्यों न उससे भी कम राशि में गैर-सरकारी स्तर पर उन प्रयासों में जुटा जाय। इससे लोकमंगल के लिए प्रयत्न करने की सेवा-बुद्धि का विस्तार होगा और अपने पैरों खड़े होने में अपने पुरुषार्थ का परिश्रम देने का अवसर मिलेगा। जनसाधारण में इस प्रकार की स्फूर्ति, तत्परता, सेवा भावना एवं साहसिकता उत्पन्न हो सके तो समझना चाहिए कि भावना क्षेत्र में नया अरुणोदय हुआ। यह उज्ज्वल भविष्य का अवसर वस्तुत: निकट आ गया। भावना की शक्ति सर्वोपरि है। लोकमानस में कल्याणकारी प्रयत्नों के लिए भाव भरा उत्साह उमड़ पड़े तो समझना चाहिए कि कठिन दीखने वाली समस्याओं का सुलझना भी अति सरलतापूर्वक सम्पन्न हो चला।

प्रौढ़ अशिक्षितों में से अधिकांश आजीविका उपार्जन में व्यस्त होते हैं। इसलिए उनके अवकाश के समय ही शिक्षा व्यवस्था की बात सोची जा सकती है। पुरुषों के लिए वह समय रात्रि का ही हो सकता है। उनके लिए प्रौढ़ रात्रि पाठशालाओं का प्रबन्ध होना चाहिए। महिलाओं के भोजन बनाने एवं अन्य गृह कार्यों से थोड़ी-सी फुरसत पाने का समय तीसरा पहर का है। उनके लिए प्रौढ़ महिला पाठशालाएँ मध्याह्न में दो से पाँच बजे के बीच में तीन घण्टे को चल सकती हैं। प्रौढ़ों के लिए रात्रि का ७ से १० तक का समय उपयुक्त रह सकता है। जहाँ तीन घण्टे का समय न निकले, वहाँ उसे ढाई से दो घण्टे का भी किया जा सकता है। सर्दियों और गर्मियों में दिन छोटे-बड़े होते हैं, तदनुसार इन पाठशालाओं का समय भी आगे पीछे होता रह सकता है।

शिक्षण के लिए फीस देने और अध्यापक वेतन पर रखने का तरीका है तो सीधा पर व्यवहार में वह लगभग असम्भव है। प्रौढ़ों में शिक्षा के प्रति तनिक भी रुचि नहीं है। वे उसका महत्त्व ही नहीं समझते; उन्हें यह अभाव उभरता ही नहीं कि वे अशिक्षित होने के कारण सभी प्रकार घाटे में हैं। पढ़ने-लिखने की आवश्यकता वे नौकरी के लिए समझते हैं और जानते हैं कि जिन्हें नौकरी नहीं करनी उन्हें पढ़ने की क्या आवश्यकता है। इसी मान्यता के अनुसार स्त्रियों को एवं जिनके पास खेती आदि का उद्योग है। उनका पढ़ना अनावश्यक माना जाता है। अशिक्षा का सबसे बड़ा कारण विद्या के महत्त्व से अपरिचित होना ही है। यदि उसकी उपयोगिता समझी गई होती तो भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की तरह उसके लिए भी प्रयत्न हुआ होता और सरकारी सुविधा न सही निजी व्यवस्था से भी उसका साधन जुट सकता था। महत्त्व से अपरिचित होने के कारण ही शिक्षा की उपेक्षा होती रही है और सुविधासम्पन्न होते हुए भी लोग उससे मुँह मोड़े रहे हैं।

आज भी स्थिति ज्यों की त्यों है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए शिक्षार्थी जुटाना आज भी अति कठिन है। अपना प्रथम चरण तो शिक्षा की आवश्यकता को उनके गले उतारना है। प्रौढ़ पाठशाला की स्थापना तथा उसके लिए साधन जुटाना जितना कठिन है, उसकी अपेक्षा अशिक्षितों को पढ़ने के लिए सहमत करना और भी कठिन है। पाठशाला खोलने और चलाने से पहले उत्साही शिक्षा प्रेमियों को जन-जन से सम्पर्क स्थापित करना होगा। उनकी सामूहिक गोष्ठियाँ बुलाकर कई-कई बार हृदयग्राही ढंग से तथ्य, तर्क और उदाहरणों सहित यह समझाना पड़ेगा कि प्रौढ़ों के लिए भी पढ़ना क्यों आवश्यक है ? पढ़ना-लिखना बच्चों का काम है, बड़ी आयु के लोग बच्चों का काम करके अपनी हेठी क्यों कराएँ—इस संकोच और दुराग्रह को लोगों के मन से निकालना टेढ़ी खीर है। प्रश्न अवकाश का नहीं रुचि एवं इच्छा का है। सर्वप्रथम उसी को जगाना-उभारना पड़ेगा। यह कठिन मोर्चा घनघोर प्रखर और सम्पर्क अभियान से ही जीता जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा के लिए संस्थानों की स्थापना और उनकी सफलता इस प्रकार प्रयास के पूरा कर लेने के बाद ही सम्भव हो सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

ऐसी स्थिति रहते शिक्षार्थी फीस देकर पढ़ेंगे और पढ़ाने के लिए वैतनिक अध्यापक रखे जा सकेंगे, यह योजना निरर्थक है। यह शुभारम्भ शिक्षितों को अवैतनिक सेवा साधना का आवाहन करके ही खोला जाना चाहिए। यदि वैतनिक अध्यापक ही रखने पड़े तो कम से कम आरम्भिक दिनों में तो उस राशि का प्रबन्ध उदार लोगों को स्वेच्छा से चन्दा इकट्ठा करके ही सम्पन्न करना चाहिए। अच्छा यह है कि शिक्षित लोग विद्या ऋण चुकाने की आवश्यकता समझें और प्रौढ़ों को पढ़ाने में समय-दान देकर उससे अपना कर्तव्य निवाहें। धनी लोगों का कर्तव्य है कि वे अपनी सम्पदा का एक अंश निर्धनों की उन्नति के लिए खर्च करते रहें। इसी प्रकार शिक्षितों को अपना यह परम पवित्र कर्तव्य समझना चाहिए कि वे अशिक्षितों को शिक्षित बनाने में अपने श्रम, समय का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे। इस प्रकार की सेवा बुद्धि जाग्रत होने से ही समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन सम्भव हो सकेगा। कोई व्यक्ति निस्वार्थ सेवा का महत्त्व न समझेगा और हर किसी को, हर स्थिति में, हर काम के लिए वेतन की ही अपेक्षा रहेगी तो समझना चाहिए कि अपने समाज से उदारता, सेवा, सद्भावना का अंत ही हो गया। ऐसी दशा में शिक्षा बढ़ने से भी क्या बनेगा। स्वार्थ सने शिक्षित तो अशिक्षितों से भी गए—बीते और हानिकारक सिद्ध होते हैं।

विवशता में पैसा देकर अध्यापक इन प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए रखने पड़ें तो बात दूसरी है, अन्यथा अशिक्षितों को शिक्षा प्राप्त करने की उपयोगिता समझा कर पढ़ने के लिए सहमत करने में जितना माथा फोड़ी करने की जरूरत है, ठीक उतनी ही आवश्यकता शिक्षितों को विद्या ऋण चुकाने के लिए सेवा बुद्धि से कुछ समय लगाने के लिए भी तत्पर करने के प्रयत्न करने की उपयोगिता समझी-समझाई जानी चाहिए। यों पैसे का लालच देकर तो बिना पढ़ों को भी पढ़ने के लिए बिठाया जा सकता है। इस तरह वेतन का आकर्षण प्रस्तुत करके तो पढ़ाने वालों की भीड़ इकट्ठी की जा सकती है। यदि प्रौढ़-शिक्षा की समस्या पैसों के बल पर ही हल होती हो तो इसके लिए जनस्तर पर प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं। तब तो घर घर ही इसका उचित महत्त्व है।

राष्ट्र निर्माण जैसे महान कार्य सेवा बुद्धि और कर्तव्य भावना उत्पन्न किए बिना सम्भव नहीं हो सकते। यह तत्त्व होता तो न्यूनाधिक मात्रा में हर किसी में है पर प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है। उसे जाग्रत किया जा सके तो परमार्थ प्रयोजनों में आसानी से योगदान उपलब्ध किया जा सकता है। स्थानीय, या क्षेत्रीय प्रौढ़-शिक्षा आन्दोलन खड़ा करने के लिए विचारशील सेवाभावियों की टोलियाँ बननी चाहिए और उन्हें अभीष्ट वातावरण बनाने के लिए जनसम्पर्क पर निकलना चाहिए। इन टोलियों के सामने चार कार्यक्रम रहें—(१) अशिक्षित प्रौढ़ों को पढ़ने के लिए तैयार करना, (२) पाठशाला के लिए उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध करना, (३) प्रारम्भिक साधन उपकरणों के लिए पैसे का प्रबन्ध करना, (४) पढ़ने के लिए शिक्षितों का समय-दान उपलब्ध करना। इन चारों कार्यों के लिए सम्बद्ध व्यक्तियों को एकत्रित करके गोष्ठियों के रूप में उन्हें समझाया जा सकता है एवं घर-घर जाकर उनसे सम्पर्क बनाया जा सकता और उन्हें अपना अभिप्राय समझा कर आवश्यक सहयोग देने के लिए सहमत किया जा सकता है। आवश्यक नहीं कि पहली बार में ही सफलता मिल जाय पर जिनसे सम्पर्क साधा गया है, उनमें से हर एक का उपयुक्त सहयोग मिल जाय। इसके लिए बार-बार अनेक लोगों से सम्पर्क स्थापित करते रहने का प्रयत्न करना पड़ेगा। न्यून सफलता मिलने पर भी, आशा की किरणें देखकर भी संतोष अनुभव करना पड़ेगा। एक बार की असफलता से निराश न होने वाले और अभीष्ट प्रयोजन के लिए थके बार-बार प्रयत्न करते रहने वाले व्यक्ति आज नहीं तो कल सफलता की सम्भावना बना लेते हैं।

अधिक समय निकाल कर स्थानीय प्रयत्नों को और भी आगे समीपवर्ती क्षेत्र में विस्तृत किया जा सकता है और जगह-जगह प्रौढ़ पाठशालाएँ स्थापित करने और उन्हें सुव्यवस्थित रूप से चलाने की योजना सामने रखी जाय तो कुछ ही समय में किसी बड़े नगर-कस्बे में, मुहल्ले-मुहल्ले और छोटे देहातों में गाँव-गाँव ऐसी पाठशालाएँ चल सकती हैं। उत्साह बढ़ा सो बढ़ा। ढर्रा पड़ा सो पड़ा। प्रचलन हुआ सो हुआ। लोगों में अनुकरण की वृत्ति होती है। हिम्मत वाले आगे चल पड़ते हैं तो सामान्य लोग उनकी नकल बनाने लगते हैं। अनेकों कुरीतियाँ एवं बुरी आदतें इसी प्रकार देखा-देखी फैली हैं। अच्छे प्रयासों के सम्बन्ध में भी वही बात लागू होती है। यदि कहीं पर कुछ प्रयत्न इस प्रकार के चल पड़ें और उन्हें आगे धकेलते रहने वाले कुछ कर्मठ व्यक्ति अनवरत जारी रखे रहें तो निश्चित है कि प्रौढ़ शिक्षा सत्प्रवृत्तियाँ सहज ही आगे बढ़ती, फलती-फूलती और अपने चमत्कारी सत्परिणाम प्रस्तुत करती दिखाई पड़ेंगी।

महिलाओं की प्रौढ़-पाठशाला स्थापित करने में भी मनस्वी, सेवाभावी पुरुषों को ही योजना और व्यवस्था बनानी पड़ेगी किन्तु उसमें अग्रिम पंक्ति में थोड़ी बहुत कुशल महिलाओं को ही आगे रखना होगा। महिलाओं को पढ़ने के लिए रजामंद करने में उनका संकोची स्वभाव सबसे अधिक बाधक होता है। वे शिक्षा के महत्त्व एवं लाभ से और भी अधिक अपरिचित होती हैं। पर्दाप्रथा घर से बाहर जाने में तरह-तरह के प्रतिबन्ध होने के कारण परिवार के लोग भी उन्हें पढ़ने जाने देने में सहायक नहीं बाधक ही बनते हैं। घर का काम-काज बच्चों की दिन भर की खट-खट के कारण उन्हें समय भी कम मिलता है। अस्तु, कहने-समझाने पर भी अशिक्षित महिलाओं का

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ने के लिए सहमत होना काफी कठिन है। जो सहमत हो भी जाती हैं उनका उत्साह भी देर तक नहीं टिकता और कुछ दिन पढ़ कर फिर उसे बीच में ही बन्द कर देती हैं। होता तो ऐसा पुरुष प्रौढ़ों में भी है पर महिलाओं में आरम्भ करके फिर उसे बन्द कर देने की बात और भी अधिक देखी जाती है। अस्तु, प्रोत्साहित करके पाठशाला में भर्ती होने से लेकर उस क्रम को बन्द न होने देने तक की प्रक्रिया के पीछे प्रोत्साहन सूत्रों का बने रहना नितांत आवश्यक है। महिलाओं के क्षेत्र में यह कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जा सकता है। अतएव प्रौढ़-शिक्षा का आरम्भ यदि स्थिर रूप से करना हो तो उसकी सबसे बड़ी कठिनाई को हल करने के साधन जुटाने चाहिए। यह कठिनाई शिक्षा का महत्त्व समझा कर प्रौढ़ निरक्षरों में शिक्षा के प्रति उत्साह उत्पन्न करने और देर तक बनाए रहने की है। यह कार्य सूत्र-संचालकों की सम्पर्क टोली ही कर सकती है। महिलाओं के क्षेत्र में महिला की और पुरुषों के क्षेत्र में पुरुषों की टोलियाँ यह उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर सम्भालें तो समझना चाहिए कि आधा काम पूरा हो गया। शेष आधे काम में स्थान की, उपकरणों की और अध्यापकों की व्यवस्था करना शेष रह जाता है। यह उत्तरार्द्ध उतना कठिन नहीं है।

अरुचिकर कामों में आमतौर से लोगों को तैयार करना ही कठिन पड़ता है, फिर उसके लिए पैसा खर्च करना तो और भी भारी लगता है। प्रश्न आर्थिक परिस्थिति का नहीं, दिलचस्पी का है। शिक्षार्थी आवश्यक उपकरण खरीदने की स्थिति में नहीं, ऐसी बात नहीं। उन्हें कठिनाई से ही पढ़ने के लिए रजामंद किया जा सकता है। अब तुरन्त ही उस अरुचिकर लगने वाले कार्य के लिए पैसा खर्च करने की बात न कही जाय तो ही अच्छा है। शिक्षा की फीस तो लेनी ही नहीं चाहिए। सम्भव हो तो पट्टी, खड़िया, कलम, बिछावन, लालटेन, पुस्तक आदि का खर्च भी संस्थानों को ही उठाना चाहिए। धीरे-धीरे जो महत्त्व समझने लगें उन्हें अपने पैसे से साधन खरीदने की बात समझाई जानी चाहिए।

अशिक्षितों का पढ़ने में रुचि उत्पन्न करना और शिक्षितों को अपने ज्ञान का उदारतापूर्वक दान करके विद्या ऋण चुकाना समान रूप से महत्वपूर्ण है। दोनों ही पक्षों को विचारशीलता अपनाने और कुछ समय खर्च करके मानवी प्रगति में योगदान करने की बात समझाई जानी चाहिए। इस पुण्य-प्रयोजन के लिए समय दे सकने वाले उदार शिक्षितों को ढूँढ़ निकालना और उनका रात्रि के समय दो-तीन घण्टे का समय प्राप्त कर लेना उतना कठिन नहीं है। आरम्भ में तो सूत्र-संचालक मंडली के सदस्य स्वयं भी बारी-बारी से अपना समय देकर उस प्रक्रिया को स्वयं आगे बढ़ा सकते हैं।

यहाँ एक कठिनाई और भी है कि प्रौढ़ पाठशाला में भर्ती होने वाले सभी शिक्षार्थी पूर्ण अँगूठा छाप नहीं होते। उनमें से कई ऐसे भी होते हैं जो थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना जानते हैं। ऐसी दशा में जो जितना जानता है, उसे उससे आगे की पढ़ाई आरम्भ करानी होगी। इस प्रकार उन थोड़े से छात्रों के ही कई वर्ग बन सकते हैं। ऐसी दशा में उनके पढ़ाने वाले भी कई चाहिए। कम से कम दो तो होने ही चाहिए। एक को वर्णमाला आरम्भ करानी होगी और दूसरे को यत्किंचित जानकारी वालों को उनके पूर्व ज्ञान से आगे की पढ़ाई चालू करनी पड़ेगी। महिलाओं और पुरुषों की पाठशालाएँ अपने देश की परम्पराओं को देखते हुए साथ-साथ नहीं चल सकतीं और न उनका समय ही एक रह सकता है। दोनों की सुविधा के समय अलग हैं। पुरुष रात्रि को फुरसत पाते हैं तो स्त्रियाँ तीसरे पहर। ऐसी दशा में अध्यापक-अध्यापिकाएँ तो अलग-अलग ही चाहिए। प्रौढ़ महिलाओं को पढ़ाने में कोई वृद्ध अध्यापक ही उपयोगी हो सकती हैं पर प्रथा प्रचलनों को देखते हुए महिलाओं के लिए महिला शिक्षिकाओं का प्रबन्ध करना ही उचित है। स्थान दो न मिलें तो एक से ही काम चल सकता है पर स्त्रियों को दूर, एकान्त एवं असुरक्षित स्थानों में जाना कठिन पड़ेगा। ऐसे स्थानों पर पुरुषों की पाठशालाएँ चल सकती हैं, महिलाओं की नहीं। अस्तु, स्थान एक ही रहने से काम चलता है पर अलग-अलग प्रबन्ध करना पड़ता है। यह निर्णय स्थानीय परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ही करना चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से सरकारी पाठ्य विधि और पुस्तकें लेने से ही काम चल सकता है। साक्षरता प्रचार की दृष्टि से उतना कार्य पर्याप्त है जितना कि इन दिनों स्कूलों में पाँचवी कक्षा तक पढ़ा दिया जाता है। इतनी पढ़ाई वयस्क लोग प्रायः एक वर्ष में आसानी से पूरी कर सकते हैं। आरम्भ तो किसी भी महीने से किया जा सकता है पर आगे चलकर उसका आरम्भ और अन्त एक नियत समय से चलना चाहिए। जनवरी या जुलाई सामान्य तक पाठ्यक्रम आरम्भ करने के लिए अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। कोई छात्र कभी भी दाखिला लेगा तो हर छात्र के लिए अलग-अलग पढ़ाई चल पड़ेगी और उस विशृंखलता के सँभालने के लिए ढेरों अध्यापकों की जरूरत पड़ जाएगी। एक अध्यापक बीस तीस छात्रों को भी पढ़ा सकता है पर उनका पाठ एक जैसा होना चाहिए। अस्तु, दाखिला और समाप्ति का समय पीछे तो निश्चित ही रखना होगा। आरम्भ में जब भी जैसे भी सम्भव हो वैसा करके श्री गणेश हो सकता है। थोड़ा-सा ढर्रा चल पड़े तो समय निर्धारित कर देने से ही काम चलेगा। पुराने छात्र अपना शिक्षण पूरा कर लें, तो अध्यापकों की व साधनों का प्रबन्ध देखते हुए नये छात्र भर्ती किए जाएँ। अधिक छात्र बढ़ें तो अधिक साधनों की सुविधा करनी चाहिए। अलग नई-नई पाठशालाएँ मुहल्ले-मुहल्ले चलानी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँचवे दर्जे का शिक्षण न्यूनतम है। साक्षरता प्रसार की दृष्टि से इतना लक्ष्य किया और चलाया जा सकता है। पर उतनी पढ़ाई को पर्याप्त नहीं मान लेना चाहिए। माध्यमिक स्कूलों के स्तर की शिक्षा सामान्य ज्ञान की दृष्टि से आवश्यक है। पर उसके पाठ्यक्रम में अन्तर रखा जा सकता है। सरकारी स्कूलों में बालकों की विकसित मन:स्थिति को ध्यान में रखते हुए विविध विषयों की, सामान्य जानकारियाँ देने की दृष्टि रखी गई है, सो उनके लिए उचित भी है। पर प्रौढ़ों को वे विषय माध्यमिक शिक्षा में पढ़ाए जाने चाहिए, जो व्यक्ति और समाज के सम्मुख प्रस्तुत समस्याओं के स्वरूप एवं समाधान की जानकारी देते हों और सर्वतोमुखी प्रगति के लिए जो किया जाना है, उसका मार्गदर्शन करते हों। शिक्षा विस्तार के साथ-साथ कर्तव्यों का ज्ञान भी कराया जाता है और शिक्षार्थी की मनोभूमि में इन प्रेरणाओं का बीजारोपण किया जाता है; जिसके अंकुरित और पल्लवित होने पर व्यक्तित्व में प्रखरता एवं प्रगतिशीलता की नई उमंगों का उभार परिलक्षित होने लगे। इस प्रयोजन के लिए व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के समस्त आवश्यक सूत्रों का माध्यमिक स्तर के प्रौढ़ शिक्षाक्रम में समुचित समावेश होना चाहिए।

प्रयत्न यह किया जा रहा है कि इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए युग निर्माण योजना के अन्तर्गत ऐसी पुस्तकें छापी जाएँ जो शब्दकोश, व्याकरण, भाषा लालित्य, निबंध रचना आदि की साहित्यिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ आज की आवश्यकताओं को समझने और उनकी पूर्ति के लिए प्रकाश प्राप्त करने का दुहरा लाभ मिल सके। महिलाओं और पुरुषों के कार्यक्षेत्र में थोड़ा अन्तर रहता है, इसलिए उनके पाठ्यक्रम में अन्तर रखा जाना चाहिए। नारी को घर-परिवार का उत्तरदायित्व सँभालना पड़ता है। उसकी प्रजनन प्रकृति प्राय: इसी भार को उठाने के लिए विवश करती है। गृह व्यवस्था, शिशुपालन, आहार विज्ञान जैसे अतिरिक्त उत्तरदायित्व प्राय: उसी के कंधों पर रहते हैं। इस दृष्टि से उसके शिक्षण में इन तत्त्वों का अधिक समावेश होना चाहिए। जबकि पुरुषों को उपार्जन एवं समाजपरक जानकारियों में अधिक प्रवीण होने की आवश्यकता पड़ती है। प्रौढ़-शिक्षा की पुस्तकें मात्र पढ़ाई-लिखाई की आवश्यकता ही पूरी न करें वरन् वह सब भी सिखाएँ जो व्यक्तित्व के परिष्कार एवं प्रगतिशील विकास के लिए आवश्यक है। फिलहाल ऐसी पुस्तकें बाजार में जहाँ जो मिल सकें, उन्हें ही खरीदकर काम चलाना चाहिए। पीछे सम्भव हो सका तो युग निर्माण योजना के अन्तर्गत इस तरह का साहित्य छापने की योजना है। यों कोई अन्य समर्थ व्यक्ति भी इस अति महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेकर प्रौढ़-शिक्षा के लिए माध्यमिक वर्ग की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। प्राथमिक वर्ग के लिए तो स्कूली पुस्तकें ही पर्याप्त हैं।

अवकाश के समय में पढ़ाई का प्रबंध बड़े पैमाने पर करने की आवश्यकता है। व्यस्त लोग स्कूलों के समय में पढ़ें और रोटी कमाएँ। उनके लिए अवकाश के समय में पढ़ाई का प्रबन्ध करना भी उतना ही आवश्यक है, जितना कि निरक्षरों के लिए साक्षरता का प्रबंध करना। शिक्षा तो दैनिक जीवन की वैसी ही अनिवार्य आवश्यकता है जैसे कि शरीर के लिए रोटी। इस उपलब्धि का साधन तो हर व्यक्ति को मिलते ही रहना चाहिए। समुन्नत देशों में जितना विस्तार विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था का है, उतना ही प्रौढ़ों के लिए अवकाश के समय पढ़ने का भी प्रबंध है। वहाँ विद्यालय ऐसे विभिन्न विषयों के हैं और वे प्राय: रात्रि में अथवा प्राय: करोबार शुरू होने से पहले वाले समय में चलते हैं। काम-काज के घण्टे शुरू होने से पहले अथवा पश्चात इस प्रकार की अतिरिक्त पढ़ाई में वयस्क लोग भर्ती हो सकते हैं और अपनी ज्ञान पिपासा तृप्त करते हुए भावी प्रगति का पथ प्रशस्त कर सकते हैं।

ऐसा प्रबन्ध अपने देश में भी होना चाहिए। यह भी शिक्षा प्रसार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। बच्चे तो शिक्षा की सुविधा प्राप्त करलें, पर वयस्कों के लिए वह द्वार बंद हो जाय—तो यह बुरी बात है। इसके लिए प्रभात कालीन अथवा रात्रि की पाठशालाएँ चलनी चाहिए। इनमें विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम चलें। जिन्हें सरकारी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने में रुचि है, वे इन पाठशालाओं में पढ़ते और तैयारी करते रहें, जब स्थिति परीक्षा देने की हो जाय तब प्राइवेट छात्रों को मिलने वाली सुविधा का लाभ उठा कर परीक्षा में सम्मिलित होते रहा करें। इस प्रकार व्यस्त व्यक्ति भी अपने खाली समय का उपयोग करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। जिन्हें सरकारी परीक्षाओं में रुचि नहीं है, वे अन्य विषयों की पढ़ाई कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, आयुर्वेद विद्यापीठ, महिला विद्यापीठ, आर्य कुमार दल, गीता, रामायण परीक्षा समिति आदि संस्थाओं ने निजी परीक्षाओं का प्रबंध किया हुआ है। जिनका मत उन्हें पढ़ने का हो वे उन्हें अपना सकते हैं।

संगीत, शिल्प, कला-कौशल, टूट-फूट की मरम्मत, कृषि, बागवानी, पशुपालन, स्वास्थ्य संरक्षण, धार्मिक जानकारी, धातुकला आदि की स्थानीय व्यवस्था के अनुरूप शिक्षा प्रबंध चल सकते हैं। आवश्यक नहीं कि उनके लिए परीक्षा या प्रमाण-पत्र की ही आवश्यकता हो। क्रिया-कौशल में सफलता न मिलने तक ऐसी पढ़ाई चलती रह सकती है और प्रवीणता प्राप्त होना उनकी पूर्णता की कसौटी रखी जा सकती है।

शिक्षा प्रसार में सरकार जो कर रही है, उसमें और भी प्रगतिशील कदम जोड़े जा सकते हैं। सरकारी कर्मचारियों को उन्नतिशील पद मिलने से पूर्व उनके द्वारा शिक्षा प्रसार के लिए की गई सेवा की पूछताछ की जाय और यदि सार्वजनिक सेवा में उन्होंने स्वेच्छापूर्वक योगदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया है, तो उन्हें इस योग्य माना जाय कि अधिक महत्त्वपूर्ण पद सँभाल सकें। जो अपना ही पेट पालने तक सीमित है, उन्हें उनकी अनुदार प्रकृति के कारण छोटे पदों पर ही रहने दिया जाय। साक्षरता प्रसार में स्वेच्छा सहयोग को सरकारी कर्मचारियों को विशेष योग्यता गिना जाय और उनकी पदोन्नति में इस तथ्य को परखना भी आवश्यक समझा जाय। स्नातक कक्षाओं के छात्र उत्तीर्ण तो घोषित कर दिए जावें किन्तु उन्हें उत्तीर्ण पत्र तब दिए जावें, जब अपने क्षेत्र में शिक्षा प्रसार के लिए कुछ सेवा सहयोग करने का प्रमाण दे चुकें। यदि सरकारी कर्मचारियों की पदोन्नति, स्नातकों की उपाधि एवं नई भर्ती के साथ शिक्षा सेवाओं को भी एक योग्यता गिन लिया जाय तो इस वर्ग द्वारा शिक्षा प्रसार में सेवा-बुद्धि से कुछ प्रयत्न करने की प्रेरणा उत्पन्न की जा सकती है और इस तनिक से दबाव से समाज का भारी हित हो सकता है। चुनावों में खड़े होने वालों के लिए तथा विशेष सरकारी सहयोग प्राप्त करने वालों की पात्रता की अन्य परखों में एक शिक्षा सेवा भी सम्मिलित रखी जा सकती है।

गैर सरकारी स्तर पर शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को विकसित करने के लिए संस्थान खड़े किए जा सकते हैं। 'फीस ली जाय और शिक्षा दी जाय' की नीति अपनाकर अनेकों सुशिक्षित व्यक्ति आजीविका उपार्जित कर सकते हैं और इच्छुकों की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। ऐसी स्थापनाओं को सरकारी अनुदान या उनके छात्रों को परीक्षा में सम्मिलित हो सकने की मान्यता भर सरलतापूर्वक मिलने लगे, तो उतने भर से अनेकों अतिरिक्त विद्यालय अवकाश के समय में पढ़ाने के लिए खड़े हो सकते हैं।

सरकारी मान्यता की सहायता न मिले तो भी इसकी पूरी पूरी गुंजाइश है कि व्यक्तिगत शिक्षा-सुविधा प्रस्तुत करने वाले व्यक्तिगत अथवा संगठित विद्यालय खुलें और अपना कार्य स्वावलम्बी ढंग से चलाएँ। व्यस्त लोग इनका समुचित लाभ उठा सकते हैं। स्कूली बच्चों को ट्यूशनों की आवश्यकता होती है। ट्यूटर कितने महँगे पड़ते हैं, इन्हें हर कोई जानता है। उतना भर कोई सम्पन्न लोग ही जुटा सकते हैं। गरीबों के कमजोर बच्चे ट्यूशन न लगा पाने के कारण फेल होते रहते हैं और अपना भविष्य अन्धकारमय बनाते हैं। इनके लिए ट्यूटोरियल स्कूल खुल सकते हैं, जिनमें जाकर वे थोड़ी फीस देकर अपनी कच्चाई को पूरा कर सके। विदेशों में तो आने जाने की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अनेकों स्कूल पत्र व्यवहार पाठ्यक्रम चलाते हैं और उनसे अनेकों छात्र समुचित लाभ उठाते हैं।

धनीमानी बहुधा दान-पुण्य करते रहते हैं और उसमें काफी धन खर्च करते हैं और उन्हें विद्यादान की गरिमा समझाई जा सके और यह हृदयंगम कराया जा सके कि विद्यादान सबसे बड़ा पुण्य है। उसे करने वाला अगले जन्म में निश्चित रूप से मनुष्य शरीर प्राप्त करता है क्योंकि विद्या का पुण्यफल अन्य किसी योनियों में नहीं मिल सकता, अन्न दान आदि का प्रतिफल तो उसी रूप में अन्य योनियों में भी मिल सकता है। यदि मनुष्य जन्म ही आगे भी पाने की इच्छा हो तो विद्यादान को प्रमुखता देनी चाहिए। यह तथ्य धनी लोगों को हृदयंगम कराया जा सके, तो अस्त-व्यस्त कार्य में खर्च होती रहने वाली धनराशि विद्या विस्तार के लिए मिल सकती है और उससे अनेक स्तर के, अनेकों विद्यालय सहज ही चल सकते हैं।

हर विद्याप्रेमी निरक्षरता का निवारण एवं विधि-विस्तार को परम पवित्र मानवी कर्तव्य समझे, तो उसके लिए कुछ समय एवं पैसा निकालते रहना किसी को भी भारी न पड़ेगा और मुट्ठी-मुट्ठी अनुदान से भी शिक्षा प्रसार में भारी योगदान सम्भव हो सकेगा।

आज की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता शिक्षा प्रसार के लिए प्रचंड वातावरण बनाने की है। देश का हर व्यक्ति इस दिशा में कुछ सोचे और जो कुछ उसकी वर्तमान स्थिति में सम्भव है उसके लिए सच्चे मन से प्रयास करे, तो इसकी प्रतिक्रिया अतीव उत्साहवर्द्धक सत्परिणामों के रूप में सामने आ सकती है। अशिक्षितों को शिक्षा का महत्व समझाया जाना और उनमें इसके लिए उत्साह उत्पन्न करना इतना बड़ा काम है, जिसके लिए हर प्रचार साधन को झोंक दिया जाना चाहिए, साथ ही प्रौढ़-पाठशाला अतिरिक्त समय के विद्यालयों का भी विस्तार होना चाहिए। सरकारी स्तर पर चल रहे विद्यालयों का भी अधिक विस्तार हो सके और उनसे अधिक छात्र लाभ उठा सके, उसका भी प्रबल प्रयत्न चलना चाहिए।

निरक्षरता निवारण राष्ट्रीय प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक है। उसे दरिद्रता हटाने के लिए किए जाने वाले प्रयासों के ही समतुल्य माना जाय और इसके लिए हर व्यक्ति का चिंतन काम करे, उत्साह की प्रत्येक उमंग सक्रिय प्रयास में बदले तभी काम चलेगा। इस प्रयोजन को पूरा करने में सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र पूरी तरह जुट जाएँ, एक दूसरे का भी पूरा सहयोग करें तो समय की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है।

अशिक्षा की तरह दुर्बुद्धि भी विघातक

बर्बरता ने इस संसार में जितना अनाचार और क्रन्दन उत्पन्न किया है, उससे कम विग्रह ज्ञान विपर्यय ने नहीं किया है। जानकारी का न होना दयनीय स्थिति है किन्तु विपरीत ज्ञान तो अनाचार का पोषण तथा पतन का समर्थन करता है, जो अधिक चिन्ताजनक है। अज्ञानी अपनी दुर्बलता को समझता है पर उस ज्ञानी को क्या कहा जाय, जो विकृत चिंतन से आच्छादित होने पर भी अपने को सही मानता है और तर्कों के साथ उसका समर्थन करता है, जो औचित्य एवं न्याय की कसौटी पर सर्वत्र खोटा सिद्ध होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा-सम्वर्द्धन की अपनी उपयोगिता है। सभी जानते हैं कि विद्याविहीन को पशुतुल्य माना गया है और उसे अंधों की श्रेणी में बिठाया गया है। अस्तु, जनसाधारण को शिक्षित बनाने के लिए व्यापक प्रयत्न होना चाहिए। पर यह हुआ प्रथम चरण ही। एक टाँग के सहारे मंजिल पूरी नहीं हो सकती। यात्रा तो दोनों पैर उठाने से ही बन पड़ती है। अशिक्षितों को शिक्षित और शिक्षितों को सद्ज्ञान सम्पन्न बनाया जाना चाहिए। अनजान अपने आप ही ठोकर खाता और दु:ख उठाता है किन्तु विपरीत ज्ञान से तो उल्टी दिशा में चल पड़ने और दूसरों को कुमार्ग पर चलाने का संकट खड़ा होता है।

शिक्षा प्रसार ही पर्याप्त नहीं उसके साथ सद्ज्ञान विस्तार का दूसरा कदम भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रहना चाहिए। बहुत जानने में हर्ज नहीं पर जाना वह भी जाय जो जीवनचर्या और समाज व्यवस्था को सही स्थिति में बनाए रखने वाली दिशा दे सके। उल्टा चलने की अपेक्षा तो वह नफे में रहता है जो चलता नहीं, अपनी जगह स्थिर खड़ा रहता है।

जीवन अपने आप में एक विभूति है। उसको विकृत होने पर बचा लेने पर ही यह बन पड़ेगा कि सदुपयोग की बात सोची जाय। अज्ञान हमें भटकाता है और उत्थान के नाम पर पतन के गर्त में धकेलता है। सामान्य प्रचलन में अज्ञानी अनजान को कहते हैं किन्तु वस्तुत: है वह जो विपरीत जानता है और उन कृत्यों में हित सोचता है जो अन्तत: दुष्परिणाम भुगतने के लिए ही विवश करते हैं।

कहना न होगा कि अपने समय की कठिनाई दरिद्रता या निरक्षरता ही नहीं है। उससे भी बड़ी विपत्ति यह है कि जिनके पास सम्पदा है, वे उसका ऐसा उपयोग करते हैं, जिससे न केवल उनका वरन् समूचे समाज का अहित होता है। ठीक यही बात शिक्षा के क्षेत्र में भी है। निरक्षरता प्रगति में अवरोध खड़ा करती है और उसके कारण मनुष्य पिछड़ी परिस्थितियों में पड़ा रहता है। किन्तु जिसने अपने मस्तिष्क में जाने-अनजाने विकृत ज्ञान का विष भर लिया है वे अपने कृत्यों, तर्कों, परामर्शों से असंख्यों को पथभ्रष्ट करते हैं। कला और साहित्य के क्षेत्र में इस बुद्धि-विपर्यय ने किस प्रकार कितना गहरा अधिपत्य जमाया है ? यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

सुविधा-सम्वर्द्धन और संकट निवारण के लिए खोजे जाने वाले उपाय-उपचारों में अर्थ संकट से जूझने की तरह यह भी आवश्यक है कि चेतना को समुन्नत और परिष्कृत करने वाली सद्ज्ञान सम्पदा का समुचित उपार्जन और उपयोग सिखाया-बढ़ाया जाय। इसके बिना अन्यान्य उपलब्धियों को हस्तगत कर लेने पर उनके द्वारा विनाशकारी उपक्रम ही बन पड़ेगा।

जिस प्रकार रुग्णता और दुष्टता की विपत्ति से सभी परिचित होते हैं और उससे बचने-निपटने का प्रयत्न करते हैं ठीक उसी प्रकार यह भी होना चाहिए कि अनाचार के पक्षधर कुविचारों का उत्पादन एवं प्रचलन रोका जाय। सज्जनता को बढ़ाने के लिए दुष्टता की रोकथाम भी होनी चाहिए। सद्विचारों का प्रसार-प्रतिपादन जितना श्रेयस्कर है, उससे कम यह भी नहीं कि कुप्रथाओं, कुप्रचलनों, अन्धविश्वासी और मूढ़मान्यताओं को निरस्त करने के लिए कुछ उठा न रखा जाय।

अनाचार जब दर्शन के रूप में तर्कों के अस्त्र-शस्त्र लेकर मैदान में उतरता है तो उसे ब्रह्मराक्षस कहते हैं। राक्षसों में सबसे बुरे स्तर का ब्रह्मराक्षस ही माना गया है।

कोई भी अशिक्षित न रहेगा

पिछड़ापन अशिक्षा का भाई है। निरक्षर व्यक्तियों द्वारा समीपवर्ती आँखों देखे क्षेत्र की ही जब कहीं कोई घटना सुन ली जाती है, तो उसे भी जानकारी में सम्मिलित कर लिया जाता है, अन्यथा संसार में चल रही गतिविधियों एवं खोजी हुई जानकारियों के सम्बन्ध में कुछ पता ही नहीं लगा पाते। कूपमण्डूक जैसी इस स्थिति में समय के अनुरूप अपनी, अपने परिवार एवं समाज की उन्नति का मार्ग भी नहीं खोज पाते। इसे दयनीय स्थिति ही कहा जा सकता है। अशिक्षितों को अन्धों में गिने जाने की कहावत है। इसमें कुछ सार भी है।

इन दिनों भी व्यक्ति और समाज के सामने अनेक समस्याएँ और उलझनें मौजूद हैं। अगले दिनों उनका विस्तार बढ़ेगा ही। उनका निराकरण करने के लिए बौद्धिक प्रतिभा एवं प्रखरता इतनी होनी चाहिए कि परिस्थितियों का सही स्वरूप समझा जा सके और निवारण के उपाय सोचना-खोजना सम्भव हो सके। यह कार्य शिक्षा के माध्यम से मानसिक परिष्कार द्वारा ही सम्भव है। इसलिए शिक्षा को मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उतना ही आवश्यक समझा जाना चाहिए, जितना कि पेट भरने के लिए रोटी। प्रयत्न गरीबी उन्मूलन के लिए भी होना चाहिए। उसी अनुपात से शिक्षा-सम्वर्द्धन के लिए भी।

बहुधा इस दिशा में सरकारें ही उत्तरदायित्व निभाती हैं और शिक्षणतन्त्र को घुमाती हैं। पर इन प्रयत्नों से समाज की आवश्यकता आंशिक रूप में ही पूरी हो पाती है। जो करना शेष रह जाता है, जो किया जाना है, वह उससे कहीं बड़ा है।

सरकार स्कूल, कॉलेज चलाती है। उनमें नई आयु के बालक मध्यम वर्ग के होने पर ही पढ़ पाते हैं। गरीब तबके के लोग न तो शिक्षा का महत्त्व समझते हैं, न बच्चों को आँखों से ओझल होने देना चाहते हैं और न उनके द्वारा जो थोड़ा-बहुत श्रम-सहयोग मिलता है उससे वंचित होना चाहते हैं। लड़कियों के सम्बन्ध में तो स्थिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भी गई बीती है। केवल मध्यम या उच्च वर्ग के लोग ही कन्याओं को पढ़ाते हैं। गरीब लोग जब बच्चों को पढ़ाने में ही सहमत नहीं होते, तो कन्याओं को पढ़ाने की उपयोगिता तो समझने ही क्यों लगे।

शिक्षा के प्रति जो उत्साह उठा है, उससे नई पीढ़ी ही लाभ उठा रही है। प्रौढ़ नर-नारियों में तो निरक्षरों की ही भरमार है। देश में ७० प्रतिशत अशिक्षित हैं। इन्हें उन प्रौढ़ों की संख्या में मानना चाहिए, जिन्हें कि समाज का संचालन एवं विविध समस्याओं का दायित्व वहन करने वाला कहना चाहिए। शिक्षा के अभाव में वे पग-पग पर भटकते हैं और वह करते हैं जो नहीं करना चाहिए। वह समझ या कर नहीं पाते, जिनका वर्तमान परिस्थितियों में करना नितान्त आवश्यक है।

जनसंख्या, गरीबी और महँगाई जिस अनुपात में बढ़ रही है, उसे देखते हुए लगता नहीं कि सरकार नव-आगन्तुकों तथा प्रस्तुत निरक्षर प्रौढ़ों के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर सकेगी। एक ओर उलझन भरे समय को देखते हुए शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता, दूसरी ओर उसका कारगर उपाय न बन पड़ना ऐसा असमंजस है, जिसका समाधान सरल नहीं दीखता किन्तु साथ ही यह ऐसा तथ्य है जिसे झुठलाया भी नहीं जा सकता।

सारे कार्य सरकार पर नहीं छोड़े जा सकते। भोजन, वस्त्र, आजीविका आदि के लिए निजी पुरुषार्थ करना पड़ता है। इसके लिए सरकार पर आश्रित नहीं रहा जा सकता। इसी प्रकार शिक्षा समस्या को भी जन क्षेत्र में ही हल करना होगा। मिल-जुलकर जनसहयोग के सहारे बड़े से बड़े काम पूरे हो सकते हैं तो शिक्षा को सार्वजनिक बनाने के लिए जनसहयोग का अवलम्बन लेना ही होगा।

अशिक्षितों में यह उमंग उत्पन्न करनी पड़ेगी कि वे जैसे आजीविका के लिए समय निकालते हैं, श्रम करते हैं और रुचि लेते हैं, ठीक उसी प्रकार पढ़ने की उपयोगिता, आवश्यकता समझने-समझाने के लिए प्रयत्न करें। क्योंकि जब तक पढ़ने वाले ही आनाकानी करते रहेंगे, तब तक दूसरे लोग जबरदस्ती पढ़ाने में सफल नहीं सकेंगे। अध्यापक पढ़ाने का प्रयत्न करे पर विद्यार्थी यदि उस ओर ध्यान न दे तो बात बनती कहाँ है?

इसके बाद अध्यापन की आवश्यकता पूरी करने का प्रश्न उठता है। यह कार्य सेवा-भावना से ही पूरा किया जा सकता है। जो शिक्षक सेवानिवृत्त हो चुके हैं, उन्हें विद्या ऋण चुकाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शिक्षकों के लिए फालतू समय का यही सबसे बड़ा उपयोग है। इससे अच्छा मनोविनोद, पुण्य कार्य दूसरा हो नहीं सकता। निवृत्तजनों के अतिरिक्त यदि कोई कार्य व्यस्त व्यक्ति भी चाहे तो कुछ समय पिछड़े लोगों को ऊँचा उठाने वाले इस धर्म प्रयोजन के लिए नियमित रूप से लगा सकते हैं। इसी अनुदान के सहारे साक्षरता सम्वर्द्धन की समस्या सरलतापूर्वक हल की जा सकती है।

प्रौढ़ पुरुषों के लिए रात्रि पाठशाला और महिलाओं के लिए तीसरे प्रहर की पढ़ाई की सुविधा जरूर हो सकती है। स्कूली बच्चे पढ़ाई के समय आवारागर्दी में घूमते रहते हैं। उनके लिए पाठ को परिपक्व करने तथा शिष्टाचार, स्वच्छता, अनुशासन, सुव्यवस्था, सज्जनता आदि के सम्वर्द्धन का कार्य हाथ में लिया जा सकता है, जिससे उनका व्यक्तित्व भी निखरेगा और परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने का अवसर भी मिलेगा।

आठवीं कक्षा प्रायः १६ वर्ष की आयु तक पूरी की जा सकती है। इतनी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। इसके लिए वर्तमान कार्यक्रम में परिवर्तन किया जाना भी आवश्यक है, जो आठवीं कक्षा पास हो उसे साक्षर मान लिया जाय। इसके उपरान्त यह होना चाहिए कि अभिभावक, विद्यार्थी और बच्चों की दिशा निर्धारण करें और उसी प्रयोजन के लिए बने स्कूलों में पढ़ाई आरम्भ करें। यह स्कूल आजीविका का सवाल हल करने वाले औद्योगिक होने चाहिए। इसके अतिरिक्त हर जगह ऐसे पुस्तकालय हों, जिनमें व्यक्ति, परिवार और समाज के समाने प्रस्तुत समस्याओं के प्रगतिशील एवं यथार्थवादी समाधान प्रस्तुत किए गए हों। हर शिक्षित का यह आवश्यक कर्तव्य होना चाहिए कि यदि खरीद नहीं सकता तो पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर अपनी ज्ञान वृद्धि करता रहे। जीवनोपयोगी आवश्यक ज्ञातव्य की उसे इसी माध्यम से उपलब्धि होती रह सकती है।

हर विद्यार्थी और अभिभावक को यह ध्यान में रखना होगा कि पढ़ाई और नौकरी मिलने का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगले दिनों जब सभी शिक्षित होंगे कौन किसके यहाँ नौकरी करेगा ? सरकार भी सभी शिक्षितों के लिए काम कहाँ दे पाएगी ? ऐसी दशा में उचित यही है कि अभिभावक और विद्यार्थी आठवीं कक्षा तक पढ़ने के उपरान्त यह निश्चय कर लें कि उन्हें आजीविका के लिए क्या मार्ग अपनाना है। जो निर्णय किया जाय उसी के अनुसार पढ़ाई का क्रम बनाया जाय। जिन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करनी है, वे भी उसे एक व्यवसाय मानें। सर्वसाधारण के लिए तो मध्यम मार्ग ही उपयुक्त रहेगा।

अध्ययन और उसके लिए साधन जुटाने का क्रम अपने आप अनायास ही नहीं चल पड़ेगा। इसके लिए ऐसे संयोजकों की आवश्यकता पड़ेगी, जो निरन्तर भ्रमण करते एवं सम्पर्क साधते रहें। कठिनाइयों का समाधान करते रहें। यह कार्य संयोजकों को करना होगा।

इक्कीसवीं सदी में गरीबी दूर होने की तरह निरक्षरता का अभिशाप भी मिटेगा। गोदी के बालकों को छोड़कर सभी को शिक्षित देखा जा सकेगा। सरकारें एक चौथाई भार उठाएँगी और तीन चौथाई प्रबन्ध जनसहयोग से सम्भव हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा ही नहीं विद्या भी

व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास शिक्षा और विद्या के समन्वय से

शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण का स्तर, साधन, परिस्थितियाँ एवं शिक्षार्थी का बौद्धिक स्तर सही होना पर्याप्त है। यह साधन जहाँ भी जुट जाएँगे वहाँ शिक्षा का लाभ सफलतापूर्वक मिलने लगेगा। शिक्षा हमारे लौकिक जीवन की सुव्यवस्था के काम आती है। जानकारी बढ़ने से सोचने की परिधि बढ़ जाती है—लिखने और बोलने की भाषा परिष्कृत होती है—अर्थोपार्जन की क्षमता बढ़ती है, विभिन्न शिल्प एवं कला-कौशल अभ्यास में आते हैं। इन आधारों पर मनुष्य नौकरी अथवा स्वावलम्बी उपार्जन में अधिक सफल होता है। ऐसे-ऐसे अनेक लाभों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का प्रचलन किया गया है। पढ़ने पर सर्वत्र बहुत जोर दिया जाता है। सर्वत्र स्कूल, कॉलेज खुले हैं—खोले जा रहे हैं—यह उचित ही है। मस्तिष्कीय विकास की दृष्टि से—अर्थोपार्जन जैसी आवश्यकता पूरी करने की दृष्टि से—अति आवश्यक शिक्षा का विकास होना ही चाहिए—उससे हर व्यक्ति को लाभान्वित होना ही चाहिए। इसमें दो रायें नहीं हो सकतीं।

भौतिक जानकारियों से सम्बन्धित शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता को हम जानते हैं, पर उसके दूसरे पक्ष को भूल जाते हैं, जिसके बिना हमारी ज्ञान-वृद्धि सर्वथा अधूरी और अपंग बनी रहती है। ज्ञान की दूसरी धारा है—विद्या। विद्या का अर्थ है दृष्टिकोण का परिष्कार—चिन्तन और भावोल्लास में उत्कृष्टता का निखार। इसके बिना मनुष्य के अंतराल में छिपी हुई रहस्यमय दिव्यता का विकास नहीं हो सकता। मानवता एवं महानता की आन्तरिक श्रेष्ठता का विकास जिस क्रम से होता है उसी क्रम से मनुष्य की आकांक्षाएँ, विचारधाराएँ और गतिविधियाँ उच्चस्तरीय बनती जाती हैं। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से उसका स्तर उठता जाता है। मन, वचन, कर्म में ऐसी विशेषताएँ दीख पड़ती हैं, जिनके सम्पर्क में आने वाला हर मनुष्य प्रसन्नता अनुभव करता है, प्रकाश ग्रहण करता है। इन दिव्य सम्पदाओं से सुसज्जित व्यक्ति अपने आप में हर घड़ी सन्तुष्ट एवं प्रफुल्ल रहता है, भले ही उसे अपेक्षाकृत अभावग्रस्त एवं कष्ट-साध्य परिस्थितियों में रहना पड़ रहा हो, यही है विद्या का चमत्कार—माहात्म्य और प्रतिफल।

इस तरह ज्ञान के दो अंग हैं, एक शिक्षा दूसरा विद्या। शिक्षा वह है जो कॉलेजों में पढ़ाई जाती है, जिसे पढ़कर लोग ग्रेजुएट, क्लर्क, डॉक्टर, वकील, इन्जीनियर, प्रोफेसर, अफसर आदि बनते हैं। यह जीवकोपार्जन एवं लोकव्यवहार में निपुणता प्राप्त करने के लिए है। यह आवश्यक है क्योंकि इसके बिना सांसारिक जीवन में स्थिरता एवं उन्नति का मार्ग नहीं खुलता। पर इससे भी आवश्यक 'विद्या' है। जिस ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य अपनी मान्यताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों का निर्माण करता है, उसी ज्ञान को विद्या कहा जाता है। इसे प्राप्त करने का माध्यम स्कूल-कॉलेज नहीं, वरन् स्वाध्याय और सत्संग हैं, चिन्तन और मनन से, सत्साहित्य पढ़ने से, सज्जनों के साथ रहने से उनके अभिवचन सुनने एवं क्रियाकलाप देखने से विद्या का आविर्भाव होता है।

इस तरह अक्षर अभ्यास और उसके सहारे विश्व की खुली परिस्थितियों का ज्ञान शिक्षा कहलाता है। इतिहास, भूगोल, गणित, भौतिकशास्त्र, जन्तु-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान, व्याकरण, भाषा, समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र यह सब शिक्षा के विषय हैं। इनकी उपयोगिता और आवश्यकता भी सर्वविदित है।

ज्ञान का महत्तर स्वरूप उसका विद्या रूप है। संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ एक अहं-समस्या, आध्यात्मिक सवाल हर घड़ी चलता रहता है। "मैं क्या हूँ, कौन हूँ" "मेरा प्रादुर्भाव क्यों हुआ है ?" "विश्व का आध्यात्मिक स्वरूप क्या है ? योनियाँ क्या हैं ? उनमें जीवात्मा का अवतरण कैसे और क्यों होता है ?" यह प्रश्न ऐसे हैं जो भौतिक शिक्षा, साधन और सम्पत्ति के होते हुए भी मनुष्य को आन्तरिक सुख-संतोष नहीं दे पाते। अपनी शाश्वत और सनातन सत्ता का बोध हुए बिना मनुष्य जिस आनन्द की प्राप्ति के लिए बार-बार शरीर धारण करता है, उसकी पूर्ति नहीं हो पाती। मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, फिर भटकता है, फिर भूलता है और मृत्यु के मुख में चला जाता है—क्यों ? ऐसा किस विधान से होता है इसे जाने बिना मुक्ति नहीं मिलती। क्लेशों का अनावरण नहीं होता। ज्ञान का अर्थ है—भावनात्मक स्तर को इस प्रकार उपयुक्त बनाना कि मनुष्य सांसारिक सफलताओं को भी प्राप्त करे और आध्यात्मिक, आन्तरिक शक्तियों की सुख और शान्ति भी उपलब्ध कर ले।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा और विद्या, लोकवृत्त की जानकारी और अन्तर्लोकवृत्त की भी जानकारी इन दोनों का ही सम्मिलित स्वरूप ज्ञान है।

दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, दोनों आवश्यक हैं। शिक्षा से ही वह योग्यता बढ़ती है, जिससे मनुष्य सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशद् से विशद् बातों को हृदयंगम कर लेता है। उसी से मनुष्य का बौद्धिक विकास होता है। बिना पढ़ा-लिखा आदमी जब छोटे-छोटे कर्तव्य भी सरलता से पूरे नहीं कर सकता तो आत्मा और परमात्मा जैसे विषय सम्पन्न करना बेचारे के वश में कहाँ होगा ? उसी प्रकार बहुत पढ़ा-लिखा तो हो, किन्तु उसने आत्मिक शक्तियों को न जगाया हो, न समझा हो तो वह भी दुःख और कष्ट में ही पड़ा रहता है।

आत्मविद्या के विकास के साथ-साथ प्रेम, स्नेह, सौजन्य, सौहार्द्र, सरलता, आत्मीयता, दया, करुणा, परोपकार, श्रद्धा, भक्ति, आत्मविश्वास, आत्मबल की अभिवृद्धि होती है। विचारपूर्वक देखा जाए तो जिन व्यक्तियों में यह अध्यात्मिक गुण होते हैं, वे पढ़े-लिखे न होने पर भी अपने आप में इतने सुखी, इतने सन्तुष्ट होते हैं मानों वे किसी इन्द्र के राज्य का सुखोपभोग कर रहे हों। इन गुणों से शून्य अन्तःकरण वाले बहुत पढ़े-लिखे होने पर भी कटुता, कलह, रोग, शोक, मद, मोह, माया, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड के मायाजाल में पड़े कष्ट भुगता करते हैं।

जहाँ शिक्षा और विद्या दोनों का समावेश हो जाता है, वहीं स्वर्ग उत्पन्न हो उठता है। शिक्षा से सांसारिक सफलताएँ अवश्यम्भावी हैं और विद्याभ्यास से आन्तरिक गुणों का यथा—प्रेम, दया, करुणा आदि का विकास असंदिग्ध रूप से होता है। जहाँ यह दोनों बातें मिल जाती हैं, वहीं आनन्द के फौबारे छूटने लगते हैं, स्वर्ग बन जाता है।

इसलिए शिक्षाभ्यास के साथ-साथ विद्याभ्यास की आवश्यकता भी सर्वोपरि है। साधना, उपासना, आध्यात्मिक ज्ञान से ओत-प्रोत साहित्य के निरन्तर स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, व्रत, उपवास आदि की आवश्यकता शिक्षा से भी अधिक है। प्राचीनकाल के गुरुकुलों में शिक्षा सम्बन्धी विषय गौण माने जाते थे, आत्मविद्या के विषय अनिवार्य होते थे। मनुष्य के दार्शनिक स्वरूप को यथार्थ, शाश्वत और पूर्णानन्द की प्राप्ति का पाथेय माना जाता था। इसलिए उस पढ़ाई पर ज्यादा जोर दिया जाता था, जो व्यक्ति के आत्म गुणों का परिवर्द्धन करती थी। उसकी आवश्यकता आज भी उतनी ही नहीं बल्कि वर्तमान विकृत परिस्थितियों में तो उससे भी अधिक है।

स्वाध्याय, आत्मचिन्तन, सत्संग, तीर्थाटन, व्रत, उपवास, उपासना, साधना के ग्राह्य और सुधरे हुए स्वरूप को समझने और प्रयत्नपूर्वक उन्हें अपने आत्मविकास में नियोजित करने की बुद्धि जिन लोगों में आ जाती है, उन्हें अपने आपको सौभाग्यशाली समझना चाहिए। आत्मजिज्ञासा आत्मकल्याण का मुख्य द्वार है। जो उसे पा लेता है, वह अपनी जीवन-यात्रा की मंजिल भी आसानी से प्राप्त कर लेता है। गीता अध्याय १ से १०वें श्लोक में भगवान कृष्ण ने भी कहा है—

तेषां सतत् युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयन्ति ते।।

अर्थात निरन्तर श्रद्धा और प्रयत्नपूर्वक मुझ ईश्वर को भजने वाले लोगों को मैं बुद्धियोग की प्रेरणा देता हूँ। वे इसी के सहारे मुझे प्राप्त कर लेते हैं।

परमेश्वर की कृपा जिस पर होती है, वह इस प्रकार अपनी बौद्धिक शक्तियों के विकास का प्रयत्न करता है। इसी से मनुष्य अपने भूले-भटके हुए लक्ष्यों को फिर से सुधार लेते हैं। परमात्मा को पा लेते हैं। सांसारिक पदार्थों का मिलना न मिलना उनके लिए कोई महत्त्व की बात नहीं रह जाती। यह तो उसे ऐसे ही मिल जाते हैं जैसे अन्न की कामना करने वाले किसान भूसा आदि ब्याज में ही पा लेते हैं।

आज शिक्षा की अभिवृद्धि तो हो रही है पर विद्या की उपेक्षा हो रही है। इसीलिए संसार में दुःख, शोक, सन्तापों की भी वृद्धि हो रही है। ज्ञान-यज्ञ की नई दिशा का विस्तार कर अब व्यक्तियों को विद्या-आत्मज्ञान की आवश्यकता भी अनुभव करनी होगी। उसके लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ भी करना होगा। जब यह प्रयत्न चलने लगेंगे तो न केवल व्यक्ति अपने सनातन लक्ष्यों की प्राप्ति करेंगे वरन् लौकिक जीवन भी भव्य बनेगा।

प्राचीनकाल में इस विद्या का महत्त्व समझा जाता था और उसे शिक्षा का अविच्छिन्न अंग बनाकर रखा गया था। गुरुकुलों की प्रशिक्षण पद्धति में जहाँ भाषा, गणित, भूगोल, शिल्प आदि विषयों का समावेश था, वहाँ ऐसा वातावरण भी जुड़ा रहता था, जिसमें शिक्षार्थी को अपनी आत्मचेतना का स्तर आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप ढालने का अवसर मिले—उसके व्यक्तित्व का—गुण, कर्म, स्वभाव का विकास-परिष्कार अनवरत गति से ऊर्ध्वगामी बनता चले। बौद्धिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण की ऐसी धाराएँ उस शिक्षा-पद्धति में जुड़ी हुई थीं, जिनके सहारे न केवल भौतिक योग्यताएँ वरन् आत्मिक विशेषताएँ भी शिक्षार्थी को समान रूप से मिलती रहें।

अर्वाचीन समाज निर्माताओं का विचार कुछ दूसरा ही है, वे भौतिक जानकारियों वाली अर्थकरी शिक्षा को पर्याप्त मानते हैं। अस्तु शिक्षण संस्थाओं का कार्य क्षेत्र बहुत सीमित रह गया है, वे साक्षरता से अपने प्रयास आरम्भ करती हैं और स्नातक बनाकर अपना प्रयोजन पूरा कर लेती हैं। शिक्षार्थी को जानकार एवं अमुक क्षेत्र में क्रिया-कुशल बनने का लाभ तो मिल जाता है, पर उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहाँ ऐसा कुछ नहीं मिलता, जिसे अन्तःचेतना के परिष्कार में सहायक कहा जा सके। इस कमी के कारण शिक्षार्थी की उपलब्धियाँ सर्वथा अधूरी रह जाती हैं। उसकी जानकारी एवं कुशलता अपनी सीमा में कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो, व्यक्तित्व का स्तर ऊँचा उठ नहीं पाता। वक्ता, खिलाड़ी, शिल्पी, कला-कुशल आदि वह कुछ भी बन जाय पर ऐसी कमी अपने भीतर अनुभव करता है, जिसके अभाव में वह चेतनात्मक प्रगति की दिशा में अपंग-असमर्थ ही बना रहा ।

विज्ञान, अर्थोपार्जन, शिल्प, कला आदि का अपना महत्त्व और कार्यक्षेत्र है। भौतिक प्रगति के लिए उन सबकी जरूरत है, पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि व्यक्तित्व को परिष्कृत करना अपने आप में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य क्षेत्र है। इसमें अनजाने बने रहने से कोई भी ऐसी स्थिति नहीं पा सकता, जिसके आधार पर वह भीतर आत्मसन्तोष प्राप्त करे और बाहर आत्मगौरव का पोषण कर सकने वाला वातावरण पाए। जीवन जीना एक महान शिल्प है। जिसे सलीके का जीवन जीना नहीं आया उसका सारा शिक्षा लाभ अपंग है। धन से सुविधा साधन खरीदे जा सकते हैं—प्रतिभा से दूसरों को आतंकित अथवा चमत्कृत किया जा सकता है—इतनी ही तो जीवन को आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को इससे ऊँचा भी कुछ चाहिए, इससे आगे की भी मंजिल पार करनी उसे अभीष्ट होना चाहिए। यह अभाव विद्या के माध्यम से ही पूरा किया जा सकता है।

विद्या का स्वरूप है—विचारणा एवं भावना के स्तर को उच्चस्तरीय बनाने वाला ज्ञान, अनुभव एवं अभ्यास। यदि उसे प्राप्त किया गया होगा, तो जीवनयापन की शैली में उत्कृष्टता का ऐसा समावेश होगा, जिसके आधार पर वह अपने सहचरों, सहकर्मियों, सम्पर्क में आने वालों का हृदय जीतता चला जाएगा। जहाँ भी सम्बन्ध स्थापित करेगा वहीं अपने लिए श्रद्धा एवं सम्मान का बीजारोपण करेगा। धनवान, गुणवान एवं शक्तिवान का अपना महत्त्व है, पर सबसे बड़ा, महत्त्व परिष्कृत व्यक्तित्त्व का है आत्मवान मनुष्य कितना बड़ा कितना समर्थ और कितना प्रभावी होता है इस तथ्य को समझने में तो आज हम सब प्रायः असमर्थ ही हो रहे हैं।

बाहर के लोग किसी की सम्पदा, रूप, प्रतिभा एवं पदवी से प्रभावित हो सकते हैं पर अपने आपे को जो सन्तोष तथा चैन मिलता है, उसका आधार केवल अपनी आन्तरिक सम्पदाओं से—विभूतियों से ही जुड़ा रहता है। दुष्ट, दुर्गुण, व्यसनी, अनाचारी व्यक्ति अपने आप में कितना अशान्त, उद्विग्न रहता है, इसे उसके अतिरिक्त और किसी बाहरी व्यक्ति के लिए समझ सकना कठिन है। वह अपने आप ही अपनी आग में जलता, झुलसता रहता है। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, रोष, उद्वेग, क्षोभ के अनेकानेक उतार-चढ़ाव उसे प्रेत-पिशाच की तरह अशान्त किए रहते हैं। मनःशास्त्र के अनुसार यह स्थिति अगणित ऐसी शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधियों को जन्म देती हैं जिनका उपचार न तो औषधियों से होता है और न सान्त्वना देने वाले विनोदात्मक उपचारों से। ऐसे उद्विग्न मनुष्य नशेबाजी, व्यभिचार, ठाठ-बाठ, पर्यटन, व्यसन, विलास आदि की योजनाएँ बनाकर उद्विग्नता का समाधान खोजते रहते हैं। दवादारू एवं बहुमूल्य आहार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, पर उनका शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य सुधरने ही नहीं पाता। खर्चीली और निन्दात्मक दौड़धूप कुछ क्षण भी राहत नहीं दे पाती और सारे प्रयास निरर्थक चले जाते हैं। अन्तःक्षेत्र को निकृष्टता कितनी आत्म-प्रताड़ना देती हैं; काश हम इसे समझ सके होते तो अनुभव करते कि इससे बढ़कर जीवन का अभिशाप दूसरा नहीं हो सकता।

दुर्गुणी, कुकर्मी एवं दुर्भावनाग्रसित व्यक्ति प्रतिभाओं एवं कुशलताओं से सम्पन्न होते हुए भी सम्पर्क क्षेत्र में अपने लिए श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सके, फलतः उन्हें सच्चे सहयोग से वंचित रहना पड़ता है। यह एक तथ्य है कि निकटवर्ती सम्पर्क क्षेत्र की सहायता से कोई व्यक्ति ऊँचा उठने में समर्थ हुआ है। जिसकी निकृष्टता सम्पर्क क्षेत्र में घृणा और तिरस्कार के भाव उत्पन्न करती है, वह कभी भी सच्चे सहयोग का—सच्चे सम्मान का अधिकारी नहीं बन सकता। किसी प्रयोजन विशेष के लिए लोग उसकी चापलूसी कर सकते हैं और लाभ में हाथ बँटा सकते हैं, पर सितारा गिरते ही वे पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं, इतना ही नहीं गिरे में दो लात लगाने की उक्ति भी चरितार्थ करते हैं। दुरात्मा अनुभव करता है कि कुसमय में उसका एक भी सच्चा मित्र या सच्चा सहायक नहीं है। वस्तुतः ऐसे एकाकी मनुष्य को ही अभागा कह सकते हैं। मात्र अपने पुरुषार्थ के बल पर सीमित प्रगति ही की जा सकती है। उच्चस्तरीय और चिरस्थायी सफलताएँ उसी को मिलती हैं जिसने अपने लिए श्रद्धा और सम्मान का वातावरण उत्पन्न कर रखा होगा। यह लाभ केवल उन्हीं के लिए सुरक्षित हैं जिनकी आन्तरिक स्थिति उत्कृष्टता के आधार पर विकसित-परिष्कृत हुई है।

मनुष्य जीवन को समग्र सफलता के लिए उस ज्ञान की महती आवश्यकता है, जिसे विद्या के नाम से पुकारा जाता है—जिसके आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कृत व्यक्तित्व का निर्माण होता है। न केवल वैयक्तिक समृद्धि के लिए—सुख-शान्ति के लिए—वरन् सामाजिक सुव्यवस्था एवं प्रगति के लिए भी ऐसे ही परिष्कृत व्यक्तियों की आवश्यकता है। किसी राष्ट्र अथवा समाज का भवन व्यक्ति घटकों की ईंटों से चुना जाता है। जिस देश के नागरिक ओछे और निकृष्ट होंगे, वहाँ विविध-विधि संकट, विद्रोह, अनाचार उभरते रहेंगे और गृह युद्ध जैसी स्थिति बनी रहेगी। अनाचार का जुड़वाँ भाई असहयोग है। जहाँ सहयोग नहीं वहाँ प्रगति कहाँ ? दुष्प्रवृत्तियाँ रोष-प्रतिशोध उत्पन्न करती हैं फलतः क्लेश कलह के अनेकानेक दुर्भाग्यपूर्ण घटना-क्रम सामने आते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं। ऐसे अन्तःद्वन्द्वों की—गृह-क्लेशों की—विभीषिकाओं में उलझा हुआ राष्ट्र कभी भी प्रगति नहीं कर सकता, कभी समर्थ नहीं हो सकता, उसकी सारी शक्ति उन्हीं विडम्बनाओं को सुलझाने-दबाने में—नष्ट होती रहती है। प्रगति के लिए जब समस्त साधन इन्हीं अव्यवस्थाओं, विस्फोटों से निपटने में लग जाएँ, तो आखिर प्रगति के लिए साधन बचेंगे ही कहाँ ?

किसी देश की गरिमा उसको भौतिक उपलब्धियों से नहीं आँकी जाती, वास्तविक सम्पदा तो वहाँ के चरित्रवान एवं आदर्शवादी नागरिक ही होते हैं। यही वास्तव में बहुमूल्य मणि-माणिक्य हैं। सच्ची समृद्धि इसी रत्न राशि की—बहुलता पर निर्भर है। सम्पन्नता धन पर आधारित नहीं है—शक्ति का माप आयुधों से नहीं किया जाता—बड़प्पन क्षेत्र—विस्तार या जनसंख्या पर टिका हुआ नहीं है। किसी राष्ट्र का गौरव उसके लौह नागरिक ही होते हैं। पिछले दिनों जर्मनी, इजराइल, जापान आदि छोटे देशों ने जो ऐतिहासिक भूमिकाएँ निबाही हैं और संसार को चमत्कृत किया है, उसमें वहाँ के नागरिकों का मनोबल ही प्रधान था। किसी समय भारत विश्व का मुकुटमणि था। इसमें उसके अर्थ साधन कारण नहीं थे और न शिक्षा, शिल्प, कौशल आदि का ही महत्त्व था। उसकी संस्कृति और जीवनयापन की रीति-नीति ही वह कारण थी जिससे भारत अपने आप में स्वर्ग समतुल्य बना, सतयुगी सुख-शान्ति से सम्पन्न रहा और समस्त संसार को ऊँचा उठाने आगे बढ़ाने में अद्भुत योगदान देता रहा। उत्कृष्ट व्यक्ति ही अपने देश, समाज एवं युग को धन्य बनाया करते हैं।

व्यक्ति का अस्तित्व गीली मिट्टी जैसा है। शिक्षा, संस्कृति एवं परिस्थितियाँ उसे बल देती हैं और ऊँचा उठाती हैं। यदि इस क्षेत्र में विकृतियाँ घुस पड़ें तो फिर मनुष्य उनसे प्रभावित होकर नीचे गिरता चला जाएगा। यह ठीक है कि आत्मा का अपना स्वरूप और बल है, वह परिस्थितियों को अपनी अन्तःशक्ति के आधार पर बदल सकता है। पर साथ ही इस मान्यता में इतना और जोड़ रखना चाहिए कि उस अन्तःशक्ति को सुविकसित करने के लिए वातावरण युक्त विद्या का खाद पानी भी दिया जाना चाहिए। बिना इन साधनों के अन्तःशक्ति का बीज अपने स्थान पर पड़ा भले ही रहे, वह उगेगा, बढ़ेगा और फलेगा-फूलेगा नहीं। अस्तु, आत्मशक्ति के विकास का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की विचारणा, भावना एवं क्रियाशीलता में उत्कृष्टता का समावेश कर सकने वाली विद्या के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

अपने समय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हम विद्या के महत्त्व को लगभग पूरी तरह भूल गए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया गया है। धर्म और अध्यात्म के आधार इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए ही विनिर्मित-विकसित हुए थे। उन्होंने भी अपनी दिशा बदल दी, अब वे परम्पराओं के दुराग्रह में निरत हैं अथवा सस्ते कर्मकाण्डों से स्वर्ग मुक्ति का, सिद्धि चमत्कार का काल्पनिक प्रसाद वितरण करते हैं। सन्त-साधु और ब्राह्मण-पुरोहितों की कमी नहीं, पर वे अपने मूल कर्तव्य से सर्वथा विमुख होकर धन और सम्मान लूटने के जाल बुनने में निरत हैं। शिष्य और यजमान अब उनके सेवा साध्य नहीं रहे वरन् दुधारू गाय मात्र रह गए हैं। विद्या सम्वर्द्धन कि लिए खड़ा किया गया धर्म क्षेत्र भी जब इन्हीं विडम्बनाओं में डूब गया तो शिक्षाशास्त्रियों, समाज के कर्णधारों और राजनेताओं को किस मुँह से दोष दिया जाय ?

आज की स्थिति कुछ भी क्यों न हो—मानवी प्रगति और सुख-शान्ति की आधारशिला 'विद्या' की अवमानना नहीं हो सकती—उसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता—निरर्थक नहीं ठहराया जा सकता। उसका महत्त्व जनसाधारण को समझाना ही पड़ेगा और इस तथ्य को हृदयंगम कराना पड़ेगा कि विद्या के बिना न व्यक्ति को शान्ति मिलेगी न समाज की प्रगति होगी। विद्या की आवश्यकता का झुठलाते रहना अपने ही दुर्भाग्य को सिर पर लादे रहना है। भौतिक प्रगति कितनी ही विस्तृत क्यों न हो जाय, यदि मनुष्य का आन्तरिक स्तर गिरा रहा तो उस प्रगति का उपयोग संग्रहीत बारूद में जल मरने जैसा ही होगा।

वैयक्तिक चरित्रनिष्ठा—चिन्तन की उत्कृष्टता और क्रियाकलाप में आदर्शवादिता का जो समावेश कर सके ऐसी विद्या का बीजारोपण, उत्पादन एवं अभिवर्द्धन इस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस तथ्य को समझा जाना चाहिए और उसके लिए प्रबल प्रयत्न किया जाना चाहिए। रक्त शोधन से ही दाद, खाज, फोड़े, चकते, चेचक विस्फोट अच्छे होंगे, ऊपरी उपचारों का क्षणिक परिणाम ही मिलेगा। चर्म रोगों की जड़ काटने के लिए रक्त-शोधन आवश्यक है। आज की अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों, कुत्साओं और कुण्ठाओं का निराकरण मनुष्य के चिन्तन-परिष्कार से ही सम्भव होगा। यह प्रयोजन विद्या तत्त्व की आवश्यकता समझने और उसे उपलब्ध करने के साधन खड़े करने से ही सम्भव होगा। अपने युग की यह सबसे बड़ी माँग, पुकार और आवश्यकता है। सर्वनाश की ओर दौड़ी जा रही मानव जाति को सामूहिक आत्महत्या से विरत करने की रोकथाम विद्या अभिवर्द्धन के बिना और किसी प्रकार हो नहीं सकेगी। उज्ज्वल भविष्य की आशा विद्या प्राप्त करने के साधन खड़े किए बिना और किसी प्रकार फलित नहीं हो सकती।

योग्यता, प्रतिभा, विद्वता स्कूली शिक्षा द्वारा बढ़ती है। व्यक्तित्व श्रेष्ठ एवं सुसंस्कारी बनता है। अध्यात्म के अवलम्बन से सर्वांगीण विकास के लिए, अध्ययन जितना आवश्यक है उतना ही सद्विचारों एवं सद्भावों का संचय सन्तुलित प्रगति का आधार इन दोनों के सामन्जस्य के आधार पर बनता है। एक के बिना दूसरा एकांगी और अपूर्ण है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कः विद्या ?

सामाजिक परिवर्तन प्रत्यावर्तन के इन क्षणों में व्यापक ढूँढ़-खोज विद्या की है। वह विद्या जो मनुष्य को मनुष्यत्व दे सके जीवन का उद्देश्य और उपयोग सिखा सके। जिसके बिना आज का आदमी मारा-मारा डोलता है। उन बेतुकी-बेतरतीब हरकतों में संलग्न होता है, जिसे देखकर कोई भी प्रज्ञावान विवेकी उसे सनकी कहे बिना न रहेगा। बहुसंख्यक जनसमुदाय की इस पतनोन्मुख जीवन दशा का एक ही कारण है विद्या का अभाव।

कहाँ गई वह विद्या ? विद्यालयों की बढ़ती बाढ़, अध्यापकों की बढ़ती भीड़ ने उसे कहाँ छुपा लिया ? आज के माहौल में इन प्रश्नों के उत्तर में इन्हीं सवालों की प्रतिध्वनि की गूँज सुनाई देती है। नहीं मिलता है वह समाधान जो भटकों को राह दिखा सके। इसे यों भी कहा जा सकता है कि समाधान तलाशती राहें गलत हैं। इस पर चलकर भला कोई सन्तुष्ट भी कैसे हो ?

इसकी तलाश के लिए प्रख्यात अध्येत्ता आर० एन० पाणि ने अपनी कृति 'इन्टीग्रल एजूकेशन थाट एण्ड प्रैक्टिस' में प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके अनुसार मानवी प्रकृति को प्रशिक्षत-रूपान्तरित करने के तीन सोपान हैं शिक्षा, कला, विद्या। प्रत्येक सोपान परस्पर अन्योन्याश्रित होते हुए भी अपने में एक विधा है। पहली दोनों की सार्थकता इसी में है कि तीसरी को उपलब्ध कर ले। ऐसा न हो पाने पर इनकी स्थिति कुछ वैसी ही होती है जैसी लँगड़े या लूले की। आज के स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा है जिसका उद्देश्य विभिन्न माध्यमों से बालकों का बौद्धिक विकास, स्मृति अभिवर्द्धन करना है। परीक्षा लेने की तकनीकों से उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रमाणित होती है, बल्कि ज्यादा अंशों में परीक्षा बौद्धिक विकास की अपेक्षा स्मरणशक्ति की कहीं अधिक होती है ?

कोई भी शिक्षा सही दिशा में अपने बढ़ते कदमों से कला तक पहुँचती है। कला की प्रवृत्ति प्रारम्भ से भावोन्मुखी होती है। यदि कोई भी कला अभी तक भावों को नहीं स्पर्श कर पाई है तो समझना चाहिए कि उसका दायरा अभी शिक्षा तक ही है, वह कला नहीं बन पाई। उदाहरण के लिए संगीत शिक्षा भी है और कला भी। अपने प्राथमिक चरणों में उस्ताद शिक्षा की जब तबला सितार आदि वाद्य यन्त्रों को बजाने की तकनीकें सुझाता है सिद्धान्त सिखाता है तब वह शिक्षा होती है सिर्फ बुद्धि और स्मृति गम्य। मतलब इतना ही होता है कि बुद्धि समझे और स्मृति बाद रखे।

शिक्षा की परिपक्वता के बाद जब संगीत साधक अन्तर भावों में डूबकर गाता है। स्वयं विभोर होकर औरों को विभोर करता है। तब इन क्षणों में शिक्षा कला का स्वरूप प्राप्त करती है। इस अपूर्व तन्यमता में उसकी विकसित होती जा रही भाव चेतना अपनी मौलिकता की अभिव्यक्ति विषय की निगूढ़ताओं अन्तर की अनेकानेक सूक्ष्मताओं में करती है।

भाव स्पर्शी कला यदि विकास की गति पर बढ़ सकी तो कला साधना बन जाती है। ऐसी साधना जो भावों के प्रगाढ़-परिपक्व होने पर जीवन शोध करा दे। अलाउद्दीन खाँ, रबीन्द्र नाथ टैगोर ने कला का विकास इसी स्तर तक किया था। यह कथन सिर्फ संगीत के क्षेत्र में ही नहीं अपितु साहित्य यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्र में भी सत्य है। इमर्सन ने साहित्य तथा रमन-आइन्सटाइन ने विज्ञान के माध्यमों से विद्या के इसी स्वरूप को उपलब्ध किया था। इस सम्भावना के बाद भी आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शिक्षा कला बने और प्रत्येक कला विद्या के स्तर तक विकसित हो सके।

इस विकास के न हो पाने का एक उदाहरण यूनान के साफिस्टों में मिलता है। ये लोगों से पैसा लेकर अपने स्कूलों में उन्हें तर्क करना सिखाते थे। इन्हीं में से एक बहुत बड़ा साफिस्ट था, जीनो। उसने घोषणा कर रखी थी, कि किसी को भी हराना हो, तो मैं तर्क की शिक्षा देता हूँ। वह आश्वस्त इतना था कि विद्यार्थी से आधी फीस लेता और कहता आधी तब देना, जब तुम किसी को तर्क में हरा दो।

उसके पास अरिस्तोफेनीज नाम का छात्र आया। आधी फीस देकर दो साल पढ़ा। दो साल बाद शिक्षक यह देखने लगा कि कब आधी फीस मिलें। इधर अरिस्तोफेनीज ने बहस करना बन्द कर दिया, कारण कि अगर वह जीत जाए तो आधी फीस चुकानी पड़े।

जीनो मुश्किल में था। इधर अरिस्तोफेनीज ने कहा मैं फीस देने वाला नहीं, जब तक मैं जीतूँ न। शिक्षक भला क्यों हार मानता—मामला अदालत में गया। जीनो का ख्याल था कि अगर अदालत ने अरिस्तोफेनीज को जिता दिया तो मैं कहूँगा कि फीस ला क्योंकि तू मुझ से पहला विवाद जीत चुका है और यदि वह न जीत कर मैं जीता तो फीस मिल ही जाएगी। लेकिन शिष्य भी कम चालाक न था। उसने कहा यदि मैं जीत भी गया तो पैसा नहीं देने का क्योंकि मैं अदालत में प्रार्थना करूँगा कि वह अदालत का अपमान है और यदि हार गया तब तो पैसा देने की जरूरत ही नहीं है क्योंकि मैं पहला विवाद ही हार गया। हुआ यही अदालत से जीत जाने के बाद उसने पैसा न दिया। यह है शिक्षा अर्थात विकसित बौद्धिकता जो अपने निहित स्वार्थों के रक्षण-अभिवर्द्धन में खपती रहती है।

आज की स्थिति में भी इसका उपयोग धन सम्पदा के अर्जन तक सिमटकर रह गया है। कला सम्मान अर्जित करने में खप रही है। फिर भला इनका विकास विद्या के रूप में कैसे हो? यही कारण है कि सच्चे अर्थों में कला भी खोती जा रही है। प्रत्येक क्षेत्र में कलाकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्णात-लुप्त होते जा रहे हैं। कारण एक ही है उनकी रीति-नीति का भाव स्पर्शी होने के स्थान पर वैभव स्पर्शी होना।

उपनिषदों ने इन सबका वर्गीकरण दो वर्गों में किया है, अपरा विद्या व परम् विद्या। पहले में शिक्षा व कला की समस्त विद्याओं का समावेश है। दूसरे में जीवन बोध के सूत्रों का। इन सूत्रों को उचित ढंग से समाविष्ट करने पर जीवन का प्रत्येक कार्य आत्मोन्नति का साधन बनता है और अपरा विद्या भी परा विद्या का स्वरूप प्राप्त करती है। आचार्य शंकर की प्रश्नोत्तरी माला में एक सवाल आता है क: विद्या: ? वह उत्तर देते हैं सा विद्या या विमुक्तये। अर्थात विद्या वही जो मुक्ति दिला सके। मुक्ति किससे ? भ्रम-जंजालों से, इन्द्रियों की दासता से, स्वयं की दैन्यता से। हर उस चीज से जो जीवन बोध में अवरोध बनती है।

शिक्षा विज्ञानी टी० एम० श्री निवासाचारी अपनी कृति 'कन्सेप्ट ऑफ रियल एजुकेशन' में कहते हैं ऐसी विद्या भला विद्यालयों में कहाँ ? उलटे वर्तमान स्थिति में विद्यालय विद्या के लय होने के आगार बन गए हैं। इसकी प्राप्ति एकाकी पुस्तकों के बल पर होती भी नहीं। अन्यथा ईसा के उपदेशों को अपने में सँजोने वाली बाइबिल की प्रकाशित संख्या दुनिया में सबसे अधिक है। इसके बाद भी ईसा के उपदेशों को जीवन में धारण करने वाले नगण्य हैं। इसे तब तक सीखा जाना दुष्कर है, जब तक सामने मानवी प्रकृति का ऐसा मर्मज्ञ न हो जिसने स्वयं का रूपान्तरण कर लिया है।

अतीत के भारत में गुरुकुल-आरण्यक परम्पराओं के माध्यम से इस संजीवनी विद्या का विस्तार होता था। पुरोहित व परिव्राजकों दूसरे शब्दों में ब्राह्मणों व साधुओं का समूचा वर्ग इसके विस्तार के लिए सर्वथा तैयार रहता था। सिर्फ भारत ही क्यों संसार के किसी भाग में सांस्कृतिक गरिमा के दिवाकर की रश्मियाँ चमकी हैं। इन विद्या विस्तारकों की अप्रतिम भूमिका रही है। वसुन्धरा के प्रत्येक कोने में जिन्दगी की ऊँचाइयों-गहराइयों की परख करवाने वाले ईसा, फ्रांसिस, संत पाल, लाओत्से, कन्फ्यूशियस जैसे जीवन विद्या के आचार्य हुए हैं। जिन्होंने कुम्हलाई-मुरझाई मानवता पर अपनी संजीवनी विद्या का प्रयोग कर **विद्ययाऽमृतमश्नुते** के कथन को चरितार्थ किया है।

आज जबकि समाज समग्र प्रत्यावर्तन के मुहाने पर खड़ा है। ऐसे में उसे आचार्य शंकर, गौतम बुद्ध, ऋषि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द जैसे विद्या विस्तारकों की याद आना अस्वाभाविक नहीं है। जो अपनी जीवन विद्या के माध्यम से मानवता को गढ़कर-तराशकर कल के प्रकाशमान युग के लिए तैयार कर सकें। कोई व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष नहीं समूची मानव जाति तीव्र रूप से अभीप्सित है, उस विद्या के लिए जिसे भगवान कृष्ण ने **'अध्यात्म विद्या विधानों'** कहा है। शास्त्रकारों ने जिसे **'नास्ति विद्या समंचक्षु'** कहकर जीवन दृष्टि देने वालों से अनुपमेय ठहराया है।

इस जीवन विद्या के विस्तार के लिए ही व्यापक स्तर पर लोक शिक्षकों की आवश्यकता है, जो जीवन जीने की कला के साथ भावों की प्रगाढ़ता-परिपक्वता को भी गूँथकर व्यक्ति के मन में समाहित कर सकें। तभी परिलक्षित होगा—भावी देवमानव का रूपान्तरित स्वरूप।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या किसे कहते हैं ? इसकी परिभाषा करते हुए शास्त्रकारों ने सूत्र रूप में कह दिया है कि—**'सा विद्या या विमुक्तये'** विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करे। जिसके द्वारा हम रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि की दासता से मुक्ति प्राप्त कर सकें वह विद्या है। ऐसी विद्या को प्राप्त करने वाले विद्वान कहे जाते हैं।

प्राचीन समय में आज के जितने स्कूल-कॉलेज न थे। पढ़ने वाले छात्रों को एक गधे के बोझ की बराबर पुस्तकें लाद या स्कूल न जाना पड़ता था। दिन-रात आवश्यक बातें रटाने की पद्धति की आज की शिक्षा प्रणाली का कहीं दर्शन भी न था। तो भी लोग विद्वान होते थे। उपयोगी शिक्षा और विद्या का इतना अधिक प्रचलन था कि हर ग्राम और नगर स्वत: एक कॉलेज था। वहाँ के निवासी अपने घर वालों, कुटुम्बियों और नगर निवासियों से ही बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। तोता रटंत की अपेक्षा जीवन की उपयोगी और आवश्यक शिक्षा क्रियात्मक रीति से प्राप्त की जाती थी। प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुभव द्वारा वे तथ्य शिक्षार्थियों को भली प्रकार हृदयंगम हो जाते थे।

मेघनाद, कुम्भकरण, अंगद, हनुमान, जामवन्त से योद्धा, अर्जुन, भीम, भीष्म, द्रोण जैसे महारथी बी० ए० पास थे या मैट्रिक्युलेट थे, इसका कुछ पता नहीं चलता। दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा, खगोल, भूगर्भ, प्राणिशास्त्र, रसायन, शिल्प, वास्तु, अर्थ, नीति, धर्म, अध्यात्म आदि विषयों के विशेषज्ञ घर-घर में होते थे। इन विषयों की वे क्रियात्मक जीवन में अनुभव पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते थे और अपने विषय के सुयोग्य ज्ञाता बन जाते थे। पुरुष के समान स्त्रियाँ भी अपनी विद्वत्ता में, शिक्षा में आगे चढ़ी-बढ़ी थी। स्त्रियों के कॉलेज कहीं थे, इसका पता इतिहास के पन्ने नहीं देते पर इतना जरूर बताते हैं कि आज की 'कॉलेज गर्ल्स' की अपेक्षा उस समय की ललनाएँ हर दृष्टि से अधिक सुशिक्षित होती थीं।

कबीर, रैदास, दादू आदि संत शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए कहे जा सकते हैं। वे साहित्य और व्याकरण के उतने विद्वान न थे तो भी आज के अध्यापकों, प्रोफेसरों की अपेक्षा उनकी विद्या वास्तविक थी। अकबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़े-लिखे न थे, पंजाब केशरी महाराणा रणजीत सिंह की शिक्षा नहीं के बराबर थी, छत्रपति शिवाजी शिक्षित न थे पर जो कुछ उन्होंने सीखा था, वह आज के फटे हाल ग्रेजुएटों, पोस्ट ग्रेजुएटों की अपेक्षा बहुत उपयोगी एवं वास्तविक था।

हम क्या पढ़ें ? एवं बच्चों को क्या पढ़ावें ? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर शास्त्रकार इस प्रकार देते हैं कि जिस ज्ञान के आधार पर दुःखदायी बन्धनों से छुटकारा प्राप्त किया जा सके वही विद्या है, उसे ही पढ़ा और पढ़ाया जाय। रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि के शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता शक्ति जिस उपाय द्वारा मिले वही विद्या है, उसे ही सीखना और सिखाना उचित है।

आज की शिक्षा उपरोक्त कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त बिल्कुल निकम्मी सिद्ध होती है। जीवन का एक तिहाई भाग स्कूल-कॉलेजों के कैदखाने में व्यतीत करने के बाद हमारे बालक जब बाहर आते हैं, तो वे उपरोक्त बन्धनों से छूटना तो दूर उलटे जब स्कूल में प्रवेश हुए थे उसकी अपेक्षा भी अधिक जकड़े हुए निकलते हैं। शील, स्वास्थ्य, संयम, विवेक, विनय, श्रद्धा, उत्साह, वीरत्व, सेवा, सहयोग आदि विद्या द्वारा प्राप्त होने वाले स्वाभाविक फल जब उनमें दृष्टिगोचर नहीं होते तो फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होंने विद्या प्राप्त की है या वे विद्वान हो गए हैं।

अन्धानुकरण करके अपने बालकों के इस निरर्थक एवं हानिकर शिक्षा का भार लादकर उनके स्वास्थ्य और जीवन विकास से रोकना उचित नहीं। इतनी खर्चीली, इतनी श्रमसाध्य शिक्षा जब विद्या से प्राप्त होने वाले सुफल की उपस्थित नहीं करती वरन् उलटे परिणाम उत्पन्न करती है तो उसे अविद्या या कुशिक्षा ही कह सकते हैं। इस कुशिक्षा में बालकों के जीवन के विकासोन्मुखी—प्रमुख भाग बर्बाद कर दिए जाने पर भविष्य में वे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगे इसकी सम्भावना बहुत कम रह जाती है। किशोरावस्था का पुष्प, तोता रटन्त में रात-रात भर जागकर जब मसल डाला जाय तो फिर उस पर उत्तम फल लगने की क्या आशा की जा सकती है ?

उच्च शिक्षा के नाम पर प्रचलित वर्तमान अनुपयोगी शिक्षा से हमारा कुछ भी भला नहीं हो सकता। अब हमें ऐसी शिक्षा का निर्माण करना होगा जो अफसर, क्लर्क, बाबू आदि ढालने की फैक्ट्री न रहकर शिक्षार्थी के जीवन विकास में सर्वतोमुखी सहायता प्रदान करे। उस शिक्षा में अनावश्यक पुस्तकों का गंदभ भार न रहकर अनुभवी क्रिया-कुशल आचार्यों द्वारा जीवनोपयोगी, व्यावहारिक शिक्षा देने की व्यवस्था होगी। वही शिक्षा हमारे बालकों को सफल योद्धा, व्यापारी, नेता, सेवक, शिल्पी, वैज्ञानिक आदि बना सकेगी। उस धार्मिक आधार पर खड़े हुए शिक्षण से ही मनुष्यों के बीच सच्चे प्रेम और सद्भाव की स्थापना होगी और सुख शान्तिमय लोक-परलोक का निर्माण होगा। आज ऐसी ही समन्वित एवं समग्र शिक्षा प्रणाली के निर्माण की आवश्यकता है जिसमें भौतिक प्रगति के साथ-साथ आत्मोन्नति का मार्ग भी प्रशस्त होता हो।

सर्वोत्तम विभूति—विद्वत्ता

शास्त्रकार ने सन्देश दिया है—

गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः।

यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि॥

"हे मनुष्यो ! उम्र बीत जाने पर भी यदि विद्या प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो तो तुम निश्चय ही बुद्धिमान हो। विद्या इस जीवन में फलवती न हुई तो भी दूसरे जन्मों में वह आपके लिए सुलभ बन जायगी।" मनुष्य का सबसे बड़ा विवेक, गौरव और उसकी विभूति उसकी विद्वता है, इससे बढ़कर और कोई सम्पत्ति इस संसार में नहीं है।

विद्या शब्द ज्ञान की सार्थकता का पर्याय है। जो ज्ञान मनुष्य को लौकिक बन्धनों से मुक्त करे और उसे जीवात्मा की वस्तुस्थिति की बूझ कराए वस्तुतः वही विद्या सार्थक है। दुःख-क्लेश और अभाव हमें तब तक पीड़ित करते हैं, जब तक आत्मस्वरूप का हमें ज्ञान नहीं होता। विद्या के प्रकाश में सब कुछ ऐसे झलकने लगता है जैसे सूर्य के प्रकाश से सारा संसार जगमग हो उठता है। मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी इसलिए धन नहीं, सत्ता और रूप सौंदर्य भी नहीं है। विद्या, बुद्धि, सद्बुद्धि और विवेक के मापदण्ड से ही व्यक्तित्व की श्रेष्ठता की परख होती है। बुद्धिमान ही सच्चे धनी होते हैं, विद्या ही सच्चा धन है योग्यता, विद्वता और प्रतिभा ही बड़प्पन की कसौटी है।

महान पुरुष सदैव ऐसे ही अधिकारी पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, जिन्हें विद्या के माध्यम से ही प्रवीणता प्राप्त हुई हो। महाराज धृतराष्ट्र को कौरवों तथा पांडवों को शस्त्र-प्रशिक्षण के लिए किसी सुयोग्य आचार्य की आवश्यकता थी किन्तु कोई विद्वान राजगुरू उन्हें दिखाई न दिया। एक दिन द्रोणाचार्य भी उनकी सभा में आए। धनुर्विद्या में प्रवीण आचार्य का पांडित्य देखकर महाराज मुग्ध हो गए और उन्होंने समझ लिया कि इनके समीप रहकर बालकों के चरित्र का विकास हो सकेगा। अकेले शस्त्र प्रशिक्षण की बात रही होती तो वह कार्य कोई भी कर सकता था। नैतिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए विद्वता भी तो आपेक्षित है।

प्राचीनकाल में अध्यापन कार्य इसीलिए सबसे कठिन कार्य माना जाता था और कोई विद्वान पुरुष ही शिक्षक बनने का साहस कर सकते थे। ऐसे व्यक्तियों को शिक्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का कार्य सौंपा जाता था, जो अक्षर ज्ञान के साथ मनुष्य की प्रतिभा विकसित करने में लिए समर्थ होते थे। वह वस्तु विद्या ही है जो मनुष्य को श्रेष्ठ बनाती और ऊँचा उठाती है। गिरे हुए समाज के उद्धार के लिए भी विद्या एक अनिवार्य आवश्यकता है।

आधुनिक विद्या का स्वरूप कुछ बदल गया है, वह पूर्णतया अशक्त हो चुकी है। दोनों का चरित्र-बल, कर्म शक्ति, आशा, विश्वास, उत्साह, पौरुष, संयम और सात्विकता जागृत करने की शक्ति उसमें नहीं रही। जिस विद्या में कर्तव्य-शक्ति को प्रेरणा न मिलती हो, स्वतन्त्र रूप से विचार करने की बुद्धि न आती हो, परिस्थितियों से टकराने की सामर्थ्य जो न दे सके, वह विद्या निस्तेज है, निष्प्राण है। आज का युग कुछ ऐसा ही हो रहा है। विद्यार्थी डिग्रियाँ प्राप्त करके निकलते हैं तो उनमें छल कपट, धूर्तता, दुश्चरित्रता, फैशन-परस्ती, विलासिता और द्वेष, अहंकार के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देता। स्वतन्त्र चिन्तन का उनमें बिल्कुल अभाव होता है। विचारों की पराधीनता का नाम अविद्या है। जो मनुष्य को स्वाधीन बनाए सर्वोपरि साहसी बनाए, विद्या कहलाने का गौरव उसे ही मिल सकता है।

अध्यात्म रामायण में बड़े सुन्दर शब्दों में उल्लेख मिलता है—

देहोऽहमिति या बुद्धिरविद्या सा प्रकीर्तिता।

नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति मन्यते।।

अर्थात—'मैं देह हूँ' इस बुद्धि का नाम अविद्या है। मैं देह नहीं चेतन आत्मा हूँ, इसका ज्ञान प्राप्त करना ही सच्ची विद्या है।

देह, उसकी विशेषताएँ और उस के सुखों के प्रति जब मनुष्य की चेतना एकमुखी हो जाती है, तो उसकी प्रतिभा का विकास रुक जाता है। विकास का अर्थ इहलौकिक सम्पदाओं की विपुलता प्राप्त कर लेना नहीं है, वह विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक जागृति का लक्षण है। मनुष्य का स्वत्व है, उसकी आत्मा और उसकी विशेषताएँ, सद्गुण, सद्प्रवृत्ति और सदाचार। आत्मा की इन विशेषताओं को उपलब्ध करना ही इस जन्म का उद्देश्य है और जो इस दिशा में हमारी चेतना को अग्रसर करे वही सच्ची विद्या है।

यह ज्ञान वैदिक साहित्य में कूट-कूट कर भरा है किन्तु बाह्य शक्तियों के संघात के कारण परिस्थितियाँ ऐसी बन गई हैं कि यह वाङ्मय आधुनिक शिक्षा के मलवे में दबकर रह गया है। इससे जीवन का आध्यात्मिक क्षेत्र बिल्कुल उपेक्षित बनकर रह रहा है। सर्वत्र दुःख-क्लेश और अशांति के लिए इस युग का भौतिकतावादी दृष्टिकोण ही अधिक दोषी है। एक कठिनाई यह है कि इस ज्ञान को व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत करने के प्रयत्न भी बिल्कुल निर्बल और कमजोर हो गए हैं, जहाँ-तहाँ कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ चलती भी हैं किन्तु व्यक्तित्व के अभाव के कारण वह प्रभाव उत्पन्न नहीं हो पाता जो जनजीवन की दिशा बदल सके। भारतीय संस्कृति का पतन भी व्यक्तित्व के अभाव में ही हुआ है। देवालयों, शिक्षालयों, विहार श्रामण और संघों से लोगों की आस्था उठ जाने का कारण यही था कि उनमें व्यक्तित्व न रहा। देव-मन्दिर जड़ थे भला वे सांस्कृतिक शक्तियों के संघर्ष का जबाव कैसे दे सकते थे ? इससे धर्म के प्रति लोगों की आस्था उठ गई और सर्वत्र अविद्या का ही अन्धकार छाकर रह गया।

वह विद्या जो मनुष्य को सही दिशा, सही मार्ग और सच्चा प्रकाश दिखाती है उसे अध्यात्म कहते हैं। इस अध्यात्म को जागृत करने का काम अपने आपसे शुरू करना होगा इसके लिए विद्वता प्राप्त करना हमारी पहली आवश्यकता है। दुनियावी शिक्षा के रंग-ढंग तो बहुत देख चुके, इनसे कोई समस्या हल न हो सकी। निष्कर्ष निकलता भी कैसे ? आत्मज्ञान के बिना परिस्थितियाँ बदल भी तो नहीं सकतीं। विवेक जगाने वाली विद्या न रही तो पतित होना स्वाभाविक ही था। इस पतन से जी उकता उठा है, प्रत्येक साँस के साथ जो गन्दगी भीतर जा रही है, उसके कारण अब जनजीवन बुरी तरह बेचैन है, छटपटा रहा है। इस घुटन को दूर करने का एक ही उपाय है और वह है आध्यात्म विद्या की प्रवीणता। साधना से और व्यवहार से जब तक जीवन की दिशा सात्विक नहीं होती, गुण, कर्म और स्वभाव में सद्तत्वों का समावेश नहीं होता, जड़ता तब तक दूर हो नहीं सकती। आत्मविद्या के देवालय में प्रवेश प्राप्त किए बिना न तो शान्ति मिल सकती है न संतोष। विद्या सुखी जीवन की प्रमुख आवश्यकता है, इसे यों ही ठुकराया नहीं जा सकता।

जिस विद्वता से मनुष्य स्वयं ही अपना योग्य साथी बनता है, उसे प्राप्त करने के लिए अधिक अनुभव, सहनशीलता और अध्ययन की आवश्यकता है। अनुभव का उपयोग जीवन को शुद्ध बनाने के लिए है, कदम-कदम पर जो कठिनाइयाँ मनुष्य का रास्ता रोकती हैं, उनसे बचते रहने का ज्ञान प्राप्त करना ही अनुभवी होना है। अनुभव विवेक का बड़ा भाई है, सत्य-असत्य की शिक्षा उसी से मिलती है इसलिए प्रत्येक गतिविधि को एक पाठ समझकर उसकी विलक्षणताओं का अध्ययन सूक्ष्मता से करते रहना चाहिए। असंगत वस्तुओं का ज्ञान इसी तरह होगा।

विद्या आत्मा की प्यास है। इसकी पूर्णाहुति आत्मज्ञान से ही होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए विद्या की प्रमुख आवश्यकता है। कठोर प्रयत्नों से भी इसे प्राप्त किया जाना चाहिए। जो इसकी ओर ध्यान नहीं देता और अपने समय को व्यर्थ ही नष्ट किया करता है, वह सदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य-जन्म के फल से वंचित रहता है। विद्या मनुष्य की मलिनताओं को मिटाकर उसे उज्ज्वल बनाती है। आग में तपाए हुए सोने की शुद्धता में कोई संदेह नहीं रहता। आत्मज्ञान का लक्षण विद्वता है, वह मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति है, उसे प्राप्त करने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से योग्यता बढ़ती है, योग्यता से धन और धन से सुख मिलता है, यह आप्त पुरुषों का कथन है। हमें भी इस सुख से वंचित न रहना चाहिए।

सार्थक शिक्षा को प्राथमिकता मिले

नीतिशास्त्र ने विद्या के प्रतिफल एवं स्वरूप के सम्बन्ध में एक सूत्र बताया है—

विद्या ददाति विनयं, विनयं ददाति पात्रताँ।

पात्रत्वां धनमाप्नोति, धनात धर्मंततो सुखम्।।

अर्थात विद्या विनयशीलता प्रदान करती है। विनय से पात्रता निखरती है। पात्रता से धन मिलता है। धन के द्वारा धर्म, पुण्य हो सकते हैं और फिर इन सब प्रयोजनों के हस्तगत होने में सुख ही सुख है।

हमारा बच्चा स्कूल में विद्या पढ़ रहा है या कुछ और बटोरने में निरत है, इसकी परीक्षा यह होनी चाहिए कि उसमें विनयशीलता आई या नहीं। यहाँ विनयशीलता का अर्थ मात्र नम्रता नहीं वरन् शालीनता-सज्जनता से है। विद्यालयों का प्रथम कर्त्तव्य यही है कि छात्र को शालीनता, शिष्टता, सज्जनता, नागरिकता के आमूल-चूल कर्तव्यों का प्रशिक्षण दें, जिनके आधार पर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बनता है। उद्दण्ड, उच्छृंखल, गुण्डे, अवज्ञाकारी; अशिष्ट बालक कितने ही विषयों की पुस्तकें कण्ठस्थ कर चुके हों, कहा यही जाएगा कि विद्या प्राप्ति का प्रथम चिह्न अभी इनमें नहीं उभरा। बीज की स्थिति अंकुर फूटने जैसी नहीं हुई। उन्होंने पढ़ा कितना ही कुछ क्यों न हो, किन्तु सही बात यह है कि विद्या के मूलभूत आधार के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। अध्यापकों, अभिभावकों और शिक्षा तंत्र संचालकों को यह देखना चाहिए कि विद्यार्थियों के श्रम, अभिभावकों के समय और शिक्षा की खर्चीली व्यवस्था में आरम्भिक प्रयोजन की पूर्ति हुई या नहीं। विद्यार्थियों में अनुशासनशीलता का समावेश हुआ या नहीं। उनके भीतर अपने कर्तव्य-उत्तरदायित्वों के निर्वाह की भावना का उदय हुआ या नहीं।

विद्या के सार्थक होने की दूसरी कसौटी यह है कि उनकी पात्रता बढ़ी या नहीं। पात्रता अर्थात दक्षता। दक्षता से मतलब यहाँ व्यक्तित्व के परिमार्जन से है। व्यक्तित्व अर्थात गुण-कर्म-स्वभाव का परिष्कृत स्वरूप। व्यक्ति यों स्वतन्त्र है, पर वह अनेक दायित्वों से बँधा हुआ है। देश, धर्म, समाज, संस्कृति, परिवार आदि के साथ उसकी अनेक जिम्मेदारियाँ हैं, जो काम हाथ के नीचे है, उसे पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ करना चाहिए ताकि किसी को अनगढ़ या गैर जिम्मेदार कहने का अवसर न मिले। यह मनुष्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। जो अपनी जिम्मेदारियों को नहीं समझता, न ही निबाहता, समझना चाहिए कि वह विद्या प्राप्ति की सतह पर दो कदम भी आगे नहीं बढ़ पाया।

पात्रता से धन मिलता है। कुपात्र बेरोजगार मारे-मारे फिरते हैं। कहीं काम में लग भी जाएँ तो अयोग्यता के कारण रुक नहीं पाते। टिके भी रहे तो गले के पत्थर बने रहते हैं। संकोचवश कोई उन्हें निबाह भले ही ले, किन्तु उन्हें पाकर प्रसन्न नहीं हो सकता। वस्तुतः हाथ-पैर और बुद्धि वाले मनुष्य के लिए कहीं बेकारी और बेरोजगारी नहीं है। जो परिश्रम से डरते हैं, जिम्मेदारियों से भागते हैं, जिन्हें काम के बनने-बिगड़ने का ज्ञान नहीं, जो अफसरी चाहते हैं, चोरी के रास्ते ढूँढ़ते हैं, मेहनत से चमड़ी बचाते हैं, वे ही मारे-मारे फिरते हैं अन्यथा काम के आदमी की हर जगह प्यास और तलाश है। वफादारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और दयानतदारी जिन किन्हीं में भी होगी, वे जहाँ भी जाएँगे वहाँ सिर-माथे पर बैठकर रहेंगे। जो एक बार उन्हें पा लेगा, फिर जीवन भर छोड़ेगा नहीं। ठुकराए जाने की तो बात ही क्या है ? ऐसे व्यक्ति अपने सद्गुणों से सबका मन मोह लेते हैं। अपने आत्मीय हो जाते हैं और विराने अपनों से बढ़कर बन जाते हैं। मधुरता ही वशीकरण का जादू है। विद्या प्राप्ति के साथ यह गुण भी आना चाहिए। यह विद्या का तीसरा चरण है। चौथा भी इसी के साथ जुड़ा हुआ है। गरीब, कंगाल, दरिद्री मात्र दुर्गुणी, दुर्व्यसनी ही होते हैं। जिन्हें फिजूलखर्ची की आदत है उन्हीं को कंगाल, ऋणी और भर्त्सना का पात्र बनना पड़ता है। जिन्होंने सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त पढ़ा है वह शेखीखोरी, ठाठ-वाट, प्रदर्शनी से दूर रहेगा। स्वच्छ और परिश्रमी रहेगा। ऐसे व्यक्तियों को कम आजीविका होने पर भी बजट बनाकर चलने और जो उपलब्ध है उसी से गुजारा करने की आदत होगी। अधिक चाहिए तो अधिक योग्यता प्राप्त करनी और अधिक मेहनत में तत्परता बरतनी चाहिए।

धन से धर्म धारणा विकसित होती है। विद्या का पाँचवाँ चरण है। धन को अपनी, अपने आश्रितों, सम्बन्धियों की योग्यता बढ़ाने में खर्च किया जाना चाहिए। समाज में सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए अपने उपार्जन का एक अंश नियमित रूप से लगाना चाहिए। जिस समाज में मनुष्य पैदा हुआ है, उसकी अनेकानेक सेवा, सहायताओं के कारण वह ऋणी है। उचित है कि इस ऋण से उऋण होने के लिए वह भरसक प्रयत्न करे। उदारतापूर्वक पिछड़ेपन को घटाने-मिटाने के लिए प्रयत्न करे। विपत्तिग्रस्तों की सहायता करे। इसके बिना किसी की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कमाई सार्थक नहीं हो सकती। न उसे यश मिल सकता है न सम्मान। यदि यह सब उपलब्धियाँ हस्तगत न हो सकीं, तो समझना चाहिए कि विद्या नहीं पढ़ाई गई वरन् पुस्तकों का बोझ ढोया गया। गधे पीठ पर लाद कर बोझा ढोते हैं। निरर्थक शिक्षा का स्वरूप यह है कि उसमें पुस्तकें तो बहुत पढ़ाई जाती हैं, पर प्रसंग ऐसे होते हैं जिनमें से कदाचित् ही कोई कभी व्यावहारिक जीवन में काम आवें। यही कारण है कि स्कूल छोड़ते ही बच्चे पुस्तकों को नमस्कार कर लेते हैं और फिर कभी उनकी ओर मुँह भी नहीं करते। वे समझते हैं कि जिस प्रकार के अप्रासंगिक-असंगत विषय स्कूल में पढ़ाए जाते हैं, शायद ऐसी ही अन्य सब पुस्तकें होंगी। फिर उनके साथ सिर क्यों फोड़ा जाय ?

शिक्षा वस्तुतः वह है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान सुझाए। संसार में जानकारी प्राप्त करने के विषय हजारों हैं और उनमें से किसी में विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये जिन्हें पढ़ना हो, वह आजीवन पढ़ता रह सकता है, तो भी किसी विषय में पूर्णता नहीं पाई जा सकती। इतने बड़े जंगल में भटकने से क्या लाभ ? सर्वप्रथम मनुष्य को ऐसे ज्ञान की आवश्यकता है, जो दैनिक जीवन के साथ जुड़े विषयों के संदर्भ में इतनी जानकारी दे, जिसके अभाव में भटकना और ठोकर न खानी पड़े।

शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, दार्शनिक समस्याओं का इतना बड़ा दायरा है, जिसे अच्छी तरह समझे बिना कोई मनुष्य ज्ञानवान या सभ्य-सुसंस्कृत नहीं बन सकता। इन अनिवार्य विषयों की सर्वप्रथम जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ताकि शिक्षार्थी अँधेरे में भटकने वालों की स्थिति में न रहे। इसके बाद इतिहास, भूगोल, गणित आदि के वे विषय आते हैं, जिनकी जानकारी तो बुरी नहीं पर उनका सामान्य जीवन से कोई सीधा सम्बन्ध भी नहीं है।

स्वामी शिवानन्द-सरस्वती के अनुसार शिक्षा की सार्थकता उसके उद्देश्य में सन्निहित है। शिक्षा का उद्देश्य ही है—मनुष्य को भगवान और व्यक्ति से प्रेम करना सिखाना। सच्ची शिक्षा वही है जो विद्यार्थियों को सत्यवक्ता, सच्चरित्र, निर्भय, नम्र और दयावान बनाती है और उन्हें सदाचरण, सादा जीवन उच्च-विचार, आत्मबलिदान तथा ब्रह्म-विद्या का पाठ पढ़ाती है।

देवों, असुरों तथा मनुष्यों ने प्रजापति की अध्यक्षता में शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने आत्मसंयम, उदारता और दया के पाठ पढ़ें। यही वास्तविक शिक्षा है।

इन्द्र प्रजापति का शिष्य बनकर रहा और उसने यह तथ्य जाना कि आत्मा अमर, स्वतः प्रकाशमान तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति की अवस्थाओं से भिन्न है और वैयक्तिक आत्मा परब्रह्म के साथ एक है। यही वास्तविक शिक्षा है।

शौनक ने अपने गुरु अंगिरा के चरणों में जाकर इस गूढ़तत्व को पहचाना कि सत्य पूर्ण ज्ञान और संयम के अभ्यास से आत्म-साक्षात्कार होता है।

मैत्रेयी ने ऋषि याज्ञवल्क्य के पाद पद्म के नीचे बैठकर यह सीखा कि आत्मा अविनाशी, अनासक्त स्वतन्त्र और विनाश तथा दुःख से मुक्त है। यही वास्तविक शिक्षा है।

नारद मुनि सनत्कुमार के शिष्य थे और उन्हें गुरु ने बताया कि अनन्त ही आनन्द है, सान्त वस्तु में तिलमात्र भी आनन्द नहीं और प्रत्येक को अनन्त को जानने की इच्छा करनी चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

उद्दालक ने श्वेतकेतु को पढ़ाया 'तत्वमसि'—तू वह है यही सत्य है।

तैत्तरेय उपनिषद् में वेदाध्ययन के उपरान्त गुरु शिष्यों को निम्न उपदेश देता है—"वेदाध्ययन की उपेक्षा मत करो। सत्य-मार्ग से विचलित मत होओ। कर्तव्य मार्ग से च्युत मत होओ। अपनी भलाई की उपेक्षा मत करो। अपनी समृद्धि की उपेक्षा मत करो। वेदों के अध्ययन और अध्यापन की उपेक्षा मत करो। देवों और पितरों के प्रति कर्तव्य की उपेक्षा न करो। माता तेरी देवता हो (मातृदेवो भव), पिता तेरा देवता हो (पितृदेवो भव), अतिथि तेरा देवता हो (अतिथि देवो भव)। सदा शुभकार्य करो। अपने से बड़े ब्राह्मणों को आसन आदि देकर उचित सत्कार करो। श्रद्धापूर्वक दान दो, अश्रद्धा से नहीं। प्रसन्नता, नम्रता, भय और दयालुतापूर्वक दान दो यदि किसी काम के विषय में संशय हो उस अवस्था में वैसा वर्ताव करो जैसा कि न्याय-बुद्धि रखने वाले कर्तव्य-परायण ब्राह्मण करते हैं। यही नियम है, यही शिक्षा है। यही वेद का प्रयोजन है। यही आज्ञा है। इसी का तुम्हें अनुसरण करना चाहिए। यही वास्तविक शिक्षा है।

प्रत्येक चेहरे में भगवान के दर्शन करने की शिक्षा अपनी आँखों को दो। सब प्राणियों में एक ही आत्मा के दर्शन करो। उपनिषदों की शिक्षाएँ सुनने के लिए अपने कानों को शिक्षित करो। अपनी जिह्वा को भगवान की प्रशंसा करने और सदा मधुर, सच्चे, प्रेमपूर्ण वचन बोलने की शिक्षा दो। अपने हाथों को दान देने और गरीबों की सेवा करने की शिक्षा दो। अपने मन को सदा प्रसन्न और शान्त रहने तथा अमर आत्मा का विचार करने की शिक्षा दो। यही वास्तविक शिक्षा है। हमारे आजकल के विद्यालय सांसारिक शिक्षा देते हैं। उनमें नैतिक नियन्त्रण और आध्यात्मिकता का अभाव रहता है। विद्यार्थियों में जीवन के उच्च आध्यात्मिक आदर्श नहीं होते। वे अपनी आजीविका के लिए विद्याध्ययन करते हैं। वे केवल ऊँची तनख्वाहें पाने के लिए पढ़ते हैं, यह बड़ा शोचनीय विषय है। यही कारण है कि अन्त में वे आध्यात्मिक दिवालिए होकर निकलते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सादा तथा विचारों को उन्नत बनाना होना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को यह सिखाया जाना चाहिए कि उसका सर्वप्रथम और मुख्य कर्तव्य साक्षात्कार तथा सर्व भूतमैत्री भाव है।

सब विश्वविद्यालयों को वास्तविक कार्य मनुष्य को मनुष्य से मिलाना होना चाहिए। गीता, उपनिषद्, रामायण, भागवत, महाभारत, पातञ्जल योग-सूत्र, ब्रह्मसूत्र, तुलनात्मक धर्म और दर्शन, सब विद्यालयों में पढ़ाए जाने चाहिए। इनका अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। नैतिकशास्त्र, योग, ध्यान, मन का नियन्त्रण—इन विषयों पर विद्यार्थियों को क्रियात्मक शिक्षाएँ भी दी जानी चाहिए। संस्कृत का अध्ययन आवश्यक होना चाहिए। संस्कृत के अध्ययन के बिना दर्शन के गम्भीर तत्त्व नहीं समझे जा सकते।

कॉलेजों के प्रिन्सिपल और प्रोफेसर महानुभावों तथा हाईस्कूलों के हैडमास्टरों का ऊँचे उठे हुए संन्यासियों और योगियों द्वारा पथ-प्रदर्शन किया जाना चाहिए, तभी वास्तविक शिक्षा विद्यार्थियों को दी जा सकती है। यदि प्रतिवर्ष भारत के विद्यालयों से वास्तविक शिक्षा को ग्रहण किए हुए छात्र बाहर निकलें तो उज्ज्वल, नवभारत का निर्माण और शान्ति, समृद्धि तथा आनन्द का नूतन युग उपस्थित होगा।

संसार को अध्यात्म धन के धनी व्यक्तियों की आवश्यकता है। जाग्रत आत्माएँ जिन्होंने ज्योति प्राप्त कर ली है, विश्व के लिए वरदान हैं। वे लोगों को सन्मार्ग की ओर ले जावेंगी तथा अज्ञान का समुद्र पार करने में उनकी सहायता करेंगी और अमरत्व तथा अक्षय आनन्द प्राप्त कराएँगी।

अत: शिक्षा का निर्धारण करने वाले, पढ़ने और पढ़ाने वालों का कर्तव्य है कि सर्वप्रथम वे उक्त आवश्यक विषयों को हाथ में लें। अन्यान्य जानकारियाँ तो ऐसी हैं, जिन्हें जीवन भर अवकाश के समय में रुचि के अनुरूप पढ़ा जा सकता है।

शिक्षा की काया में विद्या के प्राण डाले जाएँ

''शिक्ष्यते विद्योपादीयतेऽनयेति शिक्षा'' अर्थात प्राणी जिस साधन प्रणाली से ज्ञान उपार्जित करता है, उसी का नाम शिक्षा है। व्यक्ति या समाज के आभ्यान्तर विद्यमान स्वाभाविक मौलिक सत्ता का परिस्फुटीकरण शिक्षा का लक्ष्य है। हाथी को तदनुरूप कला-कौशल सम्पन्न हाथी बनाना ही हाथी की उत्तम शिक्षा का लक्ष्य है। इसी प्रकार मनुष्य को पूर्व मानवता सम्पन्न बनाना मानव शिक्षा का उद्देश्य है। मनुष्य के भीतर जब मानवता के बीज विद्यमान हैं, तब उसे पूर्ण मानव तक पहुँचाना, उसके चिन्तन, चरित्र, आचरण में गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का स्फुटीकरण ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व बताया गया है। शिक्षक में शिष्य को पूर्ण विद्वान बनाने की ही प्रवृत्ति नहीं होती, अपितु वह शिष्यों को किसी भी तरह शास्त्रीय ज्ञान, जीवन जीने की कला से परिचित करा दे, उदात्त वृत्तियों को जीवन के साँचे में ढालने की श्रद्धा भी जगा दे, तभी ज्ञान और चरित्र में एकता सम्भव हो पाएगी। व्यवहार के बिना तो ज्ञान भार स्वरूप है, अत: शिक्षक आचरण से प्रखर एवं तेजस्वी व्यक्तित्व से सम्पन्न हुआ करता था। उत्तम आचार और विचार की शिक्षा पाने पर ही चरित्र बल और बौद्धिक प्रकर्ष आ सकता है। वास्तव में शिक्षक डाई के साँचे के समान है, जो अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व की छाप छात्रों पर डालकर अपने समान सिक्के गढ़ देते हैं। एक शिक्षक के पदच्युत होने पर समाज को बहुत बड़ी हानि होती है, क्योंकि उससे जुड़े हजारों छात्र पदच्युत हो जाते हैं।

छात्रों के भी अनिवार्य गुण हैं। उनमें उत्कट जिज्ञासा से भी अधिक 'गुरु भक्ति' होनी चाहिए। विनय और कर्मण्यता उसके उपांग हैं। 'छात्र' शब्द ही गुरु के दोषों को छिपाने के स्वभाव वाला होना बतलाता है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में छात्रों के कर्तव्य पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। यदि छात्र इन गुणों को अपनाकर विद्याभ्यास प्रारम्भ करें, तो अर्जित विद्या उनमें वह चमक पैदा कर देगी, जिसके आलोक से आधुनिकता की तमिस्रा का पतन हो जाएगा जैसे शिष्यों को अपने कर्तव्यपालन का कठोर आदेश है, वैसे ही गुरुओं को भी कर्तव्योन्मुख होने के लिए कहा गया है।

प्राचीनकालीन विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित प्रखर, तेजस्वी, आदर्शनिष्ठ कुलपति के संरक्षण में पलकर निकले हुए दस सहस्र ऋषि एवं छात्र वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने में स्वावलम्बी होते थे। उच्चकोटि के ज्ञानी और सदाचारी स्नातकों से राष्ट्र का गौरव था। किन्तु आज की शिक्षा में पले छात्रों में न तो प्रौढ़ ज्ञान आ पाता है और न ही चरित्र की निर्मलता। संयम और सादगी तो परिहासास्पद है। आचार्यों का सम्मान करना तो आत्माभिमान के विरुद्ध है। इनकी अनुशासनहीनता ही कर्मण्यता का प्रतीक है। आहार-विहार का अनियन्त्रण ही औदार्य का पर्याय है। विलासिता छात्र-जीवन की सहचरी बन गई है। इस तरह आधुनिक शिक्षा संस्थानों से शिक्षित छात्र नौकरी के लिए लालायित, इन्द्रिय दासता से जर्जर और भोगेषणा के शिकार होकर निकलते हैं। इन स्नातकों के शरीर में न तो बल है और न बुद्धि में तेज। इस तरह निर्बल और निष्प्रभावी स्नातक ढालने वाले विद्या मन्दिरों के आदर्शों में आमूल-चूल परिवर्तन न हुआ तो इस शिक्षा के बदले हानि ही अधिक भोगनी पड़ेगी।

आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल अर्थ है और वह भी काम का पूरक। पर प्राचीनकाल में शिक्षा का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य धर्म और मोक्ष था। उसके साथ अर्थ और काम भी सर्वथा उपेक्षित नहीं थे। यह सुविदित तथ्य है कि अर्थ और काम की उपासना से न शान्ति आ पाती है और न सन्तोष। **''आशान्तस्य कुतः सुखम्''** गीता का यह उद्घोष किसे मान्य नहीं ? सुख ही तो सबका साध्य है और वह शान्ति के गर्भ से प्रसूत होता है, जो धर्म की उपासना से प्राप्य है। प्राचीनकाल में भी वित्त को मान्यता दी गई थी, किन्तु उससे कई गुनी महत्ता विद्या की थी। मनु ने स्पष्ट कहा है—वित्त, बन्धु, वय, कर्म और विद्या—ये मान के स्थान हैं, परन्तु इनमें उत्तरोत्तर पूर्व से गुरुत्तर हैं। अर्थात इनमें भी शिक्षा की विशेष महत्ता है। यदि विद्या का उपार्जन ठीक-ठीक हो तो आज भी इस क्रम का व्यावहारिक रूप सामने आ सकता है। विद्या तो मनुष्य को इतने उच्च आसन पर बिठा देती है कि बरबस सभी लोगों का मस्तक उसके सामने नत हो ही जाता है। प्रमाण-पत्रों की प्राप्ति और बात है तथा विद्या की प्राप्ति कुछ और। यह प्रतिष्ठा विद्या से मिलती है, डिग्रियों से नहीं। विद्या के साथ डिग्रियों की दुर्दशा तो सर्वविदित है। विद्या जीवन जीने की कला है। उदारता, सौम्यता, नमनीयता, परमार्थ परायणता, त्याग, सेवा, परोपकार, संवेदनशीलता, पुरुषा, विद्या के ही रूपान्तरण हैं। आत्मवत् सर्वभूतेषु एवं वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव विद्या की ही उपपत्ति हैं। इसके जागरण से मनुष्यता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और मनुष्य पशुता से उबरकर देवत्व की ओर बढ़ने लगता है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में संजीवनी विद्या के प्रति अनुराग उत्पन्न करना परम आवश्यक है।

गुरु-शिष्य, छात्र-अध्यापक का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक भी है। प्राचीनकाल में गुरु शिष्य का मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर उचित शिक्षण दिया करते थे। जावाल की परीक्षा में गुरु को सत्यवादिता मिली, जिससे गुरु ने उसे 'ब्राह्मण' कहा और सत्य विधा का उपदेश किया। इसी तरह भार्गव बनकर शस्त्र विद्या सीखने वाले कर्ण को भी परशुराम ने उसके धैर्य और साहस से झट पहचान लिया। मनोविज्ञान का केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु जीवन के अन्य अवसरों पर भी प्रयोग होता था। हनुमान को स्वपौरुष का स्मरण कराना मनोविज्ञान की प्रणाली है। शल्य के द्वारा कर्ण का अपमान करना भी मनोवैज्ञानिक विधान ही है। अतः शिक्षण क्रम के साथ इस क्रम का जुड़े रहना भी आवश्यक पहलू है।

गुरु-शिष्य, छात्र-अध्यापक के पावन सम्बन्ध का फल ही तो वे युग्मक हैं, जिनका समरण सदैव आदरपूर्वक होता रहेगा। नारद, सनत्कुमार, भृगुवरुण, श्वेतकेतु, उद्दालक, राम-वशिष्ठ, कृष्ण-सान्दीपनि, युधिष्ठिर-धौम्य, समर्थ गुरु रामदास-शिवाजी, रामकृष्ण परमहंस-विवेकानन्द, चाणक्य-चन्द्रगुप्त आदि जोड़े हमारे गुरु-शिष्य सम्बन्ध के स्मारक हैं। ज्ञानियों, वृद्धों और मनीषियों का साहचर्य बालकों को भी बहुज्ञ बना देता है। लिपि की शिक्षा भी पूरी नहीं हो पाती थी कि उनमें शासन का सफल कौशल प्रस्फुटित हो जाता था। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में सुदर्शन नामक राजा का वर्णन किया है ''जब तक वह वर्णमाला की लिपियों को भी पूरा-पूरा न सीख पाया था, तब तक उसने दण्डनीति के समस्त फलों का उपयोग आरम्भ कर दिया।'' इसी प्रकार ''महाराज ! मैं बच्चा हूँ, पर मेरी सरस्वती बच्ची नहीं है। मैं पूरे पाँच साल का भी नहीं हूँ, पर तीनों लोकों का वर्णन करता हूँ।'' यह उक्ति भोजराज की धारा नगरी की ज्ञानधारा के अजस्र प्रवाह का संकेत करती है। पुस्तकों और शिक्षकों से जितना ज्ञान मिलता है, उससे भी अधिक अपने-अपने विषय के पारंगत मनीषियों के सान्निध्य से जिज्ञासु को प्राप्त होता है।

शिक्षा का उद्देश्य नौकरी नहीं अपितु विद्या का विस्तार करना है। देश के गौरव, अपनी प्रतिष्ठा और समाज के मुख समृद्धि में वृद्धि इसके दूसरे तत्व हैं। संयम और चरित्र की रक्षा इसके अपवाद हैं। धर्म की भावना को जागृत करना, अपने आपको सुधारना एवं स्वयं को सच्चरित्र बना लेना शिक्षा का ध्येय है। यदि इतना सम्भव हो गया तो समझना चाहिए तथाकथित शिक्षा रूपी काया में पुनः विद्या रूपी प्राण का वास हो गया।

शिक्षा के साथ विद्या का भी समन्वय अनिवार्य

मानवी विकास में साधनों के योगदान की बात मोटी बुद्धि भी जानती है। अमीर लोग मौज उड़ाते, बुद्धिमान समझे जाते और वाहवाही लूटते हैं। शरीर भी अपेक्षाकृत स्वस्थ, सुन्दर रहता है। सफलता और सुविधा पाने पर मन का प्रसन्न रहना और उत्साह के वातावरण में अधिक सूझ-बूझ का परिचय देना भी एक हद तक सही है। लोक प्रचलन में भी यही मान्यता जड़ पकड़ती जा रही है कि जिसके पास अधिक साधन होंगे, वह अधिक समुन्नत होता चला जाएगा। इस प्रतिपादन का जोर-शोर से समर्थन साम्यवाद ने किया। उसने प्रगति का प्रमुख माध्यम अर्थ को माना और सम्पन्नों के हाथ की सम्पदा का सर्वसाधारण में वितरण करने और सभी को समृद्ध बनाने की बात पर पूरा जोर दिया। वे लोग वितरण तक ही अपने प्रयोग अग्रगामी बना सके, सम्पन्नता उनके हाथ नहीं लगी। अमेरिका ने एक कदम आगे बढ़कर वह रास्ता अपना लिया जिससे उस देश के नागरिक धनवान एवं सुविधा-सम्पन्न कहला सके। इतने पर भी मूल प्रश्न जहाँ का तहाँ है कि व्यक्तित्व की दृष्टि से मनुष्य अर्थ साधनों के सहारे सुविकसित हो सकता है या नहीं—इस कसौटी पर रूस-चीन जैसे साम्यवादी और अमेरिका जैसे पूँजीवादी देश के नागरिकों की व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए किसी उत्साहवर्द्धक निष्कर्ष पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचते नहीं बनता। व्यक्तिगत रूप से मध्य-पूर्व के तेल देशों पर आधिपत्य जमाए, शहंशाहों की दौलत कुबेर के खजाने जितनी हो चली, फिर भी उनके व्यक्तिगत, वातावरण और क्रिया-कृत्यों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि साधन सम्पन्न लोग सुविकसित स्तर के ही होते हैं। संसार भर में भरे पड़े असंख्य साधन-सम्पन्नों को इस कसौटी पर कसने से यह विश्वास नहीं होता कि लोकमान्यता के अनुसार यदि अमीरी बढ़ा दी जाय तो उसके उपभोक्ता उस स्तर के बन सकेंगे, जिसे उत्कृष्टता सम्पन्न या समुन्नत व्यक्तित्व से सुसज्जित कहा जा सके।

साधनों के बाद स्वास्थ्य का नम्बर आता है। बलिष्ठता की महिमा से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। काया सुखी रहती और सुन्दर लगती है। बिना थके अधिक श्रम करना और अधिक कमाना बन पड़ता है। मित्रों की हिम्मत बढ़ती है और शत्रुओं पर आतंक छाता है। सामान्य-जन बलिष्ठों के सामने अनायास ही झेंपते और उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। लड़ाई-झगड़ों में तो उन्हीं को श्रेय मिलता है। पुलिस-फौज जैसे महकमों में भर्ती करते समय बलिष्ठता को प्रमुखता मिलती है। खेलों और दंगलों में जीतने वाले इसी स्तर के लोग होते हैं। मध्यकाल के सामन्त युग में इसी स्तर के लोगों का बोलवाला था। वे गिरोह बनाकर अपना राज्य बनाते और आक्रमण-आतंक के सहारे राजा-महाराजा बन बैठते थे। युद्धों की हार-जीत भी इन बलिष्ठ योद्धाओं के बाहुबल पर ही निर्भर रहती थी।

इन दिनों सामर्थ्य का केन्द्र-बिन्दु बाहुबल से हटकर यन्त्र-उपकरणों और अस्त्र-शस्त्रों पर केन्द्रित हो गया है। अतएव अब बलिष्ठों का प्राचीनकाल जितना महत्त्व नहीं रहा। वे जहाँ-तहाँ आतंक उत्पन्न करते भर देखे जाते हैं। रचनात्मक कार्यों में उनकी भूमिका नहीं के बराबर है। जहाँ तक उत्कृष्ट व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, वहाँ तक सुदृढ़ और सुन्दरों को पंक्तिबद्ध करके गम्भीर पर्यवेक्षण करने वाले किसी उत्साहवर्द्धक नतीजे पर नहीं पहुँचते। उन्हें जो ईश्वरीय देन मिली है या प्रयत्नपूर्वक उन्होंने जो सुदृढ़ता उपार्जित की है, उस पर प्रसन्नता एवं शुभकामना व्यक्त करते हुए भी यह आशा नहीं बँधती कि इस स्तर की प्रगति होती चले तो भविष्य में महामानवों की आवश्यकता पूरी हो सकेगी।

इससे आगे शिक्षा का क्षेत्र आता है। सुझाव यह है कि स्कूली पढ़ाई में ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाय, जिसमें मानवी सद्गुणों की महत्ता समझाई जाय और उसे ऐसी गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय जिनके सहारे मनुष्य समर्थ, सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली बन सके। तर्क की दृष्टि से यह सुझाव सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है। कोई बात समझ में आने पर ही मनुष्य कुछ करने के लिए अग्रसर होता है। चिन्तन और प्रयास जिस स्तर के होते हैं, उसी की छाप अन्तरंग पर पड़ती है और उसी दिशा धारा में चलते रहने का अभ्यास-संस्कार बन जाता है। यह संस्कार ही व्यक्तित्व है, इसलिए शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को सुविकसित बनाने की बात समझ में आती है।

यह प्रयोग प्राचीनकाल में गुरुकुलों के माध्यम से चलता रहा है और सफल भी हुआ है। पर यह सफलता मिली तभी है, जब शिक्षा की जानकारी प्रधान नहीं जीवन का स्वरूप, उपयोग उसकी गरिमा के अनुरूप क्रिया-पद्धति का अभ्यास कराने की उसमें प्रधानता रखी गई थीं। सांसारिक जानकारियाँ सर्वसाधारण को एक सीमित दायरे की ही चाहिए। विश्व व्यवस्था का सामान्य परिचय होना ही पर्याप्त है। उन दिनों जिन्हें जिस समय में विशेषता प्राप्त करनी होती थी, वे उस विषय को अतिरिक्त रूप से पढ़ते थे। सामान्यतया विद्या को विशुद्ध रूप से जीवन विद्या अथवा ब्रह्मविद्या के नाम से ही जाना जाता था। पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों का माहात्म्य, अभ्यास एवं प्रतिफल बताने वाले प्रसंग प्रस्तुत किए जाते थे। साथ ही छात्रों की दिनचर्या एवं कार्यपद्धति तदनुरूप बनाई जाती थी। सहकर्मियों की गतिविधियाँ भी तदनुरूप रहती थीं। समूचा वातावरण ऐसा रहता था, जिसमें एक की गतिविधियों से दूसरे को उपयुक्त प्रभाव ग्रहण करने एवं अनुकरण करने का अवसर मिले। संचित कुसंस्कार उभरने पर उनके शमन-समाधान के लिए क्या किया जाय—इसकी अनुशासन व्यवस्था भी ऐसी रहती थी, जिसमें अवांछनीयता के पनपने की गुंजायश न रहे। चेतावनी, पश्चाताप, प्रायश्चित, प्रताड़नापरक अनुशासनों की प्रखरता रहने से उस वातावरण में अवांछनीयताएँ एक तो सहज उभरती ही न थीं। कहीं उछलीं तो उसका निराकरण भी विवेक, संयम और अनुशासन से भरे-पूरे वातावरण में सरलतापूर्वक होता रहता था।

यह प्रयोग इन दिनों जहाँ भी चल रहे हैं, वहाँ व्यवस्था के अनुरूप सफल हो रहे हैं। गुरुकुलों का प्राचीनकाल जैसा उपक्रम जहाँ भी चला है, वहाँ उसकी उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सफल सिद्ध हुई है।

प्राचीनकाल भी व्यवस्था यह थी कि अन्तः एवं बाह्य विकास के दोनों माध्यम 'विद्या और शिक्षा' शिक्षण के साथ अनिवार्य रूप से जुड़े रहते थे। गुरुकुलों के पाठ्यक्रमों में दोनों का सामान रूप से समावेश रहता था। गुरुकुलों के संचालक, शिक्षण एवं नेतृत्व करने वाले ऋषि हुआ करते थे। वे योग्यता, विद्वता की दृष्टि से ही नहीं चरित्र एवं अन्तःकरण की महानता से भी सुसम्पन्न हुआ करते थे। उनकी वाणी ही नहीं व्यक्तित्व भी मूक रूप से शिक्षण करता था। वाणी तो सीमित भूमिका निभाती थी। शिक्षार्थियों के निर्माण एवं विकास में व्यक्तित्व का मूक शिक्षक अधिक प्रखर-प्रभावशाली सिद्ध होता था। फलतः विद्यार्थी, पाठ्य-सामग्री से जितना सीखते थे, उससे अधिक आश्रम के वातावरण और आचार्य के व्यक्तित्व से ग्रहण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते थे। आश्रम के कठोर अनुशासन में वे मात्र योग्यता ही नहीं बढ़ाते थे वरन् सुसंस्कारों से अनुप्राणित होते थे। फलस्वरूप शिक्षा एवं विद्या, योग्यता एवं सुसंस्कारों से सम्पन्न होकर निकलने वाला हर छात्र देश और समाज के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होता था। अधिकाधिक उपार्जन और व्यक्तिगत उपभोग की संकीर्ण परिधि में न रहकर समस्त समाज की प्रगति के लिए क्या किया जा सकता है, उस चिन्तन और तदनुरूप क्रियान्वयन में उनकी चेष्टाएँ अधिक नियोजित रहती थीं। सर्वत्र स्वर्गोपम परिस्थितियों के दृष्टिगोचर होने में इस उदार भावना की ही प्रमुख भूमिका थी।

शिक्षा एवं विद्या से सुसम्पन्न शिक्षण की—व्यक्ति और समाज के नवनिर्माण की यह श्रेष्ठ परम्परा कालान्तर में लुप्त हुई। विद्यालय योग्यता वृद्धि के कागजी डिग्री प्राप्त कराने के साधन मात्र बनकर रह गए। आश्रमों जैसा न तो वातावरण रहा और न ही शिक्षण। अध्यापन करने वाले अध्यापकों का ऐसा व्यक्तित्व कि वे अपने चरित्र की छाप छात्रों पर डाल सके। अपवाद स्वरूप इक्के-दुक्के ऐसे व्यक्तित्व सम्पन्न अध्यापकों से व्यापक लक्ष्य की—छात्रों के नवनिर्माण की बात पूरी नहीं होती। बहुतायत तो उनकी है, जो योग्यता एवं प्रतिभा की दृष्टि से तो ऊँचे हैं किन्तु व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से उतने ही घटिया। फलतः उनका शिक्षण बाह्य योग्यता सम्वर्द्धन का—डिग्री दिलाने तक का प्रयोजन भर पूराकर के रह जाता है। जब कुसंस्कारों का—त्याग एवं बलिदान से अनुप्रेरित विचारों का—बीजारोपण ही नहीं हुआ तो शिक्षित होकर निकलने वाले युवकों के मन में देश, समाज और संस्कृति के उत्थान की विचारणा कहाँ से आए ? ऐसे शिक्षित छात्र विद्यालय की चहारदीवारी के बाहर शिक्षा समाप्ति के बाद जब कदम रखते हैं, तो उनके मस्तिष्क में एक ही विचार रहता है—अच्छी नौकरी प्राप्त करना और जैसे भी हो, अधिक से अधिक उपार्जन करना। विद्या के अभाव में प्रकारान्तर से योग्यता संकीर्ण स्वार्थपरता की—नीति-अनीति जैसे भी बने अपने हितसाधन की बात सोचती है।

अनीति, अनाचार, बेईमानी, भ्रष्टाचार संक्रामक रोग की भाँति समाज में फैलते जा रहे हैं। क्या अफसर, क्या मालिक, क्या मजदूर अधिकांश इस पतन प्रवाह में बह रहे हैं। कारणों में शासन-व्यवस्था को—बाह्य परिस्थितियों को दोषी ठहराया जा सकता है किन्तु इनका वास्तविक कारण ढूँढ़ना हो तो वर्तमान शिक्षा प्रणाली का अध्ययन, पर्यवेक्षण करना होगा जो योग्यता सम्वर्द्धन की एकांकी नीति पर आधारित है। चरित्र की, कुसंस्कारों की अपेक्षा करने वाला शिक्षण ही कालान्तर में अनेकों प्रकार की विकृतियों का, अवांछनीयताओं का कारण बनता है।

विकृत प्रचलन समाज में एक यह चल पड़ा है कि—स्कूली शिक्षा की दृष्टि से शिक्षित व्यक्तियों को अधिक सम्मान दिया जाता है। जबकि होना यह चाहिये कि जो चरित्र सम्पन्न शिक्षित हैं, उन्हें भी सम्मानित किया जाय। प्रशंसा करनी ही हो तो चरित्र सम्पन्नों की हो। ऐसा न होने से अधिकांश चरित्र को गौण, उपेक्षणीय और डिग्री अथवा सांसारिक योग्यता को ही प्रधान मान बैठते हैं। उस ओर ध्यान नहीं जाता और प्रयास नहीं किया जाता जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि चरित्र बल के अभाव में न तो समाज की प्रगति हो सकती है और न ही देश की। चरित्र को विकसित करने, दृढ़ बनाने वाली विद्या का सम्बल न होने से एकांगी योग्यता बढ़ाने वाली शिक्षा अन्ततः समाज एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में अवरोध ही खड़ा करती है।

नवनिर्माण का—प्रगति का लक्ष्य यदि एकांगी योग्यता से पूरा हो सका होता, तो यह कभी का पूरा हो जाता। विद्वानों की कमी किसी युग में नहीं रही है और न आज है। फिर कारण क्या है कि परिस्थितियाँ विपरीत दिखाई पड़ रही हैं। सर्वत्र विग्रह और विघटन बढ़ता जा रहा है। घूम-फिर कर बात वहीं आ जाती है—जहाँ से आरम्भ हुई थी। चरित्रवानों की कमी पड़ जाने से ही अनेकानेक समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। अन्तः की महानता के अभाव में एकांगी विद्वता, मस्तिष्क की प्रखरता ने तो विश्व में अवांछनीयताओं को अधिक बढ़ावा दिया है। गम्भीर और बड़े अपराध जो जल्दी कानून की पकड़ में नहीं आते पैने मस्तिष्क वालों द्वारा ही अधिक किए जाते हैं।

यहाँ शिक्षा का महत्त्व कम नहीं किया जा रहा है और न ही यह कहा जा रहा है कि शिक्षा अनुपयोगी है। शिक्षा की अनेकानेक उपलब्धियाँ सुविधा-साधनों के रूप में सर्वत्र दिखाई पड़ ही रही हैं। रचनात्मक दिशा के प्रयास प्रशंसनीय हैं। किन्तु वह बैल, गाय, घोड़े की भाँति हैं जो तेजी से किसी भी दिशा में सृजन अथवा ध्वंस की ओर दौड़ सकती है। विद्या से उत्पन्न होने वाली सुसंस्कारिता एवं अन्तः की महानता का अंकुश न होने से मनुष्य के स्वेच्छाचारी होने की पूरी-पूरी गुंजाइश रहती है।

नवनिर्माण के लिए किए जाने वाले अनेकानेक प्रयासों में एक अनिवार्य क्रम शिक्षक-प्रणाली के साथ ही जोड़ना होगा, शिक्षा के साथ विद्या समन्वय का। समाज एवं राष्ट्र के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों की खदान इसी प्रकार निकलेगी। यह गुरुत्तर दायित्व भावी पीढ़ी का नवनिर्माण का बोझ उठाने वाले अध्यापकों के ऊपर ही जाता है। उन्हें स्वयं का निरीक्षण, परीक्षण, व्यक्तित्व का परिष्कार एवं विकास करना होगा। वाणी योग्यता बढ़ाएँ और व्यक्तित्व चरित्र निर्माण का मूक शिक्षण करें। अध्यापकों द्वारा तेजस्वी-प्रखर लड़कों को प्रोत्साहन मिलता है, यह प्रोत्साहन उन्हें ही मिले जो पढ़ने-लिखने में अच्छे तो हों पर सद्गुणी-चरित्र सम्पन्न भी हों। कम्युनिस्ट देशों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साम्यवाद की विचारधारा की खुराक इसी प्रकार शिक्षण के साथ मनोवैज्ञानिक रूप से मिलाई जाती है और युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते विद्यार्थी साम्यवादी व्यवस्था में पूरी तरह ढलता चला जाता है। आधार तो यह न हो पर यदि चरित्र का, सुसंस्कारिता का, सद्गुणों का भी महत्त्व समझ लिया जाय और उनसे अनुप्राणित करने की पाठ्य सामग्री—योग्यता सम्वर्द्धन के साथ-साथ चल पड़े तो कोई कारण नहीं कि इस दिशा में प्रयासरत समाज एवं राष्ट्र के हित चिन्तक भाव सम्पन्न अध्यापकों का प्रयास सार्थक न हो। यह सुनिश्चित रूप से सफल होगा। समाज के अभिनव नव निर्माण में योग्यता, प्रतिभा के साथ-साथ चरित्र की दृढ़ता एवं महानता की भी उसी अनुपात में आवश्यकता पड़ेगी। यह तभी सम्भव होगा जब शिक्षा और विद्या दोनों को ही समान रूप से महत्त्व दिया जाय। सम्भव हो सके तो सभ्यता और संस्कृति के विकास के दोनों ही प्रयोजन पूरे हो सकेंगे।

शिक्षा ही नहीं 'विद्या' भी परिष्कृत की जाय

भौतिक जीवन को समर्थ और सुविकसित बनाने का पथ प्रशस्त करना स्कूली शिक्षा-प्रद्धति का प्रयोजन होना चाहिए। छात्रों के मस्तिष्क पर अनावश्यक भार बने रहने का उसका वर्तमान स्वरूप बदला जाना चाहिए। किसी विषय के विशेषज्ञ बनने वाले के लिए विशेष शिक्षा का प्रबन्ध रहना उचित है, पर सर्वसाधारण को ऐसी पढ़ाई के लिए विवश नहीं करना चाहिए—जिसका व्यावहारिक जीवन में कभी कोई उपयोग नहीं होता। इन दिनों जो पढ़ाया जाता है, उसे सामान्य ज्ञान की पुस्तकों में संग्रहीत किया जा सकता है। बहुमुखी जानकारी के लिए सामान्य ज्ञान के विषय को थोड़ा विस्तृत किया जा सकता है और उसमें विविध विषयों की कामचलाऊ जानकारी को स्थान दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पूरा शिक्षण वह होना चाहिए, जिससे छात्र को सुयोग्य एवं स्वावलम्बी नागरिक बनने का न केवल किताबी वरन् व्यावहारिक ज्ञान भी मिल जाय।

संसार के सभी विकासोन्मुख राष्ट्रों ने राष्ट्रीय उत्कर्ष को—वैयक्तिक विकास को ध्यान में रखते हुए ऐसी ही शिक्षा प्रणाली विकसित की। हम इस दिशा में कुछ मौलिक चिन्तन न कर सके। अँग्रेजों के समय से चले आ रहे ढर्रे को ही चलाते रहे। स्वतन्त्रता के इतने वर्षों बाद भी हम आगे बढ़ नहीं पाए, इसका कम से कम आधा दोष तो वर्तमान निरुद्देश्य शिक्षा-पद्धति को दिया ही जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है शिक्षा प्रक्रिया में क्रान्तिकारी सुधार होना चाहिए। सरकार इस आवश्यकता को अनुभव न करे तो जनता को—बुद्धिजीवियों को इसके लिए ऐसे प्रबल प्रयत्न करने चाहिए जिससे अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

जनस्तर पर अनेक विद्यालय चलते हैं। कितने ही दानी-मानी उदारतावश अथवा यश कामना से नये विद्यालयों का आरम्भ कराते हैं। कितनी ही संस्थाएँ छात्रों को देशभक्त, धर्मनिष्ठ नागरिक बनाने के उद्देश्य से नये शिक्षा संस्थान खड़े करती हैं और उनके सत्परिणामों के लम्बे-चौड़े स्वप्न देखती-दिखाती हैं। यह सब होता है पर भूल वे भी यही जाती हैं कि दोषयुक्त शिक्षा-पद्धति के रहते किसी चमत्कारी परिणाम के स्वप्न देखना सर्वथा अवास्तविक है। यदि गैर सरकारी क्षेत्र में कुछ किया ही जाना हो तो उन्हें स्वावलम्बी और सुयोग्य नागरिक ढालने वाली शिक्षा-पद्धति की मौलिक कल्पना करनी चाहिए और उसकी सार्थकता सिद्ध करने वाली व्यवस्था बनानी चाहिए। सरकारी प्रमाण-पत्र पाने के लिए सरकारी शिक्षा-पद्धति अपनाने से सरकारी ढर्रे के ही परिणाम निकलेंगे। इसके लिए व्यक्तिगत रूप से माथा-पच्ची करना बेकार है। प्रचलित शिक्षा-पद्धति ही यदि पर्याप्त है तो सरकारी शिक्षा विभागों की सहायता करना ही पर्याप्त है। अलग-अलग ढाई चावल की खिचड़ी पकाने और लम्बे-चौड़े स्वप्न देखने की बात बेतुकी है।

गैर सरकारी क्षेत्र में यदि सार्थक शिक्षा-पद्धति का प्रयोग किया जाना हो तो ही जनस्तर के स्वतन्त्र स्कूलों की आवश्यकता है। ऐसे विद्यालयों को आरम्भ से ही सरकारी मान्यता प्राप्त करने और सरकारी प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के व्यामोह से बचना चाहिए। छात्र थोड़े रहें तो हर्ज नहीं पर प्रयोग में कुछ मौलिक तथ्य रहने चाहिए और वे तथ्य यही हो सकते कि सार्थक शिक्षा-पद्धति की संरचना करके उसकी व्यावहारिकता और श्रेष्ठता प्रमाणित की जाय। गायत्री तपोभूमि, मथुरा में अवस्थित युग-निर्माण विद्यालय को ऐसा ही मौलिक प्रयोग कह सकते हैं। अन्यत्र भी यदि इसी स्तर के प्रयोग-परीक्षण खड़े किये जा सकें—तो सार्थक शिक्षा-पद्धति के उपयोग समझने और वर्तमान ढर्रे में मौलिक परिवर्तन करने की बात जनता और सरकार को शिक्षाशास्त्री और बुद्धिजीवियों को अधिक अच्छी तरह समझाई जा सकती है। जनस्तर पर चल रही या आरम्भ होने वाली शिक्षा संस्थाओं को यदि इस स्वतन्त्र चिन्तन का प्रकाश मिल सके, तो सचमुच उनका प्रयास शिक्षा परिवर्तन की प्रेरणा उत्पन्न करने की दृष्टि से अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

शिक्षण का दूसरा क्षेत्र है—आत्मज्ञान, धर्म, अध्यात्म। इसे विद्या के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। शिक्षा और विद्या में मौलिक अन्तर है। शिक्षा उसे कहते हैं जो जीवन के बाह्य प्रयोजनों को पूर्ण करने का सुयोग्य मार्गदर्शन करती है। साहित्य, शिल्प, कला, विज्ञान, उद्योग, स्वास्थ्य, समाज आदि विषय इसी शिक्षा परिधि में आते हैं। विद्या का क्षेत्र इससे आगे का है—आत्मबोध, आत्मनिर्माण, कर्तव्यनिष्ठा, सदाचरण, समाज निष्ठा आदि वे सभी विषय विद्या कहे जाते हैं, जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैयक्तिक चिन्तन, दृष्टिकोण एवं सम्मान में आदर्शवादिता और उत्कृष्टता का समावेश करते हों। स्वार्थपरता को घटाते और लोकनिष्ठा को बढ़ाते हों। धर्म और अध्यात्म का सारा ढाँचा मात्र इसी प्रयोजन के लिए तत्त्वदर्शियों ने खड़ा किया है।

ईश्वर भक्ति, उपासना, योग्य-साधना, धर्मानुष्ठान, कथा-कीर्तन, स्वाध्याय-सतसंग, दान-पुण्य आदि का जो जितना कुछ भी धर्म कलेवर खड़ा है; इस सबके पीछे एक ही उद्देश्य है—मनुष्य व्यक्तिवादी पशु-प्रवृत्तियों से छुटकारा पाए और समाजनिष्ठा के परमार्थ मार्ग को अपनाकर उदार एवं लोकसेवी प्रक्रिया अपनाए। इस मूल प्रयोजन की ओर मनुष्य को अग्रगामी बनाने के लिए अनेक कथा-पुराण बनाए गए, धर्म शास्त्र रचे गये, साधन विधान बनाए गए। स्वर्ग-नरक के भय प्रलोभन प्रस्तुत किए गए। अदृश्य जगत् के, लोक-लोकान्तरों के, देव-दानवों के प्रतिपादन किये गये। मत-मतान्तरों के बीच इन प्रतिपादनों में भारी अन्तर पाया जाता है पर मूल प्रयोजन सबका एक है—मनुष्य की पशु-प्रवृत्ति को व्यक्तिवादी स्वार्थपरता को, समाजनिष्ठ परमार्थ को धर्म धारणा में विकसित करना।

इसे एक दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि शिक्षा क्षेत्र की तरह विद्या क्षेत्र में भी रूढ़िवादिता का साम्राज्य है। धर्म पुरोहित अब केवल आवरण की प्रतिष्ठा कर रहे हैं और मूल उद्देश्य को भुला रहे हैं। अमुक धर्मानुष्ठान का कर्मकाण्ड पूरा कर देने से, कथा कीर्तन के श्रवण, नदी सरोवर के स्नान, तीर्थ, मन्दिर दर्शन, जप-तप मात्र को, स्वर्ग मुक्ति का आधार घोषित कर दिया गया है। आन्तरिक दृष्टि से मनुष्य घोर व्यक्तिवादी, समाज विरोधी रह कर भी इस धर्मावरण की सहायता से सद्गति प्राप्त कर सकता है, ईश्वर का कृपापात्र बन सकता है। आज इसी प्रतिपादन की धूम है। इसे ज्ञान के नाम पर अज्ञान का प्रसार ही कहना चाहिए। प्राणरहित लाश की तरह धर्म का आवरण भर खड़ा रखा जा रहा है और यह भुलाया जा रहा है कि यह विशाल आवरण आखिर खड़ा किसलिये किया गया था ?

आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के साथ-साथ विद्या के क्षेत्र में भी क्रान्ति उपस्थित की जाय। ढर्रे की शिक्षा भारभूत है। भौतिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने की क्षमता जो शिक्षा हमें प्रदान न कर सके उसे उपयोगी कैसे कहा जा सकता है ? इसी प्रकार जो विधा मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता एवं आदर्शवाद का समावेश न करे—व्यक्तिवादी स्वार्थपरता से विरत् कर समूहवादी परमार्थ में संलग्न न करे उसे भी भार-भूत ही कहना चाहिए। इस निष्प्राण धर्म-कलेवर से केवल धर्म व्यवसायियों का लाभ हो सकता है। जनसाधारण को तो उलटे अज्ञान में भटकते हुए अपने धन और समय की बर्बादी का घाटा ही उठाना पड़ेगा। विद्या क्षेत्र की इस विडम्बना का भी अब अन्त ही किया जाना चाहिए। दिवास्वप्नों में भटकने-भटकाने की प्रवृत्ति को आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए।

आत्मविद्या का—धर्म धारणा का स्वरूप सार्थक और सोद्देश्य होना चाहिए। कथा पुराण एवं धर्मानुष्ठान भले ही किसी रूप में हो पर उनका लक्ष्य उतने भर से आत्म-लाभ मिल जाने के प्रतिपादन से ऊँचा उठकर यह रहना चाहिए कि विश्व मानव को भगवान मानकर उसकी स्थिति ऊँची उठाने में योगदान देकर सच्ची भक्ति भावना का परिचय दिया जाय। प्रेरणा युक्त धर्म कलेवर की उपयोगिता ही मानवीय विवेक को स्वीकार हो सकती है। अनास्था के वातावरण को बदलकर आस्तिकता की ओर जनमानस को तभी मोड़ा जा सकता है जब आत्मविद्या का—धर्म धारणा का स्वरूप रूढ़िवादी न रहकर मनुष्य के आन्तरिक उत्कर्ष में सहायक सिद्ध हो सके। चिर अतीत में तत्त्वदर्शियों ने इस समस्त प्रक्रिया का सृजन इसी प्रयोजन के लिए किया था, बहुत भटक लेने के बाद अब हमें बदलना चाहिए और धर्म धारणा को परमार्थ प्रयोजन पर केन्द्रित करना चाहिए।

धर्म के आधार पर विकसित होने वाली परमार्थ प्रवृत्ति को लोकमंगल में नियोजित करना आत्मविद्या का मूलभूत प्रयोजन है। उसे इन दिनों पूरी तत्परता के साथ इसी भूल सुधार में लगना चाहिए। पिछले दिनों के भटकाव को सुधारना ही इन दिनों धर्म क्षेत्र के लिए सर्वोत्तम प्रायश्चित होगा। खोई हुई आस्था और प्रतिष्ठा को वह इसी आधार पर पुनः वापस लाने में समर्थ होगा।

जिन्हें सचमुच विद्या से प्रेम है, उन्हें वर्तमान धर्म शिक्षा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए आगे आना चाहिए। बुद्धि, प्रतिभा, समय, श्रम और धन का जो जितना बड़ा अंश लोकमंगल के लिए नियोजित कर सके उसे उतना ही बड़ा धर्मात्मा माना जाय। पिछले अन्धकार युग की सामाजिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ इतनी अधिक अभी भी भरी हुई हैं कि उनकी सफाई में भारी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्शवादी कर्तृत्व को जनसाधारण के दृष्टिकोण, स्वभाव एवं अभ्यास में ध्यान दिलाने के लिए घनघोर प्रयास करने होंगे। इसके लिए प्रत्येक धर्मप्रेमी को सामयिक कर्तव्य समझ कर सर्वतोभावेन संलग्न होना चाहिए। धर्म शिक्षा का, आत्मविद्या का प्रशिक्षण इन दिनों इसी केन्द्र पर केन्द्रित रहना चाहिए। इसी प्रयास को आत्मकल्याण—स्वर्ग-मुक्ति एवं ईश्वर प्राप्ति की सर्वोत्तम युग साधना बनाया जाना चाहिए। धर्म और ईश्वर के नाम पर खर्च होने वाला प्रत्येक पैसा और समय का प्रत्येक क्षण इसी केन्द्र पर केन्द्रित किया जाना चाहिए।

वानप्रस्थ परम्परा इसीलिए थी कि अधेड़ होने तक मनुष्य अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त हो ले और जीवन का उत्तरार्द्ध लोकमंगल के लिए उत्सर्ग करे। इस परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है ताकि सुयोग्य, अवैतनिक, भावनाशील, अनुभवी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की सेना का उद्भव फिर शुरू हो जाय और उसके द्वारा सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति की सर्वतोमुखी नवनिर्माण की आवश्यकता को पूरा किया जाना सहज ही सम्भव हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा और विद्या में परिवर्तन और सुधार ही मानवीय प्रगति का मूलभूत आधार है। विश्व कल्याण और विश्वशान्ति के उभयपक्षी प्रयोजन शिक्षा और विद्या के परिष्कार पर अंवलम्बित हैं। इस तथ्य को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है।

उपयोगी ज्ञानवृद्धि—विवेक बुद्धि के सहारे

मस्तिष्कीय ज्ञान विकास एवं धारणा परिपक्व करने के लिए अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता पड़ती है। आवश्यक नहीं कि वह पुस्तकों के आधार पर ही अर्जित की जाय और अध्यापक ही उसे पढ़ाए, स्कूल में भर्ती हुए बिना काम न चले।

यह समूचा संसार एक पाठशाला है। इसमें रहने वाले मनुष्यों और प्राणियों की घटनाएँ निरन्तर कुछ न कुछ सिखाती रहती हैं। सम्पर्क क्षेत्र की विभिन्नताएँ और विचित्रताएँ ही हमारी ज्ञान-सम्पदा को निरन्तर बढ़ाती रहती है। भले-बुरे, कडुए-मीठे—अनुभव बताते हैं कि किन परिस्थितियों में कितना किस सीमा तक सहयोग करना चाहिए और किनसे बचकर आत्मरक्षा की घेराबन्दी करनी चाहिए ?

घटनाएँ घटती रहती हैं। इनके साथ जुड़े तो प्राणी भी रहते हैं पर उनमें भी प्रमुखता परिस्थितियों की ही होती है। परिस्थितियों को भी एक बहुमुखी व्यक्तित्व वाले मनुष्य कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। घटनाक्रमों के साथ अनेकों उतार-चढ़ावों का सम्मिश्रण होता है। इसलिए उनके सम्पर्क में आने वाले एक साथ ही कितनी संगतियों और विसंगतियों का अनुमान लगा लेते हैं। ज्ञानवृद्धि में जनसम्पर्क की बहुलता और घटनाक्रमों की विभिन्नता बहुत सहायक होती है। इस प्रयोजन के लिए पर्यटन भी एक बड़ा माध्यम है। स्कूली अध्ययन जहाँ सीमित परिधि की जानकारियों का विकास करता है, वहाँ पर्यटन उसमें बहुमुखी ज्ञान अनुभव संचित करने का अवसर प्रदान करता है।

प्राचीनकाल के गुरुकुल चलते-फिरते होते थे। ऋषि-मनीषी अपनी शिष्ट मण्डली को लेकर परिभ्रमण करते रहते थे। थोड़े-थोड़े समय एक-एक स्थान पर रुकते थे। फिर आगे बढ़ जाते थे। इसमें अध्ययन-अध्यापन में कोई व्यतिरेक नहीं पड़ता था। व्यक्तियों और परिस्थितियों की भिन्नता से अवगत होते रहने वाले विद्यार्थी अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार कुशल होते थे। जबकि छात्रालयों या घर परिवारों की चहारदीवारी तक सीमित रहने वालों को मात्र पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित रहना पड़ता था।

यह ठीक है कि अधिक घनिष्ठ एवं समीप रहने वालों की प्रभाव प्रतिक्रिया अधिक होती है, पर यह नहीं समझा जाना चाहिए कि सब कुछ उतने पर ही निर्भर है। बाहर का वातावरण भी कम प्रभावित नहीं करता। इसलिए न केवल ज्ञानवृद्धि का श्रेय या दोष सम्पर्क क्षेत्र को ही नहीं दिया जा सकता। सम्पर्क क्षेत्र से तात्पर्य अपने परिवार से है। हर परिवार में भले-बुरे स्वभाव के होते हैं। सभी एक जैसे हों यह कठिन है। ऐसी दशा में अपरिपक्व आयु के बालक उनमें से किससे अधिक प्रभावित हों और किन-किन का, किस सीमा तक अनुकरण करने लगें यह कहा नहीं जा सकता ? स्कूल जाने या पास-पड़ौस के बच्चों के साथ खेलने का समय आने पर तो प्रभाव ग्रहण का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो जाता है। अपनी तथा दूसरी कक्षाओं के अध्यापक—अपने और साथियों के अभिभावक—सेवक शिक्षकों की भूमिका निभाते हैं और पाठ्यक्रम में न सही, भले-बुरे अनुभवों की अभिवृद्धि में योगदान देते हैं। यह समूचा मिलकर ज्ञानवृद्धि की शृंखला को मोटी और लम्बी करता चला जाता है।

यह उस समय की चर्चा है, जिन दिनों बालक घर से निकलकर स्कूल तक के आवागमन का क्रम आरम्भ करता है। इससे सम्पर्क क्षेत्र का विस्तार कहना चाहिए। यह सम्पर्क ही वास्तविक अध्ययन-अध्यापन है। अनुभव एवं प्रभाव ग्रहण भी अपने ढंग की ज्ञानवृद्धि है। मात्र पुस्तकों या अध्यापकों तक ही उसे सीमित नहीं समझा जाना चाहिए।

यह ज्ञान वृद्धि आगे चलकर और भी अधिक विस्तृत होती है। पुस्तकों में वर्णित ऐतिहासिक घटनाक्रमों एवं अगणित विचारशीलों के प्रतिपादनों को उनके द्वारा पढ़ने-समझने का अवसर मिलता है। पाठ्यक्रम मात्र शब्दकोश, भाषाज्ञान एवं विषय परिचय भर तक सीमित नहीं रहते उस माध्यम से जो पढ़ा गया है वह एक प्रकार से सम्पर्क स्तर का बनाता जाता है। प्रत्यक्ष न होने पर भी पुस्तकीय ज्ञान परोक्ष सम्पर्क क्षेत्र बना है और पढ़ने वाले पर प्रभाव छोड़ता है। साहित्य की तरह ही अब सिनेमा टेलीविजन भी एक प्रकार से देखने वालों के लिए स्कूलों की, अध्यापकों की भूमिका निभाते हैं। हाट-बाजार में—मेले-ठेलों में—विवाह शादियों में सहज ही अनेक आकृति-प्रकृति के—स्वभाव-आचरण के नर-नारियों को देखना बन पड़ता है। इन सबके साथ हल्का भारी प्रभाव सम्पर्क जुड़ता है, आदान-प्रदान का क्रम चलता है।

दैनिक समाचार पत्र संसार भर की परिस्थितियों के साथ सम्पर्क जोड़ते हैं। मासिक, साप्ताहिक पत्रिकाएँ विचार प्रधान होती हैं। पुस्तकालयों में हर स्तर की पाठ्य सामग्री मिल जाती है। सत्संग समारोहों में किसी विशेष विचारधारा का बाहुल्य छाया रहता है। कुल मिलाकर हमारा समूचा जीवन ही सीखते हुए जाता है। उसमें सिखाना भी सम्मिलित है। हम न केवल सीखते ही नहीं वरन् सिखाते भी हैं। न केवल विद्यार्थी होते हैं वरन् कितनों के ही लिए अध्यापक भी बनते हैं। यह भी एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन साधना है। आवश्यक नहीं कि बड़े या बहुत ही कम आयु, समझ वालों को सिखाये। बहुत बार छोटे और अनपढ़ भी बड़ों को इतना अधिक सिखा देते हैं कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

यहाँ उस मान्यता पर प्रश्न चिह्न लगता है जिसके अनुसार यह कहा जाता रहा है कि उपयोगी शिक्षण संस्थानों में भर्ती करने से या सुसंस्कृत परिस्थितियों में पलने से बालक या व्यक्ति का ज्ञान एवं चरित्र बढ़ता है। यह प्रतिपादन एक सीमा तक ही सही है। बार-बार सम्पर्क में आने वालों का अधिक प्रभाव पड़ता और अनुकरणप्रिय प्रकृति मिलने के कारण अधिक सीखने-समझने का अवसर रहता है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु इससे बाहर जो कुछ घटित हो रहा है या जो हो चुका है, उसके प्रभाव से अछूता रहने के लिए कोई चहारदीवारी नहीं खिंच सकती।

घर में अँगीठी जला लेने पर भी सर्दी का मौसम प्रभाव न छोड़े और अँगीठी छोड़ने के बाद अपना प्रभाव प्रदर्शित न करे, यह कैसे हो सकता है ? घर में बुहारी लगाने पर भी जब अन्धड़ के साथ उड़ता हुआ गर्द-गुबार आँगन व रास्ते में ढेरों रेत-कचरा बखेर देता है तो उसकी रोकथाम कैसे हो ? अनचाहे मेहमान भी कई बार ऐसे होते हैं जो प्रवेश निषिद्ध का प्रतिबन्ध पढ़ते तक नहीं और दनदनाते हुए घर के भीतरी कोने तक जा धमकते हैं। मक्खी, मच्छर, खटमल, पिस्सू मनचाही घुसपैठ करते रहते हैं। अधिक से अधिक कुत्ते बिल्ली ही रोके या भगाए जा सकते हैं।

बाहरी प्रभाव के सम्बन्ध में भी यही बात है। जीवन निर्वाह के क्षेत्र में ऐसा किया जा सकता है, जिसमें इच्छित अनुकूलता रहे किन्तु मनुष्य पिंजड़े का पक्षी तो नहीं है। उसका सम्पर्क आवागमन अनेकों के साथ जुड़ता है। फिर जो पढ़ा या सुना जाता है, उसे किस प्रकार भले-बुरे की छलनी में छाना जाय। नाक के द्वार खुले हैं तो नथुनों में सुगन्ध ही नहीं दुर्गन्ध भी घुसेगी ही। आँखें यदि खुली हों तो उन्हें भले ही नहीं बुरे दृश्य भी दीखेंगे ही। भले दृश्य आँखे देखें और बुरे सामने आते ही कपाट बन्द करलें ऐसा सोचा भी जा सकता है, व्यवहार में उतारना सम्भव नहीं। गाँधीजी के तीन बन्दर एक परिकल्पना है। कोई आँखें बन्द किए, कानों में अँगुली लगाए और मुँह पर पट्टी बाँधे कहाँ तक बैठा रह सकता है। जीवितों में से किसी के लिए भी वह सम्भव नहीं। आदर्शों के प्रतीक लोकशिक्षण के लिए बना लेने में हर्ज नहीं, पर उन्हें व्यावहारिक मानकर नहीं चला जा सकता।

तब किया क्या जाय ? क्या विवशता समझकर दैवेच्छा पर निर्भर रहा जाय ? प्रयास-पुरुषार्थ की राय न देने वाली भाग्यवादी मान्यता अपनाने की आवश्यकता नहीं। समझना इतना भर है कि जीवनचर्या का क्षेत्र बहुत बड़ा है। उसकी विशालता और व्यापकता अत्यधिक विस्तृत है। बुरे के साथ भला और भले के साथ बुरा इतना अधिक गुँथा है कि अनुकूल वातावरण या परिस्थितियों की घेराबन्दी कर सकना सिद्धान्त सही होने पर भी व्यवहारतः असम्भव है। हमें यथार्थवादी होना चहिए और संसार भर के काँटे बीनने या बिना ठोकर कंकड़ों से बचते हुए, कालीनों पर ही चलने की कल्पना छोड़ देनी चाहिए। अच्छा है कि पैरों में जूता पहनें और हर भले-बुरे रास्ते को रौंदते हुए बेखटके चलते रहें।

तात्पर्य उस विवेक-बुद्धि के जागरण से है, जो एकाकी नहीं होती वरन् भले-बुरे का भेद करना जानती है। उसी को विकसित और परिपक्व करने की जरूरत है। खतरा एकाकीपन में पड़ता है। विश्वासी ठगे जाते हैं और अविश्वासी आशंकाग्रस्त रहकर अलग-थलग पड़ते और घाटे में रहते हैं। सज्जनों की संगति बहुत अच्छी बात है पर यदि दुर्जनों की कुटिलता से अपरिचित रहा जाय तो वह दुर्दिन देखना पड़ेगा, जिसमें किसी पाखण्डी के कुचक्र में फँसकर जेब कटानी और मुसीबत उठानी पड़े। ठीक इसी प्रकार दुर्जनों से सारा संसार भरा होने की मान्यता बना लेने पर सज्जनों से सम्पर्क साधना और सहयोग के आदान-प्रदान का द्वार ही नहीं खुलेगा। इसीलिए नीर-क्षीर विवेक की नीति को बुद्धिमत्तापूर्ण बनाया, सराहा और अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

अपनी बालकों की—प्रभाव सम्पर्क में आने वालों की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ इस तथ्य को भी हृदयंगम किया और कराया जाना चाहिए कि यहाँ भलाई और बुराई दोनों ही एक साथ गुँथी हैं। वे इतनी दूरी पर नहीं रहतीं कि उन्हें अलग-अलग पंक्तियों में नहीं खड़ा किया जा सकता वरन् हर प्रसंग में उनके ग्राह्य और अग्राह्य स्तर का वर्गीकरण किया जाना चाहिए। छलनी आटा छानती है और भूसी का ढेर अलग से लगा देती है। सूप के फटकने का भी यही क्रम है कि वह करकट और अनाज अलग-अलग करता रहता है। पानी छानकर पीने के पीछे भी यही नीति काम करती है। इस संसार में सर्वथा सज्जन या सर्वथा दुर्जन कोई भी नहीं है। इसलिए न तो किसी आत्मसमर्पण किया जाना चाहिए और न किसी को सर्वथा अप्रामाणिक, अनुपयोगी ठहराया जाना चाहिए। अतिवाद के दोनों ही सिरे खतरनाक हैं।

ज्ञानवृद्धि एक ऐसी आवश्यकता है, जो जन्म से ही आरम्भ होती है और मरणपर्यन्त चलती रहती है। इसमें पठन-पाठन के अनेकों माध्यम हैं। परिवार, स्कूल, साहित्य, सम्पर्क आदि द्वारा यह क्रम चलता ही रहता है। इसमें से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे सर्वथा निर्दोष या ग्राह्य कहा जा सके। ऐसा भी नहीं हो सकता कि एक वर्ग के साथ ही सम्पर्क रहे और दूसरे से बचा या बचाया जा सके। इस झंझट में न पड़कर हमें इतना ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचना चाहिए कि बुराइयों के दुष्परिणाम समझें और अच्छाइयों की सुखद सम्भावनाओं का सही रीति से मूल्यांकन करना सीखें। हर सज्जन में कोई दुर्जन जैसा दुर्गुण हो सकता और हर दुर्जन में कुछ न कुछ विशेषता हो सकती है। हमें औचित्य को ही मान्यता देनी चाहिए। तर्क बुद्धि से काम लेना चाहिए। यथार्थता का पर्यवेक्षण कर सकने वाली विवेकशीलता विकसित करनी चाहिए। नीर-क्षीर का भेद करने वाली प्रथा अपनानी चाहिए। यही है—ज्ञानवृद्धि की दूरदर्शितापूर्ण अवधारणा। जिसका आश्रय लेकर बुरे लोगों और बुरी परिस्थितियों में भी सतर्कता और सुरक्षा के कितने ही महत्त्वपूर्ण सूत्र हाथ लग सकते हैं। यही है वह कौशल जिसके आधार पर सज्जनता को ढूँढ़ना और उसके उपयोगी अंश को उपयोगी मात्रा में ग्रहण कर सकना सम्भव हो सकता है।

प्रकृति के आँगन में ब्रह्मविद्या के पाठ

ज्ञान प्राप्ति के लिए चिरकाल तक तप-अनुष्ठान करने के बाद भी जब दत्तात्रेय को अपनी उपलब्धियों से सन्तोष न हुआ तो ब्रह्मा के पास पहुँचे। विधिवत अर्चन-वंदन करने के बाद दत्तात्रेय ने कहा—"भगवन ! मैं उपयुक्त गुरु की खोज करने के लिए अब तक कई स्थानों पर भटकता रहा, अनेक गुरुओं, सन्त-महात्माओं के पास पहुँचा परन्तु मुझे कहीं भी ऐसा नहीं लगा कि जिसकी मुझे आवश्यकता थी वह मुझे प्राप्त हो गया है। कृपा कर ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बताइए।"

"जिससे ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है वह सद्गुरु तो प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में ही विद्यमान है," ब्रह्मा ने कहा—वत्स, आवश्यकता केवल उसी गुरु को खोजने की है—जिस व्यक्ति का अन्तःकरण कषाय-कल्मषों से मुक्त हो गया है, तपश्चर्या और साधना द्वारा जिसने अपने मल विकारों को नष्ट कर लिया है तथा अन्तःकरण को पवित्र-निष्कलुष बना लिया है, वह व्यक्ति अपने चारों ओर विस्तीर्ण प्रकृति को देखकर ही धर्म और अध्यात्म का तत्त्व ज्ञान सीख सकता है।

प्रजापति ब्रह्मा से यह सूत्र प्राप्त कर दत्तात्रेय पृथ्वी पर लौट आए और उन्होंने प्रकृति में घटने वाली छोटी से छोटी घटनाओं को देखकर उनका निरीक्षण कर ब्रह्मविद्या का अध्ययन किया और जीवन-मुक्त हो गए। प्रकृति की खुली हुई पुस्तक पढ़कर अपने आस-पास घटने वाली सामान्य घटनाओं का निरीक्षण करके दत्तात्रेय ने जब अध्यात्म ज्ञान की सिद्धि करली तो वे उन्मुक्त विचरण करते हुए जन-जन को आध्यात्मिकता का संदेश सुनाने लगे। राजा से रंक तक और भोगी से योगी तक हर कोई उनकी अमृतवाणी श्रवण कर आत्मिक आह्लाद का अनुभव करने लगता।

एक बार राजा यदु ने दत्तात्रेय से पूछा महात्मन ! संसार के अधिकांश लोग काम और लोभ के वश होकर कष्ट पा रहे हैं। आपने यह जीवन्मुक्त अवस्था कैसे प्राप्त की ? कृपा कर आप मुझे यह बताइए कि आपको आत्मा में ही परमानन्द का अनुभव कैसे होता है तथा आपने यह अपने किस गुरु के चरणों में बैठ कर प्राप्त की है ?

ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजी ने उत्तर दिया—"मैंने अपने अन्तःकरण से अनेक गुरुओं द्वारा मूक उपदेश प्राप्त किया है।"

राजा यदु की जिज्ञासा और बढ़ी तथा उन्होंने पूछ ही लिया—अनेक गुरु ? किस प्रकार ? क्या नाम हैं उन गुरुओं के ?

एक साथ किए गए इन अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुए दत्तात्रेय ने कहा—राजन् ! ज्ञान प्राप्ति के लिए अकेले गुरु से ही काम नहीं चलता उसके लिए अन्तःकरण में स्थित सद्गुरु की शरण भी जाना पड़ता है तो कौन गुरु है और क्या शिक्षा दे रहा है ? इसका विवेचन करता व समझाता है। इस सद्गुरु ने मुझे २४ गुरूओं से शिक्षा ग्रहण कराई। उन गुरुओं में पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा, हाथी, मधुमक्खी, हिरण, मछली, पिंगलावेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी कन्या बाग बनाने वाला, सर्प और भृंगी कीट है।"

बह्मन ! 'यह सब तो जड़ अथवा निर्बुद्धि हैं इन्होंने आपको क्या उपदेश दिया'—राजा यदु ने यह पूछा तो दत्तात्रेय ने बताया जड़ और निर्बुद्धि होते हुए भी प्रकृति तो उस लीलामय की चेतना लीला ही है। यदि हम अपने अन्तःकरण को निर्मल और परिष्कृत बना सके तो इस प्रकृति से ही बहुत कुछ सीख सकते हैं। जैसे पृथ्वी से मैंने धैर्य और क्षमा की शिक्षा ली। लोग पृथ्वी पर कितना आघात और उत्पात करते रहते हैं, पर वह न तो किसी से बदला लेती है तथा न रोती चिल्लाती है। प्राणी जाने-अनजाने एक-दूसरे का अपकार कर ही डालते हैं। धीर पुरुष को चाहिए दूसरे की विवशता को समझकर वह न तो अपना धीरज खोए और न ही किसी पर क्रोध करे।

"वायु से मैंने यह शिक्षा ली है कि जैसे अनेक स्थानों में जाने पर भी वह कहीं आसक्त नहीं होता और किसी का भी गुण-दोष नहीं अपनाता वैसे ही साधक भी किसी का न तो दोष ग्रहण करे और न किसी से आसक्ति तथा द्वेष ही करे।"

जितने भी चल अचल पदार्थ हैं उनका आश्रय स्थान एक ही है आकाश। आकाश को देखकर मैंने यह जाना कि इस विश्व-ब्रह्माण्ड में जितने भी चर-अचर जीव हैं और थिर-अस्थिर पदार्थ हैं उनमें विद्यमान आत्मा ब्रह्मरूप से सर्वत्र व्याप्त है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जल स्वभाव से ही स्वच्छ, मधुर और पवित्र है। जल को देखकर मैंने यह प्रेरणा प्राप्त की कि साधक को भी अपना स्वभाव स्वच्छ, शुद्ध, मधुर और पवित्र रखना चाहिए। अग्नि तेजस्वी और ज्योतिर्मय होती है और उसके तेज को कोई दबा नहीं सकता उसके पास संग्रह परिग्रह के लिए कोई पात्र नहीं है और वह सब कुछ भस्म कर डालती है। भले-बुरे सभी पदार्थों को भस्म कर डालने पर भी वह किसी वस्तु के दोषों से लिप्त नहीं होती। इसी तरह साधक को भी तेजस्वी, इन्द्रियों से अपराजित और विषयों से निर्लिप्त रहना चाहिए।

चन्द्रमा की गति तो नहीं जानी जा सकती परन्तु काल के प्रभाव से उसकी गति घटती-बढ़ती रहती है। वस्तुत: वह न तो घटता है और न बढ़ता है। वैसे ही जन्म से लेकर मृत्यु तक और मृत्यु से लेकर पुन: जन्म तक जितनी भी अवस्थाएँ बदलती हैं, वे सब शरीर की ही अवस्थाएँ हैं। आत्मा का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। सूर्य अपनी किरणों में से पृथ्वी का जल खींचता है और समय पर उसे बरसाता है वैसे ही योगी पुरुष भी समय और विषयों को ग्रहण और त्याग करते हैं किन्तु सूर्य की भाँति उनमें आसक्त नहीं होते।

अजगर से मैंने यह सीखा कि साधक को हर स्थिति में संतुष्ट रहना चाहिए। समुद्र, वर्षा ऋतु में नदियों की बाढ़ के कारण न तो बढ़ता है और न ही ग्रीष्म ऋतु में जब नदियाँ सूखने लगती हैं तो घटता ही है। उस समुद्र से मैंने यह सीखा कि साधक को सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति पर न तो प्रफुल्लित होना चाहिए तथा न ही उनके नष्ट हो जाने से खिन्न होना चाहिए।

पतंगा दीपक के रूप पर मोहित होकर उसकी शिखा में कूदता है और जलकर मर जाता है। वैसे ही अपनी इंद्रियों को वश में न रखने वाला पुरुष नाशवान पदार्थों में फँसा रहता है, उसकी सारी चित्त वृत्तियाँ उनके उपभोग के लिए ही लालायित रहती हैं। वह अपनी विवेक-बुद्धि खोकर पतंगे के समान ही नष्ट हो जाता है।

भौंरा छोटे बड़े अनेक पुरुषों से उनका सार मात्र ग्रहण करता है वैसे ही हे राजन् ! बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से उनका सार मात्र ग्रहण करे। हाथी से मैंने यह सीखा कि साधक काठ की बनी पुतली से भी मोह न करे। हाथी काठ की हथिनी को देखकर ही शिकारियों द्वारा खोदे गए गड्ढे में जा गिरता है तथा उस कारण मृत्यु को प्राप्त होता है। इसी प्रकार काष्ठ मूर्ति में भी साधक की आसक्ति उसे पतन का कारण बन जाती है।

मधु निकालने वाली मक्खी से राजन् ! मैंने यह शिक्षा ली कि जिस प्रकार वह प्रयत्नपूर्वक रस का संचय करतीं हैं, उसी प्रकार वह प्रयत्नपूर्वक रस का संचय करती है, उसी प्रकार लोभी व्यक्ति भी धन का संचय करते हैं। लोभी मधुमक्खी का संचित रस अन्य लोग ही ले उड़ते हैं। उसी प्रकार लोभी मनुष्य का संचित धन भी कोई दूसरा ही भोगता है। हरिण वाद्क यंत्रों के कारण श्रवणेन्द्रिय के विषयों में आसक्त होकर अपने प्राण गँवाता है उसी प्रकार साधक को श्रवणेन्द्रिय के विषय की आसक्ति पतन की ओर धकेलती है। मछली काँटे में फँसे हुए माँस के टुकड़े में अपने प्राण गँवा देती है वैसे ही स्वाद का लोभी मनुष्य भी अपनी जिह्वा के वश होकर मारा जाता है।

प्राचीनकाल में विदेह नगरी में पिंगला नाम की एक वेश्या रहती थी। उसके मन में धन की बहुत कामना थी इसलिए वह सदा ही यह सोचा करती थी कि कोई धनी पुरुष आकर उसे अपना धन दे जायगा। एक दिन वह आधी रात तक इसी तरह प्रतीक्षा में खड़ी रही। अत्यधिक देर हो जाने से उसका मुँह सूख गया और चित्त व्याकुल हो गया, पर उस रात को उसे निराश ही रहना पड़ा। इस निराशा के कारण उसे वैराग्य हो गया। इससे मैंने यह सीखा कि दूसरों से आशा कर उन पर निर्भर करना ही सबसे बड़ा दु:ख है। दूसरों से आशा न कर अपने प्रयत्नों पर ही निर्भर करना सबसे बड़ा सुख है। उस रात जब पिंगला ने दूसरों से आशा करना छोड़ दिया तो वह सुख की नींद सो सकी।

एक बार किसी कुमारी कन्या के घर, उसे वरण करने के लिए कई वर और उनके परिजन पहुँचे। संयोग से उस दिन घर के लोग कहीं बाहर गए हुए थे। इसलिए कन्या ने स्वयं ही उनका आतिथ्य सत्कार किया और उन्हें भोजन कराने के लिए घर के भीतर एकांत में धान कूटने लगी। धान कूटते समय उसकी कलाई की चूड़ियाँ बज रही थीं । इससे उसे बड़ी लज्जा हुई। उसने एक-एक करके सारी चूड़ियाँ उतार दीं, केवल एक ही रखी। मैंने उससे यह शिक्षा ग्रहण की कि साधक के चित्त में जब बहुत-सी वृत्तियाँ हों तो वहाँ भी इसी प्रकार का कोलाहल उत्पन्न होता रहता है। इसलिए साधक को अपने चित्त में एक ही ध्येय का अवलम्बन करना चाहिए।

एक बाण बनाने वाला अपने कार्य में इतना तन्मय हो गया था कि उसके पास से ही राजा की सवारी दल-बल के साथ निकल गई, पर उसे इस बात का पता ही नहीं चला, क्योंकि वह अपने काम में पूरी तरह तन्मय था। उससे मैंने यह शिक्षा ली कि साधक भी अपने ज्ञातव्य के चिन्तन में तन्मय रहे तो उसे संसार में होने वाली उथल-पुथल अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकती।

कोई पक्षी अपनी चोंच में माँस का टुकड़ा लिए बैठा था। उसे छीनने के लिए दूसरे पक्षियों ने उसे अपनी चोंचों से मारना शुरू कर दिया। जब उस पक्षी ने चोंच में दबाए हुए टुकड़े को फेंक दिया तो वह कष्ट से मुक्त हो गया। अनावश्यक संग्रह ही दूसरों के मन में ईर्ष्या को जन्म देता है और दूसरों को ईर्ष्या के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कष्ट पहुँचता है। उस पक्षी से मैंने यह शिक्षा ली कि अनावश्यक संग्रह नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार साँप से मैंने यह शिक्षा ली कि संन्यासी को मठ या मण्डली बनाने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए।

मकड़ी बिना किसी सहायक के अपने ही मुँह के तारों द्वारा जाला बना लेती है, उसी में विहार करती है और फिर उसे ही निगल जाती है। मकड़ी के इस कार्य से मैंने सर्वशक्तिमान भगवान की विश्व रचना के कार्य को समझने का प्रयत्न किया है। भगवान बिना किसी सहायक के अपनी ही माया से इस ब्रह्माण्ड को रचते हैं, उसमें जीवरूप से विहार करते हैं और अपने आप को ही लीन करके अंत में अकेले ही शेष रह जाते हैं।

भृंगी किसी कीट को पकड़कर अपने रहने के स्थान में बन्द कर देता है और कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते-करते तद्रूप हो जाता है, उसी प्रकार साधक को भी केवल परमात्मा का ही चिंतन करके परमात्मा रूप हो जाना चाहिए। विवेक और वैराग्य की शिक्षा देने के कारण यह मेरा शरीर भी एक गुरु है। यद्यपि यह शरीर अनित्य है तो भी इससे परम पुरुषार्थ का लाभ हो सकता है। मैंने इस प्रकार प्रकृति के चौबीस गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की तथा जीवन-मुक्त होने का मार्ग पाया।

भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध में दत्तात्रेय के चौबीस गुरुओं का सविस्तार वर्णन आया है और इस आख्यान का प्रतिपाद्य-मर्म-रहस्य यही है कि व्यक्ति यदि सीखना चाहिए तो उसके लिए आवश्यकता केवल तीव्र लगन और आकुल जिज्ञासा भर की है, ये सभी साधन सुविधाएँ उपयोगी हैं और आवश्यक भी, पर ज्ञान प्राप्ति में आधारभूत दृष्टि से यह आवश्यक है कि व्यक्ति में ज्ञान प्राप्त करने के लिए कितनी उत्कण्ठा है, कितनी लगन है और कितनी साध है ?

भागवत पुराण के एकादश स्कन्ध में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—ज्ञान प्राप्त करने के लिए अकेले गुरू से ही काम नहीं चलता बल्कि उसके लिए स्वयं भी सोचने-समझने और चतुर्दिक होती रहने वाली छोटी-छोटी घटनाओं से भी बहुत कुछ समझना आवश्यक है। साधक यदि अपनी दृष्टि को सूक्ष्म और ग्राह्य बनाए तो उसके चारों ओर ब्रह्मविद्या का महाविद्यालय खुला पड़ा है, प्रकृति ने अपनी प्रिय संतान के लिए अपने ही आँगन में ब्रह्मविद्या का भाग्योदय मंदिर खोल रखा है। कोई उसमें नम्र याजक पूजक की तरह जाए तो सही।

शिक्षा की सार्थकता—महानता के जागरण में

विकासवादी डार्विन के अनुसार मनुष्य बन्दर की औलाद है। बन्दर की यह विशेषता है कि अपने इर्द-गिर्द जो देखता है, उसी की नकल करने लगता है। तोता-मैना तो जो सुनते हैं, उसे रटकर सुना देते हैं। पर मनुष्य अपने आस-पास होने वाली गतिविधियों की नकल करता है। यही उसकी वास्तविक शिक्षा है। यों वह जो पुस्तकों, पत्रिकाओं में पड़ता है, उससे भी कुछ न कुछ निष्कर्ष तो निकालता ही है। पर इससे पाठकों में पक्ष और विपक्ष का मन्थन करके निष्कर्ष पर पहुँचने की स्वतन्त्र चिन्तन क्षमता कम ही होती है। देखना यह है कि इस कमी को पूरा किस प्रकार किया जाय ?

कोई यह नहीं कहता कि पाठ्य पुस्तकें बेकार हैं। पर उनमें सामयिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाले तथ्य हों तो उनकी उत्कृष्टता समझी जाय, अन्यथा उसका पठन-पाठन सामान्य ज्ञान की वृद्धि के अतिरिक्त और किसी काम नहीं आता।

संसार में कब, कहाँ, क्या हुआ ? या क्या हो रहा है, क्या हो चुका, क्या होने जा रहा है ? ये जानकारियाँ बुरी नहीं हैं। कभी न कभी काम ही आती हैं। कुछ न कुछ निष्कर्ष निकल ही सकता है। पर अच्छा यह है कि शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े, उपेक्षाग्रस्त अपने देश को वह 'बेबी फूड' दिया जाय, जिसे वह आसानी से पचा सके और संव्याप्त 'कुपोषण' की समस्या से उबर सके।

अपने देश में जो भी विद्यार्थी पढ़ते हैं, उनमें से अधिकांश की मनोवृत्ति एक खास ढाँचे में ढली हुई है या ढल रही है कि पढ़ाई पूरी करते ही उन्हें कोई ऊँची नौकरी मिलेगी और उसके लिए अमुक कक्षा का प्रमाण-पत्र पर्याप्त है। इसलिए प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए जो भी उचित-अनुचित तरीके उनकी समझ में आते हैं, उन्हें काम में लाते हैं।

वे ये भूल जाते हैं कि व्यक्ति में कुछ मौलिक प्रतिभा की भी आवश्यकता पड़ती है। साथ ही गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता भी अभीष्ट होती है। इसके अभाव में महानता उभर ही नहीं पाती। यह न होने के कारण ही प्रामाणिकता और दक्षता के अभाव में नौकरियों के स्थान खाली होते हुए भी वे उन्हें मिल नहीं पातीं और शिक्षितों की बेकारी भयावह रूप से सामने आ खड़ी होती है।

भयावह इस अर्थ में कि उन्होंने जो सपने देखे थे, अफसर बनने की साध सँजोई थी और उसी स्तर का शानदार जीवनयापन करने की बात सोची थी, बात नहीं बनी। इस असफलता का उन्हें बुरी तरह आघात लगता है। दूसरा काम तलाश करते हैं, तो उसमें हेटी भी लगती है और अनुभव के अभाव में सफलता भी नहीं मिलती। या तो मन ऊब जाता है या हटा दिए जाते हैं। ऐसी दशा में बेकारी तो प्रत्यक्ष ही है। एक और भी मानसिक आघात लगता है कि इस दुर्भाग्य को कुटुम्बी-सम्बन्धियों मित्र-परिचितों द्वारा कोसा जाता है। सहानुभूति में भी व्यंग्य और दुःख छिपा होता है। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थिति एक-दो की नहीं, हजारों लाखों की है। वे विक्षिप्त और व्यग्र मनःस्थिति में न सोचने लायक और न करने लायक करने लगते हैं। नौसिखिए होने के कारण अर्थ लाभ के लिए अपनाए गए उद्धत आचरण भी जल्दी ही पकड़ में आ जाते हैं। तब रही-बची प्रतिष्ठा भी चली जाती है। कैसी दुःखद बिडम्बना है यह ?

इससे छुटकारा पाने के लिए अभिभावकों, शिक्षार्थियों और अध्यापकों को यह सोचना होगा कि यदि शिक्षा नौकरी के लिए है तो उतने स्थान खाली हैं या नहीं ? यदि नहीं, तो वह विचारना होगा कि परिवार के लोगों ने अपनी जमा पूँजी स्वाहा करके जो शिक्षा दिलाई, उसका क्या प्रतिफल मिला ? वे किस आधार पर सन्तोष करें ? निश्चय ही शिक्षा का उद्देश्य इतना संकीर्ण नहीं हो सकता। शिक्षा की सार्थकता मनुष्य के अन्दर छिपी प्रतिभा और महानता को उजागर करने में ही है।

विश्वास रखिए संसार के प्रत्येक मनुष्य के भीतर कोई न कोई महान पुरुष सोया पड़ा रहता है। आपके अन्दर भी है, यदि ऐसा न होता तो एक साधारण से मजदूर का अनपढ़ बेटा अब्राहम लिंकन, संसार का महान व्यक्ति न हो पाता। एक साधारण जिल्दसाज की नौकरी करने वाला लड़का—माइकेल फैराडे संसार का आश्चर्यजनक वैज्ञानिक कैसे बन पाता ? साधारण वकील स्तर के महात्मा गाँधी विश्व बन्धु बापू न हो पाते और दो पैसे की रोटी पर जीवन चलाने वाले स्वामी रामतीर्थ अध्यात्म क्षेत्र के महारथी और कारखाने का छोटा-सा नौकर फोर्ड संसार का महानतम उद्योगपति एवं धन कुबेर न बन पाता। कुबेर का यह आश्चर्यजनक विकास और चौंका देने वाली उन्नति प्रमाणित करती है कि किसी भी मनुष्य के विषय में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता कि आगे चलकर वह जीवन के किस शिखर पर पदार्पण करेगा ? संसार के सभी मनुष्यों में सारी क्षमताएँ तथा विशेषताएँ सन्निहित रहती हैं। आवश्यकता केवल अपने अध्यवसाय द्वारा उन्हें जगाने और काम में लाने की होती है। शक्तियों, क्षमताओं के उपयोग से इनकी वृद्धि होती है और मनुष्य उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होता रहता है।

मनुष्य जब अपने को कर्तव्य-कर्मों की सान पर चढ़ाता, परिश्रम एवं पुरुषार्थ की आग में तपाता है तो उसके भीतर सुषुप्त नेता, समाज सुधारक, लेखक, धर्म प्रचारक, वैज्ञानिक, कलाकार, संत, उद्योगपति जागकर ऊपर उभर आता है।

अपने प्रति हमारा दृष्टिकोण भी हमारे अन्दर सोए महान व्यक्ति को जगाने में सहायक होता है। हमारी भावनाओं के अनुरूप ही हमारा भविष्य बनता और प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता चलता है। हमारे अर्द्ध-चेतन की शक्तियाँ प्रेरणा देकर उसी दिशा में अग्रसर करती हैं जिस ओर हमारी भावनाएँ होती हैं। इसीलिए दृष्टिकोण और मनःस्थिति सदैव सृजनात्मक बनाए रहने पर बल दिया जाता है। इसके विपरीत यदि हमारा दृष्टिकोण निराशा एवं निरुत्साहपूर्ण है, तो निश्चय ही ऐसी आसुरी शक्तियाँ जाग पड़ेंगी, जो आलस्य, अज्ञान, अकर्मण्यता, तथा उपेक्षा के दोष जागृत कर हमारी गति को अवरुद्ध और सीमित बनाए रह सकती है। अपने को प्रगति की दिशा में दिन-दिन आगे बढ़ाने के लिए अपने प्रति आशा एवं विश्वास भरा दृष्टिकोण रखा जाना आवश्यक है। कभी भूलकर भी ऐसा न सोचा जाना चाहिए कि हमारी शक्ति न्यून और साधन नगण्य हैं, योग्यता अपर्याप्त है अथवा साहस की कमी है। ऐसे हीन दृष्टिकोण और दीन भावनाओं से भीतर का विशिष्ट व्यक्ति महत्त्वहीन और कुण्ठित हो जाता है और विकास की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

संसार के सारे महापुरुष प्रारम्भ में साधारण श्रेणी योग्यता, क्षमताओं के व्यक्ति रहे हैं। इतना होने पर भी उन्होंने अपने प्रति दृष्टिकोण हीन नहीं बनने दिया और निराशा को पास नहीं फटकने दिया। आत्मविश्वास एवं अविरल अध्यवसाय के बल पर वे कदम-कदम आगे बढ़ते ही गए। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे लक्ष्य से विचलित नहीं हुए। नगण्य से साधन और अल्प योग्यता के होते हुए भी देश, धर्म, समाज और मानवता की सेवा में अपने जीवन की आहुति समर्पित कर समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत कर गए और कोटि-कोटि जनों को दिशा प्रदान कर गए। यदि वे साधनहीनता, अल्प योग्यता की हीन-भावना से ग्रसित रहे होते तो अनेकों जीवित-मृतकों, चेतनजड़ों की तरह अपंग अपाहिज और हेय जीवन जीते, रोते-कलपते जैसे-तैसे दिन गुजारते और सर्वत्र अन्धकार और निराशा भरे जीवन की शिकायत करते मर-खप गए होते। किन्तु महापुरुष निराशाओं और विषमताओं से जूझकर उठे, चले और उच्च शिखर तक जा पहुँचे।

जिन्हें महापुरुषों के सान्निध्य का सुअवसर मिला है, उन्हें ये देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि साधनहीन और विषम परिस्थितियों में भी वे इतने बड़े महान लक्ष्यों को कैसे प्राप्त कर सके ? भले ही वे साधारण श्रेणी के व्यक्ति रहे हों किन्तु आत्मविश्वास, जीवन लक्ष्य, उत्कृष्ट चिन्तन की दृष्टि से वे सर्वसाधारण से भिन्न रहे होते हैं। जिन परिस्थितियों में साधारण व्यक्ति रोते, कलपते, शिकायतें करते, हारकर, निराश होकर भाग्य और भगवान् को कोसते और थक कर बैठ जाते हैं, उन्हीं परिस्थितियों में संकल्प के धनी, आत्मविश्वासी, धुन के पक्के, प्रतिकूलताओं से जूझते कठिनाइयों से लोहा लेने वाले अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ बुद्धिमान कहे जाने वाले और योग्यता में बढ़े-चढ़े लोग निषेधात्मक चिन्तन से ग्रसित रहते और पग-पग पर विरोध असहयोग और असम्मान पाते और परिवार, समाज, राष्ट्र के लिए भारभूत बने रहते हैं। वहाँ विधेयात्मक चिन्तन के कारण साधारण परिस्थितियों वाले महापुरुष समाज की सद्भावनाएँ, सहयोग और समर्थन अर्जित करते हुए अपने अभीष्ट लक्ष्य की ओर अग्रगमन करते रहते हैं।

यदि आशापूर्ण दृष्टिकोण, लक्ष्य, ध्येय को लेकर आत्मविश्वास के साथ जीवन पथ पर चला जाय तो सफलता के राजमार्ग स्वत: खुलते चले जाते हैं। विश्वास से जिस मनोबल का जन्म होता है। उनमें बड़ी प्रेरक एवं सृजनात्मक शक्ति होती है। वह मनुष्य को भय, शंकाओं एवं संदेहों से दूर रखकर उमंग-उत्साह से भरपूर रखती है।

हर विचारशील को अनुभव रखना चाहिए कि उसके भीतर भी एक 'महान पुरुष, सोया पड़ा है। उसे प्रयास पूर्वक जगाया जा सकता है, जो आत्मनिर्माण में सफलता प्राप्त कर सकता है। उसके लिए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचने में आगे कोई बड़ा व्यवधान खड़ा नहीं होता। यह तो आत्मप्रवंचना ही है कि व्यक्ति अपने अन्दर सोए महान को पहचान नहीं पाता, न ही उसके लिए कोई प्रयास-पुरुषार्थ ही करता है। जीवन-यात्रा एक लम्बी भटकाव भरी पगडण्डियों से गुजरती है, प्रतिकूलताएँ स्वाभाविक हैं। उनका हँसते हुए सामना करना जीवन को खेल की तरह जीना हर किसी के लिए शक्य है। शर्त एक ही है व्यक्ति को अपने को एक चलता-फिरता जीवधारी न मानकर मानवोचित गरिमा युक्त समझे। स्वाध्याय व सत्संग जैसे माध्यमों से सतत् विचारधारा को इस दिशा में नियोजित किया जा सकता है। यह एक प्रबल पुरुषार्थ है पर नीचे गिरने वाले हीन भावना उत्पन्न करने वाले विचारों से भी जूझना एक संग्राम है—जीवन का ही एक भाग है। यह बिना सद्विचारों की सेना खड़ा किए सम्भव नहीं। अचेतन का तो स्वभाव ही ढर्रे की ओर धकेलना है। उसे सही दिशा में चलने के लिए विवश कर देना तथा सुनियोजित जीवन जीकर महापुरुषों के बताए पद-चिह्नों पर चलना पूर्णरूपेण सम्भव है। जीवन जीना एक कला है। यदि हम विश्वास करें कि हमारे भीतर भी कोई महान छिपा पड़ा है।

उद्धरेत् आत्मनात्मानं

इच्छा होती है कि हम आगे बढ़ें, प्रगति के पथ पर चलें और अन्य उन्नतिशील व्यक्तियों की तरह कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करें। किन्तु प्राय: यह इच्छा अधूरी ही रहती है। कारण एक ही है कि अपने मनोबल को विकसित कर अपनी समस्याओं को आप हल कर सकने के तथ्य की उपेक्षा की जाती रहती है कि कोई दूसरा हमारी सहायता करे। यह स्मरण रखने की बात है कि मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु और स्वयं ही अपना मित्र है। अपने सद्गुणों को विकसित करके ही कठिनाई पर विजय प्राप्त कर सकना और प्रगति का द्वार प्रशस्त कर सकना सम्भव हो सकता है।

हम आगे बढ़ना चाहते हैं पर अन्दर की दुर्बलताएँ अपना विकराल रूप बनाकर रास्ते में अड़ बैठती हैं और कदम-कदम पर रुकावट उत्पन्न करती हैं। लगता है कि कोई बाहरी शक्ति हमारे मार्ग में बाधक है। बहुधा यही भ्रम बना रहता है और बाह्य कारणों पर दोषारोपण करके मन हल्का करने की विडम्बना चलती रहती है। पर इससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। अड़चनें ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। विपरीत परिस्थितियों और आक्रमणकारी तत्त्वों का हमला कभी-कभी बाहर से भी होता है पर यदि अपना आन्तरिक स्तर मजबूत हो तो उनका विपरीत प्रभाव देर तक नहीं रहता। उलझी हुई मनोभूमि के व्यक्ति बाह्य परिस्थितियों को सुधारने और बदलने में कुछ अपवादों को छोड़कर आमतौर से असफल ही होते देखे गए हैं।

हम सोचते हैं कि "यदि हम अधिक पढ़-लिख सके होते, विद्या का बाहुल्य होता तो कैसा अच्छा रहता ? सम्मान भी बढ़ता, अधिक आजीविका कमा सकते, ज्ञानवृद्धि होती और बौद्धिक स्तर बढ़ता।" देखना यह है कि इस मार्ग में बाधा क्या है ? क्या पुस्तकें खरीदने लायक आर्थिक स्थिति नहीं ? पढ़ने के लिए समय का अभाव रहता है ? कोई सहायता करने वाला नहीं ? कभी-कभी यह कठिनाइयाँ भी किन्हीं-किन्हीं को कुछ अंशों में होती हैं, जिनका हल आसानी से खोजा जा सकता है। पर आमतौर से अपना मानसिक आलस्य, अनुत्साह, लगन और दृढ़ता की कमी ही प्रधान बाधा होती है। नये काम को आरम्भ करते हुए जी नहीं करता, अनभ्यासी काम में रुचि नहीं होती। मन हल्के, मनोरंजक और चिर अभ्यस्त कामों का आदी रहता है। नये काम में जमता नहीं। एक-दो दिन पढ़ने का प्रयत्न किया, पर मन ने उसमें रस नहीं लिया, फलस्वरूप कार्य भाररूप लगने लगा। पुस्तक रख दी, प्रयत्न छोड़ दिया। सोचा—हमसे न पढ़ा जा सकेगा। मन नहीं लगता, फुरसत ही कहाँ है ? बाल-बच्चों को पालें या पढ़ें ? तबियत तो ठीक नहीं रहती पढ़ना कैसे हो, ? भला कहीं इतनी उम्र में पढ़ाई होती है ? भाग्य में विद्या होती तो आरम्भ से ही वह व्यवस्था क्यों न बनी होती ? आदि अनेकों समाधान सूझ पड़ते हैं। जो ऐसे समाधान प्रस्तुत करते हैं उनके लिए विद्या प्राप्ति की आकांक्षा का पूरा कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मानसिक आलस्य की विजय ऐसी ही ऊटपटांग दलीलों के आधार पर तो हो सकती है। वकील लोग झूठे मुकदमे के पक्ष में अगणित दलीलें गढ़ लेते हैं। हारे हुए मन के लिए अपने पक्ष समर्थन के लिए उपरोक्त प्रकार के अनेकों बहाने ढूँढ़ लेना भी सरल ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि सच्ची लगन और दृढ़ निश्चय हो तो मन को बलपूर्वक पढ़ने में प्रवृत्त किया जा सकता। आलसी मन को कर्मठ बनाने के लिए उसे कड़ी प्रतारणा की जरूरत होती है। दृढ़ता की प्रबलता से आलसी मन को काबू में लाया जा सकता है। नौसिखिए बछड़े या घोड़े को जोतते समय आरम्भिक दिनों में जो कठिनाई होती है वही मन को किसी रूखे विषय में लगाते हुए भी हुआ करती है। दृढ़ता के आधार पर जिसने मन का आलस जीत लिया उसके लिए विद्या प्राप्ति का मार्ग बहुत सरल है। मनुष्य यदि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करता रहे तो कुछ ही वर्षों में ज्ञान का क्षेत्र पहले की अपेक्षा अनेक गुना बढ़ा जाएगा। कितने ही व्यक्तियों ने अधेड़ उम्र में अक्षर ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया है और धीरे-धीरे अन्ततः विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुए हैं।

समय, पैसा या साधनों के अभाव का बहाना बेकार है। जिन कामों को आवश्यक समझा जाता है उनके लिए लोग ढेरों पैसा खर्च कर डालते हैं। घर में नहीं होता तो बाहर से क़र्ज ले आते हैं। शौक-मौज के कार्यों में हर आदमी कुछ-न-कुछ खर्च करता है। उसे बचाकर पुस्तक खरीदने, फीस देने आदि में लगाया जा सकता है। 'जहाँ चाह वहाँ राह।' सच्ची लगन होने पर ईश्वर तक मिल जाता है फिर विद्या प्राप्ति के साधनों का जुटना भला कैसे असम्भव रह सकता है ? जिसे लगन होगी वह हजार कठिनाइयों के रहते हुए भी अध्ययन की सुविधाएँ प्राप्त कर लेगा और एक दिन अपने आज के आलसी साथियों की तुलना में कहीं आगे बढ़-चढ़ कर विद्वान होगा।

खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिए आहार सम्बन्धी बुरी आदतों को ठीक करना, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी कठोरता बरतना, सबेरे जल्दी उठना, टहलना, व्यायाम, मालिश आदि का क्रम बनाना, चिकित्सा-उपचार करना जैसी बातें आवश्यक हैं। इसकी जरूरत भी अनुभव होती है। पर आलस के मारे आजकल, आजकल करते हुए दिन गुजरते रहते हैं, कोई ठीक व्यवस्था ही नहीं बन पाती। कठिनाई और कुछ नहीं इतनी भर है कि अनभ्यस्त नये कार्यक्रम को अपनाने में मन जो बदमाशी करता है, उस पर नियन्त्रण किया जाय। जो जरूरी है उसे फौजी अनुशासन के समान अपने आप से कराया जाय। ढील-पोल की आदत छोड़कर कड़े नियम, प्रतिबन्ध पालने के लिए मन को विवश किया जाय तो भला आहार-विहार की उचित व्यवस्था बनाने जैसे अपने हाथ के, बहुत ही सरल कार्य में क्या अड़चन हो सकती है ? थोड़ी-सी कड़ाई बरतने मात्र से खोए हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर सकने जैसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता देखते-देखते पूरी हो सकती है।

नशा पीने की आदत लग गई है। शरीर खोखला होता जाता है। कलेजा, आँतें, मस्तिष्क, आँखें, हृदय, वीर्य सभी प्रधान अंगों पर इस कुटेव का घातक असर पड़ रहा है। पैसा भी रोज खर्च होता है। उतना पैसा यदि बचत में, आरोग्य वृद्धि में, शिक्षा में या किसी उपकारी काम में लगाया जाता तो कितना लाभ होता, यह सोचकर पछतावा भी आता है, पर लत छूटती नहीं। सोचते हैं कि इसे छोड़ दें, आज छोड़ें, कल छोड़ें, करते-करते सालों बीत जाते हैं। कभी छोड़ देते हैं तो फिर आदत मजबूर कर देती है और फिर पीना शुरू हो जाता है। मानसिक कमजोरी पर काबू नहीं हो पाता, बुरी आदत छोड़ने के लिए जितना मनोबल चाहिए, वह जुट नहीं पाता, फलस्वरूप वह बुराई भी पल्ले बँधी रहती है। बहाना यह बनाया जाता है कि नशा छोड़ते ही तबियत खराब हो जाती है, पेट फूलता है, सिर दर्द करता है, अमुक होता है, तमुक होता है। जिस बात को मन नहीं चाहता उसके विपक्ष में और जिसे चाहता है उसके पक्ष में कितनी ही दलीलें गढ़ा करता है ? शरीर भी मन का समर्थन करने के लिए कुछ-कुछ वैसा ही बन जाता है।

यदि मन को दुत्कार देना सम्भव हो सके तो नशा छोड़ने में लाभ ही लाभ है। छोड़ते समय दस-बीस दिन भड़-भड़ाहट उठती है। उसे शान्त करने के लिए कोई दूसरी छोटी-मोटी चीजें सौंफ, सुपाड़ी मुँह में रखकर काम चलाया जा सकता है। पान-तम्बाखू की आवश्यकता काली मिर्च मुँह में डाले रहने से पूरी हो जाती है। चाय के स्थान पर तुलसी के पत्ते, अदरक, भुना हुआ गेहूँ का दलिया उबाल कर उससे काम चलाया जा सकता है। एक दम न छूटे तो मात्रा कम करते हुए धीरे-धीरे छोड़ने का उपक्रम किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि नशा छोड़ा जा सकता है। लाखों व्यक्ति छोड़ चुके हैं, छोड़ रहे हैं, यदि यह कठिन या असम्भव बात होती तो दूसरे इतने लोग उसे कैसे छोड़ पाते ?

मन को कड़ा करने से वह बहुत कड़ा भी हो सकता है और ढील डालने से उसकी सुकुमारता का भी ठिकाना नहीं रहता। आलस से लेकर असंयम तक जितनी भी बुरी आदतें हैं, वह मन को लगाम ढ़ीली छोड़ देने, उसे चाहे जिधर जाने देने, चाहे जो करने देने से ही पड़ती है। उन्हें छोड़ने के लिए कोई जादू या देवता सहायता नहीं कर सकता, अपने आपको ही कड़ा करना पड़ता हैं। दौड़ते हुए घोड़े को टिकने के लिए लगाम कड़ी करनी पड़ती है। यदि यह कड़ाई कठिन मालूम होती है तो फिर बिगड़ैल घोड़े पर चढ़े हुए सवार की तरह अनियंत्रित मन वाले मनुष्य का भी ईश्वर ही रक्षक है।

मन की मर्जी तो इसमें रहती है कि उसे आलस में पड़ा रहने दिया जाय, मनोरंजक खेल-मेल या गप-शप का अवसर मिले, विलासिता और वासना की पूर्ति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वक्त कटता रहे, अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा सुनने को मिले। परिश्रम करना, कड़ाई होना, अनुशासन की पाबन्दी, समय, मुस्तैद, नियमितता, जैसे बन्धन भला उसे क्यों पसन्द आने लगे ? मन ऐसा भलामानुष कहाँ है कि हर अच्छे काम में अपने आप लग जाया करे। कौन बैल, गाड़ी में और घोड़ा ताँगे में खुशी-खुशी जुतने को तैयार होता है। बलपूर्वक ही उसे लगाया जाता है। मन की भी ठीक यही स्थिति है उससे किसी को भी यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उपयोगी, उत्कृष्ट, भले, रूखे, नीरस कामों में चुपचाप अपने आप लग जाएगा कड़ाई के बिना अब तक किसी का भी मन काबू में नहीं आया तो फिर भला हमारा ही कैसे आ जाएगा ?

मनीषियों का कथन है कि वश में किया हुआ मन ही सच्चा मित्र सिद्ध होता है और अनियंत्रित मन शत्रु के समान भयंकर परिणाम प्रस्तुत करता है। जिसने अपना मन जीत लिया उसे तीनों लोकों का विजयी कहा जाता है। अभीष्ट सफलताओं की उपलब्धि इसी बात पर निर्भर रहती है कि निर्धारित कार्यक्रम में मन कितनी लगन, स्फूर्ति और दिलचस्पी के साथ लगा। अधूरे मन से किया हुआ हर काम फूहड़ और असफल होता है। शान, शोभा और प्रतिष्ठा के साथ वे ही कार्य पूरे होते हैं, जिनमें समुचित मनोबल लगा हो।

प्रगति, विभूति और सफलता की दिशा में बढ़ते जाने से ही आन्तरिक सन्तोष सम्भव हो सकता है। उत्थान का यह कार्यक्रम मन को सुसंस्कृत और नियन्त्रित होने पर निर्भर रहता है। इसलिए उचित यह है कि हम अपने मानसिक स्तर को सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न करें। इसी सफलता के साथ जीवन की समस्त सफलताएँ सम्बन्धित हैं। हमें जड़ सींचनी चाहिए ताकि पत्ते हरे-भरे रह सकें और फल-फूलों का लाभ प्राप्त होता रहे।

आप भी ज्ञान का प्याला उठाकर पी जाइए

सन् १८९७ ई० की घटना है। तब घर-घर में चेचक का प्रकोप होता था। यह मान लिया जाता था कि बच्चे को चेचक निकलना तो अनिवार्य है। इसमें कुछ बच्चे स्वस्थ भी हो जाते, कुछ के शरीर पर चेचक गहरे दाग छोड़कर अपनी छाप डाल जाया करती और कुछ मर भी जाते। कई अपनी दृष्टि खो बैठते थे। इसका कोई उपचार नहीं था इसलिए लोग चेचक को किसी अदृश्य शक्ति का लीला प्रकोप मानते और छोटी शीतला बड़ी शीतला बिना अधिक नाराज हुए शान्ति से विदा हो जाए, इसके लिए तरह-तरह की मिन्नतें मनौतियाँ मनाते थे।

परन्तु सुरेन्द्र नगर (सौराष्ट्र) से छह मील दूर एक जैन परिवार के सोलह वर्षीय किशोर पर इन मिन्नत-मनौतियों का कोई असर नहीं हुआ और वह चेचक के कारण अन्धा हो गया। क्या बीती होगी उस पर जब उसने अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार देखा। उस युवक का नाम था सुखलाल, जिसने आगे चलकर भारतीय संस्कृति जैन धर्म के पुनरुत्थान में ऐतिहासिक योगदान दिया। सुखलालजी ने उस समय की मनःस्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है, ''चारों ओर ही नहीं दसों दिशाओं में मेरे लिए अन्धकार फैल गया। सभी शारीरिक स्वतन्त्रताएँ ठप्प हो गईं। जो दुनिया नेत्रों के कारण स्वतन्त्र गतिविधियों का धाम थी, वह अब परतन्त्र गतिविधियों का स्थान बन गई। जैसे स्वतन्त्र वन-विहार करते हाथी अथवा उड़ान भरते पशु-पक्षी को पिंजरे में डाल दिया जाए और वह अकुलाहट अनुभव करे वह हालत मेरी हो गई।'

एक और लेखक ने उनकी व्यथा का चित्रण इन शब्दों में किया है—''जैसे सोलह साल की लड़की विधवा हो जाए और कुटुम्ब पर बिजली गिर जाए, वैसी यातना कुटुम्ब पर आ पड़ी। विधवा होने पर लड़की के हृदय में जैसी भक-भक होली जलती है वैसी सुखलालजी के अन्तर में जल उठी। उन्हें लगता कि इससे तो अच्छा यह था कि मेरी मृत्यु हो जाती।''

सुखलालजी अपने परिवार के कुलदीपक थे। माता-पिता को उनसे आशा थी कि उनके बाद वही पैतृक व्यवसाय को सम्हालेंगे तथा कुल का नाम उज्ज्वल करेंगे परन्तु दुर्दैव ने जैसे आरम्भ से ही उनके साथ मजाक किया था। ८ दिसम्बर १८८० को जन्मे सुखलालजी की माँ उन्हें चार वर्ष की आयु में ही मातृहीन छोड़ गई। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। नई माँ घर में आ गयी। नई माँ ने सुखलालजी को अपने ही गर्भ से जन्म लिए पुत्र की तरह पाला पोसा परन्तु उसकी छात्र-छाया भी दस वर्ष से अधिक न रह सकी और वह भी उन्हें छोड़कर उस स्थान को चली गई, जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता।

पिता ने उनके लिए माँ के अभाव को स्वयं ही पूरा करने के लिए पूरी-पूरी सतर्कता बरती। कारोबार में व्यस्त रहने के बावजूद भी उनके पिता अपने इकलौते पुत्र पर इस तरह स्नेह उँड़ेलते कि चौदह वर्षीय सुखलाल को माँ का अभाव जरा भी नहीं खलता। उन्हें जब लीभली की पाठशाला में भर्ती कराया गया तो उन्होंने अपनी मेधा, प्रतिभा को परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा इस तरह निखारा कि उनकी गणना विद्यालय में अग्रिम पंक्ति के छात्रों में की जाने लगी।

पढ़ने-लिखने में मेधावी सिद्ध होने के अतिरिक्त वे अपने काम को करने से लेकर प्रत्येक वस्तु को सुव्यवस्थिति ढंग से रखना सीख गए। पाठ्य-पुस्तकों को वे इस प्रकार सम्हालकर रखते थे कि वे सदा नई जैसी ही लगतीं। पढ़ने में उन्हें जितना उत्साह आता उतना ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रस वे खेलकूद में भी लेते और अपना काम स्वयं करते। उनके जीवनी लेखकों की मान्यता है कि इन गुणों ने उनके व्यक्तित्व में ऐसी सुदृढ़ता उत्पन्न कर दी, जिसके कारण चेचक में अपनी आँखें खो देने के बाद भी वे एकदम से निराश और पराश्रित नहीं हुए। अनपेक्षित विपदाओं के कारण व्यक्ति का हक-बका जाना तो स्वाभाविक है। तत्काल कोई राह भी नहीं दिखती और बहुत-से व्यक्ति विपत्तियों के इसी आघात से इस तरह गिरते हैं कि कभी सम्हल नहीं पाते परन्तु सुखलालजी दो एक वर्ष से अधिक निराशा में डूबे नहीं रह सके।

लीभली गाँव में डेढ़-दो सौ झौंपड़ियाँ थीं जिसमें हजार ८०० से अधिक लोग नहीं रहते थे। ऐसे स्थान में अन्धों के लिए शिक्षण की कोई अच्छी व्यवस्था तो दूर की बात रही, सामान्य बालकों के लिए भी शिक्षा का कोई अच्छा प्रबन्ध नहीं था और सुखलालजी को नया कुछ सीखने की धुन सवार रहने लगी थी। जब शिक्षा का ही कोई प्रबन्ध नहीं था तो नेत्रहीन व्यक्ति के लिए शिक्षा की साध पूरी कर पाना कहाँ सहज होता। लेकिन जहाँ चाह वहाँ राह के अनुसार सुखलालजी ने अपने लिए राह खोज ही ली। लीभली में शिक्षा या अध्ययन की तो कोई व्यवस्था नहीं थी परन्तु स्थानकवासी जैन साधु साध्वी अक्सर वहाँ आया करते थे। सुखलालाजी उनके व्याख्यान सुनने जाया करते। जैन साधु-साध्वियों के व्याख्यान प्राय: कथा शैली में चलते हैं। इतिहास पुराण की घटनाओं को अपने ढंग से विश्लेषित करते हुए प्राय: जैन साधु उनके माध्यम से विभिन्न धर्म शिक्षाओं का प्रतिपादन करते।

सुखलालजी इन व्याख्यानों को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते और उन्होंने कई शास्त्रों के उदाहरण तथा कथानकों को याद कर लिया। किसी एक विषय पर शास्त्रों में आए विचारों के संग्रहीत पुंज को स्थानकवासी जैन परम्परा में थोकड़ कहते हैं। कई साधु-साध्वियों से ऐसे थोकड़े सुनकर उन्होंने कण्ठस्थ कर लिए। उन्होंने कई स्तवन, सझ्झय और छंद भी याद कर लिए।

इस अभ्यास ने सुखलालजी को एक दिशा प्रदान की। साधु-साध्वियों के व्याख्यान सुनकर शास्त्रवाणी को कण्ठस्थ करने के बाद उनके मन में यह आकांक्षा जगी कि जिन शास्त्रों में ये बातें हैं उन शास्त्रों को ही क्यों न याद किया जाय ? लाधाजी स्वामी, मुनि श्री दीपचन्द और मुनि श्री उत्तमचन्द के सामने जब उन्होंने यह आकांक्षा व्यक्त की तो इन साधुत्रयी ने उन्हें बड़ा सहयोग दिया। उन्होंने दशवें कालिक, उत्तराध्ययन और सूत्र कृजांग के प्रथम स्कन्ध पूरे के पूरे कण्ठस्थ कर लिए।

जैन शास्त्रों के बाद उनकी अभिरुचि संस्कृत ग्रन्थों में हुई। उन्होंने रघुवंश भी कण्ठस्थ कर लिया। एक वृद्ध साधु से उन्होंने थोड़ा संस्कृत व्याकरण सीखा। दूसरे साधु ने वह व्याकरण उन्हें पढ़ा दिया। इसके बाद उन्हें प्रतीत हुआ कि संस्कृत भाषा में पुरातन ज्ञान का अमूल्य भण्डार छिपा पड़ा है। उन्हीं दिनों जैन मुनि विजय धर्म ने काशी में श्री यशोविजय जैन पाठशाला आरम्भ की थी। उन्होंने पत्र-व्यवहार करके मुनि श्री को अपनी सारी स्थिति और आकांक्षाओं से अवगत कराया तथा सन् १९०४ में काशी पहुँच भी गए। यहाँ उनके जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ। काशी में उन्होंने आचार्य हेमचन्द्र रचित 'शब्दानुशासन' सीखा। इस ग्रन्थ में १८००० श्लोक हैं। इतना बड़ा व्याकरण ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिया।

इसके बाद उन्होंने पाठशाला छोड़ दी क्योंकि उन्हें व्यापक अध्ययन की आकांक्षा थी, जबकि इस पाठशाला में जैनेत्तर ग्रन्थों के स्वाध्याय पर प्रतिबन्ध था। पाठशाला छोड़ देने के बाद उन्होंने स्वतन्त्र रूप से पण्डितों के पास जाकर व्याकरण पढ़ना आरम्भ कर दिया। जैन होने के कारण उन्हें दूसरे पण्डित पढ़ाने से इन्कार करते थे। परन्तु सुखलालजी की निष्ठा, उत्कृष्टतम ज्ञान और जिज्ञासा से प्रभावित होकर कुछ पण्डित उन्हें पढ़ाने के लिए तैयार हो गए। उन्हें अपने गुरुओं के पास पढ़ने के लिए चार-पाँच मील पैदल जाना पड़ता था। आँखों से न दिखाई देने के बावजूद भी वे जैसे-तैसे इतनी लम्बी यात्रा पूरी करते। आँखों से न दिखाई देने के कारण उन्हें मार्ग में कठिनाई भी होती, कभी ठोकर लग जाती, कभी गिर पड़ते। एक बार तो वे गंगा में ही गिर गए और बहने लगे, उन्हें गिरते और बहते देखकर उनके एक मित्र ब्रजलाल ने निकाला।

इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करते हुए उन्होंने छहों दर्शन, प्राकृत व्याकरण और प्राकृत भाषा का भी अच्छा अभ्यास कर लिया। इसके अतिरिक्त वे सनातन धर्म, आर्य समाज, ईसाई धर्म और थियोसॉफी का भी अध्ययन करने लगे। यद्यपि उन्होंने इतना गहन अध्ययन मात्र अपनी ज्ञानवृद्धि और उस ज्ञान द्वारा समाज की सेवा के लिए ही किया था परन्तु उन्होंने निश्चय किया कि जब अध्ययन किया है तो परीक्षा भी दे दी जाय। उन्होंने क्वींन्स कॉलेज में चार वर्षों की परीक्षा एक ही वर्ष में दे दी। कॉलेज के प्रिंसीपल मि० वेनिट संस्कृत के असाधारण ज्ञाता थे। उन्होंने सुखलालजी को लिपिक की विशेष सुविधा उपलब्ध करा दी। इसके बाद इनकी मौखिक परीक्षा हुई। परीक्षा में सुखलालजी सर्वप्रथम आए।

१९१० में सुखलालजी बनारस से पालीत्राणा (गुजरात) चले गए। वहाँ मुनि श्री कपूरी विनय से उनकी भेंट हुई और मुनि श्री ने उन्हें परामर्श दिया कि वह पढ़ाएँ और विद्वान तैयार करें तथा सम्भव हो तो लिखवाएँ भी। सुखलालजी ने इन दोनों कामों को अपने हाथ में लिया। पढ़ाने के साथ-साथ उन्होंने ग्रन्थ लेखक का काम भी हाथ में लिया। वे स्वयं तो लिख नहीं सकते थे। इसलिए एक लिपिक की सेवा प्राप्त कर उन्होंने साहित्य सृजन का काम हाथ में लिया। सर्वप्रथम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्होंने 'कर्मग्रन्थ का अनुवाद, विवेचन और व्याख्या आरम्भ की। जब यह ग्रन्थ छपा तो उसकी विषय-सामग्री इतनी गम्भीर प्रांजल और परिष्कृत मानी गई कि यह ग्रन्थ देखते ही देखते विद्वान समाज में प्रतिष्ठा पा गया। जिन लोगों को उनके बारे में विशेष कुछ मालूम नहीं था वे तो यह जानकर हैरान रह गए कि यह ग्रन्थ एक नेत्रहीन व्यक्ति द्वारा लिखा गया है।

'कर्मग्रन्थ' के बाद उन्होंने 'सन्मति तर्क' जैसे दार्शनिक ग्रन्थ का सम्पादन प्रारम्भ किया। इसी दौरान उन्हें गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद) ने भारतीय दर्शन का प्राध्यापक बनने के लिए आमन्त्रित किया। यहाँ उन्होंने अध्यापन सेवा के साथ-साथ अध्ययन साधना भी जारी रखी। उन्होंने वहीं धर्मानन्द कौसाम्बी से पाली सीखी और बौद्ध धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया, साथ ही सन्मति तर्क का सम्पादन भी करते रहे।

सन् १९३०-३१ में उन्होंने अँग्रेजी सीखी। इस समय उनकी आयु पचास से ऊपर पहुँच चुकी और नेत्रों से तो असमर्थ थे ही फिर भी उन्हें किसी प्रकार की निराशा या निरुत्साह नहीं हुआ। उसके लिए वे शान्ति-निकेतन भी रहे। सन् १९३३ में वे बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी में जैन धर्म के प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ लगभग १० वर्षों तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया और विभिन्न विषयों के विद्वानों से सम्पर्क साधकर अपनी ज्ञान सम्पदा में अभिवृद्धि की। इस पद पर काम करते हुए उन्होंने कई भारतीय दर्शन ग्रन्थों का सम्पादन किया। इसके बाद १९४४ में भारतीय विद्या भवन में मानद अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए, परन्तु बम्बई का महानगरीय वातावरण उन्हें रास नहीं आया इसलिए तीन वर्ष बाद ही वे अहमदाबाद में आ गए और अन्त तक यहीं रहे। अहमदाबाद में भी उन्हें गुजरात विद्या सभा ने मानद अध्यापक नियुक्त किया। २ मार्च १९७८ को उनका देहान्त हो गया। नेत्रहीन होते हुए भी उनमें ज्ञान और विद्या के प्रति जो उत्कट लगन थी, उसने अन्धत्व को भी अपनी साधना में अवरोध नहीं लाने दिया। यही नहीं संस्कृति और साहित्य की सेवा में जो उन्होंने योगदान प्रस्तुत किया वह भी अपने आप में अद्वितीय और अनूठा है। सच्चे ज्ञान आराधक को चाहिए कि वह भी इसी तरह ज्ञानार्जन करे और देश, समाज एवं संस्कृति के काम आए।

शिक्षा और विद्या की अभ्यर्थना हमारे हर परिवार में चल पड़े

इस तथ्य को हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि परिस्थिति की जन्मादात्री मनःस्थिति है। दैवी प्रकोप, प्रकृति विग्रह इसके अपवाद हैं। जो कभी-कभी ही देखने को मिलते हैं। आमतौर से आकांक्षाएँ विचारणाओं को प्रेरित करती हैं। विचारों से कर्म बनते हैं और कर्म की प्रतिक्रिया भली-बुरी परिस्थिति बनकर सामने आती हैं। सृष्टि क्रम यही है। मानव जीवन—का समाज प्रवाह का—विधि विधान यही है। तथ्यों को समझते हुए प्रतिकूलताओं को सुधारने के प्रत्यक्ष प्रयत्न तो होने ही चाहिए, सामयिक सन्तुलन बिठाने वाले कदम तो उठने ही चाहिए किन्तु यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि मनःक्षेत्र यदि मूढ़ता और दुष्टता से भरा रहा तो प्रगति एक शान्ति की अभिलाषा, मृगतृष्णा मात्र ही बनी रहेगी।

सुधार प्रयासों में जनमानस का स्तर उठाया जाना आवश्यक है। उसमें घुसी अवांछनीयताओं का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इस दिशा में उपेक्षा बरती गई तो सुधार के लिए किए गए प्रयत्न बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियों के गर्त में गिर कर नष्ट होते रहेंगे। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रगतिशील पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा किए जाने वाले पराक्रम का निरर्थक चला जाना, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। वैज्ञानिक, बौद्धिक एवं आर्थिक प्रगति के अनेकों द्वार इन दिनों खुले हैं और उनमें सन्तोषजनक सफलता भी मिली है फिर भी हर क्षेत्र में दिन-दिन संकटों का घिरते जाना, इस बात का प्रमाण है कि चिन्तन और चरित्र की गिरावट समस्त उपलब्धियों को नष्ट-निरस्त करके रखे दे रही है।

दूसरे लोगों को प्रगति के प्रत्यक्ष प्रयत्नों में लगे रहने देना चाहिए। प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक को अपने हिस्से का उत्तरदायित्व यह मानना चाहिए कि उन्हें लोकमानस के परिशोधन-परिष्कार का काम विशेष रूप से अपने कन्धों पर उठाना है। दूसरे लोग उसका महत्त्व नहीं समझ पा रहे और प्रयत्न नहीं कर रहे तो किसी को कोसने की अपेक्षा यह अच्छा है कि उस अभाव की पूर्ति में हम जुट पड़ें और प्रयास का प्रतिफल प्रस्तुत करते हुए सर्वसाधारण को इस तथ्य से अवगत-सहमत करें कि सर्वतोमुखी प्रगति के अन्यान्य प्रयासों में विचार क्रान्ति को प्राथमिकता दी जाय, साथ ही दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन का प्रत्यक्ष प्रयास परिपूर्ण तत्परता-तन्मयता के साथ सम्पन्न किया जाय। प्रज्ञा परिजन इस युग धर्म को समझें और अपने हिस्से का काम श्रद्धा विश्वास के साथ सम्पन्न करने के लिए आगे आएँ।

इस दिशा में दो उपाय अपनाने होंगे—दो कदम उठाने होंगे। एक लोकव्यवहार की अधिक जानकारी देने वाली शिक्षा का सम्वर्द्धन। दूसरा चिन्तन और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करने वाली विद्या का पुनरुत्थान। यह दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिए।

शिक्षा के लिए निरक्षरों को साक्षर बनाया जाना और साक्षरों को अधिक ज्ञानवान बनाया जाना आवश्यक है। विद्या के लिए स्वाध्याय-सत्संग जैसे प्राणवान माध्यम खड़े करने होंगे और व्यक्तिगत रूप से जन-जन को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने के लिए मनन-चिन्तन की आदत डालनी होगी।

अपने देश में इन दिनों ७० प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं। साक्षरों शिक्षितों की संयुक्त संख्या ३० प्रतिशत है। सर्वविदित है कि शिक्षा के अभाव में मनुष्य विज्ञ बहुज्ञ नहीं बन सकता। इसके बिना कूपमण्डूक बना मनुष्य उतना ही सोच सकेगा जितना कि सीमित घिराव में रहते हुए सम्भव है। सर्वतोमुखी विचार क्रान्ति से लेकर भौतिक प्रगति की सामयिक जानकारी प्राप्त करने तक में शिक्षा का विस्तार नितान्त आवश्यक है।

अगले दिनों प्रज्ञा अभियान के पैर मजबूत होते ही साक्षरता-सम्वर्द्धन की जिम्मेदारी भी अपने ही कन्धों पर आने वाली है। शिक्षितों को विद्या ऋण चुकाने के लिए अनुरोध ही नहीं आग्रह भी किया जाना है। अध्यापकों की आवश्यकता उसी उदार समय-दान से सम्भव होगी। अशिक्षित नर-नारियों के गले यह बात उतारी जाएगी कि बालकों की ही नहीं वयस्कों, अधेड़ों और वृद्धों को भी बिना नर-नारी का अन्तर किए शिक्षा-सम्पदा उपार्जित करना आवश्यक है। प्रौढ़-पाठशालाओं की हर गली-मुहल्ले में स्थापना करने की बात प्रज्ञा अभियान की प्रमुख योजनाओं में से एक है। साधनों और सहायकों की सामर्थ्य के साथ तालमेल बिठाते हुए उसे व्यापक बनाने का क्रम यों चल तो इन दिनों भी रहा है, उसमें जिस तीव्रता की कमी है, उसकी पूर्ति में भी अधिक विलम्ब लगने वाला नहीं है। सरकार के साधन सीमित हैं। उसके लिए बालकों की शिक्षा व्यवस्था ही भारी पड़ रही है। प्रौढ़ अशिक्षितों को साक्षर बनाने की बात तो जन आन्दोलन के सहारे ही बन सकना सम्भव है।

शिक्षा विस्तार का दूसरा उपाय यह है कि साक्षरों को अधिक शिक्षित बनाया जाय। सामान्य जीवन में सुव्यवस्था और प्रगतिशीलता ला सकने वाले ज्ञान का सम्पादन करना, हर किसी को व्यसन की तरह जन स्वभाव का अंग बना दिया जाय। विदेशों में लोग आजीविका उपार्जन के उपरान्त मिलने वाले अवकाश में से एक-दो घण्टे का समय उपयोगी ज्ञान को बढ़ाने के लिए, इसी प्रयोजनों के लिए बने रात्रि विद्यालयों में नाम लिखाते और पढ़ने जाते हैं। आजीविका उपार्जन और ज्ञान सम्वर्द्धन की दुहरी प्रक्रिया किसी के लिए भी कठिन नहीं पड़ती। दुहरा लाभ उठाना हर किसी को रुचिकर होता है। यह प्रचलन अपने यहाँ भी होना है। व्यस्त शिक्षितों को अधिक ज्ञानवान बनाने के लिए रात्रि विद्यालयों की व्यापक व्यवस्था बनानी पड़ेगी। विदेशों में अनेकों विद्यालय शनिवार, रविवार की साप्ताहिक छुट्टी को दो दिन चलते हैं। अपने यहाँ एक दिन के साप्ताहिक अवकाश का उपयोग भी विभिन्न विषयों के विद्यालयों के लिए हो सकता है। साक्षरता एवं ज्ञान सम्वर्द्धन के दोनों प्रयास साथ-साथ चलाने से अपने देश की बौद्धिक सम्पदा बढ़ेगी। इतना बन पड़े तो सम्पन्नता, समर्थता एवं प्रगतिशीलता की भी कमी न रहेगी।

यह व्यापक क्षेत्र में अपनाई जाने वाली ज्ञान सम्वर्द्धन योजना की चर्चा हुई। प्रज्ञा परिजनों को अपने निजी कार्यक्षेत्र परिवार में—इसका कार्यान्वयन तत्काल आरम्भ कर देना चाहिए। घर में जो अशिक्षित हों उन्हें पढ़ने के लाभ बताने से लेकर, संकोच-असमंजस दूर करने के लिए शान्त चित्त से, धीमी गति से प्रयत्न करना चाहिए। एक बारंगी दबाव डालने से तो आवेश में इन्कार भी कर सकते हैं और उस इन्कारी को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर न करने के लिए अड़ भी सकते हैं। ऐसा विग्रह मनोमालिन्य खड़ा न हो इसलिए इन प्रयत्नों को धीमी-गति से ही चलने देना चाहिए। आवश्यक नहीं कि सभी सहमत हों, जो बात मान लें उन्हीं को लेकर कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। कहा जा चुका है इसके लिए अध्यापकों की आवश्यकता विद्या ऋण चुकने की अनुदान याचना से ही जुटेगी—पैसा देकर नहीं। अपने घर में भी ऐसा ही चले। शिक्षित-अशिक्षितों को पढ़ाएँ। दोनों की सुविधा के समय का तालमेल बैठ जाना कुछ कठिन नहीं है। एक-एक करके घर के सभी अशिक्षित ज्ञानयज्ञ की इस शिक्षा साधना में भागीदार बनते जायें, यह प्रयास बिना थके, बिना खीजे, बिना निराश हुए जारी रखा ही जाना चाहिए, भले ही उसकी गति मन्द ही क्यों न हो ?

यही बात साक्षरों को अधिक शिक्षित बनने—अधिक ज्ञानवान बनने की इच्छा जगाने के सम्बन्ध भी लागू होती है। ऐसी पाठशालाएँ गली-मुहल्लों में चल सकती हैं। पर वैसा न बन पड़े तो भी अधिक ज्ञानवान, कम ज्ञानवानों को पढ़ाने का प्रचलन आरम्भ करें। निजी प्रयत्न से भी यह चलता रह सकता है। स्कूली परीक्षा देने की बात दूसरी है उसके लिए ट्यूटर चाहिए। घर ज्ञानसम्पदा के लिए अध्यापन जारी रखने के लिए स्वाध्याय में रुचि जगा देने भर से बात बन जाती है। किसी विषय का साहित्य लगातार पढ़ते रहने पर अभीष्ट ज्ञान को बिना किसी दूसरे की सहायता के प्रचुर परिमाण में एकत्रित किया जा सकता है। स्कूली परीक्षाओं में भी कितने ही छात्र बिना स्कूलों में भर्ती हुए भी घर पर बिना किसी सहायता के पढ़ते हैं। कुंजियों के सहारे काम चलाते और अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते रहते हैं। अपने घर में भी ऐसी ही अभिरुचि जगानी चाहिए। उसे जगाने में अपनी नम्र, मधुर धीमी भूमिका होनी चाहिए कि एक-एक करके सभी उस नवनिर्धारण को अपनाने में रुचि लेने लगें। तत्पर दीखने लगें।

इसके लिए पुस्तकालयों की नितान्त आवश्यकता है। हर व्यक्ति खरीदकर कहाँ तक पढ़े। अपने देश में तो दरिद्रता और अरुचि का दुहरा दबाव होने से उपयोगी पुस्तकें नियमित रूप से मिल सकें, ऐसी व्यवस्था कठिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। ऐसी दशा में पुस्तकालय हो, ज्ञान सम्पदा की सहकारी समिति, उदार बैंक एवं समर्थ ही अध्ययन की भूमिका निभा सकते हैं। अगले दिनों पुस्तकालय प्रयास को देव मन्दिरों से भी अधिक सम्पादन मिलने वाला है। पर निजी क्षेत्र में इतना तो अभी भी हो सकता है कि बजट में परिवार की बौद्धिक भूख बुझाने के लिए घरेलू पुस्तकालय पढ़ते रहने की भी एक मद रहे। अन्न, वस्त्र की तरह ही यदि बौद्धिक आवश्यकता पूरी करने वाले सत्साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण मान लिया जाय तो फिर उसके लिए कुछ राशि नियमित रूप से निकालते रहने में कठिनाई नहीं रह जाएगी। दस पैसा ज्ञान घटों में डालने की न्यूनतम शर्त प्रायः सभी प्रज्ञा परिजन निभाते हैं। इसे बढ़ाकर पच्चीस पैसा—एक रुपया या महीने में एक दिन की आमदनी जितना बना लिया जाय तो उतने से एक अच्छा घरेलू पुस्तकालय बन सकता है। उसमें नया साहित्य नियमित रूप से बढ़ता रह सकता है। इससे न केवल घर के वरन् मित्र-पड़ौसी भी लाभ उठाते रह सकते हैं।

आत्मिक प्रगति के चार सूत्रों में (१) साधना, (२) स्वाध्याय, (३) संयम, (४) सेवा के चार चरण निर्धारित हैं। साधना के बाद दूसरा नम्बर स्वाध्याय का है। स्वाध्याय कथा पुराणों का नहीं, वरन् युग मनीषियों के उस प्रतिपादन का जो व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत सामयिक समस्याओं को आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत करते हैं। ऐसा साहित्य छपता तो कम है, पर ढूँढ़ने पर जहाँ-तहाँ से उसे चुना-बीना जा सकता है। स्वाध्याय के प्रति प्रत्येक प्रज्ञा परिजन को अपने परिवार में रुचि जगानी चाहिए। जो पढ़ नहीं सकते उन्हें प्रज्ञा साहित्य सुनाने की व्यवस्था बनानी चाहिए। कथा श्रवण-वाचन का शास्त्रों में बहुत पुण्यफल बताया गया है। इस धर्मकृत्य का हमें अपने-अपने घरों में शुभारम्भ कर ही देना चाहिए। सुरुचिपूर्ण सत्साहित्य मनोयोगपूर्वक पढ़ने और उसका सार तत्त्व हृदयंगम करने व्यवहार में उतारने का प्रयत्न करने की घर में नित्य धर्म कथा होने की तरह ही पुण्य प्रचलन मानना चाहिए। इस सन्दर्भ में नव प्रकाशित प्रज्ञापुराण का उपयोग भी श्रद्धापूर्वक किया जा सकता है। पारिवारिक सत्संग यही है। इससे उस ब्रह्मविद्या की, महाप्रज्ञा की आराधना बन पड़ती है, जिसकी परिणति आत्मसन्तोष, जनसम्मान एवं दैवी अनुग्रह जैसी विभूतियाँ उपलब्ध कराने में होकर ही रहती है।

जन्म दिवसोत्सव, षोड्स संस्कार, पर्व त्यौहार सभी धर्म आयोजनों में वे प्रेरणा भरी पड़ी हैं, जिनके सहारे आत्मज्ञान, तथ्य ज्ञान एवं व्यवहार ज्ञान की त्रिविधि आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। इन अवसरों पर सामूहिक आयोजन की विधि-व्यवस्था स्थानीय प्रज्ञा-पुत्रों के कह देने पर बिना किसी कठिनाई के सम्पन्न हो जाती है। वैसा न बन पड़े तो इन शुभ अवसरों—पुण्य पर्वों पर स्वयं ही अपने परिवार को प्रगतिशील बनने के लिए समझाने को निजी सत्संग का प्रबन्ध समय-समय पर स्वयं ही करते रहा जा सकता है। धार्मिक वातावरण में उपलब्ध हुई उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ अपेक्षाकृत अधिक सरलतापूर्वक हृदयंगम होती हैं। व्यवहार में उतरने पर अपना उत्साहवर्द्धक चमत्कार भी दिखाती हैं। शिक्षा और विद्या की अभ्यर्थना उपरोक्त उपायों का अवलम्बन लेकर प्रज्ञा परिजनों को अपने-अपने परिवारों की परिधि में करनी और करानी ही चाहिए।

विद्या-बुद्धि को सम्मानित रहने दें, उसे वेश्यावृत्ति में न लगाएँ

विद्वानों, विभूतिवान व्यक्तियों में, सर्वप्रथम गणना उदात्त भावनाशीलों की है। जिनका दृष्टिकोण लेने की कामना से ऊँचा उठकर देने की आकांक्षा में विकसित हो गया है, जिन्हें स्वार्थ नहीं परमार्थ प्रिय है उन्हें मनुष्य कलेवर में विचरण करने वाले मूर्तिमान देवता ही कहना चाहिए धरती माता इन्हीं से गौरवान्वित होती है। भूले-भटकों को सही रास्ते पर चलाने के लिए इंगित करने वाले पथ प्रकाशित करने वाले मरने के बाद भी जीवित रहते हैं। स्वर्ग पाने के लिए उन्हें मरने के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वरन् उत्कृष्ट चिन्तन स्वयं ही स्वर्ग बना अन्तःकरण में क्रीड़ा-कल्लोल करता रहता है। निर्धन रहते हुए भी वे धनियों से अधिक सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं। नेकी की राह पर चलते हुए स्वल्प आजीविका में सन्तोष कर लेना उन्हें वन-उपवनों में योग तप करने वालों की अपेक्षा अधिक प्रकाश देता है।

ईश्वर को समर्पित किया हुआ जीवन जब ईश्वरीय प्रेरणाओं और मर्यादाओं के अनुरूप चलता है तो समझना चाहिए ईश्वर का तादात्म्य हो गया, भक्ति का समग्र तत्त्व समझने वाले से भगवान दूर कहाँ रहता है ? वासना और तृष्णा की कीचड़ से जिन्होंने अपना उद्धार कर लिया और आदर्शों के लिए जीवित रहने का जिन्होंने व्रत धारण कर लिया, उन्हें जीवन मुक्त ही कहना चाहिए, उनके चिन्तन का प्रत्येक क्षण और श्रम का प्रत्येक कण, अपनी उत्कृष्टता की रक्षा करने एवं प्रत्येक क्रिया पीछे आने वालों का पथ प्रशस्त करने में लगी रहती है, समझना चाहिए कि इस स्तर के व्यक्ति ने अपना जीवन कृत-कृत्य और मनुष्यता को गौरवान्वित कर दिया। त्यागी और बलिदानी परमार्थी और लोकसेवी साधु और ब्राह्मण-सुधारक और शहीद इसी स्तर के होते हैं। मनुष्य जाति के भाग्य को, संसार के प्रवाह को ऐसे ही लोग पलटते हैं। उन्हें दैवी विभूति सम्पन्न देवदूत कहा जाय तो उचित ही होगा।

इसके बाद विद्वानों का नम्बर आता है। विद्या तपस्वी को प्राप्त होती है, जो शौक-मौज, आलस्य-प्रमाद को जीत सकता है। भौतिक आकर्षणों से निरत होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसकी रुचि अध्ययन में केन्द्रित हो गई, उसी के लिए विद्वान बन सकना सम्भव है। यह प्रत्यक्ष तपश्चर्या है। ज्ञानयोग की साधना को महत्त्वपूर्ण योगाभ्यासों में ही गिना गया है। विद्या प्राप्ति के लिए किया गया श्रम सदा से तप-साधना की श्रेणी में ही सम्मिलित रखा जाता रहा है। सुशिक्षित का मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक विकसित होता है। शरीर की दृष्टि से बलवान पहलवान व्यक्ति अपने श्रम और आतंक से अनेकों उपलब्धियाँ प्राप्त करते रहे। उनके प्रभाव को सहज ही स्वीकार करना पड़ता है। दुर्बल उनकी सहायता की आशा-अपेक्षा करते हैं और दुष्ट दुराचारी उनसे झेंपते हैं। उन्हें विदित रहता है कि बलवान को रुष्ट करना अपनी दुर्गति कराना है।

ठीक इसी प्रकार मानसिक बौद्धिक बलिष्ठता का भी महत्त्व है। बलवान की तरह विद्वान की भी शक्ति है। उसके आधार पर वह धन, सम्मान पाता है और इच्छित प्रयोजन में सहज सफलता प्राप्त करता है। विद्या, बल ही नहीं धन भी है। यह पूँजी है जिसका ब्याज खाते हुए जिन्दगी गुजर जाती है और मूल धन जहाँ का तहाँ बना रहता है। ज्ञान की गरिमा को एक स्वर से स्वीकार करना पड़ता है। धर्म, दर्शन और आध्यात्म का जो ढाँचा खड़ा है वह मानवीय बुद्धि का उपयोगी उपार्जन ही तो है। विज्ञान की उन्नति को मानवी बुद्धि का चमत्कार ही कहा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के कला-कौशल, सृजन, निर्माण, विकास, उत्कर्ष के प्रयास, उद्योग, व्यवसाय, शिल्पी और महत्त्वकर्मी यह सब विद्या के ही अनुदान हैं। सघन अन्धकार में उपयुक्त पथ ढूँढ़ निकालना विद्या के प्रकाश से ही सम्भव होता है।

प्रश्न फिर वही सदुपयोग का आ गया है। वस्तु कितनी ही बहुमूल्य क्यों न हो उसका महत्त्व इस बात पर निर्भर है कि उसे किस कार्य में, किस-प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया गया ? बलवान का शारीरिक बल यदि अनीति, आतंक गुण्डागर्दी, चोरी, डकैती, अपराध, अनाचार में लग जाय तो समझना चाहिए कि वह क्षीण काय व्यक्ति की अपेक्षा अनेक गुना विग्रह उत्पन्न करेगा। इसी प्रकार यदि विद्वान व्यक्ति अपनी बुद्धि को वेश्या की तरह व्यभिचारिणी बना दे और जिस भाँति भी पैसा मिले उसमें प्रयुक्त करने लगे तो समझना चाहिए वह व्यक्ति किसी अशिक्षित की तुलना में असंख्य गुना विघातक सिद्ध होने जा रहा है।

किसी का धन अपहरण करके या शारीरिक पीड़ा पहुँचाकर जितनी हानि पहुँचाई जा सकती है, उससे असंख्य गुनी हानि कुमार्ग पर चला देने, अँधेरे में भटका देने से होती है। शारीरिक चोट कुछ दिन में ठीक हो जाती है और धन भी पीछे कमाया जा सकता है, पर रास्ते से भटक जाने पर तो जीवन ही बर्बाद हो जाता है। उसे आजीवन ही नहीं मरणोपरान्त भी दुसह दुःख सहना पड़ता है। इसलिए ज्ञान के अनुदान का पुण्य जितना बड़ा है, उसके दुरुपयोग का दुष्परिणाम उतना ही असह्य और दुष्कर है। एक श्रुति है, जिसमें संसार ईश्वर से प्रार्थना करता है कि—'हमें देवताओं के पापों से बचाइए।' असुरों के अपराध अस्त्र-शस्त्रों से रोके जाते हैं, मनुष्यों के बौद्धिक पापों का प्रतिरोध नीति धर्म की संगठित समाज शक्ति करती है, पर देवताओं के पाप ऐसे प्रच्छन्न होते हैं कि वे दीखते तो पुण्य जैसे हैं पर उनके भीतर मन्द, मोहक और मारक विष जैसी सर्वनाशी क्षमता भरी रहती है। पिछले दिनों इस विद्या शक्ति का दुरुपयोग बढ़-चढ़कर हुआ है, उसी का परिणाम हमें मुद्दतों तक सर्वतोमुखी दुर्गति के रूप में भुगतना पड़ा है।

हमें सिखाया गया है कि सब कुछ ईश्वर की इच्छा से होता है। इस सीख ने मनुष्य की पुरुषार्थ परायणता और अनाचार से जूझने की प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया। इस प्रतिपादन ने अत्याचारियों के हौंसले बढ़ा दिए क्योंकि ईश्वरेच्छावादी अकर्मण्यता ने जनता के शौर्य-साहस, कर्म, पुरुषार्थ, प्रतिरोध, संघर्ष की जड़ ही काट दी। भाग्यवादी दर्शन ने हमें बौद्धिक पराधीनता की जंजीरों में जकड़ा और अपंग लुंज-पुंज बनाकर रख दिया।

उदात्त भावनाएँ लोकमंगल के प्रयोजन में लगतीं तो व्यक्ति और समाज की स्थिति खिले हुए फूल और फल से लदे हुए सम्पन्न बगीचे जैसी होती। पर दार्शनिक भूल भुलैयों ने संस्कृति के मूल आदर्शों को ही उलट दिया। भरी जवानी में बच्चों को छोड़कर गृहत्यागी बन जाना, भिक्षा का अन्न खाना, अकर्मण्य होकर कहीं एकान्त में दिन काटना, भविष्य के निजी सुख-सुविधाओं के लिए स्वर्ग मुक्ति के कल्पना लोक में विचरण करना। पापों के फल का नाश छुट-पुट कर्मकाण्डों से हो जाना। पूजा-पत्री को जीवन लक्ष्य बनाना। कर्मनिष्ठा को हीन और भक्ति आडम्बरों को सब कुछ बना देने वाली शिक्षा से व्यक्ति का मानसिक और नैतिक स्तर आकाश से उठा कर पाताल में पटक दिया गया।

स्नान दर्शन जैसे सुगम कार्यों से पाप नष्ट होने की मान्यता ने पाप कर्मों के प्रति भय कम कर दिया। सरकार की पकड़ से बचने के हथकण्डे तो पहले ही बहुत थे, ईश्वर के दरबार में वैसे ही हथकण्डों को मान्यता मिल गई तो पाप की राह में से दार्शनिक अड़चन हट गई और भर पेट मनमानी करते रहने का रास्ता साफ हो गया। ईश्वर की खुशामद छुट-पुट क्रिया साधन से काम चल गया तो तप, त्याग का जीवन कौन जिए ? लोक मंगल के लिए नित नये अनुदान कौन प्रस्तुत करे ?

इस दार्शनिक भ्रम-जंजाल ने हमें इतनी अधिक हानि पहुँचाई है, जिसकी तुलना में विदेशी आक्रमण में हुई धन जन की हानि नगण्य है। टूटा हुआ सोमनाथ का मंदिर, कृष्ण जन्म का स्थान पहले से भी अच्छे रूप में बन कर खड़े हो गए, पर दार्शनिक भ्रष्टता में भ्रमग्रस्त उदात्त वर्ग लोक संरक्षण के अपने कर्तव्य से विमुख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होकर स्वार्थी, अकर्मण्य और जनता के लिए भारभूत बना पड़ा है। इस क्षति की पूर्ति कठिन है। आज भी लोक-निर्माण के लिए एक-एक व्यक्ति के बिना प्रगति की गाड़ी रुकी खड़ी है। दूसरी ओर जिनमें सचमुच त्याग और परमार्थ वृत्ति मौजूद है वह भ्रम जंजाल में जकड़ जाने के कारण काल्पनिक उड़ानों में उड़ते हुए अपना समय और जनता का धन नष्ट कर रहे हैं। जिन्होंने इतनी भाव शक्ति को नाले में बहा दिया उन्हें इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। उन देवताओं के पापों से मनुष्य जाति को अभी और भी न जाने कितने दिन तक त्रास, अवरोध और पतन के गर्त में गिरा रहना पड़ेगा।

ज्ञान निस्सन्देह पारस की तुलना में और भी महान है । पारस लोहे को सोना भर बनाता है पर ज्ञान के स्पर्श से मनुष्य महानतम बन जाता है। पर यह होता तभी है जब उसके सदुपयोग की व्यवस्था बनी रहे।

यह बुद्धि तत्त्व सर्वसाधारण को कामचलाऊ मात्रा में ही मिला है। वे इस स्वल्प मात्रा में हित-अनहित थोड़ा ही कर सकते हैं, पर जिन्हें यह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वे चाहें तो उससे अपना एवं दूसरों का हित-अनहित भी बड़ी मात्रा में कर सकते हैं। अस्तु जिन्हें अतिरिक्त रूप से विद्या प्राप्त है, वे उसके सदुपयोग की जिम्मेदारी भी वहन करें।

विद्या एवं बुद्धि जिन्हें प्रचुर मात्रा में मिली है, वे वकील यदि चाहें तो अपनी चतुरता से क्रूर डाकू को कानूनी पकड़ से छुड़ा सकते हैं और उसे आगे फिर वैसे ही दुष्कर्म अधिक साहस और उत्साह के साथ करने की सुविधा देकर असंख्य जनता पर निर्दयता ढाने के निमित्त बन सकते हैं। यह एक चतुर वकील के लिए बाँए हाथ का खेल है कि अपनी अन्टी गरम करे और डाकुओं को प्रकारान्तर से सहायता पहुँचाए। दूसरा वकील जब यह प्रतीत हो जाय कि मुझे अन्याय का समर्थन करना पड़ेगा तो उस मुकदमे को छोड़ देता है। मामूली आपसी झगड़ा हो तो दोनों पक्षों को मिलाकर फैसला कराने का प्रयत्न करता है कि वे मुकदमे की लम्बी जंजीर में खिंचने से बच जाय। इससे उसे फीस का घाटा हो सकता है, पर अपने प्रभाव एवं विद्या बल से वह दूसरों को सच्ची राहत पहुँचाने में ही प्रयुक्त करने की बात सोचता है।

भारत पाकिस्तान के बँटवारे का कोई कारण या आधार नहीं था। चन्द लोगों का बुद्धि बल ही था, जिन्होंने तिल का ताड़ खड़ा करके भारत भूमि के खण्ड-खण्ड करा दिए और लाखों मनुष्यों को प्राण गँवाने, अपार सम्पदा नष्ट होने और कल तक के सगे भाइयों जैसे लोगों को जानी दुश्मन बना देने की भूमिका निबाही। उनकी विद्या बुद्धि का अभिशाप अभी न जाने कितने लोगों को किस-किस रूप में कितने दिन तक भुगतना पड़ेगा ?

सम्प्रदायों का जाल विद्वानों का ही रचा हुआ है। प्राचीन काल में भारत में एक वेद धर्म था, एक हिन्दू जाति। एक उपास्य गायत्री, एक दर्शन, एक समाज। किन्तु तथाकथित विद्वानों के मस्तिष्क में कीड़े कुलबुलाए और वे सम्प्रदायों की पूँछ से सम्प्रदाय निकालते चले गए। उन्हें पन्थ संचालक का श्रेय तो मिला, पर जो अनैकता और बुद्धि भ्रम का भेदभाव फैला उसके कारण विभाजित हिन्दू जाति दिन-दिन दुर्बल होती गई और उसे उस दुर्बलता से जुड़े हुए अगणित कष्ट सहने पड़े।

रूढ़ियाँ और कुरीतियाँ सनातन नहीं हैं, उनका आरम्भ और प्रचलन यकायक नहीं हो गया। उन्हें प्रचलित और विस्तृत करने में अवश्य ही किन्हीं लोगों के दिमाग कार्य करते रहे होंगे, अन्यथा बे सिर-पैर की बातें इतने गहरे पाँव न जमा पातीं। बहुत जगह उनके समर्थन में धर्मग्रन्थों में मेल-मिलाप भी ठूँसे गए हैं। यदि वे विद्वान इस अवांछनीय ठूँस-ठाँस की अपेक्षा तात्कालिक विकृतियों के विरोध में कुछ नवीन लिखते तो कम से कम उनकी सदाशयता तो प्रकट होती, पर विकृतियों के अभिवर्द्धन के लिए किया गया छल-छिद्र तो और भी अधिक निन्दनीय कहा जायगा।

धर्म के नाम पर प्रचलित इतिहास पुराणों में देवी-देवताओं को, महामानवों को भ्रष्ट, चरित्र व दुर्बलताओं के साथ चित्रित किया गया है, जिससे किसी विवेकवान की श्रद्धा सहज ही डगमगाने लगती है। जहाँ धर्म-अध्यात्म दर्शन नीति और सदाचार का उच्चस्तरीय समावेश करने वाले तत्वदर्शी ऋषि ने हमारे लिए बहूमूल्य ज्ञानसम्पदा छोड़ी है, वहाँ इस प्रकार के बुद्धि भ्रम उत्पन्न करने वाले ब्रह्मराक्षसों की भी कमी नहीं रही। विद्या और बुद्धि का, रावण ने कहाँ सदुपयोग किया ? उसके पास जितना ज्ञान और बल था। यदि उसने उसका उपयोग लोकमंगल के लिए किया होता तो निश्चय ही राम से कम नहीं कुछ अधिक ही श्रद्धास्पद होता।

सामन्तवादी युग में यह विद्या पैसे से खरीदी जाती रही। उनकी विलासी दुष्प्रवृत्तियों के पोषण में कविता, साहित्य, गीत, नाटक आदि बड़ी मात्रा में सृजे जाते रहे। मन्दिरों में पाई जाने वाली मूर्तिकला तक में पशु प्रवृत्तियों की भरमार मौजूद है, वैसे ही चित्र-चित्रित किये जाते रहे। यह सब विद्या बुद्धि का दुरुपयोग है। हमारे क्रमिक अध:पतन में यही दुष्प्रवृत्तियाँ प्रधान रूप से कारण बनती चली आई हैं। आततायियों और आक्रमणकारियों ने भी क्षति पहुँचाई पर इस बौद्धिक क्षति ने तो समाज का मेरुदण्ड ही तोड़कर रख दिया।

आज जबकि घायल समाज को राहत देने वाले साहित्य की जरूरत थी, उद्बोधन आवश्यक थे, तब भी वह ढर्रा बदला नहीं है, वरन् स्वतन्त्रता मिलने के बाद विनाश की स्वतन्त्रता का भरपूर उपयोग किया जा रहा है धर्ममंच से जो प्रवचन किए जाते रहते हैं, उनमें गड़े मुर्दे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उखाड़ने के अतिरिक्त जीवन संचार और प्रगति के लिए उद्‌बोधन की दिशा दे सकने वाले तथ्य कहीं ढूँढ़े नहीं मिलते। 'सुनने मात्र से मुक्ति' का अज्ञान और गहरा होता चला जा रहा है। अन्य मंचों में भी उथली और सामयिक समस्याओं की ही उखाड़-पछाड़ रहती है। व्यक्ति और समाज के युग निर्माण के आधारभूत सिद्धान्तों की कहीं चर्चा तक सुनाई नहीं देती। विद्या से सजी वाणी द्वारा लोकमानस को जो उद्‌बोधन मिलना चाहिए था वह एक प्रकार से मौन ही हो गया है। साहित्य की दशा और भी दयनीय है। पशु-प्रवृत्तियों को भड़काने वाला साहित्य लिखा जा रहा है—छप रहा है, बिक रहा है। उसी की बाढ़ आई हुई है। लगता है इस बाढ़ में जो कुछ श्रेयस्कर कहीं जीवित रहा होगा वह भी बहकर मर खप जाएगा।

बहेलियों के पास शिकारी कुत्ते होते हैं। खरगोश, लोमड़ी, हिरन आदि जानवरों के पीछे वे उन्हें दौड़ाते हैं। कुत्ते कई मील दौड़कर भारी परिश्रम के उपरान्त शिकार दबोचे हुए मुँह में दबाए घसीट लाते हैं। बहेलिए उससे अपनी झोली भरते हैं और कुत्तों को एक टुकड़ा देकर सन्तुष्ट कर देते हैं। यही क्रम आज विद्या बुद्धि के क्षेत्र में चल रहा है। पुस्तक प्रकाशक बहेलिए तथा कथित साहित्यकारों से 'चटपटा' लिखाते रहते हैं। गन्दे, अश्लील, कामुक पशु-प्रवृत्तियाँ भड़काने वाले चोरी, डकैती, ठगी की कला सिखाने वाले उपन्यास यदि इकट्ठे किये जाएँ तो वे एवरेस्ट की चोटी जितने ऊँचे हो जाएँगे। दिशाविहीन पाठक उन्हीं विष-मिश्रित गोलियों को गले निगलता रहता है। चूहों को मारने की दवा आटे में मिलाकर गोलियाँ बनाकर बिखेर दी जाती हैं। उन्हें खाते ही चूहा तड़प-तड़प कर मर जाता है। यह साहित्य ठीक इसी प्रकार का है। इसे पढ़ने के बाद कोई अपरिपक्व बुद्धि पाठक वैसा ही अनुकरण करने के लिये विवश होता है। साहित्यकार बहेलियों के कुत्तों की भूमिका प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रकाशक और विक्रेता मालोमाल हो रहे हैं। कुछ टुकड़े खाकर यह साहित्यकार पाठकों का माँस इन आततायियों के पेट में पहुँचाने में अपनी विद्या बुद्धि, कला-कौशल का परिचय दे रहे हैं। विद्या माता को व्यभिचारिणी वेश्या के रूप में जिस तरह प्रस्तुत किया जा रहा है, उसे देखकर यही कहना पड़ता है—"हे भगवान इस संसार से विद्या का अस्तित्व मिटा दो, इससे तो हमारी निरक्षरता ही अच्छी है।"

इन दिनों प्रकाश की एक-एक किरण मूल्यवान है और उद्‌बोधन का एक एक शब्द अनमोल है। इस युग सन्ध्या में जहाँ कहीं विद्या—विद्या के रूप में जीवित हो तो उसकी चिन्तन दिशा इस ओर चलनी चाहिए कि पतन की दिशा उत्थान की ओर कैसे मोड़ी जाती है ? पशुता को मनुष्यता में, देवत्व में कैसे परिणित किया जा सकता है ? कम से कम विद्यावान को विद्या माता की गरिमा अक्षुण्य बनाए रखने की दृष्टि से इस मार्ग पर चलते हुए रुकना-झिझकना न चाहिए। साधारण ईमानदारी से जो कमाया जा सके, सन्तोषपूर्वक गुजर करके अपनी विद्या का एक बड़ा अंश मृत मानवता को जीवित करने के लिए समर्पित करना चाहिए। कवि केवल उद्‌बोधक कविता ही लिखें। साहित्यकार यदि कलम उठाए तो उस पक्ष में उठाए जिससे अनाचार को भस्मसात करने और जीवन संचार में सहायता मिले। ऐसा प्रेरक साहित्य और कविताएँ प्रान्तीय भाषाओं में अनुवादित करने एवं स्वतन्त्र रूप में लिखे जाने की जरूरत है, जो उस क्षेत्र में लोकप्रिय हो सके और जिनके माध्यम से जनजीवन में आशा की किरणें उद्वेलित हो सकें। विद्वानों के समर्थन का विषय केवल न्याय और विवेक होना चाहिए। आज ऐसे अभिनव सृजन का भण्डार भरना है, जो वर्तमान कूड़े-कचरे को हटाकर जाग्रत जनजीवन की बौद्धिक भूख बुझा सके, उसे दिशा और प्रकाश दे सके।

इसके लिए हमें स्वयं की विद्या-बुद्धि टटोलने से लेकर अन्य सुशिक्षितों का, विद्वानों का लेखकों, वक्ताओं, चिन्तकों का दरवाजा भी खटखटाना चाहिए। उनसे आग्रहपूर्वक अनुरोध किया जाय कि अपने ज्ञान की, वासना और तृष्णा की पूर्ति में न उलझाए रखकर युग परिवर्तन जैसी विश्व मानव की महती आवश्यकता को पूरी करने में भी नियोजित करें। यह कैसे किया जा सकता है ? इच्छुकों को इसके हजारों प्रकार अपने ही क्षेत्र में उपलब्ध हो सकते हैं।

परिवर्तन की पुकार और गुहार

एक भाषा-भाषी क्षेत्र का निवासी यदि दूसरी भाषा बोलने वाले क्षेत्र में बसने जाय, तो सर्वप्रथम उसे उस नये क्षेत्र की भाषा का अभ्यास करना पड़ेगा। वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज, विचार, संस्कृति आदि से परिचित होने की आवश्यकता पड़ेगी। यदि इसे सीखने-जानने में उपेक्षा बरती जाय, तो पग-पग पर गूँगे-बहरे-अजनबी की तरह परेशान होना पड़ेगा। ईसाई पादरी प्रायः योरोपीय देशों से आते हैं। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे एशिया-अफ्रीका आदि महाद्वीपों में जाकर बसते हैं और प्रमुख रूप से पिछड़े इलाकों को अपना कार्य क्षेत्र चुनते हैं। इससे पूर्व उन्हें वहाँ की भाषा, संस्कृति, समस्या आदि से परिचित होना पड़ता है, साथ ही यह भी जानना होता है कि उनके साथ किस प्रकार घुला-मिला जा सकता है ? यदि इस प्रक्रिया को न अपनाया जाय और किसी भी पादरी को वहाँ भेज दिया जाय, तो वह उस अपरिचित स्थिति में कोई सफलता अर्जित न कर सकेगा।

इक्कीसवीं सदी एक प्रकार से ऐसी परिस्थितियों वाली अवधि या परिधि है, जिसमें प्रवेश करने वालों को पुरानी आदतें भुलानी और नये सिरे से नई जानकारियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जित करके व्यवहार में उतारनी पड़ेंगी। इसके बिना गाड़ी एक भी कदम आगे न चल सकेगी।

युग परिवर्तन में मनुष्यों की आकृति तो अब जैसी ही रहेगी, पर उनकी प्रकृति बदल जाएगी। प्रकृति से यहाँ तात्पर्य मान्यता, भावना, विचारणा, इच्छा और गतिविधियों का समुच्चय है। यों प्रकृति शब्द संसार को गतिशील रखने वाले प्रवाह को भी कहते हैं, पर यहाँ तात्पर्य मात्र गुण, कर्म, स्वभाव से है। परिवर्तन इन्हीं में होना है। उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना वाली भवितव्यता पूरी तरह इसी केन्द्र बिन्दु पर निर्भर है। इसलिए भावी परिवर्तन की चर्चा करने वाले प्राय: यही कहते हैं कि अगले दिनों सर्वसाधारण की न सही, विचारवानों की प्रकृति तो लगभग इतनी बदल जाएगी, जिसे आमूल-चूल हेर-फेर के रूप में देखा जा सके।

इन दिनों प्रस्तुत असंख्य विपत्तियों का सबसे बड़ा निमित्त कारण एक ही है कि मनुष्य अदूरदर्शिता की व्याधि से ग्रस्त है। उसे लगता है कि तात्कालिक रसास्वादन को ही सब कुछ मान लिया जाय। जो कुछ सोचा या किया जाय, उसे अपने आपे तक ही सीमित रखा जाय। बहुत हुआ तो उन्हें भी कुछ सहारा दे दिया जाय, जिनसे लाभ मिलता है या मिलने वाला है। इसके अतिरिक्त जो भी प्राणी या पदार्थ संसार में शेष रहते हैं, उनका दोहन किया जाय। वैसा न बन पड़े, तो उपेक्षित छोड़ दिया जाय। अन्यान्यों के प्रति भी अपना कुछ कर्तव्य या उत्तरदायित्व है, इसे समझने या क्रियान्वित करने की अभिरुचि एक प्रकार से समाप्त जैसी ही हो गई है। योजनाएँ बनाने और प्रयास करने के लिए एक मात्र स्वार्थपरता ही शेष रहती है। परमार्थ तो मात्र मनोविनोद जैसी चर्चा का विषय रह जाता है। बहुत हुआ तो आत्म-विज्ञापन के लिए उदारचेता होने का ढिंढोरा पिटवा कर अपनी मलीनता पर तनिक-सी पॉलिश पोत ली।

आज की मान्यता यही है। इसी आधार पर सोचा विचारा जाता है और जो कुछ करना होता है, उसका ताना-बाना बुना जाता है। फलत: वही बन पड़ता है, जिसे मानवी गरिमा के सर्वथा प्रतिकूल कहा जा सके। आत्म-केन्द्रित स्वार्थ परायण व्यक्ति, क्रमश: इतना निष्ठुर और कृपण हो जाता है कि अपनी उपलब्धियों में से राई-रत्ती भी सत्प्रयोजनों के लिए लगाने का मन नहीं करता। निष्ठुरता इतनी बढ़ जाती है कि दूसरों की पीड़ा एवं पतनोन्मुख स्थिति में सहारा देने के लिए राई-रत्ती उत्साह भी नहीं उभरता। लोक-लाज की विवशता से यदाकदा कभी ऐसा कुछ करना पड़े, तो उसके बदले भी सस्ती वाहवाही को अपेक्षाकृत कहीं अधिक मात्रा में लूट लेने का उद्देश्य रहता है। जिससे बदला मिलने की आशा रहती है, उसी के साथ सद्व्यवहार का, सहायता का हाथ उठता है। यही है वह मौलिक दुष्प्रवृत्ति, जिसने असंख्यों छल-प्रपंचों, अपराधों और अनर्थों को जन्म दिया है। बढ़ते-बढ़ते वह स्थिति अब इस स्तर तक पहुँच गई है कि हर किसी को अपनी छाया तक से डर लगने लगा है। लोकहित का ढिंढोरा पीटने वालों के प्रति सहज आशंका बनी रहती है कि कहीं कुछ सर्वनाशी अनर्थ का सरंजाम तो खड़ा नहीं कर दिया है।

सेवा-सहायता की आशा मूर्धन्यों से की जानी चाहिए, पर उनके प्रति और भी अधिक गहरा अविश्वास अपना परिचय देता है। प्रदूषण उगलकर हवा में जहर छोड़ते रहने वाले उद्योगपतियों अभावग्रस्तों के लिए प्रचुर परिणाम में सुविधा-साधन उत्पन्न करने की दुहाई देते हैं, पर वह सम्भावना पर्दे की ओट में छिपा दी जाती है, जिसके कारण विषैली साँस लेने के कारण असंख्यों को दुर्बलता और रुग्णता के शिकार बनकर घुट-घुट कर मरना पड़ता है। यही लोग हैं जो पेय जल में विषाक्त रसायन घोलते और पीने वाले के लिए अकाल मृत्यु का संकट उत्पन्न करते हैं। बड़े उद्योगों के कारण कितने छोटे श्रमजीवियों को बेकार-बेरोजगार रहना पड़ता है, उसके विरुद्ध कोई मुँह भी नहीं खोल पाता।

गुण्डागर्दी इसलिए दिन-दूनी रात-चौगुनी गति से बढ़ती है कि उसका संगठित प्रतिरोध कर सकने की साहसिकता लगभग समाप्त हो गई है। मार्गदर्शन की, धर्मोपदेश की जिम्मेदारी जिन लोगों पर है, वे मात्र परावलम्बन का, भाग्यवाद का प्रतिपादन करते हैं। शौर्य-साहस जगाने में उनका दूर का भी वास्ता नहीं रहता। परावलम्बन के पक्षधर उथले कर्मकाण्ड भर सिखाने की उनकी रीति-नीति चलती रहती है। जब इतने भर से उन्हें प्रचुर परिमाण में सम्मान सहित सुविधा-साधन मिल जाते हैं, तो उस विवेकशीलता को क्यों जगाएँ, जो समर्थ होने पर उल्टी उन्हीं के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर सकती है। कला ने कामुकता का बाना ओढ़कर अपने को अधिक लोकप्रिय बनाने का मार्ग चुना है। सम्पन्नता ऐसे उत्पादन करने में लगी है, जिनमें सर्वसाधारण को आकर्षक चकाचौंध तो दिख पड़ती है, पर अन्तत: अहित के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता। जब मूर्धन्यों का दृष्टिकोण यह है, तो सर्वसाधारण को उनका अनुकरण करते हुए कितने गहरे गर्त में गिरना पड़ेगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

संक्षेप में यही है आज के प्रचलन की बानगी। नशेबाजी से लेकर बहुप्रजनन तक के कुप्रचलन इसी परिधि में आते हैं। पर्दा प्रथा, जातिगत ऊँच-नीच, मृतक भोज, दुर्व्यसन एवं अपराध इसी संकीर्ण-स्वार्थपरता की सड़ी कीचड़ में पनपे हुए हैं, जिनके कारण हर किसी को दु:खी होकर समग्र परिवर्तन का आह्वान करना पड़ रहा है। बात सही भी है। विष वृक्ष की जड़ें कटें, तो ही उन फलों का उत्पादन रुके, जो व्यथा-वेदनाओं की भरमार करने में ही काम आते हैं।

आज दसों दिशाएँ एक स्वर से किसी बड़े परिवर्तन की पुकार और गुहार मचा रही हैं। नियन्ता ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्वासन दिया है कि अगली एक शताब्दी के भीतर महाविनाश का विस्तार समेट लिया जाएगा और उज्ज्वल भविष्य का वातावरण बनेगा। इस परिवर्तन के लिए कुछ ऐसी ही तैयारी करनी होगी, जैसे एक भाषा के जानकार को किसी अन्य भाषाई क्षेत्र में काम करने भेजा जाय। छोटे प्रशिक्षण तक जब निष्णात प्रशिक्षकों की माँग करते हैं, तो युग परिवर्तन के लिए तो ऐसे महाशिल्पी चाहिए, जो नये युग और नये वातावरण का सृजन कर सकें।

सृजन विद्या के प्राध्यापक चाहिए

'नवसृजन योजना' महाकाल की योजना है। वह पूरी तो होनी ही है। उस परिवर्तन का आधार बनेगा चारित्रनिष्ठ, भाव-संवेदनायुक्त व्यक्तित्वों से। ऐसे व्यक्तित्व बनाना विद्या का काम है, मात्र शिक्षा उसके लिए पर्याप्त नहीं। मात्र शिक्षा-साक्षरता तो मनुष्य को निपट स्वार्थी भी बना सकती है। उसमें विद्या का समावेश अनिवार्य है। अस्तु, नवयुग के अनुरूप मन:स्थितियाँ एवं परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए बड़ी संख्या में ऐसे प्राध्यापकों की आवश्यकता अनुभव हो रही है, जिनकी शिक्षा भले ही सामान्य हो, पर वे अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व और चरित्र से निकटवर्ती क्षेत्र को अपनी विशिष्टताओं से भर देने की विद्या के धनी हों।

नाविक के लिए आवश्यक नहीं कि उसके पास स्नातकोत्तर परीक्षा पास करने का प्रमाण-पत्र हो ही। मजबूत कलाई और चौड़े सीने वाला हिम्मत के सहारे उफनती नदी की छाती पर दनदनाता हुआ, दौड़ता रहता है। अपने को, अपने निकट वालों को नाव पर बैठी हुई सवारियों को इस पार से उस पार पहुँचाने में उसे देर नहीं लगती, वरन् हिम्मत और सफलता को देखते हुए गर्व-गौरव अनुभव करता है।

विद्वान, मनीषी और मूर्धन्य सर्वत्र सम्मान पाते हैं। उनकी गरिमा और उपयोगिता से कोई इन्कार नहीं कर रहा है, वरन् कहा यह भर जा रहा है कि ईमान और भगवान को भुला देने वाले आज के समुदाय को ऐसे उद्धारक चाहिए, जो गहरी कीचड़ में फँसे जानवरों को खींच-घसीटकर किनारे तक पहुँचा देने की साहसिकता का परिचय दे सकें।

अगले दिनों नवयुग का आगमन आँधी-तूफान की तरह दौड़ता चला आ रहा है। उसमें होगा तो प्रथा प्रचलनों का परिवर्तन भी, पर सबसे प्रमुख एवं मौलिक परिवर्तन एक ही होगा कि मनुष्य को इक्कड़ बनकर नहीं रहने दिया जाएगा। जंगली जानवरों में कभी-कभी झुण्ड को छोड़कर कोई उद्दण्ड अकेले रहने लगता है। वह सामूहिकता की रीति-नीति भूल जाता है और बगावत पर उतर आता है। किसी पर भी आँखें बंद करके हमला बोल देता है। उसे 'इक्कड़' कहते हैं।

इक्कड़ मनुष्य, जिसके ऊपर संकीर्ण-स्वार्थपरता का प्रेत-पिशाच हर समय चढ़ा रहता है, उसे हर किसी के लिए खतरनाक ही समझना चाहिए। समस्त अपराधों और अनाचारों की जन्मदात्री संकीर्ण-स्वार्थपरता ही है। आज की अगणित विडम्बनाओं, विभीषिकाओं का यदि एकमात्र कारण ढूँढ़ना हो तो उसे एक ही रूप में मापा जा सकता है—तृष्णा और अहमन्यता। यदि इसमें कटौती की जा सके, तो समझना चाहिए कि सिर पर लदा चट्टान जैसा भारी बोझ हल्का हुआ और मानवी गरिमा के अनुरूप प्रगति कर सकने का पथ प्रशस्त हुआ।

मनुष्य की संरचना इस प्रकार हुई है कि वह दो मुट्ठी अनाज और दो गज कपड़े के सहारे मजे में गुजारा कर सकता है। इतना जुटाने में उसका दो घंटे का श्रम-समय पर्याप्त होना चाहिए। यह सुविधा सृष्टि के अन्य किसी प्राणी को उपलब्ध नहीं है। उन्हें दिन भर पेट भरने का जुगाड़ बिठाने में दौड़ना पड़ता है। सुरक्षा की दृष्टि से भी उन्हें भयभीत रहना पड़ता है; पर मनुष्य के सामने ऐसी कोई समस्या नहीं है। निजी निर्वाह के अतिरिक्त जो कुछ उसके पास बच जाता है, वह आवश्यकता पूर्ति के अतिरिक्त सैकड़ों-हजारों गुना अधिक है। इस बचत को पुण्य-परमार्थ के लिए नियोजित करके ही संसार के विवेकवानों ने देव-मानव का स्तर पाया है, अपना भला किया है और असंख्यों को अपने कंधों पर बिठाकर पार उतारने का श्रेय सम्पादित किया है।

यदि इतनी मोटी बात किसी की भाव चेतना में प्रवेश कर सके, व्यवहार में उतर सके तो समझना चाहिए कि उसे देव-मानव बनने का सौभाग्य हस्तगत हो गया। उसे अवांछनीयता के प्रवाह वातावरण को बदलने का अकूत बल उपलब्ध हो गया। अन्यथा सड़न से उत्पन्न होने वाले विष-कीटकों द्वारा सर्वत्र गंदगी फैलाने का खतरा सामने खड़ा ही रहेगा।

नवयुग में शिक्षा-साक्षरता तो बढ़ती ही रहेगी। व्यक्ति, समाज और सरकार ने उसे मान्यता दे दी है, फिर वह बढ़ेगी क्यों नहीं ? कुछ ही दिन में निरक्षरता की कालिख से सभी लोग अपना मुँह धोकर साफ कर लेंगे। प्रश्न विद्या का है। उसका न कहीं महत्त्व समझा जा रहा है और न कोई आवश्यकता ही। मानवी गरिमा को उपलब्ध करने के लिए किसी का मन नहीं। उत्कृष्ट आदर्शवादिता और दूरदर्शी विवेकशीलता को बढ़ाने-अपनाने के लिए कहीं ऐसे प्रयत्न नहीं चल रहे हैं, जिन्हें आशा भरी दृष्टि से देखा और सन्तोषजनक कहा जा सके।

इस आवश्यकता की पूर्ति युग सृजेताओं को करनी पड़ेगी। आशा की गई है कि वे शांतिकुंज परिवार से निकलेंगे और अपने महान व्यक्तित्व और कर्तृत्व से समूचे वातावरण में नवजीवन का संचार करेंगे। ऐसे श्रेयाधिकारियों को अभ्युदय की दिशा में दो कदम अनिवार्य रूप से उठाने पड़ेंगे; एक निजी आवश्यकताओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और महत्त्वाकांक्षाओं को घटाना, इसे संयम कह सकते हैं, दूसरा विद्या विस्तार के लिए तड़पन भरा पुरुषार्थ उभारना, इसे सेवा-साधना कह सकते हैं।

प्रथम चरण में औसत नागरिक के निर्वाह की कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध करना होगा। यहाँ अधिक उत्पादन पर रोक नहीं है; पर निजी खर्चों में इतनी अधिक कटौती करनी चाहिए कि उसे तपस्वी जीवन न सही, सादा जीवन उच्च विचार स्तर का तो समझा ही जा सके।

इतना पहला कदम उठा लेगा वह अनुभव करेगा कि उसके पास जो समय, श्रम, कौशल, मनोयोग ही नहीं, साधनों का भी इतना बाहुल्य है, कि समय की महती पुकार को पूरा करने के लिए युग देवता के चरणों पर श्रद्धांजलि के रूप में प्रस्तुत करते हुए असंख्यों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।

इस संदर्भ में न तो उच्च शिक्षा की आवश्यकता है और न विपुल सम्पन्नता की। उस चतुरता की भी आवश्यकता नहीं है, जो लम्बे-चौड़े भाषण देकर लोगों को बहका तो लेती है, पर निजी व्यक्तित्व खोखला होने के कारण प्रभाव छोड़ने की दृष्टि से शून्य ही रहता है। इन दिनों उपदेशकों-वक्ताओं की हर क्षेत्र में एक प्रकार की आँधी जैसी आई हुई है। ऊँची कुर्सी पर बैठने, गले में माला पहनने और माइक को झकझोर कर रख देने के लिए हर कोई प्यासा फिरता है। एक को प्रमुखता मिलने पर उसके अन्य साथी मुँह फुलाकर बैठ जाते हैं।

निजी सुविधाओं में कटौती के प्रति जो लोग श्रद्धा सँजो लेंगे, उन्हें सच्चे अर्थों में संयमी, तपस्वी, वैरागी कहा जा सकेगा। भले ही वे घर-परिवार के बीच मिल-जुलकर सज्जनोचित जीवन निर्वाह करते हों। उनके लिए यह नितान्त सरल होगा कि अपना आदर्श उपस्थित करते हुए अनेकों को अपेक्षाकृत ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने का प्रोत्साहन दे सकें। युग अध्यापकों की इन दिनों जो भारी पुकार है, वे इसी वर्ग में से निकलेंगे, जिन्होंने अध्यात्म दर्शन के इन आधारभूत सिद्धान्तों को किसी सीमा तक अपना लिया होगा, जो आदर्श पालन की दृष्टि से दूसरों की अपेक्षा अपना स्तर कुछ ऊँचा उठा सके होंगे।

युगचेतना का प्रचार-विस्तार

संयम और सेवा के दो व्रत धारण कर लेने पर अध्यात्म स्तर की कर्मयोग साधना बन पड़ती है। लोक शिक्षण इसी के अन्तर्गत आता है। विद्या विस्तार यही है। इसी के माध्यम से चिन्तन क्षेत्र पर छाई हुई विकृतियों का निराकरण किया जाता है। यदि मनुष्य सही सोचने और सही करने लगे, तो समझना चाहिए कि उसके लिए देवत्व अदृश्य न रहेगा, अपनी आभा और ऊर्जा का प्रत्यक्ष परिचय देने लगेगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए ५ लाख प्रौढ़ परिपक्वों तथा उनके साथ जुड़े हुए २० लाख गदराए प्रज्ञा-पुत्रों की सृजन-सेना विनिर्मित होती है। इसमें से एक लाख भूल-चूक के लिए छोड़ देने पर वे २४ लाख हर हालत में हो ही जाते हैं।

संयम तप से अपने निर्वाह तथा महत्त्वाकांक्षाओं में कटौती करने पर, इतने स्वल्प साधनों से जीवनचर्या बन पड़ती है कि तत्परता और तन्मयता अपनाने वाला हर व्यक्ति समय, श्रम, मनोयोग और साधनों की ढेरों बचत कर सकता है। उस बचत को नवसृजन के लिए लगाते रहने पर इतना कुछ बन पड़ सकता है कि महान परिवर्तन की सम्भावनाएँ साकार होने में किसी प्रकार का सन्देह न रहे।

हर परिजन को न्यूनतम दो घण्टे का समय अपने क्षेत्र में युगचेतना को व्यापक बनाने के लिए लगाते रहने के लिए कहा गया है। २४ लाख व्यक्तियों के दो-दो घण्टे मिलकर ४८ लाख घंटे होते हैं। ६ घण्टे का एक श्रम दिवस मान लिया जाय, तो आठ लाख व्यक्तियों के पूरे दिन के काम के बराबर हो जाते हैं। यह नव-सृजन के विविध प्रयोजनों में खपा सकें, तो ऐसा उत्साहवर्द्धक वातावरण बन पड़ेगा, जिसकी कल्पना मात्र से पुलकित कर देने वाला उत्साह उमँगने लगे।

चौबीस लाख व्यक्ति यदि न्यूनतम राशि २० पैसा ही एकत्रित करने लगें, तो वह चार लाख अस्सी हजार रुपया प्रतिदिन हो सकती है। इसे यदि सृजन शिल्पी विद्या विस्तार के लिए अपने-अपने क्षेत्र में मितव्ययता एवं सतर्कतापूर्वक लगाने लगें, तो उतने भर से अगणित क्षेत्रों की सृजन आवश्यकताएँ सहज ही पूरी हो सकती हैं। तब न सरकार से सहायता माँगने की आवश्यकता पड़ेगी और न कहीं दरवाजे-दरवाजे चन्दा करने की। अपने छोटे परिवार का छोटा अनुदान संयुक्त रूप से इतना समर्थ हो सकता है कि अपनी पहुँच का कोई घर-गाँव नवयुग अलख नित्य प्रति सुनते रहने से वंचित नहीं रहे और एक करोड़ व्यक्ति नवचेतना से अनुप्राणित हो सकें।

दुर्बुद्धि से, भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण उभरता है। दुर्बुद्धि को भी कपड़े की तरह साबुन पानी से धोया जा सकता है यह दोनों हैं—स्वाध्याय और सत्संग। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि इन दोनों का नाम भर शेष है, पर उसका वास्तविक और प्राणवान स्वरूप न जाने कहाँ तिरोहित हो गया है ? फिर दूसरी बात एक और है कि युग की समस्याओं के अनुरूप ही इन दोनों का निर्धारण होता है। युगचेतना, युगदृष्टाओं के मानस से उभरती है। इसी प्रकार सत्साहस भी उन्हीं प्राणवान व्यक्तित्वों का काम देता है, जो न केवल प्रखर प्रतिभा से सम्पन्न हो, वरन् सामयिक उलझनों के समाधान का भी व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

शान्तिकुंज की युग निर्माण योजना द्वारा युग साहित्य इन्हीं दिनों सृजा गया है, जिसका मूल्य प्राय: कागज, स्याही जितना ही रखा गया है। कॉपीराइट भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी का नहीं है। कोई भी छाप सकता है। इसी प्रकार सत्संग के लिए भी एक सीमित परिधि की विचारधारा निर्धारित की गई है। प्रवचनों में भी सीमित विचारों को गहराई तक उतार देने पर ही बात बनती है, अन्यथा सड़कों पर मजमा लगाने वाले भी कुछ न कुछ बकझक करते और भीड़ जमा कर लेते हैं। ऐसी बकवास को सुनना भी भारी पड़ता है, क्योंकि उससे उल्टा और अहितकर चिन्तन भी गले बँध सकता है।

सत्संग के दो पक्ष हैं—एक गायन दूसरा प्रवचन। यों इन दोनों की आवश्यकता पूरी करने वाली सस्ती पुस्तिकाएँ छाप दी गई हैं, पर जिनको और अधिक सरसता चाहिए, उनके लिए वीडिओ टेप भी तैयार कर दिये गए हैं। इनमें सूत्र-संचालक के प्रवचन, माता जी के गायन और देव कन्याओं के सहकीर्तन सम्मिलित हैं। एक टेप ऐसा भी है जिसमें युग परिवर्तन के मूलभूत सिद्धान्तों को संक्षिप्त एवं सरल-सुबोध ढंग से समाविष्ट कर दिया है। यह टेप शान्तिकुंज में उपलब्ध हैं, जिन्हें कोई भी अपने टेपरिकार्डर पर बजाकर एकत्रित लोगों के बीच युगप्रवक्ता की, युगगायक की भूमिका निभा सकता है। युगचेतना के प्रचार-विस्तार का यह भी एक सरल तरीका है।

विद्या विस्तार के लिए साहित्य और वाणी दोनों का उपयोग व्यापक रूप से किया जाना है। ज्ञान रथ, साइकिल यात्राएँ, सद्वाक्य लेखन, झोला पुस्तकालय, सत्संग, दीपयज्ञ आदि के माध्यम से सृजनशिल्पी हर क्षेत्र में युगचेतना का विस्तार करने के लिए कटिबद्ध होकर जुट पड़ें; ऐसा माहौल बन रहा है। निर्धारित सीमित समय-दान के अंतर्गत ही यह कार्य करते रहना सम्भव है।

झोला पुस्तकालय की प्रक्रिया कुछ दिनों से सफलतापूर्वक चल रही है। कंधे पर लटके झोले में युग साहित्य भरकर अपने परिचय क्षेत्र के शिक्षितों को घर बैठे बिना मूल्य देते रहना और पढ़ लेने पर खुद ही जाकर उसे वापस ले आना। ऐसे पढ़ने वालों को यह भी कहा जाता है कि वे इन पुस्तकों को सम्बद्ध अशिक्षित लोगों को सुनाते रहने की जिम्मेदारी भी उठाएँ। इस प्रक्रिया में युगचेतना में शिक्षितों और अशिक्षितों को समान रूप से अवगत-अनुप्राणित होने का अवसर मिलता है। पढ़ा चुकने पर यही साहित्य घरेलू पुस्तकालय के रूप में बदल जाता है और परिवार की स्थायी निधि बनकर एक प्रकार का चेतना पुंज बना रहता है। हर महीने नई पुस्तकें खरीदते और भण्डार बढ़ाते रहने की आवश्यकता उसी राशि से पूरी हो जाती है, जो हर दिन दस या बीस पैसे जितना सद्ज्ञान विस्तार प्रयोजन के लिए परिजन स्वेच्छापूर्वक निकालते रहते हैं। यह स्वाध्याय की छोटी; किन्तु सशक्त प्रक्रिया हुई।

दूसरा पक्ष है—सत्संग, इसके लिए हर प्रज्ञा केन्द्र में साप्ताहिक सत्संग चलते हैं। उनमें सहगान, कीर्तन, युगसाहित्य पठन के आधार पर प्रवचन चलता रहता है। साथ ही थोड़ी-सी अगरबत्तियाँ जलाकर कुछ दीपक थाली में रख कर दीपयज्ञ की पुण्य प्रक्रिया भी सम्पन्न हो जाती है। कहीं-कहीं साप्ताहिक सत्संग के स्थान पर यह प्रबंध किया गया है कि गृहस्वामी का जन्म-दिवस जिस दिन हो, उस दिन अपने स्वजन-सम्बन्धियों की उपस्थिति में एक छोटा समारोह कर लिया जाय।

दीवारों पर आदर्श वाक्यों का लिखना एवं अलमारियों, किवाड़ों, फर्नीचरों, अटैची आदि पर स्टीकर चिपकाना अपने ढंग का एक अनौखा कार्य है, जो उधर से गुजरने या देखने वाले, हर किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है और पढ़ने वाले के मस्तिष्क में एक बिजली-सी कौंधा देता है। यह कार्य यदि गली-मुहल्लों में भली प्रकार कर लिया गया है, तो समझना चाहिए यह बोलती दीवारें राहगीरों को ऐसा कुछ निरन्तर सिखाती-समझाती रहेंगी, जिन्हें आदर्शवादी प्रेरणाओं से ओत-प्रोत कहा जा सके।

नव-सृजन की अनुपम अध्यात्म-साधना

दृश्यमान स्थूल शरीर के अतिरिक्त अदृश्य स्तर के दो शरीर और भी हैं, जिन्हें सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर कहते हैं। सूक्ष्म में दूरदर्शिता का और कारण में भाव-संवेदना का निवास है। इन क्षेत्रों को उनकी आवश्यकताएँ उपलब्ध होती रहें, तो आरोग्य सन्तुलन उनमें भी बना रहेगा। इन पर प्रभाव तो स्वाध्याय-सत्संग का भी पड़ता है; पर यदि निर्धारित साधन उपचार भी अपनाए जा सकें तो और भी अच्छा। इनका समावेश रहने से उपरोक्त दोनों केन्द्रों में प्रगति की और भी अधिक सम्भावना रहती है। सूक्ष्म शरीर के लिए जप और कारण शरीर के लिए ध्यान प्रक्रिया का, अनुभवी साधना विज्ञानियों ने निर्धारण किया है।

जप प्रयोजन के लिए अनेक मत-मतान्तरों के अपने-अपने नियम और निर्धारण हैं, पर यदि सार्वभौम स्तर पर निरीक्षण-परीक्षण किया जाय, तो गायत्री महामंत्र सार्वजनीन स्तर का बैठता है। उसकी जप-पुनरावृत्ति करने पर व्यक्तियों में संयमित स्तर की प्रतिभा उभरती है, साथ ही अदृश्य वातावरण में भी प्रेरणाप्रद तत्वों का बाहुल्य बन पड़ता है। न्यूनतम १०८ मंत्रों की एक माला जप ली जाय, तो अन्तराल में ज्ञान जैसी स्फूर्ति का अनुभव होता है। अधिक जिससे जितना बन पड़े, उतना ही अधिक लाभदायक रहेगा। अच्छा तो यही है कि नित्य कर्म से, स्नानादि से निवृत्त होकर शुद्ध स्थान पर बैठकर जल और अग्नि की साक्षी में उसे सम्पन्न किया जाय। पूजा की चौकी पर छोटा जल कलश और अगरबत्ती जलाकर वातावरण को अधिक अनुकूल बना लिया जाय, पर जिनके लिए ऐसी स्वच्छता अपनाने में कठिनाई पड़ती हो, वे बिना स्नान किए भी मौन मानसिक जप कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं। एक माला जपने में प्राय: पाँच मिनट लगते हैं। इतना समय निकालते रहना किन्हीं सत्साही श्रद्धालुओं के लिए कठिन नहीं पड़ना चाहिए। इस प्रयास के आधार पर सूक्ष्म शरीर में पाई जाने वाली चौबीस ग्रन्थियाँ जागृत होती हैं और उस आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार होता है। मेधा निखरती और प्रतिभा उभरती है।

कारण शरीर की गहराई तक पहुँचने के लिए ध्यान-धारणा अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। यों कई लोग अपने-अपने इष्टदेवों का भी ध्यान करते हैं। पर आप्त अनुभवी जनों के प्रतिपादन और निजी प्रयोग से यह जाना जा सकता है कि प्रात:कालीन सूर्य का ध्यान सर्वोत्तम है। बन पड़े तो प्रात: उदीयमान सूर्य के प्रत्यक्ष दर्शन भी किए जा सकते हैं और जल-अर्घ्य भी चढ़ाया जा सकता है, पर जिन्हें नियत समय पर किसी बड़ी अड़चन के कारण प्रत्यक्ष दर्शन न बन पड़े, तो वे मानसिक ध्यान भी उसी स्तर का कर सकते हैं।

प्रभातकालीन अरुणाभ सविता का ध्यान-दर्शन करने के साथ-साथ यह धारणा भी करनी चाहिए कि दिव्य केन्द्र से नि:सृत होने वाली किरणें साधक के प्रत्यक्ष शरीर में, सूक्ष्म शरीर में और कारण शरीर में प्रवेश कर रही हैं। उन तीनों ही संस्थानों में प्रकाश भर रही हैं, साथ ही ऊर्जा, उष्णता और आभा स्तर की तेजस्विता का समावेश कर रही हैं। स्थूल शरीर में ओजस्, सूक्ष्म शरीर में वर्चस् का उभार आ रहा है। अपने रोम-रोम में, कण-कण में, सविता की ऊर्जा-आभा ओत-प्रोत हो रही है। व्यक्तित्व ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी बन रहा है। सविता और साधक, आग और ईंधन की तरह परस्पर एकीभूत हो रहे हैं। आदान-प्रदान का, समर्पण और अनुग्रह का उपक्रम अनवरत् रूप से चल रहा है। यह दैनिक साधना है, यह जिनसे जितनी श्रद्धा और तत्परता के साथ बन पड़े वे इसे नित्य कर्म के एक अविच्छिन्न अंग के रूप में करते रहें।

यह युग संधि की वेला है। इक्कीसवीं सदी के आगमन से पूर्व तक बीसवीं सदी चलेगी। यह अन्तिम चरण कितनी ही उथल-पुथल से भरा हुआ होगा। इसमें प्रसव-पीड़ा जैसी अनुभूति भी हो सकती है और नवजात शिशु के आगमन का उत्साहवर्द्धक समाचार भी मिल सकता है। जन्म और मरण के आदि और अन्त वाले अवसर भी ऐसी ही उथल-पुथल भरे होते हैं।

रात्रि का समापन और प्रभात का आगमन संध्याकाल कहलाता है। उसमें साधारण क्रिया-प्रक्रिया की अपेक्षा हर किसी को कुछ नये स्तर का क्रियाकलाप अपनाना पड़ता है। युग संधि में भी शान्तिकुंज की एक बारह वर्षीय विशेष योजना बनी है। इसमें दो वर्ष बीत चुके। दस वर्ष शेष हैं। इस अवधि में एक आध्यात्मिक सामूहिक महाअनुष्ठान आरम्भ किया गया है—हर दिन २४ करोड़ गायत्री जप करने का। दूसरों के लिए यह लक्ष्य हिमालय जैसा भारी प्रतीत हो सकता है, पर अपने २४ लाख परिजन यदि एक माला गायत्री जप और सविता के ध्यान में पाँच-दस मिनट लगाते रहें तो इतने भर से संकल्पित साधना भली प्रकार पूरी होती रहेगी।

प्रचार-विस्तार का क्रम तेजी से चल रहा है। इस साधना की पूर्णाहुतियाँ १९९५ तथा २००० में होंगी, जिनमें न्यूनतम एक-एक करोड़ व्यक्ति सम्मिलित होंगे। इन सबको, इस प्रथम चरण की पूर्णाहुति करके अगले नये सोपान में और भी अधिक श्रद्धा-संवेदना के, उत्साह एवं साहस के साथ प्रवेश करना होगा। इसलिए दो पूर्णाहुतियों के आयोजन की योजना बनी है, यदि इतने लोगों का एकत्रीकरण एक जगह न बन सका, तो उसे मिशन द्वारा संचालित २४ सौ प्रज्ञा केन्द्रों में विभाजित भी किया जा सकता है। पूर्णाहुति की इस विशालता का लक्ष्य यथावत रहेगा; पर उसे एक या अनेक स्थानों पर सम्पन्न करने की बात अवसर आने पर परिस्थितियों के अनुरूप ही निश्चित होगी।

सामूहिकता की शक्ति से सभी परिचित हैं। भव्य भवन, असंख्य ईंटों से मिलकर बनते हैं। अनेक धागे मिलकर कपड़ा बनता है। तिनकों को बटकर मजबूत रस्से बनते हैं। सैनिकों का समुदाय मिलकर समर्थ सेना का रूप धारण करता है। मधुमक्खियाँ मिल-जुल कर ही छत्ता बनाती और शहद जमा करती हैं। देवताओं की संयुक्त शक्ति से देवी दुर्गा का अवतरण सम्भव हुआ था। ऋषि रक्त से घड़ा भर जाने पर उससे असुर निकन्दनी सीता का उद्भव हुआ था। अणुओं से मिलकर यह दृश्य जगत विनिर्मित हुआ है। नवयुग के अवतरण में भी बुद्ध के परिव्राजकों एवं गाँधी के सत्याग्रहियों जैसा संगठन अभीष्ट होगा।

युग संधि महा पुरश्चरण को, नवयुग की ज्ञान गंगा को धरती पर अवतरित करने वाली सम्मिलित स्तर की भगीरथ साधना कहा जा सकता है। उसे लघु से विभु बनाने में मत्स्यावतार जैसी भूमिका भी तो निबाहनी है। इसलिए देव मानवों को एक छत्र-छाया में एकत्रित करना भी अनिवार्य हो गया है। इस संदर्भ में सन् १९५८ में एक सहस्र कुण्डी गायत्री महायज्ञ का प्रथम प्रयोग गायत्री तपोभूमि, मथुरा में हो चुका है। युग-निर्माण योजना की सुविस्तृत रूपरेखा उसी अवसर पर बनी थी और तब से लेकर अब तक की अवधि में उसने नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्रों में आश्चर्यजनक समझी जाने वाली क्रिया-प्रक्रिया सम्पन्न की है। एक जोरदार धक्का भर इंजन देता है, तो डिब्बे उसी ठोकर के कारण दूर तक पटरी पर दौड़ते चले जाते हैं, अभी सन् २००० तक जितने वर्ष शेष हैं, उस अवधि में इतनी समर्थता अर्जित कर ली जाएगी कि पूर्णाहुति के रूप में मारी गई जोरदार ठोकर इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य का प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभव करा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाणी द्वारा युग चेतना का प्रसार-विस्तार

इन दिनों जनसाधारण के सोचने का तरीका लोभ, मोह और अहंकार के साथ बुरी तरह जुड़ गया है। चल रहे ढर्रे को अभ्यास में इस कदर उतार लिया गया है कि अवांछनीय होने पर भी उसका मोह छोड़े नहीं छूटता। इस स्थिति को पूरी तरह उलटना पड़ेगा और क्रियाकलापों में, विचारणा-आकांक्षाओं में इतना हेर-फेर करना पड़ेगा, जिसे स्वतन्त्र चिंतन एवं नव निर्धारण की संज्ञा दी जा सके। अपना सो अच्छा, पराया सो बुरा की मान्यता सही नहीं है। सत्य के दर्शन जहाँ से भी होते हैं, वहीं से उसका चयन करना चाहिए। औचित्य को अंगीकृत करने में हमें राजहंस की तरह नीर-क्षीर विवेक की नीति अपनानी चाहिए। विचारक्रान्ति का स्वरूप भी यही है।

विचारों को प्रभावित करने वाली दो प्रक्रियाएँ सर्वसाधारण की जानकारी में हैं। एक वाणी दूसरी लेखनी। इसमें से पहली द्वारा सत्संग सम्पन्न होता है, दूसरी स्वाध्याय का सरंजाम जुटाती है। वाणी का लाभ शिक्षित-अशिक्षित दोनों ही समान रूप से उठा लेते हैं। लेखनी को अशिक्षित लोग पढ़ नहीं पाते, पर सुन वे भी लेते हैं। इन दोनों को छैनी-हथौड़ा मानकर, हमें कठोर पत्थर जैसी निष्ठुर स्वार्थपरता को युग के अनुरूप आकार में गढ़ना चाहिए। वाणी और लेखनी को प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र मानकर हमें संव्याप्त असुरता से लड़ने के लिए, सीना तानकर जूझने के लिए युद्ध क्षेत्र में उतरना चाहिए।

यों सत्संग के नाम पर सड़ा-गला, कूड़ा-कचरा लोगों के सिरों पर थोपा जाता रहता है पर उपयोगिता की कसौटी पर कसकर उसकी सार्थकता तभी स्वीकार करनी चाहिए, जब वह आज की समस्याओं का आदर्शवादी एवं व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत कर रहा हो। स्वाध्याय के सम्बन्ध में भी इसी कसौटी का प्रयोग होना चाहिए। आवश्यक नहीं कि वह किसी पुराने व्यक्ति द्वारा, पुरानी भाषा में लिखी गई हो। जो पुराना, सो सच—यह मान्यता ऐसी नहीं है, जिसे आँखें बन्द करके, नाक मूँदते हुए गले उतार ही लिया जाय। कोई बूढ़ा भी सनकी हो सकता है और कोई किशोर भी समझदारी की बात कह सकता है। क्या अंगीकार करें ? उसका एक ही उत्तर हो सकता है कि जिसमें औचित्य का गहरा पुट हो, जिसमें समाधान के तर्क, तथ्य उदाहरण और प्रमाण इस अनुपात में विद्यमान हों, कि सीधे गले उतर चलें और उत्कृष्टता की पक्षधर हलचल उत्पन्न कर सकें। लेखनी और वाणी का युग चेतना से जुड़ा हुआ प्रयोग हमें इन दिनों इसी स्तर पर करना चाहिए।

वाणी का सर्वविदित उपयोग व्याख्यान, प्रवचनों के रूप में ही होता आया है, किन्तु उसके लिए यह आवश्यक पड़ता है कि अधिक लोगों का बड़ा समुदाय एक जगह एकत्रित हो और उसका स्वरूप सभा-समारोह जैसा न सही, कम से कम विचारगोष्ठी जैसा तो बन ही जाय। कठिनाई यह है कि ऐसा सरंजाम जुटाना इन दिनों अति-आडम्बर भरा और संकीर्ण हो गया है। जानने वाले जानते हैं कि रैलियाँ निकालने वालों और बड़े सम्मेलन बुलाने वालों को कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं और कितनी बड़ी राशि खर्चनी पड़ती है ? फिर अधिक बड़ी भीड़ का जमाव वहाँ भी मेले-ठेले जैसा बनकर रह जाता है। ध्वनि विस्तारकों से सुनने वालों के मनों में भी कोई तीखी प्रेरणा नहीं उभरती, जिससे कुछ आदर्शवादी उमंग उभरने की आशा की जा सके।

पुराने जमाने में लाउडस्पीकर नहीं थे, इसलिए विशाल भीड़ जमा करने वाले समारोहों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उन दिनों छोटे आकार के कथा प्रवचनों से काम चलाया जाता था। हमें उसी पुरातन परम्परा पर लौटना पड़ेगा। छोटे देहातों के गली-मुहल्लों में बिखरे हुए जनसमुदाय को नुक्कड़ सभाओं जैसी प्रक्रिया अपनाकर काम चलाना होगा। चुनावों में खड़े होने वाले भी यही तरीका अपनाते हैं।

पहाड़ खुद चलकर अपने घर न आए तो दूसरा तरीका यही शेष रहता है कि खुद चलकर पहाड़ की तलहठी या चोटी तक पहुँचा जाय। प्रसुप्त जनमानस को उनींदी खुमारी से जगाने-झकझोरने के लिए स्वयं ही भाग-दौड़ करने का औचित्य है। उस प्रयोजन के लिए प्रज्ञा पुराण की कथा मुहल्ले-मुहल्ले करने का एक सफल प्रयोग पिछले लम्बे समय से चल रहा है। अब पर्व-त्यौहारों पर छुट्टी का दिन भी इसके लिए उपयुक्त समझा गया है कि उस बहाने लोगों को एकत्रित करके, हर पर्वों के साथ जुड़ी हुई प्रगतिशीलता को उभारा और जनमानस को आवश्यक परिवर्तन के लिए प्रोत्साहित किया जाय। मेले और प्रदर्शनियाँ भी इस प्रयोजन के लिए कारगर हो सकती हैं।

एक नितान्त अभिनव प्रयोग इन दिनों और आविष्कृत किया गया है। साइकिल के पहियों वाला ज्ञानरथ इस प्रकार का बनाया जाय, जिसमें बैटरी, टेपरिकार्डर और लाउडस्पीकर लगे हुए हों। उसमें मुफ्त पढ़ाने या बेचने के लिए युग साहित्य भी प्रस्तुत रहे। इसे गली-मुहल्लों, हाट-बाजारों में घुमाया जाय। युगचेतना से परिपूर्ण संगीत बजता रहे, प्रवचन चलता रहे। अधिक जानने के उत्सुकों को युग साहित्य पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता रहे। इस प्रकार प्रभात फेरियाँ निकालने, मुहल्ले-मुहल्ले अलख जगाने, नुक्कड़ सभाएँ जुटाने का बहुमुखी कार्यक्रम दिनभर चलता रह सकता है। इसे घुमाने के लिए कोई साधारण समझ का आदमी भी काम करता रह सकता है। आवश्यक नहीं कि वह वक्ता, गायक, प्रचारक स्तर का ही हो। थोड़ी समझदारी भर हो, तो ज्ञानरथ को बारी-बारी से मुहल्ले-मुहल्ले घुमाते हुए किसी बड़े बाजार—शहर के कोने-कोने में भी युग संदेश पहुँचाने का कार्य चल सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी योजना के दो छोटे संस्करण भी बने हैं। इनमें से एक है—साधारण साइकिल पर उपरोक्त प्रचार सामग्री फिट कर दी जाय। उससे सवारी का काम भी लिया जा सकता है और अधिक विस्तृत कार्य क्षेत्र में काम किया जा सकता है। दूसरा है एक छोटी अटैची-उपकरण स्तर का, इसमें भी उपरोक्त सभी प्रचार सामग्री फिट है। इसे किसी भी घर-मुहल्ले, पार्क, मंदिर, घाट आदि-लोगों के इकट्ठे होते रहने वाले स्थान पर लगाया और नवयुग का संदेश, गायनों और भाषणों के माध्यम से सुनाया जा सकता है।

उपरोक्त तीनों प्रचार वाहनों में ऐसी बैटरी लगी है, जिसे दिन भर काम में लाया जा सकता है और रात को बिजली से, चार्जर के माध्यम से फिर नये सिरे से काम करने योग्य बनाया जा सकता है। इन तीनों की आधारभूत लागत भी इतनी है, जिसे कोई साधारण स्थिति का व्यक्ति भी आसानी से वहन कर सके। छोटा उपकरण प्राय: एक हजार का, साइकिल वाला दो हजार का और चार पहियों वाला मंदिरनुमा उपकरण तीन-साढ़े तीन हजार का बन जाता है। साइकिल या ज्ञानरथ पहले से पास हो तो उसका मूल्य कम हो जाता है।

जहाँ इनमें से कोई उपकरण न बन पड़े, वहाँ खंजरी, मंजीरा के सहारे एक या दो व्यक्ति प्रचार कार्य करते रह सकते हैं। उसमें लागत बीस-पच्चीस रुपए भर आती है और उस माध्यम से जहाँ भी दस-बीस आदमी इकट्ठे हों, वहाँ अपना युग प्रतिपादन आसानी से आरम्भ किया जा सकता है।

लोकरंजन के साथ जुड़ा हुआ लोकमंगल

युगचेतना का स्वरूप निर्धारण, उसका लेखन, प्रकाशन शान्तिकुंज, हरिद्वार और युग-निर्माण योजना, मथुरा द्वारा छोटे साधनों से चल रहा है। फिर भी वह अपनी गुणवत्ता के कारण निरंतर लोकप्रिय हो रहा है। मूल्य इतना सस्ता रखा गया है कि इस स्तर के प्रकाशनों की पंक्ति में उसे एक कीर्तिमान स्तर का कहा जा सकता है। इसे व्यावसायिक प्रकाशन वाले दृष्टिकोण से सर्वथा पृथक रखा गया है। लगभग कागज, छपाई जितना ही इनका मूल्य रखा गया है ताकि ईसाई मिशनों द्वारा छपने और प्रचारित किए जाने वाले स्तर से समता की जा सके।

इन दिनों जो करना, लिखना और प्रतिपादन प्रस्तुत करना शेष है, वह इतना सुविस्तृत है कि युग-मनीषियों की कई सुनियोजित मण्डलियाँ खप सकती हैं। प्रकाशन के लिए इतना बड़ा तंत्र चाहिए, जितना कि विशालकाय कल-कारखाने में लगता है। क्षेत्रीय भाषाओं में से कितनी ही ऐसी हैं, जिन्होंने संसार के विशाल भागों पर अपना वर्चस्व जमा रखा है। इन क्षेत्रों में युग चिन्तन, उन परिस्थितियों के साथ जोड़ते हुए प्रस्तुत किया जाना है, जिनसे उनकी जीवन-पद्धति और विचार शृंखला जुड़ी हुई है। इनको माध्यम बनाना हो, तो मौलिक आदर्शों को यथावत रखते हुए भी उनका व्यावहारिक स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करना पड़ेगा, जो उन समुदायों की वर्तमान मान्यताओं के साथ तालमेल बिठाते हुए प्रगति का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत कर सके।

ईसाई धर्म की एक छोटी सीमा है, पर उसने अपनी विचारधारा को व्यापक बनाने के लिए बाइबिल से लेकर छोटी पुस्तिकाओं तक को संसार की प्राय: सभी भाषाओं में करोड़ों की संख्या में छापा और उपयुक्त व्यक्तियों तक पहुँचाया है। यही कारण है कि उस विचारधारा से प्रभावित होकर संसार के प्राय: एक-तिहाई मनुष्यों ने उस धर्म में प्रवेश पा लिया है।

साम्यवादी देशों में भी अपने सीमित क्षेत्र में ही नहीं, संसार की अनेक भाषाओं में अपने मन्तव्य को प्रकाशित किया है। सरकारें अपनी-अपनी नीतियों का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रचार-प्रकाशन पर एक बड़ी राशि खर्च कर रही हैं। यह न तो अकारण है और न अनावश्यक। अब लोकमानस इतना समर्थ हो गया है कि उसे साथ लिए बिना बहुसंख्यक लोगों का समर्थन प्राप्त करना सम्भव ही नहीं रहा है। युग परिवर्तन प्रक्रिया उपरोक्त सभी क्षेत्रों से बढ़कर है। उसका सीधा सम्बन्ध संसार के ६०० करोड़ मनुष्यों के साथ जुड़ता है। यदि विशाल समुदाय में नवयुग के प्रति उत्सुकता, श्रद्धा एवं प्रयत्नपरायणता उत्पन्न न की जा सकी, तो पिछड़ापन चिरकाल तक अपनी हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ कसे ही रहेगा।

दुर्भाग्य से संसार में अभी एकता-समता को अपनाने के लिए अधिक उत्साह नहीं उपजा है। इस संदर्भ में भाषाओं की भिन्नता कोढ़ में खाज की तरह है। कोई एक भाषा ऐसी नहीं, जिसका अवलम्बन लेकर विश्व मानव तक उज्ज्वल भविष्य के संदेश एवं आलोक को पहुँचाया जा सकना सम्भव हो सके। ऐसी दशा में विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों के लिए उन्हीं के अनुरूप भाषाओं का आश्रय लेकर, उसी स्तर का प्रकाशन आवश्यक हो जाता है।

अब लोकचेतना को दिशा देने के लिए कुछ और सशक्त माध्यम अपनी प्रचण्ड शक्ति का परिचय देने लगे हैं। इनमें से एक है सिनेमा-फिल्म व्यवसाय। इसी का दूसरा छोटा भाई अभी और जन्मा है, वह है वीडियो। इनके द्वारा दृश्य श्रव्य दोनों माध्यमों ने लोकचेतना को असाधारण रूप से प्रभावित किया है। इनकी पहुँच साहित्य क्षेत्र से कम नहीं रही, वरन् वह और भी अधिक बढ़ गई है। इनका लाभ संसार की एक तिहाई शिक्षित जनता ही नहीं उठाती, वरन् शेष दो-तिहाई अशिक्षित जनता भी सम्पर्क में आती और प्रभाव ग्रहण करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरकारों के कब्जे में दूरदर्शन और रेडियो दोनों आ गए हैं। वे अपने मतलब की जानकारियाँ तो जनता तक पहुँचाते ही हैं, साथ ही ऐसा बहुत कुछ घुला-मिला देते हैं, जो कामुकता जैसी दुष्प्रवृत्तियों को मनोरंजन का नाम देकर दर्शकों के गले उतार देता है। यह दोनों समर्थ साधन युगचेतना के अनुरूप चल सकते हैं, इसकी आशा तो फिलहाल नहीं ही की जा सकती है, पर इनके और दूसरे सुलभ संस्कार इस स्थिति में हैं कि उनका उपयोग जनस्तर के समर्थ संगठनों द्वारा किया जा सके।

टेप और टेपरिकार्डर द्वारा रेडियो की एक छोटी सीमा तक आवश्यकता पूरी की जा सकती है। फिल्में बनाने वाले यदि कुछ साहस करें, तो वे भी विचार क्रांति की महती आवश्यकता में अपना कुछ कहने लायक योगदान दे सकते हैं। फिर उसका छोटा भाई वीडियो भी अब इस योग्य हो सकता है कि अपने दुबले पैरों और पंखों द्वारा किसी प्रकार घिसटते-घिसटते जनसमुदाय के एक बड़े भाग तक अपना प्रभाव पहुँचा सके। यदि सम्भव हो तो समर्थ व्यक्ति इन दोनों माध्यमों को भी इतना सरल और सस्ता बना सकता है कि जन-जन तक उनकी पहुँच हो सके और समय की माँग को पूरा करने में वे दोनों कुछ कहने लायक बड़ी भूमिका निभा सकें। ग्रामोफोन रिकार्डर उद्योग और स्लाइड प्रोजेक्टर अब समय से पीछे पड़े गए हैं, पर जहाँ तक प्रचार माध्यमों का सम्बन्ध है, वहाँ उनको भी पिछड़े समुदायों में अपनी भूमिका निभाते रहने में अभी भी उपयोगी बनाया जा सकता है।

कभी जनशक्ति के सहारे चलने वाले प्रचार प्रयोजन भी गाँव-गाँव पहुँचते और लोकरंजन के साथ-साथ लोकमंगल का काम भी अच्छी तरह करते थे। उनसे आजीविका भी मिल जाती थी और लोकरंजन के साथ-साथ लोकमंगल का प्रचार कार्य भी बहुत हद तक हो जाता था, पर बढ़ती हुई यांत्रिक सभ्यता के कारण उनका आधार लड़खड़ा गया है।

रामलीला, रासलीला, नौटंकी, संगीत मण्डलियों, कठपुतलियों आदि के द्वारा कुछ समय पूर्व तक बड़ा काम होता रहता था और हजारों लोगों को आजीविका मिलती थी। पर अब ग्रामोद्योगों की तरह उन्हें भी उपेक्षा का भाजन बनना पड़ रहा है। एक प्रकार से उनका अस्तित्व ही मिटता जा रहा है। गाँवों में लगने वाली हाटें अपने थोड़े-से उद्योगों को असाधारण रूप से प्रोत्साहित किया करती थीं। पर इन दिनों की परिस्थितियों को देखते हुए कुछ कहा नहीं जा सकता है कि इन सब का भविष्य क्या है ? फिर भी यदि गतिशील प्रतिभाएँ कुछ प्रयत्न करें, तो यह भी हो सकता है कि वे माध्यम कुछ सुधरे हुए रूप से निर्वाह करने लगें।

बड़े माध्यम जिनके हाथ नहीं हैं, वे भी अपने सम्पर्क क्षेत्र में विचार-विनिमय का कोई न कोई रास्ता निकाल सकते हैं। नाटक, अभिनय, लोकनृत्य आदि की सही व्यवस्था न बन पड़े तो इतना तो हो ही सकता है कि अपने से छोटों को किस्से-कहानियाँ सुनाकर, आदर्श जनों के जीवन चरित्र सुनाकर, उन पर गीत बनाकर, खंजरी जैसे छोटे वाद्यों के सहारे उन्हें जगह-जगह सुनाते रहने का क्रम अपनाया जाय। आठवें दर्जे का विद्यार्थी छोटे दर्जे के छात्रों को बहुत कुछ पढ़ाने-सिखाने की सहायता तो कर ही सकता है। बड़ों को न सही छोटों को आदर्शवादी प्रेरणाएँ देते रहने की दृष्टि से तो हम सभी उपयोगी सिद्ध हो ही सकते हैं।

संजीवनी विद्या—जीवन कला

जिन बालकों की देखभाल, साज-सँभाल अभिभावक ठीक प्रकार करते हैं, उनकी शारीरिक-मानसिक क्षमता विकसित होती रहती है। जिनकी ओर से उपेक्षा बरती जाती है, वे दुर्बल और अनगढ़ रह जाते हैं। जनसमुदाय भी एक प्रकार का बालक है। अपने बलबूते तो वह प्राणी स्तर का निर्वाह ही उचित-अनुचित तरीकों से कर सकता है। उसे समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने के लिए वरिष्ठ प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ती है, ऐसे वरिष्ठ जो न केवल प्रेरणाप्रद परामर्श दे सकें, वरन् अँगुली पकड़कर छोटे बच्चे की तरह चलने-दौड़ने का अभ्यास भी करा सकें।

कहना न होगा कि शिक्षण और अनुभव के सहारे मात्र सम्पन्नता और समर्थता ही अर्जित की जा सकती है। इससे ऊँचे उठकर सुसंस्कारिता को गरिमामय ही आँका जाता है। इसके लिए न केवल अपना उत्साह-साहस काम करता है, वरन् ऐसा वातावरण भी अभीष्ट होता है, जिसमें व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने वाले तत्त्वों का बाहुल्य हो। मोती समुद्र की गहराई में ही उपलब्ध होते हैं और ब्रह्मकमल पर्वत की ऊँची चोटियों पर ही खिलते हैं। उन्हें इच्छानुसार कहीं भी पाया नहीं जा सकता। जीवित तो कोई किसी भी परिस्थिति में रह सकता है। इसके लिए अभ्यास और स्वभाव काम दे जाता है, पर उत्कृष्टता को आरोपित एवं विकसित करने के लिए दक्ष प्रशिक्षितों की आवश्यकता पड़ती है। वह दक्ष भी ऐसे, जो अपने जीवन को मार्गदर्शन की कसौटी पर कसे एवं खरा सिद्ध करने में सफल हो सके हों।

अनगढ़ को सुगढ़ बनाना उच्चस्तरीय कलाकारिता है। सरकस में चित्र-विचित्र काम करने वाले जानवरों को प्रशिक्षित करना हर किसी का काम नहीं है। उसके लिए साहस और कौशल के धनी 'रिंग मास्टरों' की आवश्यकता पड़ती है। पौधे उगाने का काम कोई भी किसान-माली कर सकता है, पर उद्यान को नयनाभिराम बना देना उन विशारदों का काम है, जो काटने, छाँटने और कलम लगाने से लेकर सँभालने-सजाने की प्रवीणता में भी पारंगत हों। उनका अभाव रहे, तो फिर समझना चाहिए कि हरीतिमा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाम पर खरपतवार और झाड़-झंखाड़ ही उग सकेंगे। पार्कों की तरह सुरम्य, शोभायमान बनाने के लिए अनुभवी वन-विज्ञानियों का कौशल ही काम देता है।

मनुष्यों का समुदाय भी अन्य प्राणियों की तरह प्रकृति व्यवस्था के आधार पर जन्मता और बढ़ता रहता है। वनवासी कबीले भी अपनी जनसंख्या बनाए रहते और उसे बढ़ाते भी रहते हैं। इसमें मनुष्य का नहीं, प्रकृति का कौशल काम करता है। उस प्रकृति का, जो कृमि-कीटकों को भारी संख्या में उत्पन्न करती रहती है। कहते हैं कि एक किलोमीटर वर्गभूमि में इतने कृमि-कीटक निवास करते हैं, जितने कि संसार भर में मनुष्यों की आबादी है। उतनों की उत्पादन, पोषण व्यवस्था बनाने वाली प्रकृति यदि मनुष्य के माध्यम से उगाती और बढ़ाती हो, तो आश्चर्य ही क्या है ? जनसंख्या की अभिवृद्धि का श्रेय उनके जन्मदाताओं को भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वे तो प्राणि जगत के अस्तित्व की रक्षा के लिए चल रहे प्रकृति कौशल की कठपुतली मात्र बनकर नियति से जुड़े रहते हैं। भूख की तरह प्रजनन की उमंग भी इस सृष्टि की रहस्यमयी जादूगरी है, जिसके कारण जीवधारियों को आहार खोजने से लेकर प्रजनन कौतुक तक में भी प्रवृत्त रहना पड़ता है। किस देश, समाज में कितनी जनसंख्या की गणना होती है ? इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं। बहुसंख्यक होने के कारण मक्खी-मच्छर अपनी उपयोगिता का विशिष्टता कहाँ सिद्ध कर पाते हैं ? संसार में अनगढ़ और अस्तव्यस्त ही तो बिखरा पड़ा है। अधिकांश भू-खण्ड खाई-खन्दकों, टीलों और कंकड़-पत्थरों से ही पटे पड़े हैं। भूमि को समतल और उर्वर बनाने में तो मनुष्य की सूझ-बूझ और श्रम-पुरुषार्थ ने चमत्कार दिखाया है।

मनुष्य समुदाय भी प्रकृतित: वनचरों की श्रेणी में ही गिना जा सकता है। डार्विन ने तो उसे बन्दर की औलाद तक सिद्ध किया है। अपराध शाखा में निरत कार्यकर्ताओं की दृष्टि में सामान्यत: सभी लोग प्राय: अनैतिक और असंस्कृत होते हैं और कुकर्मी स्तर के क्रियाकलापों में निरत रहते हैं। यदि ऐसा न होता, तो पुलिस, कचहरी, कानून, जेल आदि की क्या आवश्यकता पड़ती ? जाँच-पड़ताल के लिए इतने अधिक निरीक्षक क्यों नियुक्त करने पड़ते ? अध्यापकों, विद्यालयों, चिकित्सकों और अस्पतालों की आवश्यकता भी इसीलिए पड़ती है कि लोग आवश्यक ज्ञान और स्वास्थ्य संरक्षण जैसे सामान्य क्रियाकलाप भी अपने बलबूते उपलब्ध नहीं कर पाते। इस असमर्थता के कारण मनुष्य को मूलत: अनगढ़ भी कहा जा सकता है। मौलिक सामर्थ्य की दृष्टि से वह अगणित जन्तुओं की तुलना में कहीं अधिक असमर्थ है। बन्दर की तरह डालियों पर उछलना, खरगोश की तरह दौड़ना, गधे की तरह भार वहन करना तक तो उससे बन नहीं पड़ता। बतख की तरह तैरना और कबूतर की तरह उड़ना तक तो उसे आता नहीं। फिर भी मनुष्य मनुष्य है। उसने सृष्टि का मुकुटमणि बनने में सफलता पाई है। इसमें उसकी मौलिक प्रतिभा ही सब कुछ करने में समर्थ नहीं हुई है। शिक्षण का वरदान ही है, जिसने उसे कहीं से कहीं पहुँचा देने में सफलता पाई है।

बोलना-चलना, रहन-सहन, खाना-पहनना तक अभिभावक एवं परिवार वाले ही सिखाते हैं। इस सहायता के बिना एकाकी स्थिति में तो उसे गूँगा-बहरा और बकरे-सियारों की तरह गया-गुजरा जीवन व्यतीत करना पड़ता। शायद बन्दर से अधिक अपनी कुशलता प्रदर्शित न कर पाता, क्योंकि वंशानुक्रम के साथ चलते आने वाले प्रगति प्रवाह में उसने स्वावलम्बी जीवन के लिए जो आवश्यक है, उसमें से भी एक बड़ा अंश गँवा या भुला दिया है।

शिक्षण सुविधा का ही चमत्कार है, जिसने क्रमश: मनुष्य को अधिक प्रबुद्ध और प्रवीण बनाया है। इसी के अभाव में अभी तक वनवासी कबीले आदिमकाल से मिलती-जुलती परिस्थितियों में रहने के लिए बाधित हो रहे हैं। जहाँ जितने प्रभावी शिक्षण की व्यवस्था बन पड़ी है, वहाँ प्रगति की उतनी ही अधिक सम्भावना बनती और बढ़ती चली गई है। समुन्नत वर्ग को इसी सुयोग को उपलब्ध कर सकने वाला सौभाग्यशाली कहा जा सकता है।

उत्कर्ष योजना बनाने वाले गरीबी हटाओ के साथ-साथ दूसरी जिस योजना को प्रमुखता देते हैं, उसे 'शिक्षा बढ़ाओ' के रूप में प्रमुखता दी गई है। जीवनयापन में सुविधा-साधनों की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही यह भी अभीष्ट है कि व्यक्ति साक्षर बने और शिक्षा के उस क्षेत्र में प्रवेश करें, जो संसार, समाज, व्यक्ति, साधन और प्रचलन को प्रभावित करती है, उस स्तर तक पहुँचाने में सहायता करती है, जिसे सम्मानजनक, सन्तोषजनक स्थिति कहा जा सके। बिना साक्षरता के मात्र अनुभव और प्रचलन के सहारे अति सीमित ही जाना जा सकता है और वह इतना भी नहीं होता कि भटकावों से बचकर सीधे रास्ते चलने तक के लिए अभ्यास कर सके। निर्वाह के लिए जिस प्रकार आजीविका की, उसी प्रकार कौशल को विकसित करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। इस तथ्य को समझते हुए सरकारी और गैर-सरकारी तन्त्र इस बात के लिए प्रयत्न करते रहते हैं कि आजीविका उपार्जन की तरह हर व्यक्ति को शिक्षित एवं सुयोग्य बनने का भी अवसर मिलता रहे।

यह सामान्य प्रशिक्षण विद्या है, जिसके आधार पर शारीरिक निर्वाह और बौद्धिक कौशल उपलब्ध करके लोग दरिद्रता और अनगढ़ता से ऊँचे उठकर सुविधाजनक जीवन जी सकें, 'जियो और जीने दो' की उक्ति को चरितार्थ करते रह सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षा के मन्दिर कहे जाने वाले विद्यालयों में बहुत कुछ काम की बातें बताई जाती हैं। भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान और स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में वहाँ बहुत कुछ जानने को मिलता है। नागरिकता, सामाजिकता आदि के सिद्धान्त भी समझाए जाते हैं। अनेक कलाएँ और विद्याएँ उन्हें शिक्षण केन्द्रों से हस्तगत होती हैं। डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, कलाकार, व्यवस्थापक स्तर की अनेकों कुशलताएँ प्रशिक्षण केन्द्रों से ही सीखकर अधिक उपार्जन करने, अधिक कौशल दिखाने में लोग समर्थ होते हैं। यदि शिक्षा व्यवस्था न बने पड़े, तो लोग नर-पशु स्तर का जीवनयापन कर सकने तक सीमित रह सकेंगे।

यह प्रत्यक्ष प्रयोजनों के काम आने वाली विधाओं का प्रारूप हुआ। यह आवश्यक तो है, पर पर्याप्त नहीं, इनसे मानवी गरिमा के अनुरूप संतोष, उल्लास, सम्मान एवं शान्ति के साथ जीवनयापन सम्भव हो सकता है। यह आत्मिक क्षेत्र है, वह आत्मिक जिसका स्वरूप गौरव निर्वाह एवं प्रयोग बहुत कम ही लोग जान पाते हैं, फलतः वे शिक्षा और सम्पन्नता रहते हुए भी ऐसी गतिविधि अपनाते हैं, जिनके कारण अपने को विक्षोभ में और सहचरों को विग्रहों में डूबा रहना पड़े। यही है वह केन्द्र बिन्दु जिसके कारण व्यक्ति प्रामाणिकता, प्रतिभा और प्रखरता का धनी बनता है, स्वयं समुन्नत रहकर सम्पर्क वालों को सुविकसित बनाने में असाधारण योगदान करता है।

अध्यात्म की परिभाषा इन दिनों फूहड़ एवं उपहासास्पद स्तर की समझी जाने लगी है। देवी-देवताओं की उल्टी-सीधी मनुहार करके चित्र-विचित्र मनोकामनाओं की पूर्ति करा लेने की आकांक्षा सँजोए रहना आज के अध्यात्म का बहुचर्चित स्वरूप है। इसके आगे वाले कल्पनाशील स्वर्ग और मुक्ति की उड़ानें, पूजा पाठ के क्रिया-कृत्यों के आधार पर सँजोते रहते हैं। देवता के साथ व्यक्तिगत घनिष्ठता जोड़ने और उस आधार पर प्रयत्न साध्य कार्यों को आनन-फानन में पूरा करा लेने की भी कईयों की मान्यता होती है। यह सब पाने के लिए उन्हें इतना ही पर्याप्त लगता है कि कुछ कर्मकाण्डों की चिह्न-पूजा करके सस्ते मोल बहुमूल्य प्रयोजनों को सहज पूरा कर लिया जाय।

इन दिनों इसी जाल-जंजाल में फँसकर अध्यात्म दर्शन का भौंड़ा स्वरूप जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है। इन मान्यताओं के जाल-जंजाल में उलझे हुए लोग आशा-निराशा के झूले में झूलते हुए संयोग के अनुसार कोसते और सराहते रहते हैं, पर वास्तविकता दूसरी ही है। अध्यात्म एक ऐसा जीवन दर्शन है, जिसे सही रूप में जानने-अपनाने पर उस परिस्थिति और मनःस्थिति को सुनिश्चित रूप से उपलब्ध किया जा सकता है, जो व्यक्तित्व को सर्वांगपूर्ण, सुव्यवस्थित, समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाती है। इसके अपने सिद्धान्त और सरलतापूर्वक व्यवहार में उतारे जाने योग्य निर्धारण हैं। उनका बौद्धिक स्वरूप तो उच्चस्तरीय स्वाध्याय और सत्संग के आधार पर समझा जा सकता है, भ्रान्तियों का निराकरण हो सकता है। इतने पर भी एक और आवश्यकता शेष रह जाती है कि आदर्शों को व्यवहार में उतारने के लिए प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया जाय। गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित व्यक्तित्व को परिष्कृत करने के लिए जो चिन्तन, चरित्र और व्यवहार अभीष्ट है, उसकी प्रक्रिया को अन्तराल में गहराई से प्रविष्ट करा सकने का सुनियोजन ही अध्यात्म है। इसे शिक्षा का उच्चस्तरीय स्वरूप माना और 'विद्या' कहा जाता है। 'विद्या' अर्थात जीवन कला-संजीवनी विद्या। इसे सिखाने में जो तन्त्र समर्थ हो, समझना चाहिए कि उसने व्यक्ति निर्माण का उत्तरदायित्व उठाया। मनुष्य यदि समग्र व्यक्तित्व का धनी हो, समझना चाहिए कि उसने अपने भीतर सोई हुई विभूतियों के अजस्र भण्डार को खोज निकाला और उससे निरन्तर लाभान्वित होते रहने का राजमार्ग प्राप्त कर लिया।

मनुष्य की मूलभूत सत्ता आत्मा है, जिसका स्वरूप श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा का प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए किया जा सकता है। आस्था, मान्यता, विचारणा की वह परिपक्व स्थिति परिष्कृत आत्मा है, जो क्रियाकलाप में देवोपम उत्कृष्टता का समावेश कर सके। उसे पाने के उपरान्त और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। जो इस लक्ष्य तक लोकमानस को विकसित एवं प्रशिक्षित कर सके, समझना चाहिए कि वही सच्चे अर्थों में पुरोहित है। व्यक्ति और समाज के समग्र उत्कर्ष के श्रेय-साधक भी ऐसे पुरोहित ही होते हैं। विद्या उन्हीं के द्वारा सुविस्तृत और फलित होती है।

जीवन विद्या के उपयोगी पक्ष भी जानें

निर्वाह की साधन-सामग्री का अभाव गरीबी कहलाता है। गरीब व्यक्ति को मानवोचित जीवनयापन की सुविधा न मिले, तो दुर्बलता और दुर्दशा का शिकार रहना पड़ता है। इसलिए सभी गरीबी को कोसते हैं। उसके लिए व्यक्तिगत प्रयत्नशीलता, परिस्थिति एवं सरकार को दोषी ठहराया जाता है। फिर भी जिससे जो बन पड़ रहा है, वह स्थिति को सुधारने के लिए यथासम्भव प्रयत्नरत है। आशा की जानी चाहिए कि इस दिशा में उभरता असंतोष, प्रतिकूलताओं के स्थान पर अनुकूलता लाने में समाधान पाने की दिशा में कदम बढ़ाता जाएगा।

इससे भी बुरी स्थिति है—व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के रूप एवं समाधान समझने के सम्बन्ध में अज्ञानता। इस कारण मनुष्य स्वयं उलझनें उत्पन्न करता है और जिस दल-दल में फँसा हुआ है, उससे निकलने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल होना तो दूर प्रयत्न तक नहीं करता। जिस कूपमण्डूक का बाहरी जानकारी से कोई सम्पर्क नहीं है, वह प्रगति के सम्बन्ध में क्या तो सोचे और क्या कुछ करे ?

हम उलझनों के जंजाल में जकड़ते और समस्याओं से घिरते जा रहे हैं। इसका कारण है समय के साथ संगति न बिठा पाना। व्यक्तिगत जीवनयापन कैसे किया जाय ? लोकव्यवहार में प्रगतिशील कैसे रहा जाय ? समाज के ओछे प्रचलनों के बीच सीधा रास्ता किस प्रकार पाया जाय ? इसके लिए ऐसे चिन्तन और विवेक की आवश्यकता है, जो उत्कर्ष और औचित्य के लिए उपयुक्त हो। बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ा होना गरीबी से भी अधिक कष्टकर है।

नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों में भरी हुई प्रतिकूलता से जूझने के लिए क्या रणनीति होनी चाहिए ? सर्वतोमुखी प्रगति के लिये क्या दिशाधारा अपनाई जानी चाहिए ? इस प्रकार का लोकशिक्षण आज नहीं के बराबर उपलब्ध है । जो उपलब्ध है, उसे समझने और अपनाने जैसी मनःस्थिति भी लोगों की है नहीं।

प्रधान कारण शिक्षा का अभाव कहा जा सकता है। अशिक्षा ७० प्रतिशत है, जो पढ़े-लिखे हैं वे उस ज्ञान का उपयोग आजीविका कमाने, जरूरी काम-काज निपटाने या मनोरंजन में करते हैं। वैसी अभिरुचि शिक्षितों में नहीं पाई जाती, जिसके आधार पर उलझनों के जाल-जंजाल में से निकलकर उपयुक्तता का राजमार्ग पाया जा सके। इसमें अभिरुचि का पिछड़ापन जितना दोषी है, उतना ही वह वर्ग भी जिसके कंधों पर लोकशिक्षण की जिम्मेदारी है।

कथा-पुराणों या उपन्यासों के सहारे कल्पना की रंगीन उड़ानें उड़ी जा सकती हैं, पर यह नहीं समझा जा सकता कि समय की माँग क्या है ? उलझनों का समाधान क्या है ? प्रगति की दिशा में चलने की रीति-नीति क्या है ?

अनेक प्रश्न सिकुड़कर अब राजनीति के अन्तर्गत आ गए हैं। उसकी हलचलों का समाज पर प्रभाव पड़ता है और उस प्रवाह में व्यक्तिगत जीवन अविज्ञात दिशा में बहता चला जाता है। यही है पिछड़ापन। अनगढ़ स्थिति इसी को कहते हैं। उस दल-दल से उबरने का एक ही मार्ग है, वह है प्रबुद्ध लोकशिक्षण, उन विषयों का जो जीवन क्रम से सीधा सम्बन्ध रखते हैं।

लोकशिक्षण के लिए अभीष्ट साहित्य चाहिए। यह कार्य विभिन्न मंचों से प्रवचन करने वाले भी कर सकते हैं। पत्र-पत्रिकाएँ भी इस प्रयोजन में एक सीमा तक हाथ बँटा सकती है। किन्तु देखा जा रहा है कि जो प्रयत्न चल रहे हैं, वे उथले-खोखले और अपर्याप्त हैं। पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय पर दृष्टि डाली जाय, बुकसेलरों के माल पर नजर दौड़ाई जाय तो उनके गोदामों में जो भरा दीखता है, उसे एक शब्द में लोकशिक्षण की दृष्टि से असंतोषजनक ही कहा जा सकता है। यही हाल पत्र-पत्रिकाओं का है। उनमें अधिकांश सामग्री कौतूहलवर्द्धक या देशी-विदेशी राजनीति से सम्बन्धित होती है। राजनीतिपरक समाचारों में यदि जनसाधारण की स्थिति को समझने और सुधार परिवर्तन के लिए कुछ करने का मार्गदर्शन रहा होता तो भी कुछ बात बनती। अपराधों के समाचारों से कालम भरे रहने पर भय, आतंक, निराशा, खीझ उत्पन्न होती है या फिर ऐसी मान्यता बनती है कि यह तो जमाने का चलन है। उसमें सोचने, करने, सुधारने जैसा उत्साह उभरता नहीं वरन् ठण्डा होता है।

सरकारी प्रचार माध्यमों में पहला नम्बर रेडियो का है, दूसरा दूरदर्शन का। यह दोनों ही जो कार्यक्रम प्रसारित करते हैं, उनमें मनोरंजन तथा सरकारी क्रियाकलापों की चर्चा होती है। जन समस्याओं में परिवार नियोजन, सामान्य स्वास्थ्य जैसे विषयों की झलक रहती है। व्यक्ति और समाज के सामने जो असंख्य समस्याएँ मुँह खोले खड़ी रहती हैं, उन पर गम्भीरतापूर्वक प्रकाश डालने का जैसा प्रयत्न नहीं होता जैसा होना चाहिए।

सिनेमा का महत्त्व सरकारी प्रचार साधनों जितना तो नहीं पर इतना अवश्य है, जिसे कि दर्शकों को अखबारी पाठकों की तुलना में अधिक कहा जा सके। पर सिनेमा में इन दिनों ऐसे चित्रों की बहुतायत रहने लगी है, जिसमें कामुकता अथवा दूसरे प्रकार के समयक्षेप करने वाले प्रकरण भरे रहते हैं।

राजनैतिक सभाएँ, संसदें, विधान सभाएँ उन प्रसंगों को छेड़ती हैं, जो सरकारी अर्थ नीति से विशेषतया सम्बन्धित होते हैं। उनमें ऐसे कानूनी प्रावधानों का नगण्य-सा पुट रहता है, जिनसे जनजीवन का सीधा सम्बन्ध है।

धार्मिक क्षेत्र में कथा-कीर्तनों और पूजा-पाठ के अतिरिक्त ऐसा कुछ कम ही देखा-सुना गया है, जो पुरातन गाथाओं या देवताओं के गुणानुवादों को छोड़कर, ऐसा कुछ सिखाए, जिसके आधार पर व्यक्ति अपने समय की निजी तथा सामाजिक समस्याओं से जूझ सकें और समय के साथ चल सकने के लिए, मजबूत कदम उठा सकें। गायन-वादन, अभिनय के क्रियाकलाप भी छोटे-बड़े रूप में जहाँ-तहाँ चलते रहते हैं, पर उनमें किसी परीलोक के प्रेम-प्रसंगों की ही भरमार है। निजी-जीवन में आदर्शवाद तथा शालीनता का समन्वय किस प्रकार हो सकता है और समाज में तथा राजनैतिक प्रसंगों में अपनी भूमिका किस प्रकार निभा सकता है ? इसका व्यावहारिक मार्गदर्शन चलता हो, ऐसे अवसर यदा-कदा ही कहीं आते हैं।

जानकारियों का क्षेत्र असीम है। इसमें भूगोल, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान, पदार्थ विज्ञान जैसे अगणित प्रसंगों की भरमार है। इस संदर्भ में विद्यालयों की उच्च

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कक्षाएँ भी अपने क्षेत्र को बहुत कुछ सिखाती हैं, पर यह नहीं बतातीं कि शरीर में, परिवार में, कोई विग्रह खड़े हो जाएँ तो उनका निराकरण कैसे हो सकता है ? कुरीतियों से, भ्रान्तियों से, अवांछनीयताओं से कैसे जूझा जा सकता है ? अड़ी हुई अड़चनों को कैसे निरस्त किया जा सकता है ?

व्यावहारिक जीवन की प्रगतिशीलता ही वास्तविक समृद्धि और सफलता है। उसे हस्तगत करने के लिये किस प्रकार सोचना, किस प्रकार चरित्र को ढालना, सम्बन्धों को सुधारना सम्भव है ? इस जानकारी की यदि कमी ही बनी रही तो दरिद्रता से भी अधिक भयंकर अनाड़ीपन से घिरे रहेंगे, अपने तथा दूसरों के लिए भारभूत बनेंगे।

संजीवनी विद्या का विस्तार—जिसे किए बिना कोई गति नहीं

आवश्यक-अनावश्यक जानकारियाँ सिर पर लादने और नौकरी स्तर की कुछ आजीविका कमा लेने के लक्ष्य तक सीमित वर्तमान स्कूली शिक्षा अपने ढर्रे पर चलती भी रह सकती है। जिन्हें उसमें रुचि हो, वे उसे अपनाए भी रहें, पर उसी को सब कुछ मानकर उसी परिधि में सीमित रहने से काम चलेगा नहीं। अगले दिनों व्यक्ति और समाज को जिस ढाँचे में ढलना है, उसका प्रकाश-आभास भी उसमें कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता। जिस सुधार और सृजन की आवश्यकता पड़ेगी, उसके लिए कोई संकेत तक उसमें नहीं है। आज तो सबसे अधिक आवश्यकता उसी की है, जिसको प्राचीनकाल से विद्या या मेधा के नाम से जाना जाता है, जो स्वयं ही हर समस्या का निराकरण करने की स्थिति में होती है। अब आगमन-अवतरण उसी का होने जा रहा है।

जिन अभिनव जानकारियों और प्रेरणाओं की इन्हीं दिनों आवश्यकता है, उन्हें प्राप्त करने के लिए स्कूलों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उनमें एक तो उन विषयों का समावेश ही नहीं है, दूसरे वह पुस्तक-रटन से पूरी भी नहीं हो सकती। उसके लिए प्रत्यक्ष उदाहरणों का प्रेरणाप्रद माहौल सामने रहना चाहिए। विशेषतया अध्यापक इस स्तर के होने चाहिए, जो अपने साँचे में ढालकर छात्रों को प्रतिभावान-प्राणवान बना सकें, जो न केवल स्वयं बनें, वरन् अपने आलोक से समूचे सम्पर्क क्षेत्र को प्रकाशित कर सकें।

प्रज्ञा का अवतरण और विस्तार का कार्य असाधारण रूप से विस्तृत है। उस शिक्षित-अशिक्षित, नर-नारी, बाल-वृद्ध स्वस्थ-रोगी सभी को अवगत कराया जाना है। भाषाओं की छोटी-छोटी परिधि में बँटे हुए इस संसार में रहने वाले ६०० करोड़ मनुष्यों को एक प्रकार से युग चेतना-तंत्र के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जाना है। यह योजना इतनी बड़ी होगी कि उसे पूरी करने में कम से कम सौ वर्ष समय और अरबों-खरबों जितना धन जुटाना पड़ेगा। अध्यापक भर्ती और प्रशिक्षित करने पड़ेंगे, सो अलग। इसलिए युगशिक्षा का स्वरूप उन आधारों को अपनाते हुए विनिर्मित करना पड़ेगा, जो आज की परिस्थितियों में इन्हीं दिनों कर सकना सम्भव हो।

बड़े प्रयासों की प्रतीक्षा में रुके रहने की अपेक्षा, यही उपयुक्त समझा गया है कि वर्तमान परिस्थितियों में अपने छोटे साधनों से जो सम्भव हो, उसे तुरन्त आरम्भ किया जाय और लोगों को देखने दिया जाय कि आरम्भ का प्रतिफल किस रूप में उपलब्ध हो रहा है। बात यदि वजनदार होगी, तो लोग अपनाएँगे भी। प्रचलित शिक्षा प्रणाली किसी हद तक अपना अस्तित्व बनाए भी रह सकती है, पर उसकी आड़ में युग-शिक्षण को रोका नहीं जा सकता।

युग शिक्षण में यह विषय आवश्यक है—(१) व्यक्तित्व का समग्र विकास-परिष्कार। (२) समाज संरचना और उसके साथ जुड़े हुए प्रचलनों का नव निर्धारण। (३) अर्थव्यवस्था। (४) सुलभ आजीविका कैसे उपलब्ध हो ? (५) मनुष्य के चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में शालीनता का समावेश किस प्रकार बढ़ता चले ? (६) परिवारों की वर्तमान संरचना में क्या सुधार-परिवर्तन किया जाय ? (७) शारीरिक और मानसिक रुग्णता से सुनिश्चित छुटकारा किस प्रकार मिले ? (८) अवांछनीयता से किस प्रकार निपटा जाय ? (९) अब की अपेक्षा नहीं सुखद और सरल परिस्थितियों का निर्धारण कैसे किया जाय ? (१०) सहकारिता और सद्भावना का क्षेत्र कैसे बढ़े ? (११) तत्त्व दर्शन क्षेत्र में परिष्कार विरोधी मान्यताओं का समीकरण कैसे किया जाय ? (१२) राजतंत्र और धर्मतंत्र की उभयपक्षीय समर्थ शक्तियों को किस प्रकार नये युग के अनुरूप साँचे में ढाला जाय ?

यह कुछ थोड़े-से विषयों की ही चर्चा है। इन्हीं विषयों में से प्रत्येक की अनेकों शाखाएँ-प्रशाखाएँ फूटती हैं और वे अपने आपको एक स्वतन्त्र विषय-क्षेत्र घोषित करती हैं। ऐसी दशा में युग शिक्षा का पुस्तकीय, मौखिक और व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करना इतना बड़ा काम हो जाता है, जिसे वर्तमान शिक्षा तन्त्र की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक और वजनदार कहा ही जाएगा।

विलम्ब से बनने वाले किले या महल की तुलना में यही अच्छा है कि आज की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली झोपड़ी का ढाँचा अपने ही हाथों, अपने साधनों से खड़ा कर लिया जाय।

युग साहित्य का सृजन इस संदर्भ में प्रत्यक्ष कार्य है, ताकि अभिनव प्रसंग की पृष्ठभूमि और रूपरेखा के सम्बन्ध में जिन बातों की अनिवार्य रूप से तात्कालिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता है, उसे पूरा न सही, मार्गदर्शक रूप में तो प्रस्तुत किया ही जा सके। लोग उपयोगिता समझेंगे, तो उस प्रयोग को विस्तार देने में भी उत्साह प्रदर्शित करेंगे।

प्रदर्शनियाँ इसीलिए लगाई जाती हैं कि उन्हें देखकर लोग किसी सुव्यवस्थित विषय की जानकारी कम समय में प्राप्त कर सकें। अपनी सामर्थ्य और कार्य की विशालता का मध्यवर्ती तालमेल जिस प्रकार बैठ सकता था, उसी को इन दिनों अपनी सूझ-बूझ और प्रभाव के अनुरूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

युगनिर्माण योजना, मथुरा और शान्तिकुंज, हरिद्वार से ऐसा साहित्य प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया गया है, जो प्रस्तुत समस्याओं के अनेकानेक विषयों पर प्रकाश डालता है। इन विषयों के संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण से काम न चलेगा, उसका अनेक भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन होना चाहिए। सीमित लेखन भी पर्याप्त नहीं। अब हर विषय को अनेक तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों और उदाहरणों के साथ प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। अगले दिनों युग साहित्य के ऐसे ही विस्तार की आवश्यकता है। बिना किसी प्रतीक्षा के वर्तमान साधनों से ही उसका शुभारम्भ कर दिया गया है। आशा यह रखी गई है, कि रोपा गया यह अंकुर अगले दिनों वट-वृक्षों जैसा विशाल कलेवर धारण करेगा।

इस कार्यक्रम में कितनी ही कठिनाइयाँ हैं। एक यह कि अपने देश की दो तिहाई जनता अशिक्षित है; वह साहित्य का लाभ कैसे उठाए ? फिर इस घोर महँगाई के जमाने में आर्थिक कठिनाइयों से ग्रस्त अशिक्षित स्तर की जनता उसे किस आधार पर खरीदे ? थोड़े-से जो शिक्षित बच जाते हैं, वे भी मनोरंजन के लिए चटपटा साहित्य भर खरीदते हैं। युग साहित्य में ऐसा कुछ न रहने पर उन पर भी जबरदस्ती कैसे लादा जाय ? एक तो युग साहित्य का लेखन भी मात्र युगद्रष्टा के ही बल-बूते का काम है। दूसरे उसके प्रकाशन में बड़ी पूँजी लगती है। इतने पर भी बिक्री की माँग अत्यन्त धीमी रहने से उसका प्रचार-प्रसार कैसे हो ? महँगे मूल्य की बढ़िया सजधज वाली पुस्तकें छापी जाएँ, तो उन्हें या तो सरकारी शिक्षा तन्त्र के ऊपर अतिरिक्त सुविधा शुल्क देकर थोपा जा सकता है, या फिर कोई सम्पन्न अपनी आलमारियों की शोभा बढ़ाने के लिए उसे खरीद सकते हैं। यह समूची विडम्बना भी ऐसी है, जिसके कारण लेखक, प्रकाशन, मुद्रण, विक्रय आदि सभी ओर से अवरोध खड़े हो जाते हैं।

आवश्यकता हर भाषा में स्थानीय मन:स्थिति और परिस्थिति के साथ ताल-मेल बिठाने वाले साहित्य-सृजन की है। कठिन और असम्भव दीखने वाले इस माध्यम को, सर्वत्र निराशा दीख पड़ने पर भी इन्हीं दिनों आरम्भ कर भी दिया गया है।

एक लाख अध्यापकों द्वारा विद्या विस्तार का श्रीगणेश

युग साहित्य के विक्रय को महत्त्व न देते हुए सोचा गया है कि उसे हर शिक्षित को पढ़ाने और हर अशिक्षित को सुनाने की एक ऐसी योजना अपनाई जाय, जो अन्यत्र कदाचित ही कहीं और क्रियान्वित होती देखी जाती है।

युग-शिल्पयों में से प्रत्येक को कहा गया है कि वे न्यूनतम २० पैसा नित्य का अंशदान और दो घण्टे का समयदान प्रस्तुत ज्ञान-यज्ञ के लिए नियमित रूप से दें। इस पैसे से हर महीने नया छपने वाला साहित्य खरीदते रहें। उसे स्वयं तो पढ़ें ही, परिकर वालों को तो पढ़ाएँ या सुनाएँ ही, झोला पुस्तकालय योजना के अन्तर्गत अपने परिचय क्षेत्र में शिक्षितों से सम्पर्क साधें और युग साहित्य बिना मूल्य घर बैठे पहुँचाने, पढ़ लेने पर वापस लेने एवं अगली पुस्तकें पढ़ने के लिए देने का क्रम चलाएँ।

यह सिलसिला सदा-सर्वदा चलता रह सकता है। पढ़ने वाला बिना पढ़ों को सुनाता भी रह सकता है। दो ऐसे व्यक्ति साथ जुड़ें, तो सौ शिक्षित सदस्यों को पढ़ा कर, दो सौ बिना पढ़ों को सुनाकर, तीन सौ की एक मंडली बना सकते हैं। उसका सुसंतुलन एक युग-शिल्पी के बीस पैसे नित्य और दो घण्टे समयदान के माध्यम से बिना किसी कठिनाई के गतिशील रह सकता है। यह सारा साहित्य, संचालक की घरेलू लाइब्रेरी से लेकर, स्वजन-सम्बन्धी, परिचित-पड़ौसी बिना किसी प्रकार का खर्च किए, दीर्घकाल तक पढ़ते और पढ़ाते रह सकते हैं।

कहने-सुनने में योजना अटपटी-सी लगती है, पर कार्य करने वाले के लिए इस संसार में कुछ भी कठिन नहीं है। शांतिकुंज के साथ जुड़े हुए लोगों में से अधिकांश इस प्रक्रिया को धर्म-कर्तव्य, एक उच्चस्तरीय परमार्थ समझकर श्रद्धापूर्वक अपनाए रहते हैं। इस आधार पर युग साहित्य के पाठकों की संख्या करोड़ों तक पहुँच चुकी है। भले ही उसे खरीदने वालों की संख्या सीमित ही रही हो।

अखण्ड ज्योति अपने मिशन की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका है। वह अन्य भाषाओं के अनुवादों समेत प्राय: पाँच लाख की संख्या में छपती है। इनके पाठकों को निर्देश है कि हर अंक प्राय: पाँच के द्वारा पढ़ा या सुना ही जाय। इस प्रकार पाँच लाख पत्रिका प्राय: पच्चीस लाख पाठकों द्वारा पढ़ी या सुनी जाती है। मिशन के सूत्र-संचालक, इसी को अपनी संरचनात्मक सम्पत्ति मानते हैं और पूरा-पक्का विश्वास जताते हैं कि इतनी भुजाओं के बलबूते, समय की माँग का एक बड़ा भाग निश्चित रूप से पूरा किया जा सकेगा।

प्राचीनकाल के विद्या-विस्तारक न केवल छात्रों को पढ़ाकर छुटकारा पा जाते थे, वरन् उन्हें ढूँढ़ने, इकट्ठा करने, उत्साह भरने के कार्य दूसरों की सहायता की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षा किए बिना भी, अपने बलबूते ही कर लेते थे। साधनों की, सहयोग की अपेक्षा तो हर काम में रहती है। विद्या-विस्तार में उसके बिना ही काम चल जाय, यह नहीं हो सकता। इतने पर भी यह निश्चित है कि समर्थ चुम्बक अपने इर्द-गिर्द बिखरे लौह कणों को खींचने-घसीटने और अपने साथ चिपका लेने में अकेली क्षमता के बलबूते भी सफल होकर रहता है।

विद्या-विस्तार की अभिनव योजना के क्रियान्वयन में भी इसी तथ्य को मान्यता देते हुए ताना-बाना बुना गया है। पच्चीस लाख शिरों और पचास लाख भुजदण्डों में से अधिकांश निष्क्रिय-निरुत्साहित रहें, संकीर्ण स्वार्थपरता की कीचड़ से इस आपत्तिकाल की पुकार सुनकर भी बाहर न निकलें, तो भी विश्वास किया गया है कि न्यूनतम एक लाख परिजनों को तो युग चेतना का आलोक वितरण करने के कार्य में जुटाया ही जा सकेगा। यह विश्वास, भावुक कपोल-कल्पना के आधार पर नहीं उभरा है। अब तक प्रायः अस्सी वर्ष जी लेने और निरन्तर सेवा-संगठन में निरत रहने पर जो अनुभव एकत्रित किए हैं, उनकी साक्षी एवं छत्रछाया में यह पूरी-पूरी गुंजाइश है, कि युग-शिल्पयों का पूरा समय न निकल सके, तो भी दो-चार घण्टे आसानी से निकाले और आपत्तिकालीन आवश्यकता में लगाए जा सकते हैं।

समयदान, अंशदान-यह दो अनुबन्ध ऐसे हैं, जिन्हें प्रज्ञा परिजनों के लिए अपने-अपने क्षेत्र में नियोजित किए रहना एक प्रकार से अनिवार्य कर दिया गया है।

भावना-शून्य निष्ठुरों की संकीर्णता ही इतनी बोझिल रहती है कि उसके रहते व्यस्तता-अभावग्रस्तता का बना-बनाया, गढ़ा-गढ़ाया बहाना, सदा-सर्वदा एक रस बना रहता है, उन पर दूसरों का हड़पने भर की हविश छाई रहती है। अपना देना तो मानों वज्रपात की तरह असह्य हो ? ऐसे लोग अपने परिवार में भी हो सकते हैं, पर यह विश्वास किया गया है कि पच्चीस लाख में से एक लाख ऐसे अवश्य निकल आएँगे, जो इस आपातकाल में बीस पैसे और दो चार घण्टे नित्य का समय लोकमंगल के लिए लगाते रह सकें।

यह समाज और पैसा अपने ही सम्पर्क क्षेत्र में विद्या विस्तार में खर्च किया जाना है। किन्हीं अन्य को देने की आवश्यकता नहीं है। अपने हाथों अपना समय और पैसा खर्च करने में इस बात की आशंका नहीं रहती कि कहीं कोई ठग तो नहीं रहा है ?

सेवा-साधना का यह क्रम अपनाकर, आरम्भ से ही एक लाख अध्यापक प्रति सौ के हिसाब से एक करोड़ छात्रों से सम्पर्क साधने और उन्हें नवयुग के अनुरूप प्रेरणा देने में समर्थ हो सकेंगे। यदि आशा से अधिक परिणाम निकलने आरम्भ हो गए, तो पाँच लाख परिजन पाँच करोड़ को भी झकझोरने, हिलाने, घसीटने और उठाकर खड़ा कर देने में समर्थ हो सकते हैं। यही बात यदि सम्पर्क क्षेत्र के वर्तमान पच्चीस लाख परिजनों तक लागू होने लगे, तो समझना चाहिए कि पच्चीस करोड़ को विद्यादान करने का सिलसिला चल पड़ा।

अपने घर-परिवार की परिधि के भीतर क्या हो सकता है ? यह अनुमान लगाते हुए यह सब सोचा जा रहा है। पर इतना ही छोटा अनुबन्ध बँधा रहे, यह सम्भव नहीं। जब चोर-उचक्के, नशेबाज, गुण्डे, उच्छृंखल, व्यभिचारी अपने-अपने सम्पर्क में कितनों को ही नए सिरे से प्रभावित करते और साथी-सहयोगी बनाते देखे नए हैं, तो कोई कारण नहीं कि उच्च उद्देश्यों पर सच्चे मन से निष्ठा रखने वाले, चिन्तन को क्रिया के साथ जोड़ने वाले यदि उमंगों में लहराने लगें, तो पहले जैसे अनेकों को खींच-घसीट न सकें, परिवार को बढ़ा न सकें ?

प्रज्ञा-परिजनों को एक-से पाँच, पाँच से पच्चीस, पच्चीस से एक-सौ पच्चीस बनने के लिए प्रयत्नशील होने के लिए पूरी तरह उकसाया गया है। एक से पाँच की गुणन प्रक्रिया यदि सचमुच पिल पड़े, तो चार-पाँच छलाँगों में ही देश की अस्सी करोड़ जनता को सृजन चेतना से अनुप्राणित किया जा सकता है। चूँकि अपना आन्दोलन सार्वजनीन, सार्वभौम, सभी जातियों और सभी मान्यताओं वालों के लिए समान रूप से खुला है, तो किसी संकुचित क्षेत्र तक सीमित रहने की आशंका तो रहती ही नहीं। निष्कर्ष यही निकलता है, कि युग चेतना सूर्य किरणों की तरह आरम्भ कहीं से क्यों न हो, अन्ततः विश्वव्यापी बनकर रहेगी।

संजीवनी विद्या को व्यापक बनाया जाय

यहाँ चर्चा जीवन्तों और प्राणवानों की हो रही है, जिनके लिए अपनी गाड़ी धकेलने में कोई हैरानी नहीं पड़ती और जो दूसरों को सहारा दे सकने में भी समर्थ हैं। भेड़ तक, ऊन का उपहार लिए प्रस्तुत रहती हैं। पेड़ों को अपनी पत्तियों, लकड़ियों और फल-फूलों की सम्पदा बाँटने में संकीर्णता नहीं होती। फिर मनुष्य में तो उदारता का कुछ अंश होना ही चाहिए। सोचते हैं कि हजार पीछे एक तो ऐसा होगा ही, जिसे मानवी गरिमा का स्मरण हो, जो भलाई करने और विकृतियों के निराकरण में किसी न किसी काम आए।

आठ घण्टे कमाने, सात घण्टे सोने और पाँच घण्टे जिधर-तिधर भाग-दौड़ करते रहने के लिए सुरक्षित रख लिए जाएँ, तो भी २० घण्टे में दिनचर्या भली प्रकार निभ जाती है। चार घण्टे परमार्थ-प्रयोजनों में निरन्तर लगाते रहने के लिए उनके पास भी बच जाता है, जो रोज कुआँ खोदने और रोज पानी पीने के लिए विवश हैं। ऐसों के अतिरिक्त उन सरकारी पेंशनरों की संख्या कम नहीं, जो मात्र पचपन वर्षों में ही पेंशन ले लेते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कम से कम अस्सी वर्ष की आयु तक शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करने की स्थिति में रहते हैं। यदि वे अन्तरात्मा की पुकार सुन सकें, तो युग धर्म की चुनौती स्वीकार करने में अपने बचे जीवन को बिना किसी कठिनाई के लगा सकते हैं।

जिनके लड़के-बच्चे कमाने लायक हो गए, उनमें से असंख्य निष्क्रिय जीवन बिताने लगते हैं, आवारागर्दी में समय गुजारते हैं। एक बड़ा वर्ग ऐसा भी है, जिसने पिछले दिनों पर्याप्त पैसे कमा लिया अथवा उत्तराधिकार में प्राप्त प्रचुर सम्पत्ति हथिया ली। यदि वे चाहें, तो इस सम्पदा को बैंक में जमा करके उसके ब्याज से शेष जीवन एवं बच्चों का उत्तरदायित्व भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। इनके पास समय ही समय है। यदि उनका मन कीचड़ में उगने वाले कमल की तरह तनिक ऊँचा उठ सके, आदर्श और चिन्तन की ओर मुँह मोड़ सके, तो समझना चाहिए कि युग प्रशिक्षकों की एक नई सेना मोर्चे पर आ खड़ी हुई। साधु, ब्राह्मण, पुरोहित वर्ग तो धर्म के आधार पर ही आजीविका अर्जित करता है। उसके लिए तो अनिवार्य कर्तव्य बन जाता है कि नमक हलाल तो कहलाते ही रहें। भजन करने का बहाना तो ऐसा नहीं है, जिसकी आड़ में जनसाधारण की श्रद्धा और सम्पदा का दोहन किया जाता रहे।

महिलाओं में से भी कुछ न कुछ ऐसी हो सकती हैं, जिन्हें रसोईदारिन, चौकीदारिन, धोबिन स्तर के कामों से थोड़ी फुरसत मिल सकती है। वे युग-धर्म की माँग में अपना थोड़ा-बहुत समयदान, अंशदान तो लगा ही सकती हैं। विधवाओं-परित्यक्ताओं का एक बड़ा वर्ग भी जिस-तिस की बेगार भर करता रहता है। जिनके विवाह सामाजिक विडम्बनाओं ने सम्भव नहीं होने दिए अथवा जिनके मन में अपने पिछड़े समुदाय के प्रति किसी कोने में दर्द है, वे प्राय: अविवाहित ही रह जाती हैं। निराश्रित होने पर नौकरी करती और उस कमाई को भाई-भतीजों पर उड़ेलती रहती हैं। ऐसी देवियाँ, यों अपने को दुर्भाग्यग्रस्त मानती हैं, पर वे वस्तुत: सौभाग्यवती हैं, जिन्हें बन्दी-दासी का जीवन जीने की विवशता से भगवान ने बचा लिया। घर में बहुएँ आ जाने पर तो सास वर्ग की महिलाएँ, प्रौढ़ होते हुए भी काम-धंधों से छुटकारा पा जाती हैं। सम्पन्न परिवारों में अच्छी कमाई होने के कारण नौकर-चाकर सब काम कर देते हैं। घर की महिलाओं के पास तो टी० वी० देखने, रेडियो सुनने, उपन्यास पढ़ने जैसे बेकार काम ही समय काटने के लिए शेष रह जाते हैं। यह वर्ग भी इतना बड़ा है, जो चाहे तो महिला उत्कर्ष के लिए बहुत कुछ कर सकता है।

महिला समुदाय के उपरोक्त वर्ग ऐसे नहीं हैं, जो काम की अधिकता की बात कहकर महिला-उत्थान की सामयिक महत्ता-आवश्यकता को नकारने के लिए कोई समझ में आ सकने योग्य बहाना गढ़ सकें।

इस समय प्रजनन के भार से धरती त्राहि-त्राहि कर रही है और समाज का ढाँचा बुरी तरह लड़खड़ा रहा है। ऐसे आपत्ति काल में जो नर-नारी बच्चे जनने से हाथ सिकोड़ें, उन्हें समझदारों और दूरदर्शियों में गिना जा सकता है। यदि ऐसा कहीं सम्भव हो, वहाँ यह सम्भावना साकार होती है कि दोनों एक-एक मिलकर ग्यारह का उदाहरण बनें। एक-दूसरे को ऊँचा उठाने में सहायता करें। बच्चों का झंझट न होने पर दोनों मिलकर युग धर्म का निर्वाह कर ग्यारह गुना काम कर सकते हैं।

प्रसव पीड़ा में १३ प्रतिशत महिलाएँ मर जाती हैं और बड़ी संख्या में आजीवन रुग्णता-दुर्बलता का शिकार बनती हैं। उन पतियों पर लानत की धूलि कौन फैंके, जो पत्नी की आधी जिन्दगी अर्ध-मृतकों के स्तर की व्यतीत करने के लिए बाधित करते हैं। अपना अर्थ भार दूना-चौगुना बढ़ाते हैं। सुसंस्कार दे सकने की योग्यता न होने पर बच्चों को कुसंस्कारी बनाते हैं और समाज के लिए असंख्य समस्याएँ खड़ी करते हैं। यदि बच्चे उत्पन्न करने की सामयिक मूर्खता से बचा जा सके, तो इन दिनों भी अनेक महिलाएँ नारी उत्कर्ष के कार्य में जुट सकती हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र में एक प्रकार से अभिनव क्रान्ति उत्पन्न कर सकती है।

प्रश्न व्यस्तता, अभावग्रस्तता आदि का नहीं, वरन् एक ही है कि जन-जन पर कृपणता, निष्ठुरता, घिनौनी स्वार्थपरता के रूप में शैतान ही छाया है। वही आदर्शों के निमित्त कुछ संयम बरतने और परमार्थपरक सेवा-साधना करने के मार्ग में अवरोध बनकर खड़ा होता है। यदि किसी प्रकार उसे घटाया-हटाया जा सके, तो समझना चाहिए कि शिक्षित-अशिक्षित स्तर के कोई भी नर-नारी किसी न किसी हद तक युग अध्यापक की छोटी-बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। यदि ऐसा माहौल बन सके, तो समझना चाहिए कि महाकाल की महती आवश्यकता का एक बड़ा अंश सरलतापूर्वक सम्पन्न हो गया।

कोई समय था, जब सभी देवालय, गुरुकुल, आरण्यक, आश्रम, तीर्थ इसी एक काम में अपनी क्षमता नियोजित किए रहते थे। उनमें बड़ी संख्या में ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, ऋषि-मनीषी रहा करते थे और वहाँ पहुँचने वालों को उनकी योग्यता एवं परिस्थिति के अनुरूप इस प्रकार का शिक्षण दिया करते थे, ताकि हर आगन्तुक को ऊँचा उठने-आगे बढ़ने में सहायता मिल सके। यही कारण था कि बालकों से लेकर वृद्धों तक को संजीवनी विद्या का ज्ञान रहता था और वे उसका अनुकरण करते हुए उस स्तर के बनते थे, जिन्हें सच्चे अर्थों में देवमानव कहा जा सके। ऐसे लोग जहाँ भी बसेंगे वह धरती सहज ही स्वर्गोपम कही और समझी जाने लगेगी। ऐसा वातावरण पुरातनकाल में तो था ही, अब उसी प्रक्रिया को फिर अपनाया जाने लगे, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं किया जाना चाहिए कि सतयुग की वापसी होकर रहेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रश्न शिक्षा-पद्धति एवं शिक्षकों का है, उसे शान्तिकुंज ने पूरा करने का निश्चय कर लिया है। इसके लिए स्वाध्याय-सत्संग का ही नहीं, उन छोटे-बड़े आयोजनों-समारोहों की भी व्यवस्था बनाई गई है, जिनके आकर्षण से जनसमुदाय को एकत्रित और प्रशिक्षित किया जा सके।

महाविद्या का उदय और अभ्युदय

अग्नि की ऊर्जा जहाँ भी उत्पन्न होती है, वहाँ वह समीपवर्ती वातावरण को ऊर्जायुक्त बनाए बिना नहीं रहती है। सुगंध का भी यह उपक्रम है; वह जहाँ भी रखी जाती है, समीपवर्ती क्षेत्र में भी वैसी ही गंध फैलाती रहती है। विद्या के सम्बन्ध में भी यही समझा जाना चाहिए। गंगा भले ही एक चट्टान पर उतरी हो, पर उसकी जलधारा दूर-दूर तक शीतलता-सरसता का विस्तार करती रहती है। यों दुर्बुद्धि भी अपने समीपवर्तियों को लपेट में लेती है, किन्तु सदाशयता का अपना विशेष क्षेत्र और स्वभाव है। वह मलयानिल की तरह दूर-दूर तक अपने प्रभाव का परिचय देती है। सूर्य का प्रकाश भी धरती के हर कोने में पहुँचता रहता है। प्रज्ञा का स्वभाव भी इसी प्रकार विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करने का है।

बीसवीं सदी में विज्ञान को आगे रखकर किए गए अनाचारों पर नियन्ता को बहुत क्षोभ है। वे अधिक समय उस अवांछनीयता को उसी रूप में बनी नहीं रहने देना चाहते। यों व्यापक परिवर्तनों की तैयारी हो चली है। इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य की संरचना इसी आधार पर होने जा रही है। इस प्रक्रिया का प्रमुख कार्य एक ही होगा, जिसे प्रज्ञा युग का अवतरण कह सकते हैं। विचार क्रान्ति, ज्ञानयज्ञ जैसे नाम भी इसी को दिए गए हैं। यदि इसी को विद्या विस्तार कहा जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं।

उदरपूर्ति के लिए प्रयुक्त होने वाली विविध जानकारियों का भानुमती वाला पिटारा सिर पर लादे हुए, शिक्षा दिन-दिन प्रगति करती जा रही है। उसे बेचने वाली दुकानें गली-मुहल्लों, गाँव-नगरों में तेजी से खुलती चली जा रही हैं। अध्यापकों की विशाल संख्या उसी प्रयोजन के लिए नियुक्त-निरत हैं। छात्रों की भी कमी नहीं। वे नौकरी पाने की लालसा में बड़ी संख्या में वहाँ पहुँचते हैं। कभी तो प्रवेश मिलना तक कठिन हो जाता है। जो सफल नहीं हो पाते, नौकरी नहीं पा लेते, वे निराशा और खीझ से उद्विग्न होकर ऐसी राह पकड़ते देखे गए हैं, जिसे अनुचित और अवांछनीय ही कह सकते हैं। प्रस्तुत शिक्षा प्रणाली की अपूर्णता को देखते हुए क्रमशः उसके प्रति क्षोभ भी बढ़ता जाता है।

प्रस्तुत अनौचित्य से निपटने और औचित्य को सक्रिय करने के लिए जिस विद्या की इन दिनों महती आवश्यकता हैं, इक्कीसवीं सदी के साथ-साथ दिग्दिगन्त को आलोकित करने के लिए वह उषाकाल की तरह उभरती चली आ रही है। उसका विस्तार होना ही है। उसे व्यापक बनना ही है। शिक्षा के लिए साक्षरता सम्पादन की अनिवार्य आवश्यकता है, किन्तु विद्या के साथ जुड़ी हुई आदर्शवादी उत्कृष्टता तो सीधे अन्तःकरण में उतर जाती है। निरक्षरता भी उसमें बाधक नहीं होती। शालीनता, सज्जनता, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता के सिद्धान्तों को हृदयंगम करने के लिए साक्षरता अनिवार्य नहीं है।

क्षेत्र विस्तार को देखते हुए इस सरंजाम को जुटाने के लिए बड़े परिमाण में प्रयत्नशीलता अपनानी होगी। प्रश्न किसी क्षेत्र या देश का नहीं, वरन् समूचे संसार को इसी की प्यास है। इस संदर्भ में शिक्षित-अशिक्षित, निर्धन और धनाध्यक्ष, सेवक और स्वामी, नर और नारी प्रायः सभी स्तर के लोग संसार भर में एक जैसी रटन लगाए हुए हैं। सभी एक जैसी तृषा और आवश्यकता अनुभव करते हैं। मान्यताओं, भावनाओं और आदतों में अनौचित्य का समावेश हो जाने से अगणित समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। गंदगी की सड़न से अवांछनीय स्तर के कृमि-कीटक उपजते हैं और बीमारियों के विषाणु टिड्डी-दल की तरह दौड़ पड़ते हैं। कुरूपता और दुर्बलता तो उसके साथ जुड़ी ही रहती है। यही है दुर्गति की स्थिति, जो हर जगह न्यूनाधिक मात्रा में देखी जा सकती है। समाधान, निराकरण इसी का होना है, अस्तु न केवल कचरे को बुहारना होगा, वरन् उस स्थान पर चूने की पुताई, गोबर की लिपाई अथवा फिनायल जैसे कृमिनाशकों की छिड़काई भी आवश्यक होगी। यह दोनों कार्य विद्या विस्तार से ही सम्भव है। यहाँ विद्या शब्द का सही अर्थ भी समझना होगा। वह साक्षरता तक सीमित नहीं है, वरन् दूरदर्शी विवेकशीलता और ममतामयी भाव संवेदना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ती है।

विद्या के लाभ परोक्ष हैं। उसके सहारे विवेक उभरता है। नीर-क्षीर विवेक के राजहंसों जैसी प्रवृत्ति उभरती है, व्यक्तित्व परिष्कृत होता और प्रतिभा निखरती है। सम्पन्नता भले ही सीमित रहे, पर शालीनता इतनी ऊँचाई तक उठ जाती है, जिसे देव मानव की संज्ञा मिल सके; जिसके धारण कर्ता को नर-रत्नों में गिना जा सके। सुधारक, उद्धारक ऐसों को ही समझा जाता है। यह सभी विशेषताएँ उद्देश्य स्तर की होती हैं। इसलिए औसत आदमी उसकी ओर ध्यान नहीं देता। आत्मसन्तोष, लोकसम्मान और दैवी अनुग्रह की महान महत्ता के सम्बन्ध में जिनने कभी सुना-समझा तक नहीं, वे भला उसे पाने के लिए ही क्यों प्रयत्न करेंगे ? इन दिनों तो पैसा ही परमेश्वर बना हुआ है। अहंकार का उन्माद इस कदर छाया हुआ है, कि उसके लिए समय, श्रम और साधनों को बड़ी से बड़ी मात्रा में निछावर करने के लिए लोग आकुल-व्याकुल देखे गए हैं। वासना, तृष्णा और अहंता के अतिरिक्त जब और कुछ सूझ ही न पड़े लिप्सा,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लालसा और तृष्णा की ललक जब गहरी खुमारी के रूप में चढ़ी हुई हो, तो विद्या के, ब्रह्मविद्या के आत्मज्ञान के स्वर्गीय दृष्टिकोण एवं जीवन मुक्ति जैसे उच्च स्तर के सम्बन्ध में कोई कुछ सुने-समझे भी क्यों ? उस दिशा में कुछ करने एवं नियम बनाने की बात तो बहुत पीछे आती है।

जो हो, आज का गुजारा भले ही इस सड़ी कीचड़ में लोट-पोट करते हुए भी हो सकता है, पर कल स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता पड़ेगी। उसके बिना उद्धार-निस्तार भी तो नहीं। इतने पर भी यह भूल नहीं जाना चाहिए कि कार्य क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। साथ ही दुरूह भी। उसे सम्पन्न करने में मानवी प्रयत्न तो एक सीमा तक ही सफल हो सकते हैं। प्रश्न समूचे संसार का है। समस्या ६०० करोड़ मानवों की है। उनका प्रवाह उल्टी दिशा में चल रहा है। वे ऐसे अन्धड़ के साथ उड़ रहे हैं, जो कभी भी कहीं भी करारी पटखनी दे सकता है और हड्डी-पसली तोड़ डालने जैसा संकट खड़ा कर सकता है। इसलिए प्रचलन का परिवर्तन एक प्रकार से अनिवार्य हो गया है।

६०० करोड़ मनुष्यों का चिन्तन प्रवाह मानवी मर्यादाओं के उल्लंघन का अभ्यस्त हो चले, चिन्तन में निकृष्टता और चरित्र में भ्रष्टता का अनुपात असाधारण रूप में बढ़ चले, तो उस विशाल कार्य क्षेत्र में लगभग पूरी तरह उलट देने का कार्य नियन्ता की नियति ही कर सकती है; भले उसे सम्पन्न करने में किन्हीं व्यक्तियों को श्रेय-सौभाग्य पाने का अवसर मिलने लगे।

'विद्या' की गरिमा का माहात्म्य बताते हुए आप्त जनों ने बहुत कुछ कहा है—**'विद्ययाऽमृतमश्नुते,' 'सा विद्या या विमुक्तये,' 'विद्या ददाति विनयम्'** आदि-आदि। मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव में चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में जो उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश कर सके, वही विद्या है। संजीवनी विद्या भी इसी का नाम है। कई व्याख्याकार इसे जीवन जीने की कला कहते हैं। इसी के साथ सुख-शान्ति और प्रगति के सभी सूक्ष्म तंतु जुड़े हुए माने जाते हैं। इसकी उपेक्षा करने पर न भौतिक प्रगति सम्भव होती है और न आध्यात्मिक उन्नयन की बात बनती है।

जले दीपक ही बुझों को जलाएँगे

कथा है कि महाप्रलय के दिनों सर्वत्र समुद्र का खारा पानी ही भरा पड़ा था। उसकी तली में गहरी कीचड़ भी भरी हुई थी। उसी बीच एक चमत्कार हुआ। पानी के ऊपर एक कमल उभरकर खिल आया। उसमें सहस्र पंखुड़ियाँ थीं। बात इतने पर ही समाप्त नहीं हुई। कमल के मध्य पर ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। वे वेदज्ञान से सृष्टि को गुंजित करने लगे। साधन और सौंदर्य उसी गुंजन के प्रभाव से उभरे-जुड़े और चेतन सृष्टि उसी प्रयास के फलस्वरूप विनिर्मित हो चली।

पौराणिक मिथक की वास्तविकता के सम्बन्ध में दो मत हो सकते हैं, पर सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि अपने समय की विपन्न परिस्थितियों में चमत्कार जैसा उद्भव होने ही वाला है। सहस्रदल खिलने ही वाला है। उसमें ब्रह्म चेतना का ऐसा प्रवाह निःसृत होने वाला है, जो उलटे को उलट कर सीधा कर सके, सुखद सम्भावनाओं का अभिनव सृजन इस स्तर का बन पड़े, जिसे कीचड़ से उभरा कमल कहा जा सके।

इक्कीसवीं सदी के आरम्भिक बुलबुले शान्तिकुञ्ज की जमीन को फोड़कर उभरने और उबलने लगे हैं। अगले दिनों यह एक निर्झर के रूप में गति पकड़ ले, तो किसी को भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। हल्की भाप आरम्भ में धीरे से उठती है, पर वह कुछ ही समय में घटा-टोप बनकर बरसने लगती है। इसे आश्चर्य नहीं तो और क्या कहें ? राई जितने छोटे बीज का विशाल वट-वृक्ष के रूप में सुविस्तृत हो जाना क्या कोई कम आश्चर्य की बात है ? यह अपनी सृष्टि ऐसे ही आश्चर्यों का प्रदर्शन पग-पग पर करती है। सच तो यह है कि इस संसार में जो कुछ हो चुका है, जो हो रहा है, जो होने वाला है, उसे सृष्टि के चमत्कारों की शृंखला के अतिरिक्त और कुछ कहा नहीं जा सकता। बाल की नोक जितना क्षुद्र शुक्राणु यदि साढ़े पाँच फुट का सर्वांग सुन्दर मनुष्य बन सकता है, तो चमत्कार के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? ग्रह-नक्षत्र अधर में टँगे हैं और द्रुतगति से घूमते रहते हैं, तो इसे अघटित का घटित होने के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

मनुष्य स्वल्प है। उसकी सामर्थ्य भी सीमित है। उसकी सूझ-बूझ, प्रयत्नशीलता और सफलता सीमित स्तर की ही बनकर रह जाती है; पर भगवान के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वे देखते-देखते ऋतुओं में ऐसा परिवर्तन करके रख देते हैं कि उस अलौकिकता को देखकर हतप्रभ ही होकर रह जाना पड़ता है। मनुष्य यदि ऐसा करना चाहे, तो उसका पुरुषार्थ वैसा बन ही नहीं पड़ेगा।

अवतारों की पूर्ण शृंखला का अवगाहन करने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि उनका अवतरण असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिए ही होता रहा है। यों निराकार होने के कारण वे प्राणियों की तरह प्रयत्न-पुरुषार्थ नहीं कर पाते, फिर भी मनुष्यों में से ही ऐसे कितने का चयन कर लेते हैं, जिन्हें हवा भरकर नन्हें से गुब्बारे को कद्दू जितना विशाल बनाया जा सके। हनुमानों, अंगदों, अर्जुनों, नारदों, बुद्धों, गाँधियों आदि की इतनी बड़ी शृंखला है, जिन्होंने मनुष्य शरीरधारी होते हुए भी ऐसे महान प्रयोजन पूरे कर दिखाए, जिन्हें अद्भुत और अलौकिक कहा जा सके। एक बार तो महर्षि विश्वामित्र ने ब्रह्मा जी की बनाई सृष्टि की तुलना में दूसरी नई सृष्टि रच डालने के लिए कमर कस ली थी। ऐसे मामले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि द्वारा मुश्किल से ही सुलझाये जा सकते हैं। अगस्त्य ऋषि ने तीन चुल्लू में समूचा समुद्र सोख लिया था। ऐसे कृत्यों के पीछे यदि भगवान की शक्ति काम करती दीख पड़े, तो उसे आश्चर्य नहीं मानना चाहिए।

लम्बा समय दुर्मतिजन्य दुर्गति सहन करते-करते बीत गया। अब यदि उलट-पुलट कर सही स्थिति में ला देने की योजना बनी है, तो उसे इसलिए असम्भव नहीं मान लेना चाहिए कि मनुष्यों के सीमित प्रयास इतने सुविस्तृत कार्य को नहीं कर सकते। मनुष्य के लिए कुछ भी कितना ही कठिन हो सकता है; पर जिसने आकाश में असंख्यों ग्रह-तारक, झाड़-फानूस की तरह अधर में लटका रखे हैं, उसके लिए किसी सदाशयता भरे प्रयोजन को पूरा कर सकना कैसे कुछ कठिन हो सकता है ?

छोटा आरम्भ उपहासास्पद तो लगता है, फिर भी इस सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता कि वह कुछ ही समय में कहीं से कहीं जा पहुँचे। बुद्ध और गाँधी के आन्दोलन आरम्भ में नगण्य स्तर के ही थे; पर जब समय ने साथ दिया, तो क्रिया की प्रतिक्रिया इतनी महान् हुई कि उसे देखते हुए आश्चर्यचकित ही रह जाना पड़ता है।

युग संधि महापुरश्चरण शान्तिकुंज में विगत दो वर्षों से चल रहा है। उसकी शाखा-प्रशाखाओं के रूप में हजारों स्थान और लाखों मनुष्य अनुप्राणित हो चले हैं। अब इस वर्ष से युग-शिल्पियों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया बड़े रूप में चल पड़ी है, ताकि धीमी गति से चल रहे प्रयासों को राकेट स्तर की तेजी उपलब्ध हो सके। पिछले वर्ष नौ-नौ दिन के और एक-एक महीने के प्रशिक्षण सत्रों की शृंखला चलती रही है, पर इस बार उसे ऐसी गति प्रदान की गई है, जिससे लम्बी अवधि में सम्पन्न हो सकने वाले कार्य अपेक्षाकृत चौगुनी, सौगुनी गति से अग्रगामी बन सकें और उन्हें सन् २००० तक के कुछ वर्षों में पूरा किया जा सके।

विद्यालयों की इमारतें बनती हैं, फर्नीचर इकट्ठा किया जाता है; पर इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि सुयोग्य अध्यापकों का चयन हो और उन्हें अपना काम पूरा करने की ललक निरन्तर बेचैन किए रहे। इसके बाद अन्य कार्य तो सरलतापूर्वक सम्पन्न होते रहते हैं।

सन् १९९० के वसन्त पर्व से शान्तिकुंज में 'सधनशक्ति' उत्पन्न करने के अतिरिक्त, उपयुक्त विद्या चेतना के धनी और समर्थ शक्तिशाली अध्यापक प्रशिक्षित-विनिर्मित करने का कार्य आरम्भ किया गया है। अखण्ड ज्योति के पाँच लाख परिजनों को प्रशिक्षित करने का कार्य सर्वप्रथम हाथ में लिया गया है। स्थान भी इन्हीं दिनों कुछ बढ़ाया गया है। शान्तिकुंज में निवास, भोजन, साधन आदि की व्यवस्था पिछले वर्षों की तुलना में प्रायः दूनी बढ़ाई गई है, पर फिर भी आवश्यकता को देखते हुए उसे कई गुना बढ़ाने की आवश्यकता पड़ रही है। थोड़ा धैर्य रखने पर उसकी पूर्ति हो जाने की सम्भावना है।

अधिक लोगों को कम समय में प्राण चेतना से अनुप्राणित करना हो, तो इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता कि शिक्षा अवधि को जितना कम करना सम्भव हो, उतना कर लिया जाय। न्यूनतम की बात सोचें, तो वह अवधि पाँच दिन से कम कदाचित सम्भव नहीं हो सकती। इसलिए चालू प्रशिक्षण सत्रों को पाँच-पाँच दिन का कर दिया गया है। तारीख १ से ५, ७ से ११, १३ से १७, १९ से २३, २५ से २९। इस प्रकार हर महीने पाँच सत्र निरन्तर सम्पन्न होते रहेंगे। शिक्षा की दृष्टि से किसी महत्त्वपूर्ण शिक्षण के लिए यह अवधि बहुत ही कम है; पर जब प्रसंग प्राण-प्रत्यावर्तन का हो, आदान-प्रदान की व्यवस्था को ही प्रमुख माना गया हो, तो काम में कुछ देर की फुसफुसाहट भी बड़े प्रयोजनों को पूरा कर देती है। सीखने और सिखाने वाले दमदार हों, तो रामायण की यह उक्ति भी चरितार्थ हो जाती है, जिसमें कहा गया है कि—

"गुरु गृह पढ़न गए रघुराई।
अल्पकाल विद्या सब आई।।"

मूर्छना का पुनर्जागरण अनिवार्य है

विश्वव्यापी परिवर्तन और सृजन का दुहरा प्रयोजन पूरा करने के लिए साधारणतया शताब्दियों और सहस्राब्दियों का समय चाहिए, पर अब उतनी प्रतीक्षा की गुंजायश रह नहीं गई है। अग्निकाण्ड के समय में लम्बी अवधि में पूरी हो सकने वाली योजना नहीं बन सकती। उस अनर्थ को रोकने के लिए धूल, पानी आदि जो कुछ भी मिल सके, उसी के सहारे वह कार्य हाथों-हाथ सम्पन्न करना पड़ता है। सहमत और उत्सुक छात्रों को पढ़ा देना कठिन नहीं है; पर जो गलती को ही सही मानने का दुराग्रह अपनाये बैठा हो, उसे समझा सकना असम्भव तो नहीं, पर कष्ट-साध्य अवश्य है। इन दिनों विचार परिवर्तन के सहारे युग परिवर्तन करने के लिए ऐसे प्रशिक्षक चाहिए, जो न केवल वार्तालाप, शंका-समाधान एवं प्रवचनों द्वारा आवश्यक जानकारी दे सकें, वरन् अपनी प्राण-प्रतिभा का प्रयोग करके, उल्टी मान्यता और क्रिया-प्रक्रिया को बलपूर्वक सीधी कर सकें।

प्राचीनकाल में वातावरण अनुकूल था। तब उस प्रमुख प्रयोजन के लिए, आवश्यक संस्थानों के लिए इमारतें भी आसानी से बन जाती थीं। गाँव-गाँव छोटे-छोटे देवालय होते थे, जिन्हें पुरोधा सँभालते थे और दैनिक कथा-वार्ता एवं पर्व-संस्कार आदि विशेष अवसरों पर, जनसमुदाय के जनमानस की विकृतियों को सुधारते और सदाशयता के बीजांकुर इस प्रकार जमाते थे, जिससे वे समयानुसार फल-फूलों से लदे सुन्दर-सुहावने वृक्ष बन सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चे की शिक्षा पाठशालाओं में होती थी। ग्राम-पुरोहित उनका सूत्र-संचालन करते थे। यजमान उनकी निर्वाह-सामग्री समय-समय पर भिजवाते रहते थे। जिनके लिए अन्न-वस्त्र ही पर्याप्त हों, उनके लिए खर्च ही कितना चाहिए ? बच्चों की पढ़ाई के बदले मुट्ठी भर अन्न देते रहना किसी को भारी नहीं पड़ता था। छात्रों को शिक्षा और विद्या का दुहरा लाभ बिना किसी अड़चन के मिलता रहता था।

बड़ी कक्षाओं के लिए गुरुकुल थे, जिनमें छात्रों के लिए न केवल उच्चस्तरीय शिक्षा की व्यवस्था रहती थी, वरन् भोजन-वस्त्र जैसी व्यवस्थाओं का तारतम्य भी बना रहता था।

अध्यापकों, उपाध्यायों, मनीषियों, वानप्रस्थों की शिक्षा आश्रम-आरण्यकों में होती थी। वयोवृद्ध मनीषियों का सामयिक चिन्तन और निर्धारण बुद्धिजीवी आश्रमों में चलता रहता था। पुस्तकों की संरचना और अनुवाद, प्रतिलिपि लेखन भी उपरोक्त संस्थानों में सम्पन्न हो जाता था। उपरोक्त सभी शिक्षण-संस्थानों में न केवल बौद्धिक, वरन् व्यावहारिक शालीनता के अभ्यास का अवसर भी मिल जाता था।

विदेशों में ज्ञान चेतना जगाने के लिए परिव्राजकों के लिए विश्वविद्यालय बने हुए थे। वहाँ से परिपक्व होकर ऋषि कल्प परिव्राजक देश-देशान्तरों में निकल जाते थे और जहाँ, जिस प्रकार के सद्ज्ञान की आवश्यकता समझी जाती थी, वहाँ वैसा ही अध्यापन तन्त्र खड़ा कर देते थे। सर्वविदित है कि कुमारजीव जैसे महामनीषियों ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, मंचूरिया आदि पूर्वोत्तर क्षेत्र में नवजीवन का संचार किया था। नालन्दा विश्वविद्यालय के महामनीषी कौडिन्य ने दक्षिण पूर्व के क्षेत्र तिब्बत, वर्मा, मलेशिया, इण्डोनेशिया, कम्पूचिया, जावा, सुमात्रा आदि को देव संस्कृति का केन्द्र बना दिया था।

समय का कुचक्र ही कहना चाहिए कि आज वह समूचा तन्त्र, पुरातन इमारतों के ध्वंसावशेष के रूप में जहाँ-तहाँ अपने पूर्व अस्तित्व का परिचय भर देता है। लोकरुचि उस प्रसंग से हट गई। न पुरोहित रहे, न लोकमानस को जीवन्त-जाग्रत रखने वाले पुरोधा। साधु-ब्राह्मणों की संख्या तो लाखों-करोड़ों में है, पर जिन्हें अपने शाश्वत कर्तव्यों का ज्ञान है, तथा उस प्रकार का कुछ करते भी हैं, उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनने लायक ही मानी जा सकती है। युग ऋषियों का उत्पादन, निर्माण कहाँ होता है ? उस स्थान को ढूँढ़ पाना भी शोध का विषय बन गया है। न वैसा कुछ पढ़ने में किसी को रुचि है और न पढ़ाने में। कारण कि नौकरी-व्यवसाय आदि में प्रचुर धन कमा लेने की ललक हर किसी को घेरे हुए है। अध्यापक और छात्र भी इसी प्रसंग को पढ़ते-पढ़ाते हैं।

जब विद्या तन्त्र तिरोहित हो गया और उसके हर कोने पर उदरपूर्ति से सम्बन्धित शिक्षा ही कब्जा किए हुए हो, तब सद्ज्ञान के केन्द्रों का संचालन एवं निर्माण कहाँ से बन पड़े ? धर्मशालाएँ बनाकर नाम कमाने वाले अधिक से अधिक इतना कर पाते हैं कि कोई मुफ्त दवा देने वाला औषधालय, सदाव्रत या प्याऊ खुलवा दें। दान-पुण्य की सीमित परिधि इतने ही छोटे क्षेत्र में सिकुड़कर रही गई है। देवता की प्रसन्नता, स्वर्ग में स्थान सुरक्षित होने की सम्भावना, जब प्रचुर सम्पदा का एक राई-रत्ती जितना अंश खर्च कर देने भर से पूरी हो जाती है, तो इतनी दूर की बात कौन सोचे कि विश्व को उन क्रान्ति-मनीषियों की भी जरूरत है, जो उल्टी चाल अपनाए हुए समुदाय को अपनी प्रचण्ड प्रेरणाओं के बल पर चलने के लिए घसीटें और बाधित कर सकें।

अचिन्त्य-चिन्तन का शिकार लोकमानस तो बेतरह तबाह हो ही रहा है। इस अन्धड़ से उनकी आँखों में भी धूलि भर गई है, जो पुण्य-परमार्थ की बात सोचने और उस दिशा में कुछ कर सकने की परिस्थितियों में हैं। जब समूचा प्रवाह ही स्वार्थ-साधन के लिए समर्पित है, तो मनीषा और सम्पन्नता को ही क्या बन पड़ी है; जो लोकहित की बात सोचे ? जन कल्याण के सरंजाम जुटाए ? उल्टे प्रवाह को मोड़कर सीधी दिशा में ले चलने के लिए लोकमानस को नियोजित करने का तारतम्य बिठाएँ ? समय की अनिवार्य आवश्यकता को पूरा कर सकने वाले प्रकाश कण कहीं से उभरते नहीं। नवजागरण के स्वर कहीं से उठते नहीं। ऐसी दशा में घोर निराशा के गर्त में अपने को भी डूब जाने के लिए परामर्श देने की अपेक्षा, यही उपयुक्त दीखता है कि टैगोर के उस गीत को ही गाया-गुनगुनाया जाय, जिसमें उन्होंने कहा था—'एकला चलो रे'।

अकेला चलना कठिन तो है, पर असम्भव नहीं। बुद्ध, गाँधी, दयानन्द, विवेकानन्द, मीरा, चैतन्य, कबीर आदि मण्डली गठित करने और साधन जुटाने की प्रतीक्षा में नहीं बैठे रहे; वरन् अपने शरीर और मन मात्र को साथ लेकर उस मार्ग पर चल पड़े थे, जो दर्शकों परामर्शदाताओं को साधनों के अभाव में असम्भव जैसा प्रतीत होता था। इस संदर्भ में वे अधिक साहसी दीखते हैं, जो अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर घोंसला छोड़कर अभीष्ट दिशा में उड़ चलते हैं और सफलता-असफलता की बात ईश्वर-भरोसे छोड़ देते हैं। देवर्षि नारद को भी विश्व-भ्रमण में चल पड़ने की हिम्मत आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कहीं से नहीं मिली थी।

चिरपुरातन को पुनर्जीवित करने के लिए सतयुग की वापसी जैसा भगीरथ प्रयत्न, शान्तिकुंज ने अपने एकाकी बलबूते आरम्भ किया है। यों दिव्यदर्शी यह भी देखते हैं, कि सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है। संकल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के बल पर ब्रह्मा ने समूची सृष्टि रच डाली थी। फिर ऋषि परम्परा इतनी मूर्च्छित तो नहीं हुई है, जिसके पुनरुत्थान की आशा ही छोड़नी पड़े ? लक्ष्मण की मूर्च्छा जगी थी। मानवी गरिमा को पुनर्जीवित करने का संकल्प जगा है, तो कल-परसों यह भी तनकर खड़ा होगा।

लोकमानस—परिष्कार का प्रशिक्षण

शान्तिकुंज एक छोटी-सी भूमि पर बसा, थोड़े-से लोगों द्वारा संचालित एक साधारण-सा आश्रम है। उसकी व्यय-व्यवस्था प्रेमी-परिजनों द्वारा नित्य निकाली जाने वाली दस पैसा जैसी छोटी राशि से चलती है। एक घंटा समय नित्य निकालने वाले परिजन भी उसी श्रद्धा के बल पर इतनी भारी गाड़ी को अपने बलबूते घसीटते रहे हैं। सरकारी या धनाध्यक्षों के अनुग्रह की न कभी आशा की गई और न वह इस संकल्प की ओर उन्मुख ही हुआ।

सद्ज्ञान प्रकाश के देवता 'सविता' के रथ में कभी ऋषि, मनीषी, तपस्वी, साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ और परिव्राजक रूपी सात अश्व मिल-जुलकर दौड़ते थे और उस ऊर्जा एवं आभा से विश्व का कोना-कोना आलोक से भरते थे। उस सांस्कृतिक रथ के निर्माण में समर्थ-सम्पन्न अपनी श्रद्धांजलियाँ नियोजित करते रहते थे। धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अवसर इसी आधार पर उपलब्ध हुआ था। पर अब तो सब कुछ उलटा हो गया; तथाकथित संत जन, लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने के लिए देवताओं के एजेण्ट बन गए हैं। पैसा खर्चने वाले, आत्म विडम्बना के अतिरिक्त और किसी काम के लिए एक कौड़ी भी खर्चना नहीं चाहते। ऐसी दशा में विकृतियाँ ही बढ़ती हैं। विकृतियाँ मात्र विपत्ति ही नहीं लातीं, वे उनके समाधान के उपायों को भी झुठलाती और उधर ध्यान देने वालों को भी बरगलाती हैं। इस प्रकार समस्या दूनी, दुहरी जटिल हो जाती है।

फिर भी कुछ करना तो है ही। स्वल्प सामर्थ्य में भी हीनता के भाव न लाकर, जो सम्भव है, उसे कर गुजरना ही इष्ट है। वही किया भी जा रहा है। दुष्कर्मों की तरह सत्कर्मों का अनुकरण करने वाले भी अनेकों निकल आते हैं। दीवाली की रात दीप-मालिकाओं से जगमगाने लगती है। दीप-पर्व मनाया जाता है और समझा जाता है कि समर्थों के मुँह मोड़ लेने पर भी सामान्यों और छोटों का समुदाय भी ऐसा कुछ कर गुजरता है, जिसे कम से कम सराहना का लाभ तो मिल ही सके।

अखण्ड ज्योति और उसकी सहेली पत्रिकाओं के माध्यम से, पाँच लाख स्थायी और पच्चीस लाख अस्थायी परिजनों का एक समुदाय शान्तिकुंज तंत्र के इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गया है। यह प्रायः पचास वर्ष से युग समस्याओं, उसके समाधानों और वर्तमान पीढ़ी के युग धर्म स्तर के कर्तव्यों के सम्बन्ध में निरन्तर कुछ पढ़ता, समझता, सोचता तो रहा ही है; साथ ही उसने समय की पुकार को सुनने और तदनुरूप यथासंभव कदम उठाते रहने का प्रयत्न भी चालू रखा है। यही है अपनी जीवन भर की संचित पूँजी—अपना विचार परिवार, जिसे, वंश परम्परा से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और सशक्त माना जा सकता है। इसी को श्रद्धासिक्त पुष्पांजलि के रूप में युग देवता के चरणों में अर्पित करने का निश्चय किया है। दशरथ ने अपने पुत्र विश्वामित्र को सौंप दिए थे। गुरुगोविन्द सिंह के पाँच पुत्रों का भी ऐसा ही श्रेष्ठ सदुपयोग हुआ था। नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिक्षा विश्वविद्यालय, प्रेम महाविद्यालय, कलकत्ता का नेशनल कॉलेज जैसे आश्रम भी अपने छात्रों को ऐसी ही दिशा में अग्रसर करके कृत-कृत्य हुए थे। शान्तिकुंज के अन्तराल में भी ऐसी ही उत्कट अभिलाषा उभरी है कि वह भी ऐसा ही कुछ अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करे।

वसन्त १९९० से शान्तिकुंज में कई प्रशिक्षण एक साथ चल पड़े हैं। इनमें से प्रथम है—लोकमानस के परिष्कार का आन्दोलन और उसका संचालन। दूसरा है—महिला जागरण, जिसमें आधी जनसंख्या को अपना मूल्य समझने, बोध करने के लिए शिक्षित, स्वावलम्बी और सुसंस्कृत बनने की चेतना को उभारना है। तीसरा है—मानवी अन्तराल में सन्निहित प्राण-चेतना के उद्दीपन हेतु साधनात्मक अन्वेषण का निर्धारण परीक्षण, यह शोधा प्रक्रिया ब्रह्मवर्चस् में की जाती है। महिला प्रशिक्षण को शक्ति-चेतना कहा जाएगा और भाव-संवेदना उभारने वाली शिक्षा को कल्प प्रक्रिया नाम दिया गया है। यों तीनों ही उपक्रम एक ही तन्त्र के अन्तर्गत काम करेंगे और उनका सूत्र-संचालन करने वाली ऊर्जा एक ही बिन्दु से उभरेगी।

कार्यारम्भ के प्रथम चरण में सोचा गया है कि पाँच लाख स्थायी पाठक परिजनों में हर साल एक लाख को प्रशिक्षित किया जाय, पाँच लाख को पाँच साल में प्रशिक्षित कर दिया जाय। यदि गति और दुगुनी बढ़ सकी, तो सन् २००० के आगमन में, जो कुछ वर्ष शेष हैं, उनमें प्रस्तुत २५ लाख को न केवल प्रशिक्षित कर दिया जाएगा, वरन् किसी न किसी सीमा तक नियमित रूप से हर दिन कुछ न कुछ करते रहने का व्रत धारण करा दिया जाएगा।

एक से पाँच बनने-बनाने का एक आन्दोलन इसी के साथ चलाया जा रहा है। इस आधार पर आशा की जा सकती है कि जब इन्हीं दिनों ५ लाख के प्रभाव से २५ लाख कुसमुसाने और अँगड़ाई लेने लगे हैं, तो आगामी दस वर्ष में २५ लाख से पाँच गुने बढ़कर सवा करोड़ हो सकते हैं। क्रम आगे भी जारी रहा, तो सवा करोड़ का सवा छै करोड़ हो जाना भी असम्भव नहीं। इतने सृजन शिल्पी लोकमानस को परिष्कृत करने में, प्रचलनों में घुसी अवांछनीयताओं को उलटने में बहुत हद तक सफल हो सकते हैं। स्रष्टा की सुनियोजित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योजना आगे बढ़ती रही, तो वह दिन दूर नहीं कि जन-जन के मनों में समुद्र-मंथन जैसी प्रक्रिया उभरे और उनमें एक से एक बढ़कर दैवी सम्पत्ति के प्राणवान रत्न निकलकर इस विश्व वसुधा को स्वर्गोपम बनाकर रख दें।

इन दिनों आदर्शवादी विरक्तों को खोज निकालने में सफलता नहीं मिल रही है। रंगीन कपड़े पहनने वालों, माला सटकाने वालों और मुफ्त के सुविधा-साधन बटोरने वालों की कमी नहीं। पर विवेकानन्द, दयानन्द, केशवानन्द कहाँ से आएँ ? उस दिशा में प्राय: निराश हो चलने पर अब सोचा यह गया है कि, सद्गृहस्थों के माध्यम से ही आपत्तिकालीन आवश्यकता को पूरा किया जा सकेगा। इसका और कोई विकल्प भी तो नहीं है।

हर वर्ष एक लाख का शिक्षण—यह शान्तिकुंज का वर्तमान निर्धारण है। इसी संख्या में उन महिलाओं को भी सम्मिलित रखा गया है, जो घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर महिला उन्नयन के लिए समय निकाल सकने की स्थिति में हैं। आशा की जानी चाहिए कि सुविधा-साधन बढ़ाते रहें, तो अगले कुछ वर्षों में २५ लाख को अपने घर वालों में से ही प्रशिक्षित कर दिया जाय उन्हें ऐसा साँचा बना दिया जाय, जो अपनी बनावट के अनुरूप नये पुर्जे, नये खिलौने ढालने की आवश्यकता पूरी करते रहें। ईश्वर की इच्छा विस्तार करने की हो, तो अपना मिशन भी मत्स्यावतार की तरह सुविस्तृत हो सकता है, समूचे संसार को अपने अंचल में बटोर सकता है।

उपरोक्त प्रशिक्षण वसन्त पर्व (३१ जनवरी) सन् १९९० से विधिवत चल रहा है। यह सत्र पाँच-पाँच दिन के हैं। इसमें सभी को समय का पूर्व निर्धारण करना होता है और स्वीकृति मिलने पर ही आने की तैयारी करनी होती है। इसमें उन सभी को कड़ाई के साथ आने के लिए मना कर दिया गया है, जो मात्र सैर-सपाटे के लिए आया करते थे। अशिक्षित, वयोवृद्ध, रोगी, बालक, अनगढ़ इन सत्रों में प्रवेश नहीं ही पा सकेंगे।

पंच दिवसीय साधना का स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप

मानवी चेतना तीन शरीर धारण किए हुए है, जिनमें से एक को स्थूल, दूसरे को सूक्ष्म और तीसरे को कारण कहते हैं, इन्हीं के माध्यम से जानकारियाँ प्राप्त करने से लेकर उपलब्धियाँ अर्जित करने तक के अनेकों क्रियाकलाप सम्पन्न होते हैं। तदनुरूप ही वे हल्के, भारी और सशक्त होते हैं।

बोलचाल की वाणी को ही लें, वह जीभ से निकलती, कानों के छेदों से टकराती, मस्तिष्क में पहुँचती, जानकारी देती और अपना कार्य पूरा कर लेती है। आमतौर से इसी का उच्चारण होता है। विचार विनिमय, अध्यापन-अध्ययन, कथन-श्रवण में इसी का उपयोग होता रहा है। एक कहता—दूसरा सुनता है। जो जानने योगय हे, उसे जानता है। जो पहले से ही जाना हुआ है, उसकी उपेक्षा कर देता है। उपदेश प्रयोजन में भी इतनी ही प्रक्रिया सम्पन्न होती है। वक्ता कहते रहते हैं, श्रोता सुनते रहते हैं। जो नया कुछ होता है, उसे जान लेते हैं, शेष को निरर्थक समझकर विस्मृत कर देते हैं। धार्मिक प्रयोजन में भी यही होता रहता है। उसमें कथन-श्रवण का ही उपक्रम चलता रहा है। इस स्तर पर जानकारियों का आदान-प्रदान होता है। ऐसा कुछ नहीं बन पड़ता, जो प्रभाव डाले और अन्तराल की गहराई में प्रवेश करके प्रभाव छोड़े, चिरस्थायी बने और मानस में कोई कहने लायक परिवर्तन लाए।

शान्तिकुंज के पाँच दिवसीय सत्रों में इससे कुछ अधिक, कुछ गम्भीर, कुछ प्राणवान अनुभव होता है। इसलिए उस कथन का वजन भी होता है और प्रभाव भी। निर्धारित कथन किसी ऋषिकल्प मनीषी का ही होता है। उसे संदेशवाहक की तरह कहलवाया, किसी दूसरे से भी जा सकता है। उसके पीछे मात्र शब्द-शृंखला नहीं होती, वरन् ऊर्जा रहती है, जो कथनी-करनी और प्राण-चेतना से विनिर्मित होती है। यही कारण है कि वह सुनने वालों के अन्तराल की गहराई तक उतरती है, झकझोरती है और ऐसा दबाव डालती है, जिसके आधार पर तथ्यों को हृदयंगम करने और उन्हें जीवन में उतारने के लिए विवश होना पड़े। यही कारण है कि पंच दिवसीय सत्रों में प्रस्तुत किए गए प्रतिपादन अपनी समर्थता, प्रभावशीलता और प्राणप्रतिभा सम्पन्न होने का परिचय देते हुए उस मर्मस्थल तक जा पहुँचते हैं, जहाँ से जीवनक्रम में आदर्शवादी उमंगें उद्भुत होती हैं। इनमें जिह्वा से निकलने वाली बैखरी वाणी ही काम नहीं करती, वरन् उनके साथ सूक्ष्म परिकर की मध्यमा और कारण क्षेत्र की परा वाणी का प्रभाव भी सम्मिलित होता है। वे इंजेक्शन की तरह रक्त प्रवाह में भी सम्मिलित हो जाते हैं।

साधना से सिद्धि का सिद्धान्त सर्वविदित और सर्वमान्य है। सिद्धपुरुषों, महामानवों में जो असाधारण शक्ति देखी गई है, उसका एक ही मूलभूत कारण है—उनकी तपश्चर्या। आदर्शों के परिपालन में जो संयम बरतना बन पड़ता है, उससे बड़प्पन में घाटा पड़ता है। वह कटौती ही संयम साधना है। इसके साथ ही दूसरा पक्ष एक और भी जुड़ा हुआ है कि सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए श्रेष्ठता को अपनाने, उभारने और उछालने में जो प्रयत्न-परिश्रम करना पड़ता है, यहाँ तक कि घाटा उठाने का भी अवसर आता है, उसे प्रसन्न एवं उल्लसित मन से सहन कर लेना। जो इन दोनों प्रयोजनों को उत्साहपूर्वक अंगीकार कर लेता है, उसे तपस्वी कहते हैं। शरीर और मन को कष्ट सहने के लिए अभ्यस्त बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेना तितीक्षा है। तितीक्षा के अभ्यास से तपश्चर्या सरल बन जाती है और उसके विकसित होने पर सिद्धियों की फसल भंडार भरने लगती है।

तप का स्वरूप क्या है ? ताप-ऊर्जा द्वारा धातुएँ भट्टी में पिघलाकर अभीष्ट औजारों के रूप में ढाली जाती हैं। मिट्टी के बर्तन आँवे में पककर लाल और कड़े बन जाते हैं। पानी को गरमाने से भाप बनती है और उससे शक्तिशाली इंजन चलने लगते हैं। संसार के अधिकांश महत्त्वपूर्ण कार्यों में ऊर्जा के नियोजन की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। पंच दिवसीय साधना में भी व्यक्ति की सहनशक्ति के अनुरूप विविध साधनाओं का समावेश रखा गया है। पूजा-उपासना के हर प्रसंग में किसी-न-किसी रूप में तपश्चर्या का अनुपात जुड़ा हुआ है। इसके बिना मात्र उथले कर्मकाण्डों से किसी को न सिद्धि मिल सकी है, न मिल सकेगी।

आत्मिक प्रगति में एक और भी बड़ी अड़चन है। पूर्व संचित दुष्कर्मों का समुच्चय। उस विपन्नता को बिना प्रायश्चित के और किसी प्रकार हटाया नहीं जा सकता। मैले कपड़े को धोया न जाय, तो उस पर रंग कैसे चढ़े ? बिना तपे धातु का शुद्ध स्वरूप कैसे निखरे और उससे उपयोगी औजार कैसे बने ? क्रियमाण दुष्कर्म एक ही माँग करता है कि जितनी गहरी खाई खोदी गई है, उसमें उतनी ही मिट्टी डालकर स्थिति समतल जैसी बनाई जाय। यही प्रायश्चित प्रक्रिया है। इसके लिए पंच दिवसीय साधना में जहाँ प्रतीकात्मक प्रक्रिया है। इसके लिए पंच दिवसीय साधना में जहाँ प्रतीकात्मक प्रायश्चित की चिह्न-पूजा का विधान रहता है, वहाँ यह भी कहा जाता है कि—पापों की खाई पाट सकने योग्य पुण्य कर्मों का नये सिरे से कुछ ऐसा आयोजन किया जाय, जिससे उत्पन्न की गई दुष्प्रवृत्तियाँ अभिनव सत्प्रवृत्तियों से दब-ढँक सकें।

यहाँ एक प्रसंग अनुदान का भी है। बीज मात्र अपने बलबूते ही वृक्ष नहीं बन जाता, उसे खाद, पानी, रखवाली जैसी बाहरी सहायताएँ भी अपेक्षित रहती हैं। शान्तिकुंज के वातावरण में ऐसे तत्त्वों का समुचित समावेश हुआ है, जिसके सान्निध्य में चंदन के समीप उगे हुए पौधों की तरह अतिरिक्त लाभ भी मिल सके। स्वाति-वर्षा जब-कभी, जहाँ-कहीं भी होती है, तब वहाँ समुचित क्षमता वाली सीपों में मोती, केलों में कपूर, बाँसों में वंशलोचन जैसे बहुमूल्य उपलब्धियाँ उपलब्ध होकर रहती हैं। शान्तिकुंज में ऐसे तत्त्व अदृश्य रूप से बरसते रहते हैं, जिन्हें यथासमय ओस-बिन्दुओं की तरह घनीभूत देखा जा सके।

पारस, अमृत और कल्पवक्ष की चर्चा इस रूप में होती रहती है कि उनका सम्पर्क-सान्निध्य निहाल कर देता है। सेनेटोरियम उन स्थानों पर बनते हैं, जहाँ का जलवायु औषधि उपचार से भी अधिक लाभदायक हो, रुग्णता और दुर्बलता को भगाने में अमृतोपम सिद्ध हो। शान्तिकुंज क्षेत्र को ऐसी सुसंस्कारी भूमि के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ गंगातट, हिमालय की छाया और सप्तऋषियों की तपश्चर्या के विशिष्ट संस्कार अभी भी अपने पुरातन प्रभाव का परिचय देते हैं।

साधकों को जो आहार दिया जाता है, वह उच्चस्तरीय सात्विकता से परिपूर्ण और प्राण चेतना की आध्यात्मिकता से अनुप्राणित रहता है। उसे बाजारू फलाहार से कहीं अधिक उच्चस्तरीय समझा जाता है।

शान्तिकुंज के सूत्र-संचालन में जिस ऋषि-युग्म की प्रधान भूमिका है, वे अगले दिनों शरीर न रहने पर भी इस पुण्य भूमि में अपना अस्तित्व बनाए रहने के लिए वचनबद्ध हैं। अगली स्थिति में उनकी साधना और भी अधिक उग्र हो जाएगी। उस समूचे उपार्जन का लाभ उन परिजनों को अनवरत् रूप से मिलता रहेगा, जो अगले दिनों नव-सृजन के हेतु अपना समय-दान, अशंदान नियोजित करने में कृपणता न बरतेंगे।

आगामी कुछ वर्ष—अति महत्त्वपूर्ण

प्राचीनकाल में सतयुग का वातावरण अनायास ही नहीं बना रहा था। उसके लिए ऋषिकल्प महामानव विद्या विस्तार के दायित्व को पूरी तत्परता से सँभालते थे। आश्रमों, तीर्थों, आरण्यकों, गुरुकुलों, मंदिरों जैसे स्थानों एवं कथा-सत्संगों, तीर्थ-यात्राओं, घर-घर अलख जगाने जैसी विधाओं के माध्यम से जन-जन को श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों से विभूषित किया जाता था। अध्यात्म विद्या का अविरल प्रवाह हर क्षेत्र में बहता रहता था, जिसके कारण हर व्यक्ति आदर्शों को अपनाने तथा उस दिशा में कुछ कर गुजरने के लिए हुलसता रहता था।

अन्तराल में सद्भावनाएँ लहराती हों, तो कोई कारण नहीं कि प्राण-चेतना में उल्लास भरी उमंगें न उभरें और उस आकर्षण से प्रकृति का अनुग्रह अजस्र रूप से न बरसे, वातावरण में सुख-शांति के तत्त्व उछलते-उफनते दीख न पड़ें। सतयुग इन्हीं परिस्थितियों का नाम था। उसका सृजन उत्कृष्टा की पक्षधर मनःस्थिति ही किया करती थी।

अगले दिनों सतयुग की वापसी के सरंजाम पूरी तरह सम्भावित हो रहे हैं। उनमें पूर्ववर्ती सौम्य सम्पदाओं का समुचित समावेश होने जा रहा है। अस्तु, यह भी स्वाभाविक है कि वैसा ही जनमानस बने और उसके लिए पुरोहित वर्ग में सम्मिलित समझे जाने वाले, जनमानस के परिष्कार में संलग्न देव-मानवों का एक सशक्त और बड़ा वर्ग, नियन्ता की नियति को शिरोधार्य करते हुए आगे आए। उसके लिए जीवन्तों और जीवितों के मनमानस में समुद्र मंथन-स्तर का हृदयमंथन चल रहा है। विचार-परिवर्तन और दैवी-आह्वान को सुनने-समझने एवं अपनाने के लिए प्रवाह बह रहा है। इन दिनों ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भँवर-चक्रवात इतनी तेजी से उभर रहे हैं, जिन्हें देखकर समय की प्रबलता का अनुमान कोई भी कर सकता है। महाकाल जब करवटें बदलता है, तो ऐसी उलट-पुलट बन पड़ती है, जिसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़े। इन दिनों ऐसा ही कुछ हो रहा है, होने वाला है।

समय चक्र के अन्तर्गत यों पुनर्जीवन भी होता रहता है, पर पुनर्जागृति के दृश्य तो आए दिन दिखने को मिलते ही रहते हैं। रात आते ही लोग सो जाते हैं और प्रातःकाल नई स्फूर्ति लेकर सभी उत्साहपूर्वक उठ खड़े होते हैं। पतझड़ में पेड़ ठूँठ बन जाते हैं, पर वसन्त आते ही उन्हें नई कलियों एवं नये फूलों से लदा हुआ देखा जा सकता है। कुयोग जैसा कलियुग विगत शताब्दियों में अपनी विनाश-लीला दिखाता रहा है। अंत तो उसका ही होना था, हो भी रहा है। सतयुग की वापसी का इन्तजार दसों दिशाएँ उत्सुकतापूर्वक कर रही हैं।

युग संधि काल बारह वर्ष में ऐसा ही ताना-बाना बुन रहा है। उसने अपना घोंसला शान्तिकुंज में बनाया है। कार्य क्षेत्र तो उसका द्रुतगामी गरुड़ पक्षी की तरह दसों दिशाओं में फैलना निर्धारित है। इस घोंसले में एक से एक बढ़कर अण्डे-बच्चे उगने, विकसित होने और निखिल आकाश में पंक्तिबद्ध उड़कर एक सुहावना दृश्य उत्पन्न करने वाले हैं।

वसंत सन् १९९० से लेकर सन् २००० तक के दस वर्षों में युगचेतना को वहन करने वाले समर्थ पक्षधर विनिर्मित एवं कार्यरत होने जा रहे हैं। प्रारम्भिक निश्चय यह है कि एक वर्ष में एक लाख को ढूँढ़ा और पकाया जाय। स्थान की कमी इस कार्य में प्रधान बाधा थी। आसुरी शक्तियाँ सदा से सत्प्रयोजन में अड़चन उत्पन्न करने में चूकती नहीं हैं। उन्हीं का प्रकोप इन दिनों भी काम करता दीख पड़ रहा है, फिर भी गति रुके नहीं, ऐसा उपाय निकाल लिया गया है। प्राचीनकाल में ऋषियों की पाठशालाएँ वृक्षों के नीचे, घास-फूस की कुटियों में चल जाती रहीं, तो कोई कारण नहीं कि इन दिनों वह कार्य टीनशेडों में न चल सके। महँगी भूमि और इमारती सामान की दसियों गुनी महँगाई को देखते हुए शान्तिकुंज की वर्तमान इमारत को ही तीन मंजिल बना दिया गया है। जहाँ कहीं काम के योग्य जमीन थी, वहाँ टीनशेड खड़े कर दिए गए हैं और ऐसी व्यवस्था बना दी गई है कि एक वर्ष में एक लाख युग शिल्पियों का शिक्षण किसी प्रकार चल जाया करेगा।

स्थान कम और लक्ष्य बड़ा होने के कारण शिक्षण सत्रों को सिकोड़कर पाँच दिवसीय बना दिया गया है। पढ़ने-पढ़ाने में तो लम्बा समय चाहिए, पर प्राण-प्रत्यावर्तन तो थोड़े समय में भी हो सकता है। देवर्षि नारद कहीं भी ढाई घड़ी से अधिक नहीं रुकते थे, पर इतने में ही वे जिस पर भी हाथ रखते थे, उसी को चैतन्य कर देते थे। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को थोड़े ही समय में बला-अतिबला विद्याएँ सिखा दी थीं। इस दृष्टि से अभिनव ५ दिवसीय सत्र-शृंखला भी कामचलाऊ परिणाम प्रस्तुत कर ही सकती है।

एक वर्ष में एक लाख अर्थात दस वर्ष में दस लाख की शिक्षण योजना है। साथ ही जो प्रशिक्षण प्राप्त करें, उन सबके जिम्में यह दायित्व सौंपा गया है कि वे समयदान का क्रम निर्धारित गति से चलाते रहें और दस नये अपने जैसे अपने क्षेत्र में लोकसेवी उत्पन्न करें। इस प्रकार दस वर्षों में वे दस लाख न रहकर एक करोड़ की सीमा के समीप तक पहुँच जाएँगे। आशा की गई है, नैष्ठिकों का यह वर्ग इंजन के रूप में अगणित डिब्बों को अपने साथ घसीटता ले चलेगा और वह परिकर इतना बड़ा हो जाएगा कि सतयुग की वापसी का आधार बन सके। यह वितान इतने विस्तार में तन सके कि जिसकी छत्रछाया में पर्याप्त मात्रा में नव-सृजन के कर्णधार आवश्यक आश्रय प्राप्त कर सकें।

कहा जा चुका है कि युगसाधना की पूर्णाहुति अब सन् १९९५ और सन् २००० के दो खण्डों में होगी। इन्हें एक स्थान पर न करके २४ सौ निजी प्रज्ञापीठों और २४ हजार बिना निजी इमारतों वाले प्रज्ञा केन्द्रों में सम्पन्न किया जाएगा। हर केन्द्र में सौ से लेकर हजार वेदी वाले दीप यज्ञ सम्पन्न होंगे। इस प्रकार उनकी संख्या भी एक लाख से अधिक हो जाएगी। एक लाख वेदी के गायत्री यज्ञ और एक करोड़ साधकों की संख्या में चलने वाले २४ करोड़ जप का यह महापुरश्चरण सम्मिलित रूप से इतना विशालकाय होगा कि अब तक के धर्मानुष्ठानों में इसे अभूतपूर्व और सतयुग की वापसी के पुण्य पर्व के आगमन का विश्वव्यापी उद्घोष कहा जा सके। आशा की गई है कि इस आयोजन के सम्पर्क में आने वालों की संख्या भी करोड़ों-अरबों तक पहुँचेगी। उनका अपना बदलाव और सम्पर्क क्षेत्र में उत्पन्न होने वाला परिवर्तन इतना सशक्त होगा कि उस सम्मिलित शक्ति के सहारे नवयुग का अवतरण सर्वथा सार्थक बन पड़े और हम सब इक्कीसवीं सदी के गंगावतरण का मत्स्यावतार का प्रत्यक्ष दर्शन अपने ही समय में कर सकने में समर्थ हो सकें।

जो परिजन इस दुर्लभ समय का महत्त्व समझ रहे हैं, वे एक क्षण भी नष्ट किए बिना स्वयं को अग्रदूतों की भूमिका में प्रवृत्त करने को तत्पर हो रहे हैं। नव-सृजन की यह वेला अपनी झोली में असीम शक्तियाँ और असाधारण सौभाग्य भरे हुए हैं। सत्पात्रों को वे अनुदान देने के लिए आगे बढ़कर साहस दिखाने वालों के अभिनन्दन-प्रशिक्षण के लिए शान्तिकुंज पूरी तरह तत्पर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत:स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप; **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑